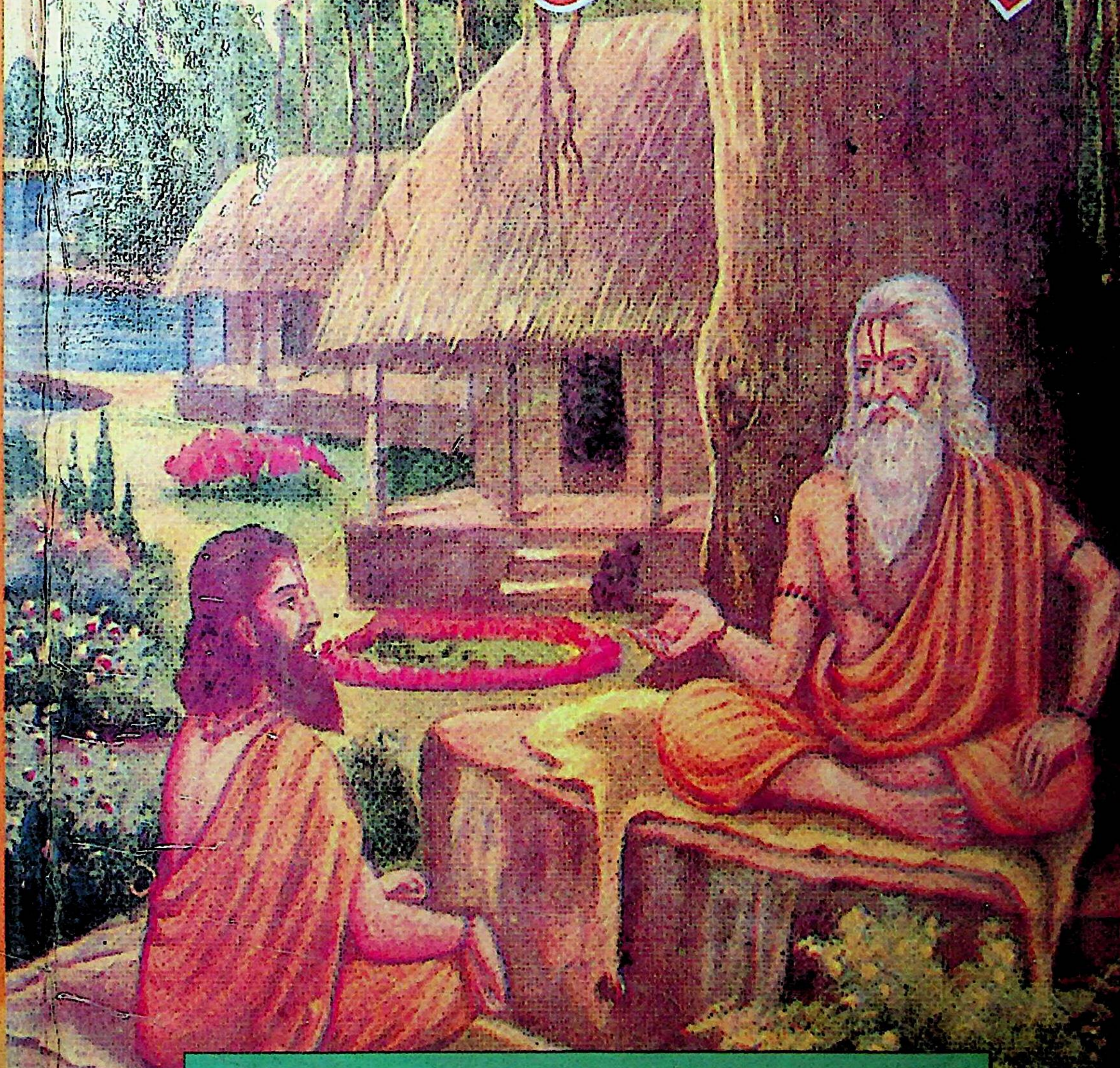
ईशावास्याद्येकादशोपनिषत्सु
विशिष्टाद्वैतपरकम्

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

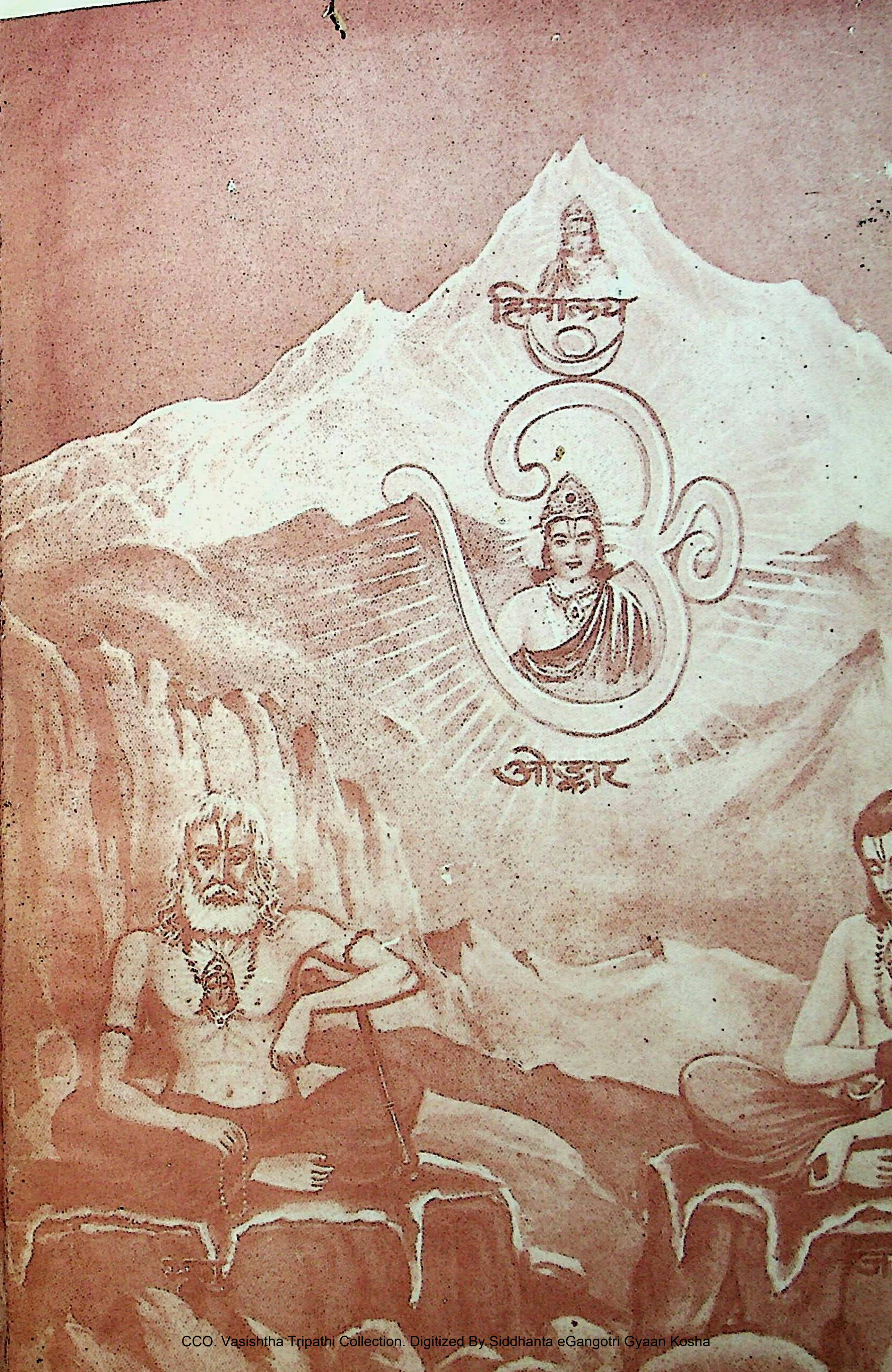


भाष्यकाराः – जगद्गुरुरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यमहाराजाः चित्रकूटीयाः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

ईशावास्याद्येकादशोपनिषत्सु

(विशिष्टाद्वैतपरकम्)

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

भाष्याकाराः-
जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यजीमहाराजाः
चित्रकूटीयाः

प्रकाशक :
श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः
तुलसीपीठः, आमोदवनम्
श्रीचित्रकूटधाम, जनपदं-सतना (म०प्र०)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशक :

श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः
तुलसीपीठः, आमोदवनम्,
श्रीचित्रकूटधाम, जनपदं सतना (म०प्र०)
दूरभाष : ०७६७०-६५४७८



प्रथमसंस्काम् : ११०० प्रतयः



© जगद्गुरुरामानन्दाचार्य–
स्वामिरामभद्राचार्याणामाविर्भावतिथिः
सं. २०५४ रामनवमी ५ अप्रैल, १९९८



मूल्यम् : ५०० रूप्यकाणि



प्राप्तिस्थानम् :

तुलसीपीठः, आमोदवनम्, चित्रकूटं जनपदं—सतना (म०प्र०)
"वसिष्ठायनम्" (रानीगली) ज०गु० रामानन्दाचार्य मार्ग, भोपतवाला, हरिद्वार (उ०प्र०)
श्रीगीताज्ञानमन्दिर, भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात) पिन—३६०००२



मुद्रक :

पण्ड्या ऑफसेट,
बैजनत्था, वाराणसी - १०
फोन : ३२००३९

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुक्रमणिका

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीराघवोविजयते ।।

प्रकाशकीयम्

नीलनीरदसंकाशकान्तये श्रितशान्तये ।
रामाय पूर्णकामाय जानकीजानये नमः ।।

साम्प्रतिकबुद्धिजीविवर्गे पण्डिततल्लजसमाजे च श्रीवैष्णवसत्समाजे को नाम नाभिनन्दति? पदवाक्यप्रमाणपारावारीणकवितार्किकचूडामणिसारस्वतसार्वभौमपण्डित-प्रकाण्डपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीवैष्णवकुलतिलकत्रिदण्डीश्वरश्रीचित्रकूट तुलसी-पीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यवाचस्पतिमहामहनीयस्वामिरामभद्राचार्यमहाराजराजिष्णु-प्रतिभाधनम्। आचार्यचरणैः श्रीसम्प्रदायश्रीरामानन्दीयश्रीवैष्णवानुमोदितविशिष्टाद्वैत-वादाम्नायमनुसृत्य ईशावास्यादि बृहदारण्यकान्तानामेकादशोपनिषदां श्रीराघवकृपाभाष्यं प्रणीय भारतीयसंस्कृतवाङ्मयसनातनधर्मावलम्बिनां कियान् महान् उपकारो व्यधायीति तु निर्णेष्यतीतिहासः सोल्लासः। अस्य ग्रथरत्नस्य प्रकाशनदायित्वं श्रीतुलसीपीठसेवान्यासाय प्रदाय ऋणिनः कृता वयं श्रीमज्जगद्गुरुभिः। वयं तेषां सततमाधमर्ण्यभाजः। अहं धन्यवादं दित्सामि साधुवादं च, वाराणसीस्थाय पाण्ड्या ऑफसेट मुद्रणालयाध्यक्षाय चन्दनेशाय श्री विपिनशंकर पाण्ड्या महाभागाय, येन महता परिश्रमेण निष्ठया च गुरुगौरवेण जनताजनार्दनकरकमलं समुपस्थापितं ग्रन्थरत्नमेतत्। अहमाभारं बिभर्मि सकलशास्त्रनिष्णातानां पण्डितप्रवराणां मुद्रणदोषनिराकरणचुञ्चूनां जगद्गुरुवात्सल्य-भाजननानां परमकुशलकर्मणां पं. प्रवर श्रीशिवरामशर्मणाम् ।

अन्ततः साग्रहं निवेदयामि सर्वान् विद्वत्प्रवरान्, यत्—

ग्रन्थरत्नमिदं मत्वा सीताभर्तुरनुग्रहम् ।
निराग्रहाःसमर्चन्तु रामभद्रार्यभारतीम् ।।

इति निवेदयते
राघवीया
कु० गीता देवी
प्रबन्धन्यासी, श्री तुलसीपीठसेवान्यासस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



वाचस्पति, श्री तुलसी पीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
तुलसीपीठ, आमोदवन, चित्रकूट, जि. सतना (म.प्र.)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhānta eGangotri Gyaan Kosha

द्वित्राः शब्दाः

श्रीराघवाष्टकम्

निशल्या कौसल्या सुखसुरलतातान्तिहृतये।
यशोवारां राशेरुदयमभिकाङ्क्षन्निव शशी।
समञ्चन् भूभागं प्रथयितुमरागं पदरतिम्।
तमालश्यामो मे मनसि शिशुरामो विजयते।।१।।

क्वचित् क्रीडन्व्रीडाविनतविहगैर्वृन्दविरुदो।
विराजन् राजीवैरिव परिवृतस्तिग्मकिरणः।
रजोवृन्दं वृन्दाविमलदलमालामलमलम्।
स्वलंकुर्वन् बालः स इह रघुचन्द्रो विजयते।।२।।

क्वचिन् माद्यन् माद्यन् मधुनवमिलिन्दार्यचरणा-।
म्बुजद्वन्दो द्वन्द्वापनयविधिवैदग्ध्यविदितः।
समाकुञ्चत् केशैरिव शिशुघनैः संवृतमिव।
विधुं वक्त्रं विभ्रन् नरपतितनूजो विजयते।।३।।

क्वचित् खेलन् खेलन् मृदुमरुदमन्दाञ्चलचल-।
च्छिरः पुष्पैः पुञ्जैर्विबुधललनानामभिचितः।
चिदानन्दो नन्दन् नवनलिननेत्रो मृदुहसन्।
लसन् धूलीपुञ्जैर्जगति शिशुरेको विजयते।।४।।

क्वचिन् मातुः क्रोडे चिकुरनिकरैरंचितमुखः।
सुखासीनो मीनोपमदृशिलसत्कज्जलकलः।
कलातीतो मन्दस्मितविजितराकापतिरुचिः।
पिबन् स्तन्यं रामो जगति शिशुहंसो विजयते।।५।।

क्वचिद् बालो लालालसितललिताम्भोजवदनो।
वहन् वासः पीतं विशदनवनीतौदनकणान्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विलुण्ठन् भूभागे रजसि विरजा सम्भृत इव ।
तृषा ताम्यत्कामो भवभयविरामो विजयते ।।६।।

क्वचिद् राज्ञो हर्षं प्रगुणयितुकामः कलगिरा ।
निसिञ्चन् पीयूषं श्रवणपुटके सम्मतसताम् ।
विरिंगन् पणिभ्यां वनरुहपदाभ्यां कलदृशा ।
निरस्यन् नैराश्यं नवशशिकरास्यो विजयते ।।७।।

क्वचिन् नृत्यन् छायाछपितभवभीतिर्भवभवो ।
दधानोऽलंकारं विगलितविकारं शिशुवरः ।
पुरारातेः पूज्यः पुरुषतिलकः कन्दकमनः ।
अयोध्यासौभाग्यं गुणितमिहरामो विजयते ।।८।।

जयत्यसौ नीलघनावदातो ।
विभा विभातो जनपारिजातः ।
शोभा समुद्रो नरलोकचन्द्रः ।
श्रीरामचन्द्रो रघुचारुचन्द्रः ।।९।।

ईशावास्यसमारब्धाः बृहदारण्यकान्तिमाः ।
ऐकादशोपनिषदो विशदाःश्रुतिसम्मताः ।।१०।।

श्रीराघवकृपाभाष्यनाम्ना भक्तिसुगन्धिना ।
पुण्यपुष्पोत्करेणेड्याः मया भक्त्या प्रपूजिताः ।।११।।

क्वचित्क्वचित् पदच्छेदः क्वचिदन्वययोजना ।
क्वचिच्छास्त्रार्थपद्धत्या पदार्थाः विशदीकृताः ।।१२।।

खण्डनं परपक्षाणां विशिष्टाद्वैदमण्डनम् ।
चन्दनं वैष्णवसतां श्रीरामानन्दनन्दनम् ।।१३।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं भूषितं सुरभाषया ।
भाषितं भव्यया भक्त्या वेदतात्पर्यभूषया ।।१४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रमाणानि पुराणानां स्मृतीनामागमस्य च ।
तथा श्रीमानसस्यापि दर्शितानि स्वपुष्टये ।।१५।।

प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दश्चेति यथास्थलम् ।
प्रमाणत्रितयं ह्यत्र तत्वत्रयविनिर्णयम् ।।१६।।

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तदर्पणं श्रुतितर्पणम् ।
अर्पणं रामभद्रस्य रामभद्रसमर्पणम् ।।१७।।

यदि स्युः त्रुटयः काश्चित् ताः ममैवाल्पमेधसः ।
यदत्र किञ्चिद्वैशिष्ट्यं तच्छ्रीरामकृपाफलम् ।।१८।।

रुद्रसंख्योपनिषदां मया भक्त्या प्रभाषिम् ।
श्रीराधवकृपाभाष्यं शीलयन्तु विमत्सराः ।।१९।।

इति मंगलमाशास्ते
श्रीवैष्णवविद्वत्प्रीतिवशंवदो राघवीयो जगद्गुरू रामानन्दाचार्यो स्वामिरामभद्राचार्यः
अधिचित्रकूटम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, विद्यावारिधि, वाचस्पति परमहंस परिव्राजिकाचार्य, आशुकवि यतिवर्य प्रस्थानत्रयी भाष्कार –

श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

पूज्यपाद

श्री श्री १००८ स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

का

संक्षिप्त जीवन वृत्त

आर्विभाव

आपका अर्विभाव १४ जनवरी १९५० तद्नुसार मकर संक्राति की परम पावन सान्ध्य बेला में वशिष्ठ गौत्रीय उच्च धार्मिक शरयूपारीण ब्राह्मण मिश्र वंश में उत्तर-प्रदेश के जौनपुर जनपद के पवित्र ग्राम शाडीखुर्द की पावन धरती पर हुआ। सर्वत्र-आत्म-दर्शन करने वाले हरिभक्त, या मानवता की सेवा करने दानवीर, या अपनी मातृभूमि की रक्षा में प्राण बलिदान करने वाले शूर-वीर योद्धा देश भक्त, को जन्म का सौभाग्य तो प्रभुकृपा से किसी भी मां को मिल जाता है। परन्तु भक्त, दाता और निर्भीक तीनों गुणों की सम्पदा से युक्त बालक को जन्म देने का परम श्रेय अति विशिष्ठ भगवद् कृपा से किसी विरली मां को ही प्राप्त होता है। अति सुन्दर एवं दिव्य बालस्वरुप आचार्य-चरण को जन्म देने का परम सौभाग्य धर्मशीला माता श्रीमति शची देवी और पिताश्री का गौरव पं० श्री राजदेव मिश्रजी को प्राप्त हुआ।

आपने अपनी शैशव अवस्था में ही अपने रूप, लावण्य एवं मार्धुय से सभी परिवार एवं प्रियजनों को मोहित कर दिया। आप की बाल क्रीड़ाए अद्‌भुत थी। आपके श्वेतकमल समान सुन्दर मुख मंण्डल पर बिखरी मधुर मुस्कान, हर देखने वाले को सौम्यता का प्रसाद बांटती थी। आपका विस्तृत एवं तेजस्वी ललाट, आपके अपार शस्त्रीय ज्ञानी तथा त्रिकालदर्शी होने का पूर्व सकेंत देता था। आपका प्रथम दर्शन मन को शीतलता प्रदान करता था। आपके कमल समान नयन उन्मुक्त हास्यपूर्ण मधुर चितवन चंचल बाल क्रीड़ाओं की चर्चा शीघ्र ही किसी महापुरुष के प्राकट्य की शुभ सूचना की भान्ति दूर-दूर तक फैल गई, और यह धारणा बन गई की यह बालक असाधारण है। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' की कहावत को आपने चरितार्थ किया।

भगवत् इच्छा

अपने प्रिय भक्त को सांसारिक प्रपन्चों से दूर रखने के लिए विधाता ने आचार्यवर

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए कोई और ही रचना कर रखी थी। जन्म के दो महिने बाद ही नवजात शिशु की कोमल आखों को रोहुआ रोग रुपी राहू ने तिरोहित कर दिया। आचार्य प्रवर के चर्म-नेत्र बन्द हो गए। यह हृदय विदारक दुर्घटना प्रियजनों को अभिशाप लगी, परन्तु नवजात बालक के लिए यह वरदान सिद्ध हुई। अब तो इस नन्हे शिशु के मन-दर्पण पर परमात्मा के अतिरिक्त जगत के किसी भी अन्य प्रपञ्च के प्रतिबिम्बिंत होने का कोई अवसर ही नहीं था। आपको दिव्य प्रज्ञा-चक्षु प्राप्त हो गए। आचार्य प्रवर ने भगवद् प्रदत्त अपनी इस अन्तर्मुखता का भरपूर उचित उपयोग किया। अब तो दिन-रात परमात्मा ही आपके चिन्तन, मनन और ध्यान का विषय बन गए।

आरम्भिक शिक्षा

अन्तमुर्खता के परिणामस्वरूप आपमें दिव्य मेधा शक्ति और अद्भुत स्मृति का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप कठिन से कठिन श्लोक कवित्त, छन्द, सवैया आदि आपको एक बार सुनकर सहज कन्ठस्थ हो जाते थे। मात्र पांच वर्ष की आयु में आचार्य श्री ने सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता तथा मात्र आठ वर्ष की शैशव अवस्था में पूज्य पितामह श्रीयुत सूर्यबली मिश्र जी के प्रयासों से गोस्वामी तुलसीदास जी रचित सम्पूर्ण रामचरितमानस क्रमवद्ध पक्ति, संख्या सहित कण्ठस्थ करली थी। आपके पूज्य पितामह आपको खेत की मेंढ़ पर बिठाकर आपको एक एक बार में श्रीमानस के पचास पचास दोहों की आवृतिकरा देते थे। हे महामनीषी, आप उन सम्पूर्ण पचास दोहों को उसी प्रकार पंक्ति क्रम संख्या सहित कण्ठथ कर लेते थे। अब आप अधिकृत रूप से श्रीरामचरितमानस-सरोवर के राजहंस बन कर श्री सीता-राम के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम और ध्यान में तन्मय हो गए।

उपनयन एवं दीक्षा

आपका पूर्वाश्रम का नाम 'गिरिधर-मिश्र' था। इसलिए गिरिधर जैसा साहस, भावुकता, क्रान्तिकारी स्वभाव, रसिकता एवं भविष्य निश्चय की दृढ़ता तथा निःसर्ग सिद्ध काव्य प्रतिभा इनके स्वभाविक गुण बन गये। बचपन में ही बालक गिरिधर लाल ने छोटी-छोटी कविताएँ करनी प्रारम्भ कर दी थीं। २४ जून १९६१ को निर्ज़ला एकादशी के दिन 'अष्टवर्ष ब्राह्मणमुपनयीत' इस श्रुति-वचन के अनुसार आचार्य श्री को वैदिक परम्परापूर्वक उपनयन संस्कार सम्पन्न किया गया तथा उसी दिन गायत्री दीक्षा के साथ ही तत्कालीन मूर्धन्य विद्वान् सकलशास्त्र-मर्मज्ञ पं० श्री ईश्वरदास जी महाराज जो अवध-जानकीघाट के प्रवर्तक श्री श्री १०८ श्री रामवल्लभाशरण महाराज के परम कृपापात्र थे, इन्हें राम मन्त्र की दीक्षा भी दे दी।

उच्च अध्ययन

आपने श्री रामचरितमानस एवं गीताजी के कण्ठस्थीकरण के पश्चात् संस्कृत में उच्च अध्ययन की तीव्र लालसा जागृत हुई और स्थानीय आदर्श श्री गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में पाँच वर्ष पर्यन्त पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न करके आप विशेष अध्ययन हेतु वाराणसी आ गये। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की १९७३ शास्त्री परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर एक स्वर्ण पदक प्राप्त किया एवं १९७६ की आचार्य की परीक्षा में समस्त विश्वविद्यालय में छात्रों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर पाँच स्वर्ण पदक तथा एक रजत पदक प्राप्त किया। वाक्पटुता एवं शास्त्री प्रतिभा के धनी होने के कारण आचार्यश्री ने अखिल भारतीय संस्कृत अधिवेशन में सांख्य, न्याय, व्याकरण, श्लोकान्त्याक्षरी तथा समस्यापूर्ति इन पाँच प्रथम पुरस्कार प्राप्त किये, एवं उत्तर प्रदेश को १९७४ की 'चलवैजयन्ती' प्रथम पुरस्कार दिलवाया। १९७५ में अखिल भारतीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर तत्कालीन राज्यपाल डॉ० एम० चेन्ना रेड्डी से कुलाधिपति 'स्वर्ण पदक' प्राप्त किया। **इसी प्रकार आचार्यचरणों ने शास्त्रार्थों एवं भिन्न-भिन्न शैक्षणिक प्रतियोगिताओं में अनेक शील्ड, कप एवं महत्वपूर्ण शैक्षणिक पुरस्कार प्राप्त किए।** १९७६ वाराणसी साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय में समायोजित शास्त्रार्थ आचार्यचरण प्रतिभा का एक रोमांचक परीक्षण सिद्ध हुआ। इसमें आचार्य अन्तिम वर्ष के छात्र, प्रत्युत्पन्न मूर्ति, शास्त्रार्थ-कुशल, श्री गिरिधर मिश्र ने 'अधातुः परिष्कार' पर पचास विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं शास्त्रीय युक्तियों से अभिभूत करके निरुत्तर करते हुए सिंह—गर्जन पूर्वक तत्कालीन विद्वान मूर्धन्यों को परास्त किया था। पूज्य आचार्यश्री ने सं० सं० वि० वि० के व्याकरण विभागाध्यक्ष पं० श्री राम प्रसाद त्रिपाठी जी से भाष्यान्त व्याकरण की गहनतम शिक्षा प्राप्त की एवं उन्हीं की सन्निद्धि में बैठकर न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि शास्त्रों में भी प्रतिभा ज्ञान प्राप्त कर लिया एवं 'अध्यात्मरामायणे— अपाणिनीय प्रयोगाणां विमर्शः' विषय पर अनुसन्धान करके १९८१ में विद्यावारीधि (Ph.D) की उपाधि प्राप्त की। **अनन्तर "अष्टाध्याय्याः प्रतिसूत्रं शाब्दबोध समीक्षा" इस विषय पर दो हजार पृष्ठों का दिव्य शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके आचार्य चरणों ने शैक्षणिक जगत की सर्वोत्कृष्ट अलंकरण उपाधि वाचस्पत्ति" (Dlit) प्राप्त की।**

विरक्त दीक्षा

मानस की माधुरी एवं भागवतादि सद्ग्रन्थों के अनुशीलन ने आचार्य—चरण को प्रथम से ही श्री सीताराम—चरणानुरागी बना ही दिया था। अब १९ नवम्बर १९८३ की कार्तिक पूर्णिमा के परम—पावन दिवस की श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में विरक्त दीक्षा लेकर आयार्चश्री ने एक और स्वर्ण सौरभ-योग उपस्थित कर दिया। पूर्वाश्रम के डॉ० गिरिधर मिश्र अब श्री रामभद्रदास नाम से समलंकृत हो गये।

जगद्गुरु उपाधि

आपने १९८७ में श्रीचित्रकूट धाम में श्रीतुलसीपीठ की स्थापना की। उसी समय

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वहाँ के सभी सन्त-महन्तों के द्वारा आपको श्रीतुलसीपीठाधीश्वर पद पर प्रतिष्ठित किया और ज्येष्ठ शुक्ल गंगा दशहरा के परम-पावन दिन वि० सम्वत् २०४५ तद्नुसार २४ जून १९८८ को वाराणसी में आचार्यश्री का काशी विद्वत् परिषद एवं अन्य सन्त-महन्त विद्वानों द्वारा चित्रकूट श्रीतुलसीपीठ के जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पद पर विधिवत अभिषेक किया गया एवं ३ फरवरी १९८९ को प्रयाग महाकुम्भ पर्व पर समागत सभी श्री रामानन्द सम्प्रदाय के तीनों अखाड़ों के श्री महन्तों चतुः सम्प्रदाय एवं सभी खालसों तथा सन्तों द्वारा चित्रकूट सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य महाराज को सर्वसम्मति से समर्थनपूर्वक अभिनन्दित किया।

विलक्षणता

आपके व्यक्तित्व में अद्भुत विलक्षणता है। जिसमें कुछ उल्लेखनीय हैं कोई भी विषय आपको एक ही बार सुन कर कण्ठस्थ हो जाता है और वह कभी विस्मृत नहीं होता। इसी विशेषता के परिणामवरूप जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी ने समस्त तुलसी साहित्य अर्थात् तुलसीदास जी के बारहों ग्रन्थ, सम्पूर्ण रामचरितमानस, द्वादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र नारद-भक्तिसूत्र, सम्पूर्ण भगवत्गीता, शाण्डिल्य सूत्र, बाल्मीकीयरामायण व समस्त आर्य ग्रन्थों के सभी उपयोगी प्रमुख अंश हस्तांकमलवत् कण्ठस्थ कर लिये। आचार्यश्री हिन्दी एवं संस्कृत के आशुकवि होने के कारण समर्थ रचनाएँ भी करते हैं। वशिष्ठ गोत्र में जन्म लेने के कारण आचार्यवर्य श्री राघवेन्द्र की वात्सल्य भाव से उपासना करते हैं। आज भी उनकी सेवा में शिशु रूप में श्री राघव अपने समस्त परिकर खिलौने के साथ विराजमान रहते हैं। आचार्यवर्य की मौलिक विशेषता यह है कि इतने बड़े पद पर आकर भी आपका स्वभाव निरन्तर निरहंकार, सरल तथा मधुर है। विनय, करूणा, श्रीराम प्रेम, सच्चरित्रता आदि अलौकिक गुण उनके सन्तत्त्व को ख्यापित करते हैं। कोई भी व्यक्ति एकबार ही उनके पास आकर उनका अपना बन जाता है। हे भारतीय संस्कृति के रक्षक। **आप अपनी विलक्षण कथा शैली से श्रोताओं को विभोर कर देते हैं**। माँ सरस्वती की आप पर असीम कृपा है। आप वेद-वेदान्त, उपनिषद्, दर्शन, काव्य शास्त्र व अम्य सभी धार्मिक ग्रन्थों पर जितना अधिकार पूर्ण प्रवचन करते हैं उतना ही दिव्य प्रवचन भगवान श्रीकृष्ण की वाङ्मय मूर्ति महापुराण **श्रीमद्भागवत पर भी करते हैं**। आप सरलता एवं त्याग की दिव्य मूर्ति है। राष्ट्र के प्रति आपकी सत्य निष्ठ स्पष्टवादिता एवं विचारों में निर्भीकता जन जन के लिए प्रेरणादायक है। आपके दिव्य प्रवचनों में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की त्रिवेणी तो प्रवाहित होती है, साथ ही राष्ट्र प्रेम का सागर भी उमड़ता है। जिसे आप अपनी सहज परन्तु सशक्त अभिव्यक्ति की गागर में भर कर अपने श्रृद्धालु श्रोतागणों को पान कराते रहते है।

आपका सामीप्य प्राप्त हो जाने के बाद जीव कृत्य-कृत्य हो जाता है। धन्य हैं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे 'पुत्ररत्न' को जन्म दिया। धन्य हैं वे सद्गुरु जिन्होंने ऐसा भागवत् रत्नाकर समाज को दिया। हे श्रेष्ठ सन्त शिरोमणी! हम सब भक्तगण आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गौरवान्वित है।

साहित्य सृजन

आपने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी एवं संस्कृत के अनेक आयामों को महत्त्वपूर्ण साहित्यिक उपादान भेंट किये हैं। काव्य, लेख निबन्ध, प्रवचन संग्रह एवं दर्शन क्षेत्रों में आचार्य श्री की मौलिक रचनाएँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

इस प्रकार आचार्य श्री अपने व्यक्तित्व, कृतित्व, से श्री राम प्रेम एवं सनातन धर्म के चतुर्दिक प्रचार व प्रसार के द्वारा सहत्राधिक दिग्भ्रान्त नर-नारियों को सनातन धर्म-पीयूष से जीवनदान करते हुए अपनी यशः सुरभि से भारतीय इतिहास वाटिका को सौरभान्वित कर रहे है। तब कहना पड़ता है कि :—

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ।।

संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु ।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरन रहि देहु ।।

धर्माचार्य परम्परा :-

भाष्यकार !

प्राचीन काल में धर्माचार्यों की यह परम्परा रही हैं कि वही व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय के आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया जाता था, जो उपनिषद् गीता तथा बह्मसूत्र पर अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुसार वैदुष्यपूर्ण वैदिक भाष्य प्रस्तुत करता था। जिसे हम 'प्रस्थानत्रयी' भाष्य कहते हैं, जैसे शंकराचार्य आदि। आचार्यप्रवर ने इसी परम्परा का पालन करते हुए सर्वप्रथम नारदभक्तिसूत्र पर "श्री राघव कृपा भाष्यम्" नामक भाष्य ग्रन्थ की रचना की। उसका लोकार्पण १७ मार्च १९९२ को तत्कालीन उप राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्पन्न हुआ।

पुज्य आचार्यचरण के द्वारा रचित 'अरुन्धती महाकाव्य' का समर्पण समारोह दिनांक ७ जुलाई ९४ को भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ० शंकरदयाल शर्मा जी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

इसी प्रकार आचार्यचरणों ने एकादश उपनिषद् ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर रामानन्दीय श्री वैष्णव सिद्धान्तानुसार भाष्य लेखन सम्पन्न करके विशिष्टाद्वैत अपनी श्रुतिसम्मत जगद्गुरुत्व को प्रमाणित करके इस शताब्दी का कीर्तिमान स्थापित किया है।

आप विदेशों में भी भारतीय संस्कृति का विश्वविश्रुत ध्वज फहराते हुए, सजगता एवं ज़ागरूकता से भारतीयधर्माचार्यों का कुशल प्रतिनिधित्व करते हैं।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आचार्य श्री के प्रकाशित ग्रन्थ

१. मुकुन्दस्मरण् (संस्कृत स्तोत्र काव्य) भाग—१—२
२. भरत महिमा
३. मानस में तापस प्रसंग
४. परम बड़भागी जटायु
५. काका बिदुर (हिन्दी खण्ड काव्य)
६. माँ शबरी (हिन्दी खण्ड काव्य)
७. जानकी-कृपा कटाक्ष (संस्कृत स्तोत्र काव्य)
८. सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत
९. अरुन्धती (हिन्दी महाकाव्य)
१०. राघव गीत-गुन्जन (गीत काव्य)
११. भक्ति—गीता सुधा (गीत काव्य)
१२. श्री गीता तात्पर्य (दर्शन ग्रन्थ)
१३. तुलसी साहित्य में कृष्ण-कथा (समीक्षात्मक ग्रन्थ)
१४. सनातन धर्म विग्रह-स्वरूपा गौ माता
१५. मानस में सुमित्रा
१६. भक्ति गीत सुधा (गीत काव्य)
१७. श्री नारद भक्ति सूत्रेषु राघव कृपा भाष्यम् (हिन्दी अनुवाद सहित)
१८. श्री हनुमान चालीसा (महावीरी व्याख्या)
१९. गंगा महिम्न स्लोत्रम् (संस्कृत)
२० आजादचन्द्रशेखरचरितम् (खण्डकाव्य) संस्कृत
२१. प्रभुकरिकृपा पाँवरि दीन्ही
२२. राघवाभ्युदयम् (संसकृत नाटक)

आचार्यश्री के शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ :

१. हनुमत्कौतुक (हिन्दी खण्ड काव्य)
२. संस्कृत शतकावली (१) आर्याशतकम् (२) सीताशतकम् (३) राघवेन्द्र शतकम् (४) मन्मथारिशतकम् (५) चण्डिशतकम् (६) गणपतिशतकम् (७) चित्रकूटशतकम् (८) राघव चरणचिह्नशतकम्
३. गंगा महिम्न स्तोत्रम् (संस्कृत)
४. संस्कृत गीत कुसुमाञ्जलि
५. संस्कृत प्रार्थनाञ्जलि
६. श्लोकमौक्तिकम्
७. कवित भाण्डागारम् (हिन्दी)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्री राघवो विजयतेतराम् ।।

आचार्यचरणानां बिरुदावली

नीलाम्बुज श्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
रामानन्दाचार्यं मन्दाकिनीविमलसलिलासिक्तम् ।
तुलसीपीठाधीश्वरदेवं जगद्गुरुं वन्दे ।।

श्रीमद् सीतारामपदपद्मपरागमकरन्दमधुव्रतश्रीसम्प्रदायप्रवर्तकसकलशास्त्रार्थ-महार्णवमन्दरमतिश्रीमदाद्यजगद्गुरु श्रीरामांनन्दाचार्यचरणारविन्दचञ्चरीकः समस्तवैश्णवालंकारभूताः आर्षवाङ्गमयनिगमागमपुराणेतिहाससन्निहित गम्भीरतत्वान्वेषणतत्पराः पदवाक्यप्रमाण पारावारपारीणाः सांख्ययोगन्यायवैशेषिपूर्वमीमांसावेदान्तनारदशाण्डिल्यभक्तिसूत्रगीतावाल्मीकीयरामायणः भागवतादिसिद्धान्तबोधपुरःसरसमधिकृताशेषतुलसीदाससाहित्य सौहित्यस्वाध्यायप्रवचनव्याख्यानपरमप्रवीणाः सनातनधर्मसंरक्षणधुरीणाः चतुराश्रमचातुर्वर्ण्यमर्यादासंरक्षण विचक्षणाः अनाद्यविच्छिन्नसद्गुरुपरम्पराप्राप्तश्रीमद्सीतारामभक्ति भागीरथीविगाहनविमलीकृतमानसाः श्रीमद्रामचरितमानसराजमरालाः सततं शिशुरूपराघवलालनतत्पराः समस्तप्राच्यप्रतीच्यविद्याविनोदित विपश्चितः राष्ट्रभाषागिर्वाणगिरामहाकवयः विद्धन्मूर्धन्याः श्रीमद्रामप्रेम साधनधनधन्याः शास्त्रार्थरसिकशिरोमणयः विशिष्टाद्वैतवादानुवर्तिनः परमहंसपरिव्राजकाचार्यत्रिदण्डी वर्याः श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठाः प्रस्थानत्रयीभाष्यकाराः श्रीचित्रकूटस्थ मन्दाकिनीविमलपुलिननिवासिनः श्रीतुलसीपीठाधीश्वराः श्रीमद्जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्याः अनन्तश्रीसमलंकृतश्रीश्रीरामभद्राचार्य महाराजाः विजयन्तेतराम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection, Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।
।। श्रीमद्रामानन्दाचार्याय नमः।।

ईशावास्याद्येकादशोपनिषत्सु

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण कवितार्किकचूडामणि-वाचस्पति-जगद्गुरुरामानन्दाचार्य-स्वामि-रामभद्राचार्य-प्रणीतं, श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि-विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तप्रतिपादकश्रीराघवकृपाभाष्यम्।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।
।। श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।।

ईशावास्योपनिषदि
श्रीराघवकृपाभाष्यम्

।। मंगलाचरणम् ।।

कौसल्यास्तनपानलालसमना मन्दस्मितोऽव्यक्तवाक्,
एकं ब्रह्मगुडालकाव्रतमुखाम्भोजो घनश्यामलः ।
खेलन् पङ्क्तिरथाजिरे रघुपतिर्बालानुजैः सुन्दरो,
देवो धूलिविधूसरो विजयते रामो मुकुन्दः शिशुः ।। १ ।।

मन्दाकिनीवीचिनिबद्धदृष्टिम्,
सीतामुखाम्भोरुहभृङ्गचित्तम् ।
सलक्ष्मणं बाणधनुर्दधानम्,
रामं श्रये संश्रितचित्रकूटम् ।। २ ।।

ध्वस्तध्वान्तोऽस्मि लब्धार्थो यत्कृपामिहिरत्विषा ।
रामानन्दमहं वन्दे स्वाचार्यं तं जगद्गुरुम् ।। ३ ।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं, नत्वा श्रीवैष्णवानहम् ।
ईशावास्योपनिषदः, भाषे सीतापतेर्मुदे ।। ४ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"श्रीमद्राघवो विजयते"
"श्री रामानन्दाचार्याय नमः"

ईशावास्योपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

शान्तिपाठः

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

प्रस्तावभाष्यम्

श्रीसीतासमलङ्कृतवामभागः श्रीभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नवायुपुत्रप्रभृतिपरमानुरक्तपरिकरपरिचरितपतितपावनपादपद्मः समस्तकल्याणगुणगणनिलयः सजलघनश्यामो लोकाभिरामः श्रीरामः नित्यषडैश्वर्यसम्पन्नः सकललोकातीते श्रीसाकेते निरन्तरं विराजते । स एव भक्तवत्सलो भगवान् प्रपन्नानुग्रहकातरः वैदिकधर्मसंरक्षार्थं मर्त्यान् निजचरणारविन्दप्रेममकरन्दरूपभक्तिसुधां पाययितुं प्रतिकल्पं सप्तमे मन्वन्तरे चतुर्विंशतितमे त्रेतायां भौमसाकेतापरनामधेयश्रीमदयोध्यायां दशरथयागापूर्वः कौशल्यायां परिपूर्णः सन् समवतरति । स एव जानकीवल्लभो निजचरित्रेण चातुर्वर्ण्यमर्यादामपि मण्डयति । वैदिकधर्मस्य चातुर्वर्ण्यमर्यादामयत्वात् । तस्यैव भगवतो महाविष्णोः श्रीरामस्य निःश्वासरूपेषु चतुर्षु वेदेष्वन्यतमोऽयं कर्मकाण्डप्रायो यजुर्वेदः । यस्य वाजसनेयमाध्यन्दिनीशाखान्तर्गतसंहितायाः सन्ति चत्वारिंशदध्यायाः । अस्या एव संहितायाश्चरमोऽध्यायश्चत्वारिंशः, यः खलु ईशावास्योपनिषन्नाम्ना ख्यातिमगात् । एतत्प्रथममन्त्रः 'ईशावास्य' शब्देन प्रारभते अत इमं सम्पूर्णमध्यायमीशावास्योपनिषदिति व्यवहरन्ति । यद्यपि सर्वाः श्रुतयः परम्परया वा साक्षाद् वा परमात्मानं परमेश्वरं निजप्राणवल्लभता समध्यवस्यन्ति, तथापि अन्तरङ्गतया साक्षात्सम्बन्धेन परमेश्वरं समभिदधानः श्रुतिसमूहः उपनिषद् शब्दवाच्यो भवति । उप नि पूर्वक सद्लृधातोः कर्तरि क्विप् । अयं खलु ज्ञानप्रायो भवति, ज्ञानगम्यपरमात्मनः साक्षात्प्रतिपादकत्वात् । अनेकासूपनिषत्सु विद्यमानासु सर्वप्रथमतया ईशावास्योपनिषदेव गण्यते, एतामेवाहं श्रीराघवकृपाबलः श्रीराघवकृपानामभाष्येण विभूषयितुं यते । सत्स्वपि पूर्वाचार्यैः प्रणीतेषु भाष्येषु मयापि विशिष्टाद्वैतवादानुसारं श्रीसीतारामप्रीतये एषा व्याचिकीर्ष्यते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्येकमुपनिषदः प्रारम्भे लोककल्याणकामः ऋषिः शान्तिपाठं पठति । सैव परम्परा इहापि ज्ञेया, **ॐ पूर्णमदः** इत्यादि । ॐ इति परब्रह्मवाचकम् । एकाक्षरं ब्रह्म समस्त श्रुतिभ्यः प्रागुक्तं परममङ्गलम् पुराणमतेन ब्रह्मणः कण्ठं भित्वा प्रथममुच्चरित्तम् । प्रणवोऽयं भगवतापि प्रणूयमानत्वात् । एतद् व्याख्यानभूता निखिलमाण्डूक्योपनिषद् । एतस्यैव अकारं विराट् , उकारं हिरण्यगर्भः, मकारं प्राज्ञः, **तुरीयमानाञ्च तुरीयमधितिष्ठति** । पौराणिकाः अकारे, विष्णोः उकारे ब्रह्मणः मकारे शिवस्य, अर्धमात्रायां महाविष्णोर्ध्यानमामनन्ति । दार्शनिकाः अत्रैव वर्णत्रये तिसृणां वृत्तीनां समाहारं मन्यन्ते । वैदिका अस्मिन्नेव वेदत्रयीं, केचन त्रिभुवनं, केचन त्रिदैवतं प्राहुः । इदं विवरणमेतस्य व्यस्ततापक्षानुरोधेन । वस्तुतस्तु समस्ततापक्ष एव पारमार्थिकः ॐकारस्य । अस्मिन् पक्षे अयम् ॐकारः प्राकृतगुणवर्जितं सकलभक्ताह्लादकदिव्यचिन्मयाचिन्त्यगुणगणसागरं परब्रह्मपरमेश्वरं सीताभिरामं श्रीराममेवाभिधत्ते । तथा चाह महिम्नस्तोत्रे पुष्पदन्ताचार्यः—

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धामध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः,
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमितिपदम् ।।

(शिवमहिम्नस्तोत्र-२८)

भगवान् पाणिनिरपि ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म अखण्डम् एकमेव मत्वा समस्तपक्षतः वाक्यस्फोटविधया व्याचष्टे । ॐ इति **अव्** धातोः, **अवतेर्डोम्** इति औणादिकसूत्रेण, **डोम्** प्रत्ययं कृत्त्वा डित्वसामर्थ्यात् **भ** संज्ञामन्तरेणापि **अव्** धातुघटकवकार लोपं विधाय ॐ इति शब्दं साधयन् **अव्** धातोः ऊनविंशतिम् अर्थान् कण्ठतः समभिदधानः ॐ इत्यस्य सगुणब्रह्मवाच्यतामेव व्याहरति दाक्षिपुत्रः—

भगवद्भक्तिरसास्वादनार्थं जनानामपि ॐ इत्यस्मिन् श्रद्धाविवर्धयिषया निजानन्दाय च इह पाणिनीयधात्वर्थानुरोधेन ॐ शब्दस्य व्युत्पत्तिवौचित्र्यमाधुरी प्रस्तूयत्ते । यया मनः अनायासं ॐ शब्दवाच्यसकलवेदतात्पर्यसीताललामश्रीराम एव रमताम् । पाणिनिः **अव्** धातोः एकोनविंशत्यर्थान् प्राहः, अतस्त्द् धातुनिष्पन्नस्य ॐ शब्दस्य त एवार्थाः यथाक्रमं संगमयिष्यन्ते, तथा हि—

अवति, स्वभक्तान् रक्षतीति ॐ । भक्तरक्षणकर्त्ता भगवान् रामः इति भावः । अवति, जनप्रेमवशंवदः तत्समीपं गच्छतीति ॐ । **तदेजति तन्नैजति** इति श्रुतेः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवति, कान्तिमान् भवति सनकादिमुनीन्द्रणामपि मनोनयनहारकत्वात् । **स उ श्रेयान् भवति जायमानः** इति श्रुतेः । अवति, प्रपन्नेषु प्रेम करोति इति ॐ । भगवान् भक्तेषु अहैतुकीं प्रीतिमाचरति स्वभावतः । **ये यथा मां प्रपद्यन्ते ताँस्तथैव भजाम्यहम्** (गीता ४-११) इति स्मृतेः । अवति, तृप्यति भक्तानां निष्किञ्चनभक्तिभावनया तृप्तो भवति इति ॐ । भगवतः भक्तितृप्तेः श्रीरामायणादौ बहुधा स्फुटचर्चा वर्तते । अवति, जानाति निजभक्तमनोरथान् चराचरजीवजातं वा यः सः ॐ । भगवतो निजभक्तमनोरथज्ञत्वं श्रीरामायणे अहल्योद्धरणनिषादमैत्रिजटायुशबरीगतिदानादिप्रकरणेषु श्रीभारते द्रौपदीविदुरचन्द्रहासप्रभृतिमहाभागवताख्यानेषु सुस्फुटं विभ्राजते सर्वज्ञताञ्च **यः सर्वज्ञः सर्ववित्** (मुण्डक १/१/९) इति श्रुतिरपि गायति । अवति भक्तानामन्तःकरणं प्रविषति इति ॐ, **तदन्तरस्य सर्वस्य** इति श्रुतेः । भगवान् भक्तभावनियन्त्रितः भक्तानां मनांसि प्रविशति, किं बहुना कृष्णालज्जाकातरः सन् तस्याः आर्तवजन्यामशुचिताम-विगणय्य तद्वस्त्रमपि प्रविशन् ॐकारस्य प्रवेशरूपार्थं सुस्पष्टमचिख्यपत् । तथा च भारते—

कृष्णं च विष्णुञ्च हरिं नरं च, त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी ।
ततस्तु धर्मोऽन्तरितोमहात्मा समावृणोद् वै विविधैश्च वस्त्रैः ।।

(महाभारत सभापर्व ६७-४६)

धर्मः भगवान् कृष्णः अन्तरितः वस्त्रे तिरोहितः इति भावः । इममेव ॐकारार्थमूलं भगवत्प्रवेशावतारमामनन्ति भागवताः । अवति, शृणोति आर्तजनानां करूणक्रन्दनानि यः स ॐ । भगवान् राघवः माधवश्च । **स शृणोत्यकर्णः** इति श्रुतेः । रामायण-महाभारतयोस्तु सहस्राधिकाः गाथा उज्जृम्भन्ते यासु भगवतः भक्तविलपनश्रवणं स्पष्टं विलोक्यते । अवति, सर्वत्र स्वामित्वं स्थापयति इत्योम् । भगवान् एव सर्वेषां स्वामी सर्वान्तर्यामी निजैश्वर्येण निखिलचराचरं शास्ति **'सर्वस्येशानः' 'सर्वस्यवशी'** इतिश्रुतेः, **यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः** इति स्मृतेः (गीता १५-१७) । अवति, सर्वं करोति इत्योम् । भगवानेव भक्तानां योगक्षेमं तनुते **योगक्षेमं वहाम्यहम्** इति स्मृतेः । अवति, इच्छति निजभक्तन् लालयितुमवतारं ग्रहीतुं स्रष्टुं चाशेषं जगत् इत्योम् । भगवान् निजभक्तानन्दार्थम् अवतर्तुं समीहते जगत् च निजेच्छयैव सृजति । ननु भगवदिच्छायां किं विनिगमकम् ? इति चेत्, सो अकामयत् **एकोऽहं बहुस्यां प्रजायै** इति श्रुतिरेव परमप्रमाणत्वेन गृहाण । **स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि** इति भागवतवचनमपि स्मर्यताम् । **निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार** इति मानसमपि विनिगमय । अवति, दीप्यते इत्योम् । भगवान् कोटिसूर्यसमप्रकाशः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समुद्भासतस्वजनहृदयाकाशे विचकास्ति । श्रीमद्भगवद्गीतायामपि सञ्जयो धृतराष्ट्रं प्रति प्राह—

दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्यात् भासस्तस्य महात्मनः ।।

(गीता ११-१२)

अवति, आलिङ्गति सगुणसाकारः सन् निजभक्तान् यः स ॐ । परमात्मा निजभक्तभावनापरिपालनाय तान् आलिङ्गति तैरालिङ्ग्यते च **तदन्तरस्य सर्वस्य तत्सर्वस्यास्य बाह्यतः** इति ईशावास्यश्रुतिरेव मानम् । नहि आलिङ्गनविषयत्वमन्तरेण कस्यापि अन्तःस्थातुं शक्नोति भगवान् न वा आलिङ्गनकतृत्वमन्तरेण बाह्यतः कस्यचित् स्थातुं शक्यते **अपाणिपादौ जवनो ग्रहीता** इति श्रुतिरपि मानम् । वेदार्थोपबृंहणतया इतिहासपुराणमपि प्रमाणम् ।

इतिहापुराणासभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुतात्वेदो मामसौ प्रहरिष्यति ।।

इति वचनात् । पुराणानां वेदत्वमपि वेदव्यासःस्वीचकार । **इतिहासःपुराणञ्च पञ्चमो वेद उच्यते** इति वचनबलात् इतिहासपुराणयोर्वेदत्वस्वीकारे तयोः बहुत्र घटनासु भगवतो भक्तालिङ्गनचर्चाः दृश्यन्ते । श्री बाल्मीकीयरामायणे सुन्दरकाण्डे गृहीतसीता-समाचारं लाङ्गूलदीपितदशमुखपुरं लंकातः प्रत्यागतं निजचरणकमलयोर्नमन्तं हनुमन्तं प्रति प्राह परब्रह्मभगवान् रामः—

एष सर्वस्वभूतो मे परष्वङ्गो हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तो ह्यस्य महात्मनः ।।

(वा.रा. ६/१/१३)

अवति, आदत्ते भक्तोपहृतं पत्रपुष्पफलजलं स्वीकरोति सगुणसाकारविग्रहः सन् यः स ॐ । **अपाणिपादोजवनो गृहीता** इति श्रुतिरेव मानम् ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

(गीता ९/२६)

एवमेव अवति, भक्तानां दोषमपि आदत्ते इति ॐ । अवति, भक्तपापानि हिनस्ति इत्योम् । भगवान् निजचरणकमलं भजताम् अन्तःकरणस्थः तेषां विकर्माणि विधुनोति **अपहृत पाप्मा** इति श्रुतेः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद् धुनोति सर्वं हृदि संनिविष्टः ।।

(श्रीमद्भागवत ११/५!४२)

इति भागवतोक्तेः । अवति, विभजति इत्योम् । परमात्मा हि प्रतिशरीरम् अन्तर्यामितया विभागशः समधितिष्ठति । बृहदारण्यके अन्तर्यामिप्रकरणे गीतायाश्च अष्टादशस्य एकषष्ठितमे बीजम् एतस्य सिद्धान्तस्य । अवति, वर्धते वर्धयति च निजभृत्यान् इति ॐ । **बृंहणात् ब्रह्म बृहत्वाच्च ब्रह्म** इति निरूक्तेः **अगोरणीयान् महतो महीयान्** इति श्रुतेः । वामनावतारे परमात्मनो विराटरूपप्रकटीकरणे वृद्धेः पुराणप्रसिद्धिरपि प्रमाणम् ।

इत्थं पाणिनिनिर्दिष्टावतेरर्थानुसारतः ।
ऊनविंशति व्युत्पत्तीरोङ्कारस्य प्रदर्शिता ।।

अधुना शान्तिपाठो व्याख्यायते—ॐ पूर्णमद इत्यादि । अदः पूर्णम् इदं पूर्णम् पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णम् एव अवशिष्यते इत्यन्वयप्रकारः ।

ईशावास्योपनिषदः प्रारम्भे त्रिविधतापशान्तिम् कामयमाना श्रुतिः वेदान्तवेद्य-परब्रह्ममहिमवर्णनव्याजेन शान्तिं पठति । अदः अवाङ्मनसगोचरं निर्लीनगुणकं ब्रह्म पूर्णम् परिपूर्णैश्वर्यं तस्मिन् न कापि न्यूनता । **सर्वरसः सर्वगन्धः** इत्यादि श्रुतेः । इदम्, निजभक्तनयनगोचरं समस्तकल्याणगुणाभिरामं रामाभिधानं सगुणब्रह्म पूर्णम् । षडैश्वर्यसम्पन्नं परिपूर्णकाममिति भावः, द्वे इमे रूपे निर्गुणं सगुणं चेति श्रुतेरपि ब्रह्मणो द्वैरूप्यं निश्चीयते । अथ द्वयोः ब्रह्मरूपयोः पूर्णतायां निश्चितायामुपासकानां साधनक्रमे कतरस्मात् कतरत् ज्यायः इति चेत्, इदं पदवाच्यं सगुणब्रह्म उदच्यते उत्कृष्टतया पूज्यते । अञ्चोः पूजार्थकत्वस्यापि पाणिनिसम्मतत्वात् । "**अञ्चु गतिपूजनयोः**" इति भा. १८८ धातु पाठः । तस्यैव निर्गुणापेक्षया श्रेष्ठस्य सगुणब्रह्मणः । पूर्णस्य पूर्णम् अखण्डैश्वर्यकृपाप्रसादम् आदाय सादरं गृहीत्वा पूर्णम् इदं जीवजातम् परिपूर्णकामम् अवशिष्यते अवशिष्टं भवति कालेनापि न खाद्यते "**प्रलये न व्यथन्ति च**" इति गीतोक्तेः । एव, अत्र एवकारः क्रियायामन्वेत्ति अत्यन्तायोगम् व्यवच्छिनत्ति । लब्धभगवत्कृपाप्रसादः कदापि नापूर्णतां गच्छतीति ध्वनितम् । इह केचन अदः शब्देन परब्रह्म इदम् शब्देन च जीवजातम् तात्पर्यीकृत्य व्याचिकीर्षन्तः पूर्णात् ब्रह्मणः पूर्णम् जगत् उदच्यते निर्गच्छति पूर्णस्य ब्रह्मणः पूर्णम् समग्रैश्वर्यम् आदाय इदं जीवजातं पूर्णं परिपूर्णतमम् अवशिष्यते इति द्रविड़ प्राणायामेन प्रलपन्ति । इदम् व्याख्यानं हि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पीतिमरोगग्रस्तजनस्य चन्द्रमसि पीतत्वप्रतीतिरिव अप्रमाणम्, जीवस्य पूर्णतायाः अनुपपत्तिः । पूर्णमुदच्यते इत्यत्र उदच्यते इति क्रियातः निर्गत निर्गच्छति इति अर्थस्यापि आकाशतः पुष्पस्येव स्फोटनासंभवात् । नाहि कर्मवाच्यप्रयुक्तमुदच्यते इति पदम् निर्गमनानुकूलव्यपारबोधं कारयितुं शक्नोति तस्य कर्तृवाच्यत्वात् । नहि अल्पसत्तो जीवः अंशिनः परमात्मनः समस्तैश्वर्यमादातुं शक्नोति, कथमहो अनन्तयोजनविस्तीर्णो मरीचिमालिमार्तण्डः लघुनि चक्षुर्गोलके मातुं शक्नोति, तस्मात् व्याख्यानमेतत् दुराग्रहग्रहिलचेतःप्रसूततया नादरणीयम् । एवं हि निर्गुणापेक्षया सगुणब्रह्मश्रेष्ठतां भगवती गीतापि समर्थयति विशेषस्तु तत्रैव द्वादशध्यायपूर्वार्धे द्रष्टव्यम्, ग्रन्थगौरवभिया तदिह न प्रपञ्च्यते तुष्यन्तु विपश्चितः ।।श्रीः।।

"श्री राघवः शन्तनोतु"

ॐ ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।१।।

अथ शुक्लयजुर्वेदान्तर्गतवाजसनेयिमाध्यान्दिनीशाखायाश्चत्वारिंशत्तमाध्यायस्य यथा सम्प्रदायं श्रीराघवकृपानाम्ना भाष्यं भाष्यते । तत्र शुक्लयजुर्वेदस्य ऊनचत्वारिंशदध्यायेषु कर्मकाण्डीयसिद्धान्तानां प्रतिपादनं वर्तते । अस्मिन् चरमेऽध्याये ज्ञानसिद्धान्तनिरूपणम् । अतो हेतोः इदम् उपनिषत् शब्देन व्यवह्रियते । सर्वाः श्रुतयः भगवतः पत्न्यः । यथा कस्यचित् वल्लभस्य बह्वीषु पत्नीषु काश्चन बहिरङ्गतया सेवन्ते काश्चनान्तरङ्गतया परिचरन्ति तथैव श्रुतिष्वपि कर्मकाण्डोपासनाकाण्डीयाः श्रुतयः तत्तद्देवोपासनावर्णनव्याजेन परम्परया परमेश्वरं परिचरन्ति, परञ्च ज्ञानकाण्डीयाः परमान्तरङ्गपत्न्य इव साक्षात्परमात्मानं समभिगृणते । तेनैता उपनिषद इत्युच्यन्ते, उप समीपं निषीदति इति उपनिषद् । उप श्लिष्य निषीदति इति वा । साक्षात्भगवत्तात्पर्यप्रतिपादनेन आस्वेव उपनिषण्णत्वम् । एतासु अन्यतमेयम् ईशावास्योपनिषत् । संहिताभागीयत्वात् प्रथमेयं सर्वाधिकं महत्त्वम् आकलयन्ती विराजते वेदान्तदर्शनशिखेव । एतत्प्रथममन्त्रस्य ईशावास्यशब्देन प्रारम्भात् तन्नाम्नैव प्रसिद्धैषा ।

जगत्याम् यत् किम् च जगत् इदम् सर्वम् ईशावास्यम् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः कस्य स्विद् धनम् मा गृधाः इत्यन्वयः । जगत्यां पृथिव्यां किञ्च यत्किमपि आधेयतया वर्तमानं चिदचिदात्मकं जगत् । जायते इति जम् गच्छत्ति इति गत् जेन स्थावरेण सहितं गत् जङ्गमम् इति जगत्, स्थावरजगङ्गमित्यर्थः । इदम् अस्मदादिदृग्गोचरं सर्वं निखिलम् । ईष्टे इति ईशः, **ईश्** धातोः पचाद्यच्, ईशेन सकललोकशासकेन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीरामाभिधेन परमात्मना आवास्यम् आच्छादितम् । अत्र आङ् पूर्वक ण्यन्त **वस्** धातोः निवासार्थकात् भूतकाले कर्मणि निष्ठार्थे ण्यत् प्रत्ययः । ईशेन आवास्यम् ईशावास्यम्, इति तृतीयातत्पुरूषसमासः । यत्तु केचन ईष्टे इति ईट् तेन ईशा, आवास्यम् इति क्विप् प्रत्ययान्ततया ईट् शब्देन ईशा इति तृतीयान्तं व्याचक्षते तदनुचितम्, क्विवन्तस्य ईट् शब्दस्य कुत्रापि प्रयोगाभावात् अनभिधानात् च । अजन्त **ईश** शब्द एव आवास्य शब्देन सह समस्तः सुधीविचारसहः । यदपि आवास्यमित्यस्य आच्छादनीयम् इति व्याकुर्वन्ति तदपि प्रसङ्गानुपयुक्तत्वात् उपेक्ष्यम् । नहि जगदिदं परमात्मनाच्छादनीयम् अपितु आसर्गतः समाच्छादितम् । न च ण्यत् प्रत्ययः भविष्यत्काल एव इतिं वाच्यम्, बहुलम् छन्दसि (पा. सूत्र ३-२-८८) इत्यनेन भूतकालेऽपि तस्य सुवचत्वात् । **यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः''** इति स्मृतेश्च । ननु आत्मपरमात्नोरभेदधिया ईशा स्वेन प्रत्ययगात्मना त्वदभिन्नेन इदम् आच्छादनीयम् इत्याभिप्रायेण तल्लेखे न दोषः इति चेन्न, आत्मपरमात्मनोरभेदस्य सर्वसम्मतत्वाभावग्रस्तत्वात् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः इति एतच्छ्रुतेरुत्तरार्धेन आत्मभिन्न-परमात्माभिलापसङ्केताच्च अन्यथा स्वेन इति ब्रूयात् । पूर्वार्धफलितार्थस्तु अस्मिन् जीवलोके यत्किमपि जडचेतनदृश्यमानं तदिदं सर्वम् ईश्वरेण स्वमहिम्ना आच्छ्ज्ञदितं व्याप्तम्, नहि एकोऽणुरपि ईश्वरसत्तातो बहिर्भूतः । **पादोस्यविश्वाभूतानि** इति श्रुतेः **मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना** गीता ९-४ इति स्मृतेश्च । तेन, येन परमात्मना एतच्चराचरं जगद्व्याप्तं तेनैव कर्तृभूतेन ईशेन इत्यर्थः । नित्यसापेक्ष्यत्वात् तृतीयान्ततया आवास्य शब्देन समस्तस्यापि ईशशब्दस्य तृतीयान्ततच्छब्देन परामर्शः । त्यक्तेन, अतिसृष्टेन दत्तेन इति यावत् ईश्वरेण दात्रा प्रदत्तेन करणभूतेन भोग्यपदार्थेनैव । भुञ्जीथाः भोगं कुर्वीथाः । यत्तु भुञ्जीथाः इत्यस्य पालयेथाः इत्यर्थो व्याख्यायते तदशास्त्रीयम् । **भुजोऽनवने** (पाः सूत्र १-३-६६) इति सूत्रेण अवनभिन्नार्थादेव **भुज्** धातोः आत्मनेपदविधानात् । **भुज् पालनाभ्यवहारयोः** पा. धातु पाठ १४५४ रूधादि । इति पाणिनीयानुशासनेन **भुज्** धातोः द्वयोरर्थयोः सतोः पालनभिन्नस्य अभ्यवहाररूपार्थस्येव द्योतकमिदम् आत्मनेपदम् । पालनरूपार्थस्य प्रकरणविरूद्धत्वं स्पष्टमेव, का आवश्यकतात्र पालनरूपविधेयस्य अङ्गित्वेन त्यक्तेन इति पदं प्रयोक्तुम् । केचन तेन इत्यनेन ईशावास्य घटकं तृतीयान्तमीशशब्दं परामृश्य तेन ईशेन सह वर्तमानः त्वं, त्यक्तेन त्यागबुद्ध्या भुञ्जीथाः इति अव्याहारविडम्बनया व्याचक्षते, तदपि अस्वारसिकम् । सहार्थस्य कल्पनागौरवं **त्यज्** धातोः अस्वाभाविकी-भावेनिष्ठाप्रत्ययकल्पना च । केचन तेन इत्यस्य तेन हेतुना इत्यध्याहृत्य व्याख्यानं मन्यन्ते, त्यक्तशब्दञ्च त्यागपर्यायं स्वीकुर्वन्ति, तदपि अननुरूपम् । सर्वनामानि हि निसर्गतः पूर्वचर्चितमेव अभिधेयं परामृशन्ति, तस्मात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेनेति शब्देन **ईशावास्य** घटकईशेन इति तृतीयान्तशब्द एव परामर्शणीयः । त्यक्तेन इत्यस्य दत्तेन इत्येवार्थः करणीयः । त्यज् अतिसर्जने इति हि धातुः **''अतिसर्जनं चात्रदानम्''** **''त्यजमनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनाम्''**। १०-३१-१८ इति भागवतवचनाच्च । कस्य स्विद्, कस्यचिद्, स्विद्छब्दश्चिदर्थः नैवानर्थकनिपातः श्रुतौ प्रत्येकाक्षरस्य निगूढार्थकत्वात् धनम्, द्रव्यम् । मा गृधाः, मा लोभविषयं कुरू, गृद्धवत् मा लुब्धो भूः । भगवता यद्दत्तं तेनैव जीविकासाधनेन जगतीतले भगवत्प्रसादबुद्धया भोगं कुरूष्व । भगवद्व्यतिरिक्तस्य कस्यचिदपि धने मा लुब्धो भव इति सरलार्थः । यद्वा **क** शब्दः सृष्टिकर्तृचतुराननवाचकः अर्थात् भगवता दत्तेनैव धनेन प्रारब्धगतेन भुञ्जीथाः स्वकीयजीविकां चालय ततो व्यतिरिक्तय कस्य चतुराननब्रह्मणोऽपि धनं मा गृधाः । अत्र स्विद् शब्दः अप्यर्थः । केचन मा गृधः इति पृथक् मत्वा धनं कस्यस्विद् इति आक्षेपार्थकतया व्याचक्षते, तदपि वाक्यभेदकल्पनागौरवात् नादरास्पदम् । **सम्भवत्त्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो न युज्यते** इति नियमात् ।

चराचरं पूरितमीश्वरेण मत्वा प्रसादं तदुपाहृतेन भुंक्ष्वेह मा भूः परवित्तगृध्नुः वेदार्थ एषः प्रथमश्रुतेर्वै ।। श्रीः ।।

ईशावास्योपनिषदः सर्वेऽपि मन्त्राः न केवलज्ञानप्रतिपादकाः श्रुतयोः हि **विश्वतोमुखाः** तासु प्राणिनां प्रत्येकसमस्यायाः समाधानं सन्निहितम् । अतः अस्या उपनिषदः प्रथममन्त्रेण भगवत्प्रदत्तवस्तुनः भोगाय विधिः परधनगृध्नुतायाश्च निषेधः । अथ द्वितीये मन्त्रे जीवनेच्छायाः नियमनाय श्रुतिः अनिच्छन्तं जीवं निर्दिशति,

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्येतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।२।।

कर्माणि कुर्वन् एव इह शतम् समाः जिजीविषेत् एवम् त्वयि नरे कर्म न लिप्यते इतः अन्यथा (पन्थाः) न अस्ति इत्यन्वयः । होत्रादीनि बलिवैश्वदेवप्रभृतीनि पञ्चयज्ञादीनि गार्हस्थ्यनिमित्तानि, शिलोञ्छादीनि तृतीयाश्रमानुवन्धीनि भैक्ष्यादीनि तुरीयाश्रमनिमित्तानि यथायथं स्वे स्वे चाश्रमे वर्तमानः नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तख्यानि कर्माणि, कुर्वन्, शास्त्रमर्यादया सम्पादयन् अत्र परस्मैपदप्रयोगस्तु भगवति कर्मफलसमर्पणसूचनाय । एव, अत्र क्रियान्विततया अयमेवकारः अत्यन्तायोगं व्यवच्छिनत्ति । इह, अस्मिन् जीवलोके शतम्, शतसंख्याः समाः, वर्षाणि यावत् अत्र **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (पा.सूत्र २-३-५) इत्यनेन द्वितीया । जिजीविषेत्, प्राणान् धारयितुम् इच्छेः । अत्र **व्यत्ययो बहुलम्** पा०अ० ३-१-८५. इत्यनेन सिबर्थे तिब्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यत्ययः। उत्तरार्धे त्वयि इति दर्शनात्। एवं लिप्यते इत्यत्रापि लृटि लङ् व्यत्ययः। अत्र सनन्त जीव् धातोः विधौ लिङ् लकारः। अस्मिंल्लोके शास्त्रविहितानि कर्माणि कुर्वन्नेव जीवितुमभिलषेः। अकर्मणस्य जिजीविषा भुवो भारायमाणैव जिजीविषेदित्यत्र विधौ लिङ् लकारदर्शनात् कर्मण्यस्यैव जिजीविषा विधीयते। ननु कोऽपि प्राणी कर्म विना क्षणमपि न तिष्ठति, तर्हि स्वतः सिद्धस्य कर्मणः करणविधानेन किमपूर्वत्वं, विधिर्हि अत्यन्ताप्राप्तौ, कर्म तु प्राणिनः स्वभावसिद्धत्वात् स्वतः प्राप्तम् अतः प्राप्ते कर्मणि श्रुतावस्यां विधेः किं बीजम्। यथा चाह गीतायां भगवाञ्छ्रीकृष्णः—

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

(गीता ३/५)

इति चेदुच्यते, वेदो हि अज्ञातज्ञापकः स्वभावसिद्धकर्मणां ज्ञानाज्ञानाभ्यां प्रयोजनाभावत् तत्र विधिरकिञ्चित्कारः। यथा स्वतः सिद्धस्य भगीरथरथखातावछिन्न जलप्रवाहस्य सागराभिमुखस्य विधातापि विधिना निरोधं कर्तुं न प्रभवति। तस्मात् शास्त्रविधेः स्वाभाविक कर्माणि नैव क्षेत्राणि, विधिस्तु अपूर्वजननसामर्थ्यवद् वेदबोधित कर्मसु। एवमेव गीतायामपि तार्तीयके अकर्मकृद् इत्यस्य अस्वाभाविककर्मकृद् इत्येवार्थः फलितं चेदं "यदि चेत् प्राणान् दिधारयिषेः तदा वेदविहितकर्माणि यथा शास्त्रं समनुतिष्ठन्नेव परमायुष्यं शतवर्षपर्यन्तं स्वस्थः सन् प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः परमात्मानं प्रीणयन् तिष्ठेः, शास्त्रविहितकर्माणि अकुर्वंस्तु म्रियेत एव इयानत्र श्रुतेरादेशः। भगवद्भक्तानां कृते कर्माणि परमेश्वरप्रसादनिमित्तानि तच्छ्रवणकीर्तनस्मरणपादसेवनसमर्चनवन्दनदास्य सख्यात्मनिवेदनप्रह्वीभावादीनि एवं पूर्वोक्तप्रकारेण शास्त्रीयाणि कर्माणि कुर्वति त्वयि कर्तरि, नरे, न रमते इति नरः तस्मिन् संसारे अनासक्त इति भावः। कुर्वन् इत्यत्र परस्मैपदमूलकशतृप्रत्ययः। परस्मैपदं हि अकर्तृगामिनिक्रियाफले एवं परमेश्वराय फलसमर्पणपुरःसरं कर्म कुर्वति जिजीविषति त्वयि जगत्यनासक्ते कर्म निष्कामं सत् न लिप्यते न लेपाय कल्प्स्यते। लिप्यते इत्यत्र **वर्तमनसामीप्ये वर्तमानवद्वा** (पा. सूत्र ३-३-१३१) इति सूत्रेण भविष्यत् कालार्थे वर्तमाने लट्। उत्तरार्धे त्वयि इति युष्मच्छब्दानुरोधेन पूर्वार्धे जिजीविषेः इति मध्यमपुरुषैकवचनबोधकार्थः **व्यत्ययोबहुलम्** (पा.सू. ३-१-८५) इति सूत्रेण जिजीविषेदिति प्रथमपुरूषैकवचनप्रयोगः। इतः अस्मात् अनासक्तभावेन भगवत्समर्पणपुरःसरं शास्त्रविहितकर्म कुर्वतः जिजीविषारूपात् मार्गात् अन्यथा, अन्येन प्रकारेण कोऽपि पन्थाः न अस्ति, न वर्तते।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असक्तबुद्ध्या विहितं स्वकर्म,
जिजीविषेद्वर्षशतं प्रकुर्वन्,
न कर्मबन्धो भविता नरेऽन्यो,
मार्गोऽस्ति वेदार्थ इति द्वितीयः ।।श्रीः।।

पूर्वस्मिन् मन्त्रे क्रियमाणशास्त्रविहितकर्मण एव शतवर्षपर्यन्तं जिजीविषाधिकारः विधित्वेन प्रतिपादितः, अधुना क्रियमाणविकर्मणां अक्रियमाणकर्मणां च अधोगतिं प्रतिपादयत्ययं मन्त्रः—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
ताँ्स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।। ३ ।।

अन्धेन तमसा आवृताः ते लोकाः असुर्याः नाम (सन्ति) ये के च आत्महनः जनाः ते प्रेत्य तान् अभिगच्छन्ति इत्यन्वयः ।

अन्धयति जीवान् परमात्मचिन्तनदृष्टिहीनान् करोति, तेभ्यः सेवकसेव्यभावमूलकज्ञानं दूरीकरोति इत्यन्धम् तेन अन्धेन स्वरूपविस्मारकेन इत्यर्थः । तमसा, अन्धकारेण अज्ञानरूपेण आवृताः आच्छन्नाः ते तिस्मृतिपुराणेतिहासप्रसिद्धाः लोकाः कर्मफलपरिपाकभूताः नरकसम्बन्धिनः निष्कृष्टस्थानविशेषाः असुर्याः, असुषु प्राणेषु रमन्ते इत्यसुराः तेषां स्वे इत्यसुर्याः असुराणाम् आत्मीयभूता इति भावः, यद्वा सौ ब्रह्मणि रमन्ते इति सुराः न सुराः इति असुराः भगवद्भजनविमुखाः दानवाः तेषां स्वे इत्यसुर्याः । अत्र असुराणां स्वे इति लौकिकविग्रहे षष्ठयन्तात् असुरशब्दात् **असुरस्य स्वम्** (पा. सूत्र ४-४-१२३) इति सूत्रेण **य** प्रत्यये भत्वादकारलोपे विभक्तिकार्ये असुर्याः । केचन हठधर्मिणः दुराग्रहवशात् परमात्मनोऽद्वयभावमपेक्ष्य देवाः अपि असुराः इति विलिख्य देवानपि असुरसंज्ञया व्यवहर्तुं कुचेष्टन्ते तत् स्वपक्षपोषणार्थं मोघाडम्बरम् अमर्यादं च । देवाः खलु निरन्तरं सुराः तेषां सततब्रह्मरमणशीलत्वात् कादाचित्कपतनेन तत्रासुरत्वं नोपयुज्यते । तस्मात् भजनविमुखा आसुरीं सम्पदं श्रयन्तः देहात्मबुद्धय एवासुराः विप्रचितिपुलोममयादयः तेषां स्वभूताः लोकाः नारकाः असुर्याः । नाम, इति वाक्यालङ्कारे प्रसिद्धौ निश्चये च । तान् के यान्ति इत्यत् आह—ये, ये प्राणिनः केच, केचन इत्यर्थः **व्यत्ययो बहुलमित्यनेन** केचन घटकयोः अकारनकारयोर्लोपः, ये केचन प्रमादिनः न तु सर्वे इति भावः । आत्मानं भगवदंशभूतजीवात्मानं घ्नन्ति हिंसन्ति इत्यात्महनः भगवद्विमुखाः, हि विकर्मभिः स्वात्मानं हिंसन्ति । भगवद्विमुखवार्ता भगवत्प्रतिकूलाचरणं हि स्वात्महिंसनं यथोक्तम् निगमकल्पतरुगलितरसफलरूपे श्रीमद्भागवते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ।।

(श्रीमद्भागवत ११/२०/१७)

उपबृहितं चैतत् अस्मत् प्रातःस्मरणीयपावनचरणैः श्रीगोस्वामितुलसीदासमहाराजैः श्रीमानसे—

नर तन भववारिधि कहँ बेरो । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ।।
कर्णधार सद्गुरु दृढ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ।।
जे न तरहिं भवसागर, नर समाज अस पाय ।
तेऽकृत निन्दक मन्दमति, आत्माहन गति जाय ।।

(श्रीरामचरितमानस ७/४५)

जनाः, मानवाः यद्वा आत्महनोऽजनाः इत्यत्र अकारप्रश्लेशेण व्याख्यातव्यम् । आत्महनः अ जनाः इति हि विच्छेदः । जनाः भगवज्जनाः तद्विरूद्धाः अजनाः भगवद्विमुखाः त एव आत्महनः तेषां कृते असुर्या लोका । ते, तथा भूता आत्मोद्धारासमर्थाः भगवद्विमुखतया स्वात्मघातिनः । प्रेत्य प्रारब्धक्षये इदं शरीरं त्यक्त्वा तान् पूर्वोक्तान् असुराणां लोकान् अभिगच्छन्ति यमदूतैः वेत्रैः अभिताड्यमानाः गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति । ँ (गुं) इति अनुस्वारस्य वैदिकोच्चरणम् ।

न ये भजन्त्यच्युतपादपल्लवम्,
हिंसन्ति चात्मानमसत्कृतैश्च ये,
असुर्यलोकान्प्रतियान्ति ते मृताः,
मनुतृतीयार्थमिमं विनिश्चिनु ।।श्रीः।।

ननु पूर्वस्मिन् मन्त्रे आत्महन् इत्युक्तं तत्र आत्महनने भगवच्चरणारविन्दविमुखतैव मुख्यकारणतया उक्ता, तत्र स भगवान् कीदृशः यच्चरणारविन्दमकरन्दनिषेवणेन अस्मादपारसंसारसागरात् स्वात्मानं समुद्धरेम ? यद्भजनविमुखा वा स्वात्मघातिनो भूत्वा असुर्यान् लोकान् आप्नुवन्ति ? इति जिज्ञासमानं प्रति भगवत्स्वरूपवर्णनेन तदेजदिति प्रस्तूयते चतुर्थमन्त्रः । केचन अस्मिन् मन्त्रे प्रत्ययागतमस्वरूपवर्णनं मन्वते तत् अस्वारसिकत्वात् उपेक्ष्यम् एकस्मिन्नेव **अनेजत् मनसो जवीयः** इति अकम्प्यत्व–मनसोऽपिवेगवत्तरत्वयोः द्वयोः विरूद्धयोः धर्मयोः असम्भवात् एतन्मन्त्रस्य भगवन्महिमवर्णनतात्पर्यमेव ज्ञातव्यम्—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।।४।।

तत् एकम् अनेजत् मनसः जवीयः, तत् पूर्वम् अर्षत्, देवाः एनत् न आप्नुवन्, तत् तिष्ठत् धावतः अन्यान् अत्येति, तस्मिन् (तिष्ठति सति) मातरिश्वा अपः दधाति, इत्यन्वयः ।

तत् वेदान्तवेद्यं परब्रह्माभिधानं परतत्वम् एकम्, सर्वथैवोपमानरहितम् । यद्वा अः वासुदेवः **अकारो वासुदेवः** इति श्रुतेः, तस्मिन् ए वासुदेवे कं सुखं यस्मात् तत् एकं वासुदेवस्य व्यूहस्यापि सुखकारणं महाविष्णुसंज्ञं श्रीरामाभिधानं परब्रह्म । एकमित्यत्र संज्ञात्वात् सप्ताभ्या अलुक कण्ठेकाल इतिवत् । न एजति न कम्पते इत्यनेजत्, एजृकम्पने इत्यस्य सत्रन्तम् अकम्प्यम् नैव केनापि द्वन्द्वधर्मेण चालयितुं शक्यमितिभावः । यद्वा, न एजति न कम्पते त्रिभुवनविजेतृरावणादिसंग्रामे यत् तत् अनेजत् । **श्रीराम राम रणकर्कश राम नाम** इति स्मरणात् । मनसः, संकल्पात्मकात् अन्तःकरणवृत्तिविशेषात् जवीयः जववत्तरम् अधिकवेगशाली इति यावत् । मनो हि क्षणेन संकल्पावधिम् आश्रयते किन्तु परमात्मा तु ततोऽपि द्रुततरः गजेन्द्ररक्षणप्रसङ्गे भगवतस्त्वरां कीर्तयन्तः श्लोकमिमं गायन्ति भागवताः—

पर्यङ्कं विसृजन् गणा न गणयन् भूषामणिं विस्मरन् ,
उत्तानोऽपि गदा गदेति निगदन् पद्मामनालोकयन् ।
निर्गच्छन्न परिच्छदं खगपतिं चारोहमाणोऽवतु ,
ग्राहग्रस्तमतङ्गपुङ्गवसमुद्धाराय नारायणः ।।

तत् , परमात्मतत्वम् पूर्वम् प्रथमम्, अर्षत् मायापारमगच्छत् । अर्षदिति रिषगतौ इत्यस्य लङ्लकारे प्रथमपुरुषैकवचनरूपम् । यद्वा पूर्वम्, स्वभक्तकरूणक्रन्दनाह्वानसमाप्तेः पूर्वमेव तदुःखदूरीकरणचिकीर्षया तत्रागच्छत्, यथा भारते द्रौपदीचीरहरणप्रसङ्गे—

याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा कृष्णो गह्वरितो भवत् ।
त्यक्त्वा शैय्यासनं पद्भ्यां कृपालुः कृपयाभ्यगात् ।।

(महाभारत २/६८/४४)

यद्वा पूर्वम् , आर्तभक्तस्य आह्वानादपि पूर्वम् । अर्षत् , प्रकटमभवत् प्रह्लादस्याह्वानात्पूर्वमेव लौहस्तम्भे प्रकटयाम्बभूव । यथा श्रीभागवते —

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्यं विधातु निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ।।

(श्रीमद्भागवत ७/८/१८)

देवाः ब्रह्मादयोऽपि, एनत् इदम्, न आप्नुवन् , न प्राप्तवन्तः इत्यनेन परमात्मनो दुराराध्यता प्रतिपादिता । तत्, परमात्मत्वम् तिष्ठत्, स्वधाम्नि व्यवस्थितं स्वस्वरूपादच्युतम् धावतः, तद् गृहीतुं समाधिबलेन धावनं कुर्वतः वा स्वाधिकारप्रदर्शनाय गतिशीलान् भवतः अन्यान् , सुरेन्द्रादिदेवान् अत्येति, अतिक्रामति । तृतीयचरणतात्पर्यं श्रीरामावतारे बाललीलायामपि सङ्गमनीयं भगवान् दशरथाजिरे बालस्वरूपमर्यादायां तिष्ठन् स्वाभाविकशिशुकेलौ विहरति परं कौशल्या धावन्ती स्वमतिक्रामन्तं राघवेन्द्रं न धर्तुं पारयति तथा मानसे जगौ तुलसीदासः—

निगम नेति शिव अन्त न पावा । ताहि धरै जननी हठि धावा ।।

श्रीभागवतेऽप्युलूखलबन्धने धावन्ती यशोदा न धर्तुं सशाक भगवन्तं श्रीकृष्णम् । तस्मिन्, परमात्मनि वर्तमाने एव तस्यैव साक्षित्वे मातरिश्वा, वायुः मातरि आकाशे संचरति, स एव प्राणात्मको वायुः । अपः, जलानि अत्र अप शब्दः प्राणजातस्य जीवनसामग्राम् उपलक्षणः दधाति, पुष्पाति । अर्थात् परमात्मतत्वम् उपमारहितं न केनापि कम्पयितुं शक्यं, मनसोऽपि द्रुततरा गतिः परमात्मनः, अयं पूर्वमेव मायागुणान् अत्यगच्छत् । इमं देवा अपि दुराराध्यतया प्राप्तुं नाशक्नन्, अयं परमात्मा कदापि स्वरूपतः च्युतो न भवति तथापि अन्येषां गतिशीलानां धावनम् अतिक्रामति । अस्मिनेव वर्तमाने एतस्य सत्तामाधारीकृत्य प्राणात्मकवायुदेवता सर्वेषाम् अपोरूपा प्राणशक्तिः पुष्णाति । अस्मिन् मन्त्रे परमात्मनो विरुद्धधर्मवर्णनेन सकलविरूद्धधर्माश्रयतां संसाध्य तन्महिमा निरूपितः ।

अकम्पमेकं जववत्तरं ह्यदो,
नेदं सुराःप्रापुरिदं गुणातिगम् ।
अत्येति सर्वानपि धावतो बलात्
तस्मिन् हि वातो विदधाति जीवनम् ।।श्रीः।।

तुर्यमन्त्रे परमात्मनः विरुद्धधर्माश्रयता उक्ता, भूयस्तमेव सिद्धान्तं द्रढयितुमभ्यसति, मन्त्राणां भगवन्महिमानुवर्णने आलस्याभावात् । तदेजतीत्यादि—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तदेजति तन्नेजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।५।।

तत् एजति, तत् न एजति, तत् दूरे तत् उ अन्तिके अस्य सर्वस्य, तत् अन्तः अस्य सर्वस्य तत् उ बाह्यतः इत्यन्वयः ।

परब्रह्म परमात्मा समस्तानां विरुद्धानां धर्माणाम् एककाल एवाश्रयः । अस्मिन् मन्त्रे परमात्मनः एजनानेजने दूरसमीपस्थिती अन्तर्बाह्यस्थिती चेति षट्धर्माःनिर्दिष्टाः । इमानि षड्वैशिष्ट्यानि भगवतः षडैश्वर्यपरिणामभूतानि, तथा च ऐश्वर्येण एजनं साकारीभूय, धर्मेण अनेजनम् अच्युतत्वरूपधर्मसद्भावात्, यशसा दूरस्थितिः तस्य केनाप्यनुकर्तुमशक्यत्वात्, श्रिया निकटस्थितिः भक्तैः श्रीयमाणत्वात्, ज्ञानेन भूतानाम् अन्तःस्थितिः प्रकाशकत्वात् , वैराग्येण बहिःस्थितिः अनासक्तत्वात् । तथोक्तम् **ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा** एवम् षडैश्वर्यसम्पन्नभगवतो महिमवर्णने तदित्यादि श्रुतिरनुसन्धेया । तत्, श्रुतिप्रसिद्धं परब्रह्म यद्वा, तनुते जगति व्यापकताम् इति तत् व्यापकः परमात्मा । एजति, चलति भक्तदुःखं दृष्ट्वा चलायमानो भवति यथा द्रौपदी करूणक्रन्दनेन गह्वरितोऽभवत् भगवान् कृष्णः—

याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा कृष्णो गह्वरितो भवत् ।
त्यक्त्वा शैय्यासनं पद्भ्यां कृपालुः कृपयाभ्यगात् ।।

(महाभारत २/६८/४४)

तत, परब्रह्म । न एजति, निजचरणविमुखानां दुःखेन न कम्पते । तत् दूरे, अज्ञानां कृते भगवान् सुदूरवर्ती । तत् , परमेश्वरः । उ, निश्चयेन । अन्तिके, तेन सह स्वीकृतभजनानुकूलसम्बन्धानां भक्तानां समीपवर्ती । अस्य सर्वस्य, दृश्यमानस्य प्राणिमात्रस्य अन्तःकरणे अन्तर्यामितयो स्थितः । तत्, परमात्मा उ, निश्चयेन अस्य सर्वस्य, सम्पूर्णभूतस्य बाह्यतः, बहिः कालरूपेण स्थितः । अन्तस्थः सन् अमृतत्वं बहिष्ठः सन् जगद्रक्षणं करोति इति विवेकः ।

चलत्यचल एवासौ दूरान्तिकतया स्थितः ।
अन्तर्बहिस्थितश्चापि भाववैषम्यकारणात् ।।श्रीः।।

पूर्वोक्ताभ्यां द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां परमात्मनः सकलविरूद्धधर्माश्रयता नित्यषडैश्वर्यसम्पन्नता चेति गुणद्वयमुक्तम् । इदानीं तं चिन्तयो जनस्य साधनपरिष्क्रियोच्चते यस्त्वित्यादि—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।६।।

तु यः सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति च सर्वेभूतेषु आत्मानम् एव अनुपश्यति ततः न विजुगुप्सते, इयन्वयः ।

इमं परमात्मानम् अजानन् नरः घृणितकार्यं करोति । तु, किन्तु यः, साधकविशेषः, सर्वाणि, अशेषाणि, भवन्ति जायन्ते इति भूतानि, कर्तरि वर्तमाने क्त प्रत्ययः । आत्मनि, परमात्मनि, केचिदत्र प्रत्यगात्मनि इति व्याचक्षते तन्न शरीरपरिच्छेदतया तस्य व्याप्यत्वात् तस्मिन् सर्वभूतानां समाहारासम्भवात् । एव, नैव तद्भिन्नेति भावः अनुपश्यति, अनुक्षणं चिन्तयते, च, तथा, सर्वाणि च तानि भूतानि चेति सर्वभूतानि तेषु सर्वभूतेषु निखिलेषु स्थावरेषु जङ्गमेषु चिदचिदात्मकेषु च आत्मानम्, परमात्मानम् एव, नापरमात्मानम् इति भावः अनुपश्यति, आनुकूल्येन चिन्तयते, अत्र प्रसङ्गानुरोधेन एव अनु पश्यति इति त्रीण्यपि पदानि उभयत्र अन्वेतव्यानि । अथ आत्मनि सर्वभूतदर्शनेन सर्वत्रात्मदर्शनेन को लाभः? इत्यत आह—तत इति । ततः, तस्तात् उभयत्रोभयदर्शनात् जनः न विजुगुप्सते, न घृणास्पदं कार्यं करोति सर्वभूतपरमात्मनोः अपृथक् स्थितिदर्शनात् विशुद्धबुद्धिः घृणितकार्याय नावकाशं लभत इति भावः । यद्वा ततः इति प्रथमान्तपदं तनुविस्तारे इत्यस्य क्त प्रत्ययान्तरूपम् । ततः ब्रह्मविज्ञानसम्पत्तियुक्तः । वस्तुतः इयं दर्शनरीतिः उत्तमभागवतानां श्रीमद्भागवते समवर्णि । तद्यथा एकादशे नवयोगेश्वरनिमिसंवादोपक्रमे निमिं प्रति श्रीहरिः प्राह—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ।।

(श्रीमद्भागवत ११/२/४५)

अहो अयं श्लोकः कियता कौशलेन श्रुतेरर्थमनुवदति । निष्कर्षस्तु परमात्मनि सर्वभूतभावनां कुर्वन् सर्वत्र च परमात्मानं विभावयन् जीवपरमात्मनोः समत्र ऐकाधिकरण्यं विचिन्तयन् मानवः कृतकृत्यो भवति । अनया श्रुत्या स्पष्टं जीवात्मपरमात्मनोः स्वरूपतो भेद उपपादितः । इत्थं श्रुतिसिद्धान्ते जागरूकेऽपि यदि केचन दुराग्रहग्रहिलाः उभयोरभेदं प्रलपन्ति तर्हि त्रिदोषजन्यसन्निपातपीडितप्रलापैरिव अलं तैः सम्भाषणेन, वेदार्थस्तु—

यः सर्वभूतान्यनुपश्यतीशे भूतेषु सर्वेषु तथा परेशम् ।
ततो न किञ्चित् विजुगुप्सतेऽसौ षष्ठश्रुतेरेष उदाहृतोऽर्थः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ननु पूवोक्तमन्त्रे जुगुप्साभावरूपं जीवात्मपरमात्मसामञ्जस्यफलमुक्तं, किमिदमेव चरमं फलं साधकानाम् अन्यत् किञ्चित् विलक्षणम् वा? इति विचित्सायाम् आह– यस्मिन्निति—

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।७।।

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि विजानतः आत्मा एव अभूत्, तत्र एकत्वम् अनुपश्यतः कः मोहः कः शोकः, इत्यन्वयः ।

यस्मिन्, यस्मिन्नवस्थाविशेषे, सर्वाणि निखिलानि भूतानि, प्राणिजातानि विजानतः,विवेकेन ज्ञानविषयान् कुर्वतः, एषु सर्वेषु अनतर्यामितया परमात्मैव तिष्ठति इमान् सर्वान् सर्वतः परमात्मैव विराजते इति विवेकपूर्वकं विचारयतो जनस्य समक्षम्, आत्मा आप्नोति व्याप्नोति इति आत्मा, स खलु सर्वान् जीवान् व्याप्नोति आदत्ते भक्तानां पत्रपुष्पफलजलानि यः स आत्मा परमेश्वरः, एव निरस्तसकलहेगुणप्रत्यनीकः अभूत्, आविर्भूत् । तत्र, तस्मिन् काले एकत्वम्, जीवब्रह्मणोः सेवकसेव्यभावसम्बन्धापर-पर्यायम्, अनु अनुक्षणम् आनुकूल्येन वा पश्यतः निश्चिनुतः विभावयतः जनस्य कः मोंहः, को नाम वराको मोहः अभिभवितुं समर्थः, कः शोकः किन्नाम इष्टजनवियोगजनित दुःखं परिदेवयितुमलम्। एकत्वं केषाञ्चिन्मते अभेदपरं तत्र, श्रीघराचार्योऽपि—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते

(भागवत १०/२९/१५)

इति श्लोके समागतम् ऐक्यं सम्बन्धपर्यायममन्यत्, तथा हि तत्र श्रीघरी **एक्यं सम्बन्ध** इति। भगवान् वेदव्यासोऽपि ऐक्यं सम्बन्धपर्यायमेव मन्यते यथा—

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ।।

(श्रीमद्भागवत ७/१/३०)

अस्मिन् श्लोके ये भगवति तन्मयताहेतवः कामभयद्वेषसम्बन्धस्नेहभक्तिनामानः भावाः क्रमेण गोपीकंस शिशुपालवृष्णियुधिष्ठिग्नारदादयः पूर्वोक्तभावानाम् आश्रायाः निर्दिष्टाः, तेषामेव पुनर्दशमे रासमघिकृत्य पृच्छन्तं महाराजं परीक्षितं प्रति समाधानं प्रस्तुवता श्रीशुकेन त एव भूयो कामक्रोधमित्यादिनाभ्यस्ताः । अत्र पूर्वोक्तसम्बन्ध

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दस्य ऐक्यं पर्यायत्वेनोक्तम् अन्येषाम् अनुवाद एव कृतः तस्माद् एकत्वमित्यस्य व्यासेनापि सम्बन्ध एवार्थः स्वीकृतः। एतेन एकत्वमद्वैतम् इति प्रलपन्तः परास्ताः। जीव ब्रह्मणोस्वरूपत एकत्वम् त्रिकालमपि प्रतिपादयितुं न शक्यम्, अनेकासु श्रुतिषु तयोः भेदपरकवाक्यश्रवणात्, यथा—**द्वासुपर्णा सयुजा सखायाः आनंन्द ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन, तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति** इत्यादि । यत्र क्वचिदभेदप्रतिपादकानि वाक्यानि श्रुतिषु दृश्यन्ते तत्र सम्बन्ध-निबन्धनामेकतां जीवब्रह्मणोराश्रित्यैव । अत्रेदमवधेयम् स्वरूपतो जीवब्रह्मणोरेकत्वमसम्भवं **नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्** इति श्रतौ जीवस्यापि नित्यत्वप्रतिपादनात्। अतो हेतोः सम्बन्धनिबन्धनमेकत्वमङ्गीकुर्मो वयं ब्रह्मजीवयोः श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यपदपद्म-करन्दमधुकराः विशिष्टाद्वैतवादिनः । यदा ब्रह्मजीवयोः श्रुतिवाक्यप्रेरणाया सद्गुरूकृपया सेव्यसेवकभावो विनिश्चीयते तस्य सम्बन्धस्यैकत्वादखण्डत्वाच्च सम्बन्धिनोरप्येक-त्वमुपचर्यते । एवमेव श्रीरामसुग्रीवयोः सेव्यसेवकभावमूलकसख्यसम्बन्धे निश्चिते प्राह प्राभञ्जनिर्मैथिलीं वाल्मीकीयरामायणे **रामसुग्रीवयोरेवं देव्यैक्यं समपद्यत** ।

इत्थं ब्रह्मजीवयोः सम्बन्धापरपर्यायम् एकत्वमनुपश्यतः को लाभः ? इत्यपेक्षायाम् आह । स इत्यादि—

स पर्यगाच्छुक्रमकायम
व्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽ-
र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।८।।

यः कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः, यः शाश्वतीभ्यः समाभ्यः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात्, तम् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम् सः (एकत्वमनुश्यन्) पर्यगात्, इत्यन्वयप्रकारः ।

इदानीम् एकत्वानुदर्शिनः परमात्मप्राप्तिः प्राप्तस्य च परमात्मनः दसलक्षणानि इत्येकादशविषया अस्यां श्रुतौ विविच्यन्ते । अत्र परमात्मनः वैशिष्टप्रतिपादकाः कवित्वादयःचत्वारोगुणाः प्रथमैकवचननान्ततया सङ्कीर्त्यन्ते, षड्गुणाः शुक्रत्वादयो द्वितीयाविभक्त्या गीयन्ते । यः श्रुतिप्रसिद्धः परमात्मा कविः क्रान्तदर्शी यद्वा कं ब्रह्माणमपि वशयति तज्जनकतया वशीकरोति नियमतीति यावत् स कविः सृष्टिकर्तुर्ब्रह्मणोऽपीश्वर इति भावः, मनीषी मनः इष्णाति वशीकरोतीति मनीषी । परमात्मनैव खलु विविधसङ्कल्पानि मनांसि नियम्यन्ते, यद्वा ईश्यते अभिलष्यते इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईषा मनसः ईषा मनीषा बुद्धिः, शकन्ध्वादित्वात् पररूपम् **बुद्धिर्मनीषाधिषणाधीः** इत्यमरः, सा नित्या प्रशस्ता च मनीषा बुद्धिः अस्ति अस्मिन् इति मनीषी प्रशस्तबुद्धिमानित्यर्थः, परिभवति सनातनधर्मविद्वेषणो यः स परिभूः, परिभवति भक्तहृदयस्थान् कामक्रोधलोभ-मोहमदमात्सर्यादिविकारान् इति परिभूः, धर्मविरोधिभक्तविरोधिप्रत्यूहानां प्रशासक इति भावः, स्वयम् द्वन्द्वधर्मनिरपेक्षः रजःशुक्रसंयोगमन्तरेणापि भवति कौशल्यादिगर्भ आविर्भवतीति स्वयंभूः। भगवान् खलु अघटितघटनापटीयसीयोगमायया भक्तभावनावशंवदः कौशल्यादिसङ्कल्पमात्रेण जागतिकगर्भाधानक्रियामनपेक्ष्यैव आविर्भवति । एतेन संहितायामपि भगवदतारबीजं प्रादर्शि । यः सर्वज्ञः परमेश्वरः, शाश्वतीभ्यः शश्वत् निरन्तरं भवः वर्तमानः इति शाश्वतः भगवान्, अत्र प्रत्यययार्थो भव शब्दः सत्तापरः न तु उत्पत्तिपरः, भूधातोः सत्तार्थकत्वात् । तस्यैव शाश्वतस्य भगवतः सम्बन्धिन्यः इमाः प्रजाः शाश्वत्यः भगवत्सम्बन्धभाज इत्यर्थः, ताभ्यः शाश्वतीभ्यः समाभ्यः द्वन्द्वेषु समत्वेन वर्तमानाभ्यः, यद्वा मा भक्तिरूपालक्ष्मीः **इन्दिरालोकमातामा** इत्यमरः, मया भक्तिरूपलक्ष्म्या सह वर्तमानाः इति समाः ताभ्यः समाभ्यः भगवद्भक्तिलक्ष्मीवतीभ्यः इति भावः, याथातथ्यतः यथा तथा इति अव्यम् यथा तथा भावः याथातथ्यम् तस्मात् याथातथ्यतः **पञ्चभ्यर्थे तसिल्** यथोचितमिति भावः, अर्थान् प्रयोजनानि व्यदधत् सफलयामास, यः निजकमलचरणशरणवतीभ्यः स्वकीयाभ्यः प्रजाभ्यः आवश्यकतानुरूपं सम्पूर्णानि प्रयोजनानि सफलानि समुपादयदित्यक्षरार्थः । केचन शाश्वतीभ्यः समाभ्यः इत्यत्र पञ्चमीबहुवचनं मत्वा समाशब्दस्य वर्षरूपमर्थं कृत्वा अनन्तेभ्यो वर्षेभ्यो भगवान् जीवानां यथायथम् उपभोगसामग्रीरूपानर्थान् व्यदधात् व्यरचयत् इति व्याचक्षुः, किन्तु वयं जीवानां भगवतोऽर्थविधाने अपूर्वताभावं विभाव्य तद् व्याख्यायां भक्तिस्वारस्याभावात् चतुर्थीमेवात्र रोचयामः । तम्, एवं गुणगणविशिष्टम् शुक्रम्, निरस्तनिखिलहेयगुणपुञ्जतया शक्लं निर्दोषं **निर्दोषं हि सतं ब्रह्म** इति स्मृतेः, अकायम्, न व्यक्तः कायः चिन्मयशरीरः यस्य स अकायः तम् अव्यक्तशरीरमिति भावः । यद्वा न विद्यमानं कायं प्राकृतशरीरं यस्मिन् स अकायः तथाभूतं भगवतो दिव्यविग्रहत्वेन तत्रास्मदादिष्विव प्राकृतशरीरात्यन्ताभावसद्भावात्, अव्रणम् न विद्यन्ते पापरूपाः व्रणाः यस्मिन् तथाभूतं, भगवान् खलु सर्वपापवर्जितः **अपहतपाप्मा** इति श्रुतेः । यद्वा, न विद्यन्ते रावणादिकृताः शस्त्रव्रणाः यस्मिन् तथाभूतं रावणादीनामायुधानि भगवतश्चिन्मयशरीरं स्वायुधैर्व्रणयितुं न प्राभवन् । अस्नाविरम्, स्नावयन्ति रक्तं समग्रशरीरे इति स्नावाः शिराः, न विद्यन्ते प्राकृताः स्नावाः यस्मिन् स अस्नाविरः तम्, स्नावा शब्दात् मुतबर्थीयः इरच् प्रत्ययः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्नावा सन्ति अस्मिन् इति स्नाविरः तद्भिन्नमस्नाविरम् इति हि प्रत्ययानुरूपविग्रहः । शुद्धम् सकलमलरहितम्, अपापविद्धम् पापेन भजनप्रतिबन्धकप्रत्यूहविशेषेण विद्धाः आहताः पापविद्धाःसंसारिणः, तद्भिन्नम् अपापविद्धं, परमेश्वरं हि पापानि न बाधन्ते तादृशं दशगुणसम्पन्नं **दशमस्त्वमसि** इति श्रुतेर्वाच्यं परमात्मानम् । पर्यगात्, परिश्रितः प्राप्तवान् भगवत्सम्बन्धानुशीलनेन एषः साधकः पूर्वोक्तदशलक्षणसम्पन्नं परमात्मानम् अनायासेन प्राप्नोतीति सारांशः ।

एकत्वदर्शी दशलक्षणाढ्यं विशुद्धविज्ञानघनं मुकुन्दम् ।
प्राप्नोति सम्यक् परिभूय पापं इत्यर्थमेतत् श्रुतिराह सूक्ष्मम् ।।श्रीः।।

अथ पूर्वोक्तपरमात्मानं परित्यज्य विभ्रान्ताः ये विद्यामविद्याञ्चोपासते तेषां का गतिः, किं वैलक्षण्यं विद्याविद्ययोः, तयोः समुच्चयः उताहो नहि ? इति समुद्भवयिष्यमाण-प्रश्नत्रयं समाधातुमुपक्रान्तमेतच्छ्रुतित्रिकम्—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया ँ रताः ।।९।।

ये अविद्याम् उपासते (ते) अन्धम् तमः प्रविशन्ति, ये उ विद्यायाम् रताः ते ततः भूयः तमः इव (प्रविशन्ति) इत्यन्वयः

ये जनाः परमात्मानं परित्यज्य अविद्याम्, न विद्यते न तिष्ठति क्षयशीलत्वात् इति अविद्या कर्मकाण्डप्रक्रिया ताम् अविद्याख्याम् उपासते, भगवदाराधनां त्यक्त्वा आसक्तिपूर्वकं कर्मकाण्डमेव कुर्वते, ते त्यक्तभगवद्समर्चाः शुष्ककर्मकाण्डरताः अन्धम् स्वरूपविस्मारकम्, तमः तिमिराच्छन्नं नरकलोकं प्रविशन्ति प्रविष्टा भवन्ति । ये, किन्तु ये केचन कर्मकाण्डं त्यक्त्वा, उ निश्चयेन विद्यायां विद्यते नित्यतया वर्तते इति विद्या तस्याम् तत्तद्देवोपासनारूपायां रताः कृतरागाः, ते तत्तद्देवोपासनारक्ततया त्यक्तवैदिककर्माणः, तत्तः तस्मात् अविद्योपासकलभ्यात् तमसः, भूयः अधिकं ध्वान्ततरं तमः नरकलोकं, इव यथा प्रविशन्ति प्राप्नुवन्ति ।

अत्रेदमनुसन्धेयम्–यदस्यां श्रुतौ प्रयुक्तम् अविद्यापदं कर्मलोकपरं **कर्मचितो लोको हि क्षीयते** इति श्रुतेः, अविद्याया अपि क्षयशीलत्वात्, विद्यापदमत्र देवोपासनापरम् **विद्ययादेवलोकः अविद्यया पितृलोकः** इति द्वाभ्यां श्रुतिभ्यां द्वयोः क्रमेण देवोपासनाकर्मप्रक्रियापरकता व्याख्याता । ये भगवन्तं त्यक्त्वा केवलं काम्यानि कर्माणि कुर्वते ते त्वन्धकारमयलोकं यान्त्येव, किन्तु ते तु ततोऽप्यधिकघोरतरं लोकं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्नुवन्ति ये फललिप्सया तत्तद्देवोपासनायां रज्जमानाः न भगवन्तं भजन्ते न वेदविहितकर्माणि कुर्वते। वस्तुतस्तु अविद्या पदं कर्मपरकं, विद्यापदं च ज्ञानपरकम्। ये केवलं अविद्यारूपं कर्मकाण्डमुपासते ते अन्धंतमः नरकं प्रविशन्ति। किन्तु ततोऽपि भूयांसं नरकं तेऽनुभवन्ति, ये कर्मकाण्डं त्यक्त्वा केवल विद्यारूपे ज्ञानकाण्डे रताः, इत्यनेन श्रुतित्रयप्रकरणेन ज्ञानकर्मणोः समुच्चयः प्रतिपादितः इति साम्प्रदायिकाः।

अन्धं तमो यान्ति हरेः पदाब्जं
विहाय ये काम्यकृतौ प्रसक्ताः।
ततोऽपि ते घोरतरं व्रजन्ति
तत्तत्सुरोपासनबोधनिष्ठाः॥श्रीः॥

इदानीं द्वयोर्विद्याविद्ययोः फलवैलक्षण्यं प्रस्तौति, अन्यदित्यादिना—

अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदावहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥१०॥

विद्यया अन्यत् एव (फलम्) आहुः, अविद्यया अन्यत् (फलम्) आहुः इति धीराणाम् शुश्रुम, ये नः तत् विचचक्षिरे, इत्यन्वयः।

विद्यया ज्ञानकाण्डरूपया अन्यत् अपरम् एव निश्चयेन फलम् आहुः, विद्यया साध्यं देवलोकरूपं फलमाहुः कथयन्ति श्रुतयः इति शेषः, **विद्यया देवलोकम्** इति श्रुतेः। अविद्यया कर्मबहुलया पित्र्युपासनया अन्यत् अपरं देवलोकतो विलक्षणं पितरलोकरूपं फलम् आहुः वदन्ति श्रुतयः **कर्मणा पितृलोकम्,** उभयत्र आहुरित्यादरार्थे बहुवचनम्। इति इत्थं विद्याविद्ययोः फलवैलक्षण्यं धीराणां, धीरपुरुषाणां बहुश्रुतानां सकाशात् शुश्रुम, पारोक्ष्येण वयं श्रुतवन्तः, ये ये समदुःखसुखाः सन्तः नः अस्मभ्यं तत्, ब्रह्मतत्वम् विचचक्षिरे, पारोक्ष्येण व्याख्यातवन्तः।

विद्यायाश्चाप्यविद्याया वैलक्षण्यं फले श्रुतम्।
वयमश्रुण्म धीरेभ्यो ये व्याचक्षुः पुरा हि नः॥श्रीः॥

इदानीं द्वयोः कर्मज्ञानयोः समुच्चयं प्रदर्शयति—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय ँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥११॥

यः विद्याम् च अविद्याम् च तत् उभयम् सह वेद, (सः) अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते इत्यन्वयः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यः विद्याविद्ये द्वे समुच्चिचीषुः विद्यां ज्ञानकाण्डरूपां च अविद्यां कर्मरूपाम् अत्र चकारद्वयं **द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति** इति न्यायेन उभयतः समुच्चयार्थम् । तत् श्रुतिप्रसिद्धम् उभयम् एतद्द्वयं सह युगपदेव वेद जानाति स एव अविद्यया देवोपासनया कर्मरूपया, मृत्युं मरणधर्मयुक्तं संसारबन्धनं, तीर्त्वा अतिक्रम्य, विद्यया देवोपासनया अमृतं देवैः प्रदत्तम् अक्षयसुखमश्नुते, प्राप्नोति । अत्र अयं विवेकः—अस्मिन्त्रिके अविद्यापदं कर्मद्योतकं विद्यापदं च तत्तद्देवोपासनाद्योतकम् । तत्र ये भगवद्भजनं त्यक्त्वा उपासनां च विहाय केवलम् अग्निहोत्रदर्शपौर्णमासश्राद्धतर्पणादि कुर्वन्ति तेषामधोगतिर्जायते ततोऽप्यधिकतरं ते पतन्ति ये तत्तद्देवोपासनायां रज्यन्ते न वा भगवन्तं ज्ञातुं यतन्ते, न वा संध्यादिकवेदविहितकर्म कुर्वन्ति इति प्रथममन्त्रतात्पर्यम् । विद्याविद्ययोः कस्मिन्नंशे वैलक्षण्यम् इत्यपेक्षायां फलभेद उक्तः । अविद्यात्मकं कर्म कुर्वाणाः पितृलोकं यान्ति, देवांश्च उपासिनो देवलोकं व्रजन्तीति तारतम्यम् । अन्तेन द्वयोः युगपदज्ञानं निर्दिश्यते, यः साधकः द्वयोः भगवद्साधनयां यौगपद्येन सहाय्यमवगच्छति स जनः श्रुतिविहितकर्मापूर्वेण संसारसागरं तीर्त्वा निर्मलोभूत्वा तत्तद्देवोपासनया देवतानां प्रसादात् विध्वस्तभजनप्रतिबन्धकप्रत्यवायः अमृतरूपं परमात्मानं प्राप्तोति । ज्ञानकर्मणोर्नाम न भवतु समुच्चयः, परं कर्मोपासनयोः समुच्चीयमानयोर्न विप्रतिपद्यामहे । वस्तुतस्तु कर्मभिर्भगवभजनबाधकमलानि विधूय, उपासनया भजनविहन्तृविक्षेपाणि संक्षिप्य, ज्ञानेन च अज्ञानावरणं निरस्य, सर्वेषां परमार्थभूतं भगवन्तं श्रीरामं ब्रह्म सततमेवानुशीलयेत् अयमेव एतच्छ्रुतित्रयीभावः इति विरम्यते ।

विद्याभिधं यो भजतीह बोधम्
तथैव कर्माचरतीह्यविद्याम् ।
अविद्यया मृत्युमतीत्य विद्या–
बलेन पियूषजुषो लसन्ति ।।श्रीः।।

इदानीं मन्त्रत्रयेन सम्भूत्यसम्भूत्योः उपासनाफलं तयोः समुच्चयश्च वर्ण्यते—

सम्भूतिपदमत्र व्याकृतोपासनापरम्, असम्भूतिपदं अव्याकृतोपासनापरमिति केचन, केचिदिह सम्भूतिपदेन परब्रह्मोपासनाम् असम्भूतिपदेन देवपित्र्युपासनां मन्यन्ते । इदं मतद्वयमपि प्रकृतानुपयोगादुपेक्ष्यम्, ब्रह्होपासनायाः निन्दितत्वासम्भवात् हिरण्यगर्भोपासनाया अपि अधोगतिप्राप्तेरस्वारसिकत्वात् । मम मतेन सम्भूतिरत्र पराप्रकृतिः तथाहि सम्यक् भूतिः ऐश्वर्यं यस्याम् सा सम्भूतिः, सकलजगज्जीवनत्वात् परा प्रकृतौ सम्यगैश्वर्यं कर्तते एव, सम्भूयन्ते जन्मस्थितिसंहारमाध्यमेन जीवाः यया स सम्भूतिः । तद्भिन्नमसम्भूतिः अपराप्रकृतिः पृथिवीजलतेजोवाय्वाकाशमनोबुद्ध्यहङ्काररूपा अस्याम् सम्यगैश्वर्यभावात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवसम्भवाभावच्च असम्भूतिशब्दव्यवहार उवित एव । इत्थं अपरप्रकृत्युपासनया अधोगतिः, परप्रकृतिरागे च ततोप्यधिकघोरतरा अधोगतिः, परस्परफलवैलक्षण्येऽपि द्वयोः समुच्चयेन मृत्युसंसारसागरसन्तरणपूर्वक ब्रह्मसुखामृतत्वं समधिगन्तुं शक्यते, इदमेव एतत् त्रिकस्य तात्पर्यम् । अपरापराप्रकृत्योः गीतायाः सप्तमे श्लोकद्वयेन इत्थं निर्देशः—

भूमि रापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।
अयरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो यथेदं धार्यते जगत् ।।

(गीता अ० ७-४-५)

एवमेव अत्र सम्भूतिपदेन अक्षरोपासना असम्भूतिपदेन च क्षरोपासनापि गृहीतुं शक्या, क्षरोपासनैव अपराप्रकृत्युपासना अक्षरोपासना पराप्रकृत्युपासना बीजं च गीतायाः पञ्चदशे—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।

परमात्मा आभ्यां क्षराक्षराभ्याम् अपरापराभ्याम् प्रकृतिभ्याम् विलक्षणः अतस्तयोः समुच्चयेन ते परमात्मसाधनायां माध्यममात्रंविधाय अन्ततः स्वलक्ष्यभूतः परमात्मैवाधिगन्तव्यः, न तु तयोरेकतरामुपास्य जीवनं नाशनीयम् इममेवार्थं एतच्छ्रुतित्रयस्य विनिश्चिनुमः । एवमेव विद्याविद्याप्रकरणनिरूपकस्य व्याख्यातचरस्य श्रुतित्रयस्यापि तात्पर्यं नवीनदृशाप्यूहितुं शक्यं तथाहि- मायाया एव विद्याविद्यानामनी द्वे रूपे, या निखिलजगतो महान्धकारकोपपातिनी सा अविद्या, या च त्रिगुणात्मिका जगदुत्पत्तिस्थितिविनाशकारिणीं भगवत्प्रेरिता सैव विद्या । तथा चाहुः श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यप्रशिष्याः गोस्वामि तुलसीदासमहाराजाः—

माया भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।।
एक दुष्ट अतिसय दुःखरूपा । जा बस जीव परा भव कूपा ।।
एक रचइ जग गुन बस जाके । प्रभुं प्रेरित नहि निज बल ताके ।।

इमे एव केचन आवरणशक्तिनाम्ना विक्षेपशक्तिनाम्ना च यथाक्रमं व्यवहरन्ति । एवमविद्या नाम्नीं मायामुपास्याघोलोकं यान्ति, ततोऽपि घोरतरं लोकं ते व्रजन्ति ये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुणमयीं विद्यां मायामुपासमानाः भगवन्तमधोक्षजं विस्मरन्ति । अतो द्वे अपि भगवद्भजनप्रत्यूहनिरसने सहायिकीकृत्य त्यक्त्वा च ते, श्रीरामाभिधानब्रह्मशरणागत्या जीवः समुद्धरेदित्यस्ति मन्निश्चयः विद्याविद्याविमर्शश्रुतित्रये । तथा चाह गीतायां भगवान् पार्थसारथिः—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।

(गीता७-१४)

मामेवेत्यत्र प्रयुक्त एवकारो विद्याविद्य.योगच्यवच्छेदपरकः । इत्थं सुदुर्बोधयोरपि श्रुतित्रिकयोर्भगवत्कृपाप्राप्तमनीषया विवेचनं विधाय साम्प्रतं सम्भूत्यसंभूतिवर्णन-परश्रुतित्रयाक्षरार्थं व्याचक्षे—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः ।।१२।।

ये असम्भूतिम् उपासते (ते) अन्धम् तमः प्रविशन्ति, ये उ सम्भूत्याम् रताः ते ततः भूयः तमः इव (प्रविशन्ति) इत्यन्वयः ।

ये, उपासकाः असम्भूतिमपराप्रकृतिं क्षरां सांरारिकसुखलिप्सया उपासते, सेवन्ते ते, साधकाः अन्धम्, परमात्मज्ञानहरं तमः, तिमिराच्छन्नं लोकं प्रविशन्ति, यान्ति । ये केचन उ, निश्चयं कृत्वा सम्भूत्याम्, पराप्रकृतावक्षरायां रताः बद्धरागाः ते तादृशाः ततः असम्भूतिलभ्यलोकतोऽपि भूयः अधिकघोरतरं तमः, तमोमयलोकम् इव यथा प्रविशन्ति । सम्भूत्यसम्भूतिव्युत्पत्तिविवेचना तु प्रागेव दर्शिता ।।श्रीः।।

अथ द्वयोः फलवैलक्षण्येन अपरापरात्वत्तारतम्यं वर्णयति अन्यदिति—

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुमधीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।१३।।

सम्भवात् अन्यत् एव आहुः, असम्भवात् अन्यत् आहुः इति धीराणाम् शुश्रुम ये नः तत् विचक्षिरे, इत्यन्वयः ।

सम्भवशब्दः सम्भूतिपर्यायः स च पराप्रकृत्युपासनापरःतस्मात् सम्भवात् पराप्रकृत्युपासनातः अन्यत् एव, किमपि विलक्षषम् अणिमादिभोगरूपं फलम् आहुः वदन्त्याचार्याः । असम्भवात् अपराप्रकृतेः क्षरायाः उपासनातः अन्यत् पूर्वस्माद् विलक्षणं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सांसारिकं निकृष्टयोनिप्रापकं भोगरूपं फलम् आहुः उपदिशन्ति, इति अनेनप्रकारेण क्षराक्षराफलवैलक्षण्यं धीराणां महापुरुषाणां सकाशाद् शुश्रुम आकर्णयामासिम वयं इति शेषः। ये परमाचार्याः, नः असमभ्यं विवित्सुभ्यः तत् पूर्वोक्तं सम्भूतिरहस्यं विचचक्षिरे विवेचयामासुः—

अक्षरायाः क्षरायाश्च फले भेदप्रकृतितः।
इत्येव परमाचार्याः प्रकृत्योर्न उपादिशन्॥श्रीः॥

अथ सम्भूत्यसम्भूत्योः समुच्चयेन प्रकरणमुपसंहरति—

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वाऽसम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥१४॥

यः सम्भूतिम् च विनाशम् च तत् उभयम् सह वेद, (सः) विनाशेन मृत्युम् तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते, इत्यन्वयः

यः, साधकः सम्भूतिं परां प्रकृतिं विनाशम्, अपरां प्रकृतिं क्षराम्, अत्र अपरा प्रकृतेः क्षरत्वप्रतिपादनायैव असम्भूतेः विनाशमिति पर्यायं प्राह यथा असम्भूतेः नाशशीलता कण्ठरवतो निगदिता स्यात्। उभयत्र चकारानुवृत्या सम्भूत्यसम्भूत्योः समुच्चय उक्तः। तत् तथासमुचितमुभयम्, एतदुपासनाद्वयं सह सार्धमेव वेद जानाति, सः विनाशेन अपराप्रकृतित्युपासनया मृत्युम्, मरणशीलं संसारं, म्रियते यत्रेति निरूक्ते **मृत्युसंसारवर्त्मनि** मृत्युसंससागरात् इत्यसकृत्स्मृतत्वात्, तीर्त्वा समुत्तीर्य, सम्भूत्या पराप्रकृत्युपासनया अमृतं, परब्रह्मसुखम् अश्नुते, अनुभवति। अनयोः समुच्चयं ज्ञात्वा तथेतदतिरिक्तं लक्ष्यभूतं परब्रह्मतत्वं विनिश्चित्य तमेव सर्वाधिष्ठानं सर्वसाक्षिणं सर्वसर्वेश्वरं भगवन्तं रघुपुङ्गवमनन्यमनसा चिन्तयति तन्नामरूपलीलाधाम्नामसकृदनुशीलनेन निरस्तसकलकल्मषकलापः साम्रेडं भगवदीयप्रेमामृतमनुबोभूयते यथोक्तं गीतायाम् **उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः**।

असम्भूतेश्चवसम्भतेः सम्विभाव्य समुच्ययम्।
प्राप्नोति परमात्मानं तीर्त्वा संसारसागरम्॥श्रीः॥

एतावतौपनिषदभागेन ब्रह्मणो व्यापकता पुरःसरं तन्निमित्तकर्माणि विधित्वेन निर्णीय ब्रह्मस्वरूपं वर्णयित्वा एकत्वदर्शिनः शोकमोहनिरसनोपायं कथयित्वा प्रकरणद्वयेनोपासनारहस्यमुद्घाट्य खिलांशेन जीवस्य परमात्मसामीप्यावाप्तये प्रार्थनाप्रकारं प्राह चतुर्भिर्मन्त्रैः परमर्षिः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।१५।।

हे पूषन् ! हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य मुखम् अपिहितम् सत्यर्माय दृष्टये तत् त्वम् अपावृणु इत्यन्वयः । भगवत्परम्पदपद्ममकरन्दपिपासुः परमेश्वर-मृगाङ्कमाधुरीपानाय लोचने चकोरायिते चिकीर्षुः प्रार्थयते परमात्मानम्—हे पूषन् ! पुष्णात्यशेषं जगदिति तत् सम्बोधने रूपमेतत्, हे निखिलजगति पुष्टिप्रदातरिति भावः । हिरण्यस्य सुवर्णस्य विकारः इति हिरण्मयं तेन हिरण्मयेन हिरण्मयशब्दः ज्योतिर्मयत्वद्योतकः, सुवर्णस्य तेजस्यन्तर्भावः न्यायशास्त्रे प्रसिद्धः एवंभूतेन ज्योतिर्मयेन पात्रेण पिधानभूतेन पिधानसदृशेन वा, पात्रशब्दः पात्रसदृशे लाक्षणिकः, सत्यस्य सत्स्वरूपस्य तव मुखं, द्वारम् अपिहितं, समावृतम्। आशयोऽयं प्रार्थयितुः यत्- हे परमात्मन्। त्वं स्वस्वरूपेण सूर्यमण्डलमध्यममधितिष्ठसि तादृशं सूर्यमण्डलमध्यस्थं तव स्वरूपं सूर्यस्य सौवर्णकिरणैस्तथैवावृतं यथा कस्यचिन्मुखं स्वर्णपात्रेणाच्छादितं भवति, द्रष्टा सामान्यतः स्वर्णपात्रं तु विलोकयति परं सुवर्णपात्रान्तर्गतं वस्तु न विलोकयति, तेन तस्य वस्तुनः पिहितत्वात्। तथैवाहमपि सामान्यरूपेण सूर्यकिरणान् विलोकयन् तज्ज्योतिषा विमुष्टदृष्टिस्तन्मध्यस्थं सीताभिरामं नीलसरोरूहश्यामं लोकलोचनाभिरामं श्रीरामं त्वां न द्रष्टुं पारये। अतः त्वं सत्यः सद्भ्यो हितः सत्यः सज्जनहितकर्ता, तस्मात् तव शरद्विमलविधुनिन्दकवदनमहं सौन्दर्यसदनं दिदृक्षे । सत्यः सद्भ्यो हितत्वात् भक्तिरूपः धर्मः कर्तव्यत्वेन विहितः यस्य तथा भूतोऽहं सत्यधर्मः, जीवस्य कृते भगवद्भजनमेव धर्मत्वेन निर्णीतं तादृक् धर्मसम्पन्नाय सत्यधर्माय, मे दृष्टये निजस्वरूपदर्शनाय तत्; ज्योतिर्मण्डलपिधानं त्वं प्रणतानुग्रहकातरः, अपावृणु अपसारय यथाऽहं तव निरावरणमुखं विलोक्य स्वरूपं विचिन्त्य वा कृतकृत्यो भवेयम् अयमेवार्थः श्रुत्यभिप्रेतः । भगवतः सूर्यमण्डलस्थितिं श्रुतिःकण्ठरवेण निगदति। तद्यथा बृहदारण्यकाः पठन्ति- **तद्यत्तत्सत्यमसौ स आदित्यो एष एतस्मिन्मण्डले पुरूषो यथा यश्चायं दक्षिणेऽक्षन्पुरूषः सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्** इति श्रीरामस्तवराजेऽपि। यत्तु केचन इत्थं व्याचक्षते- हिरण्मयेन स्वर्णनिर्मितेन पात्रेण जगतीतलचाकचिक्यपूर्णविषयभोगेण सत्यस्वरूपस्य परमात्मनः तत्वात्मकं मुखम् आवृतम्। इयं व्याख्या केवलं भावप्रधाना नैव श्रुतिस्मृतिप्रकरणार्थाननुगच्छति तस्मात्पूर्वोक्तः पक्षो ज्यायान् वेदार्थस्तु—

यत्सूर्यमण्डलगतं तव सत्यरूपम्,
नीलाब्जसम्मितमहो पिहितं च भानोः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज्योतिर्मयैश्च किरणैस्तदपावृणु त्वम्,
दृष्ट्वा यथाहमधियामि कृतार्थभावम् ।।श्रीः।।

अथ पुनरेव तमेव सूर्यरूपं भगवन्तं, तद्दर्शनव्यवधायकानि रश्मितेजांसि संहर्त्तुं प्रार्थयते—

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ
पुरूषः सोऽहमस्मि ।।१६।।

पुषन् एकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य रश्मीन् व्यूह, तेजः समूह, यत् कल्याणतमम् रूपम् तत् ते पश्यामि, यः असौ पुरूषः असौ सः अहम् अस्मि इत्यन्वयः ।

अस्य मन्त्रस्य द्वेधा व्याख्याने कर्मकाण्डदृष्ट्या सूर्यपरकं ज्ञानकाण्डदृष्ट्या श्रुतीनां भगवत्येव परमतात्पर्यपरतया भगवत्परञ्चच । प्रथमकल्पे- हे पूषन् ! निजरश्मिद्वारेण समस्तजगत्पोषक ! एकम् अनुपमं गगनं ऋषति गच्छति इत्येकर्षिः गत्यर्थक ऋष् धातोः इच् प्रत्ययः, आकाशं च एकमेव प्रसिद्धं **गगगं गगनाकरम्** इति वाल्मीकिवचनमपि मानं, नैय्यायिका अपि आकाशस्य व्यक्तेरभेदमाश्रित्यैव जातिबाधकसिद्धान्तेषु प्रथमतो गणयन्ति । सूर्यो हि तदेवैकमाकाशमहर्मिशं गच्छति तस्मात्स एवैकर्षिः सूर्यः तत्सम्बुद्धौ हे एकर्षे !, यमयति नियमयतीति यमः नियन्ता तत्सम्बुद्धौ हे यम ! सुवति प्रेरयति प्राणिनः इति सूर्यः **राजसूयसूर्यइत्यनेन सूर्यशब्दस्य निष्पत्तिः** । तत्सम्बुद्धौ हे सूर्य ! हे जगत्प्रेरक ! प्रजापतिः कश्यपः तस्य अपत्त्यं पुमान् प्राजापत्यः **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाऽण्यः** (पा. सूत्र) इत्यनेन **ण्य** प्रत्ययः तत्सम्बद्धौ हे प्राजापत्य ! हे कश्यपसूनो ! रश्मीन्, निजप्रखरकिरणान् व्यूह उपसंहर तेजः, वर्चःसमूहः, सङ्कलय, यत् अपूर्वम् ते तव कल्याणतमम्, सकललोककल्याणकारि आधिदैविकं रूपम्, स्वरूपं तत्, अपूर्वं ते, तव तुभ्यं वा पश्यामि, विलोकयामि विलोकयेयमिति भावः **व्यत्ययाल्लिङर्थे लट्** । यः, तृष्यमानः असौ, तव मण्डलस्थः पुरूषः हिरण्यगर्भरूपः असौ, पुरस्थितः अहम् साधकः सः अस्मि, स एव भवामि अर्थात् तव मण्डलस्थितः यः पुरूषः, अहमपि आकृत्या तत्सदृशोऽस्मि अत्र **सिंहोमाणवक** इति वत् तच्छब्दः तच्छदृशे लाक्षणिकः । अथवा अस्मीत्यपि स्यामित्यर्थको लडुत्तमपुरूषैकवचनप्रयोगः । तव कृपया अहमपि तव मण्डलस्थपुरूषसदृशो भवेयमिति कामयते । द्वितीयपक्षे अन्वयस्तु प्रायः पूर्ववत् चरमेंऽश ईषत् परिवर्तनं असौ असौ यः पुरूषः सः अहम् अस्मि हे पूषन् ! हे भक्तपोषणकारि परमात्मन् ! **पोषणं तदनुग्रहः** इति भागवतवचनात् ईश्वरः स्वकान् भक्तान् कृपामृतधारया पुष्णात्येव । ऋषति स्मरतः भक्तान् प्रतिगच्छति भक्तभावनां वा जानाति भक्तान् संसारसागरात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मोचयति तत्तन्मुनिष्वाविष्टतया मन्त्रांश्च पश्यतीति ऋषिः, एकोऽद्वितीयश्चासौ ऋषिरिति एकर्षिः तत् सम्बुद्धौ सर्वजगन्नियन्त्रित्वात् हेयम्, हे सूर्य ! सर्वप्रेरक ! सूर्यस्यापिसूर्य ! **सूर्यस्यापिभवेत्सूर्यः** इति रामायणवचनात् । प्रजापतयो ब्रह्मादयः तेषामयं देवता प्राजापत्यः तत्सम्बुद्धौ हे प्राजापत्य ! हे देवाधिदेवभक्तवत्सल ! तस्येदमित्यर्थे ण्यत् । रश्मीन्, तव चरणप्राप्तिव्यवधायकान् मायामरुमरीचिकारश्मीन्, व्यूहः विगमय दूरी कुरू तेजः, नीरसतोत्पादकम् ऐश्वर्यम् विराड्रूपादिकं समूहः संहिर, अर्जुनोऽपि यद्दृष्टवा भयभीतो जातः **भयेन च प्रव्यथितं मनो मे** गीता ११-४५ इति गीतोक्तेः । तत्ते कल्याणतमं, सकलसौन्दर्यमाधुर्यमण्डितं कोटिकोटिकन्दर्पदर्पदलनं नीलोत्पलदलश्यामलं धनुर्बाणाद्युपलक्षितं सीताभिरामरामरूपं तत्ते पश्यामि विलोकयेयम् । ननु, देहममतावान् अनात्मज्ञानसम्पन्नो न शक्यते द्रष्टुं इत्यत आह—असौ असौ प्राणे प्राणे प्रतिप्राणमिति भावः **वीप्सायां द्विर्वचनम्** । यः प्रसिद्धः पुरुषः पुरुषर्थवादी जीवात्मा सः अहमस्मि अर्थात् प्रतिप्राणमुपश्लिश्य शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तस्त्वदंशभूतश्चेतनघनो जीवात्मा अहमस्मि । असौ असौ इति औपश्लेषिकी सप्तमी । यथा पुत्रस्यैव पितृसम्पद्भोगाधिकारः तथैव ममैव तव सकलसौन्दर्यनिधानस्वरूपदर्शनाधिकारः । वेदार्थस्तु—

विगमय निजमाया मोघरश्मीन् रसज्ञ,
गमय पुरूषतेजो भृत्य पूषन् परात्मन्,
तव जलधरनीलं रूपमालोकयेयं
प्रतितनुकृतवासः शुद्धबुद्धोऽहमात्मा ।।श्रीः।।

इदानीं परमनिर्विण्णो भगवत्समीपगामी नश्वरशरीरममतात्यागपूर्वकपरमात्मस्मरणं पौनः पुण्येन प्रार्थयते -

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृत ँ स्मर क्रतो स्मर कृत ँ स्मर ।।१७।।

हे ॐ ! अथ वायुः अनिलम् प्रविशतु (अलिनः) अमृतम् प्रविशतु, शरीरम् भस्मान्तम् (भवतु) क्रतो ! (माम्) स्मर (मम) कृतम् स्मर, क्रतो ! (माम्) स्मर (मम) कृतम् स्मर, इत्यन्वयः ।

अधुना इमं लोकं त्यक्त्वा भगक्तो नित्यपरिकरभावं गच्छन् दैन्यप्रवणचित्तो भागवतः प्रार्थयते—हे ॐ! एतस्य ऊनविंशतिरर्थाः पूवमेव व्याख्याताः । तेषु प्रथमरक्षणार्थः इह गृह्यते, हे जगद्रक्षकॐकारस्वरूप ! अथ, अस्या लोकयात्रायाः अनन्तरं वायुः मम पञ्चप्राणात्मकः समीरः, अनिलम् त्वद्विभूतिरूपं सूक्ष्मं वायुदैवतं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रविश्यतु, सूक्ष्मवायुरपि अमृतम् अविनश्वरं त्वां प्रविशतु, शरीरम् शीर्णत्वात् नष्ट प्रारब्धबन्धनं पाञ्चभौतिककलेवरं भस्मान्तं भस्मावसानं स्यात्। हे क्रतो ! सकलसङ्कल्पपूरक मां स्मर सततं दासरुपेणैव चिन्तय, ममकृतं निजकैङ्कर्यं स्मर, अन्यान् दोषान् विस्मर इति ध्वन्यते। हे क्रतो ! हे यज्ञेश्वर ! मां स्मर कृपाभाजनतया चिन्तय, मम कृतं निज चरणसरोजप्राप्त्यभिलाषं स्मर, मया कृतानि विकर्माणि विस्मर इति सङ्केत्यते। अत्र द्वितीयोऽपि पक्षः—श्रुतिः वत्सलतया जीवमुपदिशति, त्वयि शरीरं त्यक्तवति प्राणवायुः अनिलं सूक्ष्मवायुं प्रविशतु, तच्च भगवन्तममृतं प्रविशतु, शरीरं च भष्मीभवतु। हे सकल्पमय जीवात्मन् ! त्वं कृतं स्मर निज जीवने कृतकर्मजातं स्मर, पुनश्च कृतं भगवता कृतमुपकारसमूहं स्मर। श्रुतिसारस्तु—

वायुश्चमे यात्वथसूक्ष्मवातं,
त्वत्त्वामृतं भस्मभवेत् तनुर्मे।
मां दासरूपेण हरे! स्मर त्वं,
कृपानिधे विस्मर मेह्यघानि।।श्रीः।।

साम्प्रतं चरमे मन्त्रे भगवद्विभूतिव्याजेन भगवन्तं स्मरन् शोभनेन पथा स्वसमीपं नेतुं प्रार्थयमानः निजदुरितनाशायानुरन्धानो निखिलश्रुतिमहातात्पर्यं सीताभवं कौशल्यानन्दवर्धनराघवं ब्रह्म प्रणतिभिर्नमस्करोति भगवदन्तरङ्गशिखाभणिरेषा संहिताभागीया चरमाश्रुतिः।

अग्ने नय सुपथा राये
अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां
ते नमउक्तिं विधेम।।१८।।

इत्युपनिषत् ॐ पूर्णमदः इति शान्तिपाठः।

हे अग्ने देव ! विश्वानि वयुनानि विद्वान् (त्वम्) राये अस्मान् सुपथा नय, जुहुराणम् एनः अस्मत् युयोधि, ते भूयिष्ठाम् नमउक्तिम् विधेम, इत्यन्वयप्रकारः।

भगवद् सामीप्यकामः साधकः जीवनस्य विश्रामपुष्पाञ्जलिरूपेण स्वाभिमताभिलाषद्वयपूर्विकां प्रणतिं विदधाति प्रणतपालकपरमेश्वरपदपद्मयोः। यद्यपि कर्मकाण्डिनः इमं मन्त्रम् अग्निपरकतया व्याचक्षते सुगमतया सा व्याख्या स्वयमूह्या, परमार्थतस्तु–अर्च्यते पूज्यते इति अग्निः, अग्र नीयते प्रथमदेवत्वात् यः सोऽग्निः तत्सम्बुद्धौ हे अग्ने ! हे सकलचराचरवन्दीय ! हे सर्वेषामग्रगामिन् ! अग्नेरप्यग्ने ! **अग्नेरग्निः** इति वाल्मीकिवचनात्। हे देव ! हे द्युतिमन् राघवेन्द्र!

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विश्वानि सम्पूर्णानि वयुनानि, अस्मत् विहितकर्माणि अस्मदज्ञानलक्षणसङ्कल्पांश्च विद्वान् सर्वज्ञतया जानन्, तेषु ध्यानं न दत्वा त्वं राये निजनित्यकैङ्कर्यलाभरूपधनाय अस्मान् भवत्पदपद्ममभिजिगीषून् सुपथा शोभनेन मार्गेण दक्षिणपथव्यतिरिक्तेन वस्तुतस्तु भगवद्भक्तपदपद्मपरागपूतेन मार्गेण, नय निजचरणसरसीरूह सन्निधिं गमय। जुहुराणम्, त्वत्परिकरभावप्रतिबन्धकप्रत्यूहं कुटिलम्, एनः पापम्, अस्मत् अस्मत्तः, परिकरेभ्यः युयोधि निरस्तं कुरु। हे पतितपावन! वयम् अल्पसत्वास्त्वां परिचरितुमसक्ताः ते तुभ्यं भूयिष्ठाम् अधिकतमां नमसां नमस्काराणां साष्टाङ्गदण्डप्रणामानाम् उक्तिं, व्याहरणं विधेम विदध्मः कुर्मः इति भावः। अत्रायं शास्त्रार्थः—अष्टादशमन्त्रात्मिकेयमुपनिषत् अष्टादशविद्यानां महा तात्पर्यभूतवेदान्तवेद्यपरब्रह्मपरमेश्वरसकलजगदभिन्न-निमित्तोपादानकारणचिदचिद्विशिष्टश्रीसीतारामरूपपरब्रह्मणः प्रतिपदं महिमानमनुवर्णयति। तथा हि–प्रथममन्त्र एव प्रथमचरणेन ईशस्मरणं, द्वितीयेन अचित्स्मरणं, पुनस्तृतीयतुरीयाभ्यां चित्तत्वस्य प्रत्यगात्मनः स्मरणेन तत्वत्रयमसीसधच्छ्रुतिः। एवं भगवत्किङ्कराय जीवाय द्वितीयमन्त्रेण भगवन्निमित्तक- कर्मोपदेशः, तृतीयेन विकर्मणां फलं, तुरीयतो यावदष्टमं विशिष्टाद्वैत बोध्यस्य परमात्मनः महिमानुवर्णनं, षड्भ्यो ज्ञानकर्मसमुच्चयनिर्देशः, द्वाभ्यां भगवद्रूपदर्शनप्रार्थनं, पुनर्द्वाभ्यां प्रपत्तिपर्यालोचना। चिज्जीवः अचित् प्रकृतिः ताभ्यां विशिष्टं ब्रह्म कारणकार्यभेदाभ्यां द्वेधा तयोरद्वैतमिति कारणं ब्रह्म परमव्योमसाकेताधिवासि श्रीसीतारामाख्यं, कार्यं ब्रह्म अन्तर्यामि सर्वभूतमधितिष्ठत्। विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे तयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्, इत्येव श्रीवैष्णवाम्नायः, स च श्रौत एव सकलोपनिषच्छिखामणिभूतायाः ईशावास्योपनिषदः परमतात्पर्यभूतत्वात् एतस्याः प्रतिमन्त्रेण सुगमतया यथाक्षरार्थं प्रतिपादितत्वात्।

वेदार्थस्तु—

जानन्मदीयं दुरितं हुताशः स्वामिन्सुमार्गेण नयार्तबन्धो।
अस्मच्च पापानि वियोजयेथाः भूयो मुहुस्त्वां प्रणमाम राम॥

रामानन्दाचार्यपदाम्बुजरेणुमयः,
राघवकृपासुभाष्यमभाषे सूक्ष्ममतिः।
श्रीगीताश्रुतिशास्त्रसमन्वितबोधमयम्
श्रीसीतापतितुष्ट्यै तुलसीपीठपतिः॥

इति श्रीचित्रकूटस्थ सर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वरश्रीमज्जगद्गुरू श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामभद्राचार्यकृतौ ईशावास्योपनिषदः श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

॥ श्रीराघवोः शन्तनोतु ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।
।। श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।।

केनोपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

मंगलाचरणम्

सुरनरमुनिवरमृग्यं कौसल्या किमपि फलं फलति ।
तल्लालयति सुमित्रा प्रकायमास्वादयति सीता ।।१।।

श्रीभानुमद् दुहितृ कल्पलताप्रसूति–
राकूतिधर्मगुणमञ्जुलपुष्पशाली ।
सीतालताविलसितो जनताभिरामो,
रामाभिधो जयति जैत्रतरुस्तमालः ।।२।।

तं तमालशुभगं गम्भीरया बालकोचितगिरा सुधामुचा
रञ्जयन्तमनिशं नृपाङ्गणं राघवं मनसि शीलये शिशुम् ।।३।।

केनेदं धनुरानतं बलवता भग्नञ्च केनेश तु
केनेदं शकलीकृतं कृतिमता क्षिप्तञ्च केनावनौ
एवं रोषकरालनेत्रभृकुटिज्वालावलीढं नृपम्
पृच्छन्तं परिसान्त्वयन् भृगुवरं श्रीराघवस्त्रायताम् ।।४।।

यत्पादाम्बुरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः ।
कृतकृत्योऽस्मि तं वन्दे रामानन्दं जगद्गुरुम् ।।५।।

नत्वा श्रीतुलसीदासं रामानन्दाश्रितान् सतः ।
केनोपनिषदो भाष्यं कुर्वे सीतापतेर्मुदे ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ श्रीमदाद्यजगद्गुरुरामानन्दाचार्यचरणकुशेशयपरागानुरागविमलीकृताशयेन श्रीचित्रकूटबिहारिश्रीराघवललितलीलाकीलाललालितचेतसा तुलसीपीठाधिपतिना जगद्गुरूश्रीरामानन्दाचार्यपदमुद्वहता स्वामिरामभद्राचार्यकृतिना मया श्रीसीतारामपरितोषाय श्रीरामानन्दसम्प्रदायपरम्पराप्राप्तविशिष्टाद्वैतवादमनुसृत्य नातिदीर्घलघुकायं निरस्तसमस्तप्रतिपक्षव्यलीकवादप्रत्यवायं केनोपनिषदि श्रीराघवकृपाभिधं भाष्यं भाषितुमुपक्रमे ।

केनोपनिषदियं ब्रह्ममीमांसाप्रत्तिपादिकोपनिषत्सु मुख्यतमं स्थानमादत्ते । एषा नाम सामवेदीयतलवकारब्राह्मणान्तगर्तनवमाध्यायः खण्डत्रयात्मकः । तत्त तु्सामवेदीय-तलवकारब्राह्मणे पूर्वेष्वष्टस्वध्यायेषु कर्मोपासनयोः साधनसामग्रीवर्णनम् । तस्य चरमेऽध्याये ब्रह्ममीमांसावर्णनं तस्मादियमुपनिषद् कथ्यते ।

वेदस्य ज्ञानकाण्डश्रुतीनां हि वैश्वजनीनी उपनिषत् संज्ञा । केनशब्देनास्याः प्रथममन्त्रस्य प्रारम्भादियमपि केनोपनिषदिति प्रसिद्धिमयासीत् । अस्याश्चतुर्षु शकलेषु ब्रह्ममीमांसा साटोपमुपबृंहिता । तत्र प्रथममुपनिषद्पारम्परीसमनुरोधतः शान्तिपाठव्याख्यानम् ।

शान्तिपाठः

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि । सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु ।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ मम अङ्गानि वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम् च सर्वाणि इन्द्रियाणि अथो बलम् आप्यायन्तु, सर्वम् औपनिषदम् ब्रह्म, अहम् मा निराकुर्याम्, ब्रह्म मा मा निराकरोत्, अनिराकरणम् अस्तु मे अनिराकरणम् अस्तु, उपनिषत्सु ये धर्माः ते तदात्मनि निरते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः इत्यन्वयः ।

ॐ इति सम्बोधनात्मकं भगन्नाम, तथा च अवति तर्पयति भक्तानभीष्टकामवरैः यः सः ॐ तत्साम्बुद्धौ हे ॐ ! हे भक्तजनतर्पक ! मम साधकस्य त्वत्पादपद्मं प्रपद्यमानस्य, अङ्गानि चरणजानूरूकटिवक्षःपाणिग्रीवावदनशिरःप्रभृतीनि । वाक् वाणी तदधिष्ठातृदेवता च, प्राणः प्राणिति येन तथाभूतः प्राणधारकशक्त्यवच्छिन्नदैवतविशेषः, चक्षुः चष्टे विलोकयति येन तथाभूतम् । चक्षिङ्व्यक्तायां वाचि इत्यस्मात् औणादिक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उण् प्रत्ययः धातूनामनेकार्थकत्वात् एतस्य दर्शनार्थत्वाङ्गीकारे न दोषः । श्रोत्रम्, श्रवणम्, च तथा सर्वाणि निखिलानि, इन्द्रियाणि सकलेन्द्रियदैवतानि इति भावः । ननु सर्वाणीन्द्रियाणीत्युक्तावेव वाक्चक्षुःश्रोत्राणामिन्द्रियतया गतार्थत्वात् पुनस्तदुपादानं पृथकत्वेन किमभिप्रायकमिति चेत्, ब्राह्मणवशिष्ठन्यायेन इतरेन्द्रियापेक्षया तेषां सविशेषमहत्वद्योतनार्थम् । अथो, आनन्तर्यार्थमव्ययमेतत्, बलम् प्राणशक्तिः साचात्र कामरागविवर्जिता आत्मबलापरपर्याया गृह्यते **बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्** (गीता ७-११) इति स्मृतेः । एवमेव अङ्गानि इन्द्रियप्राणबलाधिष्ठातृदैवतानि अधिष्ठानानि च तेषाम्, आप्यायन्तु पुष्टानि सन्तु । ननु ज्ञानकाण्डीयविचारणायां पदे पदे शरीरस्य तदङ्गानां च नश्वरता ख्यापिता, तत्र ब्रह्मविचारे आत्मानात्मविमर्शे व्यवहारस्य मिथ्यात्वनिश्चये तन्निबन्धनस्य शरीरस्यापि तथात्वेन प्रत्यये । कथं तर्हि ब्रह्मविचारणासर्वस्वोपनिषदि शरीरतदङ्गसम्पोषणाभिलाषनिबन्धनोऽयं शान्तिपाठः ? इति चेदुच्यते-ममता परित्यागाय तत्र शरीरक्षणभङ्गुरता निश्चयः समपेक्षते, परं समेषां ज्ञानवैराग्यभक्तिप्रमुखानां भगवत्प्राप्तिसाधनानां मूलद्वारतया शरीरस्य तदङ्गानां च सम्पोषणमपि नितरामपेक्षते नहि पुनरन्तरेण तनुं भगवत्प्राप्तिसाधनानि शक्यन्ते समनुष्ठातुम् । यथा यानमन्तरा नहि कोऽपि प्रभवति सहस्राधिकयोजनपर्यन्तां सुदीर्घयात्रां विधातुम् । तस्यां हि यानस्य प्रमुखभूमिका निभालकत्वात् । तस्मात् तिष्ठतु नाम निरस्तममत्वज्ञानपरायणानां कृते देहानित्यत्वधिष्णा,.परञ्च परमेश्वरावाप्तिसाधनबेलायां शरीरारोग्यं सुतरामपेक्षितम् अतः प्राहुरायुर्वेदविशारदाः **धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्** वाग्भट्टोऽपि उभयविधस्वास्थ्यलक्षणं निगदन् प्राह—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधियते ।।

अत्र पूर्वार्धेन बहिरङ्गस्वास्थ्यं संल्लक्ष्य चरमार्धेन तदन्तरङ्गलक्षण मलक्षीति व्याचक्षते विनश्चितः । अथ प्रकृतमनुसरामः सर्वम्, सर्वत्रव्याप्तम् यद्वा सर्वमिति सप्तम्यन्तप्रतिरूपकं तथा हि–सर्वस्मिन् इति विग्रहे ङि विभक्तेः **सुपां सुलुक्** पा.अ. ७-१-३९ इत्यनेन सु आदेशे तस्यैव "अतोऽम्" इत्यनेन अमि पूर्वरूपे सर्वम्, उपनिषत्सु प्रसिद्धम् औपनिषदं **शेषे** इत्यनेन अण् प्रत्ययः, तथा च सर्वस्मिन् चराचरे उपनिषत् प्रसिद्धं ब्रह्मवर्धनशीलं परमात्मतत्वं विराजते इति वाक्यार्थः । अहम्, बह्मातिरिक्तसत्ताकसाधकः, ब्रह्म उपनिषत्प्रसिद्धं परमात्मतत्वं मा निराकुर्यां तत्पदाम्भोजविमुखो भूत्वा मा तिरस्कारविषयं कुर्याम् इति भावः, ब्रह्म स्वभक्तवर्धकं परमेश्वरतत्वं मा माम् स्वशरणागतं **त्वामोद्वितीयायाः** इत्यनेन मां शब्दस्य मादेशः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मा नहि निराकरोत् मा तिरस्कारविषयं करोतु **व्यत्ययो बहुलम्** पा.अ.३-१-८५ इत्यनेन लोडर्थे लङ्लकारः । अनिराकरणम्, मम परमात्मनश्च अन्योन्यश्च अनिराकरणं निराकरणाभावः अस्तु, भवतु, उभावप्यन्योऽन्यं सम्मानयन्तौ मा तिरस्कारविषयं कुरुतां इति हार्दम् । तदेव द्रढयन्नाह—मे मम साधकस्य अनिराकरणम्, निराकरणभिन्नं निजचरणारविन्दसन्निधौ स्वीकरणम् इति भावः, अस्तु भूयात् । उपनिषत्सु, साक्षात्भगवत्प्रतिपादनपरासु श्रुतिषु ये, यावन्तः धर्माः भगवच्चरणारविन्दप्राप्त्युपायभूताः ते धर्माः, प्रपत्तिलक्षणाः तदात्मनि स चासौ आत्मा इति तदात्मा श्रुतिप्रसिद्धपरमात्मरूपः तस्मिन् तदात्मनि, रते निसर्गतः कृतानुरागे मयि, परमात्मप्रपन्ने साधके सन्तु विलसन्तु, ते मयि सन्तु तमेवार्थं प्रढयितुं भूयोऽनुवादः । ॐ, हे जनतापहारिन् ! शान्तिः शान्तिः शान्तिः त्वत्कृपाकादम्बिन्या त्वां शरणमुपेयुषां तापत्रयोपशमनं भूयात् इति प्रार्थयमानः केनोपनिषत्प्रवचनमुपक्रमते ।।श्रीः।।

।। प्रथमखण्डः ।।

गुरुशिष्यसम्वादपरम्परया ब्रह्ममीमांसा प्रवर्तते, तया च तत्वबोधे जिज्ञासवोऽल्पीयसायासेन पारे शास्त्रसागरं व्रजन्तीति गुरुशिष्यसम्वादमवतारयति—

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।१।।

केन इषितम् प्रेषितम् मनः पतति, केन युक्तः प्रथमः प्राणः प्रैति, केन इषिताम् इमाम् वाचम् वदन्ति, कः देवः चक्षुः श्रोत्रम् उ युनक्ति इत्यन्वयः ।

आचार्यवान् पुरुषो वेद तद् विज्ञानार्थं स गुरु मेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः **श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** इत्यादि श्रुत्युरोधेन ब्रह्मविद्याम् आचार्यायत्तां मत्वा तृषार्तकरीव सरोवरं पाणौ समिधौ गृहीत्वा ब्रह्मनिष्ठमाचार्यमुपसृत्य प्रणिपत्य जिज्ञासुशिष्यः प्राञ्जलिः प्रणतः पृच्छति केन इत्यादि, हे देव ! केन किन्नामकेन, इषित्रा इषितम्, लब्धानुशासनं प्रेषितम् स्वसन्निधिं प्रापितं, मनः सङ्कल्पात्मतकम् अन्तःकरणं पतति, विषयेषु इति शेषः । यथा पतङ्गः दीपप्रभां दृष्टवा विचारमन्तरेणैव बुभुक्षया तामाश्रयते तथैव मनोऽप्येतत् सहसैव परिणाममनपेक्ष्य विषयान् भोग्यतया समालम्बत इति हार्दम् । एवमेव केन किमभिधेन कर्माध्यक्षेण युक्तः नियुक्तः प्रथमः सर्वेन्द्रियापेक्षया श्रेष्ठः प्राणः जीवनधारक श्वासविशेषः प्रैति पञ्चधाविभक्तः शरीरे सञ्चरति यद्वा प्रथमः दशेन्द्रिय-चतुरन्तःकरणपञ्चतन्मात्रा पञ्चमहाभूतपञ्चवायुनामपि प्राथम्येन नियामकः प्राणः प्राणानामिति शेषः, प्राणन्ति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुखनासिकादिद्वारेण पञ्चवायवो येन तथाविधः प्राणो जीवात्मा प्रैति केन दत्तगतिः, कः प्रतिशरीरं निष्प्रत्यूहं गतागतं करोतीति भावः । एवमेव केन किं संज्ञेन प्रेरकेण, ईषिताम् लब्धप्रेरणां वाचं सरस्वतीं वदन्ति व्याहरन्ति, चेतनामन्तरेण जाड्यतया व्यवहारासम्भवात् । तथा कः किमभिधानः देवः, दैवीं शक्तिं श्रयमाणः चक्षुः श्रोत्रम्, नेत्रं श्रवणेन्द्रियमुपलक्षणतया सकलानि हृषीकाणि, उ निश्चयेन, युनक्ति स्व स्व विषयेषु नियुक्तानि करोति इति भावः । जडीभूतस्य मनसः को नाम प्रेषयिता प्रेरको वा, प्रेषणं विना तस्य विषयभोगासामर्थ्यात् एवं सर्वत्रसञ्चरणशीलस्य प्राणस्य चेतनमन्तरेण तत्तच्छरीरेषु केन नियोजनं सम्भवम् । इत्थमेव कर्मेन्द्रियतया सर्वथा जडीकृतायां वाचि लोकार्थविषयकबोधजनकताभावात् केन समर्पितार्थां तां वदन्तो जनाः व्यवहरन्ति । एवमेव सकलेन्द्रियाणि कुतश्चेतनां लब्ध्वा स्वकार्याणि कर्तुं पारयन्तीति चतुर्भिः प्रश्नैः चतुष्पादविभूतिकं श्रीरामाभिधानं ब्रह्म जिज्ञासते स्म सच्छिश्यः ।।श्रीः।।

एवं जिज्ञासमानं सकलसाधनसम्पन्नं शान्तं दान्तं विनीतमुपनीतं सच्छिश्यं प्रति सद्गुरुः तदेव परमतत्वं विशिष्टाद्वैतं यत्किञ्चित्तया व्याख्यातुं समीहमानः पूर्वं प्रागुक्तानां बहिरन्तःकरणप्राणानां चेतनास्रोतस्त्वेन तं परमात्मानं समभिधत्ते श्रोत्रस्य श्रोत्रमित्यादिना ।

श्रोतस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचँ् स उ प्राणस्य प्राणः ।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।। २ ।।

यत् मनसः मनः (यः) प्राणस्य प्राणः (यत्) श्रोत्रस्य श्रोत्रम् (यत्) वाचः वाचम् (यत्) चक्षुसः चक्षुः सः ह धीराः अतिमुच्य अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृताः भवन्ति, इत्यन्वयः ।

अस्मिन् मन्त्रे वाक्यद्वयं प्रथमं पूर्वमन्त्रकृत प्रश्नचतुष्टयोत्तररूपं, द्वितीयं तल्लक्ष्यप्राप्तिप्रयत्नप्रवर्तकम् । जिज्ञासुं प्रपन्नं शिष्यं प्रति प्राहाचार्यः– वत्स ! तव चतस्रोऽपि जिज्ञासाः समीचीनाः सोपपत्तिकाश्च । भूतार्थमेवैतत् यदन्तःकरणं बहिःकरणं प्राणाः इदं सर्वमपि क्षेत्रसंघातं स्वभावतो जडम् । एतेषु कतममपि स्वाधिष्ठानचैतन्यमन्तरेण मनाक् स्पन्दितुमपि न पारयति । यथा सङ्कलितसकलोपकरणं यानं चालकं विना तिलमात्रमपि चलितुं न प्रभवति । यथैवानुपपत्या चालकमपश्यन्नपि चलता यानेन तं निश्चिनोति तथैव जडमपि मनो व्यवहारे गृहीतसङ्कल्पं निरीक्ष्य, जडमपि प्राणं सर्वत्र निरवरोधं प्रयान्तं समीक्ष्य, अर्थहीनाभिवाचं परिकलितसर्वार्थां व्याहरन्तुं विभाव्य, निर्ज्योतिरपि चक्षुः जगज्ज्योतिसाधनं समवलोक्य, अशब्दमपि श्रोत्रं लब्धगगनगुणं श्रवणकरणं विचार्य, किमपि विशिष्टाद्वैततत्वं परब्रह्म मनसोऽपि मननसाधनं प्रेषयितारं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राणस्यापि प्रयोक्तारं वाचेऽपि समभिप्रेतार्थानां समर्पयितारं चक्षुश्श्रोत्रयोरपि स्वस्वविषयग्रहणे नियोक्तारम् औपनिषदं ब्रह्म विनिश्चिनु इति हि मन्त्रस्य प्रथमवाक्यार्थः। तथा हि यत् सर्वोपनिषद् वेद्यं, मनसः संकल्पप्रधानान्तःकरणस्य, मनः मननसाधनरूपमादिकारणम् अभिन्ननिमित्तोपादानकारणमितिभावः, यः सर्वाभौमसत्ताकः प्राणस्य, पञ्चधाविभक्त-शरीरसञ्चारिवायुविशेषस्य प्राणः, प्राणयिता जीवात्माख्यः यत् श्रुतिप्रसिद्धं श्रोत्रस्य, श्रवणन्द्रियस्य श्रोत्रम्, कारणभूतं तस्मादेवचेतनां प्राप्य श्रवणेन्द्रियं श्रवणायोपकल्पत इति भावः। यत् चराचरं व्याप्तं, वाचः, वाण्याः वाचम्, कारणभूतं, यद्यपि वाक्शब्दः नित्यस्त्रीलिङ्गः प्रथमैकवचनः हलन्तश्च तथापि वाचमिति नपुंसकलिङ्गे प्रथमैकवचनाजन्तस्यानुरोधात् आर्षत्वात् समाधेयः, यद्वा **षष्ठीयुक्तश्छन्दसि** वा.पा.अ.१-४-९ इत्यत्र **बहुलं छन्दसि** पा.अ. २-४३९ इत्यस्यानुवर्तनात् पतिशब्दमृतेऽपि षष्ठीसमासः विभक्तेरलुक समाहारद्वन्द्वाभावेऽपि "**द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** "पा.अ. ५-४-१०६" इत्यनेन अन्यत्र प्रवृत्तिलक्षणबाहुलकबलेन टच् प्रत्ययः क्लीवता च। यद्वा वाचः इदं वाचम् वाक्कारणभूतमितिभावः "**तस्येदम्**" इत्यनेन षष्ठ्यन्त वाक् शब्दात् अण् प्रत्ययः इदमर्थस्य कारणभूतब्रह्मविशेषणतया तदनुरोधेन क्लीवता। यद्वा वागेव च वाचं आकृतिगणत्वात्, **प्रज्ञा-श्रद्धार्चाभ्यो णः** पा.अ. ५-२-१०१ इत्यनेन स्वार्थे ण प्रत्ययः, सामान्यनपुंसकत्वात् क्लीवता। केचन वाचम् इति द्वितीयान्तं मत्वा तदनुरोधेन वदन्ति इति क्रियामध्याहरन्ति वाचो वाचं वदन्ति इति हि वाक्यार्थः। तदनुचितं वाक्यभेदकल्पनाक्रियाकर्त्रध्याहारकल्पनादि-गौरवदोषग्रस्तत्वात्। यत्तु केचन वाचमिति द्वितीययान्तं मत्वा प्राणः इति प्रथमानुरोधेन इदमपि प्रथमान्तत्वेन विपरिणमयितुं समीहन्ते तदपि पाटलपुष्पयूथमध्यमतस्य पीतपुष्पस्य परिणाम इव हास्यास्पदमेव साहसं, प्रथमान्तवाचकतया द्वितीया विभेक्तेरपि श्रुतावर्थाप्रामाण्यापत्तेः अतो प्रागुदाहतानि प्रथमापरकतया चत्वारि सामाधानान्येव ज्यांयासीति विरम्यते। यत् चर्चितचरं चक्षुषः, नेत्रस्य उपलक्षणतया पञ्चेन्द्रियाणामपि ज्ञानभाजां चक्षुः नेत्रम्, अन्येषां पक्षे कारणम् अर्थात् नेत्रस्य नेत्रं श्रवणस्य श्रवणं रसनायाः रसना घ्राणस्य घ्राणः त्वचस्त्वगिति विवेकः, सः स एव मनोऽधितिष्ठं चेतनघनः पञ्चेन्द्रियैः सह आत्मना मनोयोजयन् तन्माध्यमेन पञ्चानामपि विषयाणामनुभवं कारयति, स एव प्राणं प्रेरयन् तं प्रतिशरीरं गन्तुं प्रणुदति, स एव वाचे विवक्षितार्थान् समर्प्य तामर्थवतीं वक्तुं प्रेरयति स एव देवः रूपसाक्षात्कारे चक्षुः, शब्दसाक्षात्कारे च श्रोत्रं विनियुंक्ते इति तात्पर्यम्। ननु एतस्मिन् उत्तरे आपातरमणीयता उताहो कश्चन निरत्ययः प्रत्ययः? इत्यपेक्षायामाह– अयं निश्चयार्थो निपातः अर्थात् पुरोदितं व्याख्यानं विनिश्चयेनावोचम् न तु यथाकथंचित् पुस्तकानि पठित्वा कुतश्चिच्छ्रुत्वा वा यच्छ्रुतौ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुरुमुखात् समश्रावि तदेव सुदीर्घतपसा समन्वभावि तदेव हि पृच्छते तेन्यगादि, असावेवहार्थः धीराः, द्वन्द्वसहिष्णवः अतिमुच्य, अतितरां प्रारब्धक्रियमाणानागतबन्धनेभ्यो मुक्ताः भूत्वा, यद्वा अतिमुच्य पूर्वं व्याख्यातं तं परमात्मानम् अतिमुच्य स्वकीयमनोमन्दिरे सम्प्रतिष्ठाय अस्मात्, गर्मबन्धनरूपात् लोकात् दुरन्तपारात् संसारकूपारात् प्रेत्य, प्रकर्षेण ससम्मानं साकेतलोकं गत्वा, अमृता, मरणधर्मभिन्नाः भवन्ति, यद्वा मृतं मरणं प्राणवियोगरूपं न विद्यते तदेषाम् इत्यमृताः प्राणवियोगवर्जिताः, दासभूतानां नित्यपरिकरभावभाजां जीवात्मनां खलु प्राणो भगवानेव तस्मात्ते कदापि न वियुज्यन्त इति हि मन्त्रार्थः ।।श्रीः।।

ननु यद्ब्रह्म तावत् समस्कानां समस्तेन्द्रियाणां कारणमवोचः, यच्च मनोमन्दिरे निधाय धीराः मरणधर्महिताः भवन्तीत्यात्थः तद्ब्रह्म कथं प्राप्तुं शक्यते किं घटपटादि पादार्थानिव तं वयं चाक्षुस् साक्षात्कारविषयं कुर्याम, उताहो इन्द्रादीनिव देवान् वाग्भिः स्तोतुं शक्नुमः, उताहो मनसा चिन्तयेम ? इत्यत आह—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः ।
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् ।।३।।

तत्र चक्षुः न गच्छति (तत्र) वाक् न गच्छति (तत्र) मनः नो (गच्छति) यथा अनुशिष्यात् एतत् न विद्मः न विजानीमः, इत्यन्वयः ।

अथेदानीं पूर्वमन्त्रेण व्याख्यातस्य सकलेन्द्रियनियन्तुः परमात्मनय अनिर्वचनीयतां दर्शयन्ती प्राह तृतीया श्रुतिः । यद्यपि ब्रह्म समस्तानां विषयाणां बाह्यकरणानामन्तःकरणानां तदधिष्ठातृदैवतानां सच्चेतनाप्राप्तिद्वारभूतप्रत्यगात्मनाम् अवभासकम् । ब्रह्म व्यापकं सच्चेतनघनं अप्रमेयचेतनाकम्, एतत्सापेक्षचेतनानीतराणि तथाहि विशुद्धचेतनाघनात्परमात्मनो गृहीतचेतनः जीवात्मा यथा शक्ति सुरेभ्यः सूर्यादिभ्यः प्रयच्छति तत्तत् ग्रहणक्षमतानुसारं चेतनां, ते च सूर्यादयो यमान्ताः दशभ्यो बाह्यकरणेभ्यः चन्द्रादयश्चैत्यान्ताः स्वान्तादिभ्यश्चतुर्भ्योऽन्तःकरणेभ्यस्तस्माल्लब्धचेतनातः यथायोग्यं चेतनांशं वितरन्ति, तेभ्यश्च लभन्ते चेतनां विषयाः, एवं विषयकरणसुरजीवाः अन्योन्यगृहीतचेतनाकतया अन्योऽन्यसापेक्षाः निरपेक्षस्तु एक एव सर्वपरमप्रकाशकः सकलवेदान्तसाधनायासनाशकः श्रीमदयोध्यापतिःविशिष्टाद्वैतापरपर्यायः परब्रह्मरूप-भगवान् रामः । तथा चाह श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यप्रशिष्यदेशिकः श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासमहाराजः श्रीमानसरामायणे ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषयकरन सुरजीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ।।
सब कर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।।

(मानस १/११६/५-६)

तदेव ब्रह्म प्रत्यक्षेण नवागन्तुं शक्यं चक्षुरादीनां तत्र गमनासम्भवात् । अतः प्राह—तत्र तस्मिन् चक्षुः, चक्षुरिन्द्रियम् उपलक्षणतया ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं, न गच्छति न याति, ब्रह्म हि निरतिशयमहिमसम्पन्नं व्योमेव व्यापकं कथमल्पशक्तिकं प्राकृतं चक्षुस्तत्र प्रसरेत्, कथं वा चेतराणि श्रोत्रघ्राणरसनात्वग्रूपाणि विषिनुयुः ? इत्यनेन इन्द्रियार्थ-सन्निकर्षस्य ब्रह्मण्यसम्भवात् तत्र, नैयायिकसम्मतं प्रत्यक्षप्रमाणं निराकृतम्। तत्र ब्रह्मणि वक्, जडस्वभावकं वागिन्द्रियं न गच्छति, नावगन्तुं शक्नोति जडस्य हि विशुद्धचेतना ज्ञाते सर्वथैवासामर्थ्यात्, पदमपि वाक्पाणिपादपायूपस्थानां पञ्चकर्मेन्द्रियाणामपुलक्षणं, कर्मणां हि अज्ञानमूलकत्तवात् तदिन्द्रियाणां कथमहो नित्यज्ञाननिधौ ब्रह्मणि प्रसरः स्यात् । न वाक्गच्छतीत्यनेन तार्किकसम्मतं सादृश्यमूलकमुपमानप्रमाणमपि दूरापास्तं तस्य हि वाग्विषयत्वात् वाचस्तु ब्रह्मणि प्रसरासम्भवात् । मनः, सङ्कल्पवृत्यवच्छिन्नमन्तःकरणम् न गच्छति नैव गृहीतविषयं भवति, तस्य हि स्वभावतश्चञ्चलत्वादणुत्वाद् .व्याप्यत्वाच्च **नोमनः** इत्यनेन अनुमानप्रमाणमपिनिराकृतं, मनसो हि लिंङ्गपरामर्शव्यापारधर्मत्वात् तस्य मनसस्तु परमात्मनि गमनासम्भवात् । मनोऽत्र मनोबुद्धयहंकारचित्तानामुपलक्षणम् । इत्थं सर्वेन्द्रियचतुरन्तःकरणबहिर्भूतत्वात् परमात्मा श्रुतिभिर्ज्ञातुं शक्यः । अनेन प्रमाणत्रयनिराकरणमूलकश्रुतिवचनत्रयेण प्रत्यक्षानुमानोपमानवादिनः परास्ताः । वस्तुतस्तु परमात्मज्ञाने वेदाः प्रमाणं तदनुकूलानि ऋषिवचनानि स्मृतिपुराणेतिहास निगदितानि । तत्संग्रहेण वेदानुवचनमित्येकं प्रमाणम् । न च न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः इति श्रुतिनिषेधानुरोधेन परब्रह्मपरमात्मनो दर्शनानुपपत्या तत्र तत्र इतिहासपुराणादिषु भक्तकृतपरमात्मसाक्षात्कारपरकसहस्राधिकप्रसङ्गानामप्रामाण्यं स्यादिति वाच्यं, श्रुत्या ब्रह्मणि चक्षुर्वाङ्मनसानां गमनासम्भवे प्रतिपादितेऽपि ब्रह्मणस्तत्र गमनासम्भवानुक्त्या दोषाभावात् । अयं भावः—श्रुतेरस्याः यत् अपरिच्छिन्ने परमप्रकाशपुञ्जे महामहिमनि ब्रह्मणि कामं न यान्तु चक्षुर्वाक्स्वान्तानि तत्र गमने तेषां सामर्थ्याभावात्, परन्तु सर्वसमर्थः परमात्मा भक्ताननुजिघृक्षुः तेषां परमभागवतानां चक्षूंषि कोटिकामकमनीयधनुर्बाणोपलक्षितसीताभिरामश्यामरूपेणवाचं च श्रीरामायणादिरूपेण मनांसि च सकलकल्याणगुणगणनिलयचरित्रस्मृत्या च गच्छत्येव, इत्येव तस्य भक्त-वैशिष्ट्यं वात्सल्यं च । वस्तुतः ज्ञानिनां समनस्कानीन्द्रियाणि तं विषयं कर्तुं न

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पारयन्ति, किन्तु भक्तानां समनस्कहृषीकाणां स्वयमेव विषयो भवति हृषीकेषः समर्थयेते चैतच्छ्रीमद् भागवतमानसे । तद्ययथा कृतभगवत्सक्षात्कारो ध्रुवः प्राह—

योऽन्तः प्रविश्य ममवाचमिमां प्रसुप्ताम् ।
संजीवयत्यखिलशक्तिधरस्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् ।
प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ।।

(श्रीमद्भागवत ४/९/५)

एवं मानसेऽपि योगिराजजनकः श्रीरामं प्रति प्राह—

नयन विषय मोकहुं भयउ सो समस्त सुखमूल ।
सबद लाभ जग जीव कहँ भये ईश अनुकूल ।।

(मानस १/३४१)

तस्मादिदं सुस्पष्टं यत् समनस्केन्द्रियाणां परे ब्रह्मणि प्रसराभावेऽपि भक्तिकृपावशंवदः परमेश्वरश्चेन् निजाचिन्त्यशक्तिबलेन साधकस्य चक्षुरादिविषयः सम्पद्यतां, तदा भगवत्साक्षात्कारे न श्रुतिविरोधः । अतो मुण्डकश्रुतिरपि प्राह **यमे वैस वृणुते तेन लभ्यस्तस्यै ईष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्** । यथा, येन प्रकारेण अनुशिष्यात्, शिष्यमनुशास्त्वाचार्यः, यद्वा अनुशिष्यादिति **व्यत्ययोबहुलम्** पा.अ. ३-१-८५ इत्यनेन उत्तमपुरुषबहुवचनार्थे प्रथमपुरुषैकवचन प्रयोगः, अनुशिष्याम् इति प्रयोक्तव्ये अनुशिष्यादिति प्रायुङ्क्त । एतत्, इमं प्रकारं न विद्मः, केन प्रकारेण विशिष्टाद्वैतं ब्रह्म शिष्यमुपदिशेम इति न बुद्ध्यामहे । कथमित्याह—न विजानीमः, यतो हि तस्य ब्रह्मणो निःशेषेण वक्तुमशक्यत्वात्, यदि वयमेव नैव विशेषेण जानीमः तदा कथमुपदिशेम सामान्यतयाजानन्तो नान्यमुपदेष्टुमधिकृताः वयमिति ध्वन्यते ।।श्रीः।।

एवमात्मनि ब्रह्मणो विशिष्टज्ञानाभावमाकल्य्य यत्किञ्चित् ज्ञानाधारेण शिष्यं प्रति ब्रह्मणि सर्वथैव वक्तुमशक्यत्वसन्देहनिराचिकीर्षया प्राह– यद्यपि पूर्णतया ब्रह्म कोऽपि ज्ञातुं न प्रभवति । किन्तु तत्कृपया प्रयत्नवान् यत्किंञ्चित् ज्ञातुं यत्किञ्चित् वक्तुं च क्षमत एव, अन्यथा समस्तोऽप्युपनिषद्भाग एव मोघारम्भः स्यात् ।

अन्यदेव तद्विदितादथो आविदितादधि ।
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत् विदितात् अन्यत् एव, अथो (तत्) अविदितात् अधि इति पूर्वेषाम् (सकाशात्) शुश्रुम (वयम् इति शेषः) ये नः तत् व्याचचक्षिरे, इत्यन्वयः।

यद्यपि ब्रह्म प्रत्यक्षानुमानोपमानार्थापत्यनुपलब्धिचैष्टिंकादिप्रमाणागोचरतया अत्यन्तमुपदेशानर्हं तथापि त्वया न भेतव्यम् । भवतु नाम पूर्णतया तस्योपदेशाभावः परं निजगिरं पवित्रयितुं त्वां च कृतकृत्यं कर्तुं स्वकीयबुद्धिपात्रतानुपसारं तत्कृपाप्रसादलब्धत्वदुपदेशानुरूपज्ञानसामग्रीकस्त्वामुपदिशामः त्वया च सावधानेन श्रोतव्यम् । तत्, उपदेशविषयं ब्रह्म विदितात् विदि क्रियाकर्मभूतात् नश्वरात् संसारात् अन्यदेव विलक्षणमेव ब्रह्म नैव संसार इव जन्ममरणकूपे संसरति **विजरो विमृत्युर्विशोकः** इति श्रुतेः । अविदितात्, विदि कर्मतो बहिर्भूतात् अक्षरात् जीवात्मनः अधि, उपरिवर्तमानं ब्रह्म । इह शरीरे खलु द्वौ पुरुषौ तिष्ठतः क्षराक्षरौ क्षरो नाम क्षरणक्रियाश्रयः नाशवान् अष्टप्रकृतिनिर्मितभूतसमुदायः क्षरतीति क्षर इति व्युत्पत्तेः । अपरश्च अक्षरः सौम्यो जीवात्मा **नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः** इति स्मृतेः । इदं खलु ब्रह्म परमात्मनामधेयं भगवच्छब्दवाच्यं क्षराक्षरसंज्ञाभ्यां संसारजीवात्माभ्यां चिदचिद्भ्यां विलक्षणम् क्षरः खलु सर्वैः ज्ञातः अचित् अक्षरो जीवात्मा सूक्ष्मत्वात् अविदितप्रायः **श्रुत्वाप्येन वेदं न चैवं कश्चित्** इति स्मृतेश्च, परमात्मा द्वावप्यतीतः तथा चाह पुरुषोत्तमयोगे भगवान् —

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।

(गीता १५/१६/१७)

इति, इत्थं पूर्वेषां पूर्ववर्तिनामाचार्यणां सकाशात् गुरुशिष्यपरम्परारातः शुश्रुम आकर्णयामासिम इदं त्वां सम्प्रदायपरम्पराप्राप्तमेव क्षराक्षरातीतं चिदचिद्विशिष्टं ब्रह्मोपदिशामः न त्वशास्त्रीयं स्वकल्पितमिति भावः । ये परमाचार्याः नः अस्मभ्यं चिज्ञासुभ्यः तत् ब्रह्मज्ञानं विशिष्टाद्वैतमूलकं व्याचचक्षिरे व्याचक्रुः।।

एवं विदितात्क्षरसंज्ञात् भूतसमुदायात् अचितः विलक्षणं, तथा च अविदितात् विदिक्रियाकर्मबहिर्भूतात् अक्षरसंज्ञात् जीवात्मनश्च चितः विलक्षणम्, अन्तर्यामितया प्रतिशरीरमध्यस्थगुणत्रयवर्जितं विशुद्धचेतनघनं सगुणसाकारे सर्वथैनानुपहितं ब्रह्मेति मन्त्रार्थो व्याख्यातः । केचिदिह विदितादित्यस्य हेयादिति अविदितादित्यस्य उपदेयादिति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवृतिं कृत्वा ताभ्यां विलक्षणमात्मतत्वं ब्रह्मेत्यस्वारसिकं व्याख्यानं विदधते तथा च आत्मैव ब्रह्मेति वाक्यार्थं व्यस्थापयन्ति तदसारं रभसा व्याख्यानम् । क्षराक्षराभ्यां विलक्षणस्य ब्रह्मणः श्रीगीतासु भगवतैव व्याख्यातत्वात् विदिताविदितशब्दयोश्च क्षराक्षरत्वरूप वाच्यार्थस्यैव सार्वजनीनत्वात् । अहो को नामा मन्दधीः रसालशब्दोच्चारणे तद्वाच्यतया पनसफलमङ्गीकरिष्यति । श्रीगीता विस्पष्टमादिशति क्षराक्षरातीतस्य पुराणपुरूषोत्तमस्य भगवतो विरुदम्—

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम ।
यतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः ।।

(गीता १५-१८)

न च **यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः आत्मास्य ब्रह्म** इत्यादि शताधिक श्रुतिषुब्रह्मत्वेनात्मैवप्रतिपादित इति वाच्यम् ? तत्रात्मशब्दस्य परमात्मपरकतया व्याख्यानेनादोषात् । अथ आत्मनः परमात्मव्यतिरिक्त्वे किंमानमितिचेत् ? कठश्रुतिरेव परमप्रमाणतया गृह्यतां, तथा च काठकाः पठन्ति ।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परो महान् ।।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ।।

अत्र वर्णितानां सप्तपदार्थानामिन्द्रियार्थमनोबुद्ध्यात्ममहदव्यक्तपुरुषाणां मध्ये एकैकस्मादेकैकस्य सूक्ष्मत्वपर्यायपरत्वप्रतिपादने आत्मनो नामपञ्चमं स्थानं, ततो महतस्ततोऽव्यक्तस्य मायारव्यशक्तिविशेषस्य, ततोऽपि पुरुषस्य परतरं सर्वेभ्यो सप्तमं स्थानम्, इत्थं परत्वतालिकायां पञ्चमे स्थाने विद्यमानस्य आत्मनः को नाम सप्तम स्थानापन्नेन पुरुषेण सहाभेदं निश्चेष्यति ऋते दुराग्रहगृहिंलेभ्यः । ननु **बुद्धे रात्मेति** कठोक्तमन्त्रखण्डे प्रयुक्तात्मशब्दोऽहंकारार्थः इति चेन्न, सर्वोपनिषद्गवीदुग्धभूतायाः श्रीगीतायाः प्रकरणप्राप्तसिद्धान्तविरोधानुरेधेन नैतत्व्याख्यानमादरास्पदं तत्र, हि तृतीयाध्याये कामविजयप्रोत्साहनप्रकरणे तदात्मनो बलवत्त्वव्याख्यावसरे भगवता कण्ठरवेण बुद्धेरात्मनो बलवत्त्वरत्वं समभ्यधायि। तथा हि तत्र भगवान् कामविजयाय पार्थं नियोजयन् प्राह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य परं: मनः ।
मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।

(गीता - ३-४२)

भगवत्पादश्रीशंकराचार्यचरणैरपि सः इति पदस्य आत्मा इत्येव व्याख्या कृता, तत्र पूर्वोक्तं कठोपनिषन्मन्त्रद्वयमप्युदाहृतम् । इत्थं गीतासु बुद्धेः परस्य आत्मनः जीवात्मपरत्वं स्वीकृत्य श्रुतावत्र कथं तत्परं तमेवशब्दमहंकारपरतया व्यवस्थापयितुं शक्येत ? ननु जीवात्मपरमात्मनोर्भेदसमवधानमिदमुपाध्यवच्छिन्नतया जीवात्मन औपचारिकमिति चेत् घटावच्छिन्नाकाशस्य महाकाशतो भेद इव मैवं वादीः **अचलोऽयं सनातनः, जीवभूतः सनातनः** इत्यसकृत् स्मृतौ सनातनशब्दस्य प्रत्यगात्मानं प्रति प्रयोगदर्शनात् **सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे, बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्** इत्यनेकधा परमात्मनः सनातनशब्देन स्मृतत्वात् । जीवात्मपरमात्मनोरुभयोरपि प्रमाणितयोः सनातन्योः सत्तयोः सत्योः **नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्** इति श्रुत्यापि द्वयोः नित्यतायां प्रमाणितायां तयोर्भेदः त्रिकालं पारमार्थिक एव स्वीकर्तव्यस्त्वया । अथ अयमात्मा ब्रह्म इति महावाक्यस्य कथं संगतिर्भविश्यतीति चेच्छृणु—**आत्मा शरीरे जीवे च जीविते परमात्मनि** इति कोष वचनेन **अयमात्मा ब्रह्म** इत्यत्र प्रयुक्त आत्मशब्दः परमात्मपरः । अथ आत्मशब्दस्य विविधार्थकत्वे कोषातिरिक्तमस्ति किमपि मानं ? इति चेत् सन्ति बहवः प्रयोगाः । तद्यथा **पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा** अत्र भागवते प्रयुक्तः आत्म शब्दः शरीरार्थकः, नहि खलु जरामरणरहितः प्रत्यगात्मा केनापि हन्तुं शक्यते **नायं हन्ति न हन्यते, न हन्यते हन्यमाने शरीरे** इति बहुशो भगवतैवोक्तत्वात् श्रीगीतास्वपि आत्मशब्दः मनोबुद्धिःजीवात्मपरमात्मार्थेषु प्रयुक्तः । **उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानम वसादयेत्** अत्र तृतीयान्तआत्मशब्दः बुद्ध्यर्थः द्वितीयान्तः मनोऽर्थः, एवं **येनात्मैवात्मना जितः** अत्रापि तृतीयाप्रथमान्तौ बुद्धिमानसार्थावात्मशब्दौ मानसार्थावात्मशब्दौ **आत्मसंस्थं मनः कृत्वा** इत्यत्र परमात्मपरआत्मशब्दः । अथ जीवात्मपरमात्मनोः भेदोऽयं कदा प्रभृतीति? चेत् शाश्वतिक इति ब्रूमः । अस्मिञ्छाश्वतिकभेदे का विनिगमना ? मुण्डकश्रुतिरेव गृह्यतां, तथा हि—शरीरमेतद् वृक्षोपमानतया परिकल्प्य द्वाविमौ जीवात्मपरमात्मानौ खगाविव परस्पर सखित्वनिन्धनौ प्रत्यपादिषातां श्रुत्या, यथोक्तम्–**द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानंवृक्षं परिषश्वजाते** । अथ भवतां विशिष्टाद्वैतवाददर्शने सामान्यतस्तु प्रत्यगात्मपरमात्मनोरभेद इव प्रतीयते ? सत्यं प्रतीयते, किन्तु त्वादृशानामल्पज्ञानाम् । श्रुतिसारपारदृश्वनां तु त्रिकालमपि नहि, यतोहि वयमौपनिषदाः श्रीमदाद्य जगद्गुरुरामानन्दाचार्यपदपद्मपरागपीयूषपायिनः प्रत्यगात्मपरमात्मनोर्भेदं निश्चिन्वानाः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भेदभक्तिमेव समग्रेऽस्मिन् दर्शने दर्शयितुं यतामहे। अथ भवतान्नये का नाम व्युत्पत्तिरद्वैतशब्दस्य ? द्वयोः भिन्नयोः संत्तयो भावोः द्विता द्विशब्दात् भावे तल् प्रत्ययः ततस्टाप, द्वितैव द्वैतं स्वार्थे द्विताशब्दात्दण् प्रत्ययः, एवं प्रकृत्यर्थप्रकारीभूतभावप्रत्ययार्थत्वात् द्वैतशब्दः द्वित्वावच्छिन्ननिष्ठभेदत्वावच्छिन्नभेद बोधकः, न विद्यते द्वैतं भेदबुद्धिर्यस्मिन् तदद्वैतं ब्रह्म। अथ कथं भवता बहुब्रीहिसमासेनाद्वैतशब्दो व्याख्यायते कथं न तावत् तत्पुरुषपरतया न द्वैतमद्वैतमिति हि व्याख्यायते ? इति चेच्छ्रूयतां अस्मद्व्याख्याने श्रुतिरेवमूलं, माण्डुक्यश्रुतिर्हि परमात्मानमद्वैत शब्देनाभिधत्ते **शिवमद्वैतं मन्यन्ते** इत्थं नास्ति द्वैतं जगत्प्रति स्वसंततिनिरूपितैकत्वविरूद्धभेदभावो यस्मिन् तथाभूतमद्वैततत्वं रामाभिधं परब्रह्मैव। अमुष्मिन्नञ् तत्पुरूषपरकार्थव्याख्याने न विद्यते कुत्रापि श्रुतिषु मूलं तस्मात् तं पक्षं नाद्रियामहे वयं श्रुतिसिद्धान्तोपजीविनः श्रुतिसेतुपालकश्रीरामपदपद्मपराग-भूषितभालपट्टिकाः रामानन्दीयश्रीवैष्णवाः ।।श्रीः।।

अथेदानीं विशिष्टाद्वैततत्वं परब्रह्मैव तत्किञ्चिद्रूपेण शिष्यं प्रति प्रवक्तुमुपक्रमते। उपनिषदोऽस्याः प्रथममन्त्रे शिष्येण मनःप्रणवाक्चक्षुःश्रोत्रप्राणानां नियम-नकतृतत्प्रेरयितृविषयिणी जिज्ञासा समुपस्थापिता, तत्प्रेरयितुः स्वरूपं निरूप्य पुनस्तत्र परमपुरुषार्थसेवधौ परस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वं शिष्येण चर्चाविषयीकृतानां पञ्चानामपि वाङ्मनोचक्षुःश्रोत्रप्राणानां प्रसरासम्भावनं सम्विभावयन् क्षराक्षरयोर्ब्रह्मत्वनिषेधपुरःसरं क्षराक्षरातीतं परमं ब्रह्म निश्चायत्यन्योगव्यवच्छेदेन पञ्चभिर्मन्त्रैः यदित्यादिभिः। तत्र प्रथमं ब्रह्मणो वागगोचरतां प्रतिपादयन् प्राह यदिति—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। ४ ।।

यत् वाचा अनभ्युदितम्, येन वाक् अभ्युद्यते, तत् एव त्वम् ब्रह्म विद्धि यत् उपासते इदम् इदम् (ब्रह्म) न, इत्यन्वयः—

यत्, वर्णितचरं ब्रह्म, वाचा कर्मेन्द्रियभूतया जडप्रकृत्या वाण्या, अनभ्युदितम अभ्युदितभिन्नं नोक्तमिति यावत्, चैतन्यमन्तरेण केवलया जडया तस्य व्याहरणासम्भवात्। येन, चैतन्यघनेन वाक्, वाणी चेतनावती सती अभ्युद्यते, स्वयमेवोक्ता ख्यातार्था च भवति। अत्र कार्यसौकर्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृभूतवाचो व्यापाराविवक्षणेन कर्मकर्तरि लट् लकारः। तत् एव, वागधिष्ठानचेतनानतिरिक्तमिति भावः, त्वम् साधकः शिष्यः स्वात्मनः सेव्यतया ब्रह्म परब्रह्मतत्वं विद्धि, जानीहि। यत् यच्छब्दोऽयं सर्वनाम अतः निसर्गात् पूर्वचर्चितयोः विदिताविदितयोः क्षराक्षरयोः अचिच्चितोः परामर्शकः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वनाम्नां पूर्वपरामर्शकत्वं स्वभावात् इति वैय्याकरणराद्धान्तानुरोधात् । फलतः यत् क्षरं सामान्या उपासते सेवन्ते विशिष्टाः केचन यच्छाब्दबोध्यं अक्षरम् उपासते, आराध्यतया समवधारयन्ति । इदं प्रत्यक्षवर्तमानं संसाररूपं क्षरं, यद्वा इः कामः तं ददाति इति इदं कामसंकल्पदातारं क्षरसंज्ञमचित् इदं साधकानां दृश्यमानम् अक्षरं, यद्वा इं कामं द्यति खण्डयति तथाभूतं न ब्रह्मेति भावः । अभ्यां चिदचिद्भ्यां परतरं ब्रह्म इत्याशयः ॥ श्रीः ॥

अथ जडा वाणी इदं ब्रह्म कामं न वक्तुं शक्येन्नाम, परं समनस्कबुद्धिस्तु बोद्धुं शक्नोत्येव इत्यत आह—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। ५ ।।

यत् मनसा न मनुते, येन मनः मतम् आहुः, तत् एव त्वम् ब्रह्म विद्धि, यत् उपासते इदम् इदम् न, इत्यन्वयः ।

यत्, पूर्वनिर्दिष्टं ब्रह्म मनसा, सङ्कल्पवृत्या उपलक्षणविधया बुद्ध्या च न मनुते, न बोद्धुं शक्यते, येन करणभूतेन मनः अन्तःकरणं मतम्, मननस्त्यस्मिन् इति मतम् निष्ठान्तमत शब्दात् मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः मननक्रियायुक्तमिति भावः । नहि चेतनामन्तरेण मनः किमपि संक्ल्पयितुं पारयति । आहुः, कथयन्ति ऋषयः इति शेषः । तदेव, मनसोऽपि मननसामर्थ्यमूलं ब्रह्म, स्वाराध्यं त्वं, विद्धि निश्चिनु, यत्क्षरमक्षरं अचिच्चित् उपासते, चिन्तयन्ते इदम् इदम्, व्याख्यातपूर्वं द्वयमपि न, नैवेष्टदैवतम् ।।श्रीः।।

अथ किमस्मदाराध्यं वयं चाक्षुषसाक्षात्कारविषयं कर्तुं शक्नुमः इत्यत आह—

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।६।।

यत् चक्षुषा न पश्यति येन, चक्षूंषि पश्यति, तत् एव त्वम् ब्रह्म विद्धि यत् उपासते इदम् इदम् न इत्यन्वयः । यत् परमेश्वरतत्वं, जनः चक्षुषा, ज्ञानेन्द्रियप्रमुखेण चेतनारहितेन न पश्यति न साक्षात्करोति नहि खल्वल्पज्योतिषा प्राकृतनेत्रेण परमात्मा साक्षात्कार्यः, यथार्जुनं प्राह भगवान् श्रीकृष्णः **न तु मां शक्यसे दृष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा** येन, चक्षुरधिष्ठितेन करणेन चक्षूंषि नेत्राणि अत्र बाहुलकात् एकवचनार्थे बहुवचनं, अथवा आदरार्थे बहुवचनम् । एवमेव भगवदधिष्ठितं तत् परमादणीयं पश्यति दृष्टं भवति, अत्रापि कर्मर्कृप्रयोगः, यद्वा पश्यति चराचररूपं स्वविषयी करोति तदेव ब्रह्म

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमाराध्यं तं विद्धि । यत् उपासते, संसारजीवात्मानौ भजन्ते इदम्-इदम् न, द्वाभ्यां विलक्षणं ब्रह्म ।।श्रीः।।

अथ स्यान्नाम चक्षुरगोचरं तत्तत्वं, परं गुरूमुखात् श्रुतिवाक्येभ्यश्च श्रोतुं शक्यते तत् ? अतो निषेधवचनं प्राह—

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदँ श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।७।।

अन्वयस्तु पूर्ववत्, यद्ब्रह्म श्रोत्रेण श्रवणोन्द्रियेण न शृणोति नाकर्णयितुं शक्नोति, तस्य शब्दागोचरत्वात्, येन प्रकृष्टोपकारकेण इदं श्रोत्रं श्रवणेन्द्रियं श्रुतम्, श्रुतवत् आहुः, तस्यैव सामर्थ्यात् व्योमांशः श्रोत्रमालम्बते इति भावः । तदेव शब्दनियन्तारं ब्रह्म परमसेव्यं तं विद्धि । यदुपासते इदं इदं न, ततो विलक्षणं ब्रह्मेति भावः ।।श्रीः।।

अथ श्रवणागोचरत्वेऽपि तत् घ्रातुं शक्यते किम् ? अतः प्राहः,

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।८।।

अन्वयस्तु पूर्ववत्—

यद् ब्रह्म प्राणेन घ्राणद्वारकवायुना न प्राणिति, तन्निरपेक्ष एव जीवति इति भावः, यद्वा न प्राणिति नैव घ्राणविषयो भवति अत्रापि कर्मकर्तृप्रयोगः । येन चैतन्यप्रदेन प्राणः प्राणवायुः प्रणीयते प्रतिनाडीमुखं प्रेश्यते, तदेव सकलेन्द्रियनियन्तारं ब्रह्म परमवर्धनशीलं वेदान्ततत्वं त्वं साधकः विद्धि । दासभूतः सन् स्वामिरूपेण सेव्यतया समवगच्छ । यत् प्रागुक्तं क्षराक्षरम् अचिच्चिती उपासते फललिप्सया सर्वे सेवन्ते, इदं न इदं द्वयमपि अचि च्चिती न ब्रह्म । तदेव द्रढयितुं भूयः प्राह—इदं न, आभ्यां क्षराक्षराभ्यां व्याकृत प्रकृतिभ्यां विलक्षणं ब्रह्म । मन्त्राणामालस्याभावात् साधकहृदयेषु तत् तत्वस्य दृढतया निविवेशयिशया अभ्यासोऽयम् । ईश्वरस्यानन्दमयत्वात् नैव पुनरावृत्तिः ।

इत्थम्—

सर्वेन्द्रियनियन्तारं सर्वशक्तिसमन्वितम् ।
क्षराक्षरातीतमिदं रामाख्यं ब्रह्म तद्भज ।।श्रीः।।

।। इति प्रथम खण्डः ।।

।। श्री राघवःशन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। द्वितीयखण्डः ।।

अथ प्रथमखण्डे आचार्येण मन्त्रैरष्टाभिः बोधितब्रह्मतत्वविदितयाथातथ्यो गृहीतसद्गुरूपादमद्मः कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानः सुखमन्वभूदन्तेवासी । एवमहं ब्रह्मवेदेत्यात्मानं सर्वज्ञं मन्यमानं शिष्यं निर्दर्पं चिकीर्षुराचार्यः परमात्मनः सामग्र्येण बोधागम्यत्वं प्रतिपादयन् प्राह—सौम्य ! यमनिर्वचनीयं विशिष्टाद्वैततत्वं श्रीराममद्वैतं ब्रह्म निःशेषेण वेदितुं न प्रबभूवुर्महर्षयोऽपि तं बुभुत्सुज्ञानागोचरं परमात्मानं ज्ञातं मन्यसे, वस्तुतो वत्स ! वयमपि तं सम्यग् न जानीमः । श्रुतयोऽपि तं निःशेषेण न वक्तुं प्रभवन्ति, अतो मया मन्त्राष्टकेन यत्किञ्चिदुक्तं तदनलप्रादेशमात्रम् । एतावता ज्ञानेनैव यदि त्वमात्मानं शान्तजिज्ञासं कलयसि चेन् मोघं ते जीवत्वं, जीवस्य हि तत्वजिज्ञासैव लक्ष्यं, यथा प्राह भागवते श्रीसूतः—**जीवस्य तत्व जिज्ञासा नार्थो यस्येह कर्मभिः** इदमेवान्तरं खलु जन्तुजीवयोः । जन्तुर्नाम जायते जायमानः सन्नज्ञातपरमात्मतत्वो म्रियते, जीवोनाम जीवति जानकीजीवनाय परस्मै तत्वभूताय रामाय यस्तथाभूतः । सम्प्रदानार्थेऽच् प्रत्ययो जीवधातोः । तथा हि-ब्रह्मजिज्ञासा-शून्यत्वेसति गृहीतजन्मत्वे सत्यज्ञानतिरोहितचेतनत्वम् जन्तुत्वं । जीवत्वं नाम तत्वजिज्ञासुत्वे सति गृहीतजन्मत्वे सत्यज्ञानाभिभूतचेतनत्वम् । अतस्त्वया नैतावतेव बोधेन सन्तोषः कर्तव्यः यावत्परमात्मपदं मीमांसनीयं, सर्वमिद् लक्ष्यीकृत्यप्राह यदीति—

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणोरूपं ।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमाँस्यमेव ते मन्ये विदितम् ।।१।।

यदि त्वम् इति मन्यसे सुवेद अपि नूनम् ब्रह्मणः रूपम् दभ्रम् एव, अस्य यत् त्वम् अस्य यत् देवेषु (तत् दभ्रम् एव) अथ नु मन्ये ते विदितम् मीमांस्यम् एव, इत्यन्वयः ।

यदि, यद्यपि ते ब्रह्मज्ञानं नास्ति तथाप्यात्मानं ब्रह्मज्ञानिनं विजानासि चेत्, इत्यर्थः, त्वं युष्मत्पदवाच्यः साधकः इति, इत्थं मन्यसे, अभिमन्यसे, आत्मनि ब्रह्मज्ञानं कलयन् साभिमानो भवीसीति भावः । अभिमानस्य कः प्रकारः ? इत्यत आह-सुवेद, शोभानतया ब्रह्म जानामि यद्वा सु शब्दः ब्रह्मवाचकः तदेव वेद्मि इत्याकारकः । ननु यदि ब्रह्म जानन्नात्मानं ब्रह्मज्ञं मन्ये तदा किमपराधयामीत्यपेक्षमाणं प्रत्याह-अपि, अपिस्त्वर्थः हार्दमेतत्यदपराध्यसि नहि किमपि मह्यं, स्वस्मै त्वपराध्यस्येव यतो हि ज्ञानिनि ज्ञातृभावो नावसिष्ठति यदि तिष्ठति तदा न सः ज्ञानी, तस्मिन् परावरेशे ब्रह्मणि अपरोक्षानुभूतिविषयतान्नीते स्वत एव अहं भावो व्युपगतो भवति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यतस्त्वयि ब्रह्मज्ञभावो वरिवर्त्यतस्त्वं नैव सामग्रयेण जानासि। नूनम् निश्चयेन ब्रह्मणः, परमेश्वरस्य रूपम् स्वरूपं तत्वं वा दभ्रम्, अत्यन्तमल्पम् एव निःसंदेहं वेत्थ जानासि। परमात्मज्ञानं हि निरवधि, यदि त्वमात्मप्रज्ञया तदप्येवं भाषयसे तदा निश्चिनोमि यत् तावकं ज्ञानं नास्ति निरवधि, निरवधिमहिम्नो न केनापि पारं गन्तुं शक्यते। केचन रूपशब्देनात्र ब्रह्मणोऽनुभवगम्यविशेषाकृरिति व्याचक्षते। तन्नोचितं भगवतः प्रत्येकरूपस्य नित्यतया दभ्रादभ्रत्व कल्पनानौचित्यात्, अस्य एतस्य ब्रह्मणः, यद्वा अकारः रामचन्द्रः तस्य यत्, सर्वानुभवसिद्धम् स्वरूपं त्वम्, त्वयि त्वम् शब्दोऽत्र युष्मच्छब्दस्यसप्तमयन्तैकवचनार्थः। अथ कथं ? त्वं शब्दस्य सप्तक्यैकवचनान्ततया विपरिणामः देवेष्विति सप्तम्यन्तशब्दानुरोधात्। त्वं शब्दः कथं त्वयीत्यर्थपरः ? इति चेतच्छृणु **सुपां सुलुक्** पा. अ. ७-१-३९ इत्येनन ङीविभक्तेः सावादेशे **त्वाहौ सौ** पा. अ. ७-२-९४ इत्यनेन स्वादेशे **ङे प्रथमयोरम्** इत्यनेन सोरमि पूर्वरूपे त्वमिति सिद्धम्। सत्यपि विभक्तिव्यत्यये नार्थव्यत्ययः तस्मात् श्रूयमाणोऽपि त्वं शब्दः सप्तम्यन्तार्थसमर्पकतया त्वदभिन्नाधिकरणरूपामर्थमेवाभिधास्यति। एवमस्य परमात्मनः यदन्तर्यामिरूपं त्वं शब्दाभिधेये त्वयि तिष्ठति तदपि दभ्रमेव, यतो हि इदं रूपं तु त्वद् गुहानुरूपं स्वल्पाकारं, वस्तुतः परमात्मनस्तदपि किञ्चदलौकिकरूपं यत्र प्रतिलोमं कोटिकोटिब्रह्माण्डानि विजृम्भन्ते। ननु अस्य त्वमित्यत्र किमनेन त्वयीतिविपरिणामेन त्वं शब्दस्तिष्ठतु प्रथमार्थ एव ? मैवं त्वं पदाभिधेयस्य जीवस्य परमात्मपार्थक्येन कण्ठतः प्रोक्तत्वात् **द्वासुपर्णा सयुजा सखाया वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता** एवमादीनि सन्ति सहस्राधिकानि श्रुतिवचनानि प्रमाणानि। न च अशांशिभावमाश्रित्य जीवब्रह्मणोः त्वंपदस्य प्रथमान्ततयैव स्वीकारे न दोष इति वाच्यम्। अंशशब्दस्य शकलार्थस्वीकारे परमेश्वरस्याखण्डतैव छिन्नमूलास्यात्। अथ अंशशब्दस्य अंशसदृशे लाक्षणिकप्रयोगे न दोषः। एवं हि सोपाधिचैतन्यम् अंशः निरूपाधिचैतन्यम् अंशी उपाधिभङ्गे अंशांशिनोरैक्यमिति चेन्न, तत्र सनातनशब्दप्रयोगेण तस्य च नित्यार्थकतया अंशस्योपहितचैतन्येऽनिष्टत्वस्य श्रीगीतासु भगवतैव घोषितत्वात्। तथा हि **मैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः** अथांश शब्दस्य पुत्रपर्यायतया व्याख्याने तत्र सनातनत्वस्य चोपपत्तौ समस्तदोषपरिहारे सम्भवेऽपि अंशशब्दस्य नितयपुल्लिंगत्वात् यच्छब्देन तत्परामर्शाभावात् यच्छब्दस्य विशेषणतया रूपमेवाध्याहर्तव्यम्। एवं त्वं शब्दः सप्तम्याविपरिणमय्य त्वयीत्यर्थे वाचकतया स्वीकरणीयम् इत्यलमतिपल्लवितेन। अस्य उपदेष्टनयनगोचरस्य अकारवाच्यस्य भगवतो निखिलनयनाभिरामश्रीरामस्य देवेषु इन्द्रादिषु, केचन देवशब्देन चतुर्दशकरणाधिष्ठानदेवेषु इत्यर्थं व्याचक्षते,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तदस्वाभाविककल्पनाप्रसवतया नादरणीयम्। इन्द्रादिदेवेषु खलु भगवतः विभूतिरूपं विराजते । तत् दभ्रम् एव, तदपि रूपमत्यन्तमल्पमेव, भगवतो हि श्रीविग्रह एव समस्त देवनिवासस्य बहुत्र शास्त्रेषु चर्चितत्वात् । अथ, अनन्तरम् विदितप्रयत्याख्यानानन्तरमितिभावः नु, निश्चयेन मन्ये, तावकीनं मनोभावं समीक्ष्य निष्कर्षयामि इति भावः, किं निष्कृष्टमित्यत आह–ते विदितम् अत्र **कर्तृकर्मणोः कृति** इति सूत्रेण कर्तरि षष्ठी, अद्यावधि महान्तं परिश्रमं विधाय त्वया कर्तृभूतेन यदपि ब्रह्मणोरूपं विदि कर्मतां नीतं विज्ञातमित्यर्थः तन्नैव परिपूर्णम्, इतोऽप्यधिकं ज्ञातव्यम्। अस्मादिदं मीमांस्यं मीमांसाकोटौ नेयं। कस्य साधनप्रत्यवायस्य परिणामेन त्वया ब्रह्मणः स्वल्पं रूपमभिविज्ञाय स्वकीयसाधना परिपूर्णा समञ्ज्यकारि । एव, क्रियाविशेषणतया पदमिदमत्यन्तायोगं व्यवच्छिनत्ति परमात्मनो मीमांसामतिरिच्य कतमोऽपि विषयो नो मीमांस्येतेति विधिः ।।श्रीः।।

एवमाचार्यमुखात् कात्स्न्येन ब्रह्मणो विदिकर्मविषयताभावमाकर्ण्य स्वस्मिन्नरोपयिष्यणामब्रह्मज्ञत्वाभिमाननिरसनपटुसद्गुरूवचनभङ्गिमानमनुभूय भूयः श्रद्धासमवनतकन्धरः शिष्यः छलशून्यतया स्वकीयमनोदशां निसर्गतोऽनभिभूतस्वान्तः शान्तः प्राञ्जलिः प्राह छात्रः—

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ।।२।।

अहम् सुवेद इति न मन्ये, न वेद इति नो (मन्ये) च वेद नः यः तत् वेद (सः) तत् वेद न वेद इति न च वेद इत्यन्वयरीतिः ।

इदानीं शिष्यः निष्कपटमनस्तया स्वकीयसाधनापरिस्थितिं विवृण्वन् ब्रह्मणोऽनिर्वचनीयतां सूचयति। यन्मया भवच्छ्रीमुखकमलनिगलदुपदेशपीयूषं पेपीयमानेन सावधानेनापि ब्रह्मणः सामग्र्येण तत्वं ज्ञातुं कथं प्रभूयेत ? अतः यत्किञ्चिदंशतो ज्ञातं तस्माद् ब्रवीमि जानामीति, परञ्च साकल्येन न ज्ञातं तस्माद् ब्रुवे न जानामीति, ज्ञानं यत्किञ्चिदंशेन तत्प्रतियोगिताकाभावः तदवच्छेदेन, अत आह—अहम्, ब्रह्मज्ञानविषये क्रियमाणयत्नसाधकः सुवेद, शोभनतया जानामि, शोभनतत्वञ्चात्र ब्रह्मज्ञानस्य सकलांशविषयत्वम्, इति न मन्ये, न स्वीकरोमि । यतो हि व्योमव्यापिनस्तस्य समग्रज्ञानं ह्रसीयसा जीवेन परिच्छिन्नवृत्तिमस्तिष्के कथं धारयितुं शक्यम् । अत्र सूपसर्गस्य वेदेति क्रियापदेन **सहसुपा** पा. अ. २-१-४ इत्यनेन समासः । न वेद न जानामि इति, इत्थमपि नो, नाङ्गीकरोमि, च चकारोऽयं यतो हीति पदार्थः, यस्माद्धेतोः मया ब्रह्मज्ञातं तस्मादहं तदपलपितुं न शक्नोमि इति निष्कृष्टार्थः । वेद वेद्मि ब्रह्मतत्वमिति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शेषः । नन्वेकस्मिन् विषयिणि एकस्मिन्नेव काले कथं ज्ञानाज्ञानरूपं विरूद्धधर्मद्वयावगाहि विषयद्वयं स्थातुं शक्येत ? अतः प्राहोत्तरार्धेन नाहमपलपामि तवास्मिन् विरूद्धधर्मद्वयविषयानु भवे का विनिगमनोति चेत्, मत्सजातीयानुब्रह्मानुभवप्रतीतिरेव विनिगमना, यथा नः, अस्माकम् भवच्छिष्याणां मध्ये यः, कश्चन गुणनिर्धार्यमाणसाधकविशेष इति भावः तत् तत्पदार्थभूतं ब्रह्म वेद, अपरोक्षानुभवविषयं करोति तादृक् कृतब्रह्मसाक्षात्कारः तत, पूर्वोक्तं वेद, जानाति । किं वेद इत्यपि आह- न वेद इति न अहं न जानामि इत्यपि नहि, च यतो हि वेदतात्पर्यमेतत् यत् ब्रह्मतत्वं किमपि जानन्नपि तस्यावाङ्मनोगोचरत्वात् पूर्णतया तन्नजानामि इदं विरोधि धर्मद्वयं ज्ञानाज्ञानरूपं कोऽपि ब्रह्मज्ञ एवनिश्चेतुं शक्नोति ।।श्रीः।।

इत्थं शिष्यप्रतिवचनं निशम्य तं निर्गलिताभिमानं विभाव्य तेनैव प्रतिपादितां ब्रह्मणोऽनिर्वनीयतां समर्थयमानः सद्गुरूः प्रसन्नः प्राह -

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ।।३।।

यस्य अमतम् तस्य मतम्, यस्य मतम् सः न वेद, विजानताम् अविज्ञातम् अविजानताम् विज्ञातम्, इत्यन्वयः ।

अत्र मन्त्रे चतुर्षु षष्ठ्यन्तप्रयोगेषु **कर्तुकर्मणोः कृति** पा.अ.२-३-६५ इति सूत्रविहिता तृतीयार्थे बोध्या कर्त्तरि षष्ठी । अत्र सद्गुरूः शिष्यं प्रीणयन् तस्य ब्रह्मज्ञानविषये निर्गलिताभिमानतामेव मण्डयति । वत्स ! साधूत्तरितम् यस्य अमतम्, येन कर्त्रा ब्रह्म मननविषयीकृतमित्यभिमानो न धारितः, तस्यैव तेन कर्त्रैव मतं ब्रह्मणः मननं कृतं ब्रह्म ज्ञातं वा । यस्य अमतम्, येन कतृभूतसाधकेन ब्रह्म मननविषयतामापादितम् इत्थमभिमतं सः अहं ब्रह्मज्ञातवानिति कृताभिमानः न वेद, ब्रह्म न जानाति । यतो हि कर्तृत्वाभिमानशून्य एव तज्ज्ञो भवति तस्मिन् हि सेव्यता समवधारिते स्वीकृते च सेव्यसेवकभावसम्बन्धे सम्बन्धनिबन्धने चैकत्वे द्रढीकृते ज्ञेयज्ञातृभावो हि नितरां विस्मर्यते, आञ्जस्येन तत्र संसारसम्बन्धभिमानतिरोभावात् । ब्रह्मणो बोधात् प्राक्संसारसम्बन्धकल्पना तस्मिन् बुद्धे स्वरूपतः संसारो नैव तिरोधातुं शक्यः, न वा तस्य प्रत्यक्षतो मिथ्यात्त्वं लपितुं शक्यम् । तस्य हि भगवद्रूपताया ऋषिभिर्बहुत्र कण्ठरवेण प्रतिपादितत्वात् **जगत्सर्वं शरीरं ते** इति वाल्मीकीयरामायणे ब्रह्मणो भगवन्तं रामं प्रतिकथनम्—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ।।

(श्रीमद्भागवत, ११/२/४१)

इति श्रीभागवते कवेरूक्तिर्निमिं प्रति एवमादीनि आर्षवचनानि प्रमाणानि । न च संसारस्य भगवद्रूपतायां वेदाप्रामाण्यमिति वाच्यं, पुराणानां वेदमूलकत्वात् । वेदमन्त्रा अपि बहुत्र प्रामाण्यं प्रस्तुवन्ति । विस्तरभिया इहैक एव मन्त्रः प्रामाण्यमीमांसायामुपन्यस्यते । तथा हि वाजसनेय माध्यान्दिनीशाखाध्यायिनो मनन्ति **नाभ्या आसीदन्तरिक्षँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँऽऽन् अकल्पयन् ।** इत्थं श्रुतिस्मृतिनिर्णीतं जगतो ब्रह्मरूपत्वं श्रीमानसकृदपि समचिख्यपत्—

सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवन्त ।।

(मानस ४-३)

अत्रेदमवधेयम्—यत् संसारस्य भगवद्रूपत्वेऽपि निर्णीते जीवो भगवद्दास एव अतो जगद् रूपं भगवतः । किन्तु मनुष्यो निवासः तथा चाह श्रीमच्छुकाचार्यः **मनुर्मनीषामनुजो निवासः** एवं विधधारणायां सम्बन्धाद्वैतं प्रतिपन्नस्य कर्तृत्वाभिमानः सुतरां समाप्त इति विरम्यते व्याख्यानात् । विजानतां ब्रह्मविज्ञानाभिमानवताम् अविज्ञातम्, नैव विशिष्टज्ञानविषयीभूतं, समासेऽपि नञार्थश्रौतत्वात् क्रियायामेवान्वेति । अविजानताम्, न विशेषण जानन्तीत्यविजानन्तः तथाभूतानामब्रह्मज्ञं मन्यमानमनसामितिभावः । विज्ञातम्, विज्ञानविषयीभूतं, यद्वा पूवार्धे यत् शब्दः भावनिष्ठान्ततया मान्यता परकः, तस्मिन् पक्षे च व्याख्यानमित्थं यत्—यस्य साधकस्य मतं ब्रह्मविषये काचित् सुनिश्चितमान्यता तेन न ज्ञातं ब्रह्म, यस्य अमतं दैन्यपूर्णचेतस्त्वात् नैव कश्चनाग्रहः तस्यैव मतमु-उत्तरार्धं पूर्ववत् ।।श्रीः।।

एवं ब्रह्मज्ञाने ज्ञातृत्वाभिमानं निरस्य तत्र सद्गुरूपदेशद्वारं शास्त्रमेव तज्ज्ञानमाध्यमिति द्रढयन् प्राहाचार्यः—

प्रतिबोधविदितं मतममृत्तत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विघया विन्दतेऽमृतम् ।।४।।

प्रतिबोधविदितम् मतम् (अनुतिष्ठन्) अमृतत्वम् विन्दते, हि आत्माना वीर्यम् विन्दिते विद्यया अमृतम् विन्दते, इत्यन्वयः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदानीमाचार्यः ब्रह्मज्ञानमहिमवर्णनच्छलेन तत्र शिष्यप्रवृत्यर्थं ब्रह्मज्ञानफलं विधत्ते प्रतिबोधेत्यादिना–प्रतीतो बोधः प्रतिबोधः गुरूपदेश इति भावः, तेन विदितं ज्ञानविषयीकृतं, मतम्, ब्रह्मसिद्धान्तमनुतिष्ठन् अमृतत्वम्, मृताः मरणधर्माणो मनुष्याः बद्धप्राणिन इति यावत् तेषां मृतानां भावः गुणकर्म वा इति मृतत्वं तद्भिन्नत्वम् अमृतत्वत् संसाराभावरूपं भवबन्धनमोचनमिति यावत्, विन्दते लभते सद्गुरूपदेशेन स्वाचार्यसाधनपरम्परया ब्रह्मज्ञानमतमनुष्ठाय मानवो भवबन्धनात् विमुच्यते इतिः व्याख्यार्थ। यद्वा प्रतिष्ठितः बोधः यस्मिन् स प्रतिबोधः वेदस्योपनिषदो भागः तेन विदितं ज्ञातं पुनः मतं मननविषयीकृतं तादृशममृतत्वं, भवबन्धमोकं, विन्दते प्राप्नोति हि निश्चयेन, श्रुतीनां हि स्वतःप्रामाणस्य सकलवेदान्तवित् सम्मतत्वात् । यद्वा प्रतीक्षितो बोधः प्रतिबोध तेन विदितं तादृशं मननमुपागतम मृतत्वपर्यायं ब्रह्मैव विन्दते, शिष्यो हि चिरकालनिश्छलसेवया स्वाचार्यं समाराध्य सोत्कण्ठचातक इव स्वगुरुस्वातिजलधरसूपदेशस्वातिजलधारां प्रतीक्षते, एवं सुचिरप्रतीक्षाप्राप्तः श्रवणमुपागतः ब्रह्मबोधः नातिचिरेण ब्रह्म वेदयतीति तात्पर्यम् । तथैव जगौ गीतायां श्रीकृष्णः श्लोकद्वयेन—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ।।
यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्षस्यात्मन्यथो मयि ।।

(गीता ४/३४,३५)

यद्वा प्रतिश्रुतो बोधः प्रतिबोधः, तेन विदितम् । अतोऽग्रे पूर्ववत् शिष्याय प्रतिश्रुत्य, हि समुपदिशन्नाचार्यः ब्रह्म वेदयितुं प्रभवति । यद्वा प्रतिज्ञातो बोधः प्रतिबोधः स्वानुभूतश्रुतिसिद्धान्तः, तथा हि बोधः स्वसाधनाजन्यानुभवः तमेव प्रतिगतः प्रतिबोधः तेन विदितं, शेषं प्रथमव्याख्यानवत् । श्रुतिसिद्धान्तो हि स्वानुभूतिमन्तरेण निगदनेन शब्दतो नैवाज्ञानावरणं भिनत्ति । यत्तु बोधं बोधं प्रति प्रतिबोधमिति वीप्सया व्याचक्षते तदनुचितं, ब्रह्मबोधस्याखण्डत्वात् वीप्सायास्तत्रानवकाशात् । न च ज्ञानस्य क्षणिकत्वपक्षस्वीकार इति वाच्यम्, सौगतानां युष्माकमाकाशपुष्प इव मते साराभावान्मत, तन्निराकृतमेव । तस्मात् प्राक्तना एव व्याख्यानप्रकाराः ज्यायांसः । एवं स्वानुभूतश्रुतिसिद्धान्तविदितं ब्रह्म समाम्नाय नचिरादमरपदं प्राप्नोति साधकः । ननु कथं भो ! स्वसिद्धान्तविरुद्धं व्याचष्टे भवान् भवतो नये मोक्षस्यानादृतत्वात् सगुणोपासनायां दास्यभंगभिया तदनुपयोगाच्च जन्मैव कथं न चायते । नेत्थं वाच्यं, नाहं सिद्धान्तं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरूणद्मि तत्रामरपदं श्रीमच्चित्रकूटविहारिमैथिलीहृदयललाम श्रीरामपदकमलं तत्प्राप्तिस्तूभयविधवेदान्ति सम्मतैव । अथ तस्मिन् परमात्मनि प्राप्ते किं स्यात्, किं तंल्लब्ध्वा साधकः साधनात् विरमति, उताहो तत्रैव रमते, आहेस्वित् ततोऽप्याधिकमभीप्सुः प्रयतते ? इत्यन्तरप्रश्नं समाधित्सुराह—ब्रह्मणि प्राप्तेऽपि साधको भजनं न जहाति । अपि तु सः परमात्मा स्वभक्तभजने सहयोगं ददाति । तथाहि आत्मना, परमात्मना भजनक्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकेण करणकारकीभूतेन कौशल्यासूनुनेति भावः । वीर्यम् भजनपराक्रमं विन्दते लभते, भगत्कृपया हि साधकः तादृशं स्वात्मबलं प्राप्नोति येन स्वत एव भजनबाधकान् विघ्नान् विहन्तुं क्षमते । अत्र व्याख्याने प्रहलादविभीषणद्रौपदीमीरातुलसीदासचरित्राण्यनुसंधेयानि । यद्वा विन्दतेऽवीर्यमित्यत्राकार प्रश्लेषः, तथाहि विन्दते अवीर्यमितिः विग्रहः **अकारो वासुदेवः अक्षराणामकारोऽस्मि** इत्यनुशासनात् । एवमस्य सर्वव्यापकस्य विभूम्नः प्रापकं वीर्यं प्रेमतत्वरूपमित्यवीर्यं तच्च आत्मपर्यायवाचिना परमेश्वरेणैव विन्दते लभते । स आत्मा कथं प्राप्येत ? अत आह विद्यया, विङ्क्ते विचारयति ब्रह्मतत्वं यस्यां सा विद्या वेदान्तापरनामधेया ब्रह्मविद्या तया करणभूतया अमृतं मर्त्यभिन्नं अजरममरमविनाशिनमशोकममोहं सच्चिदानन्दसन्दोहं परब्रह्माभिधानं श्रीरामं विन्दते लाभविषयं करोति अपूर्वतया प्राप्नोतीति भावः । विद्लृ लाभे इत्यस्माद्धातोः **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** इति सूत्रेण क्रियाविनिमये द्योत्ये ह्यात्मनेपदं क्रियाविनिमयश्चात्र सततमात्मकामे भगवति नित्यप्राप्तिरूपधर्मस्य परमेश्वरकृपया जीवे विद्यमानतारूपः । निष्कर्षश्चात्र—श्रुतिसम्मतोपदेशेन परिज्ञातं समाम्नातं ब्रह्म जीवः प्राप्नोति । केवलं ब्रह्मज्ञानेन न सन्तोष्टव्यं तत् प्राप्तयेऽपि प्रयासः करणीयः इति ध्वन्यते । स कथं प्राप्तुं शक्यः परमेश्वरः, यश्च कोटिवर्षपूगपर्यन्तं तप्यमानैरपि मुनिभिर्दुष्प्रापः ? इति शङ्का समाधातुमात्मनेत्युत्तरार्धः, यदा परमात्मा सद्गुरोःश्रुतोपदेशेन ज्ञायते समाम्नायते च तदा स एव स्वप्राप्तिक्रियायां प्रकृष्टोपकारको भूत्वा जीवाय निजवशीकरणमहौषधं प्रेम प्रापयति स्वयं च वेदान्तविद्यया विद्यते । ननु वेदान्तेन ब्रह्म ज्ञेयं भवति **वेदान्तवेद्यं विभुम्** इति मानसानुशासनात्, अत्र हि वेदान्तलभ्यमिति नोक्तं, सत्यं कर्मभजनप्रतिबन्धकमलनाशे उपासनाभगवद्ध्यानविक्षेपनिरसने ज्ञानं चावरणभङ्गे पर्युपयुक्तं नैव तत् भगवत् प्राप्तौ, अतो विद्यया एतस्य भगवत्प्रेमरूपभक्तिविद्यया इत्येव व्याख्या करुणीया, तथैव जीवः भगवन्तं स्व हृदयललितललामतया लभते ।।श्रीः।।

एवं चतुर्भिर्मन्त्रैर्ब्रह्मज्ञानस्य दुष्प्राप्यतां ब्रह्मणोऽनिर्वचनीयतां च विनिर्णीय सम्प्रति जीवस्य कृते तत्प्राप्तिं विधेयतया निर्दिशति, तदभावे च मानवजीवनवैयर्थ्यवर्णनच्छलेन साधकं विगर्हते इहचेदित्यादिना -

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहादेवीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।५।।

चेत् इह अवेदीत् अथ सत्यम् अस्ति चेत् इह न अवेदीत् महति विनष्टिः, धीराः भूतेषु भूतेषु विचित्य अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृताः भवन्ति, इत्यन्वयः ।

मानवजीवनमिदं ब्रह्मप्राप्तौ तद्बोधे च महदुपकारकम् अतस्तत्, प्रशंसन्ती श्रुतिः साधकमवधापयति । चेत् , यदि पूर्वोक्तभगवत्कृपाप्राप्तप्रेमवशीकरणेन इह, अस्मिन् मानवजीवन एव अवेदीत्, परमात्मानमज्ञासीत् । ननु इतः पूर्वस्मिन् मन्त्रे परमात्मलाभः चर्चितः अतः कथं पुनस्तं विहाय परमात्मवेदनं विविच्यते ? इति चच्छृणु—धातूनामनेकार्थत्वात् विदिरपि विद् ऌ बोधपरः, यद्वा व्यत्ययो बहुलंमित्यनेन विद ऌ धातावेवदादिगणकार्यम् । गणकार्यमनित्यमितिज्ञापकमप्यत्रमानम्। अस्मात् अवेदीत् इत्यस्य अलब्ध इति विवर्णनम् । अथ अनन्तरं सति ब्रह्मणि प्राप्ते सति, मानवजीवनस्य गतार्थता । यद्वा मनुष्यलोके यदि परमात्मानं प्राप्तवान् जीवः तदैव सत्यम्, सते अविनाशिने आत्मने हितम् अस्ति भवति, चेत्, यदि कदाचित् निजप्रमादात् प्रारब्धभजनप्रतिबन्धकप्रत्यूहात् इह, अस्मिन् मानवजीवने न अवेदीत्, न ज्ञातवान् परब्रह्म न लब्धवान् वा तदा महति, महीयसी विनष्टिः, विनाशस्थितिः । एवं धीराः, सुखदुःखसमबुद्धयः साधकाः भूतेषु भेतेषु, नित्यं वर्तमानेषु प्राणिषु प्राणिषु भवन्तीति भूतानि तथा भूतेषु अत्र नित्यत्वद्योतनाय द्विर्वचनम् **नित्यो नित्यानाम्** इतिः जीवनित्यतायां प्रमाणं सप्तमी च औपश्लेषिकी । उपश्लेषश्च द्विधा संयोगात्मकः सामीप्यात्मकश्च परमात्मा हि द्वाभ्यामपि प्रकाराभ्यमनित्यूतान्युपश्लिष्टः तमेव नित्यभावसम्पन्नं समस्तभूतानि संयोगसामप्याभ्यामुपश्लिष्यवर्तमानं विचित्य समन्विष्य अन्तर्यामितया प्रतिप्राणिहृदयनभसि समुदितं नवेन्दुमिव कोशलेन्दुं समवधार्य, अस्मात् दृश्यमानात् लोकात् मर्त्यलोकात् प्रेत्य प्रकर्षेण इत्वा सम्मानपूर्वकं भगवत्प्रेषितविमानेन स्वसुखं प्रारब्धपतितकलेवरपरिहारपूर्वकं साकेतं गत्वेति भावः । अमृताः, प्राकृतजननमरणरहिताः भगवन्नित्यपरिकराः इति भावः भवन्ति, समधिकृतभगवद्कैङ्कर्यसत्तया संयुक्ता सम्पद्यन्ते ।।श्रीः।।

।। इति द्वितीयखण्डः ।।

।। श्री राघवःशन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। तृतीयो खण्डः ।।

इत्थं खण्डद्वयेन ब्रह्मणोऽनिर्वचनीयता अवाङ्मनसगोचरता चोक्ता, द्वितीये खण्डे च चतुर्भिर्मन्त्रैस्तस्य दुर्ज्ञेयता च प्रतिपादिता । तत्रेत्थं सन्देहः समुत्तिष्ठति—किमिदं विजानतामविज्ञातम् अविजानतां विज्ञातम् एतद् वाग्विलासमात्रम् आहोस्वित् केनाप्यनुभूतचरं, चेदनुभूतचरं तर्हि किं निरवयवं सावयवं वा ? यदि चेत् सावयवं, तर्हि तत्रानित्यतापत्तिः ? यदि चेत् निरवयवं तर्हि सौगतानामिव शून्यं तत्, एवं **सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सर्वरसः सर्वगन्धः** इत्यादि श्रुतयस्तत्र नोपपद्येरन् । नहि अवयविनमन्तरेण सत्यसङ्कल्पत्वादयः गुणाः समुपस्थातुं शक्याः ? इमान् सर्वान् शिष्यप्रश्नप्रतिप्रश्नान् मनसि कृत्वा तार्तीयके समारभते सद्गुरूराख्यायिकां देवगर्वभङ्गनिमित्तां, यत्रावाङ्मनसगोचरत्वेऽपि भक्तप्रेमवशंवदतया भगवतः प्राकट्यम् । निरववत्वेऽपि सावयवत्वम्, अपरोक्षानुभूतिविषयत्वेऽपि दिव्यविग्रहेण सकलक्रियाकलापसंचालकत्वं । ननु एकस्मिन्नेव धर्मिणि कर्थ विरुद्धद्वयाश्रयता ? यदिं निराकारं तर्हि न साकारं यदि चेत् साकारं तर्हि न निराकारम् । मैवं वादीः, भगवतः स्वाभाविकीयं सकलविरुद्धयर्माश्रयता बहुशो मयोक्ता कथं नावधारिता त्वया । भगवान् खल्वतर्कशक्तित्वात् समकालमेव निराकारोऽपि साकारः निरवयवोऽपि सावयवः निर्गुणोऽपि सगुणः निष्प्रकारोऽपि सप्रकारः । अथ तर्हि यद्यद् सावयवं तत्तदनित्यं विनाशशीलत्वाद् घटवत्, इत्यनुमानेन ब्रह्मणः सावयवत्वे तदनित्यता दुर्वारैवेति चेन्न, ईश्वरे एतदनुमानस्य प्रसरासम्भवात् **द्यावा भूमी जनयन्देव एकः** इत्यादि श्रुत्यनुरोधेन, तत्र सावयवत्वेऽपि नानित्यता । ननु मया दत्तमनुमानमपि कथं त्वयानलप्यते ? श्रुत्यनुरोधेन, यतो हि शब्दप्रमाणकाः वयं श्रुतीनां स्वतः प्रमाण्यं सर्वतन्त्रसिद्धं तद्व्याहन्तुं परमेष्वरोऽपि न प्रभवति किं त्वादृशाः । अथ परमात्मनः शरीरत्वे सुस्पष्टं प्रमाणं देहीति चेत् कृपया तैत्तरीये **आकाशशरीरं ब्रह्म** इति सुस्पष्टं प्रमाणं स्वीकुरु । अतो हेतोः तावकीनमनुमानं श्रुतीर्विरूणद्धीति नादरतव्यं तत् । नहि संसारिणामुपमया परमात्मोपमातव्यः । ननु तत्र आकाशशरीरं ब्रह्म इति श्रुतौ आकाशं शरीरं यस्य तथाभूतमिति बहुब्रीहिसमासेन निरवयवत्वादाकाशस्य ब्रह्मणोऽपि निखयवत्वे, कथं तत् सावयवतायां भवतामाग्रहः । श्रुत्या ब्रह्मणः शरीरे प्रमाणिते तत्र त्वादृगेव कश्चन मन्दबुद्धिः कल्पयिष्यति निरवयवताम् । नहि कदापि शरीरं निरङ्गं भवति । अवयवानां समुदाय एव हि शरीरव्यवहारभाक् । तस्माद् **आकाश शरीरं ब्रह्म** इति श्रुतौ उपमामूलकबहुब्रीहिसमासविग्रहो विधातव्यः एवं हि आकाशमिव शरीरं यस्य तथाभूतं ब्रह्म इति विग्रहः । अथ भवता संस्थापिते आकाशशरीरयोरुपमानोपमेयभावे कथन्नाकाशगतो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निरवयत्वरूपधर्मः शरीर आरोप्येत् । श्रुति विरुद्धत्वात् उपमेयप्रतिकूलत्वाच्च । अथ ब्रह्मशरीरे नभसो निरवयवत्वारोपे को विरोधः श्रुतेरितिचेच्छ्रूयताम्–श्रुतौ हि सुस्पष्टं परमेश्वराङ्गानां वर्णनं तद्यथा—**विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतष्पात्** एवमेव प्रतिकूलतोपमेयस्यापि यथा चन्द्र इव मुखमित्यत्र मुखे चन्द्रस्याह्लादकत्वं समारोपयन्नपि कोऽपि सुधीस्तद्गत धवलिमानं नारोपयत्यानने, तद्विरुद्धत्वात् चन्द्र इव श्वेतमाननन्तु कुष्ठिनां प्रसिद्धं न तु कस्याश्चित् सौन्दर्यशीलसीमन्तिन्याः । एवमत्रापि न गगवन्निरवयवत्वं शरीरे नारोयपयितुं शक्यं तद्विरुद्धत्वात् । विरोधश्चोपमेयासम्भवरूपः । भवतु नाम ब्रह्मशरीरे व्योम्नो नीलिमत्वव्यापकत्वसर्वावकाशत्वनिर्लोपत्वसलिलवर्षकत्वादि भूयो धर्मारोपः । एवं निरवयवोऽपि स्वलीलया दिव्यान्यङ्गानि प्रकटीकृत्य जनानामनुजिघृक्षया स्वभक्तमनोरथान् पूरयति । इदं परमेश्वरस्य लीलाविर्भावचरित्रं तन्मिषेण ब्रह्मविद्या महत्वं च वर्णयन् प्रारभत आख्यायिकामिमाम् -

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति।।१।।

ब्रह्म देवेभ्यः विजिग्ये, ह तस्य ब्रह्मणः विजये देवाः अहमीयन्त, ह ते ऐक्षन्त अयम् अस्माकम् एव विजयः अयम् अस्माकम् एव महिमा इति, इत्यन्वयः ।

ब्रह्म, अतिशयेन वर्धनशीलं बृहत्तमं वा, देवेभ्यः दैवीसम्पदमाश्रयतां सुराणां हिताय अत्र तादर्थ्ये चतुर्थिः । विजिग्ये, दानवान् निहत्य व्यजयत, परोक्षलिट्-प्रयोगेण घटनाया अति प्राचीनकालिकत्वं सूचितम् । ह, प्रसिद्धमेतत् तस्य ब्रह्मणः, संगुणसाकाररूपस्य पराक्रमशालिनः परमेश्वरस्य दानवपरिभवमूलके देवाः इन्द्रादयः अमहीयन्त महिम्ना समयोज्यन्त, ह, इति प्रसिद्धौ, ते देवाः भगवल्लब्धबलतेजःपराक्रमाः ऐक्षन्त इत्थं मिथ्या निश्चितवन्तः यत् अयम्, दानवेषु अस्माकम् एव, अग्निपुरोगमानां सुराणामेव नान्येषां विजयः, जयः अयम्, एषः संग्रामेऽसुरकदनरूपः अस्माकमेव, रणश्श्लाघिदैवतानामेव महिमा, महत्ता इति, शब्दोऽयमभिमानप्रकारसूचकः ।।श्रीः।।

इत्थं धनैश्वर्यमदमत्ताः भगवतैव दत्तशक्तिका अप्यात्मानं जैत्रं मन्यमानाः सुमनसः सदर्पाःजाताः येनैषां दैवीसम्पद्विनाशसंकट आगतः । दर्पाभिमानौ हि आसुरीसम्पदो लक्षणे तथा हि गीतायाम्—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारूष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ।।

(गीता १६-४)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आभ्यामेषां दैवीसम्पदि नष्टायामासुरभावमागते भवबन्धनसम्भावना समभवत् । निबन्धायासुरीमता इति तन्निराचिकीर्षया भगवता प्रादुर्भाव लीलाप्रकट्यते तदित्यादिना–

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति ।। २ ।।

ह तत् एषाम् (तत्) विजज्ञौ, तेभ्यः प्रादुर्बभूव ह इदम् यक्षम् किम् इति तत् ते न व्यजानत, इत्यन्वयः ।

इ इत्थं प्रसिद्धं वर्तते यत् तत् तनोमीति तथाभूतम् एषाम्, ईश्वरं मन्यमानानां पावकादीनां तत्, अभिमानदूषितहृदयं विजज्ञौ, सर्वज्ञतया विदांचकार । तेभ्यः तेषामभिमनशमनेन कल्याणचिकीर्षया प्रादुर्बभूव अशेषगुणगणनिलयं प्रकटित सगुणसाकाररूपमाविर्बभूव । ह प्रसिद्धौ, इदम् देवनयनगोचरं यक्षं, ईज्यते पूज्यते तथाभूतं यज् धातोः **उणादयो बहुलम्** इत्यनेन स प्रत्यये जकारस्यकुत्वे षत्वे यक्षमितिसिद्धम् । ब्रह्म हि सर्वत्र पूज्यमानं, यद्वा ईज्यते सद्भिः संगम्यते इति यक्षम्, सन्तस्तेनैव ब्रह्मणा संगच्छन्ते । यद्वा यजते भक्तेभ्यः ईप्सितार्थं ददाति इति यक्षम् अत्र कर्तरि स प्रत्ययः शेषं पूर्ववत् । ननु एतत् व्युत्पत्तित्रये किम्मानम् ? यज् धातोः पाणिनेरनुशासनमेव तद्यथा– **यज् देवपूजा संगतिकरणदानेषु** । यद्वा ईः भगवती सीता अक्षि नेत्रमिवप्रिया यस्य तद् यक्षम् श्रीसीताभिरामं श्रीरामाभिधं ब्रह्म । यद्वा अकारो वासुदेवः तस्यापत्यं पुमान् इति इः अत्र भत्वादकारलोपे समवशिष्टः सानुबन्ध इ प्रत्ययः यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी इति पातञ्जलवचनेन लुप्ताकाररूपप्रकृत्यर्थमभिधत्ते । एवं इः वासुदेवात्मजः कामः अभिभूतः अक्ष्णा नेत्रेण यस्य तत् यक्षं, किम्, किं प्रकारकं वस्तु इति, इत्थं यक्ष परिचयं ते, सुराः न व्यजानत, नैव विविच्य ज्ञातवन्तः । एवं तथाभूतमनिर्वचनीयं सर्वाश्चर्यमयं यक्षं दृष्ट्वा देवाः प्रथमग्निं प्रेषयितुमुपक्रमते–

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति ।। ३ ।।

ते देवाः अग्रे नियत इत्यग्निः, पृषोदरादित्वात् अग्र घटकरकारलोपःणि धातोरिकारलोपः इच् प्रत्ययश्च । स एव वैदिकप्रथमदेवता तथा च समस्तवेदराशेः प्रथममन्त्रे **अग्नमीले पुरोहितम्** इति समकीर्तयत् श्रुतिः । तादृशं स्वकीयमग्रनेतारमग्निम् अब्रुवन्, अकथयन्–जातवेद ! जातं, समुत्पन्नं सर्वप्राथम्येनोद्भूतमिति भावः वेदः ब्रह्मज्ञान मित्यर्थः । एतत् इदं दृश्यमानं यक्षं यजनशीलं महद्भूतं विजानीहि विशेषेणावगच्छ किम्, किं प्रकारकम् इति, एवं प्रकारेण देवा अग्निं विज्ञापयामासुः । तथेति, तथा इति अग्निः प्रार्थनां स्वीचक्रे ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दवेप्रार्थनानन्तरं संघटितघटनां सूचयति—

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ।।४।।

अत्र अनुपपत्या अभ्यद्रवदित्यस्य अग्निराख्यातः समाक्षिप्यते । तथा च अग्निः देवविज्ञापनानुसारं तत् सुराणां बुद्धिपारोक्ष्ये विराजमानं यक्षम् अभ्यद्रवत्, द्रुतमभ्यगच्छत् । तत् यक्षं स्वाभिमुखमागतं तम् , अग्निम् अभ्यवदत् , अभिनन्द्यापृच्छत् अग्निस्तु द्रुतमभिगंत्य तत् प्रभया घर्षितः तूष्णीमतिष्ठत् । यक्षमेव तदभिमानविनाशयिषया तं पर्यपृच्छदिति तात्पर्यम् । कः प्रश्नाकारः इत्यत आह–भो, त्वं कः असि किमभिधानोऽसि किं प्रयोजनो द्रवन्नागतोऽसि ।।श्रीः।।

इति, इत्थं कृतप्रश्नम् अग्निरूदतीतरत् द्वाभ्यां प्रसिद्धनामभ्याम् अहं तव पार्श्वे समागतः अग्निः, एतन्नामकः वा, सर्वप्रसिद्धः अस्मि, भवामि । इत्थं परिचयदत्तेपि यक्षमकृतप्रतिक्रियं विभाव्य भूयः प्राह साक्षेपमग्निः–अहम्, तव पुरोवर्तमानः वा, सर्वप्रसिद्धः तथापि न तव कर्णगोचरः जातवेदाः, सर्वज्ञः अस्मि भवामि इति, अनेनकाकुना अब्रवीत्, अवदत् इति, इत्युक्त्वा विरराम ।

इत्थं वैशिष्टयद्वयेन दत्तपरिचयं सावलेपं जातवेदसं यक्षरूपः परमात्मा पृच्छति,

तस्मि ँ्स्त्वयि किं वीर्यमिति । अपीद ँ् सर्वं दहेयम्, यदिदं पृथिव्यामिति ।।५।।

व्याख्या— यक्षमपि सावक्षेपमप्राक्षीत् यत् हंहो तस्मिन् निजोक्तविशेषणद्वयविशिष्टे त्वयि, मत्पुरोवर्तमाने भवति अग्नौ जातवेदसि किं वीर्यम् ? किं प्रकारकं सामर्थ्यं तद्व, इति एवं पृष्टवति यक्षे अग्नि इति सगर्वो व्याहरत्–पृथिव्याम्, उपलक्षणमेतत् पृथिवीसहिते निखिलब्रह्माण्डे यत् इदम्, यत्किमपि इदं प्राणेन्द्रियगोचरं स्थावरजङ्गमं वर्तते इदं सर्वम्, दृश्यमानमेतत् सकलं प्रपञ्चं दहेयम्, दग्धुं शक्नोमि । अत्र **शक्तिलिङ्ग** इत्येनन शक्यार्थे लिङ्लकारः, अपि निश्चयेन इति एतन्निगद्य व्यरमत् ।।श्रीः।।

इति परमकारुणिकः श्रीहरिः अग्निदर्पं जिघांसुः लीलाशक्त्या तृणमेकमाविष्कृत्य तद्दाहाय जातवेदसं नियुञ्जानः प्राह -

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति । तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ।।६।।

तस्मै अग्नये अत्र हितयोगे चतुर्थी, यक्षनामा परमेश्वरः तृणम्, स्वलीलानिर्मितं सन्निहितसकलसामर्थ्यं लंघितुं गुल्मविशेषं निदधौ, निराधारेऽप्याकाशे संस्थापयामासेति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावः । तमवदच्च–हे चराचरदहनसामर्थ्यशालिन् अग्ने ! एतत्, मन्निहित् तृणं दह, भस्मसात् कुरु, तत् यक्षनिर्देशानन्तरं पावकः तत् तृणं दग्धुं, सर्वजवेन सर्वश्चासौ जवः सर्वजवः तेन सम्पूर्णवेगेनेति भावः उपप्रेयाय प्रकर्षेणोपागच्छत् । इत्थं यक्ष निर्दिष्टोऽपि सम्पूर्णवेगं प्रयुञ्जानस्तत् भगवदीयतृणं दग्धुं भस्मकर्त्तुं न शशाक, नैव सेहे । स, एवं भग्नसंङ्कल्पः तत एव, तस्मात् यक्षसमीपस्थानादेव निववृते, प्रतिनिवृत्तो बभूव, अवोचच्च देवान्–यत्, प्रकारकम् एतत्, इदं यक्षम्, सर्वसङ्गतं परब्रह्म इति, इत्थं रूपेण विज्ञातुम्, वेदितुम् अहम्, जातवेदाः अग्निः न अशकम् नैव सोढवान् एतत्, इदं कार्यं सम्पादयितुम् ।।श्रीः।।

अथाग्नितो निराशाः देवाः वायुं प्रेषयितुमुपक्रमन्ते—

"अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षतमिति तथेति ।।७।।

अथ, अग्न्युत्तरान्तरं देवाः वायुम्, वातीति सर्वत्र गच्छति गन्धं वहति वा यः स वायुः तम्, यद्वा गन्धनमिह सूचनं तथाहि वाति सूचयति तथाभूतम् अब्रुवन् , अवदन्—वायो, हे सर्वगन्धसूचक ! त्वमेव एतद्, अस्मज्जिज्ञासितं, विजानीहि विशेषेणावेहि यत् किं गुणकमस्मन्निकटवर्ति यक्षम् , अस्मद् वृत्या संगच्छमानम् इति, इत्थं निर्दिश्य देवा विरता इति भावः । तथा इति, देवनिर्देशम् तथैव करिष्यामीति स्वीचकार वायुः ।।श्री।।

अथ वायुः किमकरोत् इत्यत आह—

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीति ।
वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन् मातरिश्वा वा अहमस्मीति ।।८।।

वायुः तत् यक्षम् अभ्यद्रवत् द्रुततरं समीपमगमत् । यक्षं तम् स्वसमीपस्थं वायुम् अभ्यवद्त् , अभिनन्दद्यापृच्छत्–भोः कः असि, किन्नामधेयोऽसि ? वायुः अब्रवीत्, प्रत्युत्तरयामास–अहं, त्वत् समीपमागतः वा, सर्वप्रसिद्धः वायुः सर्वगः सर्वसूचकश्च अस्मि, भवामि तस्मिन्नोत्तरयति भूयः प्राह—वा, सुख्यातः मातरिश्वा, मिमीते शब्दं करोति इति माता आकाशं तस्मिन् स्वयति गच्छतीति मातरिश्वा अस्मि, भवामि इति, इत्थमुत्तरयति स्म ।।श्रीः।।

एवं वायौ दत्तोत्तरे तस्य दर्पं हन्तुं श्रीहरिरपृच्छत्—

तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमिति ? अपीदँ सर्वमाददीयम्, यदिदं पृथिव्यामिति ।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मिन् त्वयि एवं भूते भवति, किं वीर्यमिति, किं बलम् इति यक्षे पृष्ठवति वायुः प्रत्यवोचत्–पृथिव्यां यदिदम् , ब्रह्माण्डेऽस्मिन् यच्चराचरम् इदं सर्वम् आदिदीयम्, इदं सकलं प्रपञ्चमुत्क्षेप्तुं शक्नोमि इति, इत्थमुत्तरायामास ।।श्रीः।।

अथ तद्दर्पनिराकरणाय श्रीहरिः निर्मितचरं तृणं प्रदर्शयन् प्राह,—

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति । तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति ।।१०।।

तस्मै, वायवे तृणं निदधौ, तदाकाशे गुल्मविशेषं निर्यात् निर्दिशच्च भगवान्– भो वायो ! एतद्, क्षोपिष्ठं तृणम् आदत्स्व, उत्थापय इति, एवं निर्दिष्टो वायुः सर्वजवेन , सर्वसामर्थ्येन तत् , तृणमादातुम् उपप्रेयाय, समीपमगमत् तत् , लघुतमं तृणाम् आदातुम् , गृहित्वोत्त्थापयितुं न शशाक, न सेहे । स, भग्नसङ्कल्पः वायुः तत एव निववृत्ते, तस्मात् स्थानात् परावृतो बभूव । उदतीतरच्च–एतद् वि विज्ञातुं, वेत्तुं न अशकं, न सफलोभवम् एतद यक्षं किमिति, पुरो वर्तमानं यक्षं किं भूतमिति ।।श्रीः।।

अथाग्निपवनयोः जिज्ञासाशान्तावसमर्थयोः सुराः बृहस्पतीशिष्यं पण्डितप्रकाण्डमिन्द्रं प्रेषयितुमीहन्ते–

अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति । तथेति । तदभ्यद्रवत् । तस्मात् तिरोदधे ।।११।।

अथ, अनन्तरम् इन्द्रम् अब्रुवन् , इदि ऐश्वर्ये इन्दति ऐश्वर्यवान् भवतीति तथाभूतमिन्द्रं देवाः न्यवेदयन्—मघवन् । एतद् विजानीहि, हे सकलैश्वर्यशालिन् ! एतद् विविच्य अवगच्छ किमेतद् यक्षमिति, इदं महद्भूतं किं वस्तु । तथा इति, इन्द्रः प्रार्थनां स्वीकृत्य तत् अभ्यद्रवत् , जिज्ञासुः सन् परमातुरो यक्षमुपगतः अधिकाभिमानिनं तं ज्ञात्वा तत् सगुणसाकारं परमपूज्यं सर्वज्ञङ्गलं सर्वकामदायकं ब्रह्म तस्मात् , अत्र ल्यब्लोपे पञ्चमी, तमवेक्ष्य यद्वा तस्मादिति स्थानविशेषणं यत्र यक्षं तिष्ठति स्म तस्मात् स्थानादिति भावः तिरोदधे, अन्तर्दधे तस्मै स्वरूपमपि नादर्शयत् संवादस्य का कथा ।।श्रीः।।

यद्यप्यग्निवायू यक्षेण सह वार्तां विधाय ततो भग्नसङ्कल्पौ निववृताते, इन्द्रस्तु साक्षात्कारावसरमपि न लेभे । परन्तु निराशो भूत्वा ततो न निवृत्तः तज्जिज्ञासया प्रयत्नमारब्धवान् । अतस्तत्फलमपि तेन प्राप्तमिति वर्णयति उमासाक्षात्कारव्याजेन ।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमाना मुमाँ हैमवतीं ताँ होवाच किमेतद् यक्षमिति ।।१२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सः, जिज्ञासुरिन्द्रः तस्मिन् एव आकाशे, यक्षाधिष्ठितचरे बहुशोभमानाम् , अनिन्द्यसौन्दर्यसम्पन्नां स्त्रियम् , स्त्रीशरीरधारणीं वात्सल्यमयीम् उमाम् , उः शम्भुः तस्य ओः शम्भोः मा शक्तिः तथा भूतां हैमवतीं, हिमवान् हिमाचलः तस्य गोत्रापत्यं स्त्री हैमवतीं तां हिमाचलपुत्रीमि इत्यनेनावतारवादोऽपि श्रुत्यैव सूचितः । या हिमाचलराजगृहे समवतेरे या च शिवेन परिणीता तामेव परमवात्सल्यमयीं सौभ्याग्यवतीं वधूचितभूषणभूषितां भगवतीमाजगाम, सद्गुरूं कृत्वा महता समादरेण समागच्छत् इति भावः **नास्ति मातृ समो गुरूः** इति स्मृतेः । ताम् , भगवतीं पार्वतीं प्रणम्य सम्पूज्य उवाच, जिज्ञासांचक्रे-किमेतद् यक्षमिति, एतद् यक्षं दृश्यमानं किमासीत्, इति शब्दः जिज्ञासा विरामसूचकः ।

।। इति तृतीयः खण्डः ।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ चतुर्थ खण्डः ।।

एवमग्निवातेन्द्रदर्पघ्नं निःशेषक्लेशशमनं भक्तानुग्रहकातरं सगुणसाकारविग्रहं परब्रह्म महता यत्नेनापि पुरन्दरो न विज्ञातुं प्राभवत् । तथाविधं जिज्ञासमानं तमवेक्ष्य स्वयं ब्रह्मविद्येव साक्षादुमा तत्कल्याणं चिकीर्षुः समुपदिदेश । ननु परमपुरुषार्थं ब्रह्म निगदितुं कथन्नागान्महालक्ष्मी कथं नागाद्वा वागधिष्ठात्री देवता सर्वविद्यामयी स्वयं सरस्वती ? साधु पृष्ठम् । सरस्वत्यास्तु वाङ्मयत्वाद्वाचश्च जडेन्द्रियतया विशुद्धचैतन्यघने ब्रह्मणे प्रसराभावात् तदधिष्ठातृदैवतगन्धोऽपि न शङ्कनीयः, महालक्ष्मीश्च सीताभिधा सा च रामाभिधानान्महाविष्णुतः सर्वथैवानन्या, यथा यक्षभूताय ब्रह्मणे इन्द्राभिमुखं स्वप्राकट्यं नारोचत् तथैव तस्या अपि । एकमेव ब्रह्म महाविष्णुमहालक्ष्मीरूपेण द्वन्द्वमिव विभाति **स वा कुमारः उत् वा कुमारीं** इति श्रुतेः । अथ कथमत्र भोः उपनिषद्यत्र यक्षशब्दः बहुशः क्लीबे पठितः पुलिङ्गे यक्षशब्दस्य कुबेरगणाभिधेये योनिविशेषे प्रसिद्धत्वात् ? ततो वैलक्षण्यं प्रतिपादयितुमिति ब्रूमहे यद्वा स्वतन्त्रा श्रुतिः तदभिप्रायोद्घाटने के वयं वराकाः ।

अथ यक्षदर्शनाय समागतस्य शक्रस्य पुरस्तिरोधानेन घनदर्पे पुरन्दरे लौल्यमूल्यकं वैक्लव्यं विलोक्य सगुणा भक्तिः साकारा भगवत्युमा वासववत्सला प्राह—

सा ब्रह्मेति होवाच । ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सा, उमा यद्वा स्यति इन्द्रसंशयराशिं खण्डयति तथाभूता इन्द्रजिज्ञासा समाधात्रीति भावः। ह निश्चयेन उवाच इन्द्रं प्रत्युक्तवती, वचनप्रकारमाह—ब्रह्म इति यदग्निवायुदर्पघ्नं-यच्च त्वयापि दृष्टमात्रं किन्तु त्वयि महान्तमभिमानं विभाव्य नैव चर्चामचिकीर्षत् त्वया सह, तत् यजनसामग्रीयुक्तं यक्षं ब्रह्मैवासीत्। इति इत्थमुपदिष्टः छिन्नसंशयः ततः तदनन्तरं ह निश्चयेन एव अन्ययोगव्यवच्छेदपूर्वकं तन्महद्भूतं ब्रह्म, अशेषदोषशून्य मनादिमजमव्यक्तं परब्रह्मैवासीत् इति, इत्थं विदाञ्चकार, जज्ञौ ।।श्रीः।।

एवं ब्रह्मज्ञानसम्पन्नः सर्वप्राथम्यमभजत् तमेव हेतुं स्पष्टयति—

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।।२।।

उमया ब्रह्मेत्युक्तमात्रमवगम्य इन्द्रः ब्रह्म ज्ञातवान् अनन्तरमागत्य तद्विषये अग्निवायू अपि तद्ब्रह्म विज्ञापयामास। पश्चात् इन्द्रवाय्वग्निभिः सर्वेदेवाः ब्रह्मोपदिष्टाः इति सुराणां ब्रह्मविद्यापरम्परा। इन्द्रः सन्नपि महाभिमानी समुपलभ्य सद्गुरुमुमां तद्दर्शनेनैव निरस्तब्रह्मबोधप्रत्यवायतया ब्रह्मेति सकृदुच्चारणेनैवोमायाः सपद्युपजगाम, एतेन ब्रह्मविद्याप्राप्तेः सद्गुरुकृपायत्तता सूच्यते। तमेव राद्धान्तं विवृणोति-तस्मात् हेत्वनुवादोऽयं यतस्ते ब्रह्मज्ञातवन्तस्ततो हेतोः, वा निश्चयेन एते देवाः इमे पावकपवनपुरन्दराः अन्यान् देवान्, वरुणसूर्यशशांकादीन् अतितराम्, शेरत इति शशः। अत्यरिच्यन्त अतिक्रान्तवन्तः। इव यथा लोक उपमापरोऽप्ययमिवशब्दः वेदे निश्चयपरः। ब्रह्म ज्ञत्वा इमेदेवाः निश्चयेन सर्वान् देवान् समतिशेरत इति भावः। कथमतिशयत्वमेषां सर्वेभ्यः? इत्यत आह—यत्, यस्माद्धेतो ते, पूर्वोक्ताः अग्निः वायुः इन्द्रः, हुताशनः समीरः पाकशासनः हि, निश्चित्य एनत्, अन्वादेशे इदं रूपं पूर्वदृश्यमानं नेदिष्ठम्, अतिसमीपस्थं यक्षं ब्रह्म प्रथमः, क्रियाविशेषेणभूतोऽपि क्लीबे वर्तमानोऽपि **सुपां सुलुक्** इत्यनेन अमः स्वादेशे रूत्वे विसर्गे प्रथमः प्रथममित्यर्थकः। तथा हि सर्वप्रथमं पस्पृशुः, चक्षुषा रूपावच्छेदेन तद्ब्रह्म स्पृष्टवन्तः। यतो हि ते, अग्निवाय्विन्द्राः एनत्, पुरोदृश्यमानं परमात्मतत्त्वं चाक्षुस्साक्षात्कारविषयीकृत्यापि प्रथमं ब्रह्म इति, इदं ब्रह्मैव एवं रूपेण विदाञ्चकार **व्यत्ययोबहुलम्** इति सूत्रेण विदान्ञ्चक्रुः इत्यर्थे विदाञ्चकार इति प्रयोगः, ज्ञातवन्तः इति भावः ।।श्रीः।।

एषु कतमः सर्वश्रेष्ठः इत्यत आह—

तस्माद् वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्माद्धेतोः इन्द्रः अन्यान् अग्न्यादीन् देवान् अतितरामिव अत्यशेत, स एव एनत् ब्रह्म नेदिष्ठं पस्पर्श चक्षुरिन्द्रियविषयं कृतवान्, स एव प्रथमं एनत् ब्रह्म परमेश्वरतया विदाञ्चकार ज्ञातवान्। अतएव श्रुतिरपि **स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा** इति सर्वप्रथमं स्वस्त्ययनमिन्द्रमेव जगौ।

एवमनया समाख्यया ब्रह्मणः सगुणसाकारतां जिज्ञासुनयनगोचरतां प्रपन्नदर्पध्नप्रकृतिं च निरूप्य सामान्यजनबुबोधयिषया परमेश्वरस्य साक्षात्कारे उपमाद्वयं प्रदर्श्य श्रुतिरनुभवपरिस्थितिं वर्णयति—यत् अनिर्वचनीयमपि ब्रह्म यतमानसाधकहृदयाकाशे क्षणं स्वप्रकाशं तथैव स्फोरयति यथा चपलायाश्चमत्कृतिः क्षणं च तथैवावरणं भिनति यथा निमेषस्य निमेषणम्। इदमेवास्य देवसम्बन्धिस्वरूपम् महात्मान एवानुभूतौ विजनेऽनुभवन्ति।

तस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा इतीन्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम्।।४।।

तस्य, ब्रह्मणः पूर्वोक्तदेवत्रितयदर्पघ्नस्य परमेश्वरस्य सर्वथा निरुपमस्य साधक प्रतीतये, एषः अयम् आदेशः, उपमासहितोपदेशः, यत् यथा एतत् इदं विद्युतः चपलायाः, व्यद्युतद् अत्र वि उपसर्गपूर्वक द्युत् धातोः लुङ्लकारप्रथमपुरूषैकवचनान्तरूपं **द्युद्भ्यो लुङ्** इति परस्मैपदं पुषादित्यनेन अङ् प्रत्ययः। तात्पर्यमेतत्—यथा चपलायाः प्रकाशः अद्योतिष्ठ, आ अयं शब्दः उपमापरः इवार्थोऽव्ययः, तथैव साधकस्य हृदये परमात्मनः क्षणिकस्फुरणं, यदेतद् यथा इदं न्यमीमिषद् मिष् धातोः स्वार्थे णियजन्तलुङ्लकाररूपम् आ, इव यथानेत्रं न्यमिषत् तद्वत् परमात्मपि साधकस्य ज्ञाननेत्रं क्षणमात्रं यावत् नेत्रं निमेषयति। यद्वा नात्र स्वार्थणिजन्तं प्रत्युत् हेतुहेतुमद्भावमूलकम्। उभयत्र लुङ् लकारार्थोऽविवक्षितः वर्तमानकालेऽपि विद्योतने अख्यातार्थो स्वार्थं त्यजन् भावमात्रबोधकः। तत्, अधिदैवत् देवसम्बन्धिनिरूपणं साधकस्य हृदये उत्कण्ठा समुज्जागरार्थं विद्युतो विद्योतनमिव क्षणं प्रकाशते नेत्रस्य निमेषणमिव क्षणमावरणं भङ्क्त्वा तिरोभवति। श्रीभागवते नारदकृतभगवद्दर्शनं, मानसे सुतीक्ष्णहृदये श्रीरामप्राकट्य प्रसंगश्च प्रमाणम्। वस्तुतस्तु इदं साधकानामनुभवगम्यमेव तद्यथा—

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्भिन्नचेतसः।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः।।

(भागवत १/६!१८)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानसे यथा—

अति सय प्रेम देखि रघुवीरा। प्रगटे हृदय हरन भवभीरा।
मुनिमग माँझ अचल ह्वै बैसा। पुलक शरीर पनस फल जैसा।। श्रीः।।

(मानस ३/१०!१४,१५)

इदानीं ब्रह्मणोऽध्यात्मिकं रूपं वर्णयति अथेति—

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णँ सङ्कल्पः ।।५।।

अथ आधिदैविकोदाहरणानन्तरम् अध्यात्मम्, अधिकृतः आत्मा येन तथाभूतम्, आत्मनोऽध्यक्षं परमात्मानं स्वानुभूत्या समुदाहरामः—यत्, यस्मिन् काले मनः, साधकानां मनोवृत्तिः एतत्, विशिष्टाद्वैतं गच्छतीव, सामीप्यं प्राप्नोति इव। क्रियमाणसाक्षात्कारं प्रतीयते इति भावः। यत्, यस्मिन् काले एतत्, इदं सर्वेन्द्रियागोचरम् अभीक्ष्णम्, सततं व्यवधानशून्यम् उपस्मरति, उपश्लिष्य ध्यायति, अनेन मनसा सङ्कल्पः, तद्दर्शनप्रवृत्तिरूपः क्रियते इति शेषः तदेव अध्यात्ममिति शब्दार्थः। भावस्त्वयं-यद्ब्रह्मणो द्वे रूपे प्रसिद्धे एकं सगुणं साकारं जननयनगोचरं **सहस्रशीर्षा पुरुषः मृगो न भीमः कुचरोगिरिष्ठाः** इत्यादि श्रुतिप्रमाणमूलम्। द्वितीयं च निर्गुणनिकारम् अनुभवगम्यं, सगुणसाकारम् अत्राधिदैवतपदेन सङ्केतितं निर्गुणनिराकारञ्च कीर्तितमध्यात्मपदेन, सगुणसाकाररूपं भक्तिप्रवणचेतसामस्मादृशां निर्गुणनिराकारं मस्तिष्कप्रधानानां ज्ञानवादिनाम्। अत्र मन्त्रद्वये क्रमेण द्वयोरपि मार्गयोः श्रुत्यनुमोदितत्वात्। केवलं निर्गुणब्रह्म इति प्रौढिवादं प्रकटयन्तः सगुणब्रह्मैव केवलम् इति प्रलपन्तश्च ब्रह्मणो ह्येकैकतररूपपक्षपातितया निरस्ताः यथाधिकारं रूपद्वये आनन्दोऽनुभवितुं शक्यः। अवधेयमेतत् यदुभयत्रापि साकारनिराकाररूपयोः परमेश्वस्याकाराः न निषिद्ध्यन्ते **रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव** इति श्रुतेः। मनसः सूक्ष्मत्वात् तत्रेश्वरः स्वस्मिन्नाकारा न् निर्लीनान् कृत्वा तिष्ठति तदा निराकारो भवति, निर्लीना आकाराः यस्मिन् स निराकारः परञ्च भक्तानां नयनानन्ददित्सया प्रकटिताकारैः सह वर्तमानः साकारोऽभिधीयते। इयमेव व्याख्या सगुणनिर्गुणयोरपि ज्ञेया विस्तररस्त्वन्यत्र विधास्यते ।।श्रीः।।

एवं निर्गुणसगुणयोः समन्वयं श्रुतिप्रामाण्यं किञ्चित्तात्विकमन्तरञ्च व्याख्याय सम्प्रति तदुपासनमेव विधेयतया वर्णयति—

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनँ सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्, निर्गुणसगुणरूपं ब्रह्म, ह समस्तश्रुतिप्रसिद्धं तत् वनम्, वन्यते संभज्यते तथभूतं, तेषां समस्त प्राणिनां वनम् सम्भजनीयम् इति तद्वनं द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति इति न्यायेन तदेव द्रढयति । यतस्तत् ब्रह्म सर्वेषां वननीयम् अतो हेतोः तद्वनं नाम, इति प्रसिद्धौ तद्वननाम्ना प्रसिद्धमिति भावः । इति, एवं रूपेण तत् समस्तप्राणिभजनीयं मत्वा उपासितव्यम् उपासनाविषयीकर्तव्यम् अनन्यमनसा सद्गुरूपरम्पराप्राप्तवैष्णवपद्धत्या समाराधनीयमितिभावः । सः, तथाभूत शरणागतः यः, कोऽपि साधकविशेषः एव, सकलप्राणिभजनीयतया एतत्, इदं ब्रह्म वेद, तत्वतो जानाति एनम्, इमं ब्रह्मज्ञं सर्वाणि भूतानि, सकलजीवजातानि अभिसंवाञ्छन्ति, सर्वतोभावेन निजपथप्रदर्शकतया स्वीकुर्वन्ति ।।श्रीः।।

इदानीमुपनिषदुपसंहारं सूचयन् प्राह देशिक पूर्वं शिष्यप्रश्नमनुवदति कीदृगनुवादः इत्यत आह—वत्स ! सर्वप्रथमं त्वं मामित्थं पृष्टवानासीः । प्रश्नाकारं दर्शयति—

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मी वाव त उपनिषदमब्रूमेति ।।७।।

भोः सद्गुरो ! उपनिषदम्, उपश्लिष्यब्रह्म निषीदतीत्युपनिषद् तथाभूतां (मे) ब्रूहि कथय इति त्वया प्रार्थ्यमानेन मया आचार्येण ते, तुभ्यं जिज्ञासवे, वा इति प्रसिद्धौ, उपनिषद्, ब्रह्मरहस्यप्रतिपादकश्रुतितती उक्ता, स्पष्टं निगदिता इयमेव मुख्या । नैवेतां व्यतिरिच्य काचित् साधनापद्धतिः अतो भूतो व्याहरति—ते तुभ्यं व, प्रसिद्धौ ब्राह्मीं, ब्रह्मणः इयं ब्राह्मी ताम् अद्वारकभगवन्महिमप्रतिपादनपराम् उपनिषदं, केनोपनिषदमिमाम् अब्रूम, अकथयाम इति, समाप्तिसूचकमव्ययम् । केचिदत्र उपनिषदं ब्रूहीत्यंशेन पुनः शिष्यप्रश्नं समुत्थापयन्ति तदनुचितं, नैव शिष्योऽसौ समुत्थापक इव सामान्यबुद्धिः, नाहं मन्येति, श्रुतौ तस्य विदितवेदितव्यत्वप्रसिद्धेः तस्मान्मम पक्ष एव समीचीनः ।।श्रीः।।

अथ रोचनार्था फलश्रुतिः इति सिद्धान्तानुसारं ग्रन्थे शिष्यप्रवृत्तिप्रयोजकतया केनोपनिषच्चरममन्त्रेण फलमुखेन ब्रह्मप्राप्तिसहयोगिसद्गुणान्निदर्शयति—

तस्ये तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ।।८।।

तस्यै, ब्रह्मविद्यायै तपः, चान्द्रायणादिकं दमः, इन्द्रियदमनं, कर्म, श्रुतिविहितं प्रतिष्ठा प्राप्तिः, वेदाः चत्वारः, सर्वाङ्गाणि सकलावयभूतानि, सत्यम् सत्याचरणम्, आयतनं निवासः । एभिर्गुणैः सम्पन्नः ब्रह्मविद्याधिकारीति सूचितम् ।।श्रीः।।

अथ फलं संकीर्त्य ग्रन्थं विश्रमयति—

यो वा एतामेव वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फलं वर्णयन्ती प्राह श्रुतिः–एवं, एवं प्रकारवर्णितामेतां, केनोपनिषदं चतुःखण्डात्मिकां वेद, वेत्ति तदनुसारमाचरति । यः सः पाप्मानं, कायिकवाचिकमानसिकसकलपापराशिं भजनप्रतिबन्धकप्रत्यूहजनकमपहत्य, विनाश्य, अनन्ते अन्तशून्ये स्वर्गे स्वः स्वर्गलोके गीयते इति स्वर्गः साकेतलोकः, तस्मिन् । ननु स्वर्गपदेन सुरलोक एव कस्मान् न गृह्यते ? इति चेत्, श्रुणु—सुरलोकस्य क्षयशीलत्वात् **क्षीणे पुण्यं मर्त्यलोकं विशन्ति** इति स्मृतेः । अनन्त इति पदेन अत्र तस्मात् विलक्षणलोकस्य स्वीकारौचित्यम् । ज्येये श्रेष्ठे लोके स्थाने, प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठितः सन्निवशति । पुनर्द्रढीकरणाय प्राह प्रतितिष्ठति, प्रतिष्ठितः सन् ततो न कदापि पततीति भावः ।।श्रीः।।

इति श्रीचित्रकूटस्थश्रीतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरूश्रीमारानन्दाचार्यश्रीरामभद्राचार्यकृतौ केनोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।।

।।श्री राघवः शन्तनोतु।।



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

कठोपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

मंगलाचरणम्

जयति जनसुखापो भानुकोटिप्रतापः,
करघृतशरचापो भग्नभक्तत्रितापः,
दशरथयुवराजः सच्चकोरोडुराजो,
जलदरूचिररामो ब्रह्मसीताभिरामः ।।१।।

तं चिन्तये चिन्तकपारिजात–
चिन्तामणिं चिन्मयमद्वितीयम् ।
कौशल्यया चुम्बितपङ्कजास्यम्,
रामं शिशुं राघवमब्जनेत्रम् ।।२।।

नमो वैवस्वतायास्मै, धर्माचार्याय धीमते,
यश्चात्मविद्यया बन्धान्नचिकेतस मूमुचत् ।।३।।

सुशीला यं देवी भरतमनघं स्वीयजठरे
दधौ दध्यौ जग्यौ जगदिदमशेषं हरितनुम् ।
य एको ह्याचार्यो गुरुरमितबोधस्त्रिजगतां
बुधो रामानन्दो जयति जगतीभूषणमलम् ।।४।।

नत्वा श्रीहुलसीपवित्रजठरक्षीराब्धिजन्यं विधुम्
विघ्नध्वान्तमहान्धकारदलने चण्डांशुमूर्जस्विनम् ।
सीतारामपदाम्बुजातविलसद्रोलम्बडिम्भं कविं
भाषे भाष्यमहं कठोपनिषदः श्रीराघवप्रीतये ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपोद्घातः—

सुविदितमेतत् प्रज्ञावतां यद् वैदिके वाङ्मये कठोपनिषदियं परमां प्रसिद्धिं गता। दार्शनिकजिज्ञासूनामन्येषाञ्च आर्षग्रन्थसमादरवतां श्रद्धाभाजनमिदम् । इयं खलु कृष्णयजुर्वेदस्य कठशाखायां पठ्यते, अतः कठनाम्नैव कठोपनिषदिति व्यवह्रियते। अस्यां यमनचिकेतःसंवादच्छलेन आत्मनः सुगम्भीरं तत्वविवेचनं विजृम्भते। अत्रोपनिषद्यात्मशब्दः किममिधेय इत्यत्र विप्रतिपद्यन्ते आचार्याः । तार्किका आत्मानं द्रव्यं मत्वा तज्जातिपरिकल्पनया आत्मशब्दस्य जीवात्मपरमात्मरूपावर्थौ स्वीकुर्वन्ति। आचार्यशंकरः आत्मशब्देन प्रत्यगात्माभिन्न चैतन्यं मन्यते । वयं च श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यपदानुगाः आत्मशब्दस्य श्रीरामाभिधानं परमात्मानमेवामिधेय– मभिदध्महे । यद्यप्यस्याः अनेकानि भाष्याणि समभाष्यन्त तथैवाहमपि विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तानुसारं श्रीराघवकृपासम्बलः श्रीराघवकृपाभाष्येण इमां समलङ्चिकीर्षामि।

अस्यामुपनिषदि द्वावध्यायौ, प्रत्येकस्मिन् वल्लीत्रयं नचिकेतोयमसम्वादच्छलेन आत्मानात्मभेदपुरःसरं सततं भगवतो दासभूतस्य प्रत्यगात्मतत्वस्य सुगभीरविवेचनं, ततस्तत्स्वाभिभूतस्य परमात्मनः सुगहनं निरूपणं, प्रत्यगात्मपरमात्मनोर्मध्ये स्वरूपतो द्वैतसम्बन्धतश्चाद्वैतमिति तत्र तत्र यथावसरं श्रीराघवकृपालब्धविवेकेन यथाकालं स्फुटयिष्यामः । इदमत्र ज्ञेयं यत् श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यनये विशिष्टाद्वैतवादे त्रयो निर्विवादविषयाः ज्ञातव्याः स्वामित्वेन सेव्यत्वेन च श्रीसीतारामाभिधब्रह्मरूपं परमात्मतत्वं, सेवकत्वेन सकलशरीराध्यक्षत्वेन प्रत्यगात्मतत्वं, तयोर्मध्यवर्ती सेव्यसेवकभावरूपः सम्बन्धश्च। एतस्यैव प्रपञ्चोऽर्थपञ्चकः, एतत्त्रयज्ञानं प्रकारन्तरेण प्रमाणयति प्राञ्जलिः पतञ्जलिः पश्पशाह्निके महाभाष्यस्य **सिद्धे शब्दार्शसम्बन्धे** । ननु किमनेन व्याकरणमहाभाष्योदाहरणेन ? मैवं वोचः, **काणादं पाणिनीयञ्च सर्वशास्त्रोपकारकम्** इत्याभियुक्तोक्तेः सर्वशास्त्रोपकारकत्वाच्छब्दशास्त्रस्य तन्महाभाष्योदाहरणस्य वेदान्तनयेऽप्युपयोगौचित्यात् । तत्र सिद्धशब्दस्य नित्यार्थकतया स्वीकृतत्वात् शब्दार्थसम्बन्धेषु नित्यता प्रमाणिता महामुनिना । अत्रापि सा रीतिरनुसन्धेया तथा विशिष्टाद्वैतवादे दासभूतः प्रत्यगात्मा नित्यः **जीवभूतः सनानतः** इति स्मृतेः । तथैव तत्स्वामी परमात्मापि नित्यः **सनातनस्त्वं पुरूषो मतोमे** इति स्मृतेः । एवं प्रत्यगात्मपरमात्मप्रतियोगिकानुयोगिकसेवकसेव्यभावसम्बन्धोऽपि नित्य एव । अथ द्वयोःसम्बन्धनित्यतायां किंमानमिति चेत् वाल्मीकिरामायणवचनमेव। **सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः** इतिः तत्र रामायणे नारदवचनम् (वाल्मीकि रामा०

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाल. १-१६) अथ प्रत्यगात्मपरमात्मतत्सम्बन्धज्ञेयत्वे तदितराज्ञेयत्वे च का विनिगमना भवदाचार्य सम्मता ? इति चेत् श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यप्रविधेय श्रीतुलसीदासवचनमेव प्रमाणम् । तद्यथा-

हम लखि लखहिं हमार लखि, हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि, राम नाम जपु नीच ।।

(दोहावली १९)

अत्र **हम** पदेन अहं पदवाच्यः प्रत्यगात्मचैतन्यरूपो जीवात्मा **'हमार'** पदेन सर्वेषामात्मीयत्वात् अस्मदीयं परमात्मतत्वं श्रीरामब्रह्म **'हम हमार के बीच'** पदेन अस्मदस्मदीययोर्मध्यवर्तिसेवकसेव्यभावसम्बन्धः । गोस्वामि तुलसीदासमहाराजानां भावोऽयं यत्—"प्रागहं लक्षयित्वाथ लक्षयित्वास्मदीयकं तन्मध्यवर्तिसम्बन्धं दास्यभावं हि लक्षय" । अलक्षलक्षणेनैव को लाभो लप्स्यते त्वया तस्मान्नीच! हठं त्यक्त्वा रामनाम सदा जप । इत्थं निर्णीतानां प्रत्यगात्मपरमात्मतन्निष्ठसम्बन्धानां ज्ञापकतया कठोपनिषदियं कल्पते महतामुपयोगाय तस्मादहमपि एतन्निरूपणे निजमनीषां प्रवर्तये । तत्र प्रथमं शान्तिपाठः—

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ नौ सह अवतु, नौ सह भुनक्तु, (आवाम्) वीर्यम् सह करवाहैं, नौ अधीतम् तेजस्वि अस्तु, मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अत्र शान्तिपाठमन्त्रे गुरूशिष्ययोः सामञ्जस्यपूर्वकमङ्गलं कामयमान आचार्यः परमात्मानं प्रार्थयते । ॐ निखिलचराचररक्षकः सकलप्राणीप्साविषयः गुणातीतः परमेश्वरः ओंकारवाच्यः नौ, आवां गुरुशिष्यौ सह, साकमेव अवतु, विपद्भ्यस्त्रायताम्, त्राणक्रियायां पार्थक्यं नापेक्षते इति भाव : । नौ, आवामाचार्यशिष्यौ सह, सार्धं भुनक्तु पालयतु, पालनेऽपि यौगपद्यम् । आवामाचार्यदेशिकौ सह, युगपदेव वीर्यम्, अध्ययनपराक्रमं विज्ञानबलं वा करवावहै, आविष्करवावहै ज्ञानाविष्कारणे नो वैमत्यं स्यात् इति भावः । नौ आवयोः उपाध्यायच्छात्रयोः अधीतं, शास्त्राध्ययनं तेजस्वि, अविद्यातिमिरविनाशकबोधसूर्यतेजोमयमस्तु, भवतु । मा विद्विषवहै, कदापि विद्वेषं मा करवावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः । परमेश्वरकृपया तापत्रयशमनं भवतु । अत्र मन्त्रे पञ्चधा कल्याणं कामयमानो देशिकः पञ्चसु प्रयत्नासु क्रियासु पञ्चकृत्वः प्रार्थनायां लिङ् लकारं प्रायुङ्क्त ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।।कठोपनिषद् प्रथमाध्याये प्रथमवल्ली ।।

ॐ उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ।।१।।

ॐ ह वै वाजश्रवसः उशन् सर्ववेदसं ददौ, तस्य नचिकेता नाम पुत्रः आस ह।

इदानीं नचिकेतोयमसंवादद्वारेण प्रत्यगात्मपरमात्मनिरूपणं चिकीर्षुशतत्रभवान् भगवान् वेदः आख्यायिकामारभते। आख्यायिकया हि सामान्यप्रतिपित्षूनां सरलतया विषयागमो भवति। श्रूयते तैत्तिरीये ब्राह्मणे यत् गौतमवंशीयः अरुणपुत्रः उद्दालकोनाम ब्राह्मणः पुरा विश्वजिन्नामयज्ञमाजहरे । तत्र ऋत्विग्भ्यः सर्वं द्रव्यं दत्तवान्, तस्य अल्पवयाः एकः स्नेहभाजनं नचिकेतोनाम पुत्र आसीत्। तत्स्नेहयन्त्रितहृदयः वृद्धाः दुग्धदाने सर्वथैवासमर्थाः धेनूर्ब्राह्मणेभ्यः समर्पयन् धर्मपरायणेन नचिकेतसा पितुरधर्मं निरीक्ष्य तन्निवारणव्याजेन—तात ! मां कस्मै ददासीति त्रिरापृष्टः प्रत्यवोचत्तं–मृत्यवे त्वां ददामि इति पित्रा समादिष्टः स ब्रह्मवर्चस्वी बालकः सशरीरः यमलोकं गतः। तत्र त्रिरात्रिपर्यन्तं स्थितः प्रत्यागतेन यमेन वरदानत्रयाभ्यर्थनायै प्रेरितः । प्रथमवरदानं पितृपरितोषरूपं द्वितीयं वरदानं स्वर्गावाप्तिसहायकाग्निविद्यादानरूपं याचित्वा प्राप्य च यमात् तृतीयवरदाने आत्मतत्वनिरूपणं बव्रे। यमश्च तं गभीररीत्या समकथयत् द्वाभ्यां वल्लीभ्यामित्येव प्रथमाध्यायसारांशः ।

ॐ, इति वैदिकं मङ्गलाचरणम्, हवै, प्रसिद्धिद्योतकावव्ययावेतौ इदमाख्यानं श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासप्रसिद्धमिति भावः। वाजश्रवसः, वाजश्रवाः अरूणः महर्षिविशेषः तस्यापत्यं पुमान् वाजश्रवसः अरूणपुत्र उद्दालक इत्यर्थः । यद्वा यौगिकोऽयं शब्दः तथा हि वाजम् अन्नम् तस्मिन् वाजे अन्नदानविषये श्रवः यशः यस्य स वाजश्रवाः अन्नदानविषये लब्धयशाः। स एव वाजश्रवसः, अत्र प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययः। एवं भूतः दानशीलो ब्राह्मणः, उसन्, वष्टि कामयते इत्युशन् स्वर्गफलं कामयमानः। अत्र कान्त्यर्थक 'वश्' धातोः शतृ प्रत्यये सम्प्रसारणे रूपमेतत्। एवं स्वर्गं कामयमान उद्दालकः सर्वम्, सकलं वेदसं, विद्यते लभ्यते इति वेदाः धनपर्यायोऽयं वेदेषु पुंसिप्रयुज्यमानशब्दः, तं वेदसं धनराशिं हिरण्यरजतरौप्यवाजिधेनुप्रभृतिं ददौ दिदेश विश्वजिति यज्ञे ब्राह्मणेभ्यः इति शेषः । तस्य नचिकेता नाम एतन्नामकः ह, मन्त्रब्राह्मणात्मकवेदप्रसिद्धः पुत्रः, पुत् नरकः तस्मात् त्रायते तथाभूतः । शब्दोऽयं नचिकेतसो भाविघटनां निर्दिशति। अयं हि असमर्थानां धेनूनां दानं कुर्वाणं पितरं नरकात्त्रास्यत एव इत्यन्वर्थ संज्ञा पुत्रेति संज्ञा नचिकेतसः **पुन्नामनरकात् त्रायते इति**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्रः इति स्मृतेः आस, बभूव । अत्र **बहुलं छन्दसि** इत्यप्रवृतिलक्षणबाहुलकेन अस्तेर्भू इत्यस्य प्रवृत्यभावात् आस इति छान्दसप्रयोगः ।।श्रीः।।

पश्चाद्भाविनीं घटनां सङ्केतयति, तमिति-

तँ् ह कुमारँ् सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोमन्यत ।।२।।

ह, निश्चयेन दक्षिणासु नीयमानसु, दक्षिणा शब्दोऽत्र अर्षाद्यजन्तत्वात् दक्षिणावतीपरः, तथा हि दक्षिणा सन्निहिता यासु ताः दक्षिणा तासु, यद्वा वाजश्रवसः दक्षिणारूपेण धेनूरेव समुत्सृजति स्म, अतो दक्षिणाधेन्वोरत्राभेद औपचारिकः। एवं दक्षिणासु दक्षिणाभूतासु गोषु इत्यध्याहार्यं, नीयमानासु ब्राह्मणैः स्वगृहान्प्रति प्रेष्यमाणाषु सतीषु अत्र **यस्य च भावेन भावलक्षणं** पा.अ.२-३-३७ इति सूत्रेण सति सप्तमी । प्रसिद्धमेतच्छ्रौतयज्ञेषु यद्यज्ञकर्मणि वृतब्राह्मणानां चत्वारो विभागाः, एकैकस्मिन् विभागे चत्वारश्चत्वारो याज्ञिकाः । तत्र प्रथमविभागे होता-अध्वर्यु-ब्रह्मा-उद्गाता इमे चत्वारः, द्वितीयस्मिन्विभागे प्रशास्ता-प्रतिप्रस्थाता-ब्राह्मणाच्छंसी-प्रस्तोता इमे चत्वारः, तृतीयस्मिन् विभागे अच्छावाक्-नेष्टा-आग्नीध्र-प्रतिहर्ता च इमे चत्वारः, चतुर्थविभागे ग्रावस्तुत-नेता-होता-सुब्रह्मण्यश्च इमे चत्वारः । इत्थं प्रामुख्येन चतुर्णां यज्ञविभागानां संरक्षणाय षेडशयज्वानो याजयन्ति यजमानम् । चतुर्णां विभागानां दानक्रमेऽपि पूर्वस्मात्पूर्वस्मात् उत्तरोत्तरस्मिन् न्यौन्यम् । तथा हि यावत्यो गावः प्रथमविभागीयेभ्यो दीयन्ते ततो नेमाः द्वितीयविभागीयेभ्यः, प्रथमविभागतस्तृतीयांशाःतृतीयविभागेभ्यः चतुर्थांशाश्च तुरीयेभ्यः दीयन्ते । एवं भूतासु दक्षिणारूपेण दीयमानासु यथाविभागं षोडशभ्य ऋत्विभ्यो धेनुषु निजपित्रा, ह, निश्चयेन तम्, तथाभूतम् नचिकेतसं कुमारम्, प्रथमवयसं पाणिनीमतेन कुमारशब्दः प्रथमवयोरूढवाची स च प्रञ्चदशवर्षीयं यावत् बालकं प्रति व्यवह्रियते तथा हि सूत्रं **"वयसि प्रथमे"** पा.अ.४-१.२० वेदव्यासमते कुमारशब्दः बालस्य पञ्चवर्षवयः विविनक्ति । तद्यथा भागवते

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे

(भागवत - १०/११/५९)

एवमेव अघासुरवधप्रकरणेऽपि परीक्षित पृच्छति **यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः** (१०/१२/४१)

अनन्तरं द्वयोर्वर्षयोः गोवर्धनधारणं तच्च सप्तमे वर्षे इत्यापि भागवते प्रसिद्धं **क सप्ताहयनो बालः** (१०/२७/११) सप्ततः द्विवर्षात्पूर्वं पञ्चमं वर्षं स्पष्टं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मिन्नघासुरवधलीला सा च कौमारे **यत्कौमारे हरिकृतं** इति निर्देशात् । एवं साहित्यलक्षणकृतापि—

आपञ्चामाब्दं कौमारं पौगण्डं दशमावधि ।
आपञ्चदशमकैशोरं यौवनञ्च ततः परम् ।।

एवं कुमारं पञ्चवर्षबालकं, सन्तम् भवन्तम् 'अस्' धातोः भू पर्यायात् । यद्वा सच्छब्दः साध्वर्थकः तथा च सन्तं साधुहृदयं, इदमेव साधुत्वे स्पष्टयन्ती श्रुतिरग्रेऽपि प्राह–श्रद्धया अस्तिक्यबुद्धिः, यद्ययं साधुहृदयः नामविष्यत् तदमं श्रद्धापि नावेक्ष्यत् । आविवेश, आविष्टा बभूव सः, नविकेत अमन्यत, व्यचारयत् ।।श्रीः।।

नचिकेतसो विचारः किं प्रकारकः ? अत आह—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ।।३।।

नचिकेताः स्वयं विचारयामास यत्–पीतोदकाः, पीतम् अन्तिमवारं पानविषयीकृतम् उदकं जलं याभिस्तथाभूताः जग्धतृणाः, जग्धं खादितं तृणं याभिस्ताः, अत्र भूतकाले अद्धातोः निष्ठायां जग्धादेशः । एवं दुग्धदोहाः, दुग्धः दोहविषयतामापादितः दोहः दुह्यते इति दोहः "कर्मणि घञ्" पयोरूपः यासां तथाभूताः । अत्र त्रिषुस्थानेषु भूतकाले क्त प्रत्ययः, अर्थात् याभिः जलमपीयत भूयो न पास्यन्ति । आभिः चरमक्षणे तृणमाद्यत भूयो नात्स्यन्ति, आसाञ्च दुग्धमदुह्यत भूयो नैव दोहो भविष्यति, अतएव वर्तमानकालक्रिया न प्रायुञ्जि । निरिन्द्रियाः, निष्क्रान्तम् इन्द्रियं प्रजननेन्द्रियं यासां तथाभूताः प्रजनेन्द्रियरहिताः इति भावः । अत्र चतुर्भिर्विशेषणैर्नचिकेता पित्रा दीयमानानां गवां चतुर्थं वयः विभावयति । एतादृशीः निरर्थिकाः दत्वा मम पिता नरकमेव यास्यति अतो निवारयामि यतोऽस्मि पुत्रः तस्मात् पुत्रो नरकात् त्रायमाणः प्राहाग्रे–ताः, तादृग् वृद्धावस्थापन्नाः गाः ददत्, ब्राह्मणेभ्यः प्रदिशन् ते, श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धाः अनन्दाः, नास्ति नन्दः आनन्दो येषु तथाभूताः, यद्वा न नन्दन्ति जीवाः येषु तथाभूताः लोकाः, लोकयन्ते कर्मफलानि येषु तादृशाः । अत्रोभयत्राधिकरणे घञ्, आनन्दशून्यनरकादिलोकाः शूकरकूकरादिनिकृष्टयोनिविशेषा वा सः, तादृगर्थहीनधेनुदानकर्ता तान्, आनन्दशून्यलोकान् गच्छति याति, नाम ध्रुवार्थकोऽव्ययः, ब्राह्मणानुपयोगिनीर्धेनूरतिसृजन् दाता नरकभाग् ध्रुवं भवतीति भावः । तस्मान्नरकं व्रजन्तं निजपितरं निवारयन् मन्त्रेणानेन नचिकेतसश्चिन्ताप्रकारः प्रादर्शि ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधुना नचिकेता तस्मात् क्रूरकर्मणः स्वपितरं निवारयितुमुपक्रमते सेत्यादि -

स होवाच पितरं तत् कस्मै मां दास्यसीति ।
द्वितीयं तृतीयं तँ् होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ।।४।।

सः, नचिकेता ह, पितुर्निवारणनिश्चयं विधाय पितरं उवाच,निजजनकमपृच्छत् तत् कस्मै मां दास्यसि, पिता कस्मै ब्रह्मणविशेषाय मदभिन्नं नचिकेतसं अर्पयिस्यसि इति ।

अयं प्रश्नः प्रकारसूचकः–ध्वन्यते चेदं यत्, वृद्धाः गाः ब्राह्मणेभ्यो दत्तवान् । तरूणीः मदर्थं सञ्चितवानसि यदर्थं पापमिदमाचरः तमपि स्वभूतं मां कस्मैचन दत्वा निष्पापो भव । द्वितीयं तृतीयं, श्रुत्वापि पुत्रप्रश्नं तूष्णीमभूते पितरि, द्वितीयं तृतीयं चापिवारम् इदमेव अपृच्छत् तत् कस्मै मां दास्यसि, तत् कस्मै मां दास्यसि । अथ उद्दालकः क्रुद्धः, अनिच्छन्नपि पुत्रनिर्बन्धजातरोषः प्रत्युत्तरयितुं निश्चित्य तं उवाच नचिकेतसमुत्तरयामास–त्वा मृत्यवे ददामि । त्वादृङ्निर्बन्धकारिणं प्राणवियोगव्यवस्थापिने यमाय समुत्सृजामि इति । उत्तरप्रकारसूचनेयम् ।।श्रीः।।

मृत्यवे त्वां ददामीति श्रुत्वोत्तरमथो पितुः चिन्तयामास मेघावी सपुत्रः पितृवत्सलः ।

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किँ् स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ।।५।।

नचिकेता मनसि चिन्तयति यत् त्रेधा भवन्ति शिष्याः पुत्राश्च, तत्र स एव उत्तमः योऽनुक्तमपि पितुश्छन्दं पालयति । स मध्यमः यः प्रोक्तमनुतिष्ठति, सोऽधमो यः प्रोक्तमनुक्तं वा पितुर्गुरोश्च निदेशं न पालयितुं समीहते । तेषाम् उत्तममध्यमाधमानां बहूनाम्, अनेकेषां छात्राणां मध्ये प्रथमः, पितुरनुक्तं छन्दं पालपित्वा अहं नचिकेता उत्तमः एमि भवामि, बहूनाम् अनेकशिष्याणां मध्ये मध्यमः, गुरूप्रोक्तकारितया मध्यमः एमि भवामि । यमस्य, यमराजस्य प्रेतभर्तुः किंस्वित् किमभिधानं विशेषं कर्तव्यं विधेयं प्रायोजनम् अस्ति । यत् यदपूर्वं मया पित्रा दीयमानेन मया करणभूतेन अत्र **साधकतमं करणम्** पा. अ. १-४-४२ इति करण संज्ञानुरोधेन करणे तृतीया । अद्य, सम्प्रति करिष्यति, सम्पादयिष्यति यमराज इतिशेषः । तत् सम्बन्धिकर्तव्यसम्पादनाय करिष्यतीत्यस्य स एव कर्ता अध्याहर्तव्यः । केचनात्र नचिकेतः पितरं कर्तृत्वेनाक्षेप्तुमीहन्ते तन्नोचितं, समबन्धप्रतियोगितया चर्चितस्य यमस्यैव कर्तृत्वेनाक्षेपे प्रकरणस्वारस्यात् । अभिप्रायोऽयं नचिकेतसो यत् वहुधा पितुरनुक्तनिर्देशकरणात् बुहुषु शिष्येषु प्रथमो अहं, प्रोक्तपालनाच्च बहुषु मध्यमः, मयि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्तमानेऽत्र पितुः सेवा स्यात् मया यमः किं कार्यं करिष्यति यतोहि नाहं तस्य पुत्रः शिष्यो वा यत् तस्य अनुक्तप्रोक्तादेशपालने समधिकृतः स्याम् ।।श्रीः।।

तथापि पितुरादेशमनुसृत्य यमालयं गमिष्यामि यथा सौख्यं प्रोद्धर्तुं पितरं भवेत् अतो गच्छति पितरं शोचन्तं निरीक्ष्य तमुवाच पुत्ररत्नम्—

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे ।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ।।६।।

हे पितः ! यथा, येन प्रकारेण पूर्वे, भवतः पूर्वजाः पितृपितामहादयः गौतममुख्याः येन प्रकारेण समाचरितवन्तः तथैव अनुपश्य, आनुकूल्येन विलोकय, तथा तेनैव प्रकारेण परे, पश्चाद्भाविनः कुलन्धराः यथा त्वत्तः गृहीतशिक्षाः धर्मं रक्षिष्यन्ति तानपि प्रतिपश्य प्रतिक्रियया अनुभव । अर्थात् ये भवतो पूर्वजाः सत्यवादिनः तान् समीक्ष्य भाविनः सत्यवादिनोऽपि विविच्च प्रतिज्ञातो माविचल सत्यनिष्ठां द्रढयितुं शरीरभङ्गुरतामुत्तरार्धेन विवृणोति—'मर्त्यः' मरणधर्मा सस्यम् इव, धान्यमिव पच्यते, स्वयमेव पक्वो भवति, तण्डुलः पच्यते इतिवत् कर्मकर्तृप्रयोगः । पुनः, भूयः सस्यमिव गोधूमादि प्ररोहमिव आजायते मातुर्गर्भमागत्य प्रादुर्भवतीति भावः । अत्रोपमाद्वयेन द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति इति न्यायभङ्गिम्ना मर्त्यस्यावश्यं विनाशं सूचयन् सत्यान्नचलितुं पितरमनुरून्धे ।।श्रीः।।

इत्थं स्वेनैन समुपदिष्टेन पित्रा समनुज्ञातो मृत्युमभिगन्तुं तत्र गतो नचिकेता यममलभमानस्तद्गृहद्वारमधिवसन् प्रतीक्षाञ्चक्रे । अतीत्य दिनत्रयं गृहं प्रत्यागतं यमराजं पतनात् त्रायमाणा यमराजपत्नी पतिं प्राह वैश्वानर इत्यादि—

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
तस्यैताँ शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ।।७।।

वैवस्वत् , विवस्वान् सूर्यः तस्य अपत्यं पुमान् वैवस्वतः अपत्यार्थोऽण् प्रत्ययः तत्सम्बुद्धौ हे वैवस्वत् हे भानुपुत्र ! पत्युर्नामाग्रहणनिर्देशस्य स्मृतिनिगदितत्वात् यमेति न सम्बोधयति । वैवस्वतोदकम् इत्यत्र पत्न्याः निकटस्थत्वात् दूराह्वान विषयकप्लुताप्रवृत्या गुणसन्धिः । वैश्वानरः, अग्निः तत्सदृशः अत्र वैश्वानरशब्दस्य सिंहोमाणवक इति वत् लक्षणा, यद्वा इवेति शब्दोऽध्याहर्त्तव्यः एवं पावकसमानः तेजस्वी ब्राह्मणः ब्रह्माधीयानो ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो विप्रवटुः । अथ कथं पूर्वं भवद्व्याख्यानुसारं कौमारं पञ्चवर्षात्मकं वयः प्राप्य नचिकेतसा ब्रह्माध्येतुं शक्येत वेदाध्ययनं ह्युपनयनमूलकं तच्चाष्टवर्षस्य ब्राह्मणवटोः सम्भवम् **अष्टवर्षं हि**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्राह्मणमुपनयीत इति श्रुतेः । साधु पृष्टम्, अष्टवर्षस्य ब्राह्मणवटोरुपनयनं श्रुतेरुत्सर्गवादः विशेषस्तु गर्भात्पञ्चमे वर्षे पुत्रमुपनयति ब्रह्मवर्चस्कामः । एवं राजन्यः षष्ठवर्षपुत्रमुपनयीत बलकामः, सामान्यस्त्वेकादशवर्षम् । अतएव भगवान् श्रीरामोऽपि सभ्रातृकः कौमारीं पञ्चवर्षावस्थामतीत्य षष्ठे वर्षे बलकामेन चक्रवर्तिदशरथेन समुपनीतः, तथा गायन् मानसकारः—

भयेकुमार जबहि सब भ्राता । दीन्ह जनेउ गुरु पितु माता ।

(मानस १/२०४/३)

तथैवात्रापि ब्रह्मवर्चसकामेनोद्दालकेन नचिकेता गर्भात् पञ्चमेऽब्दे समुपनीतः, तस्मादेव वेदमधीते तच्छिष्यतां प्राप्य यथा तेनैव पूर्वमुक्तं बहूनामेमि प्रथमः । ननु पञ्चवर्षबालो कुमार इत्यत्र किमप्यार्षवचनं प्रमाणं प्रदश्यमिति चेत् पश्य–सनकादयः सततं पञ्चवर्षाः अतस्ते कुमारा इति व्यवह्रियन्ते **वृद्धा दशार्धवयसो विदितात्मतत्वाः** (भागवत ३/१५/२९) **पञ्चषड्ढायना बाला पूर्वेषामपि पूर्वजाः** इत्यपि पुराणान्तरम् । अतिथिः, न विद्यते आगमनतिथिः यस्य तथाभूत आगन्तुकः गृहान् , गृहस्थसद्मानि प्रविशति, प्रविष्टो भवति । तात्पर्यमेतत् यदतिथिर्ब्राह्मणो वटुः अग्निरिव तेजोमयः सर्वदहनसमर्थश्च गृहस्थभवनं प्रविशति सः अर्घ्यादिसम्मानपयसा प्रशमयितव्यः । तस्य, पावकतेजसो ब्राह्मणवटोः एताम् , सत्क्रियारूपाम् शान्तिम् , अमङ्गलनिवरणरूपां कुर्वन्ति, सर्वे गृहस्थधर्मविदः समाचरन्ति अतस्त्वमपि उदकम् , पाद्यार्घ्याचमनीयरूपं हर, तस्मै नय, अत्र प्रार्थनायां लोट् । यथाग्निः पयसा शाम्यमानो नामङ्गलाय प्रभवति तथैव ब्राह्मणोऽपि प्राप्तसम्मानोदकः नानिष्टायेष्टे ।।श्रीः।।

यमपत्नी तमेवार्थमपरेणमन्त्रेण भूयोऽपि व्याहरति—

आशा प्रतीक्षे संगतँ सुनृतां
च इष्टापूर्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान् ।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ।।८।।

इदानीं अनशनतोऽतिथेः सकाशात् षण्णां वस्तुनां विनाशभयमपि पत्ये दर्शयति– यस्य, गृहधर्मिणः अल्पा मेधा धारणाशक्तिः यस्य स अल्पमेधा तथाभूतस्य अल्पमेधसः क्षुद्रबुद्धेः पुरुषस्य, तस्य नरस्य गृहे, भवने अनश्नन्, अलब्धभोजनः ब्राह्मणः, विप्रः वसति तस्य किं किं नाशयति, इत्यत आह—आशाप्रतीक्षे, आशा च प्रतीक्षा च ते, अत्र लक्षणया आशाप्रतीक्षे प्राप्तधने इत्यर्थः संगतम्, सम्यक प्राप्तं धनं सूनृतां,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्यवाणीं इष्टापूर्ते, यज्ञदानादि वापीनिर्माणादिजनितफले सर्वान् पुत्रपशून् पुत्रपशुसम्पदः एतद् सर्वं वृङ्क्ते; विनाशयति अतो नावमन्तव्योऽतिथिः ।।श्रीः।।

अथ पत्न्या प्रेर्यमाणो यमो नचिकेतसे समर्पितषोडशविधानसमर्चः निजव्यतिक्रमप्रायश्चित्तं चिकीर्षुः स्वगृहं तिस्रो निशाः समध्युषितस्य निरन्नस्य नचिकेतसो रोषशान्तये प्रह्वः प्राह—

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीगृहे मे
अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः ।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात् प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व ।।९।।

ब्रह्मन् ब्राह्मणवटो यत् तिस्रोरात्रीः यस्मात्रात्रित्रयं यावत् अत्रात्यन्तसंयोगे काले द्वितीया, मे मम यमराजस्य गृहे अनश्नन् अवात्सीः अभुञ्जानः निवासमकार्षीः मे नमस्यः अतिथिः, नमस्कारयोग्यः ब्रह्मन्, ते नमः अस्तु, तुभ्यं नमस्कारोऽस्तु, मे मह्यम् स्वस्ति अस्तु, अत्र स्वस्तिनमसोः योगे नमःस्वस्ति इत्यादिना चतुर्थी । तस्मात्, प्रति प्रत्येकरात्रिक्रमेण त्रीन् वरान् , त्रिसंख्याकवरदानानि वृणीष्व याचस्व ।।श्रीः।।

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ।
त्वप्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीतं एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ।।१०।।

अथ नचिकेता प्रथमं वरं वृणीते–मृत्यो, हे प्राणिमरणविधायिन्, गौतमः गौतमवंशजो मे पिता यथा शांतसंकल्पः शान्ताः स्वर्गादिसंकल्पाः यस्य तथा भूतः निरस्तलौकिकसंकल्पः वीतमन्युः, वीतः नष्टः मन्युः क्रोधःयस्य तथाभूतः, अथ सुमनाः प्रसन्नमनाः यथा स्यात् येन प्रकारेण भवेत् । मां नचिकेतसमभिवदेत्, अभीष्टं वदेत् तथा येन प्रकारेण त्वत् प्रसृष्टं, त्वया यमराजेन प्रेषितं मा माम् प्रतीतः विश्वस्तः मामभिमुख्येन तोषयेत् त्रयाणां भवदुक्तवरदानानां प्रथमं वृणे याचे ।

इत्थं प्रथमवरदानस्वीकृतिं सूचयति—

यथा पुरस्ताद्भविता
प्रतीत औद्दालकिरारूणिर्मत्प्रसृष्टः ।
सुख ँ् रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां
ददृशिवान्मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ।।११।।

औद्दालकिः, औद्दालक एव औद्दलकिः स्वार्थे इञ् प्रत्ययः । आरुणिः, अरुणस्य गोत्रापत्यं पुमान् ते पिता, वाजश्रवसः पुरस्तात् नाचिरात् यथाप्रतीतः भविता विश्वस्तः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भवेत् । एवं मत्प्रसृष्टः मया यमेन प्रसृष्टः प्रेरितः वीतमन्युः, विगतरोषः त्वां नचिकेतसं मृत्युमुखात् मरणवदनात् प्रमुक्तं प्रत्यागतं ददृशिवान् दृष्टवान् सन् रात्रीः वह्वी निशाः सुखंशयिता सानन्दं सुप्ता तथैव यतिष्यामहे इति भावः ।।श्रीः।।

इत्थं यमराजात् पितृपतितोषरूपप्रथमवरदानं प्राप्य नचिकेता द्वितीयवरं प्रार्थयते स्वर्गेति—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया विभेति ।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।।१२।।

द्वितीयवरदाने स्वर्गावाप्तिकारणमग्निं याचिष्यमाणः प्राक् तल्लक्ष्यं स्वर्गं स्तौति– स्वर्गे लोके, देवलोके किंचन भयं नास्ति, तत्र द्वितीयाभिनिवेशाभावात् नास्ति भीतिरित्यर्थः । तत्र, स्वर्गे त्वं, यमराजोऽपि भवान्, न जरया, वार्धकेन न बिभेति न तृण्यति जीव इतिशेषः । अशनाया बुभुक्षा, पिपासा तृट् ते अशनाया पिपासे क्षुत्तृषौ उभे तीर्त्वा, समतिक्रम्य शोकातिगः, शोकमतिगच्छति आत्मज्ञानेन व्यपोहति तथाभूतः स्वर्गलोके, दिवि मोदते प्रसीदति ।।श्रीः।।

लक्ष्यं स्तुत्वा तत्प्राप्तिसाधनभूतमग्निं याचते द्वितीयवरेण सेत्यादि—

स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वँ श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ।।१३।।

मृत्यो ! म्रियन्ते जनाःयेन तथाभूतः त्वं यथा जीवान् मारयित्वा प्राणेभ्यो विनियुङ्क्षि तथा मम संशयप्राणमपि मदन्तःकरणात् वियोजय, इति मृत्योः विशेषणस्य तात्पर्यम् । स त्वं, सर्वज्ञः स्वर्ग्यं स्वर्गाय हितम् अग्निं पावकाधानप्रयोगमध्येषि अधिकृतं जानासि अतः मह्यं नचिकेतसे श्रद्दधानाय अस्तिकबुद्धये ब्रूहि उपदिश । ननु कथमिव स्वर्गप्राप्तिसाधनमग्निं याचसे ? इति जिज्ञासमानं प्रत्याह–स्वर्गलोकाः, स्वर्गःलोकःयेषां तथाभूतः स्वर्गीयाः इति भावः, अमृतत्वं, म्रियन्ते इति मृताः मनुष्याः तद्भिन्ना अमृताः देवाः तेषाम् अमृतानां भावः अमृतत्वं भजन्ते प्राप्नुवन्ति । यथा स्वर्गिणों जरामरणरहिताः तथाहमपि तादृक् भवेयमिति जिज्ञासे । यद्वा स्वर्गपदमत्र परमेश्वरधिष्ण्य साकेतगोलोकवैकुण्ठपरम् अतएव न तत्र त्वमिति प्रागुक्तं संगच्छते । तथा व्युत्पत्तिः स्वः स्वर्गलोकेऽपि गीयते स्तूयते इति स्वर्गः एवं तत्रत्या अमृतत्वं न विद्यते मृतत्वं जन्ममरणप्रपञ्चं यस्मिन् तत् अमृतत्वं अमृतत्वं परब्रह्म अतएव **सोऽमृतत्तवाय कल्पते** इति गीतावचनमपि संगतम् । तादृशम् अमृतत्वं स्वर्गस्थाः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भजन्ते सेवकसेव्यभावेन भगवन्तं सेवन्ते, एतत् इदमेव भगवत्प्राप्तिसाधनं द्वितीयेन वरेण वृणे याचे ॥श्रीः॥"

इत्थं नचिकेतसा प्रार्थ्यमानो यमो द्वितीयं वरं दित्सुस्तन्महिमानं कीर्तयति—

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ।।१४।।

हे नचिकेतः ! आरुणेय अनन्तलोकाप्तिम्, नास्त्यन्तः क्षयः यस्मात् सोऽनन्तः स चासौ लोकश्चेत्यनन्तलोकः साकेतः नतु देवलोकः, देवलोकस्य सान्तत्वात् अत्रोपात्तानन्तविशेषणेन तस्य स्वत एव व्यावृतत्वात् । तस्य अनन्तलोकस्य साकेताख्यस्य आप्तिः प्राप्तिः येन तथाभूतं यद्वा, अनन्तो परब्रह्ममिधानो रामः तस्य लोकस्य आप्तिः यस्मात् तम् । अथो अनन्तरं प्रतिष्ठां यः जीवाय भगवति प्रतिष्ठामर्पयति । अथवा यस्य गतिनिवृर्तिर्न जायते अभिन्नत्वात् प्रष्ठिायाः तच्छब्देनैव विशिष्यते । तादृशं स्वर्ग्य स्वर्गप्रापकम् अग्निं ते नचिकेतसे, प्रब्रवीमि प्रकर्षेण कथयामि । अत्र व्यवहितोऽपि इति निर्देशेन ते शब्दात् प्राक प्र प्रयोगः । तत्, रहस्यं उ निश्चयेन मे निबोध, मम सकासात् जानीहि । त्वं नचिकेतः एवम् अग्निं गुहायाम् निहितं, शास्त्रकन्दरे निगूढं विद्धि जानीहि ॥श्रीः॥

इति तदध्ययने प्रवृत्तिविवर्धयिषया तदग्निरहस्यं स्तुत्वा साम्प्रतं नचिकेतसे तमुपदिशति लेकेति—

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा ।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ।।१५।।

अथ यमः तस्मै, नचिकेतसे तं, लोकादिं, लोकस्य प्रापकम् अग्निम् उवाच अकथयत् । तत्र याः, यद्रूपाः यावतीः वा यथा वा, यत् प्रकारिका यत् प्रमाणाश्च इष्टिका तत् सर्वं न्यवेदयत् । स चापि नचिकेतापि यथोक्तं, यमोक्तमनुसृत्य तत्प्रत्यवदत् विदित्वा तथैव न्यवेदयत् व्युत्पन्नबुद्धित्वात् । अथ, नचिकेतसः प्रतिभां विलोक्य अस्य नचिकेतसः तुष्टः मृत्युः यमः पुनः एव आह अयाचितमपि वरदानमपरं दत्तवान् ॥श्रीः॥

अयाचितवरप्रकारं व्यनक्ति—

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः ।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ।।१६।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रीयमाणः शिष्यप्रतिभया प्रभावितः नितरां संतुष्यन् महात्मा महान् पूजनीयः आत्मा धैर्यविशेषः बुद्धिव्यापारो वा यस्य तथाभूतः तं नचिकेतसम् अब्रवीत् । कथन प्रकार माह—वत्स ! अद्य सम्प्रति भूयः अपि त्वया नयाच्यमानोऽपि स्वाभिलषितमेकं वरम् अद्य ददामि इतः पूर्वमयचितो न कस्मैचित् प्रादाम इत्येवाद्यस्वारस्यम्, एषः अग्निः तवैव नचिकेतस एव नाम्ना अनिधानेन भविता ख्यातिं गमिता । च अपरम् अपि एकम् उपहारं ददामि अनेकानि रूपाणि अवयवसंस्थानानि यस्यां तादृशीम् इमाम् अनेकरूपां सृङ्कां देवनिर्मितां मालामपि गृहाण निजवक्षसि परिधत्स्व ।।श्रीः।।

अधुना सोपदिष्टस्य अग्नेर्महत्वं वर्णयति त्रिणाचिकेत्यादि—

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमाँ शान्तिमत्यन्तमेति ।।१७।।

नचिकेतसः अयं नाचिकेतः पृषोदरादित्वांत् सकार लोपः । त्रिवारं अनुष्ठितः नाचिकेतः अधुनैव मयोपदिष्टोऽग्निः येन स त्रिणाचिकेतः **ऋवर्णान्नस्यणत्वं वाच्यम्** इत्यनेन णकारः, वारत्रयं नाचिकेताग्नेरनुष्ठानकर्ता इति भावः । त्रिभिः ऋग्यजुः-सामभिः यद्वा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिनामकै अवस्थाविशेषैः अथवा इडापिङ्गला-सुषुम्नानाडीविशेषैः सन्धिं समागमम् एत्य प्राप्य, पुनः त्रीणि यज्ञतपोदानानि अथवा ज्ञानवैराग्यभक्त्यनुसारीणि उत वा नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तानि अथवा ब्रह्मचर्य-गार्हस्थवैखानसानुरूपाणि कर्माणि वेद विहितानि इत्यनेन अकर्मविकर्माणिप्रत्युक्तानि । एवं व्याख्यातानि त्रीणि कर्माणि करोति इति त्रिकर्मकृत्, जन्ममृत्यू जन्मच मृत्युश्च इति जन्ममृत्यू घि संज्ञत्वेऽपि मृत्योरनभ्यर्हितत्वत् पश्चात् प्रयोगः । एवं जन्ममरणबन्धने तीर्त्वा तरणविषयो विधाय संसारसागरं तरति । तथा ब्रह्मवेदः तस्मात् जायते इति ब्रह्मजज्ञः तम् ईड्यं स्तुतियोग्यं देवं परमज्योति स्वरूपम् अग्निं विदित्वा सदगुरुकृपया विज्ञाय इमां नाचिकेताग्निविद्यां निचाय्य चयनविषयिणीं विधाय अत्यन्तशान्तिं निरवधि-शान्तिस्थितिमेति गच्छति ।।श्रीः।।

भूयः तद् विद्यामहत्वमेव संस्तौति त्रिणाचकेत इति—

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वाँ श्चिनुते नाचिकेतम् ।
स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।।१८।।

यः एवं त्वादृशो मेघावी विद्वान् विजानन् एतत् त्रयम् इष्टिकास्वरूपम् इष्टिका परिमाणम् इष्टिकानिर्माणप्रकारं च विदित्वा ज्ञात्वा, नाचिकेतं एतन्नामकमग्निं चिनुते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चयनविषयीकरोति, सः तृणाचिकेतः त्रिः नाचिकेताग्नेरनुष्ठानकारी पुरतः प्रारब्धप्राप्तशरीरस्य संस्थितावेव न तु शरीरनाश इति भावः, मृत्युः मदभिन्नो यमः तस्य पाशान् बन्धनानि यातनारूपाणि प्रणोद्य विभज्य शोकातिगः अतिक्रान्त प्रियवियोगजनितशोकः नित्यमेव तस्य परमप्रियतमपरमात्मना सह सन्निहितत्वात् स्वर्गलोके साकेते मोदते भगवता सह तत्कैंकर्यसुखमनुभवन् प्रसीदति ।।श्रीः।।

पुनःविद्याया अस्याः माहात्म्यवर्णनमुपसंहरन् तृतीयं वरं याचितुं नचिकेतसं समीरयति वैवश्वतः—

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण ।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ।।१९।।

हे नचिकेतः ! एषः अयं स्वर्ग्यः स्वर्गसोपानभूतः अग्निः ते अधुना त्वद् धनरूपो जातः ते इति संबन्धे षष्ठी.। यम् अग्निं द्वितीयेन वरेण अत्राभेदे तृतीया । द्वितीयवरदानाभिन्नतथा अवृणीया वृतवानासि, जनासः सर्वेजनाः जनशब्दात् प्रथमाबहुवचने जसि **आज्जसेरसुक्** पा०आ० ७-१-५०इति पाणिनीयसूत्रेण असुगागमे रुत्वे विसर्गे जनासः छान्दसोऽयं प्रयोगः लोकेतु जना इत्येव । एतमग्निं तवैव तव संम्बन्धिनमेव अथवा त्वन्नाम्नैव प्रवक्ष्यन्ति ख्यापयिष्यन्ति । हे नचिकेतः ! इदानीं शेषं तृतीयं वरं वृणीष्व याचस्व ।।श्रीः।।

अथ यमाद्वरद्वयं प्राप्य जगत्कल्याणकामेन नचिकेतसा तृतीयस्मिन् वरे आत्मानात्मविवेकपुरःसरमात्मज्ञानलिप्सुना तद्विषयक प्रश्न एव बव्रे । अत्रेदमवधेयं यदस्मिन् औपनिषददर्शने आत्मपदवाच्ययोः जीवात्मपरमात्मनोर्मीमांसा नितरामभीष्टा तत्राभेदश्त्वौपचारिकः । पारमार्थिकस्तु भेद एव अतो यत्र कुत्रापि श्रुतिभिरभेदः कथ्यते तत्र सिंहोमाणवक इतिवत् संम्बन्धतः ब्रह्मजीवयोरैक्यं नैवप्रतिपद्यामहे इति तत्र तत्रासकृदवोचाम ।

तथैवात्र नचिकेता अपि तृतीयवरदानरूपेण पक्षद्वयोपस्थापनच्छलेन जीवात्म परमात्मनोः विषये जिज्ञासामुपस्थापयति । यद्यपि नचिकेता नास्ति नास्तिकः पूर्वमेव (अनन्दा नामतेलोका) इति निगदता तेन सुस्पष्टं लोकपरलोकयोः स्वीकृतत्वात् । चार्वाकादिनास्तिकानां नये मरणामन्तरमात्मसत्ता नाङ्गीकृता । तेव्याहरन्ति—**यावद् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः** तेषां मते राजा एव ईश्वरः अङ्गनादिसुखमेव स्वर्ग्यसुखम् । किन्त्वास्तिकाः समुपस्थापयन्ति तर्कम्–यद्यद्कार्य तत् तत् कर्त्राधीनं कार्यत्वात् घटवत्, नहि कर्तारमन्तरेण किमपि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार्यं भवति अतो विलक्षणसृष्टेः विलक्षणकर्तृत्वेन परमेश्वरोऽनुमीयते। यदि जीवस्य पुनर्जन्म न स्यात् तर्हि कथं पयसा क्षुच्छान्तिमजानन् सद्योजातः शिशुः मातुः स्तन्यपाने प्रवर्तेत, नूनं पयसि स्पृष्टे रसनायां बालकः प्राक्तने जन्मनि स्वानुभूतचरीं प्रसुप्तवासनां स्मरति, नोचेत् भयपरिभाषामविदान् लघुशिशुः कथं भयंकरशब्देभ्यः भयंकराकृतिभ्यश्च विभेति, अतः सुस्पष्टं पृच्छति—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ।।२०।।

या आसृष्टेः प्रसिद्धा इयम् एषा सर्वजनविदिता प्रेते प्रेतेशरीरं विहाय मृते, अत्र विषये सप्तमी प्रेतविषये इत्यर्थः, मनुष्ये मननशीले मानवे अत्र औपश्लेषिकी सप्तमी, उपश्लेषश्च मनोऽवच्छेदेन मनुष्यमानसमुपश्लिष्टा, विचिकित्सा संशीतिः तत् प्रकारमाह- एते आस्तिका आमनन्ति यत् मृतेऽपि जने आत्मसत्ता न म्रियते, तथा हि पाणिनिर्धातुं पठति **मृङ्प्राणवियोगे** मरणे प्राणाः खलु वियुज्यन्ते, न त्वात्मा तस्य परमात्मना सह नित्यसंयुक्तत्वात्। एके नास्तिकाः कथयन्ति–अयं जीवात्मा नास्ति, एतयोः कतरः पक्षः समीचीनः इत्येतत् त्वया यमराजेन अनुशिष्टः उपदिष्टः अहं नचिकेता विद्यां जानीयाम्, एषएव आत्मज्ञानोपदेशः वराणां त्रयाणां मध्ये तृतीयः वरः भवता देय एव ।।श्रीः।।

प्रश्नमेनं बालमुखात् निशम्य नानधिकारिणे ब्रह्मविद्योपदेशः कर्तव्यः इतिकृत्वा पूर्वं यमः अधिकारिपरीक्षणचिकार्षया प्रश्नजाटिल्यवर्णनमुखेन नचिकेतसं विचालयति—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ।।२१।।

हे नचिकेतः ! अत्र आत्ममीमांसामां देवैः दैवीसम्पदमुपेतैः सुरैः पुरा पूर्वस्मिन् काले विचिकित्सितं संशयितम्, इदं रहस्यं सुविज्ञेयं सुखेन ज्ञातुं शक्यंः नहि, एवं आत्मजिज्ञासारूपो धर्मः निवृत्तिनिरतैरनुष्ठेयः अणुः सूक्ष्मतमः। तस्मात् त्वमेतस्मादन्यमपरं वरमभीप्सितं वृणीष्व वरय। नचिकेतः ! मा मां यमं मा मा उपरोत्सीः उपरुद्धं माकुरु माकुरु, एवमात्मविषयकप्रश्नवरं अतिसृज त्यज। यद्वा स्वपित्रे एनं वदान्यत्वात् एवं प्रश्नं कश्मैचित् तुरीयाश्रमसेविने देहि ।।श्रीः।।

प्रश्नजाटिल्यं श्रुत्वा नचिकेता न विचचाल भूयोऽपि दृढतया तं पप्रच्छ—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ।।२२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे मृत्यो ! सूर्यपुत्र, त्वं यमराजः आत्थ अचकथः, यत् अत्र आत्मविषये देवैः विवुधैरपि किल निश्चयेन विचिकित्सितं संदेहः कृतः । च अपरं यदात्थ न सुविज्ञेयं सरलतया ज्ञातुं नशक्यम् । अतः प्रत्येमि यत् त्वादृक् भवादृक् अन्यः अस्य धर्मस्य वक्ता उपदेशकः न लभ्यः न प्राप्यः, एतस्य वरस्य तुल्यः समानःकश्चित् कोऽपि अन्यःवरः अपरवरदानं नास्ति, अयं अद्वितीय इति भावः ।।श्रीः।।

भूयः तं प्रलोभयितुमीहते यमराजः—

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणाष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ।।२३।।

शतं वर्षाणि आयुः जीवनं येषां तथा भूतान् पुत्रपौत्रान् संन्ततिसुखं वृणीष्व याचस्व । बहूनसंख्याकान् पशून् गोप्रभृतीन् हस्तिहिरण्यं हस्ति भारमितं सुवर्णं हस्तिभारमितं हिरण्यमिति विग्रहे शाकपार्थिवदित्वात् भारमिति शब्दलोपे हस्तिहिरण्यं साधु । यद्वा हस्तिनो हिरण्यस्यचसमाहारे बाहुलकात् समाहारद्वन्दः, अश्वान् हयान् भूमेः पृथिव्याः महत् विशालम् आयतनं विभागं वृणीष्व वरय । च अन्यदपि यावत् शरदः वर्षाणि इच्छसि तावत् जीव प्रणान्धारय अहमेव सर्वान् मारयामि तुम्यं च जीवनं ददामि ।।श्रीः।।

भूयोऽपि तं प्रलोभयितुं लोभनीयवस्तूनि संकीर्तयति—

एततुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च ।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ।।२४।।

हे नचिकेतः ! एतत्तुल्यमेतेन तुल्यं समानं यदि अन्यं वरं मन्यसे तर्हि वृणीष्व । वित्तं धनं चिरजीविकां वृत्तिं याचस्व, एवं महाभूभौ विशालपृथिव्यां त्वमेधि अधिपतिः भूत्वा वर्धस्व कामानाम् इष्टपदार्थानां मध्ये त्वा भवन्तं कामभाजं श्रेष्ठकामयुक्तं करोमि ।।श्रीः।।

पुनः स्वर्गसुखप्रलोभनं ददाति—

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
अभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ।।२५।।

ये ये कामाः इष्टपदार्थाः मर्त्यलोके दुर्लभाः दुःष्प्राप्याः सर्वान् कामान् रमणीयभोगान् छन्दतः स्वेच्छातः प्रार्थयस्व याचस्व । पश्य, इमाः ममादेशात् स्वर्गतः समागताः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरथाः रथादिवाहनयुक्ताः सतूर्याः तूर्यादिवाद्यविशिष्टाः रामाः रमण्यः सन्ति ताः तुभ्यं ददामि, मया यमेन प्रत्ताभिः अर्पिताभिः आभिः परिचायस्व आत्मानं सेवयस्व । तव भाग्यमेतत् ईदृशाः वारांगनाः छन्दतस्त्वधीना इति भावः । मनुष्यैः मरणधर्मभिः न लम्भनीयाः न लङ्घितुं शक्याः । अतः इमाः लम्भय किन्तु मरणं अनुशरीरत्यागानन्तरं कि भवति इति मां मा अनुप्राक्षीः मा जिज्ञासिष्ठाः । यद्वा मकारो जीववाची तस्य अरणं शरणं इति मरणं शकन्ध्वादित्वात् पररूपम् एवं जीवशरणभूतं परमात्मानं मा प्रच्छ इति भावः ।।श्रीः।।

इत्थं त्रिभिरपिप्रलोभनैर्न लोभितः नचिकेता सर्वान् कामान् तिरस्कुर्वन् आत्मज्ञानमेव याचते—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जयरन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ।।२६।।

हे अन्तक ! सर्वान् अन्तयति विनाशयति इत्यन्तकः तत् सम्बुद्धौ । सर्वान्नन्तयन्नपि अन्तवत् सुकामेषु मां निक्षिपसि इति चित्रम् इत्यन्तकशब्देन काकुः । स्वः अग्रिमदिने भावः सत्ता येषां ते श्वोभावाः क्षमभंगुराः, यत् यतो हि मर्त्यस्य मनुष्यस्य सर्वेन्द्रियाणां सकलहृषीकाणाम् एतद् वर्तमानं तेजः वीर्यं जरयन्ति नाशयन्ति अतोनाहमेतान्वृणे ।

अपि किञ्च, सर्वजीवितं जीवनम् अल्पमेव क्षणभंगुरत्वात् तस्मात् वाहाः वाहनानि नृत्यगीते वाराङ्गना सुखप्रदे तवैव तवैव उपेक्षणीयत्वात् द्विरूक्तिः । तव पार्श्वे एव तिष्ठन्तु तव पार्श्वे एव तिष्ठन्तु, ब्रह्मचर्याश्रमे स्त्रीकीर्तनस्य निषिद्धत्वात् तन्नाम स्मृत्याप्यलम् ।।श्रीः।।

भूयः प्रलोभनानां निःसारतां वर्णयन् तस्मिन्नेव वरदाने निष्ठां प्रदर्शति—

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्वा ।
जीविष्यामो यावदीशिस्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ।।२७।।

यद् भवता वित्तस्य प्रलोभनं दीयते तदप्यसंगत् । यतो हि मनुष्यः मननशीलो द्विपाद् वित्तेन न तर्पणीयः, यतोहि सः लोकपरलोकं जानाति तथापि असम्भावना नास्ति त्वां यमराजम् अद्राक्ष्म साक्षादकार्ष्मचेत् तदा वित्तं धनं लप्स्यामहे प्राप्स्यामः । यावत् त्वं यमराजः यावत् कालमीशिष्यसि यमराजपदे शासनं करिष्यसि तावत् जीविष्यामः, यतो हि भवतः वशे मरणमहं च भवतः शिष्यः, नहि कोपि गुरुः शिष्यं मारयति । सामान्य प्रणामेऽपि चिरन्जीवेत्याशास्ते तस्मादिदं सर्वं स्वाभाविकम् अतः स आत्मज्ञानविषयकः वरः मे मम यमराजस्य वरणीयः प्रार्थनीयः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनः स्वर्गसुखनिरर्थकतां वर्णयति–

जीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् ।

अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ।।२८।।

हे यमराज ! सौभाग्येन भवादृशानां सम्पर्को जायते, मानवस्तु स्वकर्मवशात् निम्नभोगान् भुन्जानो भूमेरधोगतिं गतः । तथाच मर्त्यः मरणधर्मा जीर्यन् जीर्णतां गच्छन् कुः पृथिवी तस्याः अधः सूकरादिस्थानानि अमृतानां मरणरहितानां भवताम् अजीर्यताम् अविनाशिभावम् उपेत्य प्राप्य, वर्णः ललनासौंदर्य रतिः स्मरकेलिः प्रमोदः अभीष्टलाभः तान् अभितः ध्यायन् चिन्तयन् अतिदीर्घे विशाले जीविते जीवने कः रमेत को नाम मंदभाग्यः अनुरक्तो भवेत् । अथवा जीविते अकः रमेत कं सुखं तन्नास्ति यस्मिन् अर्थात् दुःखभाग् रमेत् ।।श्रीः।।

अधुना निजाभिलषितमेव लब्धुं साग्रहं याचते—

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् ।

योऽयंवरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ।।२९।।

हे मृत्यो मरणनियन्तः । यस्मिन् विशिष्टविषये इदं मत्प्रश्नानुरूपं विचिकित्सन्ति संशेरते यच्च महति दुर्ज्ञेये साम्पराये शरीरत्यागसम्बन्धे विचिकित्सितं, यः भवता चर्चितः वरः वरदानविषयः आत्मतत्वविषयः गूढम् अनुप्रविष्टः गोपनीयतां गतः । तत् तदेव परमात्मतत्वं नः अस्मभ्यं विशिष्टाधिकारिभ्यः ब्रूहि कथय । नचिकेता एतन्नामधिकारी मदनन्यः अन्यमस्मादितरं वरं वरदानं न वृणीते इति ।

।। इति कठोपनिषदि प्रथमाध्याये प्रथमवल्ली ।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

अथ द्वितीयवल्ली

पूर्ववल्यामूनत्रिंशन्मन्त्रैरधिकारियोग्यता साख्यानं निरूपिता । स एव ब्रह्मविद्याया अधिकारी यः खलु मातृपित्र्यतिथ्याचार्यदैवतकः सदाचारनिरतः आस्तिकबुद्धिसम्पन्नः जिज्ञासुः आध्यात्मज्ञाने दृढनिश्चयः प्रशस्ताचार्यवांश्च ब्राह्मणः **आचार्यवान् पुरुषो वेद विद्याहवै ब्राह्मणमाजगाम** इत्यादि श्रुतिप्रमाणात् । सौभाग्यतः नचिकेता सकलगुणसम्पन्नः पिता च तस्य गौतमवंशजो महर्षिः उद्दालकः **ब्राह्मणो गृहान्, नमस्तेस्तु ब्रह्मन्** इत्यादि श्रुत्यनुरोधात् **तस्यह नचिकेता नाम पुत्र आस** इति श्रुतेश्च ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सवर्णाया: ब्राह्मणपत्न्या: कुक्षावपि जात: । न खलु ब्राह्मणपुत्रो ब्राह्मण: प्रत्युत् ब्राह्मणीपुत्र: एवं ब्रह्मणेन ब्राह्मण्यां गर्भाधानसंस्कारपु:सरं संजनित: तप:श्रुताभ्यामुपबृंहित: ब्राह्मण: । **तप: श्रुतञ्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मणकारणम्** इति वचनात् । यमराजसदृशो भागवत्धर्माचार्यो भगवत्स्वरूपाचार्य: **यम: संयमतामहम्** इति गीतोक्ते: । तस्य भगवद् विभूतित्वात् निष्ठापि कियती दृढतमा यत् परेतभर्त्रा दत्तैस्त्रिभिरपि प्रलोभनैश्चाञ्चल्यं नागमत्, अत उत्तमश्रेणीक: अधिकारी अधुना किमपेक्षते यद् यद् अपेक्षितं तत् तत् प्राप्तम्, इदं सर्वं प्रदर्शयितुं प्रथमवल्लीयं प्रवर्तिता अतश्चैतां अधिकारिबल्लीति ब्रूम: । साम्प्रतमात्मविषयकं प्रश्नमुत्तरयितुं प्रारभते यमराज: अन्यदिति—

अन्यच्छ्रेयोन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुष ँसिनीत: ।
तयो: श्रेय आददानस्य साधुर्भवति हीयतेऽ र्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ।।१।।

यमराज: प्राह—वत्स समीचीनं पृष्टं, श्रेय एतत्, जगतीतले मानवकृते द्वौ मार्गौ प्रसिद्धौ श्रेय: प्रेयश्च, श्रेय: खलु परमार्थ: प्रेयो हि संसारबंधनम् । ननु यच्छ्रेयस्तत्प्रेय: यत्प्रेयस्तच्छ्रेय: इति कथमन्योन्यस्य अन्योन्यस्मिन्नगतार्थता ? इति चेच्छृणु–नेदमावश्यकं यत् श्रेय: प्रियं भवतु प्रेयश्च श्रेयसे कल्प्यताम् । कट्वौषधं प्रेयो न भवति परञ्च श्रेयसे कल्प्यते एवं च लसुनपलपलाण्डुभक्षणं श्रेयसे न कल्प्यते परञ्च प्रेयसे प्रभवत्येव, तथैव संसारपरमार्थयो: प्रेय:श्रेयसोर्मध्ये समुच्चिचीषया अलं, को नाम पीयूषकालकूटयो: समुच्चयं कर्तुं प्रभवति, को नाम गंगाकर्मनाशयो समुच्चयं कुर्यात् । यद्यपि श्रेयसि रत: प्रेय: प्राप्नोति किन्तु प्रेयसि रतस्य श्रेयो नितरां दुर्लभम् इममेवार्थं सुस्पष्टयति । श्रेय: भगवत् प्राप्तिसाधनभूतवर्त्म अन्यत् प्रेयसो विलक्षणम् एवमेव प्रेय: संसार: श्रेयसो विलक्षणम् ते श्रेय:प्रेयसी उभे द्वे शखे नानार्थे भिन्न-भिन्न प्रयोजनवती नैकप्रयोजने इतिभाव: । एवं भिन्नभिन्नप्रयोजनकत्वात् पुरुषं साधकं सिनीत: वध्नीत: । अथ द्वयोर्मध्ये कतरत् गृहणीयात् ? अत आह–तयो: श्रेय:प्रेयसोर्मध्ये श्रेय: परमार्थज्ञानपूर्वकभगवच्छरणागतिरूपं आददानस्य समादरेण गृहणत: साधु भवति । कल्याणं जायते । य: उ निश्चयेन कश्चन् साधनविडम्बनाडम्बरवान् प्रेय: वृणीते संसारमार्गमनुसरति अर्थात् भगवत्प्राप्तिरूपप्रयोजनात् हीयते स: पतित: सन् त्यक्तो भवति ।।श्री:।।

अधुना पुनरपि श्रेय: स्तौति वत्स साधु श्रेय: पृष्टं, हि श्रेय: प्रेयश्च उभावपि निवृत्तिप्रवृत्तिरूपौ पक्षौ मनुष्यं मननशीलसाधकं इत: आदरेण गच्छत: ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।।२।।

उभावपि इमौ मनुष्यं प्राप्नुतः, सम्परेत्य शरीरे सति सत्कर्म कृत्वा प्रारब्धं व्यक्त्वा धीरः तौ विविनक्ति, धीरः धीरबुद्धिः प्रेयः संसारात्, अत्र ल्यब् लोपे पंचमी प्रेयस्तिरस्कृत्य इति भावः । श्रेय कल्याणमेव भगवद्भजनं वृणीते, यः खलु मंदः सः योगक्षेमात् लब्धरक्षणरूपसंसाराद्धेतोः प्रेयः भोगवासनामेव वृणीते ।।श्रीः।।

अधुना नचिकेतसस्त्यागं प्रशंसति—

स त्वं प्रियान् प्रियरूपाँश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षी ।
नैताँ सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ।।३।।

हे नचिकेतः ! वस्तुतस्त्वं श्रेयोऽधिकारी यतोहि त्वं प्रियान् इष्टान् प्रियः इष्टः रूपः परिणामः येषां तथाभूतान् सर्वान् कामान् अभिध्यायन् क्षणभंगुरतया चिन्तयन् अत्यस्राक्षीः आत्यन्तिकतया त्यक्तवान् । इमां तां वित्तमयी धनप्रचुराम् अत्र प्राचुर्ये मयट् सृङ्कां मालामवाप्तः प्राप्तः अत्यस्राक्षीः, यस्यां बहवो मनुष्याः जनाः मज्जन्ति मृगतृष्णाबुद्ध्या विषयसुखलिप्सवः मग्नाः भवन्ति ।।श्रीः।।

पुनरपि नचिकेतसः ब्रह्मविद्याधिकारं प्रशंसन् प्राह—

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ।।४।।

एते इमे विषूची शुभाशुभसूचिके विद्याअविद्या च ज्ञाते विदिते अनयोः न समुच्चयः, एते इमे दूरं विपरीते अत्यन्तं विलक्षणे उभयोः विरुद्धलक्षत्वात्, नचिकेतसं एतन्नामकं त्वां विद्याभीप्सिनं विद्याभिलाषिणं विद्यामभीसति तच्छीलः इति विद्याभीप्सी तं **सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये** इति णिनिप्रत्ययः । मन्ये स्वीकरोमि यतो हि बहवः अनेके कामाः भोग्यपदार्थाः न अलोलुपन्त न लोलुपं कृतवन्तः ।।श्रीः।।

नचिकेतसं बोधयन् अविद्यां गर्हते—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।५।।

अविद्यायां संसारवासनायां भिन्नायाम् अष्टधा प्रकृतौ अन्तरे मध्ये वर्तमानाः, स्वयम् आत्मानं धीराः धीरबुद्धयः पण्डितं मान्यमानाः पण्डितमानिनः, दन्द्रम्यमाणाः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषयैः पुनःपुनः पच्यमानाः अन्धेन दृष्टिहीनेन नीयमानाः गम्यमानाः अन्धा इव नष्टचक्षुष इव मूढाः मूर्खाः, परियन्ति रौरव नरके पतन्ति अर्थात् अविद्यया नाशित-चेतसः नैव ब्रह्मगतिं लभन्त इति भावः ।।श्रीः।।

अधुना विषयगहनतां प्रतिपादयति—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ।।६।।

वत्स ! अयं साम्परायः विषयः अतीव गहनः, यः खलु अनधीतवेदान्तः यश्च निजलक्ष्यात् प्रमाद्यति यश्च धनलोभेन मूढ़ः तादृशं बालमज्ञं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढमेनं साम्परायः मानवस्य मरणोत्तरकालिकदशाविशेषः न प्रतिभाति न प्रतीतिविषयः भवति । प्रतिभातिबालमित्यत्र **अभितः परितः समया निकषाहा प्रतियोगेऽपि** इति द्वितीया । अयं लोकः प्रत्यक्षजगत्, परः परलोकः नास्ति इत्थं परलोकविश्वासशून्यः परलोको नास्ति इति मानी एवं मन्यमाना मे मम मृत्योः पुनः पुनः वारं वारं वशम् आपद्यते नियन्त्रणम् आप्नोति । नास्तिकः सन् नैव मुक्तो भवति सदैव जन्ममरणचक्रावर्ते भ्रमति इतिभावः ।।श्रीः।।

पुनरपि नचिकेतसा पृष्टविषयस्य साम्परायस्य गहनतां संकीर्तयति—

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।७।।

वत्स नचिकेतः ! यदात्मतत्वं त्वमप्राक्षीः सौभाग्येन श्रोतुमिच्छसि श्रुत्वा च ज्ञास्यसि वस्तुतोऽयं विषयः नैव सामान्यः । यः बहुभिः जिज्ञासुभिः श्रवणाय श्रोत्रेन्द्रियविषयीकरणाय न लभ्यः प्राप्यः, यमात्मविषयं शृण्वन्तः आकर्णयन्तः अपि न विद्युः नैवज्ञातुं शक्नुयुः । अत्र शकिलङि इत्यनेन शक्यार्थे लिङ्लकारः । वस्तुतस्तु अस्य आत्मविषयस्य वक्ता उपदेशकः आश्चर्यः आश्चर्यः अस्ति अस्मिन् इत्याश्चर्यः **अर्श आदित्वात्** अच्, आश्चर्यमय इति भावः, अस्य लब्धा प्राप्तिकर्त्ता कुशलः निपुणः अस्य ज्ञाता वेदिता आश्चर्यमयः । स च कुशलेन जनेन अनुशिष्टः सूपदिष्टः, इदमेव गीतायां प्राह सुस्पष्टं भगवान् **आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः आश्चर्यवच्चैन मन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद नचैव कश्चिद्** । (गीता २/२९) ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनरात्मज्ञानस्य दौर्लभ्यं सूचयन् यमराजः प्राह नचिकेतसं यत् वत्स ! इदमात्मज्ञानं सामान्यं नास्ति यद् सामान्येन भोगवादिना प्रोक्तं सत् हृदयङ्गमं भवेत्, एष धर्मः अति सूक्ष्मः नायं लोकगम्यः । इदं खलु भगवत्साधनानिर्मलीकृतचेतसा ज्ञातुं शक्यम् ।

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ।।८।।

अवरेण सामान्येन अल्पीयसा नरेण मानवेन साधनाविहीनेन प्रोक्तः कथितः सन् स्वयमपि बहुधा बहुभिः प्रकारै चिन्त्यमानः विचारविषयः क्रियमाणः एषः अयमात्मविषयः न सुविज्ञेयः नैवज्ञातुं शक्यः । एतज्ज्ञानं केवलं वाचारम्भणं न भवति, एतत्पूर्वभूमिकायां शमदमादिसाधनानि भगवत्कृपाभगवद्भक्तिश्चापेक्षते, अतो गीतायां ज्ञानलक्षणप्रकरणे मध्यवर्तित्वेन भक्तिं प्राह भगवान् तथा च—**मयि चानन्योगेन भक्ति रव्यकिचारिणी** (गीता १३/१०) ननु साधनसम्पन्नवक्तारमन्तरेण स्वत एव श्रुत्यक्षराणि समालोच्य विचारणीयमिदमात्मतत्वं किम् ? इति धारणां निराकरोति, अत्र अस्मिन् आत्मविषये अनन्यप्रोक्ते अन्येन प्रोक्तः अन्यप्रोक्तः तद्भिन्नः अनन्यप्रोक्तः तस्मिन् अन्यप्रोक्तेऽतिरिक्त इति भावः, अर्थात् यावदन्यं स्वातिरिक्तमाचर्येत्वेन न वृणुते तावदस्मिन्प्रवशो न भवति । यद्वा नास्त्यन्यं प्रोक्तं यस्मिन् तथाभूते, गतिः गम्यता नास्ति । तात्पर्यमेतत् यद् वक्त्रा श्रोत्रा चोभाभ्यां साधकाभ्यां भवितव्यम् । अणुः सूक्ष्मः तस्य प्रमाणं मानं तस्मात् अणुप्रमाणात् अणीयान्, लघुतरः, अतोऽयं अवितर्क्यं न तर्कयितुं शक्यः । अत्र पुल्लिङ्गविशेषणत्वेऽपि सुपां सुलुगित्यनेन सोरमादेशश्छन्दसः ।।श्रीः।।

भूयोऽप्यात्मविषये समादरं करिष्यन् तर्कान् निराकुर्वन् प्राह—

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ।।९।।

अथ परमप्रसन्नो यमः प्राह—वत्स ! त्वमद्य स्वकीयया प्रियतया मम सकलानपि प्रेमभाजोऽतिशेषे । प्रियेणानेन प्रश्नेन प्रियतमं परमात्मांनं स्मारितवानसि यतो हि आत्मशब्दस्य वाच्यार्थतया प्रसङ्गेन स्मृतिपथमारूढयोर्जीवात्मापरमात्मायोश्च चर्चाकरणीया वर्तते, द्वयोरपि नित्यसम्बन्धात् नित्यसखित्वान्नैकं परिहृत्यापरस्य सत्ता वर्णयितुं शक्या । यथा पयसा सहभूतत्वात् पाथोऽपि विक्रीयते समानमूल्येन पार्थक्ये द्वयोरपि रसभङ्गापतिः, तथैव सन्नपि क्षोदीयान् जीवः परमात्मना सह वर्तमानत्वात् समानसम्मानेन स्मर्यते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा चाह श्रुतिः **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता** । अत्र ब्रह्मणा सहेति वाक्यखण्डेन श्रुति स्पष्टं जीवब्रह्मणोः स्वरूपत ऐक्यं खण्डयामास । एवमुभयोः समानख्यातिः स्वतोऽपि सेवकस्याधिकतरं परमात्मस्वभावोऽपि । अतोऽहं गौणरूपेण परमात्मपरिकरतया जीवात्मानं व्याख्यास्यामि । विशेषतस्तु परमात्मानं विवेचयिष्ये किन्तु द्वयोरपि विवेचने वाचकतयात्मशब्द एवोपादास्यत इति विवेकः । अतः हे प्रेष्ठ ! स्मारितपरमप्रियव्युत्पन्नजिज्ञासो । एषा आत्मजिज्ञासा मतिः तर्केण वेदशास्त्रविरोधिना कुतर्केण न आसमन्तात् अपनेया दूरीकरणीया । कुतर्कतः खलु परमात्मपरीवादप्राप्तप्रत्यवायेन कुठारेणेव वृश्चते मतिरियं कल्पलतिकेव, तस्मात् नैव स्वयंभुवा ब्रह्मज्ञानिना वा भवितव्यं प्रत्युत् समित्पाणिना सोत्कमनसा श्रोत्रियो ब्रह्मनिष्ठः सद्गुरुरुपसर्पणीयः तद्यथा मुण्डके— **तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्** । तमेवार्थमत्र समस्यति अन्येन स्वस्मात् भिन्नेन सेव्येन सद्गुरुणा प्रोक्ता प्रकर्षेणोक्ता प्रस्नयावनतशिष्यपृष्ठेन यथाशास्त्रमर्यादं निगदिता । एव अन्ययोगं व्यवच्छिनत्येवकारः भवत्प्रोक्तेति भावः, एवं सति बुद्धिरियं सुज्ञानाय, ब्रह्मबोधाय कल्पते यां पूर्वोक्तां परमपावनीं बुद्धि वत, आश्चर्ये सत्यधृतिः, सत्ये सत्यस्वरूपब्रह्मणि सदुपकारिणि वा परमात्मनि धृतिः, धारणा यस्य तथा भूतस्त्वं ब्रह्मणि सात्विकीं धृतिमापन्नः । इमामेव धृतिं श्रीगीतासु प्रशशंस भगवान् श्रीपार्थसारथिः, **धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थसात्विकी** (गीता १८/३३) प्रसन्नतातिरेकेण शुभाशीभिर्नचिकेतसं समर्चति । हे नचिकेतः जिज्ञासुशिरोमणे । त्वादृक्, भवादृक् नः, अस्माकं समक्षं पृष्ठा, एतावद्विमलप्रश्नकर्ता भूयात् । अत्राशिषिलिङ्लकारः सुप्रसिद्ध एव भवत्वित्यर्थः । अधुना यावन्मां कुकर्मणां जीवानां दण्डविधानसंहितामेव पृच्छन्ति स्म परिकरा मे, अयं कथं दण्डीयः अयं कथं दण्डीयः इति, त्वमद्य परमात्मानं पृष्टवानसि अयं कथमपरोक्षानुभूतिविषयः करणीय इति, ।।श्रीः।।

अधुना शिष्ये विश्वासोत्पादनाय तच्छ्रवणप्रवृत्तिप्रयोजकतया विषयेऽस्मिन् निजपारदृश्वतां प्रकाशयति—वत्स । कदाचित् तव मनसि संशयोऽयं समुदीयात् यत् पूर्वमुक्तं भवता **न नरेणावरेण प्रोक्त एष विज्ञेयः** अर्थात् एतत्प्रवचनेऽपि सामान्यनरो न क्षमते किन्तु भवान् सामान्यनर इव गृहमेधी सकलत्रः पुत्रपौत्रवान् जीवानामुग्रदण्डधरः प्राकृतो दृश्यते तर्हि कथं विरक्तशिरोमणिश्लाघनीयस्य ब्रह्मज्ञानप्रवचनस्य भवानधिकारीति कदाचित्कोऽपि तव सन्देहस्ते विनाशाय मा भवेत् इति उपस्थापयत्यग्रिमं मन्त्रम्—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानाम्यहँ् शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ।
ततो मया नाचिकेताश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ।। १० ।।

यद्यप्यहं यमराजः, इति इत्थं जानामि ।

यत् अनित्यं नाशवत् द्रव्यं शेवधिः, सुखस्य सीमा अर्थात् यद्यत् नाशवत् तत्तत् ससीमं भवति । केचन शेवधिरिति शब्दस्य कर्मफलरूपनिधिरित्यर्थमपि व्याचक्षते तत्तु मृग्यं, शेवधिः शब्दस्य हि सीमन्यर्थे सर्वत्रप्रसिद्धत्वात् प्राकरणिकत्वाच्च । यद्यप्यहम् अनित्यपदार्थं सावधिकं जानामि इति प्रथम चरण सरलार्थः । इतोऽप्यग्रे भवान् जानाति नवेत्याह–नहीति अध्रुवैः ध्रुवाणि स्थिराणि तद्भिन्नैः भङ्गुरैः तत् श्रुतिप्रसिद्धं ध्रुवं नित्यपरमात्मतत्वं नहि प्राप्यते नह्यपरोक्षतया साक्षात्क्रियते । ततः तस्मादेव हेतोः मया यमराजेन श्रुतिविहितत्वात् नाचिकेतः एतन्नाम्ना प्रसिद्धः अग्निश्चितः चयनविषयः कृतः । ननु भवदुक्त्यननुसारं मम द्वितीयवररूपेण शिक्षितोऽयमग्निः, पुनः प्रसन्नतया दत्तेनापरवरेण **तवैव नाम्ना भवितायमग्निः** इति वदता यमेन नाचिकेताग्नेरर्वाचीनता निश्चिता तर्हि कथं नचिकेतसः पूर्व नाचिकेतो निश्चितः ? इति चेन् न भ्रमितव्यं त्वया श्रतीनां हि अतीतवर्तमानागतिज्ञानस्य करामलकसिद्धत्वात् । पूर्वं नाचिकेताग्निः श्रुत्याविहितः पश्चाद् शब्दमनुगन्तुं कृतार्थ भवितुं च अर्थरूपेण घटनेयं घटिता । अर्थो हि श्रुत्यनुगामी नैव श्रुतिस्तस्य । ननु नाचिकेताग्निश्चितो भवता यमेन किमनेन ? इति शङ्का निराकुरुते तत इति । यतोऽहं अनित्यकर्मणां सीमानं जानामि अनित्यवस्तुभिर्नित्यपरमात्मनश्चाप्राप्तिमपि वेद्मि तस्मादेव हेतोः नाचिकेतोविनिश्चितः । एतत् चयनेन समुत्पन्नापूर्वेण भगवत्प्राप्तिप्रतिबन्धकप्रत्यवायान् व्यपोह्य श्रुविहितत्वात् अनित्यैरपि द्रव्यैः केवलं परमात्मप्राप्तिप्रतिबन्धककश्मलविनाशने सहायभूतैः नित्यं परमात्मानं प्राप्तवानस्मि साक्षात्कृतवानस्मि । निष्कर्षस्तु शास्त्रज्ञानेन कर्मणामनित्यतां ज्ञात्वापि श्रुतिविहिततया तानि न त्यजन् जनकादिरिवासक्तः प्रतिकर्म सकललोकलोचनाभिरामभगवच्छ्रीरामस्मरणं विदधानस्तदर्थमेव कर्माणि कुर्वाणो नाचिराल्लभते परमात्मपदपाथोजपरागरागरसिकताम् ।

स्तुतिप्रकरणमुपसंहरन् यमः नचिकेतसं ब्रह्मविद्यायाः समुपयुक्तमधिकारिणं घोषयन्नाह—यद्यप्यहं महता श्रमेण निष्कामबुध्या कर्माणि विधाय नाचिकेताग्निमसक्तश्चित्वा सुदुरूहमप्यात्मतत्वं तुभ्यं दित्सामि यतस्त्वमैहलौकिका मुष्मिकपदार्थतो निर्विण्णचेता असि तद्यथा—

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम् ।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।। ११ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे नचिकेतः ! अतएव त्वमात्मतत्त्वाधिकारी यतो हि कामस्य लौकिभोगसमूहस्य आप्तिमुपलब्धिम् अथवा आप्यते लभ्यते यया सा आप्तिः तां प्राप्तिसाधनभूताम् अत्र करणे क्तिन्, तादृशीं जगतः संसारस्य प्रतिष्ठां सम्मानयोग्यतां क्रतो यज्ञस्य अनन्त्यमन्ते भवम् अन्त्यम् **अन्त्यच्च्वय** इत्यनेन यत्प्रत्ययः, न अन्त्यमनन्त्यमविनाशीति भावः । अत्र फलमित्यध्याहार्य मेवं क्रतोरित्यत्रापि जात्याभिप्रायेणैकवचनम् । एवं श्रौतयज्ञानामभङ्गुरफलमितिभावः । अभयस्य, अभयपरमपदस्य पारं परिसीमानं स्तोमं, स्तूयते इति स्तोमं स्तुतियोग्यं महत् परमपूज्यं तथाभूतं परमात्मनः परमस्थानं, यच्च उरुगायं उरुयागीयते तथाभूतं प्रतिष्ठां, तत्र स्थाने निश्चलां स्थितिं धृत्या धैर्येण दृष्टवा मया दत्तसम्पूर्णसामग्रीं निरीक्ष्यापि त्वमत्यसाक्षीः मयादत्तपदार्थान् मह्यमेव परावर्तितवानभूः, एतादृक् विरक्ताय निस्पृहाधिकारिणे यद्यात्मज्ञानं न दीयेत तदा कस्मै दीयताम् अतस्तुभ्यमुपदिशामि ।।श्रीः।।

फल्गुतया नेदं त्वयोपेक्ष्यं वस्तुतस्तु उपदेशविषयोऽयं देवः अतीव दूरदर्शः अतस्तद्ज्ञानफलं कीर्तयते—

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वाधीरो हर्षशौकौ जहाति ।।१२।।

दुर्दर्शं सुरैरपिदुःखेन द्रष्टुं शक्यं, गूढम् योगमायया संहृतं गुहसंवरणे इत्यस्यकर्तृ निष्ठान्तरूपमिदं, यद्वा कर्मणि निष्ठा तथा च अगुह्यत इति गूढः तं, यं हि भक्ताः निजहृदयपटले गोपनीयतया समावृण्वन्ति तादृशम् । अनुप्रविष्टम् , सर्वस्मिन् चराचरे आनुकूल्येन व्याप्य स्थितं, गुहाहितं गुहा हृदयदेशः तस्मिन् आहितं स्थितमन्तर्यामितयेति भावः । अतएव गह्वरेष्ठं गह्वरे चिन्तनवने स्थितं यद्वा गह्वरं स्नेहवनं तत्र स्थितम्—

तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुवीर विहारु

इति मानसकृदपि गायति । यद्वा गह्वरं दुर्गमस्थानं तत्र तिष्ठति तथाभूतं यद्वा गह्वरे चित्रकूटवने तिष्ठति तथाभूतम् । ननु भविघटनायाः कथम् अत्र चर्चा प्रश्नोऽयं पूर्वं दत्तोत्तरः स च नाचिकेताग्निप्रसङ्गएवानुसंधेयः । एवं पुराणम्, पुरापि नवं तादृशं देवं परमात्मानम् अध्यात्मयोगाधिगमेन अध्यात्मविद्याचिन्तनरूपेण, मत्वा मननविषयं कृत्वा धीरः उत्कृष्टसाधकः हर्षशोकौ जहाति त्यजति, अर्थात् तस्मिन् प्राप्ते परमानन्दसुधावारिधिमग्नः आनुकूल्यप्रातिकूल्यताटस्थेन तिष्ठति । अप्रत्ययाः नास्तिकाः खलु विषमे विषीदन्तीति ध्वनितम् ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनर्ब्रह्मज्ञानश्रवणपरिणामं रोचनार्थं वर्णयति—

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयँ हि लब्ध्वा विवृतँ सद्म नचिकेतसं मन्ये ।। १३ ।।

हे नचिकेतः ! एतत् धर्म्यं धर्मयुक्तमात्मज्ञानं श्रुत्वा महापुरुषेभ्यः इति शेषः, सम्प्रगृह्य सम्यग्गृहीत्वा मर्त्यः मरणधर्मामनुष्यः प्रवृह्य एकान्ते निदिध्यासनंविधाय एतम् अणु सूक्ष्मम् आप्य, परमात्मसेवकत्वेन स्वरूपभूतमनुभूय मोदनीयं प्रसादनीयं स्वेन इति शेषः लब्ध्वा, सेव्यत्वेन प्राप्य, मोदते इष्टलाभेन प्रसीदति । नचिकेतसं त्वा प्रति परमात्मनः भवनं साकेतरूपं विवृतम् अनावृत्तद्वारं मन्ये । त्वं त्वनायासेन भगवत्सालोक्यं प्राप्तासि इति प्रत्येमि ।।श्रीः।।

इत्थं यमस्य प्रशंसावाक्यान्याकर्ण्य तत्कथनानुसारमात्मानं ब्रह्मज्ञानाधिकारिणं विभावयन् शीघ्रमेव परमात्मतत्वं शुश्रूषमाणः आत्मनश्च प्रशंसां श्रोतुमनिच्छन् यावत् यमराजो न व्यरंशीत् तन्मध्य एव नचिकेता सोत्कमनाः पप्रच्छ—

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत् पश्यसि तद्वद ।। १४ ।।

नचिकेता सानुरोधं प्रार्थयते—हे देव ! यदि मां ब्रह्मज्ञानाधिकारिणं मन्यसे, यदि मयि कृपा ते तदा मम प्रशंसाम् मा कृथाः, यस्यात्मतत्वस्य महत्वं त्वमदः वर्णयः तस्यापि सेव्यं यत्परमात्मतत्वं तद्विषय एव पूर्वं भण्यतां । पूर्वं पृष्टमात्मतत्वं पश्चाच्छ्रोश्यामि साम्प्रतं तु तत् सेव्यं परमात्मतत्त्वं वर्णय । यत् धर्मात् श्रुतिविहितधर्मतः अन्यत्र अतीतं वर्तते यच्च अधर्मात् धर्मविरुद्धात् विकर्मणश्च अन्यत् अतीतः, यच्च अस्मात् एतस्मात् प्रत्यक्षात् कृताकृतात् कृतं कार्यं न कृतं यस्मिन् तदकृतं यद्वा कृतभिन्नमकृतं कारणम् एवं कृताकृतयोः समाहारं कृताकृतं तस्मात् कार्यभूतात् संसारात् कारणभूतात् हिरण्यगर्भाच्च अन्यत्र परस्तात् । एवमेव यच्च भूतात् भूतकालावच्छिन्नात् भव्यात् भविष्यतोऽपि यत् अन्यत्र परस्तात् वर्तते तादृशं यच्छब्दाभिलाप्यं यद्विशिष्टाद्वैतं तत् । अतनोत् इति तत् यद्वा अतन्यत् इति तत् सर्वव्यापकं सर्वत्रव्याप्तं च यदि त्वं पश्यसि अपारोक्ष्येण साक्षात्करोषि तद्वद तदेव ब्रह्मतत्तवं निरूपय । अत्र धर्माधर्माभ्याम् अन्यत्र कथनस्य तात्पर्यं तदेव ब्रह्मंनिरूपय यद्धर्माधर्मपरिहारपूर्वकविशुद्धशरणागतिलभ्यं । धर्मस्य फलं हि पुण्यं पापमधर्मस्य फलं द्वयोरपिबन्धनात्मकत्वात् ब्रह्म द्वे अप्यतीतं अतो गीतायाश्चरमे सोपदेशवाक्ये प्राह भगवान्—**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज** । अतो भूयोप्यनिवृत्तं ततैवानुगीतायं त्यज धर्ममधर्मं च इति शेषं प्रागवत् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वस्तुतस्तु अन्यत्रशब्द: अन्याधिकरणकार्थपरोऽव्यय: अन्यस्मिनित्यर्थ: नचिकेतसस्तात्पर्यमिदं यत्, यद्ब्रह्म धर्मात् धर्मलभ्य पुण्यजनित स्वर्गलोकात् अन्यत्र अन्यस्मिन् लोके विराजते, यच्च अधर्मात् वेदविरुद्धकर्मानुष्ठानापूर्वजनितनिरयलोकात् अन्यस्मिन् लोके साकेते विराजते यच्च कृताकृतात् कृतो मर्त्यलोक: अकृतो देवलोक: तत् समुदितादपि अन्यत्र भिन्ने धाम्नि विराजते, यच्च भूतात् भूतकालिकप्रारब्धजनितात् अथवा अभवन्निति भूतानि तल्लोकात् पितृलोकादिति यावत्, भव्यात् रमणीयतमात् ब्रह्मलोकादपि अन्यत्र, एवं धर्माधर्मकार्यकारणभूतभव्यविलक्षणे साकेतलोके वर्तमानं यदि त्वं परब्रह्मश्रीरामं पश्यसि तद्वद इति साम्प्रदायिकोऽर्थ: ।।श्री:।।

इत्थं षड्भ्योविलक्षणे वर्तमानं परमात्मानं प्रष्टुमुपक्रान्तं नचिकेतसमवलोक्य नामार्थयोरभेदप्रतिप्रत्या परब्रह्मतदनिर्वचनीयतत्वं वाचमन्तरेण निर्वक्तुमशक्यं मन्यमान: तस्य ब्रह्मण: मुख्यवाचकप्रणवोच्चारणव्याजेन सोपदेशं प्रारभमाण: **मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते** इति श्रौतनिर्देशं स्मृत्वा मांगल्यकाम: शिष्यस्य महामांगलिकमण्डलीको यमराज: पूर्वं प्रणवमनुशास्ति—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँ्सि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदँ् संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।१५।।

वत्स ! यद्ब्रह्म पदं सर्वे वेदा ऋग्यजु:सामाथर्वाख्या आमनन्ति आदरेण समभ्यसन्ति, यद्ब्रह्मपदं तपांसि, चान्द्रायणादीनि वदन्ति लक्ष्यज्ञापनेन साधकं स्थिरयन्ति अत्र **वद्स्थैर्ये** इत्यस्य प्रथमपुरुषबहुवचनान्तरूपम् एतेनैव भगवदीय इत्यपिसिद्धम् । अन्यथा भगवत: अयम् इति विग्रहे 'छ' प्रत्ययस्य 'भ' संज्ञाधिकारे पठितत्वात् तत्संज्ञापदत्वबाधात् तन्मूलकजस्त्वाभावात् भगवतीय इत्येव स्यात् । भगवदीय शब्दस्तु भगेषु ऐश्वर्येषु वदति जीवं स्थिरयति इति भगवद् तस्यायमिति भगवदीयं तथैवात्रापि । अनेन वदन्तीत्यस्य ख्यापयन्तीत्यर्थं कुर्वाणा: परास्ता: । तपसां वागिन्द्रियप्रतियोगिताकाभावात् तत्र वचनासम्भव: । एवं यदिच्छन्त: लिप्समाना: ब्रह्मचर्यम् अशास्त्रीयव्यवायवर्जन् रूपं चरन्ति समनुतिष्ठन्ति तदेव पदं ते तुभ्यं संग्रहेण अति संक्षेपेण ब्रवीमि कथयामि । किं तत् ? ॐ इत्येतत् वाच्यवाचकयोरभेदात् पदमित्युदिश्य ॐ इति विधीयते । तत् ब्रह्म ॐ मित्यक्षराकारं निराकारं, नराकारं सदपि बोधसौलभ्याय पूर्वमक्षराकारेणैव तदवगन्तव्यमिति हार्दम् ।।श्री:।।

अधुना मन्त्रद्वयेन परमात्मवाचकं प्रणवं स्तौति—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ।।१६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हि, निश्चयेन एतद् प्रणवाभिन्न प्रणववाच्यं वा एव नान्यद् अक्षरम् अशुव्याप्तौ अश्नुते सर्वं व्याप्नोतीत्यक्षरं ब्रह्म निर्गुणं ब्रह्म । एवम् एतद्ध्येव एतदभिन्नं कार्यकारणावच्छेदेनाभेदः परममुपसने निर्गुणब्रह्मणोऽपि प्रशस्यतरम् । अक्षरं न क्षरति न विनष्टं भवति तथाभूतं सगुणसाकारविग्रहमित्येनन सगुणं ब्रह्मनावरं तच्छरीरं च मायामयमिति व्याहरन्तः परास्ता तस्य ह्यक्षरत्वस्य श्रुत्यैवसङ्कीर्तितत्वात् । इत्थम् ॐ शब्दाभिधेयं निर्गुणं सगुणं च ब्रह्म निर्गुणपक्षे ॐ शब्दोऽव्युत्पन्नः सगुणपक्षे च व्युत्पत्नः । व्युत्पत्तयश्चैतस्य ऊनविशतिप्रदर्शिताः ईशोपनिषद्व्याख्यानप्रारंभे मया । एवम्, निर्गुणसगुणवाचवकम् एतत् ॐ कारमेव अक्षरम्, एकाक्षरं पदं हि निश्चयबुद्ध्या ज्ञात्वा शब्दार्थाभ्यां समधिगम्य आब्रह्मसाक्षात्कारं जपन्, यः यत्प्रकारकः साधकः यदिच्छति यत्कांक्षति तस्य साधकस्य समक्षं तत् तदेव प्रस्तूयते अर्थात् यदि ज्ञानवादी निर्गुण ब्रह्मानुबुभूषति तस्य समक्षं तदुपस्थाप्यते ॐकारविज्ञानमह्मिना । यदि कोऽपि सगुणोपासकः सगुणसाकारं नराकारं कृपाकूपारं कोशलेन्द्रकुमारं साक्षात् चिकीर्षति, तस्य तत् तस्य समक्षं तदेव रूपं प्रणवजपबलेन समुपस्थाप्यते । अत्र नामनामिनोरभेदं नाम्नश्च तारतम्ये तदपेक्षया नाम्नो गरीयस्त्वं श्रुत्यैव सूच्यते ।।श्रीः।।

एतदालम्बन ँ् श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।।१७।।

इदानीं नामिनः नामाधीनत्वं सूचयति–एतदेव ॐ कारं श्रेष्ठमुत्कृष्टतमम् आलम्बनमाश्रयम् । अत्र कर्मकरणयोल्युडर्थवैचित्र्यात् भाववैचित्र्यं बोध्यं तथा हि— लम्बते आश्रयते निर्गुणं सगुणं चापि स्ववाचकतया यत् तदालम्बनं नहि एतदुपेक्ष्य निर्गुणं ज्ञातुं शक्यं सगुणं वा ध्यातुं शक्यम् । आलम्ब्यते आश्रयविषये क्रियते ब्रह्म भक्तैर्येनमाध्यमेन तदालम्बनं विनानाम भगवानपि भजतुं न शक्यते । अतः प्रथमचरणे अलम्बनपदं कर्मल्युडन्तं द्वितांयपदे करणल्युडन्तं, यद्वा क्रमेण निर्गुणसगुणपरं तस्मात् एतत् प्रणवमेव आलम्बनं स्वकीयसाधनाधारं त्वा स्वीकृत्य साधकः ब्रह्मलोके ब्रह्म भगवान् रामः **इति रामपदेनासौ परब्रह्माभियीयते** इति श्रुतेः । एवंविधस्य ब्रह्मणः श्रीरामचन्द्रस्य लोके साकेतलोके महीयते पूज्यते । ननु ॐ कारेण कथं राघवेन्द्रस्य साकेतलोकः प्राप्यते ? साधु पृष्टम् ॐ काररामयोरपि मध्ये भेदाभावात् । तथा हि उभावपि तारक ब्रह्मवाचकौ ॐकारस्तु वेदपाठाधिकारिणामेव समधिकृतः रामकारस्तु आविद्वत् चाण्डालेभ्यः आब्रह्मस्तम्वेभ्यश्च पाणिनीयननेतु राम शब्दादेव प्रणवप्रादुर्भावं निश्चिन्वन्ति वैय्याकरणधुर्याः । तथा हि राम इत्यत्र **प्रसोदरादीनि यथोपदिष्टम्** इत्यनेन वर्णव्यत्ययः एवं अ र आ मतेइति **स्थिअतोरोरप्लुतादप्लुते** इत्यनेन रकारस्य उत्वे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अ उ आ म अनन्तरम् आद्गुणः इत्यनेन गुणे ओ आ म अनन्तरम् **एङः पदान्तादति** इत्यनेन पूर्वरूपे ओऽम् इति सिद्धम् एवं प्रणवरामयोरभेदाभिप्रायेण एतच्छब्दप्रयोगः ।।श्रीः।।

इत्थं नचिकेतसः प्रत्यग्रप्रश्नानुसारेण त्रिभिर्मन्त्रैनिर्गुणसगुणब्रह्मनिरूपणं निरूप्य तेष्वेवमंन्त्रेषु **यदिच्छन्तः एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा योयदिच्छति ब्रह्मलोकेमहीयते** इत्यादिभिर्वाक्यखण्डैः ब्रह्मणो जीवपार्थ्यक्यं सुस्पष्टं समभिधाय, पुनः कीदृशं तत्स्वरूपं यः खलु निर्गुणब्रह्मानुभवितुं सगुणं च ब्रह्मसाक्षात्कर्तुं क्षमते किं दृश्यमानं शरीरमेव सः, किं वा शरीरस्य कश्चनावयवः अथवा संकल्पात्मकं मानसं सः, उताहो विषयगोचराणि हृषीकाणि उताहो व्यवसायात्मिका बुद्धिः, किम् अस्मदादिरिव सोऽपि जायते म्रियते वा वयमिव सोऽपि कस्यापि पुत्रो वा वयमिव बालः वृद्धो वा इति अनेकविधप्रश्नचयेन जिज्ञासमानं नचिकेतसम्प्रति वरदाननुसारेण तृतीयप्रश्नमुत्तरयन् यमः भगवद्भक्तशिखामणिः प्रत्यगात्मस्वरूपं विवेचयति न जायत इत्यादि—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यामने शरीरे ।। १८ ।।

विपश्चित् विशेषेण संसारपरमात्मविवेचनपूर्वकं पश्यतीति विपश्चित् यद्वा विविधरूपेण परमात्मानं पश्यतीति । विपश्चित् यत्तु विपश्चित् इत्यस्य नित्यज्ञानवान् इति व्याचक्षते तदसंगतं नियज्ञानवत्वस्य हि परमात्ममात्रनिष्ठधर्मत्वात् । न जायते नैव रजःशुक्रमाध्यमेन जन्मगृह्णाति, न म्रियते न प्राणैर्वियुज्यते इत्यनेन जीवात्मनः स्थूलशरीरतो वैलक्षण्यं दर्शितम् । अयम् जीवात्मा कुतश्चित् काभ्यांचित् मातापितृभ्यां न बभूव, अत्र परोक्षे लिट् पारोक्ष्येणापि न जातः प्रत्यक्षस्य का कथा । ननु भोः । तैत्तारीयोपनिषदि **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते** इति श्रुत्या जीवात्मनो जन्म कण्ठरवेणोक्तम् **जन्माद्यस्य यतः** इति ब्रह्मसूत्रेणापि परमात्मावधिकजीवात्मजन्मसूचितम् एतस्यां च श्रुतौ नायं कुतश्चिदित्यनेन तज्जन्मनिषेधोऽपि सूच्यते इति विरूद्धमर्थद्वयं कथं समञ्जसम् ? सत्यमेव पृष्टम्, श्रूयतां सावधानम्–यतो वा इमानि भूतानि, जन्माद्यस्य यतः इत्युभयत्र यच्छब्दः परमेश्वरवाचकः नायं कुतचिदित्यत्र किं शब्दः प्राकृतप्राणे सङ्केतकः । तात्पर्यमेतत् यदात्मायं नैव कस्माच्चित् प्राणिनः प्रसूयते परन्तु प्रलयकाले सर्वेऽपि जीवात्मानः परमात्मनि प्रलीयन्ते पुनः प्रभवे तत् एव परमात्मनः पूर्वसर्गकर्मानुसारं तत्तच्छरीराणि प्राप्य जायन्ते, अतएव श्रुतिः **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते** । इममेव सिद्धान्तं गीतायां सुस्पष्टयामास भगवान तथा हि—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ।।

(गीता ८/१८,१९)

वस्तुतस्तु यतः इमानि भूतानि जायन्ते इत्यस्याः श्रुतेरिदं तात्पर्यं यत् -जीवात्मा यदि परमात्मनः जायते तदा शरीरविशिष्टः शरीरावच्छेदमन्तरेण तु परमातमन्येव जीवात्मा तिष्ठति इत्येव भूतानि इति व्याहरन्त्याः श्रुतेर्हार्दं प्रतिभाति मे । अतो न विरोधः यद्वा कुतश्चिदित्यनेन प्राणितोजन्मनिषेधो जीवात्मनः न तु परमात्मनः **श्रुण्वन्तु विश्वेअमृतस्य पुत्राः** इत्यत्र जीवात्मकृते पुत्र व्यवहारः, पितृव्यवहारस्तु परमात्मनि **पितासि लोकस्य चराचरस्य** इति स्मृतेः जीवात्मा परमात्मनः पुत्रः तत्सत्ता परमात्मसत्ताधीना । ननु भोः ! अत्र जीवात्मा परमात्मपुत्रः कथ्यते मुण्डके च तत्सखित्वेन व्याहृतः यथा **द्वासु पर्णा सखुजा सखाया** तर्हि एकस्यां व्यक्तौ व्यवहारद्वयं कथं संघटयेत ? इति चेत् सुगमा संघटना स्वस्थमस्तिष्केन विभाव्यताम्—पुत्रोऽपि रूढवया समानशीलः पित्रा मित्रत्वेन व्यवह्रियते । द्रष्टव्यं स्मार्तवाक्यमपि—

लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।।

स एव व्यवहारो जीवात्मपरमात्मनोरपि ज्ञेयः । अत्र षोडशवर्षस्थाने षोडशगुणाः । पथिगच्छतो सार्धमेव पितृपुत्रयोः मित्रव्यवहारः प्रसिद्धः **पथि मित्रवदाचरेत्** तथैवात्रापि एकमेवशरीरं माध्यमीकृत्य संसाररूपे पथि गच्छतोः जीवात्मपरमात्मनोरपि सख्यव्यवहारः सुघटः, किन्तु पितापुत्रव्यवहारस्तु पारमार्थिकःअतएव **ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः** इति भगवानपि व्याहरति । ये तु अखण्डे ब्रह्मणि खण्डानुपपत्ति शङ्कमानाः अंशशब्दम् अंशसदृशे लाक्षणिकतया तात्पर्यग्राहकं मन्वानाः विजल्पन्ति ते तदुत्तरमेव सनातनशब्दव्याकोपं नावदधति, यदि चेत् सनातनो जीवभूतः भगवदंशः तर्हि तत्र तत्सादृश्यमनुपपन्नं सदृशो हि न सनातनः लक्षणा च कादाचित्की भविष्यति, नहि सर्वदैव गङ्गापदं भगीरथरथखातावच्छिन्नजलप्रवाहोपलक्षिततटे लाक्षणिकं तत्र शैत्यपावनत्वपिपाशाशामकत्वादियोग्यतानामभावात् । इत्यनेन उपाधिकल्पनया जीवस्य परमात्मांशत्वं वदन्तः परास्ताः । अथ कथं तर्हि मुख्यवृत्या अंशशब्दस्य तात्पर्यविचारे अखण्डपरमात्मनि खण्डत्वं संगच्छेत् ? अहो ! अज्ञातशाब्दिकसिद्धान्ताः भवन्तः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संशेरतां वयं तु व्याकरणकाननविहरणपरायणकण्ठीरवाः सारल्येन समादध्महे। अश्नाति पैतृकसम्पत्तिं भुङ्क्ते इत्यंशः पुत्रः जीवात्मा खलु भगवतैव चराचरात्मिकां भोग्यसामग्रीं भुङ्क्ते परमात्मा तदर्थमेव समुपभोगसाधनानिनिर्मायते स्वयं चाभोक्ता **अनश्नन्नयो अभिचाकशीति** इति श्रुतेः। प्रकृते अयं जीवात्मा कुतश्चित् प्राणिविशेषात् न बभूव अस्मादपि कश्चित् कोऽपि, परमार्थतस्तु सर्वेऽपि जीवात्मानः परमात्मनः प्रादुर्भवन्ति। नहि कोऽपि कस्माच्चित्। अयमेव राद्धान्तश्चित्रकेतूपाख्याने समुद्गीतः श्रीशुकाचार्यचरणैः। इत्थं स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराणि चत्तुर्भिविशेषणैर्निराकृत्य पुनस्तान्यभ्यसति अद् इत्यादि तृतीयचरणेन, यतो न जायते तस्मात् अजः, जन्मना परमाज्जायते इति अजः यतो न म्रियते अतः शाश्वतः शश्वदयं निरन्तंर वर्तमानत्वात्, यतो नायं कुतश्चिद् अतो नित्यः। नित्यत्वमेतस्य जगदपेक्षया परमात्मापेक्षया त्वनित्यत्वं तज्जातत्वात्, अतः अजोनित्य इत्यत्र परमात्मसन्दर्भे अकारप्रश्लेशो बोद्धव्यः अजः अनित्यम् इति विग्रहः। यतोऽस्मात् कश्चिन् न बभूव अतोऽयं पुराणः पुरापि नवः सर्वदैव परमात्मशावकया शिशुः, न वा युवा न वा वृद्धः यूनो हि कश्चिज्जायते न तु शिशोः। अथ पुराण इत्यस्य पुरानव इति कथं व्याख्यानं ? महर्षयोऽपीत्थं व्याचचक्षिरे। उपसंहरन् प्राह–नेत्यादि। शरीरे, सरति गच्छति नित्यमावागमनशीलमिति भावः, यद्वा शीर्यते विनष्टं भवतीति शरीरम्। तादृशं शरीरे हन्यमाने स्थूले शरीरे कुठारादिना छिद्यमाने सूक्ष्मे कारणे च सेव्यसेवकभावबोधरूपज्ञानाग्निना दह्यमानेऽपि, अयं न हन्यते नैव केनापि हिंसितुं शक्यते भगवद्भजनमकुर्वाणेन स्वेन हिंसितुं शक्यत एव अतएव श्रीभागवतकारः आत्महा अपशुध्नः इत्यादि वारं वारं व्याजहार। आत्मनो हननं हि भगवद्विमुखता तज्जीवनं तु जानकीजीवनचरणारविन्दप्रेममकरन्दरूपसंजीवनीसुधापानम्।

अतः प्राचेतसः प्राह श्रीमद्रामायणेऽयोध्याकाण्डे **यश्च रामं न पश्येत्तु यञ्च रामो न पश्यति। निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माऽप्येनं विगर्हते॥ श्रीः॥**

(वा० रा० २-१७-१४)

इदानीमुक्तमेवार्थं भूयः स्पष्टयति–

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते॥१९॥

यः कश्चन अपरं जनं हन्तुं हिंसितुमहं हन्ता इमं हनिष्यामि इति मन्यते, यः कश्चन केनचित् हतः हिंसित आत्मानं हतं मारितं मन्यते, वस्तुतः उभौ हन्तृहतौ न विजानीतः नैव विविच्यावगच्छतः। हन्तुः हन्तृज्ञानं हतस्य हतज्ञानञ्च अव्यावहारिकं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिथ्या च। हन्यते तु शरीरम् आत्मा नैव हन्यते न वा हन्ति। अतः स्पष्टयति—अयं जीवात्मा न हन्ति न कमपि हिनस्ति, न हन्यते न केनापि हिंस्यते, सर्वेऽप्यात्मानः समानसत्ताकतया परमात्मनियन्त्रण एव तिष्ठन्ति, **न जायते म्रियते** इति पूर्वमुक्तम्। आशयोऽयम्यन्मरणं नाम प्राणवियोगः शरीरस्य, प्राणाः क्षणभङ्गुरत्वात्त् वियुज्येरन् कामं परञ्च आत्मनः प्राणं तु परमात्मा **''स उ प्राणस्य प्राणः''** इति श्रुतेः। तेन तस्य वियोगस्त्रिकालमपि न सम्भवः, परमात्मसदृशे सख्यौ पितरि वर्तमाने समीपे क इमं पीडयेत् इति भावः ।। श्रीः ।।

इति मन्त्रद्वयेन नचिकेतसस्तृतीयवररूपप्रत्यगात्मजिज्ञासामनुसरन् समासतः साम्प्रतमात्मपरमात्मनोः सम्बन्धमीमांसां विवृणोति। सम्बन्धज्ञानमन्तरेण भगवद्प्रपत्तिरसम्भवा अस्मादस्मन्नये अर्थपञ्चकं संक्षिप्य ज्ञानायार्थत्रयं सिद्धान्तितम्। जीवपरमात्मतत्सम्बन्धस्वरूपविवेचनमेव ज्ञानम्। तथा चाह गोस्वामिपादः —

हम लखि लखहिं हमार लखि, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखहिं राम नाम जप नीच ।।

अत्र, 'हम' इति पदेन अहमर्थो जीवः। 'हमार' इति पदेन अस्मदीयः परमात्मा। ''हम हमार के बीच'' इति पदेन जीवात्मपरमात्ममर्ध्यवर्ती सेवकसेव्यभावसम्बन्धः। इममेव सम्बन्धं व्याख्यात्यग्रिमा श्रुतिः अणोरित्यादि–

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।।२०।।

परमात्मा जीवात्मनो निर्धारिते शरीरे तस्मिन्ननुरागातिशयात् तेन सहैव तिष्ठति। किन्तु निजोपस्थित्या तं न बाधते। शरीरे यावदवकाशे प्रत्यगात्मा तिष्ठति ततोऽप्यल्पीयसि हृदयैकदेशे परमात्मा। अत्र मन्त्र आत्मा इति शब्दः परमात्मपरकः, आप्नोति सर्वं व्याप्नोति यः स आत्मा इतिः व्युत्पत्तिः। **गुहां प्रविष्टावात्मानौ** इति ब्रह्मसूत्रम्। तत्र आत्मा परमात्मा पुनरात्मप्रत्यगात्मनोर्द्वन्द्वमेकशेषश्च। अथ तयोः वैलक्ष्यण्ये सिद्धे वैष्णवाम्नाये कथं सारूप्यं, तदभावे च **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** इति सूत्रेण कथमेकशेषः ? इति चेच्छ्रूयताम्। अत्र सूत्रे सारूप्यं द्विधा शब्दतश्चार्थतश्च। सरूपस्वं नाम समानरूपत्वं यथा रामाः इत्यत्र रामश्च रामश्च रामश्च इति विग्रहे रामः जामदग्न्यः रामः दाशरथिः रामः वासुदेवः एषामर्थवैभिन्नेऽपि आनुपूर्व्या सरूपत्वादेकशेषः रामाः जामदग्न्यदाशराथिवासुदेवाः इत्यर्थः। अत्र शब्दतस्सारूप्यम् अर्थतस्सारूप्यं च आनुपूर्व्यां वैरूप्येऽपि अर्थसारूप्ये एकशेषः। यथा घटश्चकलशश्च इति घटौ। अत्र यद्यपि घटस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कलशस्य च आनुपूर्व्यां वैरूप्यं किन्तूभयोरर्थसारूप्ये एकशेषः । स्पष्टितं चेदं कात्यायनेन **विरूपाणामपि समानार्थानाम्** इति वार्तिके । अत्र शब्दकृत सारूप्यसिद्धान्तेन समाधानमवगन्तव्यम् । एवम् उभावपि प्रतयगात्मपरमात्मानौ प्रतिशरीरं गुहायां तिष्ठतः । किं द्वौ समानसत्ताकौ उताहो एकस्मात् एकतरं न्यूनम् ? इत्यत, अयं परमात्मा प्रत्यगात्मावकाशसापेक्षावकाशः । अतः अणोः लघोरपि अणीयान् सूक्ष्मतरः, इयं सूक्ष्मता शरीरनिवासावकाशनुरोधेन, वस्तुतस्तु महतः महत्सपन्नादपि जीवात्मा महीयान्, महिमवत्तरः । महान् शब्दः प्रत्यगात्मपर्यायः **बुद्धेरात्मा परो महान्** इत्यत्रैव श्रुतेः । यद्वा अत्र षष्ठी तथाहि—महान् प्रतयगात्मत्वस्यापि महतः महीयान् पूजनीयः, एवं भूतः आत्मा अस्य शरीराधिष्ठितस्य जन्तोः, जनिं प्रादुर्भावं तनोति विस्तारयतीति जन्तोः अजन्मापि प्रत्यगात्मा भ्रमवशात् स्वस्मिन् संसारसम्बन्धं कल्पपित्वा आत्मानं कर्ताऽहं भोक्ताऽहमिति मन्यमानः विस्मृतपरमात्मपदपाथोजमकरन्दः विसृष्टभगवद्भजनानन्दः अनेकयोनिषु सूकरकूकरादिषु जनिं तनुते । अतो जन्तुः **तेन मुह्यन्ति जन्तवः** इति स्मृतेः । तस्य जन्तोः मोहमोहितचेतसः प्रत्यगात्मनः गुहायाम् अज्ञानसंवृतहृदयावकाशे निहितः निष्क्रियः सन् तिरोहितः स्वहृदयस्थमेनं नैवजन्तुरेतत् पश्यतीति भावः । तं कः पश्यति ? इत्यत आह 'अक्रतुः' क्रतुरत्र उपलक्षणतया यज्ञादिकर्मजनितफलसङ्कल्पान् त्यक्त्वा यः खलु सकलकर्मफलतया भगवद्दर्शनमेव याचते स एव अक्रतुरितिभावः । तथा हि श्रीमानसे श्रीरामं प्रति श्रीगोस्वामिपादाः–

मन्त्रराज नित जपहि तुम्हारा । पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा ।
तर्पन होम करहिं विधि नाना । बिप्र जिवाइ देहिं बहुदाना ।।

सबकर मांगत एक फल, रामचरनरति होउ ।
तिनके मनमन्दिर बसहु, सियरघुनन्दन दोउ ।।

(मानस अयो, १२९/६,७)

एवंभूतः वीतशोकः, निरस्तप्रियजनविश्लेशजन्यदुःखः, भगवत्येव तेन समस्तसांसारिकसम्बन्धिप्रीतिसमवधानात् । एवंविधः साधकः धातुप्रसादात्, दधाति सम्पूर्णं जगत् धारयति पुष्पाति च यः स धातुः परमात्मा **अनादिनिधको धाता विधाताधातुरूत्तमः** (विष्णुसहस्रनाम-५) इति विष्णुसहस्रनाम्नि धातुशब्दस्य विष्णोः नामसु सप्तचत्वारिंशन्नामतया सङ्कीर्तनात्, एवं धातोः जगद्धारकपोषकस्य परमेश्वरस्य प्रसादः कृपा **मत् प्रसादात् तरिष्यसीति** वचनात् । इति धातुः प्रसादः तस्मात् अत्र हेतौ पञ्चमी, परमेश्वरकृपाप्रसादहेतोः इति भावः । आत्मनः परमात्मनः महिमानं भक्तवात्सल्यादिगुणगणं पश्यति साक्षात्करोति.। यन्तु केचन धातुशब्देन धात्वाधारतया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समनस्केन्द्रियरूपमर्थं व्याचक्षते । तथा हि-धातवः समनस्मकानि इन्द्रियाणि तेषां प्रसादः संयमः तस्मात् इन्द्रियजयादिति भावः, तदस्वारसिकतया नाद्रियावहे । धातुशब्दस्य हीन्द्रियरूपार्थे अष्टानामपि व्याकरणादिशक्तिग्रहणां कतमस्याप्यप्रवृत्तेः । मम तु धातुशब्दस्य परमेश्वररूपार्थे विष्णुसहस्रनामरूपस्मृतिवचनमेव प्रमाणम् ।। श्रीः ।।

अथ यदि परमात्मा प्रतिशरीरम् आत्मनैव सह तद्गुहायां तिरोभूय तिष्ठति, तर्हि कथं परमभागवतशिखामणीनां लोचनविषयतामापद्यते, कथं वा ज्ञानिनामपरोक्षानुभव विषयो भवति, कथं वा चराचरे तद् व्यापकता सिद्ध्यति ? इति जिज्ञासात्रयं समादधाना श्रुतिः प्राह–

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ।।२१।।

पूर्वस्मिन् मन्त्रे धातुः प्रसादात् अक्रतुः वीतशोकः आत्मनः तं महिमानं पश्यतीत्युक्तं तत्र **आत्मशब्दः परमात्मपरः** इत्यस्मिन् मन्त्रशकले जन्तोरित्यत्र षष्ठी आत्मेत्यत्र च प्रथमा । षठ्यर्थौ हि सम्बन्धः स च प्रतियोग्यनुयोगिनावपेक्षते । अतः जन्तुः प्रतियोगी तद्गुहा चानुयोगी, तदाधेय आत्मा प्रथमा विभक्त्यर्थः । एवं जीवात्मपरमात्मभेदः सुस्पष्टं प्रतिपादितः । नहि स्वः स्वस्मिंस्तिष्ठति अतो जीवात्मनामधेयजन्तुहृदयगुहायां परमात्मा सूक्ष्मतः महतोऽपि महत्तरः सन् दूरं व्रजति गच्छति तद्गमनेऽपि न क्षीयते तदचलत्वम् । एवं शयानः सुप्यमानसकलेन्द्रियव्यापारोऽपि सर्वतः सर्वेषु स्थानेषु याति, गच्छति । सर्वत इत्यत्र सार्वविभक्तिकस्तसेः न तु तसिल् । अत्र केचन स्वकल्पितसिद्धान्तभङ्गभिया व्रजतीत्यत्र व्रजतीव यातीत्यत्र यातीव इत्थमुभयत्र व्रजनयानक्रिययोः इवेति अध्याहरन्ति तदनुचितं श्रुतावस्यां कुत्रापिभागे इवार्थाश्रवणात् । वस्तुतस्तु आसीनो दूरं व्रजतीत्यस्य भावोऽयं यद्गमनेन्द्रियमनपेक्ष्यैव दूरं सुदूरं व्रजति । शयानो यातीत्यस्य मुद्रितनेत्रोऽपि लोचनेन्द्रियमनपेक्ष्य तत्तत्स्थानस्थित भक्ताह्वानमनुश्रित्य सर्वत्र याति ।

एवमेककाल एव परस्परविरूद्धधर्माश्रयत्वमेव तन्महिमा । यद्वा आसीनः साकेतलोके कनकसिंहासने समुपविष्टः दूरं व्रजति अवतारकाले सुदूरवनयात्रामाचरित । तथा च शयानः अन्तर्यामितया जीवहृदये गुहायां क्रियमाणशयनोऽपि सर्वतः सुभक्तपार्श्वे गच्छति । यद्वा सर्वत इत्यत्र पञ्चम्येव यत्र भक्त आह्वयति तस्मात् स्थानात् स्वं प्रकटयति यथा प्रह्लादकृते स्तम्भात् । एवं महिमसम्पन्नं को जानाति ? इत्यत आह-मदामदम्, 'मदि हर्षसम्मोहयो''' तथा च माद्यति सगुणः सन् भक्तसुखेन हृष्यतीति मदः न माद्यति नहि हृष्यति दुर्योधनादौ निर्गुणत्वात् इत्यमदः मदश्च अमदश्चेति मदामदः तथाभूतम् । तथा च मानसे–

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुख मानत सेवक सेवकाई । सेवक बैर बैर अधिकाई ।।

यद्वा मदः ऐश्वर्यमदः तस्मिन् सत्यपि अमदम् ऐश्वर्याभिमानशून्यं सारल्यगुणवत्वात्। वस्तुतस्तु मकारो जीवः शिवस्वरूपः **मः शिवश्चन्द्रमाश्चेति** इति कोषात् । एवं मपदवाच्यानां जीवानां दामानि बन्धनानि द्यति खण्डयति इति मदामदत्वम् । यद्वा मः चन्द्रमा स एव भगवान् कृष्णः एवं भूतः दामानि यशोदाकृतोलूखलबन्धनदामानि आदत्ते स्वीकरोति । तथाभूतं देवं भक्तैः क्रीडन्तं श्रीरामं कृष्णं वा मदन्यः, मदतिरिक्तो देवं कः ज्ञातुमर्हति योग्यो भवति ।। श्रीः ।। अस्मिन् शरीरे प्रत्यगात्मना सह परमात्मा तिष्ठतीत्युक्तं, तर्हि किमयं सशरीरस्तिष्ठत्युताहो अशरीरः इत्यत आह—

अशरीर ँ् शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ।।२२।।

अनवस्थेषु क्षणभङ्गुरेषु शरीरेषु शीर्यमाणेषु देहेषु, गुहावच्छेदेन अशरीरम् अस्पष्टं शरीरं यस्य तथाभूतस्तम् अवस्थितं धृतावस्थम् । यद्यपि शरीराणि क्षणभङ्गुराणि अनवस्थितानि तथापि शरीरधर्माणामस्मिन् न कोऽपि प्रभाव इति हार्दम् । एवं भूतं महान्तं मुनिगणैरपि ध्येयतया पूज्यमानं विभुं सर्वव्यापकम् आत्मानम्, प्रत्यगात्मसखं परमात्मानं मत्वा अवबुद्ध्य धीरः न शोचति हर्षशोकातिगो भवतीति भावः । शोको हि प्रियतमवियोगे भवति, यदि जीवः परमप्रियतमतया परमात्मानमेवाध्यवस्यति तदा शोकस्य प्रश्न एव नोत्तिष्ठति ।। श्रीः।।

ननु योऽयं परमात्मा प्रत्यग्रं मन्त्रत्रयेण वर्णितः स केन प्रकारेण लब्धुं शक्यः ? इति जिज्ञासां समाधत्ते श्रुतिः 'नायमित्यादिना–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु ँ् स्वाम् ।।२३।।

अयं पूर्वमन्त्रत्रयवर्णितमाहात्म्यः जिज्ञासूनामति सन्निकृष्ट आत्मा परमात्मा, प्रवचनेन वेदाध्यापनेन न लभ्यः—न लब्धुं शक्यः । यत्तु प्रवचनेन वेदस्वीकरणेन इति व्याचक्षते तत् प्रौढिवादमात्रं श्रुतिविरोधादुपेक्ष्यं च, स्वीकृतवेदो हि परमात्मानमवश्यं प्राप्नोति **शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधि गच्छति** इति स्मृतेः । तथ्यतस्तु प्रवचनं शास्त्राध्यापनम्, अतएवाह महाभाष्ये पतञ्जलिः "चतुर्भिर्प्रकारैविद्योपयुक्ता भवति आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यावहारकालेन चेति"

ननु श्रुत्यनुसारेण प्रवचनेन नैव लभ्योऽयमात्मा तर्हि पुनस्तैतरीयाश्रुतिः कथं निषेधमुखेन पठति **स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्** इति चेत् सत्यम् । अत्र श्रुतेस्तात्पर्यमेतत् यत्केवलेन प्रवचनेन अर्थात् अध्यापनेन न लभ्यः, केवलया मेधया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न लभ्यः, केवलेन बहुना श्रुतेन न लभ्यः । अत्र रहस्यमेतदवगन्तव्यं यत्—श्रुतिरेषा परमात्मप्राप्तिमाध्यमेष्वन्यतमानि प्रवचनमेधाश्रुतानि त्रिर्नकारमुच्चार्य परमात्मप्राप्त्युपायत्वेन स्वीकृतानि निषेधयति । अत्र त्रिषु करणे तृतीया, तच्च क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं कारकं सत् करणं भवति । तथा हि सूत्रं **साधकतमं करणं** फलितमेतद्यदि कोऽपि साधकः परमेश्वरलाभरूपक्रियासिद्धौ प्रवचनमेव प्रकृष्टोपकारकं मन्यमानः तेन करणभूतेन यतते तदा स नाप्नोति परमात्मानम् । एवमेव यदि कोऽपि भगवत् प्राप्तिं प्रति मेघामेव प्रकृष्टोपकारकत्वेनाध्यवस्यन् तया करणभूतया शास्त्रधारणबुद्ध्या यदि चेत् प्रयतते तदापि नाप्नोति । एवमेव यदि कोऽपि बहुश्रुतमेव वेदादिश्रवणं भगवत्प्राप्तौ प्रकृष्टोपकारुं मन्वानो भगवते प्रयासं करोति तदापि स वितथप्रयत्नो भवति । एवमत्र श्रुति प्रवचनमेधाबहुश्रुतानां केवलं भगवत्प्राप्तिक्रियां प्रति प्रकृष्टोपकारकत्वं निषेधयति, न त्वमीषामनुष्ठानम् । **तस्माद् स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्** एतस्यायमेव अभिप्रायः यत्-नित्यं स्वाध्याय प्रवचने कर्तव्ये । नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः एतस्येदं तात्पर्यं यत्-श्रुतिविहिततया प्रवचनं तु कर्तव्यं किन्तु तदेव न कर्तव्यं यथा सम्पूर्णदिनं तस्मिन्नेव व्यतीतं स्यात् संध्यादिकमपि त्यक्तं स्यात् । इत्थमध्यायनापरपर्यायं प्रवचनं भगवत्प्रापतौ पुण्यजनकतया सामान्यभूतमुपकारकं मन्येत । एवमेव न मेधया, मेधा शास्त्रधारणशक्तिः तया केवलया नहि अपितु सहायभूतया । शास्त्राणि खलु भगवत्प्राप्तिप्रतिबनधकप्रत्यूहनिर्वहणकर्माणि विधेयत्वेन निर्दिश्य निवर्तन्ते । एवमेव बहुना श्रुतेन श्रुतशब्दोऽत्र शास्त्रवाचकः । यदि कोऽपि बहूनां शास्त्राणामध्ययनमेव परमात्मलाभे प्रकृष्टमुपकारकं निश्चिन्वानो तस्मिन्नेव सम्पूर्णं समयं नियोज्य भगवन्नामरूपलीलाधामतो विरमन् तेन यतते तदापि आत्मा परमात्मा न लभ्यः । यत्तु केचिदत्र आत्मा प्रत्यगात्मा इति व्याचक्षते तदप्यसङ्गतम् । स्पष्टं नचिकेतसा चतुर्दशे मन्त्रे परमात्मानं प्रत्येव जिज्ञासितत्वात् । इत्थं चरणद्वयेन त्रीणि साधनानि निषिध्य जगद्वत्सला परमकारूणिका श्रुतिः तत्प्राप्तौ मुख्यसाधनं कथयति यमित्यादि । एषः, अस्मच्चर्चाविषयपरमात्मा यं कश्चित् सद्गुरूचरणकमलेषुः विध्वस्तरजस्कं एवं भूतं सत्संगजाह्नवीजलपूतहृदयं महाभागः निजाहैतुककृपया कदाचित् अयं मय कृपा पात्रं स्यात्, अहंमेतस्य नेत्रविषयो भवेयम् इति स्वयमेव यत् करूणाकल्लोलिनीवल्लभो जानकीवल्लभः यमङ्गीकरोति तेन महाभागेन लभ्यः लब्धुं शक्यः । यत्तु केचन-यं स्वात्मानमेष आत्मा वृणुते प्रार्थयते तेन स्वात्मनैव स्वात्मा लभ्यः इति शब्दबलात्कारपूर्वक-द्रविड़प्राणायामविधया व्याचक्षते तत्तु सर्वथैवानुचितमशास्त्रीयत्वात् । यच्छब्दोऽहि कथं स्वात्माभिधेयः एवमेतच्छब्दोऽपि । सर्वनाम्नां पूर्वप्रधानयोः परामर्शकत्वात् एष शब्दोहि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमात्मानमेवाभिधत्ते। यच्छब्दश्च द्वितीयान्ततया साधकं परामृशति, तेनैव साधकेन लभ्यः। अत्र कर्तरि तृतीया करणेऽपि। स स्वयं लब्ध्वा स्वकृपया अन्यानपि प्रापयति। निष्कर्षश्चायं यत्-सर्वतन्त्र स्वतन्त्रं परमात्मानं नैव किमपि साधनमनुरोद्धुं शक्नोति, स्वयमेव परमात्मा कृपां कृत्वा यं साधकमङ्गीकरोति तेन लभ्यो भवति। अतएव विविधसाधनानि कृत्वा मुनयो न तथा लब्धवन्तो राघवं यथा साधनहीनाः पतिता अपि अहल्यागुहजटायुऋक्षकपयोनिशाचराः विदुरगोपिकापाण्डवप्रभृतयः। यतो हीमान् भगवानेव कारूणिकतया वृतवान्। यत् वृणुते इत्यस्य प्रार्थयति इति व्याचक्षते तत्रु अज्ञातशाब्दिकसिद्धान्तास्ते नालोचनीयाः। भगवान् केन गुणेन जीवान् अङ्गीकरोति ? इत्यत्र परमान्तरङ्गतमा भगवतः श्रुतिरपि मौनमास्ते तत्र के वयं वराकाः वर्णयितुमलम्। अतोगोस्वामितुलसीदासमहाराजाः प्राहुर्विनये–

जेहि गुनतें बसहोहु रीझि करि, सो सब मोहि बिसर्यो।। (वि. प. ९१)

अतश्चतुरचातकेनेव साधकेन स्वातिजलधाराया इव भगवदकृपाकादम्बिन्याः प्रतीक्षा करणीया। तल्लाभे सति किं स्याद् अत आह–तस्येति, न केवलं कृपां कृत्वा यमङ्गीकरोति तेन लभ्यो भवति। प्रतयुत् तस्य साधकस्य समक्षं एषः अयम् कृपाकूपारः कोशलेन्द्रकुमारः स्वां निजां चिन्मयीं तनूमभिनवजलधीलीलां कोटिकोटिकन्दर्पकमनीयां धनुर्बाणादिदिव्यायुधभूषणरमणीयां श्यामलमूर्तिमपि विवृणुते प्रकटीकरोति। यद्वा कश्चिद्वरः काञ्चिद् वरवर्णिनीं वृणुते, पश्चात् तस्यै सुखं दातुं तस्या सुखं च गृहीतुं परिष्वङ्गादिचिकीर्षया तत्समक्षं स्वयमेव प्रस्तुतो भवति, तथैव भगवानपि। स्पष्टप्रतिप्रत्यर्थं पुष्पवाटिकायां सीतां वृणुते पश्चात् तस्याः समक्षं स्वं प्रकटीकरोति—

।।लता भगवन ते प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाय।।

(मानस बाल, २३२) ।।श्री।।

अथ परमात्मानमिमं स लभते वृणुते किन्तु को न प्राप्नोति ? इति जिज्ञासायां परमात्मप्राप्तिप्रतिबन्धकदोषान् व्याकरोति,

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमहितः ।
नाशान्तमनसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।२४।।

यः दुश्चरितात् श्रुतिनिषिद्धकर्मणः अविरतः अनुपरतः न, यश्च अशान्तः नैवशान्तिमापन्नः यश्चासमाहितः एकाग्रचित्तो न, अशान्तं चंचलं मानसं मनः यस्य तथाभूतः चंचलस्वाभावः। वा अपि प्रज्ञानेन केवलज्ञानबलेन एनं न आप्नुयात्। यद्वा प्रज्ञानेनेति पृथग्वाक्यम्, अर्थात् यः दुश्चरितात् न विरतः, यः अशान्तः, यः अनेकाग्रः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यश्चंचलमना: स तु प्रज्ञानेन सेवकसेव्यभावबोधरूपेण प्रकृष्टज्ञानेन एनं परमात्मानमाप्नुयात् ।। श्रीः ।।

अधुना सन्तुष्यन्नचिकेता अन्तर्जिज्ञासां कुरूते यद् भवति यमराजे इमे दोषास्तु न विद्यन्ते, तर्हि भवान्परमात्मानं पूर्णतया जानाति न वा ? तदा यमराजः' ब्रह्मणोऽनिर्वचनीयतां वर्णयन् प्राह–

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।।२५।।

वत्स ! प्रलयकाले भगवान् सर्वान् अत्ति । कथं ? यथा कोऽपि भोक्ता भोजनकाले ओदनमुपसेचनेन सूपशाकादिना खादति तथैव ब्रह्म । ब्राह्मणः धर्मोपदेशकतया प्राणिनामुपलक्षणः, क्षत्रं धर्मरक्षकः चकारद्वयेन वैश्यशूद्रयोरन्येषां च जीवानां ग्रहणम् उभे द्वे ओदनः पक्वतण्डुले भवतः । मृत्युः अहं यमराजोऽपि यस्य परमात्मनः उपसेचनं द्विदलशाकव्यञ्जनादिकं भवति । तादृक् सकलचराचरग्रसनशीलः यत्र साकेतलोके चतुश्पादविभूतिरूपेण विराजते सः तादृशं साकेतलोकम्, इत्था अनेनप्रकारेण चिन्तयामः इति कः वेद कः जानाति न कोऽपि इति भावः यद्वा कः ब्रह्मा वेद स एव परमभागवतः कदाचित् जानाति ।। श्रीः ।।

।। इति द्वितीयवल्ली ।।
।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीय वल्ली ।।

द्वितीयवल्यां चतुर्दशे मन्त्रे अन्यत्रधर्मादित्यादौ नचिकेतसा पूर्वपृष्टमात्मविषयक–प्रश्नं परित्यज्य षड्वैशिष्ट्यविलक्षणपरमात्मतत्वे पृष्ठे यमराजेन त्रिभिर्मन्त्रैः परमेश्वरस्य याथातथ्यं ब्रावर्णि । पुनरात्मतत्वं प्रथमवल्यां पृष्टं तृतीयवरदानरूपेण समुपादिशत्, पश्चात् षड्भिर्मन्त्रैः सकलप्रत्यगात्मनां सेव्यत्वेन प्रतिष्ठितस्य परमात्मनः महिमानुवर्णितः । तत्र **आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्** इति मन्त्रेण अस्य जन्तोः प्रत्यगात्मनः हृदयं गुहायाम् आत्मानिहितः इत्यप्युक्तम्, आत्मपदस्य च परमात्मशब्दतात्पर्यग्राहकत्वमपि निरगादीच्छ्रुतिः । तत्र जिज्ञासेयमुदेति यदेकस्यां गुहायां जीवात्मना सह परमात्मा कथं तिष्ठति, एवम् अज्ञानमोहितत्वात् जन्तुसंज्ञाभाक् प्रत्यगात्मायं कथं संसारकान्तारं तरति ? इत्यतस्तृतीयवल्ली प्रारम्भः । तत्र प्रथमे जीवात्मपरमात्मसम्बन्धमीमांसा,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीयस्मिन् प्रार्थना, तृतीयस्मादेकादशं यावत् रथरूपककल्पना, चरमे प्रतिबोधनमिति विषयानुक्रमः । अथ द्वयोरात्मपदवाच्ययोर्गुहाप्रविष्टयोः सम्बन्धं विवृणोति ऋत मित्यादिना—

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ।।१।।

ये पञ्चाग्नयः पञ्चसंख्याकाः गार्हपत्यदाक्षिणाग्न्याहवनीयशव्यावसद्भ्याः येषां तथाभूताः निष्कामकर्मयोगिनो गृहस्थाः, नचिकेतसः अयं नाचिंकेतः, त्रिः समनुष्ठितः नाचिकेतः अग्निः यैस्ते इति त्रिणाचिकेताः उपासकाः इति भावः । ब्रह्म परमात्मानं विदन्ति विन्दते विन्दन्ति इति ब्रह्मविदः ब्रह्मज्ञाः ब्रह्मविचारकाः ब्रह्मविदः ब्रह्मज्ञाः ब्रह्मविचारकाः ब्रह्मप्राप्तिकर्तारश्च एवं विधं वदन्ति यत्-इमौ जीवात्मपरमात्मानौ गुहां बुद्धिं प्रविष्टौ । परमे पराधे ब्रह्मणो निवासभूते हृद्देशे सुकृतस्य सत्मकर्मणः लोके अस्मिन् मनुष्यलोके ऋतं सत्यं पिबन्तौ धयमानौ, अत्रायं विवेकः यत्-जीवस्तु कर्मणः फलभूतं सत्यमास्वादयति किन्तु परमात्मा न पिबति पाययति केवलं तर्हि पिबन्ताविति द्विवचननिर्देशः कथम् ? इति चेत् अपिबन्तमप्यात्मानं प्रत्यगात्मानं पिबन्तमकलोक्य तत् पानसंतुष्टः आत्मानमपि पिबन्तमिव मन्यते अतो द्विवचनम् । तथाभूतौ इमौ छायातपौ जीवात्मा छाया अल्पप्रकशकत्वात् नित्यं पुरूषानुगामित्वाच्च । परमात्मा आतपः सूर्यः परमप्रकाशकः निरस्तमोहसन्देहः । इत्थं द्वयोः सम्बन्धः । यद्व यो गुहां हृदयं प्रविष्टौ सुकृतस्य भजनरूपस्य **चतुर्विधाभजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन** गीता (७,१६) इतिस्मरणात् तस्य लोके साकेतनामके परमे अद्वितीये परार्धे श्रेष्ठतमे, एवं महिमनि साकेते त्रयोऽपि गृहस्थकर्मि समुपासकशरणागतिहेतुकाज्ञानमार्गिणः छायातपाविव अनुगम्यानुगम्यभावात् ऋतं जीवात्मा भगवदानन्दरूपं परमात्मा भक्तानन्दरूपं पिबन्तौ आस्वादयन्तौ आशाते ॥ श्रीः ॥

इदानीं निकटंविवर्तमानं परमात्मानं विस्मृत्य जीवात्मा स्वाच्छन्द्यमनुभवन् संसारसागरे निमग्नो भग्नमनोरथो यदनिर्वाच्यपीडामनुभवति, तं तथाविधं तापत्रयेण पेपीड्यमानं रोरूयमाणं जीवात्मानं निहार्य करूणाक्लिन्नहृदया माता श्रुतिः मन्त्रेऽस्मिन् परमात्मप्रार्थनाय जन्तुमिमं समीरयति, यतो हि द्वितीयवल्यां त्रयोविंशे मन्त्रे नायमात्मेत्यादौ प्रवचनमेधाश्रुतानां भगवत्प्राप्तौ प्रमुखसाधनत्वेन गण्यमानानां तत् प्राप्ति साधनत्वं निराकरोत् । यमेवैष इत्युत्तरार्धेन निजकृपापरिणामाकारं भगवदङ्गीकारमेव तत्प्राप्ति मुख्यसाधनमेव प्रावोचत् । तर्हि स भगवादङ्गीकारः कथन्कारं भवेत्, कथं वा परमेश्वर-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृपासुधा जीवात्मविषयकक्षुधां मुधाकुर्यात् इत्यपेक्षायामुत्तरमिदम् । दैन्यपूर्विका सा भगवत्कृपा कादंबिनी तच्च अभिमान्यशून्यप्रार्थनाधीनं तस्मात् प्रार्थनाप्रकारं प्राह स्य: इत्यादिना ।। श्रीः ।।

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परं ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेत ँ शकेमहि ।।२।।

अत्र प्रार्थनायां वाक्यद्वयं विषयद्वयंञ्च । प्रथिमोहि प्रार्थिविषयः नाचिकेतोऽग्निः द्वितीयश्च परमात्मा । अन्वयोऽपि वाक्यभेदेन विवेकतोऽषवगन्तव्यः । स चेत्थं—यः ईजानानां सेतुः तं नाचिकेतं शकेमहि, यच्च अक्षरम् अभयं तितीर्षतां पारं तत् परं ब्रह्म शकेमहि । अथ किमर्थमिदं वाक्यद्वयं ? श्रूयताम् लोके हि द्विधाधिकारिणः कोमलाः प्रौढाश्च, उभयेषामपि भगवानेव शरणं, तथापि मार्गयोर्वैलक्षण्यं कोमलाना मविपक्वकषायाणां कर्मयोगः परिपक्वमनसां ज्ञानयोगः । तथोक्तं श्रीगीतायां **लोकेस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ, ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्** (गीता ३/३)

एवं कर्मयोगपथपथिकानां नाचिकेताग्निचयनपूर्वकपरमेश्वरप्राप्तिविधानं प्रथमवाक्येन, द्वितीयेन च दैन्यमूलकप्रार्थनमाकृपायाच्चाद्वारेण परमेश्वरप्राप्तिविधिः । तत्रपूर्वं नाचिकेताग्निप्रार्थना, यद्यपीयमपि परम्परया परमेश्वरप्रार्थनैव तथाहि-ईजानानां यज्ञाकुर्वतां यजमानानाम् अत्र **बहुलंछन्दसि** इत्यनेन सानचोमुमागमाभावः कित्वाभावेऽपि संप्रसारणम् दीर्घश्च । सेतुः संसारसागरतरणाय सेतुरूपः तादृशं नचिकेतसः संम्बन्धि भूतं नाचिकेतमग्निम् शकेमहि प्राप्तुं शक्येमहि । अत्र प्रार्थनायां लिङ् गणकार्याणामनित्यत्वाच्छ्यनभावः । एवमेव यत् विशिष्टाद्वैतम् अक्षरं नक्षरतीयत्यक्षरम् अविनश्वरं तितीर्षतां संसारसागरं तर्त्तुमिच्छतां भक्तानां पारं सिन्धुपुलिनमिव अभयं भय प्रतियोगिकात्यन्ताभाववत् परममशेषकार्यकारणातीतं तादृशं ब्रह्म सवर्था ब्रह्मणशीलं शकेमहि साक्षात्कर्त्तुम् क्षमेमहि वयमिति शेषः । यद्वा नात्रवाक्यद्वयं तथा च इजाना- नाम् यज्ञनिरतानां यः सेतुः मर्यादासेतुरिव कर्मिणां कृते, यच्च तितीर्षतां संसारसिन्धु- पारगन्तुमिच्छतामुपासकानां पारम् तीरमिव, यच्च ज्ञानिनाम् अद्वितीयत्वात् अभयं **भयम् द्वितीया भिनिवेषतो भवेत्** इति स्मृतेः । यच्च त्रिपथमतीतानाम् भवभीति भीतानामस्मादृशामदृशाम् अक्षरम् अक्षाणि इन्द्रियाणि राति ददाति इत्यक्षरम् निजानन्दानुभवाय दिव्येन्द्रियप्रदम् । अथवा अक्षिणी नेत्रे राति ददातीत्यक्षरं प्रसोदरादित्वात् इकारलोपोऽप्रत्ययश्च । भगवानेव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तन्मुखारविन्दमाधुरीनेत्रचषकेण पिपासतामनेत्राणाम् दिव्यचक्षुर्ददाति **दिव्यं ददामिते चक्षुः** (गीता ११-८) इति गीतोक्तेः । एवं भूतम्नाचिकेतम्, **सर्वे सान्ताः खल्वजन्ताः**, तस्मात् नचिकेतस्यइदं नाचिकेतं तादृशम् परं ब्रह्म शकेमहि द्रष्टुं ज्ञातुं प्रवेष्टुं वा क्षमेमहि ।। श्रीः ।। जीवाः हि द्विधा बुभुक्षवः मुमुक्षवश्च बुभुक्षवः संसारं प्राप्नुवन्ति मुमुक्षवश्च संसारकर्तारं कमलकुसुमसुकुमारं कौशल्याकुमारं लभन्ते, किन्तु यथा दविष्टं लब्धुं जनो प्रयाति केनचित्स्यन्देनन् तत्र रथरथिसारथिप्रग्रहहयमार्गाणां समीक्षणं तथैवात्रापि तस्मान्मन्त्रनवकेन रथरूपकं प्रस्तौति आत्मानमित्यादिनामन्त्रद्वयेन रथं तदुपकरणानि च निर्दिशाति–

आत्मान ँ् रथिनं विद्धि शरीर ँ् रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।३।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषया ँ् स्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।४।।

श्लोकद्वयमेकान्वयि—

पारेमार्गंगन्तुं रथस्यापेक्षायाम् रथिनमन्तरेण तस्याकिञ्चित्करत्वेन पूर्वम् रथिनिरूपणम् आत्मानं जीवात्मरूपं स्वमेव साधकम् संसारयात्रायाम् रथिनं, रथः अस्ति अस्य इति रथी तथाभूतं रथस्वामिनं विद्धि जानीहि, तु तथा शरीरं शीर्यमाणं पाञ्चभौतिकदेहं रथं स्यन्दरूपम् एव निश्चयेन विद्धि । च तथा बुद्धिं व्यवसायात्मकमन्तःकरणं सारथिं यन्तारं विद्धि, आत्मरूपरथिनिर्देशेन सैवशरीररूपरथं चालयति इति भावः । एवम् मनःसंकल्पात्मकं प्रग्रहं प्रगृह्यन्ते अश्वाःयेन तत् रथरश्मिमितिभावः । एवम् इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि हयान् अश्वान् आहुः कथयन्ति प्राज्ञः । इम एव शरीररूप रथम् वहन्ति । तेषु तादृशेषु रथोपकरणेषु विषयान् शब्दस्पर्शरूपरसगन्धान् गोचरान् गावः चरन्ति येषु तथा भूतान् मार्गान् आहुः । एवमात्मा शरीरमिन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, मनःसंकल्पकं तैर्युक्तम् इमं जीवात्मानं भोक्ता जगद्भोगनिरत इत्याहुः कथयन्ति, के ? मनीषिणः मनसोऽपि ईषितारः ।।श्रीः।।

इत्थं मन्त्रद्वयेन रथरूपकम् निरूप्य इन्द्रियाणां चाञ्चल्यकारणं निरूपयति । यद्यपि सर्वेऽपि प्रत्यगात्मानः परमात्मानं लब्धुं यतन्ते, भगवता सर्वेभ्यश्च समानरूपेण शरीररूपोरथिः बुद्धिरूपः सारथिः मनोरूपं प्रग्रहम् इर्न्द्रियरूपाः अश्वाः इति विषयरूपमार्गमतिक्रान्तुं सर्वाण्यपि गमनोपकारणानि दत्तानि, परन्तु दुर्भाग्यवशात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरला एव तरन्ति मरन्ति च बहवः सरलाः । तत्र किं कारणम् इति मीमांसायां रथोपकरणेषु प्रत्येकं विभाव्यं रथोऽपि मानवशरीररूपः भूयांसः दोषाः आयान्ति बुद्धिसारथौ, अतएव श्रुतिमाता गायत्री **धियो यो नः प्रचोदयात्** इति व्याहरति, अन्यथा तत्कुपरिणामं संकेतयति यस्त्वित्यादिना-

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येद्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ।।५।।

तु शब्दः अपेक्षापरः, लब्धेषु उपकरणेषु लक्ष्याप्राप्तौ कारणमन्वेष्टव्यम् । यः रथिविशेषः, अविज्ञानवान् अत्र विज्ञानपदम् बुद्धिपर्यायवाची तथा हि अपवित्रम् विज्ञानमस्त्यस्य इत्यविज्ञानवान् अत्र निन्दायाम्मतुप् एवम् अपवित्रनिन्दितबुद्धियुक्तः भवति, तथा अयुक्तम् असमाहितम् प्रग्रहपक्षे असम्बद्धं सारथिना हयैश्च तादृशेन मनसा सह सदा भवति निरन्तरं यात्रां कुरूते, तस्य जनस्य इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि अवश्यानि नवशीभूतानि भवन्ति । कीदृशानि इति स्पष्टयितुमुपमामाह सारथेः यन्तुः दुष्टाश्वाः दुष्टाः अनियन्त्रिताः अश्वाः अश्नन्ति सैन्धवशिलाः ये तथा भूताः इव यथा । आशयोऽयम् येन प्रकारेण लक्ष्यविहीनस्य सारथेः पीतमदस्य शिथिले प्रग्रहे अश्वाः तमनपेक्ष्यैव पथि विपथे वा यत्र यत्र हरित तृणानि पश्यन्ति तत्र तत्रैव रथं नयन्तो गत्वा चरन्ति, पुनर्लक्ष्यं विहाय विर्मागमेवानुसन्ति, तथैव यदि बुद्धिरशुद्धा तथा च मनोनियन्त्रणं त्यक्तं पुनरिन्द्रियाणि त्यक्तमर्यादानि विषयभोगान् स्वच्छन्दं भुन्जानानि तत्रैव रमन्ते न तु लोकाभिरामे श्री रामे । ।। श्रीः ।।

अथैतत् प्रतीपपरिणाममाह यस्त्विति—

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ।।६।।

तु किन्तु यः कश्चन साधकः विज्ञानवान् अत्र प्रशंसायां मतुप् प्रशस्तबुद्धिमान् भवति एवं युक्तेन समाहितेन स्ववशीकृतेन निश्चलेन मनसा भवति, तस्य प्रशस्तबुद्धेर्वशीकृत मनसः इन्द्रियाणि वश्यानि वशंवदानि भवन्ति इतिशेषः । कथमित्युपमाति-सारथेः सदश्वा इव यथा चतुरसारथेः दृढं प्रगृहीतप्रग्रहस्य अश्वा नोच्छृंखलाः प्रतिपदं साधनाकशा-ताडनेन निरस्तचापलत्वात् तथैव यदि भगवद्भजननिरता बुद्धिः तथा च मानसमपि तत्रैव नीतं तस्य नियन्त्रितानीन्द्रियाणि नैव लक्षं जहति । क इव सदश्वा इव सन्तः अश्वाः सदश्वाः यद्वा सतः साधोः विज्ञानस्य वशीकृता अश्वा सदश्वाः । ।। श्रीः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ननु पीतमदत्वात् प्रमादिनः विज्ञानसारथेः शिथिलं मनःप्रग्रहं भवतु नाम भवन्तुनाम नियन्त्रणहीना इन्द्रियाश्वाः, कदाचित्तु गन्तव्यं लप्स्यत एव इत्यत् आह यस्विति—

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति सँ सारं चाधिगच्छति ।।७।।

यस्तु दुर्भाग्यशाली रथिविशेषः, अविज्ञानवान् अशुद्धनिन्दितबुद्धिः अमनस्कः नवशीकृतं मनः येन सोऽमनस्कः अवशीकृतस्वान्तः, अतएव सदा निरन्तरम् अशुचिः कृतविकर्मतया पापमलिनः भवति पथिको भवति, स एवम्भूतः तत् पदम् गन्तव्यलक्ष्यं परमात्मपदं न आप्नोति नैव लभते। च चकारः विपरीतपरिणामसूचकः तत् पदाद्विपरीतं संसारं संसरति प्रवाहावच्छेदेन गतागतं करोति इति संसारः । यद्वा शनैः शनैः सरति विपरिणमति विनाशाभिमुखम् गच्छति इति संसारः । प्रसोदरादित्वात् तालव्यस्थाने दन्त्यसकारः टिलोपश्च, यद्वा समंसरतीति संसारः राजानो रंकाःवा सर्वेंपि प्राणभृतः समानरूपेण कालमुखं गच्छन्ति यस्मिंस्तथाभूतः, तादृशं संसारम् अधिगच्छति पापकर्मभिः गृहीताधिकारं याति, पापिनां हि संसाराधिकारात् । अथ को नाम संसारमतिलंध्य एतस्य विषममार्गस्य पारंगतस्तत्पदं प्राप्नोति इत्यत आह—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।।८।।

यस्तु साधकः विज्ञानवान् विजानाति परमात्मानं येन तद् विज्ञानं विपूर्वकज्ञाधातोः करणे ल्युट्, एवं प्रशस्तं भगवच्छरणागतिरसरसिकं विज्ञानं बुद्धिरस्त्यस्य स विज्ञानवान्, मनसा वशीकृतेन सहभूतः समनस्कः स्ववशस्वान्त इति भावः । सदा सततमेव शुचिः भगवद्भक्तिभागीरथीनिमज्जननिरस्तकल्मषः स एव तु निश्चयेन तत्पदं तस्य परमात्मनः स्थानं साकेताख्यं, यद्वा तस्य परमेश्वरस्य पदं सकलप्रपत्तिस्थानं श्रीमच्चरणसरसीरुह- माप्नोति लभते। किं स्वर्गलोक इव क्षयिष्णुः सः ? नेत्याह तत्र पुण्यं क्षीयते पुनस्तस्मिन् क्षीणे मर्त्यलोकं विशन्ति, किन्तु भगवच्चरणारविन्दे तु सततं सन्निहितमुनिमानसमधुकरत्वात् तत्र प्रतिपदं पुण्यं वर्धते अतो नैव पतनशंका । यस्मात्प्रभु पदपद्मात् पतित्वा इति शेषः भूयः पुनः न अभिजायते नैवसंसारे जन्मगृहणाति प्रत्युत् भगवता सह मोदते । **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता** इतिश्रुतेः ।।श्रीः।।

अथ निष्कृष्टमर्थमाह विज्ञानेति—

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परं पदम् ।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यस्तु नरः न रमते संसारभोगेषु सः नरः विज्ञानसारथिः विशुद्धः बुद्धिसारथिसंम्पन्नः, मनःप्रग्रहवान् मनः एव प्रग्रहं रश्मिः इति मनःप्रग्रहं तत् प्रसस्तमस्त्यस्य इति मनः प्रग्रहवान् वशीकृतस्वान्तरश्मियुक्त इति भावः । सः एवंभूतः साधकः अध्वनः संसारकान्तारमार्गस्य पारम् अन्तं तथा विष्णोः विवेष्टि इति विष्णुः तस्य यद्वा विशेषेण श्नौति किमपिसाधनमन्तरेण भक्तेषु द्रवतीति विष्णुः, तस्य विष्णोः श्री रामानिधानस्य ब्रह्मणः यद्वा विष्याविष्णुना नूयते प्रणम्यते इति विष्णुः तस्य विष्णुनापि प्रणम्यमानस्य श्री रामचन्द्रस्य तत् सकललोकविलक्षणस्य परमं श्रेष्ठं, यद्वा पराधिष्ठातृत्वेन श्रेष्ठा, यद्वा आचार्यत्वेन जगज्जननीत्वेन शीघ्रं करूणापरत्वेन च रामादपि श्रोयसी मा श्रीरामचन्द्रस्य आह्लादिनीशक्ति सीता यस्मिन् तत्परमं पदं स्थानमाप्नोति लभते । अर्थात् इन्द्रियाणि बुद्धिमानसी अन्तरेण नैव विषयग्रहणे क्षमन्ते अतो यस्य बुद्धिमनसी नियन्त्रिते भगवद्भजनेन विमलीभूते तस्य इन्द्रियाणि स्वत एव जितानि, जितेषु तेषु नियोजितेषु च भगवत्कर्मणि जीवात्मा शरीरस्यनन्दसंसारयात्रां समाप्य परमेश्वरपद्मपदं प्रपद्यते ।।श्रीः।।

अथ साधकेभ्यः समाश्वासनदित्यसा इन्द्रियविषयमनोबुद्धिप्रत्यगात्माव्यक्त परमपुरूषाणां सप्तानामपि मध्ये पूर्वपूर्वस्मात् उत्तरोत्तरस्य बलवत्तरत्वं दर्शयति द्वाभ्यां मन्त्राभ्याम्—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परो महान् ।।१०।।
महतः परमत्यक्तमत्यक्तात्पुरूषः परः ।
पुरूषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः ।।११।।

ननु कथं बुद्धिमनसोरेव नियन्त्रणेन संभवमिन्द्रियनियन्त्रणमिति जिज्ञासां शमयति-हि यतोहि अर्थः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवचनग्रहणगमनोत्सर्गानन्दाः इन्द्रियेभ्यः चक्षुश्श्रोत्ररसनाघ्राणत्वक्पाणिपादपायूपस्थेभ्यः पराः बलवत्तराः यतो हि तैरेवैतानि बलान्निगृह्यन्ते, अर्थेभ्यः शब्दादिभ्यः मनः स्वान्तं परं बलवत्तरं सूक्ष्मतरश्च गतिशीलत्वात् अणुत्वाच्च, तु तथाच मनसः स्वान्तात् बुद्धिः व्यवसायात्मकमन्तःकरणं परा अधिकबलवती विज्ञानमयत्वात् सारथित्वात् च, रथिनः बुद्धेः तदपेक्षयापि महान् पूजनीयः आत्मा जीवात्मायं परः बलवत्तरः श्रेष्ठश्च आत्मशब्दो हि नानार्थकः तत्र अहंकारादावतिव्याप्तिवारणाय महानितिविशेषणं, महान् शब्दोऽत्र नैवसांख्यदर्शनीयमहत्त्तत्वबोधकः तत्र महतत्त्वं हि बुद्धिपर्यायमत्र च महतः बुद्धेः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परत्वमुक्तम्, एवं महतः इन्द्रियादिभिः पूज्यमानात् अव्यक्तं व्यंजितुमनर्हं योगमायाभिधानं भगवतः शक्तिविशेषः परम् बलवत्तरम् । महान्तमपि जीवात्मानं क्षणेनेव मोहपाशेन बध्नाति यथोक्तं मार्कण्डेय पुराणे—**ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हिसा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति** (दुर्गा० स० १/५५) एवमेवश्रीगीतायां **दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया** (गीता ७/१४)

तथैव श्रीमानसे—

जो ग्यानिन्हकर चित अपहरई, बरियाई विमोह मन करई । (मानस ७/६९/६)

अत्र अन्यक्तमपि नैव सांख्यानां प्रकृतिःतस्याः जड़त्वान्धत्वपरतन्त्रत्वप्रभृत्यपकृष्ट-धर्मवत्वधिानात् । प्रकृतिजीवात्मनोश्च संयोगतः सृष्टिकरणेन लोके तयोर्दाम्पत्याभिलापात् अव्यक्तं खलु भगवतो योगमाया अघटितघटनापटीपसी भगवदभिन्नाः ।

अव्यक्तात् भगवन्मायातः, पुरूषःपुरि शरीरे उ निश्चयेन शेते इति पुरूषः परमपुरूषार्थ साध्यः परमात्मा परः बलवत्तरः सूक्ष्मतरश्च । जीवात्मपरमात्मनोर्मध्ये अव्यक्तम् । अनेन व्यवहित दृष्टि जीर्वात्मा न परमात्मानं पश्यति यथा श्रीगीताषु **नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः** (गीता. ७/२५)

मानसेऽपि-**मायाछन्न न देखिये जैसेनिर्गुन ब्रह्म** । (मानस-३,३९ क) इदमपि पुरूष इवानेकरूपं भगवद्विमुखानां कृते ब्रह्मावरकपटकं भगवत्सम्मुखानां कृते ब्रह्मदर्शनघटकं यथा मानसे श्री गोस्वामिचरणाः स्मरन्ति–उ**भयबीचश्री सोहति कैसे, ब्रह्म जीव विचमाया** जैसे (मानस-३,७,३) इत्थं जीवात्मपरमात्मनोर्मध्ये न केवलं भेदः प्रत्युत् व्यवधानसहकृत भेदं कण्ठरवेण निर्दिष्टवती श्रुतिः । अत्रापि यदि कोऽपि दुराग्रहग्रहिलः द्वयोरैक्यं सिपाधयिषति तर्हि नूनं स त्रिदोषग्रस्तः । एवं योगमायातः परिभूतात् पुरूषादपि किञ्चित् परं नवेति ? नेत्याह पुरूष परमात्मनः किश्चित् किमपि वस्तुजातं न परं नवा सूक्ष्मतरं नवा बलवत्तरं सा काष्ठा, पुरूषपरतैव काष्ठा चरमसीमा सा परिणतिः परमपुरूषपरमात्म इव सकलगन्तव्यस्थानम् । वस्तुतस्तु मन्त्रद्वयेऽपि सप्तस्थानेषु प्रयुक्ता ल्यबलोपपंचमी, न तु तरबनुरोधिनी अन्यथा तत्र तरप् प्रत्ययः श्रूयेत, पर शब्दश्च आधिक्यश्रैष्ठ्यसूक्ष्मत्वपरः ॥ श्रीः ॥

अथ यदि परमात्मा सर्वेषां पराकाष्ठा सर्वेषां परागतिश्च श्रुत्यैव निर्धारितः, तर्हि कथं नास्मदादिभिः अनुभूयते ? इत्यत् आह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।।१२।।

एषः परमात्मा सर्वेषु भूतेषुप्राणिषु गूढः योगमायाजवनिकया संम्भृतः आत्मा सर्वव्यापकोऽपि न प्रकाशते सामान्यजनानां इति शेषः । अत्र **बहुलम् छन्दसि** इत्यनेन गूढः आत्मा अस्यां स्थितावपि उत्वाप्रवृत्तौ रोरूत्वेगुणे पूर्वरूपः । केन दृश्यते ? इत्यत आह—

सूक्ष्मदर्शिभिः पूर्वोक्तमन्त्रद्वयानुसारं सूक्ष्मं पश्यन्ति तच्छीलाः इति सूक्ष्मदर्शिनः, तथाभूतैः कर्तृभिः अग्रयया बुद्ध्या भगवत्साधने अग्रसरया करणभूतया बुद्ध्या मनीषया दृश्यते साक्षात्क्रियते निश्चयेन । अथ भगवद्दर्शने साधनप्रकार माह—

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ।।१३।।

प्राज्ञः प्रसस्ता प्रज्ञा अस्ति अस्य तथाभूतः **प्रज्ञादिभ्योअण्** इत्यण् प्रत्ययः वाक् उपलक्षणतया वागुपलक्षितहृषीकाणि मनसि यच्छेत् नियमयेत्, तत् मनः आत्मनि आत्मनामकज्ञाने ज्ञानकरणे बुद्धौ यच्छेत्, तज्ज्ञानं महति आत्मनि प्रत्यगात्मनि यच्छेत्, तमपि शान्ते निर्दोषे आत्मनि भगवति परमात्मनि नियच्छेत् निश्चित्य विलापयेत् पूर्व पूर्वस्य उत्तरोत्तरत्र संयमः ॥ श्रीः ॥

।। इति प्रथमाध्याये तृतीयवल्ली ।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमा वल्ली

पूर्वस्मिन् अध्याये नाचिकेतोपाख्याने यमः नचिकेतसस्तृतीयवरदानरूपेण वल्लीद्वयावधि ब्रह्मनिरूपयामास । तत्र आत्मपरमात्मनोर्भेदं स्पष्टं समुदीरयत् । एवम् आत्मपरमात्ममीमांसां विज्ञाय नचिकेता संतुष्टः । अतएव प्रथमाध्यायस्य तृतीयवल्लीचरममन्त्रद्वयेन नाचिकेतमुपाख्यापनमित्यादिना फलश्रुतिं कथयित्वा यद्यपि नाचिकेतोपाख्यानं विश्रमयामास तथापि नोपनिषद् विश्राममगच्छत् । द्वितीयाध्यायव्याख्यानं खलु किञ्चिदुपाख्याननिरपेक्षम् ईशावास्यमाण्डूक्यादिवत् । सम्बद्धश्च प्रथमाध्यायेन सहेत्थम् निजोपदेशचरममन्त्रे यदवोचद्यमः **निचाय्यतन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।** तत्र जिज्ञासा समुदेति-कथं मन्त्रेऽस्मिन् विलोक्य तदिति नावोचत् ? तदुत्तरम्-यतोहि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धरहितं तत् । ननु भो एतन्मन्त्रव्याख्याने मध्यमपदलोपिसमासमहिम्ना भवतैव ब्रह्मणि अव्यक्तशब्दादीनां व्यवस्था कृता, तर्हि तत् कथं न त्यज्यते, अविज्ञायरहस्यमेतत् तदनुभवोऽपि नैव सुशक इत्यतो ब्रह्मदर्शने हृषीकाणामसामर्थ्यं स्पष्टयितुं द्वितीयाध्यायप्रारम्भः ।

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भू-
स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ।।१।।

स्वयम्भूः स्वयं भवति तथाभूतः सकलकारणतया परमस्वतन्त्रः परमात्मा खानि समनस्कानि चक्षुरादीन्द्रियाणि, पराञ्चि पराग् अञ्चन्ति तथा भूतानि ब्राह्यविषयास्वाद लम्पटानि इत्रि भावः । व्यतृणत् व्यरचयत् । इन्द्रियाणां स्वभावो हि बहिर्मुखः अतो बहिर्विषयान् भुञ्जते । यत्तु व्यतृणत् इत्यस्य हननं कृतवान् इति व्याख्यातं तदस्वाभाविकं प्रसङ्गविरुद्धञ्च । ननु कथं हिंसार्थकत्रिहुघातोः रथनार्थः ? **अनेकार्था हि धातवः** इत्यनुशानात् व्युपसर्गवलेन रचनार्थत्वेनादोषः परिहरतीत्यादिवत् । तस्मात् इन्द्रियाणां पराक्मुखत्वात् द्रष्टायं पराक्पश्यति निम्नभोगान् अनुभवति अन्तः निजमनोमन्दिरे आत्मन् आत्मानं न । अत्र "सुपां सुलुक्" इत्यनेन ७/३/३९ आत्मन् उत्तरवर्तिद्वितीयैकवचनलोपः । एवमिन्द्रियाणां पराक्त्वमेव भगवत्साक्षात्कारे प्रतिबन्धकम् । यद्वा स्वयंम्भूः परमेश्वरः खानि पराञ्चि निजचरणपराङ्मुखानि ज्ञात्वा व्यतृणत् हिंसितवान्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतएव द्रष्टा स्वान्तरात्मानं न पश्यति । कश्चिद् कोऽपि धीरः धियं बुद्धिम् ईरयति प्रेरयति इति धीरः । अमृतत्वं नास्ति मृतत्वं मरणधर्मः यस्मिन् तद्ब्रह्म इच्छन् साक्षात्कर्तुममिलषन्, आवृत्तचक्षुः चक्षुः शब्दः इन्द्रियाणामुपलक्षणम्, एवं आवृत्तानि पराग्विषयेभ्यो निवृत्तानि चक्षुः चक्षुरुपलक्षितेन्द्रियाणि येन स एव धीरः । प्रत्यगात्मानं प्रतीत्य अञ्चति गच्छति पूजयति वा परमेश्वरं यः स प्रत्यङ्, स चासावात्माचेति प्रत्यगात्मा तं प्रत्यगात्मानम् ऐक्षत् विलोकयतीतिभावः । ''व्यत्ययो बहुलम्'' इत्यनेन लडर्थे लङ् । तात्पर्यमिदं यदिन्द्रियाणां बहिर्मुखस्वभावात् तदाधीनोऽयं जीवात्मा बहिर्विषयानेवानुभवति ।

कथमिदमसमञ्जसं, यतो हि स्वयंभुरेव निजविमुखानि तानि व्यतृणत् हिंसितवान् । तेषां हिसनं भगवत्पदपद्मतः प्रथग्भवनम् । यदि कोऽपि धीरः इन्द्रियाणि विषयेभ्यः परावर्त्य भगवति नियोजयति तदा सः निजस्वरूपमनुभवन् प्रत्यञ्चन्तमात्मानं पश्यति, अविवेकिनो हि शरीरं पूजयन्ति किन्तु विवेकिनस्तु शरीरमनोबुद्धिभ्यः पृथक्कृत्य निजात्मानं परमात्मपदपद्ममधुकरं कुर्वते इति सिद्धान्तः । ।।श्रीः।।

अधुना कामान् सेवमानानां ब्रह्म रामं च भजतां परस्परवैलक्षण्यं च व्याचष्टे—

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृततत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ।।२।।

बालाः बलं प्राणनं प्रयोजनं येषां ते बालाः केवलं स्वासधारणप्रयोजनाः न तु भगवत्साक्षात्कारहेतवः, पराचः निम्नगामिनः कामान् काम्यमानान् भोगान् अनुयन्ति आनुगत्येन सेवन्ते, ते कामलोलुपाः विनतस्य विचारे नतस्य समनिवार्यस्य मृत्योः यमस्य पाशं बन्धनं यन्ति व्रजन्ति भगवच्छरणागतिं विना तेषां मरणं दुर्निवारम् ।

अथ शब्दोऽयं वैलक्षण्यवाचकः, एभ्यो विपरीताः धीराः भगवद्भक्ताः अमृतत्वम् अमृतमयं मरणधर्मभिन्नं परमात्मानं विदित्वा सेव्यत्वेन विज्ञाय यद्वा विन्दन्ति लभन्ते परब्रह्म यया सा वित्, करणे क्विप् तया विदा भक्त्या इत्वा प्राप्य **भक्त्यामामभिजानाति** इतिस्मरणात् **सह सुप इति** समासः बाहुलकात् समासनिमित्तकल्यब्भावः । इत्थं ब्रह्मानन्दरससुधासागरलीनमनसः अध्रवेषु संसारभोगेषु क्षणभंगुरेषु भोगेषु मध्ये ध्रुवं परमात्मानं न याचन्ते । यद्वा अध्रुवेषु आसक्तः ध्रुवं याचते, यद्वा अध्रुवेषु इत्यत्र ''निमित्तात् कर्मयोगे'' इत्यनेन निमित्ते सप्तमी, अर्थात् अध्रुवाणि क्षणभंगुरपदार्थानि् निमित्तानि मत्वा तत् पूर्तये ध्रुवं न प्रार्थयते । इह लोके क्षणभंगुरपदार्थन् विहाय केवलं भगवदनन्यतां गत्वा ध्रुवं परमेश्वरचरणतामरसं श्रीराघवं प्रार्थयन्ते । ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधुना भगवतः ज्ञानकरणत्वं सूचयति—

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनेव विजानाति किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ।।३।।

यच्छब्दश्तृतीयान्तो हेतौ येन हेतुना रूपमवयवसंस्थानं, रसं मधुरादिकं, गन्धं पार्थिवगुणं, शब्दं नभोगुणं, स्पर्शान् त्वगिन्द्रियग्राह्यान्, मैथुनान् गृहमेधीयसुखविशेषान् एतेनैव अनेन विज्ञानघनेन ब्रह्मणा करणेन विजानाति विशेषेण अनुभवति । इमं विज्ञानघनमन्तरेण अत्र जगति किं परिशिष्यते पारिशेष्येण किं वर्तते? इति काक्वा प्रश्नमुत्थाप्य स्वयमुत्तरयति-एतद्वैतत्–

एतत् येन प्रत्यगात्मा सम्पूर्णविषयान् अनुभवति अर्थात् समग्रा चेतना परमात्मनि तिष्ठति ततो लभते जीवात्मा, ततो लभन्ते करणाधिष्ठानानि सुराः, ततो लभन्ते इन्द्रियाणि चतुरन्तःकरणानि च, ततो लभन्ते विषयाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवचनोपादान गमनोत्सर्गानन्दसंकल्पव्यवसायाभिमानचिदाख्याः । सर्वेषां परमप्रकाशकस्तु श्रीरामाभिधानं ब्रह्मैव । तथा चाहुः श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यप्रशिष्यपदमलङ्कुर्वाणाः श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासमहाराजाः श्रीमन्मानसे—

विषयकरन सुर जीवसमेता, सकल एक ते एक सचेता ।
सब कर परमप्रकाशक जोई, राम अनादि अवधपति सोई ।।

मानस बा० ११७/५/६

वै निश्चयेन तत् तत् पदाभिधानं ब्रह्म ।

इदानीं ब्रह्मतत्त्वमेव दुरधिगमत्वात् भूयोऽप्यभ्यसति मन्त्राणां जामिताया अभावात् स्वप्नेति—

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ।।४।।

येन परमात्मना दत्तचेतनया असौ स्वप्नः अन्तः परिणामः यस्य तत् स्वप्नान्तं मनःकोषमयं लिङ्गशरीरं, जागरितं जाग्रदवस्था अन्तः परिणामं यस्य तत् स्थूलरूपं संसारं जागरितान्तं च कदाचित् पृथक्-पृथक् कदाचित् उभौ मिलितौ यद्वा नैवोभयत्र बहुब्रीहिः एवं जागरितस्य अन्तमवसानं स्वप्नस्य च अन्तमवसानम् उभौ द्वयोरप्यन्तौ अनुपश्यति अनुदिनमनुभवति । आशयोऽयं यदसौ प्रत्यगात्मा भगवतः कृपया विशुद्धचेतनां ततः समधिगम्य यदा जाग्रत्स्वप्नयोः सन्धिं जागरितान्तमेवं यदा च स्वप्नसुषुप्त्योः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्धिं स्वप्नान्तं, यदा च द्वावपि अनुपश्यति तदेव महान्तं महनीयगुणं विभुं व्यापकम् आत्मानं परमात्मानं मत्वा अवबुद्ध्य, न शोचति नेष्टवियोगजन्यं दुःखमनुभवति सततमिष्टदेवस्य स्वात्मना संनिधीयमानत्वात् । ।।श्रीः।।

इदानीं ब्रह्मज्ञस्य प्रशंसामभिधते—

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ।।५।।

यः यतमानः साधकः मध्वदं मध्वं कर्मफलं ददाति इति मध्वदः तं, यद्वा मध्वं मोहमदिरां द्यति इति मध्वदः तं, यद्वा मध्वं भजनानन्दं भक्तेभ्यो ददाति इति मध्वदः तथाभूतं, भूतभव्यस्य भूतेन भूतकालेन सहितं, भव्यं भविष्यत्कालस्य तत् सम्बन्धावच्छिन्नघटनानामित्यर्थः यद्वा भूतं व्यतीतं जननात् पूर्वं भगवच्चरणारविन्दसन्निधौ क्षणजातं भव्यं मंगलमयं यस्य स भूतभव्यः । जीवो हि यावन्नपृथग् भवति भगवच्चरणारविन्दात् तावदेव तस्य भव्यं, वर्तमानं तु संसाराशंकत्वात् अभव्यम् यथोक्तं गोस्वामितुलसीदासमहाराजैः–

जिव जबते हरि ते विलगानो ।
तब ते देह गेह निज जान्यो ।
माया बस स्वरूप विसरायो ।
तेहि भ्रम ते नाना दुःख पायो ।।

वि० प० १३६ ।।

एवं भूतस्य जीवजातस्य, ईशानम् ईशितारम् आत्मानम् अत्रत्यात्मपदं परमात्मनि निर्विवादतया तत्पर्यग्राहकम् । कथं ज्ञायते ? **ईशानं भूतभव्यस्य** इति श्रुतेः । नहि क्षोदीयान् जीवात्मा भूतभव्यमीशितुं क्षमते जीवमन्तिकात् । अत्र त्रेधा व्याख्यानं प्रथमं प्रत्यगात्मपरम् अर्थात् यः आत्मानं परमेश्वरं जीवं जीवात्मामन्तिकात् निकटतः वेद जानाति । जीवो हि परमात्मनो निकटवर्ती य एवं जानाति ततः न विजुगुप्सते नान्योन्यं प्रति घृणेते । दूरं हि घृणा भवति परमात्मनो नैकट्येन **यत्र प्रविष्टः सकलोऽपिजन्तुः आनन्दसच्चिद्घनतामुपैति** यद्वा जीवशब्दो हि आत्मान-मित्यस्यविशेषणम् एवं जीवयति संम्पूर्णभूतानि प्राणयति यः स जीवः, तं जीवजीवनप्रदमिति भावः, अन्तिकादिति वेत्रा सह अन्वयः अर्थात् यदि वेत्ता अन्तिकात् अतिनैकट्येन निजस्वामिनं परमात्मानं जानाति ततो न विजुगुप्सते परमात्मनश्चरणारविन्दयोर्बद्ध-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनोमधुकरतया कुत्रास्ति विजुगुप्सावसरः, यद्वा जीवमिति षष्ठ्यन्तं जीवस्य इत्यर्थकं भूतभव्यस्य इत्यस्य विशेषणं "ङसः सुपांसुलुकि" इत्यनेन सुः तस्यामादेशः । एवं सेव्यसेवकतया समध्यवस्यन् न विजुगुप्सते न पापकर्ममणि प्रवर्तते इति भावः । यत्तु न विजुगुप्सते इत्यस्य न गोपयितुमिच्छति इति प्राहुः श्रीमच्छंकराचार्याः तदनुचितम् सर्वथैव शब्दशास्त्रमर्यादाविरुद्धं गुप् धातोः स्वार्थे सन् **गुप्तिज्किद्भ्यः सन्** इति सूत्रेण घृणार्थे सनोर्विहितत्वात्, स्वयमपि शंकराचार्यैः ईशावास्योपनिषदः षष्ठे मन्त्रे ततो न विजुगुप्सते इत्यस्य अस्माद्दर्शनात् न घृणां करोति इति व्याख्यातम् । अहो एकैरेवाचार्यैः उभयत्र प्रयुक्तस्य एकस्यैव शब्दस्य व्याख्याद्वयं कुर्वद्भिर्वदतोव्याघात-दोषः किन्नाधायि ? तस्मात् मदुक्तमेव व्याख्यानं शास्त्रसम्मतम् । ।।श्रीः।।

एवं पुनरप्यभ्यसति तमेवार्थमनालस्या श्रुतिः—

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत ।।एतद्वै तत् ।।६।।

ननु पूर्वं भगवच्चरणारविन्द एव जीवस्य निवास उक्तः, सः कथमजायत इत्यत आह-यः प्रत्यगात्मा पूर्वं सृष्टिरचनाप्रारंभे, तपसः ब्रह्मणः **यस्यज्ञानमयंतपः** इति श्रुतेः । तस्मात् जातं समुत्पन्नः, अत्र व्यत्ययात् क्लीबानुरूपः सोरमादेशः । एवं य अद्भ्यः जलादिपञ्चभूतेभ्यः पूर्वं प्रथमजायत, एवं भूतो यः जीवात्मा गुहां प्रविश्य चौतन्यावच्छेदेन तत्रैव तिष्ठन्तं भूतेन्द्रियं देवतागणैः व्यपश्यत् व्यलोकयत् एतत् समस्तं जीवजातदृश्यमानं वै निश्चयेन तत् श्रुतिप्रसिद्धं ब्रह्म । ।।श्रीः।।

पुनरपि आनन्दमयत्वात् तमेवार्थमभ्यसति—

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत । एतद्वै तत् ।।७।।

इदानीं भगवतः स्त्रीमयीं विभूतिं स्मरति—या ब्रह्मरूपिणी देवतामयी देवताप्राचुर्यवती अदितिः देवमाता अखण्डब्रह्मता वा प्राणेन आत्मनैव सह सम्भवति, भूयश्च या भूतेभिः समस्तजीवात्मभिः सह व्यजायत विशेषेण जायमानाऽभवत्, जन्मवैशिष्ट्यञ्च स्वरूपच्युतिं विना गर्भाधानक्रिया निरपेक्षमर्थात् यत्र यत्रापि जीवात्मा गच्छति तत्र तत्रैव योनिषु परमात्मापि तदन्तर्यामितया तेन सहैव तिष्ठति । एवं गुहां हृदयं प्रविश्य तिष्ठन्ती सती या काचिन्नारीमयी एतद् ब्रह्मैव इति सामान्यः श्रुत्यर्थः । वयं तु सीताया अपि ब्रह्ममयत्वात् या सीताप्राणेन प्राणपतिना राघवेण सह सम्भवति भूतले जनकपुरावच्छेन प्रकटीभवति । कीदृशी सा-अदितिः दितिः खण्डनं तन्नास्ति यस्यां विनाशरहिंता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवतामयी देवता एव देवतामयी, गुहां चित्रकूटगिरिगुहां प्रविश्य वनवासकाले प्रवेशं कृत्वा, भूतेभिः भान्ति इति भूतानि तैः अत्र **बहुलं छन्दसि** इत्यनेन ऐसोऽप्रवृत्तिः एवं भूतेभिः चित्रकूटस्य मुनितपोधनैः सह तिष्ठन्ती निजपर्णशात्मायां विराजमाना या परब्रह्ममयी नारी या व्यजायत विशेषेण मातृगर्भं परित्यज्य विशेषेण पृथिवीतः जज्ञ इति भावः । एतत् तदेव सीताभिधं प्रत्यक्षीभूतं ब्रह्म तत् त्वत्पृष्टम् ।

अधुना परमात्मनः पावकरूपेण निरूपणं करोति—

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।।
।। एतद्वै तत् ।। ।।८।।

गर्भिणीभिः अन्तर्वत्नीभिः सुभृतः गर्भाधानसंस्कारक्रियया धारितः गर्भ इव भ्रूणो यथा अरण्योः ऊर्ध्वाधस्तनारणिकाष्ठयोः ऊपरि निहितः स्थापितः जातवेदाः निखिलज्ञानवान्, एवं दिवे दिवे प्रतिदिनं जागृवद्भिः जागरूकैः हविष्मद्भिः हविर्युक्तहस्तैः होतृभिः मनुष्येभिः, अत्रापि ऐसभावः मानवैः, ईड्यःस्तूयमानः यः अग्निः तदवत् प्रकाशमानः, वै निश्चयेन तद्ब्रह्म । गर्भिणीगर्भवत् यस्तु अरण्योर्निहितः सदा स्तूयमानो हविष्मद्भिरेतद् ब्रह्म तदेव तत् । ।।श्रीः।।

भूयो ब्रह्ममीहिमानं वर्णयति सूर्योदयास्तकारणप्रदर्शनच्छलेन—

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देषाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ।।९।।

नचिकेतः ! यद्ब्रह्म त्वमपृच्छः तन्न सामान्यं, यतः यस्मात् भयहेतुभूतात् सूर्यः भास्करः उदेति प्रातरुदयं गच्छति यत्र अस्ताचलरूपे अस्तं गच्छति स्तिमितो भवति, तं परमपुरूषार्थरूपं सर्वे देवाः सुरा अर्पिता शासनशक्त्या समर्पिता आज्ञापालकत्वेन इति भावः । तत् परमेश्वरे सम्पन्नं विधिहरिहराणामपि शासकं महाविष्णुरूपं श्रीरामं ब्रह्म कश्चन कोऽपि प्रबलतमोऽपि जीवात्मा नात्येति नातिलंघते अलंघ्यमहिमत्वात् । ।।श्रीः।।

अधुना तस्य सर्वव्यापकतां नानात्वनिषेधञ्च प्रथयति—

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।१०।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नचिकेतः ! एकमेव ब्रह्म सर्वत्र दृश्यते, भवन्तु नाम तस्यानेकानि रूपाणि परमार्थतस्त्वेकमेव। इह लोके जीवात्मनो गुहायां यदन्तर्यामितया विराजते तदेव ब्रह्म अमुत्र परलोकेऽपि साकेते असमोर्ध्वानन्दसागरसुधापुञ्जीभूतमिव विराजते। यत् अमुत्र साकेते निरवधिकमहिममहीयते तत् तदेव ब्रह्म अनु अनुकूलं ब्रह्म न तु प्रतिकूलम्। इह चराचरे यः इह अस्मिन् लोके नाना इव अनेकतत्वकं पश्यति स मृत्योः मृत्युमाप्नोति पुनःपुर्नजननमरणमाप्नोति इति भावः। येत्वत्र दुराग्रहग्रहिलचेतस्तया उभयोः साम्यपर्यालोचनया साधयन्त्यैक्यं प्रमत्तगीतमिव कुतर्ककल्पजल्पितं तदुपेक्ष्यम्। ।।श्रीः।।

तस्मिन्नेव ब्रह्मणि अनन्यनिष्ठामुत्पादयितुं नचिकेतसं भूयः प्राह—

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।

मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ।।११।।

इदमेतन्मया वर्ण्यमानं ब्रह्मतत्वम् इं कामं द्यति खण्डयति इति इदं कामादि-विकारनाशहेतुं मनसा शान्तेन स्वान्तेन, एव अन्ययोगं व्यवच्छिनत्ति नान्येन मनोतिरिक्तेन आप्तव्यं प्रापणीयम्। कुत्र वर्तते तत् इत्याह–इह अत्रैव विभाति। नन्वत्र तु नानारूपाणि दृश्यन्ते घटपटादीनि तानि निषेधयति-नेह नानास्ति किंचन किञ्चन नाना नास्ति, दृश्यन्तां नामानेकरूपाणि किन्तु तेषामाश्रयस्त्वेक एव परमेश्वरो रूपवान् इत्यनेन एकत्ववादिनामद्वैतप्रपञ्चो दूरमपास्तः। यत्तु नेह नानास्ति किञ्चन इत्यनेन सकलसत्ताविध्वंसपूर्वकब्रह्मैक्यं प्रतिपादयितुमीहन्ते तदापातरमणीयं बालभाषितमिव। वस्तुतोऽत्र चर्च्यमानस्य नानात्वं निषिध्यते ब्रह्मणः, न तु जीवब्रह्मणोर्भेदः। आप्तव्य-मिति कृत्यप्रत्ययान्तकथनेन कर्तारमन्तरेण क्रियाया अनुपपन्नत्वात्, तयेव आप्तिक्रियया कर्तृभूतस्य जीवस्य आक्षेपे तत्सत्तापार्थक्यं स्वयं सिद्धम्। एवं हि मनसैवेदमाप्तव्यं, केन ? इत्यपेक्षायां जीवेनेति स्वयमागतं, तस्यैव समनस्कत्वात् ब्रह्मणोऽमनस्कत्वं तु **अप्राणोहिमनाशुभ्रः** इति श्रुत्यैव निराकृतम्। एवं यः इह संसारयात्रायां सर्वरूपेषु व्याप्तं ब्रह्म अयं घटः अयं पटः इति नाना इव पश्यति, सः मृत्योः मृत्युं मरणं प्राप्य भूयोऽपि मरणं गच्छति प्राप्नोति। ब्रह्मैव घटपटत्वेन पश्यन् म्रियते घटपटं ब्रह्मत्वेन पश्यन् अमरो भवति इति भावः। केचन नानेव इति प्रयुक्तमिवकारं वाक्यालङ्कारं मत्वा निरर्थकं निश्नुन्वन्ति, परमहं श्रुतीनां प्रत्यक्षरं सार्थकमिति विश्वसन् इवशब्दं सादृश्यार्थं मत्वैव व्याचक्षे। तथा च अत्र नानेकत्वं प्रत्युत् नाना सादृश्यमपि निन्दति। अर्थात् यः खलु घटपटादिनानारूपसदृशं ब्रह्म पश्यति सोऽपि मृत्योः मृत्युं गच्छति इति तात्पर्यम्। किं भोः ! भवन्मते ब्रह्मसादृश्यदर्शनस्यापि विगर्हणा सिद्धान्तिता ?

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथकिं तत्र श्रुत्या स्मृत्या च विगर्हणा स्पष्टिता **न तस्य प्रतिमास्ति** इतिश्रुतिः **न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो** । गीता अध्याय, ११,४३ ।

अथ कथं तर्हि श्रीमद्भागवते द्वितीयस्कन्धे सादृश्यप्रतिपादनाय धारणायोगो वर्णितः ? हं हो सुकुमारबुद्धे ! तत्र ब्रह्मणः स्थूलवर्णनं ननु सादृश्यदर्शनम् । सादृश्येन स्मरणस्य स्वीकृतत्वात् अतएव तत्र तत्र श्रुतिषूपमाः दृश्यन्ते । ।।श्रीः।।

अथ पूर्वोक्तं सादृश्यस्मरणमुपबृंहयति अंगुष्ठेत्यादिना—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरूषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ।।१२।।

पुरूषः सर्वतः परिपूर्णतमः परात्परब्रह्मश्रीरामः आत्मनि शरीरे मध्ये तन्मध्यभागे हृत्पुण्डरीके, अंगुष्ठं परिमाणं यस्य सोऽङ्गुष्ठमात्रः **प्रमाणे द्वयसज्दध्नञ्मात्रचः** इत्यनेन प्रमाणार्थे मात्रच् प्रत्ययः । अङ्गुष्ठप्रमाणो लघु तिष्ठति विराजते । ननु परमात्मा तु सर्वत्र तिष्ठति आब्रह्मस्तम्भे कोप्यतादृशोऽपि जन्तुर्योऽङ्गुष्ठतोऽपि क्षोदीयान्, पिपीलिकादिस्तु क्षोदिष्ठः तत्र ब्रह्मणः कथं सेत्स्यत्यङ्गुष्ठमात्रता ? इति चेत् साधीयांस्ते प्रश्नः, अत्र श्रुतिः मानवमभिलक्ष्य उपदिशति तस्यैवपरमार्थज्ञाने सामर्थ्यात् पश्वादीनांकृते अरण्यरोपदनमुपदेशः तस्मान्मानवहृत्कमले अङ्गुष्ठमात्रः अन्येषु शरीरेषु तत्तदाकारानुरोधेन । यद्वा जीवात्मा प्रतिशरीरं तिष्ठति तस्य पुरूषरूपेण श्रुतिषु प्रसिद्धेः मानवाकारता अतो जीवात्मनः अङ्गुष्ठमात्रो भगवान् जीवात्मनश्च तत् तत् शरीरानुसारेण लघुत्वमहत्वव्यवस्था । एवं भूतभव्यस्य अतीतानागतस्य ईशानम् ईशनकर्तारं साक्षात्कृत्य ततो न विजुगुप्सते निर्मलो भवति इति भावः । ।।श्रीः।।

अथ अङ्गुष्ठमात्रस्य ब्रह्मणः सार्वकालिकतां निरावृत्तप्रकाशकत्वं सूचयति—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरूषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ।। एतद्वै तत् ।।१३।।

एवम् अङ्गुष्ठमात्रः पुरूषः योगिनां ध्येयः सहस्रदलकमले अंङ्गुष्ठप्रमाणः **अंङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरपुरटमौलिनम्** इतिस्मरणात् (भागवत् १-१२-८) अधूमकः नास्ति धूमः विकारः यस्मिन् सः ज्योतिः इव प्रकाश इव, अत्र व्यत्ययात्पुंस्त्वम् । तादृक् भूतभव्यस्य वर्तमानभविष्यतः, ईशानः ईशिता सःपरमात्मा एव नान्यस्तदतिरिक्तः, उ निश्चयेन सःपरमात्मैव श्वः आगामि दिनेऽपि भविष्यति तस्य त्रिकालस्थत्वात् । ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधुना परमात्मनि नानात्वं पश्यतां दुर्दशां वर्णयति–

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान्पृथक्पश्यंस्तानेवानुविधावति ।।१४।।

यथा दुर्गे दुर्गमस्थाने उच्छ्रिते वृष्टमुदकं मेघमुक्तजलं पर्वतेषु निम्नस्थानेषु पर्ववत्सु विधावति विकृतं गच्छति, एवं परमेश्वरात् पृथक् धर्मान्पदार्थान् पश्यन् विभावयन् तानेव निम्नभोगान् अनुक्षणं विधावति विकलं धावति, वैकल्यञ्च भगवत्पार्थक्यजुषां पदार्थानाञ्चिन्तने स्वाभाविकमेव । तथा च मानसकारः - **भूमि परतभा डाबर पानी, जनु जीवहि माया लपटानी** ।।श्रीः।।

अथ विरूद्धचिन्तनेन तत्सम्पर्कदोषमलीमसत्वं प्रतिपाद्य साम्प्रतं शुद्धब्रह्म-चिन्तनेन जीवात्मशोधनं वर्णयति—

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ।।१५।।

अधुना ब्रह्मोपदेशश्रवणविनिहतसमस्तपाप्मनो नचिकेतसः वंशनाम संकीर्तयन् महता समादरेण समुपसंहरति वल्लीमिमाम् । हे गौतम ! गौतमवंशवर्धन नचिकेतः । मलयुक्ते स्थाने वृष्टं जलं तु मलमनुगच्छति किन्तु कदाचित् सौभाग्येन विशुद्धे जाह्नवीजले निर्दोषं सत् निर्दोषमेव तिष्ठति परिणामेपि । यथा शुद्धं निर्दोषमुदकम् जलं शुद्धे निर्दोषे जले आसिक्तम् आदरेण मुक्तं मेघरूपचिन्तनेन तादृगेव भवति तादृङ् निर्दोषं सम्पद्यते । एवं विजानतः अहं दासः परमात्मा स्वामीत्थं ससम्बन्धं परमात्मानं चिन्तयमानस्य मुनेः श्रुतितत्वावगन्तुः आत्मा प्रत्यगात्मायं तादृक् शुद्धपयसि सिक्तं पय इव शुद्धो भवति । श्रीः ।

इति काठकोपनिषदि द्वितीयोऽध्यायः प्रथमवल्ली
।।श्रीराघवः शान्तनोतु।।

अथ द्वितीया वल्ली

पूर्वस्यां वल्यां द्विः अङ्गुष्ठमात्रः पुरूष इत्युक्तम् ।

तत्र पुरुषशब्दव्युत्पत्तिविचारे, पुरि शरीरे उ निश्चयेन शेते यः सः पुरूषः इति निरूक्तिमुद्भाव्य, कथमिदं शरीरं पुरम् अत्र कोहि निवसति को ह्यस्य स्वामी के दौवारिकाःकान्यत्र द्वाराणि ? इत्यनेक जिज्ञासासमाकुलमनसे नचिकेतसं समीक्ष्य पुररूपकं वर्णयता यमेन पंचमवल्ली प्रारंभः पुरमित्यादिना—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।

अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते ।। एतद्वै तत् ।।१।।

अवक्रं सरलं चेतः चेतना चित्तं वा यस्य तथाभूतस्य, अजस्य जन्मरहितस्य परमात्मनः, एकादशद्वारं एकादशसंख्यानि द्वाराणि द्वारभूतानि छिद्राणि द्वे चक्षुषोः, द्वे नासिकयोः, द्वे कर्णयोः, एकं मुखस्येति सप्त शीर्षण्याणि द्वे पायूपस्थयोः एकं नाभौ एकं च मध्येशिरः ब्रह्मरंध्रनामकं इत्येकादशसंख्यानि द्वाराणि यस्मिन् तादृक् पुरं, यत्र पञ्चप्राणाः एवद्वारपालाः, बुद्धिरेव महाराज्ञी, मनएव मन्त्री एतादृशं निवासयोग्यं शरीरं पुरं परमात्मनः कृते नगरमनुष्ठाय कृत्वा, ना शोचति जीवात्मेतिशेषः । तात्पर्यमिदं यज्जीवात्मायं महाराजस्वभावः स्वकीयप्राब्धेन शरीरमिदं निर्मायते किन्तु सहायकमन्तरेण तस्यापि शोकसंम्भावना, अतोऽयं यदि कामादि निकारान् निवासाभिलाषिणो निरस्य वक्रचेतसानजस्य अवक्रचेतसः परमात्मनः निवासाय पुरमनुतिष्ठति, तदनुरोधेन च सखेव सः परमात्मा तेन सह खेलति तदायं जीवात्मा शाश्वतसुहृत्सहयोगः नशोकं करोति । यत्तु अनुष्ठाय इत्यस्य ध्यात्वेत्यर्थं व्याचक्षते तदनुचितं कुत्राप्यनूपसृष्टस्थाधातोः ध्यानरूपार्थस्याश्रवणात् । ममतु पुरमित्यनेन सहकृत्वेत्यर्थकस्य अनुष्ठायेति ल्यबन्तस्य अन्वये सर्वं शास्त्रीयतया समञ्जसम् । इदं क्षेत्रभूतं शरीरं परमात्मनिवासाय, पुरीकृत्य किं सौलम्यं लभते जीवात्मा परमेश्वरात् ? इत्यत आह— च तथा च निजमित्रजीवात्मनिर्मिते शरीररूपे पुरे परमात्मा सुखं शेते, शयाने च तस्मिन् सुहृत्तमे दुर्हृदः कामादयः पलायन्ते । अतः तैर्विमुक्तः न पुनराक्रान्तुमितिप्रतिज्ञाय व्यक्तः विमुच्यते कामक्रोधादिकृत भववन्धनादपि विशेषेण मुच्यते । ।।श्रीः।।

अथ यस्य सरलचेतसः जन्मरहितस्य कृते स्वशरीरं पुरं विधातुं प्रत्यगात्मासौ निर्दिश्यते श्रुत्या, स किं गुणकः, किं माहात्म्यः नहि सामान्यस्य निवासाय कोऽपि कृषियोग्यामुर्वराभूमिं नगरीचिकीर्षति, इति चतुर्दशगुणैः तं पुरूषं स्तौति हंस इत्यादिभिः—

हंसः शुचिंसद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।

नृसद्वरसदृतसद्वयोमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ।। २।।

हंसः हन्ति भक्तानां पापं हिनस्ति इति हंसः हंसवन्निर्मलः, यद्वा हंसः सनकादिसंशयच्छेदाय गृहीतहंसावतारः मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः इतिस्मरणात्, यद्वाहंसः हंसवंसावतंसो रामः । न केवलं हंस इव शुचिः अपि तु शुचिषु पवित्रेषु सीदति तिष्ठति इति शुचिषत् पवित्रभक्तमनोऽरण्यवासी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथवा शुचौ परमपवित्रसाकेतलोके एवं सीदति यस्तादृशः । वसुः वसुरूपः यद्वा वासयति सर्वान् यः स वसुः । एवमन्तरिक्षसत् अन्तरिक्षे नभसि सीदति यः स इत्यर्थः वायुरूपः । तथा वेदिसत् वेदीषु यज्ञवेदिकासु सीदति प्रतिष्ठितोतिष्ठति यः स होता हवनकर्ता अग्निः **होतारंरलधावतम्** इतिश्रुतेः । तथा च दुरोणसत् **दुरोणः कलसे गृहे** इति कोषात् दुरोणेषु कलशेषु सीदति इति दरोणसत् सोमः, यद्वा दुरोणेषु गृहेषु सीदति इति दोरोणसत् गृहागतोऽतिथिः ब्राह्मणः अभ्यागतः । नृषु मनुष्येषु सीदतीति नृषत् अन्तर्यामी । वरेषु सुरवरेषु मुनिवरेषु वा सीदतीति वरसत् महाविष्णुः । ऋते सत्यवाण्यां सीदतीति ऋतसत् सत्यनारायणः, यद्वा ऋते सत्ये सीदतीति तथाभूतो यज्ञेश्वरः । व्योमसत् अत्रान्तरिक्षव्योम्नोः समानार्थकत्वात् द्विरूक्तापत्तेः व्योम भक्तहृदयं तस्मिन सीदति इति व्योमसत् परमात्मरूपेण । एवमप्सु जायते इति अब्जा मत्स्यावतारः कमठावतारो वा । गवि पृथिव्यां जायते इति गोजा नृसिंहवामनपरशुरामरामकृष्णरूपः । ऋतजा ऋते सत्ये जायते यज्ञे वा ऋतजा नारायणो ऋषिः । अद्रिजा अद्रौ पर्वते जायते इति अद्रिजा । ऋतं सत्यवाक्स्वरूपम् । बृहत् अतिशयवर्धनशीलं, बलिबन्धनकाले ऋतबृहतोदर्शनात् । संग्रहश्लोकस्त्वस्याः श्रुतेः—

हंसः शुद्धमनःस्थितो वसुरथो वायुर्नभस्थोऽनलो ।
वेद्याम् वै कलशे शशी गृहगतो विप्रो नरे पूरूषः ।।

मत्स्यो राघवकेशवौ नरऋषिर्नारायणो वामनः ।
देवे विष्णुरथो मखे मखपतिः हृत्स्थः प्रभुः वारिणि ।।

अथ शरीरस्थस्य भगवतः सांख्यैरिव निष्क्रियत्वम् उताहो सक्रियत्वमिति जिज्ञासां समादधत् तत्सक्रियतां सूचयति–ऊर्ध्वमित्यादिना–

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ।।३।।

प्राणं प्राणवायुं शरीरस्थोऽयम् ऊर्ध्वम् उपरिमुखनासिकाभ्यां नयति । अपानमपानवायुं प्रत्यगस्यति नीचैः क्षिपति । इदं पूर्वानुरोधेन वस्तुतस्तु प्राणः प्रकृष्टकर्मजीवात्मवाची, अपानश्च अधोगतिगामिजीवात्मवाची । एवं शरीरस्थोऽयं परमात्मा जीवस्य शुभाशुभं साक्षित्वेन पश्यति, तथाच प्राणं प्रकर्षेण अनन्तं परमात्मसाक्षात्काराय यतमानमूर्ध्वं नयति निजपरमधाम गमयति एवमपानमपकर्षेणानन्तमधोगतिमभिगच्छन्तं प्रत्यगस्यति संसारसागर एव क्षिपति । तथा चाह गीतायां भगवान्—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।

(गीता १६,१९)

अतएव **प्राणः** इतिः ब्रह्मसूत्रम् ब्र० सू० १/१/२५

एवं भूतं जीवेभ्यः शुभाशुभदातारं मध्ये शरीरमध्यभागे हृत्पुण्डरीके आसीनं निवसन्तं वामनं, वन्यते सम्यक् भज्यते इति वामनः तं वामनम्, यङन्तादच् प्रत्ययः अभ्यासनकारलोपो दीर्घः द्वितीयवकारस्य मकारश्च प्रसोदरादित्वात् साधुः । यद्वा वामान् स्वचरणकमलविमुखान् संसारसागरे क्षिपति इति वामनः तं वामनं विश्वेदेवाः समस्तसुरणगणाः चतुर्दशकरणदेवाः वा उपासते कैङ्कर्यविधिना सेवन्ते । श्रीः ।

अधुना युक्त्यापि जीवात्मनः पृथक्सत्ताकं ब्रह्म निरूपयति अस्य इत्यादिना—

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्रपरिशिष्यते । एतद्वै तत् ।।४।।

अयं परमात्मा जीवात्मनिर्मितशरीरपुरे तिष्ठति एवं हि विस्रंसमानस्य कालेन सूचनां विनापि त्याज्यमानस्य स्वस्थानं, शरीरस्थस्य शरीरे तिष्ठति इति शरीरस्थः तथाभूतस्य, देहः अस्तिः अस्य इति देही तस्य अत्यन्तं देहसंम्बन्धिनः देहात् देहं व्यक्त्वा विमुच्यमानस्य जीवात्मनः अत्र संसारे किं परिशिष्यते ? सर्वाणि धनानि तु क्षणभंगुराणि नानेन सह यान्ति, अतः एतस्य त्यक्तशरीरस्य स्वभूतं किं परिशिष्यते ? इति पृष्टः प्राह-एतत् इदं ब्रह्मैव जीवात्मनो नित्यधनं पत्न्यादयस्तु शरीरानुबन्धिनः तस्मिन्नष्टे तेऽपि नष्टाः अतएव यज्जीवस्य प्रतिजन्मधनमेतदेव वै निश्चयेन तद्धनम् ।।श्रीः।।

अधुना जीवात्मनो जीवनत्वेन परमात्मसत्तां संकीर्तयति न प्राणेनेत्यादिना—

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन् ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ।।५।।

प्राणेन पञ्चधा विभक्तेन, मर्त्यः कश्चन कोऽपि मरणधर्मा, न जीवति नैव श्वसिति । एतस्यापि परार्थत्वात् । अपानेन अपानशब्दोऽत्र चक्षुरादिबोधकः तेनापि गोगणेन नैव जीवति । अथ तर्हि केन जीवति ? इत्यत आह-इतरेण प्राणापानविलक्षणेन परमात्मनैव जीवन्ति, सर्वे जीवात्मानः प्राणान् धारयन्ति । जीवन्ति इति बहुवचनेन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवात्मबहुत्वं सिद्धं, तस्मिन् साक्षिणि सति एतौ प्राणेन्द्रियगणौ उपाश्रितौ उप सामीप्येन जीवात्मान- माश्रितवन्ताविति भावः । ॥ श्रीः ॥

इत्थं पञ्चभिर्मन्त्रैः जीवात्मपरमात्मनोः संम्बन्धं समभ्यस्य पुनर्ब्रह्मसनातनं प्रवक्तुं प्रतिजनीते—

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।

यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ।।६।।

हे गौतम नचिकेतः ! हन्त इति प्रसन्नतावाचकमव्ययम् । ते तुभ्यं जिज्ञासवे, इदं प्रत्यक्षतोऽनुभूयमानं, गुह्यं वेदेषु निगूढं सनातनं ब्रह्म अनस्वरं ब्रह्मतत्वं प्रवक्ष्यामि प्रवचनविषयं करिष्यामि । यज्ज्ञात्वा निजस्वामित्वेन विदित्वा मरणं प्रारब्धक्षयं प्राप्य, प्रेतोऽयमात्मा भवति, इन्द्रियार्थमनोबुद्धिभ्यो निरस्यात्ममतिम् आत्मा विशुद्धचैतन्यघनः भवति; यद्वा आत्मने परमात्मने भवति, छान्दसः सुब्लुक् यद्वा मरणं मस्य जीवस्य अरणं शरणं शकन्ध्वादिपररूपं, सकलजीवशरण्यं परमात्मानं प्राप्य आत्मा भवति, शरीरादिभ्यो विरज्य मुक्तात्मा भवति । श्रीः ।

अधुना जीवकर्मफलानुसारगतिव्यवस्थां वर्णयति योनीत्यादिना—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।

स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।।७।।

देहिनः देहः सम्बन्धत्वेनास्ति येषां ते देहिनः, सम्बन्धे मत्वर्थीयः देहसम्बन्धाभिमानवन्त इति भावः । अन्ये भगवत्किंकरातिरिक्ताः शरीरत्वाय शरीरभावाय, त्वप्रत्ययो हि भावार्थः, केचन शरीरिणोऽपि भगवद्भजनमहिम्ना देहभावविवर्जिताः स्वभावे परमात्मकैंकर्यरूपे तिष्ठन्ति । भगवद्विमुखाश्च देहाभिमानवत्वात् शरीरभावाय योनिं मातृगर्भद्वारं प्रपद्यन्ते शरण्यत्वेन गच्छन्ति न तु परमात्मानम् । शरीरादपि हि शरीरत्वं दुस्त्यजतरं कथं योनिं प्रपद्यन्ते ? यथाकर्म पूर्वजन्मनि साधुकर्म कृतं चेत् सात्विकयोनिं गच्छन्ति, दुष्कर्म कृतश्चेत् सूकरकूकरयोनिम् । शरीरभावाय कथं यान्ति ? अत उत्तरयति—श्रुतं श्रवणमतिक्रम्य ग्राम्यविषयाः श्रुताः, अतो देहभावलिप्सा न निवृता । अन्ये भगवदीयाः स्थाणुं तिष्ठन्ति, नित्यं साकेतादौ भक्तमनोमन्दिरेषु यः सः स्थाणुः ब्रह्ममयो रामः **सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुः** इतिस्मृतेः, अनुसंयन्ति देहभिमानशून्यत्वेन परमेश्वरपदपद्ममकरन्दमधुव्रताः अनुकूलसम्बन्धेन सेवकसेव्यभावेन भगवता सह सम्बध्यन्ते । यत्तु स्थाणुं स्थावरं गच्छन्तीति केचन विजल्पुः तत्तु

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमेश्वरमन्यमानानां भगवद्भजनरसापरिचितानां पातकपरिणामभूतमिव । अन्य इति कथनेनैव तत्र देहाभिमानतोऽतिरिक्तजीवात्मचर्चायाः सुस्पष्टं श्रुतिविहितत्वात् । श्रीः ।।

ननु पूर्वमन्त्रे देहाभिमनशून्याः परमात्मना सह सम्बध्यन्ते इत्युक्तं स स्थाणुरिति निर्दिश्यमानः कीदृङ्महिममण्डित ? इति जिज्ञासमानं प्राह—

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरूषो निर्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ।।८।।

एषः स्थाणुः सन् निष्क्रियो न तिष्ठति प्रत्युत् स्वभावं विस्मृत्य मोहनिद्रायां सुप्तेषु शयितेषु जीवेषु सत्सु पुरुषः पौरूषप्रधानः, कामं लौकिकं, कामं पारलौकिकं निर्मिमाणः निर्माय वितरन्, जागर्ति प्रबुध्यते । तदेव शुक्रं तत्परब्रह्मैव वीर्यं बलं भक्तानां, तदेव अमृतं आस्वादनीयतया सुधा रसः उच्यते निगद्यते । तस्मिन् परमात्मन्येव सर्वलोकाः साधिकारिणः श्रिताः आश्रितवन्तः, उ निश्चयेन तत् परब्रह्म कश्चन साहसिकोऽपि नात्येति नातिक्रामति । श्रीः ।

अथ सरलतया बोधयितुं अग्निवयुसूर्योपमानैः परमात्मानमपि निरूपममुपमायते अग्निरित्यादिना—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।९।।

यथा एक एवाग्निः अग्रे नीयमानत्वात् पावकः, भुवनं भवन्ति भूतानि यस्मिन् तत् चराचरमितिभावः, प्रविष्टः रूपं रूपं प्रति प्रत्येककाष्ठं प्रविष्टः च बहिः स्वतन्त्रोऽपि रूपः रूपवान् तथैव सर्वभूतान्तरात्मा सर्वभूतानि अन्तरात्मनि यस्य सः सर्वान्तर्यामी रूपं रूपं प्रति प्रत्येकशरीरं प्रतीक्ष्य तिष्ठति । बहिः वाह्यदेशे रूपः स्वतन्त्ररामादिरूपधारी विराजते ।। श्रीः ।।

भूयस्तमेवार्थमनुवदति—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।१०।।

यथा एकः वायुः प्राणादिरूपः भुवनं प्रविष्टः, रूपं रूपं प्रति प्रत्येकमानवशरीरमभिव्याप्य, बहिरपि रूपः महावायुरूपः स्वतन्त्रो वहति, तथैव एकः परमात्मा सर्वभूतानामन्तरात्मा, साक्षित्वेन व्याप्तं रूपं रूपं प्रतिप्राणिशरीरं व्याप्नुवन् रूपो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बभूव रामादिरूपेण समवततार । इत्थं द्वयोरपि मन्त्रयोः रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव इत्यभ्यासेन निराकारवादिनः परास्ताः ।।श्रीः।।

ननु यदि भवत्प्रतिपादनानुसारं परमात्मनोऽपि रूपवत्ता, रूपवन्तोऽपि खलु दुःखैःरमिभूयन्ते किं तर्हि तदवत्तया परमात्मापि लोक दुःखेन पीड्यते ? नेत्याह सूर्य इति—

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ।।११।।

यथा सर्वलोकस्य प्राणिजातस्य चक्षुः नेत्रं तत्प्रकाशकश्च सूर्यः सर्वप्रेरको भास्कारः चाक्षुषैः, चक्षुषा गृह्यमाणैः वाह्यदोषैः रजःकणनीहारमेघादिभिःन लिप्यते न व्यवहितप्रकाशः क्रियते तथैव सर्वभूतान्तरात्मा सर्वभूतानाम अन्तःकरणं मनः आदत्ते रूपमाधुर्येण चोरयति यः स परमात्मा लोकदुःखेन संसारप्रतिकूलवेदनीयेन न लिप्यते न परिभूतविवेको विधीयते । कथम् यतो हि स बाह्यः जगत्प्रपञ्चतो बहिर्भूतः । सूर्यवत् निरस्तमायातमीक इति भावः । श्रीः ।

अथ ब्रह्मणश्चमत्कारं वर्णयति द्वाभ्यां मन्त्राभ्याम्—

एकोवशी सर्व भूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।।१२।।

भगवान् एकः अद्वितीयः, वशी सर्वं वशीकृत्य तिष्ठन्, सर्वभूतान्तरात्मा सर्वेषां भूतानमन्तर्वर्ती यः सर्वसामर्थ्यशाली, एकमेव रूपं स्वशरीरं बहुधाकरोति भक्तभावनया तत् संख्यानुसारेणात्मानं परिणमयति, यथा च श्री भागवते महारासे—

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ।
रेमे स भगवाँस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ।।

(भा० १०,३३,२०)

एवं तं प्रणतपालमात्मस्थमात्मना जीवभूतेन सार्धं तिष्ठन्तं, ये धीराः भजनस्थिरमनसः अनुपश्यन्ति आनुकूल्येन अनुदिनम् अनुक्षणं वा नयनविषयं कुर्वन्ति, तेषां परमात्मानमनुपश्यताम् शास्वतं सार्वकालिकं सुखं मङ्गलमितरेषां परमेश्वराभक्तानां न कदापि नहि । श्रीः ।

ननु भगवन्तमनुपश्यतां शाश्वतं सुखमुक्तं, तर्हि यदि जीव एव नाशवान् कथं तस्य शास्वतं सुखं, यदि नास्ति तर्हि भवद्वचनप्रामाण्ये संदेहः इति विषमोपन्यासः अत आह-नित्य इत्यादि—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।।१३।।

यमः साक्षेपं प्राह-कः खलु मन्दधीर्जीवात्मानित्यतां प्रलपति, को नाम तस्यैकतां जल्पति । वस्तुतस्तु जीवाः नित्याः बहवश्च । यद्येकस्तर्हि तस्मिन्मृते सर्वे मृताः भवेयुः, एकस्मिन् जीवति सर्वे जीवेयुः, एकस्मिन् मुक्ते सर्वे मुच्येयुः, एकस्मिन् बध्ये सर्वे बध्येरन् । तस्मात् यः परमात्मा नित्यानां विनाशरहितानां जीवात्मनां नित्यसम्बन्धी नित्यः अविनाशी, चेतनानां स्वं चेतयताम् चेतनः चेतयिता, स्मरतां स्मर्तेतिभावः । एवमेकः बहूनामनेकाभिलाषवतां कामान् मनोरथान् विदधाति सफलान् करोति । यत्तु केचन नित्यः नित्यानामित्यत्र नित्यः अनित्यानाम् इति पूर्वरूपपुरःसरं व्याचक्षते तदतीव हास्यास्पदं । चेतनश्चेतनानमित्यत्र विसर्गपरिणाम तालव्यशकारनिर्देशात् नित्यो नित्यानामित्यत्र श्रुतिरेव अकारप्रश्लेषं निवारयति, अन्यथा चेतनोऽचेतनानां इति ब्रूयात् । तादृशमात्मस्थं तं परमात्मानं ये धीरा अनुपश्यन्ति भेदभक्त्या भजन्ते तेषामनन्यमनसां शाश्वती नित्याशान्तिः तापत्रयविनाशोपलक्षिता, इतरेषामभेदवादिनामभक्तानां वा न । मन्त्रेणानेन एकत्ववादिनामभेदवाक्यप्रासादः भूमिसाद्विहितः ।। श्रीः ।।

इत्थं ब्रह्मनिरूपणं श्रुत्वा नचिकेता जिज्ञासते तदिति—

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ।।१४।।

नचिकेता प्रणतः पृच्छति-देव ! तत् भवदुक्तं गुह्यं सनातनमेतत् एवं प्रकारकं नित्यो नित्यानामित्यादि अनिर्देश्यं विशिष्टाद्वैतपरमं सकलकार्यकारणातीतं सुखं सुखस्वरूपं, मन्यन्ते भवन्तः स्वीकुर्वन्ति, तर्हि अहं बालकः सन् कथं जानीयाम् केन प्रकारेण ज्ञानविषयं कुर्याम्, किं तद् ब्रह्म उ निश्चयेन भाति सर्वत्र दीप्यते वा अथवा विभाति विशिष्टाद्वैतिषु भक्तेष्वेव भाति दीप्यते अर्थात् यदि विशिष्टेषु दीप्यते तर्हि का कथा मादृक् वराकाणाम् ।। श्रीः ।।

एवं जिज्ञासमानं नचिकेतसं परिशान्त्वयन् प्राहपाशपाणिः नेति–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुलोऽयमाग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।१५।।

तत्र तस्मिन् परमात्मनि विषये सूर्यः त्रिभुवनप्रकाशकरविः न भाति तं न प्रकाशयितुं प्रभुर्भवतीति भावः, न चन्द्रतारकं भाति इति शेषः । इमाः चमत्कुर्वाणाः विद्युतः चपलाः अपि नो भान्ति, अयमस्मद्गृहे तिष्ठन् अग्निः अस्मद्गृहगतः कुतः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथं भास्यति । तमेव परमप्रकाशं भान्तमनुदीप्यमानमनुलक्ष्य सर्वं सूर्यचन्द्रतारकविद्युदग्निप्रभृति भाति दीप्यते । तस्य परमप्रकाशनिधेः भाषा दीप्त्या इदं दृश्यमानं सर्वं पूर्वोक्तप्रकाशकपुञ्जं विभाति प्रकाशते । अतः परमात्मा ज्ञानिषु भाति भक्तेषु च विभाति इति विवेकः । श्रीः ।

इति कठोपनिषदि द्वितीयवल्लीभाष्यम्
।। श्रीराघवः शान्तनोतु ।।

अथ तृतीया वल्ली

अथ ब्रह्मविवेककाले संसारासारताज्ञानं परमावश्यकं, संसारे हि संशक्तचित्तो नालं ब्रह्मविवेक्तुम् । अयं च संसारः सलिलप्रवाहरूपेण सततं संसरन्नास्ते नोपरमयति क्षणमपि । जीवोऽयं मरुमरीचिकाजलं मृगयन् कान्तारेऽस्मिन् भ्रष्टमार्गो मृग इव भ्राम्यन् म्रियते । तस्मादिमं समुपदिदिक्षुः परमकारुणिका श्रुतिः वृक्षरूपकच्छलेन संकेतयति साधकं सर्वभावेन परमपुरूषार्थवाच्यं परमेश्वरं श्रीरामाभिधं ब्रह्म शरणं गन्तुम्, यतो हि परमात्मानमन्तरेण क्षेत्तुमशक्योऽयं संसारतरुः **स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम्** इतिस्मरणात् तथाहि–

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।। तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन् ।। एतद्वै तत् ।।१।।

ऊर्ध्वमुपरि वैष्णवे धाम्नि मूलं यस्य तथाभूतः, अवाच्यः निम्नगामिन्यः, शाखाः काण्डानि यस्य सोऽवाकशाखः तादृशः, एषः पुरोदृश्यमानः सनातनः प्रवाहावच्छेदेन नित्यः न तु स्वरूपतः, तदेव स्पष्टयति–अश्वत्थः न श्वः आगामि दिनेऽपि तिष्ठति इति अश्वत्थः एकदिनमप्यस्य स्वरूपेण स्थायित्वं न निश्चेतुं शक्यमतः पिप्पल इति नावदत्, अश्वत्थकथनेन श्लेषात् पिप्पलवृक्षत्वक्षणभंगुरत्वेति भावद्वयावगतिः सुलभा । अयं हि भगत्कृपानाशक्तिशस्त्रसमुच्छिद्यमानमूल एकायनः, परमेश्वरप्रत्यगात्मपक्षिपरायणः, छन्दःपर्णः, परिकलितगुणत्रयशुक्लकृष्णलोहितत्रिवर्णः, संसृतिकल्पितसम्बन्धालवालो, विषयप्रवालः, शुभाशुभफलरसालः, सन्निहितविबुधमनोरथकुसुमजालः, परिकलित चतुरवस्थाचतूरसः, समाहितजन्मसत्ताह्रासविकासविलासविनाशषड्स्कन्धः, अधिकृत-पंचविंशतिसरसशाखः, समलङ्कृतसप्तधातुसप्तचर्मा, अविद्यावल्लिसंबलितधर्मवर्मा, निर्वासितनिजच्छायासमीपनिविडतमिस्त्रः, ज्ञानाज्ञानालोकालोकमिश्रः, घोरघनघर्म-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संतप्तललाटमकरकेतनलालाटिकपरमश्रान्तपान्थविश्रामदाता, महामोहकाकोलूक-क्रूरखगव्रातभाग्यविधाता दुर्धषः, संसारविटपोऽयमश्वत्थः, कुमतिमहीतलसंस्थः येन परमात्मना निजकृपाकुठारधारया छेत्तुं शक्यते। तदेव शुक्रं शुद्धं कर्मानुवेधरहितमितिभावः। तद्ब्रह्म अतिशयवर्धनशीलं बृहद्गुणयुक्तं, तदेव अमृतं मरणधर्मरहितमित्युच्यते। तस्मिन्नाधारे सर्वेलोकाः श्रिताः श्रयणं कृतवन्तः। तत् कश्चन न अत्येति अनतिक्रान्तवीर्यत्वात्। वृक्षरूपकमिदं कठोपनिषदि, श्रीमद्भागवते, श्रीगीतायां, श्रीमानसे चापि स्वस्व बुद्ध्यनुसारं वर्णयामासुर्मनीषिणः भागवते यथा–

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदो द्विखगो ह्यादिवृक्षः॥

(भागवत १०/२/२७)

श्री गीतायाम्–

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

(गीता १५.१)

मानसे सप्तमे सोपाने वेदस्तुतौ–

अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमानम घने।
षटकंध शाखा पंच बीस अनेकपर्णसुमन घने।
फल जुगलविधिकटुमधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे।

(मानस० उ० १३/५)

इममेव वृक्षं स्वभक्तकृते यश्छिनत्ति छेदयति च तस्य ब्रह्मणः स्वरूपं वर्णयति–

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥२॥

इदं प्रत्यक्षीभूतं यत्किञ्चसर्वं जगत् चराचरं तत् प्राणे परमात्मनि एजति चलति, निजकर्मसक्रिये तस्मादेव निःसृतम् अतः महद्भयमतिभयानकमुद्यतं घाताय क्रियमाण प्रतीक्षं तादृशं ये विदुः जानन्ति ते अमृताः भवन्ति मरणधर्मविमुक्ताः भवन्ति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्याख्यानमेतत् प्राचीनानुरोधेन, वयं तु प्रथमान्तं पदत्रयमप्युत्तरार्धगतं जगतो विशेषणं मन्यामहे । एवमेजति प्राणे यत्किञ्च जगत्सर्वं तस्मादेव निःसृतं किन्तु उद्यतं वज्रमिव, इन्द्रपाणौ हि वज्रमिन्द्रो हि कर्मणां देवता तथा कर्मेन्द्रशस्त्रभूतं वज्रमिव जगत् महद्भयं महतां सज्जनानां भयं यस्मात् तथा भूतमेवं विज्ञाय भगवत्कृपया संसारादुपरम्य मनीषिणः भगवन्तं प्रपद्यन्ते इति मन्त्रार्थः । यत्तु महद्भयमिति ब्रह्मपरतया व्याचक्षते भगवत्पादशंकराचार्यचरणाः तदसंगतं श्रुतिविरूद्धत्वात् । तथा चाह श्रुतिः—

अभयं निर्जरं ब्रह्म द्वितीयाद्वै भयं भवति, अहो अद्वितीयेऽभये ब्रह्मणि कुतो भयम् । तस्मान्मदुक्तपन्था एव ज्यायान् ।

ननु कथं तर्हि भयादस्याग्निस्तपति इत्यादि ? इतिचेच्छृणु–अत्र भयमनुशासनिकं ते तत्राग्न्यादयः भयं मन्यन्ताम्, वस्तुतस्तु परमात्मा भयहेतुर्नास्ति, अतस्तत्र भयहेतुत्वाभावे **भीत्रार्थानाम् भयहेतुः**, इतिपाणिनीयसूत्रेण भयादस्मादिति पंचमी नावोचत्, अथ च भयमत्रौपचारिकं न तु वज्रमिवोद्यतमिति समाधीयताम् ।।श्रीः।।

अथ तस्य भयं काञ्छारिस्त इत्यपेक्षायामाह–

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ।।३।।

यद्यपि परमात्मनि भयं नास्ति न वा सः भय हेतुः, तथापि देवान् स्वे-स्वें कार्ये नियोक्तुं फूत्कारकार्यहिंसकसर्पवत् भयं विडम्बयति । अस्य परमेश्वरस्य भयात् दण्डभयात् अग्निः तपति दाहकतां न जहाति नो चेत् स्वच्छन्दः सन् शीतलः स्यात्, एवं सूर्योऽपि दण्डभयादेव तपति तापं न मुञ्चति, एवमेवेन्द्रो भयाद्वर्षति, वायुश्च भयाद्वाति, एषु पञ्चमः अग्निवायुसूर्येन्द्रमृत्यूना मन्तिमः एषु पञ्चमत्वपूरणः यद्वा पञ्चापि महाभूतानि मारयतीति पञ्चमः मृत्युरपि मदभिन्नः धावति भयादेव निस्त्रमतः चरति ।।श्रीः।।

अधुना ब्रह्मबोधस्यावश्यकतां तदबोधे च विपरीतप्रतिक्रियां विवृणोति—

इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।।४।।

इदं ब्रह्मज्ञानं शरीरेऽस्मिन्नैवावश्यकं, चेत् यदि शरीरस्य प्रारब्धप्राप्तस्य क्षणभंगुरस्य विस्रसः विस्रंसनं विस्रक् तस्मात् पतनात् प्रागेव इह तस्मिन्नेव देहे बोद्धुं ब्रह्मज्ञातुं अशकत्, तदा ततः भगवतः परमप्रियः नो चेत् सर्गेषु सृज्यन्ते कर्मफलैरिति सर्गाः कर्मफलनिर्मिताः इत्यर्थः । तेषु सर्गेषु लोकेषु चतुर्दशसु शरीरत्वाय शरीरभावाय

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कल्पते ब्रह्मज्ञानव्यतिरेके संसरणशीलो भवतीति भावः । वस्तुतस्तु व्याख्यानमेतत् प्राचीनानुरोधेन कृतमपि न मां संतोषयति । शब्दप्रमाणकाः वयं शब्दानुसारमेव विचारयामः । पूर्वार्द्धेऽपि एकं वाक्यं, शेषं शरीरपतनात्पूर्वं ब्रह्मज्ञानं जातं चेत् वरमित्यर्थपूरणाय अध्याहारः पुनः ब्रह्मज्ञानाभावपरिणामसूचकोऽपि अन्यथेति शब्दोऽप्यध्याहार्यः भविष्यति, तस्मात् निरर्थकवाक्यशेषद्वयाध्याहारकल्पनापेक्षया उत्तरार्द्धे किमपि विलक्षणं व्याख्यायते । तथाहि–शरीरस्य विस्रसः प्राक् इह अस्मिन् देह एव बोद्धुमशकत् ब्रह्मेति शेषः, ततः तदनन्तरम् किं भवति इत्यत आह–सर्गेषु, सृज् धातुः प्रतियत्नार्थः प्रतियत्नं नाम गुणाधानम्, एवं सृज्यन्ते भक्ताः परमात्मासेवोपयोगि गुणैर्युज्यन्ते इति सर्गाः गुणाधायकास्तेषु सर्गेषु लोकेषु वैकुण्ठगोलोकसाकेतेषु, शरीरत्वाय शरीरभावाय भगवत्कैरङ्कर्योपयोगिदिव्यशरीरधर्मायेति भावः, कल्पते योग्यो भवति । इह परमात्मानं विज्ञाय पश्चात् दिव्यशरीरेण परमात्मसामीप्यभाग् भवतीतिभावः ।।श्रीः।।

अथ इहैव कथं ब्रह्मज्ञातव्यमिति विधीयते, लोकान्तरेष्वपि ज्ञातुं शक्यते इति शङ्कां परिहरन् प्राह–

यथादर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके ।

यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ।।५।।

यद्यपि लोकान्तरेष्वपि ब्रह्म दृश्यते किन्तु यथा निर्मल आदर्शे प्रतिमुखश्रीः स्पष्टं विलोक्यते तथैव आत्मनि मनोदर्पणे अग्रया बुद्ध्या सुस्पष्टं विलोक्यते, यथा च स्वप्ने संसारप्रपञ्चः अस्पष्टं विलोक्यते तथैव पितृलोके गतेनापि साधकेन ब्रह्मापि अस्पष्टं विलोक्यते, पुनर्जागरणे तस्य बाधः । एवं यथा अप्सु जलेषु परि उपरि तादृशे इव चञ्चलतया दृश्यते तथैव गन्धर्वलोके अप्सरोविलासचकितीकृतचञ्चलचेतस्तया लोलमिव भासते न तु स्थिरम्, एवं ब्रह्मलोके छाया प्रतिबिम्बमातपः सूर्यः तयोरिव ब्रह्मलोके द्वयोः जीवब्रह्मणोः सुस्पष्टं पार्थक्यम् अनुगम्यानुगन्तृभावः । एवं यद्यपि ब्रह्मलोके सुस्पष्टदर्शनं तथापि तद्दुराराध्यं तस्मादिहैव ब्रह्म बोद्धव्यमिति हार्दम् ।।श्रीः।।

एवं ब्रह्मणीन्द्रियाणामध्यारोपं निरस्यन्नाह–

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।

पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ।।६।।

प्रायशः नीरक्षीरमिव शरीरात्मनोरेकीभवनात् पृथक्कर्तुं न क्षमते प्रकृतो जनः तस्माच्छरीरेन्द्रियार्थमनोबुद्धिसंघातमपि । अहमस्मीति मन्यमानः शोकसागरे निमज्जति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धीरः मराल इव शरीरात्मनोः पार्थक्यकरणविदग्धः पृथक्, स्वभावगतपार्थक्येन उत्पद्यमानानां संजायमानानामिन्द्रियाणां चक्षुरादीनाम् पृथग्भावं प्रत्यगात्मनः पृथगस्मितत्वञ्च, उदयास्तमयौ उदयः जाग्रदस्थायां निजनिजकार्यप्रवृत्तिः अस्तमयः सुषुप्तिकाले स्वविषयेभ्यो विरामः । इदं सर्वं जीवात्मनः पृथग्मत्वा, अहं नास्मि शरीरमहं नास्मि इन्द्रियगणः, नाहं मनोमनीषे, अहमस्मि विशुद्धचैन्यघनो जीवात्मा भगवदीय इति मत्वा शोकसागरं तरति । अधुना मन्त्रद्वयेन परमात्मन इन्द्रियमनोबुद्ध्यात्मपरत्वं निदर्शयन् तज्ज्ञातुं नचिकेतसं प्रेरयति—

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ।।७।।
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ।।८।।

केचन, शरीरमेव परमात्मबुद्ध्या सेवन्ते, केचन मनः, केचन बुद्धिं, केचनात्मानमेव परमात्माभिन्नं मुधा मन्वानाः प्रलपन्ति, किन्तु आत्मा परमात्मतः न केवलं पृथक्सत्ताकः प्रत्युत् तयोर्मध्ये अव्यक्तमप्येकम् । आशयोऽयं यत् न केवलं जीवात्मपरमात्मनोर्भेद एव परस्परं प्रत्युत व्यवधानसहकृतोऽपि इत्यनेन अभेदवादिनो निराकृताः । तथाहि इन्द्रियेभ्यः मनः परं श्रेष्ठं, मनसः सत्त्वं शुद्धसत्वप्रधानतया बुद्धिरेव तन्नामभाक्, बुद्धेः अपि महान् आत्मा जीवात्मा परः, महतः प्रत्यगात्मा अव्यक्तं परमेश्वरयोगमाया उत्तमं श्रेष्ठम्, अव्यक्तात्तुशब्दोऽप्यर्थः पुरूषः परमपुरूषपरमात्मा परः श्रेष्ठः, सच व्यापकः । एतदपेक्षया सर्वे व्याप्याः, अयमलिङ्गः लिङ्ग्यते बोध्यते इति लिङ्गं नास्ति लिङ्गं यस्मिन् सोऽलिङ्गः । अयं सर्वेभ्यः परिभूतत्वात् न केनापि बोधयितुं शक्य इति भावः । यद्वा नास्ति लिङ्गं सूक्ष्मशरीरं यस्मिन् सोऽलिङ्गः, इन्द्रियादिम्यः परीभूतत्वात् जन्तुः जीवात्ममायं परमात्मानं ज्ञात्वा आत्मीयत्वेन निश्चित्य मुच्यते भववन्धनादिति शेषः । स च मृतत्वं मरणधर्मः तन्नास्ति यस्मिन्तादृशम् अमृतत्वं भगवतः परमधाम साकेतादिकं गच्छति प्राप्नोति ।।श्रीः।।

अधुना एतस्य सामान्यजनानां प्रत्यक्षगोचरतां निराकरोति—

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो,
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।९।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्य परमात्मनः रूपमनुभवात्मकं, संदृशे सामान्यजनस्य नेत्रविषये न तिष्ठति, तर्हि वयमेव तं दृग्विषयं कुर्याम् अत आह—कश्चन यतमानोऽपि एनं परमेश्वरं चक्षुषा नेत्रेण न पश्यति । तर्हि कथं ज्ञायते ? अयं तु पूर्वं हृदा भक्तिपूरितहृदयेन स्मृतः पश्चात् मनीषा बुद्ध्या, अत्र सुपां सुलुगित्यनेन मनीषयेति तृतीयाविभक्तिलोपः तस्मात् मनीषा इति । बुद्ध्या निश्चितः अनन्तरम् मनसा अभिक्लृप्तः चिन्तितः, मनःशब्दोऽत्र चेतसि वर्तते हृच्छब्दश्च मनः पर्यायवायी । एवं हृदा स्वान्तेन संकल्पितः, मनीषया निश्चितः, चेतसः चिन्तितः स पुरूषस्त्रितापमपहन्तीति हार्दम् । ये साधकाः एतत् पूर्वोक्तब्रह्मसाक्षात्कारप्रकारं विदुः जानन्ति ते अमृताः भवन्ति मरणधर्मशरीरं विहाय भगवत् कैङ्कर्योपयोगिदिव्यशरीरं लब्ध्वा श्रीरामाभिधं ब्रह्म परस्मिन् साकेतधाम सेवन्ते ।।श्रीः।।

अधुना सकलशास्त्रमयत्वाच्छ्रुतीनां योग्यसम्मतां गतिं परिभाषते द्वाभ्यां मन्त्राभ्याम्—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।।१०।।
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ।।११।।

यदा यस्मिन् काले पञ्चज्ञानानि चक्षुश्श्रोत्ररसनात्वग्घ्राणानि अवतिष्ठन्ते स्वव्यापारेभ्य उपरमन्ति च बुद्धिर्न विचेष्टति निरध्यवसायः भवति तामेव परमां गतिं आहुः कथयन्ति वेदान्तविदः । अपरे योगिनस्तु स्थिरामिन्द्रियधारणाम् इन्द्रियाणां व्यापारशून्यताम् योगमिति मन्यन्ते । वियोगे ततः इन्द्रियबुद्धिचेष्टासमाप्तौ अप्रमत्तः साधकः प्रमादशून्यो भवति, हि यतः योगः बुद्धीन्द्रियव्यापारशून्यतारूपः प्रभवः भगवत्साक्षात्कारयोग्यतायाः जनकः, अत्ययः भगवद्दर्शनप्रत्यवायविनाशकः तौ प्रभवाप्ययौ भवति ।।श्रीः।।

अधुना आस्तिकमतं मण्डयन् पूर्वं ब्रह्मणि अस्तीति विश्वासभूमिकां काक्वा समर्थयते—

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ।।१२।।

सः परमेश्वरः नैव वाचा वागुपलक्षितकर्मेन्द्रियैः नैव प्राप्तुं शक्यः, एवं मनसा उपलक्षणतया मनोबुद्धिचित्तैः नैव प्राप्तुं शक्यः । ननूपलक्षणे कथं नाहंकारस्य ग्रहणम् ? तस्य भगवत्साक्षात्कारेऽनुपयोगात् । तथा चक्षुषा चक्षुरुपलक्षितज्ञानेन्द्रियैः नैव प्राप्तुं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्यः सर्वतः सूक्ष्मतरत्वात् । अतएव अस्तीति ब्रुवतः ईश्वरः अस्ति इति कथयतः अर्थात् अस्तिकपक्षे विश्वासं कुर्वतः । अन्यत्र नास्तिकविचारेषु तत्कथमुपलभ्यते कथं प्राप्तुं शक्यते ? तात्पर्यमेतत् यत्—परमेश्वरः इन्द्रियमनोबुद्धिविलक्षणत्वात् तेषां पुरूषार्थेन प्राप्तुं शक्यते नहि, किन्तु यदि कोऽपि अस्तीति ब्रुवाणः विश्वसं यतते तर्हि तेनैव निजकृपया प्राप्तुं शक्यते । अर्थात् भगवत्साक्षात्कारे विश्वासपूर्वकव्याकुलीभाव एव कारणम् । अथवा स्वकीयैरिन्द्रियमनोबुद्धिचेतोभिः प्राप्तुं न शक्यते किन्तु यः अस्तीति ब्रुवन् महात्मा तत्कृपापात्रतां गतः तेन सेवमानेन लब्धुं शक्यः, ततोऽन्यत्र तु सम्भावनैव नहि । श्री ।

इदानीं परमात्मंप्राप्तौ श्रद्धासाधनज्ञानयोरनिवार्यतां वर्णयति—

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ।।१३।।

पूर्वं कमपि तर्कमन्तरेण परमात्मा अस्ति इति विश्वस्य उपलब्धव्यः भक्त्या उपलब्धिविषयः करणीयः, पश्चात् तत्त्वभावेन उपलब्धव्यः ज्ञानेनापि विचारणीयः **भक्त्या मामभिजानति यावान् यश्चास्मि तत्वतः** इति स्मृतेः । गीता १८/५५ । इत्थमुभयोरपि अस्ति इति विश्वस्य भक्त्या उपलब्धस्य साक्षात्कृतस्य, अत्र उपलब्धः अस्ति अस्मिन् इति उपलब्धः तस्य उपलब्धस्य इत्यर्श आदित्वात् अच् । तत्त्वभावः प्रसीदति हृदये स्पष्टं भासते । ब्रह्मणो द्वे रूपे सगुणं निर्गुणं चेति सगुणरूपप्राप्तये पूर्वार्द्धं स तु श्रद्धापूर्वकं भक्त्यैव लभ्यते, निर्गुणरूपं च तत्वभावेन किन्तु सगुणमन्तरेण नहि ।। श्री ।।

ब्रह्म कदा प्राप्यते इत्यत आह–

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।।१४।।

यदा यस्मिन् काले, अस्य हृदि श्रिताः साधकस्य मनसि स्थिताः, सर्वे कामाः संकल्पजाः प्रमुच्यन्ते विलीयन्ते, अथ कामसमाप्त्यनन्तरं मर्त्यः मरणधर्मा अमृतो भवति जन्ममरणरहितः सन्, अत्र अस्मिन्नेव शरीरे ब्रह्म श्रीरामकृष्णान्यतरम् समश्नुते आस्वादयति मिथिलापुरवासिन इव गोपिका इव च ।।श्रीः।।

अधुनानुशासनमुपसंहरन् ग्रन्थिभेदं चर्चयति–

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येताबद्ध्यनुशासनम् ।।१५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदा यस्मिन् काले अस्य साधकस्य इह अस्मिन्नेव लोके, सर्वे ग्रन्थयः प्रभिद्यन्ते भग्नाः भवन्ति, अथ अनन्तरं मर्त्यः मनुष्यः अमृतो भवति जीवन्मुक्तो भूत्वा भगवत् कैंकर्यं कुरूते, हि निश्चयेन एतावत् एतन्मात्रमेव ग्रन्थिभेदनिरूपणमनुशासनमुपदेशः त्वादृशे शिष्याय ।।श्रीः।।

इदानीं परलोकप्रयाणसहायभूतानां नाडीनाम् वैलक्षण्यं निरूपयति—

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।

तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ।।१६।।

हृदयस्य शतं एका एकाधिकशतं नाड्यः भवन्ति । तासामेका सुषुम्ना नाम्नी मूर्धानम् अभिनिःसृता उर आरम्य मस्तकं गता । तया सुषुम्नया ऊर्ध्वम् आयन् अत्यक्त- शरीरः परलोकं गच्छन् अमृतत्वं ब्रह्म एति प्राप्नोति । अन्याः शतसंख्याकाः विश्वं सर्वतः उत्क्रमणे गमने सहायिकाः भवन्ति । सुषुम्नेव परलोकं नयतीति भावः ।।श्रीः।।

अधुना ग्रन्थमुपसंहरन् महता समादरेण ब्रह्म समभ्यसति—

अंगुष्ठमात्रः पुरूषोऽन्तरात्मा,

सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।

तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण

तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विघाच्छुक्रममृतमिति ।।१७।।

अन्तरात्मा अन्तर्यामी पुरुषः परमेश्वरः अंगुष्ठमात्रः तत्प्रमाणकः जनानां हृदये अन्तःकरणे सदा सन्निविष्टः विराजते, किन्तु यथा नीरे गतं क्षीरं न पृथक् कर्त्तुं शक्यते तथैवायमपि शरीरधर्माभिभूतः । भगमिव धैर्येण सात्विकधृत्या स्वात् शरीरात् निजशरीरधर्मात् प्रबृहेत् पृथक् कुर्यात् । तं शुक्रममृतं शुद्धममृतं मरणादिविकाररहितं विद्यात् जानीयात् अभ्यासाय द्विरुक्तिः, इति शब्द उपदेशविश्रामसूचकः ।।श्रीः।।

अथ रोचनाय फलश्रुतिं प्रतिशृणोति—

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ।

ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ।।१८।।

अथ यमोपदेशानन्तरं नचिकेता मृत्युना यमेन प्रोक्तां कथितामेतां वेदान्तमयीं विद्यां ब्रह्मविद्यां च तथा सम्पूर्णं योगविधिं योगसाधनञ्च लब्ध्वा विमृत्युः मरणरहितः, विरजः रजोमयसंसारवासनारहितः, ब्रह्मप्राप्तः ब्रह्म वेदान्तवेद्यं प्राप्तं लब्धं येन तथाभूतः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृतभगवत्साक्षात्कार इत्यर्थः अभूत् अभवत्, न केवलं नचिकेता प्रत्युत् यः अन्यः कोऽपि साधकः अध्यात्मं ब्रह्मज्ञानं ज्ञातवन् सोऽपि एवं जन्ममरणरहितः ब्रह्मप्राप्तो भविष्यति । श्रीः ।।

हे राघव महेश्वास राम राजीवलोचन ।
मम प्रार्थयमानस्य भव लोचनगोचरः ।।

श्री राघवकृपाभाष्यं श्रीराघवमुदे मया ।
आचार्यरामभद्रेण कठोपनिषदः कृतम् ।।

इति श्रीचित्रकूटनिवासिसर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठधीश्वरश्रीमद्जगद्गुरुरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य कृतौ कठोपनिषदः श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।
।।श्री राघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्री राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

अथ प्रश्नोपनिषदि
श्रीराघवकृपाभाष्यम्

मङ्गलाचरणम्

कस्त्वं गौरकुमारपूजितपदः श्यामोऽभिरामोधनु-
र्वाणं तूणमथो वहन्वनभुवं संभूषयन्भ्राम्यसि ।
किं नारायण आगतः सह नरो देवत्रयं ब्रह्म किम्,
रामो मारूतिनेति मंजु विहितः प्रश्नः प्रसन्नोऽवतु ।।१।।

वियत् खेलन् कोऽयं विधुरिति कुतः प्रादुरभवत् ।
पयोधेः किं शुभ्रं जननि नवनीतं नहि नहि ।।
कथं मध्ये श्यामस्तममलत्र मे राघव इति ।
कृत प्रश्नः प्रश्नोपनिषदमलर्थो विजयते ।।२।।

वन्दे वन्दारूवृन्दानां वन्द्यपादपयोरुहम् ।
खेलन्तं काकतोकेन राघवं धूलिधूसरम् ।।३।।

यत् कृपामृततृप्तोऽहं क्षुत्क्षामचरचेतनः ।
रामानन्दं प्रणौम्याद्यं स्वाचार्यं जगतां गुरुम् ।।४।।

तुलसीदास पादाब्जे बुभूषामि मधुव्रतः ।
नीतोऽहं कृपया यस्य श्रीमानसमरालताम् ।।५।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं श्रीराघवमुदे मया ।
आचार्यरामभद्रेण प्रश्नोपनिषदि भाष्यते ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथर्ववेदस्य च पिप्पलाद-
शाखीयसुब्राह्मणमध्यगैषा ।
प्रभाति प्रश्नोपनिषद् गंभीरा,
प्रश्नाश्च यस्यां शुचि षड्ऋषीणाम् ।।७।।
श्रुतीनां सारसर्वस्वाँस्तान्व्याख्यातुमुपक्रमे ।
नत्वा प्राभञ्जनिं सन्तः श्रण्वन्तु गतमत्सराः ।।८।।

शान्तिपाठः

तत्र प्रागुपनिषद् व्याख्यानात् भगवद्भजनप्रतिबन्धकप्रत्यूहपरिसमाप्तिचिकीर्षया मांगलिकः सशिष्यर्षिसंघः शान्तिपाठं पठति । अत्र शान्तिपाठे मन्त्रद्वयं प्रथमश्च निजमंगलमनोरथपरः, द्वितीयश्च भगवतः विभूतिचतुष्टयस्मरणपुरस्सरं स्वत्ययनाभ्यर्थनपरः ।

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।।
स्वस्ति न इन्द्रो बृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

ॐ इति प्रणवं स्मृत्वा तपःप्रशान्तस्वान्ता ऋषयः प्रार्थयन्ते देवान्—देवाः द्योतमानाः परब्रह्म ज्योतिषा, वयं कर्णेभिः कर्णयन्ते श्रूयन्ते शब्दाः यैः तानि कर्णानि तैः कर्णेभिः श्रवणैः, अत्र **बहुलं छन्दसि** इत्यनेन ऐसोऽप्रवृत्या **बहुवचने झल्येत्** इत्यनेनेकारः । भद्रं कल्याणमयं शब्दमेव श्रृणुयाम, अभद्रशब्दान् निजकर्णगोचरान्मा कुर्यामिति भावः । एवमक्षभिः नेत्रैः अत्रापि बाहुलकादैसेत्वे न । भद्रं कल्याणमयमेव रूपं पश्येम अवलोकयेम, अभद्रं कृतिविकर्मणो भगवद्विमुखस्य रूपं चेत् मा भवत्वस्मद्दृग्विषयः: । के वयं, यजत्राः यजन्ते देवान् पूजयन्ति, देवैः संगच्छन्ते, ददते च सर्वस्वमिति यजत्राः । वयं स्थिरैः चाञ्चल्यरहितैः अङ्गैः करचरणादिभिरवयवैः तनूभिः यद्यप्यङ्गगशब्देन बहुवचनान्तेन तनुवाच्यशरीरस्य गतार्थता तथापि सूक्ष्म शरीराभिप्रायेण तनुशब्दस्य पृथगुपादानम् । तथा च तनूभिरिति सूक्ष्माभिः लिङ्गशरीराभिधाभिः स्थिराभिः युक्ताः तुष्टुवांसः परमात्मनः स्तुतवन्तो वयं, यत् यावत् आयुः जीवनावधि तत्सर्वं देवहितं देवाः हिताः येन तत् देवप्रीतिवर्द्धकम् यद्वा देवेभ्यो हितमिति देवहितं तादृशं, व्यशेम व्यस्तं कुर्याम । यद्वा कर्णेभिः भद्रं भवन्रमयतीति भद्रः तं भद्रं रामभद्रं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शृणुयाम तमेव तद्गुणगणावच्छेदेन स्वकर्णातिथिः कुर्याम । रामभद्रो हि भवन् निजभक्तप्रेमपारवश्येन प्रकटो भवन् सर्वान् रमयति तद्यथा श्रीमद्रामायणे–

गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विख्यातपौरुषम् ।
दीर्घबाहुं महासत्त्वं मत्तमातङ्गगामिनम् ।।

(वा० रा० २/३/२५)

चन्द्रकान्ताननं राममतीव प्रियदर्शनम् ।
रूपौदार्यगुणैःपुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ।।

(वा० रा० २/३/२६)

घर्माभितप्तान् पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः ।
न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः ।।

(वा० रा० २/३/२७)

तमेव रामभद्रं यजत्राः यजमानाः वयं अक्षभिः नेत्रैः पश्येम नान्यं, राघवादन्यदर्शने हि स्वात्मविगर्हणापत्तेः, यथा च तत्रैव महर्षिवाल्मीकिः—

यश्च रामं न पश्येत् तु यञ्च रामो न पश्यति ।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते ।।

(वा० रा० २/१७/१४)

अत्र स्वात्मा स्वशरीरे वर्तमानः अन्तर्यामित्वेन परमात्मा, स एव एतत् समीपस्थमननुभूतभगवत्साक्षात्कारसुखं विगर्हते, त्वया मानवशरीरं लब्ध्वापि श्रीरामदर्शनमकृत्वा अभूत्वा वा भगवत्कृपादृष्टिविषयेण नितरामिन्द्रियाणां हिंसा कृता। एवमादि प्रत्यगात्मानं तर्जयन् निन्दतीति भावः । स्वात्माप्येनमित्यादिना निराकृताः सर्वे **जीवो ब्रह्मैवनापरः** एवमादीनि श्रुतिप्रतीपानि प्रलपन्तः । तथा स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः स्थूलसूक्ष्मशरीरैः तुष्टुवांसः श्रीरामभद्रगुणगानेन तत् स्तुतिं कुर्वन्तः, यदायुः जीवनशेषमायुष्यं देवहितं श्री रामकार्यार्थजटायुरिव व्यशेम सन्नियोजयेम । मन्ये चतुर्थचरणोऽस्य मन्त्रस्य जटायुरायुष्य समर्पणं स्मारयन् प्रार्थयते ।

अथ भगवतश्चतसृणाम् इन्द्रपूषतार्क्ष्यबृहस्पतीनां स्मरणच्छलेन तान्येव स्वस्त्ययनं याचते । नः इति **बहुवचनस्य वस्नसौ** इत्यनेन अस्मभ्यमित्यस्य आदेशभूतमव्ययम् । चतुर्थी च स्वस्ति योगे **नम स्वस्ती** त्यादिना । एवं नः अस्मभ्यम्, वृद्धश्रवाः वृद्धं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिग्दिगन्तव्याप्तं श्रवः यशः यस्य तथाभूतःइन्द्रः । ननु कथं इन्द्रो वृद्धश्रवाः अहल्याद्युपाख्याने तस्य दुर्यशोभाजनत्वस्य रामायणादौ प्रसिद्धेरिति चेत् सत्यम् । श्रीरामविवाहे सहस्रनेत्रैः कृतप्राशचित्तत्वात् । तथा च मानसे—

रामहि चितव सुरेश सुजाना ।
गौतम श्राप परम हित माना ।।
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं ।
आज पुरन्दर सम कोउ नाहीं ।।

(मानस १/३१७/६-७)

केनोपनिषद्यपि इन्द्रेणैवोमातः सर्वप्रथमं ग्रहीतब्रह्मविद्याकत्वात् तथा च श्रुतिः—

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्टं पस्पर्श ।
स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।।

(केनोपनिषद् ४/३)

एवं प्रशस्तयशाः पुरन्दरः नः अस्मभ्यं वेदाध्यायिभ्यः स्वस्ति कल्याणं दधातु धारयतु, तथैव विश्ववेदाः विश्वं सर्वं वेत्ति जानातीति विश्ववेदाः सर्वज्ञः, पूषा पोषणात् सर्वजगतां पुष्णातीति व्युत्पत्तेः पूषा सूर्यः, तृतीयराशिस्थितः, नः स्वस्ति दधातु पुष्णातु, एवं अरिष्टनेमिः अरिष्टानि उपद्रवाणि भगवद्भजनविघ्नाः वा तेषां नाशाय नेमिः चक्रमिव सोऽरिष्टनेमिः, यद्वा अरिष्टानां भगवद्भक्तविघ्नानां विनाशाय नेमिः वाहनत्वाद्धि गरूडः भगवानिव भगवद्भक्तकष्टनिनशयिषया प्रेषयत्येव चक्रं स्वयं च चक्रमिव भवति तथाभूतस्ताक्ष्यः गरुडदेवः नः स्वस्ति दधातु । एवं वृहस्पतिः देवगुरूर्ज्ञानदैवतरूपः, नः स्वस्ति दधातु अस्मभ्यं कल्याणमुपस्थपयत्वित्यर्थः ।

अत्रेदमवधेयं यदस्मिन् स्वस्त्ययनमंत्रे इन्द्रपूषताक्ष्यवृहस्पतयश्चत्वारो देवविशेषाः स्वस्तये समभ्यर्थिताः एत एव श्रीगीतासु भगवद्विभूतित्वेन परिगणिताः तथा च—

इन्द्रः– देवानामसिम वासवः । गीता–१०/२२
पूषा– ज्योतिषां रविरंशुमान् । गीता– १०/२१
ताक्ष्यः– वैनतेयश्च पक्षिणाम् । गीता–१०/३०
बृहस्पतिः– पुरोधसाञ्च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् । गीता–१०/२४

एवं भगवद्विभूतिस्मरणेन भगवत्स्मरणं कृतप्रायम्, इमे परमभागवता अपि । इन्द्रो ब्रह्मसाक्षात्कारकर्तृषु प्रथमः केनोपनिषद्प्रसिद्धः । पूशा सूर्योऽपि भगवद्भक्तः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निजमण्डल एव परमात्मानं विराजयति **योऽसावसौ पुरूषः** इत्यादि श्रुतिप्रसिद्धेः श्रीरामावतारस्य च तद्वंश एव भूतत्वाद् । तार्क्ष्यः गरुडो भगवद्वाहनमेव । बृहस्पतिरपि परमभागवतः श्रीमानसे श्रीरामदर्शनात् भरतं निवारयितुमिच्छन्तं पुरन्दरं प्रतिषेधयन् देवांश्च प्रतिबोधयन् तादृगेव दृष्टः । यथा—

सीतापति सेवक सेवकाई । कामधेनु सय सरिस सुहाई ।।

इत्यलमतिपल्लवितेन ।।श्रीः।।

अथ प्रकृतमनुसरामो रामचन्द्रं भजामः ।

।। अथ प्रथमः प्रश्नः ।।

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्याश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ।।१।।

ॐ इति भगवत् स्मरणं कृत्वा ब्रह्मविद्याधिकारलक्षणनिदर्शनाय षण्णाम् प्रश्नकर्तृणां ब्रह्मर्षिवर्याणाम् प्रश्नपूर्वपीठिकां प्रास्ताविकतया प्रस्तौति । अथर्ववेदपिप्पलादशाखान्तरित-ब्राह्मणभागीयोऽयं श्रुतिसमूहः षण्णाम् महर्षीणाम् प्रश्नानधितिष्ठन्नास्ते तस्मात् प्रश्नोपनिषदिति व्यवह्रियते । विग्रश्चात्र-प्रश्नानामुपनिषत् प्रश्नपूर्विका वा उपनिषत् प्रश्नोपनिषत् । आख्यापिका सूचिका । प्रथममन्त्रः सुकेशा इत्यादिः । ननु गद्यबहुलत्वादितिहासप्रधानत्वाच्च कथमेष वाक्य समूहः उपनिषदिति ? मैवं वादीः, मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति पारस्करवचनेन ब्राह्मणस्यापि वेदत्वं त्वया कथं विस्मर्यते ।

भारद्वाजः–भारद्वाजस्य ऋषेरपत्यं पुमान् सुकेशा, शिबेः अपत्यं शैब्यः सत्यकामः, गर्गगोत्रः सौर्यायणी, कोसलदेशीयः आश्वलायनः, भृगुवंशीयः वैदर्भिः, कत्यप्रपौत्रः कबन्धी, ते एते षट् संख्याकाः ब्रह्मर्षयः । ब्रह्मणि वेदे पराः तदध्ययननिरताः, एवं न केवलममीषामध्ययनं, ब्रह्मणि ब्रह्मचिन्तने निष्ठा एषां ते ब्रह्मनिष्ठाः परमब्रह्म सकलकार्यकारणातीतमन्वेषमाणा मृगयन्तः कस्तूरिकां मृगा इव । कथञ्चित् पिप्पलादं ज्ञात्वा एषः ह निश्चयेन तत्सर्वमस्माभिः प्रश्नविषीकरिष्यमाणं वक्ष्यति उपदेक्ष्यति इति ते निश्चित्य **समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुमुपसर्पति** इति श्रुतेः, समित्पाणयः समित्पाणौ येषां ते, भगवन्तं भगानि ऐश्वर्याणि ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्याणि सन्त्यस्मिन्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इति भगः, अर्शआदित्वात् मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः तादृशो भगः भगवान् अस्ति अस्मिन् हृद्देशे स भगवान् भगवद्वानित्यर्थः ।

अथ कथमयं द्रविड़प्राणायामः प्रस्तूयते तथा च भगानि अस्मिन् सन्ति इति भगः भगोस्त्यस्मिन्निति भगवान्, अहो किमनेन मत्वर्थीयप्रत्ययद्वयप्रयासकल्पनागौरवेण ? इति चेच्छृणु–धन्यमिदं गौरवं यत्वादृशान् रौरवात् त्रायते, भगवांस्तु परमात्मैव भवति नह्यणीयान् जीवात्मा, तथा च स्मर्यते श्रीभागवते–

अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगत् विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ।
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात् को नाम लोके भगवत्पदार्थः ।।

(श्रीमद्भागवत १/१८/२१)

तात्पर्यमिदं यन्मुकुन्दादतिरिक्तः कोऽपि लोके भगवत्पदार्थो नाध्यवसीयते । को नाम जीवः चरणनखाद्गंगामुत्पादयितुं क्षमः, को नाम प्रत्यगात्मा चरणस्पर्शेन तारयेच्छिलाम्, यः स्वयं भिन्नसेतुः, स कथं कनिष्ठः कनिष्ठिकायां विभ्रियात् गोबर्द्धनम् । भगवत्वं नाम एकसंसर्गावच्छेदेनैककालावच्छेदेनैकाधिकरणतावच्छेदेन सकल विरूद्धधर्माश्रयतावच्छेदकतावत्वं तन्नाल्पसत्वे जीवे । तस्मान् मदुक्तव्युत्पत्तिरेव श्रेयसी ।

अथ शैषिकान्मतुवर्थीयाच्छैषिको मतुवार्थिकः ।
सरूपप्रत्ययोनेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ।।

इति पतञ्जलिवचनानुरोधेन युगपदेव अज्मतुप् प्रत्यययोः शास्त्रविरूद्धत्वात् मोघोऽयमारम्भः ? इति चेत् सावधानतया नानुशीलितस्त्वया शाब्दिकसिद्धान्तः । तत्र सरूपप्रत्ययनिषेधः न तु विरूपप्रत्ययस्य । अचो मतुपा सह आनुपूर्व्यां वैरूप्यं सुस्पष्टमेव । एवं पिप्पलादमेतन्नामकं महर्षिं यद्वा **तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्ति** इति श्रुत्या पिप्पलादत्वस्य जीवात्मधर्मत्वेन श्रुतिप्रसिद्धेः । पिप्पलादं पिप्पलमत्तीति पिप्पलादः तं कर्मफलभोक्तारं सन्निहितपरमेश्वरसखं, यद्वा पिप्पलं संसारवृक्षं **एषोऽश्वत्थः सनातनः** इति श्रुतेः । असंगशस्त्रेण संसारपिप्पलनाशकमिति भावः । उपसन्नाः गताः ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मजिसुरूपेण महर्षिषट्कं समुपागतं विलोक्य, प्रतीक्षाच्छलेन तदुत्कण्ठा विवर्धयिषया वर्षं यावत् निजशरण्यांस्तान् प्रतीक्षितुं ब्रह्मविद्याधिकारं संपादयितुञ्च तान् समादिशत् पिप्पलादः—

तान्ह स ऋषिरुवाच–भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ह इति निश्चये प्रसिद्धौ च । स ऋषिः पिप्पलादः तान् जिज्ञासून् उवाच–आदिदेश यत् यद्यपि यूयं ब्रह्मविद्याधिकारसम्पन्नास्तथापि संवत्सरमेकवर्षं यावत् भूय एव, एवकारोऽप्यर्थः पुनरपि इति भावः, तपसा चान्द्रायणादिना, ब्रह्मचर्येण अष्टव्यवाय-प्रतिषेधेन, श्रद्धया आस्तिकबुद्ध्या युक्ताः, संवत्स्यथ मदाश्रमे निवासं करिष्यथ । समाप्ते च संवत्सरे यथाकामं यथेच्छं, प्रश्नान् पृच्छथ उपस्थापयिष्यथ । यदि विज्ञास्यामः यतो हि न वयं परमेश्वर इव सर्वज्ञाः समीमज्ञानत्वात् प्रत्यगात्मनाम्, अतो यदीत्युच्यते विज्ञास्यामः अवगमिष्यामः, तत् तदा, वः युष्मभ्यम् सर्वं वक्ष्यामः सकलमुपदेक्ष्यामः ।

अत्र अहंकार शून्यत्वात् वक्ष्यामीत्येकवचनं न प्रयुक्तं, नो चेत् तत्कर्तृत्वेन अहमिति बुद्ध्यारूढ़ो भवेत् ।। श्रीः।।

एवं महर्षिणा समादिष्टास्ते सुकेशसत्यकामसौर्यायण्यश्वलायनवैदर्भिकबन्धिनः समनुष्ठितब्रह्मचर्या अपि गुरुगिरोगौरवेण वर्षं यावत् तपोब्रह्मचर्यश्रद्धा विधाय भूयः समित्पाणयस्तमुपबब्रजुः । अथ विलोक्य प्रश्नसमाधीतसामाचार्यस्य समित्पाणिः कत्यप्रपौत्रः कबन्धी, कबन्धः पूर्वमेव ज्ञानवैराग्यखड्गेन छिन्नमोहशिरस्त्वाद् गलपर्यन्तभाग इव संसारशरीरमस्त्यस्मिन् इति कबन्धी अन्वर्थनामा पृच्छति—

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ ।
भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ।।३।।

अथ निर्दिष्टव्रतानुष्ठानानन्तरं कात्यायनः कत्य प्रपौत्रः कबन्धी व्याख्यातनामा, उपेत्य, पिप्पलादमुपगम्य, पप्रच्छ प्रश्नं चकार–भगवनप्रथमप्रश्नानुसारं हे भगवन् ! यद्वा भगवति भगान्यैश्वर्यादीनि नित्यं सामग्र्येण तिष्ठन्ति, महतां हृदि अंशतस्तिष्ठन्ति तानि किन्तु भवन्ति प्रशस्तानि । एवं हि परमात्मविषये भगवान् नित्ययोगमतुपा जीवात्मनि च प्राशस्त्ये । ननु भगानि जीवे प्रशस्तानि भूमत्वेन तिष्ठन्तीत्यत्र किं मानम् ? **मम साधर्म्यमागता** इति स्मृतिरेव मानत्वेन गृह्यताम् । आशयोऽयं यत् भगवत् समानधर्मता जोवेऽप्यागच्छति, तत्राप्यैश्वर्यधर्मयशश्रीज्ञानवैराग्याणि समानधर्मतया स्वांशतः प्राशस्तेन च भूयस्तया तिष्ठन्ति जीवे, परञ्च नित्ययोगेन सामग्रेण च पूर्णतया तिष्ठन्ति परमात्मन्येवेति विवेकः । अतः कृतभगवत्साक्षात्कारो निर्विकारो महात्मापि भगवानौपचारिकः परमार्थतस्तु भगवाञ्छ्रीराघव एव यद्वा गुरावपि परब्रह्मबुद्ध्या प्राह भगवन्निति । तथा च पठन्ति गुरुगीतायाम्—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तसमे श्री गुरवे नमः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मात् हे भगवत्स्वरूप आचार्य ! **आचार्यं मां विजानीयात्** इति स्मृतेः । ह वा इति निश्चयार्थौ निपातौ, इमाः दृश्यमानाः, प्रजाः संसारप्रकृतयः, कुतः कस्मात् कारणात् कस्मात् हेतोर्वा, प्रजायन्ते जन्म गृह्णन्ति, इति प्रश्नसमाप्तौ ।

कुतः प्रजा प्रजायन्ते भगवन् ब्रूहि तत्वतः ।
पिप्पलादं हि पप्रच्छ कबन्धी षष्ठ आदरात् ।।श्रीः।।

अथ कबन्धिनः प्रश्नं समाधत्ते—

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।।४।।

अथ सः पिप्पलादः, तस्मै कृतप्रश्नाय कबन्धिने, ह निश्चयं कृत्वा, उवाच अकथयत्–वै प्रसिद्धमेतत् प्रजाकामः प्रजापतिः प्रजां रिरचयिषुर्ब्रह्मा, तपः अतप्यत तपसा श्रुतयर्थमालोचितवान् एवं स ब्रह्मा तपः तपत्वा उग्रतपसा अघमर्षणसूक्तानुसारं प्राक्तनकल्पकृतां सृष्टिं ज्ञात्वा, स ब्रह्मा मिथुनं युग्ममुत्पादयते । अत्र लङर्थे लट् उदपादयत् इति भावः । किन्नामकं मिथुनमित्यत् आह—रयिं च प्राणं च, शब्दाविमौ विविधविद्वद्व्युत्प्रतिपत्तिपदत्वेन जृंभ्येते केचन, इमावेव मायामहेश्वराविति कथयन्ति, केचन पार्वतीपरमेश्वराविति व्याहरन्ति, केचन प्रकृतिपुरुषाविति मीमांसन्ते, केचन अग्निसोमाविति निर्णयन्ति, किन्तु वयं तु श्रौताः रयिं पृथिव्यन्तरूपां पोषणशक्तिं **रयि ऐश्वर्ये** इति धात्वर्थलभ्याम्, प्राणं प्राणन्ति जीवन्ति जनाः येन इति प्राणः इति व्युत्पत्तेः प्राणपदेन संजीवनीशक्तिं सूर्यचन्द्रापरपर्याये निःसङ्कोचमङ्गीकुर्मः । प्राणतत्वसाकारविग्रहः सूर्यः रयितत्वसाकारविग्रहश्च चन्द्रः, मूलं च **सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्** इति श्रुतिः । अथ जगज्जीवनकारणत्वे सूर्यस्य कि मानम्, यं प्राणपर्यायं मन्यसे, का वा विनिगमना चन्द्रमसः पोषकत्वे यमिह रयिमित्यंगीकरोषि ? इति चेच्छृणु–प्रतिभा धनिनो वयं नहि प्रमाणमन्तरेण सिद्धान्तान् निश्चिन्मः—

सूर्य पक्षे– सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च इति ।

चन्द्र पक्षे– चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि रयिं प्रसङ्गम् बहुलमित्यादि ।

तथा चाह अस्मत् समभ्यर्चनीयचरणकमलो विमलमानसो मानसकारः—

भगति सुतिय कल करन विभूषन ।
जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन ।।

मानस १/१९/६

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इमावेव रयिप्राणौ मन्ये गीतायाम् भिन्नपरप्रकृतित्वेन व्याजहार भगवान् कृष्णः। तथाहि रयिरेव अष्टधा भिन्ना प्रकृतिरपरा यथा च–

भूमिरापोऽनलोवायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।

(गीता ७/४)

प्राणस्तत्र परा प्रकृतिः संजीवनीत्वेन कीर्तितः जीवमूतामिति कथयता भगवता तद्यथा—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतं महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।। इति

एवं भूतं रयिं सोमरूपामन्नमयत्वात् प्राणं च तेजःस्वरूपमेतौ मिथुनीभूय मे मम ब्रह्मणः, प्रजां बहुधा बहुप्रकाराम्, करिष्यतः उत्पादयिष्यतः, इति इत्थम् उत्पत्तिप्रकार दर्शनार्थम् । इमावेव रयिप्राणौ पुराणेषु मनुशतरूपे इति गीयेते । तदा मिथुनधर्मेण प्रजाह्येधांबभूविरे इति स्मरणात्–

स्वायंभू अरु मनु सतरूपा । जिन से भइ नरसृष्टि अनूपा ।।

(मानस १/१४२/१) ।।श्रीः।।

अधुना द्वावेव रयिप्राणौ प्रकारान्तरेण वर्णयति । यद्यपि प्राणः संजीवनशक्तिः रयिश्च पोषणशक्तिः, किन्तु लोके किं रूपाविमौ, प्राणः केन रूपेण जीवयति रयिश्च कया कृत्या पुष्णातीत्येतदाह सूर्यचन्द्राकारवर्णनेन । अथ भोः ! पूर्वस्मिन् मन्त्रे **स मिथुनमुत्पादयते रयिं च प्राणं च** इत्युक्तम् । मिथुनं नाम नरनारीयुग्मं तर्ह्यत्र पुरुषयुग्मेन मिथुनमिदं कथं विव्रियते । इति चेच्छृणु—मिथुनशब्देन न केवलं दम्पत्योर्युग्मं विवक्षितम् अपि तु एकस्मिन् कार्ये सहभागिनोर्द्वयोर्युग्मं तत् भ्रात्रोरपि भवितुं शक्नोति यथा– **यशोदा च महाभागा मिथुनं समजायत ।**

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरिव रयिः ।।५।।

यः प्राणत्वेन पुरा कीर्तितः स एव ह वै प्रसिद्धः आदित्यः सूर्यः एव रयिः, चन्द्रमा शशी एव मूर्तमाकारयुक्तं पृथ्वी, जलमग्निः इदं त्रिभूतमपि रयिः तथा अमूर्तमाकाररहितं वाय्वाकाशमपि रयिः तस्मात् रयेरेव पंचभूतात्मकत्वात् मूर्तिः आकारवती पृथ्वी एव रयिः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ समष्टिप्राणशक्तिमयस्यादित्यस्य प्राणव्यष्टिप्राणसन्निधानप्रक्रियां वर्णयति—

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते । यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो तत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ।।६।।

अथ मिथुननिर्मितेः पश्चात् प्राणशक्तिसाकारविग्रह आदित्यः उदयन् प्रातरुद्गच्छन् यत् प्राचीं पूर्वां दिशं प्रविशति तेन प्रवेशेन सर्वान् प्राच्यान् प्राग्भवानपि प्राणान् रश्मिषु किरणेषु, संनिधत्ते सन्निधाय संजीवयतीति भावः । एवं यद्दक्षिणां यच्च उदीचीमुत्तरां, यच्च प्रतीचीं पश्चिमाम्, यच्चाधः नीचैः, यच्चोर्ध्वम् उपरि, यच्च दिशः अन्तरा कोणेषु यत्सर्वं भुवनमण्डलं प्रविशति तेन सर्वानपि प्राणान् समूह्य रश्मिषु संनिधत्ते संजीवयतीति शेषः ।।श्रीः।।

पुनस्तेन प्राणैकरूप्यं निर्दिशति—

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते । तदेतदृचाभ्युक्तम् ।।७।।

सैव ख्यातमहिमा वैश्वानरः उदराग्निरूपः जाठर इत्यर्थः, यद्वा वैश्वानरः तैजसः विश्वरूपः सर्वरूपः अग्निः पावकमयः, उदयते प्रकाशते, व्यत्ययादात्मनेपदम्, ऋचा मंत्रेणापि तदेतत् ईदृगेव, अभ्युक्तम् निगदितम् ।। श्रीः।।

ऋगुक्तमेवानुवदति विश्वरूपमिव्यादिना—

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्येतिरेकं तपन्तम् ।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणाः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ।।८।।

अत्र पूर्वार्द्धे सप्तापि पदानि द्वितीयान्तानि इति प्राञ्चः । तत्र **दृष्ट्वा ऋषयो वदन्ति** इति द्वितीयान्तानामनुपपत्त्या पदत्रयमध्याजिहीर्षन्ति । एवं विश्वरूपं सर्वस्वरूपं, हरिणं हरीन् अश्वान् नयति निज रथे युनक्तीति हरिणः यद्वा हरिं भगवन्तं नारायणं नयति स्वकीयमण्डलं प्रापयतीति हरिणः—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ।।

इति स्मृतत्वात् । यद्वा हरीन् हरित वर्णानश्वान् नयति इति हरिणः, यद्वा हरिं सीतासमन्वितं रामं, पीतवर्णया सीतया समन्वितोऽयं श्रीरामशरीरनीलिमा हरितोऽभूत्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तन्मयत्वाच्छ्रीरामोऽपि हरितवर्णः ततो हरिः हरितवर्णं तापहरं महाविष्णुं श्रीरामं नयति मध्येमण्डलं स्थापयति इतिहरिणः **सूर्य मण्डल मध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्** इति स्मृतेः । तं हरिणम्, यत्तु हरिणं रश्मिवन्तमिति प्राचीनैरुक्तं तत्तु चिन्त्यम् । कुत्रापि कोशेषु हरि शब्दस्य रश्मिरूपार्थानुपलब्धेः । जातवेदसं विज्ञानमयं, परापणं जीवानां शरण्यम्, ज्योतिः प्रकाशरूपमेकं निरुपमं तपन्तं प्रकाशमानं विलोक्य वदन्ति । किं वदन्ति इत्यत आह–सहस्रेति, इदं प्राचामनुरोधेन वस्तुतस्तु भंगः कल्पना गौरवञ्चेति दोषत्रयं विभाव्य वयमिह पूर्वार्धे **व्यत्ययो बहुलमिति** पाणिनीयसूत्रेण सप्तस्वपि पदेषु प्रथमाविभक्तौ द्वितीयाव्यत्ययं मन्यामहे । एवं विश्वरूपो हरिणो जातवेदाः परायणो ज्योतिः एकः तपन् इत्यर्थः तादृशः सहस्ररश्मिः अनेककिरणः, शतधा अनेकप्राणरूपेण व्यष्टिविधया वर्तमानः, प्रजानाम जन्तूनां, प्राणः संजीवनीभूतः, एष पुरोदृश्यमानः, सूर्यः भाष्करो भगवान् उदयति उदेति ।। श्रीः ।।

अधुना इममेव मिथुनविशेषं व्यापकतया वर्णयति । यत्र यत्र प्रजननं तत्र तत्र तत्तद्रूपेण रयिः प्राणश्चेति मिथुनं तिष्ठति । तत्र रयिं पूजयन् पुनरावर्तते प्रवृत्तिमार्गी निवृत्तिमार्गी च प्राणं पूजयन्नपुनरावर्तते–

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च । तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते । त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेव ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते । एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ।।९।।

वै निश्चयेन, संवत्सरः वर्षमेव प्रजापतिः कालिकसम्बन्धेन प्रजाजनकत्वात्, तस्य प्रजापतिरूपस्य संवत्सरस्य दक्षिणमुत्तरं च अयने मार्गे भवतः, मकरमारभ्य यावन्मिथुनराशिं सूर्य उत्तरतः समुदेति तदेवोत्तरायणं प्राणः देवयानमिति कथ्यते, कर्कमारभ्य यावद्धनु सूर्यो दक्षिणतः उदेति तद्दक्षिणायनं रयिः पितृयाणामिति कथ्यते । के पुनरावर्तन्ते इत्यताह–तत् तस्मात्, ये कर्मिणः निश्चित्य, कृतं कार्यरूपं, इष्टापूर्ते दानादिवापीनिर्माणादि, उपासते । ते चान्द्रमसं चन्द्रमा सम्बन्धिनं, लोकमभिजयन्ते जित्वा सधिकारं यान्ति । त एव साधकाः क्षीणे पुण्ये तस्मात् लोकात् पुनरावर्तन्ते पुनरावागमनं प्राप्नुवन्ति । अतो हेतोः ते प्रजाकामा ऋषयः लोकसंग्रहार्थं दक्षिणं कर्ममार्गं प्रतिपद्यन्ते । कथं ? यतो हि ते प्रजाकामाः संततीप्सवः । यतो हि एषः रयिः चन्द्रमोरूपः पितृयाणः । श्रीः ।

ततो विपरीतं निवृत्तिमार्गं विशिनष्टि अथेत्यादिना–

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विधयाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यममिजयन्ते । एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतममयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ।।१०।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ एतस्माद्विपरीतमुत्तरेण देवयानेन गच्छन्ति निवृत्तिवादिनः । तेषां मार्गे कानि पाथेयानि इत्यत आह–तृतीयान्तानि चत्वारि तपसा इन्द्रियदमेन, ब्रह्मचर्येण शास्त्रविरूद्ध-व्यवायवर्जनेन, श्रद्धया आस्तिकबुद्ध्या, विद्यया अध्यात्मविद्यया एभिश्चतुर्भिरप्यन्तःकरणनिहितमन्वेषणेन लब्ध्वा आदित्यम् आदितयस्य लोकः आदित्यः **दित्यदित्यादित्यपत्पुत्तरपदाण्यः** इति पाणिनीयसूत्रेणं आदित्यशब्दात् व्यप्रत्यये भत्वादकारलोपे **हलो यमांयमि लोपः** इति यकार लोपे आदित्यं तल्लोकं अभिजयन्ते ।

यतो हि एतत् वै निश्चयेन, प्राणानां व्यष्टिगतानाम् आयतनं निवासस्थानम् समष्टिरूपत्वात् इदममृतं मरणरहितम्, अभयं भयशून्यमेतदेवपरायण मुमुक्षूणामिति शेषः । एतस्मात् न पुनरावर्तन्ते नैवावागमनं प्राप्नुवन्ति, इति एष निरोधः सर्वकर्मोपरमः,तदेष श्लोकः स्पष्टीकरणाय मन्त्रविशेषः ।।श्रीः।।

इदानीं कालात्मनः संवत्सरस्य आकारविशेषं कल्पयन्ती श्रुतिः प्राह मन्त्रद्वयमाध्यमेन—

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् । अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ।।११।।

अथ प्रजापतेः संवत्सरस्य आकारं कल्पयन्तः इमे परे प्रसिद्धाः कालविदः पितरः, जगज्जनकम् संवत्सरं पञ्चपादं पञ्च हेमन्तवसन्तग्रीष्मवर्षाशरदृतवः अत्र हेमन्तशिशिरयोरेकीकरणात् पञ्चत्वम् । एवं द्वादशमासाः आकृतयः अवयवाःयस्य स द्वादशाकृतिः तम्, एवमेव दिवः स्वर्गलोकस्य, परे अर्धे श्रेष्ठे स्थाने ब्रह्मलोके स्थितं, पुरीषिणम् जलयुक्तं, वस्तुतस्तु पुरीषं मलमासः यत् प्रतित्रिंशमासमेकमासात्मकः संक्रान्तिशून्य आगच्छति तत् पुरीषं तद्वन्तम् पुरीषिणम् , आहुः कथयन्ति, किन्तु अन्ये एभ्यः परे इमं विचक्षणं सर्वज्ञं कथयन्ति । अथ चास्मिन् सप्त चक्रे सप्तसूर्याश्वचक्रयुक्ते, षडरे षट्संख्याकर्तुरूपारे, कालात्मनि जगत् अर्पितं निहितमाहुः ।।श्रीः।।

पुनः प्रजपतिं मासरूपं व्यनक्ति—

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्षः एवं रविः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ।।१२।।

वै निश्चयेन, मासः त्रिशंद्दिनात्मकः प्रजापतिः प्रजननः तस्य प्रजापतेः कृष्णपक्ष एव रयिः पोषणशक्तिः, शुक्लः शुक्लपक्षएव, प्राणः तस्मात् अतो हेतोः एते विषयः शुक्ले शुक्लपक्षेऽपि इष्टं कुर्वन्ति, कथमिव यथा इतरे प्रवृत्तिवादिनः इतरस्मिन्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृष्णपक्षे आवागमनाय कुर्वन्ति, यद्वा निवृत्तिवादिनः शुक्ले प्रवृत्तिवादिनश्च कृष्णे कुर्वन्ति ।।श्रीः।।

पुनरहोरात्ररूपेण प्रजापतिकल्पनं करोति—

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ।।१३।।

अहोरात्रः दिनरात्रिसमूह एव प्रजापतिः व्यवहारजनकः तस्य अहः दिनमेव प्राणः, रात्रिरेव निशैव रयिः पोषणशक्तिः, एते स्मरान्धाः प्राणानेव प्रस्कन्दन्ति स्खलयन्ति, ये दिवा दिने, रत्या रतिक्रीडया संयुज्यन्ते । तत् ब्रह्मचर्यमेव यत् रात्र्यां निशि, रत्या रतिकर्मणा, संयुज्यन्ते युक्ताः भवन्ति । अत्र प्रसंगतया दिने स्त्रीसहवासनिषेधः ।।श्रीः।।

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ।।१४।।

वै निश्चयेन, अन्नं भोजनमेव प्रजापतिः ततः तस्मात् भक्षितादेव, रेतः पितरि शुक्रं मातरि रजः तस्मात् मिथुनात् इमाः प्रजाः प्रजायन्ते जन्म गृह्णन्ति, इति शब्दः उत्तरसमाप्ति सूचकः ।।श्रीः।।

आधुनोत्तरम् विशमयन्प्राह—

तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ।।१५।।

तत् तस्माद् हेतो, ये जनाः, ह वै निश्चयेन तत् प्रजापतिव्रतं प्रजननधर्मं, चरन्ति सेवन्ते गृहमेधिनः ते मिथुनं मिथुनकर्मणा, उत्पादयन्ते जनयन्ति प्रजा इति शेषः । किन्तु ते कूटधर्मतया पितृलोकं प्राप्नुवन्ति । येषां तपः चान्द्रायणादिकं ब्रह्मचर्यं व्यवायशास्त्रीयता, येषु सत्यं सत्यस्वरूपं ब्रह्म प्रतिष्ठितम् हृद्देशे विराजते, तेषामेव जनानाम् एषः अयं ब्रह्मलोकः यत्र छायातपयोरिव जीवात्म परमात्मनोः अनुगाम्यनुगम्यभावः सुस्पष्टं दृश्यते ।।श्रीः।।

पुनः ब्रह्मलोकप्राप्तियोग्यतां वर्णयति—

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ।।१६।।

एषु जिह्मं कपटम्, अनृतम् असत्यभाषणं, माया दम्भः इति इमे विकाराः नहि तेषां निरस्तजिह्मानृतमायानां कृते असौ, विरजः विगतं रजः भगवद्दर्शनप्रतिबन्धकं यस्मात् तथाभूतः, ब्रह्मलोकः ब्रह्म श्रीरामाभिधं तस्य लोकः साकेतः, इति शब्दः प्रकरणसमाप्तिसूचकः ।

।। इति प्रथमः प्रश्नः ।।

।। श्री राघव शन्तनोतु ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ द्वितीयः प्रश्नः ।।

प्रथमप्रश्ने प्राणस्य सूर्यमासदिवसरूपेण चर्चां विधाय सर्वत उत्कर्षः सूचितः। अथ तस्यैव सर्ववरिष्ठत्वं सूचयितुं द्वितीयप्रश्नप्रारम्भः, तत्र भार्गवो वैदर्भिः पिप्पलादं पृच्छति–

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ। भगवन्कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ।।१।।

अथ अनन्तरं कात्यायने विरते, ह निश्चित्य, एनं पिप्पलादं भार्गवः वैदर्भिः एतन्नामकः ऋषिः पप्रच्छ त्रीन् प्रश्नान् इतिशेषः। भगवन् महानुभाव ! एतां मानवीं प्रजां, कति कियन्तः, देवाः विधारयन्ते विभ्रति, एतत् कतरे देवाः प्रकाशयन्ते भासयन्ते, एषां कतरः कः वरिष्ठः श्रेष्ठः ? **बाहुलकात् बहुवचनेऽपि उतरप्रत्ययः** ।।

प्रश्नत्रयमाकर्ण्य पिप्पलाद उत्तरयितुमुपक्रमते तस्मै इति–

तस्मै सचाहोवाचआकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः ।।२।।

तस्मै वैदर्भये, सः पिप्पलादः, उवाच उत्तरयामास—ह वा निश्चयेन एष देवः आकाशः तदभिमानिदैवतं वायुः अग्निः आपः पृथिवी इमानि पञ्चभूतानि, वाक् तदुपलक्षितकर्मेन्द्रियाणि, मनः उपलक्षणेन चतुरन्तःकरणं, चक्षुः श्रोत्रं ज्ञानेन्द्रियाणि, इमे ऊनविंशतिर्देवाः, प्रकाश्य अभिवदन्ति स्पर्धया ब्रुवते यद् वयमेतद्बाणं, केचन बाणशब्देन शरीरं लक्षयन्ति किन्तु वयं **प्रणवं धनुः शरोस्यात्मा** इति श्रुतेः बाणशब्दस्य प्रत्यगात्मवाचकत्वाद् बहुव्रीहिमहिम्ना शरीरं बोधयामः। तथा च एषः बाणः अस्ति अस्मिन् इत्येतत् बाणमवष्टभ्य विधारयामः दध्मः इति। ।।श्रीः।।

अथ प्राणस्य वरिष्ठतां संकेतयति–

तान्वरिष्ठः प्राण उवाच । मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः ।।३।।

तान् देवान् साभिमानान् वरिष्ठः सर्वेभ्य इति शेषः। प्राणः उवाच—भोदेवाः ! मोहमज्ञानं मा आपद्यथ मा गमत, अहं जगज्जीवनरूपः एतद् बाणं शरीरमवष्टभ्य विधारयामि दधामि, तथापि ते देवाः न श्रद्दधाना बभूवुः न श्रद्दधिरे नास्तिक-बुद्धित्वात् ।। श्रीः।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ प्राणोऽपि तान् विमदयितुं प्रारभत्—

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रामत इव तस्मिमननुत्क्रामत्यथेतरे सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते । तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ।।४।।

सः प्राणः अभिमानाद् देवतानामभिमानं निरीक्ष्य, अत्र **ल्यब्लोपेकर्मणिपंचमी** ऊर्ध्वम् उत्क्रामति इव उत्क्रान्तवानिव अत्र **लङर्थे लट्** । तस्मिन् प्राणे उत्क्रामति इतरे देवा उत्क्रामन्ते । तस्मिन् प्रतिष्ठिमाने चलति इतरे प्रातिष्ठन्ते अचलन् । उदाहरणेन स्पष्टयति—यथा मक्षिकाः भ्रमराः मधुकराणां राजानं नृपम् उत्क्रामन्तं गच्छन्तं सर्वा एव उत्क्रामन्त उथिताः, तस्मिन् प्रतिष्ठमाने प्रस्थानं कुर्वति सर्वा एव प्रातिष्ठन्त गताः एवमत्रापि । अथ वाङ्मनःवचक्षुश्श्रोत्रं दशेन्द्रियाणि चतुरन्तःकरणानि पञ्चभूतानि तद् देवाः प्रीताः प्रसन्नाः प्राणं स्तुन्वन्ति प्राणस्तुतिं कुर्वते ।। श्रीः ।।

अथ यावत्प्रश्नान्तं स्तुतिं वर्णयति, प्राणस्य —

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः ।
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ।।५।।

एषः प्राण एव अग्निः सूर्यः सन् तपति विज्वलति, एषः मघवानिन्द्रः एषः पर्जन्यः वर्षणशीलमेघः, एष वायुः समीरणः च यत् सदसत्, अत्रलुप्तषष्ठीकमेवं तयोः अनित्यनित्ययोः परीभूतं यदमृतं ब्रह्मतत्वं विशिष्टाद्वैतं तदप्येषोऽस्ति ।। श्रीः ।।

अधुना सर्वव्यापकतां साधयति—

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचो यजूँषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ।।६।।

रथनाभौ स्यन्दने अरा इव प्राणे ऋचः ऋग्वेदः, यजूंषि यजुर्वेदः, सामानि सामवेदः, यज्ञः मखः क्षत्रं ब्रह्म उपलक्षणतया चातुर्वण्यं सर्वं प्राणिजातं, प्राणे सञ्जीवनीशक्तौ प्रतिष्ठितम् विद्यमानम् ।। श्रीः ।।

अधुना प्राणैश्वर्यं प्रतिपादयति–

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे ।
तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ।।७।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे प्राण ! त्वं प्रजापतिः सन् गर्भे मातुरिति शेषः चरसि भ्राम्यसि, त्वं भवानेव प्रतिजायसे मातृपितृरूपेण बालकः सन् प्रादुर्भवसि । हे प्राण ! इमाः सर्वाः प्रजाः तुभ्यं भवते एव बलिं सेवां हरन्ति अर्पयन्ति । यः त्वं प्राणैः अपानादिभिः सह प्रतितिष्ठसि विराजसे ।। श्रीः।।

इदानीं श्रैष्ठ्यं प्राणस्य विवेचयति—

देवानामसि बह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा ।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ।।८।।

हे प्राण ! त्वं देवानां सुराणां बह्नितमः श्रेष्ठोऽग्निरसि, पितृणामर्यममुख्यानां प्रथमा स्वधा नान्दीमुखश्राद्धे शिशु जन्मनि दीयमाना इति भावः । ऋषीणां महर्षीणां चरितं सत्यमाकूतिरसि । एवमङ्गिरसां तद्वंश्यानांमथर्वा असि, **प्राणोऽथर्वा** इति श्रुतेः ।। श्रीः।।

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रूद्रोऽसि परिरक्षिता ।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ।।९।।

हे प्राण । त्वं तेजसा इन्द्रः पुरन्दरः असि त्वमेव अन्तरिक्षे नभसि चरसि, ज्योतिषां नक्षत्राणां पतिः स्वामी सूर्यः सविता त्वमेवासि ।। श्रीः।।

पुनस्तद्वर्षणसुखं वर्णयति—

यदा त्वमभिवर्षस्येमाः प्राण ते प्रजाः ।
आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ।।१०।।

हे प्राण ! यदा यस्मिन् काले त्वं मेघरूपेण अभिवर्षसि, अथ इमाः प्रजाः प्राणते श्वसन्ति, अथवा प्राण इति पृथक् पदं सम्बोधनान्तं, ते तव प्रजाः अन्नमदनीयं कामं यथेच्छं भविष्यति सम्पत्स्यते, इति इत्थं विचार्य आनन्दरूपाः सुखिन्यः तिष्ठन्ति निवसन्ति ।। श्रीः ।।

व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातारिश्वनः ।।११।।

हे प्राण ! त्वं व्रात्यः प्रथमजत्वादकृतसंस्कारः तथापि एकर्षिः एकं परमात्मानं ऋषति गच्छति तथा भूतः, यद्वा अद्वितीयमन्त्रद्रष्टा, विश्वस्य चराचरस्य अत्ता भक्षकः अत्ताचराचरग्रहणात् इति सूत्रं, सत्पतिः सतां स्वामी, वयं तव सेवकाः, आद्यस्य भक्षणीयस्य भोजनस्य दातारः, त्वं मातरिश्वनः वायोरपि पिता जनकः । श्रीः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ।
या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ।।१२।।

हे प्राण ! ते तव या तनुः मूर्तिः वाचि वाण्यां प्रतितिष्ठिता, या श्रोत्रे कर्णे, या चक्षुषि नेत्रे, या च मनसि सन्तता तां चतुर्दशकरणेषु स्थितां शिवां कल्याणमयीं कुरु, मोत्क्रमीः उत्क्रमणं मा कुरु ।। श्रीः।।

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् ।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि नः ।।१३।।

त्रिदिवे स्वर्गे यत्प्रतिष्ठितम् वस्तु जातमिदं सर्वं प्राणस्य तव वशे नियंत्रणे, हे स्व अस्माकमातमीयपुत्रान्नः माता इव जननी इव रक्ष पालय, च श्रीं 'बहुलकादियङ्भावः' लक्ष्मीं भगवद्भक्तिरूपां प्रज्ञां बुद्धिं नः अस्मभ्यम् विधेहि अनुतिष्ठति ।।श्रीः।।

।। इति द्वितीयः प्रश्नः ।।

।। श्री राघवे शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीयः प्रश्नः ।।

द्वितीय प्रश्ने प्राणस्तुतिव्याजेन् तस्य सर्वातिशायित्वं साधितं भूयस्तत्कारणजिज्ञासार्थं तृतीयप्रश्नप्रारम्भः—

अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ—भगवन्कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ।।१।।

अथ कौसल्यः कौसलदेशीयः आश्वलायनः एवं पिप्पलादं षट्प्रश्नान् पप्रच्छ—भगवन् देव ! एष प्राणः कुतः कारणात् जायते, एष कथं केन प्रकारेण अस्मिन् शरीरे आयाति आगच्छति, आत्मानं स्वं प्रविभज्य प्रविभक्तं कृत्वा कथं प्रातिष्ठते शरीरावयवेषु विराजते, केन मार्गविशेषेण उत्क्रमते, कथं बाह्यं बहिर्व्यवहारं कथं चाध्यात्ममान्तरमभिधत्ते चेतयते ।।श्रीः।।

एवम्—

कुतः प्रजायते प्राणःकेनायाति कथं स्वकम् ।
प्रातिष्ठते विभज्याथ केनोत्क्रमत ईश्वरः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाह्यमध्यात्ममेवाथ अभिधत्ते कथं हि सः
इमे षड विहिताः प्रश्ना आश्वलायन सूरिण

अथ प्रश्नान्निशम्य पिप्पलाद आश्वलायनं प्रसंशति—

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान्पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ।।२।।

तस्मै आश्वलायनाय सः पिप्पलाद उवाच—अति प्रश्नान् अतिशयाः प्रश्नाः अतिप्रश्नाः तान् पृच्छसि, स्वयमेव प्राणो दुर्ज्ञेयः त्वमिह तत्कारणं जिज्ञाससे तस्माद् अहं ते तुभ्यंम् ब्रवीमि कथयामि ।।श्रीः।।

अथ प्राणजन्माह—

आत्मन एष प्राणो जायते । यथैषा पुरूषे च्छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृते नायात्यस्मिञ्शरीरे ।।३।।

अथोत्तरयति पिप्पलादः—एष प्राणः आत्मनः सर्वकारणभूतात् प्रत्यगात्मासकाशात् जायते प्रभवति, यथा छायापुरूषस्य सकाशाद् जायते तथैव प्रतिबिम्बभूतोऽयमिति फलितार्थः । एवमस्मिन् पुरूष एव सर्वमाततं, वस्तुतस्तु आत्मपदं परमात्मपरकमिति बहुशो मया व्याख्यातम्, तस्मात् जायमानं जीवात्मानमनुगच्छन् पुरूषं छायेव मनोकृतेन संकल्पेन अस्मिन् शरीरे आयाति । मरणकाले जीवात्मा यथा संकल्पयति तदात्मकेन मनसा नीयमानोऽयं तत्संकल्पनिर्मितशरीरे इति भावः । यदि मरणसमये विषयांश्चिन्तयति तदा सूकरकूकरादिनिकृष्टशरीराणि प्राप्नोति, यदा भगवन्तं भजते तदा दिव्यशरीरेण प्रभुपदपद्मपरागरागरसमनुभवतीति भावः । तस्मान् मरणकाले भगवानेव स्मरणीय इति विधीयते ।।श्रीः।।

इत्थं प्रश्नद्वयं समाधाय तृतीयप्रश्नं सम्प्राडुदाहरणेन समाधत्ते—

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठ-स्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथक्पृथगेव संनिधत्ते ।।४।।

यथा कश्चन सम्राट् अधिकृतान् प्रेष्यान्, एतान् ग्रामान् इमान् ग्रामान् वीप्सार्थे द्विवचनम् अधितिष्ठस्व साधिकारं तिष्ठस्व, तथैव अयं सम्राडिव इतरान् प्राणान् स्वाधीनान् चक्षुरादीन् संनिधत्ते सन्निहतान् कुरूते । श्रीः ।

अथ संनिधानप्रकारमाह—

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः । एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पायुश्च उपस्थश्च इति पायूपस्थं प्राण्यङ्गत्वात् द्वन्द्वे क्लीबत्वमेकवचनं च, एवं तस्मिन् पायूपस्थे गुदशिश्ने, अपानमपकृष्टं नयति शरीरमलं यत्तथाभूतं, चक्षुश्च श्रोत्रञ्च इति चक्षुःश्रोत्रं तस्मिन् चक्षुःश्रोत्रे । प्राणः मुखनासिकाभ्यां निर्गच्छन् स्वयं प्रातिष्ठते अधिकृत्य विराजते, मुखञ्च नासिकाचेति मुखनासिके ताभ्यां मुखनासिकाभ्याम् । ननु कथ मत्र **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य सेनाङ्गानाम्** इत्यनेन नैकवद्भावः ? **मुखनासिका वचनोऽनुनासिकः** इति सूत्रनिर्देशेन एकवद्भावविधेरनित्यत्त्वज्ञापनात्, तथाहि यदि चेत् प्राण्यङ्गत्वात् मुखनासिकेत्यत्र क्लीबत्वनेकत्वभावश्च स्याताम् तदा मुखं च नासिका च मुखनासिकं तेन वचन इति मुखनासिकवचनः इत्येव सूत्रितं स्यात्, यद्यपि केचन मुखनासिंकेन आवचनः इत्याकारं प्रश्लिष्य व्युत्पाद्य मुखसहितनासिकयोरुच्चार्यमाणः इति वृत्तिमप्यवर्णयन्, तथापि आकारप्रश्लेषकल्पना- गौरवं मुखनासिकाशब्दस्य आकृतिगणतया शाकपार्थिवादिगणपाठकल्पना च । इत्थं कल्पनाद्वयगौरवापेक्षया मदुक्तज्ञापनमेव लघीयस्तम् । मुखनासिकाभ्यामिति श्रुतिप्रयोगानुरोधोऽपि प्रमाणम् । व्याकरणस्य श्रुतेरङ्गत्वाद् व्याकरणं श्रुतिमनुगच्छति न तु श्रुतिर्व्याकरणम् । ध्यातव्यमत्र पायूपस्थे, चक्षुःश्रोत्रे इत्युभयत्रैकवद्भावं विधाय मुखनासिकाभ्यामिति नकृत्वैकवद्भावं श्रुतिरस्य शास्त्रस्याऽनित्यत्वे परमं प्रमाणम् । एवं तु मध्ये शरीरस्य हृद्देशे समानः एषः समानवायुः शरीररूपे यज्ञे हुतं निक्षिप्तमन्नं समं समानरूपेण नयति श्रुगिव, तस्मात् जाठराग्नेः सप्तार्चिषः सप्तज्वालाः भवन्ति ।।श्रीः।।

अथ व्यानचरणं वर्णयति—

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ।।६।।

हृद्देशे एष आत्मा जीवात्मा परमात्मनः सह तिष्ठति । तत्र एतत् प्रसिद्धं नाडीनामेकाधिकशतं मुख्यं, तत्र प्रतिनाडिशतं शतसंख्याकं तत्रापि एकैकस्या द्वासप्ततिः द्विगुणितषट्त्रिंशत्, तत्रापि प्रत्येकं सहस्रं सहस्रमासुनाडीसु व्यानयति रूधिरप्रवाहं यः सः व्यानः, चरति गच्छति ।। श्रीः।।

अथोदानकार्यं वर्णयति–

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ।।७।।

अथ अनन्तरम्, एकया सुषुम्नया, ऊर्ध्वया ऊर्ध्वगामिन्या, नाड्या गच्छन्नुदानः, पुण्येन हेतुना जीवं पुण्यलोकं स्वर्गादिकं, पापेन अघेन पापलोकं नरकम्, उभाभ्यां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुण्यपापाभ्यां मिश्रिताभ्यां, जीवं मनुष्यलोकं नरलोकं, नयति गमयति। तस्मात् उदान इति ऊर्ध्वं नयति इति व्युत्पत्तिः ।श्रीः।

अधुना पञ्चमं प्रश्नं समाधत्ते—

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः । पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ।।८।।

बाह्यप्राणेनान्तःप्राणानां रक्षा भवति तस्मात् आन्तराणां पंचप्राणानां पंच महाभूतान्येव बाह्यप्राणत्वेन श्रुत्या व्याख्यातानि, तथाहि–आदित्यः सूर्यः आग्नेयः बाह्यः प्राणः शरीराद्बहिः वर्तमानः चाक्षुषं नेत्र संबंधिनं प्राणमनुग्रहाणः कृपापात्रं कुर्वन् उदयति, एवं पृथिव्यां तदभिमानिनी देवता पुरूषस्य अपानं तद् वायुं संश्रिता, एवं यत् अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्यवर्ती आकाशः सैव बाह्यसमानः तस्मिन् विराजमानो वायुः व्यानः वाह्य इति शेषः । श्रीः ।

अधुनोदानं व्याख्याति—

तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ।।९।।

तेजः अग्निरेव निश्चयेन उदानवायुः, तेन कारणेन उपशान्तं तेजः सत्यं यस्य स उपशान्ततेजाः क्षीणायुः, मनसि सम्पद्यमानैः इन्दियैः सह पुनर्भवं संसारमेव गच्छति ।। श्रीः।।

अधुना संकल्पमेव शरीरकारणं वर्णयति—

यच्चित्तस्तेनेष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथासङ्कल्पितं लोकं नयति ।।१०।।

यच्चित्तः चित्ते यादृशं संकल्पं करोति तेनेव संकल्पेन एषः जीवात्मा प्राणमायाति प्राप्नोति नयनाय, प्राणस्तु तेजसा उदानेन सहितः जीवात्मानमेवं यथा संकल्पितं संकल्पमनतिक्रम्य तद् रचितं लोकं नयति ।।श्री।।

अधुना फलश्रुतिं गायति–

य एवं विद्वान्प्राणं वेद न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ।।११।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यः एवंभूतः विद्वान्, प्राणं तत्कारणनिर्गमनप्रतिष्ठानोत्क्रमणबाह्याध्यात्माभिधान सहितं वेद जानाति, अस्य ज्ञातुः प्रजा सन्ततिपरमपरा न हीयते न नष्टः भवति, सच अमृतो भवति । तदुपसंहारे श्लोकः ।।श्रीः।।

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा । अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति ।।१२।।

एवं प्राणस्य उत्पत्तिं परमात्मनः सकाशात्, आयतिं प्रतिशरीरमागमनं मनः संकल्पेन, स्थानं स्थितिं चक्षु श्रोत्रादिषु, पञ्चधा विभुत्वं प्राणापानसमान व्यानोदानरुपेण व्यापकत्वं च चाक्षुषानुग्रहरूपेण, अध्यात्मं च विज्ञाय अमृतं परब्रह्म परमात्मानं भुङ्क्ते साक्षात्कृत्यानन्दमनुभवति द्विरुक्तिर्दृढतायै इति शब्दश्च प्रश्नसमाप्तिसूचकः ।

।। इति तृतीयः प्रश्नः ।।
।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ चतुर्थः प्रश्नः ।।

प्राणेन सह आत्मनः सम्बन्धं श्रुतिर्वर्णितवती तृतीये प्रश्ने । अथ प्राणादियुक्ते शरीरेऽस्मिन् कोऽपि अधिष्ठातृरूपेण वर्तते, यतो हि गृहं कस्मैचित् स्वामिने निर्मीयते तर्हि गृहस्वामिनोऽपि कैश्चित् क्रियाकलापैर्भवितव्यमिति पञ्चप्रश्नान् पृच्छति सौर्यायणी ।

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ–भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ।।१।।

अथ गर्गवंशीयः सौर्यायणी पिप्पलादं पञ्चप्रश्नान् पप्रच्छ–भगवन् ! एतस्मिन् पुरुषमये शरीरे कानिं स्वपन्ति शयनं कुर्वन्ति, कानि जाग्रति प्रबुध्यन्ते, एषः कतरः किन्नामकः देवः स्वप्नान् स्वप्नव्यापारान्पश्यति, एतत् सुखं स्वाप्नं कस्यानुभवितुर्भवति, कस्मिन् आधारविशेषे सर्वे शरीरशक्तिविशेषाः संप्रतिष्ठिताः लब्धप्रतिष्ठाः । इति पञ्च प्रश्नाः ।।श्रीः।।

अथ पिप्पलाद उत्तरयति–

तस्मै च होवाच यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मै गार्ग्याय स पिप्पलादः उवाच—ह निश्चयेन गार्ग्य। सम्बोधनमेतत् यथा अर्कस्य सूर्यस्य अस्तं गच्छतः सायंकाले सर्वाःमरीचयः किरणाः तस्मिन् तेजोमण्डले गोलाकारे एकीभवन्ति अनेके एक इव सम्पद्यन्ते, पुनश्च उदयतः प्रसरन्ति, एवमेव परे देवे तिष्ठति सति मनसि स्वान्ते तत्सर्वं सकलेन्द्रियव्यापारयूथं एकीभवति एकाकारमेव समपद्यते। तेन इनिद्रयव्यापारविश्रामेण एष पुरुषः जीवात्मा न शृणोति श्रोत्राभ्या न पश्यति दृग्भ्यां, न जिघ्रति घ्राणेन, न रसयते रसनया, न स्पृशते त्वचा, नाभिवदते वाचा, नादत्ते हस्तेन, नानन्दयते शिश्नेन, न विसृजते पायुना, न इयायते चरणेन एवं दशेन्द्रियाणां शिथिलतया अयं पुरुषः स्वपिति इति जनाः आचक्षते कथयन्ति ॥ श्रीः॥

अथ द्वितीयप्रश्नमुत्तरयति—

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद् गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥३॥

अत्र यज्ञरूपकेण विषयं स्पष्टयति। प्रथमप्रश्नोत्तरे मनसीन्द्रियेषु संभृतेषु सर्वव्यवहारोपरमार्थः स्वपिति पुरुषपर्यायो जीवात्मेति व्याख्यातम्, अधुना जागरं चर्चयति। प्राणाः अग्नयः इव इति प्राणाग्नयः **उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्या प्रयोगे** इत्यनेनोपमितसमासः। इमे एव पञ्च अस्मिन् पुरे शरीरे जाग्रति दिवारात्रं क्षणमपि व्यापारान्न विरमन्तीति भावः। अथ कः प्राणः कोऽग्निरिति प्राह गार्हपत्यः अपानः अन्वाहर्यपचनः दक्षिणाग्निः व्यानवत्। प्राणः अपानादूर्ध्वं प्रणीयते तथैव गार्हपत्यात् आहवनीयः प्रणीयते अतः स एव प्राणः ॥श्रीः॥

अधुना समानोदानौ वर्णयति–

यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः। मनो ह वाव यजमानः। इष्टफलमेवोदानः। स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥४॥

यत् उच्छवासनिश्वासौ आहुतीः इव सम्यगुन्नयति इति अस्मात् स समानः। ह वाव इहि निश्चयवाचकनिपातत्रयम्, मनः यजमानः यज्ञकर्ता, उदानः इष्टफलं यथा यज्ञफलं उपरि नयति तथैव उदानोऽपि यजमानरूपं मनः ब्रह्म परमेश्वरं प्रति गमयति। अत्र रूपके केवलं जागरूकताभिप्रायः न तु निन्द्रानन्दस्य प्रसंशा ॥ श्रीः॥

अथ तृतीयप्रश्नमुत्तरयति–

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति। देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चाहदृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥५॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र अस्मिन् शरीरे एषः पुरिशयान आत्मदेवः, स्वप्ने तदवस्थायां महिमानं निजैश्वर्यम् अनुभवति, तथा यज्जाग्रति, दृष्टं तदपि यच्चादृष्टं दृष्टभिन्नं पश्यति चक्षुषा, यत् श्रुतं जाग्रति अश्रुतं श्रुतभिन्नं शृणोति स्वप्ने श्रोत्राभ्यामेवमेव देशदिगन्तरैः भ्रम्यमाणैः प्रत्यनुभूतं दृष्टमदृष्टं, श्रुतमश्रुतम् अनुभूतं तद् भिन्नं सर्वमपि सर्वः सर्वस्वरूपः पश्यति साक्षात्कुरुते । श्रीः ।

अथ चतुर्थप्रश्नं समाधत्ते—

स यदा तेजसाऽभिभूतो भवत्यत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति ।।६।।

यदा यस्मिन् काले स देवः पुरुषः तेजसा उदानाख्येन अभिभूतः तदा स्वप्नान् न पश्यति आनन्दमयत्वात्, तदा एतस्मिन् शरीरे एतत् सुखं पुरूषस्यैव भवति।।श्रीः।।

अधुना समेषां शरीरधर्माणां परमात्मानि प्रतिष्ठां स्थापयति—

स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ।।७।।

हे सोम्य ! सोमं अर्हतीति सोम्यः **सोमस्य यः** इत्यनेन य प्रत्ययः । यथा येन प्रकारेण वयांसि विहगाः सायंकाले वासोवृक्षं, वसनं वासः सान्तः क्लीबेऽयं शब्दः वस्त्रपर्यायः निवासरूपेऽर्थेऽत्र प्रयुक्तः, यद्वा वासः वस्त्रं तद्वत् निजावरकत्वात् वृक्षः वासोवृक्षः तं नीडम्, यथा कोऽपि शीतकम्पितः वस्त्रेणात्मानमावृणोति तथैव पक्षिणः शीतहिंसकभयात् वस्त्ररूपे निजकृते वृक्षनीडे स्वं गोपायन्ते । अतो वासोवृक्षः नीडः इति वयम्.। यत्तु वासार्थं वृक्षमिति विग्रहणते तच्छब्दगाम्भीर्यमजानन्ता उपेक्ष्याः । तथैव समनस्कं सर्वमिन्द्रियजातं परे आत्मनि परमेश्वरे संप्रतिष्ठते विश्रामयति प्रलय इति भावः ।

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजसश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं च वाक्च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहंकारश्चाहंकर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ।।८।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र शब्दाः स्पष्टाः भावस्तु—यानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशपंचमहाभूतानि याश्च गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाख्याः तन्मात्राः, यानि चक्षुश्श्रोत्रघ्राणरसनात्वग्वाग्घस्त पायुपस्थपादनामकानीन्द्रियाणि, ये च श्रवणदर्शनघ्राणरसनस्पर्शनवचनोपादान–विसर्गानन्दगमनाख्यास्तद्विषयाः, यानि मनोबुद्ध्याहंकर्तव्यचेतयितव्यनामिकास्तद्वृत्तयः यौ च तेजःप्राणौ, यौ च विद्योतयितव्यविधारयितव्येति तद्धर्मौ इमे च षड्विंशतिः परात्मनि तस्मिन् विलीयन्ते । संग्रहश्चात्र दृष्टव्यः—

पंचभूतानि तन्मात्रा इन्द्रियाणि तदर्थकः ।
सवृत्यन्तःकरणानि तेजः प्राणौ सधर्मकौ ।।
इमे षड्विंशतिस्तस्मिन् लीयन्ते परमात्मनि ।
प्रविशन्ति यथा नीडं सायंकालेऽथ पक्षिणः ।।श्रीः।।

अथ सर्वेषामाधारभूतो जीवात्माऽयं कुत्र प्रतिष्ठते इत्यत आह–

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरूषः स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ।।९।।

एवं एषः द्रष्टा रूपस्य, स्प्रष्टा स्पर्शयितव्यशरीरस्य, श्रोता शब्दस्य, घ्राता सुगन्धस्य, रसयिता रसस्य, मन्ता मननीयस्य, बोद्धा बोधनीयस्य, कर्त्ता करणीयस्य, एवं विशेषेण ज्ञायते जीवब्रह्मणोः सम्बन्धः सेव्यदास्यवात्सल्यसख्यमाधुर्यभावोपपन्नो येन तद्विज्ञानं भगवद्भजनरूपमात्मा स्वरूपं यस्य तादृगयं प्रत्यगात्मा परे सकल-कार्यकारणातीते अक्षरे, न क्षरति परमानन्दरसो यस्य सोऽक्षरः निजभक्तदर्शनदायक इति भावः, तस्मिन् अक्षरे, आत्मनि आदत्ते स्वीकरोति भक्तानां पत्रपुष्पफलजलानि यः स आत्मा तस्मिन्, आत्मनि परमात्मनि श्रीरामाभिधेयब्रह्मणि संप्रतिष्ठते सम्यक् प्रतिष्ठावान् भवति । सायुज्यमुक्तिं लभत इति भावः ।

अधुना ब्रह्मविज्ञानं स्तौति—

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य । स सर्वज्ञः सर्वो भवति । तदेष श्लोकः ।।१०।।

हे सोम्य ! यस्तु परमात्मानमच्छायं नास्ति पापच्छाया यसिमन् तत् यद्वा अव्यक्ता जीवात्मरूपच्छाया यस्मिन्, यद्वा आकारो वासुदेवः विष्णुरेव छाया यस्य तत् अच्छायं महाविष्णुरूपं रामं, यद्वा नास्ति छाया मायारूपिणी यस्मिन् तत् अच्छायं मायातीतं तादृशम्, अशरीरमव्यक्तशरीरम्, अलोहितमरक्तं श्यामवर्णमिति भावः,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्वा लोहितो रजोगुणः तद् भिन्नं, यद्वा लोहितो ब्रह्मा तद्भिन्नमेवं परमक्षरं पुरूषोत्तमं वेदयते जानाति, शुभ्रं वा यो वेदयते स परमक्षरं परमात्मानं प्रतिपद्यते प्राप्नोति । सैव जीवात्मा सर्वः व्यष्टिमर्यादाशून्यतया सर्वरूपः सर्वज्ञः सर्वज्ञाता भवति ।।श्रीः।।

पुनरिममर्थं संक्षिपन्नाह–

विज्ञानात्मा सह देवेश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ।।११।।

सर्वैः देवैः करणाधिष्ठातृभिः सहितानि भूतानि पृथिव्यादीनि प्राणः पञ्च एभिः सहितो विज्ञानात्मा भगवत्प्रपत्तिस्वभावः जीवात्मा इमे सर्वे यत्र परमात्मनि श्रीरामचन्द्रे संप्रतिष्ठन्ति सम्यक् स्थानं लभन्ते, हे सोम्य ! तादृशमक्षरं सर्वकारणकारणं यस्तु वेदयते जानाति यद्वा विरहवेदनाविषयं करोति स सर्वज्ञः सर्वः परमात्मा ते जानाति तथाभूतः सर्वं भगवन्तमेव आविवेश लडर्थे लिट् आविशतीति भावः, इति शब्दः समाप्तिसूचकः ।।श्रीः।।

।। इति चतुर्थः प्रश्नः ।।

।। श्री राघवे शन्तनोतु ।।

।। अथ पञ्चमः प्रश्नः ।।

अथ परं सगुणं ब्रह्म अपरं निर्गुणं ब्रह्म उभयोर्वाचकमोंकारं तयोः प्राप्तिकारणञ्च । तत्र परब्रह्मणः सगुणस्य भगवतो महाविष्णोः श्रीरामस्य प्राप्तये व्युत्पत्तिपक्ष आश्रयणीय औंकारस्य, यश्च व्याख्यातपूर्वो मया, अपरस्य निर्गुणस्य ब्रह्मणः प्राप्तये अव्युत्पन्नपक्ष आश्रयणीयः, सोऽपि प्रथमोपनिषदि सविस्तरं विवृतो मया अतस्तदुपासनचिकीर्षया प्रश्नोऽयं प्रारम्यते–

अथ हैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायेणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत । कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ।।१।।

अथ अनन्तरं शैव्यः शिविपुत्रः सत्यकामः एतन्नामा पप्रच्छ प्रश्नं कृतवान्- भगवन् ! यः सः कोऽपि भाग्यवान् साधकः मनुष्येषु नरेष्वन्यतमः प्रायेण अन्ते शरीरत्यागवेलायाम् ओंकारं प्रणवं अभिध्यायीत् व्यत्ययेन लडर्थे लिङ्विधानं तथा च ध्यानविषयं करोति इति भावः, तेन ध्यानविशेषेण स कतमं किं नामकं लोकं स्थानं जयति साधिकारं प्राप्नोति ।। श्रीः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पिप्पलादः तत् प्रश्नं समाधातुमुपक्रमते—

तस्मै स होवाच । एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ।।२।।

सः पिप्पलादः तस्मै सत्यकामाय ह निश्चित्य उवाच, उत्तरयाम्बभूव यत् हे सत्यकाम ! एतत् इदं श्रुति प्रतिपाद्यं परं सगुणं ब्रह्म च अपरं निर्गुणं ब्रह्म यत् श्रुतिभिः निगदितं तदेव ओंकारः नामार्थयोरभिन्नत्वात् समानाधिकरणम्, ओंकारो हि व्युत्पत्तिभेदेन सगुणं निगुर्णं च समभिधत्ते । ननु सगुणब्रह्मपरत्वे किं बीजं तस्यमाया-सवलत्वेन कथन्नापरत्वमङ्गीक्रियते ? इति चेन्मैवं वादीः, महतामपि महीयासं मायापतिं कथमाच्छादयितुमलं दोषनिकाया माया, कथमहोच्छाया मध्याह्नचण्डाशुं समावृणुयात् । तस्य च सगुणब्रह्मणः सन्निहितसकलगुणगणकल्याणगुणगणनिलयत्वेन भजनसौलभ्येन च परत्वं, तिरोहितगुणकतया दुराराध्यतया च निगुर्णस्यापरत्वम्, इदमेव च भगवता गीतायाः द्वादशस्य पूर्वार्धे सुस्पष्टितम् । तत्र पार्थेन पृष्टं यत् त्वां श्रद्धया भजताम् इतरेषाम् चाक्षरजुषां मध्ये के योगवित्तमा इति । तद्यथा—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।।

(गीता-१२/१)

तदनु भगवतैव तयोः सगुणनिर्गुणयोरैश्वर्यतारतम्यं निरसता उपासनासौलभ्येन सगुणब्रह्मणः श्रेष्ठत्वं प्रत्यपादि—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयो पेतास्ते मे युक्ततमा मता ।।

इदमेव मानसकृतापि प्रोक्तम्-

अंगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम वस सगुन सो होई ।।

(मा० १/११६/२)

एतेन सगुणनिर्गुणयोः न्यूनाधिकत्ववादिनः परास्ताः ।

ओंकारः प्रणवः द्वयोरपि समानवाचकः विद्वान्साधकः एतेन आयतनेन आलम्बनेन एकतरं परमपरं वा अन्वेति आनुकूल्येन गच्छत्युपासनया नहि समानकालमेव द्वयोरप्युपासनं संम्भवम् ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथैकमात्रस्य ध्यानफलं वर्णयति—

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ।।३।।

प्रणवेऽस्मिन् तिस्रः मात्राः, यदि कोपि एकमात्रं ह्रस्वमभिध्यायीत चिन्तयति स तेनैव ध्यानेन संवेदितः प्रेषितः सन् तूर्णं शीघ्रं जगत्यां संसारे अभिसम्पद्यते । ऋचः ऋगवेदमन्त्राः तमेकमात्रध्यायिनं मनुष्यलोकं मर्त्यलोकमुपनयन्ते प्रेषयन्ति, तत्र मर्त्ये लोके सः तपसा चान्द्रायणादिना ब्रह्मचर्येण द्वन्द्वधर्मवर्जनेन श्रद्धया आस्तिकबुद्ध्या सम्पन्नः महिमानमैहलौकिकमनुभवति ।

अधुना द्विमात्रध्यानफलं कीर्तयति—

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुभिरून्नीयते सोमलोकम् । स सोमलोके विभूतिभनुभूय पुनरावर्तते ।।४।।

अथ अनन्तरं यदि कोऽपि ह्रस्वदीर्घयुक्तेन प्रणवेन ध्यानविषयेण मनसि चेतसि सम्पद्यते, तदा सः यजुर्भिः यजुर्वेदमन्त्रैः अन्तरिक्षं गगनं तत्स्थं चन्द्रं सोमं तल्लोकमुन्नीयते तथा सोमलोके तत्रत्याः विभूतीः अनुभूय पुनः आवर्तते संसारसागरे ।।श्रीः।।

अथ त्रिमात्रध्यानमहिमानं वर्णयति—

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनेवाक्षरेण परं पुरूषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः सा सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परातपरं पुरिशयं पुरुषमीक्षते ।तदैतौ श्लोकौ भवतः ।।५।।

यः पुनः विशिष्टसाधकः त्रिमात्रेण ह्रस्वदीर्घप्लुतयुक्तेन परमपुरूषं श्रीराघवममिध्यायीत प्रणवं ज्योतिरूपिणमिति श्रुतेः, सः तेजसि सूर्ये तेजोमये रवौ सम्पन्नः इति प्रथमं वाक्यं, यथा येन प्रकारेण पादोदरः, पादः उदरं यस्य सः सर्पः त्वचा चर्मणा निर्मुच्यते तथैव अयं साधकोऽपि सर्वपाप्मना प्रारब्धजनितपापेन विनिर्मुक्तः सामभिः सामवेदीयैः मन्त्रैः ब्रह्मलोकं साकेतमुन्नीयते, तत्र गतः सन् एतस्मात् जीवघनात् संसारात् विरतः सन् पुरिशयं शरीरेऽन्तर्यामित्वेन शयानं पुरुषं धनुर्बाणोपलक्षितं पुरुषत्वयुक्तं सीताभिरामं श्रीराममीक्ष्यते चाक्षुषप्रत्यक्षविषयं करोति । तत् प्रश्नसंग्रहरूपेण एतौ द्वौ श्लोकौ मन्त्रौ भवतः शोभेते ।। श्रीः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधुना प्रश्नोपसंहारं लक्षयति—

तिस्त्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुकताः ।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ।।६।।

ओंकारे, मृत्युमत्यः मृत्युः मरणं अस्ति यासु तथाभूताः मात्राः त्रिसंख्याकाः प्रयुक्ताः त्रिष्वपि मरणमावागमनं वर्तत एव ब्रह्मलोके, त्रिमात्रपरिणामे यद्यपि परमपुरूष-दर्शनं भवति **छायातपयोरिव ब्रह्मलोके** इति श्रुतेः, तथापि ततोऽपि पुनरावर्तनं भवति **आ ब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन** इति श्रुतेः । एवमन्योन्यसक्ताः प्रत्येकं मिलिता अविप्रयुक्ताः ध्यानकालेऽपि विप्रयोगरहिता, एवं भूतासु आसु बाह्याभ्यनतरमध्यमासु प्रथमा बाह्यायां द्वितीया आभ्यान्तराख्यायां तृतीया च मध्यमायामेवं सम्यक् प्रयुक्तासु ज्ञः परमात्मवेत्ता न विकम्पते न स्थितेः चलतिः ।

तमेवार्थं भूयः स्पष्टयति—

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते ।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यतच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ।।७।।

ऋग्भिरेतं पृथ्वीलोकं, यजुर्भिः करणैः अन्तरिक्षं भुवलोकं, सामभिः करणैः यत् कवयः विद्वांसः वेदयन्ते जानन्ति तत् ब्रह्मधाम प्रतिपद्यत इति शेषः । एवं सकामः, निष्कामस्तु ओंकारेणैव आयतनेन जप्यमानेनालम्बनेन विद्वान् भगवदीयसेव्यसेवक-सम्बन्धज्ञाता, तं तमेव तमालनीलम् अन्वेति अनुगच्छति, यत् ब्रह्मपदं शान्तं प्राकृतसत्वरजस्तमोरहितमजरं नविद्यते जरा यस्मिन् तत् कमनीयकिशोरमूर्तिममृतं कालातीतत्वान्मरणरहितमभयं निरस्तमायाकुहूकत्वात् भयरहितं, परं सर्वेभ्यः इन्द्रियार्थमनोबुद्धिप्रत्यगात्मप्रकृतिभ्यः परं तादृशं परमात्मानं निष्कामः प्रणवं प्रणमन् प्राप्नोति ।। श्रीः ।।

।। इति पञ्चमः प्रश्नः ।।
।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ षष्ठः प्रश्नः ।।

पञ्चमप्रश्ने पञ्चममन्त्रे एतस्मात् जीवघनात् **पुरिशयं पुरुषमीक्षते** इत्युक्तम् । तत्र जिज्ञासेयमुदेति–कियत् कलात्मकोऽयं पुरूषः कथं शरीरेऽस्मिन् निवसति, किमस्य कार्यमिति सर्वजिज्ञासितं समाधातुं प्रश्नोऽयं प्रारभ्यते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ । भगवन्हिरण्यनामः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत् । षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ । तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति । समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतंवक्तुम् । स तूष्णीं रथमारूह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ।।१।।

अथ अनन्तरं, ह निश्चयेन, एनं पिप्पलादं भारद्वाजः भरद्वाजसूनुः सुकेशा पप्रच्छ प्रश्नं चकार । एतत् प्रश्नोपक्रमे निजाल्पज्ञतां प्रदर्शयति—भगवन् ! यं प्रश्नमहं करोमि तं केवलजिज्ञासार्थं एतद्विषये ममाल्पज्ञता अन्येषामपि समक्षे स्पष्टा, अहं च निरूत्तरोऽभवम् । कदा स्वघटनां कथयति–कोसल्यः कोसलजनपदीयः हिरण्यनाभो नाम राजपुत्रः, राजसुतत्वेऽपि विचित्रजिज्ञास इति भावः । मां सुकेशानम् उपेत्य समीपमागत्य एवं प्रश्नं मया प्रक्ष्यमाणं अपृच्छत् पृष्ठवान्—भारद्वाज ! गुरु गौरवात् मुख्याभिधानमनुच्चार्य, त्वं षोडशकलं पुरूषं वेत्थ जानासि ? तं कुमारम् अल्पवयस्कमहमब्रुवम्—इमं ते कृतं प्रश्नमहं न वेद्मि न जानामि, यदि अहमवेदिषं ज्ञातवान् भवेयम् अत्र लिङर्थे लुङ्, ते तुभ्यम् कथं न अवक्ष्यम् अब्रूयाम् नहि । स्वकीयमृजुत्वं प्रदर्शयति—एष जनः समूलः परिशुष्यति नष्टो भवति, यः साधनसम्बन्धे अनृतम् असत्यमभिवदति तस्मात् अनृतं वक्तुमसत्यं भाषितुं नार्हामि न क्षमे, अतस्त्वां न वञ्चयामि । इति मयि सत्यमुक्तवति तूष्णीं मौनीभूय हिरण्यनाभः रथमारूह्य प्रवव्राज परावृत्तः यद्वा प्रवव्राज प्रव्राट् त्यक्तगृहो महात्मा बभूव । तमेव प्रश्नं त्वां पिप्पलादं पृच्छामि अयं षोडशंकलः पुरूषः कुत्र तिष्ठति ? इति ।

प्रश्नं समाधातुमुपक्रमते–

तस्मै स हो वाच । इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरूषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ।।२।।

तस्मे सुकेशिने स पिप्पलादः उवाच—यस्मिन् पुरुषे एताः कलाः प्रभवन्ति स अन्तःशरीरे शरीरमध्ये हृद्देशे तिष्ठति ।

उपपत्तिमाह–

स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ।।३।।

सः पुरूषः ईक्षाञ्चक्रे जिज्ञासया निरीक्षणं चकार यत्—कस्मिन् शक्तिविशेषे उत्क्रान्ते शरीरं त्यक्ते, अहं पुरूषः उत्क्रान्तो भविष्यामि कृतोत्क्रमणो भविष्यामि, कस्मिंश्च प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठां गते प्रतिष्ठास्यामि प्रतिष्ठां प्राप्स्यामि । अत्र प्रतिष्ठा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दादाचारे क्विप् प्रत्ययस्ततो धातुत्वात् लृट् लकारे रूपं, तथा च प्रतिठामाचरति इति प्रतिष्ठति तथा भूतो भविष्यामि इति प्रतिष्ठास्यामि । शुद्धधातोस्तु प्रपूर्वकात् प्रतिष्ठास्यै इति स्यात्, अर्थश्च उत्तमपुरुषैकवचनकर्तृकभविष्यत्कालावच्छिन्नपूर्व देशावधिकपरदेशसंयोगानुकूलव्यापाररूपः स्यात् । एवं कस्याधीनं मदुत्क्रमणं किमाधीना च मे प्रतिष्ठेति जिज्ञासा ।श्रीः।

षोडशकलपुरुषरचनाप्रकारमाह—

स प्राणमसृजत् प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनः ।

अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च ।।४।।

अनन्तरमीक्षणशक्त्या स परमेश्वरः प्राणं प्राणन्ति जनाः येन तथाभूतं सर्वप्राणाधारं, हिरण्यगर्भं ब्रह्मणमसृजत् व्यरीरचत् । तस्मात् श्रद्धां कर्मफलधारिणीं शक्तिम्, अनन्तरं सर्वकारणभूतानि पंचमहाभूतानि, पुनः उपभोगसाधनानि दशेन्द्रियाणि, मनः अनन्तरं भोजनार्थमन्नं, पश्चाद् वीर्यं, पश्चात् तपोमन्त्राः, अनन्तरं लोकाः चतुर्दश तेषु नाम तत्तदभिधानमसृजत् । श्रीः ।

अधुना पुरूषे षोडशकलानां विश्रामं समुद्रेण दृष्टान्तयति—

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यन्ते । एव मेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरूषायणाः पुरूषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ।।५।।

नदीसमुद्रदृष्टान्तेनाह–यथा इमाः स्यन्दमानाः सलिलं स्रवन्तो नद्यः, समुद्रः अयनं गन्तव्यस्थानं यासां तथाभूताः समुद्रं सागरं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति विश्राम्यन्ति तासां गंगादिनाम धवलादिरूपं च भिद्येते, ता अपि सागरसङ्गमे समुद्र इत्येव प्रोच्यन्ते कथ्यन्ते, वस्तुतः न सन्ति समुद्रः, तथैव इमाः समनस्कदशेन्द्रियपञ्चभूतनाम्न्यः कलाः पुरुषायणाः पुरूष एव अयनं लक्ष्यं यासां ताः, पुरुषं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति विलीयन्ते, तासां नामरूपे अभिधानाकृती भिद्येते भिन्ने भवतः पुरुष इत्युच्यन्ते कथ्यन्ते । एवं स पुरुषः अकलः कलारहितः, अमृतः भवति तदेष श्लोकः । श्रीः।

इममेवार्थं स्पष्टयति—

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः । तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रथनाभौ स्यन्दननाभौ, अरा: उपकरणविशेषा: इव यस्मिन् भगवति प्रतिष्ठिता:, तं वेद्यं वेदनीयं पुरुषं परमात्ममानं वेद जानीत यथा भूय: मृत्यु: मरणं, व: युष्मान्, मा परिव्यथा मा कष्टं ददातु । इति शब्दोऽयं समाप्तिसूचक: ।। श्री: ।।

अधुना सकलप्रश्नोपसंहारं सूचयति—

तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद । नात: परमस्तीति ।।७।।

तान् सुकेशसत्यकामसौर्यायण्याश्वलायनवैदर्भिकबन्धिन: स उवाच—अहं पिप्पलाद: एतद् ब्रह्म परमेश्वरं एतावन्मात्रायामेव सामग्र्येण न जानामि, यतो हि तद् अनिवर्चनीयम्, कियत् जानाति भवान् इत्यत् आह—अत: अस्मात्, परं श्रेष्ठं परायणं गन्तव्यं वा अन्यत् किमपि नास्ति इति ग्रन्थसमाप्तिसूचक: ।

उपदेशानन्तरं जिज्ञासव: षड्ऋषिकुमारा: कृतज्ञतां प्रकाशयन्ति–

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि न: पिता योऽस्माकमविद्याया: परं पारं तारयसीति । नम: परमऋषिभ्यो नम: परमऋषिभ्य: ।।८।।

ते सुकेशादय: तं पिप्पलादम् चर्ययन्त: पूजयन्त: अब्रुवन् इति शेष:, हि निश्चयेन, अस्माकं षड्जिज्ञासूनां त्वं पिप्पलाद:, पिता पात्रत्वात् पातीति पिता इति व्युत्पत्ते: विद्या दायकत्वाच्च पिता । तथा च पञ्चपितरौ नीतौ प्रसिद्धा:—

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रपच्छति ।
अन्नदाता भयात्त्राता पंचैते पितर: स्मृता: ।।

य: भवान्, न अस्मान् अविद्याया: सरित: परम्पारं तारयसि, गमयसि वर्तमानसामीप्याद् वर्तमाननिर्देश:, प्रकृतिभावं प्राप्ता: शरीरजीवसन्धिविवर्जिताश्च विकल्पशून्यत्वात् च विकल्पविधिपरिहारप्रयोगपुरस्सरं नमस्कुर्वन्ति । नम: परम ऋषिभ्य: नम: परममन्त्र द्रष्टृभ्य:, नम: परमऋषिभ्य: नम: पूज्यमन्त्रदृश्वभ्य: ।

षट् प्रश्नानामुत्तरं ह्युतरस्यां मीमांसायां वर्णनीयं श्रुतीनाम् ।
कन्दस्यामं लोकनेत्राभिरामं सीतारामं ब्रह्म रामं नतोऽस्मि ।।
कदायावदहं नाथ त्वत्पदाम्भोजगन्धत: ।
दूरो रोत्स्यामि सीतेश प्रश्नमुत्तरयस्व मे ।

।। इति षष्ठ: प्रश्न: ।।

इति श्री चित्रकूटनिवासिसर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यमहाराजकृतौ प्रश्नोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।।श्री राघवो: शन्तनोतु।।



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्री राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमद्रामानन्दाचार्यो विजयतेतराम् ।।

अथ मुण्डकोपनिषदि

श्री राघवकृपाभाष्यम्

मंगलाचरणम्–

रामस्तालतमालवैभववपुः कोदण्डदीक्षागुरु–
र्विभ्रच्चारुशरालयो करतले शार्ङ्गं शितान् सायकान् ।
लङ्कालङ्करणप्रवेपनपटुः कीनाशलोलानलौ, ।
निघ्नन्रावणमुण्डकानि भगवान् देया दहं मुण्डकम् ।।१।।

मुण्डमालपरितोषकामयया, मुण्डकानि दशवक्त्ररक्षसः ।
अर्पयन्विशिखपातितान्ययं, मुण्डकोपनिषदर्थराघवः ।।२।।

इमाः किंवा ताराः नहि खररिपोर्भूषणमिदं,
किमेषा वैशम्पा नहि रघुपतेः पीतवसनम् ।
असौ किं राकेशो नहि नहि हरेराननमिदं,
किमेषः पाथोदो नहि धरणिजावल्लभवपुः ।।३।।

साकारञ्च निराकारं नीराकारं नराकृतिम् ।
श्रीराममक्षराकारं मुण्डकार्थमुपास्महे ।।४।।

लीलालीनामाङ्गणे शीरकेतोः शम्पाशोभां रामनेत्रैकलोभाम् ।
आचार्यां स्वां मातरं धारणेयीं सीतामीडे ब्रह्मविद्यास्वरूपाम् ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामानन्दपदाम्भोजपरागं रागतो भजे ।
यस्यानुरागमाध्वीकां पीयन्ते ब्रह्मवादिनः ।।६।।

मन्महे तुलसीदासमानसं मानसोपमम् ।
क्षमन्तेऽद्यापि नो धीराः प्राप्तुं यस्य मरालताम् ।।७।।

प्रस्तावभाष्यम्

अथ श्रीसीतारामरमणीयराजीवचरणसमर्चनचिकीर्षया परिकलित-शास्त्रार्थनिर्मलपरिमलसन्निहितपार्वतीपतिपूज्यपुराणपुरुषोत्तममैथिलीमनोरम रघूत्तमपदपाथोरुहप्रेमपरागरसवशीकृतभगवद्भक्तभृंगगणगुम्फितगुच्छस्वच्छवाक्प्रसूनैरथर्व वेदशौनकीयशाखान्तर्गतमुण्डकोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यम् निरस्तपाषण्डवादलास्यं श्रीमद्वैष्णवसिद्धान्तभासुरमभङ्गुरं भाषे। मुण्डकोपनिषदियं वैदिकासिद्धान्तमुण्डीभूतमन्त्राणां संग्रहभूता, तथा च मुण्डानां श्रुतिशिरसां मंत्राणां समूहः मुण्डकम् असंख्ययात्वेऽपि बाहुलकात्, कन् । एवमत्र त्रीणि मुण्डकानि, प्रत्येकमुण्डकं खण्डद्वयम् । यद्वा मुण्डेभ्यः श्रुतिशिरोभूतमंत्रेभ्यः भगवदन्तरंगमहिमाप्रतिपादनतया कं सुखं यस्मिन् तन्मुण्डकम्। यद्वा मुण्डं परमतार्त्यतया श्रुतीनां मस्तकीभूतं मन्त्रनिकरं ज्ञानकाण्डीयम्, तदिह निजमहिमवर्णनेन भगवताऽपि समनुकम्पितमिति मुण्डकम्, तेषां भगवदनुकम्पापूर्णमन्त्रजातानामुपनिषत्–उप समीपतः निषादयति कामक्रोधाद्यवसादयति या सा उपनिषत्। यद्वा उप समीपं निजपतिपद पाथोजसुरभितशिरं विप्रयुक्तं प्रत्यञ्चमात्मानं निषादयति भगवच्चरणारविन्दं संन्निधापपति या सा उपनिषत् । फलितार्थस्तु—यथा काचित् वल्लभा प्रणयनम्रशिरसा पतिं प्रणमति तथैव भगवद्वल्लभाःश्रुतयः निजपरमतात्पर्यभूतं परमेश्वरं पतितपावनं पतिं मुण्डकैः अनुकम्पितशिरोभिः नमन्त्यस्तं तमालनीलं श्रुतिमहितललितलीलं श्री रामाभिधं ब्रह्मोपनिषण्णाः, मुण्डकैः उपनिषीदन्ति श्रुतयः यस्यां सा मुण्डकोपनिषत्।

तत् प्रथममुण्डकस्य प्रथम शकलोऽविकलो ब्रह्मविद्यास्तुतये प्रवृतः । अथ का नाम ब्रह्मविद्येतिंचेत्—ब्रह्मणः विद्या ब्रह्मविद्या षष्ठीतत्पुरूषसमासः प्राप्यप्रापकभावसम्बन्धः । विद्या हि प्रापिका ब्रह्मप्राप्यम् यद्वा ब्रह्म प्रापिका विद्या ब्रह्मविद्या मध्यमपदलोपसमासः । विद्यायां प्रापकत्वं किन्निमित्तं, किं कर्म निमित्तमुताहो ज्ञानकरणकम्, यद्वा भक्तिमाध्यमम् ? इति चेदुच्यते नहि तावत् कर्मणा, तेन हि संसारबन्धनजननापत्तेः नवा केवलेन ज्ञानेन तद् वर्त्मनः कृपाणधारयमाणत्वात्—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गमपथस्तत् कवयो वदन्ति । इति श्रुतेः ।

सम्पद्यमानस्यापि तस्य आवरणभंग एव कृतकार्यत्वदर्शनात् । नहि खलु भग्नेऽप्यावरणे द्रष्टा मनस्चक्षुःसंयोगमन्तरेण साक्षात्कारे फलवान् भवति । अतएव न केवलेन वा ज्ञानेन परब्रह्म शक्य इति ब्रूमः । **नायमात्माप्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेना** इति निषेधश्रवणाच्च । अथ कथं तत् प्राप्तुं शक्यते ? इति चेत् तत्रैव द्रष्टव्यम् । **यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः** । इति श्रुतिः । अत्रैतत् पदार्थः परमात्मा, यत् पदार्थः साधकः ।

अथ किमाधारः सन् जीवात्मानं वृणुते ? इति जिज्ञासायां मौनमास्ते श्रुतिः । तस्यास्तात्पर्यमेतत् यत् परमस्वतन्त्रस्य भगवतो लीलां को जानीयात् , किन्तु पूर्वत्र **धातुः प्रसादात्** परमेश्वरस्य कृपारुपः । स च दैन्यानुरोधी तस्माच्छ्रुत्यन्तरप्रमाणेन भक्तिरेवैनं गमयतीत्यादिना भक्तिमेव परमात्मप्राप्तौ साक्षाद्धेतुमिति निश्चिन्मः । अथ तर्हि परमात्मप्राप्तावनुपयोगान्मोघारम्भत्वाच्च ज्ञानस्य निरर्थकमिदं ज्ञानकाण्डम् ? मैवम्, मैवम् । ज्ञानं हि जीवस्याज्ञानावरणं भिनत्ति, अत आवरणभंगे तदुपयोगादावश्यकमेव तत् । तस्मिन् मायावरणभंगे भगवत्प्रीतौ प्ररूढायां प्रीतौ च भक्तिद्रढिमा तथैव च सामग्र्येण भगवति ज्ञाते प्रेमाभक्तिरुदेतीति विचारः । तथा च स्मर्यते—

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।।

(गीता—१८/५५)

अथ ज्ञानेन सह कर्मणाः समुच्चयो न वा ? अस्तीति ब्रूमः । यत्तु तत्र तत्र कर्मनिन्दनपराणि श्रुतिवाक्यानि यथा—

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् नहि ध्रुवं ह्यध्रुवैः प्राप्यते । प्लवा एते अदृढा यज्ञरूपाः । इत्यादीनि, तेषामयमभिप्रो यत् नहि निन्दा निद्यं निन्दितुं प्रभवति अपि तु विधेयं स्तोतुम् ।

तस्मात् इमानि वचनानि विधेयभूतब्रह्मज्ञानस्तुतिपरतयैव नेयानि न तु कर्मनिन्दापरतया, अन्यथा तेष्वश्रद्धा जागरेण तत्राप्रवृत्यापत्तौ श्रुत्यप्रमाणापत्तेः । यत्तु तमःप्रकाशयोरिव ज्ञानकर्मणोरसामञ्जस्यमुक्तं तदपि नादरणीयम् ।

नियतस्य हि संन्यासो कर्मणो नोपपद्यते ।।

(गीता १८/७)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।।

इत्यादि वदतो भगवतो वचनानां विरूद्धत्वात् । तमेव ब्राह्मणाः विविदिषन्ति । **वेदानुवचनेन तपसा नाशेन** इति श्रुतिवचनस्यापि विरोधात् । अत्र तु श्रुतिः ब्रह्मविविदिषायां वेदानुवचनं, व्रतं, तपः, अनाशकमित्यादि कर्मजातं, कारणमााह—नह्यन्तरेण श्रुतिविहितकर्माणि फलभोग्यवैराग्यमुपजायते, विषयसुखवैराग्यमन्तरेण कुतो ब्रह्मजिज्ञासा, नहि निम्बकीटो हि शर्करां रिरसैषते ।

अतः प्राहुरस्मत्प्रातस्मरणीयचरणकमलाः गोस्वामिपादाः श्री मानसे—

प्रथमहि विप्रचरण अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति नीती ।।
यहि कर फल पुनि विषय बिरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ।।

(मानस ३/१६/६-७)

एवं श्रुतिविहितकर्माणि निर्मलीकुर्वन्ति चित्तम् , नहि चेतसो नैर्मल्यमन्तरेण भगवतः साक्षात्कारः सम्भवः । वस्तुतस्तु परमेश्वरप्राप्तौ कर्मज्ञाने द्वे अपि मार्गौ । मार्गेण लक्ष्यं प्राप्यते यदि कोऽपि मूढो मार्ग एव विश्राम्यतु तदा तु तल्लक्ष्यं दूरमेव तथैव संगस्तूभयोरपि निन्द्यः कर्मणो ज्ञानस्यापि । कर्मसंगेन हि बध्नाति रजोगुणः जीवम् ।

तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ।

(गीता–१४/७)

एवं ज्ञानस्यापि संगः जीवात्मानं बध्नात्येव । यथा—

सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ।

(गीता–१४/६)

अत उभयोरपि संगमूलकबन्धकत्वरूपसमानधर्मेण अस्त्येव समुच्चयः । भक्तिसंगस्तु विहितभवभयभंगसंसृतशंकरजटारंगगांगतरलतरंग इव सुसन्निधिं प्राप्तं जीवमिच्छन्त-मनिच्छन्तं वा सागरमिव सकलसुखसागरं परमात्मानं प्रयत्येव । नहि गंगा प्रवाह-पतितपान्थमनोभावं पृच्छति । तस्मात् ज्ञानेन सह कर्मणः सुतरां समुच्चयः ।

वस्तुतस्तु इमे द्वे अपि निष्ठे कर्मयोगज्ञानयोगसंज्ञक एव तथोक्तं भगवता—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन साख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।

(गीता–३/३)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं संगरहिते कर्मज्ञाने समुचिते एव । ज्ञाने प्राप्तेऽपि जीवन्मुक्तः नहि शारीरं कर्म जहाति—

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।।

(गीता १८/११)

एवमेव—

त्रैगुण्यविषया वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।।

(गीता–२/४५)

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।

(गीता–२/४६)

इत्यादावुत्थापितवेदनिन्दकत्वशङ्कापङ्कोऽपि प्रक्षालितः । अत्रापि निस्त्रैगुण्यरूपविधेयस्तुतिः न तु वेदनिन्दा । इत्थं कर्मज्ञानसमुच्चयनिषेधं कुर्वतां प्रच्छन्नबौद्धानां सन्निपातजल्पितमिव समुपेक्ष्यं श्रुतिविरूद्धप्रलपितम् ।

वयं तु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यचरणसरोजमधुव्रताः भगवत्प्राप्तिप्रतिबन्धकपापविनाशाय यथाशक्ति करणीयानि श्रुतिविहितकर्माणि निष्कामभावेन भगवन्तं स्मरता, एवं भगवद्दर्शनविक्षेपनिरासाय समनुष्ठेयान्युपासनान्यपि । तथा च अज्ञानरूपावरणभङ्गाय ज्ञानमप्यनुसरणीयम् । नहि मलविक्षेपाभावमन्तरेण कोऽपि भग्नावरणो भवति, नहि प्रथमद्वितीयसोपानारोहणं विना केनापि तृतीयमरोढुं शक्यम् । न च सनकादयस्तु जन्मप्रभृत्येव ज्ञाननिष्ठाः शुकाचार्योऽपि तथा ? इति चेत् न वयं शुकसनकादय इव भगवदवताराः । अतस्ते नानुकर्त्तुं शक्याः । नहि कोऽपि रुद्रभिन्नो हालाहलं पीत्वा जीवितुं प्रभवति । तथोक्तं भागवते—

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत् सो वचो युक्तं बुद्धिमान्तत्समाचरेत् ।।

(भागवत–१०/३३/३१)

तस्मात् परमात्मज्ञानेऽपि करणीयमेव कर्मेति विरम्यते । यदपि वारम्वारमुक्तं यद् ब्रह्मविद्यायां तुरीयाश्रमिणामेवाधिकारः तदप्यसंगमत् । गृहस्थानां हि वसिष्ठादीनां जनकादीनाञ्च ब्रह्मविज्ञानानापत्तेः शुकसनकादीनामपि परमज्ञानशिखामणीनां तथात्वानापत्तेः । यदप्यसकृत् संन्यासिनामेव ब्रह्मविद्याधिकार उक्तः तदप्यशोभनम् । याज्ञवल्क्यादीनां तथात्वाभावे गार्ग्यादीनाञ्च योषित्त्वे बृहदारण्यकस्यैव प्रामाण्यानापत्तेः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्रैव प्रथमे मन्त्रे महागृहस्थस्य ब्रह्मणो ब्रह्मविद्याप्रवर्तकत्वाभिधानात् । न खलु ब्रह्मा सन्यासी न वा तत्पुत्रोऽथर्वा । तस्मादिदं दुराग्रहग्रहिलव्याख्यानम् ।

अथ शान्तिपाठः

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

शान्ति पाठोऽयं व्याख्यातचरः प्रश्नोपनिषदि ।

प्रथममुण्डके प्रथमखण्डः

अथ ब्रह्मविद्या सम्प्रदायमाह—

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।।१।।

ॐ इति परमेश्वरस्मरणरूपं मंगलाचरणम् । देवानां सुराणां मध्ये प्रथमः । ज्ञानवयोभ्यां ज्येष्ठः आद्यश्च, सम्बभूव भगवतो विष्णोर्नाभिकमलात् स्वयमेवाविर्बभूवेति भावः । स एव हिरण्यगर्भः **हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे** इति श्रुतेः । भूत्वा किञ्चकार इत्यत् आह—सः विश्वस्य समस्तप्राणिजातस्य कर्त्ता रचयिता बभूव, भगवतः रचितस्य भुवनस्य चतुर्दशसंख्यान्वितस्य गोप्ता रक्षकश्च बभूव । एवं मरीच्यादि महर्षीन् रचयित्वा तेषु ज्ञानतः ज्येष्ठाय अथर्वाख्याय पुत्राय निजसंकल्पसृष्टाय, सर्वविद्याप्रतिष्ठां सर्वाश्च ताः विद्याश्च इति सर्वविद्या व्याकणादयः तासां प्रतिष्ठामाधारभूतां यद्वा सर्वविद्यानां प्रतिष्ठा सम्मानं यस्याः हेतोः सा सर्वविद्याप्रतिष्ठा तां सर्वविद्याप्रतिष्ठां सर्वविद्यासम्मान-जननीमिति भावः । ब्रह्मविद्यां ब्रह्मप्रापकविद्यां वेदान्तनाम्नीं, प्राह समुपादिशत् ।।श्रीः।।

ततः ब्रह्मविद्याप्रवर्तकाचार्यपरम्परां वदति—

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ।।२।।

अत्र मन्त्रे अथर्वतः परवर्तिनां त्रयाणामाचार्यणां नामानि कीर्तयति । ब्रह्मा यामाध्यात्म-विद्यामथर्वणे ज्येष्ठपुत्राय प्रवदेत । **व्यत्ययोबहुलम्** अत्र पा०अ० ३/१/५८ इत्यनेन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लङर्थे लिङ् आत्मनेपदप्रत्ययश्च, एवं प्रवदेत इत्यस्य प्रावदत् इत्यर्थः। पुरा सृष्ट्यारम्भ एव, तां ब्रह्मविद्यां ब्रह्मणा प्रोक्तां विद्याम्, अङ्गिरे अङ्गिरभिधानाय ऋषये अथर्वा उवाच। स अंगिः भारद्वाजाय भरद्वाजस्य अपत्यं पुमान् इति भारद्वाजः, तस्मै भारद्वाजाय भरद्वाजसूनवे, सत्यवहाय एतन्नाम्ने प्राह, भारद्वाजः अङ्गिरसे ब्रह्मणस्तृतीय पुत्राय अङ्गिरोनाम्ने। कां प्राह ? अतो विशिनष्टि ब्रह्मविद्याम्, परावराम् परं सगुणं ब्रह्म अवरं निर्गुणं ब्रह्म च प्रतिपाद्यतया स्तो यस्यां सा परावरा तां परावराम्, यद्वा परं ब्रह्म विधेयत्वेन अवरं तद्व्यतिरिक्तं जगप्रपञ्चम् निषिद्धत्वेन प्रतिपादितं यस्यां सा परावरा तां परावराम् ।।श्रीः।।

अथ शौनकप्रश्नं संकेतयति—

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः प्रपच्छ।

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ।।३।।

अधुना प्रश्नप्रकारं प्राह-ह वै इति निश्चयार्थौ निपातौ प्रसिद्ध्यर्थौ वा, प्रसिद्धमेतत् यत्—महाशालः यद्यपि महाशाल शब्दस्य पूर्वव्याख्याकारः महागृहस्थ इत्यर्थमाहुः वयं तु शब्दप्रमाणकाः अतो व्युत्पत्तिं दर्शयामः एवम्—महती विशाला शाला निवासभवनं यस्य स महाशालः शालायां हि महत्वं गृहस्थस्य महत्वम्, यद्वा महत्यश्च ताः आशाश्च इति महाशाः ताः लाति आनयतीति महाशालः अनेकाशायुक्त इति भावः। आशाबन्धोनाम गृहस्थाश्रमः, स निरन्तरं पुत्रकलत्रपौत्रधनधान्यसम्मानप्रतिष्ठाद्याशाशतेन बद्धस्य स्वान्तं शान्तिं नानुभवति तस्मान्महाशालशब्दः महागृहस्थार्थकः। एवं सन् दुराशाबन्धादुपरतः, अङ्गिरसं सत्यवहशिष्यम् विधिवत् समित्पाणिः सन् उपसन्नः बहुमानपुरस्सरं समुपेतः, पप्रच्छ पृष्टवान्। गीप्साञ्चकार इति भावः। भगवः हे भगवन्! नो निश्चयेन, कास्मिन् तत्त्वविशेषे, विज्ञाते विज्ञानविषयीकृते, इदं प्रत्यक्षात्मकं, सर्वं सकलं प्रपञ्चम्, विज्ञातं भवति साधकेनेति शेषः। आशयोऽयम्—न हि क्षोदीयान् जीवः समस्तेन स्वजीवनकालेनापि सम्पूर्णचराचरं विज्ञातुं शक्नोति। अतः कदाचिच्छ्रुतं यदि एकस्य विज्ञानेन सर्वस्व विज्ञानं भवति, यथा मूलसेकेन पत्रसेको जायते। तत् किं विज्ञेयं तत्त्वं कृपया निगदतु भवान् इति प्रश्नाशयः ।।श्रीः।।

अथ प्रश्नस्योत्तरोपक्रमे परापरविद्ययोः उद्देश्यतः कीर्तनं करोति—

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो विदन्ति परा चैवापरा च ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मै शौनकाय ह निश्चयेन सः अङ्गिरा उवाच—इति इत्थं ब्रह्मविदः ब्रह्म विन्दन्ति प्राप्नुवन्ति इति ब्रह्मविदः प्राप्तब्रह्मतत्वाः विदन्ति जानन्ति, स्म दृढत्वे । परा एतन्नाम्नी, अपरा इमे द्वे विद्ये वेदितव्ये ज्ञातव्ये । नन्विदं विपरीतमुत्तरं, शौनकप्रश्नानुसारेण ब्रह्मविज्ञानमेव तेनोत्तरणीयं किन्तु आम्रान्पृष्टः कोविदारानाचष्टे इतिवत् विद्याद्वयं वर्णयति ? नैष दोषः, सोपानारोहणन्यायेन पूर्वं द्वे विद्ये चर्चनीये पश्चादपरां निरस्य पराविद्यायां ज्ञातायामेव ब्रह्मतत्वं ज्ञास्यते तस्मिन्नेव विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भविष्यतीति शाखापत्रन्यायेन शनैः शनैः उत्तरमभियाति ।।श्रीः।।

इदानीमपरां पराञ्च विशिनशिष्ट—

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।।५।।

तत्र परापरयोर्मध्ये अपरा विद्या ब्रह्मातिरिक्तविषया दशविधा ऋग्वेदः ऋचांवेदः, यजुर्वेदः यजुषां यज्ञसम्बन्धिनां वेदः, सामवेदः साम्नाम् उद्गीथादिमन्त्रगीतानां वेदः, अथर्वणः युद्धसम्बन्धिवेदः इति चत्वारो वेदाः, षडङ्गानि - शिक्षा स्वरोच्चारणप्रक्रिया, कल्पः वैदिकमंत्रप्रयोगविचारः, व्याकरणं शब्दसाधुत्वप्रतिपादकशास्त्रं, निरूक्तं वैदिक-शब्दव्युत्पत्यर्थविचारः, छन्दः गायत्र्यादिछन्दोवर्णमात्राविचारः, ज्योतिषं श्रुतिसंकेतितमुहूर्तविचारः इति अपरा विद्या इयमेव दशभेदवती अपरा । अथ अनन्तरं यया विशेषविद्यया, तदक्षरं सर्वव्यापकमधिगम्यते सामीप्येन प्राप्यते सा परा विद्या । अथ वेदचतुष्टयमपराविद्याकक्षौ निवेशितम् , परायाः विद्यायाश्च उपनिषत्प्रतिपादितत्वं तासां वेदचतुष्टये एवान्तरभाव इति विषमोपन्यासः, यदि परात्वेनोपनिषदां संकीर्तनं तदा वेदबहिर्भूतत्वेनावैदिकत्वमूलकाप्रामाण्यापत्तिः वेदान्तर्गतत्वे तास्वपरात्वापत्तिरिति उभयतः पाशारज्जुः उच्यते । तत्र वेद शब्देन ज्ञानकाण्डव्यतिरिक्तवेदराशिः गृहीतव्यः । ज्ञानकाण्डीयस्य तु परात्वेन विवक्षणात् विशेषविहितत्वेन ब्राह्मणवशिष्ठन्यायानुसारं वैदिकत्वेऽपि पृथगुपादानं वैशिष्ट्यञ्च सूचनायेति विरम्यते ।।श्रीः।।

अथ कीदृशं तदक्षरमित्यपेक्षायामाह—

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् ।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ।।६।।

तदक्षरं कीदृशमतो निरूपयति–यत्तत्छब्दोऽयं ब्रह्मणोऽनिर्वचनीयत्वपरः अद्रेश्यं न द्रुष्टुं शक्यम्, अतएव अग्राह्यम् अन्यज्ञानेन्द्रियैरिति शेषः, अगोत्रम्, नास्ति गोत्रं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यस्य तत् सर्वेषामुत्पादकत्वात् गोत्ररहितम्, अवर्णम् नास्ति वर्णविशेषो यस्य तत् अस्मदादिवत्वर्णरहितम् यद्वा अनुपमः वर्णः श्यामवर्णः यस्य तथाभूतं, न विद्यमाने चक्षुश्श्रोत्रे यस्मिन् तत् अचक्षुःश्रोत्रं ज्ञानेन्द्रियातीतं तत्, यद्वा अनुपमे चक्षुश्श्रोत्रे यस्य तत्, अपाणिपादं नास्ति पाणिपादं यस्य तादृशं कर्मेन्द्रियातीतम् अथवा अनेकानि पाणिपादानि यस्य तत्, एवमचक्षुरित्यत्रापि व्याख्यातव्यम्, एवं नित्यं ध्वंसरहितं, विभुं विविधः कच्छमत्स्यवाराहादिरूपो भवतीति विभुः तम् , सुसूक्ष्मं सूक्ष्मशरीरतोऽपि सूक्ष्मतरम्, अव्ययम् अनश्वरं, भूतयोनिं समस्तप्राणजनकं धीराः पराविद्योपासकाः परिपश्यन्ति परितो नयनविषयं कुर्वन्तीति भावः । यत्रु दृशेर्ज्ञानार्थत्वमालपन्ति तद् भगवत्पदपद्मविमुखानाम् अलब्धपरमेश्वरसाक्षात्कारसौभाग्याणां नयननैष्फल्य-परिणामभूतम् ॥श्रीः॥

पूर्वमन्त्रे तदव्ययं भूतयोनिमिति प्रोक्तम् , सः परमात्मा भूतानि कथं जनयति ? किं कञ्चित्सहायमपेक्षते उताहो सहायनिरपेक्षम् ? इति जिज्ञासायामाह, यथेत्यादि—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥७॥

अत्र दृष्टान्तत्रयेण सृष्टिकरणे परमात्मनः स्वातन्त्र्यं कथयति–यथा ऊर्णनाभिः लूताकीटः स्वयमेव तन्तून् स्वमुखतः सृजते पश्चात् गृह्णते आदत्ते तथैव अक्षरमिदं जगन्मुखरूपमायातः संसारमिमं रचयति प्रलये स्वयमेव विलापयति । अपरं दृष्टान्तमाह यथेत्यादि, यथा पृथिव्यां भूमौ औषधयः सम्भवन्ति तथैव परमात्मनोऽपि संक्ल्परूपबीजानुसारं तत्तच्छरीराणि प्राप्नुवन्ति । तृतीयं दृष्टान्तमाह—यथा सतः अस्तित्ववतः पुरुषात् विनाशीनि केशलोमानि सम्भवन्ति अर्थात् चेतनात् जडरूपाणि जायन्ते तथैव अक्षरात् क्षरणवर्जितात् परमात्मनः इह अस्मिन् संसारे विश्वं प्राणिजातं सम्भवति । अत्र प्रथमदृष्टान्तेन तस्माज्जातत्वे सति तत्रैव लय उक्तः । द्वितीयदृष्टान्तेन कर्मफलानुसारशरीरसम्भव उक्तः । तृतीय दृष्टान्तेन नित्यादनित्योत्पत्तिरुक्ता । अत्रैव ब्रह्मणो जगदभिन्ननिमित्तोपादानत्वमुक्तम् । पुनरपि तं प्रसङ्गमेवं चर्चयति—

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥८॥

तपसा, सङ्कल्पेन तपः शब्दोऽत्र सङ्कल्पवाची **एकोऽहं बहु स्यां प्रजायै** इत्याकारकेण । चीयते, चयनविषयः क्रियते ब्रह्म परमेश्वरः, ततः अन्नम् अदनीयं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिरण्यगर्भः यद्वा अत्ति इति अत् तं नयति स्वकीयहृदये स्थापयति इत्यन्नं तपः तस्मदभिजायते नाभिकमलादभिव्यक्तो भवति, तस्मात्प्राणः संजीवनशक्तिः, तस्मान्मनः सङ्कल्पात्मकं, तस्मात् सत्यं ब्रह्मलोकः, तस्मांल्लोकाः, भूर्लोकादयः तेभ्यः कर्मविहितं निषिद्धं च तेभ्यः अमृतं कर्मफलम् ।

अथ प्रकरणमुपसंहरन्नाह, यः इत्यादि—

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ।।९।।

यः सर्वज्ञः सर्वं जानाति तथाभूतः स सर्ववित् विशेषरूपेण सर्वेषां शुभाशुभं वेत्ति स सर्ववित् यद्वा सर्वाणि प्राप्तव्यानि विन्दति लभते सर्वेषु चिदचिदात्मकेषु विशिष्टाद्वैतं सद् विद्यते इति सर्ववित् । अथवा सर्वान् विङ्क्ते इति सर्ववित् । कथमिदमित्यत आह—यस्य, परमात्मनः तपः सङ्कल्पः ज्ञानमयं ज्ञानरूपं विज्ञावैव सर्वाणि जीवानां शुभाशुभानि रचयतीति भावः, तस्मादेव, परमेश्वरात् एतद् दृश्यमानम् कालेनादनीयं नामरूपं नामरूपात्मकं यद्वा नाम्नैव रूप्यते बोध्यते इति नामरूपं ब्रह्म, हिरण्यगर्भाख्यं जायते प्रादुर्भवति ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमखण्डः ।।

।।श्री राघवोः शन्तनोतु।।

।। द्वितीयखण्डः ।।

अधुना प्रवृत्तिनिवृत्तिप्रपत्तिभेदत्रितयधर्मभाजां श्रुतिः सामान्य मुपदेशमाह-

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि । तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ।।१।।

यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्त्वादिहत्यस्तच्छब्दः पूर्वशकलचरममन्त्रोक्तयच्छब्दं परामृशयति । सर्वज्ञात् सर्वविदः परब्रह्मणः सकाशात् अभिन्ननिमित्तोपादानात् यन्नामरूपात्मकं जगत् यच्च भोग्यमन्नं अजायत, तदेवैतत् विदचिदात्मकं जगत् सत्यं मिथ्यात्ववर्जितम् । एवं सत्यस्य जीवजगतः करणीयत्वेन विहितानि तानि यज्ञरूपाणि त्रेतायां कर्मप्रधाने युगे अनेकधा सन्ततानि, तानि स्व-स्ववर्णानुसारं नियतानि विधेतया निश्चितानि आचरथ आदरेण अनुतिष्ठत । आचरथ इति **व्यत्ययात्** विधिमूलक लोडर्थे लट् लिङर्थे वा । यतो हि वः युष्माकं कृते लोके संसारे सुकृतस्य सत्कर्मणः एष एव पन्थाः अयमेव मार्गः ।।श्रीः।।

अथ त्रेतायुगस्य धर्मस्वरूपां कर्मकाण्डप्रक्रियां वेदान्तस्य पूर्वपक्षभूतां मीमांसामयीं वर्णयति पञ्चभिर्मन्त्रैः —

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ।।२।।

यस्मिन् समये इन्धनैरिद्ध्यमाने अग्नौ अर्चिः ज्वाला लेलायते खेलेत् चञ्चलितं भवेत् । तदैव आज्यभागौ आज्यं घृतं तस्य भागौ अंशौ अन्तरेण त्यक्त्वा इह **अन्तरान्तरेण युक्ते** पा०अ० २-३-४, इत्यनेन द्वितीया । घृतभागयोर्मध्ये आहुतीर्निक्षिपेत्, अनेकदेवतोद्देश्यतया प्राशस्त्याद् वा बहुवचनम् । लेलधातुश्चलनार्थश्छान्दसः । 'व्यत्यात् लिङर्थे लट् ।।श्रीः।।

अथाग्निहोत्रे पूर्वभावनां दर्शादीनामानिवार्यतां वर्णयति—

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च ।
अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ।।३।।

दर्शञ्च पौर्णमासञ्च चातुर्मास्यमथापि वा ।
आतिथेयं तथा वैश्वदेवहोमविधानकम् ।।
त्यक्त्वैव संविधीयेत शास्त्रमात्राविवर्तिना ।
आसप्तान् तस्य लोकान् वै अग्निहोत्रं विनाशयेत् ।।

साम्प्रतं लेलायमानायाः अग्निज्वालायाः जिह्वारूपिणीः सप्तावस्थाः वर्णयति —

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गनी विश्वरूची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ।।४।।

मनोवत् जवः वेगः यस्याः सा मनोजवा शेष सुगमम् ।।श्रीः।।

अथ सम्यगाहुतिददानस्य फलं वर्णयति —

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् ।
तं नयन्त्येता सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ।।५।।

एवं भूतेषु भ्राजमानेषु शोभमानेषु यः आहुतीः निक्षिपति, तम् आजुह्वतम् आहुतयः अभिसूर्यरश्मिदेवाः भगवत्परिकराः नमन्ति ।।श्रीः।।

पुनः फलमग्रे वर्णयति —

एह्योहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति ।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यः सम्यगाहुतिं ददाति तम् एहि-एहि आगच्छ आगच्छ इति कथयन्त्य आहुतयः यजमानमाहवयन्ति । ब्रह्मलोकं च नयन्ति । एवमग्निहोत्री ब्रह्मलोकाधिकारी भवतीति हार्दम् ।।श्रीः।।

एवं मन्त्रपञ्चकवर्णितकर्मकाण्डे अनाशक्तिमुत्पादयितुमुत्तरमीमांसा प्रकरणमारभ्यते —

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ।।७।।

हि शब्दः अरूचिबोधकः यत्र षोडशऋत्विजः यजमानस्तत्पत्नी चेति अष्टादशजनैः कर्म निर्वर्त्यते, तच्च ज्ञानरहितं सत् नितरामवरं निन्द्यम् । तादृक्कर्मसमन्विताः यज्ञा रूपाणि येषां ते यज्ञरूपाः अदृढाः क्षणभङ्गुराः प्लवाः संसारसिन्धुतरणाय गृहीताः पोताः, ये सामान्यैरपि तरङ्गैः भवसागरे मग्ना भवेयुः । दृढप्लवस्तु भगवच्चरणारविन्दरूपः भगवत्तत्वज्ञानाख्यो वा प्लवः । यथोक्तं श्रीगीताभागवतमानेषु —

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सतर्व्यिसि ।

(गीता ४/३६)

प्रषतपालभवाब्धिपोतम्

(भागवत ११-५-३५)

यत्पादप्लवमेक मेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्

(मानस १-मंगलाचरण-६)

एवं विधं भवसागरभङ्गुरप्लवरूपं यज्ञमयं कर्म ये मूढाः अभिनन्दन्ति, मीमांसा-वासनया श्रेयोबुद्ध्या समाचरन्ति प्राप्नुवन्ति । तस्मात् कर्ममलभङ्गसाधनतयैवानुष्ठेयं, न तु श्रेयस्तयेति श्रौतं हार्दम् ।।श्रीः।।

भूयोऽपि कर्मासक्तधियो निन्दति श्रुतिः -

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः ।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।८।।

अविद्यायामित्यौपश्लेषिकी सप्तमी । आत्मानमेव धीरं मन्यमानाः अपण्डिता अपि आत्मानं पण्डितं जानन्तः, अविद्यायां-पूर्वोक्तमन्त्रपञ्चकवर्णितकर्मासक्तया पञ्चपर्वाविद्यासमुपश्लिष्टाः अन्तरे संसारसागरमध्ये वर्तमानाः कामक्रोधादिशत्रुभिः जङ्घन्यमानाः पुनः पुनरतिशयेन हन्यमानाः अन्धेन दृष्टिहीनेन नीयमानाः मार्गं गम्यमानाः अन्धा इव, गृहासक्तेन देशिकेन समुपदिश्यमानाः अत एव अन्धाः ज्ञानवैराग्यनेत्रहीनाः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मूढाः मोहमहोदधिमीनायमानाः परियन्ति भूयः संसारवारान्निधौ निमज्जन्ति । अतः श्रोत्रियो ब्रह्मनिष्ठः सद्गुरुः श्रयणीय इति हार्दम् ।।श्रीः।।

संसारसागरपतनहेतुमाह -

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ।।९।।

यत् यतो हि बहुधा बहुभिः प्रकारैः अविद्यायां विद्याविरोधिभावनायां वर्तमाना अज्ञानान्धकारे तिष्ठन्तः, अत एव बालाः अनधिजिगमिषितवेदान्तरहस्याः, वयं कृतार्थाः विहितभगवत्साक्षात्कारोपायाः इति अभिमन्यन्ते अभिमानयुक्ताः भवन्ति । ते कथं ब्रह्म न जिज्ञासन्ते ? इति हेतुं स्पष्टयति । यतोहि ते कर्मिणः कर्मशब्दोऽजन्तः कर्म-कर्मे-कर्माणीति, न तु नान्तः । अतस्तस्माददन्तलक्षण इनिः । कर्मासक्तास्ते कर्मसु रागात् आसक्ति मूलाद्धेतोः न प्रवेदयन्ति नैव ब्रह्म जानन्ति । तेन तस्मादेव हेतोः क्षीणः नष्टाः लोकाः कर्मचिताः स्वर्गादयो येषां ते क्षीणलोकाः च्यवन्ते स्वार्गात् च्युताः भवन्ति ।

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति (गीता ९-२१) इति स्मृतिरपि ।।श्रीः।।

भूयोऽपि कर्मासक्तदशां विगर्हयति —

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।।१०।।

इष्टं श्रौतंकर्म, पूर्तं वापीकूपादिनिर्माणं, इष्टा च पूर्तं च इष्टापूर्तं **अन्येषामपि दृश्यते** पा० अ० ६-३-१३७ इत्यनेन इष्टशब्दघटकस्य ह्रस्वाकारस्य दीर्घः । तमिष्टापूर्तं श्रौतं स्मार्तं कर्म, वरिष्ठम् अतिशयेन वरं मन्यमानाः अत एव प्रमूढाः मीमांसावासनामलिनमनसः एतस्मादन्यत् श्रेयः न वेदयन्त न जानन्ति । तस्मान्नाकस्य पृष्ठे सुकृते अत्र छान्दसी द्वितीयार्था सप्तमी । एवं सुकृते अत्र छान्दसी द्वितीयार्था सप्तमी । एवं सुकृतपरिणामं भुक्त्वा पुनः पुण्यावसाने इमं मर्त्यलोकं, इतोऽपि वा हीनतरं नरकादिकं विशन्ति प्रविशन्ति । इदमेव समनुवदति भगवान् गीतासु -

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापाः यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ।।

(गीता - २०, २१) ।।श्रीः।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ एतद्व्यतिरिक्तपरिव्राजकगतिं स्तौति -

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजा प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरूषो ह्यव्ययात्मा ।।११।।

हि शब्दो विकल्पानुवादकः, हि एतद् व्यतिरिक्ताः ये अरण्ये गृहं त्यक्त्वा वने तपःश्रद्धे सात्विकतपः सात्विकीं श्रद्धां च उपवसन्ति अनुतिष्ठन्तस्तिष्ठन्ति । अत एव शान्ताः शमशीलाः विद्वांसः ब्रह्मविद्वरिष्ठाः भैक्ष्यचर्यां भिक्षुवृत्तिं चरन्ति, भिक्षुवृत्या जीवनं यापयन्ति । ते परमहंसपरिव्राजकाचार्यास्त्रिदण्डिनः विरजाः रजोरहिताः सूर्यद्वारेण सूर्यमण्डलं भित्वा तमेवलोकं प्रयान्ति, यत्र अव्ययात्मा अव्ययः अविनाशी आत्मा देहः यस्य स अव्ययात्मा दिव्यशरीरः पुरुषः पुराणपुरुषोत्तमः श्रीरामः यत्र साकेते विराजते, स एव साकेतलोकः अस्य निवासस्थानं भवति ।।श्रीः।।

अथोसत्तिप्रकारमाह —

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरूमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।१२।।

कृतेन इति सप्तम्यर्थे तृतीया । कृतेन शुभाशुभकर्मनिर्मितेऽस्मिन् संसारे, अकृतः कृतम् अनित्यं तद्भिन्नः अकृतः नित्यः परमात्मा नास्ति न मिलति, न विद्यते । **जगदिदं तस्य शरीरम्** इत्थं कर्मचितान् कर्मनिर्मितान् लोकान परीक्ष्य परितो विभाव्य ब्राह्मणः ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेन ग्राहितजन्मा, निर्वेदम् आयात् संसारसागरतो विरज्येत् । तद् विज्ञानार्थं तस्य ब्रह्मणः विशिष्टाद्वैतरीत्या ज्ञानार्थं स मुमुक्षुः समित्पाणिः समिधं हस्ते गृहीत्वा, श्रोत्रियं ब्राह्माणाद् ब्राह्मण्यां जायमानं यथासमयं संस्कृतं स्वाध्यायमधीयानं समस्तवेदशास्त्रपारगम् एवं विधं गुरूमेव, नान्यमभिगच्छेत् । अत्र एवकारः त्रिः प्रयुक्तः यथाक्रमं अन्य योगायोगात्यन्तायोगान् व्यवच्छिनत्ति । स एव गच्छेत् नान्यः गुरुमेव गच्छेन्नागुरुं, गच्छेदेव न तिष्ठेत् ।।श्रीः।।

अथ वेदान्ताध्यापनप्रकारमाह—

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय ।
येनाक्षरं पुरूषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्वतो ब्रह्मविद्याम् ।।१३।।

स विद्वान् विदितवेदान्तविद्यः, तस्मै उपसन्नाय निजचरणशरणमीयुषे, सम्यक् प्रशान्तचित्ताय प्रशान्तं चित्तं यस्य तथाभूताय, शमेन शान्त्या युक्ताय, एवं भूताय, येन वेदान्तेन सत्यं सद्भ्यो हितम् अक्षरम् अविनाशिनं पुरुषं, अथवा अं विष्णुमपि क्षरति इत्यक्षरं, यद् वा अः विष्णुः क्षीयति निवसति वक्षोऽवच्छेदेन यस्यां तादृशीं वात्सल्यमयीं ब्रह्मविद्यां तत्वतः इह तृतीयार्थे तसिः । तत्वतः इत्यस्य तत्वैरित्यर्थः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवम् अचित् -चित् -तत् परीभूतरूपैः जडचेतन तद् विलक्षणैः प्रकृतपुरुषपरमात्मभिः जगज्जीवजगदीश्वरैः सहितां ब्रह्मविद्यां, ब्रह्मप्रापिकां विद्यां, ब्रह्मरूपिणीं विद्यां, ब्रह्मनिर्णयां विद्यां, ब्रह्मानन्दवर्षिणीं विद्यां प्रोवाच वदेत् । अत्र "व्यत्ययात् " लिङर्थे लट् ।

अत्रेदमवधेयम् इहत्य प्रकरणेन श्रुत्या स्वयमेवाद्वैतवाझञ्झघाडम्बरं मेयेव निराकृतम् । यदि ब्रह्मजीवयोरैक्यं स्यात्, तर्हि कः कस्मै ब्रह्मविद्यां प्रवेदत् ? एकस्मिन् ब्रह्मतत्वे निर्धारिते ब्रह्मणः प्राप्त्यभावे तत्प्रापकब्रह्मविद्यायाः मोघ इव समारम्भः, यदि चेत् कल्पितोऽयं भेदः ततो ब्रह्मणि ज्ञानस्वरूपे महाभाष्करे कुतोऽयं क्षोदिण्ठोऽज्ञानान्धकरः । यदि चेत् तदपि मिथ्यैव गुरुशिष्यपरम्परारिरक्षिषया, तर्हि व्याहतो भूतार्थवादः श्रुतीनाम् । तस्मात् -

जीवनित्यो ब्रह्मनित्यं नित्या सम्बन्धना तयोः ।
दासभूतः सदाजीवो ब्रह्मस्वामी सदाश्रुतः ।।
चिदचिद्भ्यां विशिष्टं तद् ब्रह्माद्वैतं निगद्यते ।
विशिष्टद्वैतवादोऽयमाम्नायो नः श्रुतः स्मृतः ।।
शरीरे जीवजगती शरीरिब्रह्मराघवः ।
इत्येव तत्र सम्बन्धः श्रुतिस्मृतिसमीरितः ।।
अविनाभाव एवासौ विशेषणविशेष्ययोः ।
कारणं कार्यमित्येव द्विधा ब्रह्म प्रकीर्तितम् ।।
विशिष्टं च विशिष्टं च चिदचिद्भ्यां सदैव ते ।
विशिष्टे ब्रह्मणि ज्ञेयमद्वैतं नितरां तयोः ।।
विशिष्टाद्वैतमित्याहुः प्रमाणत्रितयान्वितम् ।
प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दमित्यवधार्यताम् ।।
सत्कार्यवाद एवात्र ह्यचिदंशसमाश्रितः ।
ब्रह्मपरिणामवादोऽपि प्रपत्तिश्चात्रजीवनम् ।।श्रीः।।

इति श्रीरामानन्दाचार्य स्वामिराभद्राचार्यप्रणीतं मुण्डकोपनिषदि प्रथममुण्डकं सम्पूर्णम् ।
।। श्री राघवोः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ द्वितीयमुण्डके प्रथमखण्डः ।।

अथाशेषजगतामभिन्ननिमित्तोपादानकारणतया ब्रह्म निर्वक्ति —

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ।
तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ।।१।।

हे सोम्य ! यथा येन प्रकारेण सुदीप्तात् जाज्वल्यमानात् पावकाद् अग्नेः सरूपाः समानरूपवन्तः सहस्रशः अनेके स्फुलिङ्गाः प्रभवन्ति । यथा एवमेव अक्षरात् परमात्मनोऽपि तदंशका अणवः अनेके भावाः जीवाख्याः जायन्ते । इत्येन जीवबहुत्वम् अणुत्वं ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानकारणं च सूचितम् ।।श्रीः।।

अथ जीवाभिन्ननिमित्तोपादानकारणभूतस्य ब्रह्मणो जीवजगद्भ्यां वैलक्षण्यं वर्णयति-

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमना शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ।।२।।

जीवतो ब्रह्म विलक्षणं, जीवः लौकिकः, भगवान् दिव्यः अप्राकृतः । मूर्च्छन्ति प्रसरन्ति कामक्रोधदयो यस्मिन् स मूर्तः जीवः, परमात्मा ततो विलक्षणः तस्मादमूर्तः । बाह्यं बहिर्जगत् , प्रत्यक्षमं आभ्यन्तरं परोक्षजगत् , यद् वा बाह्यं प्रत्यक्षप्रमाणं, आभ्यन्तरं अनुमानं शाब्दं च ताभ्यां बाह्यान्तराभ्यां सह वर्तमानः स बाह्याभ्यन्तरः । यद् वा भक्तेच्छया बाह्यैः चक्षुरादिभिः, आभ्यन्तरैः मनःप्रभृतिभिः सह वर्तमानः सबाह्याभ्यन्तरः, इत्यनेन ब्रह्मणो निराकारतां जल्पन्तः परास्ताः । ननु बाह्याभ्यन्तरसहितः किं जायते ? इत्यत आह—हि निश्चयेन अजः, अत एव अप्राणः प्राणभिन्नः अमनाः मनो भिन्नः अनिन्द्रियत्वात् । तर्हि कथं सबाह्याभ्यन्तररः ? तत्र दिव्यकरणवत्वस्य विवक्षणेनादोषात् । यद् वा अमनाः इत्यस्य मानव मनः संकल्पातीत इत्यर्थः । त एव तैत्तिरीये ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह

(तै०उ०२-९)

अतः शुभ्रः निर्दोषः, पुरुषः पुरि जीवशरीरे शेते अन्तर्यामितया तिष्ठति इति पुरुषः, अक्षरात् जीवात् परतः परीभूत मायातोऽपि परः परमाक्षरः पुरुषोत्तमः ।।श्रीः।।

अथ जीवभोग्यपदार्थानां परमात्मनः सकाशादुत्पत्तिमाह -

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतस्माद् ब्रह्मणः सकाशात् प्राणमनःसर्वेन्द्रियाकाश वाय्वग्निजलभूमयो जायन्ते। तृतीयस्माच्च मन्त्रात् अचिद्वर्गस्य उत्पत्तिमुक्तत्वा श्रुतिः अचितिविशेषणे परिमणाममाह ॥श्रीः॥

अथ जगतः भगवता सह शरीरशरीरिभावः प्रोच्यते—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्या पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥४॥

एषः सर्वभूतानाम् अन्तरात्मा शरीरी, अस्य भगवतः अग्निः मूर्धा शिरः, चन्द्रसूर्यौ चक्षुषी नेत्रे, श्रोत्रे कर्णे दिशः पूर्वादयः, विवृताः विविध शाखासु विस्तृताः वेदाः षडङ्गाः, वाक् वाणी, वायुः भगवतः प्राणः, विश्वं जगत् ,यद्वा विश्वात्मकमाकाशं हृदयं, पद्भ्याम् अत्र प्रथमार्थे पञ्चमी । चरणावेव भगवतः पृथिवी, इयमेव श्रुतिः भगवतो जगच्छरीरत्वे परमं प्रमाणम् ॥श्रीः॥

अथ ब्रह्मणः सकाशात्प्रजोत्पत्तिमाह -

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् । पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥५॥

सूर्यो भगवान् भाष्करः यस्य समिधः, यत्सम्बन्धि प्रकाशवान् येन समिध्यते तादृगग्निः तस्मात् भगवत एव उत्पद्यते, पुनश्च तस्माद् द्वितीयः अग्निः सोमः, ततः तृतीयश्च आहुत्यधिकरणविशेषः पर्जन्यः, ततश्च ओषधयः, ततः पुरुषः स च योषिति गर्भमाधत्ते इति सम्पूर्णप्रजानां भगवानेव अभिन्ननिमित्तोपादानम् ॥श्रीः॥

अन्यदपि कर्मकाण्डसम्बन्ध्युपकरणं भगवत इत्यत आह -

तस्मादृचः सामयजूषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च ।
संवत्सरश्च यमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥६॥

यस्मिन् भगवति सोमः यत्र च सूर्यः सर्वं पुनाति तस्माद् भगवतः वेदत्रयी दीक्षा, यज्ञादयः लोकपर्यन्ताः परमेश्वरादेव जायन्ते ॥श्रीः॥

अथ देवादीनां भगवत उत्पत्तिं वर्णयति -

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि । प्राणपानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥७॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुधा अनेक प्रकारका: देवा:, वयांसि पक्षिण:, श्रद्धा आस्तिक बुद्धि, सत्यं यथार्थ भाषणं, ब्रह्मचर्यं अष्टविधव्यवायपरिहार:, विधि: अनुष्ठानम् इमे सर्वे भगवत एव प्रसूता: ॥श्री:॥

अथ प्राणादीनामपि उत्पत्तिं भगवत: प्राह -

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः ।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिता सप्त सप्त ।।८।।

इह प्राणशब्देन जीवनोपकरणानि गृह्यन्ते, सप्तप्राणा: पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च, सप्तार्चिष: तेषां सप्तविषया: दर्शनस्पर्शश्रवणरसनघ्राणमननाध्यवसाया:, एवमेव तेषां सप्तहोमसम्बन्धिन: समिध:, भगवति सप्तप्रकारका: लया:, येषु गुहाशया शरीरे विराजमाना: सप्त सप्त ऊनपञ्चाशत् मरुत: येषु चरन्ति ते इमे सप्तलोका: भूरादयो भगवत उत्पन्ना: ॥श्री:॥

परिशेषमपि जगज्जातं भगवत उत्पन्नमित्य आह -

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ।।९।।

अस्मादेव जगदभिन्ननिमित्तोपादानात् समुद्रादय: उत्पद्यन्ते । सिन्धव: नद्य: ओषधय: येन रसेन भूतै: सह अन्तरात्मा अन्तर्यामी परमात्मा तिष्ठते स रसोऽपि परमात्मन एव ॥श्री:॥

पारिशेष्यमाह -

पुरूष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् ।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ।।१०।।

हे सोम्य ! पुरुष एव इदं विश्वं, शरीरत्वात् समानाधिकरणं, यथा शरीरे ताड्यमाने जन: स्वताडनं मन्यते, कर्णे वधिरे अहं वधिर:, वाचि मूकायाम् अहं मूक: इति शरीरेऽप्यामत्मव्यवहार:, तथैव विश्वेऽपि पुरुषसामानाधिकरण्यम् । एवं पुरुषात्मकं कर्म वेद: तदात्मक: उत्कृष्टममृतमपि भगवदात्मकम् । एवं विधं चिदचिद्विशिष्टं गुहायामन्त:करणे निहितं विराजमानं य: वेद स: अविद्याग्रन्थिं विकिरति नाशयति ।

विशिष्टाद्वैत रीत्यैव विशिष्टाद्वैतभावनो ।
विशिष्टाद्वैतमासेव्य विशिष्टः स्यान्न संशयः ।।श्रीः।।

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमखण्डः

।। राघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ द्वितीयखण्डः।।

अथ सकलजगदभिन्ननिमित्तोपादानं विशिष्टद्वैतवेद्यं कार्यकारणात्मकं ब्रह्म श्रुतिर्निर्दिशति-

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम् । एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ।।१।।

श्रुतिः कथयति हे पुत्राः ! यद् गुहायां चरति इति गुहाचरं, यन्नाममहत्पदं सर्वेषां पदनीयं, यत्र परमात्मनि एतत् इदं चिदचिदात्मकम् एजत् कम्पमानम्, अचिज्जातं भोग्यरूपं प्राणत् जीवनं धारयत् चेतनात्मकं तिर्य, निमिषत् निमेषादिकं कुर्वत् मानवादिकं, समर्पितं विशेषणतया चिदचिद्रूपं यस्मिन् समर्पितसत्ताकम् इत्यनेन चिददितो ! विशेषणता परमात्माधीनसत्ताकत्वं च स्पष्टं प्रतिपादितम् । एवं चिदचिद् विशिष्टं सतां जीवानाम् असतां जड़ानां च वरेण्यं वरणीयं, विज्ञानात् परं प्रजानां च वरिष्ठम्, एवं भूतं सन्निहितं निजनिकटस्थम् आविः स्वसम्मुखं प्रकटं च परमात्मानं जानथ निजसेव्यत्वेन समवगच्छत । जानथ इति लोडर्थे लट् "व्यत्ययात् " ।।श्रीः।।

अथ लक्षरूपकतया ब्रह्म निर्वक्ति -

यदिर्चितमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च तदेतक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः । तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ।।२।।

यत् अर्चिमत् प्रकाशमत् यच्च जीवेभ्यो अणु, नन्वत्र कथं न तरप् प्रत्ययः ? विभज्योपपदाभवात् । **द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयसुनौ** पा०अ० ५-३-५७ इत्यनेन तरप् द्विवचने विभज्योपपदे च । तर्हि पञ्चमी कथं ? ल्यब्लोप पञ्चम्येषा । अणून् जीवान् अपेक्ष्य अणु यथा तेषां हृदये स्थातुं शक्येत, एवं यस्मिन् लोकाः लोकिनश्च भूरादय इन्द्रादयः निहिताः तदेव ब्रह्म सत्यं, तदमृतं मरणवर्जितं, तदेव वेद्धव्यं आत्मना सह संयोज्यम् । हे सोम्य ! इत्थं विद्धि जानीहि ।।श्रीः।।

ननु लक्ष्यवेधाय धनुर्वाणावपेक्ष्येते तत्र सन्धानं कथं स्यात् ? इत्यतो रूपयति -

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ।।३।।

उपनिषत्सु दृष्टम् औपनिषदं प्रणवाख्यं धनुः उपासनया निशितं तीक्ष्णधारीकृतं प्रत्यगात्मरूपं शरं गृहीत्वा ब्रह्मभावगतेन चेतसा आयम्य श्रवणपर्यन्तं विधाय सन्दधीत

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्धान विषयं कुर्वीत । एवं प्रणवधनुषा मुक्तेन जीवात्मशरेण अक्षरं ब्रह्मैव लक्ष्यं विद्धि, अर्थात् प्रणवयुक्तेन जीवात्मनैव ब्रह्मरूपं लक्ष्यं वेद्धव्यम् ।।श्रीः।।

तदेव स्पष्टयति -

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्म ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।४।।

हि यतः प्रणव ओंकार एव धनुः, आत्मा मुमुक्षुर्जीवात्मा शरः, ब्रह्मसाक्षाच्चिकीर्षितव्यं तस्य जीवात्मनः लक्ष्यम् उच्यते कथ्यते । अतः अप्रमत्तेन प्रमादरहितेन साधकेन वेद्धव्यं, यथा बाणवत् जीवात्मापि तन्मयो भवेत् , ब्रह्मप्राचुर्यवान् स्यात् , ब्रह्मपरिणाममान् स्याच्च ।।श्रीः।।

भूयः शौनकं अङ्गिरा प्राह -

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ।।५।।

अङ्गिराः शिष्यान् संबोधयति, यस्मिन् ब्रह्मणि द्यौः स्वर्गं, पृथिवी अन्तरिक्षम् आकाशं प्राणैः सह मन ओतं सम्बद्धं शरीरशारीरिभावेन, तम् एव एकं प्रधानम् आत्मानं परमात्मानं जानथ अवगच्छत । एकमिति कथनेन आत्मपदवाच्योऽप्यप्रधानतया जीवात्मा व्यावृत्तः, स च विशेषणतया ह्यप्रधानः, परमात्मैव प्रधानः । यथा श्रीमानसे भगवान् शंकरः-

पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ ।।

(मानस १-११६)

अन्याः परमातमातिरिक्ताः वाचः वाणी विमुञ्चथ त्यजत । एषः परमात्मा अमृतस्य परमानन्दस्य सेतुः धारणः ।।श्रीः।।

अथ जगता सह परमात्मसम्बन्धमाह -

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रथ नाभौ स्यन्दनस्य चक्रे अरा इव यथा यत्र नाड्यः संहताः सम्बद्धाः सन्ति, तमेव ओमिति मन्त्रेण आत्मानं परमात्मानं ध्यायथ ध्यानं कुरुत । तमसः अन्धकारात् परस्तात् परिभूताय वः पराय युष्माकं संसारसागरपारकरणाय स्वस्ति ।।श्रीः।।

परमात्मनः प्रतिष्ठामाह -

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिम भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ।।७।।

सर्वंजानातीति सर्वज्ञः, सर्वं विन्दतीति सर्वविद् यस्य एष महिमारूपो भुवि विराजते । एष आत्मा परमात्मा राघवेन्द्रः दिव्ये अप्राकृते द्योतनशीले व्योमनि उपरिष्टाद् वर्तमाने महाकाशरूपे ब्रह्मणः रामचन्द्रस्य पुरं ब्रह्मपुरं तस्मिन् ब्रह्मपुरे साकेते प्रतिष्ठितः सीतया सह विराजते ।।श्रीः।।

भूयः परमात्मनो भोग्यवर्गेऽपि प्रतिष्ठामाह -

मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आंनन्दरूपममृतं यद्विभाति ।।८।।

यः मनोमयः भक्तमनः प्राचुर्यवान् , अथवा मन इव मयते गच्छति भक्तसमीपं यः स मनोमयः, प्राण एव शरीरं प्राणशरीरं तन्नयति इति प्राणशरीरनेता स हृदयं सन्निधाय स्वमन्दिरं विधाय अन्ने भोग्यपदार्थेऽपि प्रतिष्ठितः । यद् आनन्दरूपं परमानन्दमयम् अमृतं संविभाति तदेव धीरा विज्ञानेन परिपश्यन्ति, बुद्ध्या जानन्ति । अथवा सेवकसेव्यभावज्ञानेन जानन्ति ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मदर्शनफलमाह —

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।९।।

परैः चिद्वर्गैः जीवैः सह अवरे अचिद्वर्गाः सन्ति यस्मिन् सः परावरः, अथवा परे जीवात्मान एव अवरे विशेषणानि सन्ति यस्य इति परावरः तस्मिन् परावरे, जगज्जीव-विशेषणके परमात्मनि तस्मिन् दृष्टे अस्य साधकस्य हृदयग्रन्थिः जड़चेतनात्मिका भिद्यते नष्टा भवति । सर्व संशयाः सर्वे सन्देहाः आत्मानात्मविषयकाः सन्देहाः छिद्यन्ते नाश्यन्ते । तथा च अस्य जीवात्मनः कर्माणि प्रारब्धक्रियमाणसंचितानि क्षीयन्ते नष्टानि भवन्ति ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ ब्रह्मधाममहिमानमाह —

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
यच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।।१०।।

हिरण्मये जाज्वल्यमाने परे कोशे साकेते यद् विरजं रजोगुणरहितं निष्कलं ब्रह्म तदेव शुभ्रं सकलदोषवर्जितम् । ज्योतिषां सूर्यचन्द्रपावकानामपि ज्योतिः प्रकाशदाता, तदेव आत्मविदः परमात्मवेत्तारः विदुः जानन्ति ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मधाम्नः प्रकाशकत्वमाह —

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युते भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।११।।

तत्र ब्रह्मणि सूर्यः, तारकं चन्द्रमास्तारकाश्च न भान्ति, इमाः विद्युतः न भान्ति न प्रकाशन्ते । अयमग्निः प्राकृतः कुतः केन सामर्थ्येन प्रकाशेत । तमेव परमात्मानं भान्तं प्रकाशमानमनुलक्ष्य सर्वं चिदचिदात्मकं भाति, प्रकाशितं भवति । तस्य ब्रह्मणः भासा प्रकाशेन इदं सर्वं विभाति प्रकाशते ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मणः सर्वव्यापकतां वर्णयति —

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।१२।।

इदं ब्रह्मैव पुरस्तात् मम अग्रे इदं पश्चात् पृष्ठीभागे दक्षिणतः वामतश्च अधः नीचैः ऊर्ध्वमुपरि सर्वत्रैव ब्रह्म ।। श्रीः।।

।। इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीयमुण्डके प्रथमखण्डः ।।

अथ परमकरुणाहृदया श्रुतिः परमेश्वराराधनं समुपदिदिक्षुः जीवब्रह्मणोः स्पष्टं समभिव्यनक्ति भेदं, द्वा इत्यादिना —

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इह द्वा सुपर्णा, सयुजा, सखाया इति चतुर्षु स्थानेषु **सुपां सु लुक् पूर्वसवर्णाच्छे-या डा-ड्या-याजालः** (पा०अ० ७-१-३९) इत्यनेन पूर्वसवर्णः । द्वौ ब्रह्मजीवरूपौ द्वित्वसंख्यावच्छिन्नौ सुपर्णौ शोभनपक्षवन्तौ पक्षिणाविव वृक्षाश्रयत्वात् समानधर्मता, सयुजौ सहैव युञ्जतः इति सयुजौ सह निवासकर्तारौ, सह खेलतः, सहैव ख्यातः, सहैव खादतश्च यौ तौ सखायौ परस्परं सुहृदौ **सुहृदं सर्वभूतानाम्** (गीता ५-२९) इति स्मृतेः ।

''राम प्राण प्रिय जीवन जी के, स्वारथ रहित सखा सबही के ।।

(मानस २-७४-६)

इति मानसाच्च । समानं समानरूपेणैव वृक्षं वृश्चनधर्मत्वात् वृक्षरूपं शरीरं परिषस्वजाते अत्र परोक्षे लिट् । अनादिकालतः द्वित्वविशिष्टौ खगाविव सुहृदौ जीवात्मपरमात्मनौ शरीरवृक्षं परिष्वक्तवन्तौ बभूवतुः । तयोः जीवात्मपरमात्मनोर्मध्ये अन्यः परमात्मविलक्षणो जीवात्मा पिप्पलं शुभाशुभफलरूपं स्वादु प्रतिकूलानुकूलानुभूतिमयम् अत्ति भुङ्क्ते वृक्षासक्तत्वात् । अन्यः इतो विलक्षणः समस्तहेयगुणबहिर्भूतः सकलकल्याणगुणगणसागरः समशेषसृष्टिरचनानागरः अनश्नन् पिप्पलमखादन् कर्मविपकमभुञ्जानः अभिचाकशीति अभितः श्रीसाकेतश्रीमदयोध्यानिकेतयोः श्रीगोलोक गोकुलयोश्च श्रीरामकृष्णरूपः शोभते । अत्र ब्रह्मजीवयोः स्पष्टं भिदा। यत्तु शङ्कराचार्यः ईश्वरं सत्वोपाधिपरिच्छिन्नमाह, तथा हि तत्तत्यं भाष्यम्, **सुपर्णाविव अविकामकर्म-वासनाश्रयलिङ्गोपाध्यात्मेश्वरौ तथा च इतर ईश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सर्वज्ञः सर्वसत्वोपाधिरीश्वरो नाश्नाति** इति । तदसंगतम् । यतो हि ईश्वरस्य नैकमपि प्रमाणमुपाधिपरिच्छिन्नत्वे, अहो ! एकमपि प्रमाणमन्तरेणापि ईश्वरः सत्वोपधिपरिच्छिन्नः, जीवात्मा मलिनसत्वोपाधिः इति कुतः कल्पयाम्बभूविरे प्रच्छन्नबौद्धाः ।

न च

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तुमहेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।।

श्वे० उ० ४-१०

इत्यस्ति प्रमाणमिति वाच्यम्, मायायाः उपाधिपर्यायत्वे मानाभावात्, मतुबर्थस्येनि-प्रत्ययस्य सम्बन्धेऽपिविधानेनादोषाच्च । तथा

हि-भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽति शायने ।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतिभाष्यवार्तिकलिङ्गात् ।

सम्बन्धश्च नियम्यनियामकभावरूपः, न हि नियम्यो नियामकं परिच्छिनत्ति । कथमहो मेघो व्योममण्डलं परिच्छेत्तुं प्रभवेत् । किं च किं रूपस्त्वदीयोपाधिः, सत्यः असत्यो वा ? यदि सत्यः तर्हि तावकीना ब्रह्मसत्यत्वप्रतिपादनप्रतिज्ञा मोघारम्भा, त्वयैव धूलिसात्कृतः स्यात्, त्वत्प्राणबल्लभोऽद्वैतवादः । यद्यसत्यः तर्हि तेन सत्यस्य ब्रह्मणः आवरणम् असम्भवम् । न हि असत्यजलेन मरुमरीचिकया वा तृट्छान्तिः । पुनश्च किमाश्रयोऽयमुपाधिः स्वाश्रयः पराश्रयो वा ? स्वाश्रयश्चेत् असम्भवः, नहि अति चतुरोऽपि नटः स्वेन स्वस्कन्धमारोढुमर्हति । यदि ब्रह्माश्रयः तदप्यनर्गलं नह्यन्धकारः सूर्ये स्थातुं प्रभवति, न व समिद्धपावके तूलराशिः । तस्मान्मायावादसन्निपातजल्पितमिवोपेक्ष्यं शांकरभाष्यमेतत् । इह श्रुतौ तृतीयतुरीय चरणयोः द्विप्रयोगोऽन्यशब्दस्य जीवाद् ब्रह्मणः ब्रह्मणश्च जीवस्य स्वरूपगतं परस्परं वैलक्षण्यं प्रतिपादयति, द्विर्बद्धं सुबद्धं भवतीति नियमात् । यदि भेदः स्यादौपचारिको ब्रह्मजीवयोः, तर्हि नैवान्यशब्दं द्विः प्रयुञ्जीत श्रुतिः । अन्य शब्दस्य स्वभावतः समपेक्षितावधिकत्वात् , अवद्ध्यवधिमतोश्च भेदघटितत्वस्वभावात् श्रुत्यैव साधितो ब्रह्मजीवभेदः, इति विरम्यते ।।श्रीः।।

अथेदं तथ्यं भूयोऽपि स्पष्टयति —

समाने वृक्षे पुरूषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमनमिति वीतशोकः ।।२।।

समाने पूर्वोक्ते शरीररूपे वृक्षे निमग्नः मोहनिशिनिद्रितः अनीशया ईशभिन्नया, नास्ति ईशः आश्रयः यस्याः सा अनीशा तया अनीशया अविद्यया करणभूतया मुह्यमानः मोहं ब्रजन् शोचति । एतद् विपरीतं यदा जुष्टं विदचिद्भ्यां विशेषणाभ्यां सेवितं विशिष्टं च अन्यं जडचेतनाभ्यां विलक्षणं क्षराक्षराभ्यामतिरिक्तम् ईशं परमेश्वरम् इति, इति शब्दश्चकारार्थः । तथा च अस्य परमात्मनो महिमानं यदा यस्मिन् काले पश्यति, तदा वीतशोको भवति । इत्यनेन विशिष्टाद्वैतवादः सूत्रितः ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मविदुषो ब्रह्मसाम्यप्राप्तिमाह —

यदापश्यः पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरूषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ।।३।।

यदा यस्मिन्समये, अपश्यः अकारं वासुदेवं पश्यतीति अपश्यः भगवद्दर्शनशीलः, यदा रुक्मवर्णं परमं तेजस्विनम् ईशं सर्वसमर्थं परमात्मनं ब्रह्मणः विधातुश्च योनिं जन्मदातारं, कर्तारं समस्तजगतः रचयितारं पश्यते साक्षात् कुरुते, तदा तस्मिन् समये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्वान् ब्रह्मवेत्ता शुभाशुभफलभूते पुण्यपापे विधूय समाप्य निरञ्जनं कर्मलेपरहितं परमं पूजनीयं साम्यं समत्वमुपैति । यद् वा भोगमात्रे ब्रह्मणः साम्यमुपैति । **भोगमात्र-साम्यलिङ्गाच्च:** ब्र०सू०४-४-१८ इति व्यासवचनात् ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मविदं प्रशंसति —

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी ।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ।।४।।

एषः प्राणः सर्वेषां जीवनभूतः, यः पृथिव्यादिभिः सर्वभूतैर्विभाति शोभते । एवंभूतं सर्वेषां प्राणं परमात्मानं विजानन् विविच्यावगच्छन् आत्मना परमात्मना सह क्रीडतीति आत्मक्रीडः, यद् वा आत्मनि स्वमिन्नेव क्रीडति इत्यात्मक्रीडः । आत्मनि परमात्मनि रतिः यस्य स आत्मरतिः तथा क्रियावान् भगवदीयक्रियासम्पन्नः, ब्रह्मविदां, ब्रह्मज्ञानां, ब्रह्मप्राप्तृणां वा वरिष्ठः एषः विद्वान् आतिवादी न भवति नाधिंक वदति, प्रायो मौनमालम्बते ।।श्रीः।।

अथ परमात्मनः प्राप्तिप्रकारमाह —

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।।५।।

यः सर्वेषाम् अन्तःशरीरे हृद्देशे अन्तर्यामिरूपः ज्योतिरेव ज्योतिर्मयः शुभ्रः निर्दोषः विभाति । यम् अन्तर्यामिणं क्षीणाः नष्टाः दोषाः भगवद्-भजनप्रत्यवायाः येषां तथाभूताः क्षीणदोषः यतयः भगवद्भक्ताः श्रीवैष्णवास्त्रिदण्डिनः पश्यन्ति । एष आत्मा सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण एभिः समुदितेन सम्यग्ज्ञानेन सेवकसेव्यभावमयेन एष आत्मा परमात्मा लभ्यः ।।श्रीः।।

अथ भगवती श्रुतिः सत्यं प्रशंसति —

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ।।६।।

सत्यं भूतार्थवाद एव जयति सर्वोत्कृष्टं विराजते, अनृतं असत्यं न जयति । येन आप्तकामाः प्राप्तसमस्तकामाः ऋषयः महर्षयः यत्र तत्परमं सत्यस्य निधानं परमात्मतत्त्वं विराजते, तमेव साकेतलोकं येन आक्रामन्ति सूर्यद्वारेण प्राप्नुवन्ति । तन्मार्गभूतः देवयानः देवाः यान्ति येन तादृशः पन्था येन सत्येन विततः तदेव सत्यं सर्वत्र जयति ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूयः स्वरूपतो तन्निर्वक्ति —

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत् स्विहैव निहितं गुहायाम् ।।७।।

तद् ब्रह्म बृहत् निरतिशयवर्धनशीलं, दिव्यम्, अलौकिकम् अचिन्त्यानि न चिन्तयितुं शक्यानि रूपाणि नृसिंहादीनि यस्य तत् अचिन्त्यरूपं, यच्च सूक्ष्माज्जीवादपि सूक्ष्मतरम् अणीयः । यत् भगवद् विमुखानां कृते दूरादपि दूरे वर्तमानं, यच्च स्वभक्तानां कृते अन्तिके निकटे, यच्च सर्वेषु देवेषु पश्यत्सु द्रष्टुं यतमानेषु गुहायां हृदये योगमायाञ्चलरूपायां निहितं, तदेव आत्मभूतं केवलं सत्येन लभ्यते ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मप्राप्तिदुरूहतां वर्णयति —

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्तस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।८।।

तद् ब्रह्म चक्षुषा नेत्रेण वाचा वाण्या न गृह्यते, न वा देवैः तपसा कर्मणा, अयं गृहीतुं शक्यः । वस्तुतस्तु ज्ञायते जगदनेन इति ज्ञानं, ज्ञानं नित्यमस्त्यस्य इति ज्ञानं ब्रह्म, **सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म** इति श्रुतेः । तस्य ज्ञानस्य परमात्मनः प्रसादः कृपा, तस्मात् ज्ञानप्रसादात् परमात्मकृपया, विशुद्धं शुद्धं चित्तं यस्य सः निष्कलं निर्लीनकलकं तं ध्यायमानः ध्यानविषयं कुर्वन् पश्यति, साक्षात्करोति ।।श्रीः।।

अथ परमात्मनो ज्ञाने चित्तरूपमन्तःकरणं निश्चित्य तस्य जीवात्मनः स्वरूपं निर्धारयति —

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ।।९।।

यस्मिन् जीवात्मनि प्राणः अन्तःसञ्चारिवायुः, पञ्चधा प्राणापानव्यानसमानोदानप्रकारः यस्मिन् जीवात्मनि सति विराजमाने शरीरं संविवेश । यस्मिंश्च वर्तमाने प्रजानां प्राणैः सह चित्तमोतं प्रोतं, यस्मिंश्च भगवन्नामरूपलीलाधामचिन्तनेन एषः अतिसन्निकृष्टः प्रत्यगात्मा चेतसा चित्ताख्येन अन्तः करणेन, वेदितव्यः देहेन्द्रियमनोबुद्धिविलक्षणतया ज्ञातव्यः । अणुः अनयैव श्रुत्या जीवात्मनोऽणुत्वं परमात्मनश्च विभुत्वं साधितं कण्ठरवेण । तथा हि प्रथमचरणे **एषोऽणुरात्मा** इत्यनेन अणुत्वं जीवात्मनः, चतुर्थचरणे **विभवत्येष आत्मा** इत्यनेन परमात्मनो विभुत्वम् । अनयैव वज्रसाररूपया श्रुत्या प्रच्छन्नबौद्धकल्पितं जीवात्मविभुत्ववादाडम्बरं शैलकूटमिव धूलिसात्कृतम् ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथात्मज्ञपूजनफलमाह —

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्वः कामयेते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ।।१०।।

रा०कृ०भा० - अत्र आत्मशब्दः जीवात्मपरमात्मपरः, स्वस्वरूप परस्वरूपज्ञाता स्वकीयेन मनसा यं यं लोकं कामयते, तं तं कामं प्राप्नोति । यतो हि स विशुद्धसत्वः तस्मात् भूतिकामः भगवदनुग्रह समभिलाषी आत्मज्ञम् अर्चयेत् पूजयेत् ।।श्रीः।।

।। इति तृतीयमुण्डके प्रथमखण्डः ।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ द्वितीयः खण्डः ।।

अथ ब्रह्मज्ञान प्रकारं शुक्रातिवर्तनं च निर्वक्ति —

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरूषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ।।१।।

स एव आत्मज्ञः तत्परमं पूजनीयं ब्रह्मधाम वेद जानाति साकेतलोकमुपास्ते । यः चेतसा अणुभूतं प्रत्यगात्मनं स्व स्वरूपलक्षणं वेद । यत् शुभ्रं, यत्र च विश्वं निहितं तन्निरस्तसमस्तहेयगुणं कलितसकलकल्याणगुणं परमं ज्योतिर्मयं ब्रह्म स वेद । ये अकामाः संसारकामनावर्जिताः पुरुषं परमात्मानमुपासते, निजनाथरूपेण सेवन्ते, त एव धीराः एतत् शुक्रं रेतस्संभवं संसारम् अतिवर्तन्ति, अतिक्रामन्ति । भगवद्भजनमन्तरेण कोऽपि न कन्दर्प दर्पं व्याहन्तुं प्रभवति । यथा मानसकाराः —

धरे न काहु धीर सबके मन मनसिज हरे ।
जेहिं राखे रघुवीर सो उवरे तेहि काल मँह ।।

मानस १-८५ ।।श्रीः।।

अथाप्तकामं प्रशंसति —

कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र ।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस् त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ।।२।।

यः मन्यमानः अभिमानयुक्तः कं सुखम् आमं अपक्वं येषु ते कामाः तान् भोग्यपदार्थान् कामयते, सः कामभिः कामनायुक्तैः हेतुभूतैः मातापितृभिः तत्र-तत्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उच्चावचनेषु लोकेषु जायते । यस्तु पर्याप्तकामः, कृतात्मा साक्षात् कृतः आत्मा परमात्मा येन, तथाभूतस्य सर्वेकामा इहैव अस्मिनेव लोके प्रविलीयन्ति, भगवद्भजने न प्रत्यवायाः भवन्ति ।।श्रीः।।

अथ परमात्मप्राप्ति प्रकारमाह —

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ।।३।।

आत्मा परमात्मा, प्रवचनं वेदाध्यापनं, मेधा शास्त्रग्रहणशक्तिः, श्रुतं वेदान्तश्रवणम्, इह परमात्मप्राप्तिसाधनत्वेन प्रवचनमेधाश्रुतानां एकैकशो निषेधः । अयमात्मा परमात्मा केवलेन प्रवचनेन, केवलया मेधया, केवलेन च वेदान्तश्रवणेन न लभ्यः । त्रिर्नकारं पठित्वा त्रैकालिकनिषेधमाह तर्हि कथं लभ्यः ? इत्यत आह - एषः परमात्मा यमेव वृणुते यं भूरि भाग्यवन्तं कृपावात्सल्यभाजनत्वेन स्वीकरोति, तेन महात्मनैव साधनेन लभ्यः । यतो हि तस्यैव समक्षम् , एषः आत्मा परमात्मा स्वां तनुं निन्दितकोटिकोटिकादम्बिनीं विवृणुते आविष्करोति । अत एव श्रीभागवते -

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद् वा ।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ।।

भागवत ५-१२- ।।श्रीः।।

अथ पुनरपि परमात्मप्राप्तिप्रकारमाह —

नायमात्म बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात् ।
एतैरूपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।।४।।

अयमात्मा परमात्मा बलहीनेन आत्मबलरहितेन न लभ्यः । न वा प्रमादात् , न वा अलिङ्गात् शास्त्रीयविधिलिङ्गरहितात् तपसोऽपि लभ्यः । एतैः उपायैः यतमानस्य विदुषः अर्थपञ्चकतत्वज्ञस्य पुरस्तात् परमात्मा स्वां तनुं प्रकटयति ।।श्रीः।।

अथ यतीन्द्राणां महत्वं वर्णयति —

सं प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मनो वीतरागाः प्रशान्ताः ।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मनः सर्वमेवाविशन्ति ।।५।।

सेवकसेव्यभावरूपेण ज्ञानेन तृप्ताः ज्ञानतृप्ताः तृप्तः आत्मा अन्तः करणं येषां तथाभूताः ऋषयः नं परमात्मानं सम्प्राप्य प्रशान्ताः शान्तमनसो भवन्ति । ते धीराः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वतः सर्वतोभावेन संसारसर्वसम्बन्धैश्च सर्वगं सर्वव्यापिनमिमं प्राप्य, युक्तः समर्पितः भववत्कङ्कर्ये आत्मा देहः यैस्ते युक्तात्मानः तं सर्वस्वरूपं परमात्मानं विशन्ति प्रविशन्ति ।। श्रीः।।

अथ परमात्मनिलयप्रकारमाह —

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ।।६।।

वेदान्तम् उपनिषत्प्रमाणं वेदव्यासप्रणीतदर्शनम् । तस्यैव विज्ञानेन विनिश्चितः विशिष्टाद्वैतवादरीत्या निश्चितः अर्थ परमार्थः यैस्ते, सन्यासयोगात् प्रपत्तियोगलक्षणात् विशुद्धं सत्वं येषां तथा भूताः, ते सर्वे परान्तकाले शरीर-विसर्जनसमये ब्रह्मलोकेषु साकेते, परामृताः उत्कृष्ट भक्त्यामृतसेविनः परिमुच्यन्ते बन्धनात् मुक्ताः भवन्ति ।।श्रीः।।

भूयः प्रलयं वर्णयति -

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ।।७।।

पञ्चदशकलाः प्राणे देवाश्च प्रधानदेवतासु, कर्माणि आत्मनि एवं सर्वे परस्मिन् ब्रह्मणि एकीभवन्ति, एकीभूयतिष्ठन्ति ।।श्रीः।।

अथ नामरूपमुक्तिप्रकारमाह —

यथा नद्यः स्यन्दमाना समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।८।।

यथा द्रवन्त्यः नद्यः नामरूपे त्यक्त्वा सागरे अस्तं गच्छन्ति । तथैव ब्रह्मवेत्ता सांसरिकनामरूपाद्विमुक्तः नित्यभगवत् किङ्कररूपः परातपरं जीवात्मनोऽपि सूक्ष्मं दिव्यं पुरुषमुपैति, प्राप्नोति ।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह —

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति नास्या ब्रह्मवित्कुले भवति ।
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ।।९।।

एवं भूतं ब्रह्म यः जानाति, स ब्रह्मैव भवति, ब्रह्मणे एव भवति । **सुपां सुलुक्** (पा०अ० ७-१-३९) इत्यनेन ङेर्लुक् अस्य कुले भगवद् विमुखो न भवति, शोकं पाप्मानं च तरति ।।श्रीः।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदान्ताधिकारं वर्णयति —

तदेतदृचाभ्युक्तम् -

क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः ।
तेषामेवैषां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ।।१०।।

इदमेव ऋचा मन्त्रेणोक्तम्-ये क्रियावन्तः सदाचाराः श्रोत्रियाः वेदपारगाः, ब्रह्मनिष्ठाः, ब्रह्मणि निष्ठा येषां तथाभूताः, ये अग्निहोत्रम् अजुह्वत । यैः शिरोव्रतं जटाबन्धनरूपं वानप्रस्थे चीर्णं तेषामेव ब्रहमविद्यां वदेत् उपदिशेत् ।श्रीः।।

अथोपसंहरति —

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते ।
नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ।।११।।

इदमेव अङ्गिराः शौनकाय प्राह, एतत् अचीर्णव्रतः अकृतव्रतो नाधीते । परम ऋषिभ्यः नमः नमस्कारः **ऋत्यकः** इत्यनेन प्रकृतिभावः । द्विरुक्तिरादरार्था, ग्रन्थसमाप्तिसूचिका च ।।श्रीः।।

मुण्डकोपनिषदो ह्यनुत्तमं रामभद्रपदभक्तिवर्धनम् ।
भाष्यमेतदथ भक्ततुष्टये रामभद्रसुधिया प्रभाषितम् ।।

इति इत्यथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषदि श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।।

।। **श्रीराघवोः शन्तनोतु** ।।



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीराघवो विजयते ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

।। अथ माण्डूक्योपनिषदि ।।

।।श्रीराघवकृपाभाष्यम् ।।

मङ्गलाचरणम्

कन्दावदान्तं जनपारिजातं नेत्रच्छविव्रीडितवारिजातम् ।
तं ब्रह्म रामं नयनाभिरामं सीता द्वितीयं कलये तुरीयम् ।।
यद् वेदान्तविदो विदन्ति विरजं विश्वं विभुं विश्वपं
यच्चाहुश्चिदचिद्विशिष्टमनघाद्वैतं परब्रह्म तत् ।
तन्मे नेत्रमलङ्कृषीष्ट सगुणं बालाकृतिश्यामलं
वासिष्ठी पुलिनेषु यत् किमपितन्नीलं महः खेलति ।।

।।माण्डूक्योपनिषदः शन्तिपाठः।।

ॐ भद्रं कर्णेभिः श‍ृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वास्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अथ शान्तिपाठो व्याख्यायते — हे देवाः द्योतनशीलाः ! वयं कर्णेभिः स्वकीय-श्रवणोन्द्रियैः भद्रं कल्याणकरमेव श‍ृणुयाम । अत्र **बहुलं छन्दसि** इत्यनेन कर्णशब्दाददन्तादपि भिसो नैसादेशः । वयं यजत्राः जयन्ते इति यजत्राः बाहुलकात् कर्तर्यपित्रल्प्रत्ययः । अथवा यजनं यजः तं त्रायन्ते इति यजत्रा अनुपसर्गेऽपि यजोपपदत्राधातोः "क" प्रत्ययः, यज्ञत्राणतत्पराः वयमक्षिभिः नेत्रैः, ननु अक्षिशब्दात् भिसि अक्षिभिः कथं न ? सत्यं अकारान्त एषः नेत्रवाची । अक्षम् - अक्षे - अक्षणि,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत एव प्रत्यक्षं- समक्षं अध्यक्ष इत्यादि संगच्छते । तर्हि कथं नैसादेशः अक्षैरिति ? पूर्वोक्तदिशैवसमाधातव्यम् । बाहुलकादप्रवृत्तिः । एवम् अक्षभिः नेत्रैः भद्रं कल्याणमेव पश्येम । एवं स्थिरैः अङ्गैः स्वस्थैः अवयवैः, **तुष्टुवाँ सः** तुष्टवांसः अतिशयेन देवं स्तुवन्तो भवेम । यद् अस्माकमायुः जीवनं तत् तनूभिः शरीरैः देवहितं देवेभ्यो हितं भगवन्निमित्तमेव व्यशेमहि नियोजमहि ।। ॐशान्तिः ! शान्तिः ! शान्तिः !, त्रितापशमनार्थं शान्तिशब्दस्य त्रिरूच्चाररणम् ।।श्रीः।।

अथ ओङ्कारशब्दस्य व्याख्यानभूतेयं द्वादशमन्त्रात्मिका माण्डूक्योपनिषत् । माण्डूक्यो नाम कश्चिदृषिः तेनेयमदर्शीत्यतो माण्डूक्योपनिषत् -

ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ।।१।।

ओम् इति एतत् इदम् अक्षरं ब्रह्म सर्वमेव ओङ्कारस्य व्याख्याभूतम् । भूतं भूतकालः, भवद् वर्तमानकालः, भविष्यत् त्रिकालातीतं निरस्तहेयगुणकं समस्तहेयप्रत्यनीकगुणगणनिलयं ब्रह्म तदपि ओङ्कार एव जगत्कारणत्वात् ।।श्रीः।।

अथ शरीरस्य जगतः कार्यभूतस्य कारणेन शरीरिणा भगवता सामानाधिकरण्यविधया तादात्म्यं सूचयति —

सर्वँ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात् ।।२।।

हि निश्चयेन एतत् सर्वं चिदचिदात्मकं जगत् ब्रह्म, ब्रह्मशरीरकम् । अयमात्मा परमात्मा ब्रह्म, यद् वा आप्नोतीत्यात्मा, अथवा शरीरशारीरि भावेन समानविभक्तिता । **यस्यात्मा शरीरम्** (श.प.ब्रा.१४) इति श्रुतेः । अयमात्मा ब्रह्म ब्रह्मशरीरं, सोऽयं आत्मा परमात्मा चतुष्पात् चतुष्पाद्विभूतिनायकः । जीवस्य तिस्रोऽवस्थाः प्रत्यवस्थं जीवात्मना सह शरीरे तिष्ठत्यन्तर्यामी परमात्मा । जाग्रदवस्थायां जीवेन सह शरीरे तिष्ठन् अन्तर्यामी विराट् कथ्यते, सहस्त्रशीर्षा स एव लक्ष्मणः । एवं स्वप्नावस्थायां जीवात्मना सह शरीरे तिष्ठन् अन्तर्यामी तैजसो हिरण्यगर्भो भवति, स एव शत्रुघ्नः । पुनः सुषुप्तौ जीवेन सह शरीरे वर्तमानः प्राज्ञः स हि भरतः । पुनस्तुरीयावस्थायां जाग्रत्स्वाप्नसन्धौ जीवेन सह शरीरे तिष्ठन्नन्तर्यामी तुरीयो भवति स एव भगवान् रामचन्द्रः । इमे यथाक्रमं ओङ्कारस्य चतुरक्षरप्रकाशकाः । अकारस्य लक्ष्मणो जाग्रदधिष्ठाता विराट्, उकारस्य शत्रुघ्नः स्वप्नस्वामी तैजसो हिरण्यगर्भः, मकारस्य प्रकाशकः प्राज्ञः सुषुप्तीशो भरतः, अर्धमात्रा प्रकाशको रामस्तुरीय परमेश्वरः । तद्यथा —

अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।
उकाराक्षरसंभूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसंभवः ।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ।।

श्रीरामोत्तरतापिन्युषित् - १-१ ।।श्रीः।।

अथ जागरितस्थानं विश्वं निरूपयति —

जागारितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः ।
स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।।३।।

जागरितं जाग्रदवस्था स्थानं निवासो यस्य स जागरित स्थानः, एवं बहिः संसारविषयासक्ता प्रज्ञा यस्य स बहिःप्रज्ञः, तथा च स्थूलम् इन्द्रियसगोचरं भुङ्क्ते इति स्थूलभुक्, सप्त अग्निहोत्रक्रियाः वृहदारण्यकदर्शिताः अङ्गानि यस्य सः सप्ताङ्गः । तथा हि श्रुतिः —

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरुपः प्राणः पृथग्वर्मात्मा सन्देहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादौ इति ।। एवम् एकोनविंशतिः दशेन्द्रियाणि, पञ्चप्राणाः चत्वार्यन्तःकरणानि मुखानि प्राप्तिद्वाराणि यस्य एकोनविंशतिमुखः । एवं स्थूलस्य भुक् भोक्ता इति प्राचामनुरोधेन । वस्तुतस्तु स्थूलानपि प्राकृतबुद्धीन् जीवान् भुनक्ति पालयति इति स्थूलभुक्, प्राचीनार्थे स्वीकृते परमात्मनि भोक्तृत्वापत्तौ । **अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति** (मु०उ० ३-१-१) इति श्रुतिर्व्याकुप्येत । एतेन **स एवं विशिष्टो वैश्वानरो यथोक्तैर्द्वारैः शब्दादीन्स्थूलान्विषयान्भुङ्क्त इति** स्थूलभुक् मा०उ० ३ शांकरभाष्य इति शंकर वचनम्,

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक् ।
आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत ।।

(मा०उ०गौ०का०३)

इति शङ्कराचार्यपरमगुरूणां गौडपादानामपि कारिका व्याख्यानं श्रुति विरुद्धत्वात् निरस्तम् । न हि कोऽपि धर्मावलम्बी आस्तिकोऽपि श्रुतिविरुद्धमपि कस्यचिद्व्याख्यानं समादृश्येत । ननु स्थूलं भुनक्तीति स्थूलभुक् इति भवद् व्याख्याने किं मानं ? अनश्नन्नन्यो (मु०उ० ३-१-१) इति श्रुतिरेव । अथ तर्हि **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता** (तै०उ० १-१) इति श्रुतिः कथं संगच्छेत ? इति चेच्छृणु, ब्रह्मणा इति तृतीया, सा च सह इति सहार्थयोगे, स च सह शब्दः तृतीयान्तस्याप्रधानत्वद्योतकः । **सह युक्तेऽप्रधाने** पा०अ० २-३-१९, इति सूत्रानुरोधात् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं भोगे जीवस्य मुख्यकर्तृत्वे सहार्थयुक्ततृतीयार्थब्रह्मणो भोगे अप्रधानकर्तृत्वस्य विवक्षणेनादोषात् ।

अत एवं -

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

गीता ९-२६

इति भगवद्वाक्यं सुसंगतम् । तस्मादचिद् भोग्यं, चिद्भोक्ता, तद् विशिष्टः परमेश्वरो भगवान् प्रेरयिता, इत्येव राद्धन्तयामः । अत एव श्वेताश्वतरोपनिषदि भगवती श्रुतिः साटोपं विशिष्टाद्वैतवादमेव सिद्धान्तयन्ती ब्रह्मत्रैविध्यनिरूपणावसरे चितं जीवात्मानं भोक्तारम् , अचितं जगद्भोग्यं, तद् विलक्षणं परमात्मानं प्रेरयितारं प्रत्यपीपदत् । तद्यथा —

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित् ।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ।।

(श्वे० उ० १-१२)

इत्यनेन विशिष्टाद्वैतवादः स्पष्टं समर्थितः । एवं स्थुलप्रपंचस्य पालकः विश्वेषां नराणामयं वैश्वानरः, विश्वेनराः यस्मिन् स वैश्वानरः इति विग्रहे **नरे संज्ञायाम्** (पा० अ० ६-३-१२९) इत्यनेन विश्वशब्दघटकह्रस्वाकारस्य दीर्घः । वैश्वानरः स एव प्रथमः पादः, भगवद् विभूत्यंशविशेषः लक्ष्मणः विराट् । अत एव मानसे —

शेष सहस्रशीष जग कारन । जो अवतरेउ भूमि भय टारन ।।

(मानस १-१७-७) ।।श्रीः।।

अथ तैजसं निरूयति —

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ।।४।।

परमात्मनः द्वितीयः पादः तैजसः तेजोमयः, स च स्वप्न स्थानः, स्वप्ने तिष्ठति इति स्वप्नस्थानः स्वप्नावस्थः विभुः । स च सप्ताङ्गः । एकोनविंशतिमुखः पूर्ववद् दशेन्द्रियचतुरन्तःकरणपञ्चप्राणप्रापकद्वारः । प्रविविक्तं शयानं जीवात्मानं भुनक्ति इति प्रविविक्तभुक् एष द्वितीयपादभूतः शत्रुघ्नः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ सुषुप्तिस्थानं निरूपयति —

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ।।५।।

यत्र यस्यामवस्थायां सुप्तः न वा कञ्चन कामं कामयते इच्छति, न वा कंचन स्वप्नं पश्यति प्रगाढनिद्रावशात् तद् अवस्थानं सुषुप्तं कथ्यते । तत्र तिष्ठन् अयमात्मा परमात्मा आनन्दमयः आनन्दप्रचुरः आनन्दस्वरूपश्च । अत एव आनन्दभुक् , आनन्दं भुनक्ति तथा भूतः, न तु आनन्दं भुङ्क्ते इति आनन्दभुक् । अतः परमात्मा आनन्दसिन्धुः कथ्यते, सिन्धुर्न जलं भुङ्क्ते, किन्तु भुनक्ति । अत एव मानसकाराः —

जो आनन्द सिन्धु सुखरासी । सीकर ते त्रैलोक सुपासी ।।
(मानस १-१९७-५)

स च चेतोमुखः चेतः चित्तं मुखं प्राप्तिद्वारं यस्य स चेतोमुखः, एवं भूतः, अनेकः एकः संपद्यमानः एकीभूतः, प्रतिशरीरं विभक्तोऽपि एकः । अतः प्रज्ञानघनः, प्रज्ञानविग्रहः प्राज्ञ एव तृतीयः पादः, स च भरतः ।।श्रीः।।

अथ प्राज्ञं विशिनष्टि —

एष सर्वेश्वर एव सर्वज्ञः एषोऽन्तर्याम्येष योनिः
सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ।।६।।

अयमेव सर्वेषाम् ईश्वरः सर्वेश्वरः, एषः सर्वज्ञः सर्वं जानाति तथाभूतः, एष एव अन्तर्यामी सर्वशरीरित्वात् सर्वनियन्त्रितत्वाच्च । अयमेव सर्वस्य चिदचद्वर्गस्य योनिः कारणम्, अयमेव भूतानां प्राणिनां प्रभवाप्ययौ उत्पत्तिप्रलयौ, इदं प्राचीनानुरोधेन । वस्तुतस्तु **एष सर्वेश्वर** इति मन्त्रः तुरीयतत्वं विशिनष्टि । अत एव एषः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिबहिर्भूतः तुरीयः परमात्मा श्रीराम एव सर्वेश्वरः, सर्वज्ञः, अन्तर्यामी, सर्वस्य योनिः, भूतानां प्रभवाप्ययौ । अत एव वाल्मीकीयरामायणे श्रीराम एव सर्वाणि विशेषणानि संघटन्ते । यथा "सर्वेश्वरः" **स्वामीलोकस्य राघवः** (वा०रा० ६-११७-११) **सर्वज्ञः**

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
आतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।।
(वा०रा० ६-१७-५१)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तर्यामी त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।।

(बा०रा०६-११७-२३)

सर्वस्य योनिः प्रभवाप्ययौ -

सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान्सचराचरान् ।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ।।

(बा.रा. ५-५१-३९)

सर्वेश्वरत्वे स्पष्टमाह —

सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ।।

(बा.रा.५-५१-३९)

किं च गोस्वामि तुलसीदासनये श्रीरामस्तुरीयः, वैश्वानरो जागरितस्थानो लक्ष्मणः, स्वप्नस्थानस्तैजसः शत्रुघ्नः, सुषुप्तिस्थानः प्राज्ञो भरतः, इति पूर्वमपि श्रुतिप्रमाणं दर्शितम् ।

अत एव चतस्रोऽवस्था उपमानभूताः यथाक्रमं चतसृणां उर्मिलाश्रुतिकीर्तिमाण्डवी-सीतानाम् । तद्यथा प्राह भगवान् मानसकारस्तुलसीदासः —

सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं ।।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं ।।

(मानसँ १-३२५-४)

अतएव तृतीय सोपाने गोस्वामिपादाः प्राहुः —

जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलम् ।।

(मानस.३-३.९)

पुनश्च तुरीयमिमं रामचन्द्रमेव गोस्वामितुलसीदासमहाराजाः असकृदन्तर्यामी इति समघोषयन् । यथा -

अन्तरजामी राम सकुच सप्रेम कृपायतन

(मानस२-२०१)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर अन्तरजामी ।।

(मानस २-६६-८)

जानतहूँ पूछिय कस स्वामी । सबदरसी तुम्ह अन्तरजामी ।।

(मानस ३-८-७)

एवं श्रीसीतामपि रामाभिन्नतया प्रतिपादयन् तामपि समानत्यन्तर्यामित्वेन तुलसीदासः —

अंतरजामी राम सिय तुम्ह सरवग्य सुजान ।
जौं फुर कहहुं त नाथ निज कीजिय वचन प्रवान ।।

(मानस २-२५६)

एवं यदि शांकरमतेन **एषः सर्वेश्वरः** इति मन्त्रः तृतीयपादरूपस्य प्राज्ञस्यैव व्याख्यानं, तर्हि एक एव प्राज्ञः कथं सर्वज्ञः स्यात् ? एवं तस्यान्तर्यामित्वे श्रीतुलसीदासाभिप्रेततुरीयश्रीसीतारामान्तर्यामित्वं विरुद्धयेत । ननु विरुद्ध्यतां कामं, न तुलसीदासः कश्चिदृषिः स तु लोकभाषाकविः ? अहो ! इति प्रलपतस्ते कथं न रसना ते विशीर्यते । श्रीतुलसीदासो भाषाकवित्वेऽपि भगवद् वेदव्यासवचनात् महर्षिवाल्मीक्यवतारः साक्षान्महर्षिः, अतस्तद्वाक्यं पुराणमिव परतः प्रमाणकोटिमाटीकते । तथा हि भविष्योत्तरपुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्थाध्याये उमामहेश्वरसंवादे वेदव्यासवचनम्—

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति ।
रामचन्द्रकथां साध्वि भाषाबद्धां करिष्यति ।।

यदि त्वं पुराणमपि न मन्येथाः ? तर्हि त्वादृक्षेण नास्तिकशिरोमणिना सह सम्भाषणमपि निरयाय । ततो मदुक्त एव पन्था ज्यायान् । अनेन त्वत्कल्पितव्यष्टिसमष्टिज्ञानकल्पना गौरवमपि न स्यात् । तस्मात् प्राज्ञस्तृतीयः पादः सर्वज्ञस्तुतीयः । किं च अथर्वश्रुतिः भरतं प्राज्ञं प्राह —

प्राज्ञात्मकस्तु भरतः स च नान्तर्यामी । अन्तर्यामी रामः स च न प्राज्ञः । अतोऽयं मन्त्रः तुरीयव्याख्यानपरः ।।श्रीः।।

अथ तुरीयं स्वरूपतो लक्षयन्तीर श्रुतिः तद् विज्ञेयत्वमाह —

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।।७।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ननु यदि पूर्वोक्तं पादत्रयं परमात्मा सबन्ध्येव तर्हि किमनेन प्रतिषेधवचनेन ? इति चेदुच्यते—पूर्वोक्ताः त्रयः पादाः ज्ञेयाः, चतुर्थश्च विज्ञेयः, इति विशेषः। आत्मशब्दोऽत्र परमात्मपरः स च शरीरानवच्छिन्नः, यद्यपि जाग्रदाद्यवस्थावच्छिन्नः परमेश्वरोऽपि न विकारवान् , विकारास्तु विशेषणे ह्यचिति तथापि कार्यब्रह्मैव तत् पादत्रयावच्छिन्नम्। तुरीयमेव कारणं ब्रह्म, अतो निषेधन्त्यवस्थात्रयावच्छिन्नं श्रुतिः प्राह— **नान्तः प्रज्ञयम्** न विद्यतेऽन्तःप्रज्ञा यस्मिन्, अर्थात् अन्तःप्रज्ञ प्रविविक्तभुक् तैजसं नेदम्। न बहिःप्रज्ञं बहिर्जगति प्रज्ञा ज्ञानं यस्य तद् बहिःप्रज्ञं जाग्रदवच्छिन्नमपि नेदं ततोऽपि विलक्षणम्। तर्हि द्वयोरन्तरालेन भवितव्यम् ? अत आह - **उभयतः** जाग्रत्स्वप्नयोः प्रज्ञा ज्ञानं यस्य तत् उभयतः प्रज्ञं न नेदं ततोऽपि व्यतिरिक्तम्। तर्हि आनन्दभुजा भवितव्यम् ? अत आह- प्रज्ञानघनं सुषुप्तावस्थं घनप्रज्ञमपि नेदम्। तर्हि मुक्तात्मना भविव्यं नित्यज्ञानवता ? अत आह-न प्रज्ञं प्रज्ञा नित्यमस्त्यस्मिन् इति प्रज्ञं नेदं मुक्तात्मा। तर्हि बद्धेन भवितव्यम् ? अत आह - नाप्रज्ञं, अप्रज्ञा बुद्ध्यभावो नित्यं यस्मिन् तत् अप्रज्ञं संसारसागरसरणशीलं विस्मृतश्रीरामललित लीलम् अप्रज्ञं बद्धजीवजातमपि नेदम्। तर्हि शून्यतेमम् ? इत्यत आह- अस्ति पूर्णं किन्तु **अदृश्यं,** प्राकृतचक्षुषा न दृश्यते। **अव्यवहार्यम्** प्राकृतशरीरेण न व्यवहर्तुं शक्यते, यद्वा वाचा न व्यवहार्यम्। **अग्राह्यम्** प्राकृतहस्ताभ्यां न गृहीतुं शक्यते। **अलक्षणम्** नानुमातुं प्रभूयते। अचिन्त्यम् नैव चेतसा चिन्तनविषयः क्रियते। अत एव **अव्यपदेश्यम्** अतीतनामरूपत्वात् न व्यपदिश्यते। अतः एकः आत्मा परमात्मा इत्येव प्रत्ययो विश्वासः सारः तत्वं यस्य तथाभूतः, तत्। एवं **प्रपञ्चोपशमम्** बाह्य प्रपञ्चानाम् उपशामकम् अत एव **निरुपद्रवम्** अत एव **शान्तं** परमशान्तिमयम्। पुनश्च **शिवम्** सकलकल्याणगुणाकरं, **द्वैतम्** जगति स्वनिर्मितातिरिक्तभावना न विद्यते द्वैतं यस्मिन् तत् अद्वैतं, जगदेव स्वजनितं मन्यमानम्। एवं भूतं विलक्षणं परमात्मानं चतुर्थं चतुर्थचरणं मन्यन्ते। यद्वा दशरथस्य चतुर्थं पुत्रं श्रीरामं मन्यन्ते, स्वीकुर्वन्ति वसिष्ठादयः। स आत्मा परमात्मा। यथा प्राह श्रीमद्रामायणे मन्दोदरी - **व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः** ॥ (वा.रा. ६-१११-९९)

स विज्ञेयः विशिष्टाद्वैततरीत्याज्ञातव्यः ॥श्रीः॥

अथ मात्रापादयोः अभेदं वर्णयति —

सोऽयमात्माऽयक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा
मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥

अयं आत्मा परमात्मा अध्यक्षरं प्रणवस्य अर्धमात्रायामधितिष्ठति। अकार-उकार-मकार इति ह्रस्व दीर्घ प्लुतमात्राः इमे एव त्रयः पादाः ॥ श्रीः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ जाग्ररितस्थानं निरूपयति —

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्ते-रादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेदा ।।९।।

अकारः वैश्वानरेणाधिष्ठीयते, य एवं वेद सः सर्वान् कामान् प्राप्नोति ।। श्रीः ।।

अथ द्वितीयं निरूपयति —

स्वप्नस्थानस्तैजसउकार द्वितीया मात्रोत्कयर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद।।१०।।

उकारः स्वप्नस्वामी तैजसः, यः एवं वेद स विज्ञानपरम्परां तनोति । तस्य कुले कोऽपि ब्रह्मज्ञानहीनो न भवति ।। श्रीः।।

अथ तृतीयं निरुपयति —

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रामितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ।।११।।

तृतीयः पादः मकारः, स एव प्राज्ञः, सैव तृतीय मात्रा तस्याः मितिः अपीतिश्च नाम । एवं जानन् मिनोति सर्वमनुमानविषयी करोति ।। श्रीः।।

अथ चतुर्थपादं निर्दिशति —

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ।।१२।।

सः अमात्रः मात्राविहीनः, अत एव व्यवहारानर्हः शिवः अद्वैतः स्वसमानप्रतियोगिज्ञानवर्जितः, स एव आत्मा परमात्मा, एवमखण्ड ओङ्कारे अखण्डः परमात्मा श्रीरामः । यः एवं वेद जानाति, स आत्मना स्वेनैव देहेन्द्रियमनोबुद्धि-व्यतिरिक्तेन भगवन्नित्यकिङ्करभूतेन पूतेन प्रत्यगात्मना आत्मानं परमात्मानं संविशति, सामीप्यमुक्त्या तं प्रविशति । द्विरुक्तिः उपनिषत् समाप्तिसूचिका ।।श्रीः।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं माण्डूक्योपनिषत्त्विदम् ।
श्रीरामभद्राचार्येण भाषितं रामभक्तये ।।

इति श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिश्रीरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघवकृपाभाष्यं माण्डूक्योपनिषदि सम्पूर्णम् ।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीमद्राघवो विजयते।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

अथ तैत्तिरीयोपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

प्रथमोऽनुवाकः

मङ्गाचरणम्

जनकजापते जह्नुकन्यका जनककार्मुकज्यारवव्रतिन् ।
जनकतापहन् जैत्रविक्रम जनकलिं हरे जारय द्रुतम् ।।१।।

अथ तैत्तिरीयोपनिषत् श्रीराघवकृपाभाष्य नाम्ना विवरणेन विभूष्यते । तत्र प्रथमं शिक्षाध्यायः, प्रथमोऽनुवाकः सशान्तिपाठः —

ॐ शं नो मित्रः शं वरूणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।१।।

शिक्ष्यते अभ्यस्यते शास्त्रं यया सा शिक्षा तत्सम्बन्धी अध्यायः शिक्षाध्यायः । तत्र प्रथमेऽनुवाके मित्रा वरुणार्यमेन्द्रबृहस्पतिविष्णूनां स्मरणम् । यथा षडमी षडङ्गवेदाध्ययनं निर्विघ्नं कुर्वन्तु । नः अस्मभ्यं मित्रः, वरुणः, अर्यमा पितृदेवता प्रमुखः, इन्द्रो देवराजः, बृहस्पतिर्देवगुरुः, उरुक्रमः उरुघाक्रमः पाद विक्षेपो यस्य स उरुक्रमः विष्णुः वामनावतारो भगवान् उपेन्द्रः, इमे सर्वे शं कल्याणरूपाः भवन्तु । भवतु इति प्रत्येकमन्वेति । ते तुभ्यं ब्राह्मणे नमः । हे वायो ! ते तुभ्यं नमस्काराः, यतो हि त्वं प्रत्यक्षं प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धं ब्रह्मासि । त्वां भवन्तमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म, त्वा च प्रत्यक्षविषयं वदिष्यामि, निजहृदये स्थिरीकरिष्यामि । ऋतं यथार्थं वदिष्यामि । सत्यं सद्भ्यो हितं वदिष्यामि, व्याहरिष्यामि । माम् अवतु रक्षतु, वक्तारम् उपनिषत् प्रवाचकम् अवतु रक्षतु । दृढीकरणार्थं द्विरुच्चारणम् । त्रिःशान्तिपाठः तापत्रयविनाशाय ।।श्रीः।।

।। इति शिक्षाध्याये प्रथमोऽनुवाकः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

अथ शिक्षा प्रतिपाद्यमाह —

शीक्षां व्याख्यास्यामः । वर्णः स्वरः । मात्रा बलम् । साम सन्तानः । इत्युक्तः शीक्षाध्यायः ॥

शीक्षां व्याख्यास्यामः इदं प्रतिज्ञावाक्यम् । तत्र शिक्षायां वर्णाः द्विपञ्चाशत्, स्वराः सप्त, मात्रा तिस्रः बलमुच्चारणसामर्थ्यम् इति शिक्षा संक्षेपः । शीक्षा इत्यत्र तु **अन्येषामपि दृश्यते** इति दीर्घः । वेदोच्चारणे वर्णस्वरमात्राबलानां प्रयोगः ॥श्रीः॥

॥इति द्वितीयोऽनुवाकः॥
॥ श्रीराघवोः शन्तनोतु ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः

अथ महासंहिताव्याख्यानात् पूर्वं मंगलमाचष्टे —

सह नौ यशः । सह नौ ब्रह्मवर्चसम् । अथातः सँ हिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः । पञ्चस्वधिकरणेषु । अधिलोकमधिज्योतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम् । ता महासँहिता इत्याचक्षते । अथाधिलोकम् । पृथिवी पूर्वरूपम् । द्यौरूत्तररूपम् । वायुः संधानम् । इत्यधिलोकम् ॥१॥

नौ गुरुशिष्ययोः यशः सह सहैव भवतु । पुनश्च नौ आवयोः ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मतेजः सहैव भवतु । अतः एतस्मात् मंगलाशासनादनन्तरं संहितायाः सम्यक् हितं यस्यां तस्याः सन्धिप्रक्रियायाः उपनिषदं रहस्यविद्यां पञ्चसु अधिकरणेषु व्याख्यास्यामः प्रवक्ष्यामः । तत्र अधिलोकादयः पञ्चसंहिता, लोके इत्यधिलोकं विभक्त्यार्थेऽव्ययीभावः । लोकं कथं सन्धिः ? संहितायां त्रयः अवयवाः, पूर्वरूपम् उत्तररूपं द्वयोः संयोजकमुपकरणं तदेव सन्धिः कथ्यते । तत्र पृथिवीदिवोः संहितायां पूर्वरूपं पृथिवी, उत्तरं द्यौः स्वर्गः, द्वयोः संयोजकमाकाश एव सन्धिः । सन्धीयेते संयोज्येते पूर्वोत्तररूपे येन स सन्धिः । वायुः सन्धानं प्रेरकम् ॥श्रीः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ अधिज्यौतिषाधिविद्याधिप्रजाध्यात्मानां संहितात्वं वर्णयति —

अथाधिज्यौतिषम् । अग्निः पूर्वरूपम् । आदित्य उत्तररूपम् । आपः सन्धि। वैद्युतः सन्धानम् । इत्यधिज्यौतिषम् । अथाधिविद्यम् । आचार्यः पूर्वरूपम् । अन्तेवास्युत्तररूपम् । विद्या सन्धिः । प्रवचनँ् सन्धानम् । इत्यधिविद्यम् ।।२।।

अथाधिप्रजम् । माता पूर्वरूपम् । पितोत्तररूपम् । प्रजासन्धिः ।

प्रजननँ् सन्धानम् । इत्यधिप्रजम् ।।३।।

अथाध्यात्मम् । अधरा हनुः पूर्वरूपम् । उत्तरा हनुरुत्तररूपम् । वाक्सन्धिः । जिह्वा सन्धानम् । इत्यध्यात्मम् । इतीमा महासँ्हिता य एवमेता महासँ्हिता व्याख्याता वेद । सन्धीयते प्रजया पशुभिः । ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन

अग्निर्ज्ञेयं पूर्वरूपमुत्तरं रविरुच्यते ।
वायुः सन्धिश्च सन्धानं तडिदित्यधिज्यौतिषम् ।।

आचार्यः स्यात् पूर्वरूपमुत्तरं शिष्य उच्यते ।
विद्यासन्धिश्च सन्धानमधिविद्यं प्रवाचनम् ।।

माता ज्ञेयं पूर्वरूपं पितारूपं तथोत्तरम् ।
प्रजासन्धिः प्रजननं सन्धानमित्यधिप्रजम् ।।

अधरा हनुः पूर्वरूपमुत्तराहनुरुत्तरम् ।
जिह्वासन्धिश्च सन्धानं वागित्यध्यात्ममुच्यते ।।

संहिता पञ्चकं या वै वेत्ति ब्रह्मविचारवित् ।
सन्धीयेते उभौ लोकौ स्यनैवात्र संशयः ।।श्रीः।।

।।इति तृतीयोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ चतुर्थोऽनुवाकः ।।

अथ चतुर्थानुवाके ऋषिर्ब्रह्मयज्ञसमृद्धये परमेश्वरं प्रार्थयते —

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः । छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देवधारणो भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणम् । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम् । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः । श्रुतं मे गोपाय । आवहन्ती वितन्वाना ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्र प्रथमं मेधाकामस्य मेधा प्राप्तये केचन जपार्थं मन्त्रविशेषाः । अत्र भगवद् वाचकस्य ओङ्कारस्य प्रथमं स्तवनम् । यः छन्दसामृषभः श्रेष्ठः छन्दोभ्यः प्रथमम् अधिअमृतात् अमृतरूपात् परमात्मनः ब्रह्ममुखं निमित्तीकृत्य संबभूव । यथा पौराणिकाः आमनन्ति —

ओङ्कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्वा बहिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ।।

एवं यः विश्वरूपः सर्वरूपः, स इन्द्रःमन्त्रराजैश्वर्यपूर्णः मा मां मेधया आशुग्रहणशक्त्याा स्पृणोतु प्रीणयतु । मा- इन्द्रो इति पदच्छेदः । हे देव ! अहं अमृतस्य ब्रह्मानन्दस्य धारणः धारयिता भूयासम् । मे मम शरीरं विचर्षणं विष्णुं चरति गच्छति इति विचर्षणम् । मे मम जिह्वा मधुमत्तमा अतिशयेन मधुमती मधुरभाषिणी । तथा च अहं कर्णाभ्यां भूरि अधिकं विश्रुवं विश्रुयासम् । अत्र व्यत्ययात् यासुडभावः, बङादेशश्च । हे ओङ्कार ! त्वं ब्रह्मज्ञानधारणशक्त्या पिहितः, ब्रह्मणः वेदात्मकस्य परमात्मनः, परमात्मकस्य वा वेदस्य कोशः भाण्डागारम् असि । अतः हे प्रणवरूप-पमात्मन् ! मे मम श्रुतं शास्त्रं वेदान्तश्रवणं च गोपाय रक्ष, इति जपमन्त्राः ।।श्रीः।।

अथ श्रीकामस्य होममन्त्रः निर्दिश्यते —

"कुर्वाणा चीरमात्मनः । वासाँसि मम गावश्च । अन्नपाने च सर्वदा । ततो मे श्रियमावह । लोमशां पशुभिः सह स्वाहा । आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । विमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा । शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ।।२।।

कुर्वाणा, अचीरम् आत्मन इति पदच्छेदः । मेधा प्राप्त्यन्तरं श्रीरपेक्षते, पूर्व तत्स्वरूपं वर्णयति । अचीरम् अचिरम् **अन्येषामपि दृश्यते** इत्यनेनदीर्घ ! । अतिशीघ्रम् आत्मनः मम आराधकस्य वासांसि वस्त्राणि आवहन्ती आनयन्ती "शतृप्रत्यान्तमेतत्, सर्वदा मम गावः 'व्यत्पयात्' जसन्तं, गाः इत्यर्थः । धेनु वितन्वाना विस्तारयन्ती । तथा अन्नपाने भोजनजले कुर्वाणा उत्पादयन्ती । एवं भूता या श्रीः तां मे श्रियं लोमशां लोमयुक्तानां समूहैः मेषादिभिः पुशुभिः अश्वादिभिः सह आवह आनय । इति मन्त्रं जपन् स्वाहा उच्चार्य हवनं कुर्यात् । एवं मेधाश्री प्राप्त्यनन्तरं विद्यार्थ्यागमनं प्रार्थयते । हे भगवान् ! मा मां समस्ताभ्यो दिग्भ्यो ब्रह्मचारिणः आयान्तु । एवं मां वि विशिष्टाः विद्याव्यसनिनः ब्रह्मचारिणः आयान्तु । एवं प्रकृष्टाः ब्रह्मचारिणः मामायान्तु । ते दमायन्तु दमशीलाः भवन्तु, शमायन्तु शमशीलाश्च भवन्तु । इति होम प्रकारः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनश्च श्री प्राप्तिरिशिष्टां यशोधनादिप्राप्तिं प्रार्थयते—

यशो जनेऽसानि स्वाहा । श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा । तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा । स मा भग प्रविश स्वाहा । तस्मिन् सहस्रशाखे निभगाहं त्वयि मृजे स्वाहा । यथापः प्रवता यन्ति यथा मासा अहर्जरम् । एवं मा ब्रह्मचारिणो धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा । प्रतिवेशोऽसि प्र मा पाहि प्र मा पद्यस्व ।।३।।

अत्र यशःशब्दः यशस्विपरः, जनशब्दश्च लोकवाची । हे भगवान् । त्वत्कृपया अहं जने लोके यशः यशस्वि असानि भवानि । वसीयसः धनवतः श्रेयान् प्रशस्यतरो भवानि । अत्र वसीयस : इत्यस्य वस्यसः इति रूपम् । व्यत्ययात् ईकारस्य लोपः । हे भग । भगानि सन्त्यस्मिन् इति भगः तत्सद्धौ हे भग । हे पूजनीय । तं त्वा प्रविशानि, अत्र इच्छार्थे लोट् स च प्रार्थनारूपः । एवं भूतः परम पूजनीयस्त्वं मा मां प्रविश प्रविष्टो भव, यथा आवयोस्तादात्म्यं स्यात् । एवं भूते सहस्रशाखे अनेकशाखामये वैदिकवाङ्मयमूलभूते तत्र भवति अहं निमृजे निकृष्टानि पातकानि शोधयामि । हे धातः ! निखिलजगद्धारणकर्तः । यथा प्रवता निम्नपथाः आपः जलानि आयान्ति यथा च अहानि जरयतीति अहर्जरः दिवस समावेशकर्ता संवत्सरः **संवत्सरोऽहर्जरो शरंद्वर्षमथापि वा** इति कोशात् । तम् अहर्जरं संवत्सरं, यथा मासाः चैत्रादयः आयान्ति, एवं सर्वतः सर्वदिग्भ्यः मां ब्रह्मचारिणः आयान्तु, आगच्छन्तु । हे प्रणवात्मक परमात्मन् ! त्वं प्रतिवेशोऽसि संसारयात्राविश्रामस्थानमसि । मां प्रभाहि प्रकाशय, मां प्रपद्यस्व सेवकत्वेन स्वीकुरु ।।श्रीः।।

।। इति चतुर्थोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ पञ्चमोऽनुवाकः ।।

इदानीं गायत्र्याः व्याहृतयः विचार्यन्ते, तत्र चतुर्थी मह इति व्याहृतिः सविशेषं व्याख्यायते—

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः । तासामु ह स्मैतां चतुर्थीं महाचमस्यः प्रवेदयते मह इति । तद्ब्रह्म । स आत्मा । अङ्गान्यन्या देवताः । भूरिति वा अयं लोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । सुवरित्यसौ लोकः ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मह इत्यादित्यः । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते । भूरिति वा आग्निः । भुव इति वायुः । सुवरित्यादित्यः । मह इति चन्द्रमाः । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीँषि महीयन्ते । भूरिति वा ऋचः । भुव इति सामानि सुवरिति यजूँषि ।।२।।

मह इति ब्रह्म । ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते । भूरिति वै प्राणः । भुव इत्यपानः । सुवरिति व्यानः । मह इत्यन्नम् । अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते । ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा । चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः । ता यो वेद । स वेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मै देवा बलिभावहन्ति ।।३।।

भूर्भुवः स्वः इति तिस्रो व्याहृतयः प्रसिद्धाः । तत्र चतुर्थीं महः इति व्याहृतिं माहाचमस्यः ऋषिः प्रवेदयते साक्षात् कुरुते । तिसृषु व्याहृतिषु लोकाः त्रयः अग्निवाय्ववादित्याः ज्योतींषि, एवं ऋग्यजुःसामानि प्राणापानव्याना इति चत्वारि त्रिकाणि यथाक्रमं विराजन्ते । एवं महोव्याहृतौ आदित्यः चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्नम् इति चतुष्कं विराजते । एवं चतुश्चतुष्कमण्डिताः चतस्रो व्याहृतयो यो वेद जानति, स एव ब्रह्म वेद, इत्यनुवाकार्थः ।।श्रीः।।

।। इति पञ्चमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ षष्ठोऽनुवाकः ।।

अथ प्राचीनयोग्याचार्यो ब्रह्मोपासनां निर्दिशति—

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः । तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः । अमृतो हिरण्मयः । अन्तरेण तालुके । य एष स्तन इवावलम्बते । सेन्द्रयोनिः । यत्रासौ केशान्तो विवर्तते । व्यपोह्य शीर्षकपाले । भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठिति । भुव इति वायौ ।।१।।

सुवरित्यादित्ये । मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः । श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः । एतत्ततो भवति । आकाशशरीरं ब्रह्म । सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम् । शान्ति समृद्धममृतम् । इति प्राचीनयोग्योपास्स्व ।।२।।

अन्तर्हृदये योऽवकाशात्मक आकाशः तस्मिन् अयं हिरण्मयः कनकसदृशपीताम्बरधारी ज्योतिर्मयो वा,. तत्र तालुत्यक्त्वा यः लम्बमानोऽस्थि विशेषः तमभिव्याप्य मनोमयः, मन इव सूक्ष्मः दशाङ्गुलपरिमाणः विराजते । स च चतुर्व्याहृतिदेवतासु अग्निवाय्वादित्यब्रह्मसु प्रतिष्ठितः । इमं यः जानाति सः स्वाराज्यं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वातन्त्र्यं प्राप्नोति । हे प्राचीनयोग्य । ब्रह्म कदापि निराकारं न भवति । इत्येव वर्णयितुं पञ्चभिः विशेषणैः यथाक्रमं परव्यूहविभवान्तर्याम्यर्चावतारं ब्रह्म विशिनष्टि । आकाशमिव नीलं, व्यापकं, निर्लेपं, सावकाशं, कृपाकादम्बिनीवर्षुकं शरीरं श्रीविग्रहो यस्य इति परम् । **सत्यात्मक प्राणारामं** सत्यं च आत्मा च प्राणश्च तेषामारामो यस्मिन् तथाभूतम् । यद् वा सत्यमात्मा आत्मवत् प्रियः येषां ते सत्यात्मानः तेषां प्राणाः आरमन्ति यस्मिन् तत् सत्यात्मप्राणारामम् , इदं व्यूहात्मकंतस्मिन्नेव वासुदेवसङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरूद्धाभिधेये तस्यात्मनां श्रीवैष्णवानां प्राणाः रमन्ते । **मनआनन्दम्** मनःसु आनन्दो येन तथाविधम् इदं विभवात्मकं श्रीरामकृष्णादिरूपम् । तत्रैव श्रीवैष्णवभक्तानां मानसानन्ददर्शनात् । **शान्तिसमृद्धम्** अन्तर्यामिरूपं, प्रतिहृदयं ताटस्थ्येन शान्त्या विराजमात्वात् । **अमृतम्** मरणधर्मभिन्नम् आकल्पं शालग्रामादौ विराजमानत्वात् । विशेषविग्रहेषु लोकोत्तरचमत्कारदर्शनाच्च । यथा श्रीगिरिधरगोपालविग्रहस्य मीराविष सामर्थ्यापहरणगाथायाः प्रत्यक्षदर्शनं सत्येन प्रमाणितम् , इत्येव अर्चावतारस्य अमृतत्वं यन्मीरया निवेदितं विषमपि कृतममृतं तेन । अथेदं श्रीमकथाफलकेऽपि । **आकाश शरीरम्** श्रीरामश्याममर्तिः अहल्योद्धारप्रसंगे । तत् कृपाकादम्बिनीवर्षणदर्शनात् । **सत्यात्मप्राणारामता** श्रीदशरथप्रसंगे सत्यात्मा दशरथः तस्य प्राणाः श्रीराम एव रमन्ते ।

चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा ।
राजादशरथः स्वर्गं जगाम विलपन् सुतम् ।।

वा०रा० १/१/३२,३३

मन आनन्दता अरण्ये मुनीनाम् । **शान्ति समृद्धिः** विभीषणशरणागतौ **अमृतत्वम्** लंकासमरभूमौ वानराणामुज्जीवने । एवं भूतं ब्रह्म श्रीराममुपास्स्व भजस्व । एवं श्रीराघवकृपालब्धमञ्जुलमनीषेण मया श्रुतिरियं सर्वतो नवीनदृष्ट्या व्याख्याता ।।श्रीः।।

।। इति षष्ठोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ सप्तमोऽनुवाकः ।।

अथ पाङ्क्तं निर्दिशति—

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः । अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि । आप ओषधयो । वनस्पतय आकाश आत्मा । इत्याधिभूतम् । अथाध्यात्मम् । प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः चक्षुः श्रोतं मनो वाक् त्वक् । चर्म माँ्स ँ् स्नावास्थि मज्जा । एतधिविधाय ऋषिरवोचत् । पाङ्क्तं वा इद ँ् सर्वम् । पाङ्क्तेनैव पाङ्क्त ँ् स्पृणोतीति ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाङ्क्तं नाम पञ्चानां समूहः तत्र भूतेषु त्रीणि पाङ्क्तानि, भूम्याकाशस्वर्गदिशान्तरदिशानां प्रथमं पाङ्क्तं, द्वितीयमग्निवायुसूर्यचन्द्रतारकानाम् आत्मा अहङ्कार । जीवात्मा वा । एवं जलौषधि वनस्पति गगनजीवात्मानां तृतीयं पाङ्क्तम् । इदानीमध्यात्मं निरूपयति—

आत्मनि अधि अध्यात्मं, तत्र प्राणव्यानापानोदानसमानानां प्रथमम् । नेत्र श्रवणमनोवाणीत्वचां द्वितीयम् । चर्ममांसस्नावास्थिमज्जानां तृतीयम् । एवं षट् पाङ्क्तानि विभाव्य यत् सर्वं पाङ्क्तं पञ्चसमूहम् ।।श्रीः।।

।। इति सप्तमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथाष्टमोऽनुवाकः।।

अथाष्टमेऽनुवाके ओङ्कारमहिमानं गायति—

ओमिति ब्रह्म । ओमितीद ँ्सर्वम् । ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति साभानि गायन्ति । ओ ँ्शोमिति शास्त्राणि श ँ्सन्ति । ओमितध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रसौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति ।।१।।

ओम् श्रावयन्ति ह्योङ्कारं साम गायन्ति सामगाः ।
ओं शों शस्त्राणि शंसन्ति ओमध्वर्युर्गृणाति च ।।
ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति अग्निहोत्रं मुदा द्विजः ।
ओमित्येवानुजानाति ओमित्युच्चारयन् द्विजः ।।
ब्रवीति ब्रह्म सामीप्यात् ब्रह्माहं प्राप्नवानि वै ।
तस्मादोङ्काररूपेण व्याप्तमेतज्जगत् त्रायम् ।।श्रीः।।

।। इति अष्टमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ नवमोऽनुवाकः ।।

अथ ॠतादिभिः सह स्वाध्यायप्रवचनयोः अनिवार्यतां वर्णयति । ॠतादयो भवन्त्वेकैकशः, किन्तु स्वाध्यायप्रवचने प्रत्येकं सर्वैः सह इति विवेकः—

ॠतं च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च । प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरूषिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ।।१।।

ऋतं यथार्थभाषणम्, सत्यम् यथार्थाचरणम्, स्वाध्याय, स्वशाखाप्राप्तवेदपाठः, प्रवचनं वेदाध्यापनम् सत्यम् अनिवार्यतया सत्यभाषणम् इति राथीतरः महर्षिराह । तप एव करणीयम् इति पौरूशिष्टिराह । नाको मौद्गल्यः स्वाध्यायप्रवचनं विधेयतया प्राह । यतो हि तदेव तपः ।।श्रीः।।

।। इति नवमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ दशमोऽनुवाकः ।।

मन्त्रोऽयं स्वाध्यायार्थं प्रयुज्यते—

अहं वृक्षस्य रेरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविण ँ सवर्चसम् । सुमेधा अमृतोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् ।।१।।

रीयते प्रेरयति इति रेरिवा, अहं स्वाध्यायशीलः वृक्षस्य क्षणभङ्गुरस्य शरीरस्य रेरिवा अन्तर्यामी । तथा हि गिरेः पर्वतस्य पृष्ठं शिखरमिव या कीर्तिः साप्यहम् । वाजमन्नं तद्वति वाजिनि सूर्ये इव अहम् ऊर्ध्वपवित्रः । एवंभूतं तेजोयुक्तम् अमृतम् अहमस्मि । द्रविणं धनम् , एवमृतं मरणधर्मवर्जितमिदं सर्वमहमस्मि । इदमेव वेदानुवचनं त्रिशङ्कोः ।।श्रीः।।

।। इति शमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ एकादशोऽनुवाकः ।।

अथ समावर्तनं श्रावयति श्रुतिः—

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्नप्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देव पितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकँ् सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि ।।२।।

नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेयाँ् सो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया देयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ।।३।।

ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु । ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् । तथा तेषु वर्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ।।४।।

गुरुकुले ब्रह्मचर्यं वसन्तं वेदमनूच्य सम्यक् पाठयित्वा अन्तेवासिनं गृहस्थाश्रममनुजानन् अनुशास्ति, आदिशाति । सत्यं भूतार्थं, स्वाध्यायाद् वेदपाठात् मा प्रमदः प्रमादं मा कार्षीः । आचार्याय समर्जितं निवेद्य दक्षिणारूपं प्रजातन्तुं सवर्णभार्यायां सत् सन्तानपरम्परां मा व्यवच्छेत्सीः, मा विलोपय, अन्यथा वर्णसंकरः स्यात् । कुशलात् शुभकर्मणः न प्रमदितव्यं प्रमत्तेन भवितव्यम् । भूत्यै धनाय, ऐश्वर्याय वा । स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां वेदाध्ययनवेदाध्यापनाभ्यां मा प्रमदितव्यं, तथा सति पूर्वाधीतो वेदराशिविस्मृतः स्यात् । माता देवः यस्य स मातृदेवः ।

यथा मम निर्मिते श्रीराघवाभ्युदय नाटके श्रीरामं प्रति वसिष्ठवचनम्—

सत्यं सदा वद समाचर वेदधर्मं
स्वाध्यायतस्तनय मा प्रमदः कदापि ।
गार्हस्थ्यधर्मनिरतो रमयंस्त्रिलोकीं
शोकं भुवः शमय भारतभाग्यभानो ।।

मातर्यथो पितरि चैव गुरौ तथैव
आगन्तुके कुरु सदा शुचिदेवबुद्धिम् ।
त्रैलोक्यवन्दितयशश्शशिना स्ववंशं
तातं तथा दशरथं रमयस्व राम ।।

राघवाभ्युदयम् ।।१८/१९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र साम्प्रतिक परिप्रेक्ष्ये ममापि द्वे अनुशासने "'हिन्दुत्व देवो भव" "राष्ट्रदेवो भव" इत्थं षट्सु देवबुद्धि:कर्तव्या ।

मातापित्रोस्तथाचार्ये स्वातिथावपि नित्यशः ।
देवबुद्धिर्विधातव्या हिन्दुत्वे राष्ट्र एव च ।।

अनवद्यानि अनिन्दितानि । श्रेयांसः श्रेष्ठाः ये त्वद्गुरुभ्याः प्रशस्यतराः तेषां कृते त्वया आसनेन आसनदानेन प्रश्वसितव्यं सत्करणीयम् । श्रद्धया आस्तिकबुद्धया, संविदा ज्ञानेन । यदि तव क्वचिकित्सा आचरणसन्देहः स्यात् , तदा तव समीपे ये ब्राह्मणाः चरित्रशीलाःताननुवर्तेथाः । इत्येवमादेशः आज्ञा, उपदेशः मधुरतया, वेदोपनिषत् वेदगुह्यज्ञानम् ।।श्रीः।।

।। इति एकादशोऽनुवाकः ।।

।। अथ द्वादशोऽनुवाकः ।।

अथ शिक्षाध्यायं विश्रयन्ती श्रुतिः पुनः शान्तिपाठं प्रभूतकालिकभङ्गिम्नाप्राह—

शं नो मित्रः शं वरूणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरूरूक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।१।।

त्वां वायुमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म अवादिषमुक्तवानभूवम् । ऋतं यथार्थं यथाश्रुतं, सत्यं दृष्टं भूतार्थम् अवादिषं समचकथम् । अत एव भवानपि मां श्रुतिवक्तारम् उपदेष्टारम्, आवीत् अरक्षीत् ।।श्रीः।।

।। इति द्वादशोऽनुवाकः ।।

इति तैत्तिरीयोपनिषदि शिक्षावल्यां जगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघवकृपभाष्यं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ ब्रह्मानन्दवल्ली ।।

।। शान्तिपाठः ।।

अथ तैत्तिरीयोपनिषदि द्वितीया ब्रह्मानन्दवल्ली याख्यायते तत्र द्वौ शान्तिपाठौ—

ॐ शन्नो मित्र, शं वरूणः । शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरूरूक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । अवीद्वक्तारम् ।।१।।

ॐ सह नाववतु । सह नौ भनुक्तु । सहवीर्यं करवावहै ।

तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

तत्र प्रथमः प्रथमं व्याख्यातः, द्वितीयः कठोपनिषदि व्याख्यातपूर्वोऽपि साम्प्रतं व्याख्यायते । परब्रह्म परमात्मा नौ आचार्यशिष्यौ आवां सह युगपदेव न तु पृथक्पृथक् अवतु विपद्भ्यस्त्रायताम् । पुनः नौ आवामाचार्यशिष्यौ सह सममेव भुनक्तु पालयतु, निजकृपासुधाधारया । यत्तु भुनक्तु इत्यस्य ब्रह्मसुखं भोजयतु इति व्याख्यातं गोविन्दपादशिष्यशंकराचार्येण तद् व्याकरणविरुद्धत्वादुपेक्ष्यम् । भुनक्तु इति परस्मैपदलोट्लकारप्रथमपुरुषैक वचनरूपम् । तथा हि धातुः **भुजपालनाभ्यवहारयोः** (पा० धातुपाठ १४५४) पालने परस्मैपदं, तद्भिन्ने आत्मनेपदविधानात् । **भुजोऽनवने** पा०अ० १/३/६६ तस्मात् भुनक्तु इत्यस्य पालयतु इत्येवार्थः । अहो ! शंकराचार्यस्य दुराग्रहः यदद्वैतवादलोभेन व्याकरणर्यादामपि सहसावर्तते । तथा हि तदीयं भाष्याम् —**सह नौ भुनक्तु ब्रह्म भोजयतु** अत्र स प्रष्टव्यः , किं ब्रह्म भोजनीयं वस्तु? स्वमेव स्वयं कथं भोजयेत्, निर्धर्मतया तस्य कथं भोजनं शक्यं, तस्य तु ब्रह्मक्षत्रोपलक्षिताः प्रजा एव कठोपनिषदि भोज्यत्वेनोक्ताः ।

यथा–यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।।

(क०उ० १/२/२५)

अहो ! किमर्थं तिप्प्रत्ययद्योत्यपरस्मैपदवच्यपालनार्थमुपेक्ष्य भुज धातोः निरर्थकं भोजनवाच्यत्वं कल्प्यते । कथं वा शुद्धभुजधातोः अन्तर्भावितण्यर्थत्वकल्पनं, कथं वा ब्रह्मभोजनानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारस्य स्वरसतो विरूद्धप्रलपनम् । एतस्या-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अघटनीयघटनावश्यकतायाः समुचितमुत्तरं त एव प्रयच्छन्तु । एवं नौ आवयोः आचार्यशिष्योः अधीतं वेदाध्ययनं तेजस्वि तेजोमयं अस्तु भवतु । आवां गुरुशिष्यौ मा विद्विषावहै परस्परं विद्वेषं मा करवावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।। यत्तु केचनमन्त्रमिमं भोजनकाले पठन्ति तत् **अकर्णान् मन्दकर्णा श्रेयः** इति लौकिकोक्त्या नातिमात्रमाक्षिप्यते । यद्यपि मन्त्रोऽयमध्यायनकाले एव पठितव्यः ।।श्रीः।।

।। अथ प्रथमोऽनुवाकः ।।

अथ ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणं ब्रह्माभिन्ननिमित्तोपादान कारणिकां सृष्टिं वर्णयति—

ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाभ्युक्ता । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः । तस्येदमेव शिरः । अयं दक्षिणः पक्षः । अयमुत्तरपक्षः । अयमात्मा । इदं पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

ओमिति भगवत्स्मरणं, ब्रह्म विशिष्टाद्वैतप्रतिपाद्य सगुणसाकारं श्रीरामाख्यं, वेत्ति विन्दति वा इति ब्रह्मवित् । स परं सकलचिदचित्प्रपञ्चपरीभूतं परमात्मानमाप्नोति, सेव्यत्वेन लभते । तद् ब्रह्म कीदृशम् ? इत्यत आह—तत् तस्मिन् विषये एषा अनुपद्रमुच्यमाना इयमृगभ्युक्ता अभीष्टतया श्रुत्या उक्ता, ऋचमवतारयति—निजपतिं ब्रह्म श्रुतिरन्तरंगतया निरूपयति । तद् ब्रह्म सत्यं सदेव इति सत्यं, सच्छब्दात् प्रथमान्तात् अत्यन्त स्वार्थिको यत् प्रत्ययः, भत्वेन पदसंज्ञाबाधात् सत् इति तकारस्य न जस्त्वम् । नन्वस्यां व्युत्पत्तौ किं प्रमाणम् ? इति चेत् वैदिवमेव इति ब्रूमः । तथा च श्रुतिः **सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्** (छा०उ० ६/२/१), सद्भ्यः सज्जनेभ्यो महात्मभ्यो हितं सत्यम् इति भ्यसन्तसच्छब्दतः हितार्थे यत् प्रत्ययः **उगवादिभ्यो यत्** (पा०आ० ५/१/२) इति सूत्रेण । जानाति सर्वम् इति ज्ञानं **कृत्यल्युटो बहुलम्** (पा०अ० ३/३/११३) इत्यनेन बाहुलकात् कर्तरिल्युट् । यद् वा ज्ञायते सर्वैर्ज्ञानविषयः क्रियते इति ज्ञानं, अत्रापि उपर्युक्त सूत्रेणैव कर्मणिल्युट् । यद् वा ज्ञायते त्रैकालिकं वस्तु येन तज्जानं, ज्ञायते च सम्पूर्णं चराचरं यस्मिन्ननुकम्पमाने तज्ज्ञानम् । इह **करणाधिकरणयोश्च** (पा०अ० ३/३/११७) इत्यनेन करणेऽधिकरणे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च ल्युट् । यद् वा ज्ञायते इति ज्ञानं **ल्युट् च** (पा०अ० ३/३/११५) इत्यनेन भावे ल्युट् । एवं ज्ञानस्वरूपं ब्रह्म । अस्मन्मते ज्ञानाधिकरणत्वविवक्षायां भावल्युडन्त-ज्ञानशब्दात् प्रथमान्तात् षष्ठीसप्तम्योरर्थयोः मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः, अर्श आदिः । ज्ञानमस्त्यस्यस्मिन् वा तज्ज्ञानं इति विग्रहः । तथा अनन्तं न विद्यते अन्तः सीमा यस्य तदनन्तं सुखस्वरूपं **यो वै भूमा तत्सुखं** इति श्रुतेः । एवं भूतं सत्यं सत् ज्ञानं चित् अनन्तमानन्दमिति सच्चिदानन्दरूपं ब्रह्म गुहायां हृदयदेशे अन्तर्यामिरूपेण निहितम् । तथा परमे व्योमन् साकेतलोके निहितं सीतया सह विराजमानं, यो वेद जानाति सः विपश्चिता सर्वज्ञेण विदुषा ब्रह्मणा परमेश्वरेण सह सार्धमेव सर्वान् कामान् अभीष्टपदार्थान् भुङ्क्ते । एवंभूतात् तस्मात् साकेतविहारिणः श्रीरामात् तदभिन्नात् एतस्मात् अयोध्याधिपतेः श्रीदशरथपुत्रीभूतात् श्रीरामात् आत्मनः परमात्मनः सकाशात् आकाशः जीवात्मभोग्यपदार्थः प्रथमः शब्दगुणकः सम्भूतः । तस्माद्वायुः शब्दस्पर्शगुणकः । तस्मादाग्निः शब्दस्पर्शरूपगुणकः । तस्मादापः जलानि शब्दस्पर्शरूपरसगुणिकाः । ताभ्यः पृथिवी शब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणिका । ततः ओषधयः ततः अन्नमदनीयपदार्थः । तत एव पुरुषः शरीरावच्छिन्नो जीवः । विकारोऽचितिशरीरे, सः पुरुषः अन्नरसमय उभयप्रचुरः । तस्य इमानि प्रत्यक्षं दृश्यमानानि शिरः पक्षपुच्छानि । अत्र पुरुषोऽयं पक्षिरूपकः **दासुपर्णा** इति श्रुतेः । तथा हि इदं दृश्यमानं शिर एव तस्य शिरः, अयं दक्षिणो बाहुः तस्य दक्षिणः पक्ष, बाम बाहुः उत्तरः पक्षः । मध्यभागः आत्मा शरीरम् **आत्माशरीरे** इति कोषात् । इदं पुच्छं अधो भागः लम्बमानत्वत्तस्य पुच्छः । तत्रैव स प्रतितिष्ठति । अयं प्रथमः अन्नरसमयः पुरुषः शरीरावच्छिन्नः पक्षिरूपो जीवात्मा । ननु **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विवश्चिता** इति श्रुत्यंशेन यदि ब्रह्मणोऽपि भोगः प्रतिपाद्यते, तर्हि दुर्निवारो भवति श्रुतिविरोधः । **अनश्नन्नन्यो** (मु०उ० ३/१/१) **भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा** (श्वे०उ० १/१२) इत्यादिभिः श्रुतिभिः ब्रह्मणे भोक्तृत्वाभावप्रतिपादनात् ? इति चैन्मैवं ! सह ब्रह्मणा इत्यत्र ब्रह्मणो वर्तमान क्रियायामन्वयेनादोषात् । अर्थात् ब्रह्मवेत्ता सामीप्यमुक्तिं सेवमानो ब्रह्मणा सह वर्तमानो भगवत्प्रसादभूतान् सर्वान् कामान् भुङ्क्ते, ब्रह्मत्वभोक्तृरूपमेव तिष्ठति । ननु तर्हि कथमभोक्तृत्वेऽपि श्री गीतानवमे भगवान् **अश्नामि** इति प्रतिजानाति ? बाढम् अनश्नन् इत्यत्र परमात्मनः कामभोक्तृत्वनिषेधेनादोषात् । श्रुत्या ईश्वरस्य कर्मफलभोगः प्रतिषिद्ध्यते । इति सर्व समञ्जसम् ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ द्वितीयोऽनुवाकः ।।

अथ द्वितीयेऽनुवाके प्राणपुरुषं वर्णयति—

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते । याः काश्च पृथिवीँ श्रिताः । अथो अन्नेवैव जीवन्ति । अथैनदपि यन्त्यन्ततः अन्नँ हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वौषधमुच्यते । सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते । अन्नँ हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वैषधमुच्यते । अन्नाद् भूतानि जायन्ते । जातान्यन्नेन वर्धन्ते । अद्यतेऽत्ति च भूतानि । तस्मादन्नं तदुच्यत इति । तस्मद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्यन्तर आत्मा प्राणमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्राण एव शिरः । व्यानो दक्षिणः पक्षः । अपान उत्तरः पक्षः । आकाश आत्मा । पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

पृथिव्यां याः काश्चन चिदचिदात्मिकाः प्रजाः स्थिताः ता अन्नात् अन्नपरिणामभूतरेतसः जायन्ते । तेन जीवन्ति, अन्ततः अन्नमेव अपियन्ति प्रलयं यान्ति अतस्तस्मिन् जगज्जन्मादिकारणता आपाततः संघटते । तस्मात् अन्नं ब्रह्म, तद् ब्रह्मबुद्धया उपासीत । तस्य दुरुपयोगो न कर्तव्यः इति श्रौतोऽभिप्रायः । कथं ब्रह्म अन्नम् ? इत्यत आह— यतो हि अन्नं निमित्तीकृत्य प्रजानां जन्मसंवर्धनप्रलयाः । अन्नशब्दस्य द्वेधा व्युत्पत्तिः अत्तीत्यन्नं **कर्तरिक्तः** अद्यते इत्यन्नम् । एवं तस्मादन्नरसमयात् प्राणः प्राणमयपुरुषो जायते सोऽपि पक्षी । तस्य प्राणः शिरः, व्यानः दक्षिणः पक्षः, अपानः उत्तरः निर्गमने सहायकत्वात् । आकाश एव आत्मा शरीरं, पृथिवी एव पुच्छमाश्रयत्वात् ।।श्रीः।।

।। इति द्वितीयोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीयोऽनुवाकः ।।

अथ तृतीये मनोमयं पुरुषं मनुते—

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति । मनुष्याः पशवश्च ये । प्राणो हि भूतानामायुः । सत्मात् सर्वायुषमुच्यते । सर्वमेव त आयुर्यन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति । तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयादन्योऽन्तर आत्मा मनोमय । तेनैष

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य यजुरेव शिरः ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः । आदेश आत्मा । अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रातिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।३।।

प्राणमाश्रित्यैव देवमनुष्यपशूनां प्राणनात् तत् सर्वायुषं कथ्यते । तस्मात् प्राणात् अन्तरः विलक्षणो मनोमयः पुरुषो भवति । एवं सोऽपि पक्षीव । अतः—

यजुः शिरो दक्षः पक्ष ऋक उत्तरः साम ईर्यते ।
आदेशात्मा तथा पुच्छं प्रतिष्ठार्थवणि श्रुतिः ।।श्रीः।।

।। इति तृतीयोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ चतुर्थोऽनुवाकः ।।

अथ चतुर्थेऽनुवाके मनोमयं व्याचष्टे—

यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कदाचनेति । तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयस्तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरूषविध एव । तस्य पुरुषविधातामन्वयं पुरुषविधः । तस्य श्रद्धैव शिरः । ऋतं दक्षिणः पक्षः । सत्यमुत्तरं पक्षः । योग आत्मा । महः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

यतः यस्मात् तमप्राप्येव मनसा सह वाचः वाण्यः निवर्तन्ते जडत्वात् । तस्य ब्रह्मणः आनन्दं सारभूतमानन्दं विद्वान् जानन् कदाचन न बिभेति । तस्य प्राणमयस्य एषः शरीर एव आतमा । अयमेव शरीरः अन्नमयस्यापि आत्मा, तस्मात् एतस्मात् अयमेव शारीरः अन्नमयस्यापि आत्मा, तस्मात् एतस्मात् मनोमयादपि अन्तरः विलक्षणः विज्ञानमयः विज्ञानमत्र बुद्धिः सोऽपि पक्षी, तस्य श्रद्धा आस्तिकबुद्धिः शिरः ऋतं यथाश्रुतभाषणं दक्षिणः पक्षः । सत्यं यथादृष्टकथनं उत्तरं पक्षः, योगः, आत्मा, शरीरं महः, तेजः पुच्छमधोभागः । प्रतिष्ठा चरणात्मकः ।। श्रीः ।।

।। इति चतुर्थोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ पञ्चमोऽनुवाकः ।।

अथ पञ्चमानुवाके आनन्दमयं पुरूषं वर्णयति—

विज्ञानं यज्ञं तनुते । कर्माणि तनुतेऽपि च । विज्ञानं देवाः सर्वे । ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते । विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद । तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति । शरीरे पाप्मनो हित्वा । सर्वान्कामान्समश्नुत इति । तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञान– मयादन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

विज्ञानं बुद्धिः बुद्धिमान् यज्ञान् कर्माणि च करोति, अत एव ब्रह्मवेदः ज्येष्ठं यस्य तद् विज्ञानम् अध्यात्मनिरतां बुद्धिं सर्वे देवाः उपासते पूजयन्ति । एवं विज्ञानमेव ब्रह्मबुद्ध्या यः वेद जानाति, स कदापि न प्रमाद्यति । बुद्धौ चञ्चलायां प्रमादः, तस्यां ब्रह्ममत्वमागतायां प्रमादस्यावसर एव न । एवं तस्मात् शरीरस्य पाप्मनः पापानि । पाप्मन् शब्दः पापःपर्यायः । **अघमेनः प्रत्यवायः पाप्म पापं च पातकम्** इति कोषात् । सर्वान् कामान् भगवदनुग्रहप्राप्तान् समश्नुते प्राप्नोति । तसमाद् विज्ञानमयात् अन्तः विलक्षणः आत्मा आनन्दमयः आनन्द प्रचुरः । सोऽपि पक्षीव । तस्य प्रियं शिरः मूर्धस्थानम् । मोदः दक्षिणः पक्षः । प्रमोदः इष्टलाभजनितप्रसन्नता, उत्तर पक्षः । आनन्दः आत्मा शरीरम् । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठां अधोभागः आधारः । अत्रेदमवधेयम्— एकैव प्रत्यगात्मा यथायथं पञ्चकोशावच्छिन्नः पञ्चपक्षिरूपकतामाटीकते । परन्तु शरीरे परिवर्तितेऽपि आत्मास्वरूपमेकमेव । यथैको नटः तत्तत् परिधानवैचित्र्येण कदापि भिक्षुः कदापि राजा, कदापि च श्रेष्ठी, कदाचित् रङ्कः, कदाचित् क्रूरो दृश्यते । परन्तु मूलरूपेण स नट एव, तथैवायं प्रत्यगात्मा अन्नरसमयकोषावच्छिन्नः, अस्मदादिदर्शनगोचराणि शिरोहस्तमध्यभागचरणादीनि स्वीकरोति । पुनः स एव स्वरूपं परिहरन् वेशपरिवर्तनं कुरुते । तथा प्राणमयकोषावच्छिन्नः पूर्वतो विलक्षणः शरीरवान् शिरःपक्षद्वयमध्यभागनिम्नकायस्थानेषु प्राणापानव्यानाकाशपृथिवीः आलम्बते । पुनः स एव मनोमयकोषावच्छिन्नः प्राणमयतो विलक्षणशरीरः । पुनः पूवोक्तावयवरूपाणि ऋगृयजुःसामादेशाथर्वाख्यानि प्राप्नोति । पुनश्च स्वस्वरूपमजहत् विज्ञानमयकोषावच्छिन्नः पूर्वविलक्षणविज्ञानमयशरीरवान् भवति । तस्य श्रद्धा शिरःस्थाने, दक्षिणपक्षरूपं ऋतं, वामपक्षतां सत्यं, योगः शरीरं, महः पुच्छस्थानतां प्राप्नोति । पुनश्चायं पञ्चमम्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तिमं वेशं परिवर्तयति आनन्दमयकोषावच्छिन्नः प्रियमेव शिरोरूपं, मोदं दक्षिणपक्षमिव, प्रमोदं वामपक्षस्थाने, आनन्दं मध्यभागं, पुच्छमिव ब्रह्मप्राप्य आनन्दमयः कथ्यते । परन्तु पञ्चष्वप्यवस्थासु स्वस्वरूपप्रत्यगात्मतात्वं नायं त्यजतीति सूक्ष्मेक्षिका ॥श्रीः॥

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ श्रीराघवोः शन्तनोतु ॥

॥अथ षष्ठोऽनुवाकः॥

अथ ब्रह्मविज्ञानाविज्ञानफलं वर्णयति—

असन्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद । सन्तमेनं ततो विदुरिति । तस्यैव एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य । अथातोऽनुप्रश्नाः । उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छती ३। आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चित्समश्नुता ३ उ । सोऽकामयत । बहु स्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा इदँ सर्वमसृजत यदिदं किञ्च । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् । निरुक्तं चानिरुक्तं च । निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च । सत्यं चानृतं च सत्यमभवत् । यदिदं किंच । सत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येष श्लोको भवति ॥१॥

यः नरः ब्रह्म असत् नास्ति इति इत्थं वेद जानाति, स असन् दुष्टो भवति । यदि कोऽपि ब्रह्म अस्ति ईश्वरो वर्तते इति वेद तदा एनं ब्रह्मास्तित्ववेदिनं जनाः सन्तं मत्वा उपासते सेवन्ते । अनन्तरं त्रयः प्रश्नाः भवन्ति, ब्रह्मवर्तते न वा ? इति प्रथमः प्रश्नः । यदि वर्तते सर्वव्यापकं किमज्ञा अपि तत् प्राप्नुवन्ति अथवा विद्वांस एव तत् प्राप्नुवन्ति ? तान् प्रश्नान् अनुवदति । यथेत्यादिना—अविद्वान् ब्रह्मज्ञानशून्यः कश्चन कोऽप्येकः प्रेत्य शरीरं त्यक्त्वा अमु लोकं ब्रह्मसामीप्यभाजनं साकेतलोकं गच्छति प्राप्नोति । उत किम् ? अस्ति कोऽपि ब्रह्मज्ञानशून्यः यो ज्ञानं विनापि ब्रह्म प्राप्नोति । आहो पक्षान्तरे कश्चन विद्वान् ब्रह्मज्ञ एव देहं त्यक्त्वा अमुंलोकं समश्नुते ? उ वितर्के । अथ चिदचिद्विशिष्टः परमात्मा अकामयत् इच्छामकरोत् । यत् प्रजायेय कार्यरूपेणात्मानं परिणमयेय, अतस्तत्तच्छरीरेषु अन्तर्यामी भूत्वा बहुस्याम बहु भवेयम् । अत एव ज्ञानरूपं तपः अतप्यत्, तेन जगदिदं जडचेतनात्मकम् असृजत् रचयामास ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु जगत् सृष्ट्वा तदेव अनुकूलतया प्राविशत् प्रवेशं कृतवान्। भगवति प्रविष्टे तत् पृथिवीजलरूपेण सत्। एवं वायुनभोरूपेण त्यत्, द्वेमिलित्वा सत्यं चिदचिदात्मकं निरुक्तमनिरुक्तम्, आश्रयमनाश्रयं, सत्यम् असत्यम् इति गुणदोषात्मकं जगत् स्वयमेव अभवत्, इति ब्रह्मपरिणामवादः ।।श्रीः।।

।।इति षष्ठोऽनुवाकः।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ सप्तमोऽनुवाकः।।

अथ पुनः सृष्टिक्रममभ्यसति—

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। वदातमनँ् स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रसँ् ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति। यदा ह्येवेष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति। यदा ह्येवैष एतास्मिन्नुदरमनतरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति ।।१।।

अग्रे सृष्टेः प्राक् इदं जीवजगत् असत् अव्याकृतनामरूपम् यद् वा अकारे वासुदेवे सीदति तिष्ठति इत्यसत्, परमात्मा स्थमासीत्। वै निश्चयेन प्रलये परात्मस्थत्वे जीवस्य न कोऽपि सन्देहः। ततः अकाराद् वासुदेवादेव, वै निश्चयेन सत् व्याकृतनामरूपं जीवजगत् अजायत, कर्मफलभोगार्थं शरीरधारणमकरोत्। तत आत्मानं स्वयमकुरुत परिणामिनं कुरुते स्म। अत एव तत्सुकृतं कथ्यते, परमात्मपरिणामभूततया। इत्यनेन श्रुत्यंशेन विवर्तवादः स्वयं निराकृतः। यतो हीदं भगवत् प्रविष्टम्, अतः सुकृतम्। एवं यच्चराचरं तत्सुकृतं शोभनं कृतम्। तस्य शोभनतां प्रतिपादयति–वै निश्चयेन सः परमात्मा रसः **रसो रागे बले सारे** इतिकोषात्। सर्वेषां सारभूतः बलं रागः आनन्दश्च, तस्मात् स्वं परिणमय्य तेन परमात्मना कृतं जगत् कथं न सुकृतं स्यात्। हि निश्चयेन रसं परमात्मानमेवलब्ध्वा सेव्यत्वेन प्राप्य अयं जीवात्मा आनन्दी भवति। यदि चेत् आकाशः अवकाशदाता आनन्दः रसरूपः परमात्मा न स्यात्, तदा को नाम जन्तुः अन्यात् प्राणधारणं कर्तुं शक्येत, कः प्राण्यात् प्रकर्षेण जीवेत्। अयमेव चिदचिदात्मकं जगत् आनन्दयाति आनन्दाप्लुतं करोति। यदा अयं जीवात्मा अस्मिन् आनन्दरूपे अदृश्ये, प्राकृतेन चक्षुषा द्रष्टुमशक्ये अनात्म्ये प्राकृतशरीरवर्जिते,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनिलयने विष्णोरपि निलयभूते सर्वाधारतया आश्रयहीने, अनिरुक्ते निर्वक्तुमशक्ये, अभयं निर्भयं प्रतिष्ठां प्रपत्तियोगेन स्वाश्रयं विन्दते, सः अभयं परमात्मानं गतो भवति। अथ एतद् विपरीतं यदि जीवात्मा एतस्मिन् परमात्मनि उदरम् अन्तरं किञ्चिदपि अन्तरं कुरुते, सम्बन्धतः कल्पयति भेदं, नैवायं मम स्वामी, अहं नास्मि भगवदीय इत्याकारकं, तदैव तस्य भयं भवति। तादृशं भयं अमन्वानस्य तिरस्कुर्वतः विदुषः ब्रह्मज्ञस्य एषः श्लोकः भवति ॥ श्रीः ॥

।।इति सप्तमोऽनुवाकः।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथाष्टमोऽनुवाकः।।

अथ ब्रह्मज्ञदशां वर्णयति—

भीषास्माद् वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति । सैषानन्दस्यमीमाँ्सा भवति । युवा स्यात्साधुयुवाध्यापक आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठस्तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः । ते ये शतं मानुषा आनन्दाः ।।१।।

स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामान्दाः । स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः । स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ये ते शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः । स एक आजानजानां देवानामानन्दः ।।२।।

श्रोत्रिस्य चाकामहतसय । ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः । स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः । ये कर्मणा देवानपियन्ति । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः । स एको देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं देवानामानन्दाः । स एक इन्द्रस्यानन्दः ।।३।।

श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः । स एको बृहस्पतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं प्रजापतेरानन्दः । स एको ब्राह्मण आनन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एवं विदस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति । तदप्येष श्लोको भवति ।।५।।

एवं यः अक्षिगतः पुरुषः स एवादित्ये, इत्थं जानन् ब्रह्मज्ञः अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयकोषान् समतिक्रामति ।।श्रीः।।

।। इति अष्टमोऽनुवाकः।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ नवमोऽनुवाकः।।

अथ ब्रह्मज्ञमहिमानं वर्णयति—

यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कुतश्चनेति । एतँ ह वाव न तपति । किमहँ साधु नाकरवम् । किमहं पापमकरवमिति । स य एवं विद्वानेते आत्मानँ स्पृणुते । उभे ह्येवैष एते आत्मनँ स्पृणुते । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ।।१।।

यस्मात् अनुपलभ्यैव मनसा सह वाचः निवर्तन्ते, तं ब्रह्माभिन्नम् आनन्दं विद्वान् जानन् उपासीनः कुतश्चन कश्माच्चनापि जनात् न विभेति । तम् अहं किं साधु सुन्दरं कर्म नाकरवं, अथवा असाधु नकृतवान् इति विचारो न तपति । एवम् उभे अपि शुभाशुभे विदिततत्वं जीवात्मानं स्पृणुते प्रसन्नं कुरुतः ।।श्रीः।।

।।इति नवमोऽनुवाकः।।

इति तैत्रिरीयोपनिषदिब्रह्मवल्यांजगद्गुरु रामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ भृगुवल्ली ।।

मंगलाचरणम्

ॐ । सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।। ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः । शान्तिपाठो व्याख्यातपूर्वः ।।

।। अथ प्रथमोऽनुवाकः ।।

अथ भृगुवल्यां ब्रह्मणस्ताटस्थ्यलक्षणं मीमांस्यते—

भृगुर्वै वारुणिः पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति । तँ होवाच । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति । स तपोऽतत्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

वरुणस्य अपत्यं पुमान् वारूणिः, वरूणमहर्षिपुत्रः भृगुः निजपितरमुपससार उपसृत्य निवेदयामास भगवन् ! मां ब्रह्म अधीहि । स पिता-शाखाचन्द्रन्यायेन पूर्वम् अन्न प्राणचक्षुःश्रोत्रमनोवाक्षु ब्रह्मबुद्धिं समुपदिश्य, अनन्तरं ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणं प्राह– हे भृगो । वै निश्चयेन यतः यस्माद् ब्रह्मणः सकाशाद् इमानि भूतानि चिदचिदात्मकानि जायन्ते प्रादुर्भवन्ति । जातानि च येन पाल्यमानानि जीवन्ति । यत् प्रलयकाले प्रयन्ति प्रयाणं कुर्वाणानि अभिसंविशन्ति, अभीष्टतया । एवं भूतं जगज्जन्मस्थितिलयकारणं विजिज्ञासस्व विशिष्टाद्वैतपद्धत्या ज्ञातुमिच्छ, विचारय वा। यतो हि तत् भूतजन्मस्थितिलयकारणं ब्रह्म इति । इदं तटस्थलक्षणं श्रुत्वा सः तपः अतप्यत, ब्रह्म आलोचितवान् अनन्तरं ब्रह्म आलोच्य भृगुः पितरमागत्य किं कृतवान् ? इत्यत आह ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमोऽनुवाकः।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ द्वितीयोऽनुवाकः।।

पुनर्भृगोर्जिज्ञासातारतम्यं वर्णयति—

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । अन्नेन जातानि जीवन्ति । अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वरूणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तँ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतत्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

विचार्य भृगु: अन्नं ब्रह्म इति व्यजानात् । तत्र वरूणप्रोक्तं लक्षणं संगमयामास जगज्जन्मादिकारणरूपम् । तद् विज्ञाय लक्षणोपपत्तिभ्यां विचारयामास, अन्नादित्यादिना । अन्नाज्जीवानां जन्म, तेन जीवनं, तस्मिन् लय: । पुन: पितरमुपागमत् । एतदनन्तरमधीहि । पिता प्रोवाच–तपसा पुनर्ब्रह्म विजिज्ञासस्व, यतो हि तप एव ब्रह्म तत्प्राप्तिसाधनम् ।।श्री:।।

।।इति द्वितीयोऽनुवाक:।।
।। श्रीराघवो: शन्तनोतु ।।

।।अथ तृतीयोऽनुवाक:।।

भूयो भृगुजिज्ञासा प्रकारमाह—

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति । प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेव वरूणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तँ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतत्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

भृगुस्तपस्तप्त्वा विचार्य प्राण एव पित्रोक्तं जगज्जन्मादिकारणत्वं संगमय्य, तमपि ब्रह्मेति व्यजानात् निर्धारयामास । पितरंगत: पित्रा पुनस्तपसे निर्दिष्ट: ।।श्री:।।

।।इति तृतीयोऽनुवाक:।।
।। श्रीराघवो: शन्तनोतु ।।

।।अथ चतुर्थोऽनुवाक:।।

अथ भूयो भृगुजिज्ञासां वर्णयति—

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् । मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । मनसा जातानि जीवन्ति । मन: प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति ।तद्विज्ञाय पुनरेव वरूणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तँ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्च । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनः विचारं कृत्वा मनसि "यतो वा" इत्यादि लक्षणं संगमय्य तस्मिन्नेव जगज्जन्मकारणत्वं समालोच्य मनोब्रह्म इति निर्धारयामास भृगुः। पुनः पितरं गतः तेन तपसे निर्दिष्टः ।।श्रीः।।

।।इति चतुर्थोऽनुवाकः।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ पञ्चमोऽनुवाकः।।

भूयो भृगुजिाासाक्रममवतारयति—

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। त ँ होवाच। तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतपयत। स तपस्तप्त्वा ।।१।।

भूयो विचारं कृत्वा विज्ञानं जीवात्मानमेव ब्रह्मेति निश्चिकाय। **विज्ञानादेव** इत्यादिभिः तस्मिन् ब्रह्मलक्षणं निदिध्यासितवान्। पुनः तिपरं गतः तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व इति तपसे निर्दिष्टः ।।श्रीः।।

।। इति पञ्चमोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ षष्ठोऽनुवाकः।।

अथ भार्गवी विद्यामुपसंहरति—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रत्यभिसंविशन्तीति। सैषा भार्गवी वारूणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। य स एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या ।।१।।

पित्रानिद्रिष्टो भृगुस्तपस्तप्त्वा पर्यालोच्य आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात निश्चिकाय। तस्मिन् ब्रह्मणि जगज्जन्मादिकारणत्वमपि सङ्गमयामास। तत्सङ्गमनं स्पष्टयति आनन्दात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यादिना। हि यतो हि आनन्दात् एव नत्वन्यस्मात् इमानि भूतानि चिदचिदात्मकानिअतो जायन्ते तस्मात् जगज्जन्मकारणत्वं यतो वा इत्यादि निर्दिष्टं संघटते । आनन्देन करणीभूतेन जातानि भूतानि जीवन्ति अतो जगत्पालनहेतुत्वमस्मिन् । आनन्दमेव प्रयन्ति प्रयाणं कुर्वाणानि अभिसम्विशान्ति प्रविश्य लीयन्ते अतो जगज्जन्मादिहेतुत्वात् आनन्दो ब्रह्म । एतद्विचार्य शान्तजिज्ञासो भृगुः पुनः पितरं नोपससार तस्मात् आनन्दस्य ब्रह्मत्वं वरुणसम्मतम् । इदं द्योतयितुमाह–सैषेत्यादि । भृगोरियं भार्गवी वरुणस्य इयं वारुणी । परमे व्योमन् परब्रह्मणि प्रतिष्ठिता । एवान् जानन् अन्यप्रजापशुभिर्युक्तः परब्रह्म प्राप्नोतीति फलितार्थः ।।श्रीः।।

।। इति षष्ठोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथ सप्तमोऽनुवाकः।।

अथान्नं प्रसंशति—

अन्नं न निन्द्यात् । तद्व्रतम् प्राणो वा अन्नम् । शरीरमन्नादम् । प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ।।१।।

अन्नं भक्षणीयपदार्थं न निन्द्यात् । भगवदीयं मत्वा भुञ्जीत । यतो हि शरीरमन्नादं प्राणस्तस्मिन् । अतो हेतो तद्तद् ब्रह्मबुद्ध्या रक्षणीयं एतद् विदन् अन्नप्रजापशुभिः ब्रह्मतेजसा युज्यते इति सारांशोऽनुवाकस्य ।। **श्रीः।।**

।।इति सप्तमोऽनुवाकः ।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।।अथाष्टमोऽनुवाकः।।

अथान्नपरिहरणं निषेधति—

अन्नं न परिचक्षीत । तद् व्रतम् । आपो वा अन्नम् । ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसेन । महान्कीर्त्या ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्नं भक्षणीयपदार्थं हेय बुद्ध्या न परिचक्षीत न विलोकयेत्। भोजनार्थमागतं वस्त्रेणाच्छाद्यैव समाहरेत्। तद्व्रतम्। आपः जलानि अन्ने प्रतिष्ठिताः। अप्सु जलेषु ज्योतिः प्रतिष्ठितम्। एवं भगवद् बुद्ध्यैव दृष्टिदोषं निवार्य भगवद्प्रसादं सेवमानः संयुज्यते पूर्वोक्तफलैः इति सारांशः ।।श्रीः।।

।। इत्यष्टमोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ नवमोऽनुवाकः ।।

अन्ते श्रुत्तिः अन्नोत्पादनं विधेयतया निर्दिशति—

अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे पृथिवी प्रातष्ठिता। तदेतमन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठिति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या ।।१।।

अन्नं भक्षणीयं बहु कुर्वीत। गोधूमतण्डुलादिकं गोमयोर्वरकेण बहु कुर्वीत बहु उत्पादयेत् इत्यनेन गोधनरक्षणं कृषीबलप्रोत्साहनं च श्रुत्येव निर्दिश्यते। पृथिवी अन्नम्। पार्थिवानि भक्षणीयानि। आकाशः अन्नादः भक्षयिता उभौ उभयोः प्रतिष्ठितौ। एवं विद्वान् अन्नपशुप्रजाब्रह्मवर्चसैः संयुज्यते ।।श्रीः।।

।। इति नवमोऽनुवाकः ।।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ दशमोऽनुवाकः ।।

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद्व्रतम्। तस्माद्यया कया च विधया वह्वन्न प्राप्नुयात्। आराध्यास्मा अन्नमित्याचक्षते। एतद्वै मुखतोऽन्नँ॒ राद्धम्। मुखतोऽस्मा अन्नँ॒ राध्यते। एतद् वै मध्यतोऽन्नँ॒ राद्धम्। मध्यतोऽस्मा अन्नँ॒ राध्यते। एतद्वा अन्ततोऽन्नँ॒ राद्धम्। अन्ततोऽस्मा अन्नँ॒ राध्यते ।।१।।

वसतौ गृहे कन्चन कमपि जनं भुञ्जानं न प्रत्याचक्षीत न निषेधेत्। तद्व्रतम् तादृशं भगवद्परितोषणव्रतम्। अत्र श्रुतिः यथेष्टभोजनं सर्वेषां विधत्ते। अतो भूर्यन्नमुत्पादयेत् इति निष्कर्षः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदानिं मानसी दैवी समाज्ञे वर्णयति—

य एव वेद । क्षेम इति वाचि । योगक्षेम इति प्राणापानयोः । कर्मेति हस्तयोः । गतिरिति पादयोः । विमुक्तिरिति पायौ । इति मानुषीः समाज्ञाः । अथ दैवीः । तृप्तिरिति वृष्टौ । बलमिति विद्युति ।। २।।

वाचिक्षेमं तथा योगक्षेमौ प्राणे ह्यपानके ।
करे कर्म गतिः पदे पायौ मुक्तिः तथैव च ।।

तृप्तिर्वृष्टौ बलं चैव चपलायामपेक्षते ।
मानुषी देवसम्बद्धधा समाज्ञेऽयं श्रुतीरिता ।।श्रीः।।

यश इति पशुषु ज्योतिरिति नक्षत्रेषु । प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे । सर्वमित्याकाशे । तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत । प्रतिष्ठावा् भवति । तन्मह इत्युपासीत । महान् भवति । तन्मन इत्युपासीत । मानवान् भवति ।। ३।।

पशौ यशश्च नक्षत्रे ज्योतिः शुद्धमपेक्षते ।
उपस्थे च प्रजातिर्वै अमृतानन्दने तथा ।।श्रीः।।

तन्नम इत्युपासीत । नम्यन्तेऽस्मै कामाः । तद्ब्रह्मेत्युपासीत । ब्रह्मवान् भवति । तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत । पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः । परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः । स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः ।।४।।

एवमेव नम इत्युपासनीयं तेन सर्वे नमन्ति एवं ब्रह्म समुपासनीयं तस्य परिमरः संहारशक्तिरुपासनीयः । यथा समुपासकस्य अप्रियाः म्रियन्ताम् ।।श्रीः।।

अथ फलश्रुतिमाह—

स य एवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य । इमाल्लोकान्कामान्नी कामरूप्यनुसंचरन् । एतत्साम गायन्नास्ते । हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु ।।५।।

एतद्वेत्ता अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयान् कोषान् अतिक्रम्य यथा कामं भगवल्लोकेषु सञ्चरति ।।श्रीः।।

अत्र भोक्तृभोग्ययोरैकात्म्यं वर्णयति—

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो ३ऽहममन्नादो ३ऽहमन्नादः । अहँ श्लोककृदहँ श्लोककृदहँ श्लोककृत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३ स्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना ३ भायि । यो मा ददाति स इदेव मा ३ वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमा ३ द्मि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवा ३ म् । सुवर्न ज्योतीः य एवं वेद इत्युपनिषत् ।।६।।

अहमन्नं कस्यचिद् भक्ष्यं, कालस्योति भावः । पुनश्चाहं अन्नादः गोधूमादीनां भक्षकः अहमेव सर्वज्येष्ठो जीवात्मा सुवर्णज्योतिः परमप्रकाशवान् परब्रह्म श्रीराघवनित्यकिङ्करः च एवं वेत्ति स ब्रह्मलोके महीयते । इत्येषा तैक्तियोपनिषत् ।

तैक्तिरयोपनिषदो रामभद्रार्यसूरिणा ।
श्रीराघवकृपाभाष्यं कृतं सीतापतेर्मुदे ।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं श्रीराघवकृपाकृतम् ।
श्रीराघवकृपां देयात्श्रीराघवकृपाफलम् ।।श्रीः।।

इति श्री चित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं तैत्तिरीयोषपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्री राघवो विजयते ।।

।। श्री रामान्दाचार्यायनमः ।।

।।अथ ऐतरेयोपनिषदि ।।

श्री राघवकृपाभाष्यम्

मंगलाचरणम्

पाथोजकन्दशरदिन्दुमधुव्रतेभ
पञ्चास्यमारकतमन्मथदर्पहारी ।
रामोलसन्मुनिपटेषुधिचापबाणः
सीतापतिर्विजयते श्रितचित्रकूटः ।।१।।

नवजलधरकान्तो लोललोलालकान्तो
गुणमहितदिगन्तो भूषणोद्यद्वसन्तः ।
किलकितकलवाचा रञ्जयन् मातृवर्गं
पितुरजिरगतः श्रीराघवः शान्तनोतु ।।२।।

।। शान्तिपाठः ।।

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि । वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः । अनेनाधीतेनाहोरात्रान्सन्दधाम्यमृतं वादिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु ममवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।।

ॐ शान्तिः । शान्तिः ।। शान्तिः ।।।

अथ ऋग्वेदीयैतरीयोपनिषद् व्याख्यायते । श्रीराघवकृपाभाष्य नाम्ना नातिदीर्घसंक्षेपेण निराकृतप्रतिपक्षप्रत्याक्षेपेण सन्निहितश्रीसीतारामचरणनीरजनिक्षेपेण विवरणविशेषेण । तत्र प्रथमं शान्तिपाठः वागित्यादि । हे परमेश्वर ! मे मनसि वाक् प्रतिष्ठिता भवतु,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा मनोदेवतेन चन्द्रेण अग्निदैवतां वाचं शीतलां कुर्याम् । एवं मे मनः वाचि प्रतिष्ठितं भवतु, यथा मनोदैवतचन्द्रसुधया वाणीं सुधामयीं कुर्याम् । निजाध्ययनेन अहोरात्रान् संदधामि, इमे मनोवाचौ मयि वैदिकंज्ञानमानयताम् । श्रुतं मां मा प्रहासीःत्र व्यत्ययात् पुरुषविपर्ययः । शेषं सुगमम् ।।श्रीः।।

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

प्रथमः खण्डः

इतरा काचित् ब्राह्मणपत्नी, इं कामं तरति या सा इतरा, तस्याः इतरायाः अपत्यं पुमान् ऐतरेयः काश्चिदृषिः । **स्त्रीभ्योढक्** (पा०अ० ४/१/१२०) इत्यनेनढक् प्रत्ययः एयादेशो वृद्धिश्च । तेन ऐतरयेण प्रोक्ता उपनिषत् इति ऐतरेयोपनिषत् । उप परमात्मनः समीपं निषीदति इत्युपनिषत् साक्षाद् भगवन्महत्वप्रतिपादनपरत्वात्—

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ।।१।।

ओमिति भगवत्समरणम्, अग्रे सृष्टेः प्राक इदं चिदचिदात्मकं जीवजगत् वै निश्चयेन एकः आत्मा प्रधानतया परमात्मैवासीत् । तदा जीवात्मा नामरूपविमुक्तः परमात्मलीसत्ताक आसीत । यद् वा आत्मा, एकः इत्युभयत्र **व्यत्ययो बहुलम्** (पा०अ० ३/१/८५) इत्यनेन ङ्यर्थे सु । तथा सृष्टेः प्राक इदं जीवजगत् एकस्मिन् परमात्मन्येव आसीत् । तदा तदन्यत् किञ्चन न मिषत् न दर्शनक्षममासीत् । स परमात्मा ईक्षत **व्यत्यादडभावः**, ईक्षणं संकल्पं कृतवान् । यज्जीवभोगार्थं तेषामानुकूल्येन लोकान् सृजै रचयै, इति शब्दः ईक्षणप्रकारसूचकः ।।श्रीः।।

लोकसर्जना प्रकारमाह—

स इमाँल्लोकानसृजत् । अम्भो मरीचीर्मरमापोदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ।।२।।

परमात्मा अम्भः, मरीचीः, मरम् आपः इति चतुः संज्ञान्वितान् चतुर्विधान् लोकान् असृजत । तेषामाशयं श्रुतिः स्वयमेव प्राह—परेण दिवं, स्वर्गलोकादनन्तरं महरादयः पञ्चलोकाः, मरीचीः दिवः पूर्वमन्तरिक्षं, किरणमयत्वात् मरीचिसंज्ञा । मरं पृथ्वी मृत्युमयत्वात् । आपः पृथिवीतो अधस्तात् अतलादयः सप्त आपः जलमयत्वात् ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपान्नु सृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् ।।३।।

परमात्मा लोकपालचिकीर्षया पुरुषसंज्ञं जीवात्मानमेव अमूर्छयत् विस्तारयामास ।।श्रीः।।

विस्तारप्रकारमाह—

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोभानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या आपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्वाद्रेतो रेतस आपः ।।४।।

परमात्मा तपः ज्ञानं अतप्यत् समालोचितवान् । अनन्तरं तस्य मुखं निरभिद्यत, मुखाद् वाणी, ततो अग्निः । एवं नासादयः तेषां देवताः ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमः खण्डः ।।

।। अथ द्वितीयः खण्डः ।।

अथ अन्नरचनाप्रकारमाह—

ता एता देवता सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् ता एनमब्रुबन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ।।१।।

रा०क०भा०—संसारोऽयं महार्णवः तत्र पतिताः देवताः क्षुत्पिपासाकुलाः निवासाय भोजनाय च पुरुषमभ्यर्थितवत्यः ।।श्रीः।।

आनन्तरिकघटनामाह—

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ।
ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ।।२।।

ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति ।
पुरुषो वाव सुकृतम् ।
ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गामश्वञ्च समालोक्य न तृप्तान् वीक्ष्य वै सुरान् ।
नरं ससर्ज ते तुष्टाः तं प्रवेष्टुं स आदिशत् ।।श्रीः।।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुभूत्वाक्षिणी प्रवशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौं प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ।।४।।

अग्न्यादयो वागादि भूत्वा मुखादीन् प्राविशन् देवानां इनिद्रयावतार: इति श्रौतार्थ: ।।श्री:।।

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति । ते अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति । तस्माद्यस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ।।५।।

अशनाया बुभुक्षा ।

क्षुत्पिपासार्थमेवासौ देवेष्वायतनं व्यधात् ।
हविर्ग्रहणकाले ते तान् दृश्येत उपस्थिते ।।श्रीः।।

।। इति द्वितीयः खण्डः ।।

।। अथ तृतीयः खण्डः ।।

अथान्नरचना प्रकारमाह—

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ।।१।।

सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत । या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ।।२।।

तदेनत्सृष्टं पराङ्त्यजिघांसत्तद्वाचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम् । स यद्धैनद्वाचाग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।३।।

तत्प्राणेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुं स ।
यद्धैनत्प्रणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।४।।

तच्चक्षुषाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्चक्षुणा ग्रहीतुं स यद्धैनच्चक्षुषाग्रहैष्यद् दृष्ट्वा हैन्नान्नमत्रप्स्यत् ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुं स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।६।।

तत्त्वचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुं सा यद्धैनत्वचाग्रहैष्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।७।।

तन्मनसाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुं सा यद्धैनन्मनसाग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।८।।

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुं स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।९।।

तदपानेनाजिघृक्षत्तदावयत् सैषोऽन्नास्य ग्रहो यद्वायुरत्नायुर्वा एष यद्वायुः ।।१०।।

मूर्तिः स्थूलपदार्थः ।

देवः ससर्ज जीवार्थं मूर्तिमन्नमभूत् किल ।
वागादीनि मनोऽन्तानि तद्ग्रहीतुं च नाशकन् ।।

अपानमावयत्तत्तु अतोऽन्नं वायुना धृतम् ।
वायव्यमन्न इत्याहुः श्रुतीनामाशयो ह्ययम् ।।श्रीः।।

अथात्ममीमासां निरूपयति—

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति । स ईक्षत यदि वाचाभिव्याहृतम् यदि प्राणेनाभिपप्राणितं यदि चक्षुषा ददृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति ।।११।।

जीवेन सह परमात्मनः अस्त्यविनाभावसम्बन्धः । यथा चाह भगवान् गीतायाम् —**न तदस्तिविना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।** (गीता १०/४०) इतमेव प्रपञ्चयति । स इत्यादिना ईक्षणं हि विचारः । सः परमात्मा ईक्षत अडभावो व्यत्ययात् । इदं जीवभूतं चिदचिदात्मकं मदृते मां विहाय कथं स्यात् ? केन प्रकारेण तिष्ठेत् ? सखाहमेतस्य नित्यः शाश्वत सम्बन्धी च । यदि चेत् मां विना अने वाचा उच्येत ? नासया घ्रीयेत ? चक्षुषा दृश्येत ? त्वचा स्पृशेत ? रसनया रस्येत ? तर्हि कोऽहं, ममावश्यकता का ? अतो मया स्वसत्तारक्षणार्थं, जीवसुखार्थं च प्रतिशरीरं जीवात्मना सह भवितव्यम् । अथ मस्तिष्कचरणयोः कतरेण मित्रभूतमेतं प्रपद्ये ? इत्यात्मनि विचारयामास ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ परमात्मप्रवेश प्रकारमाह—

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत । सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम् । तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः अयमासवथोऽयमासवथोऽयमासवथ इति ।।१२।।

स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति । स एतमेवपुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत । इदमदर्शमिती ३ ।।१३।।

तस्मादिन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम । तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याक्षचते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ।।१४।।

सीमा शरीरान्तिमो भागः शीरोरूपः तं विदार्य तेनैव प्राविशत् अतस्तद् ब्रह्मरन्ध्रं कथ्यते । लोके विदृतिः विदीर्णत्वात् । तस्य परमात्मनः त्रयः आवसथाः वेदाः लेकाः । एवं त्रयः स्वप्नाः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपाः । एवं प्राप्त- भगवत्सहायपुरुषः प्रत्यगात्माजगद्विलोक्या चकितोभूत्वा तद्रचयितारम् अन्विच्छन् हृदयेऽन्तर्यामिणं निखिलजगत्स्वामिनं परमात्मानम् अदर्श । अतः इदम् अदर्शम् अतः संक्षिप्य इदन्द्रः कथ्यते । स एव देवानां परोक्षप्रियत्वात् इन्द्रः कथ्यते ।।श्रीः।।

।। इति तृतीय खण्डः ।।

इत्यैतरेयोपनिषदि प्रथमाध्याये जगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

प्रथमः खण्डः

अथास्मिध्याये पुरुषस्य जन्मत्रयं वर्णयति—

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति । यदेतद्रेतः तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तस्य प्रथमं जन्म ।।१।।

तत् स्त्रिया आत्मभूतं गच्छति । यथा स्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति । सास्यैतमात्मानमत्रगतं भावयति ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सा भावयित्री भावयितव्या भवति । तं स्त्रीगमर्भं बिभर्ति । सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या । एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ।।३।।

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः प्रतिधीयते । अथास्यामितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति । स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ।।४।।

तदुक्तमृषिणा-गर्भेनु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा । शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति । गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ।।५।।

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृतः समभवत्समभवत् ।।६।।

आदिकर्ता परमात्मा स्वाङ्गोत्थेभ्यो रेतोभ्यः रेतसि दधाति, इदमस्य प्रथमं जन्म । पुनस्त्रियां सिञ्चति सा च सम्भावयित्री इमं कुमाररूपेण जनयति, इति द्वितीयं जन्म । स च जीवात्मा मृत्वा पुण्येन शुभं लोकं, पापेनाशुभं लोकं याति जायते च इति तृतीयं जन्म । एतदेव वामदेव ऋषिः प्राह गर्भे शयानोऽहं शातशत लौहशृङ्खलासदृशीः यातना अनुभूतवान् । अहं गर्भे निवासं कुर्वन् देवानां जनिमानि जन्मानि अवेदिषम् , ज्ञातवानभूवम् । मां शतसंख्याकाः श्रृङ्खलाः अरक्षन् रक्षितवत्यः । अहं निजवेगात् तास्त्रोटयित्वा निरदीयं निरगच्छम् । गर्भे शयानः वामदेवः इत्थं कथयामास । एवं ज्ञात्वा अस्माद् देहात्समुत्थाय वामदेवः ब्रह्मलोके सर्वान् कामान् भुक्त्वा अमृतः अभवत् , मृतभिन्नो भगवच्छ्रीराम परिकरप्रधानतामगमत् । अत एव मानसे—

वामदेव रघुकुल गुरु ज्ञानी
बहुरि गाधि सुत कथा बखानी ।।

मानस १/३६१/१ ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमः खण्डः ।।

इत्यैतरेयोपनिषदि द्वितीयाध्याये जगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघाकृभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

प्रथमः खण्डः

अथास्मिन्नध्याये आत्मा मीमांस्यते—

कोयमात्मेति वयमुपास्महे । तकरः स आत्मा, येन वा पश्यति, येन वा शृषोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येनवा स्वादु चास्वादु च विजानाति ।।१।।

यदेतद् हृदयं मनश्चैतत् । संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेघा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सवाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ।।२।।

एव ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिजानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किंचेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम् । प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ।।३।।

स एतेन प्रज्ञानेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वामृतः समभवत्समभवत् ।।४।।

अत्र वर्णितचरौ परमात्मप्रत्यगात्मानौ, परमात्मा स्रष्टा प्रत्यगात्मा जीवश्च शरीरनिवासी । अनयोः कतरोऽयमात्मा ? यं वयमुपास्महे, सेवामहे । येन सहायभूतेन पश्यति जगत् साक्षात् करोति चक्षुषा जीवात्मा, येन करणीभूतेन जीवात्मा श्रृणोति शब्दाननुभवति । पुनःयेन दत्तशक्तिना गन्धानाजिघ्रति घ्राणविषयं करोति । येन वाचं वाणीं व्यारोति निर्धारयति, दत्त विवेकबलेन । येन च दत्तयसामर्थ्येन स्वादु अस्वादु च विजानाति । स एव करणकारकीभूतो यत् पदार्थः परमात्मा उपास्यः ।

यथोक्तं ध्रुवेण—

योऽन्तः प्रविश्य ममवाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ।

(भा० ४/९/५)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं पश्यत्यादिविजानात्यन्तानां क्रियाणां कर्ता जीवात्मा समुपासकः । एवं तृतीयैकवचनान्तयच्छब्दवाच्यः परमात्मा उपास्यः , इति श्रौततात्पर्यम् ।

अथ द्वितीये तस्य निवासस्थानपर्यायाणि निरूपयति । स हृदये विलोक्यते, हृदि अयम् इमौ द्वौ शब्दौ यत्र तद्धृदयम् । तस्यैव मन आदयो नामविशेषाः । एवं सर्वाणि प्रज्ञानब्रह्मणः नामधेयानि अस्तित्वसूचकनामानि । शरीरशरीरिभावेन विशेषणविशेष्यभावेन च नीलमुत्पलमित्यादिवत् । जगज्जगदीशयोरभेदं प्रतिपत्तुं तृतीये समानाधिकरणशब्दावलिमाह—इन्द्रादि क्षुद्रजीवपर्यन्तानि भगवच्छरीराणि सर्वमिदं चिद्चिदात्मकं प्रज्ञानेत्रम् । प्रज्ञा परमचेतना एव नेत्रं यस्य तथाभूतम् । एवं चिद्चिदात्मकं जगत् प्रज्ञाने परब्रह्मणि प्रतिष्ठितम् । लोकोऽपि प्रज्ञयैव नीयते । एवं प्रज्ञैव सर्वेषां प्रतिष्ठा, तथैव प्रज्ञानं प्रकृष्टज्ञानवत् ब्रह्म । जीवात्मनि ज्ञानं सदपि निकृष्टमज्ञानेनावृतत्वात् । **अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्** (गीता ५/१५) ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञानवत् , अज्ञाननिरवच्छिन्नत्वात् । प्रकृष्टं ज्ञानं यस्य तत् प्रज्ञानम् एवं भूतं ब्रह्म । स एतेन प्रज्ञेन परमात्मना कृतसहायेन अयं जीवात्मा अस्मात् लोकादुत्क्रम्य मर्त्यलोकोत्क्रमणं विधाय अमुष्मिन् स्वर्गे स्वर्लोके गीयते इति स्वर्गः साकेत लोकः, तस्मिन् सर्वान् कामान् भगवत्प्रसादभूतान् आप्त्वा प्राप्य अमृतः समभवत् , भगवंत् कैङ्कर्यजन्यपरमानन्दामृतसम्पन्नः समभवत् । द्विरुक्तिरादरार्थाः ।

हे राम राघव रघूत्तम रावणारे
हे जानकीश जनचातकवारिवाह ।
हे देव हे पतितपावन रामभद्रा-
चार्यं करालकलितं परिपाहि पापात् ।।

ऐतरेयोपनिषदो रामभद्रार्यसूरिणा ।
श्री राघवकृपाभाष्यं कृतं सीतेशतुष्टये ।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं श्रीराघवकृपाकृतम् ।
श्रीराघवकृपां देयाच्छ्रीराघवकृपाफलम् ।।

इत्येतरेयोपनिषदि श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्य प्रणीतं तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्यंसम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

●

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्री राघवोविजयते तराम् ।।

।। श्री रामानन्दाचार्याय नमः ।।

श्वेताश्वतरोपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

शान्तिपाठः

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहैं।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!!

अथ श्रीचित्रकूटनिवासिना जगद्गुरुरामानन्दाचार्यास्वमिरामभद्राचार्येण श्वेताश्वतरोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यं प्रारभ्यते।

मङ्गलाचरणम्

नवघनसुभगो गिरीशपूज्यो जनकसुतानयनाब्जरश्मिमाली ।
नरपतिमणिराश्रिताधिवासो विजयत ईड्यचरित्रराघवो मे ।।१।।

जय जनकसुता नवेन्दुलेखामधुरमयूखचकोरकोशलेन्द्र ।
जनजलरुहचित्रभानुरूप, रघुवरबर्हकिरीटरामभद्र ।।२।।

जयति जनमनोभिलाषिपूर्तिसुरतरुचारुलता गुणैर्विनीता ।
रघुपतिपदपद्मचञ्चरीका जनकसुता गुरुदैवतञ्च सीता ।।३।।

सौशीलेयपदाम्भोजं शीलये शीलवृद्धये ,
ध्यायामि च पुनर्नैजं गुरुं हुलसीनन्द।।४।।

राघवरामकृपालो प्रणतदयालो गुणैकवारीश ।
श्वेताश्वतरोपनिषद् व्याचिख्यासौ प्रसीद त्वम् ।।५।।

अथ श्रीमद्जगद्गुरुश्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यचरणकुशेशयसंलब्धसंभग्नसमस्तशास्त्रीय-संशयप्रतिपिपादयिषितविपुलविशदविषयेण सप्रणतपारिजातप्रणयेन निर्भयेण मया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्वेताश्वतरोपनिषदेषा श्रीराघवकृपाभाष्यभूषणेन संकलितश्रुतिभूषापि परमभक्त्या भूष्यते। श्वेताश्वतरोनामकश्चन तप:प्रभावलब्ध ब्रह्मबोधसम्पत्तिर्धृतभगवत्प्रपत्तिर्महर्षिविशेष: तथा हि नामापि तदीयं समन्वर्थचरितं श्वेता: भगवद्भजनवारिधवला अश्वतरा: अतिशयेन अश्वा: इन्द्रियविशेषा: यस्य स श्वेताश्वतर: इन्द्रियाणिहयानाहु: इति कठोक्ते: तस्येन्द्रियाणि हि सदश्वा इव न परमार्थपथं पदमपि व्यतिक्राम्यन्ति। यद्वा अतिशयेन श्वान: श्वतरा: विषयलोलुपा: श्वतरभिन्ना: अश्वतरा: परमविरक्ता: इति भाव:, तादृश: श्वेता: भगवद्भजनशुभ्रा: अश्वतरा: कुक्कुरस्वभावभिन्ना: मनोवृत्तय: यस्य स श्वेताश्वतर: तेन प्रोक्तोपनिषदिति श्वेताश्वतरोपनिषत् कथ्यते। तद्यथा—

तपः प्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोथ विद्वान् ।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टम् ।।

सेयं षडध्यायसंपन्नागतिविसरणावसादनार्थकषद्लृधातो रूपनिपूर्वकान्निष्पन्ना निजानुशीलकानां हृदयेषु ब्रह्मतत्वगमयितृत्वचिदचिदग्रन्थिविशरणगर्भवासदुष्प्रभाव-सादनरूपव्युत्पत्तिरूपधर्मत्रयोपपन्ना श्रीरामपादपद्मप्रपत्तिरूपपीयूषवर्षिणी प्रहर्षिणी च वैष्णवमन:कैरवाणां शरदिन्दुकौमुदीवेति कृत्वा मयापि निजव्याचिकीर्षा विषयीक्रियते । तामिमामहं श्रीसीतारामकृपाप्राप्तविवेकविलोचनो युक्तियुक्तं यथाशास्त्रं व्याकरिष्यामि । वेदान्तवेद्यं विशिष्टद्वैतवादसिद्धान्तप्रतिपादनमेवात्र विषय:, तज्जिज्ञासु: श्रीसीतारामोपासक एवात्राधिकारी, ब्रह्मविद्याद्वारेण सेवकसेव्यभावसम्बन्धज्ञानपूर्वकश्रीसीतारामचरणारविन्द-निर्भरभक्तिरेव प्रयोजनम्, बोध्यबोधकभाव एव संबन्ध: इत्यनुबन्धचतुष्टयम्। ननु भगवद्भक्तिरेव प्रयोजनत्वेनोक्ता किंमानमत्र यस्य देवे पराभक्ति: इति चरममन्त्र एव मानत्वेन गृह्यताम् । अत्रोपनिषदि असकृद्भगवानिति शब्दित: परमात्मा, भगवतश्च भक्त्यधीनत्वमनेकत्र चर्चितं तस्मादेषोपनिषद्भगवत: सगुणरूपप्रतिपादन एव पर्यवसीयत इति तत्र तत्र स्फुटीभविष्यति मामकीनविवृतौ ।

इत्यनेन ब्रह्मज्ञानादृते जीवकल्याणमसम्भवमिति ससमारोहं प्रपञ्चयन्तो वञ्चयन्त: परास्ता:, भक्त्यैव सगलपुरुषार्थजननीभूतया साधकानां नि:श्रेयसं विधीयते भक्तिरेवैनं गमयति । तत्र श्रुति:—

मां च यो व्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
सगुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

इति भक्तियोगकरणकभगवत्सेवा नौकयैव त्रिगुणातीतत्वप्रतिपादकस्मृतेश्च **भक्त्या विमुच्येन्नरः** इति भागवतवचनाच्च । ननु तर्हि **ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः** इति श्रुते कथं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सङ्गतिः ? ज्ञानस्यार्थवादपरकतया तस्याः संयोजनात्, यद्वा ज्ञानशब्दोऽत्र सेवकसेव्यभाव-सम्बन्धबोधरूपः, तस्माद्भक्तभगवन्मध्यवर्तिसेवकसेव्यभावसम्बन्धबोधरूपात् ज्ञानात् ऋते मुक्तिः अन्यथा रूपपरिहारपूर्वकस्वरूपेण व्यवस्थतिः न सम्भवा इति श्रुत्यर्थः । आशयोऽयमस्याः— श्रुतेः यत् जीवस्य स्वरूपं नाम भगवद्भजनम्, तदेव विस्मृत्यायं विसृज्य रामभजनम् कामं भजत इत्येव बन्धनमेतदीयम्, अतः सद्गुरुचरणकमलसेवया निरस्तसकलभगवद्भजनप्रतिबन्धकप्रत्यवायनिकायः स्वाचार्योपदिष्टश्रुतिकृपासमुन्मीलित-विवेकविलोचनो भवभयमोचनं राजीवलोचनं सेव्यतया समध्यवस्यन्, अहं सेवको भगवान् सेव्य इति विशुद्धसम्बन्धबोधेन पुनः प्रत्यागतस्वरूपज्ञानः संसारबन्धनात् विमुच्यते । यथोक्तं भागवते **मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः** (भगवत ३-१) अथवा **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः** इत्यस्य क्रमिकमुक्तौ ज्ञानहेतुत्वप्रतिपादनम् सद्यो मुक्तौ तु भक्तिरेव हेतुः, ज्ञानविक्लवचेतसां गजेन्द्राणां तथैव दृष्टत्वात् । अथवा **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः** मन्त्रसकलेनानेन मुक्तेर्ज्ञानायत्तत्वम्, **भक्त्या विमुच्येन्नरः** इति स्मार्तवचनखण्डेन विमुक्तेर्भक्त्यधीनत्वं प्रतिपाद्यते। इति विरोधपरिहारः भक्त्या तस्मात् ज्ञानेन मुक्तिः परन्तु विमुक्तिरिति विशेषोऽनयोः प्रतिपादितः ? अथ किमन्तरं खलु मुक्तिविमुक्त्योः ? भूयान् किल, विशेषः ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः इति श्रुत्या विधीयमाना मुक्तिः नैवस्थायिनी मायया समपह्रियमाणे ज्ञाने अज्ञानकलुषचेतनस्य पतनं सम्भवम् । तथोक्तं मार्कण्डेये—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।

(दुर्गासप्त० १.५५)

तथैवाभ्यस्तम् अभिनववाल्मीकिना अस्मदाचार्यचरणेन श्रीगोस्वामितुलसीदासेन श्रीमानसे **जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई, बरिआई विमोहमनकरई** (मानस ५९/६) श्रीगीतायामपि भगवान् प्राह—

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः । (गीता ५/१५)

परन्तु भक्तिर्नैव मायया मुह्यति, भक्तिमाययोरुभयोरपि नारीवर्गतया समान-शीलत्वात् । तथोक्तं मानसे—

मोह न नारि नारि के रूपा, पन्नगारि यह रीति अनूपा ।।
माया भगति सुनहु तुम दोऊ, नारिबर्ग जानइ सबकोऊ ।।

(मानस ७.११६/२.३)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न नारी नारीरूपे मुह्यति समलिङ्गत्वात् । **नमे भक्तः प्रणष्यति** (गीता ९.
३१) इति

स्मृतत्वाच्च । ततोऽविरलया भक्त्या प्रदीयमाना विमुक्तिः, सा च विशिष्टा मुक्तिः वैशिष्ट्यञ्च सार्वकालिकतया भगवतकैंकर्यतो भ्रंशसत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः, अर्थात् भगवद्भक्तिमहिम्ना जीवः कदापि निजस्वरूपात् भ्रष्टो न भवति । यथोक्तं श्रीभागवते कपिलेनापि **अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी जरयत्याशु वै कोशान् निगीर्णमनलो यथा ।** भागवतज्ञानमिव भक्तिरपि कोशान् जरयति, किन्तु इयं शीघ्रमेव ज्ञानम्विलम्बतः। आशु जरयतीति कथयित्वा ज्ञानतो वैशिष्ट्यमस्याः प्रादर्शि । भागवतमाहात्म्ये तु सुस्पष्टं ज्ञानवैराग्यनामानौ भक्तिसुताविति प्रत्यपादिषाताम्—

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ।।

(भागवत. मा.)

इत्थं ज्ञानान् मुक्तिः भक्तेश्च विमुक्तिरिति कलितम् । सेयं भक्तिः सगुणमेव भगवन्तं विषयीकरोति न तु निर्गुणं, गुणवन्तं हि कान्तं भार्या भजते न तु गुणविहीनमिति लौकिकी रीतिरपि। निर्गुणस्य ब्रह्मणो हि क्लीबस्येव भक्तदुरितविनाशनाक्षमत्वात् । यथोक्तम् मानसे—

व्यापक ब्रह्म एक अबिनासी । सत चेतन घनआनंदरासी ।।
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ।।

(मानस १.२३/६/७)

सर्वत्र हृत्सु निवसदपि कूटस्थं ब्रह्म त्रिकूटस्थेभ्यः षड्विकारेभ्यस्त्रातुमक्षमं चित्रकूटस्थमन्तरेण सगुण ब्रह्मा तस्याप्रतिद्वन्द्वपौरुषत्वात् । तथोक्तं बालिवधप्रसंगे मानसे—

सुनि सेवक दुःख दीनदयाला । फरकि उठी दोऊ भुजा बिसाला ।

(मानस. ४.६.१४)

सगुणब्रह्मणो हि गुणा आत्मारामानपि पूर्णकामान् महात्मनो नातिदीर्घेण प्रयत्नेन समाकर्षन्ति भगवतो वात्सल्यादिगुणैरेव समाकृष्टचेतसस्ते हेतुमन्तरेणापि कश्चिदकिञ्चनां भक्तिं कुर्वन्ति भगवति। यथोक्तं भागवते—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्ति हैतुकीभक्ति मित्थंभूतगुणो हरिः।।

(भागवत)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्यामनपायिन्यां भगवद् भक्तावागतायां वर्षर्ताविव साधकमनोभूमौ प्ररोहायन्ते सकलसद्गुणाः । अमुष्याः भक्तेः परमलक्ष्यतया प्रेष्ठस्य भगवतः सगुणब्रह्मणो लीलागृहीतदेहस्य श्रीमन्मैथिलीपतेः श्रीरामस्य षडैश्वर्यसम्पन्नस्य षड्भिरध्यायैः समासतः गुणान् संकीर्तयितुं प्रवर्तते चैषा श्वेताश्वतरोपनिषत् । तत्र प्रथमं सेव्यतया निश्चितस्य ब्रह्मणः कारणत्वगीप्सावसंवदाः परमर्षयः श्वेताश्वतरमेव पञ्चभिः प्रश्नैरुपतिष्ठन्ते। **सह नाववतु** इति शान्तिपाठस्तु व्याख्यातचरः कठोपनिषदि।

साम्प्रतं हरिरित्यादि प्रतीकेन श्वेताश्वतरोपनिषदेव व्याख्यायते। तत्र प्रथमाध्याये प्रथममन्त्रः—

।। ब्रह्मवादिनां प्रश्नसंग्रहरूपः ।।

हरिः ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।
किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।।१।।

उपनिषदियं सर्वापि पद्यात्मिका। तस्मादन्वयपूर्वकमेव व्याख्यानमस्याः प्रस्तूयते—

अन्वयः– हरिःॐ, ब्रह्मवादिनः वदन्ति, हे ब्रह्मविदः, ब्रह्म किं कारणम्, कुतः जाताः स्म, केन जीवाम च (वयं) क्व सम्प्रतिष्ठाः, केन अधिष्ठिताः सुखेतरेषु व्यवस्थां (अनु) वर्तामहे। इत्यन्वयप्रकारः।

हरिःॐ इत्येतद् द्वयं परब्रह्मणः सगुणत्वनिर्गुणत्वसूचकभगवत्स्मरणरूपं परममंगलमयं नामरत्नयुग्मम्। तत्र निर्गुणब्रह्मापेक्षया सगुणब्रह्मणो गरीयस्त्वं सूचयितुं तद्बोधकं हरिरित्यभिधानं प्राथम्येन श्रावयति श्रुतिः। संहितायामपि — **जो जान् विन्द्रते हरिं, हरिरेति कनिक्रधत** इति बहुशः मांगलिकं हरिरिति नाम सादरं पठितम्। वैदिका अपि-प्रत्येक मन्त्र उच्चारणप्रारम्भे **'हरिः ॐ'** इत्येव व्याहरन्ति।

यद्यपि कोषेषु विविधार्थकमेतद्दृश्यते तथाप्यत्र श्रीरामाभिधानमहाविष्णुपरकतयैव व्याख्यायते अत्यत्रप्रकरणानुरोधात्। **रामाभिधानो हरिरित्युवाच** इति (रघुवंशमहाकाव्ये १३/१) कालिदासः। **रामाख्यमीशं हरिम्** इति प्रणिजगाद हुलसी हृदयहर्षणश्रीतुलसीदासो मानसे।

हरिर्हि जीवानां पापानि कथंचिदपि स्मृतः सन् हरति यथा स्मर्यते च—

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हरति पापान् यः स हरिः इति हरिः व्युत्पाद्यते— अत्र हृधातोः कर्त्रर्थे इच् प्रत्ययः। यद्वा **'हरति जीव यातनाम् यः स हरिः'** तथा चाहुर्विष्णुदूता यमदूतान् प्रति श्रीभागवते—

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम्।।

(भागवत ६/२/१५)

यद्वा हरति चोरयति आत्मारामाणां निर्ग्रन्थानां मुनीनाम् अपि चेतांसि यः स हरिः। यद्वा हरति आत्मारामपरमहंस परिव्राजकानामपि हृदयेषु नीरसेषु सत्स्वपि भक्ति प्रापयति यः स हरिः। तथा च स्मृतं भागवते—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः।।

(भागवत १/७/१०)

इह श्रीसूतः **'इत्थंभूतगुणो हरि'** पदद्वयमिदं सामानाधिकरण्येन निर्दिशन् हरिमुद्दिश्य तत्र विधेयत्वेन इत्थंभूतगुणवत्तां व्यवस्थापयन् हरिशब्दस्यैव प्रामुख्येन भगवत् सगुणसाकारस्वरूपवाचकतां निर्विवादं व्याजहार।

हरिरेवेत्थंभूतगुणो यस्मिन् आत्मारामाः, (आत्मैव आरामः उद्यानं येषां ते) ये खलु जगतः पराङ्मुखदृष्टयः स्वानुभवानन्दैकसृष्टयः आत्मन्नेवारमन्ति । ये खलु मुनयः मननशीलाः, निगूढानामपि श्रुतस्मृतिपुराणेतिहासप्रभृत्यार्षवाङ्मय-वर्णितवैष्णवार्थानाम्, एवमेव ये खलु निर्ग्रन्थाः निरस्तजड्चेतनग्रन्थयः, निर्भिन्नाविद्याग्रन्थयो, निर्गतपरमार्थेतरप्रतिपादकग्रन्थाभ्यासाः वा, तेऽपि **उरुक्रमे–** उरुधा अनेकधा क्रमः, चरणकमलविक्षेपः कोशलमिथिलालंकासु सिद्धाश्रमदण्डकारण्यकिष्किन्धासु वा, यस्य तथाभूते लोकाभिरामे श्रीरामे, **उरुक्रमे–** विपुलविक्रमे। यद्वा— रुधाक्रमः-महारासलीलायां श्रीगोपीमण्डलमण्डिते मण्डपे यस्य तस्मिन्, त्रिविक्रमे, भग्नपुरन्दरादिविक्रमे उरुक्रमे श्यामामनोरमे श्रीकृष्णे। अहैतुकीं— विज्ञानेन लब्ध-याथात्मतया मोक्षमपि विगणयन्तः समस्तस्वार्थरहितां भक्तिं कुर्वन्ति। कथं कुर्वन्ति जिज्ञासामेतां समादधानः प्राह— यतो हि स हरिः। अनिच्छतामपि वीतरागाणां मुनीनां मनसां हरणशीलः। न खलु चोरश्चोरयन् वस्तूनि न्यायान्यायौ समीक्षते। कथमिमे तस्य वशगाः भवन्ति ? इत्यत आह **इत्थं भूतगुण—** इत्थंभूताः भग्नबन्धनानां परमहंसानामपि बन्धनशीलाः गुणाः रज्जुसमानधर्माको गुणाः यस्य तथाहूतः। एवं **हरिरिति—** भगवद्भक्त्युपबृंहणं भगवदीयं मांगलिकं नाम प्रथमं पठन्ती श्रुतिः व्याचिकीर्षिताया अमुष्या उपनिषदो भगवत् भक्तिमयत्वं प्रतिशृणोति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ननु भोः ! भक्तिर्नाम पौराणिकी परिकल्पना। उषनिषदः खलु ब्रह्ममीमांसाप्रायाः तर्हि कथमत्र श्रुत्यक्षराणि विरुध्य प्रौढ़िवादेन भक्तिराकृष्यते? नैवेत्थम्, असमीक्षित-श्रुतिसिद्धान्तैर्युस्माभिरित्थं प्रलप्यते । भक्तिमन्तरेण ब्रह्मविचारणाया अपि अकिञ्चित् करत्वम् । श्रीगीतासु— ज्ञानलक्षणवर्णनप्रघट्टेऽपि भगवता—

मयि चानन्योन्योगेन भक्तिरव्यभिचारिणी । (गीता १३/१०)

इति भगवता भक्तिर्निवेषिता । भक्तिमन्तरा ज्ञानमप्यज्ञाननिमित्ततस्तत्लक्षणमपि विना भक्तिमपूर्णमिति कृत्वा अत्र भक्तिर्न्यवेषि यिषयेवात्र भगवदीयोऽभिप्रायो मे प्रतिभाति । अथ भवतु नाम स्मृतिषु भक्तिचर्चाबाहुल्यं किमनेन प्रसंगश्चलति श्रुतीनाम् । भवन्तस्तु **आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे** इतिवत् प्रसंगान्तरं व्याचक्षते इति चेन्मैवम् । नाऽहं प्रसंगान्तरं चिकीर्षामि । **'श्रुतिमूलिका हिं स्मृतयः'** । श्री गीता तु सर्वोपनिषदगवीदुग्धमेव । यतोक्तं भारते—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

अत्रैव श्रुतिष्वप्युदाहरणं प्रस्तौमि – भगवान् भक्तिश्चेति तत्त्वयुग्ममिद मन्योन्याश्रयम्— यत्र यत्र हि भगवान् तत्र तत्र भक्तिः, यत्र यत्र भक्तिः, तत्र तत्र भगवान् ।

इत्यन्योऽन्यत्र समन्वयो बोध्यः। श्वेताश्वतरोपनिषदस्तृतीयाध्याये कण्ठरवेण श्रुतिः भगवानिति शब्दं संजगौ तथा च पश्य—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/११)

एवं तार्तीयके भगवानिति शब्दयित्वा पुनश्चरमे षष्ठे मन्त्रेऽन्तिमे—

यस्य देवे पराभक्तिः (श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/२५)

इति भक्तिशब्दसंकीर्तनेन कृत्स्नस्य ब्रह्मज्ञानस्य भक्त्यायत्तत्वं भगवती श्रुतिर्विस्पष्टं राद्धान्तयांबभूव । इत्यलमति व्याख्यया ।

एवमेव **हरिरिति** सगुणं बह्म, **ओऽम् इति** निर्गुणं ब्रह्म च समन्वयविधया स्मरति। ननु भोः! भवता सगुणब्रह्मणश्रेष्ठत्वे प्रतिपादिते, किं निर्गुणब्रह्मणा? इति चेन्मैवं, सगुणनिर्गुणब्रह्मणोर्वस्तुस्थितिमेव न वेत्सि । नैव सगुणं ब्रह्म निर्गुणब्रह्मातिरिच्यते।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निर्लीनाः गुणाः वात्सल्यादयो यस्मिन् तन्निर्गुणम्, भक्तकल्याणचिकीर्षया स्वजनावश्यकतानुसारं प्रकटितगुणैः सह वर्तमानं **सगुणम्**। माधुर्यं शैत्यमेव जलम्, वात्सल्यादयो गुणाः भगवन्तं निरपेक्षमपि तदन्यत्राधिष्ठानाभावात् कदापि न जहति न वा कर्हिचित् जिहासन्ति। किन्तु उपासकानां कृते पतितपावनत्वादयो गुणाः परमेश्वरस्य चेतःसमाकर्षकत्वात् प्रकामुपयोगिन इति तत्सहभूतत्वेन सगुणब्रह्मणो ज्यायस्त्वम्। परञ्च **सर्वत्र सत्ता तु निर्गुणब्रह्मणः**। गोस्वामितुलसीदासमहाराजानां नये भगवद्विषयकाज्ञाननिरासाय तदैश्वर्यसमवधानार्थं तन्निबन्धननिर्गुणब्रह्मणो हृदाकाशे चिन्तनमावश्यकम्। नयनानन्ददाने तु सगुणं ब्रह्मैव दानशिरोमणिरिति संकलित-श्रुतिसिद्धान्तसन्दोहा दोहैषा दोहावल्यां द्रष्टव्या—

हिय निर्गुण नयनहि सगुन रसना नाम सुनाम।
मनः पुरट सम्पुटलसत तुलसी ललित ललाम॥

(तुलसीकृत दोहावली - ७)

एवं सगुण ब्रह्म नयनानन्दं ददाति। यथा मानसे—

दूरहिं ते देखे दोउ भ्राता। नयनानन्द दान के दाता॥

(सुन्दरकाण्ड ४५/२)

इति सगुणनिर्गुणब्रह्मणोर्भेदवादं निर्गुणब्रह्मणश्चोत्कृष्टत्वं प्रलपन्तः प्रमादिनः परास्ताः। इत्थं **हरिः ॐ** इति द्वाभ्यां सगुणनिर्गुणवाचकाभ्यां भगवन्नामभ्यां ब्रह्मरूपद्वयं ध्यात्वा प्रश्नपंचकं प्रस्तौति—

ब्रह्मवादिनः ब्रह्म अतिशयेन बृहत् भक्तभक्तिस्वजनयशो बृहकं वा सकलगुणगणनिलयं श्रीरामाभिधं परमात्मानं वदन्ति तच्छीलाः इति ब्रह्मवादिनः। अत्र **सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये** इति सूत्रेण ताच्छील्ये णिनिः, स एव ब्रह्मवादः शीलं स्वभावः ऐषां ते तच्छीलाः। येषां स्वभावे ब्रह्मचर्चा, ये स्वप्नेऽपि भगवदतिरिक्तं न चर्चयन्ते, त एव एकदा आगत्य सत्कृत्य सादरं तपसा पूतंहृदयं महर्षिं श्वेताश्वतरं प्रश्नपंचकेन उपतिष्ठमानाः वदन्ति अत्र **स्म** इति अध्याहर्तव्यम् एवं वदन्ति। स्म स्वाभिप्रायं निवेदयामासुरिति भावः। यद्वा वदन्तिस्मेति शब्द आसीदेव, विनाऽपि प्रत्ययम् इति वार्तिकेन **'स्म'** शब्दस्य लोपः। किम् वदन्ती स्म इत्येतत् आह—

हे ब्रह्मविदः! ब्रह्मणि परमेश्वरे मनोऽवच्छेदेन विद्यन्ते इति ब्रह्मविदः। हे ब्रह्मनिष्ठा इति यावत्। अत्र हि सप्तम्यन्ते ब्रह्मोपपदे सत्तार्थक 'विद् धातोः' कर्त्तरि क्विप्। अगतकगतित्वेऽपि श्रुत्वनुरोधेन सप्तमीति योगविभागादेव समासः। व्युत्पत्यानया 'ब्रह्मविद्' इति शब्देन **समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्**। (मुण्डक॰ १/२/१२)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इति मन्त्रोक्तब्रह्मनिष्ठत्वरूपसद्गुरुलक्षणमपि सूचितम् । यद्वा ब्रह्म परमात्मानं विदन्ति इति ब्रह्मविदः । हे ब्रह्मज्ञानिनः इति भावः । यद्वा ब्रह्म परमेश्वरम् विन्दन्ति, निजप्रियत्वेन लभन्ते इति हे ब्रह्मविदः । लब्ध परब्रह्मपदपद्मा इति भावः । यद्वा ब्रह्म परमेश्वरं सीतापतिं श्रीरामं विन्दते निज सेव्यत्वेन विचारयन्तः समध्यवस्यन्ति ये ते ब्रह्मविदः । अत्र द्वितीयान्तब्रह्मोपपदात् यथा पूर्वक्रममवबोधनार्थक 'विद्' धातोः लाभार्थक 'विद्लृ' धातोः, विचारार्थक 'विद्' धातोश्च कर्तरि क्विपि कुम्भकारादिवत् समासः । एतेन व्युत्पत्तित्रयेण सद्गुरोः श्रोत्रियत्वं सूचितम् ।

एकस्मिन्नपि श्वेताश्वतरे ब्रह्मविदः इति बहुवचनान्तसम्बोधनप्रयोगस्तु—

एकत्वं न प्रयुञ्जीत गुरावात्मनि चेश्वरे ।

स्मृतिवचनानुरोधेन तत्र सद्गुरुत्वनिबन्धनादरातिशयसूचनाय ।

ब्रह्म श्रुति प्रतिपाद्यं परमेश्वराख्यं परतत्वं किं कारणम् ? न्यायनयोक्तेषु - समवाय्यसमवायिनिमित्तेषु कतमं कारणम्, यद्वा साधारणासाधारणयोः कतरतकारणम्, यद्वा निमित्तोपादनयोः कतर । एवं किं कारणमिति कारणकोटिनिर्धारणे प्रश्नः ।

यद्यपि ब्रह्मकारणत्वमीमांसायां बहवः पक्षाः, नैयायिकः कर्त्तृत्वेन परमात्मानं स्वीकुर्वन्ति एवं हि ते निमित्तकारणं मन्यन्ते परमात्मानम् । अतएव कारिकावली-मंगलाचरणे विश्वनाथः प्राह—

तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय

बीजाय— **निमित्तकरणाय, 'इति हि तत्र मुक्तावली।**

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।।

(गीता ७/१०)

इति हि प्राह गीताषु भगवान् । **बीज** शब्दस्य च निमित्तकारणरूपोऽर्थः सर्वसिद्धान्तसहः । अद्वैतिनः विवर्तवादं मन्वानाः भगवन्तमेवं ब्रह्म साक्षात् सम्बन्धेन उपादानं मायावाददृष्टौ निमित्तकारणं च स्वीकुर्वन्ति । किन्तु वयं वैष्णवाः अविकृतपरिणामवादं स्वीकुर्वाणाः, जगत् ब्रह्मणः परिणामं मन्यमाना अपि **दीपात्दीप-प्रवर्तनन्यायेन** तत्र विकारं नाध्यवस्यामः। केचन् तार्किका इव वेदान्तिनोऽपि सृष्टिं प्रति ब्रह्मणो निमित्तकारणत्वमेव मन्यन्ते । किन्तु वयं श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यपदपद्म-परागरसपायिनः श्रीवैष्णवास्तु अभिन्ननिमित्तोपादानकारणमेव ब्रह्म सृष्टिं प्रतीति प्रतीमः ।

अथ ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानकरणत्वे किं गमकम् ? इति चेत् मुण्डकोपनिषदेवेति गृहाण तत्र हि जगद्रचनाविचारकाले श्रुतिरुदाहरणत्रयेण सृष्टिं प्रति ब्रह्मणो हेतुत्वं प्रत्यपीपदत्। तथा श्रुतिः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ।।
(मुण्डक० १/१/७)

मन्त्रस्यास्य त्रिभिश्चरणैः त्रीण्युपमानानि सृष्टिरचनासम्बन्धे प्रदर्श्य, पश्चात् चरमे ब्रह्मैवोपमेयत्वेनोक्तम् । लूता यथा निजतन्तुजालं सृजति पुनस्तदेव स्वस्मिन् संहरति तथैव परमेश्वरोक्षरः स्वेन सृष्टं जगत् स्वस्मिन् संहरति इति तात्पर्यम् । केचन मन्त्रमेतमापातदृष्ट्या मीमांसमानाः उदाहरणेनानेन जगतो विवर्तत्वं प्रलपन्ति ।

वेदान्तसारकृता च ससमारोहमेतत्प्रतिपादितमपि तदसंगतं, न ह्युपमानसर्वगुणाः उपमेये दृश्यन्ते, यथा चन्द्र इव मुखमित्यत्र नहि चन्द्रगता धवलिमा मुखेऽपि द्रष्टुं शक्यते । तथा सति तत्र कुष्ठत्वप्रतीतिसम्भवात् । तस्मान्मुखे चन्द्रगताहलादकत्वमेवारोप्यते तथैवात्रापि ऊर्णनाभिगतसृज्यमानग्रहणताटस्थ्यं ब्रह्मण्यपि दृश्यते । वस्तुतस्तु ऊर्णनाभेः ऊर्णा तज्जन्या न तु सैव तथैव जगत् जगदीशजन्यं न तु स एव । एवम् यथा पृथिव्या मोषधयः सम्भवन्ति तथैव परमात्मन्याधारे सृष्टिकाले जीवाः जायन्ते । इत्यनेन जगदीशजगतोराधाराधेयभावः संसूचितः । एवम् यथा पुरुषात् केशलोमानि जायन्ते तेषु क्षीणेष्वपि पुरुषो न क्षीयते, तथैव जीवेषु क्षीणेष्वपि परमेश्वरोऽक्षर एव । अत्र त्रिष्वप्युपमानेषु परमेश्वरस्य जगज्जनकत्वं जगतश्च परमेश्वरात् परिणामः सूचितः । ननु यथातथोः साजात्यसमवधाने ऊर्णनाभेर्विकारस्तन्तुः पृथिव्या विकारा ओषधयः पौरुषेयाणि च केशलोमानि तथैव विश्वमपि परमात्मनो विकारः ? इति चेन्न उत्पत्तिप्रकारे यथा तथो साजात्यं, यथा ऊ़र्णनाभिः यथा सृजते, पृथिव्याम् ओषधयः यथा भवन्ति, पुरुषात् केशलोमानि यथा प्रादुर्भवन्ति अक्षरात् विश्वं तथा जायते । एवम् ऊर्णनाभि पृथिवी पुरुषाणां क्षरत्वात् तन्त्वौषधिकेशलोम्नाम् तद्विकारता परन्तु परमेश्वरस्याक्षरत्वात् तद्विकारता नहि ।

तेन तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् (मुण्डक० १/१/७)

इत्यक्षरशब्दप्रयोगात् ब्रह्मणि विकारनिरासः । तात्पर्यमेतत् क्षराणाम् परिणमे सति तत्र विकृतत्वं यथा दध्नि परिणामे दुग्धविकृतत्वम्, विकारोऽत्र स्वरूप हानिः किन्तु अक्षरे परमात्मनि न तथा क्षरत्वमन्तरेण स्वरूपहान्यनुपपत्तेः । तथाक्षरात् सम्भवतीहि विश्वमिति श्रुतिरेव विवर्तवादं विकारवादञ्च निरस्य ब्रह्मण्यविकृतपरिणामवादं वदति । यथा ऊर्णनाभिः स्वस्मादेव तन्तुजालं जनयन्त्यपि नैव विक्रियते, ओषधीषु जायमानास्वपि पृथिव्यां नो विकृतिः, पुरुषात् जायमानेषु केशलोमसु भग्नेष्वपि न

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरुषस्वरूपक्षतिः, तथैव जगति जाते प्रलीने च भूयः परमेश्वरे न स्वरूपच्युतिरिति विवेक्तव्यम् । संसारसत्वेऽपि परमात्मा तदभावेऽपीति समाकूतम् । तथा च भागवतचतुश्लोकी चरमपद्ये—

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्याम् यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ।।

(भागवत २/९/३५)

इममेवाविकृतपरिणामवादं बहुशो वदन्ति श्रीगोस्वामितुलसीदासमहाराजाःयथा—

अखिल विश्व यह मोरि उपाया । सब पर मोरि बराबरि दाया ।।

(मानस ७/९०/६)

पुनः विकारतां खण्डयन् प्राह—

चिदानन्दमय देह तुम्हारी । बिगत बिकार जान अधिकारी ।।

(मानस २/१२७/५)

जगतोनिर्विकारपरिणामतासमर्थनाय विनयपत्रिकायामाह श्रीरामभक्तकलहंसावतं सः यथा—

प्रकृतिमहतत्वशब्दादिगुणदेवताव्योममरुदग्निमलांबु उर्बी ।
बुद्धिमनइंद्रियप्राणचित्तातमाकाल-परमाणु चिच्छक्ति गुर्बी ।।
सर्वमेवात्र त्वद्रूप् भूपालमणि व्यक्तमव्यक्तगतभेदविष्णो
भुवनभवदंशकामारि-बंदित-पदद्वंद्व-मंदकिनी-जनक जिष्णो ।।
आदिमध्यांन्त भगवंत त्वं सर्वगतमीशपश्यंति ये ब्रह्मवादी
यथा पटतन्तुघटमृत्तिका, सर्पसृक्, दारु-करिकनककटकांगदादि।।

(विनयपत्रिका - ५४)

वस्तुतस्तु विवर्तवादो न शास्त्रीयः । **परिणामात्** (ब्रह्मसूत्र १/४/२७) इति सूत्रात् ब्रह्मणि परिणामे कथं न विकारता इति चेत् चिदचिद्विशिष्टं ब्रह्म, तत्र चिदचिद् ब्रह्मणो विशेषणे, तत्र न वा ब्रह्मणि न वा चिद्परिणामः स च अचिति ब्रह्म विशेषणे विशेषणपरिणाम एव विशिष्टे आरोप्यते अयमेव नो विशिष्टाद्वैतवादः ।

एवम् जगतोस्य ब्रह्म अपृथङनिमित्तोपादानकारणं इत्येव मे मनीषितम् । साधारणासाधारणयोर्मध्ये असाधारणमतो मानसकाराः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वन्देहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।

अशेषेभ्यः कारणेभ्यः परमश्रेण्ठं इति हि तदविवरणम् । एवंभूतंकारणं ब्रह्म किं स्वरूपमिति प्रश्नः, अथवा किं ब्रह्मकारणम् उताहो अन्यत् इति जिज्ञासा, अथवा ब्रह्मेत्यजन्तं **पदंसर्व प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म मेतत्** (श्वेताश्वतर १/११) ब्रह्मं एतत् इति विच्छेदः एवंनान्ता अजन्ता इति श्रीधरोक्तरीत्या श्रुति प्रामाण्येन च, नान्तस्यापि ब्रह्म, ब्रह्मणी, ब्रह्माणि इत्यादिरूपवतोऽजन्तब्रह्मशब्दस्य ब्रह्मं, ब्रह्मे, ब्रह्माणि इत्यादीन्यपि-रूपाण्यजन्तनपुंसक लिङ्गनुसारीणि सम्भवानीति सम्भावनीयं, तस्यैव बाहुलकात् लिङ्गवचनविपर्ययेण हेब्रहमाणः इत्यस्य स्थाने हे ब्रह्मेति सम्बोधनम् । यद्वा नान्तत्वेपि ब्रह्मशब्दस्य **सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपोवावाच्यः** इति सम्बुद्धिस्थले नान्तनपुंसकानां नलोपविधायिवार्तिकस्य बाहुलकात् पुल्लिङ्गे प्रवृत्तेः वचनविपर्ययात् हेब्रह्माणः इति स्थाने ब्रह्मेत्यार्षप्रयोगः । तथा च ब्रह्मविच्छब्देन सह ब्रह्मशब्दसम्बोधनस्य हार्दमिदम् यत्— भवन्तो ब्रह्मविदः सन्तोऽपि ब्रह्माणः ब्राह्मणाः भवताङ्कृते निसर्गसिद्धा ब्रह्मविद्या तस्मात् भवन्तो निर्व्यलीकं वदिष्यन्ति, हे ब्रह्मविदः! ब्रह्म किं कारणं जगतामिति शेषः इत्यर्थानुरोध्यन्वयः, भवन्तो द्विजश्रेष्ठाः अतो निर्णीय वदन्तु जगत् कारणंम्? एषः प्रश्नभावः । उत्तरमप्रतीक्ष्यैव शेषान् चतुरः प्रश्नान् भावयन्ति— वयं प्राणिनः कुतः कस्मात् जाताः कस्य सकाशात् गृहीतजनमानः ? जन्मनः प्राक् कुत्रास्म वयं जिज्ञासितमेतत् स्म इत्याश्चर्ये यद्वा कुतः हेतोः जाताः केन हेतुना वयं परमात्मनः पृथग्भूताः इति प्रश्नाभिप्रायः पुनस्तृतीयः प्रश्नः—केन किं नामकेन शक्तिविशेषेण प्रेरिताः परमात्मनः पृथग्भूता अपि जीवाम, जीवनं धारयामः अत्र जीवामः इति मस्प्रत्ययसकारस्य बाहुलकात् अङित्यपि लट्लकारे नित्यं ङितः इति शास्त्रप्रवृत्या लोपः । यद्वा जीवाम इति लोडुत्तमबहुवचनरूपम्, प्रश्ने हि लोट् लकारः। अस्मिन् महामोहमये रात्रिदिवेन्धन-प्रज्वलितसूर्याग्निना तातप्यमाने सर्पपकणा इव वयम् छुद्रसत्वाः केनाश्रयेण जीवाम प्राणान्धारयाम इत्याश्रयणीय जिज्ञासा च । पश्चात् वयं प्रारब्धजनितकलेवराणि विहाय क्व कस्मिन्निवासे सम्प्रतिष्ठाः, सम्यक् प्रतिष्ठा येषां ते सम्प्रतिष्ठाः भविष्यामः इति शेषः । प्रलयसन्ध्यायां कुत्र गत्वा यावत् प्रभातनिर्भयाः स्थास्यामः इति प्रश्नः । एवम् केन प्रेरयित्रा स्वाधिष्ठानभूतेन अधिष्ठिताः साधिकारं प्रेरिताः स्वकर्मसु नियुक्ता वा सुखेतरेषु, सुखानि अनुकूलवेदनीयानि तेभ्यः इतराणि इति सुखेतराणि तेषु सुखेतरेषु यद्यपि सुखदुःखे द्वे एव ततः सुखेतरयोः इत्येव वक्तव्यमासीत् तथाप्युभयोरवान्तर-भेदाभिप्रायेण सुखेतरेषु इति बहुवचनान्तमुक्तं, एवं सुखानि त्रीणि सात्विकराजसतामसानि गीतायाःअष्टदशे सप्तत्रिंशतः त्रिषु श्लोकेषु वर्णितानि आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकतापाः अपि वर्णिताः । यथा मानसे—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहि काहुहि ब्यापा।

(मानस ७/२१/१)

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ (सां.का. १)

इति हि तत्र ईश्वरकृष्णः। तेषु केन नियुक्ताःव्यवस्थाम् द्वन्द्वपरिणामभूताम् वर्तामहे अनुरिति अध्याहार्यः एवम् अनुवर्तामहे अनुसरामः अत्र पञ्चस्वपि प्रश्नेषु जीवब्रह्मणोर्भेदवादः सुस्पष्टं ध्वनितः। प्रथमं जन्मकारणजिज्ञासा पश्चात् जन्माधिष्ठानगीप्सा अथ आश्रयणीयप्रश्नः पश्चात् भाविनिवासगवेषणा अनन्तरं आत्मनोनियोक्तृबुभुत्सा इमे पञ्चप्रश्नाः वैष्णवानां अर्थपञ्चकजिज्ञासा रूपाः। ननु द्वितीयः प्रश्नो नोपपद्यते कुतस्म जाता इति जीवस्य हि अजन्मत्वप्रसिद्धेः **न जायते म्रियते वा विपश्चिद्** (कठोपनिषद् १/२/१८) इतिश्रुतेः।

''**न जायते म्रियते वा कदाचित्**। (गी. २/२०)

इति स्मृतेश्च इति चेत् सत्यं, अजन्मत्वेऽपि जीवस्य देहे स्वात्माध्यासबुद्ध्या शरीरावच्छेदेन जन्मोपपत्तौ तादृक् प्रश्नः। श्रीः।

एवं ब्रह्मवादिनां पञ्च प्रश्नान् निशम्य समेषात्तरभूतस्य उत्तरमीमांसाप्रतिपादस्य षडैश्वर्यसम्पन्नस्य भगवतः प्रतिपदं भक्तिवदस्य जगदुत्पत्तिपालनसंहर्तृत्वलोकोत्तरमाहात्म्य-निरतिशयकल्पाणसद्गुणास्रपत्वादि सकलविलक्षणलक्षणवैशिष्ट्यं वर्णयितुम् उमक्रमते षड्भिरध्यायैः अद्भुतमहिमानं, तत्र पूर्वं पूर्वपक्षीभूतानि नवकारणानि समासतो निराकृत्य कारणकोटावागतं दशमं दशमस्त्वमसि इत्यादि वाच्यम् सर्वसर्वेश्वरं सकल कारणत्वेन सिद्धान्तयति कालादिनवकारणानां कारणत्वं निराकरोति। काल इत्यादिना—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः॥२॥

कालः स्वभावः नियतिः यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुषः इति चिन्त्याः (कारणत्वे) तु एषां संयोगः आत्मभावात् न (कारणं) सुखदुःखहेतोः (जगतः) अनीशः आत्मा आपि न कारणम् इत्यन्वयः।

कालो नाम भूतभविष्यद्वार्तमानात्मकः निमेषादिः संवत्सरान्तः समयः स्वभावो नाम प्रतिजीवं निसर्गनैसर्गिकी क्षमता नियतिः, शुभाशुभकर्मफलसमूहः यदृच्छा आकस्मिकी प्राप्तिः भूतानि, पृथ्वीजलतेजोनभांसि योनिः सर्वजनयित्री प्रकृतिः, पुरुषः शरीराभिमानी जीवः, इति इमे मन्त्रपूर्वार्धेः कालादिपुरुषपर्यन्ता चिन्त्याः कारणकोटौ चिन्तनीयाः। वस्तुतस्तु कारणानि तर्हि एषां सप्तानां संयोगः समुदायकारणं भवन्तु, न वा अवयवसः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कारणानि भवन्तु इत्यत आह— तु अरुचिसूचकाव्ययोऽयम् एषां संयोगः न कारणं, हेतुमाह - आत्मभावात् आत्मनि भावः भवनम् इत्यात्मभावः तस्मात् आत्मभावात् यतो हि कालस्वभावनियतियदृच्छामहाभूतप्रकृतिपुरुषाणां न स्वतंत्रा स्थितिः सर्वे प्रत्ययगात्मानं श्रयन्ते, न हि पराधीनानि कारणानि भवन्ति । न भवतु नाम कालादीनामेकैकस्य कारणत्वम् परञ्च संयोगो भवतु कारणं ? तत् खण्डयतुं प्राह— न तु एकैके वा समुदायो वा । इत्यत्र किं वैलक्षण्यं यथा इमे प्रत्येकमात्मानमाश्रयन्ते तथैव एतत् समुदायोऽपि । अथ आत्मा भवतु नाम कारणम् इत्यत्र आह— सुखदुःखहेतोः सुखदुःखयोः हेतोः कारणभूतस्य जगतः कारणत्वे आत्मा अपि विशुद्धचेतनघनः अनीशः कारणत्वे अक्षमः, यतो हि जगतः सुखदुःखे आत्मा न व्यपोहितुं क्षमते अतः कालात्मपर्यन्तेषु कतममपि न कारणं, सर्वथा प्रमाणागोचरस्य परमात्मनः तत्स्वरूपशक्तेश्च ध्यानमन्तरेण साक्षात्कारासम्भवात् श्वेताश्वतरः प्रश्नकर्तृभिः सह ध्यानयोगमास्थाय जगतां कारणभूतां ब्रह्माभिन्नशक्तिमपश्यत् इत्येव विषयं विवृणोति त इत्यादिना।

पूर्वमेवोक्तं सुखदुखहेतोः आत्माप्यनीशः तात्पर्यमेतत् यत् आत्मनो ज्ञानं नैवैकरसम् **अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्** इति स्मृतेः । जीवात्मपरमात्मनोर्मध्ये मुख्यतमोऽयं विशेषः यत् जीवात्मा अणुः परमात्मा च महान् । अतो अणुभूते जीवात्मनि ज्ञानमपि तत्सीमानुसारं सखण्डम् । तस्मान्मायया समावृयते ।

परमात्मनो ज्ञानमखण्डं सर्वज्ञत्वात् । यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयः तपः।। (मुण्डक. १/१/९)

इति श्रुतेः । मानसकारोऽपि स्मरति—

ज्ञान अखण्ड एक सीतावर । माया वस्य जीव सचराचर ।।

(मानस ७/७८/४)

तस्मात् जीवात्मनि कदाचित् मायाविलुप्तज्ञाने सुखदुःखे उपचर्येते । तयोर्वशगत्वात् आत्मा अपि अनीशः, इष्टे शास्ति इतीशः न ईशः अतीशः ईश भिन्नः असमर्थ इति भावः । इदमसामर्थ्यं हि तत्कारणत्वं निरस्यति । सामर्थ्यवद् हि कारणं भवति । अतः किं कारणमिति मुख्ये प्रश्ने समुपस्थिते तद्विषये इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यज्ञानरूपप्रत्यक्षासंभवात्, तदसम्भवे, तत्कार्यभूतानुमानाप्रसरात्, **न तस्य प्रतिमा अस्ति** इति श्रुतिप्रेरणया ब्रह्मसादृश्याभावात् तत्रोपमानायोग्यत्वात्, जज्ज्ञाने शब्द एव शरणम्, शब्दस्य चापि वागिन्द्रियबोध्यत्वात् वाचश्च कर्मेन्द्रियत्वेन जडप्रायत्वात् तया विशुद्धचैतन्यघनब्रह्मबोधयितुमशक्यत्वात्, तदनुभवाय भक्तिमूलकध्यानयोगो हि मुख्यं साधनम् । ध्यानं हि सगुणसाकारस्य भवति यथोक्तं भागवते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ।
ध्यातुर्मनः शमलशैलनिःसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम्।।
(भागवत ३/२८/२२)

तस्मादिमे ध्यानयोगेन परमात्मशक्तिं साक्षात् चक्रुः । **ऋषयो हि मंत्र दृष्टारः** तपसा मन्त्रं मन्त्रार्थं च ऋषन्ति, अवगच्छन्ति, साक्षात् कुर्वन्ति इति **ऋषयः**।

भक्तेर्हि ज्ञानजननीत्वात् तयैव भगवन्तं प्रपेदिरे इति हृदयं श्रुतेः। श्रीः।।

उपक्रमेऽपि ध्यानयोगः, उपसंहारे च 'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' इति शरणागतिः तस्मात् भगवत्प्रपत्तिरेव वैदिकमार्गः। ज्ञानं च तन्निर्णये सहकारीति विवेकः, नन्वसंगतमेतत् ।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि (गीता ४/३९) **नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते** (गीता ४/३८) **श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप** (गीता ४/३३) एवमादि गीतावाक्येषु भगवता ज्ञानस्यैव प्राशस्त्येन चर्चितत्वात् । मैवं वादीः ।

भक्तिमन्तरेण ज्ञानस्यैव पूर्वं स्थातुमशक्यत्वात् , सप्तमे च श्रीगातायां ज्ञानवतोऽपि भगवत्प्रपत्तिदर्शनात् , स एव श्रौतमार्गः । तद्यथा—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।

एतस्यान्वयार्थोऽपि दुरूहतया सामान्यबुद्धिविषयत्वेन श्रीराघवकृपया समुन्मीलितविवेकलोचनेन मया क्रियमाणोऽवगन्तव्यः । तथाहि— सर्वं वासुदेवः इति सुदुर्लभः महात्मा ज्ञानवान् बहूनां जन्मनाम् अन्ते मां प्रपद्यते ।

अर्थात् यः खलु निजातिरिक्तसर्ववासुदेवमयं जगत् समवधारयति एतादृक् सुदुर्लभमहात्मा ज्ञानवान्, प्राशस्त्ये मतुप् प्रशस्तज्ञानसम्पन्नः नैकस्मिन् जन्मनि मां प्रपद्यते प्रत्युत् इमां निष्ठां धारयन् बहूनां जन्मनां अन्ते प्रारब्धजनितपरमेश्वरभजन-प्रतिबन्धकदुरितक्षये, समुदये च निरतिशयसुकृतपुञ्जस्य मां प्रपद्यते, अर्थात् मां श्रीकृष्णाख्यं परमात्मानं गोप्तृत्वेन वृण्वानः शरणं ब्रजतीति हार्दम् । तस्माच्छरणागतिरेव भगवतः श्रौतः पन्था इति निर्णीयते । तमेवोद्घाटयन्ती श्रुतिः प्राह—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ।।३।।

ते ध्यानयोगानुगताः स्वगुणैःनिगूढां देवात्मशक्तिम् अपश्यन् यः एकः कालात्मयुक्तानि तानि निखिलानि कारणानि अधितिष्ठति इत्यन्वयः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समेषां कारणानां निराशहेतुं सूचयितुं मन्त्रारम्भः— ते जगत्कारणजिज्ञासवः परमर्षयः ध्यानयोगानुगताः। ध्यानम् — परमेश्वरस्य नामरूपलीलाधाम्नाम् असकृन्मनसि चिन्तनम्। भगवद्भजनानुकूलव्यापाराख्यं मानसं चेष्टितं तदेव योगः निर्विकल्पसमाधिः। यद्वा ध्यानम् — समाधिपूर्वाणां सप्ताङ्गानामुपलक्षणम्। योगशब्दस्तु समाधिवाचकः तमनुगताः अष्टाङ्गयोगयुक्ताः इति भावः। योगिनो हि अवाङ्गमनसगोचरमपि परमेश्वरमपि साक्षात् कुर्वन्ति। **ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः।** (भागवत १२/१३/१) इति स्मृतेः। **पश्यन्ति यं जोगी जतनकरि करत मनगोवस सदा।** (मानस ३/३२/४) इति मानसवचनाच्च। यद्वा — ध्यानम् —परमेश्वरप्रणिधानम्, ईश्वरप्रणिधानाद्वा इतिः तत्र पतञ्जलिः। तेनं ईश्वरप्रणिधानरूपेणध्यानेन योगः चित्तवृत्तिनिरोधः इति ध्यानयोगः तमनुगताः। यद्वा ध्यानम्— असकृत् परमात्मस्मरणम् तदेव योगः ध्यानयोगः। **ध्यानयोगपरोनित्यं** (गीता १८/५२) यद्वा ध्यानम्—अनपायिनीभक्तिः तेनैव योगः जीवेन सह संयोगः यस्य स ध्यानयोगो भगवान् तमनुगताः आनुकूल्येन कैङ्कर्यभावेन प्रपन्नाः इति ध्यानयोगानुगताः, भगवच्छरणागतिगताः इति भावः।

स्वगुणैः निजगुणैः निगूढाम् आवृतां देवात्मशक्तिं , देवः भगवान् **एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः।** (कठ० १/३/११) **कस्तं मदामदं देवम्।** (कठ० १/२/३३)

तस्य देवस्य आत्मशक्तिम् , आत्मनः निजस्य शक्तिः अघटितघटनापटीयसी योगमाया तां देवात्मशक्तिं स्वगुणैः सत्वरजस्तमोभिः निगूढामपश्यन्। भयमेव भगवतो योगमाया सृष्टिं ब्रह्मरूपेण, पालनं विष्णुरूपेण, संहारं च शिवरूपेण करोति। अत एव पौराणिका आमनन्ति **ब्रह्मविष्णुशिवास्तस्य प्रधानस्यैव शक्तयः** आगमविदोऽपि विदन्ति—

एकैवशक्तिः परमेश्वरस्य भिन्ना चतुर्धा व्यवहारकाले।
भोगे भवानी पुरुषेषु विष्णुः क्रोधे च काली समरे च दुर्गा।।

एवम् गोस्वामिपादा अपि देवात्मशक्तिमित्यस्य विवृतिं कुर्वन्ति —

एक रचइ जगगुन बस जाके। प्रभु प्रेरित महिं निजबल ताके।।

यन्तु प्राञ्चः देवात्मशक्तिमित्यस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वररूपां पुरुषात्मप्रकृतिरूपां, देवार्थभिन्नसामर्थ्यरूपाम्, इति नानाविधं व्याचक्षते तत्प्रकरणविरुद्धत्वादुपेक्ष्यम्। नव्यास्तु देवः, क्रीडनात् कान्तिमत्वात्, रावणादीनां विजिगीषुत्वात्, मोदमयत्वात्, भक्तानां पुरःगमनशीलत्वाच्च, 'दिव्' धात्वर्थानुगुणो रामचन्द्रः। तस्य देवस्य रामचन्द्रस्य आत्मा धर्मपत्नी **आत्मा हि दारा सर्वेषां दारसगृहवर्तिनाम्** (वा. रा. २/३८/२०) इति स्मृतेः। सैव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवदभिन्नाऽपि अवतारलीलायां धर्मपत्नीत्वेन दृश्यमाना शक्तिः । आदिशक्तिः इति देवात्मशक्तिः जगज्जननी श्री 'सीता' तां देवात्मशक्तिं सीतां स्वस्य आत्मीयस्य भगवतः गुणैर्वात्सल्यादिभिरवगुण्ठनभूतैः निगूढां विधुवदनावच्छेदेन समावृतां, **वसुधायाश्च वसुधां श्रियः श्रीभर्तृवत्सलाम्** (वा.रा. ६/११४/१७) इत्यार्षवचनात् ।

आदि शक्ति जेहिं जग उपजाया । सो अवतरिहि मोरि यह माया ।।

(मानस १/१५२/४)

इति मानसोक्तेश्च भगवती सीतैव निजमायया ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपया जगदुत्पत्तिपालन-संहारान्कारयति। अतो मानसकाराः प्राहुः—

उद्भवस्थितसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ।।

अस्यार्थः समवधातव्यः—उद्भवस्थितसंहारान् कारयति तच्छीला इत्युद्भवस्थिति-संहारकारिणी तथाभूता अर्थात् ब्रह्मणा उत्पत्तिं, विष्णुना पालनं, शिवेन संहारं कारयति । वस्तुतस्तु इमे श्रीराममायायाः सीताया एव मायाप्रभेदाः इत्थं **तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वनियमः** इति न्यायेन भगवदभिन्नश्रीजानक्यभिन्नतया ब्रह्मविष्णुशिवेष्वपि भगवदभिन्नता । अतो वाणो जगाद कादम्बर्याम्—

रजोजुषे जन्मनिसत्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमस्पृशे ।
अजायसर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ।।

एवमुद्भवस्थितसंहारकारिणीं ब्रह्मविष्णुशिवद्वारेण, पुनश्च क्लेशहारिणीं, क्लेशं भक्तानां कष्टं हारयति तच्छीला श्रीरामद्वारा या सा क्लेशहारिणी तां **क्लेशहारिणीम्** । इत्थं चत्वारि कार्याणि अन्यान्यद्वारेण कारयित्वा स्वयमपि किमपि करोति इत्यपेक्षमाणं प्रत्याह— सर्वश्रेयस्करीम— आचार्यत्वात्त्रिजगतां प्रोऽन्यैस्तनोति या । श्रेयस् स्वयमेव कुरुते सर्वश्रेयसकरी ततः।। इति मम सर्वेषां श्रेयः करोति इति सर्वश्रेयस्करी तां सर्वश्रयसकरीं रामवल्लभां सीतां नतोऽहम् इति श्लोकार्थः । न च सीताया अवैदिकत्वात् उपनिषदि तत्प्रतिपादनमसंगतमिति वाच्यं **इन्द्रः सीतां निग्रहणातु सीते वन्दामहे त्वा** इत्यादि श्रुत्यनुरोधेन ब्रह्मरूपतया श्रीसीताया अपि श्रुतिमहातात्पर्यभूतत्वात् । सदेवः कीदृशः यस्येमात्मशक्तिः ? इत्यपेक्षायामाह य इति । समासपिहितोऽपि देवशब्दः नित्यसाकांक्षत्वाल्लक्ष्यानुरोधेन यच्छब्दतः परामृश्यते । यः देवः एकः अद्वितीयः—

न तत् समोस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यः इतिस्मृतेः (गीता ११/४३)

न तत् समोस्त्यभ्यधिकश्च विद्यते (श्वेत. ४/८) इति श्रुतत्वाच्च । यद्वा— एकः प्रधानः अप्रधानतया भवतु नाम जीवः मुख्यस्तु परमेश्वर एव । यद्वा— **एकः**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षराक्षराभ्यां शरीरजीवात्मभ्यामन्यः परमात्मा । 'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च' इति अमरकोषात् एवं भूतः एकः अकारो वासुदेवः तस्मिन् । 'ए' कं सुखं यस्मात् **स एकः** वासुदेवस्याऽपि सुखप्रदाता महाविष्णु श्रीराम इति भावः । निखिलानि सम्पूर्णानि तानि कालादीनि कारणानि सृष्ट्युत्पादनसहकारीणि कालात्मयुक्तानि, कालः आदिकारणतया उपन्यस्तः आत्मा चरमहेतुतया परिकल्पितः द्वितीयश्रुतावित्यर्थः । एवं कालश्च आत्मा च इति कालात्मानौ ताभ्यां युक्तानि कालादीन्यात्मपर्यन्तानि तानि, अधितिष्ठति साधिकारं शास्ति प्रेरयति स्वस्य सकलकारणकारणत्वात् । 'अखिलविश्वकारणकरणम्' इति मानसोक्तेः । एवं कालाद्यात्मपर्यन्तानां कारणाम् अधिष्ठातुः श्रीरामाख्यदेवस्य अन्तरङ्गशक्तिम् आह्लादिनीं वात्सल्यादिनिगूढां सीतां विग्रहवतीं भक्तिम् ऋषयः अपश्यन् चक्षुविषयतामनयन् इति श्रुत्यर्थः । परमेश्वरस्तु निमित्तोपादानसाधारणासाधारणकारणतः परः तद्भिन्नान्तरङ्गशक्तिः सीतैव कारणं प्रपञ्चस्य तदभिन्नतया भगवानपि कारणं कथ्यते । अतएव—

वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् (मानस मंगलाचरण-६)

इति मानसवचनमपि संगच्छते । अत एव 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्' इति गीतासंगतिः । श्रीः ।

एवं परमात्मन एव अन्तरंगशक्तेः सीताभिधायाः जगत्प्रतिसाक्षात्कारणत्वम् प्रेरकतया, परम्परया, परमेश्वरस्यापि निमित्तकारणत्वम्, व्यञ्जयित्वा मन्त्रेणाग्रिमेण कार्यभूतं संसारं चक्ररूपकेण निरूपयति तमित्यादिना—

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः ।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ।।४।।

अन्वयः— एकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विशंतिप्रत्यराभिः (युक्तम्) षड्भिः अष्टकैः (सहितं) विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहं (संसारचक्रं वहन्तं) तं देवम् अपश्यन् ।

जगत् कारणभूतपरमेश्वरयोगमायामघटितघटनापटीयसींसीताभिधां शक्तिं दृष्ट्वा तत्सृष्टसंसारमपि चक्राकारं तं च वहन्तं तमालनीलं परमात्मनं श्रीराममपि ददृशुरिति स्पष्टयति मन्त्रेणानेन । यद्यपि संसारचक्रमिति शब्दः श्रुतौ नास्ति वहन्तमित्यपि नास्ति तथापि रूपकैकवाक्यतया अर्थसौकर्यार्थं मयाच्छिप्ताविमौ शब्दौ । तथाहि एकम् अव्याकृतिप्रकृतिनामकम्, अव्यक्तं नेमिः चक्राधारगोलकं यस्मिन् तं एकनेमिम् । यद्यपि चक्रशब्दस्य नपुंसके पाठः प्रसिद्धः तथाप्यत्र पुल्लिंगविशेषणानुरोधेन चक्रशब्दं अर्धर्चादिगणे मत्वा तत्र पुंस्त्वमप्यनुसंधेयमन्यथा वारिवत् स्वमोर्नपुंसकात् इत्यमिलुकि एकनेमि इति स्यात् । **त्रिभिः** सत्वरजस्तमोरूपैः गुणाभिधैः वृत्तैवृतमिति त्रिवृतम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं प्रतिपदमारभ्य पौर्णमासीपर्यन्ताः कुहूसहिताः षोडशतिथयः अन्ताः कालावच्छेन विरामसूचिकाः यस्मिन् स षोडशान्तः तं षोडशान्तम् । तिथयो हि संसारचक्रस्य समयप्रवाहतो विरामं प्रकटयन्ति । यत्तु प्राञ्चः षोडशान्तमित्यत्र प्राणादयः षोडशकलाः अन्ते यस्य वा सांख्योक्ताः षोडशविकाराः अन्ते यस्य तादृशमिति व्याचक्षते तदलीकम्। षोडशकलानां प्रश्नोपनिषदि वर्णितानां प्रकृतिप्रसंगासामंजस्यात् षोडशविकाराणाञ्च सांख्योक्तानां दर्शनान्तरीयतया अत्र व्याख्यातुमशक्यत्वात् । 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' (ब्रह्मसूत्र १/१/५) इति सूत्रे बादरायणेन सांख्यशास्त्रस्यावैदिकत्वेन खण्डितत्वात्, भगवतपाद-श्रीमदाद्यशंकराचार्यचरणैरपि एतत् सूत्रभाष्य एवं सांख्यसिद्धान्तानां वेदबहिर्भूतत्वात् शताधिकयुक्तिभिर्विगर्हितत्वात्, इति वदतोव्यघात् दोषदुष्टतया व्याख्यानमेतत् विजयापान-प्रमत्तप्रलापैव ।

शतस्य अर्धं शतार्धं पञ्चाशत । एतत् संख्याः आर्षवाङ्मयग्रन्थाः एव अराः चक्रचालनसमर्थावयवाः यस्मिन् तं **शतार्धारम्** । पञ्चाशत हि मुख्याः ग्रन्थाः ते सन्ति — चत्वारो वेदाः, चत्वार उपवेदाः, अष्टादशपुराणानि (भागवतादीनि), अष्टादशस्मृतयः (मन्वादिप्रणीताः)' षडङ्ग निवेदस्य व्याकरणादीनीति संकलनया पंचाशत। इदमेव श्रीतुलसीदासः प्राह मानसे—

साथ लागि मुनि शिष्य बुलाये । सुनि मन मुदित पचाशक आये ।।
सबहिं रामपद प्रेम अपारा । सकल कहहिं मग दीख हमारा।।
(मानस २/१०९/३,४)

यत्तु प्राहुः- विपर्ययभेदाः पञ्च, अशक्तिभेदाः अष्टाविंशति, तुष्टिभेदाः नव, सिद्धिभेदाः अष्टौ, इति संकलनया पञ्चाशत् अन्तःकरणवृत्तयः । तत्तु शास्त्रज्ञान-विप्लुतनिजप्रमत्तमानसप्रभवं बालकप्रहेलिकाकल्पनाविलसितमिव । यतोहि अशक्तितुष्टयो कुत्रापि शास्त्रे न दृष्टाः । यदि कदाचित् कल्पनया कथंचित् संघट्टेयतां तथापि इमे दुष्टेष्वेव विपर्ययादि भेदाः घटिष्यन्ते । साधुषु सर्वथा तेषामभावः । न वा तम आदयः अन्धतामिस्रान्ताः सतां छायामपि स्प्रष्टुं प्रभवाः न वा सन्तः अशक्ताः । शक्ति-शक्तिमद्भ्यां श्रीसीतारामाभ्यां प्रतिपदमेव पालितत्वात्, न वा सन्तः क्षुद्रसफलताभिः तुष्टाः परमात्मप्राप्तये सततं यत्नशीलत्वात् । दैन्यातिशयेन निजदोषदर्शनस्वभावाच्च। यथोक्तं माससे गोस्वामिना श्रीरामं प्रति —

गुन तुम्हार समुझहिं निज दोषा । जेहि सबभाँति तुम्हार भरोषा ।।
रायभगत प्रियलागहिं जेही । तेहि उर वसहु सहित वैदेही ।।
(मानस २/१३१/३,४)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टौ सिद्धयोऽपि साधून् लोभयितुं न प्रभवन्ति यथाः वृत्रासुरः श्रीभागवते—

न नाकपृष्टं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जसत्वा विरहय्य कांक्षे ।।

(भागवत ६/११/२६)

अतो दुष्टानां पूर्वोक्ताः दुष्टवृत्तयः संगच्छन्ते । इमाः अराः नैव शक्या भवितुं न वा दुष्टैरेव केवलैः संसारश्चलति वस्तुतस्तु संत एवैनं संचालयन्ति । तस्मान्मदुक्तमेव न्यायः विंशतिप्रत्यराभिः । दशेन्द्रियाणि चक्षुरादीनि वाक्पर्यन्तानि, शब्दादयः पंचविषयाः पृथिव्यादीनि पंचभूतानि इमा एव विंशतिप्रत्यराः सहायिकाः लब्धव्याः ताभिः युक्तम् । पुनश्च षड्भिः षट्संख्यैः, अष्टकैः अष्टावयवसमुदायैः सहितं संसारचक्रम् । चक्रे हि प्रत्येकमष्टावयवयुक्ताः षट् समुदायाः श्रूयन्ते । अत्रापि ते ऊह्याः तथा च—

रसरक्तमांसमेदोस्थिमज्जाशुक्रौजांसि इति **शारीरमष्टकम्** इति प्रथम समुदायः । एवं

पृथव्यप्तेजोवाय्वाकाशमनोबुद्ध्यहंकाराः इति **प्राकृतमष्टकं** द्वितीयः समुदायः ।

अष्टप्रहराणि दिनस्येति **प्रहराष्टकमिति** तृतीयः समुदायः ।

यमादयः योगाष्टकमिति चतुर्थसमुदायः।

अणिमादयः **सिद्ध्यष्टकमिति** पंचमः समुदायः ।

रव्यादयः सन्ध्यासहिताः **वाराष्टकमिति** षष्ठसमुदायः एभिः सहितं भवति हि संसारचक्रम् । अत्र संग्रहश्लोका :—

शारीरं प्राकृतञ्चैव प्राहरं यौगिकं तथा ।
सिद्धिवारात्मके चैव शास्त्रेऽस्मिन् ह्यष्टकानि षट् ।।

रसासृङ्मांसमेदोस्थि मज्जाशुक्राण्यथोजसा ।
सहशारीरमाख्यातं ह्यष्टकं भिषगुत्तमैः ।।

भूम्यप्तेजोनिलव्योममनोहंकारबुद्धयः ।
गीता अष्टौप्रकृतयः प्राकृतं ह्येतदष्टकम् ।।

प्रातरारभ्य नैशान्तं यावद्धोरात्रयेण वै
विभक्तान्यष्टप्रहराणि प्रारंह्येतदष्टकम् ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहृतान्वितम् ।
ध्यानधारणया युक्तं सामाध्यं यौगिकाष्टम् ।।
अणिमागरिमालघिमामहिमाप्राप्तिरेव च ।
प्राकाम्यईषित्ववषित्वसिध्याष्टकमुदाहृतम् ।।
रविः सोमः कुजश्चान्द्रो गुरुःशुक्रश्च भानुजः ।
सन्ध्याद्वयमिति प्रोक्तं बुधैर्वाराष्टकं मुहुः ।।
अष्टकैः षड्भिरेतैस्तु संयुक्तं चक्रममैश्वरम्
नक्तं दिवं भ्रमत्येतत् विमुखान् भ्रामयद्धरेः ।।

विश्वानि समस्तानि रूपाणि बोधसामग्रीभूतानि यस्य स विश्वरूपः, स एव एकः केवलः, पाशः बन्धात्मकलोभनामा यस्मिन् तथाभूतं **विश्वरूपैकपाशम्** । सर्वतो व्याप्तो हि लोभपाशः भगवद्पदपद्मविमुखान् पशूनिव पाशयित्वा पशुमारं मारयति । यथोक्तं मानसे सुग्रीवेण—

लोभपाश जेहि गर न बंधाया । सो नर तुम समान रघुराया ।।

(मानस ४/२१/५)

त्रिमार्गभेदम्— त्रयः प्रवृत्ति निवृत्ति प्रपत्तिरूपाः मार्गा एव भेदा यस्मिन् तथाभूतम् ।

अत्र हि त्रयोमार्गाः । बद्धानां, विषयिणां, प्रवृत्तिरूपः सिद्धानां निवृत्तिरूपः , मुमुक्षूणां साधकानां प्रपत्तिरूपश्च । 'मुमुक्षवैं शरणमहं प्रपद्ये' (श्वेत ६/१८) इति श्रुतेः । इम एव एतस्य चक्रस्य गमनभेदाः । द्वे पुण्यपापे निमित्ते, निमित्तकारणे यस्मिन् स **द्विनिमित्तः**, द्विनिमित्तः एव एकः परमात्मतोऽन्यः दुर्निवार्यो वा मोहः चित्तविकारो भ्रमात्मकः यस्मिन् तथाभूतं संसारचक्रं वहन्तं तं तमसः परस्तात् तमालश्यामलं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं भगवन्तं श्रीरामम् ऋषयः अपश्यन् इति पूर्वतः क्रियापदमनुवृत्तम्। इति राघवकृपालब्धशास्त्रवैभवयुक्त्या मया प्रतिभयाव्या ख्यातः मन्त्रोऽयं चक्ररूपके । श्रीः।।

अथ प्रवाहदृष्ट्या उभयतो गमनमालक्ष्य सृष्टिमिमां नदीमिवानुभवन्तः तद्रूपकेण निरूपयन्ति । अशुभदर्शनेऽपि भागवताः भगवद् रचनायां अलंकारमेव पश्यन्ति, अत आलंकारिकभाषया भाषन्ते भाषमानां नदीमिमाम्—

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम् ।
पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ।।५।।

अन्वयः सुगमः तथाहि— पञ्चभ्यः चक्षुश्श्रोत्ररसनाघ्राणत्वग्भ्यः स्रोतस्थानेभ्यः, ज्ञानेन्द्रियेभ्यः, अम्बु ज्ञानप्रवृत्तिप्रवाहः यस्यां सा तां पञ्चश्रोतोम्बुम् । यथा स्रोतोभ्यः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नद्यां जलधारागच्छति— वर्षाभावेऽपि स्रोतस्स्वतीनां सरितां न हानिः तथैवास्या संसारसरितः पञ्चज्ञानेन्द्रियेभ्यः अनुभवरूपजलमजस्रं समुपलब्धं भवति। एवं पञ्चमहाभूतानि पृथ्वीजलतेजोसमीरनभांसि योनयः उद्गमस्थानानि यस्याः सा पञ्चयोनिः। गङ्गादयः सरितस्तु ऐकैकस्मात् स्थानात् गोमुखादेरुद्गच्छन्ति, किन्तु इयं पंचभ्यो महाभूतेभ्य इति चित्रम्। अत एव उग्रा। उद्गमस्थानानामनृजुतया विभिन्नस्वभाववत्वात्तेषां वक्रगतिरपि, अतः पञ्चयोनिः उग्रावक्रा इति पञ्चयोन्युग्रवक्रा तां तथाभूतां पञ्चयोन्युग्रवक्राम्।

पञ्चप्राणाः प्राणापानव्यानोदानसमानपञ्चप्राणवायवः एव उर्मयः वीचिस्थानीयाः यस्यां तथाभूतां **पञ्चप्राणोर्मि**। एवं पंचानां चक्षुश्श्रोत्ररसनाघ्राणत्वचां बुद्धयः दर्शनश्रवणस्वादघ्राणस्पर्शाख्याः पञ्चबुद्धयः तासामादिः उपलब्धिसाधनं मनः एवं पञ्चबुद्व्यादिः। मन एव मूल मादिकारणं यस्याः तथा भूतां पंचबुद्ध्यादिमूलां, मन एव पंचेन्द्रियज्ञानं समुपलम्भयति इदमेव हि संसारसरितो मूलम्। मानसचिंतनपरिणामो हि पुनर्भवः तस्मिन् सत्येव संसारः यदि मनो मनोजमोहनं चित्रकूटविहारिणं मैथिलीमनोहारिणं धनुर्धारिणं श्रीरामाभिधं हरिमेव चिंतयेत् तदा क्व संसारः। भगवदतिरिक्तसम्बन्धपरिकल्पनमेव हि संसारः। एवं पञ्चविषयाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः आवर्ताः सरितो भ्रामरीविलासाः यस्यां तथाभूतां पंचावर्ताम्। आवर्तो हि सरिति पतितं जनं तत्रैवावर्तयति तथैवेमे पञ्चविषयाः आवर्ता इव आवर्तयन्तो जीवं संसारयन्ति। यथोक्तं भागवते—

जिह्वैकतोऽच्युतविकर्षति मा वितृप्ता।
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥ (भाग० ७/९/४०)

पञ्च - आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकजन्ममृत्युरूपाणि पंचदुःखानि, तेषामोघेण प्रवाहेण वेगः द्रुतता यस्यां तथाभूताम्। पंचपर्वाम् अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेषाः पञ्चक्लेशाः एव पर्वाणि धाराविभागाः यस्याम्। यद्वा तमोमोहमहामोहतामिस्रान्धतामिश्राः एव पर्वाणि यस्यां सा पञ्चपर्वा तां पंचाशद्भेदां, पंचज्ञानेन्द्रियाणि पंचकर्मेन्द्रियाणि, पंचप्राणाः, पंचविषयाः, महाभूतानीति संकलनया पंचविंशतिः, अमीषां पंचविशतिरेव चेष्टाः अपि पंचविंशतिः इति द्विगुणीकृत्य पंचाशत् एभिरेव भेदैर्युक्तामिति भावः। तादृशीं संसारनदीम् अधीमः अधिगच्छामः देवात्मशक्तितदाश्रयपरमात्म-दर्शनसंलब्धविवेकदृष्ट्या पश्याम इति भावः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इयं हि संसारनदी गम्भीरा रागादिनक्रा कुटिलाकुवेगा ।
सीतेशपादाम्बुजनौकयैव तीर्त्वा सुखी स्यादितिमन्त्रतत्वम् ।।श्रीः।।

।। अथ सम्बन्धभाष्यम् ।।

इत्थं संसारमेतं चक्रनदीरूपाकाभ्यां निरूप्य परमकारुणिकतया जगद्वत्सला माता श्रुतिः संसारचक्रतो मुक्त्युपायं सूचयति — भगवद् भजनं विना हि कल्पायुतैरपि संसारमुक्तिर्न सम्भवा । विशुद्धभजनं भगवन्माहात्म्यज्ञानं विना न सम्भवम् । अतो देवर्षिनारदः भगवन्माहात्म्यज्ञानविस्मरणं भक्तिशास्त्रे अपवादं स्वीकरोति । तन्मते परेश्वरमाहात्म्यज्ञानमन्तरेण जारप्रेमवत् क्षणभंगुरं स्यात् भक्तप्रेम । तथा च तत्र सूत्रद्वयम्—

न तत्र माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः। तद्विहीनं जाराणामिव ।।

(ना. भ. सू. १/२२-२३)

तस्मादज्ञाननिवृत्तये परमेश्वरमहिमज्ञानमावश्यकं समर्थयन्ते चास्मत् परमाराध्य चरणसरसीरुहाः श्रीगोस्वामितुलसीदासमहाराजाः श्रीमानसे—

रामकृपा बिनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ।।
जाने बिनु न होई परतीती । बिनु परतीति होई नहि प्रीती ।।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई । जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।

(मानस ७/९०/६,७,८)

एवं हि तन्माहात्म्यज्ञानं सेवकसेव्यभावज्ञानाधीनम्। तच्च जीवब्रह्मणोः स्वरूपतो भेदबोधावलम्बि। तस्मिन् हि निश्चिते निजसेव्यतया परमात्मनि च विज्ञाते तदनुप्रीतिविषयीकृते परमेश्वरे जीवो गर्भवासजन्मव्याधिजरामरणरूपसंसारदुखौघानतीत्य सीतापतिसामीप्यं समासाद्य विषादविगलनपूर्वकं परमेश्वरप्रसादभाग् भवति । ननु ज्ञानेन शीर्णायाम् अविद्याग्रन्थौ, विगलिते च विपर्ययबोधे, विनाशितयोश्च विपरीतभावनाविषमभावनयोः, व्यपोहिते च विपरीतज्ञाने जीवः ब्रह्मभूतो भवति, तदा कुतस्त्योऽयं सेवक-सेव्यभावबोधव्यवहारः? इति चेन्मैवं वादीः, त्वं गाम्भीर्येण श्रुत्यर्थं नालोचितवानसि । **ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति** इत्यत्र ब्रह्म एव भवति इति न विग्रहः। तर्हि वस्तावत् ? **ब्रह्मणः आ इव भवति** आ शब्द ईषदर्थः इवार्थः सादृश्यम्, एवं हि ब्रह्मविद् ब्रह्मणः परमेश्वरस्य 'आ' ईषत् इव सादृश्यमान् भवति । इयमेव व्याख्या सारूप्यमुक्तिमवरुन्धे। **सारूप्यं हि** समानरूपता , तथा हि समानं रूपं यस्य स सरूपः, सरूपस्य भावः सारूप्यम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथास्मिन् व्याख्याने किं मनमितिचेत् गीतासु भगवदीयवाक्यमेवेति ब्रूमहे—

तथा च वक्ति भगवान्—

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।। (गीता १४/२)

साधर्म्यं नाम समानधर्मता न तु तत्वम् । अथ किमत्र श्रौतमपि किमपि विनिगमकम्? अस्ति प्रकामम् । विलोक्यतां तैत्तरीयोपनिषन्मन्त्रः

यो वेदनिहतं गुहाया परमे व्योमन् सोऽश्नुते ।
सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ।। (तै. ब्रह्मानन्दवल्ली १)

अत्र ब्रह्मणा सह सर्वान् कामान् अश्नुते । इति प्रयोग एव सहशब्दयुक्तः जीवब्रह्मणोर्विस्पष्टविभागं विविनक्ति । भोगे ब्रह्मणः अप्राधान्यम् जीवस्य प्राधान्यं व्यवस्थापयति तस्मात् सेवकसेव्यभावमन्तरेण जीवस्य बन्धमोक्षो न सम्भव इति निष्कृष्टम् । सिद्धान्तयांबभूवे च हुलसीहर्षवर्धनतुलसीदासेन—

सेवक सेव्य भाव विनु भव न तरिय उगारि ।
भजिय रामपदपंकज अस सिद्धान्त विचारि ।। (मानस ७/११९ क)

तदिमं सिद्धान्तमेव कारुणिकश्रुतिप्रतिः श्रावयति—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन्हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ।।६।।

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे वृहन्ते अस्मिन् ब्रह्मचक्रे हंसः भ्राम्यते ततः पृथक् प्रेरितारं मत्वा तेन जुष्टः अमृतत्वम् एति।

सर्वेषां जीवानामाजीवः प्राणधारणं यस्मिन् स **सर्वाजीवः** । यद्वा-सर्वान् आजीवयति इति **सर्वाजीवः** यद्वा- सर्वः सर्वरूपो भगवान् तेनैव आजीव्यते इति **सर्वाजीवः** । यद्वा सर्वा सर्वस्वरूपा अघटितघटनापटीयसी श्रीसीताभगवद्योगमाया तया जीव्यते इति **सर्वाजीवः** तस्मिन् सर्वाजीवे । सर्वेषां प्राणीनां संस्था सम्यक्स्थितिः यस्मिन् स सर्वसंस्थः तस्मिन् सर्वसंस्थे ।

बृहति वर्धते इति बृहन्तः । बाहुलकात् कर्त्तरि 'झच्' प्रत्ययः । "झोऽन्तः" इत्यनेन अन्तादेशः तस्मिन् बृहन्ते । अतिशयेन बृहति, ब्रह्मणः परमेश्वरस्य चक्रे संसाररूपे पुनः पुनः अतिशयेन क्रियते इति चक्रम् । अथवा पुनः पुनः अतिशयेन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवद्विमुखजीवान् कृन्तति (छिनत्ति) इति चक्रम्। ब्रह्मणः चक्रं ब्रह्मचक्रम्, तस्मिन् ब्रह्मचक्रे। अस्मिन् प्रत्यक्षतो वर्तमाने इति भावः। हंसः हंसपक्षीव उड्डयनसामर्थ्यवान्। यद्वा हन्ति भगवद्भजनविमुखतया परित्यक्तरामकथः कामकथासेवनेनात्मानं नाशयति इति हंसः। स एवं निरन्तरम् भ्राम्यते भ्रमणविषयः कार्यते। ननु भ्रमणतः कदा मुक्तो भविष्यति ? इति प्रश्ने आह— ततः संसारात् आत्मानं स्वं पृथक् अथवा शरीरेन्द्रियमनोबुद्धितः पृथक् भगवतो नित्यदासभूतं च परमात्मानं प्रेरितारं निजप्रेरकं स्वामिनं मत्वा अवबुद्ध्य मननविषयं विधाय वा तेन परमात्मनैव जुष्टः प्रीतिविषयीकृतः अथवा जुष्टः भगवतः प्रपन्नः सन् पुनस्तेनैव सेवितः। भगवान् हि प्रपन्नजनान् सेवते—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता ४/१०)

इत्याह तत्र भगवान्। एवमेवाह सनत्कुमारः— **प्रपन्नजन सेविने** (रामस्तवराग - ५१)

जुषिर् हि प्रीतिसेवनार्थः। इत्थं भगवता सेव्यमानः प्रीतिपात्रीकृतः कृतार्थः अमृतत्वं, मृतधर्मभिन्नतां भगवतोनित्यकैंकर्ययोग्यतामेति प्राप्नोति इत्यर्थः। यद् वा इह तृतीयचतुर्थचरणयोः विशिष्टाद्वैतप्रतिपादनम्। तत्र त्रीणि तत्वानि, अचित्, चित्, - तत्परं च, अचित् देहादिवर्गः, चित् आत्मा, तत्परः परमात्मा प्रेरिता। तेन जुष्टः विशेषणीकृतः अमृतत्वमेति प्राप्नोति ।।श्रीः।।

साम्प्रतं ब्रह्म तदन्तरङ्गयोगमाया तदाश्रितजीवानां विज्ञानमहिमानं वर्णयति, उद्गीतमित्यादिना—

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ।।७।।

एतत् परमं ब्रह्म उद्गीतं, तस्मिन् त्रयं अक्षरं च सुप्रतिष्ठा तु ब्रह्मविदः अत्र अन्तरं विदित्वा तत्पराः ब्रह्मणि लीनाः योनिमुक्ताः (भवन्ति) इत्यध्याहार्यम्। अयमन्वयः। एतद् ज्ञानिनाम् अपरोक्षानुभूतिविषयभूतं भक्तानाञ्च प्रत्यक्षतो नयनविषयतां गतं परमं सर्वोत्कृष्टम्। अथवा परा सकलकारणभूता परमान्तरङ्गा योगमाया मा आह्लादिनीशक्तिः सीता यस्य तादृशं ब्रह्म निरतिशयवर्धनशीलं परमेश्वरतत्वमुद्गीतं श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासेषु उत्कृष्टतया गीतं तस्मिन् परब्रह्मणि त्रयं लोकत्रयं, वेदत्रयं च समुच्चयार्थोऽयं चकारः। अक्षरं जीवतत्वं सुप्रतिष्ठा शोभनतया स्थितां यद्वा तस्मिन् ब्रह्मणि त्रयं बद्धमुमुक्षुमुक्त-रूपं विषयिसाधकसिद्धरूपं वा अक्षरसंज्ञं जीवतत्वं सुप्रतिष्ठितम्। जीवत्रैविध्यं गोस्वामितुलसीदासाः आमनन्ति मानसे यथा—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषयीसाधक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ।।
(मानस २/२७८/३)

अत्र जीवब्रह्मणोः ब्रह्मविदः ब्रह्मज्ञानिनः अन्तरं स्वरूपतो भेदं जीवो दासः परब्रह्मपरमात्मा स्वामी इत्याकारकं विदित्वा सदगुरुशास्त्रपरमेश्वरानुग्रहेण ज्ञात्वा, अनन्तरं तस्मिन् ब्रह्मणि पराः परायणाः परत्वेन कृतनिश्चयाः इति तत्पराः । अथवा तदेव परब्रह्म परतत्वरूपं परायणत्वेन निश्चितं येषां ते तत्पराः परमेश्वरपरायणा इति यावत् ब्रह्मणि परमात्मनिं तच्चरणकमलकोशावच्छेदेन लीनाः मनसा समुपश्लिष्टाः योनिः मातृगर्भः तस्याः मुक्ताः । यद्वा योनिः अव्याकृतप्रकृतिः (मम योनिर्महद्ब्रह्म । गीता १४/३) इति स्मृतेः । ततो मुक्ताः प्रकृतिकार्यसंसारबन्धनतो मुक्ताः भवन्ति इति भावः। जीव ब्रह्मणोर्भेदमध्यवसीय तद्ब्रह्म निजपरमाराध्यत्वेन निश्चित्य समुपास्य चाविरलभक्त्या ब्रह्मविदः संसारबन्धनान्मुच्यन्ते एष एव श्रौतनिर्णयः । पुनरिमं सिद्धान्तं विशिष्टाद्वैताख्यं परमात्मभक्तिप्रवणतया समभ्यसति संयुक्तमित्यादिना—

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।८।।

क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं संयुक्तमेतत् विश्वमीशः भरते च अनीशः आत्मा भोक्तृभावात् बध्यते देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैः मुच्यते । अथ ब्रह्म जीवयोर्विशेषं विशिनष्टिविश्वमेतत् जडचेतनसंयुक्तरूपं चिदचिदात्मकं तथा च क्षरं शरीरावच्छिन्नं जीवतत्वम् अक्षरं निजविज्ञानतः शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिर्व्यपोह्य विशुद्धचैतन्यस्वरूपे भगवन्नित्यकैंकर्यरूप-निजात्मभावे सह भक्त्या व्यवस्थितम् अतएवास्याक्षरत्वं **"न मे भक्तः प्रणश्यति"** (गीता ९/३१) इति स्मृतेः । क्षरो हि देहावच्छिन्नजीवः दण्डे नष्टे दण्डिन इव अवच्छेदके नष्टे अवच्छिन्ननाशस्य न्याय्यत्वात् । एवं व्यक्ताव्यक्तं सृष्टौ व्यक्तं स्थूलतया दृष्टिगोचरं प्रलये चाव्यक्तं सूक्ष्मतया हृषीकागोचरं संयुक्तम् इतरेतराध्यस्तं परस्परमिलितं वा जडचेतनात्मकम् एतद् विश्वं समस्तं जीवजातं जीवमयं जगद्वा ईशः ईष्टे चराचरं शास्तीत्यीशः कर्तुमकर्तुंअन्यथा कर्तुं समर्थः परमेश्वरः । भरते सर्वसामर्थ्येन धारयति पुष्णाति, च किन्त्वर्थोऽयं चकारः निपातानामनेकार्थत्वात्, परन्तु परमात्मतो विलक्षणः न ईशः अनीशः असमर्थः, यद्वा न यस्तदभिन्नार्थकतया अनीशः ईशभिन्नः अथवा अज्ञानमिव नञो विरुद्धप्रसिद्धेः, अनीशः ईशविरुद्धः विरोधश्चात्र श्रुतिप्रतिकूलाचरणत्वेन, यद्वा नास्ति आश्रयतया ईशः यस्य स अनीशः य खलु भगवन्तं न शरणं गतः तथाभूतः । आत्मा अतति सततं गच्छति गर्भजन्मजराव्याधिमरणरूपदुःखालयभवाटवीं अटति तथाभूतः परमेश्वर पराङ्मुखो जीवः, बध्यते बद्धो भवति । किन्त्वीशपरायणः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवं परमप्रकाशस्वरूपं परमात्मानं ज्ञात्वा निजनाथरूपेण परिचित्य, सर्वपाशैः सर्वे च ते कामक्रोधलोभमोहमत्सर्यादयः पाशा इव इति सर्वपाशाः तैः कर्तृभूतैः मुच्यते मुक्तः क्रियते, भगवत्परायणं तद्भजनमहिमतो भीताः सर्वे विकारपाशाः स्वयमेव मुञ्चन्ति इति हार्दम् । निष्कर्षोऽयं यदीशपरमात्मा जडचेतनात्मकं विश्वमेतत् बिभर्ति निजैश्वर्येण परन्तु अनीशोऽयं जीवात्मा परमात्मपदपद्मपरागरागरसपराङ्मुखः परमेश्वरेण भ्रियमाण विश्व एव निबध्यते वैलक्षण्यमित्यनयोः । कथं बध्यते ? इत्यत आह— भोक्तृभावात् भोक्तुः भावः भोक्तृभावः तस्मात् अत्र हेतौ पञ्चमी यतोऽस्मिन् भोक्तृभावो विश्वं प्रति अतो बध्यते परमात्मसृष्टं जगत् सेव्यं न तु भोज्यम् । यदि कोऽपि स्वं भोक्तारं मत्वा भुङ्क्ते विषयरसं तदासौ बध्यते । यदि निजनाथप्रसादं मत्वा दासभावेन स्वीकरोति तदा सर्वभोगानपि भगवत्प्रसादबुद्ध्याताननासक्तमनाः सेवमानः सीतापतिसेवकशिखामणिः सर्वपाशैः प्रमुच्यते श्रुतेराकूतमेतत् ।।श्रीः।।

पुनरपि जीवब्रह्मभेदपुरःसरं भगवद्प्राप्तिफलकमुक्त्युपायं निर्वक्ति , "ज्ञाज्ञौ" इत्यादिना । अत्र श्लोके प्रकृतिपुरुषपरमेश्वराणां त्रित्वं स्पष्टम् । यदद्वैतवादिनो मायासंन्निधावेव परब्रह्मणि जीवेश्वरयोः प्रभेदं काल्पनिकं सार्धयन्तः परमार्थतो ब्रह्मैवैकमिति प्रलपन्ति तदसंगतम् । एकस्मिन् ब्रह्मणि मायाकल्पनेन ब्रह्ममाययोर्द्वित्वात् त्रायमाणानामद्वैतं द्वैतं समापतितं न वा ? इति चेन् मिथ्या माया तथापि मिथ्यासत्ययोः समवधानेन द्वैतम्। मिथ्यायाः अकिञ्चित्करत्वमिति चेत् तदा मोघारम्भा तदीय कल्पना, अहो ! विशुद्धब्रह्मणि जीवेश्वरविभागकल्पनं समुपस्थापयन्ति मायेयमकिञ्चित्करी, तदा किञ्चित्कर्याः का कथा ? यदपि बृहदारण्यकीयं मन्त्रमुदाहरन्ति ,

पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः ।
पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुषय आविशत् ।।

(बृ. उ. २/५/१८) इति

किमनेन द्विपदचतुष्पदयोः पुरस्कारं विधाय तत्पुरः पक्षीभूयः पुरुषः प्राविशत् मन्त्रार्द्धेनानेन परमात्मनोऽन्तर्यामिता साधिता सास्माकमप्यभीष्टा, परन्तु न केवलमत्र शरीरे परमात्मैव पक्षी प्रत्युत्त्प्रत्यगात्मापि, **द्वासुपर्णा स युजा सखाया,** (मुण्डक॰ ३/१/१) तस्मात् श्रुत्यक्षर एव अर्थविचारसाधीयान् अलं शब्दबलात्कारेण । वस्तुतस्तु परमात्मा तदन्तरङ्गाह्लादिनीशक्तिरिति पृथक्तया वर्तमानौ, जीवश्च तदुपासकतया भिन्नतत्त्वं इत्येव श्रुत्यरक्षरार्थः । नहि मिथ्याभूतमाया त्रिकालरूपं ब्रह्म विकर्तुं क्षमा न वा विवर्तयितुं प्रभवैषा नितान्तनिभृतं परमेश्वरं, नहि कापि सती पत्नी निजपतिं स्वरूपतस्सम्बन्धतो वा पतितं चिकीर्षति । ब्रह्मण्यज्ञानकल्पनैव खलु तत्पातित्यं तद्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्महानिश्च । नित्यज्ञानवत्वं हि किल ब्रह्मणो मुख्यो धर्मः **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** (तै. उ. २-१)

ज्ञानशब्दो हि ब्रह्मसमानाधिकरणो नित्ययोगे मत्वर्थीयात्प्रत्ययान्तः । यदि मायया ब्रह्मण्यज्ञानं तदप्यसमञ्जसम् । कथं हि धर्मपत्नी पतिं धर्माच्च्यावयेत् ? तस्मादलमधिकमसमीचीनचर्चया प्रकृतमनुसराम ।

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ।।९।।

अन्वयः —द्वौ ज्ञाज्ञौ अजौ ईशनीशौ भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता अजा एका हि च आत्मा विश्वरूपः अनन्तः यदा एतत् त्रयम् ब्रह्मम् विन्दते (तदा) हि अकर्ता (भवति) ।

इदानीं सिद्धान्तं दृढीकर्तुं जीवब्रह्मणोरपरं वैलक्षण्यं, जीवनिर्वहणस्य कृते सृष्टं प्रपञ्चं प्राकृतमेवकार्यमिति विस्पष्टं विवृणोति । द्वौ, अनादिकालतो द्वित्वसंख्या वाच्यौ न त्वाधुनिकाविति भावः । द्वित्वसंख्या वाच्यावपि सलक्षणौ विलक्षणौ वा इत्यत आह— उभयत्वावच्छिन्नौ किञ्चिदंशे सलक्षणौ भूयोंऽशे च विलक्षणौ । पूर्वं वैलक्षण्यमाह— ज्ञाज्ञौ, जानाति इति 'ज्ञः' परमात्मा नित्यज्ञानवान् "प्रज्ञानं ब्रह्म" इति श्रुतेः । न जानाति इत्यज्ञः । अल्पं जानाति वा इत्यज्ञः । अथार्थं जानाति वा इत्यज्ञः जीवात्मा । ज्ञश्च अज्ञश्च इति ज्ञाज्ञौ । सर्वज्ञाल्पज्ञौ परमात्मप्रत्यगात्मानौ । ईशनीशौ ईष्टे जगत्कर्तुमुपकर्तुं प्रतिकर्तुमिति ईशः सर्वसामर्थ्यवान् परमेश्वरः । न ईशः अनीशः ईशभिन्नः असमर्थः जीवात्मा अनीशः । ईशश्च अनीशश्च इति ईशनीशौ बाहुलकतया आकृतिगणेन "सकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" इति वार्तिकबलात् ईशघटकस्याकारस्य अनीशघटकाकाररूपता । ईश्वरो हि समर्थः, जीवात्मा चासमर्थः, इति वैलक्षण्यद्वयम् । सलक्षणत्वमाह— अजौ, द्वावपि परमात्मजीवात्मानौ कुतश्चिन्न जातौ मातापितृसंयोगात् । यदि चेत् "शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः" इति श्रुत्यनुरोधेन परमात्मपुत्रत्वं जीवे तदा द्वयोर्व्युत्पत्तिवैलक्षण्यम् । तथा च न जायत इत्यजः परमात्मा, एवं अकारः परमात्मा तस्मात् जायते इति अजः जीवात्मा । अजश्च अजश्च इत्यजौ । नन्वत्र जीवस्य परमात्मजन्यत्वे व्याख्याते "न जायते म्रियते वा विपश्चित् " (कठ॰ १/२/२०) "न जायते म्रियते वा कदाचित्" (गीता २/२०) इति श्रुतिस्मृतिविरोधापत्तिरिति चेन्न । न जायते इत्यस्य जननीजनकरजःशुक्रसंयोगपरिणामतो न जायते इति व्याख्यानात् । अनेन शरीरं जायते वस्तुतस्तु जीवात्मनः परमात्मसकाशात् जायमानत्वं प्रलये परमेश्वरे विश्रान्तस्य सृष्टौ तत उत्थानमात्रं, न च द्वयोरजयोरूत्पत्त्यर्थ-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैलक्षण्ये "स्वरूपाणामेकशेष एक विभक्तौ" इति पाणिनीय सूत्रेण स्वरूपताभावादनयोरेकशेषो न स्यादितिवाच्यं, सूत्रेऽस्मिन् आनुपूर्विकृतसारूप्यस्वीकारेणादोषात्, अतएव रामश्च रामश्च रामश्च इति रामाः इत्यत्रैकशेषे त्रयाणामपि रामाणां भार्गवत्व-राघवत्व- माधवत्त्वनिबन्धनार्थवैभिन्नेऽपि अनेनैवेकशेषः इति शब्दशास्त्रे स्पष्टम् आनुपूर्वि वैरूप्ये समानार्थकत्वमपेक्षते, यथा घटश्च कलशश्चेत्येकशेषे घटौ कलशौ वा इति आनुपूर्विवैलक्ष्येऽपि द्वयोः कम्बुग्रीवादिमत्वरूपे समानेऽर्थे एकशेषः । इदम् "विरूपाणामपि समानार्थानाम्" इति वार्तिके कात्यायनेन ध्वनितम् । आनुपूर्विसारूप्ये समानार्थकता नहि अर्थसारूप्ये च नानुपूर्विसारूप्यमिति शाब्दिकविवेकः । एवं सतोरुभयोः भोग्य-सामग्रीं का व्यवस्थापयति इत्यत आह— भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता भोक्तारौ, जीवात्मपरमात्मानौ प्रामुख्येन जीवात्मा तेन दीयमानानां पत्रपुष्पफलजलादीनामाप्राधान्येन परमात्मापि भोक्ता, अथ "अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति" इति श्रुतिविरोधः स्यादिति चेन्न, पूर्वमेव दत्तोत्तरत्वात् । वस्तुतः परमात्मा जगद् विषयान् न भुङ्क्ते, स तु भुञ्जानस्य जीवस्य साक्षी । अतः "अनश्नन् अन्यः" इति श्रुतिः सङ्गता, किन्तु "तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः" (गीता ९/२६) इति स्मृतेः भगवानपि अश्नाति इत्यवगम्यते । ननु व्याख्यानेऽस्मिन् शृतिस्मृत्योः परस्परविरोधः ? इति चेन्न, श्रुतौ 'अनश्नन्' इति प्राधान्येन भगवतोऽशननिषेधः, श्रीगीतायामश्नामीति भक्तप्रेमवशंवदस्य तत्परिपालनाय प्राध्यान्येनाशनविधिः यदा भक्त्योपहरति शबरीविदुरादिरिव तदा तु अश्नामि । अभक्त्योपहतं दुर्योधनादिनेव नाश्नामि इति हार्दम् । तस्मात् "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इति श्रुतौ "सह युक्तेऽप्रधाने" इति सूत्रेण विहिता ब्रह्मणा इत्यत्र अप्रधानार्थतृतीया संगच्छते । एवं भोक्त्रो ब्रह्मजीवयोः भोग्याः येऽर्थाः भूम्यादयः पञ्चभूतात्मकाः तैर्युक्ता इति भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता । आशयोऽयं– यथा कापि कुशला गृहिणी पतिपुत्रयोः कृते भोजनसामग्रीं व्यवस्थापयति तथैवेयं परमेश्वरयोगमाया प्रकृतिसंज्ञा जीवस्य जीविकार्थं परमात्मक्रीडार्थं च स्वमायाबलेनैव जीवोपभोगसाधनं शरीरं तद्भोग्यानि पञ्चभूतानि तदात्मकानि च अन्नानि निर्माय तैरुपतिष्ठते, एभिर्जीवात्मानं पोषयति पुत्रं पतिं परमात्मानं परितोषयति इति सिद्धान्तः । अतएव मानसेऽपि **श्रुति सेतुपालक राम तुम्ह जगदीश मायाजानकी, जो सृजति जग पालति हरति रूख पाइ कृपानिधान की** (मानस२/१२६)

अत एव

मयाध्यक्षणे प्रकृतिः सूयते सचराचरम् (गीता ९/१०)

सा किं रूपा ? इत्यत आह— विशेषण द्वयेन एका अद्वितीया रचनायां न सहाय्यमपेक्षते इति भावः यद्वा "अकारो वासुदेवः" तस्मिन् एकं सुखं यस्या सा एका

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवत्सुखसुखा इति भावः । अजा न जाता परमात्मा तु कदाचित् अवतारकाले कौसल्यायाः गर्भमागच्छति **"प्रजापतिश्चरति गर्भे"** (शुक्लायजु॰ ३१/१९) इति श्रुतेः।

कौसल्या जनयद् रामम् (वा. रा. वा. १८/१२) इति स्मृतेः **जा दिन ते हरि गर्भहिं आये** इति मानसोक्तेश्च। किन्तु श्रीसीताभिधानेयं भगवन्माया तु अवतारलीलायामपि नैव कस्याचित् गर्भमायाति प्रत्युत पृथिवीमेव जननीत्वेनाङ्गिकरोति । अतस्तस्य अजात्वं सार्वकालिकं लीलायामपि न विरुद्धमिति भावः, इति चेन्माधुर्यातिशयेन जनकस्तस्याः जन्म मन्यते यथा वाल्मीकीयरामायणे **देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै** (वा. रा. सुन्दर, १३/५९) तदा तु जनकस्य विदेहराजस्य आत्मा पत्नीत्वेन सम्मता पृथिवी तस्यां जायते सा जनकात्मजा इति समाधानम् । तर्हि कथं जनकस्य कुले जाता ? इति तत्र कुले अजाता इत्यकारप्रश्लेशः । यदि चेत् माधुर्याय जन्मोपचार आवश्यकः तदा तु **अकारो रामचन्द्रः** तस्मै जाता सा अजा इति परिहारः । इत्थं भगवदभिन्ना योगमायापि भगवत्स्वरूपैव द्वावप्येकौ, किन्तु जीवात्मा अनेकः अत आह— चकारोऽत्र किन्त्वर्थकः , आत्मा सततगमनशीलः विश्वरूपः विश्वानि समस्तानि चराचराणि रूपाणि अवयवसन्निवेशाः शरीराणि वा यस्य तथाभूतः, नास्ति अन्तः रूपाणां वैविध्यात् समाप्तिः यस्य तथाभूतः, यदा एतत्त्रयं ब्रह्म सान्निध्येन, प्रकृतिमात्मानं च ब्रह्मसेवकतया, तत्समानरूपं परमात्मानं सेव्यत्वेन, स्वं च नित्यकिंकरत्वेन विन्दते स्वस्वरूपपरस्वपरूपज्ञानेन उपलब्धविषयीकरोति तदा अकर्ता कतृत्वाभिमानशून्यः सन् तत्परिणामशुभाशुभफलैर्विमुच्यते इति तात्पर्यम् ।।श्रीः।।

इदानीं क्षराक्षराभ्यां परस्य परमात्मनः स्वरूपं निर्वक्ति—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः।।१०।।

प्रधानं क्षरः अमृताक्षरः हरः क्षरात्मानौ एकः देव ईशते तस्य अभिध्यानात् योजनात् च तत्वभावात् भूयः अन्ते विश्वमायानिवृत्तिः भवतीति शेषः । गीतायां ययोर्द्वयोः पुरुषयोश्चर्चा ताविह क्षराक्षरशब्दाभ्यां व्यवहृतौ, यश्च तत्र पुरुषोत्तमशब्देन व्यवहृतः स एवात्र हरः कीर्तितः । वस्तुतः जडवर्गः क्षरः अचित् , चेतनश्च जीवात्माक्षरः तयोरधिष्ठातापरमाक्षरो हरः, क्षर एव भोग्यम् अक्षरोभोक्ता परमात्माद्वयोः साक्षी । क्षरः क्षरणशीलत्वात् नैव पृथक् तत्वरूपेण स्वीकर्तुं शक्यः। लोके यथा महात्मायाति इति कथने यद्यपि महात्मना सह तच्छिष्य अपि यान्ति, वाहनानि च वहन्ति सर्वान् यात्रिणः किन्तु महात्मन्येवान्तर्भावात् न तेषाम् पृथक् चर्चा, जीवात्मनि सत्येव तच्छरीरस्य तद्भोग्यानाम् चान्येषामुपकरणानां समुपयोगः । असति तस्मिन् सुन्दरस्यापि शरीरस्य सकलमहत्वपूर्णस्य अग्निशात्करणं दृष्टमेव । भोक्तरि सति भोग्यानामुपयोगिता ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मात् त्रीण्येव जीवात्मपरमात्मप्रकृतिनामानि तत्वानि अस्मन्नये जगतो जीवभोग्यत्वात् तत्रैव गतार्थता, असारस्य संसारस्य किं तत्वरूपेण पृथक् कल्पनया प्रत्युत् विशेषणत्वेन। अतः प्रमाता जीवः प्रमेयं श्रीरामाख्यं ब्रह्म। प्रमाणानि प्रत्यक्षानुमानशब्दाख्यानि इत्येव सिद्धान्तो वरीवर्ति मम विशिष्टाद्वैतवादस्य। ननु प्रमेयरूपे ब्रह्मणि ज्ञाते अलम् जीवप्रकृतिज्ञानेन, ब्रह्मसूत्रमपि इत्थम् **अथातो ब्रह्म जिज्ञासा** इति चेच्छ्रूयताम् जिज्ञासाजिज्ञासुसापेक्षा भवति। जिज्ञास्यं ब्रह्म, तर्हि यद्येकमेव तत्वं ब्रह्म तदा स्वमेव कथं जिज्ञासेत् ? कथं वा नित्यज्ञानसम्पन्नस्य सर्वज्ञस्य ब्रह्मणः जिज्ञासा ? यदि चेत् अभिनयमात्रमिदं सर्वं तदा तु मोघारम्भं शास्त्रं, नहि असत्यं बोधयितुं अपौरुषेया श्रुतिः प्रवर्तते। तस्मात् जिज्ञास्यं ब्रह्म जिज्ञासुश्च जीवः इति फलितार्थः। **अथातो ब्रह्म जिज्ञासा** इत्यत्र **सनन्तात् कर्मणि अप्रत्ययः** कर्ता च अनुक्तः अतस्तत्र तृतीया, कर्तारं विना जिज्ञासा नोपपद्यते, अज्ञानिनि हि ज्ञातुमिच्छा भवति , स च जीव एव, एकस्मिन् तत्वे स्वीकृते अखण्डज्ञानवति ब्रह्मण्यज्ञानापत्तिः। अतो ज्ञाता ज्ञेयं ज्ञानमिति विभागत्रयं, तत्र ज्ञेयं ब्रह्म ज्ञाता जीवः सेवकसेव्यभावरूपो ब्रह्म विषयकबोधो ज्ञानं, ज्ञेये निरूपिते तज्ज्ञातुर्निरूपणमावश्यकम्। अतोऽनुसंगिकतया जीवोऽपि तत्वतया स्वीकर्तव्यः इति दिक्।

प्रधानं प्रकृतिः भूम्यादिर्भिन्ना अष्टधा क्षरं क्षणभंगुरम् अमृताक्षरममृतं स्वरूपेण मृतभिन्नं तदेवाक्षरविनाशि जीवतत्वं, हरः द्वावपि हरति प्रलये स्वशरीरं प्रापयति इति हरः, यद्वा प्रधानमिति अमृताक्षरमित्यस्य विशेषणम्। एवं सति क्षरं भोग्यतया न प्रधानं तदपेक्षया अमृताक्षरं जीव तत्वं प्रधानं , किन्तु तावपि क्षरात्मानौ भोग्यभोक्तारौ जडचेतनौ भिन्नप्रकृतिप्रत्यगात्मानौ क्षरमक्षरमतीतः एकः केवलः अक्षरापेक्षया प्रधानः देवः देवदेवो भगवान्परमप्रकाशकः ईशते ईष्टे नियच्छतीति भावः। ईशते इत्यत्र 'गणकार्यानित्यत्वात् बाहुलकाच्च न शपोलुक्'। एवमक्षरात्मानावीशानस्य तस्य परमात्मनः अभिध्यानात् आभीक्ष्ण्येन तच्छ्रीविग्रहचिन्तनात् योजनात् तस्मिन् मनसः, सन्निधापनात् च तथा, तत्वभावात् तत्वं जीवस्व रूपं दास्यं तद्भावात् इह स्पष्टं विशिष्टाद्वैतवादः प्रतिपादितः। क्षरमचित् अमृताक्षरं चित् जीवः, हरः द्वाभ्यां विशिष्टः परमेश्वरः। एवं क्षरात्मानौ प्रकृतिपुरुषौ विशेषणीभूतौ, ईशते विशिष्टः सन् शास्ति। तस्य परमात्मनः चिन्तनात् तस्मिन् मनः सन्निधानाच्च अन्ते मायायाः निवृत्तिः, इदमेव विशिष्टाद्वैतदर्शनम्॥ इति भावः॥

भूयःपुनः अन्ते भगवद्भजनप्रतिबन्धकदुरितावसाने विश्वमाया निवृत्तिः, **विश्वा** समस्ता या माया अज्ञानं **मायाज्ञाने छले तथा** तस्याः अज्ञानपर्यायाः निवृत्तिः भगवद्भजनेनैव माया निरासो भवति इति सूचितम्॥श्रीः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मज्ञानफलमाह ज्ञात्वेति—

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः।।११।।

देवं ज्ञात्वा सर्वपाशापहानिः (भवति) क्लेशैः क्षीणैः जनस्य जन्ममृत्युः प्रहाणिः (भवति) तस्य अभिध्यानात् देहभेदे सति केवलः आप्तकामः विश्वैश्वर्यं तृतीयं (प्राप्नोति) देवं कोटि-कोटिब्रह्माण्डप्रकाशकं सुरासुरैःस्तूयमानं परमात्मानं ज्ञात्वा परमाराध्यत्वेन समवगम्य साधकस्य, सर्वपाशापहानिः सर्वेषां पाशानां निखिलभवबन्धनानाम् अपहानिः अपकृष्टतया विनाशो जायते। भगवति विज्ञाते तस्मिंश्च निजसेव्ये विनिश्चिते सकलममतास्पदे च सम्पन्ने स्वयमेव जागतिकममतापाशाः पश्यति भगवति प्रणष्टाः भवन्ति इति भावः। क्लेशैः अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशरूपैः क्षीणैः विनष्टैः हेतुभूतैः अत्र हेतौ तृतीया, तत्कार्यरूपजन्ममृत्योः प्रहाणिः जरामरणोपमर्दनं भवति। एवं तस्य परमात्मनः अभिध्यानात् अभीक्ष्णशः स्मरणात् देहभेदे प्रारब्धजनितशरीरनाशे आप्तकामः लब्धसकलेप्सितः केवलः सकलममतानिरासेन ममतास्पदानाम् अभावात् एकाकी भगवदाश्रयः सन्, विश्वैश्वर्यं विश्वानि सर्वाणि ऐश्वर्याणि ज्ञानशक्तिप्रभृतीनि सन्ति यस्मिन् स विश्वैश्वर्यः तं विश्वैश्वर्यं तृतीयं, क्षरामृताक्षरहराणाम् चिदचित्तद् विशिष्टानां मध्ये तृतीयं क्षराक्षरमतीतं परं ब्रह्म गच्छति। तत्पर्यमेतत् गीतायां क्षरवाच्यनि सर्वाणि भूतानि, अक्षरः कूटस्थो जीवात्मा आभ्यां विलक्षणः अत्रत्यस्तृतीयः परमात्मा। तथोक्तं

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च,
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।
यस्माक्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः
अतोऽस्मिल्लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

(गी. १५/१६/१७,१८)

यत्तु तृतीयमित्यस्य देवयानपितृयानविलक्षणं विराटस्वरूपमिति व्याकुर्वते तदनुचितम्, अत्रत्य प्रकरणविरोधात्। अत्रत्ये प्रकरणे हि **क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः** (श्वे. श्व. १/१०) इति मन्त्रे तृतीयत्वेन भगवानेव वर्णितः, तस्मात् तृतीयं देहभेदे अतोऽत्रापि स एवार्थो नुसंजनीयः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदानीं ज्ञेयतत्वं निर्धारयति एतदिति—

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ।।१२।।

एतत् एव आत्मसंस्थं नित्यं ज्ञेयं हि अतः परम् किञ्चित् न वेदितव्यं भोक्ताभोग्यं च प्रेरितारं मत्वा सर्वं (ज्ञातं) प्रोक्तम् एतत् त्रिविधं ब्रह्म ।

एतत् पूर्वमन्त्रेषु वर्णितं क्षराक्षरातीतं क्षरात्मशासकमेव, अत्र ब्रह्मातिरिक्तयोगमेवकारो व्यवच्छिनत्ति। आत्मनि शरीर एवं हृत्पुण्डरीके सन् तिष्ठति इति आत्मसंस्थं तादृशं नित्यं सततं ब्रह्मविशेषणत्वे त्रिकालमबाधितसत्ताकं ज्ञेयं ज्ञातव्यं विशिष्टाद्वैततत्वमत्र विध्यर्थे यत् प्रत्ययः । यद्धृदयदेशे अन्तर्यामिरूपेण विराजते एतदेव ज्ञेयं जीवेनेति शेषः । कथमेतदेव ज्ञेयम् ? इति जिज्ञासां समाधत्ते— हि यतो हि अतः एतस्मात् ब्रह्मणः किञ्चित् किमपि वस्तु परं न उत्कृष्टं नास्ति, तस्मात् अस्मात् परमतिरिक्तं श्रेष्ठतया किञ्चित् न वेदितव्यं न ज्ञातुमर्हम् । ननु न भवतु नाम ब्रह्मणः परतरं किञ्चित् परञ्च अस्मान्निकृष्टं तु किमपि वर्तते ? इत्यत आह— भोक्ता इति जीवः पूर्वमहं भोक्ता चित् इति स्वं जानीयात् । तदनु भोग्यं च अचित् पश्चात् प्रेरितारं सर्वप्रेरकपरमात्मानमाभ्यां विशिष्टं मत्वा विज्ञाय सर्वं जानाति । अर्थात् स्वस्वरूपं परस्वरूपं तत् प्राप्ति उपायस्वरूपं तद्विरोधिस्वरूपं फलस्वरूपं च ज्ञात्वा सर्वं जानाति । एवम् व्याख्याते प्रश्न उदेति– ननु पूर्वार्धे **नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्** इति ब्रह्मातिरिक्तपदार्थज्ञेयतानिषेधः पुनरुत्तरार्धे **भोक्ताभोग्यं प्रेरितारं च मत्वा** इति श्रुतिसकलेन भोक्तृभोग्यप्रेरकाणां ज्ञेयत्वसूचनेन श्रुतावपि वदतोव्याघातदोषः ? इति चेन्न भोक्तृभोग्यप्रेरकत्रिकज्ञानं ब्रह्मज्ञानमेव प्रधानपूजाङ्गीभूततदङ्गपूजनवत्, नहि जीवेन विना परमात्मा तिष्ठति जीवश्च भोग्यमन्तरेण स्थातुं न प्रभवति, तस्मात् ब्रह्मज्ञाने तदङ्गतया जीवज्ञानं जीवज्ञाने च तदङ्गभोग्यज्ञानं ब्रह्मणो विशेष्यस्य ज्ञाने विशेषणयोः जीवप्रकृत्योः भोक्तृभोग्योः ज्ञानमावश्यकं, त्रयाणां विना भूतत्वात् स्वत एव सिद्धम् ? इत्यत् आह– एतत् त्रिविधं भोक्तृभोग्यप्रेरकज्ञानरूपं ब्राह्मं ब्रह्मणः इदं इति ब्रह्मम्, अत्र इदमर्थे तद्धितीयेऽ णं प्रत्ययेऽपि (बहुलं छन्दसि) इति **बाहुलकबलात् तद्धितेस्वचामादेः** इति सूत्रेण नैवादिवृद्धिः । इत्थमेतत् त्रिविधं ब्रह्मं ब्रह्मज्ञानमिति भावः ।।श्रीः।।

इदानीं ब्रह्मस्वरूपनिरूपणानन्तरं तद् ग्रहणाय प्रणवोपयोगितां प्रतिपादयन्ती श्रुतिः अग्नीन्धनोदाहरणेनेदं स्पष्टयति । वह्नेरिति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ।।१३।।

अन्वयः— यथा योनिगतस्य वह्नेः मूर्तिः न दृश्यते च नं एव लिङ्गनाशः स एव भूयः इन्धनयोनिगृह्यः तद् वा उभयम् (ब्रह्म) प्रणवेन देहे गृह्यः ।

वहति हवींषि यः स वह्निः । वह् धातोः कर्तरि औणादिको निङ् प्रत्ययः । तस्य वह्नेः पावकस्य योनिगतस्य अरणिरूपस्वप्राकट्यकारणभूतकाष्ठगतस्य मूर्तिः स्फूल्लिङ्गादिराकारः न दृश्यते नैव साक्षात् क्रियते । च किन्तु तस्य लिङ्गनाशः आकृतिविनाशः नैव, लीनः सन् दारुण्यग्निः केवलं विलोक्यते न, तथैव स एव अग्निः भूयः पुनः इन्धनयोनिगृह्यः इन्धनरूपकारणेन देदीप्यमानो गृह्यते । तद्वत् तेनैव प्रकारेण देहे शरीरे वर्तमानमन्तर्यामितया निर्गुणं ब्रह्म स्वाधिकरणतया च सगुणं ब्रह्म उभयमपि निर्गुणं सगुणं च प्रणवरूपेण, इत्यनेन देदीप्यमानमग्निस्वरूपं गृह्यते । इत्यनेन यथा अग्निर्बृहदाकारः सन् दहति सर्वं, तथैव प्रणवेन स्तूयमानं निर्गुणं ब्रह्मापि प्रकटितगुणत्वात् सगुणं साकारं सन् पावक इव भक्तभयदुरितक्लेशान् हरतीति हार्दम् । यथोक्तं मानसे श्रीतुलसीदासमहाराजैः—

एक दारुगत देखिय एकू । पावक सम जुग ब्रह्मविवेकू ।
उभय अगम जुग सुगम नाम ते । कहहूँ नाम बड़ ब्रह्म राम ते ।।

(मानस १/२३/४,५) ।।श्रीः।।

इदानीमरणिमन्थनरूपकेण ब्रह्मप्राकट्यं निरूपयति, यथा अरणिद्वये अधरोत्तरे मथ्यमाने अग्निः प्रकट्यते याज्ञिकैः तथैव शरीररूपाधरारणिं प्रणवरूपोत्तरारणिं संयुक्तौ विधाय निर्मथनरूपध्यानेन असकृदभ्यस्तः परमात्मा निगूढोऽपि द्रष्टुं शक्यते इति मन्त्रार्थः ।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ।।१४।।

सुगमान्वयत्वात् अक्षरार्थौ निरूप्यते—

स्वदेहम् निजशरीरं जपकाले रसनावच्छेदेन अरणिं पूर्वारणिं कृत्वा विधाय, च तथा प्रणवम् ओंकारं रामनाम वा तस्यापि प्रणवरूपत्वात् **श्रीरामो ब्रह्मतारकम्** इति श्रुतेः । एवं द्वयोरपि प्रणवरामनाम्नोः तारकब्रह्मत्वेन श्रूयमाणत्वात् प्रणवत्वं शास्त्रसङ्गतम् । अतो यथानिष्ठं निराग्रहः सन् न्यासी ओंकारं श्रीवैष्णवः अन्योऽपि कस्मिंश्चिदपि वर्णाश्रमे वर्तमानः रामनामरूपं प्रणवं उत्तरारणिं कृत्वा ध्यानरूपनिर्मथनस्य यः अभ्यासः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैखरीजपरूपः अजपाजपरूपो वा असकृद् स्मरणविशेषः । तस्माद् हेतोः निगूढवत् निगूढमिव हृदयकुहरे वर्तमानं देवं सकलप्रकाशकं सगुणश्रीविग्रहपरमात्मानं पश्येत् दृष्टुं शक्यते । अत्र 'शकिलिङ् च'' इति सूत्रेण शक्यार्थे लिङ्लकारः । ओंकाररामनन्त्रयोरन्यतरेण कृतध्यानजपाभ्यासो ब्रह्मसाक्षात्कारसमर्थो भवतीति फलितम्।।श्रीः।।

इदानीं ब्रह्मणो व्यापकतां तत्प्राप्त्युपायं च वर्णयति तिलेषु इत्यादिना—

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ।।१५।।

अन्वय :—तिलेषु तैलं इव, दधनि सर्पिः इव, स्रोतःसु आपः इव च, अरणीषु अग्निः इव एवम् आत्मनि असौ आत्मा (तेन) गृह्यते यः एनं सत्येन तपसा अनुपश्यति ।

तिलेषु तैलं इव यथा सर्वावच्छेदेन तिलेषु तैलं व्याप्तं किन्तु तिलं निर्मथ्य तत्प्राप्तुं शक्यम् । यथा दधनि दुग्धपरिणामे सर्पिः घृतम्, एवमेव यथा स्रोतःसु निर्झरछिद्रेषु आपः जलानि । यथा च अरणीषु अग्निः पावकः निगूढः यत्नेन प्राप्यते । तद्यथा-निष्पिष्टेषु तिलेषु तैलं निर्मथिते दधनि घृतं, वार्धिषु स्रोतःसु जलं, घर्षिताषु अरणीषु अग्निः। एवमसौ आत्मा परमात्मा तैलघृतजलाग्निसमानधर्मा तिलदधिस्रोतोऽरणि-समानधर्मिणि आत्मनि वेदानुवचनेन निष्पिष्टे, व्रतेन मथिते, तपसा विशदीकृते, अनाशकेन घर्षिते च प्रत्यगात्मनि तेनैव साधकेन गृह्यते निजोपलब्धिविषयीक्रियते । अथ चतुर्धर्मिणां धर्मचतुष्टयपरिकल्पनं कुतः कृतमिति चेत् "तमेतं ब्राह्मणा विविदिषन्ति वेदानुवचनेन वृतेन तपसानाशकेन'' इति श्रुतिवचनमेवमानं गृहाण । केन गृह्यते ? इत्यत आह—यः एनं परमात्मानं सत्येन वेदानुवचनपरिणामरूपेण शास्त्रानुमोदित-सदाचरणेन तपसा व्रतानाशकयोरप्यत्रैवान्तर्भावः । अनुपश्यति आनुकूल्येन द्रष्टुं समीहते ।।श्रीः।।

साम्प्रतं पूर्वोक्तसाधनेन ब्रह्मप्राप्तिं विविच्य प्रथमाध्यायमुपसंहरति सर्वेत्यादि—

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम् ।
आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् ।।१६।।

अथ सर्वव्यापकः परमात्मा कीदृशः तत्प्राप्तये कोपायः अस्मिन् किं प्रमाणमिति प्रश्नत्रयसमाधान एव समाप्नोति प्रथमाध्यायम् ।

अन्वयः— क्षीरे अर्पितं सर्पिः इव सर्वव्यापिनम् आत्मविद्यातपोमूलम् आत्मानं (यः सत्येन तपसा अनुपश्यति तेन असौ गृह्यते)।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्त्रैकवाक्यतया वाक्यार्थबोधाय श्रुतावस्यां पूर्वश्रुतेः षट्पदानि तेन इत्याध्याहृत-पदञ्च सप्तकमिदमनुवर्तते। एवं क्षीरे दुग्धे सर्पिः इव क्षीरभूते परमात्मप्रकृतिगवीपरिणाम-भूते संसारे अर्पितं समर्पितम्। यथा क्षीरस्य सारभूतं घृतं तथैव संसारस्य सारभूतः परमात्मा तथा च सम्यक् परमात्मरूपः सारः तत्वं यस्मिन् स संसारः इति व्याचक्ष्महे। क्षीरघृतोदाहरणादत्र किं वैलक्षण्यम्? अत आह अर्पितं तात्पर्यमेतत् क्षीरे घृतं स्वतःसिद्धम्, किंतु संसारे परमात्मा स्वतः सिद्धो नहि पूर्वं योगमायया संसारः सृष्टः पश्चात् तदसारतां समीक्ष्य तत्र तयैव परमात्मा समर्पितः इति वैशिष्ट्यम्। नन्वस्मिन् व्याख्याने किं मानम्? इति चेन्न, **तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्**' (तै.उ. २/७) इति श्रुतिरेव प्रमाणाम् एवं सर्वं, चराचरं व्याप्नोति स्वसत्तया व्याप्तं करोति तच्छीलः इति सर्वव्यापी। स्वावच्छिन्नात्यन्ताभावाप्रतियोगितावच्छेदकतावान् इत्यर्थः। तं सर्वव्यापिनं आत्मा आदत्ते भक्तभावान् यस्तथाभूतः तत्प्राप्तये विद्या आत्मविद्या ब्रह्मविद्या वेदान्तनाम्नीति भावः। **तपः**— तन्नामरूपलीलाधाम्नां तद्गुणानां तत्प्राप्तिसाधनानां च असकृदालो-चनम्। ते आत्मविद्यातपसी मूले प्राप्तिसाधने यस्य स आत्मविद्यातपोमूलः तं आत्मविद्यातपोमूलमात्मानं परमात्मानं श्रीरामाभिधं परमेश्वरं यः सत्येन तपसा अनुपश्यति असौ तेन गृह्यते। तस्य सत्तायां किं मानमित्यत आह— तत् पूर्वव्याख्यातं उपनिषत्परं उपनिषत्सु परतत्वतया बहुशो वर्णितं ब्रह्म वेदान्तप्रतिपाद्यम्, द्विरुक्तिरध्यायसमाप्तिसूचनाय।

इति श्रीचित्रकूटनिवासि तुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामि रामभद्राचार्यप्रणीते श्वेताश्वतरोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्ये प्रथमोऽध्यायः।

।।श्रीराघवः शान्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्री राघवोविजयते तराम् ।।

।। श्री रामानन्दाचार्याय नमः ।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

सम्बन्धभाष्यम्— प्रथमाध्याये ब्रह्मजीवयोः सारूप्यवैरूप्यपुरःसरं तद्वैलक्षण्यलक्षणानि लक्षयित्वा द्वयोः कार्यं ब्रह्मप्राप्त्युपायं च सयुक्तिकं प्रपञ्चयामास । तद्ब्रह्म प्रवचनेन केवलेन, सकलनिरपेक्षया मेधया, केवलेन बहुना श्रुतेन नैवाधिगन्तुं शक्यं, इदं तु तेनैव लब्धुं शक्यते यश्च परमात्मना व्रियते । तद्वरणाधिकारं सैवाधिगच्छति यस्तत्कृपाभाजनं भवति । परमेश्वरकृपापि तमेवाङ्गीकरोति यो दैन्यवान् भवति । दैन्यं हि प्रार्थनामूलं, ननु सर्वभूतसमस्य समदर्शिनो निरस्तनिखिलपक्षपातस्य परमेश्वरस्य प्रार्थनानिघ्नत्वे लालाटिकतापत्तिरितिचेन्न , सर्वदैव निखिलद्वन्द्ववर्जितस्य निरस्तशात्रवसौहृदस्वभावस्य परमात्मनः सर्वदा समवर्तित्वेऽपि निजगुणविस्मरणशीलत्वात् तद्बोधनाय स्तुतिपाठानां उपादेयत्वे नैव लालाटिकता शंका, न च परमात्मनो निजगुणविस्मरणशीलतापादने तत्र स्मृतिमत्वानुपपत्तिरिति वाच्यं , तत्र प्राशस्त्ये मतुपोविधनेनादोषात् । अतोऽनिवार्यत्वे प्रार्थनायाः तत्र प्रार्थयितृप्रवृत्तिप्रयोजकतावच्छेदकतायाः समवधाने प्रार्थ्यमाहात्म्यवर्णनावश्यकत्वे पूर्वं तद्गुणानेव विशिनष्टि—

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत ।।१।।

सविता प्रथमं तत्त्वाय युञ्जानः (पश्चात्) धियः युञ्जानः अग्नेः ज्योतिः निचाय्य पृथिव्याः अध्याभरत ।

अत्र सविता परमेश्वरः न तु सूर्यः, तथा च 'सुप्रेरणे' इति धातोः सवति प्राणिनः प्रेरयति इति सविता सकलप्रेरक इति भावः । प्रथमं ध्यानदशातःपूर्वं मनः सैव सरिता युञ्जानः स्वेन योजयन्, पश्चात् धियः बुद्धीः अपि स्वेन योजयन्, अग्ने अग्निसदृशस्य स्वस्य ज्योतिःप्रकाशं निचाय्य समूह्य, पृथिव्याः भूमेः अधि उपरि आभरत तज्जयोतिः पूरयामास ।

तात्पर्यमेतत् यद्ध्यातुर्मनः बुद्धीश्च स्वेन योजयित्वा भगवान् निजतेजसैव तस्यान्तःकरणरूपपृथ्वी निजतेजोरश्मीरेव भाषयति, अतः स एव भजनीयः प्रार्थनीयश्च । यद्वा सकलप्राणिप्रसवभूमिः सविता प्रेरयिता वा प्रथमं तत्त्वाय ब्रह्मतत्त्वाधिगमाय मनः संकल्पात्मकम् इन्द्रियविशेषं धियः व्यवसायात्मकवृत्तीः युञ्जानः निजचरणसरोरुहे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्निवेषयन् अग्नेः उपलक्षणतया अग्न्यादि हृषीकाभिमानयुक्तसुराणां **ज्योतिः** प्रकाशं तत्तत् विषयग्रहणसामर्थ्यं वा निचाय्य समुपसंहृत्य पृथिव्याः पार्थिवभोगेभ्यः, **अधि** उपरि **आभरत** विभर्तु । अत्र "बहुलं छंदसि" इत्यनेन लोडर्थे लङ् लकारः । इति नव्याः । यत्तु **युञ्जान** इत्यस्य योजनीयमिति व्याचक्षते प्राञ्चः तत्स्थविरबुद्धिप्रसूततया नादरणीयम् ।।श्रीः।।

अथ द्वितीये मन्त्रे प्रार्थयमानः साधकः परमात्मपदपद्मपरागरसपानाय प्रतिजानीते । देवाधिष्ठितं हि मनः भगवत् भजनरसे अग्रेसरं भवति, आसुरभावसम्पन्न मन एवं मनोजादीन्संकल्पयति । ननु मनसोऽधिष्ठाने तद्देवतां विरहय्य सवितृप्रार्थना नोपपद्यते ? इति चेन्मैवं, सविता हि चक्षुरभिमानिदैवतम् । चन्द्रश्च मनोऽभिमानिनीदेवतेति श्रुतौ प्रसिद्धम् । चन्द्रमाः यथातिथिक्रमं कृष्णपक्षे सुरैः पीतकलः अमावश्यायां सूर्येण संगच्छमानः सवितुरेव पुनः कलाः लभते इत्यपि ज्यौतिषशास्त्रे प्रसिद्धम् । एवमेव अनाप्यूह्यं यथा शशी सूर्यात् कलाः लभते तथैवात्र चक्षुरभिमानिदैवतात् बाहुल्येन विषयाँल्लभते, मनोऽभिमानि दैवतम् । अतः मनसश्चक्षुरधीनत्वात् परिहृत्य तद्दैवतं चक्षुर्दैवतप्रार्थनं सुसंगतं तर्कसहमपि ।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । सुवर्गेयाय शक्त्या ।।२।।

वयं (सवित्रा) युक्तेन मनसा सुवर्गेयाय सवितुः देवस्य सवे शक्त्या (युञ्जमहि) ।

वयं साधकाः सवित्रा जगत्प्रेरकपरमात्मना युक्तेन समधिष्ठितेन मनसा स्वान्तेन **सवितुः** सत्कर्मसु निजजनेभ्यः प्रेरणाप्रदस्य यद्वा सवितुःसूर्यस्यापि सूर्यस्य यद्वा सवितुः सूर्यकुलभूषणस्य गौणवृत्या सवितृवंश्योऽपि सविता "मंचाः क्रोशन्ति" इतिवत् तात्स्थे लक्षणा । **सवे**— श्रुतिमाध्यमेन भगवता प्रेरिते सत्कर्मरूपयज्ञे, भगवन्निमित्त- कर्मापि यज्ञो भवति । यथोक्तं गीतासु—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ।। (गीता ३/९)

यत्तु **सवे** अनुज्ञायामिति प्राहुः तत्र 'सव' शब्दस्य कुत्रापि अनुज्ञावाचकत्वा प्रसिद्धेः। तादृशे भगवन्निश्वासभूतश्रुतिविहितकर्मयज्ञे यद्वा गृहीतलीलातनोः श्रीराघवेन्द्रस्य चरित्रानुशिष्टवर्णाश्रमानुकूलसत्कर्ममखे । **सुवर्गेयाय** सुवर्गः साकेतलोकः तत्र निवासःयस्य स सुवर्गेयः । बाहुलकात् स्त्रीत्वा भवेऽपि 'ढक्' वृध्यभावश्च, तस्मै सुवर्गेयाय साकेत-निवासिने श्रीराघवेन्द्राय अत्र तादर्थ्येचतुर्थी शक्त्या पूर्णमनोयोगसामर्थ्येन **युञ्ज्महि** युक्ता भवेम ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ समनस्कहृषीकाभिमानिदैवतानां भगवद्भजनरूपसत्कर्मणि सहाय्यं विधातुं साधकस्य सत्प्रेरणायै सवितारं प्रार्थयते । तस्य हि सकलप्रेरिकत्वप्रसिद्धेः तस्य च परमात्मन एवासाधारणधर्मत्वात् मुख्यवृत्या सविता शब्दः परमेश्वरवाचकः । गौणवृत्या भवतु नाम सूर्यवाची गौणमुख्ययोर्मुख्यकार्ये सम्प्रत्ययः । इति वैय्याकरणसिद्धान्तदृशा अत्रापि सवितृशब्दस्य मुख्यार्थ एव ग्राह्यः ज्ञानकाण्डस्य च मुख्यार्थसूचकत्वात् —

युक्त्वाय मनसा देवान्सुवर्यतो धियां दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ।।३।।

अन्वयः— सुवः धियम् यतः बृहत् ज्योतिः करिष्यतः नः देवान् मनसा धियां युक्त्वाय सविता प्रसुवाति ।

सविता हि इन्द्रियमनोभिंमानिनो देवान् सुवति इमे चतुर्दशदेवाः सूर्यादयो महदन्ताः उभयेषां कर्णानां विषयान् गृह्णन्तो भगवद्भजनं प्रत्यवयन्ति । यथोक्तं गोस्वामि तुलसीदासचरणैः—

जौं तेहिं विघ्न बुद्धि नहिं बाधी । तौं बहोरि सुर करहिं उपाधि।।
इन्द्रियद्वार झरोखे नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी।।

(मानस ७/११८/११,१२,१३)

न तेभ्यः ज्ञानं रोचते निसर्गतस्तेषां विषयाशक्तिमत्वात् । पुनरप्याहार्थमिमं मानसकृत् ज्ञानदीपके—

इन्द्रिय सुरन्ह न ज्ञान सुहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई।।

(मानस ७/११८/१५)

तस्मात् तेषां निग्रहार्थं सूपपन्नं सवितृप्रार्थनम् । जीववृत्तिभेदात् तदन्तःकरणावच्छिन्नदैवतान्यपि द्विधागामीनि भवन्ति, सकामानां ज्योतिष्टोमादिभिः स्वर्गं यजमानानां तत्कर्णैः सह स्वर्गं यान्ति दैवतान्यपि, एवमेव निरस्तकामानां तीव्रेण भक्तियोगेन भगवन्तं भजमानानां परमभागवतानां तत्कर्णावच्छिन्नदेवताः सकर्णाः साकेतगोलोकवैकुण्ठान्यतमं द्युनामधेयं भगवल्लोकं यान्ति । अत आह— सुवः सकामकर्णावच्छिन्नत्वात् स्वर्गलोकं यतः, 'इण्' धातोर्गत्यर्थकस्य शतृप्रत्ययान्तद्वितीयाबहुवचनान्तरूपमिदं तथा हि— यन्तीति यन्तः तान् यतः **'इण्'** धातो अनुबन्धलोपे शतृप्रत्यये अनुबन्धकार्ये इ अत् अस् इति स्थिते **"इणो यण्"**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यनेन यणि रूत्वे विसर्गे यतः इति दिग् गच्छत इत्यर्थः । एवमेव दिवं पूर्वोक्तं साकेतादिकं भगवद्धाम **"त्रिपादस्यामृतं दिवि"** (शुक्ल यजु. ३१/३) इति श्रुतेः। यतः, बृहत् निरतिशयवर्धनशीलं ज्योतिः, प्रकाशं करिष्यतः प्रार्थनाकाले तथाविध-प्रयोगाभावात् सदन्तप्रयोगः विधास्यत इति भावः । एवं विधान् देवान् विषयरङ्गमञ्चे क्रीडतः विषयवने वा खेलतः देवान्, क्रीडार्थक दिव् धातोः देवशब्दनिष्पत्तेः। यत्तु देवान् द्योतनशीलान् इति प्राहुः तदिहत्य प्रसङ्गार्थमनालोच्यैव । देवानां हि द्योतनशीलत्वे ज्योतिः करिष्यतः इति भविष्यत् काले क्रियार्थानुपपत्तेः । तान् नः अस्माकं साधकानां देवान् कर्णसम्बधिनः, मनसा भगवद्भजनयोग्येन स्वान्तेन, धिया परमेश्वरचिन्तनक्षमया बुद्ध्या, युक्त्वाय युक्तान् कृत्वा बुद्धिमनोयुक्ता हि देवाः भगवत्स्मरणे प्रभवेयुः अतः सविता सकलप्रेरकः परमात्मा तान् प्रसुवाति अत्र लोड् अर्थे लट् आडागमश्च प्रकर्षेण प्रेरयतु इत्यर्थः ।।श्रीः।।

अथ परमेश्वरस्तुतेः प्रासङ्गिकतां निरूपयति, नहि सर्वान्तर्यामीसमदृग् भगवान् अस्मदादिरिव लालाटिको भवति । न वा तस्मिन् महत्वाकांक्षित्वादयो दौर्बल्यसूचकाः फल्गवो गुणास्तिष्ठन्ति तस्मादलं तत् प्रार्थनया इति समुत्थितं बलवत्तरं प्रश्नं समाधत्ते युञ्जत् इत्यादिना—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुना विदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।।४।।

अन्वयः— ये विप्राः (यस्मिन्) मनः युञ्जते उत धियः युञ्जते (यः) होत्रा विदधे (यः) एकः वयुना वित् इत् (तस्य) विप्रस्य बृहतः विपश्चितः देवस्य सवितुः मही परिष्टुतिः (तैः विप्रैः कर्तव्या)।

अत्र मन्त्रार्थसंयोजनाय मया श्रुतेरेकवाक्यतया नातीच्छतापि वाक्यार्थानुरोधेन बहूनि पदानि अध्याहतानि । ये विप्राः ब्रह्मकुलोत्पन्नत्वे सति द्विजातिसंस्कार सम्पन्नत्वे सति वेदपठनशीलाः ब्राह्मणाः यथोक्तं याज्ञवल्क्येन—

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारात् द्विज उच्यते ।
वेदपाठी भवेत् विप्रः श्रोत्रियो वेदपारगः ।।

यदुक्तं कैश्चिन्मूर्खैः **(जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारात् द्विज उच्यते , वेदपाठी भवेत् विप्रो, ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः)** ।। इति ।। तत्तु कोटि-कोटिशेषशारदागणनानर्ह-संख्याकमहाकल्पपर्यन्तावधिकरौरवनरकनिवासभीषणयमयातनाप्रचण्डपापपुरीषकीटाणु-कल्पितदुर्गन्धपिसुनकुजल्पितमिव कुक्कुरवमनबुद्ध्या समुपेक्ष्यम्। अस्य

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महामूढशिरोमणिवान्तस्य छन्दसः कुत्राप्यार्षग्रन्थेष्वदृष्टत्वात्। तस्मिन् बृहति विपश्चिति मनःसंकल्पात्मकं धियः भगवति समर्पितत्वेन धियोऽपि समादरणीयतया तत्र बहुवचनान्तविवक्षया धिय इति शसन्तरूपम्। एवम् धियः परमात्मध्यानसमर्था समादरणीया बुद्धिः तदुपलक्षितानि सर्वाणि करणानि युञ्जते तस्मिन् परमात्मनि योजयन्ति, एवभूतो यः होत्राः हूयते अग्निहोत्रं यासु तादृक् क्रियाविशेषाः **'हु धातोः'** अधिकरणेष्ट्रनबाहुलकः, यःविदधे ब्रह्मणे रचयित्वा प्रदर्शयामास **व्यवहिताश्च** इति वार्तिकेन **विहोत्रादधे** इति होत्राशब्दव्यवहितादपि दधातेः पूर्वं व्युपसर्गः । एवं यः वयुनावित् वयुनानाम निखिलकोटिब्रह्माण्डविज्ञानसमर्था प्रज्ञा सैव भगवतो ज्ञानशक्तिः, संविदाख्या तया वेत्ति इति वयुनावित् निजप्रज्ञाबलेन सर्ववेत्तेति भावः । एकः केवलः तस्य देवस्य परमकान्तिमतः विप्रस्य विशेषेण प्राति स्वजनकामान् पूरयति इति विप्रः तस्य विप्रस्य बृहतः अतिशयेन समेधितस्य विपश्चितः नित्यविज्ञानसम्पन्नस्य सवितुः प्रेरयितुः सवितृकुलभूषणस्य रामाभिधब्रह्मणः उत निश्चयार्थो निपातोऽयं छन्दसि प्रयुज्यते। निश्चयेन मही महती अर्थतः शब्दतः भावतश्चापि महनीया परिस्तुतिः परितः नामरूपलीला-धामभिः स्तुतिः लोकोत्तरकल्याणगुणगणसंकीर्तनम्, यद्वा परिष्कृतास्तुतिः परिष्कृतिः परिष्कारश्चात्र भगवति भक्तिप्रवणचित्तैकाग्र्यरूपः अथवा परिश्रितास्तुतिः परिष्टुतिः परिश्रयश्चात्र भगवच्छरणागतिरूपः, यद्वा परिव्यक्तकामनास्तुतिः परिष्टुतिः कर्तव्या तैरेव विप्रैः इत्यनेन ब्राह्मणानां सविशेषभगवद्भजनं सूचितम्, ब्राह्मणानां हि ब्रह्मरूपवेदज्ञानं जन्मना सिद्धं तस्मिन्नेव ब्रह्मणि वेदे परमतात्पर्यरूपेण भक्तिर्निहिता । यत्तु ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः इति वाक्यं कल्पयित्वा ब्रह्म जानाने कस्मिंश्चिदपि वर्णे ब्राह्मणत्वमारोपयितुं दुःसाहसिनो भवन्ति वैदिकधर्मभागधेयधूमकेतवः तदशास्त्रीयम्। अस्य श्लोकस्य कुत्राप्यसत्वात् व्युत्पत्तिर्हि इति शब्दपूर्विका भवति, यथा करोति इति कर्त्ता वक्तीति वक्ता तथा नात्र दृश्यते ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः इति दृष्ट्या स्वास्त्रेण स्वयं निपातितः। ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः इत्यस्य ब्राह्मणः ब्रह्म जानाति इत्येवार्थः ब्राह्मणेतराः तत् कृपया ब्रह्म जानन्तु नाम परन्तु मुख्यतया ब्राह्मण एव जानाति इति संक्षिप्यते ।।श्रीः।।

अथ प्रार्थयिता निजस्तुतिमहिमानं दिगन्तेषु वितन्यमानं कामयमानं इदं निज-कर्तृकस्तोत्रवचनं श्रोतुं सर्वान् परमात्मसूनून् प्राणिनः प्रार्थयते । युज इत्यादिना—

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाम् पूर्व्यम् ब्रह्म नमोभिः (अहम्) युजे । सूरेः पथ्या इव विश्लोकः एतु ये दिव्यानि धामानि आतस्थुः (ते) विश्वे अमृतस्य पुत्राः शृण्वन्तु । इदानीं प्रार्थयिता भगवच्छरणागतिं वृणानो गृणाति निजोद्गारम्– अहम् वाम् वचनत्वेन बहुवचनस्थाने द्विवचनात् वाम् इत्यस्य युष्माकं चतुर्दशकरणानामित्यर्थः । केचन वाम् इत्यस्य युवयोरिति व्याकृत्य तदवाच्यतया मनोबुद्धी गृह्णन्ति तदसत् । पूर्वसंकीर्तितानां परामर्शकत्वे युष्मच्छब्दस्य सर्वनाम्नो निसर्गसिद्धिनियमेन तेषु चतुर्दशकरणेषु अन्यतरयोरेव ग्रहणे मानाभावात् वामिति षण्ठ्यन्ताभिलप्यानाम् अनुयोगिभूतं ब्रह्म सम्बन्धश्च नियम्यनियामकभावः । तथा हि युष्मन्नियामकं ब्रह्मेति फलितं, पूर्व्यम् पूर्वमपि वर्तमानं सनातनमिति भावः । यद्वा पूर्व्यम् सृष्टेः पूर्वमपि विद्यमानं परमपुरातनं ब्रह्म परमेश्वरं नमोभिः प्रणतिभिर्कायिकवाचिकमानसैः युजे संयुक्तो भवामि । सूरेः वेदविदः ब्राह्मणस्य विश्लोकः विशिष्टगुणगणगानरूपसद्गुणसंघातस्तवः पथ्या आतुराणां ओषधिपथ्यमिव, एतु हितकारितां गच्छतु, अत्र पथ्याः इति (सुपांसुलुक्) इत्यनेन सोः आसादेशः। यद्वा सूरेः पण्डितप्रकाण्डस्य पथ्याकीर्तिरिव, यथा श्लोकः मत्कृतस्तुतिः वि एतु व्यापकतां गच्छतु । अथवा सूरेः विश्लोकः विष्णोः श्लोकः विश्लोकः पथ्या इव औषधानुकूलासनमिव एतु गच्छतु श्रेय इति शेषः। ये नित्यभगवत्कैंकर्यरताः दिव्यानि धामानि परमप्रकाशकानि साकेतगोलोकवैकुण्ठाख्यानि आतस्थुः आदरेण स्थिताः, ते विश्वे अमृतस्य-मृताः शरीरावच्छेदेन मरणधर्मवन्तो जीवाः तद्भिन्नोऽमृतः तस्य अमृतस्य जन्मादिषड्विकार-रहितस्य परमात्मनः पुत्राः सुताः । अमृतस्य पुत्राः इत्यनेन श्रुतिः कण्ठरवतः जीवब्रह्मणोर्भिदां समचिख्यपत् । अमृतस्य इति षष्ठी षष्ठ्या हि मुख्यः सम्बन्धोऽर्थः स चात्र जन्यजनकभाव-रूपः । एवममृतस्य पुत्राः इत्यत्र अमृतप्रतियोगिकपुत्रानुयोगिकजन्यजनकभावसम्बन्धः इति शाब्दबोधः शाब्दिकसम्मतः । न्यायनये तु जन्यजनकभावसम्बन्धेन अमृतविशिष्टपुत्राः षष्ठ्याः भेदरूपार्थः सर्वसम्मतः। स एव मन्दधीर्ब्रह्मजीवयोर्भिदां स्वरूपतोऽध्यवस्यति यः खलु पितापुत्रयोः स्वरूपेण भेदं स्वीकरोति वस्तुतस्तु जीव परमात्मनः पुरातनः पुत्रः, एतेनैव **ममैवांशो जीवलोकेजीवभूतः सनातनः** इति गीतापि संगच्छते।।श्रीः।।

साम्प्रतं मनोधिष्ठानपरमेश्वरं वर्णयति—

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरूध्यते ।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः ।।६।।

यत्र अग्निः अभिमथ्यते यत्र वायुः अधिरुध्यते यत्र सोमः अतिरिच्यते तत्र मनः सञ्जायते । अस्य मन्त्रस्य चतुर्धा व्याख्यानं, प्रथमं क्रतुरूपम्– यत्र क्रतौ अग्निः हवनीयः अभिमथ्यते अरणिमन्थनविधिना अभिमथ्यते आविर्भाव्यते । यत्र क्रतौ यजमानेन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वायुः अधिरुध्यते, यजमानेन कर्मकाण्डे आचम्य प्राणायानम्य इति निर्दिष्टः प्राणानायच्छति, यद्वा वायुसहायभूतः शब्दः नागरं प्रतिक्रियते। सोमः सोमरसः अपि यत्र अतिरिच्यते समधिकमुत्पाद्यते तत्र तत्र क्रतौ नः मनः संजायते सम्यगासक्तं भवति, संजायते इत्यत्र "व्यत्ययात्" लोडर्थे लट्। यद्वा यत्र यस्यां स्थितौ अग्निः अग्निस्वरूपो ज्योतिर्मयः परमात्मा अभिमथ्यते प्रथमाध्यायोक्तदृशा स्वदेहं पूर्वारणिं विधाय एवमोंकारमुत्तरारणिं कृत्वा ध्यानरूपनिर्मथनेन पश्यति– एवमेव वायुः सर्वव्यापी परमात्मरूप एव वायुः समीरणः यत्र रुद्धो भवति तादृशे स्थितिविशेषे। एवमेव यत्र सोमः रसात्मकः परमात्मा **रसो वै सः** इति श्रुतेः। **सोमो भूत्वा रसात्मकः** इति स्मृतेः। यत्र अतिरिच्यते स एव सर्वान्तर्यामी परमात्मा सोमीभूय अतिरिच्यते सर्वातिरिक्ततया भाषते अत्राग्निवायुचन्द्राणां भगवद्विभूतितया स्मरणेन परम्परया भगवत् स्मरणमेव। यद्वा अग्निवायुसोमा भगवन्नामानि तथा च अग्रे सर्वेषां पुरः नीयते इत्यग्निः परमात्मा हि सकलप्राणिपुरोवर्ती, यद्वा अज्यते भक्तसमक्षं आविर्भूतो भवति इति अग्निः तस्मादग्निर्हि परमात्मनो मुख्यं नाम अत एव ऋग्वेदस्य प्रथमाऋक् **"अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्युजं होतारं रत्न- धातवम्"** (ऋग्वेद १/१)। अत्र सामान्यतः अग्निरेव संकीर्तितो वेदस्य प्रथमे मन्त्रे परन्तु गहनं विचार्यमाणे निखिलवाङ्मयस्य सर्वप्राथमिकमङ्गलाचरणभूते एतस्मिन् ऋग्विशेषे निखिलमङ्गलायतनस्य परब्रह्मणः श्रीहरेः रामाभिधस्य समुपेक्षणं विधाय तदितरसंकीर्तनं मांगलिकरूपेण श्रुतौ संघटत एव नहि। यथोक्तं प्राचीनैः —

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदौ मध्ये तथैवान्ते हरिः सर्वत्र गीयते।।

अतः विश्वसासहित्यश्रीगणेशरूप ऋग्वेदस्य प्रथमोऽयं, मन्त्रोऽपि श्रीहरिपरतयैव गीयते व्याख्येय इति- पुरोहितं पुरः सम्मुखं हितं निज प्रपन्नकल्याणमेव यस्य स पुरोहितः सम्मुखीकृतभक्तकल्याण इति भावः, विभीषणादिकल्याणसमक्षं निजहिताय भगवतो दत्ततिलांजलित्वं श्रीरामायणे दृष्टमेव तथाभूतं पुरोहितं यज्ञस्य श्रुतिविहितस्य मखस्य देवं प्रकाशकम् ऋत्विजं याज्ञिकविशेषं एवमेव रत्नधातवं रत्नानि दधाति धारयति इति रत्नधातवः "**कर्तरि तवेङ्**" प्रत्ययः तं एवं होतारं निरन्तरं कोटि-कोटि वाजपेयाश्वमेधेषु आहुति दातारं यथोक्तं रामायणे "**अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः** (वा.रा.बा. १/९४) एवमग्निं संग्रामे सर्वेषां अग्रे नीयमानं श्रीरामाभिधं ब्रह्म ईडे स्तौमि इति मन्त्रार्थः। तत्र तस्यामवस्थायां मनः संजायते प्रविशतु धातोरनेकार्थत्वात्, जनेः प्रवेशार्थः तृतीयव्याख्यायां यत्र ब्रह्मणि अग्निः परमज्योतिः अभिमथ्यते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साधनेनोपलभ्यते वायुः प्राणात्मकः आयुरात्मको वा यत्र परमात्मनि दृष्टे अधिरुध्यते साधिकारं रुद्धं भवति। नहि परमात्मभक्तः कालवशगो भवति भुशुण्ड्यादिचरित्रे तथैव दृष्टत्वात् न च कालवशानुगः इति श्रीरामायणे स्मृतत्वाच्च । एवं सोमः अमृतं यत्र अतिरिच्यते अतिशयं प्राप्यते तत्र ब्रह्मणि मनः संजायते विशुद्धं भवतीत्यर्थः । इत्थमेव श्रीरामं प्रत्यपि संगमयितुं सुशकं चतुर्थव्याख्याने यत्र यस्यां भक्तौ अग्निः खलवनकृशानुः अभिमथ्यते अभिव्यक्तीक्रियते यत्र यस्यां भक्तौ वायुः सर्वत्र गमनशीलः वायुरिव लौकिकरूपरहितोऽपि दिव्यदेहेन सर्वान् स्प्रष्टुं क्षमः यथा सुतीक्ष्णचरित्रे—

अतिसय प्रेम देखि रघुबीरा । प्रकटे हृदयँ हरन भवभीरा ।।

एवम्भूतः वायुरिव सूक्ष्मः (मा. ३/१०/१४) परमात्मा भक्तिवसंवद एव अधिरुध्यते भक्तहृदयेषु रुद्धो भवति । यत्र यस्यां भक्तौ सोमः श्रीरामरूपश्चन्द्रः अतिरिच्यते सर्वोत्कृष्टतया दृश्यते पूज्यते च यद्वा उमया सह वर्तमानः सोमः भगवान्रुद्र एव श्रीरामः अतिरिच्यते निहत्य रावणादीन् परिभूयकामादींश्च सर्वोत्कर्षेण तिष्ठति । तत्र तस्यां श्रीरामभक्तौ मनः स्वान्तं संजायते सम्यक् जायते जगद्वासनां त्यक्त्वा सम्यक्तया भगवदीयं भूत्वा नूतनमिव जन्म लभते इत्थं चतुर्भिधाव्याख्या मन्त्रस्यास्य मया कृता विभावयन्तु विद्वांसो वेदसारसमीक्षकाः ।।श्रीः।।

अथ निष्कामभावनया परमात्माराधनस्य विधीयमानस्य फलमाह सवित्रेत्यादिना—

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
तत्र योनिं कृण्वसे नहि ते पूर्वमक्षिपत् ।।७।।

अन्वयः — सवित्रा प्रसवेन पूर्व्यम् ब्रह्म जुषेत तत्र योनिं कृण्वसे ते पूर्वम् (कर्म) नहि अक्षिपत् ।

हितैषिणी श्रुतिः साधकं निर्दिशति– हे मुमुक्षो जीव ! सवित्रा सत्कर्मणे प्रेरयित्रा दत्तेन प्रसवेन प्रेरणाविशेषेण यद्वा प्रकृष्टः सवः प्रसवः प्रकृष्ट यज्ञः स च स्वसम्प्रदायमर्यादानुसारं निजाचार्यतो लब्धश्रीरामकृष्णनारायणादिमन्त्रजपरूपः तेन निज-निजेष्टदैवतमन्त्रजपरूपेण यज्ञेन करणभूतेन **यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि** (गी. १०/२५) इति भगवतैव प्रशस्ततया संकीर्तितेन । पूर्व्यम् त्वदुद्भवतः पूर्वं वर्तमानं निजपितरं **'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः'** (श्वेताश्वत. उ. २५) इति श्रुतेः । यद्वा सृष्टेः पूर्वमपि विद्यमानं तादृशं पुरातनं पुरुषविधं, ब्रह्म वेदान्तवेद्यं श्रीरामाख्यं जुषेत, अत्र व्यत्ययेन मध्यमपुरुषैकवचनस्थाने प्रथमपुरुषैकवचनम् । एवं जुषेत इत्यस्य प्रीति भाजनं कुर्याः दासभूतः सर्वभावेन परमममतास्पदीकृत्य सेवेथाः । यद्वा प्रकृष्टाः सवाः वाजपेयाश्वमेधादयः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्ति यस्य यस्मिन् वा सप्तसवः । इन्द्रस्तु शताश्वमेधितया शतक्रतुः परन्तु मम राघवस्तु कोटिक्रतुः, शतादिसंख्यानामानन्त्यराचित्वेन अनन्तक्रतुश्च तथोक्तं मूलरामायणे **अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः** । (वा.रा.बा. १/९४) अत्र शतैरिति बहुत्ववाचि शतशब्दात् पुनर्बहुवचननिर्देश एव भगवतः श्रीरामस्य अनेकशतयज्ञकारित्वे मानमन्यथा अश्वमेधशतेनेष्ट्वा इति ब्रूयात् । इन्द्रस्तु एकशतं यज्ञान् अयजत् किन्तु मम कोशलेन्द्रोऽनेकशतानि क्रतूनां याजी इति विशेषः । यथोक्तं श्रीमानसे—

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे । दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ।।

(मानस ७/२४/१)

इत्थम्भूत कोटिकोटिवाजिमेधकारिणा प्रकृष्टसववता भगवता सवित्रा सूर्यवंशभूषणेन सूर्यशंकासप्रतापवता सूर्येणेव चरित्रेण कर्ममार्गस्थानां रामनाम्ना ज्ञानमार्गाणां प्रेरकेण श्रीरघुवरेण परमेश्वरेण कृपापात्रीकृतः इति भावः, शेषं पूर्ववत् । तत्र श्रीरामब्रह्मणि योनिं निष्ठां सकलशुभयोनिं भक्तिं सकलश्रेयोयोनिं शरणागतिं वा कृण्वसे पुरुषे 'कृणु' धातुः करोत्यर्थः श्रौतः **कृणु कुचेषु नः** (भा. १०/३१/७) इति भागवते प्रयुक्तः तस्यैव आत्मनेपदे लटि मध्यमपुरुषैकवचने **थासःसे** इत्यादेशे बाहुलकात् अडागमे द्वित्वे तल्लोपे यणि कृण्वसे पुरुषे इत्यर्थकम् । एवं भगवता प्रेरितः भक्त्या तं सेवमानः तस्मिन्नेव यदि शरणागतिं कुरुषे चेत् तदा ते तव भगवत्प्रपन्नस्य पूर्वं पूर्वकृतं भजनप्रतिबन्धकप्रत्यवायफलं कर्म सर्वाशुभं हि निश्चयेन न अक्षिपत् अत्र कालव्यत्ययेन **'लृडर्थे लङ'** एवं न अक्षिपत् इत्यस्य न क्षेप्स्यति संसारसागरे त्वां, यद्वा शरणागतं त्वां ते पूर्वम् अत्र सम्बन्धषष्ठी । एवं ते तव सम्बन्धिभूतं स्वामितया निर्णीतं पूर्वं सर्वेषां पूर्ववर्तमानं पुरातनं ब्रह्म निश्चयेन न अक्षिपत् नैव संसारसागरे क्षेप्स्यति । भगवान् हि स्वपदपदतो विमुखान् तमेव द्वेषभाजनं कुर्वतो जनान् संसारसागरे क्षिपति । यतोक्तं गीतायाम् —

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।। (गीता. १६/१८)

यत्तु अक्षिपत् इत्यस्य न पुनर्भोगहेतुत्वेन बध्नाति इति कैश्चिद् व्याख्यातं, यच्च न बन्धनं करिष्यति इति विवृतं हिन्द्यां, तदुभयमपि क्षिपधातोरर्थमजानतां ज्ञानाभाव-परिणामभूतम् । यदपि पूर्वमक्षिपत् इत्यस्य स्थाने पूर्तमक्षिपत् इति कुत्रचित् लेख उपलभ्यते सोऽपि न समीचीनः, पूर्तं हि स्मार्तं कर्म, तच्च इष्टशब्देन सार्धम् द्वन्द्वेन समस्तम् आकारपूर्वकम् इष्टापूर्तमिति प्रयुज्यते, **इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं**

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(कठ. १/२/९) नहि श्रौतमिष्टशब्दमनादृत्य ततः पश्चाद्भावि स्मार्तपूर्तशब्दं प्रयुञ्जीत कोऽपि। भागवतेऽपि **स्वेष्टस्य पूर्तस्य च बोधदत्तयोः** (भा. १/५/२२) पूर्तशब्देन च इष्टशब्दस्य अध्याहारकल्पना नहि पश्चाद्भाविना पूर्वमध्याह्रियते तस्मात् पूर्वमित्येव न्याय्यम् ।।श्रीः।।

अथ भगवतः प्रार्थनाप्रकारं निर्दिष्य तद्द्वारैव विषयश्रोतःसंतरणोपायं निर्दिशति-

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ।।८।।

अन्वयः — विद्वान् त्रिरुन्नतं समं शरीरं स्थाप्य मनसा इन्द्रियाणि हृदि संनिवेश्य ब्रह्मोडुपेन सर्वाणि भयावहानि स्रोतांसि प्रतरेत ।

वेत्ति निजस्वामित्वेन ब्रह्म जानाति इति विद्वान् । विज्ञातभगवन्महात्म्य इति भावः एवंभूतः साधकः शरीरं शीर्यमाणं निजदेहं सफली चिकीर्षुः ।

त्रिरुन्नतम्—त्रीणि वक्षो, ग्रीवा शिरांसि, उन्नतानि उपरिकृतानि यस्मिन्, तथाभूतं त्रिरुन्नतम् अत्र रुडागमो बाहुलकात् दृढीकृतमेरुदण्डमिति भावः । **समम्**— सिंहासनविधिना समानावयवं स्थाप्य । अत्र संस्थाप्य इति सम् पूर्वकस्य ण्यन्त **'स्था'** धातोः पुकि क्त्वो ल्यपि समो लोपेऽपि नैव ल्यबभावो बाहुलकात् एवं स्थाप्य इत्यस्य संस्थाप्य इत्यर्थः । अनन्तरं मनसा निगृहीतानि इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि अत्रेन्द्रियशब्दः इन्द्रियवृत्तिपरः, ताः मनोनिगृहीताः सकला अपि इन्द्रियवृत्तीः हृदि चेतो नामान्तःकरणे संनिवेश्य अन्तर्निधाय सर्वाणि शब्दादीन् स्रोतासिं दर्शने क्षुद्राण्यपि प्रवाहतो नित्यानि नद्यः खलु स्रोतो बहुलतया दीर्घकालावधि जलयुक्ताः भवन्ति । तदभावे तासां सत्तापि संदेहग्रस्ता तथैव इयमपि मोहनदी वासनास्रोतसां नित्यसद्भावेन समवच्छिन्नप्रवाहा, विषयाः खलु यद्यपि फल्गवः तथाप्येकैके जीवं निमज्जयितुं क्षमाः, अत एव स्रोतांसि इति यथार्थमुपमानं दत्तमेभ्यः, अत एव भयावहानि भयं जन्ममृत्युरूपमावहन्ति आदरेण धारयन्ति इति भयवहानि तानि । कथं तर्तुं शक्यानि स्वल्पसत्वेन जीवेन ? अत आह— ब्रह्मोडुपेन उडुपं वंशत्रिणादिनिर्मितं तरणोपकरणं, भाषायां बेड़ा इति व्यवह्रियमाणम्। ब्रह्मैव उडुपमिति ब्रह्मोडुपं तेन ब्रह्मोडुपेन ब्रह्मणो भगवता परमेश्वरस्य प्रत्येकमङ्गं ब्रह्मैव— **आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिं** इति स्मृतेः । एवं ब्रह्मणः ब्रह्मरूपचरणकमलदीर्घनौकया **प्रतरेत** प्रकर्षेण तीर्त्त्वा पारं गच्छेत् प्राकर्ष्यञ्चात्र भगवत्भक्तानुग्रहरूपं, त एव संसारसागरे निमज्जतं जीवमिमं भगवत्पदकमलमहानावमारोप्य स्वयं तरन्ति तारयन्ति चैनं, तथा चाहुः देवा श्रीकृष्णगर्भस्तुतौ भागवते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहोभवान् ।।

(भाग. १०/२/३१)

भगवत्पदकमलरूपनौकयैव जीवः संसारसागरं तरति इति मन्त्रार्थः । समर्थयति च श्रीगोस्वामि पादः—

यत्पादपल्लवमेकमेव हि भवाम्भोधोस्तितीर्षावताम् ।

(मानस १ मंगलाचरण ६) ।।श्रीः।।

इदानीं भगवत्प्राप्त्युपयोगिसमाध्यंगतया प्रसंगेन प्राणायामविधिं निरूपयति प्राणन् इत्याना—

प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ।।९।।

अप्रमत्तः विद्वान् इह संयुक्तचेष्टः प्राणान्प्रपीड्य प्राणे क्षीणे नासिकया उच्छ्वसीत दुष्टश्वयुक्तं वाहम् इव एनं मनः धारयेत इत्यन्वयः ।

अप्रमत्तः—मजनात् न प्रमादं कुर्वन् विद्वान् भगवन्तमन्तरेण मम नास्ति गतिरन्येति व्यवस्यन् इह शरीरे । **प्राणान्**— पूरकेण प्राणवायुं **प्रपीड्य** वामनासिकाछिद्रे पूरयित्वा भगवद् भजनोपयोगित्वात् प्राणानित्यत्र समादरे बहुवचनं, पश्चात् कुम्भकेन चिरकालं ध्यानपूर्वकमन्त्रजपविधिना निरुद्धप्राये प्राणे श्वासधारणबले क्षीणे अल्पशक्तिगते नासिकया रेचकविधिना दक्षिणनासिकाछिद्रेण इतिमावः, **उच्छ्वसीत** उपरिगतं प्राणवायुं विस्रजेत् । किमनेन प्राणायामत्रैविध्येन ? अत आह— दुष्टाश्वेति अनेन प्राणायामेन सततविषयसेवनतया वायुरिव चंचलमुच्छृंखलं मनः सहजतया निरुद्ध्यते। कथम् ? अत आह— **दुष्टश्वयुक्तं** दुष्टाश्वाः अनियन्त्रिताः हयाः तैः युक्तं वाहं रथरश्मिमिव, यत्तु केचन् वाहमित्यस्य यंतारमिति व्याचक्षते तदसंगतं कठोपनिषन्मंत्रविरुद्धत्वात् । तत्र हि—**मनः प्रग्रहमेव च** (कठ॰ १/३/३) । इत्थं मनसः प्रग्रहोपमेयता स्वीकृता **एनं** इदं मनः व्यत्ययेन पुंल्लिंगः, मनोधारणे किंभूमिकः साधकः ? अतआह- **संयुक्तचेष्टाः** संयुक्ताः भगवद्भजने संलग्नाः चेष्टा शारीरिकाः मानसाश्च व्यापाराः यस्य तथाभूतः मनः स्वान्तमप्रमत्तः प्रमादरहितः धारयेत् स्ववशं नयेत् ।।श्रीः।।

इदानीं योगाभ्यासस्य समधिकमुपयुक्तं स्थानं निर्दिशति । सम इत्यादिना—

समे शुचौ शर्करावह्निबालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयस्तु सुगमः । अत्र समेत्यादीनि सप्तम्यन्तानि सप्तविशेषणानि सप्तम्यन्तस्य स्थाने इति विशेष्यदलस्य, तस्मिन् हि समाधिः अतस्तस्य सहकारिणां यमादीनां सप्तांगानां पोषकतयैव मन्ये । तादृक् संख्यानि समे, समतले शर्करा, धूलिः, वह्निः, पावकः, बालुकाः, लघुरेणवः ताभिर्वर्जिते शर्करादीनां सद्भावे हि शारीरिकविक्षेपा-शङ्का, एवमेव शब्दाः श्रुतिविषयीभूताः भगवद्गुणगानव्यतिरिक्तलौकिक-शृङ्गारनिबन्धनगानादयः जलं वासनोद्दीपकस्मरक्रीडोपयोगिसरोवरादिकं तदाश्रयाणि सरित्पुलिनानि तदादिभिः आदिपदेन पुष्पितकाननादीनां ग्रहणम्, तैरपि वर्जिते अनुकूले, योगसाधनानुरूपे, चक्षुं पीडयतीति चक्षुपीडनं सौन्दर्यप्रसाधनसमेतं तदतिरिक्ते, एवमेव गुहां नीरवगिरिकन्दरां निवातमत्यन्तशान्तं कुटीरादिकं नीरवं तदाश्रयतीति, गुहानिवाताश्रयणं तस्मिन् स्थानविशेषे मनः प्रयोजयेत् यथोक्तं योगमार्गेण भगवति संयोजयेत् इति भावः ।।श्रीः।।

इदानीं सायुज्यवतो योगिनः दृष्टिगोचरीभूतानां संग्रहं निरवक्ति—

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ।।११।।

अन्वयस्तु सुगमः । तथा च योगे योगप्रक्रियायां नीहारः तुषारावर्णविशेषः धूमः आग्नेयः अर्कः सूर्यः अनिलो वायुः अनलः पावकः तेषाम्, एवमेव इमानि रूपाणि सूर्यमण्डलगामिनां, चन्द्रमण्डलीयानान्तु खद्योतो ज्योतिरिङ्गणः, विद्युत चपला, स्फटिकं श्वेतमणिः, शशी चन्द्रः, तेषां एवम् नवानां रूपाणि साधकस्य ब्रह्मणि ब्रह्मविषये अभिव्यक्तिकराणि प्राकट्यसूचकानि पुरःसराणि अग्रेसराणि भवन्ति इति शेषः ।।श्रीः।।

अथ योगसिद्धिं गतवतः साधकस्य देहवैचित्र्यं वर्णयति—

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।।१२।।

पृथ्वी-जल-तेजो-वायु-आकाशानि पञ्चभूतानि इमानि यदा समुत्थितानि भवन्ति तदैव कर्मबन्धनानि नास्यन्ते तदैव योगस्य चरमासिद्धिः प्राप्यते । अक्षरार्थस्तु पृथ्वी भूमिः, जलं तेजः, ज्योतिः अनिलः वायुः खं आकाशं एषां द्वन्द्वे सप्तम्यन्त्यैकवचनं तस्मिन् समुत्थिते शरीरमर्यादातः ऊपरिगते, एवमेव इमानि पञ्च पृथ्व्यादीनि आत्मनः स्वरूपाणि यस्य तथाभूते तस्मित् योगगुणे प्रवृत्ते सक्रिये एवं योगाग्निमयं योग-पावकरूपं शरीरं विशिष्टं देहं प्राप्तस्य तस्य साधकस्य रोगः शारीरिको व्याधिः जरा वृद्धावस्था मृत्युः मरणमपि न भवन्तीति भावः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदानीं यौगिकक्रियायाः शरीरे कः प्रभावः इत्यत आह—

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति।।१३।।

अन्वयः सुगमः। योगस्य अष्टानाम् अङ्गानां सम्यक् साधनेन शरीरे अष्टौ विशेषा आगच्छन्ति। लघुत्वं लघुता, आरोग्यं शारीराणां मानसानां च रोगाणामभावः। अलोलुपत्वं विषयेष्वनासक्तिः, वर्णप्रसादं वर्णयति मनोभावमभिव्यक्तीकरोति स वर्णः आननाकारः तस्य प्रसादं प्रसन्नता, स्वरे सौष्ठवं कण्ठावरोधकाभावः। मूलकं शुभो गन्धः नैर्मल्यंजनितः अल्पं मूत्रपुरीषं अन्नस्य सम्यक् परिपाकात् तयोः स्वल्पता, इमामेव प्रथमां योगप्रवृत्तिं योगप्रतिक्रियां वदन्ति योगिनः इति शेषः ।।श्रीः।।

अथात्मदर्शनफलं विवृणोति बिम्बोपमानेन—

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम्।
तद्वत्सत्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः।।१४।।

अन्वयः— यथा एव मृदया उपलिप्तम् तत् सुधान्तम् तेजोमयम् भ्राजते तत् वत् सत्वम् प्रसमीक्ष्य एकः देही वीतशोकः कृतार्थः भवते।

यथा एवं, येन प्रकारेण बिम्बम्, सुवर्णरचितम् आभूषणादिकं रजतं वा, वस्तुतस्तु बिम्बं इष्टकानिर्मितं कुड्यमेव, न खलु सुवर्णं लोके सुधया स्वच्छीक्रीयते यत्तु सुधान्तमित्यस्य सुधौतमित्यर्थं व्याचक्षते स तु शब्दबलात्कारः। मृदया, मार्ष्टीति मृदा "आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा" इति नियमेन टाप्। एवं मृदया धूल्या अवलिप्तं मलिनीकृतं पश्चात् तदेव सुधान्तं सुधया चूर्णेन लेपनमन्ते पश्चात् यस्य तत्र सुधान्तं पूर्वं रजसा मलिनं अन्ते च तदेव सुधया स्वच्छीकृतं तेजोमयं परमप्रकाशयुक्तं भ्राजते दीप्यते सुस्पष्टं विलोकनार्थं भवतीति भावः। तद्वा तेनैव प्रकारेण सत्वम्, अन्तःकरणं पूर्वं रजोगुणेन मलीनीकृतं पश्चात् च भक्तिसुधया धवलितं प्रसमीक्ष्य विभाव्य तत्रैव दर्पणीभूते परमेश्वरं दृष्ट्वा, देही देहः भगवद्भजनमहिम्ना प्रशस्तस्तस्येति देही परमेश्वरभक्तपावनीकृतशरीर इति भावः। एकः शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिमिथ्यात्मबुद्धिरहितः परमात्मपरिकरप्रधानः एक इत्यस्य प्रधान इत्यर्थः, किं मूलकः ? इति चेत् अमरकोष एवात्र मूलम्। **एकोऽन्यार्थे प्रधाने च** इत्यमरः। कृतार्थः समधिकृतः याथात्म्यबोधरूपार्थः याथात्मबोधश्चात्र सेवकसेव्यभावज्ञानरूपः। वीतः विगतः परमेश्वररूपेष्टलाभेन निजेष्टवियोगजनितदुःखरूपः शोकः यस्मात् स वीतशोकः, भवते व्यत्ययादात्मनेपदं भवतीत्यर्थः। मन्त्रार्थस्त्वयम् यथापूर्वम् आगन्तुकरजोराशिभिमलिनीकृतम् कुड्यम्,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तिरोहिततेजस्कम् परन्तु पश्चात् सुधया धवलीकृतं भूयस्तेजसा शुद्ध्यते । तथैवा विद्यारजसा भग्नतेजसि चेतसि नैव परमेश्वरस्य प्रतिबिम्बनं भवति । परन्तु भगवद्भक्तिसुधया निर्मलीकृते स्वान्ते दर्पण इव भूयो भासते भास्वानिव भगवान्, तदैव स्वस्वरूपं विज्ञाय सार्वकालिकतया परमात्मनः साहचर्यमुपैति नित्यपरिकरभावापन्नो जीवात्मा कृतार्थो भवति ।।श्रीः।।

इदानीं जीवब्रह्मणोः सुस्पष्टं भिदां विवृणोति यदेत्यादि—

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।१५।।

अन्वयः —तु यदा इह दीपोपमेन आत्मतत्त्वेन युक्तः ब्रह्मतत्त्वं प्रपश्येत् (तदा) अजम् ध्रुवम् सर्वतत्त्वैः विशुद्धम् देवम् ज्ञात्वा सर्वपाशैः मुच्यते ।

यदा, यस्मिन् समये, इह अस्मिन्नेव जीवने, दीपोपमेन दीपतुल्येन यथा दीपकेन तमस्यपि सामान्यो लोकः सूक्ष्ममपि वस्तु विलोकयति तद्वत् इति भावः । आत्मनः परमात्मदासभूतस्य जीवस्य, तत्त्वं विशेषो गुणः स चानन्यभजनरूपः तेनैव युक्तः परमात्मसाधने लग्नः, ब्रह्मतत्त्वं परमेश्वरयथार्थतां प्रपश्येत् प्राकर्षेण सम्बन्धनिश्चयरूपेण साक्षात् कुरुते । तदैव तं , अजं संसारिण इव जन्मरहितं, ध्रुवं न केनापि च्यावयितुं शक्यम्, सर्वतत्त्वैः इन्द्रियादिभिः विशुद्धं, देवं भक्तैः सह क्रीडन्तं ज्ञात्वा निजनाथत्वेन निश्चित्य सर्वपाशैः अविद्याकल्पितैः कामादिभिः मुच्यते मुक्तः क्रियते । अनयापि श्रुत्या तृतीयान्तद्वितीयान्तप्रयोगतः ब्रह्मजीवयोः भेदः साधितः ।।श्रीः।।

इदानीं जीवात्मदिदृक्षाविषयब्रह्मणः सर्वव्यापकतां व्याहरति । एष इत्यादिना—

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।।१६।।

ह एषः देवः सर्वाः प्रदिशः नु (तिष्ठति) ह एषः पूर्वो ह जातः उ स गर्भे अन्तः स एव जातः सः जनिष्यमाणः सर्वतोमुखः जनान् प्रत्यङ्तिष्ठति इत्यन्वयः । ह निश्चयेन एषः सगुणरूपः परमेश्वरः देव दिव्यज्योतिर्मयः सर्वाः पूर्वाद्याः प्रदिशः आग्नेय्याद्याःनु प्रसिद्धतया समधितिष्ठति स एव ह प्रसिद्धः । पूर्वः जातः हिरण्यगर्भरूपेण भावः । सह निश्चयेन गर्भे अन्तः कौशल्यादिजठरे इति भावः.। स एव परमेश्वरः जातः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीरामकृष्णादिरूपेण गृहीतलीलावतारः सः परमात्मा जनिष्यमाण भविष्यति कलियुगान्ते कल्कि अवतारं स्वीकरिष्यमाणः । तथोक्तं भागवते—

अथासौ युगसन्ध्यायां दस्यु प्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ।। (भा. १/३/२५)

एवं सर्वतोमुखः सर्वव्यापी, जनान् निजभक्तान् प्रत्यक् प्रत्यक्षीकृत्य तिष्ठति तेषां नयनविषयो भूत्वा विराजते ।।श्रीः।।

अथ विविभगमयन्निममध्यायं सर्वव्यापिने परमात्मने नमस्कारं निवेदयति यो इत्यादिना—

यो देवो अग्नौ य अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ।।१७।।

अन्वयः सरलः । यः श्रुतिप्रसिद्धः, देवः द्युतिमान् परमात्मा, अग्नौ पावके अपि तेजोरूपेण विराजते **तेजश्चास्मि विभावसौ** (गीता ७/९) यः परमात्मा अप्सु जले रसरूपेण तिष्ठति **रसोऽहमप्सु कौन्तेयः** (गीता ७/८)

इति स्मृतेः । यः परमात्मा विश्वं सम्पूर्णं भुवनमतलादिं सत्यपर्यन्तम् आविवेश निजतेजसा आविष्टो बभूव । यः ओषधीषु रसात्मकः

सोमः सोमो भूत्वा रसात्मके (गीता १५/१४) इति स्मृतेः ।

यः वनस्पतिषु जीवनरूपः ओषधयः लता-तृण-वीरुधः वनस्पतयश्च विशाल-वृक्षा इति विवेकः। तस्मै देवाय श्रीरामाख्याय ब्रह्मणे सर्वेषाम् परमप्रकाशकाय । यथोक्तं मानसे—

सब कर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवध पति सोई ।।
(मानस १/११७/६)

नमो नमः अत्र नित्यार्थे द्विर्वचनं नित्यमेव नमस्कारोऽस्तु मे ।।श्रीः।।

इति श्रीचित्रकूटनिवासि सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वरजगदगुरुरामानन्दाचार्यपदवीक श्रीरामभद्राचार्य प्रणीतेः श्रीराघवकृपाभाष्ये श्वेताश्वतरोपनिषदि द्वितीयोऽध्यायः।।

।। श्री राघवः शान्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्री राघवोविजयते तराम् ॥

॥ श्री रामानन्दाचार्याय नमः ॥

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

परमात्मा खलु परमानन्दस्वरूपः, यथा सितायाः असकृत् समास्वादने समनुभूयते वागगोचर आनन्दः, यथा वा रसालफलस्य वारम्वारं चोषणेन न तृप्यति मनः तथैव श्रुतिरपि पौनःपुन्येन समभ्यसन्ती तमानन्दमयं परमात्मानं नैव तृप्तिं व्रजति । अतस्तमेवार्थमाह, यथोक्तं बादरायणाचार्येण **आनन्दमयोऽभ्यासात्** अभ्यासादत्र हेतौ पञ्चमी, यतोऽस्य पौनःपुन्येनाभ्यासः अतोऽयमानन्दमयः । यथा निरतिशयस्वादसम्पन्नं सुधामयं मिष्ठान्नं नैकधा रस्यते परं न तृप्यते, तथैव परमात्मगुणान् गायन्ती श्रुतिरपि नैव तृप्तिं लभते, अतो द्वितीयाध्याये चर्चितचरमपि तृतीयेऽध्याये पुनरपि वर्णयितुमारभते । य इत्यादिना—

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।१।।

अन्वयः—यः एकः ईशनीभिःजालवान् यश्च ईशनीभिः सर्वान् लोकान् ईशते यः एकः उद्भवे सम्भवे च एतत् ये विदुः ते अमृता भवन्ति ।

यः एकः केवलः, ईशनीभिः ईशते कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं क्षमन्ते तच्छीलाः इति ईशिन्यः ईशनी अघटितघटनापटीयसी भगवद्योगमाया तत्रैव आदरार्थे बहुवचनम् ईशिन्यः ताभिः ईशनीभिः योगमायया युक्तः जालं जगत्, यथा जाले कपोताः मत्स्यादयश्च बध्यन्ते तथैव जीवाः जगज्जालेऽस्मिन् तज्जालं जगद्रूपमस्ति अस्य निन्दितत्वेन इति जालवान् । अत्र निन्दायां मतुप् । स च प्रकृत्यर्थविशेषणं न तु प्रत्ययार्थस्य षष्ठ्यर्थश्चात्र धार्यधारकभावरूपसम्बन्धः । परमात्मैव खलु कैवर्तक इव जगज्जालं धारयति । ईशनीभिः उत्पत्तिपालनप्रलयक्षमाभिः ब्रह्मविष्णुरुद्रसंज्ञाभिः सर्वान् लोकान् ईशते जन्मस्थितिभङ्गेषु शास्ति । यः एकः प्रधानः सम्भवे उत्पत्तौ उद्भवे उत्कर्षे जगतस्तिष्ठति एतत् एवं गुणगणविशिष्टं परब्रह्म ये साधकाः विदुः निजसेव्यत्वेन जानन्ति ते अमृताः मरणधर्मवर्जिताः भगवन्नित्यपरिकराः भवन्ति सम्पद्यन्ते इति भावः ॥श्रीः॥

साम्प्रतं पूर्वोक्तस्यैव परमात्मनः सर्वव्यापकतां महता समारोहेण प्रतिपादयति । यथा काचिद् कुलाङ्गना समयिकानुरागवशंवदमानसा निजप्राणवल्लभं महतादरेण वारं वारं प्रशंसति, तथैवैषा श्रुतिरपि समस्तनिगमतात्पर्यरूपं निजप्राणेश्वरं श्रीरामाभिधं ब्रह्म आनन्दातिरेकेण प्रशंसन्ती भूयो भूयस्तृप्तिं न याति एक इत्यादिना—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ।।२।।

अन्वयः— हिं एकः रुद्रः द्वितीयाय न तस्थुः यः इमान् लोकान् ईशनीभिः ईशते (स एव) विश्वा भुवनानि संसृज्य अन्तकाले संचुकोच स एव जनान् प्रत्यग् तिष्ठति इत्यन्वयः ।

इन्द्रवरुणाग्निरुद्रप्रभृतिभिः श्रौतानि प्रातिपदिकानि परमेश्वरस्यैव वाचकानि मुख्यवृत्या । गौणवृत्या भवन्तु नाम तत्तद् देवाभिधानानि, हि यतो हेतोः रुद्रः रोदयति निशाचरान् स्वभक्तहृदयस्थान् वा कामादिविकारान् यः स रुद्रः। यद्वा रोदिति बालकरूपः कौसल्यायाः पुरस्तात् पयः पानाय यः स रुद्रः। एवंभूतो भगवान् एकः इतरसहायनिरपेक्षः द्वितीयाय तदतिरिक्ताय देवान्तराय न तस्थुः चिन्तयितुं नोपस्थिताय ब्रह्मविदाय, यद्वा द्वितीयाय इति क्रियार्थोपपदचतुर्थी भगवदव्यतिरिक्तं द्वितीयं तत्वमध्यौवसितुं न स्थिता **"तीयस्य ङित्सु वा** इति वार्तिकेन सर्वनामसंज्ञाया विकल्पेनास्मै । अथ सकलसाधननिरपेक्षः सन् परमात्मा किं करोति ? अत आह— यः ईशनीभिः सर्वसमर्थया समादरणीयया योगमायाया इमान् ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् लोकान् प्राणिनः ईशते गणकार्यस्यानित्यत्वाच्छपोलुङ् न, तथा च ईशते क्षमते इति भावः । स एवं विश्वाभुवनानि सम्पूर्णानि ब्रह्माण्डानि संसृज्य रचयित्वा, गोपाः गोपायतीति गोपाः रक्षको भूत्वा विष्णुरूपेण पुनः अन्तकाले शङ्करतनुः संचुकोच महाप्रलये भूतानि संह्रतवान्, यद्वा संचुकोच इति लिट् लकारः व्यत्ययेन लडर्थः । प्रतिप्रलयं भूतानि संहरतीत्यर्थः, एवं ब्रह्मरूपेण सृष्टिं विरचय्य विष्णुरूपेण पालयित्वा शिवरूपेण संहत्य निजरूपेण किं करोति ? अत आह, जनान् निजपदपद्मप्रपन्नान् प्रत्यक् प्रत्यक्षविषयान् कृत्वा तेषां पुरस्तिष्ठति । इत्यनेन ब्रह्मणः सृष्टिकर्तृत्वपालकत्वसंहारकत्व रूपाणि सर्वतोमुखानि सामर्थ्यानि कथयित्वा पुनरन्तिमेन चरणेन निजभक्तनयनानन्ददायकत्वमुक्तम् ।।श्रीः।।

अधुना भूयोऽपि परमात्मनः सर्वशक्तिमत्तां ध्यायति—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ।।३।।

अन्वयः— विश्वतश्चक्षुः उत् विश्वतोमुखः विश्वतोबाहुः उत विश्वतस्पात् द्यावाभूमी जनयन् एकः देवः बाहुभ्यां संधमति पतत्रैः सं (धमति) इत्यन्वयः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवान् खलु विराड्रूपः, समेषां प्राणिभृतां चक्षुर्मुखबाहुपादाः भगवदीया एव भगवद्दत्ताश्च । भगवान् किल सर्वानाविश्य सर्वेषां चक्षुर्मुखबाहुपद्भिः दर्शनाशन-ग्रहणगमनान्यनुतिष्ठतीतिप्राञ्चः । परेतु सर्वशक्तिमत्त्वात् प्रत्येकप्राणिनः कर्मसाक्षित्वाच्च लीलागृहीततनुःपरमेश्वर एव सर्वतश्चक्षुर्मुखबाहुचरणवताटीकत इत्याहुः । तथा च विश्वतः सर्वत्र विश्वशब्दो हि सर्वपर्यायः तत्र तसिरधिकरणार्थः । विश्वतः चक्षूंसि नेत्राणि यस्य तथाभूतः अत एव समेषाम् शुभाशुभाननुपश्यति । विश्वतः परितः मुखानि वदनानि यस्य स विश्वतोमुखः अत एव सर्वतः समर्पितानि पत्रपुष्पफलजलानि स्वीकरोति । यथोक्तं श्रीमुखेन—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।। (गीता ९/२६)

विश्वतः सर्वत्र बाहवः भुजाः ग्रस्य स विश्वतोबाहुः अत एव समत्र स्वभक्तान् परित्रायते । विश्वतः सर्वत्र पादाः चरणाः यस्य स विश्वतस्पात् 'कस्कादित्वात्' खरि परेऽपि सकारे विसर्गस्य सकारः, एवं सर्वत्र सर्वाङ्गः एकः अद्वितीयः देवः स्तूयमानः मोदमानश्च निजानन्देन, द्यावाभूमी उपलक्षणत्वात् ऊर्ध्वाधस्तनलोकान् जनयन् सृष्टिकाले स्वशरीरतः प्रादुर्भावयन् मनुष्यान् बाहुभ्यां बाहूपलक्षितसामर्थ्येन संधमति योजयति । पक्षिणश्च पतत्रैः पक्षैः पक्षोपलक्षितजीवनीयक्रियया समयोजयति । यद्वा सर्वतश्चक्षुर्मुखभुजांघ्रिमान् भवन्नपि निजयोगमायया द्यावाभूम्युपलक्षितपरावरलोकान् सृजन्नपि अवतारकाले श्रीराघवत्वमुपेतः बाहूभ्यां द्वाभ्यां एव भुजाभ्यां द्विभुजो भूत्वा रावणं प्रतिनिक्षिप्तैः संपतत्रैः दशवदनवदनश्रेणीषु लक्ष्यतया सम्यक् पतनशीलैः वाणैः धमति प्रतिकल्पमेव रावणवंशवेणुवनं निजशरानलेन भस्मसात् करोति इति नव्याः ।।श्रीः।।

इदानीं सर्वव्यापकस्य ब्राह्मण एव समधिकमैश्वर्यमनुस्मरन् तस्मादेव विशुद्ध-बुद्धिलाभं निश्चिन्वन् तदर्थं तमेव प्रार्थयते यो इत्यादिना—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।।४।।

यः देवानां प्रभवः च उद्भवः (यः) च विश्वाधिपः रुद्रः महर्षिः (यः) पूर्वं हिरण्यगर्भं जनयामास सः नः शुभया बुद्ध्या संयुनक्तु इत्यन्वयः । यः पूर्वमन्त्रोक्तगुणगणविशिष्टः देवानां इन्द्रादिसुराणां प्रभवः प्रभवन्ति प्रकाशन्ते स्व स्व कार्यक्षमाः भवन्ति यस्मात् तथाभूतः सकलगुणगणचेतनाप्रदाय इति भावः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवा हि परमात्मनः सकासतो लब्धनिजनिजकार्यसामर्थ्याः प्रभवन्ति स्वं स्वं अधिकारमनुष्ठातुम् । अथवा देवानां प्राणिजीवनभूतानां महदादीनां प्रभवः सामर्थ्य-दाता, तथा च प्रभवन्ति क्षमन्ते निजनिजकार्येषु येन स प्रभवः । इत्थं हि भागवते गीयते भगवतारचिता अपि महदादयो यदा स्व-स्वकार्यकरणे न प्रबभूवुः तदा परमात्मानं स्तुत्या प्रसाद्य ततो लब्धसामर्थ्याः क्षमा जाताः । तद्यथा—

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ।
प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ।।
कालसंज्ञां तदा देवीं विभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ।
त्रयोविंशति तत्वानां गणं युगपदाविशत् ।।

(भागवत ३/६/१/)

उद्भवः जन्मस्थानं उद्भवन्ति यस्मात् स उद्भवः इति व्युत्पत्तेः अत्रापादानर्थको बाहुलकात् धः, विश्वेषां समेषां जनानां अधिपः शासकः इति विश्वाधिपः, अथवा विश्वस्य जगतः अधिपः रक्षकः विश्वाधिपः, अथवा विश्वानाम् अनन्तकोटिब्रह्माण्डानाम् अधिपः समधिकृतत्राता इति विश्वाधिपः रुद्रः विख्यातचरः । अथवा रुदन्ति क्रन्दन्ति भगवत् पद-पद्मप्रपन्नाः संसारसागरभीतेः एते इति रुद्रत् 'कर्तरि क्विप्' तेभ्यो रुद्भ्यो राति ददात्यभयमिति रुद्रः । महर्षिः महांश्चासौ ऋषिः इति महर्षिः, अथवा महीयन्ते पूजयन्ति निर्भरभक्त्या ये ते महाः भगवदनन्यभक्ता हनुमदादयः तानेव ऋषति गच्छति दिदृक्षुः सन् यः सः महर्षिः । मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः (बा. ४/९/१) इति स्मृतेः यः हिरण्यगर्भं हिरण्यं तेजः गर्भेः अन्तःकरणे वेदवाङ्मयरूपेण विद्यमानो यस्य स हिरण्यगर्भः ब्रह्मा, तं हिरण्यगर्भं ब्रह्माणमेव पूर्वं सृष्टेः प्राक् जनयामास निजनाभि-कमलात् सम्भावयांबभूव स एव सर्वसामर्थवान् भगवान् नः अस्मद्विधान् साधकान् बुद्ध्या निजपदपद्मपरागमकरन्दमधुव्रतया मत्या संयुनक्तु सनाथयतु । अत्र प्रार्थनायां लोट् ।।श्रीः।।

अथ मन्त्रद्वयेन खलनिग्रहार्थं रौद्रमापन्नं परब्रह्मपरमात्मानमनुनयति । याते इत्यादिना,

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ।।५।।

अन्वयः — हे रुद्र! हे गिरिशन्त! ते या शिवा अघोरा पापकाशिनी तनुः (अस्ति) तया शन्तमया तन्वा नः अभिचाकशीहि, इत्यन्वयः ।

हे रुद्र ! खलक्रन्दनहेतो ! हे गिरिशन्त ! गिरौ कैलाशे तिष्ठन् शं कल्याणं तनोतीति गिरिशन्तः तत् सम्बुद्धौ हे गिरिशन्त ! अथवा गिरिस्थानां तपसे गुहा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रविष्टानां शं कल्याणं तनोति तथाभूतः तत् सम्बुद्धौ यत्तु गिरौ हिमालये शन्तनोति इति व्याख्यातं तदप्रासंगिकम् । कैलासस्यैव शिवनिवासश्रवणात् तथा सर्वजनप्रसिद्धेः । ते तव या सर्वजनसुखप्रदा शिवा, परमकल्याणमयी अघोरा , शान्ता पापकाशिनी, अघनाशिनी तनुः, मूर्तिः तया श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासप्रसिद्धया गङ्गातरङ्गरमणीय-जटाकलापया पार्वतीफणिबालेन्दुरश्मिमन्दारमालया संश्रितभूतिभुजङ्गकालकूटमुण्डमालया कर्पूरगौररसालया समलङ्कृतवामाङ्गशैलराजबालिकया त्रिलोकपालिकया शन्तमया कल्याणरूपया तन्वा भक्तनयनसुभगमूर्त्या युक्तस्त्रिलोचनस्त्वं नः अस्मान् अभिचाकशीहि करुणांकलितचन्द्रलोचनेन पश्य । अभिचाकशीहि इति पुनः पुनः अतिशयेनाभिचक्ष्व इत्यर्थे अभिपूर्वकस्य दर्शनार्थकस्य चक्षि धातोः यङ्लुगन्ते विधिलिङ्लकारे मध्यमपुरुषैकवचनरूपमिदम् । ननु विरुद्धमेतत् चक्षिङ् अव्यक्त्यायां वाचि इति पाणिनीयवचनात् तस्य व्याख्यानरूपार्थप्रसिद्धेः ? इति चेन् न **अनेकार्थाः हि धातवः** इति परिभाषया **परौ भुवोऽवज्ञाने** इति सूत्रे अवज्ञानग्रहणज्ञापितया तस्य दर्शनार्थेऽप्यदोषात् । अतएव **चक्षोः सूर्यो अजायत** इति संगच्छते । चक्षुः शब्दो हि चक्षिङ् धातोरेव निष्पद्यते तथा हि चक्षते विलोकयन्ति जनाः येन तत् चक्षुरिति व्युत्पत्तिः । मन्त्रोऽयं श्रीरामपरकतयापि व्याख्यायते । तथा हि— निहत्य रावणं रौद्ररसमापन्नं षडैश्वर्यसम्पन्नं भगवन्तं श्रीरामं समनुनयन्ति महर्षयः, हे रुद्र ! रोदयति सर्वाः रिपुपत्नीः निहत्य तत्पतीन् यः स रुद्रः तत् सम्बुद्धौ हे रौद्ररसविग्रह श्रीराम ! ते, तव या, सकललोकलोचनाभिरामा शिवा , कल्याणमयी अघोरा , घोरानाम क्रूरा तद्भिन्ना अतिसौम्या धनुर्बाणनिषङ्गजटामुकुटोपलक्षिता तनुः श्रीमूर्तिः नवजलधरनीला अस्ति । हे गिरिशन्त ! गिरौ चित्रकूटे शं कल्याणं तनोति स गिरिशन्तः अथवा गिरिस्थानां महर्षीणां शन्तनोति तथाभूतः हे सकलमुनिगणश्रेयो विधायिन् ! तया कोटिकोटिकन्दर्पकमनीयया शन्तमया सकलकल्याणगुणगणनिलयरूपया तन्वा श्रीमूर्त्या नः अस्मान् प्रार्थयमानान् साधकान् अभिचाकशीः सकृदपि करुणादृष्ट्या विलोकय ।।श्रीः।।

भूयोऽपि तमेवार्थं द्रढयितुमाह यामित्यादि —

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु माहिँसीः पुरुषं जगत् ।।६।।

अन्वयः —हे गिरिशन्त ! याम् इषुम् अस्तवे हस्ते बिभर्षि हे गिरित्र ! ताम् शिवाम् कुरु पुरुषम् जगत् मा हिंसीः, इत्यन्वयः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे गिरिशन्त!, हे गिरिसदृशपरोपकारी जनकल्याणप्रद ! श्रीरामपक्षे हे गिरिगुहाप्रविष्टतपस्वीजनकल्याणकारिन् ! याम् , अमोघलक्ष्याम् इषुम् , इष्णाति हिनस्ति शत्रून् या सा इषुः हिंसार्थकादिषु धातोः औणादिकः अण्प्रत्ययः ताम् इषुम् बाणम् , अस्तवे शत्रुषु निक्षेप्तुं हस्ते वामे करे विभर्षि धारयसि, ताम् अतिभयावहाम् इषुम् शिवां कल्याणमयीं कुरु । हे गिरित्र ! गिरिं कैलाशं त्रायते इति गिरित्रः तत्सम्बोधने हे गिरित्र ! श्रीरामपक्षे गिरिं चित्रकूटं राक्षसेभ्यस्त्रायते इति गिरित्रः, अथवा गिरित्र इति सप्तम्यन्तं बाहुलकादसर्वनामत्वेऽपि त्रल् । एवं गिरित्र गिरिकन्दरेषु वर्तमानं पुरुषं पुरुषाराधनतत्परं साधकवर्गं जगत् ततोऽन्यदपि जडचेतनात्मकं मा हिंसीः मा जहि ।।श्रीः।। अथ भगवत्प्रार्थनाफलमाह । तत इति —

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तं यथा निकायं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ।।७।।

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तं प्रार्थनायाः अनन्तरं ब्रह्म अशेषकारणवर्जितं परं अवस्थात्रयातीतं बृहन्तं सर्वापेक्षया समधिकं वर्धमानं, निचीयते ब्रह्म यस्मिन् तत् निकायं तत् अनतिक्रम्य इति, यथा निकायं हृदयदेशावकाशानुसारमिति भावः । सर्वभूतेषु निखिलप्राणिषु गूढं तिरोहितमहिमतया निष्क्रियं सन्तं विराजमानमेकमद्वितीयं विश्वस्य जडचेतनस्य जगतः परिवेष्टितारं परितः समाच्छादनशीलं, परमात्मा हि निजमहिम्ना निखिलं जगत् परिवेष्टयति । 'पादोऽस्येहाभवत्पुनः'' (शुक्ल यजु. ३१.३) इति श्रुतेः 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' (गी. १०/४२) इति स्मृतेः । ईशं सर्वसमर्थम्, अथबा अकारो वासुदेवः तस्यापत्यं पुमान् इः कामः तस्य यः कामस्य ई सौन्दर्यलक्ष्मीः इति ई ताम् ईम् कोटि-कोटि-कन्दर्पदर्प-सौन्दर्यलक्ष्मीं स्यति निजशरीरसुषमया तनूकरोति इति ईशः, तं साक्षान्मन्मथमन्मथं ज्ञात्वा निजनाथत्वेन परिचित्य अमृताः मरणधर्मवर्जिताः भवन्ति, भगवतो नित्यशरीरं प्राप्य तन्नित्यपरिकरभावं लभन्ते इति भावः ।।श्रीः।।

भगवत् प्रपत्तिमिच्छतां स्वान्तेषु निरत्ययं प्रत्ययं जनयितुमाह—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।८।।

अहं एतं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् (वर्तमानं) महान्तं पुरुषं वेद तं एव विदित्वा अतिमृत्युम् एति अयनाय अन्यः पन्थाः न विद्यते । श्रुतिः परमकरुणा मातेवास्मद्विधान् विश्वासयन्ती महता समारोहेण घोषयति— अहं मदभिन्नाश्रुतिः संवादेऽत्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्वेताश्वतरः, एतं वेदान्तवेद्यम् आदित्यवर्णम्, आदित्यः सूर्यः तस्य इव वर्णः कान्तिर्यस्य तं परमज्योतिर्मयं तमसः अज्ञानान्धकारात् परस्तात् परीभूततया वर्तमानम्, अथवा तमसः तिमिरमयजगतः परस्तात् परस्मिन् साकेतादिलोके वर्तमानं महान्तं सुरासुरैरपि महीयमानं पुरुषं पुरि शरीरे उदयावच्छेदेन उ निश्चयेन हृत्तल्पे शेते इति पुरुषः, तं पुरुषाकृतिं परमात्मानं वेद निजसेव्यत्वेन जाने । किमनेन तव ज्ञानेन ? इत्यत आह— तं तादृशं तमालनीलं भक्तहृदये तमोहनं एव अत्र तमिति विशेष्येण संगतोऽयमेवकारः, तद् पदवाच्य परमात्मव्यतिरिक्तानां ज्ञेयत्वेन कल्पितानाम् इतरैरन्ययोगव्यवच्छेदार्थकतया समेषां योगं व्यवच्छिनत्ति । ननु व्याख्यानेऽस्मिन् (आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः) (तरति शोकमात्मवित्) इत्यादि श्रुतिविरोधः ? मैवेत्थं तत्रात्मपदस्य परमात्मार्थवाचकत्वेन व्याख्याने विरोधपरिहारेणादोषात् । इत्थं निखिलहेयगुणवर्जितं सकलकल्याणगुणगणनिलयं परमात्मानमेव विदित्वा निजस्वामित्वेन निश्चित्य अतिमृत्युम् अतिक्रान्तः मृत्युम् इति अतिमृत्युः "अत्यादयः क्रान्त्याद्यर्थे द्वितीयया " इत वार्तिकेन तत्पुरुषसमासः । अतिमृत्युर्हि मरणमतीतः परमात्मा, अथवा मृत्युमतिक्रान्तः साकेतलोकः तं अतिमृत्युम् एति सायुज्यविधिना सालोक्यविधया वा प्राप्नोति । अयनाय गमनाय भगवत्पार्श्वे इति शेषः अन्यः भगवन्माहात्म्यज्ञानपूर्वक-तच्चरणसरसीरुहशरणागत्यतिरिक्तः पन्थाः मार्गविशेषः न विद्यते त्रिकालेऽपि त्रिलोक्यामपि न वर्तत इति भावः । इत्यनेन शुष्कज्ञानावलम्बी आत्मज्ञानवादसिद्धान्तः परास्तः । श्रीरामपक्षेऽपि श्रुतिरेषा सुगमतया संगच्छते । तथा हि अहं श्रुतिः एतं मनुशतरुपातपः-प्रभावेण निखिललोकलोचनगोचरम् आदित्यवर्णम् आदित्यं सूर्यं वर्णयति तस्य वंशे आविर्भूय स्वयशसा तं ख्यापयति इत्यादित्यवर्णः, अथवा लंकासंग्रामाङ्गणे अगस्त्योपदेशेन आदित्यहृदयपाठमिषतः आदित्यं वर्णयति कीर्तयति इत्यदित्यवर्णः, अथवा आदित्य-मण्डले विराजमानः महर्षिभिः वर्ण्यते कीर्त्यते इत्यादित्यवर्णः, अत्र हि ण्यन्तवर्णधातोः पचादित्वात् कर्मण्यच् प्रत्ययः ततः सप्तम्यन्तेन आदित्यमण्डलशब्देन सह सुपसुपेति समासः शाकपार्थिवादित्वान्मण्डलशब्दलोपः। तम् आदित्यवर्णं तमम् अन्धकारं स्यति खण्डयति इति तमसाः तन्नाम्नी नदी तस्याः तमसः तमसानद्याः परस्तात् परस्मिन् तटे गतं पारंगतं वा महान्तं पुरुषं महापुरुषलक्षणं श्रीराघवं वेद उत्तरार्धं तु पूर्ववत् ।।श्रीः।।

परमेश्वरस्य परमानन्दमयत्वात् परमममतास्पदत्वाच्च निजप्राणवल्लभतया श्रुतिस्तदव्यापकतां भूयस्समभ्यसति । यस्मादिति —

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः— यस्मात् किञ्चित् न परम् न अपरम् अस्ति यस्मात् कश्चित् न अणीयः न ज्यायः अस्ति एकः वृक्षः इव स्तब्धः दिवि तिष्ठति तेन पुरुषेण इदम् सर्वम् पूर्णम् । इत्यन्वयः ।

यस्मात् ब्रह्मणः अपेक्षया किञ्चिदपि वस्तु न परं नैव श्रेष्ठम् एवमेव यस्मात् तदपेक्षया किमप्यपरं वस्तुत्वबुद्ध्या नैवावशिष्यमाणमस्ति । तत्सत्तायाः सर्वभावेन सर्वदैव विद्यमानत्वात् तस्मात् ब्रह्मणः किमपि अणीयः लघुतरं नास्ति । प्राणेषु सर्वेषु लघिष्ठायाः पिपीलिकायाः अपि हृदये अन्तर्यामित्वेन वर्तमानत्वात् । ततः ज्यायः प्रशस्ततरमपि कश्चित् अत्र व्यत्ययाल्लिङ्गपरिणामः , किमपि वस्तु नास्ति सर्वतः श्रेष्ठस्यापि ब्रह्मणे भगवतः सकाशादेव लब्धजन्मत्वात् ।

वस्तुतस्त्वणीयस्त्वज्यायस्त्वविभागो भक्तज्ञानिभावविभागाभिप्रायेण भक्तानां कृते अणोरप्यणीयान् भगवान् । ज्ञानिनां कृते महतोऽपि महीयान् । एवं निखिलकल्याणगुणगणसागरो भगवान् निजभक्तसमक्षं प्रेमरसनाबद्धचरणकमलः क इव भवति ? अत उपमानमाह— वृक्षः इव विटप एव निश्चलः इति प्राञ्चः । वयं तु वृक्षः पनसवृक्षः इव भक्तप्रेमनिर्भरचेतस्तयापुलकपूर्णसर्वाङ्गः स्तब्धः निरुद्धसर्वचेष्टः इति व्याचक्ष्महे । तथा चाहुर्गोस्वामितुलसीदासचरणाः

मुनि मगमाझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ।।

स एव एकः अतुलनीयमहात्म्यः दिवि साकेतलोके तिष्ठति विराजते, तेन पुरुषेण पुराणपुरुषोत्तमेन भगवता श्रीरामेण ब्रह्मणा इदं दृश्यमानं सर्वं चराचरं प्रपञ्चं पूर्णं सुखसमृद्धम् ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मणो जगद्वैलक्ष्यण्यं तन्माहत्म्यं तदज्ञानदुष्परिणामं च सूचयति । तत इति—

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् ।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियान्ति ।।१०।।

अन्वयः सुगमः — तन्यते स्थूलनामरूपतया विस्तार्यते यत् अदस्तत् तस्मात् ततः जगतः विलक्षणं यत् अनिर्वचनीयरूपम् उत्तरतरम् अविनाशित्वादुत्कृष्टतरं सकलकार्यकारणातीततया अलौकिकं तद्ब्रह्म अरूपं चर्मचक्षुभिरदृष्टरूपम् । ननु कथं नास्ति रूपं यस्य तदरूपमिति न व्याख्यायते? **रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव** (कठ०-१/३/१२) इति श्रुतिवचनविरोधित्वात् । अत्र हि भगवतो रूपवत्वोक्तेश्च मद्व्याख्यानमेव ज्यायः । उक्तं च **यन्मे त्वदन्येन न दृष्टिपूर्वम्** (गीता ११/४७)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत:स्पष्टयति भगवान् गीतायाम्, **न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेन स्वचक्षुषा । दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्** ।। अनामयं न सन्ति आमयाः भवरोगाः यस्मिन् तदानामयम् । यद्वा नास्ति आमयः रावणादिशस्त्रप्रहारकृतव्रणः यस्मिन् तादृशम् । यथोक्तं मानसे **पश्यामि राममनामयम्** (मानस ६/१०७/९) एवं एतद् ब्रह्म ये ज्ञानिनः भक्तचेतसः विदुः निजस्वामित्वेन जानन्ति , ते अमृताः मरणधर्मशरीरवर्जिताः भगवन्नित्यपरिकराः भवन्ति । अथ अन्यथाभावयुक्ताः इतरे भगवन्तं न जानन्तो निजनाथत्वेन दुःखप्रतिकूलवेदनीयमेव नान्यत् अपयन्ति पुनः पुनर्लभन्ते ।।श्रीः।।

इदानीं सर्वजनसंदेहनिराशार्थं श्रुतिः भगवतः साकारस्वरूपं निर्वक्तुं कण्ठरवेण भगवानिति व्याहरति यथा कोऽपि भगवानितिशब्दं श्रुतिबाह्यतया न शङ्केत । सर्वेत्यादिना

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वत्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ।।११।।

तस्मात् सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः सर्वव्यापी सर्वगतः शिवः सः भगवान् इत्यन्वयः । मन्त्रेऽस्मिन् श्रुतिः सुस्पष्टं भगवत्वमाह— तस्मात् हेत्वनुवादकोऽयं यतो हि तत् उत्तरतरम् अरूपमनामयं ततो हेतोरिति भावः । सर्वत्र आननानि मुखानि शिरांसि मूर्धानः ग्रीवाः कण्ठाः सन्ति यस्य स सर्वाननशिरोग्रीवः । सर्वेषां चराचराणां भवन्ति इति भूतानि तेषां गुहासु अन्तःकरणनाम्नेषु शेते शयनं करोति इति सर्वभूतगुहाशयः । सर्वव्यापी सर्वं व्याप्नोति तच्छीलः तिलेषु तैलमित्यादि श्रुतेः । सर्वगतः सर्वव्याप्तः शिवः कल्याणस्वरूपः सः सर्वसमर्थः भगवान् भगानि ऐश्वर्यधर्मयशश्श्रीज्ञानवैराग्याणि तानि नित्यं सन्ति यस्मिन् स भगवान् अत्र नित्ययोगे मतुप् । तथोक्तं— **ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः, ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा** । अत्र समग्रशब्दः अर्थानुरोधेन लिङ्गविपरिणामविधया षड्भिरन्वेति । तथा च समग्राणां ऐश्वर्यधर्मयशसां समग्रायाः श्रियः समग्रयोः ज्ञानवैराग्ययोः भगत्वम्, एवम् —

उत्पत्तिञ्च विनाशञ्च भूतानामगतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति ।।

तथा च—

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्याण्यशेषतः ।
विना हेयगुणैर्यत्र तमाहुर्भगवानिति ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवत्वञ्च समग्रषडैश्वर्यनित्यसम्पत्तिमत्वं नित्यत्वेन भूतोत्पत्त्यादि षड्भावबोधवत्वं सकलहेयगुणवर्जितत्वे सति ज्ञानादि षड्वैशिष्ट्यवत्वं, परे तु एकसंसर्गावच्छेदेन-एककालावच्छेदेन एकाधिकरणतावच्छेदेन सकलविरुद्धधर्माश्रयतावच्छेदकतावत्वं भगवत्वमित्याहुः ।।श्रीः।।

भूयोऽपि श्रुतिः समादरातिशयान्निजप्राणपतिं प्रशंसति महानिति—

महान्प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ।।१२।।

महान् सकलचराचरपूजनीयः प्रभुः सर्वसामर्थ्यवान् पुरुषः अनन्तपौरुषसम्पन्नः सत्वस्य अन्तःकरणस्य एषः अयं परमात्मा प्रवर्तकः प्रेरकः भक्तानामिति शेषः । ईशानः सर्वशासकः ज्योतिः परमप्रकाशपुञ्जः अव्ययः न केनापि नाशयितुं शक्यः । इमामेव भगवद्विषयिणीं सुनिर्मलां विमलां प्राप्तिम् उपलब्धिम् आहुः सन्तः इति अध्यहार्यम् ।।श्रीः।।

अथ साधारणजनबोधैषया हृदि परमात्माकारं निर्धारयति । अङ्गुष्ठ इति—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मन्वीशो मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।१३।।

अन्वयः— पुरुषः आत्मा सदा जनानां हृदये अन्तः अङ्गुष्ठमात्रः संनिविष्टः मन्वीशः हृदा मनसो उपक्लृप्ता ये एतद् विदुः अमृता ते भवन्ति इत्यन्वयः ।

पुरुषः महापौरुषसम्पन्नः, आत्मा अतति सततं गच्छति भक्तानां समीपं स्मर्यमाणः यः सः आत्मा परमेश्वरः, एवंविधः सदा निरन्तरं जनानां जायन्ते इति जनाः जनिमन्तस्तेषां जनानां जनिमतामिति भावः । हृदये अन्तः नाभितो दशाङ्गुलमूर्ध्वं हृद्देशे । किमाचारःइत्यत् आह— अङ्गुष्ठमात्रः अङ्गुष्ठपरिमाणः प्रमाणार्थे मात्रच्, संनिविष्ठः विराजमानः, मनूनां स्वायम्भुवादीनां मन्त्राणं वा ईशः मन्वीशः ज्ञाता भवति । कोषानुसारेण हृत् मनः इति द्वावपि समानार्थकौ तथाहि **स्वान्तं हृन्मानसं मनः** इत्यमरः । तथाप्यत्र द्वयोरुच्चारणानुरोधेन श्रुतिहार्दमनुसृत्य द्वयोरर्थभेदो व्याख्यातः । एवं हि हृदा चेतसा मनसा स्वान्तेन उपक्लृप्तः निजस्वामित्वेन समीपतरनिश्चयविषयो भवति । एवं एतद् ये विदुस्ते अमृताः भवन्ति भगवन्नित्यकैंकर्यसौभाग्यभाजनानि भवन्ति।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मणो विराट्रूपं निर्वक्ति—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।१४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्राणि अनेकानि शीर्षाणि यस्य स सहस्रशीर्षा, सहस्राणि असंख्यानि अक्षीणि नेत्राणि यस्य सः सहस्राक्षः, एवं सहस्रसंख्याः अनेके पादाः यस्य सः सहस्रपात् एवं विधः पुरुषः नराकृतिः श्रीरामाभिधानः पूर्णः परमात्मा। सः भूमिं निखिलब्रह्माण्डानि भूम्युपलक्षणानि विश्वतः सर्वतः वृत्वा व्याप्य दशाङ्गुलं दशाङ्गुलपरिमाणं धारयन् बालाकारम् अत्यतिष्ठत् सर्वानतिक्रम्य तिष्ठतीति सन्तः। भगवान् हि सहस्रमुखैर्भक्तनैवेद्यं गृह्णन्, सहस्रचक्षुर्भिर्विलोकयन् भक्तान्, असंख्यचरणैः एकस्मिन्नेव काले विपुलभक्तान् कृतार्थयन्, सकलभुवनमावृत्य दशाङ्गुलमात्रः शिशुरूपो निजजनसेव्यतया विराजते इति वयम् ॥श्रीः॥

ननु सविशेषं ब्रह्मेदं जगति कुत्र तिष्ठति ? इत्यत आह—

पुरुष एवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥१५॥

यत् भूतं जातं यच्च भव्यम् भविष्यत् तत् सर्वं इदम्, पुरुषः अत्र पुरुषस्येति वक्तव्ये 'सुपां सुलुक्' इति सूत्रेण ङसः स्वादेशः, अर्थात् पुरुषः इति पुरुषस्य इत्यर्थकः। यत्तु पुरुष इति प्रथमैकवचनं मन्यन्ते तत् व्याकरणज्ञानशून्यत्वादेव बोध्यम्। तथा च यद्भूतं यद्भविष्यत् यत् अन्नेन अदनीयपदार्थेन करणेन अतिरोहति वर्धमान-मास्ते एवं त्रिकाललब्धजन्मजीवजातमिदं दृश्यमानं सर्वं सम्पूर्णमपि पुरुष एव पुरुषस्य एव इतिभावः। षष्ठीसम्बन्धार्थस्तु जन्यजनकभावरूपः। पुरुषजन्यं जगदिदमिति फलितं, कथमित्यत् आह— उत निश्चयेन सः अमृतत्वस्य मोक्षभावस्यापि ईशानः शासकः ॥श्रीः॥

भूयोऽपि सगुणसाकारब्रह्मणः सर्वतो हस्तचरणादिसद्भावं व्यवस्थापयन्ती श्रुतिः परमेश्वराकाराभाववादिनो निराकरोति, सर्व इति—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१६॥

अन्वयः सुगमः— तद् ब्रह्म सर्वतः पाणिपादं सर्वतः सर्वत्र अत्र सप्तम्यर्थे तसि, पाणयः पादश्च यस्य तत् सर्वतः पाणिपादम् सर्वत्र एव भक्तानां भावनानुसारं स हस्तचरणान्प्रकटय्य तं मनोरथं पूरयति इत्यर्थः। एवमेव सर्वतः सर्वत्र अक्षिणी नेत्राणि शिरांसि मूर्धानः मुखानि आननानि यस्य तत्, सर्वासु दिक्षुः वर्तमानान् भक्तान् भगवान् अक्षिभिः पश्यति बालकस्तान् मुखैश्चुम्बति शिरोभिश्च तत्समर्पितमाल्यादिकं वहतीत्यर्थः। एवमेव सर्वतः सर्वासु दिक्षु श्रुतयः कर्णानि सन्ति अस्येति सर्वतः श्रुतिमत्। अत्र नित्ययोगे मतुप्, सर्वत्रैव श्रवणं कृत्वा प्रणतक्रन्दनं नित्यं शृणोति नित्यश्रवणरूपार्थस्य बहुव्रीहावप्रतीतेर्मतुप्! एवं लोके संसारे वर्तमानं सर्वमपि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चराचरमावृत्य निजमहिम्ना समाच्छाद्य तिष्ठति। अयमेव मन्त्रः गीतायाः त्रयोदशेऽध्यायेऽपि त्रयोदशश्लोकरूपेण यथानुपूर्वीनिर्दिष्टः गोपालनन्दनस्य हि उपनिषद् गवीनां दोग्धत्वात्। यथोक्तं भारते—

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ।।श्रीः।।

भूयोऽपि तमेवार्थमभ्यसति—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ।।१७।।

सर्वेषामिन्द्रियाणां चक्षुरादीनां तत्सम्बन्धिगुणानामाभासः प्रतीतिः यस्मिन् तत् सर्वेन्द्रियगुणाभासं, भगवति सर्वेन्दियगुणानामाभासस्तिष्ठति। परन्तु नैव स सर्वेन्द्रियात्मकः ? इत्यत आह— सर्वैः इन्द्रियैः चक्षुरादिभिः विवर्जितमिन्द्रियातीतमिति भावः । एवं सर्वस्य जगतः प्रभुं नाथमीशानमीश्वरस्यादिशासकं सर्वस्य शरणं रक्षकं गृहं वा **शरणं गृहरक्षित्रोः** इति कोषात् बृहत् अतिशयेन वर्तमानमहं वेद । अत्र षण्णामपि पदानां द्वितीयान्तत्वानुरोधेन 'अहं वेदेति' माण्डुक्यप्लुत्या अष्टममन्त्रेणान्वयः ।।श्रीः।।

ननु एतावान् परमितशरीरावयवः परमात्मा अस्मच्छरीरेषु तिष्ठति न वेति जिज्ञासां समाधत्ते, नवद्वारे इति ।

नवद्वारे पुरे देही हँसो लेलायते बहिः ।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ।।१८।।

सर्वावयवोऽपि भगवान् सर्वस्य लोकस्य चराचारस्य वशी वशयिता नियन्तेति यावत्, हंसवत् इति हंसः पक्षीविशेषः। नवद्वारे नवानि-कर्णयोः द्वे चक्षुषोर्द्वे नासिकयोर्द्वे मुखस्येकम् अधस्तात् द्वे च द्वाराणि वायुः निःसरणमार्गाः यस्मिन् तादृशे पुरे देही देहवान् सगुणसाकाररूपः सन् लीलायते खेलति बहिश्च तिष्ठति ।।श्रीः।।

पुनर्ब्रह्मणो वैलक्षण्यं वर्णयति—

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।।१९।।

परमेश्वरो हि सकलविलक्षणो न सन्ति पाणिपादाः यस्य तथाभूतः अपाणिपादः जवः वेगः अस्ति अस्मिन् इति जवनः **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यश्शनेलचः** इत्यनेन पामादित्वान्नप्रत्ययः । गृहीता तथा हि पादमन्तरेणापि वेगवान् प्राकृतपाणिमन्तरापि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रहणसामर्थ्यवान् इति हार्दम् । अत्र जवनत्वं पादधर्मः गृहीतृत्वं पाणिधर्मः द्वयोर्व्यतिक्रमे क्रमभङ्गालंकारः। एवं सः अचक्षुः चक्षुरेन्द्रियनिरपेक्षोऽपि पश्यति सकलमपि चाक्षुषप्रत्यक्षविषयं करोति । अकर्णः अनपेक्षकर्णेन्द्रियः शृणोति श्रावणसाक्षात्कारं करोति, सः वेद्यं ज्ञातुमर्हं वेत्ति जानाति, अस्य परमात्मनः तत् कृपामन्तरेण वेत्ता न अस्ति तम् अग्र्यम् आद्यं महान्तं महनीयं पुरुषं पूर्णकामं पुरुषमाहुः कथयन्ति ।।श्रीः।।

अधुना भूयोऽपि परमात्मानं विलक्षणतया प्रतिपाद्य तद्विलक्षणतया तत् कृपामेव तद् दर्शने साधनत्वेन निर्णयते—

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ।।२०।।

अयं आत्मा परमात्मा यस्तावत् भक्तानां समक्षम् अणोः लघुतमादपि परमाणोः अणीयान् लघुतरः यथास्य हृदये गुप्तो भवेत् एवं ज्ञानिनां समक्षं महतः महत्तमात् नभस्तत्वादपि महीयान् महत्तरः । स एव अस्य जन्तोः जीवस्य गुहायां हृदये निहितः परमाराध्यत्वेन धारितः, अक्रतुः क्रतुः संकल्पः तद्रहितः, वीतशोकः त्यक्तजगदिष्टवियोग-जनिततापः भगवत्येव तदिष्टदैवत्वात् धातुः प्रसादात् परमेश्वर कृपया महिमानं महत्वातिशय-मीशं परमात्मानं पश्यति नयनविषयं करोति ।।श्रीः।।

भूयोऽपि श्रुतिः साधिकारतया परमेश्वरं निजज्ञानतया प्रतिजानीते—

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् ।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ।।२१।।

अहं श्रुतिः विभुत्वात् सामर्थ्यात् सर्वात्मानं सर्वे आत्मानः जीवाः सन्ति यस्मिन् स सर्वात्मा तथाभूतं, सर्वगतं सर्वव्यापकं पुराणं पुरातनम् अजरं वृद्धावस्थारहितं पुरुषं पौरुषयुक्तं न तु क्लैव्ययक्तमहं वेद जानामि स्वभर्तृत्वेन अध्यवस्यामि । तस्य जन्मनिरोधं जन्माभावं प्रवदन्ति प्रवादतया व्यवहरन्ति । वस्तुतस्तु स भक्तप्रेमवशंवदः जन्मगृहणाति एवमेव ब्रह्मवादिनः इत्थं नित्यं प्रवदन्ति प्रकर्षेण प्रतिपादयन्ति नित्यत्वेऽपि तदवतारे न विरोधः तद्वत्वात् ।।श्रीः।।

इति श्रीचित्रकूटनिवासि सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वरजगदगुरूरामानन्दाचार्यपदवीक श्रीरामभद्राचार्य प्रणीते श्रीराघवकृपाभाष्ये श्वेताश्वतरोपनिषदि तृतीयोऽध्यायः।।

।। श्री राघवः शान्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्री राघवोविजयते तराम् ॥

॥ श्री रामानन्दाचार्याय नमः ॥

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

अथ देवाः खलु प्रार्थ्यमानाः द्रवन्तीति सार्वभौमसिद्धान्तानुरोधेन तृतीयाऽध्याये वर्णिताचिन्त्यासंख्यलोकोत्तरकल्याणगुणगणसिन्धुं तमार्तबन्धुं परमात्मानं तुरीयेऽपि तुरीयमेव भूयो द्वाविंशत्यामन्त्रैः प्रार्थयते । ननु ब्रह्मणो द्वैरूप्यं निर्गुणं सगुणं चेति सगुणं ब्रह्म खलु सर्वावयवम् **सर्वतः पाणिपादं तत्** (श्वेताश्वतर॰ ३/१६) निर्गुण ब्रह्म खलु रूपरहितम् **अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्** कठो॰ १/३/१) तथा च सर्वावयवे सगुणब्रह्मणि प्रार्थना घटते तस्य सर्वतः श्रुतिमत्वात् **सर्वतः श्रुतिमल्लोके** (श्वेता॰ ३/१६) इति श्रुतेः । परञ्च निर्गुणे ब्रह्मण्यरूपे कथमुपपद्येत प्रार्थना इति चेन्न। अरूपस्यापि प्रार्थनाश्रवणयोग्यतावत्वोपपत्तेः । कर्णमन्तरापि परमात्मा सर्वं शृणोति तस्य हि हृषीकेशत्वात् **पश्यत्यचक्षुः शृणोत्यकर्णः** (श्वेता॰ ३/१९) वस्तुतस्तु सगुणनिर्गुणयोर्मध्ये नान्तरम्। एकस्मिन्नेव काले परमात्मा सगुणनिर्गुणश्चापि, गुणैः सह वर्तमानःसगुणः, तथा च प्रकटितभक्तकल्याणकारिकारुण्यादिसद्गुणत्वं सगुणत्वं, निर्गुणो नाम निर्लीनगुणकः नहि एकदैव प्रकटयितुं शक्याः समस्ता अपि गुणाः तेषामनन्तत्वात् । प्रपन्नाभिलाषाणाञ्च सान्तत्वाच्च भक्तेच्छा पूरणे तेषामुपयोगित्वात्, तस्मात् यावन्तो गुणाः प्रकटिताः तेषामनुरोधेन भगवान् सगुणश्च, अनुपयोगित्वेन तिरोहिताः तदपेक्षया निर्गुणः भूमिवत् । अतो मानसकारः प्राह—

अगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा । गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा ।।
जो गुन रहित सगुन सो कैसे । जल हिम उपल विलग नहि जैसे ।।

(मानस १/११६/१/२)

एवमेव निराकारसाकारसम्बन्धेऽपि ज्ञेयम् ।

परमात्मा हि नित्यमवयववान् अतो नायमाकारहीनश्च त्रिकालेऽपि यत्तु ऐन्द्रजालिकोदाहरणेन भगवतविग्रहं मायामयतया मिथ्येति इति साधयन्ति तत् प्रच्छन्नबौद्ध-प्रलपितत्वादुपेक्ष्यम् । **आकाशशरीरं ब्रह्म** (तैतीरीय १-७ इति श्रुतेः) गीतागूढार्थदीपिकायां तन्मतस्य तन्मतावलम्बिविद्वच्छिखामणिभिः दृढ़निश्चिततया शास्त्रीययुक्तिभिश्च खण्डितत्वात् तस्मात् परमात्मनि प्रणतप्रार्थनाश्रवणस्वभावसद्भावात् सूपपन्नेयं प्रार्थना।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति ।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।।१।।

यः वर्णितमाहात्म्यः, एकः केवलः, अवर्णः अनेकाः शुक्लादयः वर्णा यस्य स अवर्णः । अथवा आदृतः वर्णः वर्णव्यवस्थानुसारि ब्राह्मणादि येन तथाभूतः। अथवा नास्ति निजावतारार्थं निश्चितो वर्णः यस्य सः अवर्णः चतुर्ष्वपि वर्णेषु पत्मात्मनोऽवतार-श्रवणात् । तद्यथा वामनादेर्ब्राह्मणः श्रीरामस्य क्षत्रियः कृष्णस्य च गोपालः जगन्नाथश्च चतुर्थः इति एवं सर्ववर्णः । बहुधा बहुप्रकारेण शक्तियोगात् सन्धिनीशक्तिसाहाय्यात् अनेकान् शुक्लादीन् वर्णान् ब्राह्मणादीन्वा दधाति पुष्णाति, यश्च विश्वम् आदौ दधाति अन्ते च प्रलये व्येति संहरति स देवः परमप्रकाशकः स एव नः शुभया श्रेयस्या बुद्ध्या संयुनक्तु संबध्नातु ।।श्रीः।।

अथ भगवदीयविभूतिभिश्च तद्भेदं धारणाद्रढीकरणाय प्रतिपादयति—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः ।।२।।

अत्राग्न्यादित्यवायुचन्द्रशुक्रब्रह्माप्रजापति नाम्नीनामष्टानामपि भगवद् विभूतीनां ब्रह्मांशत्वात् अंशांशिनोश्च समधिकसन्निकर्षपर्यायभेदमेव तच्छब्दवाच्यब्रह्मणा सह समुद्घोषयति। अग्निः सर्वतोऽग्रे नीयमानःपावकः । आदित्यः सूर्यः । वायुः समीरणः, चन्द्रमा निशाकरः, शुक्रं चरमधातुः, ब्रह्मभेदः, आपः जलाभिमानीदेवता प्रजापतिः ब्रह्मा, तत् बह्माभिन्नाः ।।श्रीः।।

भूयः सर्वावस्थाषु सर्वजीवेषु च परमेश्वरस्मरणं विधित्वेन प्रतिपादयति—

त्वंस्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ।।३।।

भगवानेव स्त्रीपुरुषकुमारकुमारीवृद्धबालकरूपाणि धर्तुं प्रभवति । हे परमेश्वर ! त्वं भवानेव स्त्री नारी तद्रूपधारणे समर्थः, त्वं भवानेव पुमान् पुरुषः, स्त्रीत्वं करुणः -पुरुष इव पौरुषसम्पन्नः । एवं त्वं कुमारः पञ्चवर्षपर्यन्तबालकः, उत वा कुमारी कन्येव अक्षतसौन्दर्यः पूज्यः शक्तिप्रभवश्च, त्वं जीर्णेन दण्डेन जीर्णलकुट्या उपलक्षितः दण्डेन इत्यत्र **इत्थंभूतलक्षणे** इत्यनेन तृतीया । वञ्चसि स्खलन् चलसि, वृद्ध इव भावः । विश्वतोमुखः सर्वव्यापी त्वं भवानेव जातः भवसि नवप्रसूतशिशुः संपद्यसे अथवा त्वं भवान् स्त्री-मोहिनीरूपः तद्रूपस्य समुद्रमन्थने पुराणप्रसिद्धत्वात् **कपटयुवतीवेषः** (भागवत ८/१२/४६) त्वं पुमान् परमपुरुषनारायणरूपः, त्वं कुमारः श्रीरामः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दशरथराजकुमारः, उत वा कुमारी श्रीसीताजनकराजतनया । यद्वा कुमारः नन्दकुमारः कृष्णः कुमारीवृषभानुन्दिनीराधा च श्रीसीतारामयोः श्रीराधाकृष्णयोः ब्रह्मरूपत्वात् । त्वमेव जीर्णेन दण्डेन जर्जरवंशखण्डेन उपलक्षितः वंचसि सर्वज्ञोऽपि निजमहिमानं तिरोभाव्य वृद्धब्राह्मणवेशधारी सदानन्दम् अल्पज्ञ इव तद्दुःखकारणं पृच्छसि इति सत्यनारायणकथायां प्रसिद्धम् । त्वमेव जातः भवसि बालको भूत्वा कौशल्याक्रोडे यशोदाङ्के च खेलसि इति वयम् ।।श्रीः।।

भूयोऽपि प्रादेशमात्रेण भगवत्सर्वरूपतां साधयति नील इति—

नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः ।
आनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ।।४।।

यतः यस्मात् ब्रह्मणः विश्वा विश्वशब्दस्य प्रथमा बहुवचने इत्यर्थः । भुवनानि ब्रह्माण्डानि जातानि उद्भूतानि तादृक्त्वं विभुत्वेन सर्वसामर्थ्येन सहितमनादिमत् नित्यत्वेन समुत्पादरहितं वर्तसे राजसे, तथा च नीलः पतङ्गः नीलवर्णः पक्षी, हरितः शुकादिः लोहिताक्षः रक्तनेत्रखगः तडिद्गर्भः तडित् चपला गर्भे अन्तः अस्ति अस्य तथाभूतो मेघः विद्युत्वान्, ऋतवः वसन्ताद्याः, समुद्राः सागराः इमे सर्वे तव रूपविशेषा एव ।।श्रीः।।

साम्प्रतं परमेश्वरं प्रार्थ्य तत् कृपया प्रकृतिमोक्षमाह—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।।५।।

अत्र हि भगवद्विमुखभगवत्प्रपन्नजीवयोः सुस्पष्टमन्तरमाह— अजां न जायते इत्यजा प्रकृतिः ताम् अजाम् एकां केवलां लोहितशुक्लकृष्णां लोहिता रजोगुणमयी शुक्ला सत्वगुणा कृष्णा तमोगुणमयी त्रयाणां लोहितशुक्लकृष्णानां प्रकृतिविशेषणत्वेऽपि साधुत्वार्थमत्र विशेषणविशेष्यभावं कल्पयित्वा **"वर्णो वर्णेन"** इति सूत्रेण कर्मधारयः । तथा च लोहिता चासौ शुक्ला इति लोहितशुक्ला लोहितशुक्ला चासौ कृष्णा इति लोहितशुक्लकृष्णा तां लोहितशुक्लकृष्णाम् इति विग्रहप्रकारः । एवं विधां गुणत्रयवतीं सरूपाः समानं रूपं यासां तथाभूताः, यद्यपि प्रजासु परस्परमाकारभेदो वर्तते, तथाप्यत्र देहवत्वेन सारूप्यं, तथाविधाः वह्वीः अनेका प्रजाः देवतिर्यङ्नररूपाः संततीः सृजमानां रचयन्तीम् इमामजामिव जुषमाणः भगवद् विमुखतया सेवमानः एकः भगवत् प्रतिकूलाचरणः बद्धजीवः अनुशेते तत्र प्रकृतौ अनुरज्यते बध्यते च । अन्यः भगवच्छरणागतिसुधास्वादसंतृप्तशान्तस्वान्तः अन्यः जगद् विलक्षणः अजः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मावच्छेदेनाजन्मा । अथवा अकाराय वासुदेवाय तल्लीलासिद्धये जातः एनाम् इमां भुक्तभोगां भुक्ताः जनैरुच्छिष्टाः कृताः भोगाः स्वादाः यस्याः तादृशीं भुक्तोज्झितां मत्वा खण्डितामिव योषितं जहाति त्यजति इति सरलं व्याख्यानं गम्भीरं त्विदानीमुच्यते । यद्यपीमां श्रुतिंसांख्याः स्वशास्त्रप्रमाणबीजं मन्यन्ते, ते खलु प्रकृतिपुरुषसंयोगात् सृष्टिं स्वीकुर्वन्ति, सृष्टौ ही प्रकृतिमेव कर्तृत्वेनाध्यवस्यन्ति पुरुषस्तेषां पुष्करपलाशवन-निर्लेपः । प्रकृतिर्जडा पुरुषश्च चेतनः किन्तु सृष्टिकरणसामर्थ्याभाववान् प्रकृतिर्हि महत्तत्वमुत्पादयति ततोऽहंकारः, ततः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः चक्षुः श्रोत्ररसनाघ्राणत्वक्वाक्पाणिपादपायूपस्थमनांसीति षोडपविकाराः । पञ्चतन्मात्रभ्यः पञ्चमहाभूतानि, तथा च शब्दादाकाशः, स्पर्शाद्वायुः, रूपादग्निः, रसाज्जलं गन्धात्पृथ्वी एवं त्रयोविंशतिः, द्वौ प्रकृतिपुरुषौ संयोज्य पञ्चविंशतितत्त्वात्मकं सांख्यशास्त्रं । तथाच सांख्यकारिका मूलप्रकृतिविकृतिमहदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त , षोडशकस्तुविकारः न प्रकृतिर्न विकृतिपुरुषः इति एवं पग्वन्धयोरिव प्रकृतिपुरुषसंयोगः । तथा च लोहित-शुक्लकृष्णां सत्वरजस्तमोमयीम् एकाम् । सरूपाः समानाकाराः बह्वीप्रजाः सृजमानां इमाम् अजां बर्करीमिव भोगलिप्सुं एकः अजः बर्करइवकामान्धःजुषयाणः सेवमान अनुशेते तत्र सज्जते । प्रकृतिसंयुक्तो हि पुरुषः बध्यते अवबन्धनैः अन्यः कश्चन विवेकी पुरुषः भुक्तभोगाम् एनां जहाति त्यक्त्वा मुच्यते । अत्र पुरुष बहुत्वं श्रुत्वैव साधितम् अज शब्दस्य द्विरुक्त्या । एवं श्रुतिरियं सांख्याशास्त्रबीजम् । वस्तुतस्तु सांख्यसिद्धान्तः श्रौतो नास्ति । तत्र तत्र श्रुतिविरोधदर्शनात्, यथा श्रुतिमते नैव शब्दादिभ्यो गगनादीनामुत्पत्तिः तद्यथा "**ॐ तस्मादेतस्याद्वा आत्मनः आकाशस्सम्भूतः आकाशात् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी पृथ्व्या औषधयः इत्यादि** (तैतिरीय २/२)

एवमेव प्रकृतिः कत्री अपि नास्ति, **तत्सृष्ट्वा तदेवानुपाविशत्** तैतिरीय २/६ एवमेव पुरुषपंगुत्वविषयेऽपि श्रुतिविरोधः **द्यावाभूमिजनयन्देव एकः** इत्थम् अवैदिकत्वात् सिद्धान्तोऽयमुपेक्ष्यः । तथाहि ब्रह्मसूत्रम् ("**ईक्षतेर्नाशब्द**" १/१/५)

अतो नैव तद्बीजश्रुतितथा चाधुना नव्यमतेन व्याख्यायते। जीवो ही प्रकृतिं सेवमानो तत्प्रपञ्चेन बध्यते। एवं भुक्तभोगामिमां परमेश्वरो जहाति।

द्वाप्यजौ जीवपरमात्मानौ इति इत्यनेन, जीवस्य प्रकृतिपारतन्त्र्यम् । परमेश्वरस्य च प्रकृति नियन्तृत्वं सूचितम् । तथाहि लोहतशुक्लकृष्णां रजःसत्वतमः प्रतीतत्रिरागयुक्ताम् एकां दुर्जयामद्वितीयां सरूपाः बह्वी प्रजाः कोटि कोटि ब्रह्माण्डात्मिकाः सृजमानां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुणयुक्ताः कुर्वतीं न तु जनयन्तीम् । तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् इत्यादि श्रुतिभिरेव प्रकृतिकर्तृत्वस्य निषिद्धत्वात् एकः जीवः अजः अकारो वासुदेवः तस्माज्जातः इत्यजः अयमेव एनामजामिव जुषमाणोऽभितः अनुशेते अनुशयितो भवति । अत्र वर्णिता अजेयमविद्या ततः अन्यः जीवतो विलक्षणः परमात्मा भुक्तभोगां भुक्ताजीवैरेव उच्छिष्टाः भोगाः यस्या तादृशीं जहाति दूरतस्त्यजति इत्थं भगवद्विमुखजीवः मलिनसत्वामविद्यां सेवते पत्मात्मा तु तां स्पृशत्येव नहि ।।श्रीः।।

अथ पञ्चममन्त्रोक्तां जीवब्रह्मभिदां आलंकारिकतया विवृणोति द्वा इत्यादिना—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।६।।

मुण्डकोपनिषदि व्याख्यातोऽपि मन्त्रोऽयं भूयो व्याख्यायते शोभनं पर्णं पक्षं ययोः तौ सुपर्णौ "सुपां" इति सूत्रेण औटः पूर्वसवर्णदीर्घः । अथवा सुलभाः पर्णाः ययोः तौ सुपर्णा तात्पर्यमेतत् यथा कश्चन पक्षी नीडमाश्रयते भग्ने च वृक्षे स्वत एवोड्डीयते नीडान्तरञ्चाश्रयते तथैवेमौ जीवेश्वरो पक्षभूतौ प्रारब्धजनितशरीरं श्रितौ नष्टे च तस्मिन् सूक्ष्मतया निर्गत्य नवं शरीरमालम्बेते । उड्डयनञ्चानयोः सूक्ष्मं लघु-निर्गमनमेव सहैव युञ्जाते शरीरमेतत् युगपदेव प्रविशतः इति सयुजा अत्रापि पूर्ववत् सवर्णदीर्घः एवमुत्तरत्रापि । समानं खेलतः इति सखाया शरीररूपतरौ द्वावपि जीवेश्वरौ खेलतः नरवत्वेकाकिना क्रीडितुं शक्यं, सखाया इति श्रुत्युक्तिः सख्यं व्यनक्ति । द्वयोः ब्रह्मजीवमन्तरेण न तिष्ठति तत्परिहारेण तद्गुणानुपयोगत्वात् । जीवोऽपि तदन्तरेण न स्थातुं प्रभवति तदतिरेकेण तत्स्थानासंभवात् यथोक्तं भगवता—

न तदस्ति विनायत्स्यान्मयाभूतं चराचरम् (गी. १८/३९) तौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ कुत्र तिष्ठतोऽत आह समानं वृक्षं परिषस्वजाते समानं समानकालमेव अर्थात् यस्मिन्क्षणे जीवः शरीरमालम्बते तस्मिन्नेव क्षणे परमात्माप्यन्तर्यामिभूतः। न द्वयोरागमने क्षणार्धस्यापि वैषम्यम् । अथवा समानमिति परिष्वङ्गः परपर्यायक्रियायाःविशेषणम्। तथा हि इमौ पक्षिभूतौ सखायौ शरीरवृक्षं मानेन सम्मानेन सहितं यथास्यात् तथा समानं परिषस्वजाते नैवैतयोः शरीरोत्कर्षापकर्षभेदबुद्धिः, यथा ब्रह्मशरीरश्रयमाणौ खेलतस्तथैव निकृष्टकीटशरीरमपि । अथवा समानमिति शरीरवृक्षस्यैव परिस्थिति परिचायिकं विशेषणं तथा हि मानेन मानोपलक्षितकामादिविकारजातेन सह वर्तमानं इति समानं विकारयुक्तमपि शरीरं परिष्वक्तवन्ताविमाविति समधिकमुदारता वृक्षं पिप्पलमिति तृतीयचरणतः समनुकृष्यान्वयः । एवं वृश्च्यते छिद्यते कृतान्तेन प्रारब्धकुठारेण यः स वृक्षः तं वृक्षं वृश्चनार्हमिति भावः । तादृशं क्षणभङ्गुरं पिप्पलं पिबति दूषितं वायुं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पलाययति प्रेषयति शुद्धं वायुं यः स पिप्पलः तं पिप्पलमश्वत्थम् । यद्यपि पिप्पलशब्देन तदभिधानवृक्षबोधसंभवे वृक्षमिति पदाधिक्यमिव भाति । तथा वृश्चनार्थकतया तस्य क्षणभंगुरत्वसूचनाय समुचितमेवेति मन्महे । परिषस्वजाते अत्र "परोक्षे लिट्" श्रुतेस्तात्पर्यमेतत् यत् कदा प्रभृति वृक्षमेतच्छ्रिताविमाविति नाहं वेद, पारोक्षमित्येव । नन्वसंगतं व्याख्यानमेतत् (वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं) (श्वेताश्रतर॰ -३/२१) इति श्रुतिविरोधादिति चेन्न वेदाहमित्यस्य सामान्यवेदनप्रतिज्ञानात् । नन्वत्र व्याख्याने किम्मानमिति चेन् मन्त्र एवेति ब्रूमहे तथा हि (सवेत्तिवेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता) (श्वेता॰ ३/१९) अथ (वेदाहमेतं) श्वेताश्वतर॰ ३, २१ (न च तस्यास्तिवेत्ता) श्वेताश्वतर॰ ३/१९ इत्यनयोः श्रुत्योः कथं प्रामाण्यसंगतिरिति चेच्छृणु– वेदाहमित्यस्य अहं श्रुतिरेव सामान्यतः वेद्मि न च तस्यास्ति वेत्ता इत्यस्य कोऽपि सम्पूर्णतया ज्ञातास्य नास्तीत्यर्थः। इत्थं द्वयोः सामान्यं विधाय विशेषं विशिनष्टि तयोरिति गुणनिर्धारणे षष्ठी । तयोरन्यः केवलः जीवात्मा स्वादु विषयभोगबहुलतया मधुरं पिप्पलम् अश्वत्थफलं अनिश्चयेन अत्ति खादति भुङ्क्त इति भावः । जीवो हि प्राक्तन कर्म प्राप्तशरीरशुभाशुभं भुङ्क्ते । अन्यः प्रधानः परमात्मा अनश्नन् कर्मफलानि भोगविषयान्नकुर्वन्नपि अविचाकशीति अभितो निरीक्षते शोभते ।

यत्तु केचनापलपन्ति यत् मन्दात्मविज्ञानात्मानावेव सुपवर्णाविह तत्तु पीतमहामोहमदिरप्रमत्तवमनमेव, नहि एकत्रशरीरे द्वावात्मानौ स्थातुं प्रभवतः कदापि यौगपद्येन एकशरीरस्य कृते एकजीवात्मनिवासप्रसिद्धेः अत एव शरीरस्य वस्त्रोपमानता भगवदुक्ता यथोक्तम्—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

(गीता २/२२)

तथा चाह मानसकारोऽपि—

जोइ तनु धरऊँ तजऊँ पुनि अनायास हरि जान ।
जिमि नूतनपट पहिरइ नर परिहरइ पुरान ।। (मानस. ७/१०९/ग)

तस्मान्मदुक्तःपन्थैव ज्यायानिति विरम्यते ।

ननु जीवैश्वर्ययोः एकत्वशरीरे निवासे किं मानम् ? श्रुतयस्मृतयश्चेति ब्रूमः । श्रुतिर्यथा (सदा जनानां हृदये संनिविष्टः) (श्वेताश्वतर॰ ३/१७) (यो सावसौ पुरुषः) (ईशारास्योपनिषद् १६) स्मृतयो यथा (देही नित्यमवध्योऽयम्) (गीता. २/३०)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति) (गीता. १८/६१) एवं बहूनि प्रमाणानि विस्तरभयादिह नोपस्थाप्यन्ते । तानि स्वयमेव तत्र तत्र दृष्टव्यानि मन्त्रोऽयं जीवब्रह्मणोः स्वरूपतो भेदं तयोः स्म्बन्धं अपृथग् भावरूपं वैलक्षण्यं च सुस्पष्टतः कण्ठरवेण संगृणाति । इत्थं सत्यपि यदि कोऽपि दुराग्रहग्रहगृहीतः समध्यवस्यतु जीवब्रह्माभेदं तं प्रत्येतदेव ब्रूमहे यत्—

नयनपीतिमदोषवसाद्यदि
वदति कोऽपि च पीतमथो विधुम् ।
न खलु तस्य गिरा किल नैष्ठिकी
कुटिलमोहवशात् प्रतिजल्पनम् ।।श्रीः।।

भूयोऽपि स्पष्टप्रतिपत्तये श्रुतिर्जीवब्रह्मणोर्वैलक्षण्यं प्रतिपादयति समान इति—

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ।।७।।

समाने वृक्षे निमग्नः अनीशया मुह्यमानः पुरुषः शोचति यदा जुष्टं अन्यन्यमीशं तस्य महिमानं पश्यति इति वीतशोकः भवति अति शेषः इत्यन्वयः । समाने मानादिविकारयुक्ते अथवा सदृशं मानं यस्य तत् समानं तस्मिन् समाने, स्वप्रारब्धानुरूपे वृक्षे क्षणभंगुरे शरीरे निमग्नः पापसागरे इति शेषः ईशा ईष्टे जीवं भगवच्चरणागतं कर्तुं या सा ईशा भगवत्कृपा, तद्भिन्ना अनीशा अविद्या, तया मायया अनीशया, अथवा अनादृतः तिरस्कृतः ईशः परमात्मा यया सा अनीशा तया अनीशया, मायामूढाः परमात्मानमनाद्रियन्ते । यथोच्यते स्वयमेव भगवता (अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्) अथवा अनभिलषितः ईशः यया हेतुभूतया सा अनीशा माया मायामूढाः हि परमात्मानं नाभिलषन्ति, तया अनीशया कारणभूतया मायया मुह्यमानः मोहं नीयमानः, अत्र (कर्मकर्तृप्रयोगादात्मनेपदं) शोचति इष्टजनवियोगदुःखकातरो भवति । किन्तु यदा यस्मिन् काले जुष्टं सद्गुरुकृपया लब्धभगवच्छरणागतिः निजप्रीतिभाजनभूतम् ईशं सर्वसमर्थं परमात्मानम् अन्यं स्वस्माद्विलक्षणं निजपरमाराध्यं पश्यति नयनविषयं करोति सेव्यत्वेन जानाति वा तस्य परमात्मनः महिमानं निरस्तसकलहेयगुण-प्रत्यनीकवात्सत्यादिनिरतिशयकल्याणगुणगणनिलयं जानाति इति तदैव इति शब्दोऽत्र तदार्थः । वीतशोकः नष्टेष्टजनवियोगः भवति, आशयोऽयं यदा स्वस्मादन्यम् ईशं पश्यति तदैव वीतशोको भवति, अभिन्नं पश्यंस्तु सशोको जायते मन्त्रेणानिन वायुनेव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूरोत्सारितमद्वैतवादमहामेघाडम्बरम् । अथ (तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः) इत्यद्वैतश्रुतीनां का गतिरिति चेत् (ईशावास्य॰ १०७) सम्बन्धाद्वैते तासां प्रतिपादनेनाद्दोषात् ।।श्रीः।।

सम्बन्धः— भूयोऽपि ब्रह्मज्ञानमेव स्तौति। ऋचे इत्यादिना—

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ।।८।।

अक्षरे परमे व्योमन् ऋचः निषेदुः यस्मिन् अधि विश्वेदेवा निषेदुः, यः तं न वेद ऋचा किं करिष्यति ये इ तत् विदुः ते इमे समासते इत्यन्वयः ।

न क्षरतीत्यक्षरम् अथवा न सन्ति क्षराः भावाः यस्मिन् तदक्षरम् तस्मिन् अक्षरे अविनाशिनि परमे परया सीतया पराभ्यां सीतारामाभ्यां वा नीयते इति परमः तस्मिन् परमे, व्योमन् आकाश इव नीलवर्णे तत्रैव वा सावकाशे व्याप्ते साकेते वा ऋचः ऋग्यजुःसामानि निषेदुः तस्थुः । कीदृशः सः ? इत्यत् आह यस्मिन् अक्षरे अधिविश्वे अधिगतं विश्वं येन तदधिविश्वं तस्मिन् अधिविश्वे देवाःस्वरा निषेदुः यः साधकविशेषः तं तमालनीलं न वेद न जानाति सः ऋचा ऋग्वेदाध्ययने ऋचा किं करिष्यति किं विधाष्यति ब्रह्मज्ञानमन्तरेण वेदाध्यनमपि तुच्छं ये इमे साधकः इ निश्चयेन तत् ब्रह्मतत्वं जानन्ति ते इमे ब्राह्मणाः समासते कृतकृत्या भवन्ति ।।श्रीः।।

भूयो ब्रह्मणः सकाशात् प्रपंञ्च वर्णयति

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ।।९।।

छन्दांसि गायत्र्यादीनि, यज्ञाः श्रौतस्मार्ताः मखाः क्रतवः ज्योतिष्टोमादयः व्रतानि चान्द्रायणादीनि यत् वेदाः श्रुतयः भूतं भूतकालिकं भव्यं भविष्यत्कालिकं च इति समुच्चयार्थः वदन्ति कथयन्ति। अस्मादेव प्रपञ्चात् एतत् विश्वं जगत्मायी मायाप्रपञ्चवान् सृजते रचयति तस्मिन्नेव ब्रह्मणि अन्यः भगवदभजनविमुखः मायया अविद्यया संनिरुद्धः रुद्धचेताः ।।श्रीः।।

अथ का नाम माया ? इत्यत आह —

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।।१०।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तु निश्चयेन मायां भगवद् योगमायां प्रकृतिं परमेश्वरस्वभावशक्तिं विद्यात् जानीयात्, च तथा महेश्वरं महान् ईश्वरः महेश्वरः तं महेश्वरम् मायिनं मायापतिं विद्यात्। तस्य मायापतेः अवयवभूतैः सरितसमुद्रादिभिः सर्वमिदं जगत् त्रिभुवनं व्याप्तम्। यथोक्तं भागवते—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतीषिं सत्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित् समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ।।

(भागवत ११/२/४१)

तस्यावयवभूतैः इति श्रुतिसकलेन श्रुतेः साधिकृतप्रतिपादनमनवेक्षमाणानां भगवतो निरवयवत्ववादः परास्तः। ननु **अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्** (कठ० १/३/१५) इति श्रुत्या तु निरवयवत्वमुपपाद्यते भगवतः ?

इति चेत् न अशब्द इत्यादीनाम् अव्यक्ताः शब्दादयोयस्य तथाभूतमिति व्याख्यानेनादोषात्। न खलु भगवतः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः प्राकृतेरस्मदादीनां श्रोत्र-त्वक्चक्षुःरसनाघ्राणैर्गृहीतुं शक्याः। नन्वस्मिन् व्याख्याने किम्मानम् ? इति चेत् श्रीगीतायां भगवदुक्तिरेवेति गृहाण तथा हि भगवद्विराट्रूपदिदृक्षापरवशं पार्थं प्रति प्राह पद्मनाभः।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।

(गीता ११/८)

'सर्वतः पाणिपादं तत्' श्वेताश्वतर० ३/१५ इति श्रुतिरपि प्रमाणम्। अथ ब्रह्मणः सावयवत्वे तदनित्यत्वापत्तिः। तथा हि यत् यत् सावयवं तत्तदनित्यं कार्यत्वात् घटादिवत् ?इति चेत् मैवं श्रुत्यनुरोधेन नैवैतदनुमानप्रसरः, एवमेव सकलविलक्षणस्य भगवतः साऽवयवत्वेऽपि नित्यत्वाक्षतिरेवेति बोध्यम्। **'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां'** (कठ० १/२/१३)

इति श्रुतिरपि प्रमाणम् अथवा मायां भगवतो योगमायां तु निश्चयेन प्रकृतिं प्रकृष्टा सकलविलक्षणाकृतिः रचना यस्या सा प्रकृतिः, वैलक्षण्यं हि कृतौ सर्वथा विरूद्धस्वभावानां क्षितिजलतेजोमातारिश्वनभसां परस्परसम्मेलनमपञ्चीकृतानामपि प्रपञ्चीकरणं, नवद्वारेऽपि पुरेऽस्मिन् देहे छिद्रवत्यपि सप्तधातूनां वायोश्चापि समवरोधः। नहि रन्ध्रवति घटे केनापि जलं स्थापयितुं शक्यम्, परन्तु सार्धत्रिकोटिरोमकूपरन्ध्रवत्यपि कथमयं वायुस्तिष्ठतीति चित्रम्। यथोक्तं विनयपत्रिकायां श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासचरणैः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केशव कहि न जाइ का कहिये,
देखत तव रचना विचित्र अति, चुपहि मनहिं मन रहिये,
शून्यभीति पर चित्ररंग बिनु कर बिनु रचा चितेरे,
धोये मिटे न मरिय भीति दुखपाइअ यह तनु हेरे,
रविकरनीर वसे घट भीतर मकर रूपता माँहीं,
वंदनहीन सो ग्रसे चराचर पानकरन जे जाहीं,
कोउ कह सत्य झूँठ कह कोऊ, जुगल प्रवल कोउ मानै,
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सोइ आपन पहिंचानै।।

(विनय पत्रिका १११)

एवंभूतां सकलविलक्षणकृतिमतीं विद्यात् जानीयात् । मायिनं माया अस्ति दासीभूता अस्य इति मायी तं मायिनं, अथवा मायायाः अघटितघटनापटीयस्याः योगमायायाः इनः स्वामी इतिमायिंनः "शकन्ध्वादित्वात् पररूपं" मायिनं मायानाथं महेश्वरं परमेश्वरं विद्यात् । न किल मायापराधीनः परमेश्वरो भवितुं शक्नोति उत्तरार्धं तु पूर्ववत् । अथवा मायां भगवतः कृपाशक्तिं सीतानाम्नीं प्रकृतिं प्रकृष्टा लोकोत्तरा कृतिः शरीरसंघटना यस्याः सा प्रकृतिः तां विद्यात् प्रकृष्टकृतिमत्वं च प्रसिद्धं सीतायाः ।

यथा—

जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ।।

(वा.रा.बा. १/२७)

न च "देवमायेव निर्मिता" इति वाक्यघटक (निर्मिता) इति शब्देन सीतायाः प्राकृतत्वं सूच्यत इति वाच्यं निर्गतं मितं सीमा कृपादिगुणानां यस्याः सा निर्मिता निःसीमकृपादिगुणवती इति व्याख्यानेनादोषात् । इव शब्दो हि अवतारसूचनाय समधिकाभेदघटितसादृश्यपरः । एवं हि देवस्य माया कृपा इति देवमाया एवमेव प्रसन्नराघवेऽपि कविराजजयदेवः —

कदली कदली करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः ।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्ति तुलामिदमूरुयुगन्न चमूरुदृशः ।।

प्रसन्नराघव प्रथमांकः तथोक्तमस्मदाराध्यचरणकमलैः श्रीगोस्वामितुलसीदासमहाराजैः

उपमा कहत मोहि लघु लागी, प्राकृत नारि अंग अनुरागी ।।
जौं पटतरिअ तीय सम सीया, जग अस जुवति कहाँ कमनीया ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिय बरनिय तिय उपमा देई, कुकवि कहाइ अजस को लेई ।।

(मानस - बा० २४७/२/३/४)

इत्थं सकलविलक्षणकृतिमतीं प्रकृतिं सीतां विद्यात् । महेश्वरं मह्यते पूज्यते इति महासीता तस्याः ईश्वरः इति महेश्वरः तं मायिनं माया नियन्तारं विद्यात्, तस्य परमात्मनः सीतापतेः राघवस्य अवयवभूतैः पातालादिलोकैः अवयवभूतैर्वा वनस्पत्यादिभिः इदं सर्वं जगत् व्याप्तम् ।

ननु निरस्तनिखिलहेयगुणे सकलसद्गुणैकनिलये विशुद्धसच्चिदानन्दघने परमात्मनि सकलसाधकनिन्दास्पदभूताया अपूतायाः मायायाः कथमाधेयता ? इति चेत् सत्यं श्रुतौ मायाशब्दः अघटितघटनापटीयस्याः भगवतो योगमायायास्तात्पर्यग्राहकः । सीतापक्षे च मायाशब्दः कृपातात्पर्यकः । इत्थं सा माया कृपारूपिणी सीता नित्यतया हृद्देशेऽस्त्यस्य स मायी तं मायिनम्, अथवा मायायाः योगमायायाः सीताभिधायाश्च कृपाशक्तिरूपायाः श्रीसाकेतविहारिणौ महामायायाः इनः स्वामी इति मायिनः । न च माया शब्दघटकाकारेण सहेन शब्दघटकेकारस्य गुणे मायेन स्यादिति वाच्यम् । मायेन शब्दस्य आकृतिगणत्वेन शकन्ध्वादित्वात् पररूपविधानेनादोषात् । तथा च मायायाः इनः मायिनः तं मायिनम्, मायापतिम् इति विग्रहेण पूर्वोक्तशंकापंकप्रक्षालनम् । तस्य भगवतः सीतापतेः अवयवभूतैः अत्र भूतशब्दः औपम्यवाची, तथा अवयवैरिव प्रियैरपृथग्धर्मभिश्च महात्मभिः इदं सर्वं जगत् व्याप्तमिति दिक् ।।श्रीः।।

अथ परमात्ममहिमवर्णनपुरःसरं तन्निश्चये फलमाह—

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं स च विचैति सर्वम् ।
तमीशानं वरदं देवमीड्यम्
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ।।११।।

यः एकः योनिं योनिम् अधितिष्ठति यस्मिन् इदं (अधिष्ठितं) स सर्वं वि एति च तं वरदं देवम् ईड्यम् ईशानं तं निचाय्य इमां शान्तिम् अत्यन्तम् एति इत्यन्वयः ।

यः परमात्मा एकः अनुपमः योनिं योनिम् अत्र वीप्सायां द्वित्वं, तथा च योनिं योनिं प्रकृतिमेव नित्यत्वेन अधितिष्ठति । अत्र " अधिशीङ् स्थासां कर्म" इति सूत्रेण अधिपूर्वकस्थाधातोराधारस्यापि कर्मता । तथा च योनिं योनिमधितिष्ठति इत्यस्य नियततया साधिकारतया च प्रतिजीवप्रकृतौ तिष्ठति इत्यर्थः । अथवा योनिः जीवान्तःकरणं, योनिं योनिं प्रतिप्राणहृदयमधितिष्ठति अधिकृत्य तिष्ठति "सदा जनानां हृदये संनिविष्टः"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इति श्रुतेः । अथवा योनिं योनिं परामपरां प्रकृतिः अथवा योनिं योनिं श्रियं लक्ष्मीं **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ,** इति श्रुतेः (शु. यजु. ३१/२१) अथवा योनिं विद्यां योनमविद्यां च अधितिष्ठति **"विद्याञ्चाविद्याञ्च"** (ईशा. १०) अथवा योनिं कृपाशक्तिरूपां जनकनंदिनीं सीतां योनिं मायासीतां इमे द्वे अपि अधितिष्ठति स्वामित्वेनाधिगृह्णाति, इत्यनेन मायासीतापरिकल्पने वैदिकं प्रमाणं दर्शितम् । अथवा योनिं राधां पुनः योनिं रुक्मिणीमधितिष्ठति बल्लभतया अधिकरोति तथाभूतः, श्रीरामकृष्णनारायणान्यतमः यस्मिन् भगवति इदं दृश्यात्मकं जगत् अधिष्ठितं स च परमात्मा प्रलयकाले इदं सर्वं व्येति प्रलये सर्वं विनिवेशयति । अथवा इदं जीवजातमेव यस्मिन् प्रलये व्येति विनिविशति सः एवंभूतः परमात्मा इति वाक्यभेदेन व्याख्येयम् । तमेवं गुणगणविशिष्टं सर्वनियन्तारं सर्वाधिष्ठानं वरदं वरान् भक्तेभ्यः ददाति इति वरदः तं वरदम्, अथवा वम् अमृतं रं रसञ्च ददाति इति वरदः तथाभूतम् । अथवा वरान् श्रेष्ठान् ब्रह्मादीनपि अत्ति खादतीति वरदः प्रलयकाले हि परमात्मा ब्रह्मादीनपि कालरूपः —

खादति यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्योर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।।

(कठ० ३/१/२/२५)

इति श्रुतेः । यद्वा वं ब्रह्मसुखं तस्य रः अग्निः इति वरः स च कामादिः कामादिना हि बह्निनेवेन्धनं ब्रह्मसुखं भस्मसात् क्रियते **रश्चरामोनिलो बह्निः**

इति कोशेन रकारस्य पावकार्थत्वख्यापनात् । तं वरं कामादिविकारं द्यति खण्डयतीति वरदः तं वरदमीड्यं स्तोतुं योग्यं भगवानेव हि स्तोतुं योग्यः, तस्यैव हि भगवतो राघवस्य निर्व्यलीकगुणगणसागरत्वप्रसद्धेः । देवं परमप्रकाशमानमीशानं सर्वसमर्थं निचाय्य पुष्पमिव नितरां चयनविषयं विधाय इमां श्रुतिप्रसिद्धां शान्तिविकारोपशमलक्षणा-मथवा शान्तिं भक्तिं शाम्यन्ति कामादिदोषाः यया सा शान्तिः तां शान्तिमिति व्युत्पत्तेः **"शान्तिरूपापरमान्दरूपा च"** (ना.भ. सू. अ. ३/ सू.५) एतादृशीमिमामौपनिषदीं भक्तिं , अथ भक्तेरौपनिषदत्वे किं मानम् ? अस्यावोपनिषदः चरमो मन्त्रएव परमप्रमाणतया गृह्यताम्, तथा च उपनिषत् 'यस्य देवे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ' (श्वे. उ. अ. ६/ २३) अत्यन्तं क्रियाविशेषणमिदं निरतिशयमेति प्राप्नोति इति भावः । यद्वा अत्यन्तमिति परमात्मवाचकं तथाहि अन्तं विनाशं अतिक्रान्तः इति अत्यन्तः अविनाशितत्वरूपो भगवान् तं प्राप्नोति, अर्थात् पूर्वं सत्संगादिना एकत्वप्रकृतिनियन्तृत्वजगज्जन्मस्थानभंगत्व-सकलसाधकत्ववरदत्वदेवत्वस्तुतियोग्यत्वादिसामान्यलक्षणं विलक्षणं परमात्मानं माहात्म्य-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज्ञानपुरःसरं विज्ञाय ततोऽनपायिनीं भक्तिं प्राप्य ततः पश्चात् परमात्मानमेव लभत इति श्रौतं हार्दम् । स्मार्तं च वचनमत्रार्थे विनिगमकम्

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः ।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।।

(गीता १८/५५)

अत्र विशते तदनन्तरमिति गीतोक्तिस्तु (अत्यन्तमेति) इति श्रुतिशकलस्यानुवादरूपा ।।श्रीः।।

भूयस्तं परमात्मानं स्तुत्वा प्रार्थयते—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वादिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।।१२।।

यः देवानां प्रभवः उद्भवश्च च यः विश्वाधिपः रुद्रः महर्षिः यः जायमानं हिरण्यगर्भं पश्यत सः नः शुभया बुद्ध्या संयुनक्तु इत्यन्वयः । यः भगवान् देवानां प्रभवः उत्पत्तिस्थानं उद्भवः उत्कृष्टः स्वामी, उद्भवः उद्गतं भवं कल्याणं यस्मात् स उद्भवः, भगवतैव हि सुराणां परिपन्थिनो निहत्य उत्कृष्टकल्याणं क्रियते, विश्वानां विश्वेषां वा उभयेषां वा अधिपः शासकः रुद्रः सुररिपुवनितारोदनहेतुः महर्षिः महान् मन्त्रद्रष्टा, अथवा महीयते इति महा तामपि विशति जानाति गच्छति, च समानेतुं मिथिलायां यः स महर्षिः । यश्च जायमानं निजनाभिकमलात् समुद्भवन्तं हिरण्यगर्भं ब्रह्माणं पश्यत दृष्टवान् अपश्यदिति वक्तव्ये पश्यत इति पाठस्तु बाहुलकादभावे "व्यत्ययात्" आत्मनेपदे कृते पश्यति । इति स भगवान नः अस्मान् शुभया भगवत्साक्षात्कारसहयोगसमर्थया बुद्ध्या मत्या संयुनक्तु युक्तान् करोतु ।।श्रीः।।

अधुना परमात्मनः हविष्यसंप्रदार्हतां वर्णयति—

यो देवानामधिपो यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।१३।।

अन्वयःसुगमः—यः परमात्मा देवानां सुराणां अधिपः शासकः यस्मिन् परमात्मनि लोकाः अतलादयः सत्यपर्यन्ताः अधिश्रिताः कृताश्रयाः, यः परमात्मा अस्य द्विपदः द्विचरणयुक्तमनुष्यस्य चतुष्पदस्य पश्वादेः शासकः, एवं यः ईशे शासनं करोति अथवा यः अस्य संसारस्य ईशे नियन्त्रणं करोति, यश्च द्विपदः द्विपादयुक्तो भगवान् श्रीरामादिःचतुष्पदः चतुश्चरणयुक्तो वराहादिः एवमनेकावतारधारिणं परमात्मानं त्यक्त्वा तदतिरिक्ताय कस्मै

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवाय किन्नामकाय देवाय हविषा हविर्दानविधिना विधेम दानोद्देश्यविधिना योजयेम ।।श्रीः।।

भूयस्तमेव परमात्मानं जामिताभावात् प्रभाववर्णनेन स्तौति—

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ।।१४।।

सुगमोऽन्वयः ।

सूक्ष्मः जीवात्मा तस्मादपि अतिशयेन सूक्ष्मं सर्वेभ्यः परत्वात् विश्वस्य संसारस्य स्रष्टारं रचयितारमथवा विशिष्टं भगवत्प्रेमरूपं विशिष्टाद्वैतं स्वं निधानं यस्मिन् स विश्वः **"पृषोदरादित्वात्"** तालव्यः । तस्य स्रष्टारमनेकानि कच्छपमत्स्यादीनि रूपाणि अवतारशरीराणि यस्य तथाभूतमेकं निरुपमं विश्वस्य परिवेष्टितारं निजमाया जवनिकया समाच्छादकं शिवं निखिलकल्याणगुणगणैकनिलयं ज्ञात्वा सेवकसेव्यभावसम्बन्धेन शान्तिं परमानन्दरूपां भक्तिं प्रपञ्चोपरतिं वा अत्यन्तमेति आत्यन्तिकतया गच्छति ।।श्रीः।।

अधुना भगवद्ज्ञानमेव मृत्युपाशच्छेदने हेतुतया समवधारयति—

स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन्युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ।।१५।।

सुगमोऽन्वयः । स भगवानेव नान्यः कश्चनेन्द्रादिःकाले धर्मग्लानिसमये भुवनस्य गोप्ता श्रीरामादिरूपेण जगतस्त्राता, विश्वेषां भूर्भुवःस्वरलोकानामधिपः शासकः, **'रामस्य लोकत्रयनायकस्य'** (वा.रा.सु. ३८/५२) इति स्मृतेः । सर्वभूतेषु निखिलप्राणिषु हृद्देशे अन्तर्यामितया गूढः निगूढः यस्मिन्भगवति युक्ताः तच्चरणसरोरुहपरागमकरन्दरोलम्बभूताः ब्रह्मर्षयः वसिष्ठादयः देवताः शिवादयः तं सुरनरमुनिपरमाराध्यं ज्ञात्वा निजनाथबुध्या निश्चित्य मृत्युपाशान् मृत्युरूपः पाशः येषु तथाभूतान्, अथवा मृत्यवः अनेकविधाः कोटिकोटिजन्मान्तर-गताः त एव बन्धनतया पाशाः तानेव छिनत्ति द्विधा करोति ।।श्रीः।।

अधुनोपमया निरुपमस्यापि ब्रह्मणः सकलसाररूपत्वबोधनाय समपुक्रमते घृतादिति—

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।१६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घृतात् सर्पिषः परं सूक्ष्मं सर्पिरूपरिवर्तमानं मण्डं घृतसारभूतं तरलद्रव्यमिव अतिसूक्ष्मं समेषां प्राणिनां सारभूतं प्रीतिभाजनञ्च हार्दमेतत् यत् योगमायाधेनुदुग्धं क्षीरमिव प्रपञ्चमेतत् तत्रापि दधीव जीवजातं तत्रापि नवनीतमिव अन्तःकरणं ततोऽपि सूक्ष्मं, घृतमिव जीवात्मतत्वं तस्मादपि सूक्ष्मतरं मण्डमिव जीवान्तर्यामी परमात्मा सकलप्राणिनां प्रेमपात्रम् । यथोक्तं भागवते— तत्र हि ब्रह्मणा वत्सेषु वत्सपालेषु चोरितेषु आवर्षं घृतसकलवत्सगोपालबालाकारं स्वच्छन्दविहितंव्रजवनबिहारं निशम्य स्ववत्सापेक्षया गोगोपीनां वत्सभूते भगवति प्रेमाधिक्यं चाकर्ण्य परीक्षितः पप्रच्छ, ब्रह्मन् गोगोपिकानां स्वपुत्रापेक्षया यशोदानन्दने कृष्णे कथं समधिक इयान् प्रेमा तदुत्तरयञ्छुकाचार्यः सुस्पष्टं प्राह यत् समेषां प्राणिनां सर्वतः समधिकप्रीतिभाक् प्रत्यगात्मा अन्ये सुतवित्तकलत्रादयः तत् प्रियतयैव प्रिया लगन्ति एवमेव ये खलु देहमेवात्मानं मन्यन्ते तेषामपि प्रीतिरात्मवत्तयैव, अन्यथा जीर्यति शरीरे कथं जिजीविषा तस्मात् निरतिशयप्रीतिभाजनमात्मा ततोऽपि सारभूतः परमात्मा स च कृष्णसंज्ञः । साम्प्रतमवतीर्णः तर्हि कथन्न समधिकममत्वभाग्भवेत् यथा — राजोवाच—

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् ।
योऽभूदपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ।।

श्रीशुक उवाच—

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वत्मैव बल्लभः ।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ।।

तद् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।
न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तग्रहादिषु ।।

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।
तथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनुये च तम् ।।

देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः ।
यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ।।

तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ।।

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देही वा भाति मायया ।।

(श्रीमद्भागवत १०/१४/४९ से ५५ तक)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिवम् शेरते संम्पूर्णानि भूतानि यस्मिन् स शिवः तं शिवं सर्वभूताधारं पुनश्च सर्वाणि च तानि भूतानि च इति सर्वभूतानि ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानि तेषु सर्वभूतेषु गूढं तेषां हृदयगुहासु योगमायारणावृतं जीवशुभाशुभकर्मद्रष्टारमेवं विधं निर्गुणं निराकारं ब्रह्म ज्ञात्वा तथा विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं निजमहिम्ना समाच्छादकं देवं दीव्यन्तं विजगीषमानं संग्रामाङ्गणेषु रावणादीन् हत्वा सगुणसाकारं ब्रह्म रक्षकत्वेन निश्चित्य सर्वपाशैः भवबन्धनैः मुच्यते मुक्तः क्रियते । अत्र द्वितीयचतुर्थपादयोः ज्ञात्वेति द्विरुक्तिस्तु निर्गुणं सगुणमिति ब्रह्मद्वयं यौपपद्येन ज्ञातुं विधिवाक्येन प्रेरयति ।।श्रीः।।

भूयस्तदेव ब्रह्म निजगानविषयी करोति एष इति —

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।१७।।

जनानां हृदये सदा संनिविष्टः एषः महात्मा विश्वकर्मादेवः अस्ति हृदा मनीषा मनसा अभिक्लृप्तः (भवति) एतत् जीवाः विदुः ते अमृताः भवन्ति इत्यन्वयः ।

जनानां जनिमतां हृदये अन्तःकरणे सदा सर्वास्ववस्थासु संनिविष्टः अन्तर्यामितया विराजमानः अत्र सर्वत्र हृदयेषु एकेनैवान्तर्यामिरूपेण विराजमानत्वात्, आधेयावच्छेदकैकत्वाभिप्रायेण (वेदाः प्रमाणं) इत्यादिवत् हृदये इति एकवचनम् । एषः साधकानां प्रत्यक्षीभूतः महान्तः परमभागवताः आत्मवत्प्रियाः यस्य स महात्मा अथवा महत्सु तन्मनोमन्दिरावच्छेदेन सत्सु आत्मा यस्य स महात्मा अत्र बाहुलकादसामानाधिकरण्येऽपि "आन्महतः" इति सूत्रेणाकरः । विश्वं संसारः कर्मरचना अथवा विश्वं जगत् कर्मक्षेत्रं यस्य स विश्वकर्मा देवः देदीप्यमानः अस्ति । स कथं ज्ञायते ? इत्यत आह हृदा चेतसायामनीष बुद्ध्या **बुद्धिर्मनीषा धिष्णा धीः"** इत्यमरः। मनः ईष्टे इति मनीषा तया मनीषया इति वक्तव्ये "सुपांसुलुक्" इति सूत्रेण टाविभक्तेर्लुकि मनीषा इति अथवा मनीषया सहितं मनः इति मनीषा मनः तेन मनीषा मनसः मनसा मानसेन स्वान्तेन अभिक्लृप्तः विज्ञातो भवति । अत्र ब्रह्मज्ञाने चेतो बुद्धिमनसां समुपयोगेऽपि ब्रह्मबोधेनाहंकारोपयोगः एतत् रहस्यं ये विदुः ये ज्ञातवन्तः ते अमृताः त्यक्तमरणधर्मावच्छिन्नशरीराः भगवत् पदपद्मकिंकराः भवन्ति ।।श्रीः।।

इदानीं ब्रह्मप्राप्त्यवस्थां विवृणोति जीवः ब्रह्मणि प्राप्ते देशकालावस्थामतीत्य जागतिकधर्मबहिर्भूतो नित्यं परमात्मकैंकर्यानन्दं लभते ।

यदेति—

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासञ्छिव एव केवलः।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी ।।१८।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदा यस्मिन् काले अतमः न विद्यते तमः अज्ञानान्धकारः यस्मिन् तत् अतमः परब्रह्म ज्ञानं वा, अथवा अलमकारप्रश्लेषेण यदा यस्मिन् काले तमः कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलनं नवजलधरनीलं पुञ्जीभूतं तम इव भगवतः श्रीरामस्य त्रिलोक-लावण्यलक्ष्मीमयं भुवनमोहनं श्यामलं अतिसीन्द्रनीलमणिनीलसरसीरुहघनतरुण तमाल-कालिन्दीसलिलसुभगं श्यामलं रूपं दृग् पथपान्थो भवति तदा न दिवा नैव दिवसानुकूल-जगत्प्रवृत्तिः न वा प्रेमसमाधिः सैयातौ व्युत्थानं न वा दिनस्थानज्ञानं न रात्रिः अत्र रात्रिः अविवेकरजनी न नवाममता रात्रिः न वा अविद्यानिशा प्राप्ते ब्रह्मणि न रात्रिः नैवरात्रिसमुचितस्वप्नसुषुप्ती । तत्र न सत् नैव जीवस्य स्वतन्त्रमस्तित्वं च तथा न असत् नैव मायोपलम्भः ब्रह्मणि प्राप्ते साधकस्य समक्षं कस्तावत् भवति ? इत्यत् आह केवलः एकलः शिवः सकलकल्याणमयो भगवान्, यद्वा शिवस्यापि शिवकरः परमेश्वरप्रेमा एवं सकलद्वन्द्वातीतं प्राप्तपरमेश्वरप्रेमप्रसादं भगवत् साक्षात्कारिणं तत् अक्षरमम् परमात्मानं क्षरति सत्संगेन सर्वत्र वितरति इत्यक्षरं, क्षरभावरहितं वा, अक्षाणि समस्तेन्द्रियाणि राति भगवते अर्पयति गोपिका इव तथाभूतं सवितुः परमात्मनः वरेण्यं कृपया वरणार्हम् एवंभूतं निजभक्तं भगवानपि वृणुते । तस्मात् कृतभगवत् साक्षात्कारात् महात्मनः पुराणी परमेश्वरतत्वविवेचनी प्रज्ञा भगवदीया मतिः प्रसृताः दिगन्तेषु प्रसारं नीता ।।श्रीः।।

इदानीं परमात्मानो महिमानं सर्वातिशयतया समभिधातुमुपक्रमते—

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।।१९।।

एनं दिक्देशकालाद्यनवच्छिन्नत्वात् आद्यन्तमध्यरहितत्वाच्च अखण्डमनंत-मनवयवमचिन्त्यमव्यपदेशमव्यवहार्यमलक्षणमव्यक्तमेकमजन्मानमूर्ध्वमुपरि साकेतादौ वर्तमानमपि स्वर्महस्तपोजनः सत्यनिवासः सकलोऽपि ब्रह्मर्षिसमूहः न परिजग्रभत् न परिष्कृत्य ग्रहीतुं शक्नोति । तिर्यञ्चं वक्रं चलन्तम् अपि न ग्रहीतुं शक्नोति, एवं मध्ये भूर्लोके मध्यतो वा न ग्रहीतुं शक्नोति ऊर्ध्वं हि साकेतलोकः तिर्यगन्तरीक्षं रविकिरणानां तिर्यगेव दृष्टिगोचरत्वात् अतएव माघकाव्ये—

"गतं तिरश्चीन मनूरुसारथेः" (शिशुपालवध १/३)

एवं मध्ये भूर्लोकः अतिगहनत्वात् पातालस्य चर्चा न हि। अथ सर्वतोग्रहणानर्हत्वेपि सादृश्येन ग्रहीतुं शक्यत ? इत्यत आह नेत्यादि तस्य परमात्मनः प्रतिमा प्रतिमानं सादृश्यं न अस्ति न विद्यते यस्य भगवतः नाम श्रीरामाद्यभिधानं यशः कीर्तिश्च महत्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महनीयं "यस्य नाम महद्यशः" इति श्रुत्या भगवदवतारवादोऽपि सूचितः । यत्तु न तस्य प्रतिमाअस्ति इति मन्त्रेण भगवतो मूर्तिपूजानिषेधं परिकल्पयन्ति तत्तु संन्निपातग्रस्तानां प्रलपितमिव प्रकरणमत्रत्यमनालोचयताम् कुमनीषितं न श्रद्धेयम् अत्रत्य प्रतिमा पदं सादृश्यपरं, अथ प्रतिमाशब्दस्य सादृश्यार्थे किं मानम् ? यस्य नाम महद्यशः इति इहत्य श्रुतिसकलमेव परमं प्रमाणं न खलु शरीररहितस्य नामयशसी महती भवतः **"सर्वतः पाणिपादं तत्"**(श्वेताश्वतर ३/१७) ननु अपाणिपादोजवनो ग्रहीता इत्यादि श्रुतौ भगवतो रूपराहित्यमस्तीति ? चेन्मैवम् तत्र अनपेक्ष्य पाणिपादः इति व्याख्यानेनादोषात् । वस्तुतस्तु एनमूर्ध्वं साकेतादौ श्रीरामादिरूपं तिर्यञ्च तिर्यक्गमनं मत्स्याद्यवतारं मध्ये मानुषे लोके समागतं श्रीरामकृष्णान्यतरं न परिजग्रभत् न कोऽपि परिश्रान्तोऽपि ग्रहीतुं शक्नोति । यथोक्तं श्री मानसे—

कौसल्या जब बोलन जाई । ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई ।।

(मानस १/२०३/७)

यस्मिन् कृपां कुरुते तेनैव गृह्यत इति भावः। एवं न तस्य जानुपाणिविचरण-काले बाललीलायां विनतकन्धरस्य भगवतो रामलालस्य श्रीराघवस्य लड्डूगोपालस्य च प्रतिमा प्रतिकृतिः मूर्तिः अस्ति विद्यत एव, यस्य प्रतिमाभूतस्य भगवतः नाम महद्यशः इत्यनेन मूर्तिपूजाविरोधिनः परास्ताः।।श्रीः।।

अधुना भगवतः श्रीविग्रहंस्य हृषीकागोचरत्वं साधयति नेत्यादिना—

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।२०।।

अस्य परमात्मनः रूपं संदृशे दर्पणे न तिष्ठति न स्थातुं शक्नोति, सूर्यादिरिव तत्र बिम्बप्रतिबिम्बभावाभावात् व्याप्यत्वाच्च दर्पणस्य तदपेक्षया परमात्मनश्च समधिक-निर्मलत्वात्। एवमेनं परमात्मानं कश्चन कोऽपि प्राकृतो जनः चक्षुषा प्राकृतनेत्रेण न पश्यति न विलोकयितुं शक्नोति । तस्य सर्वथैवाप्राकृतत्वात्।

यथोक्तं भगवता—

'न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा' (गीता ११/८)

हृदिस्थमन्तर्यामिणं हृदा चेतसामनसा स्वान्तेन एनं य एवं विदुःजानन्ति ते अमृताः ते मरणरहिताः भवन्ति ।।श्रीः।।

इदानीं परमात्मानं रुद्ररूपं स्वं त्रातुं मन्त्रद्वयेन प्रार्थयते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते ।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ।।२१।।

हे रुद्र दुष्टरोदनशीलपरमात्मन् तथा च रोदयति रावणादीन् इति रुद्रः । यथोक्तं मानसे—

बहु बिलाप दसकंधर करई । बंधुसीस पुनि-पुनि डरधरई ।।

(मानस ६/७१/)

अजातः भगवान् अजन्मा इदं व्याख्यानं प्राचीनानुरोधेन । वस्तुतस्तु अत्र वाक्यभेद-शब्दाध्याहारकल्पनरूपदूषणसंभावनया परिहर्तव्यमिदम्, अजात इतिः कश्चित् इत्यस्य विशेषणं हे रुद्र! कश्चित् कोपि निरीहः भीरुः बिभेति इति भीरुः कालभुजगात् त्रस्यन् अजातः अकारो वासुदेवः तस्मात् व्यूहरूपात् त्वदंशात् जातः एवमित्थं विचार्य तदंशिनं सर्वस्य शरणं त्वां भवन्तं श्रीरामाख्यं शरणागतवत्सलं प्रपद्यते प्रपन्नो भवामि प्रपद्यत इति "व्यत्ययात् तप्रत्ययः" प्रपद्ये इतिः शब्दार्थकः । मामिति अग्रे उत्तमपुरुषाभिधानात् । हे प्रभो! यत्ते दक्षिणं सौम्यं रुद्रपक्षे दक्षिणदिक्वर्ति श्रीरामपक्षे दक्षिणं लंकाभिमुखं दक्षिणं प्रणतानुकूलं मुखमाननं मुखं सुभटप्रमुखं श्रीहनुमद्रूपं तेन मां निजकिंकरं सौम्यमुखेन हनुमता च नित्यं निरन्तरं पाहि त्रायस्व । मन्त्रोऽयं रुद्रपक्षेत्वभिधया वेदानां भगवति परमतात्पर्यतस्तु व्यञ्जनया श्रीरामरूपे ब्रह्मणि ।।श्रीः।।

अथ सामान्य दृष्ट्या कामेन कोऽपि तम् प्रलयक्रुद्धं वा रुद्रं परमार्थतस्तु रावण-हननबेलायां सागरनिग्रहबेलायां वा परमक्रोधाविष्टं परमेश्वरं कोशलेश्वरं श्रीरामं समनुनिनीषुः भूतब्रातः प्रार्थयते —

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितोवधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे ।।२२।।

हे रुद्र नः तोके तनये मारीरिषः नः आयुषि मारीरिषः नः गोषु मारीरिषः नः अश्वेषु मारीरिषः हे रुद्र भामितः नः वीरान्मावधीः (वयं) सदं त्वां हविष्मन्तः (सन्तः) हवामहे इत्यन्वयरीतिः ।

हे रुद्र ! अशुभ कर्मकृतां रोदयिता नः अस्माकं तोके अल्पवयसि बालके तनये पुत्रे मारीरिषः मा विनाशं समुपस्थापय । नः अस्माकं आयुषि जीवनावधौ मारीरिषः न्यूनतां मा कृथाः, नः अस्माकं गोषु धेनुषु अश्वेषु हयादिवाहनेषु मारीरिषः अल्पतां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानैषीः, हे रुद्र ! भामितः भामः क्रोधः संजातः अस्य इति भामितः संजातरोषः त्वं नः अस्माकं वीरान् पराक्रमिणो योदधृन् मावदीः मानीनशः, वयं प्रार्थयितारः सदं सीदति तिष्ठति प्रलयकर्मणि इति सत् तं सदं तादृशं प्रलये कृतनिश्चयं त्वां भवन्तं हविष्मन्तः प्रशस्तं हविरस्ति येषु तथाभूताः इत् निश्चयेन हवामहे 'गणकार्यस्यानित्यत्वात् नैवस्लुकार्याणि' तथा च हूधातोरेव हवतीत्यादिरूपेषु उत्तमपुरुषबहुवचने हवामहे "व्यत्त्ययादिदं लोके तु जुह्मः तर्पयाम इति भावः ।।श्रीः।।

इति श्रीचित्रकूटनिवासि जगद्गुरुरामानन्दाचार्यश्रीरामभद्राचार्यप्रणीते श्वेताश्वतरोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्री राघवोविजयते तराम् ॥

॥ श्री रामानन्दाचार्याय नमः ॥

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

तुर्ये तुर्यस्य माहात्म्यं यथा युक्त्युपवर्णितम् ।
वर्ण्यते ब्रह्म वैचित्र्यं पञ्चमे पञ्चमाप्तये ।।

अथ चतुर्थेऽध्याये **'न तस्य प्रतिमा अस्ति'** इत्यादि मन्त्रैः ब्रह्ममहिमावर्णितः **"द्वा सुपर्णा"** इत्यादि मन्त्रैः जीवब्रह्ममणोरपि स्वरूपगतः स समारोहं भेदोऽपि निरूपितः । अथ विद्या विद्ययोः क आधारः ?

यदि चेद्ब्रह्म तर्हि तयोस्तेन कः सम्बन्धः न खल्वाधार आधेयस्य केवलं नियन्तैव भवति, प्रत्युत नियम्योऽपि यथास्मदादेर्वृष्यादिः अत एव आधेयरूपविद्या-विद्ययोराधारभूतब्रह्मणा सह किं सम्बन्धवैलक्षण्यम् ? सालक्ष्यण्यं वा वैलक्षण्यं सम्बन्धे स्वरूपे वा सकलमिदं जिज्ञासितं समाधातुं पञ्चमोऽध्याय आरभ्यते ।

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे ।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ।।१।।

अन्वयः :— द्वे अक्षरे अनन्ते ब्रह्मपरे यत्र विद्याविद्ये गूढे निहिते अविद्या क्षरम् विद्या अमृतम् यः तु विद्याविद्ये ईशते सः अन्यः ।

ब्रह्मणो हि द्वैरूप्यम् निर्गुणं सगुणं चेति निर्गुणं नाम निर्लीनगुणकं निष्क्रान्तगुणकं निःशेषगुणकं नीरूपगुणकं निराकृतदुर्गुणकं वा, सगुणं खलु प्रकटितस्वजनोपयोगि-कल्याणगुणकं, ते ब्रह्मणी किं धर्मके ? इत्यत आह द्वे अपि अक्षरे विनाशरहिते न क्षरतः इत्यक्षरे सर्वव्यापके इति भावः । निर्गुणेन सगुणेन ब्रह्मणा खलु चराचरं व्याप्तम्। अथवा अश्नुतः चराचरं व्याप्नुतः इत्यक्षरे सर्वव्यापके इति भावः । निर्गुणेन सगुणेन ब्रह्मणा खलु चराचरं व्याप्तम् । अथ समानतया चराचरव्यापकत्वे द्वयोः किं वैलक्षव्यम् ? इति चेत् श्रूयतां पावकपरिस्थितिके उभे यथा एकः दारुगतो न दृश्यते सर्वैः तथैवेदं निर्गुणं ब्रह्म यथापरः प्रकटितभीषणस्फुल्लिङ्गमालो विस्तीर्ण-विकरालज्वालाज्वालो भस्मसादशेषं करोति तथैवेदं सगुणं ब्रह्म । यथोक्तं मानसे—

एक दारूगत देखिय एकू । पावक सम जुगब्रह्मविवेकू ।।

(मानस १/२३/४)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वे अपि अनन्ते देशकालपरिस्थितिवस्तुपरिच्छेदरहिते, एवं किन्नामके ? अत आह ब्रह्मपरे निर्गुणं नाम ब्रह्मशब्दव्यवहार्यम्। सगुणं नाम परम अर्थात् परंब्रह्मेति कथ्यते । निर्गुणतः परत्वे सगुणब्रह्माणः किं मानमिति चेत् गीतैव गृह्यतां **"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्"** (गीता १४/२७)। अत्र ब्रह्मणः निर्गुणब्रह्मणः प्रतिष्ठानिवासस्थानं प्रतिष्ठाप्राप्तिस्थानं वा अहं सगुणं ब्रह्म वसुदेवनन्दनः श्रीकृष्णः इत्यर्थः । ननु सगुणब्रह्मणः परब्रह्मव्यपदेशे किं मानम् ? इति चेत् तत्रैव श्रीगीतायां अर्जुनवाक्यम्, **"परंब्रह्म परंधाम पवित्रं परमं भवान्"** (गीता १०/१२)

एवं निर्गुणं ब्रह्म सगुणं परब्रह्मेति व्यवस्था द्वे अपि अनन्ते अन्तरहिते तयोरेव विद्यासगुणे ब्रह्मणि, अविद्या च निर्गुणे ब्रह्मणि गूढ़े भगवन् महिम्ना प्रच्छन्नस्वप्रभावे निहिते स्थिते स्तः । यत्तु अक्षरे इत्यादि पदत्रयं सप्तम्यन्ततया व्याचक्षते तत् चिन्त्यम्। यत्र इत्यस्य अनर्थकत्वात् सप्तम्यन्तानां विशेषणत्वेन प्रसिद्धेः । यच्छब्दस्य च तच्छब्दसापेक्षत्वात् तत्पदवाच्यब्राह्मणोऽध्याहारावश्यकत्वात् । ब्रह्मपरे इत्यत्र ब्रह्म शब्दस्य हिरण्यगर्भत्वेन व्याख्यानकल्पना पृथक्पदकल्पने च तत्र ब्रह्मशब्दस्य विशेषणतया व्याख्यानात् असमस्तकल्पने तत्र लुप्तविभक्तिकत्वसमवधानात् । इत्थं विपुलकल्पनागौरवग्रस्ततया सदोषत्वाच्च सप्तम्यन्तव्याख्यातो अक्षरादिपदत्रयस्य प्रथमाद्विवचनान्तव्याख्यनमेव ज्यायः । एवमविद्या नाम भगवद्ज्ञानशून्या भिन्ना भूम्यादिरष्टधाप्रकृतिः । तथा च नास्ति विद्या ब्रह्मविद्यात्मको भगवद्बोधः यस्यां सा- विद्या, न खलु भूम्यादिरष्टधा प्रकृतिः जडप्रायत्वात् भगवद्विमर्शे प्रभवा । एवं विद्या वेत्ति ब्रह्मतत्वं जानाति या तथाभूता, विद्यते वा ब्रह्म परमाराध्यत्वेन यस्यां हृद्देशे सा जीवनाम्नी विद्या, अथवा विद्या ब्रह्मविद्या अस्त्यस्यां सा विद्या परा प्रकृतिः जीवभूता। अत्रेदं विवेक्तव्यं यत्विद्या नाम नैवेषावास्योपनिषद्प्रोक्ता देवलोकाख्या, न वा अविद्या तत्प्रोक्ता पितृलोकपर्याया । अत्र तु विद्या नाम पराकृतिः जीवनाम्नी अविद्या च अपराप्रकृतिः भूम्यादिरष्टधा जीवभूता, विद्याभिधा पराप्रकृतिरक्षरा अपरा च अष्टधा- भूम्यादिजीवभोगोपकरणरूपा क्षरा । अथ किं मूलं व्याख्यानमिदम् ? अत्रत्यमेव तृतीयपादं क्षरं त्वविद्या इत्यादि इदमेव श्रीगीतायां ज्ञानविज्ञानयोगमाध्यमेन भगवान् व्यावृणोत्—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।

(गीता ७/४,५)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्थं पुराणेतिहासनयेऽपि अष्टधा प्रकृतिर्भूम्यादि रुक्मिणीप्रमुखा अष्टौ महिष्यः जीवानामनेकत्वात् । विविधयूथोगोपीसमूहः जीवभूतपरप्रकृतिरूपः भगवन्तं महारासे सममिलत् । यथाह श्रीभागवते भगवाञ्छुकाचार्यः—

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ।
व्यरोचताधिकं तात पुरूषः शक्तिभिर्यथा ।।

(श्रीमद्भागवत १०/३२/१०)

ताभ्यां परापरारूपाभ्यां रासगतगोपीद्वारकामहिषी संज्ञाभ्यां विलक्षणा श्रीराधा तु भगवदभिन्ना भगवद्रूपैवेति ध्येयम् । एवं विद्याविद्ययोर्वैलक्षण्यं किं तदेव द्योतयितुं तु शब्दः । तु, किन्तु ब्रह्मणि निहिता अपि अविद्याक्षरा अभिप्राय एषो यत् भवतु नाम सर्वाश्रयतया निर्गुणं ब्रह्म ह्यविद्याया आश्रयः परं तत् क्षरत्वं तेन न व्याहन्तुं शक्यं इदमेव तु शब्देन व्यनक्ति । अविद्या अष्टधा प्रकृतिः क्षरं हि निश्चयेन विद्या अमृतं क्षर-शब्दसन्निधानेन अमृतमक्षरपर्यायवाची विद्या अक्षरमिति भावः । अनयोः स्त्रीत्वेऽपि क्षरमक्षरमिति वस्तुविशेषणतया क्लीबे प्रयुक्तम् ईश्वरः आभ्यां विलक्षण इत्यत आह विद्याविद्ये परापरे क्षराक्षरे जीवतदुपभोगसाधनभूते ईशते नियच्छति गणकार्याणा-मनित्यत्वात् ईशधातोः भ्वादिकत्वात् न शपो लुक् । लोके तु ईष्टे इत्येव यः तयोर्नियमनंकरोति स एव प्रकृतिद्वयाधीशः । ततः ताभ्यां विद्याविद्याभ्यां अन्यः अतिरिक्तः परब्रह्म परमात्मा एतदुपबृंहणमेव श्रीगीतायाः पुरुषोत्तमयोगे,

द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।

(गीता १५/१६,१७)

अनेन मन्त्रेण भगवत्या श्रुत्या सुस्पष्टं जीवब्रह्मणोर्भेदः ब्रह्मजीवप्रकृतिरिति तत्त्वत्रयं पृथिव्यादीनि जीवोपभोगसाधनानीति विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तः प्ररोपितः ।।श्रीः।।

अथ कोऽसौ "विद्याविद्ययोरीशानस्ततो विलक्षणः" इत्यत आह—

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः।
ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वयः :—

यः एकः योनिम् योनिम् विश्वानि रूपाणि च सर्वाः योनिः अधितिष्ठति यः अग्रे प्रसूतम् कपिलम् ऋषिम् ज्ञानैः बिभर्ति तम् च जायमानम् पश्येत् सः इत्यन्वयः।

यः एकः सकलविलक्षणः योनिं योनिं देवतिर्यङ्नरसंज्ञां विश्वाणि रूपाणि तद्गताननेकान् आकारान् च तथा सर्वाः योनीः सर्वभूतप्रभवस्थानानि अधितिष्ठति निजमहिम्नैवाधारीकरोति । स परमात्मा कियान् पुराणः? इत्यत आह, यः अग्रे स्वायंभुवे मन्वन्तरे प्रसूतं कर्दमेन देवहुत्यामुत्पादितं कपिलं भगवदंशम् ऋषिं कर्दमपुत्रं सांख्यशास्त्रप्रणेतारं ज्ञानैः सांख्यशास्त्रसम्बन्धिभिः प्रकृतिपुरुषतद्विकारतदधीशरूपषड्विंशति-तत्वभेदैः बिभर्ति अंशित्वेन धारयति पुष्णाति । च यस्तं जायमानं देवहूतिगर्भतः समाविर्भवन्तं निजांशं कपिलं अंशी सन् पश्येत् अपश्यत् "व्यत्ययात्" अपश्यत् इत्यर्थे पश्येदिति लङ्लकारप्रयोगः । यत्तु केचन ऋषिं प्रसूतं कपिलमित्यस्य त्रिकालद्रष्टारं स्वतोत्पादितं हिरण्यगर्भमिति व्याचक्षते, तत्तु दुराग्रहग्रस्तत्वात् हठप्रलपितमेव । श्रुतिर्हि सर्वेषामवताराणां मूलं यतो हि इतिहासपुराणानि "वेदार्थोपबृंहणानि" ऋषिं प्रसूतं कपिलम् इति श्रुतिः कापिलावतारं प्रमाणयति तमेवोपबृंहन्ति अष्टादशपुराणानि रामायणमहाभारतमितीतिहास द्वयं च । भागवते स्पष्टं कपिलावतारोपाख्याने तृतीयस्कन्धे त्रयोदशाध्यायावर्णितः कपिलश्च साक्षात् भगवान् उक्तः । यथा —

तस्यां बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः ।
कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिवदारूणि ।।

(भागवत ३/२४/६)

प्रथमस्कन्धेऽपि अवतारगणनोपक्रमे पञ्चमाऽवताररूपेण कपिलो व्याख्यातः,

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्।
साख्यं चासुरये प्रादात् तत्वग्रामविनिर्णयम्।।

(भागवत १/३/१०)

श्रीगीतायामपि भगवान् कपिलः भगवद्विभूतित्वेनैव परिगणितः **"सिद्धानां कपिलो मुनिः"** (गीता १०/२६) यत्तु सांख्ये निरीश्वरवादमारोप्य तदाचार्येऽपि निरीश्वरत्वमर्वाचीनत्वमवैदिकत्वं च समुपस्थाप्य पुराणेतिहासकपिलशब्दं हठेन हिरण्यगर्भार्थतया व्याख्याय वैदिकीमर्यादैवातिकान्ता, तत् सर्वथैवानुचितम् । एकत्र वेदव्यासं भगवन्तं मन्यन्ते वेदान्तदर्शनकृतं तत्रोदाहरन्ति गीताया एव वाक्यं **"वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम्"** (१५/१५) तत्रैवापरत्र **"सिद्धानां कपिलो मुनिः"** यदि गीतावाक्ये-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नैव प्रमाणितभगवद्विभूतिकपिलं निराकुर्वन्ति । इत्यसंगतो **अर्धजरतियन्यायः** यदि वेदान्तसूत्रकारो भगवान् तर्हि सांख्यसूत्रकारोऽपि द्वयोरपि स्वविभूतित्वेन भगवतैव प्रतिपादितत्वात् कपिलस्य कृते **"सिद्धानां कपिलोमुनिः"** (१०/२६) व्यासस्य कृते **"मुनीनामप्यहं व्यासः"** (१०/३७) वैदिकसिद्धान्तवर्णने सांख्यावेदान्तनिरूपणेषु कपिलवेदव्यासयोर्भगवतोर्विवादे जीवभूतैरस्माभिर्मूकैरेव भवितव्यम् । भगवदभिप्रायवर्णने के वयं क्षमामहे वराकाः । सांख्ये वस्तुतः सम्प्रदायद्वयं सेश्वरवादः कपिलस्य **"षाड्विंशो हि पुरूषः"** इति भारते भगवानेव षड्विंशः तत्वरूपेण स्वीकृतः । भागवतेऽपि सांख्याचार्यः सन्नपि देवहुत्युपदेशप्रकरणे भक्तियोगं ज्ञानयोगं चापि प्रणिजगौ इति। किञ्च मा भवतु पप्रच्छन्नबौद्धानुकूलं सांख्यशास्त्रं परन्तु भूयो वैष्णवसिद्धान्तानुकूलम् । तथा हि वयं विशिष्टाद्वैतवादिनो रामानन्दीयाः श्रीवैष्णवाः प्रत्यक्षमनुमानं शाब्दमिति सांख्यानुमतं प्रमाणत्रितयं स्वीकुर्मः, सांख्यसम्मतं सत्कार्यवादमपि समङ्गीकुर्मः । तथा च पुरुषबहुत्वं सांख्यानुमोदितमेवाङ्गीकुर्मः । किञ्च तत्तत् सर्वं श्रद्दध्महे यद्यन्न विरुणद्धि भगवान् बादरायणः । इत्यलमतिशयनास्तिकसिद्धान्तपिष्टपेषणेन ।।श्रीः।।

भूयस्तस्य परमात्मनः जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारलीलां समामनति ! एकैकमित्यादि,

एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन्क्षेत्रे संहरत्येष देवः ।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ।।३।।

अन्वयः — एषः देवः अस्मिन् क्षेत्रे एकैकम् जातम् बहुधा विकुर्वन् संहरति तथा भूयः पतयः सृष्ट्वा महात्मा सर्वाधिपत्यं कुरुते ।

एषः देवः यः स्वायंभुवे कपिलं बिभर्तिस्म स एव एकैकम् एकमेकं जालं संसारसम्बन्धनामकं जालमिवबन्धनात्मकं जीवं वा बहुधा अनेकधा तत् पुत्रपौत्रादि-सन्तानपरम्परारूपेण मोहपरम्परारूपेण वा विकुर्वन् विस्तारयन् अस्मिन्नेव क्षेत्रे संसारे क्षीयते विनष्टुं भवतीति । क्षेत्रं संसारो हि नाशवान् जीवपरम्परा वितत्य भगवान् किं करोति ? इत्यत आह संहरति । प्रलयकाले सम्पूर्णानि जीवजातानि संकलयति यथा कोऽपि जालवान् विस्तृतं जालं समूह्यति । पश्चात् किं कुरुते ? इत्यत आह , भूयः, पुनः प्रलयावसाने पतयः प्रजापतीन् पतय इति व्यत्ययेन प्रथमा सृष्ट्वां विरचय्य ईशः, सर्वसमर्थः महात्मा, महामनस्वी जगत्सृष्ट्वा परमेश्वरः सर्वेषां जीवानामाधिपत्यं अधिपतेः कर्म कुरुते रक्षणरूपं कर्मानुतिष्ठति इति भावः । आधिपत्यमित्यत्र कर्मणि शञ् कर्मत्वं चात्र क्रियारूपं न तु व्याकरणशास्त्रीयं प्रकृतिजन्यधातूपात्तकर्तृवृत्यव्यापार-प्रयोज्यफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छानिरूपितोद्देशताश्रयत्वावच्छेदकत्वम् ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ भगवान् प्रतियोनिस्वभावान् कथमधितिष्ठति इति आह —

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्प्रकाशयन्भ्राजते यद्वनड्वान् ।
एवं स देवो भगवान्वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ।।४।।

यत् उ सर्वादिशः ऊर्ध्वं अधः तिर्यक्च प्रकाशयन् यद्वत् अनड्वान् भ्राजते एवं स देवः वरेण्यः भगवान् एकः सन् योनिस्वभावान् अधितिष्ठति । सर्वादिशः पूर्वाद्याः ऊर्ध्वमाकाशमधःपातालं तिर्यक् अग्न्यादिकोणान् प्रकाशयन् निजकिरणरोचिषा भाषयन् अनड्वान् सूर्यदेवः, यत् उ येन प्रकारेण भ्राजते निरस्तमायातिमिरेण तेजसा विराजते । एवं सः पूर्वोक्तः देवः द्योतमानः परमप्रकाशस्वरूपः वरेण्यः निखिलप्राणिनां आश्रयतया वरणीयः भगवान् षडैश्वर्यसम्पन्नः एकः केवलः सन् योनिस्वभावान् प्रकृतिस्वभावान् अधितिष्ठति साधिकारं नियमयति सूर्य इव निजतेजसैव समस्तप्राणिनोऽतिशेते ।।श्रीः।।

अधुना भगवत् ऐश्वर्यं विवृणुते यच्चेत्यादिना —

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान्परिणामयेद्यः ।
सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान्विनियोजयेद्यः ।।५।।

विश्वयोनिः यत्स्वभावं पचति च यः सर्वान्पाच्यान् परिणामयेत् एकः एतत् सर्वं विश्वम् अधितिष्ठति । च सर्वान् गुणान् यः विनियोजयेत् स भगवान् इति पूर्वान्वयः। तुर्यश्लोके स देवरो भगवान् इत्युक्तम् तत्र भगवतो भगवत्वप्रतिपादकं एश्वर्यमेवोपबृंहयति। विश्वस्य संसारस्य योनिः कारणमिति विश्वयोनि यत् येन सामर्थ्येन स्वभावं पदार्थानां वैशिष्ट्यानि पचति परिपाकं नयति पृथ्व्यां गन्धं जले शीतलत्वमाधुर्ये अग्नावौष्ण्यं वायौ स्पर्शमाकाशे शब्द एवंविधंभूतस्वभावं य पचति । च तथा सर्वान् पाच्यान् भूम्यादीन् परिणामयेत् अत्र "व्यत्ययेन"विधिर्लिङ् परिणामं प्रापयतीत्यर्थः । यः एकः अनपेक्षितसहायः एतत् सर्वं विश्वं स्थावरजंगममधितष्ठति निजमहिम्ना प्रशास्ति, यः परमात्मा सर्वान् गुणान् सत्वरजस्तमोरूपान् जीवस्य भिन्नभिन्नस्वभावगतान् वा विनियोजयेत् स्वस्वकार्येषु प्रवर्तयति एवं स्वभावपञ्चभूतनिखिलविश्वसमस्तगुणनियामकत्वं भगवत्वमिति फलितम् ।।श्रीः।।

तं परमात्मानं के विदुः तद्वेदने च किं फलमित्यत आह—

तद्वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद्ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम् ।
ये पूर्वदेवा ऋषयश्च ततद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुगमोऽन्वयः ।

तद् परब्रह्म नैव सामान्यजनकल्पनाप्रसूतं, प्रत्युत् वेदानां श्रुतीनां भागभूताः गुह्याः गोपनीयाः याः उपनिषदः तासु गूढं तन्मन्त्रार्थे निहितं तादृशं ब्रह्मणः वेदस्य योनिं प्राक्स्थानं ब्रह्मा चतुर्मुखोविधाता वेदते । एवं पूर्वं देवाः पूर्वे देवाः शिव-पुरन्दरादयः ऋषयश्च सनकादयो चकारेण नारदादयः ये विदुः जज्ञुः ते तन्मयाः भगवद्भावप्रचुराः अमृताः भगवत्कैंकर्ययोग्यशरीराः बभूवुः जाताः भगवद्ज्ञानेन निरस्तमाया तत्कार्यतया प्रारब्धजनितशरीरविगमे अमृताः बभूवुः अभवन् अतिक्रान्तमरणमर्यादाजाता इति भावः ।।श्रीः।।

एवंगुणगणविशिष्टपरमात्मांशभूतस्तद्विलक्षणो जीवः किमरूपः ? इत्यत आह गुणान्वयेति यतो हि वेदे गुह्यब्रह्मबोधेन तद्वेतृणाममृतत्वमुक्तम् —

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता ।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ।।७।।

भगवन्तमजानन् जीवः किं दशो भवति इति विवृयते यःभगवन्तं न जानाति स जीवः गुणान्वयः गुणानां सत्वरजस्तमसामन्वयः अनुबेधो यस्मिन् तथाभूतः भगवन्तं ज्ञात्वैव जीवः गुणातीतो भवति। यतो हि माहात्म्ये विज्ञाते भगवदीये समुदितायाञ्च ततो भक्तौ साधको गुणानत्येति । यथाह भगवान् गीतायाम्—

मां च योऽव्यभिचारेण, भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्म भूयाय कल्पते ।।

(गीता १४/२६)

फलप्रदकर्मणां कर्त्ता सकामत्वात् भगवति ज्ञात एवं । कर्मबन्धानि क्षीयन्ते

''इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते''

(गीता ७/१४)

एवं कृतस्य तस्य सकामकर्मणः स उपभोक्ता नान्यः कश्चन् अतएव कर्मफलभोगानुसारं जन्ममरणादिचक्रम् । तस्मात्स विश्वरूपः अनेकरूपवान् त्रिगुणः सत्वरजस्तमोऽवच्छिन्नः त्रीणि मर्त्यलोकस्वर्गनरकाणि देवतिर्यङ्मनुष्याख्यानि वर्त्मानि मार्गाः यस्य तथा भूतःप्राणानां पञ्चश्वासवायूनामधिपः अधिष्ठाता, अयं जीवः भगवत्पदपद्मपरागपराङ्मुखः स्वकर्मभिः शुभाशुभैः लब्धानेकजन्मा संचरति संसारसागरे मायाझंझाविवर्तैर्भ्रम्यते तस्मात् संसारकान्तारसंचरणोपरतये भगवानेव भजनीयः इति तात्पर्यम् ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधुना जीवात्मनः स्वरूपं निर्धारयति—

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः ।।८।।

जीवस्य खलु द्वैविध्यं भगवत् प्रपन्नजीवः भगवत् विमुखजीवश्चेति, सामान्यतः जीवः अङ्गुष्ठमात्रः अङ्गुष्ठाकारः रवितुल्यरूपः रविणा सूर्येण तुल्यं रूपं यस्य तथाभूतः सूर्यसमान तेजस्वी । ननु रवितुल्यरूपस्यापि कथमङ्गुष्ठाकारिता यतोहि यःजीवात्मा संकल्पेन क्रतुना मनुधर्मेण अहंकारेण कर्तृत्वाभिमानेन बुद्धेः गुणेन आत्मनः मनसश्च गुणेन समन्वितः सङ्कल्पो मनोगुणः अहंकारश्च बुद्धिगुण इति विवेकः । ताभ्यां समन्वितः छुद्राकारः अपि किन्तु अपरः संकल्पाहंकाररहितः अपरः अकारो रामचन्द्र तस्मिन्परः भगवत्प्रपन्नः आराग्रमात्रः आरं काष्ठछेदनयन्त्रं तस्य अग्रं प्रमाणम्, यस्य, कथं जानासि ? इत्यत् आह दृष्टः हिं निश्चयेन हिं विलोकितः ।।श्रीः।।

सूक्ष्मोऽपि जीवः भगवद्भजनमहिम्ना अनन्तो भवतीत्याह—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ।।९।।

बालस्य केशस्य अग्रस्यापि यः शतभागः शतपूरको भागः सोऽपि शतधा कल्पितः सन् एकोभागः अर्थात् बालस्य दशसहस्रतमो यः भागः स एव तत् समानो जीवः विज्ञेयः स च जीवः एतावानपि सूक्ष्मः जीवः भगवद्भजनमहिम्ना आनन्त्याय निःसीमत्वाय कल्पते प्रभवति ।।श्रीः।।

अस्य जीवस्य किं लिङ्गमित्यत आह—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्ष्यते ।।१०।।

एषः जीवात्मा स्त्री नारी नैव पुमान् न पुरुषोऽपि न। अयं जीवः नपुंसकोऽपि क्लीबोऽपि न त्रिलिङ्गरहितः । वस्तुतस्तु यत् यत् यद्यल्लिङ्गात्मकं शरीरं देहमादत्ते तेन तेन शरीरेण सः जीवात्मा रक्ष्यते त्रायते । पुरुषशरीरं वहन् पुरुषेण स्त्रीदेहं प्राप्नुवन् स्त्रिया क्लीबत्वं व्रजन् क्लीबशरीरेण रक्ष्यते त्रायते ।।श्रीः।।

अधुना जीवस्य संसारसंसरणं निरूपयति —

संङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रासाम्बुवृष्ट्या चात्मविवृद्धि जन्म ।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसंप्रपद्यते ।।११।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संकल्पः प्राक्तनजन्मवासनारूपः अथवा जीवस्य पित्रोः तज्जन्मनि मिथोरिरंसारूपः संस्पर्शनं गर्भाधानक्रिया दृष्टिः अन्योऽन्य दर्शनं मोहः स्वरूपविस्मरणं एभिरेव जीवस्य जन्मग्रासः भोजनं तेन सहिता अम्बुवृष्टिः जलवर्षणम् एभिरेव आत्मनः जन्मवृद्धिश्च भवति। एवमेव असौ देही भिन्नभिन्नस्थानेषु गर्भेषु कर्मानुगानि शुभाशुभकर्मपरिणामभूतानि रूपाणि शरीराणि प्रपद्यते प्राप्नोति ।।श्रीः।।

अधुना जीवस्य रूपवर्णे गुणानां कारणत्वं स्पष्टयति —

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति ।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ।।१२।।

जीवः स्वकीयसंस्कारैः शरीरस्य च क्रियाविशेषैः वैयक्तिकैश्च अहंतादिभिर्गुणैः अनेकानि शरीराणि स्वीकुरुते। तदेवाह क्रियासंस्काराः तासां गुणैः वैलक्षण्यद्योतकैः आत्माशरीरम् "**आत्मा शरीरे जीवेच**" इति कोषात्। तस्यापि गुणैः दर्शनश्रवणादिभिः हेतुभूतैः देहीदेहाभिमानी जीवात्मा स्वगुणैः बन्धनभूतैः अत्र गुणशब्दः रज्जुपरः। स्थूलानि हस्त्यादीनि सूक्ष्माणि पिपीलिकादीनि बहूनि अनेकानि रूपाणि देहान् वृणोति तेषां परस्परं संयोगः कथम् ? तस्य हेतुः अपरः जीवात्मविलक्षणः अथवा अकारात् वासुदेवादपि परः उत्कृष्टो ब्रह्ममयः श्रीरामः अपि निश्चयेन दृष्टः साक्षात्कृतः अस्माभिर्महर्षिभिः इति शेषः ।।श्रीः।।

एवं षड्भिरश्लोकैः जीवस्वरूपं वर्णयित्वा परमकारुणिकश्रुतिः तस्य मुक्त्युपायं अपि प्राह —

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।१३।।

अनाद्यनन्तम् आद्यन्तरहितं कलिलं नाम पङ्क तद्युक्तं स्थलं च, अत्र लक्षणया हृदयमेव कलिलम्, अर्थात् भगवत्प्रेमपङ्कपङ्किलहृदयरूपकलिलस्य मध्ये एव परमात्मा विराजते। अथवा कलिं संसारकलहं कलियुगं वा इति कलिलं तस्य मध्ये यस्मिन्नन्तःकरणे जगत् कलहो न तत्रैव भगवान् विराजते एवंभूतं विश्वस्य स्रष्टारं जगत् कर्तारमनेकानिकच्छ-मत्स्यवराहादीनि रूपाणि अवतारा यस्य तथाभूतं विश्वस्य अद्वितीयं व्यापकं देवं श्रीरामं निजनाथत्वेन ज्ञात्वा जीवः सर्वपाशैः मुच्यते ।।श्रीः।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमात्मज्ञानेन मायामयशरीरनिवृत्तिं स्तुवन्नध्यायम् उपसंहरति —

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ।।१४।।

भावाः भगवत्परितोषणानुकूलक्रियाविशेषाः शान्तदास्यसख्यवात्सल्यमधुराख्याः तैः गृह्यते इति भावाग्राहः तथाभूतम् अनीडाख्यं नास्ति नीडं पक्षिनिवासभूतं गृहं ते अनीडाः परमहंसाः मुनयः तैः अनीडैः परमहंसपरिव्राजकैः आदरेण ख्यायते वर्ण्यते इत्यनीडाख्यः, तं यत्तु अशरीरमिति व्याख्यातम् तच्छ्रुतिविरुद्धं **'सर्वतः पाणिपादंतत्'** (श्वे. उ. ३/१७) भावस्य संसाररूपस्य अभावकरं, यद्वा भक्तेषु भक्तिभावकरं दुष्देषु च बलाभावकरं तादृशं कलानां षोडशानां सर्गं निर्माणं करोति इति कलासर्गकरः तमेवं भूतं देवं दिव्यविग्रहं श्रीरामसंज्ञं देवं ये विदुः ये जानन्ति, ते तनुं मायां तनोति प्रपञ्चं या सा तनुः माया इति व्युत्पत्तेः जहुः त्यक्तवन्तः । अथवा ते तनुमजहुः न त्यक्तवन्तदिव्यशरीराणि प्राप्तवन्त इति भावः । अथवा जहुरिति ओहाक्त्यागे इति धातोः लिटि प्रथमपुरुषबहुवचनरूपं त्यागश्च भगवत्समर्पणं तनुं जहुः भगवन्तं विज्ञाय शरीरं भगवते समर्पितवन्तः, तदुपलक्षणान् सकलानपि धर्मान् भगवदर्पणान् कृतवन्तः।

यथोक्तं मानसे—

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही । विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्ही ।।

इति श्रीचित्रकूटनिवासि जगद्गुरूरामानन्दाचार्यश्रीरामभद्राचार्यमहाराजैः
प्रणीते श्रीराघवकृपाभाष्ये पञ्चमोऽध्यायः।।
श्रीराघवः शं तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्री राघवोविजयते तराम् ।।

।। श्री रामानन्दाचार्याय नमः ।।

।। अथ षष्ठाऽध्यायः ।।

षष्ठाध्याये तमेवार्थं वर्णत्यखिलेश्वरम् ।
ऊनविंशतिमन्त्रैस्तु चतुर्भिश्चोपसंहृतिः ।।

षडध्यायीयमुपनिषद् परमेश्वरस्य भगवत्वनिरूपिका अस्यामेव द्विर्भगवान् शब्दत उपात्तः यथा "**सर्वव्यापी स भगवान्**" (श्वेताउ॰ ३/११) "**एवं स देवो भगवान् वरेण्यः**" (श्वेताउ॰ ५/४) तस्मात् भगवत्वप्रतिपादनं समुचितमेवात्र । भगवत्वं हि नित्यतया षडैश्वर्यसम्पन्नत्वं षडैश्वर्याणि च ऐश्वर्यधर्मयशश्रीज्ञानवैराग्यणि । यतोक्तम्—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।।

तस्मादत्र षट्स्वध्यायेषु यथाक्रममेकैकभगस्यैकस्यैकैकस्मिन्नध्याये वर्णनम् । अत्र हि षष्ठे वैराग्यस्य वर्णनम्, ग्रन्थोपसंहारे प्रथमाध्यायोक्तानां स्वभावादीनां हेतुत्वेनाभासितानां हेतुपदं साम्प्रतं स्पष्टं निरस्यति स्वभावमित्यादिना—

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः ।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ।।१।।

अत्र मन्त्रे एके अकवयः इति पदच्छेदः कवयो हि नव्यलीकं वदन्ति, तस्मात् एके अकवयः स्वभावम् (हेतुम्) वदन्ति । तथा परिमुह्यमानाः अन्ये कालम् (हेतुम् वदन्ति), तु एषः देवस्य लोके महिमा येन इदम् ब्रह्मचक्रम् भ्राम्यते, इति निगूढोऽन्वयः।

अकवयः अविद्वांसः कामरागोपहतचित्ताः एके अन्ये "**एकोऽन्यार्थे** " इति कोषात्। स्वभावं निजनिजस्वाभाविकीं शक्तिमेव हेतुं वदन्ति प्रतिपादयन्ति । तथा समुच्चयार्थोऽयमव्ययः। परिमुह्यमानाः परितो मुह्यमानाः धर्मार्थकाममोक्षान् यथार्थतया न जानन्तो मोहग्रस्ताः तान् अयथार्थतया व्याचक्षाणा इति भावः ।

अथ पुरुषार्थचतुष्के किमिति याथार्थ्ययथार्थविवेचनमिति चेन् सावधानं समाकर्णय। यथार्थो निष्प्रमादभगवद्भजनं अयथार्थस्ततोऽन्यो लोकधर्मः । अर्थो यथार्थो हि परमात्म पदपद्मपरागमकरन्दप्रेमरूपः समास्वादनविशेषः । ततोऽन्यो गजवाजिधेनुहिरण्यादिः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कामो यथार्थ: कोटिकोटिशरदिन्दुनिन्दकलोकाभिरामश्रीराममुखेन्दुमाधुरीपीयूषपिपासा सांसारिकसौन्दर्यदिदृक्षा ततोऽन्य:, मोक्षो यथार्थो भगवद्भक्तसंग: ततोऽन्यो आवरणभङ्गादि: अयमेव विवेक: एतच्छून्यता परिमोह: एतेन ग्रस्ता: काल: उपलक्षणतया प्रथमाध्यायकथितान् आत्मपर्यन्तान् हेतुमिति वदन्ति । तेषां मतं निरस्य सिद्धान्तमाह, तु असन्तोषप्रदर्शनं पूर्वोक्तमतानि न सन्तोषावहानीति भाव: । एष:, अयम् जगदुत्पत्ति: स्थितिभङ्गहेतु: लोके लोकविषयक: लोकप्रसिद्धो वा देवस्य भगवत: महिमा अघटितघटनापटीयान् ऐश्वर्यविशेष: येन भगवद्महिम्ना इदं पुरतो वर्तमानं ब्रह्मचक्रं प्रथमाध्याये वर्णितस्वरूपं ब्रह्मण: सृष्टिचक्रं भ्राम्यते भ्रमणमापाद्यते ।।श्री:।।

यस्य महिम्ना ब्रह्मचक्रं भ्राम्यते तस्य भगवत्स्वरूपं कीर्तयति येनेत्यादिना ।

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञ: कालकारोगुणी सर्वविद्य: ।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ।।२।।

अन्वय: — येन सर्वम् आवृतम् य: कालकार: गुणी सर्वविद्य: तेन ईशितम् कर्मविवर्तते तेन (ईशीतानि) पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि (तत्) इदम् नित्यचिन्त्यम् इति दुरूहोऽन्वय: ।

जिज्ञासुं सावधानं कुर्वन् समुपदिशति श्वेताश्वतर: । येन परमात्मना सर्वं चराचरं स्वमहिम्ना चराचरमावृतम् आच्छादितम् य:, परमात्मा कालकार:, कालं करोति उत्पादयति यस्तथाभूत: कालस्यापि निरवयवस्य जन्मदातेति भाव: । गुणी , गुणा: प्रशस्ता: निरस्तसकलहेयगुणप्रत्यनीका: सौन्दर्यमाधुर्यसौशील्यतारुण्यकारुण्य-दयादाक्षिण्यादय: सकलकल्यारुण्य-कारुण्यदयादाक्षिण्यादय: सकलकल्याणमयसद्गुणा: नित्यं सन्त्यस्मिन् इति गुणी, इत्यनेन निर्गुणवादप्रसादो भूमिसात्भूत: । यत्तु ब्रह्मणो निर्धर्मत्वं गुणराहित्यञ्चय प्रलपन्ति तदसङ्गतम् । निरपेक्षमपि परमात्मानं नहि कदापि गुणा:जहति । सर्वविद्य:, सर्वा:विद्या यस्मिन् स सर्वविद्य: तेन परमात्मना ईशितं प्रेरितं कर्म श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तं नित्यनैमित्यिकप्रायश्चित्रोपासनाख्यं विवर्तते, व्यवस्थितं वर्तते इति विवर्तते व्यवस्थया प्रवर्तते इति भाव: । तेनैव पृथ्वी च आपश्च तेजश्च अनिलश्च खं च इति पृथ्वप्तेजोऽनिलखानि, भूमिजलतेजोवायुनभांसि तेनैव प्रेरितानि व्यवस्थया वर्तन्ते, परमात्मानुशासनं विना पृथिवी धारणां जह्यात् जलं माधुर्यं त्यजेत् अग्निरौष्ण्यं विसृजेत् वायुर्न वायात्, आकाशो नावकाशं दद्यात् । यथोक्तम् भागवते,

मद्भयात् वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युं धावति पञ्चम: ।।

तत् इदं निखिलशासकं नित्यं सदैव परब्रह्मचिन्तामणिभूतं चिन्त्यं चिन्तनविषयतां नेयम् ।।श्री:।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्बन्धः :— चिन्त्यस्य परमात्मनः स्वरूपमाह—

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम् ।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ।।३।।

सुगमोऽन्वयः—

इदानीं चिन्तनप्रकारं वर्णयति, परमात्मचिन्तने सति, तस्य परमात्मनः सम्बन्धिकर्म इति तत्कर्म कृत्वा सर्वं विहितं कर्म परमेश्वरप्रीतये विधायेति भावः । भूयः पुनः फलप्राप्तिवेलायां विनिवर्त्य फलाशातः मनः परावर्त्य सर्वस्य कर्मणः सफलस्य परमेश्वरचरणयोः समर्पितत्वात् पुनः किं कृत्वा ? इत्यत आह त्रिभिः पदैः तत्वेन निजस्वरूपेण विशदप्याह , एकेन अव्यक्तनाम्ना द्वाभ्यां लोकपरलोकाभ्यां त्रिभिः सत्वरजस्तमोभिः, यद्वा पुत्रैषणावित्तैषणालोकैषणारूपैः अष्टभिः मनोबुध्य्यंहकारसहितैः पञ्चभूतैः कालेन आत्मनः शरीरस्य गुणैः क्षुत्पिपासादिभिः सूक्ष्मैः पञ्च प्राणैः दशेन्द्रियवृत्तिभिर्चतुरन्तःकरणधर्मैः योगं सेव्यसेवकभावसम्बन्धं तस्य परमेश्वरस्य विधाय शरीरस्य समस्तैरपि बाह्यान्तरूपकरणैः सह भगवत एव सम्बन्धं तद्वत्तया विनिश्चित्य चिन्त्यमिति भावः ।।श्रीः।।

अथ भगवन्तं चिन्तयमानस्य साधनाप्रकारमुपदिशति, यतो हि वेदस्य काण्डत्रयी परमात्मनः प्राप्तये प्रभवति, कर्मण्यपि भगवत्समर्पणबुद्ध्या विहितानि परमेश्वरभजन-प्रत्यवायभूतकश्मलानि निरस्य स्वकृतं भगवन्तमेव प्रापयन्ति । उपासनापि विगतवासना भजनविक्षेपं निक्षिप्य दूरतः उपासकं भगवत्प्रेमपाशकमेव तनुते, एवं ज्ञानमपि विभज्या-वरणं भजनस्य निरावरणचरणारविन्दपरागमकरन्दस्वादाय जीवं विगतसङ्गं भृङ्गयति। तस्मात् वेदकाण्डत्रयी न केवलं मलविक्षेपावरणभङ्गाय प्रभवति, प्रत्युत्निष्कामेन सेव्यमाना भगवत्प्राप्तौ सहायिका भवतीति मन्त्रत्रितयेन श्रुतिकाण्डत्रयीं भगवदुपलब्धिसाधनत्वेन सूचयन् प्रघट्टमारभते । तत्र प्रथममन्त्रे श्रुतिविहितकर्मणामेव भगवद्भजनोपयोगितां वर्णयति । आरभ्य इत्यादिना—

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि, भावांश्च सर्वान्विनियोजयेद्यः ।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्तवतोऽन्यः ।।४।।

अन्वयः सुगमः —

गुणैः प्रकाशप्रवृत्तिनिवृत्तिधर्मकैः सत्वरजस्तमोभिः अन्वितानि युक्तानि कर्माणि शास्त्रविहितानि आरभ्य प्रारम्भविषयान् विधाय तेषां कर्मणां सर्वान् भावान् सत्तारूपान् व्यापारान् परिणामरूपणि फलानि वा । यः साधकः विनियोजयेत् विशिष्टाद्वैतभक्त्या परमात्मने समर्पयेत् । एवं फलेषु परमेश्वराय समर्पितेषु तेषां फलानां व्यापाराणाञ्च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भावानां प्रारब्ध जनकत्वरूपे अभावे कृतकर्मनाशः, कृतः कर्मणां नाशः येन तथाभूतः साधकः, कर्मक्षये कर्मबन्धनानां क्षयः कर्मक्षयः तस्मिन् कर्मक्षये सति तत्त्वतः अन्यत् जीवतत्वतः विलक्षणम् । अन्यत् परमात्माख्यं शाश्वत् तत्वं याति, प्राप्नोति यतोहि फलवन्ति कर्माणि बन्धनाय कल्पन्ते तैश्च जननमरणरूपः संसारः सदैव संसरति भगवत्समर्पणे सति कर्मफलानि जनयितुं न शक्नुवन्ति । यथोक्तं भागवते—

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता कृथिताधाना प्रायो बीजाय नेष्यते ।।

(भागवत १०/२२/२६)

अतएव फलनाशे सति कर्मणां सुतरामभावः, तद्भावे प्रारब्धजनित-शरीरमूलकसंसारप्रवाहो परमे क्षीणकर्मबन्धनो जीवो भगवन्तमुपैति । तस्मात् कर्माणि कुर्वन् फलानि भागवते, श्रीनारदेन वसुदेवं प्रति —

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा, बुद्ध्याऽऽत्मनावानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै, नारायणायेति समर्पयेत्तत् ।।

(भागवत १०/२/३६)

शुभाशुभकर्माणि नियततया कुर्वन् तत्फलानि च भगवते समर्पयन् मानवनिःशेषबन्धनयुक्तो भवतीति निष्कृष्टम् ।।श्रीः।।

अथोपासनया भगवद्प्राप्तिं व्याचष्टे —

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः ।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ।।५।।

अन्वयः सुगमः —

स, परमात्मा आदिः, ब्रह्मणोऽपि पूर्ववर्ती, अथवा अत्ति चराचरं खादतीति आदिः **यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः** (कठ० १/२/२५) इति श्रुतेः। संयोगस्य वस्तूनां सृष्ट्युत्पादनाय अव्याकृतानामपि पञ्चानां महाभूतानां पञ्चीकरणरूपस्य वा संयोगस्य निमित्तं कारणं यो भगवत्सङ्कल्पः **एकोऽहं बहू स्यां प्रजायै** इत्याकारकः तस्यापि हेतुः कारणभूतः त्रयाणां कालानां समाहारः त्रिकालं तस्मात् त्रिकालात् त्रिभुवनपञ्चपात्रादिवत् द्विगावपि डीबभावः, तस्मात् त्रिकालात् भूतवर्तमानभविष्यदात्मकात् परःपरीभूतः त्रिकालाबाध्यसत्ताक इति यावत् अकलः न विद्यन्ते प्राणादयः कलाः यस्मिन् तथाभूतः अपि निश्चयार्थः, एतादृक्परमात्मा अस्माभिर्दृष्टः साक्षात्कृतः तमीड्यम्,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्तोतुं योग्यं भवभूतं भवः शंकरोऽपि भूतः उत्पन्नः यस्मात् स भवभूतः तं भवभूतम्। एतादृशं देवं परमप्रकाशम् विश्वानि रूपाणि यस्य स विश्वरूपः तथाभूतं स्वचित्रस्थम्, स्वस्य चित्रे तिष्ठति इति स्वचित्रस्थः तं पूर्वं प्रथमम् उपास्य शास्त्रीयोपासनाविधानेन सेवित्वा परमात्मानमेतेति मन्त्रार्थः। एवमुपासनापि परमप्रेमप्रवणचेतसा विहिता परमेश्वरं प्रापयत्येव । अथ ज्ञानेनापि भगवदुपलब्धिर्भवतीति निरूपयति —

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।।६।।

पूर्वार्धे ज्ञानविषयं निरूपयति– सः, परमात्मा वृक्षः, शरीरम् कालः, भूतादिः आकृतयः, प्राणिनां विविधाकाराः वृक्षश्च कालश्च आकृतयश्च इति वृक्षकालाकृतयः ताभिः वृक्षकालाकृतिभिः, अत्र "व्यत्ययेन" पञ्चम्यर्थे द्वितीया परः विलक्षणः परमेश्वरः खलु शरीरतदनुगुणसमयदेहाकारेभ्यः परीभूतः तथा मानवदेहः क्षणभङ्गुरः, किन्तु परमात्मनो दिव्यः पञ्चभूतरहितश्च । मानवस्य कालः सामान्यतः शतवर्षं, किन्तु परमात्मनः कालोऽनन्तः । यथोक्तं वाल्मीकीये रामायणे —

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ।।

(वा. रा. १/१/९७)

अत्र शतसहस्रयोरानन्त्यवाचकत्वात् अनन्तवर्षं भगवत्स्थितिकालः

"न च कालवशानुगः" (वा.रा. २/१/२९) इत्यपि तत्रैव आकृतयोऽपि मनुष्याणां नैव भगवदाकारतुल्याः । अहो! को नाम नरो नीलतमालनीलकमलनीलमणियामुनजलदूर्वादलकेकिगलसदृशो नीलो भविष्यति। अतएव अन्यः सर्वतो विलक्षणः। यस्मात्, भगवतः सकाशात् अयम् दृश्यमानः प्रपञ्चसंसारः परिवर्तते प्रादुर्भवति परिणम्यते वा । एवभूतं धर्मावहं, सनातनं धर्मधुरन्धरं धर्मम् आदरेण वहतीति धर्मावहः तथाविधं पापम्, नामस्मरणमात्रेण नुदति विनाशयतीति पापनुद् तं पापनुदं सकलपापहारिणमिति भावः । भगानमैश्वर्यादीनामीशं शासकम् । आत्मनि हृद्देशे तिष्ठति आत्मस्थः तम्, अथवा आत्मा हि दारा सर्वेषामिति वचनेन आत्मना दारभूतेन सीताभिधेन सह तिष्ठति, तथाभूतममृतम् , नास्ति मृतं मरणं यस्य तं विश्वधाम, विश्वे धाम प्रकाशः यस्य तथाभूतं भगवन्तं ज्ञात्वा अयं मे स्वामी अहमेतस्य सेवकः इति निश्चित्य परमात्मानं प्राप्नोति ।।श्रीः।।

अथ साधकः भगवन्तं वेदितुं प्रार्थयते,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।।७।।

ईश्वराणाम् , इन्द्रादीनाम् परमम् उत्कृष्टं महेश्वरं महेशानं देवतानां ब्रह्मादीनामपि परमं भजनीयदैवतं महाविष्णुरूपं पतीनामपि दक्षादिप्रजापतीनां परममुत्कृष्टं पति स्वामिनं पालकं परस्तात् सर्वेषामुपरिवर्तमानम् ईड्यं चराचराणां स्तुतियोग्यं भुवनानां चतुर्दशानां लोकानामीशं स्वामिनं भुवनेशं देवं निजरोचिषा सततं दीप्यमानं महाविष्णुं श्रीरामं विदाम ज्ञातुं प्रभवाम । अत्र 'प्रार्थनायां लोट्' यद्वा विदाम जानीमः अत्र 'बाहुलकात्' मसः सलोपः ।।श्रीः।।

पुनः परमात्मनो महिमानं स्तौति —

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।।८।।

तस्य परमात्मनः कार्यं विनाशवत्सकर्तृशरीरं न विद्यते । यत्तु कार्यमित्यस्य केचन शरीरमित्येव व्याचक्षते तद्रभसा विधानम् **आकाश शरीरं ब्रह्म** इति श्रुतिविरोधात्। तस्मात् कार्यं कर्तृजन्यमित्त्येव व्याख्येयम् । भगवतः श्रीविग्रहो कर्तृजन्यो न भवति तस्य नित्यत्वात् । कर्तृजन्यत्वाभावे तत्र करणं भगवद्विग्रहोत्पादककारणभूतं मातृपितृसंयोगरजःशुक्रादि न विद्यते । यथोक्तं भागवते—

अस्यापि देववपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।

(भागवत १०/१४/२)

श्रीमानसेऽपि—

चिदानन्दमय देह तुम्हारी । बिगत विकार जान अधिकारी ।।

(मानस २/१२७/५)

कार्यकारणयोर्निषेधस्याशयोऽयं यत् भगवतः श्रीविग्रहस्तस्मात् पृथक् नास्ति, तत्र देहदेहिभावाभावात् । च तथा तेन भगवता समः तुल्यः न तस्मादधिकोऽपि न दृश्यते न विलोकयते । अत्र श्रुतिः भगवन्तं विलोक्य विश्वस्य ब्रवीति । यत्, अस्य भगवतः शक्तिः विविधा एकैवानेकप्रकाराः । ते के प्रकाराः? इत्यत आह— स्वाभाविकीत्यादि । केचन ज्ञानबलक्रियाशब्दस्य स्वाभाविकीतिशब्दे विशेषणं प्राहुः, तन्मते परमात्मनः द्वे शक्तितेजस्वाभाविक्यौ ज्ञानक्रिया बलक्रिया चेति तन्नोचितम् । पुराणेषु शक्तित्रयश्रवणात् तथा च विष्णुपुराणे —

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्तयश्च हरेः प्रोक्ता तिस्रस्ताः शास्त्रसम्मताः।
आह्लादिनी सन्धिनी च संविच्चेति विशांपते ।।

(विष्णुपुराण ४/६/२५)

तदनुरोदेन अत्रापि तिसृणां परिकल्पनं न खलु पुराणं श्रुतिविरुद्धम् , तस्य परतः प्रमाणत्वात् । अतः स्वाभाविकीति स्वतन्त्रः शब्दः **"द्वद्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते"** इति वैय्याकरणनियमात् । क्रियायाः ज्ञानबलाभ्यां सहान्वयः । तथा च ज्ञानं च बलं चेति ज्ञानबले तयोः क्रिया इति ज्ञानबलक्रिया। इत्थं स्वाभाविकीशक्तिः सैवाह्लादिनी भगवतस्स्वभावः आह्लादः ज्ञानक्रियासंवित् बलक्रियासन्धिनी इदमेव शक्तित्रयं सच्चिदानन्दरूपम् । तथा च सत् सन्धिनी, चित् समवित्, आनन्दः आह्लादिनी इत्यनेन ब्रह्मणो धर्मशून्यवादिनो निरस्ताः इयं हि शक्तिः श्रूयते आकर्ण्यते श्रुत्यभिन्नत्वात्।।श्रीः।।

पुनरपि भगवतः निरतिशयमैश्वर्यं वर्णयति नेत्यादिना—

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ।।९।।

तस्य, परमात्मनः लोके, लोक्यते इति लोकः तस्मिन् दृश्यमाने जगतीति भावः। कश्चित्, कोऽपि पतिः स्वामी न स एव सकललोकपतिः तस्य परमात्मनः ईशिता प्रेरयिता शासको वा, न कोऽपि स एक सर्वेषां प्रेरकः शासकश्च । तस्य परमेश्वरस्य किमपि लिङ्गं विशिष्टं चिह्नं नास्ति तस्य सर्वरूपत्वात् । अतएव मानसे,

धरइ जो विविध देह सुरत्राता । तुमसे शठन्ह सिखावन दाता ।।

(मानस ५/२१/८)

सैव सर्वेषां कारणं, करणम् उपादनकारणं करणानां चक्षुरादि चतुर्दशानाम्, अधिपः स्वामी प्रत्यगात्मा । तस्यपि अधिपः इति कर्णाधिपाधिप तस्य भगवतः कश्चिद् कोऽपि प्राणी जनिता जननी जनकरूपो जन्मदाता न । नन्ववतारकाले दशरथकौसल्ययोः वसुदेवदेवक्यो पुत्रत्वं भगवतोवर्णितमिति चेत् न, तत्र पुत्रत्वाभिनयस्वीकारेणादोषात् । अत एव वाल्मीकीयरामायणे प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली यद्यपि दशरथापत्यत्वस्वीकारे 'अत इञ्' इत्यनेन स्त्रीप्रत्यय दाशरथीरिति स्यात्। परन्तु अत्र दशरथस्य अयं दाशरथः इति विग्रहे दशरथप्रतियोगिकश्रीरामानुयोगिकसम्बन्धसामान्यविवक्षायां "तस्येदम्" इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूत्रेण विहिताण् प्रत्ययात् दाशरथशब्दात् चतुर्थ्येकवचने दाशरथाय इति कथयित्वा स्वयमेवादिकविः **"न तस्य कश्चिद् जनिता"** इति श्रुतिमेव समर्थयमानः श्रीरामस्य पारमार्थिकं दशरथापत्यत्वं निराकरोति तस्य कश्चन अधिपः ईश्वरः न, स एव सर्वेषां ईश्वरः ।।श्रीः।।

एवं त्रिभिमन्त्रैः परमात्मनः स्वरूपं निरूप्य प्रार्थयते । यस्त्विति—

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वामावृणोत्।
स नो दधाद् ब्रह्माप्ययम् ।।१०।।

यः एकः देवः तन्तुभिः तन्तुनाभ इव स्वभावतः प्रधानजैः स्वम् आवृणोत्, सः नः ब्रह्माप्ययम् दधात् , यः परमात्मा एकः निरूपमः देवः परमप्रकाशरूपः तन्तुभिः निजशरीरोत्पन्नसूत्रैः तन्तुनाभः ऊर्णनाभिः इव स्वभावतः स्वस्य भावः सत्ता ऐश्वर्यात्मिका, तस्मात् सकाशात् प्रधाने प्रकृतौ जातानि इति प्रधानजानि प्राकृतानि तैः प्रधानजैः, भगवतः सकाशादेव बीजमादधाना प्रकृतिः चराचरं सूयते । तद्यथा "मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूमते सचराचरं" (गीता ९/१०)

स्वं निजस्वरूपं आवृणोति आच्छादितवान् प्राकृतपदार्थैर्हि भगवानावृतः तस्मिश्चाकचिक्ये जीवः परमेश्वरं विस्मरति। यथोक्तं भागवते —

किं किं न विस्मरन्तीह माया मोहितचेतसः ।

(भागवत १०/१४/४३)

स परमात्मा नः अस्माकं सम्बन्धिनं ब्रह्माप्ययम्। ब्रह्मणि स्वस्मिन् परमात्मनि अप्ययं सर्ववृत्तिलयः इति ब्रह्माप्ययः तं दधातु पोषयतु धारयतु च। अत्र 'व्यत्यपादुकार'-लोपे दधादिति ।।श्रीः।।

भूयोऽपि भगवदैश्वर्यं स्मरति एकेत्यादिना—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।११।।

अत्र विशेषण दशकेन भगवत् तत्वनिरूपयति । भगवान् खलु एकः न खलु द्वित्राः त्रिचतुराः पञ्चषा वा भगवन्तः देवः दीव्यति क्रीडति इति देवः। दीव्यति द्योतते वा यः स देव नैव दूरे वर्तते, प्रत्युत सर्वभूतेषु चराचरेषु गूढः योगमायासंवृतः सर्वव्यापी सर्वव्यापकः, सर्वभूतानाम् अन्तरात्मा अन्तः अततीति अन्तरात्मा सर्वेषां कर्मणाम् अध्यक्षः फलदाननियामकत्वात् । सर्वभूतानि अधिवसति इति सर्वभूताधिवासः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साक्षी साक्षात् पश्यति जीवानां शुभाऽशुभानि यः स साक्षी **साक्षाद्द्रष्टरिसंज्ञायाम्** (पा. सू. ५/२/९११) चेता चेतयते इति चेता अखण्डचित्स्वरूपः केवलः न्यूनाधिक्यरहितः । निर्गुणः निर्गताः सत्वादयः यस्मात् स निर्गुणः। यद्वा निराकृताः भक्तदुर्गुणाः येन स निर्गुणः, यद्वा निरस्ताः हेयगुणाः येन स निर्गुणः, यद्वा निर्लीनाः सकलकल्यागुणाः यस्मिन् स निर्गुणः यद्वा निःशेषाः गुणाः यस्य स निर्गुणः, अथवा निरुपमाः गुणाः यस्य स निर्गुणः, अथवा निरन्तरं विद्यमानाः गुणाः यस्मिन् स निर्गुणः, केवलोनिर्गुणश्च इत्यत्र केवलः अनिर्गुणः इति पदच्छेदः तथा च अनिर्गुणः निर्गुणभिन्नः सगुण इति भावः।।श्रीः।।

अथ भगवद्दर्शनाधीनमेव शाश्वतम् सुखं इति निश्चाययति—

एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।।१२।।

एकैव परमात्मा वशी, वशयति महाकालम् अपि नियमयति यस्तयाभूतः। निष्क्रियाणां स्वतन्त्रतया कार्येष्वक्षमाणां बहूनामपि प्रपन्नजीवानाम् एकं बीजम् अल्पं मनोरथं यः बहुधा करोति, यथा बिभीषणः, सामान्यतो राज्यमनोरथः, परन्तु भगवता आकल्पमविनाशिराज्यं साचिव्यं सख्यं नयनानन्दं सर्वं दत्तं यथा मानसे—

जो सम्पति सिव रावनहि, दीन्ह दिये दसमाथ ।
सोइ संम्पदा विभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ ।।

(मानस ५.४९.ख)

तं निजमनोमंदिरे प्रतिष्ठितं ये धीराः सुखःदुखेषु एकरसाः अनुपश्यन्ति, अनुक्षणं स्मरन्तो निहारयन्ति, तेषां शाश्वतं सुखं नेतरेषाम् भगवद्विमुखानां नहि ।।श्रीः।।

भूय एवानन्दमयत्वात् तमेवार्थं स्पष्टयति—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेकोब हूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।१३।।

नित्यानां जीवानां मध्ये एषो नित्यो नाथः, चेतनानाम् अपि चेतनः, तस्मात् लब्धचेतनत्वात् । एकः असहायः सन् बहूनाम् आर्त्तजिज्ञास्वर्थार्थिज्ञानिनां कामान् धर्मार्थकाममोक्षाभिलाषान् प्रेमैकतानाम् तु निजदिदृक्षारूपं कामं यः विदधाति विविच्य पुष्णाति इष्टं ददाति अनिष्टं च द्यति इति विवेकः। तादृशं सर्वेषां कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सांख्ययोगगम्यो सांख्ययोगशब्दो नैव कापिलपातञ्जलदर्शनतात्पर्यग्राही, सांख्याः ज्ञानयोगिनः योगिनः कर्मयोगिनः । यथोक्तम्—

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते (गीता ५/५/) एवं सांख्या योगाश्च इति सांख्ययोगाः, तैः अधिगम्यं देवं परमात्मानं ज्ञात्वा सेव्यत्वेन परिचित्य सर्वपाशैः सर्वबन्धनैः मुच्यते ।।श्रीः।।

साम्प्रतं ज्ञेयस्य परमात्मनः सर्वातिशयप्रकाशत्वं निरूपयति । नेत्यादिना—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभान्ति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।१४।।

मन्त्रोऽयं कठोपनिषदि व्याख्यातचरः। अथापि व्याख्यायते—तत्र परमेश्वरे प्रकाशमाने सूर्यः न भाति न प्रकाशते न वा शोभते। न चन्द्र तारकं चन्द्रसहितं तारकं सर्वनक्षत्र-मण्डलं न भाति, इमाः विद्युतः शंपाः न भान्ति, अयं प्रत्यक्षं वर्तमानः अग्निः पावकः कुतः कथं प्रकाशयेत् । यद्वा सूर्यः भगवतः श्रीरामस्य पीताम्बरप्रभया तिरोभूतो न भाति चन्द्रो मुखेन्दुना हृतज्योत्स्नः तारकाणि आभूषणैः चोरितरोचींषि विद्युतोदन्तपंक्त्या तिरोभूताः तर्हि अयं अग्निः सामान्यदीपकः तं दिनकरकुलदीपकं कथं दीपयेत् । तमेव भान्तं प्रकाशमानमनु अनुलक्ष्य अनुगम्य वा सर्वं भाति चराचरं प्रकाशते। यतो हि स सर्वेषां प्रकाशकः तस्य परमेश्वरस्य भाषा इदं सर्वं विभाति विशेषतया प्रकाशते । वस्तुतस्तु सर्वोऽपि प्रकाशः तस्य प्रकाशनिधेः । यथोक्तं—**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः** (गीता - १३/१७) श्रीमानसेऽपि :

विषयकरन सुर जीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ।।
सब कर परम प्रकाशक जोई ।राम अनादि अवधपति सोई ।।

(मा. बा. ११७/५/६) ।।श्रीः।।

अधुना मुक्तये परमेश्वरज्ञानातिरिक्तमार्गं निराकरोति—

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये
स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।१५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकः भगवानेव अस्य भुवनस्य अनंतकोटिब्रह्मांडस्य मध्ये हंसः हंसवन्निर्मलः हंस इव भक्तदोषनीरं त्यक्त्वा गुणक्षीरं गृह्णाति हन्ति स्मर्यमाणः सर्वत्र गच्छति इति हंसः प्रह्लादस्मरणे स्तंभेऽपि समाविष्टः । तद्यथा—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं, व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे समायां न मृगं न मानुषम् ।।
(भा. ७/८/१६)

अथवा हन्ति भक्तपापानि हन्ति वा दुष्टान् यः स हंसः । ननु अनयोरर्थयोः किं मानम्? "हन्हिंसागत्योः" इतिपाणिनीयवचनमेव । स एवं सलिले सलिलाशये समुद्रे अग्निः वाडवानलः औवर्ः संनिविष्टः प्रतिष्ठितः । तमेव परमात्मानं निजस्वामिरूपेण विदित्वा अतिमृत्युम् अतिक्रान्तमरणं साकेतं साकेतपतिं वा एति गच्छति। अयनाय भगवदीयलोकाय अन्यः भगवत्तत्वज्ञानातिरिक्तः पन्थाः मार्गो न विद्यते न वर्तते तस्मात् भगवानेव ज्ञेयः स एव ध्येयः ।।श्रीः।।

भूय एव स्वभावतः आलस्याभावात् मन्त्रोऽयं मननीयं परमात्मानमेव समामनति। स इत्यादि,

स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद्यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः सꣳसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ।।१६।।

स, परमात्मा विश्वं, संसारं करोति, उत्पादयति स्वशरीरात् इति विश्वकृत् । परमात्मनैव हि प्रलयावसाने स्वदेहादेव पूर्वं प्रलीनं विश्वमुत्पाद्यते, न केवलं विश्वकर्त्ता अपितु विश्वं जानात्यपि । अत आह , विश्ववित् विश्वं वेत्तीति विश्ववित् आत्मनां बद्धमुक्तनित्यानां प्रत्यगात्मनां योनिः आविर्भावयिता । ज्ञः त्रिकालमपि जानातीति ज्ञः कालकारः, कालं कृतान्तमपि करोति योगमायया उत्पादयति, अत्र कर्मण्यण् इत्यनेन अण् प्रत्यये षष्ठ्यां तत्पुरुषसमासे कुम्भकारादिवत् सिद्धिः। गुणी नित्यसकलसद्गुणनिलयः सर्वविद्यः सकलविद्यानिधिः प्रधानं प्रकृतिः, क्षेत्रं शरीरं जानाति स्वाधिष्ठानेन वेत्ति इति क्षेत्रज्ञो जीवात्मा । प्रधानं च क्षेत्रज्ञश्च इति प्रधानक्षेत्रज्ञौ तयोः पतिः पालयिता स्वामी वा इति प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः, श्रुत्यानया प्रकृतिजीवात्मपरमात्मनां स्पष्टमन्तरं कथयन्त्या "**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि**" (गीता १३/२)

इत्यत्र क्षेत्रज्ञाभिन्नं मां विद्धि इति वदन्तः परास्ताः । यदि क्षेत्रज्ञ भगवतोरन्तरं न स्यात् तदा भगवान् "**क्षेत्रज्ञमेव मां विद्ध**" इति ब्रूयात् । किन्तु "**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि**" इत्यत्र चकारं समुच्चयार्थं कथयित्वा क्षेत्रज्ञज्ञानस्य स्वज्ञानेन समुच्चयं विधाति यथा सर्वक्षेत्रेषु निवासिनं क्षेत्रज्ञं विद्धि, तथैव तेषु तेन सह निवासिनमन्तर्यामिनं मामपि विद्धीति भगवतस्तात्पर्यम् । विशेषस्तु तत्रैव निरूपयिष्यामः । गुणानां सत्वरजस्तमसां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईश: नियामक: स एव संसारस्य तद्बन्धस्य स्थिते: मोक्षस्य च हेतु:। अथवा संसारबन्धे स्थिति: एषां ते संसारबन्धेस्थितय: मुमुक्षो जीवा: तेषां मोक्षस्य हेतु: ।।श्री:।।

अधुना सर्वशरण्यस्य परमात्मन: सामर्थ्यं समुदीरयनुपसंहरति, शण्य-निरूपणप्रकरणम्। वस्तुतस्तु अस्यामुपनिषदि आ प्रथमाध्यायात् षष्ठस्य सप्तदशं यावत् शरण्यस्य निरूपणम् अष्टादशे शरणागतिप्रार्थनम्, ऊनविंशे मुक्तये तदितरप्रकारनिषेध: । एकेन च भूय: परमात्मस्मरणं, तत: सम्प्रदायपरम्परानिर्देश: चरमे ब्रह्मज्ञानस्य भक्तिहीनत्वमिति भक्तिपर्यवशानेयमुपनिषद् षड्ध्यायेषु, यथाक्रमं प्रथमे आनुकूल्यसङ्कल्प: द्वितीये प्रातिकूल्यस्य वर्जनं, तृतीये रक्षीष्यतीति विश्वास:, चतुर्थे गोप्तृत्ववरणं, पञ्चमे कार्पण्यं, षष्ठे चात्मनिक्षेप इति प्रादेशमात्रं दर्शितम्, विशेषस्तु तत्र तत्र स्वयमूह्य: शरण्यस्वरूपनिर्धारणे चरमोऽयं मन्त्र: स इत्यादि —

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो

ज्ञ: सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता ।

य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव

नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ।।१७।।

स, परमात्मा तन्मय:, तदेव वेदवेदान्तवेद्यं ब्रह्म निर्गुणं तन्मयं तदस्त्यस्य इति तन्मय: **ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्** इति स्मृते: (गीता १४/२७) सगुणोऽपि मानवाकारोपि न मानव: । कस्तर्हि ? ततो विलक्षण: मानवो मृत: मरणधर्मा, किन्तु परमेश्वर: अमृत: जननमरणरहित: । किं विशेष? अत आह — ईशसंस्थ:, ईशा: ब्रह्मादयोऽपि संस्थिता यस्मिम् स ईशसंस्थ:, यद्वा ईशे शंकरहृदयकमले संस्था यस्य स ईशसंस्थ: श्रीराघवो महाविष्णु: ज्ञ: सर्वज्ञ:, सर्वग: सर्वत्रगामी अस्य भुवनस्य गोप्ता रक्षक:, य: नित्यमेव अस्य जगत: संसारस्य ईशे ईष्टे बाहुलकेन प्रथमपुरुषार्थे उत्तमपुत्तष: । एतद् जगदिति वक्तव्ये अस्य जगत: इत्युक्तिस्तु कर्मण: शेषत्वविवक्षायां मातु: स्मरति इत्यादिवत् । ईशनाय जगत: शासनाय अन्य: परमेश्वरतो व्यतिरिक्त: कोऽपि हेतु: नास्ति इति प्रश्नोपसंहार: ।।श्री:।।

अथ सर्वेषां प्रश्नानामुत्तरं दत्वा महर्षि: श्वेताश्वतर: सर्वैरपि जिज्ञासुभि: ऋषिवर्यै: सह समवेत्य परमेश्वरं शरणागतये प्रार्थयते —

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

तꣳह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं, मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।।१८।।

पूर्वार्धेन विशेषणद्वयविशिष्टं जगच्छरण्यं श्रीरामाभिधं ब्रह्म स्मृत्वा उत्तरार्धेन तं शरणं प्रपत्तुं प्रतिजानिते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यः भगवान् पूर्वं, प्रतिकल्पं सृष्टेः पूर्वं ब्रह्माणं, हिरण्यगर्भं चतुर्मुखं विदधाति स्वनाभिकमलादाविर्भवयति । च तथा यः परमात्मा जीवानां कर्मबोधाय तस्मै आविर्भूताय ब्रह्मणे वेदान् ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् प्रहिणोति समर्पयति ब्रूतेति भावः। ह, निश्चयेन आत्मबुद्धिः प्रकाशं आत्मा प्रत्यगात्मा बुद्धिः मनीषा ते आत्मबुद्धी प्रकाशयतीति आत्मबुद्धिप्रकाशः, तं देवम्, श्रीसीतारामं परमेश्वरं तं तमालनीलं भगवन्तं वै निश्चयेन मुमुक्षुः भवबन्धनतः मोक्तुमिच्छुः अहं साधको जीवः शरणं रक्षकं प्रपद्ये, प्रपन्नो भवामि ॥

अत्र पूर्वार्धे शरण्यस्वरूपनिर्धारणम्, उत्तरार्धेन षड्विधशरणागतिप्रतिज्ञा, **"मुमुक्षुर्वै"** इत्यनेन स्वामिनि महाविश्वासः। अहमित्यनेन अहंकारमुक्तकार्पण्यवान् जीवः ब्रह्माणं विदधाति वेदं प्रहिणोति आभ्यां तदेकोपायता याञ्च्या । अयमेव वेदमन्त्रः शरणागतिबीजभूतः। अनेन प्रपत्तियोगोऽपि व्याख्यायते ॥श्रीः॥

अथ कथं भगवन्तमेव शरणं प्रपद्यसे । यदि च शरणागतिरिष्टा तर्हि अलमियता प्रबन्धेन ? इति शङ्काद्वयसमादधान प्राह —

कीदृशं भगवन्तं शरणं प्रपद्यसे ? इत्यत आह—

निष्कलं निष्क्रियꣳशान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परꣳसेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥१९॥

निष्कलं प्राणादिकलाहीनमथवा निःशेषाः कला यस्मिन् तादृशं निष्क्रियं क्रियाकर्मबन्धनं ततो निष्क्रान्तं, यत्तु निष्क्रान्ताक्रिया यस्मात् तन् निष्क्रियं तन्न त्रातारं हि शरणं प्रपद्यते क्रियाहीनः । कथं कं त्रायेत् ? शान्तम् , शान्तिनिकेतनं निरवद्यम् अवद्यानि पापानि तेभ्यो निष्क्रान्तम् इति निरवद्यम्, निर्गतमञ्जनं कर्मलेपः यस्मात् तममृतस्य आनन्दस्य परं सेतुं श्रेष्ठमर्यादारूपं दग्धानि इन्धनानि, परात्मपक्षे पापवनानि येन तथाभूतमनलं विधूमं पावकमिव तं देव "मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये" इति पूर्वान्वयी ॥श्रीः॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥२०॥

यदा कादाचित्कवाचकोऽयं शब्दः, यस्मिन् काले कदाचित् मानवाः प्रयतमाना मनुष्याः चर्मवत् स्वहस्तधृतत्वगवत् आकाशम् अगणितयो जनव्याप्तम् अमूर्तं नभः वेष्टयिष्यन्ति वेष्टनमिव वेष्टयित्वा स्वहस्ते धारयिष्यन्ति, इदं सर्वतो महदसंभवं संभवमिव, यदा सम्पादयिष्यन्ति । चेत् तदैव देवं, परमात्मानमविज्ञाय निजनाथत्वेन न निश्चित्य तेषां दुःखस्य त्रिविधतापस्य अन्तः आत्यन्तिकविनाशः भविष्यति सम्पत्स्यते । यदि

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चेत् आकाशवेष्टनसमम्भवं तदा भगवद्विज्ञानमन्तरेण दुःखनाशोऽप्यसम्भवः । तथा च प्राहुः असम्भवनवकेन सिद्धान्तनौकाभूतं प्रकरणमिदम् अस्मत्पूज्यचरणाः गोस्वामितुलसीदासमहाराजाः,

कमठपीठ जामहिं बरू बारा । बंध्या सुत बरु काहुहि मारा ।
फूलहिं नभ बरु बहुविधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ।
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । बरु जामहिं सस सीस बिषाना ।
अन्धकारु बरु रबिहि नसावै । राम विमुख न जीव सुख पावै ।
हिम ते अनल प्रगट बरु होई । बिमुख रामसुख पाव न कोई ।
बारि मथैं घृत होई बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल ।।

(मानस ७/१२२/१५, से १९ १२ तक) ।।श्रीः।।

अथ सम्प्रदायपरम्परां विवृणुते—

तपः प्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषि संघजुष्टम् ।। २१ ।।

अथानन्तरं तपसः प्रभावात् देवस्य परमात्मनः प्रसादात् अनुग्रहरूपात् वस्तुतः उभयत्र "ल्यब्लोपपञ्चमी" तथा च तपः प्रभावमधिगम्य इति भावः श्वेताश्वतरः यस्याश्वत्तरभूताः इन्द्रियविशेषाः श्वेताः तादृग् विद्वान् ब्रह्मवेत्ता अत्याश्रमिभ्यः आश्रमत अति क्रान्ताः अत्याश्रमिणो वैष्णवाः अच्युतगोत्रत्वात् । यत्तु संन्यासिनः अत्याश्रमिण इति प्रलपन्ति तच्छास्त्रविरुद्धम्, संन्यासस्यापि तुरीयाश्रमत्वात् । वैष्णवाः खलु भगवत्प्रियत्वात् आश्रमानतिक्रम्य तिष्ठन्ति । यथोक्तं अस्मद् पूर्वाचार्येण हुलसीहर्षवर्धनेन तुलसीदासमहाराजेन—

चले नगर तजि हरष नृप, तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहि आश्रमी चारि ।।

(मानस ४/१६)

वैष्णवाः खलु शरणागत्यधिकारिणः तत्समाख्या तस्माद् वैष्णवीयमुपनिषद् परमं पवित्रं परम्पावनम् ऋषिसंघैः मुनिवृन्दैः जुष्टं, प्रीतिपूर्वकमेतद्ब्रह्मवेदात्मकं वाङ्मयं प्रोवाच प्रत्यभाषत ह इति प्रसिद्धम् ।।श्रीः।।

साम्प्रतमधिकारनिर्णयं कथयति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् ।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ।।२२।।

वेदान्ते वेदस्य अन्तिमे भागे उपनिषद्वृन्दे वदान्तदर्शने वा पुराकल्पे एतस्मात् पूर्वस्मिन् कल्पे प्रचोदितम् श्वेताश्वतरनिगदितं परमं, परस्य परमात्मनः मा भक्तिः शरणागतिश्च यस्मिन् तादृशं गुह्यं गोपनीयमिदम् अप्रशान्ताय विषयचटुलचित्राय अपुत्राय पुत्र-प्रेमभाजनत्वभिन्नाय अशिष्याय त्यक्तशिष्यमर्यादाय । पुनः भगवच्चरणकमलविमुखाय न दातव्यम् । तस्मै एव दातव्यं यः पुत्रः पुतः नरकात् त्रातुं क्षमः पितरमेव गुरुं सेवते। यश्च शिष्यः अनुशासनं पात्रतां गतः । अनुशासनहीनस्य भगवत्पदपद्मपरागविमुखस्य दुरात्मनो हृदये कथिताअपि इमे औपनिषदार्थाः न प्रकाशन्ते ।।श्रीः।। अत आह—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः
प्रकाशन्ते महात्मनः ।।२३।।

यस्य, भगवच्छरणागतिं समभिलषतः महात्मनः महान् आत्मा यस्य तथा भूतस्य देवे, भगवति परमात्मने परा, चतुःपुरुषार्थनिरपेक्षा अविरलाभक्तिः प्रेमलक्षणा अस्ति। सा च यथा देवे येन प्रकारेण परमेश्वरविषया तथा गुरौ तेनैव प्रकारेण स्वार्थपरमार्थवर्जिता यदि गुरौ आचार्यविषया स्यात् तस्यैव महात्मनः हृदये कथिताः श्वेताश्वतरोक्ताः अर्थाः भगवच्छरणागत्यनुकूलाभावाः प्रकाशन्ते । प्रकाशिता भवन्ति निजकथनद्रढीकरणाय पुनराह प्रकाशन्ते महात्मनः । महात्मनः हृदये प्रकाशन्ते द्विर्वचनं समादरार्थं ग्रन्थ-समाप्त्यर्थं महात्मशब्दस्मरणेन ग्रन्थविश्राममङ्गलार्थञ्च—

अयोध्या सौभाग्यं प्रथयितुमलं कज्जलकलम् ।
वृतं बालैर्लोलत्कुटिलचिकुरैर्मण्डितमुखम् ।
हसन्तं खेलन्तं जननिहृदयानन्दजननम् ।
प्रपद्ये ब्रह्माहं शरणमहितं राघवशिशुम् ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् सिद्धान्तं शास्त्रसम्मितम् ।
श्रीराघवकृपाभाष्यं भूयात् वैष्णवतुष्टये ।

इति श्रीचित्रकूटनिवासि सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यप्रणीतं श्वेताश्वतरोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्री राघवोविजयतेतराम् ॥

॥ श्री रामानन्दाचार्यायनमः ॥

छान्दोग्योपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

मंगलाचरणम्

नवीनघनसौभगो भगवता स्मरध्वंसिना,
सदैव परिपूजितो भवभयापहः श्रीहरिः ।
शिशुप्रणतरञ्जनकुशलकोसलामण्डनो,
मदीय हृदयाजिरे विहरतु सदा राघवः ॥१॥

बिभ्रन्मारकतीं विभां विधुमुखो विद्योतमानो नमन्,
नाकाधीशशतार्चिताङ्घ्रि कमलो लोलल्लसद्बालकः ।
कौसल्यासुरवल्लिका प्रसवभूर्भूनन्दिनीवल्लभो,
भास्वदभासुर-भाल-भाल-विभवः श्रीराघवश्चिंत्यते ॥२॥

यच्चानिर्वचनीयमद्वयमजं वेदान्तवेद्यं शिवं,
शान्तं शात्वतसाधितं शुचिसतां यत् स्वानुभूत्यास्पदम् ।
भावातीतमगोचरं किल गिरां वर्धिष्णु तत्त्वं परम्,
सीताराममयं चलाघनमहस्तद्ब्रह्म नित्यं नुमः ॥३॥

केचिन्नरं केऽपि परं तथान्ये तत्वं परे धर्ममयं भजन्ते ।
वयं त्वयोध्यापतिभाग्यसिन्धुनवोडुपं राघवमामनामः ॥४॥

वन्दारुवृन्दास्पदपारिजातं वृन्दारकाकीर्तितकम्रकीर्तिम् ।
तं जातरूपाचलचारुलक्ष्मीं वन्दामहे वानरवारणेन्द्रम् ॥५॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनालस्या वश्या निजनिगमबाणे सुमनसा,
समर्चन्त्यो भक्त्या निजपतिमलं ब्रह्मपरमम् ।
विधुन्वन्त्यो नृणां निविडतिमिराज्ञानरजनीं,
जयन्तीड्या दिव्याः श्रुतयइदमा मादृशसुखाः ।।६।।

नमामि परया भक्त्या देशिकं पौण्यसादनिम् ।
यत्करुणाकटाक्षेण मूढोऽहं वस्तुतांगतः ।।७।।

नत्वाथ वल्मीकिनवावतारं,
गोस्वामिनं वैष्णवपुङ्गवांश्च ।
छान्दोग्यमन्त्रेषु च रामभद्रा-
चार्योविपश्चिद् प्रगृणामि भाष्यम् ।।८।।

अथेदानीं सामवेदीयतलवकारशाखान्तर्गता ओमित्येतदक्षरमित्यादिरष्टाध्यायी ब्रह्मविचार विशदा निखिलब्रह्मजिज्ञासुसुखदा श्रीसीतारामपदपद्मभक्तिप्रदा सकलवैष्णवजन-परमार्थजिज्ञासासमाधित्सुना श्रीचित्रकूटविहारिहारिचरणपंकजपरागरसं प्रपित्सुना मया छान्दोग्योपनिषदियं श्रीराघवकृपाभाष्यनाम्ना संकलितश्रीरामानन्दाचार्यसिद्धान्तसारसर्वस्व समलङ्करणेन विवरणेन समलंक्रियते। चन्दयन्ती आह्लादयन्ती समध्येतृणां मनांसि यानि तानि छन्दांसि, अथवा छादयन्ति भार्या इव निजाञ्चलपटैः परमात्मानं समावृण्वन्ति यानि तानि छन्दांसि, प्रथमव्युत्पत्तौ **'पृषोदरादित्वात्'** निपातनाच्चकारश्चकारः। द्वितीयपक्षे छकारस्य ह्रस्वः मध्येनुमागमः असुप्रत्यश्च उभयत्र, तानि छन्दांसि अर्थद्वयमभिदधते वृत्ताख्यं मन्त्राख्यञ्च, प्रकृते वृत्तात्मकस्यानुपयोगात्, न खलु गायत्रीप्रमुखानि वैदिकानि अनुष्टुप् प्रमुखानि च लौकिकानि पिंगलशास्त्रीयाणि वृत्तानि प्रकृतब्रह्मविचारणोपयोगीनि। तस्मादिह मन्त्रार्थानि छन्दांसि तानि च पौरुषेयाणि परमेश्वरनिःस्वासभूतानि **तान्योसामनाम**छन्दांसि गायन्ति इति छन्दोगाः तेषां इयम् इति छान्दोग्या सा चैवोपनिषद् सम्बन्धश्च **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ज्ञानादेव हि कैवल्यम्'** इत्यादि श्रुतेः। **नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते** । (गीता ४/३८) इत्यादि स्मृतेः। भगवद्भक्त्यै तन्महात्मज्ञानस्य सुतरामावश्यकत्वात् ज्ञानस्यश्च च भगवदुपासनाप्राप्यत्वात् उपासनाज्ञानयोः समन्वयभूतेयमुपनिषदारभ्यते। ननु ज्ञानमुपासनाप्राप्यमित्यत्र किम् मनमिति चेच्छृणु **भक्त्या मामभिजनाति** । (गीता १८/५५) इति गीतावचनमेव प्रमाणम्। वस्तुतस्तु परामार्थे उपासनमेव ज्ञानफलम्। ननु वेदेषूपासनाकाण्डस्य मध्यवर्तित्वाज्ज्ञानस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरमकाण्डत्वात् ज्ञानमेवोपासनाफलमिति चेन्न उभयोरपि भिन्नविषयत्वात्। यत्र काण्डत्वेनोपासना निर्दिष्टा, सा खलु ज्ञानफलका, परन्तु ज्ञानकाण्डस्था सा ज्ञानस्यापि फलमिति हि विवेकः। ननूभयोरुपासनयोः किं वैलक्षयम्? श्रूयतां कण्डस्वरूपोपासना-फलाभिसन्धिपूर्विका तत्तन्मन्त्रनिर्दिष्ट तत्तदैव संतुष्टिफला, किन्तु ज्ञानकाण्डान्तर्गता प्रेमप्रवणचेतसा भगवते समर्पितस्वत्वा, तन्मयीभावनामयी भगवन्ममत्वातिशयसर्वस्वा भगवन्नामरूपलीलाधामसमनुशीलव्यापारामनोद्रवाकारा निरस्तसेव्यसेवकविप्रकृष्टत्वप्रकारा सर्वेश्वरे परमानुरक्तिरेव इयम् ज्ञानस्यापि फलम्। यत्तु ज्ञानमुपासना फलमितिप्राहुः तन्न परमार्थेतूपासनाज्ञानयोरेकत्वप्रायत्वात्। तथा च तैत्तरेयाः पठन्ति। **आकाशशरीरं ब्रह्म प्राणारामं प्राचीनयोग्योपाशस्व** (तै.उ.शि. ६) अत्र पूर्वार्धेन ब्रह्मलक्षणमुक्त्वा उत्तरार्धेन 'उपास्य' इति क्रियापदं विधेयत्वेनाभिधाय श्रुतिःस्वयमेव ज्ञानोपासना-वैलक्षण्यं निराचकार। यत्तु नान्यत्राद्वैतज्ञानादात्यन्तिकी गतिः तदप्यशात्रीयं, स्वरूपतो द्वैतज्ञानस्य सर्ववेदान्तसम्मत्वाभावात् । न ह्यद्वैतशब्दस्य तावद् भाववाचकत्वं दृष्टमुपनिषत्सु। **शैवमद्वैतम् चतुर्थं मन्यन्ते** (मा. उ. ७) इत्यत्र श्रुतौ ब्रह्मविशेषणस्यैवाद्वैतशब्दस्य श्रवणात्। ननु **'अथ येऽन्यथातो विदुरन्य राजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति'**। (छ. उ. ७।२५।२) इत्यत्र श्रुतौ सुस्पष्टमद्वैतज्ञानं प्रतिपादितं, नैवेत्थं, तत्रत्यं प्रसंगमनालोच्यैव शङ्कत एवं भवान्। तत्रत्योऽयमर्थः– अथ अनन्तरं ये साधकाः अतः अस्मात् **भगवान् स्वामी अहं सेवकः** इत्याकारकाद् भावात् अन्यथा अन्यप्रकारेण अहं ब्रह्मास्मीत्यादिरूपेण, ये विदुः ये जानन्ति, ते अन्यराजानः अन्यः परमात्मातिरिक्तः मोहनामा राजा शासकः एषां तेऽन्यराजनः क्षय्यः विनाशशीलः लोकः एषां तथाभूता भवन्ति। स्वयमेव परमेश्वरं मन्यमानाः नरकगामिनो भवन्तीति तात्पर्यम्। इत्यनेन अहं ब्रह्मवादिनः परास्ताः। एवमेव **'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति'** (छा. उ. २।२३।१) इत्यत्रापि ब्रह्मणि परमेश्वरे संस्था अस्य स ब्रह्मसंस्था इति बहुव्रीहिणा ब्रह्म-विषयकशरणागतपर्यायसंस्थावान् अमृतत्वमयं गच्छतीत्यर्थेन पूर्वोक्तशङ्कापरिहारसम्भवः **'आत्मैवेदं सर्वम्'** (छा. उ. ७।२।२५) इत्यत्र आत्मनः एव इदं सर्वम् इति विग्रहे **'सुपांसुलुक्'** इत्यनेन षष्ठीलुकिवृद्धौ गुणे च आत्मैवेदं इति सिद्धम्। आत्मनः परमात्मनः एव सम्बन्धिभूतमिदं सर्वं दृश्यमानञ्जगदित्यर्थकम्। नन्वात्मपदं परमात्मार्थक-मित्यत्र किं मानम् **आत्माशरीरे जीवे च जीविते परमात्मनि** इति कोश एव प्रमाणम्।

अथ **'तरति शोकमात्मवित्'** इत्यादि श्रुतयस्तु आत्मज्ञस्यैव शोकसागरतरण-सामर्थ्यं निश्चिन्वन्तीति चेन्न, आत्मशब्दस्य परमात्मार्थकत्वेन व्याख्यातपूर्वत्वात्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ननु **'तरति शोकमात्मवित्'** इत्यत्र शोकतरणमात्मविदः प्रतिपादितं अपरत्र **'न च तस्यास्ति वेत्ता'** (स्वे. उ. ४।१९) इत्यात्मवेतृत्वनिषेधः असामञ्जस्यमिदं सत्यम्। इदमसामञ्जस्यमेवास्माकमिष्टं विशिष्टाद्वैतवादबीजभूतम्। **'तरति शोकमात्मवित्'** इति श्रुत्या आत्मवेतृत्वं यत्किञ्चित्तया प्रतिपादयति, **न च तस्यास्ति वेत्ता** इत्यनया पूर्णतया वेतृत्वं निषेधयति इदमेवानिर्वचनीयत्वं तच्च यत्किंचत् वक्तुमर्हत्वे सति निःशेषेण वक्तुमर्नहत्त्वम्।

ननु अस्मिन् दर्शने किं बीजम्? श्रुतय एवेति ब्रूमः तद्यथा **'यन्मनसा न मनुते'** (केन. उ. खण्ड २, ४ से ९) न खलु ब्रह्म निःशेषेण वक्तुं शक्यम्। अतएव **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'** (तै. उ. ब्र. १) ब्रह्म खलु इन्द्रियमनोवचनागोचरं, वाणी कर्मेन्द्रियं तेन जडप्रायेण विशुद्धं चेतनघनं कथमभिधातुं शक्यम्। अतएव **'नेति-नेति'** श्रुतयः प्राहुः। अथ दर्शनेऽस्मिन् किं वैशिष्ट्यमद्वैततो, यतो हिं तदपि निर्वचनानर्हम् ? इति चेन्मैवम्, विषयभेदः खलु द्वयोः। अस्मद्दर्शने ब्रह्मविशेषणमद्वैतं विशिष्टं च तद् विशेषणं, व्युपसर्गस्य विशेषोऽर्थः निरुपसर्गस्य निःशेषोऽर्थः। अत्रहि प्रमेयत्वेन श्रीसीताराममयं ब्रह्मतत्वं, प्रमातृत्वेन जीवाः, प्रत्यक्षं वेदानुवचनमनुमानं चेति प्रमाणत्रयम्। यथा मदुक्तम्—

प्रमेयः श्रीरामः सगुणमगुणं ब्रह्म विमलम्।
प्रमातारो जीवा भजनरसिका मैथिलिपतौ ।।

प्रमाणं प्रत्यक्षं श्रुतिवचनमेवानुमितिकम् ।
गुरू रामानन्दः प्रणिगदति वेदान्तनिगमे ।।

(श्रीरामानन्दसिद्धान्तचन्द्रिका मं. ९)

यद्यपि जीवब्रह्मणोर्वैलक्षण्यप्रमाणभूताः शताधिकाः श्रुतयः। यथा **'द्वासुपर्णा सयुजासखाया'** (मु. उ. नि. ३।१)। **'छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति'** (क. उ. १।३।१) इत्यादयः। यत्र च क्वचिद्भेदपराः श्रुतयः तत्र सम्बन्धाद्वैवभावनया। यत्तु श्रुति। बाध्यबाधकत्वं कल्पयन्ति तदनुचितं, श्रुतिषु उत्सर्गापवादकल्पनं सर्वथा पापावहं न हि नित्या श्रुतिः काचित् कयाचित् बाध्यते तथा सति तदप्रामाण्यं स्यात्। पाणिन्यादि-पौरुषेयसूत्रेषु समुचितमिदं कल्पनं, तस्मात् स्वरूपतस्तु द्वैतं सम्बन्धतोऽद्वैतं इति समन्वयोऽस्मद्विशिष्टाद्वैतदर्शने। इममेव सिद्धान्तमाश्रित्य छान्दोग्योपनिषदमिमां व्याख्यातु-मीहे। तथा हि चिज्जीवः अचित् प्रकृतिः ते शरीरशरीरिभावेन ब्रह्मणि **विशेषणे**, तच्च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिदचिद्भ्यां विशिष्टं सदद्वैतम्, अत एव **'पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा'** इत्यादयः श्रुतयः संगच्छन्ते। भावपरके व्याख्याने कार्यकारणभेदेन ब्रह्म द्विधा, तच्च प्रत्येकं चिदचिद्विशिष्टम्। तथा हि विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे कार्यकारणब्रह्मणी तयोः विशिष्टयोः कार्यकारणब्रह्मणोः अद्वैतम् इति विशिष्टाद्वैतम्। प्रकृतिजीवब्रह्माणीति तत्वत्रयं प्रत्यक्षमनुमानं शब्द इति प्रमाणत्रितयं, परब्रह्मैव सकलजगदभिन्ननिमित्तोपादानं, जीवाः प्रमातारः ज्ञातव्यं च स्वपरोपायविरोधिफलस्वरूपपञ्चकमिति, ब्रह्मजीवयोः स्वरूपतो भेदः सम्बन्धतश्चाभेदः, सत्कार्यवादः जीवानां नित्यत्वं बहुत्वं च साकेताधिपति श्रीसीतारामाभिधं विशिष्टाद्वैतात्मकं ध्येयं श्रीसीतामाराख्यं ब्रह्म। मन्त्रश्च षडक्षरो राममन्त्रः द्वादशाक्षरो वा युगलमन्त्रः इति संक्षेपः।

शान्तिपाठः

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमयो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरण-मस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।।

ॐ शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।

ॐ इति परमात्मनोऽभिधानं मम अध्येतुः अङ्गानि शरीरावयवा आप्यायन्तु शक्त्या पूर्णानि भवन्तु, वाक्वाणी तद्दैवतञ्च, प्राणः पञ्चविधः शरीरान्तश्चारीवायुः चक्षुः नेत्रम्, तद्दैवतं श्रोत्रं श्रवणेन्द्रियं एवं सर्वाणि इन्द्रियाणि ज्ञानकर्माख्यानि अथोऽन्तरं बलं शारीरम् आध्यात्मिकं च प्राणरूपं इमानि सर्वाणि भजनोपकरणानि आप्यायन्तु भगवद्भक्तिसुधया सम्पुष्टानि भूत्वा परमेश्वरभजनरसे क्षमाणि वर्तन्तामितिभावः। औपनिषदमुपनिषत्सु दृष्टं सर्वं निखिलं पदार्थजातं ब्रह्म मा निराकुर्याम् रावणादिवत् सम्मुखमागतमपि मा तिरस्कुर्यां, तद् ब्रह्म परमकृपालुतया मां साधकं मा निराकरोत्। "नमाङ्योगे" इति सूत्रेण अडभावः "व्यत्ययात्" लोडर्थे लङ्लकारः, निजचरणारविन्दच्छायातः ब्रह्म मां मा दूरीकरोत्विति भावः।

तत् आत्मनि अत्र विषये सप्तमी परमात्मविषयकभक्तौ निरते तत्परे मयि, ब्रह्मणः अनिराकरणमस्तु मे मम च ब्रह्मणः अनिराकरणमस्तु, उपनिषत्सु उक्तः ये धर्माः ब्रह्मविषयाः ते मयि सन्तु तिष्ठन्तु आदरार्थवीप्सा। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति त्रिरुक्तिरेषा तापत्रयोपशमनाय।।इति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्री राघवोविजयतेतराम् ॥

॥ श्री रामानन्दाचार्यायनमः ॥

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

प्रथमः खण्डः

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ।।१।।

अवति सर्वान् रक्षति इति ॐ, इति शब्दोऽत्र प्रकारवाची, एतत् इदं श्रुतिप्रसिद्धम्। ॐ प्रणवमक्षरमकारं वासुदेवं क्षरति साधकेभ्यः समर्पयति यत् तदक्षरं तदेव उद्गीथं सामवेदगानविशेषम्। उत् उत्कर्षेण गीयते तदुद्गीथं औणादिकः कर्मणि थच् प्रत्ययः, अस्यां व्युत्पत्तौ किं मूलमिति? श्रुतिरेव प्राह— इदमेव उपासीत् उपासनाविषयं कुर्यात् हि यतोहि ॐ इति उद्गायति उद्गाता यज्ञे ओमित्युच्चार्य उच्चैः गायति तस्य ओंकारस्यैव उपव्याख्यानं संकीर्तनभूतं उद्गीथम्॥श्रीः॥

अथोद्गीतस्य सर्वातिशयत्त्वमाह—

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः । अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो, वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ।।२।।

अत्र रसशब्दः सारवाची, एषां भूतानां भवन्तीति भूतानि, तेषां पृथिवी रसः सारः आधाररूपः, भूतानि खलु पृथिव्यामेवाध्रियन्ते, पृथिव्याः भूमेः आपः जलमेव रसः स्थापकः। अपां जलानां ओषधयः सारः उपयुक्ततत्वविशेषः, ओषधीनां रसः साररूपः पुरुषः। तस्यापि रसः उपयोगविशेषः वाक्वाणी यत्र पुरुषो न ब्रूयात् तदा लोके तस्य कावश्यकता वाण्यपि ऋचं वैदिकवाङ्मयभूतां विना नीरसा, ऋचोऽपि रसः सामानि सामवेदः, तेषामपि रसः मुख्यं वस्तु उद्गीथम्। तदपि प्रणवाभिन्नं, तस्मात् उद्गीथ-रूपप्रणवमुपासीत् इति पूर्वान्वयतो वाक्यार्थः॥श्रीः॥

एवं तस्य रसतभतां साधयति—

स एष रसानाँ रसतमः परमः पराध्योऽष्टमो यदुद्गीथः ।।३।।

स एषः पूर्वं व्याख्यातः, रसानां पृथिवीजलौषधपुरुषवागृक्सामौद्गीथानामष्टाना रसानां मध्ये यत् व्यत्ययान्नपुंसकम्, उद्गीथः गानविशेषः परमःपूजनीयः पराध्यः श्रेष्ठः,

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रसः सारभूतः तस्मत् तदभिन्नतया प्रणवमुपासीत इति पूर्वान्वयी।।श्रीः।।

विषयं स्पष्टयितुं प्रश्नाकारमाह—

कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ।।४।।

एषु ऋक्सामोद्गीथानां किं किं स्वरूपं भविष्यतीति विचारणायां प्रश्नः— कतमा कतमा किं किं स्वरूपा ऋग्भवति? साम कतमत् किं स्वरूपं भवति? द्विरुक्तिरादरार्था, इदं त्रयं विमृष्टं विचारास्पदं भवति।।श्रीः।।

उत्तरमाध्यमेन विषयं स्पष्टयति—

वागेवर्क् प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः ।
यद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक्च प्राणश्चर्क् च साम च ।।५।।

वाक्वाणी एव ऋक् ऋग्रूपा, एवं प्राणः अशुः, साम सामाकारः ॐ प्रणवः उद्गीथः, इतिशब्दः द्वयोर्भेदसूचकः। विषयं स्पष्टयितुं मिथुनरूपकं रूपयति— वाक् प्राणः ऋक्साम च मिथुनं युग्मम्। यथा लोके स्त्रीपुरुषमिथुनेन प्रजननं जायते तथैव वागृचोः प्राणसाम्नोः रूपकतया निर्दिष्टयोः ऋक्साममिथुनं वाक्प्राणमिथुनञ्च सत्संस्कारान् उत्पादयति।।श्रीः।।

तमेवार्थं प्रपंचयति—

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे सँ्सृज्यते यदा वै ।
मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तावन्योन्यस्य कामम् ।।६।।

तत् तस्मात् एतत् इदं ऋक्सामरूपं वाक्प्राणरूपञ्च मिथुनं युगलम्, ॐ इति ये तस्मिन्नक्षरे अविनाशिवर्णे संसृज्यते सम्पृक्तं भवति, यथा मिथुनौ दम्पती समागच्छतः समागमं कुरुतः तदा तौ जायापति अन्योन्यस्य कामम् अभिलाषम् आपयतः पूरयतः तथैवेदमपि कामं पूरयित्वा लक्ष्यान्नावचलति।।श्रीः।।

रोचनार्थं फलश्रुतिं वर्णयति—

आपयिता ह वै कामानां भवति ।
य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ।।७।।

ह वै इति प्रसिद्धार्थौ निपातौ, यः साधकविशेषः एतत् ऋक्सामवाक्प्राणमिथुने ओंकाररूपमुद्गीथं च एवं मिथुनपरम्परया जानाति, विद्वान् जानन् स कामानां मनोरथानामापिता पूरयिता भवति।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साम्प्रतं भूयोऽपि प्रणवमहिमानं महीयते।

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किं चानुजानात्योमित्येव तदाह एषा एव समृद्धिर्यदनुज्ञा। समर्धयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुदगीथमुपास्ते।।८।।

वा इति निश्चयार्थोऽव्ययः, तत् श्रुतिप्रसिद्धं एतत् इदमक्षरमोंकाररूपमनुज्ञा अनुज्ञानमनुमतिरित्यर्थः, कथमित्यत् आह— हि यतो हि यत्किं च यत् किमपि अनुजानाति अनुमन्यते, तत् ॐ इत्यनुमतिसूचकं शब्दमाह कथयति। यथा कोऽपि लोके प्रार्थयते मां व्याकरणं पाठयत्वाचार्यः तदा आचार्यः प्राह ॐ एवमेव एषा ओमित्युक्तिः समृद्धिः सम्पत्सूचिका। यः साधकः एतत् ओंकारमेवमनुज्ञारूपं समृद्धिरूपञ्च विद्वान् जानन् उद्गीथम् ओंकाररूपेण उपासते भजते सकामानां मनोरथानां समर्थयिता समृद्धिकर्त्ता भवति।।श्रीः।।

भूयश्च प्रवणसार्वभौमतां वर्णयति—

तेनेयं त्रयी विद्या वर्तते ओमित्याश्रावयत्योमिति शं॰सत्योमित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचितयै महिम्ना रसेन ।।९।।

तेन प्रणवेन इयं प्रसिद्धा त्रयी कर्मोपासना ज्ञानरूपा काण्डत्रयी ऋक्सामययूरूपा वेदत्रयी च वर्तते। विद्यते ओंकारमन्तरा न तिष्ठेदिति भावः। तदेव प्रपंचयति ॐ इति प्रणवमुच्चार्य आश्रावयति श्रावकः वेदमन्त्रान् निशामयति, एवं ॐ इति निगदन् शंसति मंत्रशंसकः ओमिति उच्चारणं कृत्वा उद्गायति उद्गाता। एतस्येव वर्णितस्य अक्षरस्य ओंकारस्य महिम्ना महत्वेन रसेन साररूपेण त्रय्यां श्रावकब्राह्मणाच्छंशी उद्गाता च स्वे-स्वे कर्मणि प्रवर्तन्ते।।श्रीः।।

अधुना ज्ञानाज्ञानयोरन्तरं वर्णयति—

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद,
नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव
विद्या करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं,
भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति।।१०।।

तेन प्रणवमेव माध्यमं विधाय उभौ ज्ञानाज्ञानिनौ कुरुतः उपासाते, कौ तौ? अत आह— एतद् वेद जानाति यश्च न वेद न जानाति। किन्तूभयोरन्तरं भवति, किं तत्? अत आह— विद्येत्यादि विद्यानाम ज्ञानम् अविद्या अज्ञनमियं नाना विभिन्नफला। यश्च विद्यया ज्ञानेन करोति उद्गीयोपासनं तत् एव श्रद्धया आस्तिकबुद्ध्या उपनिषदा श्रुतिविहितमार्गेण कृतं वीर्यवत्तरमत्यन्तप्रभावशालि भवति। तस्यैव अक्षरस्य उद्गीथरूपस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रणवस्य इदं सर्वमुपव्याख्यानं संकीर्तनं जायते। इत्थं खण्डेऽस्मिन् प्रणव एव उद्गीथानुज्ञासमृद्धिरूपः उपास्यः इति प्रकरणार्थः। तात्पर्यन्तु यदेव विद्यया करोति श्रद्धैवोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरमिति श्रुत्यनुसारं ज्ञानोत्तरमुपासनं तच्च शरणागतिरेव परमेश्वरस्य।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि प्रथमाऽध्याये प्रथमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

द्वितीयः खण्डः

इदानीं प्राणस्य उद्गीथोपासनायामाख्यायिकामेकां प्रस्तौति। यस्यां प्राणस्य सर्वश्रेष्ठता समर्थिता। अत्र प्राणशब्देन परब्रह्मैवाभिधीयते तथा च बादरायणः **'अतएव प्राणः'** (ब्र. सू. १।१।२३। श्रुतावऽपि **'स प्राणस्य प्राणः'** (के. उ. १।३)।

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिर उभये प्राजापत्यास्तद्ध
देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति ।।१।।

ह वै इति प्रसिद्धिद्योतकौ निपातौ, देवाश्चासुराश्च इति देवासुराः देवाः नामः द्योतनशक्तिप्रधानाः इन्द्रादयः तेहि दैवीं सम्पदमुपासीनाः सात्विकाः ते हि अभयादि गीतोक्तषड्विंशतिं गुणयुक्ताः। गीता अध्याय १६।१।२।३।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानं योगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।१।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।२।।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।३।।

यद्वा दीव्यन्ति स्तुवन्ति पुष्कलाभिः स्तुतिभिः परब्रह्मपरमात्मानं ये ते देवाः सुराःनिरन्तरं परमात्मानं स्तुवन्ति। यथोक्तं भागवते 'यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैःस्तवैः। तथापि गीतायां पार्थः प्राह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुद्रादित्यावसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ।।

(गीता ११।२२)

इमे हि भागवताः अतोऽमीषां हितं चिकीर्षन् भगवानवातरति। असवः प्राणाः तदुपलक्षितशरीराणि च तेषु रमन्ते इत्यसुराः। इमे दितिनन्दनाः आसुरवृत्तयः दम्भादि षड्दुर्गुणसम्पन्नाः। यथोक्तं गीतायाम्—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ।।

(गीता १६।४)

इमे देवान् देवाधिपतिञ्च द्विषन्ति। अतो नरके क्षिप्यन्ते एषां शाश्वतिको विरोधः। तस्मात् **'एषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः'** इत्यनेन द्वन्द्वसमासः। अहिनकुलमिव। नन्वत्रापि अहिनकुलादिवत् कथं नैकवद्भावो नपुंसकलिङ्गञ्च? समुचितं पृष्टम्, एकवद्भावः क्लीबता च द्वावपि समाहारानिबन्धिनौ, देवाः सुराः इत्यत्र **'एषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः'** इत्यनेन द्वन्द्वसमासे समाहारे एकवद्भावे नपुंसके देवासुरं 'व्यत्यो बहुलम्' इति पाणिनीयसूत्रेण व्यत्यात् पुंस्त्वम् बहुवचनं च देवासुराः। यत्तु केचन देवासुरप्रसंगं प्रतीकवादमनुश्रुत्य आध्यात्मिकतया व्याचक्षते, तदनुचितम्। तथा सति सर्वेषां पौराणिकप्रसंगानामालङ्कारिकतया मिथ्यात्वापत्तेः। यद्यपि देवाः चक्षुरादीन्द्रियाधिष्ठिताः, असुराः आसुरभावसम्पन्नाः स्वभावाः तेषामेव परस्परवैषम्यात् नैसर्गिकस्य सङ्ग्रामः इत्यपि व्याख्यातुं शक्यते। परन्तु श्रुतितात्पर्यविरुद्धत्वात् उपेक्ष्यते। अथ कथमस्मिन् व्याख्याने श्रुतिविरोधः? तदुपजीवकपुराणेषु तथात्वेनानुपलब्धत्वात्। अथ किं पुराणोपलब्धत्वरूपश्रुतितात्पर्यमूलं श्रुतेरेव पुराणानां उपबृंह्मणत्वात्। तथोक्तम् **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्'**। **विभेत्यल्पश्रुतादवेदोमय्यसौ प्रहरिष्यति**।। इति न वेदोपबृंहणरूपपुराणोलङ्घने साहसिकाः। उभये समुदायद्वयोक्ताः, प्राजापत्याः प्रजापतिःकश्यपः तस्य अपत्यानि प्राजापत्याः **'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः'** इत्यनेन 'ण्य' प्रत्ययः, अत्र संयतिः सङ्ग्रामः तदा देवाः उद्गीथं पूर्वव्याख्यातमाजह्रुः। किं हेतो इत्यत् आह— अनेन उद्गीथोपासना कर्मणा एनान् असुरान् अभिभविष्यामः पराभविष्यामः। उपासनया हि दैवीशक्तयः आसुरीशक्तीः परिभवन्ति। इत्येव इति शब्दार्थः।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ यथाक्रमं प्राणोपासनामेव प्रपञ्चयति—

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासांचक्रिरे । तँ हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः।।२।।

अथ ते देवाः नासिक्यं नासिका घ्राणः तस्यां नासिकायां भवमिति नासिक्यं **'शरीरावयवाद्यत्'** इत्यनेन यत् प्रत्ययः। नासिकासम्बन्धिनमित्यर्थः। प्राणं घ्राणछिद्र-निर्गमनशीलवायुं, उद्गीथम् उद्गीथात्मकम्, उपासां चक्रीरे, उपासितवन्तः। ह निश्चयेन असुराः आसुरभावापन्नाः देवविरोधिनो देहाभिमाननिरता विरोचनादयः तं निजपराविभूषया सुरैरुपास्यमानं तं प्राणं पाप्मना भगवद्भजनप्रतिबन्धकप्रत्यवायविशेषेण विविधुः विद्धं चक्रुः। ते हि खलु पापाः पापमेव तेषां निजायुधं तेनैव विवुधुः अर्थात् भजनपरम्परामेव व्यवच्छिन्नवन्तः। तस्मात् घ्राणस्य पापविद्धत्वात् देवास्तु भजनविमुखा बभूवुः, सार्धं लोकस्यापि हानिर्जाता पाप्मना विद्धः सः घ्राणस्थः प्राणः सुरभिसुगन्धिं दुर्गन्धं च जिघ्रति घ्राणविषयीकरोति। ननु सुरभिगन्धस्तु सर्वथा समनुकूलः तर्हि तदघ्राणवेलायां कथमुपासनाहानिरिति चेन्न, उपासनायां खलु द्वे अपि शुभाशुभे बाधके आनुकूल्ये सति तदासक्तौ भजनबाधा, प्रातिकूल्ये च तन्निराचिकीर्षा व्यस्ततया भजनबाधा इति चेत् घ्राणोऽयं भजनप्रतिबन्धकप्रत्यूहरूपपाप्मना विद्धो न स्यात्, तदा तेन प्रतिकूल्यानुकूल्ये समतीत्य सुखदुःखात्मकद्वन्द्वत उपरम्य लोकाभिरामे श्रीराम एव रम्येत्। अतएव भगवद्भजनरसं विहाय शरीरानुकूल्यानुभवोऽपि पापपरिणामेव। यथोक्तं मानसकृता—

सानुज सखा समेत मगन मन ।
बिसरे हरष शोक सुख दुख गन ।।

(मानस २।२४०।१)

कथमसौ सुगन्धदुर्गन्धघ्राणेन उभे अनुभवति? इत्यत आह— यतो हि एषः असुरैः पाप्मनाविद्धः सम्पूर्णलोको हि द्वयोरेतयोरनुभवेन नैवानन्दमधिगच्छति, एवं घ्राणोद्गीथोपासनानिरस्ता।

एवमन्यामुपसनां निरसयति—

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासांचक्रिरे
तँ हासुराः पाप्मना
विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यं
चानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ निराशा:देवा: वाचं वाणीमपि उद्गीथरूपेण उपासांचक्रिरे। तामपि असुरा: भजनरसविस्मारकपाप्मना विद्धांचक्रु:। अतएव लोक: भगवद्गुणगणानां चर्चां परिहृत्य स्वर्गकाम: सत्यं नरककाम: अनृतमसत्यं वदति तेन भजनरसो विहन्यते। इतोऽपि निराशा: सुरा: चक्षुरुपासनां चक्रु:—

अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासांचक्रिरे। तद्धासुरा:
पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं
पश्यति दर्शनीयं चादर्शनीयं
च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ।।४।।

उपास्यमानस्य चक्षुष: असुरै: पाप्मना विद्धत्वात्। ततो भगवत: सकलभुवनाभिराम कोटिकन्दर्पकमनीयसमधिकसौन्दर्यमाधुर्यमयरूपपीयूषपिपासा व्यवगता तेन जगति शोभनाशोभनदर्शनजनितहर्षविषादलोललोचनो लोको राजीवलोचनमनालोक्यविषीदतीति तात्पर्यम्।।श्री:।।

अथ श्रोत्रमुद्गीथरूपेण समुपासनाञ्चक्रिरे तत्परिणाममाह—

अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासांचक्रिरे
तद्धासुरा: पाप्मना विवुधुस्तस्मात्ते-
नोभय ँ श्रृणोति श्रवणीयं
चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ।।५।।

श्रोत्रं श्रवणेन्द्रियं शेषं पूर्ववत्। अत्र तात्पर्यमेतत् यदि सुरै: पापविहरत्वादेव श्रवणेन्द्रियमेतत् विरम्य भगवत्कथासुधात: शुभमशुभं श्रृणोति तस्मादुपासनानन्यता व्यवच्छिद्यते। अथ तात्पर्यं ब्रवीमि मन्त्रस्य यद् वैष्णवा: कर्णेन्द्रियविशेषा: क्षणमपि भगवत्कथासुधातो न विरमन्ति। तदतिरिक्तस्य शुभस्याशुभस्य वा श्रवणं पापावहम्। अतएव पृथु: भगवत्कथाश्रवणार्थं दशसहस्रंकर्णान् ययाचे जनार्दनम्। तद्यथा—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासव: ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्वकर्णायुतमेष मे वर: ।।श्री:।।

(भागवत ४।२०।२४)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ निराशाः मनस उपासनां चक्रुः तत्फलमाह—

अथ ह मन उद्गीथमुपासांच्चक्रिरे
तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्ते-
नोभय्ँ संकल्पयते संकल्पनीयं
चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ।।६।।

सर्वं पूर्ववत्। भावोऽयं यत् मनसैव भगवदीयभावनं चिन्तनं भवति। आसुरपाप्मभिर्यदि मनो विद्धं चेत् तदा भगवत्पदपद्मप्रेमपरागरससङ्कल्पं विहाय जागतिकपदार्थानां सदसत्ता सङ्कल्पेन मानसीपूजा विहन्यते भगवतः, तस्मान्मनोऽपि नोपास्यम्।।श्रीः।।

एवं नासिकाचक्षुश्रोत्रमनउपासनातः विरम्य देवाः कस्योपासनां चक्रुः? इत्यत आह—

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे ।
त्ँ हासुरा ऋत्त्वा विदध्वंसुर्यथाश्मानमाखणमृत्वा विध्व्ँसेत् ।।७।।

अथानन्तरं ह निश्चयेन यः अयं एषः मुख्यः सर्वेषां प्रमुखः प्राणः परमात्मविभूतिरूपः तमेवोपासांचक्रिरे। अन्ये नासिक्यांदयस्तु असुरैः यथा पापविद्धाः तथैवेममपि बेधितुमागताः तदनन्तरं किं जातम्? अत उपमानविधया प्राह— यथा येन प्रकारेण अस्माकं विशालपाषाणशिलां प्राप्य ऋत्वा गत्यर्थक ऋङ् धातोः 'त्वा' प्रत्ययः। आखणः आखन्यते कुद्दालैः विदार्यते इत्याखणः लोष्ठः विध्वंसेत लडर्थे लिङ्। विद्ध्वस्तो भवतीत्यर्थः। तथैव तं भगवद्स्वरूपप्राणोपासकं प्राणं च ऋत्वा प्राप्य विदद्ध्वंसू राक्षसाविध्वस्ताः बभूवुः। न तं पापैः विनाशयितुं शेकुरिति भावः। तस्यापहतपाप्मत्वात् **'अपहत पाप्मा'** (छा. उ. १।२।९) इत्यादि श्रुतेः।।श्रीः।। इममेवार्थं दृष्टान्तयति—

एवं यथाश्मानमाखणमृत्वा विध्व्ँसत एव्ँ हैव स विद्ध्ँसते ।
य एवंविदि पापं कामयते यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः ।।८।।

प्रकरणमुपसंहरति। एवमित्थं यथा आखणं लोष्ठमस्मानं पाषाणं ऋत्वा अभिहन्तुं गत्वा विद्ध्वंसते, तथैव एवं विधिप्राणोपासनारहस्यज्ञातरि यः पापमहितं कामयते स एव ह निश्चयेन विद्ध्वंसते। यतो हि एषः उपासके कृतपापः अस्माखणः अश्मभिः अभिभूताखणमिव। यथोक्तं मानसे—

जो अपराध भगत कर करई। रामरोष पावक सो जरई ।।श्रीः।।

(मानस २।२१८।५)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतरवैलक्षण्यस्योपपत्तिमाह—

नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यप-
हतपाप्मा ह्येष तेन यदश्नाति
यत्पिबति तेनेतरान् प्राणानवति एतमु
एवान्ततोऽवित्त्वोत्क्रामति व्याददात्येवान्तत इति ।।९।।

एतेन भगवद्विभूतिरूपेण सुगन्धिदुर्गन्धिं न विजानाति, नैव विविच्य बुध्यते कथमित्यत आह— हि यतो हि एषः प्राणः अपहतपाप्मा अपहतं विनाशितम् असुरकृतं पापम् येन अपहता वा पाप्मानो येन स, असुराणां पापानि तत्र गत्वापि तेन हन्यन्ते। अतएव अयं यत् अश्नाति भोजनं करोति यत्पिबति उपलक्षणत्तया सकलेन्द्रियाणां धर्मान् निरस्य केवलं भजनरसिको भवति। तेनेतरानपि संधारयति एतं विदित्वा जीवः विक्रामयति उपरि गच्छति अन्ततश्च गोपनीयभावानपि व्याददाति।।श्रीः।।

प्राणस्याङ्गिरोनाम हेतुमाह—

तँ् हाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्र एतमु
एवाङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः ।।१०।।

ह, निश्चयेन तं, प्राणं उद्गीथं, उद्गीथरूपम् उपासांचक्रे आनर्च। कः? इत्यत आह— अङ्गिरा ब्रह्मणस्तार्तीयकस्सुतः अतएव इमम् आङ्गिरसम् अङ्गिरसः अयम् आङ्गिरसः तं अङ्गिरः सम्बन्धिभूतमुपास्यं मन्यन्ते स्वीकुर्वन्ति। अथवा एतस्य अङ्गेषु रसः तथा हि अङ्गिरसः यस्य स अङ्गिरा अङ्गिरा एव आङ्गिरसः तम् आङ्गिरसम्।।श्रीः।।

अथ बृहस्पतिनाम हेतु माह—

तेन तँ् ह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासांचक्र एतमु
एव बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः ।।११।।

तेन कारणेनैव तं उद्गीथात्मकं प्राणमुपासांचक्रे। अतएव बृहस्पतेः उपास्यत्वात् इमं बृहस्पत्तिं कथयन्ति। बृहस्पतिशब्दनिरुक्तिमाह। वाक् बृहती बृहत्त्याः पतिः बृहस्पतिः। 'पृषोदरादित्वात्' बृहती शब्दस्य बृहस् आदेशः।।श्रीः।।

आयास्य नाम कारणमाह—

तेन तँ् हायास्य उद्गीथमुपासांचक्रु एतमु
एवायास्यं मन्यन्त आस्याद्यदयते ।।१२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेन उद्गीथोपासनाविशेषेण तं प्राणमायास्यः एतन्नाममहर्षिः उपासांचक्रे। अतएव इमं प्राणमपि आयास्यं मन्यन्ते, अपरोपहेतुः अयं प्राणः आस्यात् मुखात् अयते गच्छति अतोऽप्यायास्यः।।श्रीः।।

प्राणोद्गीथोपासनापरम्परामाह—

तेन त ँ्ह बको दाल्भ्यो विदांचकार ।
सह नैमिषीयानामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः कामानागायति ।।१३।।

तेन उद्गीथोपासनापारम्पर्येण दाल्भ्यः दल्भ्यस्यापत्यः पुमान् दाल्भ्यः। बकः बं ब्रह्म कायति निरन्तरं चर्चाविषयं करोति इति बकः, तं प्राणं विदांचकार, अत्रोपासनावेदनयोरभेदाभिप्रायेण पूर्वमुपासनमुक्त्वा साम्प्रतं तत्पर्यायं वेदनमाह। विदांचकार माहात्म्यज्ञानपुरःसरं समानर्च। तत् पुण्येन नैमिषायानां नेमिः, ब्रह्मणश्चक्रं शीर्यते विलीयते यस्मिन् तन्नैमिषं तस्मिन् भवाः नैमिषीयाः नैमिषीयानामुद्गाता यज्ञकर्मणि उद्गाता बभूवः। स एभ्यः नैमिषमहर्षिभ्यः कामान् उपासना फलानि आगायति आदरेण गायति।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं
विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ।।१४।।

ह वै इति निश्चयार्थौ निपातौ। यः एतद् व्याख्यातरहस्यं विद्वान् जानन् एवं उक्तरीत्या अक्षरं अविनाशिनं प्रणवमुद्गीथमुपास्ते भजते सः कामानां मनोरथानां आगाता भवति। इतीत्थम् अध्यात्मौपनिषदं रहस्यम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि प्रथमाध्याये द्वितीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

तृतीयः खण्डः

इदानीं भूयोऽपि उद्गीथस्य प्रतीकोपासनाक्रमे तेषु तेषु प्रतीकेषु उद्गीथधारणया समुपासनविधित्वेन निर्देष्टुं सकलमिदं प्रारभ्यते। तत्र प्रथमं आदित्यप्रतीकोपासनोपक्रमः।

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति
तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य
उद्गायति उद्य ँ्स्तमोभयमपहन्त्यपहन्ता
ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ इदानीमधिदैवतम्, देवता एव दैवतं देवशब्दात् स्वार्थे तल् 'देवात् तल्' इति सूत्रेण। तथा च दीव्यतीति देवः देव एव देवता। भूयश्च देवतैव दैवतम् इति विग्रहे स्वार्थ एव प्रज्ञादित्वादण् प्रत्ययः। ननु एकस्मादेव देवशब्दात् स्वार्थिक प्रत्यय-द्वयविधानेन किं विवक्षितम् श्रुत्याः? श्रूयताम् अत्र स्वार्थोनाम आत्मपर्यायस्य स्व-भूतस्योपासकस्य अर्थः प्रयोजनम् तदधिकरणं वा तच्चोपास्यदेवरूपं यथाशास्त्रमुपासितो देवलोकं परलोकं चेति स्वार्थयुग्मं साधयतीति स्वार्थद्वयप्रतिपादकप्रत्यययुगलान्त-दैवतशब्देन सूचितम्। एवमधिकृतं दैवतमधिदैवतं यच्च निज निज वर्णाश्रमाधिकारप्राप्तं तथाभूतं दैवतमधिदैवतमिति भावः।

श्रौतोपासनायां खलु त्रेधाक्रमः। प्रतीकानि भूतदैवतात्मसम्बन्धीनि त्रेधा भवन्ति। भूतसम्बन्धीनि अधिभूतानि, दैवसम्बन्धीन्यधिदैवतानि, आत्मानुबन्धीन्याध्यात्म्यानि, इतः पूर्वयोः शकलयोः यथाक्रमं प्राणोद्गीथोपासनायां मन उपासनायाञ्च द्वे वर्णिते, इदानीमधिदैवतं वर्ण्यते। उपास्य दैवतेषु प्रमुखः प्रथमश्चादित्यः अतस्तमेव प्रतीकीकृत्य उद्गीथोपासनं विधत्ते। यः सर्वजनविदितः असौ सकलचक्षुष्मत् दृग्गोचरः एव, नान्यस्मात् तपति प्रकाशते तमादित्यं सूर्यनारायणमेव उद्गीथम् उद्गीथरूपमुपासीत। उपासनाविषयं कुर्वीत। सूर्यमण्डले नारायणस्थितिः पुराणेषु प्रसिद्धा तथाहि—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ।।

अतएव सूर्यनारायण इति सूर्यं व्याहरन्त्यास्तिकाः। वस्तु तस्तु, सूर्ये नारायणः सूर्यनारायणः इति सप्तमी योगविभागसमासः। नारायणत्वं च सामस्त्येन श्रीराममेवाधिश्रूयते, तथाहि न रमते संसारिकभोगेषु भगवतप्रेमभक्तिप्रवणचेतस्तया यः स नरः महाराजदशरथः। तथोक्तं श्रीमानसे—

बदऊँ अवध भुआल सत्यप्रेम जेहि रामपद ।
बिछुरत दीन दयाल प्रियतन तृन इव परिहरेउ ।।

(मानस १।१६)

अथवा नरति गच्छति शरण्यत्वेन भगवत्पादमूलं यस्तथाभूतः, अथवा, नारयति शत्रून् क्षयं गमयति यस्तथाविधो नरः दशरथः, अथवा न राति न ददाति याच्यमानोऽपि स्वेच्छया रामचन्द्रं कौशिकाय यः स नरः। यथा चाह प्राचेतसः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊनशोडषवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ।।

(वा. रा. बालकाण्ड १९।७)

तस्य नरस्य नरपतेः दशरथस्य अयनं निवासस्थाने नरायणं, श्रीअयोध्या तस्मिन् नारायणे चक्रवर्तिदशरथसद्मनि श्रीमदयोध्यापुरीजातः कौसल्यायां यः स नारायणः साक्षात् ब्रह्ममय श्रीहरिः भगवान् रामः स एव सूर्यमण्डलस्थः। यथोक्तं श्रीसनत्कुमार-संहितायाम्—

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।
नमामि पुण्डरीकाक्षं अमेयं गुरुतत्परम् ।।

(श्रीयमस्तवराज ५०)

ननु तस्य सूर्यमण्डलस्थत्वे श्रुतौ किं मानमिति चेच्छ्रूयतां योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि (ईशावास्य १६) इति ईशावास्यश्रुतिरेव। किं बहुना समस्तवैदिकमन्त्र माता ब्रह्मगायत्र्यपि मम व्यख्याने परमं प्रमाणम् तथा च

ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो ।
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

(शुक्ल यजु. ३ अ.।३५)।

एतदर्थः ओम् इति सर्वव्यापकपरमात्मनः प्रमुखं नाम। यद्वा अकारो वासुदेवः, उकारो ब्रह्मा, मकारो महेश्वरः इमे अकारोकारमकारवाच्याः देवास्त्रयः सन्तिष्ठन्ते यत्र स 'ओम्'। अस्मन्मते तु ओमति ब्रह्मजीवघटकीभूतसेव्यसेवकभावसम्बन्धस्मारक-परममंगलमयभगवन्नाम। तथा च अकारः लुप्तः चतुर्थीकःलुप्ततृतीयापंचमीषष्ठी सप्तमीको वा, उकारः निश्चय परः, मकारः जीववाचकः, एवं परमात्मने अत्र तादर्थ्ये चतुर्थी भगवदर्थभूतः इति यावत् निश्चयेन म जीवः इत्योम् स एवास्त्यस्मिन् इत्योम् अत्र तात्स्थे लक्षणा शक्यतावच्छेदकारोपो वा मञ्चाः क्रोशन्ति इतिवत्। जीवो हि निश्चयेन भगवदर्थभूतः तमुपश्लिष्य तस्मिन्नेव तिष्ठति, अत्र गुरौ वसति इतिवत् सामीप्ये सप्तमी। ननु सामीप्यसप्तम्यां किं मानमिति चेत् 'आधारोधिकरणम्' इति सूत्रे अधिकरणत्रितयव्याख्यावेलायां उपश्लेषस्य संयोगसामीप्यरूपेण वैयाकरणाचार्यैः व्याख्यतपूर्वत्वात् तद्वचनमेव प्रमाणम्। एवंभूतः प्रणवरूपो भगवान्, भूः चरमावच्छेदेन भूः रूपः एवं भुवः हृदयावच्छेदेन भुव आत्मा, स्वः शीर्षतया स्वराकारः भगवानेव हि भूर्भुवः स्वराकारः विश्वरूपः तथा च श्रुत्यन्तरं **'नाभ्या आसीदन्तरिक्षँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकानकल्पयन्न'** (शु. यजु. अ.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३१।म.१३) एवं भूतस्य सवितुः सकलप्रेरकस्य सूर्यस्यापि सम्बन्धिनः देवस्य स्वभाषा द्योतमानस्य, अत्र सवितुर्देवस्य इति वाक्यखण्डे सवितृशब्दस्य देवशब्देन सह प्रकाश्यप्रकाशकभावरूपसम्बन्धः। तदर्थे सवितुरित्यत्र 'षष्ठी शेषे' इति सूत्रेण षष्ठी। न तु नीलस्य घटस्य इति वाक्यखण्डघटकभूतस्य घटविशेषणीभूतनीलशब्दस्येव समानाधिकरणविशेषणषष्ठी। यत्तु पूर्वैः सवितुः देवस्य इत्यत्र उभयत्रापि सामानाधिकरण्यं व्याख्यातम्। तथा च यः सविता देवः तस्य सवितुः देवस्य इति तन्न विचारसहः **'यस्य भाषासर्वमिदं विभाति'** (क. १।३।१३) इति श्रुतिविरोधात्। **'तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्'** (श्वे. उ. ६।८) इति श्रुतिस्वारस्यव्याकोपाच्च। **'सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यः'** (बा. रा. अ. ४४।१५) इति स्मृतिहार्दविरुद्धत्वाच्च। एवं सवितृप्रतियोगिकद्योतनाधिकरणस्य परात्मनः, तत् तनोति व्याप्नोति चराचरं यत् तथाभूतं सर्वप्रसिद्धं वरेण्यं स्वामित्वेन वरणयोग्यं, भर्गः सकलदोषभर्जनशीलं तेजः धीमहि ध्यायेम, यः देवः सूर्यमण्डलस्थो भगवान् रामः नः अस्माकं धियः धिष्णाः प्रचोदयत् प्राकर्षेण प्रेरयेत्, अशुभकर्मतो व्यावर्त्य शुभकर्मसु नियोजयेदिति भावः। एवं उद्गीथप्रतीकेन सूर्यस्यापि सूर्यं श्रीरामं उपासीत भजेत। कथमत्रोद्गीथत्वम्? अत आह उदेति उद्गायति यः स उद्गीथः व्युत्पत्तिसमर्थने प्राह वा हेतुत्वानुवादकोऽयमव्ययः। एषः उद्यन् उदितो भवन् प्रजाभ्यः संसारप्राणिभ्यः हितकरः उद्गायति उत्कृष्टं गायति निजप्रणतभक्तनामगुणान् संकीर्तयति इति भावः। एतस्योद्यानं उद्गानञ्च प्रजाभ्यः प्रजानां हिताय भवति। यथोक्तं मानसे—

उदित उदय गिरिमंच पर रघुवर बालपतंग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ।।

(मा. बा. २५३)

ननु उद्यन् उद्गायन् वा किं करोति? अत आह उद्यन् उदयं गच्छन् तमः ध्वान्तं अपहन्ति अपकृष्टतया हिनस्ति, उद्गायन् स्वभक्तगुणान् संकीर्तयन् भयं निजजनभीतिं निवारयति। यः आदित्यप्रतीकोद्गीथोपासकः एवं वेद उपासते, अत्र प्रकरणानुरोधेन वेदनं उपासनमेव सोऽपि तमसः अन्धकारस्य भयस्य संसाररूपस्य अपहन्ता भवति॥श्रीः॥

अथ प्राणादित्ययोः सादृश्यं शास्ति। समान इत्यादिना—

समान उ एवायं चासौ
चोष्णोऽसमुष्णोऽसौ स्वर इतीममाचक्षते
स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमुं
तस्माद्वा एतमिममुं चोद्गीथमुपासीत ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उ निश्चयेन, अयं उद्गीथप्रतीकरूपः प्राणः, असौ तत्प्रतीकः सूर्यः समानः, अन्योऽन्येन कथं समानत्वमित्यत आह— उभयसाधारणं गुणत्रयमयं प्राणः असौ सूर्यश्च उष्णः समानतया चोष्णत्वगुणावुभौ, अयं स्वरः स्वरति शरीराणि प्राप्य गच्छति तथैव सूर्योऽपि स्वरति गगनमण्डलं गच्छति प्रत्यास्वरति प्रत्यायाति च अतः प्रत्यास्वरत्वं अस्याधिकं तस्मात् एतं प्राणम् इमं सूर्यम् अमुं परमेश्वरञ्च उपासीत स प्रतीकं निष्प्रतीकं वा भजेत्।।श्रीः।।

इदानीं सूक्ष्मतया व्यानमेवोद्गीथप्रतीकं मत्वा प्राह—

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै
प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोऽपानः ।
अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानो यो व्यानः
सा वाक् तस्माद्प्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति ।।३।।

अथ उद्गीथप्रतीकद्वयोपासनानन्तरं व्यानं प्राणापानविलक्षणं, वैलक्षण्यहेतुमाह— अप्राणनेत्यादिप्राणापानक्रियां निरपेक्षैव इति भावः। शेषं सुगम्।।श्रीः।।

अथ व्यानवागृग्सामोद्गीथानामेकत्वमाह—

या वाक्सर्क्तस्मादप्राणन्ननपा-
नन्नृचमभिव्याहरति यर्क्तत्साम तस्माद
प्राणन्ननपानन्साम गायति यत्साम स
उद्गीथस्तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति ।।४।।

वाग् ऋचोः, ऋक्साम्नोः, सामोद्गीथयोश्च तत्वं वागेव सा च प्राणापानक्रियानिरपेक्षा तस्माद् तत् सादृश्यतया सर्वपरिणामभूतं व्यानमेवोद्गीथरूपेणोपासनीयमिति मन्त्रार्थः।।श्रीः।।

व्यानोपासनामेव उपसंहरति—

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि
यथाग्नेर्मन्थनमाजेः सरणं दृढस्य ।
धनुष आयमनमप्राणन्नपान ँ स्तानि
करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत् ।।५।।

अतः अस्माद्धेतोः वीर्यवन्ति पराक्रमसाध्यानि आजिः युद्धः (एवं निहासुर्नृसुर्नृपदेहमाजौ) (भागवत— ६।१२।१) इति शुकोक्तेः। यत्तु आजेर्मर्यादार्थो व्याख्यातः स तु चिन्त्यः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आजे शरणं युद्धस्य कृते गमनमायमनं विकर्षणमग्निमन्थनसमरगमनचापकर्षणादिकर्माणि प्राणपाननिरपेक्षाणि, नहि कोऽपि प्राणन् अपानन् वा इमानि करोति तस्माद्-व्यानमेवोपासनीयमिति हार्दम्।।श्रीः।।

इदानीमुद्गीथाक्षराणामुपासनमाह—

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति
प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति ।
वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्या
चक्षतेऽन्नं थमन्नेहीद ँ् सर्व ँ् स्थितम् ।।६।।

शब्दार्थः सरलः। वाक्यार्थस्तु प्राणवागन्नरूपोपासनायां त्रयोऽप्यर्थाः। उद्गीथेति वर्णत्रितये निहिताः तथा च उत् शब्दस्य प्राणोऽर्थः उत्तिष्ठति येन स उत् प्राणेनापि सर्व उत्तिष्ठन्ति, गीशब्दस्य गिरार्थः, गिरति स्फोटरूपार्थं व्यनक्ति इति गीः थशब्दस्य अन्नमर्थः। तिष्ठति सम्पूर्णचराचरं यस्मिन् तत्थं, पृषोदरादित्वात् सकारलोपः क प्रत्ययः धातुघटकाकारलोपश्च।।श्रीः।।

भूयोऽप्युद्गीथाक्षरेषु तत्तत्प्रतीकाण्यारोपयति—

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य
एवो द्वायुर्गीरग्निस्थ ँ् सामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीः ऋग्वेदस्थं
दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति
य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति ।।७।।

मन्त्रेऽस्मिन् उद्गीथाक्षरत्रये प्रतीकत्रिकं, द्यौः स्वर्गलोकः स एव उत तत्रैव साधकानामुत्थानात् अन्तरिक्षं गीः ततो पयआदेर्गिरणात् पृथिवीथं स्थानभूतत्वात् एवं आदित्यः उत् तस्योत्थानस्वभावात्, वायुःगीः गन्धगिरणात्। अग्निःथं तत्रैव समेषां भस्मस्थानात्, सामवेदः उत् उत्कर्षात्, यजुर्वेदः गीः कामनागिरणात्, ऋग्वेदः थं तत्र देवानां स्थितत्वात् अस्मै साधकार्थं दुग्धे कामान्ददाति इति भावः।।श्रीः।।

साम्प्रतं सकामोपासनां वर्णयति—

अथ खल्वाशीः समृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत ।
येन साम्नास्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत् ।।८।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आशीः फलं, उपसरणानि उपसर्तव्यानि गन्तव्यानि सामानिः स्तोष्यन्स्तुति करिष्यन् उपधावे स्तुवीति।।श्रीः।।

भूयस्तमेव प्रकारं प्रपञ्चयति—

यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं ।
यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ।।९।।

स्तुतौ हि ऋग्, ऋषिदेवतोपधावनं नितरामपेक्षते। अतस्तदुद्देश्यतः स्तुतिं चिकीर्षन् तेषां चिन्तनं कुर्वीत, ऋषिणा दृष्टमार्षं तत्र भवम् आर्षेयं, उपधावेत्— चिन्तयेत्। नोचेत् वैदिकस्तुतेर्न लाभो भवति। मन्त्रेणानेन मन्त्रविनियोगेषु विधेयता पुरःसरं प्रामाणिकता प्रदर्शिता।।श्रीः।।

भूयः तत्प्रकारशेषं विशिनष्टि—

येन च्छन्दसा स्तोष्यनस्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन ।
स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्त ँ् स्तोममुपधावेत् ।।१०।।

स्तोमं स्तोत्रम्, एवं अनालोच्य मन्त्रर्षिदेवताछन्दस्तोमान् नाधिगच्छति श्रेयः तस्मात् तदनुबन्धिविनियोगान् नूनमेव विदधीतेति हार्दम्।।श्रीः।।

पुनरपि स्तुतिप्रकारशेषं व्याहरति—

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत् ।।११।।

स्तुतिविषयभूतदेवताधिष्ठानरूपेण कल्पितां यन्नाम्नीं दिशमुद्दिश्य शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

उपासनोपसंहारमाह—

आत्मानमन्तत उपसृत्य स्तुवीत
कामं ध्यायन्नप्रमत्तोऽभ्याशो ह ।
यदस्मै स कामः समृद्ध्येत यत्कामः
स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ।।१२।।

एवं यथाक्रमं प्राणादित्यव्यानोद्गीथाक्षरमंत्रर्षिदेवताछन्दस्तोम दिगुपासनां विधाय अमूषां भगवदुपासना द्वारत्वेनोपयोगं कृत्वा, अन्तः सिद्धान्ततः सर्वोपासनानां सारभूतफलरूपतो वा, कामं निजाभीष्टं सांसारिकं पारलौकिकं भगवत्प्राप्तिरूपं वा,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ध्यायन् प्राप्यत्वेन चिन्तयन् अप्रमत्तः भगवत्प्रत्तिरूपोपासनातः प्रमादं न कुर्वन्। अत्र प्रमादो नाम परमेश्वरशरणागतिबेलायां तद्विरुद्धविषयचिन्तनम्। तदनाचरन् अभ्यासः अभितः अस्यति निक्षिपति भगवत् प्रतिकूलदुराचरणानि यस्तथाभूतः। अथवा अभ्यासः पौनःपुन्येन भगवदीयनामरूपलीलाधामनुबन्धिसुमधुरकथासुधारसास्वादन-निसर्गरूपोऽस्त्यस्मिन् इत्यभ्यासः, ततादृशः अन्ततः सिद्धान्तरूपां भगवच्छरणागतिमेव मत्वा आत्मानं आप्नोति सर्वँ व्याप्नोति इत्यात्मा। अत्र प्रषोदरादित्वात् आप्तेः 'प' कारस्य तकारः, मनिन् प्रत्ययश्च। आदत्ते भक्तोपहृतानि पत्रपुष्पफलानि यस्तथाभूतः आत्मा अत्रापि 'दा' धातोः आकारलोपः दकारस्य च तकारः पृषोदरादिकृतः तादृशं सर्वव्यापकं भक्तभावानाददानं सादरं स्मृतं सन्तं भक्तमानसानि समञ्चन्तं परमेश्वरं श्रीरामाख्यमुपसृत्य तत्पादपद्मं प्रपद्य तमेव शरणागतो भूत्वा इति भावः। स्तुवीत— तमेव परमात्मानं निजस्तुतिविषयं कुर्वीत। अन्यैव श्रुत्या भगवत् स्तुतिकरणे प्रमाणमपि दर्शितम्। ननु परमात्मस्तुतौ को लाभः? इत्यत आह। यत्कामः यमेव काममुद्दिश्य स्तुवीत परमात्मानं स्तुतिविषयं करोति अस्मै भगवतः पतितपावनात्वादि गुणैः भगवन्तं स्तुवते। परमात्मनैव सकामः समृद्ध्येत् व्यत्ययाल्लडर्थे लिङ् समृद्धः क्रियत इति भावः। साधकेन स्तुतः सन् तत्तत् कामनिबन्धनस्तुतिद्वारा स्मारितभक्तकामनापूर्त्युपयोगिनिरस्त-सकलहेयप्रत्यनीकनिखिलनिरतिशयसममोघगुणगणकल्याणकल्लोलिनीवल्लभभक्तस्य तं कामं स्वयमेव भगवान् समर्धयतीति भावः।

यथोक्तं भागवते श्रीशुकाचार्येण—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।।

(भाग. २।३।१०)

तथा च प्राहुरस्मन्मानसमधुकरपेपीयमानपदपाथोजपरागमकरन्दरसाः श्रीहुलसीहृदयहर्षवर्धनाः। श्रीमानसे—

जो सम्पति शिव रावनहिं दीन्ह दिये दसमाथ ।
सोइ सम्पदा विभीषणहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ ।।

(मानस ५।४९ ख)

इति छान्दग्योपनिषदि प्रथमाऽध्याये तृतीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।
।। श्रराघवं शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ चतुर्थखण्डः

एवं परम्परासम्बन्धेनानेकमुद्गीथोपासनमुक्त्वा पुनः सिद्धान्ततः प्रणवप्रतीक मुद्गीथोपासनं समभिधत्ते—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति
ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ।।१।।

आदित्यप्राणादिप्रतीकोपासनावर्णनेन व्यवहितत्वात् मुख्योद्गीथोपासनायाः साधकमनोमूलतो मा दूरं ब्रजतु इति कृत्वा समादरेणाभ्यासाय भूयोऽपि ओमित्येतदक्षर-मन्त्रावृत्तिः शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

प्रणवोद्गीथोपासनायाः परमोत्कर्षं सूचयितुं स्वयं श्रुतिरेवाख्यायिकामिमां श्रावयति—

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविश ँ्
स्तेछन्दोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादय ँ्स्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ।।२।।

देवाः द्योतवन्तः ब्रह्मादयःसुराः मृत्योः मरणात् बिभ्यतः त्रस्ता भवन्तः सन्तः इति पदोपादानेन श्रुतिरेव सुराणां जीवत्वं सुस्पष्टमाह। जीवान् खलु मृत्युर्मारयति न तु परमेश्वरं **'मृत्युर्धावति पञ्चमः'** (कठ. २।१।११) इति श्रुतेः। पीतामृतानपि सुरान् मृत्युस्त्रासयति तर्हि का कथा वराकाणामस्मादृक्षाणाम्, मृत्योर्भीताः सुराः किं कृतवन्तः? इत्यत आह— त्रयीं विद्यां प्राविशन् यथा कोऽपि लोके शत्रुभ्यो बिभ्यन् प्रविशति गिरिगुहां तथैवेमे त्रयीं ऋग्यजुः सामनाम्नीं विद्यां मन्त्रसंहतिं प्राविशन् प्रविष्टवन्तः, यथा मृत्युर्न पश्येत्। अतः छन्दोभिः मन्त्रैः आत्मानं आच्छादयन् देवानां छादनादेव मन्त्राः छन्दांसि छादयन्ति सुरान् इति छन्दांसि छादधातोः **'छन्दसिः पुनर्वस्वोरेकवचनम्'** (पाणि. अष्टा. १।२।६१) इतिसूत्रेण छन्दस् आदेशः, निपातनं छादनादेव अमीषां प्राविशन् इति कैश्चिद् व्याख्यातम् तदनुचितम् शास्त्रविरुद्धञ्च। ब्राह्मणग्रन्थेषु महाभारतादौ च प्रतिच्छन्दः संविधाने विनियोगस्य देवतादिस्मरणश्रवणात्।।श्रीः।।

तत्रापि ते मृत्योर्न निर्भयो इत्यत आह—

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके
परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि।
ते नु विदित्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो
यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्र त्रयी विद्यायां प्रविष्टांस्तान् सुरान् तथैव पर्यपश्यत् हन्तुमन्विच्छन् विलोकितवान्। यथा कश्चनमात्सिकः उदके नातिगभीरेनीरे मत्स्यं निजत्राणाय निषण्ण मीनं याति। एवं मृत्युरपि देवान् निजग्राससाध्यान् मत्वा ऋचि ऋग्वेदे साम्नि सामवेदे यजुषि यजुर्वेदे दृष्टवान्। समागतं विलोक्य तं देवाः, नु वितर्क्य ऋक्सामयजुर्भ्यः ऊर्ध्वा उपरिगताः। स्वरं स्वेन राजमानं स्वं साधकानामात्मीयभूतं धनभूतश्च परमेस्वरं राति यः स स्वरः तथाभूतं स्वरं, यद्वा स्वरति गच्छति परमेश्वरः भक्तानां पार्श्वं स्मृतिकरणभूतेन येन सस्वरः तं स्वरः, अथवा स्वस्मिन् प्रणतानामात्मीयभूते धनभूते च परमेश्वरे तान् रमयति इति स्वरः तथाविधं, अथवा स्वेषु निजजनेषु परमात्मामेव रमयति स स्वरः तं, अथवा स्वेषु निजज्ञातिषु वेदेषु स्वयमपि रमते यः स स्वरः, अथवा स्वरति सुदूरमाक्षिपति स्मरतां पापपूगानि यः स स्वरः, तं स्वरं प्रणवं प्राविशन् ब्रह्मरूपत्वात् प्रणवस्य हि तच्छहरणागतान् न प्रधर्षयितुमशकन् मृत्युरिति भावः।।श्रीः।।

तच्छरणागताः सुराः किं वैशिष्ट्यमलभन्तेत्युच्यते पूर्वं प्रणवस्य स्वरत्वं संगम्यते—

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवाति-
स्वरत्येव ँ॒ सामैवं यजुरेष उ स्वरो
यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य
देवा अमृता अभया अभवन् ।।४।।

कथं प्रणवः स्वरः? इति सिद्धान्तमुपपादयति। यदा यस्मिन् काले वैदिकः ऋचम् आप्नोति आदत्ते अधीत्य कण्ठस्थीकरोति इति भावः, तदा ॐ इति अत्यादरेण स्वरति उच्चारयति। एवं यजूँसि सामान्यपि गृह्णन्। अतएव एष स्वरः ननु गत्याक्षेपार्थस्य स्वरधातोः उच्चारणार्थं कथं **'परौभूवोऽज्ञाने'** इति सूत्रे अज्ञानग्रहणज्ञापकेन समुद्भावितया "अनेकार्थाहि धातवः" इति परिभाषया धातूनां अनेकार्थत्वे भाषिते स्वरधातोरप्युच्चारणार्थस्वीकारेण दोषपरिहारात्। ननु स्वरधतोरुच्चारणार्थे किं मानम्? प्रकृतश्रुतिरेव। एतत् ॐकारम् अक्षरम् सर्वव्यापकम् एतदेव अमृतं मरणभयरहितम्, अभयं भयवर्जितं तस्मादिदं प्रविश्य देवाः अमृताः, मरणरहिताः, अभयाः भवभयवर्जिताः अभवन् अत विश्वजनैरपि अभयममृतमक्षरमुद्गीथमोमित्युपाशितव्यम्।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह सकलपरिसमाप्तौ—

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षर ँ॒ स्वरममृतभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं अक्षरत्वामृतत्वाभयत्वस्वरत्वविशिष्टं यः साधकः विद्वान् जानन् प्रणौति-पाउसते, विशेषणत्रयम् उक्तञ्च प्रणवं प्रविशति, मनसा तल्लीनो भवति, तत्प्रविश्य यत् येन प्रकारेण देशाः अमृताः तथैव अमृतः मरणवर्जितो भवति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्यपनिषदि प्रथमाऽध्याये चतुर्थखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अथ पञ्चमः खण्डः

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो
यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ ।
वा आदित्य उद्गीथ एष
प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ।।१।।

अथ भेदोपासनावर्णनान्तरं खलु निश्चयेन अभेदोपासना वर्ण्यते। प्रणूयते प्रणामपुरःसरमुपास्यते दिवानिशं मजपाविधिना, स प्रणवः, स एव उद्गीथः सामवेद वर्णितोपासनाप्रकारविशेषः एवं उद्गीथ एव प्रणवः उभयत्र एवकारप्रयोगेण द्वयोर्भेदं निराकरोति। असौ प्रणव एव आदित्यः सूर्यः कथमित्यत आह— स ॐ इति स्वरन् वैखर्या निगदन् एति गगनं गच्छति।।श्रीः।।

इदानीं सूर्यरश्मिषु भेदोपासनां व्याचष्टे— नहि सकामाः उपास्याभेदं सहन्ते, उपासकोपास्याभेदं तु वयं अपि न सहामहे ऋतेऽद्वैतिभ्यः—

एतमु एवाहमभ्यागासिषं तस्मान्मम
त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः
पुत्रमुवाच रश्मीँ्स्त्वं पर्यावर्तयाद्बहवो
वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् ।।२।।

कौषीतकिः एतन्नामा महर्षिः, ह वै प्रसिद्धिद्योतकौ निपातौ, पुत्रं निजतनयमुवाच वचनमाह— एतं प्रणवोद्गीथादित्याभेदं अहमेव नान्यः कश्चन 'उ' निश्चयेन "निपात एकाजनाङ्" (पाणिनि अ. १-१-१४) इति सूत्रेण प्रगृह्यत्वात्। उ एव इत्यत्र न यण्। अभ्यगासिषं अभिमुखोभूत्वा गानविषयमकार्षम्। तस्मात् ततो हेतोः त्वं मम एकः एकमात्रसुतः असि अतस्त्वं भेदबुद्ध्या सूर्यस्य रश्मीन् नैकान् पर्यावर्तयात् व्यत्ययात् मध्यमपुरुषस्थाने प्रथमपुरुषः परिवर्तय उपास्व, ततस्ते बहवः अनेके सुताः भविष्यन्ति इति अधिदैवतं देवताविषयकमुपासनम्।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ मुख्यप्राणं प्रतीकं मत्वा उद्गीथोपासनं वर्णयति—

अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः ।
प्रणवस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति ।।३।।

अथ अनन्तरम्, अध्यात्म आत्मनि अधि इत्यध्यात्मम् 'अव्ययं विभक्ति' इत्यादि सूत्रेण विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। शरीरमध्ये उपासनं वर्ण्यते इति वाक्यार्थः। अथ यः मुख्यः प्राणः प्रथमखण्डवर्णितः तमेव उद्गीथदृष्ट्या उपासीत्। अस्यामुपासनायां प्रणवोपासनां व्याहरन्नाह—यतो हि प्राणोऽपि ॐइति उद्गीथस्य मुख्यं प्रतीकं स्वरन् उच्चारयन् एति मुखनाशिकाभ्याम् निगच्छति। किन्तूभयस्वरसूक्ष्मेक्षिकावन्त एव विदन्ति।।श्रीः।।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम
त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः
पुत्रमुवाच प्राणाँ्स्त्वं भूमानमभि-
गायताद्बहवो वै मे भविष्यन्तीति ।।४।।

एतम् मुख्यं प्राणमहम् अभ्यगासिषं, ततो हेतोः त्वं एकोऽसि इति कौषीतकिः पुत्रमुउवाच। किमुवाच? इत्युच्यते। त्वं मे गायकस्य बहवः भविष्यन्ति अनेकपुत्राः उत्पत्स्यन्ते इति संकल्प्य भूमानं सर्वशक्तिसम्पन्नं प्राणं उद्गीथदृष्ट्या अभिगायतात्। "बहुलं छन्दसि" इत्यनेन आशीरभावेऽपि तातङ् अभिगानं कुरुष्व इति भावः।।श्रीः।।

अथ प्रणोद्गीथयोः भेदाभावोपासनाफलमाह—

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति।
होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीथमनुसमाहरतीत्यनु समाहरतीति ।।५।।

अभेक्षेपासनया न केवलं निवृत्तिः फलति प्रत्युत शब्दोचारणदोषोऽपि निरा-क्रियते। अथ अनन्तरम् उद्गीथं प्रणवं प्रणवञ्च उद्गीथं विभावयन् होता हैवापि ह एव अपि इति पदच्छेदः ह इति प्रसिद्धो एव इति अन्ययोगव्यवच्छेदकः अपि इति निश्चयार्थः एवं त्रयो निपाताः है वापीति। होतृषदनात् षीदति तिष्ठति होता मन्त्रसंशनाय यत्र तत्सदनम् अधिकरणे ल्युट् होतुः षदनं होतृषदनं, यत्र स्थित्वा होता संशति तद्यज्ञमण्डपनिर्दिष्टं विशिष्टं स्थानं तस्मात् होतृषदनात् अत्र त्यब्लोपपंचमीहोतृषदनमाश्रित्य द्वयोरभेदे चिन्तयन् दुरुद्गीतं प्रमादात् शब्दतः स्वरतो वा दुष्टं गीतं अशुद्धमुच्चारितमिति भावः। अनुसमाहरति अनुस्मृत्य दोषमार्जनदृष्ट्या प्रायश्चित्तं कुर्वन् समाहरति दार्ढ्यार्था द्विरुक्तिः।।श्रीः।।

इति छांदोग्योपनिषदि प्रथमाध्याये पंचमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ षष्ठः खण्डः

भूयोऽपि सामशब्दव्याख्यानग्रन्थारम्भः—

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूमूढ साम ।
तस्यादृच्यध्यूढ ँ साम गीयत इयमेव साग्निरमस्तत्साम ।।१।।

इयं दृश्यमाना पृथिवी ऋक् मन्त्रस्वरूपा अग्निः, सामरूपं यथापृथिव्यां अग्निः तथैव ऋचि साम अधिष्ठितं सामशब्देऽपि पृथिव्यग्न्योः समावेशः, स इति पृथिवीवाचकः अम् इति अग्निवाचकः अध्यूढं प्रतिष्ठितम् इति मन्त्रभावः।।श्रीः।।

भूयोऽपि अन्तरिक्षपवनयोः प्रतीककल्पनम्—

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्मामृच्यध्यूढ ँ साम ।
तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम ।।२।।

यथान्तरिक्षे वायुः अध्यूढः तथैव ऋचि सामप्रतिष्ठितं, तस्मात् तस्यामेव ऋचि साम प्रतिष्ठितं तस्मात् तस्यामेव ऋचि प्रतिष्ठितं सामगीयते शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

पुनरपि दिवादित्याभ्याम् सह ऋक्साम्नि प्रतीकयति—

द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम ।
तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते द्यौरेव सादित्योऽमस्तत्साम ।।३।।

ऋग एव देवरूपा आदित्यः सूर्यः तन्मयञ्च साम शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

पुनर्नक्षत्रचन्द्रमसोः प्रतीकतामाश्रित्य ऋक्साम्नोः आधाराधेयभावं प्रकाश्यप्रकाशकभावं च सामशब्दघटकीभूतसमुदायद्वयस्य च परस्परसम्बन्धं व्यनक्ति—

नक्षत्राण्येवर्क्चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ ँ साम ।
तस्मादृच्यध्यूढ ँ साम गीयते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तत्साम ।।४।।

नक्षत्राणां अधिपतिः चन्द्रमा तथैवर्चां अधिनायकः साम।।श्रीः।।

अथ ऋक्साम्नो परस्परभविना भावसम्बन्धं समभिधातुं भूयोऽपि सूर्यान्तरगत प्रतीकद्वयमुपस्थापयति—

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः ।
कृष्णं तत्साम तदेतदेस्यामृच्यध्यूढ ँ साम तस्माच्यध्यूढ ँ साम गीयते।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ अनन्तरं यत् एतत् योगिजनध्यानगोचरमादित्यस्य शुक्लं सूर्यमण्डलस्य श्वेतं भाः ज्योतिः सैव ऋक् अनन्तरं परः "व्यत्ययात् पुंस्त्वं" परमिति भावः। श्रेष्ठं नीलं नीलवर्णं कृष्णं श्यामरूपं तदेव साम। इदं खलु न सर्वसामान्यदृष्टिगोचरं भगवत् कृपा-सम्प्राप्तदिव्यदृष्टिभिरेव महापुरुषैः समवलोक्यते, तत् एतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्मादिदम् ऋक्स्थं गीयते। वस्तुतस्तु श्रुत्या आदित्यमण्डले यच्छुक्लं भाः प्राभाषि तदेव शुक्लं वर्णं सीतायाः। यन्नीलं कृष्णं तदेव कन्दकोटिकमनीयस्य भगवतः श्रीरामभद्रस्य श्यामस्वरूपम्। ननु नीलं वर्णं तु तमसोऽपि भवति तर्हि कथं तदेव न कल्प्यते? इति चेदुच्यते। तमसि तथात्ववारणाव आदित्यस्य इति षष्ठी तस्याश्च सम्बन्धोऽर्थः, स च आधाराधेयभावरूपः। नहि खलु निसर्गसिद्धशत्रुः तमस आदित्यः भवितुमर्हत्याधारः, तथाच तत्र परमेश्वरद्योतनायैव परः इति पुंल्लिंगत्वावच्छिन्नशब्दप्रयोगः। तमः नीलं सदपि न परं, न्यायनये तु तस्य पदार्थत्वमेव न तर्हि यस्य स्वयमेव स्थितिः संदिग्धा तत्कथं समेषामपरायणम्। ननु नीलं पर इति कथनमेव पर्याप्तं तत् समानार्थक-कृष्णमिति निरर्थकं पदम्? इति चेन्न कृष्णमिति परमात्मनः नाम तथा चाहोपनिषद् **कृषिर्भूवाचवः शब्दो णस्तु निवृतिवाचकः तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।** अथ वासुदेवपरोऽयं कृष्णशब्दः कथं परमेश्वरत्वसामान्यवाची इति चेत् भ्रान्तोऽसित्वम्। कृष्णशब्दोऽयं परमेश्वरत्वावच्छिन्नमभिधत्ते, इत्यनुपदमेवावोचाम। अतएव भागवते प्रह्लादप्रसंगे—

कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जंगदीदृशम् ।

(भागवत ४।३७)

यद्वा कृष्णं कृषति दर्शनमात्रेण भक्तानां दुःखं यत् तथाभूतम्। अथवा कर्षति मुनिमनोमधुकरानपि स्ववशीकरोति इति कृष्णम्। इदं शुक्ल नीला एवं परस्परसम्पृक्तं महोद्वयम् आदित्यमण्डलसंस्थम् इदमेव च साम्निप्रतिष्ठितं स अम इति सकलद्वये इति श्रुतेर्हार्दम्।।श्रीः।।

ननु सूर्यमण्डले सीतारामहसोः संस्थाने किं मानम्? इति चेत् सनत्कुमार-संहितैव। तथोक्तम्— **सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्।** एवं पृथिव्यग्न्यन्तरिक्ष-वायुदिवादित्यनक्षत्रचन्द्रमो भास्करमण्डलस्थशुक्लनीलमहो नामभिः पञ्चभिर्प्रतीकयुगलैः ऋक्साम्नोः आधाराधेयभावाऽविनाभूतसम्बन्धमीमांसा चक्रे श्रुत्यां तत्रैव पञ्चमस्य प्रतीकयुग्मस्य उपसंहारमाह—

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साथ
यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाथ
य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रु-
र्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ अनन्तरं सामशब्दस्य स अम इति द्वयोः समुदाययोः श्रीसीतारामगौरश्याम महसी ध्यातव्ये तदर्थं मन्त्रारम्भः। अथ शब्दोऽत्र प्रस्तावार्थकः।

अदितिः देवमाता, न दीर्यते न केनापि प्रत्यवायेन खण्डयितुं शक्यते इत्यदितिः। अखण्ड ब्रह्मस्मृतिः, अखण्डा ब्राह्मणि स्थितिः अतएव **'अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्'** इति मन्त्रवर्णे तस्या अपत्यं पुमान् आदित्यः। स्मृतिस्थितिपक्षे अदितेरयं आदित्यः, भक्तिपक्षे अदितिरखण्डभक्तिर्देवता यस्य स आदित्यः "दित्यादित्य पत्युत्तरपदाण्यः" इत्यनेन ण्य प्रत्ययः, स एव आदित्यः सूर्यः भगवद्भक्तो वा। तस्य सूर्यस्य मण्डले, भक्तपक्षे भक्तिसर्वस्वभूतस्य आदित्यवत् प्रकाशमानस्य भक्तस्य हृदये, यत् एव श्रुति-प्रसिद्धम्। श्वेतं रसमानाधिकरणनिरासकम् एतत् अति सन्निकृष्टम्, भक्तानामिति यावत्। शुक्लं— व्यत्ययान्नपुंसकलिंगः 'भा' विशेषणत्वात् शुक्ला इति वक्तव्यम्। सैव श्वेता भाः दीप्तिः जनकनन्दिनीरूपा सैव सा सामशब्दघटक सा इत्याकारकः समुदायः। अथ अनन्तरं यन्नीलं, श्यामवर्णं कृष्णं भक्तविपद्विनाशकं मुनिमन आकर्षकञ्च परः प्राकृतेन्द्रियागोचरं भगवतस्तेजः तदेव अमः। सामशब्दस्य अम इत्युत्तरसमुदायः। एवं शुक्लनीलमहोमिलितरूपं सा अम इति मिलितं साम। इत्थं साममीमांसां विधाय कस्येदं नीलं परः कृष्णं महः? इति जिज्ञासायां तत्प्रतियोगिभूतं तदाधारं पुरुषं वर्णयति मन्त्रोत्तरखण्डे।

यः जिज्ञासाविषयभूतः एषः अयं प्रणतनयनगोचरः आदित्ये भगवति सूर्ये आदित्यमण्डले वा आदित्यस्य इदं आदित्यमिति व्युत्पत्तौ अदितेवादित्यशब्दादपि **दित्यदित्यादित्य** इति सूत्रेण ण्य प्रत्ययविधानशासनात् अनुबन्धकार्ये **हलोयमां यमि लोपः** इति सूत्रेण 'य'कार लोपे। आदित्यमादित्यमण्डलम् तस्मिन् आदित्ये सूर्यमण्डले, **अन्तरा** मध्ये पुरुषः पुरि शेते इति पुरुषः। पुरः शरीराणि 'उ' निश्चयेन, सिनोति निजयोगमायया बध्नाति संसारबन्धने यस्तथाभूतः, **पिपर्ति** पूरयति कल्पतरुरिव भक्तवाञ्छाः सदैव यः स पुरुषः। पुरुः बहुरूपः स एव पुरुषः **हिरण्यमयः** ज्योतिर्मयः इति प्राञ्चः। न च विकारार्थेमयड विधानात् ब्रह्मणि विकारापत्तिरिति वाच्यं बाहुलकेन स्वरूपे मयट् विधाने ना दोषात्, हिरण्यशब्दस्य च ज्योतिरूपलक्षणत्वात्। नव्यास्तु हिरण्यविकाराः हिरणमयानि स्वर्णरचितानि किरीटकुंडलकेयूरकटकर्किकिणीनूपुरप्रभृति-भूषणादि हिरण्यमयानि तानि नित्यं सत्यस्मिन्निति **हिरणमयः** भगवान् हि विविधमयहिरण्मयभूषणभूषितः, एवं **हिरण्यश्मश्रुः** ज्योतिर्मयकूर्च इति प्राञ्चः। वस्तुस्तु नीलश्मश्रुरेव भगवान् परन्तु स्वकपोलावलम्बि मकरकेतनकेतनकनककुण्डलयुग्मप्रभया हिरणमय्या तत् श्मश्रूण्यपि हिरणमयानीव दृश्यन्ते एवं हिरण्यभासाभाषितं श्मश्रु यस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स हिरण्यश्मश्रुः, एवं हिरण्येन कनकरचितकिरीटसुवर्णकान्त्या भाषिताः केशाः यस्य स हिरण्यकेशः। प्रमाणाञ्चास्यं मामकीनव्युत्पत्तौ कृष्णावतारप्रघट्टे श्रीभागवतम्। तद्यथा—

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषापरिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकाञ्च्यांगदकैकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ।।

(भाग १०।३।१०)

प्रणखः श्रीचरणकमललाग्रभागः, तं मर्यादीकृत्य इति आप्रणखात्। पदपद्म-श्रीनखमणिमारभ्येति भावः। सर्वः सर्वाङ्गवच्छेदसहितः नखमारभ्य शिरो यावत् सर्व एव सम्पूर्णाङ्गश्रीविग्रहः सुवर्णः सुवर्णालंकारयुक्तः, अथवा शोभनं वर्णं कोटिकन्द-र्पदर्पदलनपटीयसी श्रीविग्रहकान्तिः यस्य तथाभूतः। अथवा शोभनं नीलं, नयनसुखदं तरुणतमालनवीननीरधरयामुजलसौभगं वर्णं यस्य तथाभूतः। नीलं हि वर्णं स्निग्धं भवति अतएव हि लोके चक्षुसो रवितापतस्त्राण मिच्छन् नीलोपनयनं परिधत्ते, अतएव प्राह प्राचेतसः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्' (वा. १।१।११)। दृश्यते— भक्तिप्रवणमानसैः विलोक्यते तस्यैवेदं नीलं भाः इति वाक्य- योजना।।श्रीः।।

अथ निसर्गसुन्दरस्य परमात्मनः निजप्राणवल्लभस्य श्रुतिः कमलनेत्रे वर्णयति दयिताया इव तत्र विशेषरसनिष्पत्तेः—

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी
तस्योदितिनाम स एष सर्वेभ्य पाप्मभ्य
उदित उदेति ह वै सर्वेश्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ।।७।।

तस्य सर्वांगसुन्दरस्य सूर्यमण्डलस्य देवस्य अक्षिणी नेत्रे कीदृशे? इत्यत् आह— पुण्डरीकं कमलं कीदृशं कमलेमित्यत आह कप्यासं पुण्डरीकं यथा कं जलं पिबति स्वरश्मिभिः शोषयति इति कपिः सूर्यः अतएव रघुकाव्ये "**सहस्रगुणमादातुं मादत्ते हिरसं रविः**" (रघुवंश १।१८)। तेन कपिना सूर्येण जलशोषकेणापि अस्यते रात्रिकालीनकोषसंकोचो निरस्यते यस्य तत् कप्यासम्। प्रभातोदितसूर्यरश्मिलब्धनिवासं पुण्डरीकं कमलं, यथा येन प्रकारेण, शोभते एवमेव प्रत्यूषनवविकसितकमलमिव भगवतः अक्षिणी नेत्रे, यत्तु कप्यासं मरकटगुदमिव यत् कमलं एवं नेत्रे भगवतः, इति व्याख्यातं गोविन्दपाददेशिकविधेयैर्भगवतपादैः तदसंगतमनुचितमाशास्त्रीयमश्लीलं च। नहि उपमितोपमानं हीनमुपमेयमुत्कर्षति सर्वज्ञशिरोमणिश्रुतिः स्वभर्तुर्नेत्रकमलोपमायै इदमत्यन्तमश्लीलमेवोपमानमन्विष्टवती भवेत्। नैवेत्थं इदं तु कदाप्यनास्वादित-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमेश्वरपादपद्ममकरन्दरसानां भगवद्भक्तिविहीनमरुस्थलतुल्यशुष्कचेतसां महारौरवनरकावहं सन्निपातप्रलपितमिवोपेक्ष्यम्।

आस शब्दो हि पायुपर्यायत्वेन कुत्रापि कोषे न दृष्टः। तस्मात् निक्षिप्यतामेषा पापीयसी कल्पना। यदि कपिशब्देन मर्कटस्यैव आग्रहः तदा कपीन् परमचंचलान् वानरानपि आसयति निजसुरभिणा मुग्धान् कृत्वा निश्चलयति इति कप्यासम्। तादृशं कमलं यस्य सौरमेण वशीकृतनाशिकाचित्तो वानरोऽपि ध्रातुं निश्चलो भवति इति भावः।

अथवा कपीन् निरतिशय चंचलान् मर्कटानपि प्रकृति चपलान् निजसौन्दर्येण आसयति उपवेशयति निश्चलयति तत्कप्यासम्। तादृशं यत्कमलं तद्वन्नेत्रे। कप्यासं यथा इत्युपमानेन भगवतो नेत्रोपमानस्य कमलस्य लोकोत्तरसौन्दर्यसौगन्ध्यादीनां प्रस्तुतीकरणम्।

तस्य परमात्मन् किन्नाम? अत आह उत इति नाम। उपपत्तिं वर्णयति यतोहि एषः परमात्मा सर्वेभ्यः चराचारेभ्यः पाप्मभ्यः पातकेभ्यः उदितः उत्कृष्टमुपरिगतः। अपहतपाप्मा इत्यादि वक्ष्यमाणत्वात्, य एवं वेद जानाति सोऽपि सर्वेभ्यः पाप्मेभ्यः उदेति उपरिगच्छति।।श्रीः।।

अथ चरमे मन्त्रे सिद्धान्ततः पूर्वश्रुतिद्वयवर्णितस्वरूपं परमात्मानमेव उद्गीथरूपं तन्महातात्पर्यञ्च श्रुतिरङ्गीकरोति—

तस्यर्क्च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष, ये चामुष्मात्परञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम्।।८।।

स परमात्मा पक्षीव "द्वासुपर्णा सयुजा सखाया" (मुण्डक ३।१।१) इति श्रुत्यन्तरात् तस्य पक्षीभूतस्य ऋक् साम च गेष्णौ पक्षौ, याभ्यां स उड्डीयमानः भक्तमपि गच्छति, तस्मात् ततो हेतोः अयं उद्गीथः स उद्गीथः इति व्युत्पत्तेः। तस्मादेव एतस्य उद्गाता गाता गायकः उत परमात्मा तं गायति इति उद्गाता एव विग्रहात् एषः परमात्मैव उत अमुष्मात् एतस्मात् साकेतविहारिणः श्रीरामपरब्रह्मणः पराञ्चः निम्नगामिनः ये लोकाः ब्रह्मलोकादयः तेषां देवकामानामिन्द्राद्यभीसितानां स एव ईष्टे शासनं करोति। इति इत्थमेव अधिदैवतम् देवतासम्बन्धि उद्गीथ उपासनम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्य उपनिषदि प्रथमाध्याये षष्ठखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ सप्तमः खण्डः

एवमधिदैवोद्‌गीथोपासनां वर्णयित्वा साम्प्रतम् अध्यात्मोद्‌गीथोपासनां वर्णयितमुपक्रमते। यत्र उपासनायां देवतानां सम्बन्धः तदधिदैवतं, यत्र च आत्मनि विषये उपासनमारभ्यते तदध्यात्मम् आत्मनि इत्यद्यात्म "अव्ययं विभक्तीत्यादिना" अव्ययीभावः समासः। आत्मशब्दोऽत्र शरीरपरः आत्माशरीरे इति कोशात्। उद्गीथं नाम भक्तिसंबलितसामगानं साम च ऋच्यधिष्ठितम् अतः ऋक्सामनोरेव तत्प्रतीकमिथुनद्वारेण पौनःपुन्येन स्मरणं, साम्प्रतं शरीरावयवेषु उद्‌गीथधारणा निर्दिश्यते, तत्र प्रथमं चक्षुषि अथेत्यादिना—

अथाध्यात्मं वागेवर्क्प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यमूढँ्साम ।
तस्मादृच्यध्यमूढँ्साम गीयते वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ।।१।।

अथ इदानीम् अध्यात्मम् अध्यात्मविषया उद्‌गीथोपासना प्रस्तूयते। वाग् वाणी एव ऋक् तस्याः वाङ्मयत्वात्, प्राणः साम ऋचि साम अध्यूढं प्रतिष्ठितं तस्मात् तस्यां तद्गीयते, वाक्यखण्डपक्षे वागेव सा प्राण एव अमः।।श्रीः।।

भूयश्चक्षुरात्मनोः ऋक्सामप्रतीकत्वमुपस्थापयति आत्मा खलु प्रकाशरूपत्वात् चक्षुरधिवसति यथा ऋचं साम—

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्य साम तस्मादृत्तयध्यूढँ्साम गीयते। चक्षुरेव सात्मामस्तत्साम ।।२।।

ऋक्साम्नोरिव चक्षुरात्मनोः सततसाहचर्यात्।

तयोः तत् प्रतीककल्पनमेवं चक्षुरात्मनोरेव सा अम् इति सामोपासनायाः प्रतीकता।।श्रीः।।

श्रोत्रमेवङ्र्मनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढँ्साम ।
तस्मादृच्यध्यूढँ्साम गीयते श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम।।३।।

श्रोत्रेऋचः, मनसि च साम्नः धारणा कार्येति फलितार्थः। श्रोत्रमनसो हि नित्यसाहचर्यं शेषं सुगमम्।

भूयः चक्षुषि वर्तमानयोः शुक्लनीलरोचिषोः ऋक्सामप्रतीकतामुपादयति—

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढँ्साम तस्मादृच्यध्यूढँ्साम गीयते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवसाऽथ
यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ।।४।।

चक्षुषि द्वे तेजसी शुक्लं नीलं चेति तत्र शुक्लम् ऋचि नीलं साम्नि प्रतीकायितं शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।। अथ चाक्षुषादित्यवर्तिपुरुषयोरैक्यं दर्शयति—

अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते
सैवक्र्तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म ।
तस्यैतस्य तदेवरूपं यदमुष्य रूपं
यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ।।५।।

यः एषः सर्वजनदृश्यः आक्षिणि नेत्रे अन्तर्मध्ये पुरुषो दृश्यते स एव ऋक् तदेव च साम अत्र ऋक् साम्नोः न विशेषः। तदेव उक्थं स्तोत्रविशेषः तदेव ब्रह्म परमेश्वरः एवमेतस्य आदित्येन सह पुरुषेण पूर्णमैक्यं तदर्थमुत्तरार्धारम्भः।।श्रीः।।

तथा च आदित्यं मण्डलस्थपुरुषस्य यौ पक्षौ तावेवास्य यत्तस्य नाम तदेवास्य

एतस्य कार्यं, वैशिष्ट्यमाह—

स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां
चेष्टे मनुष्यकामानां चेति ।
तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं
ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः ।।६।।

सः अक्षि वर्तमानः एषः आदित्यमण्डलस्थसदृश एव अक्ष्णोरादित्यमयत्वात्। एवमेषः स्वस्मात् अर्वाञ्चः निम्माः ये लोकाः अन्तरिक्षादयः तेषाम् ईष्टे ईशनं करोति। मनुष्यकामानाञ्च अत्र मातुः स्मरति इति वत् कर्मणः सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी। "विवक्षाधीनानि कारणाणि भवन्ति" इति वैयाकरणनियमात्। एवमेतं पुरुषं ये वीणायां स्तुतिवाद्यविशेषे तन्त्रीनामके ये गायन्ति ते धनसनयः धनं हिरण्यादिकं सनिः लाभः येषां ते धनसनयः।।श्रीः।।

एतद्धारणया सामगानफलमाह—

अथ य एतदेवं विद्वान्साम गायत्युभौ स गायति ।
सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताँश्चाप्नोति देवकामाँश्च ।।७।।

अथ अनन्तरं यः जिज्ञासुः एतत् अक्षिपुरुषादित्यपुरुषयोरभेदं विद्वान् जानन् कथमित्यतत् आह— एवं पूर्वदर्शितरीत्या जानन् सामगायति सामगानं करोति। सः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामस्थत्वादनयोः उभौ आक्ष्यादित्यवर्तिनौ पुरुषौ गायति सः अमुना आदित्येन स्वर्गादिलोकान्नीयते। यतो हि स एष अक्षि पुरुष एव आदित्यपुरुषः। एवं गायकः अस्मात् परान् लोकान् देवकामाँश्च देवदुर्लभान् भोगान् आप्नोति लभते।।श्रीः।।

पूर्वशेषं स्पष्टयति—

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ताँ्श्चाप्नोति ।

मनुष्यकामाँ्श्च तस्मादु हैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ।।८।।

अथ अनेनैव आदित्यमण्डलस्थेन पुरुषेण अमुष्मात् आदित्यलोकात् अर्वाञ्चः अवरे ये लोकाः तान् आप्नोति, देवकामांश्च लभते, तस्मात् ततो हेतोः एवंवित् एवंवेत्ति जानाति यस्तथाभूतः उद्गाता ब्रूयात् संशेत विधिरयम्।।श्रीः।।

इति छांदोग्योपनिषदि प्रथमाऽध्ये सप्तमे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोन्तु।।

।। अथ अष्टमः खण्डः ।।

उद्गीथोपासनायामनेके प्रकाराः प्रदर्श्यन्तेऽस्मिन् खण्डे। व्यापकत्वात् तस्याः सिद्धान्तः ससुखमध्येतृणां हृदयंगमा भवन्तु इति कृत्वा उत्तमश्लोकशिखामणीनां त्रयाणां महर्षीणां ज्ञातोद्गीथानाम् आख्यायिकां श्रुतिः प्रस्तौति। पुण्यवतां हि संकीर्तनं महते श्रेयसे भजन— प्रतिबन्धकप्रत्यवायनिराशाय च कल्पते।

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः

शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो

जैवलिरिति ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः

स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति ।।१।।

सुप्रसिद्धमेतदैतिह्यिकं यत् कस्मिंश्चित्काले शालावतस्य पुत्रः शालावत्यः शीलकः एतन्नामा ऋषिपुत्रः शिलानि लूनशस्यतः पतितान्यन्नानि अन्विच्छति तथाभूतगुणविशिष्टः अन्वर्थाभिधोमुनिः चेकितायनस्य पुत्रः चैकितायनः, दाल्भ्यः दल्भगोत्रोत्पन्नः जेवलस्य ऋषेः पुत्रः जैविलिः, **प्रवाहणः** प्रवाहयति दिव्यज्ञानगंगा यस्तथागुणः एते त्रय उद्गीथे उद्गीतरहस्यज्ञाने कुशलाः निपुणाः पारोक्षेण भूताः। अथ ते पारिषद्यान् ह निश्चयेन उचुः कथयामासु उद्गीथे एतदुपासनाज्ञाने कुशलाः विदग्धाःस्मः। हन्त हर्षार्थोऽयं निपातः प्रश्नार्थो वा। यदि भवताम् अनुमतिश्चेत् कथां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्गीथसम्बन्धिनीं विचारणां वदाम कथयाम सम्प्रश्ने लोट्। एवम् ऋषिकुमाराणां स्वकीयानुभवप्रस्तावचिकीर्षां समीक्ष्य ऋषयोऽनुजज्ञुः।।श्रीः।।

इत्थं परस्परं संमत्र्य किं चक्रुः? इत्यग्रिममन्त्रमाह—

तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच ।
भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचँ श्रोष्यामीति ।।२।।

तथा स्वीकारार्थोऽयमव्ययः, तथा पूर्वोक्तप्रस्तावं स्वीकृत्य इति उद्गीथकथा निश्चयं कृत्वा समुपविविशुः सम्यक्त्वेन नातिदूरे त्रयः उपविष्टवन्तः उपवेशने सम्यक्त्वं च उद्गीथरूपब्रह्मविचारोद्देश्यकं 'ह' निश्चयेन जैवलस्य प्राग्यः पुत्रः प्रवाहणः राजन्यः ह निश्चयेन उवाच निवेदयामास तौ शिलकचैकितायनौ भगवन्तौ सम्मानवाचकमिदं सम्बोधनं भगवत् स्वरूपौ भगवन्तौ ब्राह्मणौ अग्रे पूर्वं वदताम् उद्गीथविचारणां प्रस्तुतां, वदतामिति प्रार्थने लोट्। यतो हि ब्राह्मणत्वेन जन्मना गुरुत्वात् भवद्भ्यां पूर्वं किमपि कथयन् न प्रत्यवायभाक् बुभूषामि। ब्राह्मणयोः तपश्शास्त्रयो निसम्पन्नयोः विशुद्धयोः वदतो उद्गीथं कथयतोः सतोः, अथवा वदतोरिति नादरार्था षष्ठी "षष्ठी चानादरे" इत्यनेन एवं ब्राह्मणौ वदन्तौ आद्रियमाणः वाचं वाणीं श्रोष्यामः समाकर्णयिष्यामि इति शब्दः वचनप्रकारसंकेतकः।।श्रीः।।

अथ प्रश्नप्रकारं निरूपयति शिलकस्य—

स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच ।
हन्त त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच ।।३।।

एवमुक्तवति जैविलौ प्रवाहणे शालावतस्य पुत्रः शिलकः चिकीतायनपुत्रं दाल्भ्यं उवाच अकथयत्। हन्त स्नेहेन त्वां पृच्छामि इति शब्दः, अनुमति याच्ञाप्रकारपरः दाल्भ्यः उवाच पृच्छ प्रश्नं कुरु आज्ञार्थेलोट्।।श्रीः।।

प्रश्नमनुवदति—

का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच
स्वरस्य का गतिरिति प्राण इति होवाच ।
प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य
का गतिरित्याप इति होवाच ।।४।।

अत्र चत्वारः प्रश्नाश्चत्वार्येव उत्तराणि। साम्नः सामवेदस्तोत्रस्य का गतिः कः आश्रयः। इति पृच्छति, दाल्भ्यः उवाच, स्वरः प्रणवः पुनः स्वरस्य प्रणवस्य का गतिः? क आधारः? इति प्रष्टवति शिल्के, दाल्भ्य उवाच, निश्चयेन प्राणः तमेव स्वरोऽधितिष्ठति। भूयः प्राणस्य का गतिः? किमधिकरणम्? इति प्रश्ने दाल्भ्यः ह,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निश्चयेन उवाच अन्नम् अदनीयं वस्तु नैतदन्तरेण प्राणः स्थातुं शक्यः। पुनरन्नस्य का गतिः? का प्रतिष्ठा? इति जिज्ञासमाने शिलके दाल्भ्यः निश्चयेन उवाच आपः जलानि। इति शब्दोऽत्र अष्टकृत्वः प्रयुक्तः यथाक्रमं चतुर्णां प्रश्ननाम् उत्तराणां च प्रकारं निर्दिशति।।श्रीः।।

अथ साम्नः चरमस्थिर्तिं वर्णयितुं प्रश्नोत्तरविराममाह—

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच स्वर्गं वयं लोकꣳ सामाभिसंस्थापयामः स्वर्ग सꣳस्तावꣳ हि सामेति।।५।।

अपां जलानां का गतिः क आश्रयः? इति शिलके पृच्छति दाल्भ्य उवाच असौ अंङ्गुल्यानिर्देशेनाह अग्रे वर्तमानोऽन्तरिक्षलोकः अमुष्मादेव जलं वर्षति, पुनः अमुष्य लोकस्य का गतिः? इति पृष्टवति स्वर्गम् इति उत्तरं दत्त्वा, पुनः पिपृच्छिसन्तं समीक्ष्य प्रश्नं निवारयति अग्रे न पृष्टव्यम्। यतो हि स्वर्गलोकः भगवतः परमं व्योम-साकेताभिधानः अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या इत्याथर्वणोक्तेः। अतः विधेयत्वेन समादिशति स्वर्गं स्वः स्वर्गेऽपि गीयते इति स्वर्गः साकेतलोकः, तमतिक्रम्य कमपि लोकान्तरं न नयेत् अत्र शक्यार्थे 'शकि लिङ् च' इति सूत्रात्। एवं हि स्वर्गं लोकं अतिक्रम्य कोऽपि कमपि नैव लोकान्तरं नेतुं शक्नोति इति भावः। ततोऽरिक्तलोकाभावात्। अतः वयं स्वर्गं लोकं साकेताख्यं लब्ध्वा तत्रैव सामस्तुतिपरकवेदं संस्थापयामः संस्थं जानीय संस्थं कुर्मो वा। तत्रैव साकेते विराजमानस्य सीतापतेः मंगलमयस्तवनाय सामवेदस्य पूर्णतयोपयोगात् अतस्तेन तत्रैव स्थातव्यमिति भावः। स्वर्गो लोको वै सामवेदः इति श्रुत्यन्तरमानाच्च, एवं हि यतो हि साम सामवेदः स्वर्ग- संस्तावम् स्वर्गे साकेते भगवतः सीताभिरामस्य रामस्य संस्तावः संस्तव एव संस्तावः, (स्वार्थे अण्) सम्यक्स्तुतिः येन तादृशम् इति इत्थं निगद्य दाल्भ्यः शिलकं स्वर्गस्य का गतिरिति प्रश्नकरणान्निषेधति।।श्रीः।।

उत्तरादसन्तुष्यन् शिलकः दाल्भ्यं प्रति करोति। तमित्यादिना—

तꣳ ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति।।६।।

असन्तुष्यन् शिलकः आह चैकितायनसुतं दाल्भ्यं भदाल्भ्य ते साम सामवेदज्ञानमप्रतिष्ठितं प्रतिष्ठारहितं निराधारमित्यर्थः। एवं ज्ञानशून्यं त्वां यदि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कश्चिद् ब्रूयात् शपेत् यत्ते ज्ञानशून्यस्य मूर्धा शिरः निपतिष्यति कबन्धतः पृथकभविष्यति। तेन शापेन मूर्धा मस्तकं तव निपतेदेव। नहि अल्पज्ञानस्य मूर्धधारणाधिकारो बुद्धिमत्सु।।श्रीः।।

शिलकेन समधिक्षिप्तो दाल्भ्यः जिज्ञासते—

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवाचास्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच प्रतिष्ठा वयं लोकँ् सामाभिसँ् स्थापयामासः प्रतिष्ठासँ् स्तावँ् हि सामेति ।।७।।

हन्त इति विषादेऽपि भगवतः श्रीमतः एतत् किं प्रतिष्ठं साम इति वेदानि ज्ञातुमिच्छामि इच्छार्थे लोट्। विद्धि जानीहि इति शिलकेन अनुज्ञातः दाल्भ्यः ब्रूहि अमुष्य लोकस्य का गति क आश्रयः? अयं लोकः मर्त्याख्यः अस्मिन्नेव निहितकर्मणां फलानुसारं तल्लोकप्राप्यत्ते तस्मात् इममेव लोकं प्रतिष्ठात्वेन स्वीकुर्मः। इमं लोकं प्रतिष्ठा नातिनयेत् न कोऽपि साम अतीत्य नयेत् अत्रैव होमदानादिकर्मसु अस्मिन् लोके वा धृतावतारस्य भगवतः अयोध्यायां गोकुले च लीलया क्रीडतः स्तुतये तस्य परमोपयोगात्। तस्मात् इयमेव लोक साम अभिसंस्थापयामः। प्रतिष्ठा संस्तावं प्रतिष्ठायामेव संस्तावः स्तुतिः यस्य तथाभूतमिति शिलकेन भगवदवतारभूमावेव सामवेदस्य परमोपयोगो निश्चितः। न हि स्वर्गादौ भगवतोऽवतारः तस्मादयमेव श्रेष्ठः।।श्रीः।।

शिलकस्य उत्तरेण असन्तुष्यन् जेवलपुत्रः प्रावाहणः समाक्षिपति—

तँ् ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा । ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद् भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच ।।८।।

अथ तं जेवलपुत्रः प्रावाहणः आक्षिपत्, शांलावत्य शलावतपुत्र ते साम, तव सामवेदज्ञानं वै निश्चयेन अन्तवत् विनाशशीलं, एवमज्ञानं त्वां कश्चित् एतर्हि अस्मिन्समये ब्रूयात् आक्रोशेत् यत्ते मूर्धानिपतिष्यति च्युतो भविष्यति। तदा ते मूर्धा निपतेत् इत्याक्षिप्तः शिलकः प्राह हन्त! विस्मये अहं एतत् सामप्रतिष्ठाविषयं भगवतः श्रीमतः प्रवाहणात् वेदानि वेदितुम् इच्छामि प्रावाहणः उवाच विद्धि जानीहि।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि प्रथमाध्यायेऽष्टमे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ नवमः खण्डः ।।

एवमष्टसु खण्डेषु उद्‌गीथोपासनायाः विविधप्रतीकानि वर्णयित्वा समेषां प्रतीकानां सिद्धान्ततः परमव्योमभूते नितान्तपूते अपहतपाप्मनि निरस्तसकलहेयगुण-प्रत्यनीके निखिलकल्याणगुणगणसागरे शततदत्तप्रपन्नजनमनोवांछावकाशे चिदाकाशे परमप्रकाशे आकाशे ब्रह्मणि परमतात्पर्यमध्यवसीय सिद्धान्ततः तमेवोदगीथमध्यवस्यन्ती श्रुतिः प्रवाहणमुखेन सिद्धान्तपीयूषं प्रवाहयन्ती नवमखण्डं उपक्रमते।

प्रतीकोपासनायाः अवास्तविकत्वात् **'न प्रतीके नहिं सः'** (ब्रह्मसूत्र १-४-४) इति बादरायणोक्त्यापि प्रतीकोपासनायाः अयथात्वबुबोधयिषया ग्रन्थारम्भः। ननु यदि प्रतीकोपासनायाः वैयर्थ्यं तर्हि तत्प्रतिपादनपराः अष्टौ खण्डाः छांदोग्योपनिषदः भोघारम्भाः? इति चेन्न। सत्यं बोधयितुं तत्सहकारित्वेन असत्यारम्भस्यापि सफल प्रयोगदर्शनात्। नहीतरतारकदर्शमन्तेरण सहसा कोऽपि ध्रुवं दुष्टुमर्हति। यथोक्तं श्रीहरिणा—

उपायाः शिक्षमाणानां बालानां उपलालनाः ।
असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते ।।

(वाक्यपदीय पदखण्ड १०)

तस्मात् सिद्धान्तद्रढीकरणाय तेषामुपोयगात् सफलारम्भास्ते।

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश
इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि
भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं
यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम् ।।१।।

पूर्वस्मिन् खण्डे शिलकस्योत्तरेण संतोषमलभमानेन अन्तवत्तेषामिति समधिक्षिप्तः शिलकः तद्रहस्यं तस्मादेव प्रावाहणात् ज्ञातुं तेनानुज्ञातः पृच्छति। अस्य दृश्यमानस्य लोकस्य जगतः का गतिः, कः आश्रयः? इति इत्थं पृच्छन्तं शिलकं ह निश्चयेन जैवलिः आकाशः इत्याकारकम् उत्तरम् उवाच प्राह। अत्राकाशशब्दः परमात्मवाची न तु नभोवाची नभोवाचिन आकाशस्य महाभूतत्वेऽपि अष्टाष्वपराषु प्रकृतिषु अन्यतमत्वात् जडप्रायत्वाच्च तत्र लोकस्य गत्यसंभवात्। **आकाशस्तल्लिंगात्** (ब्रह्मसूत्र १।१।२२) इति बादरायणनिर्देशात् श्रुतावपि आकाश इति पुंल्लिगं निर्देशात् नभोवाचिनश्च क्लीववृत्तित्वप्रसिद्धेः आकाशोऽत्र परमेश्वरवाची, सैव सर्वेषां गतिः, 'सा निष्ठा सा परागतिः' (कठ. १।३।९) इति श्रुतेः। **'गतिर्भर्त्ताप्रभुःसाक्षी'** (गीता ९।१८) इति स्मृतेश्च। उपपत्तिमाह— ह वा इति प्रसिद्धिद्योतको निपातौ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भवन्ति इति भूतानि प्राणवन्ति सत्वानि सर्वाणि इमानि दृग्गोचराणि आकाशादेव परब्रह्मणः सकाशात् एव समुत्पद्यन्ते प्रादुर्भवन्ति, प्रलये आकाशं प्रति अस्तम्यन्ति तिरोभवन्ति। तस्मात् एभ्यः प्राणभृद्भ्यः आकाशः एव निर्लेपस्वभावपरमात्मा ज्यायान् प्रशस्यतरः। अतः एषामाकाशः परायणम् परं प्राप्तिस्थानम् तस्मात् आकाशवत् सवलावकाशः अकाशवच्च नीलः तद्वत् च कृपावारिधरधाराधरः परायणम् परमं गन्तव्यमिति हार्दम्।।श्रीः।।

अथ तमेवाकाशं परोवरीयोद्गीथत्वेन निश्चाययति। एष इत्यादिना—

स एष परोवरीयानुद्गीथः
स एषोऽनन्तः परोवरीयो हास्य ।
भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य
एतदेवं विद्वान्परोवरीयाँ्‌समुद्गीथमुपास्ते ।।२।।

स एषः **'आकाशो वै नाम'** बृहदारण्यक (८।१४।१) इति श्रुत्यन्तरेण दत्ताकाशानामा एषः अनुभवगम्यः परमात्मा परोवरीयान् परः सर्वतः श्रेष्ठः अवरीयान् अवरतोऽपि श्रेष्ठः परश्च अवरीयांश्च इति परोवरीयान्। इति प्राञ्चः। वयं तु परो हिरण्यगर्भतोऽपि श्रेष्ठः वरीयान् इति निर्गुण-सगुणमध्ये निर्गुणापेक्षया सगुणत्वेन वरीयान्। यदि च परश्चासौ अवरीयानिति तदा कर्मधारये सति पर शब्दघटकाकारणे सह अवर इति आकारस्य दीर्घे परावरीयान् छान्दसे ओकारे परोवरीयान्, परस्मादपि परतरः, उद्गीथः स एषः अन्तः अन्तर्हितः देशकालाभ्या अपरिच्छिन्नत्वात्। एतत् ज्ञानफलमाह, अस्य तज्ज्ञातुः जीवनं परोवरीयः श्रेष्ठतरं भवति। यः एवं विद्वान् उद्गीथं आकाशरूपम् उपास्ते सः परोवरीयः सः श्रेष्ठतरान् लोकान् आब्रह्मभुवनानि जयति अधिकरोति।।श्रीः।।

पुनरुद्गीथोपासनायाः फलश्रुतिप्रमाणं प्रत्यायितु शाण्डिल्यवचनमुद्धरति—

तँ्‌हैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्या-
योक्त्वोवाच यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं
वेदिष्यन्ते परोवरीयो हैभ्यस्ता-
वदस्मिंल्लोके जीवनं भविष्यति ।।३।।

तं श्रुतिप्रसिद्धं एतम् इमम् आकाशनामानमुद्गीथं ह निश्चयेन अतिधन्वा अतीतं प्रणवाख्यं धनुः येन अथवा अतसज्जं प्रणवाख्यं धनुः येन स अतिधन्वा **प्रणवोधनुः**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरोह्यात्मा (वा. १।९।४) इति श्रुतेः, आत्तप्रणवचाप इति भावः। शौनकः शुनकपुत्रः उदरशाण्डिल्याय, उदरे जठरे शाण्डिल्यः, शाण्डिल्यगोत्रपावकः, विज्ञानरूपः यस्य तथाभूतः उदरशाण्डिल्यः अस्मै अन्वर्थनाम्ने ऋषये उक्त्वा विधिवत् पाठयित्वा उवाच, फलश्रुतिं वर्णयामास। काम इत्याह— वत्स ते तव प्रजायामत्र जात्याख्यायामेकवचनं, संततिपरम्परायां येन उद्‌गीथं वेदिष्यन्ते यथा रहस्यमुपाशिष्यन्ते। तावत् एभ्यः तव वंशेभ्यः परोवरीयः अति श्रेष्ठतरं जीवनं भविष्यति। सम्पत्स्यते।।श्रीः।।

भूयोऽपि फलश्रुतेरेतस्याः व्यापकत्वमाह— न केवल उदरशाण्डिल्यस्यैव प्रत्युदेवं विदामन्यषामपि—

तथामुष्मिँल्लोके लोक स य
एतदेवं विद्वानुपास्ते परोवरीय एव ।
हास्यास्मिंल्लोके जीवनं भवति तथा-
मुष्मिंल्लोके लोक इति लोके लोक इति ।।४।।

एवं यथोक्तरीत्या विद्वान् जानन् एतमुद्‌गीथमुपास्ते तस्य अमुष्मिंल्लोके स्वर्गे परोवरीयः भगवत् सान्निध्यमूलकं जीवनं भवति। तथा अमुस्मिंन्स्वर्गे लोके साकेते लोकः भगवदवलोकनञ्च जायते। लोके लोके इति आदरार्थे द्विरुक्तिः।।श्रीः।।

इति छांदोग्यमुपनिषदि प्रथमाध्याये नवमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ दशमः खण्डः ।।

पूर्वेषु सकलेष्वनेकैः प्रकारैरुद्गीथोपासना सविस्तरं वर्णिता, तत्र तस्यैव महत्त्वं प्रस्तोतुमुद्गीथस्य प्रतिहारप्रस्तावोऽपि अवश्यं वर्णनीय इति कृत्वा शकलचतुष्टयं आरभ्यते। जानन्नेव खलु प्रतिहारः प्रस्तुतवन्नुद्गीथं यजमानश्रेयसे प्रभवति। अतस्तद्विज्ञानविजृम्भणेयमाख्यायिका प्रतिपाद्यं स्पष्टयितुं सुखावबोधाय समारभ्यते। यत्र धर्मपरायणस्योशस्त्यस्य तत्पत्न्याश्च काचिदपूर्वाचारसंहिता संश्राव्यते। स्वयमेव श्रुत्या—

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह ।
चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ।।१।।

ह निश्चयेन प्रसिद्धो वा, श्रुत्युक्तत्वात् प्रसिद्धमिदमाख्यानमिति भावः। कुरुषु, उत्तराकुरुषु एतन्नामकेषु देशेषु मटचीः वज्रं, 'मटचीः कुलिषं वज्रं पविरशनिः सुरायुधः'

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इति वैष्णवकोषः। व्युत्पत्तिश्चात्र मथति विनाशयति पर्वतादिपार्थिवानि वस्तूनि या सा मटची। अत्र विनाशनार्थक मथ् धातोः औणादिकश्चिष्प्रत्ययः **"षः प्रत्ययस्य"** (पा. सूत्र १।३।६) इत्यनेन षकारलोपे परिषोदरादित्वात् थकारस्य टकारे मटचीः। वज्रं तया मट्च्या वज्रपातेन हतेषु कार्त्स्न्येन नाशंगतेषु यदा वज्रपातेन सम्पूर्णकुरुजाङ्गलं शस्यावच्छेदेन नष्टं जातं तस्मिन्समये मटचीहतेषु कुरुषु इत्यत्र भावलक्षणसप्तमी। चाक्रायणं, चक्रनामकमहर्षेः अपत्यं पुमान् स च किं भूत? इत्यत आह प्रद्राणकः द्रा कुत्सितगत्यर्थकः कुत्सितगतिश्च दुर्गतिः सा च धनाभावजन्यदरिद्रता प्रकृष्टा, द्रा इति प्रद्रा प्राकर्षश्च तत्र ज्ञानाभावमूलकम्। यथोक्तं गोस्वामिपादैः, **'जलसंकोच विकल भये मीना। अबुधकुटुम्बी जिमि धनहीना'**। ननूषस्तेः ज्ञानाभावजन्यदारिद्रमवोचः तदनुचितम्, सति ज्ञानाभावे तेन राजसभे समस्तयाज्ञिकानां समक्षं कृतो ज्ञानोपदेशो नोपपद्येत? नैष दोषः तस्योद्गीथविषयकज्ञाने सत्यपि ब्रह्मज्ञानं स्यादेवेति नोपपद्यत। तज्ज्ञानं हि यज्ञविषयं यश्च द्रव्यमयः तस्मिन् सत्यपि विषयासक्तिर्न समाप्यते। अन्यथोषस्तिः स्वजीवनत्राणार्थं कथमुच्छिष्टान् कुल्भमाषान् भिक्षेत? नहि ब्रह्मज्ञानिनो जिजीविषोपपद्यते। तस्मात् सत्यपि द्रव्यज्ञवैदग्ध्ये उषस्तौ नितान्तविषयविरक्तिसाध्यस्य बाधितसकलभवप्रपञ्चस्य ज्ञानयज्ञस्य नितरामभावः कल्पनीयः। न च द्रव्ययज्ञेन सह ज्ञानयज्ञसमन्वयस्यादितिवाच्यम्? तस्य त्रिकालमप्यसम्भवात्। न खलु कोऽपि सुधीः पृथ्वीस्वर्गयोः सामञ्जस्यं कर्तुमीष्टे यथोक्तं गीतायाम्—

'श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज् ज्ञानयज्ञः परन्तप' (गीता ४।३३)।

तस्मात् तत्र प्राकर्ष्यं ब्रह्मज्ञानशून्यत्वमूलकमेवेति विरम्यते। एवं प्रकृष्टा या द्रा सा प्रद्रा तामाश्रित्यैव आनिति कथञ्चित् श्वसिति स प्रद्राणकः तादृशः उषस्ति, उषसि प्रातः जातः इति उषस्तिः। अत्र भवार्थे औणादिक तिच् प्रत्ययः। यद्यप्यसौ कर्मकाण्डासक्तचित्तस्तथापि विवेकरूपिण्यामुषसि प्रभूतः सः नैव विरक्तः वस्तुतस्तु अतितरां विषयासक्तः अतएव आटिक्या आटकी नाम **'अलब्धयौवना नारी आटिक्य व्यञ्जनस्तनी'** इति स्मरणात् तथैव जायया पत्न्या सह इभ्य ग्रामे इभाः हस्तिनः तान् अर्हन्तीतीभ्याः हस्तिपाः तेषां ग्रामे उवास निवासं चक्रे। दृश्यः ग्राम इति शब्दोऽपि तस्मिन्नुषस्तावध्यात्मविद्याशून्यत्वं सूचयति, न खलु ज्ञानिनः ग्रामवासो घटते। तथोक्तं नीतौ—

यदि वांच्छसि मूर्खत्वं वसग्रामे दिनत्रयम् ।
अन्यस्य ह्यागमो नास्ति आगतस्यापि संशयः ।।

अथ दरिद्रः सन्नुषस्तिः किमकरोदित्यत् आह—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स हेभ्यं कुल्माषान् खादन्तं बिभिक्षे तँ होवाच।
नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति ।।२।।

प्रसिद्धमेतद्, यदेकदा बुभुक्षावशंवदचेतन उषस्तिः भिक्षितुमटन् कुत्राप्यन्नमलभमानो ग्राम एव तस्मिन् परिभ्रमन् माषान् खादन्तं हस्तिपकमेकं ददर्श। तत्र सः उषस्तिः कुल्माषान् कुत्सितान् माषान् खादन्तं क्षुत्क्षान्तये भुञ्जानमिभ्यं इभः कुंजरः तमर्हतीति इभ्यः अर्हार्थे यत् तथाभूतमम्बष्ठं तानेव कुल्माषान् आत्मनः क्षुत्शमनाय बिभिक्षे भिक्षा विधिना ययाचे। एवं भिक्षमानमुषस्तिं प्रति हस्तिचालक उवाच, अवदत्, यत् इतः भोजनार्थं गृहीतेभ्यः एभ्यः अन्ये अनुच्छिष्टः कुल्माषाः न सन्ति। यत् यतो हि ये यावत् प्रमाणकाः मे मम स्वामित्वे आसन् ते इमे तत् प्रमाणका एते उपनिहिताः भोजनार्थमशनपात्रे निक्षिप्ताः, इति भावः।।श्रीः।।

अथ बुभुक्षातुरः किमकरोत्? इत्यत आह—

एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ ।
हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतँ स्यादिति होवाच ।।३।।

अथ भवन्तु नामेमे त्वदुच्छिष्टाः परन्तु एतेषां कुल्माषाणां मे मह्यं देहि। ननु दाधातोः कर्मत्वे माषाणां तत्र कर्मणि द्वितीया कथं न एवमेतेषामित्यस्य स्थाने एतानि देहीति कथं न प्रावोचच्छ्रुतिः सत्यम् अत्र मातुः स्मरतीतिवत् कर्मणः सम्बन्धः विवक्षायां षष्ठी विवक्षाधीनानि कारकाणि भवन्तीति वैय्याकरणधौरेयाणां राद्धान्तितत्वात्। अथ किं मूलिकेयं विवक्षा, निजजीवनधारकत्वेन उषस्ते माषेषु सम्बन्धपरिकल्पनात्। इमे मां जीवयेयुरिति समुचितमेव षष्ठीद्योत्यं सम्बन्धोपस्थापनमिति इत्थम् उक्तवत्युषस्तौ सः उवाच हस्तिपकः अथ तानुच्छिष्टांनेव तस्मै याचमानायोषस्तये प्रददौ प्राकर्षेण ममत्वशून्यत्वरूपेण समधिसृष्टवानिति भावः। दत्वा पुनः प्रसन्नतया प्राह हन्त। अनुपानं भोजनमनु अशनस्य पश्चात् यत् पीयते तदनुपानं जलमपि गृह्यताम् इत्युक्तवतीभ्ये ह निश्चयेन उवाच उदतीतरत्। उत्तराकारमाह— त्वया जलमिदमुच्छिष्टं कृतम्। अतः तदुच्छिष्टमनुपानं पिबेयम्। चेत् मे ममेत्यर्थः उच्छिष्टमेव पीतं स्यात् कृतपानं स्यात् इति एष उत्तराकारः।

ऋषेर्वाक्यं श्रुत्वा स्वाभाविकतया संशयालुः जिज्ञासते हस्तिपकः यत् किमुक्तमार्येण एकत्रमदुच्छिष्टान् कुल्माषान् भुङ्क्ते स एवापरत्र मत्पीतमनुपानमुच्छिष्टं मन्यते अथ तर्हि किं वैशिष्ट्यं समानतया मदुच्छिष्टयोः कुल्याषानुपानयोरिति जिज्ञासाकारमाह—

न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टाम इति न वा अजीविष्यमिमां न खादन्निति
होवाच कामो म उदकपानमिति ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इभ्य: पृच्छति एते अनुपानविशेषा अपि कुल्माषा इव न उच्छिष्टा स्विदिति प्रश्नसूचकोऽव्यय:। उपस्तिरुवाच उच्छिष्टास्तु परन्तु इमान् कुल्माषान् अखादन् न भुञ्जान: अहं न अजीविष्यं न जीवनमधारयिष्यम्। अत्र हेतुहेतुमद्भावमूलक-क्रियातिपत्तिद्योतनो लिङ्लकार:, अतो जीवनधारणाय उच्छिष्टभोजनमपि न प्रत्यवायावहम्। परन्तु एषामभ्यवहरणमन्तरेणापि कथंचिदपि शरीरयात्रा चलति त अच्छिष्टापदार्था न भोजनीया इति शिष्टाचारसंहितां ध्वनयितुं प्रस्तावोऽयम्। उदकपानं तु मे मम काम: इच्छाविशेष: तं निरोध्युमहं शक्नोमि, तस्मात् उच्छिष्टतोयं पीत्वा धर्मं नातिचरिष्यामिति भाव:।।श्री:।।

अग्रिमां चेष्टामाह—

स ह खादित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार साग्र।
एव सुभिक्षा बभुव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ।।५।।

अथ स उषस्ति: कुल्माषान् खादित्वा बुभुक्षा शान्तौ अतिशेषान् अतिसृष्टशेषान् जायायै पत्न्यै आजहार आनीतवान् सा आटकी तदानयनादग्र एव सुभिक्षा लब्धसुष्ठु भोजना बभूव। अत: आगामी दिनस्य कृते पत्यु प्राणपरीप्सया तान् प्रतिगृह्य निर्दधौ कुत्रचित् सुरक्षितान् कृतवती।।श्री:।।

अथ तस्याग्र्यं व्यापारं कथयति—

स ह प्रात: संजिहान उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि
लभेमहि धनमात्राँ् राजासौ यक्ष्यते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति ।।६।।

स: उपस्ति: प्रात: ब्राह्ममुहूर्त एव सञ्जिहान शय्यां निद्रां च त्यजन् तत्समकालमेव भार्यामुवाच, वत यत् चेत् अन्नस्य लभेमहि स्वजीवनधारकतया सम्बन्धीभूतमन्नम अदनीयं लभेमहि, लब्ध्वाभ्यवहरेम तद: धनमात्रां पुष्कलधनं लभेमहि, एतदन्नमशित्वा लब्धादूरगवनमन्त्रोच्चारणबलोऽहं सर्वामुद्गात्रीन् परिभूय राजानां प्रभावयेमिति भाव:। तत्परिणाममाह असौ राजा यक्ष्यते नाति दूरस्थो नृपति: यज्ञं विधास्यति, मद्वेदे कौशलप्रभावित:, सर्वै: आर्त्विज्यै: ऋत्विक् सम्बन्धकर्मभि: मां वृणीत मुख्याचारत्वेन वृतं विदधीत।।श्री:।।

अथ तत् पत्नी तं प्रत्युत्तयामास—

तं जयोवाच हन्त पत इम एव ।
कुल्माषा इति तान्खादित्वामुं यज्ञं विततमेयाय ।।७।।

तं जाया आटकी उवाच, पते हे प्राणवल्लभ हन्त। प्रसन्नताया: विषयोऽयं यत् भवद्दत्ता कुल्माषा मया न खादिता:, अतस्ते इमे अंगुल्या निर्दिष्टा: साम्प्रतमपि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्ति इत्युक्त्वार्पयति, स तान् द्विरुच्छिष्टान् कुल्माषान् खादित्वा विततं ब्राह्मणै:व्याप्तं विस्तृतं वा, अथवा वि विप्रा: तै: ततम् अथवा वि विष्णु: तस्मै ततम् विततम् अमुम् यज्ञं इयाय जगाम।।श्री:।।

आनन्तरक्रियामाह—

तत्रोद्गातॄनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश स ह प्रस्तोतारमुवाच ।।८।।

तत्र यज्ञे स्तावे स्तुवन्ति यत्रोद्गातार: तस्मिन् यज्ञमण्डपस्य निर्धारिते स्तुति कर्तृस्थाने निविष्टान् स्तोष्यमाणान् अत्र यजमानक्रिया व्यतिहारेण कर्त्रात्मनेपदमूलकसत् स्तुतिविषयान् सुरान् करिष्यमाणान् उद्गात्रीन् उपसमीपमुपलक्ष्य वा उपविवेश निषीदति स्म।।श्री:।।

अनन्तरं प्रस्तोतारमपृच्छत्।

उषस्तिप्रश्नाकारमाह—

प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां ।
चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ।।९।।

हे प्रस्तोत: तव प्रस्तावं या देवता अन्वायत्ता समनुस्थिता ताम् अविद्वान् तस्या देवता: विषये सामग्रेणाजानन् यदि चेत् प्रस्तोष्यसि प्रस्तोतृबुद्ध्या मन्त्राणां प्रस्तुतिं करिष्यति चेत् ते प्रस्तोत: मूर्धा मस्तकं निपतिष्यति नीचै: पतितं भविष्यतीति यजमानो जानातु न वा जानातु वा किन्तु प्रस्तोत्रा तु सामग्रेण प्रस्तावानुगतदेवता विधानं ज्ञात्वैव प्रस्तोतव्यमिति भाव:।।श्री:।।

अग्रिमप्रश्नप्रकारमाह—

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां
चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ।।१०।।

एवं समानमेव प्रश्नाकारमनुश्रुत्य उद्गातारमुवाच अतिक्षिप्य कथितवान्। उद्गात: सम्बोधनमिदं त्वमुद्गीथेसमधिकृत:, परन्तु उद्गीथं अन्वायतता आनुकूल्येनाधिश्रिता या देवता तामविद्वान् अजानन् यदि चेत् उद्गास्यसि तदा तवापि मूर्धा पतिष्यतीति।।श्री:।।

अन्तरभाविनीं क्रियामाह—

एवमेव प्रतिहर्तारमुवाच प्रतिहर्तर्या देवता
प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते वितिष्यतीति
ते ह समारतरास्तूष्णीमासांचक्रिरे ।।११।।

एवमेव प्रतिहारमपृच्छत्, प्रतिहर्त:! प्रतिहारं या देवता अन्वायत्ता समधिश्रित्य विराजते तामविद्वान् तद्विषये किमप्यजानंश्चेत् प्रतिहरिष्यसि तदा ते मूर्धा विपतिष्यति, अज्ञानदोषेन त्वमपि भग्नशिरा भविष्यसि। एवं त्रिष्वपि ऋषिणा निरुत्तरेषु कृतेषु प्रस्तोता उद्गाता प्रतिहर्ता इति त्रयोऽपि स्व स्व देवताविषये कलयन्तोऽज्ञानं निजनिजमूर्धपतनभीत्या त्रस्तमानसा: ते सर्वे तस्य समीपं समागता: तूष्णीं क्रियाविशेषणमिदमव्ययं, मौनीभूता इति भाव:। जिज्ञासव: आसांचक्रिरे तमेवोषस्तिं समुपतस्थुरिति भाव:।।श्री:।।

इति छन्दोग्योपनिषदि प्रथमाध्याये दशमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अथ एकादशः खण्डः

इदानीमुषस्तिकृतप्रश्नानां तस्मादेवोत्तरं सुश्रूषमाणो यजमानो राजा तमेव तत्परिचयं पृच्छति पश्चात् च तेनानुनीयमानो द्विजवर: समस्तप्रश्नानामुत्तराणि दातुमुपक्रमते। अत उषस्तिराजसंवादपरम्परया खण्डस्यैतस्य प्रारम्भ:—

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं
विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति होवाच ।।१।।

अथ उषस्ते: प्रतिभापूर्णान् प्रश्नान् आकर्ण्य आश्चर्यचकित: यष्टा राजा महीपति: एनमुषस्तिमुवाच पप्रच्छ भगवन्तं विद्याधिकत्वात् गौणतयालेशेन च षडैश्वर्याणां वर्तमानत्वात् भगवन्तमिति प्रयोग:। अथवा नैष पारिभाषिको भगवच्छब्द: ? किं तर्हि तत्र भवानिव सम्मानवाची। भगवन्तं तत्र भवन्तं वा वै विविदिषाणि ज्ञातुमिच्छानि शक्यार्थे लोट्। किं ज्ञातुं शक्नोमिति भाव:। विप्र: पितृनामपुर:सरमात्मन: परिचयं ददाति अहं चाक्रायण: चक्रस्य पुत्र: उषस्ति: एतन्नामास्मि इति उत्तराकारं निर्धारयति शब्दोऽयम् उवाच उषस्ति: प्रत्युत्तरायामास।।श्री:।।

अथ राजा स्वाभिप्रायं प्रकाशयति—

स होवाच भगवन्तं वा अहमेभि: सर्वैरार्त्विज्यै: ।
पर्यैशिषं भगवतो वा अहमवित्त्यान्यानवृषि ।।२।।

अनन्तरमुषस्तिनामवंशं च श्रुत्वा दृष्ट्वा च तदीयां निर्भीकतां विद्याविनयसम्पन्नतां तस्मिन् श्रद्धधानो राजा स्वमनोभावं निवेदयाञ्चकार। निवेदनाकारमुच्यते ह निश्चयेन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तद्वंशवृत्तमवधार्य स यजमानः उवाच निवेदयाम्बभूवः, यथार्थमाह। तत्र भवान् अहमपि प्रख्यातमहोच्यकुलनामानं सर्वविद्याव्रतस्नातम् यज्ञकर्मणि च भवन्तं एभिः पुरो वर्तमानैः सर्वैः आर्त्विज्यैः ऋत्विज्यामिमानि आर्त्विज्यानि ऋत्विक् शब्दात् 'कर्मणि शञ्' तैः आर्त्विज्यैः ऋत्विक्सम्बन्धिकर्मभिरिति भावः। अत्र "हेतौ" इति सूत्रेण हेत्वर्थे तृतीया। तथा च आर्त्विज्यैः इत्यस्य ऋत्विक्सम्बन्धकर्मसम्पादनहेतव इत्यर्थः। भवन्तं उद्गीथविद्याविशारदमुषस्तिं पर्यैशिषं 'इषु' धातोः पर्युपसृष्टस्य लुङ् लकारे उत्तम-पुरुषैकवचनरूपमिदम्। पर्येषणविषयमकार्षमित्यर्थः। परन्तु दुर्भाग्येन भगवतः तत्र भवत उषस्तेः अवित्या लाभार्थक 'विद् लृ' धातोः भावे क्तिन् वित्तिः लाभः न वित्तिः अवित्तिः तथा अवित्या अनुपलब्ध्या अत्रापि कारणे तृतीया। भवतोऽनुपलब्धिकारणेन बहुपर्येषणेणाऽपि अज्ञातग्रामगतत्वात् यदा भवान् नोपलब्धस्तदेति भावः, अहं ऋत्विक्कर्मार्थम् इमानज्ञातोद्गीथरहस्यानपि विवशतया अवृषि, अर्थात् उपलब्धे भवति इमे पुनर्निरस्ताः करिष्यन्ते इति हार्दम्।।श्रीः।।

अथ यजमानः पुनः स्वाभिप्रायं स्पष्टं करोति—

भगवाँ्स्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ
तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां ।
यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्तावन्मम दद्या
इति तथेति ह यजमान उवाच ।।३।।

भगवान् तत्र भवानुषस्तिः तु एव इत्यवधारणार्थौ निपातौ, मे मम सर्वैः आर्त्विज्यै तत्कर्मसम्पादनार्थं भवतु इत्यध्याहार्यम्। अथ शब्दोऽयं स्वीकारार्थं, तर्हि एते प्रस्तात्र्युद्गत् प्रतिहर्तारः मया अध्यक्षेण समतिसृष्टाः उद्गीथरहस्यं पाठयित्वा निर्दिष्टाः स्तुवतां स्तुतिं कुर्वतामत्र प्रयुक्तात्मनेपदाभि प्रायोऽयं यत् न केवलं त्वत्फलार्थां प्रत्युत् शुद्धवेदपाठेन जनितपुण्यजनकतया अमीषामपि परलोकः सुगमःस्यादिति निजकल्याणायापि पाठकर्तृगामित्यभिसंन्धिना फलेन स्तुतिं कुर्वन्तीत्यर्थः। परन्तु एभ्योऽधिका धनमात्रा मह्यं नहि यावदेभ्यः धनं दद्या अर्पये तावत् तत्प्रमाणमेव मम उषस्तेरपि अत्र **'स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च'** इति स्मार्तवचनानुरोधेन स्मृतब्राह्मणत्वगौरवतया स्वस्मिन् सम्प्रदानत्वनिरासेन ममेति षष्ठ्यन्तं भावोऽयं, यदहं ब्राह्मणः नान्यस्य भुंजे नान्यस्य वसे सम्पूर्णजगत्त्रयं ममेव अस्मत् कृपया यूयं धनभुजो जाताः। तस्मात् ममैव सम्बन्धीभूतं यद् धनं युष्मासु न्यासभूतं तत एव नास्ति विपुलमहमिच्छामि। **यावद् मीयते जठरं तावद् स्वत्वं हि देहिनम्।** इति स्मार्त वचनात्। तथा तथैव करिष्यामि, यथा श्रीमान् निर्दिषति इति ह निश्चयेन उवाच स्वीचकार।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ वृत उषस्तो **समतिसृष्टाःस्तुवताम्** इत्युषस्तेर्वाक्यानुसारं पूर्वं प्रस्तोतैव प्रस्तावमन्वायत्तां देवतां जिज्ञासते—

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या
देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेद- ।
विद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतितष्यतीति
मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ।।४।।

अथ अनन्तरं ह ज्ञाननिश्चयेन कृत्वा एनमुषस्तिं प्रस्तोता प्रस्तावकर्मनिरतो ब्राह्मणः एनमुषस्तिमुपससाद जिज्ञासया समीपं गत्वा प्रणम्य तस्थाविति भावः। प्रस्तोतरि या देवता इत्यारभ्य निपतिष्यति इति यावत् वाक्यखण्डम् उषस्ति वाक्यानुवादरूपं व्याख्यातचरम् तर्हि कतम देवता अत्र देवत्वजातौ निर्धारणे डतमच् किन्नाम्नी सा।।श्रीः।।

उषस्ते उत्तराकारमाह—

प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि
प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणभ्युज्जिहते सैषा
देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्
प्रास्तोष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ।।५।।

उत्तरमाह प्रस्तावमन्वायत्तादेवता **'प्राण एव उपपत्तिमाह'** ह यतोहि वा शब्दोऽत्र निश्चयर्थः निश्चयेन सर्वाणि भूतानि चराचराणि प्राणमेव आधारीकृत्य संविशन्ति समधिशेरते, प्राणमेव अनुश्रित्य सर्गकाले समुज्जिहते उदीयमानानि गच्छन्ति, अत्रेदमवधेयं यत् प्राणशब्दोऽत्र परब्रह्मवाची न खलु नासाग्रामिनं प्राणं भूतानि संवेष्टुं शक्यानि। न खलु तमुपश्रुत्य गतिमन्तिभवितुं शक्यानि। अतो **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'** इति तैत्तरीपोनिषदः शिक्षाध्याये सप्तमानुवाके वर्णितस्य ब्रह्मलक्षणस्य संघटनात्। प्राण शब्दोऽत्र ब्रह्मतात्पर्य एव निश्चीयते। नन्वत्र निश्चये किमपि प्राचीनमपिमानम्? इति चेत् अस्त्येवेति ब्रूमहे। किं तर्हि वेदान्तदर्शनसूत्रकृतां पाराशरकल्पतरुमहाफलभूतानां बादरायणाचार्यापरनामधेयानां वेदव्यासमहाराजानां सूत्रमेवात्र प्रमाणम् **'अतएव प्राणः'** (ब्रह्म सू. १।१।२३)।

तां प्राणनाम्नीं देवता अविद्वान् चेत् प्रास्तोष्यः स्तुतिमकरिष्यः तदा मयोक्तस्य ते प्रस्तोतुः मूर्धान्यपतिष्यत्, प्रस्तोष्यः न्यपतिष्यत् इत्युभयत्र हेतुहेतुमद्भावव्यंजको क्रियातिपत्तिमूलको लृङ् लकारः। प्राणशब्दस्य च परब्रह्मवाचित्वे व्युत्पत्तिरपि प्रकर्षेण

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनन्ति जीवन्ति भूतानि येन स प्राणः 'करणे घञ्' उपदेशशब्दवत् परमात्मैव जीवनदाता जगतां 'स उ प्राणस्य प्राणः' (केन. उ. १।३)

यथोक्तं मानसे—

पूत परमप्रिय तुम सब हीके ।
प्राण प्राण के जीवन जीके ।।

(मानस अयो. ५६।६)

एवं प्रस्तोतुर्जिज्ञासा समाप्तिः।।श्रीः।।

अथोद्गातृप्रश्नं प्रस्तौति—

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथ-
मन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा
ते विपतिष्यतीति मा भगवान-
वोचकत्तमा सा देवतेति ।।६।।

अथ अनन्तरमुद्गाता जज्ञासार्थमुषस्तिमुपसन्नः पप्रच्छ प्रश्नाकाराः पूर्ववत्। उद्गीथः सामवेदे भगवद्भक्तिपरः स्तोत्रविशेषः इत्यनेन चतुर्वेदे एवानुपलब्धः **'भक्तिशास्त्रं भगवान् शाण्डिल्यउपलेभे'** इति शारीरिकभाष्ये शंकराचार्योक्तं खण्डितम्। अत्रैव भाष्ये उद्गीथशब्दस्य तैरैव भक्तिपरकत्वेन व्याख्यातत्त्वात्। उपनिषदियञ्च सामवेदीय तलवकारब्राह्मणस्य आतृतीयाध्यायात् दशमाध्यायपर्यन्तेति तैरैव स्वीकृतत्वात्। तद्यथा अत्रत्यं शांकरभाष्यम् **'उद्गीथभक्तिमनुगन्तान्वायत्ता देवा?'** यदि चेद भक्तिर्वेदनाभविष्यत् तर्हि किमाधारमेतत् उदाहरति व्याख्यानम् इति तयैवविदां कुर्वन्तु। कतमा किं प्रकारिका उद्गीथं भक्तिपरकस्तोत्रम् अन्वायत्ता अनुश्रिता देवता इति शब्दोऽत्र जिज्ञासाप्रकारसूचवः।।श्रीः।।

उत्तरं ददाति—

आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा
इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति ।
सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो
मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ।।७।।

उषस्तिः उवाच उद्गीथं भगवद्भक्तिव्यंजकस्तोत्रम्। अनुगता देवता आदित्यः आदित्यशब्दोऽपि परमात्मपरः **अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्** (शुक्ल यजु. भदरसूक्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१०) इति मन्त्रे आदितिशब्दः दिवान्तरिक्षमातापितृपुत्रविश्वेदेवपञ्चजनपरकतया अदिति-शब्दस्य व्याख्यातत्त्वात्। नास्ति दितिः खण्डः यस्यां सादितिः **दोऽवखण्डने** इति धातुना क्तिन् प्रत्ययान्तेन दितिशब्दस्य निष्पन्नत्त्वात्। अदितिः अखण्डो ब्रह्मसर्गः तस्मिन् तस्यां वा अदितौ अखण्डब्रह्मसृष्टौ जातः श्रीरामकृष्णरूपेण धृतावतारः आदित्यः सूर्यप्रतीकगम्यः परमेश्वरः स एव देवता रूपः उद्गीथं सामप्रतिपाद्य भगवद्भक्तिं अनुगतः उपपत्तमाह। यतो हि उद्गीथमित्यत्र उच्चैः सर्वोपरि सन्तं विराजमानं गायति यत् तत् उद्गीथम्। इमामेव व्युत्पत्तिः श्रुतिः स्वयं कथयति उच्चैः सन्तमित्यादिना शेषं पूर्ववत्।

प्रतिहर्तृप्रश्नं स्पष्टयति—

अथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति।।८।।

अथ प्रतिहर्ता पप्रच्छ शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि
भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा
देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो
मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति।।९।।

उषस्तिरुवाच 'अन्नम्' अद्यते इत्यन्नम् अत्ति वा सम्पूर्णं संसारम् इत्यन्नम्

'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः। मृत्युर्यस्योपषेचनम्। क इत्था वेद यत्र सः।

(कठ. उपर. १।२।२५)

समर्थितं च श्रीवेदव्यासेन ब्रह्मसूत्रे **'अत्ता चराचरग्रहणात्'** (ब्रह्मसूत्र १-२-९) गीतं च मानस कृता—-

जाके डर अति काल डराई ।
जो सुर असुर चराचर खाई ।।

(मानस सुन्दर २२।९)

अथ अन्नं ब्रह्म इत्यत्र किं मानम्? श्रुतिरेव **'अन्नं ब्रह्म'** (तैत्त. ब्रह्मानंद वल्ली ५।१)।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपपत्तिमाह अन्नेनैव ब्रह्मणा प्रतिहारमाणानि तेन हेतुना गतिशीलानि भूतान्युपजीवन्ति तामजानश्चेत् प्रत्यहरिष्य: प्रतिहारं व्यधास्य: तदा ते मूर्धान्यपतिष्यत्। भूमौऽच्युतो भविष्यत् मयोक्तस्य द्विरुक्ति: खण्डसमाप्तिसूचिका।।श्री:।।

इति छान्दोग्योपनिषदि प्रथमाध्याये: एकादशखण्ड: श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघव: शन्तनोतु ।।

।। अथ द्वादशखण्ड: ।।

अतीतयोर्द्वयो:खण्डयो: अन्नाभावजनितदारिद्रदुर्विपाकजनिता दुर्व्यस्थोषस्तेरुक्ता, यत्र बुभुक्षितेन तेन उच्छिष्टपर्युषितं भुक्तम् अनाहुतेनापि राजसभां गत्वा सर्वान् ऋत्विज: परिभूय राजानं च प्रभाव्य स्वयमेव प्रसह्य यज्ञाध्यक्षस्थानं समधिष्ठितमयमन्नाभावमाभूदिति तदुपलब्धिसाधनरूपेण शौवोद्गीथोपदेश: प्रारभ्यते—

अथात: शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ।
ग्लावो वा मैत्रेय: स्वाध्यायमुद्वव्राज ।।१।।

अथान्तरं साधिकृतं वा अत अस्माद्हेतो: यतो ह्यन्नाभाव: क्लेशयति, अत: अस्मात् कारणात्, यद्वा अत: एतस्मात् खण्डादनन्तरं शौवोद्गीथ: स्वभिर्दृष्ट: **'शौव: शेषे'** इत्यनेन अण् प्रत्यय: नकारलोपश्च वृद्धि: अयादेश: शौवश्चासाबुद्गीथश्चेति शौवोद्गीथ:, हि प्रसिद्धो तत् अधिगन्तुं दल्भ्यस्य पुत्र: दाल्भ्य: बक: एतन्नामा मैत्रेय: मित्राया: अपत्यं पुमान् मैत्रेय: ग्लाव: महर्षि:, अत्र एकस्यैव महर्षेर्द्वेनाम्नी बको ग्लावश्चेति तस्य पितृप्राशस्तुं कथयितुं दाल्भेति मातृप्राशस्त्यं ध्वनयितुं मैत्रेयेति विशेषणद्वयं न खल्वशुद्ध: मातापितृक: वैदिकाध्ययनाय प्रभवति एकस्या एव व्यक्ते: जननीजनकप्राशस्त्यद्योतनाय अन्यत्रापि इत्थमुदाहरणम्। तद्यथा—

रामो दाशरथि: शूरो लक्ष्मणानुचरो बली ।
काकुत्स्थ: पुरुष: पूर्णे कौसल्येयो रघूत्तम: ।।

(रामरक्षास्तोत्र-२२)

स्वाध्यायं स्वस्य स्वाधिकृतवेदस्य स्वस्या: वा वैदिकशाखाया: अध्याय: अभ्यासेयस्मिन् स्थले तत्स्वाध्यायम् उद्वव्राज उदकाशयाभ्यासं जगाम।।श्री:।।

अथाग्र्यघटनां सूचयति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान ।
उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति ।।२।।

तस्मै मैत्रेयाय अत्र तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या इति वार्तिकानुरोधेन तथा च तस्मै इत्यस्य मैत्रेयकल्याणार्थमिति शब्दार्थः। श्वेतः शुक्लशरीरः श्वा कुक्कुर एकः प्रादुर्बभूव प्रकटयांबभूव, मैत्रेयकल्याणचिकीर्षया स्वयं भगवानेव परमेश्वरस्वीकृतश्वतनुः स्वं प्रकटयाञ्चकारेति मन्त्रशकलार्थः। भगवतः शुक्लशरीरं पुराणेषु प्रसिद्धम्। तथोक्तं श्रीभागवते गर्गाचार्येण।

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनुः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ।।

(भागवत १०।८।१३)

अथ प्रादुर्भूतं तं श्वानम् अन्ये श्वानः देवभूताः उपसमेत्य उपश्रयेण समीपं गत्वा ऊचुः अवदन् भगवान् तत्र भवान् षडैश्वर्यसम्पन्नः वाराहाद्यवतार इव लीलया गृहीतसारमेय तनुः नः अस्माकं दैवतात्मनां शुनामन्नमन्नप्राप्तिनिमित्तम् आगायतु उद्गीथगानमाध्यमेन अन्नं सुलभयतु अशनायाम अशनपीडया समाकुला बुभुक्षामहे।।श्रीः।।

अथ श्वेतश्वा उत्तरथां बभूव—

तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध बको ।
दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयाञ्चकार ।।३।।

ह निश्चयेन तान् शुनः युष्माकं कृते अन्नमागाष्यामि, परन्तु नाद्य यूयं श्वभूते प्रातः उषसि समीयात संयता आगच्छत, तेऽपि स्वीकृतवन्तः। तत् तादृशं श्वसङ्केतं दाल्भमित्रापुत्रः ग्लावः प्रतिपालयाञ्चकार प्रतीक्षाञ्चक्रे सोऽपि तत्रैव प्रातर्गत इति भावः।।श्रीः।।

अग्रिमघटना आलङ्कारिकतया प्रस्तौति—

ते ह यथैवेह बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सँरब्धाः ।
सर्पन्तीत्येव मा ससृपुस्ते ह समुपविश्य हिंचक्रुः ।।४।।

ह निश्चयेन ते श्वभूते प्रातः कथं श्वेतश्वकं समुपसृता इत्युमानभङ्ग्या निदर्शयति, बहिष्पवमानो नाम वैदिकः स्तोत्रविषेशः यमुद्गातारः सम्भूय गायन्ति पवते पुनीते वा बहिः बाह्यवस्तूनि यस्तथाभूतोऽसौ बहिः पवमाने इति पदच्छेदे कस्कादित्वात् भ्रातुष्पुत्रः इत्यादिवत्। विसर्गस्य सकारे 'इगुपधत्वात्' शकारः। तेन बहिष्पवमाने स्तोत्रेण करणभूतेन स्तोष्यमाणः तत्तत् देवतां स्तुतिविषयं करिष्यमाणाः इहैव अत्रैव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्मकाण्डे संरब्धाः समुत्साहवन्तः प्रायशः लोके संरब्धशब्दः क्रोधपरः किन्तु नात्र तादृक् प्रकरणाभावात् अस्या एव श्रुतेरनुरोधेन समुपसृष्टस्य रभेः क्रोधातिरिक्तार्थवाचकत्व-सम्भवात्। तथैवेमे इमं निजान्नदातारं श्वेतमुपसृत्य सहैव तत्रोपविश्य हिंचक्रुः हिङ्कारेण निजोपस्थितिं विज्ञापयामासुः।।श्रीः।।

कां स्तुतिं चक्रुरिति स्तोत्राकारं प्रस्तौति—

ओ३ मदा३ मों३ पिबा३
मों३ देवो वरुणः प्रजापतिः ।
सविता२ न्नमिहा२ हरदन्नपते३
न्नमिहा २ हरा २ हरो ३ मिति ।।५।।

ॐ परमेश्वरस्मरणं हे भूतानां अवितः ॐ भवतः स्मरणेन अदामः गणकार्यस्या-नित्यात्वाच्छप् अद्म इति भावः, भवत्स्मरणेनैव लब्धान्नाभुञ्ज्महे। एवमेव ॐ भवत् स्मरणेन पिबामः पानं कुर्मः, अस्मदशनपाने भवदधीन इति भावः एवं ॐ अन्नं ॐङ्कारेणैव भवता ब्रह्मणा प्रजनितं भवतीति तात्पर्यम्। अतएव देवः स भवान् चराचरप्रकाशनशीलं वरुणः वर्षाधिष्ठातृदेवता वरुणलोकपालोऽस्ति, भवानेव प्रजापतिः प्रजानां जन्मदाता ब्रह्मा रजोगुणावच्छिन्नो ब्रह्माभूत्वा भवानेव प्रजा जनयेतीति तात्पर्यम्। भवानेव सविता सूर्यरूपः इह अन्नम् आहरत अत्र बाहुलकाल्लकारव्यत्ययेन लोडर्थे लङ्। एवमेव ॐ हे रक्षितः बुभूक्षितेभ्योऽस्मभ्यं श्वभ्यः अन्नम् अदनीयवस्तु आह उपस्थापय आदरार्थे नित्यत्वे वा द्विरुक्तिः ओमिति परमात्मस्मरणसूचकम् आदावन्ते मध्ये च प्रणवसम्पुटेन मन्त्रेणानेन आदिमध्यावसानेषु सततमेव श्रीरामाभिधानो हरिः स्मरणीय एवेति सूच्यते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्यपनिषदि प्रथमाध्याये द्वादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। त्रयोदशखण्डः ।।

पूर्वस्मिन् खण्डे शौवोद्गीथोपासनाव्याजेन अन्नमुद्गीथाधीनं वर्णितम्। अथागामिनि शकले उद्गीथोपासनायां तत्तदक्षरेषु तत्तत् देवतानां निवासस्थानानि वर्ण्यन्ते—

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हाईकारश्चन्द्रमा । अथकारः। आत्मेहाकरोऽग्निरीकारः ।।१।।

देवेषु लोकवाय्वग्निचन्द्रमात्मनामुपासनं मुख्यं तत्र रथन्तरवामदेवप्रभृतीनां सामाक्षराणां निर्दिष्टदेवताधारणयोपासनं विधेयमिति श्रुतेर्हार्दम्। सामानाधिकरण्यञ्च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निर्दिष्टदेवानां स्तोभाक्षरेषु भेदाभावप्रतिपत्तये वा निश्चयेन अयं पुरो वर्तमानः लोकः विलोकनार्हः संसारः हाउकारः एतदभिन्नः वायुः हाईकारः। अथकाररूपः चन्द्रमा आत्मा, इहकाररूपः अग्निश्च इकार व्यपदेशः एवं हाउ हाई अथ इह ई इति रथन्तरवामदेव्य स्तोभाः लोकवायुचन्द्रमाग्निप्रतीकेषूपासनीयाः श्रुतेरेष भावः।।श्रीः।।

एवमेव अन्यस्तोभेष्वपि आदित्यादीनां धारणा व्यपदिष्यन्ते—

आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वेदेवा औहोइकारः ।
प्रजापतिर्हिंकारः प्राणः स्वरोऽन्नं या वाग्विराट् ।।२।।

ऊकारः एकारः औहोयिकारः हिंकारः स्वरः या वाग् इति सप्त स्तो भेषु आदित्यनिहवविश्वेदेवाप्रजापतिप्राणान्नविराजां धारणाः निहवः वैदिक आह्वानदेवता विराट् परमात्मा।।श्रीः।।

एवं पूर्वयोर्मन्त्रयोर्द्वादशस्तोभा वर्णिता तेषां तत्तत् प्रतीकेषु तादृश्य एव निरुक्तयः त्रयोदशस्तोभसम्बन्धः आह—

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः संचरो हुंकारः ।।३।।

अनिरुक्तः ब्रह्मस्वरूपत्वात् सर्वज्ञया श्रुत्यापि न व्युत्पादितः इत्यनेन ब्रह्मणोऽनिर्वचनीयता। सञ्चरः सर्वत्र सम्यग् चरणशीलः हुंकारः त्रयोदशः स्तोभः।।श्रीः।।

अध्यायान्ते फलश्रुतिमाह—

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति ।
य एतामेवँ् साम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद ।।४।।

अस्मै जनाय वाक् श्रुतिः स्वमेव दोहं वाचः सन् दोहं दुग्धे दुग्धमिवार्पयति, कस्मै? इत्यत आह यस्तावत् वाचः दोहः स्वयमेव सन्दोहवान् प्राप्तानन्दः सः आनन्दः अशनशीलश्चेत् अन्नवान् भवति। कः? इत्य आह यः साम्नम् पूर्ववर्णिता। उपनिषदं उपनिषद्रहस्यं वेद जानाति। द्विरुक्तिरादरार्था निश्चयदार्ढ्यार्था अध्यायसमाप्तिसूचनार्था च।।श्रीः।।

इति श्रीचित्रकूटनिवासिसर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वरश्रीमज्जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यकृतौ छान्दोग्योपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्ये प्रथमोऽध्यायःसम्पूर्णः।।१।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।।श्रीमद्राघवो विजयतेतराम्।।

।। श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

प्रथमः खण्डः

पूर्णस्मिन्नध्याये व्यस्ततया सामावयवानां विशेषतश्चोद्गीथोपासना सविस्तरं वर्णिता, साम्प्रतमध्यायेऽस्मिन् सामस्त्येन सामोपासनांवर्णयितुं पूर्वप्रसङ्गं स्मारयन्ती श्रुति उपक्रम्यते।

ॐ समस्तस्य खलु साम्न उपसनँ साधु ।
यत्खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ।।१।।

ॐ इति परमात्मस्मरणं खुल इति निश्चयार्थो निपातः। समस्तस्य सर्वावयवसम्पन्नस्य साम्नः सामवेदमयस्य श्रीहरेः उपासनं भजनसरणिं समुपदेक्ष्यामि इति शेषः। उपासना नाम परमेश्वरसमीपमासनम् उपोपसर्गः सामीप्यद्योतनशीलः आसनम्, समवस्थितिः। ननु **'आस उपवेशने'** इति पाणिनीयधातुपाठानुसारम् आस् धात्वर्थान्तर्भूतैव समीपस्थितिः तर्हि किमनेनोपसर्गेण? उच्यते— उपवेशने आस् धात्वर्थेऽपि सति समधिकसामीप्यद्योतनायोप उपसर्गः। ब्राह्मणवसिष्ठन्यायवत्। अथवा उपस्थातुं परमेश्वरं समाराधयितुमुपवेशनक्रिया आसना सैवोपासनेति व्युत्पत्तिप्रकारः। इत्यनेन व्याख्यानेन परमात्मनः प्रातिकूलवर्जितज्ञानकर्णाद्यपावृत-भगवत्प्राप्त्यतरिक्तसमीप्साशून्यत्वविशिष्टनिष्किञ्चनत्वोपलक्षितविशुद्धानन्यभगवत्प्रेमैकरूप-परमात्मनामरूपलीलाधामसमास्वादनैकव्यापारनिरन्तरश्रीरामचरणारविन्दपरमव्याकुली-भावपुरःसरपौनः पुण्यसमुपलक्षितसंस्मरणमेव उपासनापदार्थः इति ध्वनितम् तामेव वक्तुं प्रतिजानीते, साधु शोभनं साधु साम्नोः समानार्थकत्वं वर्णयति। यत्साधु सुभगं तदेव साम, यत् असाधु अशोभनं तदेव असाम, लोकानुभवमपि निजकथनं द्रढीकरमाय प्रस्तौति "नहि लोकात् भिद्यते शास्त्रम्" इति पातञ्जलोक्तेः। यथा लोके प्रयुज्यते इदं त्वया साम कृतं कृतं इदं च असामकृतम्। तदेवोद्धरति इति एवं प्रकारकाणि वाक्यानि अचक्षते व्याहरन्ति लोका इति शेषः।।श्रीः।।

इममेव सिद्धान्तं द्रढयितुं साध्वसाधुसमानार्थकप्रयोगान् निर्दिशति—

तदुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव ।
तदाहुरसाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत निश्चयेन अपि यतोहि तत्तस्मादेव हेतोः लोका आहुः येनं राजानं साम्ना उपागात् उंपगतोभूत् एतत् समभिप्रायेण पुनरपि आहुः एनं साधुना साधुव्यवहारेण उपागात् इत्थं सामसाधुशब्दौ तुल्यार्थकाविति फलितम्। अतएव राजनीतावपि साधुनीतिरिव सामनीतिरिति कथ्यते। तथोक्तं भारविणा **'निरत्ययं सामान दानवर्जितं'** किरातार्जुनीयम् (१।१२) 'साम सान्त्वम् इति मल्लिनाथः' 'साम शान्तमुभेसमे' इत्यमरः, एवम् असाम शब्दोऽपि असाधु पर्यायः। एत एव एनम असाम्ना असाधुना वा उपागात् इत्यादि लोकाः आहुः।।श्रीः।।

भूयस्तमेवार्थं द्रढयितुं लोकव्यवहारवाक्ये उदाहरति—

अथोताप्याहुः साम नो बतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव ।
तदाहुरसाम नो बतेति यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः ।। ३ ।।

अथ उत इति निपातद्वयं पक्षान्तरसूचकम् लोके आहुः कथयन्ति अपि निश्चयार्थः कथनाकारमाह, यत् किमपि साधु भवति तत् शुभघटितम् अन्येषां समक्षमाहु वत अहो इदम् अद्य नः अस्माकं साम केचन इदं शुभं साधुं साधु एतदपि आहुः। एवमेव यदा किमपि असाधु भवति अशुभं घटते तदपि असाम असाधु इत्यपि आहुः एवं मन्त्रयुगलेन सामशब्दस्य साधु शुभरूपद्वयं असामशब्दस्य च असाध्वशुभार्थद्वयं समसूचि।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह ।
यदेनँ्साधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः ।।४।।

यः स योऽपि पुरुषविशेषः एतत् सामरहस्य एवमुक्तरीत्यैव सामसाधुशुभम् इति एवं धारणां कृत्वा उपास्ते भजते, उपासनं नाम किम्? इत्यत आह—

उपासनं नाम अभ्यासः अभ्यासो नाम तस्य पौनःपुन्येन मनसि समनुशीलनं तत्फलमाह– अथ उपासनान्तरम् एनं सामोपासकं साधवः धर्माः शोभना शुभाश्च अपूर्व विशेषाः। अथवा अत्र धर्मो शब्दः भागवतधर्मपरः साधुत्वं च तत्र भगवदनन्यतामयं परमेश्वरप्रेमधर्माः आ च गच्छेयुः अत्र चकारव्यवधानेऽपि **'व्यवहिताश्च वासु'** अष्टाध्यायी (१-१-८२) इत्यनेन आङ् उपसर्गः, एवं आगच्छेयुः आदरेण प्राप्ता भवितुं शक्यन्ते, आगच्छेयुरिति शकिलिङ् इत्येनेन शक्यार्थे लिङ् लकारः। उप च नमेयुः अत्रापि पूर्वरीत्यैव चकारव्यवधानेऽप्युपोपसर्ग उपश्रिता नमेयुः उपनन्तुं शक्यैव इति भावः।।श्रीः।।

इति छान्दग्योपषिदि द्वितीयाध्याये प्रथमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। द्वितीयः खण्डः ।।

साम्प्रतं साम्नां पञ्चविधाः सप्तविधाश्च उपासनाः वर्णयितुं खण्डस्यास्य प्रारम्भः—

लोकेषु पञ्चविधँ सामोपासीत पृथिवी हिंकारः अग्निः प्रस्तवोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ।।१।।

उर्ध्वेषु उपरितनेषु भूः प्रवृत्तेषु लोकेषु पञ्चविधं पञ्चप्रकारकं साम उपासीत वेदनमिहोपासनं सामान्यतः सामानि पञ्चविधानि हिंकारः प्रस्तारः। उद्गीथप्रतिहार-निधनमिति अमीषामेव पृथिव्यग्न्यन्तरिक्षादित्यद्युषु समवधारणा तत्र पृथिवी एव हिंकारः झंकृतत्वात्। अग्निरेव प्रस्तावः प्रस्तूयते देवेभ्यो हविः येन तादृशः प्रस्तुतिकरणमुभयसमं, एवमन्तरिक्षमुद्गीथमुद्गच्छन्ति सूर्यचन्द्रप्रभृतयो ज्योतिराशयो यस्मात् तदुद्गीथम्। एव मुद्गमनरूपधर्मः स एव धर्मः आदित्यप्रतिहारः यथा प्रतिहारः प्रतिहरति यजमानाय पुण्यं तथैवादित्योऽपि प्रतिहरति प्रकाशं लोकेः, एवं द्यौः स्वर्गं निधनं निधनेन स्थाप्यन्ते देवाः यत्र तन्निधनं सामन्यपि समानमेव निधनत्वम्। इति इत्थमुपासीत्।।श्रीः।।

अथाधोलोकेषु पुनर्हिंकारादीनां बुद्धिर्व्यवस्थाप्यते—

अथावृत्तेषु द्यौः हिंकार आदित्यः । प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ।।२।।

अथ अवृत्तेषु उपरितनमारभ्याधोलोकेषु हिंकारादीनां धारणा तत्र द्यौः हिंकारः द्वयोशब्दसामान्यात्। आदित्यः प्रस्तावः किरणप्रस्तुतीकरणात् उद्गीथ अन्तरिक्षं पूर्ववत्। अग्निः प्रतिहारः हव्यकव्यादीनां प्रतिहरणात्। पृथिवी निधनम् सर्वेषामाधारभूतत्वात् निदधति वस्तूनि यत्र इति व्युत्पत्तेश्च।।श्रीः।।

अथोपासनाफलमाह—

कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविध सामोपास्ते।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यः कश्चित् साधकः एतद् सामोपासनमेवं विद्वान् ऊर्ध्वेषु चाधस्तनेषु लोकेषु हिंकारादीन् संभावयन् सामोपास्ते अस्मै उपासीनाय ऊर्ध्वा पृथिव्यादयः आवृत्ताः स्वर्गादयः लोकाः कल्पन्ते भोग्यरूपेण स्वयमेव सम्पद्यन्ते, ह निश्चयात्मको निपातः।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये द्वितीयखण्डे श्रीराघवकृपाभ्याष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। तृतीयः खण्डः ।।

पूर्वस्मिन् खण्डे लोकदृष्ट्या सामोपासना वर्णिता। साम्प्रतं वृष्टिदृष्ट्या सैव पञ्चविधा वर्ण्यते—

वृष्टौ पञ्चविधँ सामोपासीत
पुरो वातो हिंकारो मेघो जायते ।
स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो
विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ।।१।।

एवमेव वृष्टौ जलवर्षणविषयेऽपि पञ्चानांधारणा तत्र पुरोवातः वर्षातः पूर्वं वहन् वायुः हिंकारः तादृक् शब्दवत्वात् मेघो पर्जन्यः जायते उत्पद्यते स एव प्रस्तावः। यतो हि तेन वारिधारा प्रस्तूयते, यन्मेघः जलं वर्षति स एव उद्गीथः मेघेनोद्गीर्यमाणत्वात्। यच्च विद्योतते चपला चमत्कुरुते स्तनयति नीरदो गर्जति स एव प्रतिहारः, यतो हि स गगनात् पृथिवीं प्रतिहरति जलम्।।श्रीः।।

पारिशेष्यकीर्तनेन सह फलं निर्दिशति—

उद्गृह्णाति तन्निधनं वर्षति हास्मै वर्षयति ।
ह य एतदेवं विद्वान्वृष्टौ पञ्चविधँ सामोपास्ते ।।२।।

यत् पृथिवी पतमानं जलमुद्गृणाति उपरितः धारयति। तदेव निधनं निधीयमाना श्रेयस्त्वात्। एवं यः एतद् विद्वान् रहस्यमेतद् जानन् सामोपास्ते निश्चयेनास्मै मेघः वर्षति सर्वसुखं मेघरूपः परमात्मा वर्षयति अन्यानपि देवान् वर्षतः प्रेरयति इति भावः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये तृतीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तेनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। चतुर्थः खण्डः ।।

इदानीं तुर्ये खण्डे जलदृष्ट्या सामोपासना वर्णयति—

सर्वास्वप्सु पञ्चविधिँ्सामोपासीत् मेघो
यत्संप्लवते स हिंकारो यद्वर्षति स प्रस्तावो ।
याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः
स प्रतिहारः समुद्रो निधनम् ।।१।।

एवं विधं पञ्चोपासनं साम्नां जलेऽपि सर्वासु सागरनदीसरःस्रोतोवहासु अप्सु जलेष्वपि एवमेव धारणाकरणीया मेघमन्तरा जलं न लब्धुं शक्यम्। अतः प्रथमः स्तोभविशेषः हिंकारः स एव मेहति जलं वर्षति इति मेघः। कथम्? इत्यत आह— यत् यस्मात् कारणात् संप्लवते अन्तर्भावित ण्यर्थोऽयं सम्प्लावयतात्यर्थः, यद्वर्षति वर्षणक्रियां करोति, स एव प्रस्तावः प्रस्तवना जलस्य यच्छब्दोऽत्र क्रिया विशेषणं 'वृष्' धातोरकर्मकत्वात् नैव कर्म, याः प्राच्यः पूर्वाभिमुखाः स्पन्दन्ते हिमालयात् स्पन्दमानाः प्रवहन्ति गङ्गायमुनासरयूप्रभृतयः पुण्यनद्य ता एव श्रेष्ठत्वात् उद्गीथसंज्ञाः याश्च प्रतीच्य पश्चिमवहाः स एव प्रतिहारः उभयत्र प्रतिशब्दसामान्यात् समुद्र एव निधनं तत्रैव सर्वासामपां प्रपतनात्।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं ।
विद्वान् सर्वास्वप्सु प्रञ्चविधँ्सामोपास्ते ।।२।।

एतदेव विद्वान् सर्वास्वप्सु समस्तजले यः पूर्वोक्तं सामोपास्ते, सः कदापि अप्सु जले पतित्वा न प्रैति न प्रेतो भवति, सामोपासनं कुर्वन् जलेषु तत्र मृतः भगवल्लोकमेव यातीति भावः। अप्सुमान् जलवान् भवति। अथवा जलविषयकसम्मानमान् भवति व्युत्पत्तिश्चात्र मानयति इति मान्। अप्सु इत्यत्र विषये सप्तमी।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये चतुर्थखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। पञ्चमः खण्डः ।।

इदानीम् ऋतुषु पञ्चविधसामोपसना निरूप्यते—

ऋतुषु पञ्चविधँ्सामोपासीत् वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः
प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शारत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा पूर्वं तथैवात्रापि ऋतुषु पञ्चविधं साम—

उपासीत तत्र हिंकारो वसन्तः प्रारम्भिकत्वात् ग्रीष्मो हि प्रस्तावः अनेनैव प्रस्तूयते रसालादीनां फलसमूहः वृक्षेषु च पुराणपत्रापगमापदनन्तरं नवकिसलयचयः वर्षैवोद्गीथः श्रेष्ठत्वात् उद्गीथो हि परमेश्वराधनमाध्यमत्वात् भक्तिरेव अतएव मानसकारोऽप्याह—

वर्षाऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास ।
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादौ मास ।।

(मानस बाल. १९)

एवं शरदेव प्रतिहारः तयैव वार्षिकं जलं सूर्याय प्रतिह्रियते, हेमन्त एव निधनं तत्रैव शैत्याधिक्यात् समेषां प्राणिनां तत्रैवान्तर्पटम् अन्तरा वा गृहस्य निधीयमानत्वात् हेमन्तशिशिरयोः शैत्यप्रधानत्वात् एकत्वभावनयैव हेमन्ते शिशिरान्तर्भावात् तस्य न पृथगुक्तिः।।श्रीः।।

साम्प्रतं चतुर्णां निष्पत्तिः श्रुत्या स्वयमेव क्रियते—

यतो हि हिंकारप्रस्तावयोः नैकत्वमपेक्षते व्याख्यानं सुस्पष्टम्—

यदुरिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो ।
यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ।।

अनेकासु व्युत्पत्तिषु सतीष्वपि केवलमुपसर्गमाश्रित्य उद्गीथप्रत्याहारोपद्रवनिधनानां विदधाति व्याख्यानं श्रुति, तत्तत्यधात्वर्थत्यागानुरोधेन किमनेन द्रविडप्राणायामेन आशयोऽयं यत्धात्वर्थमोषेणाप्यमीषां तत्तदुपसर्गव्युत्पादनेनापीष्टलाभसौलभ्यं धात्वर्थस्तु वर्तत एव वैशिष्ट्यार्थमेषामुपसर्गानुरोधिनी व्युत्पत्तिः प्रदर्शिता हिंकारो नोपसृष्टः प्रस्ताव उपसृष्टोऽपि सुस्पष्टार्थः। उदुपसर्गस्योदयोऽर्थः अत आह—

यदुदेति अभ्युदितो भवति स उद्गीथः। एवं यत्प्रतीति प्रत्युपसर्गघटितः स एव प्रतिहारः यत् उपइत्युपसर्गेण प्रारभ्यते स एवोपद्रव उपद्रवति यन्नीति नी उपसर्गात्प्राप्यते तदेव निधनम्, लोके निधनशब्दस्य मरणार्थप्रसिद्धेः वैदिकनिधनशब्दे तमर्थं निरस्तुं व्युत्पत्तिरेषाः।।श्रीः।।

ऋतूपासनयाः फलं कथयति—

कल्पन्ते हस्मा ऋतव ऋतुमान्भवति ।
य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधँ सामोपास्ते ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्मै साधकाय ऋतवः कल्पन्ते सुखं दातुं स्वयमुपतिष्ठन्ते स एव ऋतुमान् प्रशस्तर्तुसुखयुक्तो भवति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये पञ्चमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।५।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ षष्ठः खण्डः ।।

इदानीं पशुदृष्ट्या सामोपासनं वर्ण्यते—

पशुषु पञ्चविधँ् सामोपासीताजा हिंकारोऽवयः ।
प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ।।१।।

तत्र अजा हिंकारः समानशब्दत्वात्, अवयः मेषाः प्रस्तावः ता खलु स्वशावकान् प्रस्तूयैव गच्छन्ति। सर्वश्रेष्ठत्वात् गावः उद्गीथः उद्गीयते सुरैरपि इति व्युत्पत्ते, अतएव श्रुतिः प्राह— **माता रुद्राणां दुहिता वसूनां श्वसादित्यानां अमृतस्य नाभिः प्रनुवोचम् विचिकितुषे जनाया मा गामनागामदितिं वधिष्ट।** अमृतस्य अतो हेतोः गारिरक्षयिषुः—

भगवान् रामः प्रादुर्बभूव प्राह मानसकारोऽपि।

विप्र धेनु सुर संतहित लीन्ह मनुज अवतार ।।

गाः पिपालयिषु स्वयमेव गोपालः भगवान् श्रीकृष्णः गाश्चारयन् श्रीवृन्दावनवीथीषु मन्त्रमिममहरहो जपति—

गावो मे पुरतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे मध्यतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।

(पद्मपुराणकाशीखण्डे)

श्रीभागवतेऽपि सकलसुरशिखामणिप्रभुः गोरजः शिरसा बिभर्ति यथा—

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यागमन् समेताः ।।

(भागवत १०-१५-४२)

एवम् अश्वः प्रतिहारः तेनैव वस्तुनि प्रतिह्रियन्ते पुरुषो निधनं सर्वासां उत्कृष्टापकृष्टपशुप्रवृत्तीनां तत्रैव निदर्शनात्, यथा अत्यन्तमभीकत्वात् स अजाप्रवृत्तिः कोऽपि बहु प्रजावत्वात् विद्रोहाधिक्याच्च कोऽपि मेषप्रवृत्तिः कोऽपि च विशुद्धस्वभावः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वात्सल्यवान् पूतात्मा गोप्रवृत्तिः कोऽपि च विद्याविनयविहीनः भारधारणात् विषयरसिकत्वाच्च अश्वप्रवृत्तिः।।श्रीः।।

फलश्रुतिं वर्णयति—

भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति ।
य एतदेवं विद्वान्पशुषु पञ्चविधँ् सामोपास्ते ।।२।।

व्याख्यानं, पूर्ववत्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये षष्ठखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।६।।
।। श्रीवाघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ सप्तम खण्डः ।।

अथ प्राणोपासनां वर्णयति—

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः
सामोपासीत प्राणो हिंकारो ।
वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो
मनो निधनं परोवरीयाँ्सि वा एतानि ।।१।।

एवमेव प्राणेषु पञ्चविधसामोपासना, अत्र प्राणशब्दः नैव पञ्चप्राणपरः, अन्यथा वागादीनां प्राणशब्दवाच्यत्वं नोपपद्येत झंकारप्रधानत्वात्, प्राणः हिंकारः अर्थानां प्रस्तावनात्, वाक् प्रस्तावः सर्वाङ्गेषु श्रेष्ठत्वात्, चक्षुरुद्गीथः शब्दानां प्रतिहरणात् श्रोत्रं प्रतिहारः सर्वेषां सङ्कल्पानां मनसि निधीयमानत्वात्, इन्द्रियाणाञ्च मनः संयोगेनैव च सक्रियत्वात् मनो निधनम्। एतानि पराणि वरीयांसि च सन्ति परोवरीयशब्दे ओंकारो पृषोदरादित्वात् निपात्यते।।श्रीः।।

फलश्रुतिं वर्णयति—

परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो
ह लोकाञ्जयति य एतदेवं ।
विद्वान्प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः
सामोपास्त, इति तु पञ्चविधस्य ।।२।।

ह निश्चयेन यः विद्वान् एवं पञ्चविधं सामोपास्ते अस्य परोवरीयः परं श्रेष्ठं वरीयः उत्कृष्टं च फलं भवति परं वरीय इति वक्तव्ये "सुपां सुलुक्" इत्यनेन स्वादेशे तस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च अमभावे बाहुलकात् व्यत्यये रोरुकारदेशे गुणे परोवरीयः, स यो परोवरीयसः श्रेष्ठतमान् ब्रह्मादिलोकान् जयति। इति इत्थं तु निश्चयेन पञ्चविधस्य हिंकारप्रस्तावोद्गीथ प्रतिहारनिधननामकस्य साम्नः उपासनं वर्णितम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये सप्तमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ अष्टमखण्डः ।।

हिंकारप्रस्तावाद्युद्गीथप्रतीहारोपद्रवनिधनानां सप्तानां साम्नामुपासनं वाच्यो कल्पते—

अथ सप्तविधस्य वाचि सप्तविधँ॒
सामोपासीत यत्किंच वाचो ।
हुमिति स हिंकारो यत्प्रेति
स प्रस्तावो यदेति स आदिः।।१।।

अथ इदानीं सप्तविधस्य हिंकारादेः साम्नः उपासनमारभ्यते इति शेषः। व्याख्यानमिदं वस्तुतस्तु प्राचामनुरोधेन, नव्यास्तु सप्तविधाः रसरक्तमांसास्थि-मज्जाभेदःशुक्राख्याः सप्तधातवो यस्मिन् ता एव सप्तविधाः सन्ति यत्र सः सप्तिविधः प्राणिवर्गः तस्य वाचि वाण्यां सप्तविधं सामोपासीत प्राचीनानां व्याख्याने साम्नः उपासनं आरभ्यते इति त्रयाणां पदानां अध्याहारः अस्मद् पक्षे च पुरुषस्य इत्येकपदस्य इत्थं कल्पना लाघवमस्मन्मते। शेषं सुधियः जानन्ति। वाण्यां यः हुं इति ध्वनिः स एव हिंकारः यत्र प्र इति स्वरूपं स प्रस्ताव यत्र वाचि आ इति श्रूयते स आदिः।।श्रीः।।

यदुदिति सः उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो ।
यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ।।२।।

फलश्रुतिं वर्णयति—

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति ।
य एतदेवं विद्वान् वाचि सप्तविधँ॒ सामोपास्ते ।।३।।

वाचः वाण्याः दोहः सारः यस्मिन् स वाचो दोहः अत्र बाहुलकेन षष्ठी लुगभावः शेषं व्याख्यातपूर्वम् (छा. उ. १-३-७) इत्यत्र।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयध्यायेऽष्टमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।८।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। नवमः खण्डः ।।

एवं पूर्वेषु खण्डेषु भिन्नभिन्नोपासनाक्रमेण तत्प्रतीकानि वर्णितानि अथ सूर्य एव सप्तसाम्नां परिकल्पनं विधीयते—

अथ खल्वमुमादित्यँ सप्तविधँ सामोपासीत सर्वदा ।
समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम।।१।।

अथ वाग् उपासनानन्तरमुम पुरोवर्तमानमादित्यं सूर्यमेव सप्तविधं साम सामानाधिकरण्यात् तद्रूपं मत्वा उपासीत कथं इत्यत आह—

साम शब्दो हि समपर्यायः समस्तु सदृशवाचि यतोहि तेन सूर्येण सह समः अथवा यतोहि आदित्यः सर्वदा सर्वेषु कालेषु सम समानरूपेण रङ्केषु धनकेषु च किरणान् विकरति तेन समत्वलक्षणेन हेतुना आदित्यः साम। दृढीकर्तुमनुभवं करोति यतोहि प्रायशः लोका कथयन्ति सूर्यो मांप्रतिप्रकाशते अपरः कथयति माम् प्रति प्रकाशते एवं सर्वेण लोकेन समः तेन हेतुना साम सम एव समः इति साम इति व्युत्पत्तेः अत्र तद्धितत्त्वात् वृद्धिः परन्तु उभय संज्ञानि इति वक्तव्यं इति वार्तिकानुरोधेन ऐसमतादि पठितत्वात् आकृतिगणत्वात् पदसंज्ञया गत्वबाधात् न हि लोपः।

अथ क्रमेणादित्यस्यैकैकस्मिन्नूपे एकैकं साम साधयितमुपक्रमते

तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानीति
विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य
पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति
हिंकार भाजनी ह्येदस्य साम्नः ।।२।।

तस्मिन् सूर्ये प्रकाशमाने सति इमानि सर्वाणि भूतानि जीवन्ति इति विद्यात् जानीयात् तस्य सूर्यस्य उदयात् पुरा प्रथमं यद्रूपं जपाकुसुममिवारूणं सैव हिंकारः प्राथम्यात् तस्य हिंकारस्य साम्नः इषवः गवादयः अन्वायत्ताः आनुकूल्येनाधीनाः अतएव ते हिंकुर्वन्ति हिंकारेण शब्दायन्ते यतोहि एते अस्य साम्नः हिंकारभाजिनः हिंकारभजनशीलाः।

अथ द्वितीयसाम्नः प्राहोपपत्तिम्—

अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य
मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रस्तुतिकामाः प्रशँ्साकामाः
प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ।।३।।

अथ अनन्तरं सूर्यस्य प्रथममुदितमिति प्रथमोदितं तस्मिन् प्रथमोदिते उदितशब्दोऽत्रोदयपर्यायः अथवा कर्तरि क्त प्रत्ययात् उदेति इत्युदितः प्रथममुदितः प्रथमोदितः तस्मिन् प्रथमोदिते सूर्य इति सप्तम्यन्तं विशेष्यं अथवा प्रथम इत्यस्य नपुंसकलिङ्गेऽपि सुपां इत्यादिना पूर्वसवर्णात् प्रथमा एवमुदिते सूर्ये यत्प्रथमारूपम् इति श्रुत्यन्वयः स एव सूर्यस्य प्रथममुहूर्ताकारः स एव प्रस्तावः तस्य साम्नः मनुष्या अन्वायत्ताः अन्वधीनः हिं यतोहि एते मनुष्या एतस्य प्रस्तावभाजिनः भाजिनः इति वक्तव्ये भाजिन इति प्रयोगस्तु बाहुलकेन सत्यपि वणित्वे कुत्वाभावात् इमे प्रस्तावं अजन्ते अतएव प्रस्तुतिकामाः श्रुत्यैव प्रस्तावशब्दस्य अर्थद्वयं कृतं प्रस्तावो हि कस्यचित् वस्तुनः प्रस्तुतिकरणं तथा च प्रस्तावो नाम प्रशंसा प्रकृष्टः स्तवः प्रस्तव प्रस्तवः एव प्रस्तावः इति व्युत्पत्तयः अतएव मानवाः कर्मणा प्रस्तुतिकरणं प्रशंसा च कामयन्ते।

अथ तृतीयं साम विवृणोति—

अथ यत्सङ्गवेलायाँ्स आदिस्तदस्य ।
वयाँ्स्यन्वायत्तानि तस्मात्तन्यन्तरिक्षेऽ-
नारम्भणान्यादायात्मानं परिपतन्त्यादि-
भाजीनि ह्येतस्य साम्नः ।।४।।

अथ सङ्गवेलायां सङ्गवः गवां समवेति भवनं तस्य सङ्गवस्य वेला सङ्गववेला यस्मिन् काले गावः वनचाराय समवयन्ति तादृक् वेलायां सूर्योदयदूर्ध्वं यावत् त्रिमुहूर्तिकालमिति भावः स आदिः आददते स्वात्मानं यत्र तथाभूतः तस्मिन् वयांसि पक्षिणः अन्वायत्तानि अतएव ते तान्यम्वरे अनारम्बणानि आलम्बनम् एव आरम्बणम् अभेदाल्लोरकारः नास्ति आरम्बणम् आलम्बणम् आधारो येषां तथाभूतानि अन्तरिक्षे निराधाराणि चरन्ति आत्मानम् आरायैव परिपतन्ति परितः भूमौ पतन्ति यतोहि तानि आदिभाजीनि आदिनामकसामभक्तिमन्ति।

चतुर्थं सामव्याचष्टे—

अथ यत्सम्प्रति मध्यन्दिने
स उद्गीथस्तदस्य देवा
अन्वायत्तास्तस्मात्ते सप्तमाः प्राजापत्याना-
मुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ आद्यनन्तरं सम्प्रति अस्मिन्नेव समये मध्यन्दिने मध्याह्ने सूर्यस्य यद्रूपं स एव उद्गीथः सर्वश्रेष्ठत्वात् तुरीयब्रह्मरूपः अयं कालोऽपि पावनः भवति तस्यैव देवाः अन्वायत्ताः अनुकूलतयाधीनाः अत एव उद्गीथोपासनाहेतो ते प्राजापत्यानाम् प्रजापतेः कस्य-यस्य ब्रह्मणो वा अपत्यानि पुमांसः प्रजापत्याः तेषां समेषाम् प्रजापतिसंतीनां मध्ये इमे सत्तमाः श्रेष्ठा अत्र निर्धारणे सप्तमी अतिशयेन सन्तः इति सत्तमा हि यतोहि इमे देवाः उद्गीथभाजिनः उद्गीथभक्ताः अस्य साम्नः मध्याह्नस्योद्गीथमयत्वात् भगवान् रामचन्द्रोऽपि तस्मिन्नेव भुवनपावने भूतभावने काले समाविर्बभूव यथोक्तं मानसे—

मध्य दिवस अति शीत न घामा ।
पावन काल लोक विश्रामा ।।

(मानस १-१९१-२)

अथ प्रतिहारं व्याकरोति—

अथ यदूर्ध्वं मध्यदिनात्प्रागपराह्णात्स
प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते
प्रतिहृता नावपद्यन्ते प्रतिहार-
भाजिनो ह्येतस्य साम्नः ।।६।।

अथ उद्गीथानन्तरमस्य मंध्यन्दिनात् मध्याह्नात् ऊर्ध्वमपराह्णात् पूर्वं यद्रूपं भवति स एव प्रतिहारः तस्य गर्भाः अन्वायत्ताः भवन्ति यतस्ते प्रतिहारभाजिनः अतएव उपरिकृष्टाः नावपद्यन्ते नाधोनीयन्ते।

अथोपद्रवं निरूपयति—

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स
उपद्रवस्त स्यारण्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते
पुरुषं दृष्ट्वा कक्षँ
श्वभ्रामित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ।।७।।

अत यत् अपराह्णात् अनन्तरं असतमेवास्तमयम् स्वार्थैमियत् तस्मात् स्तिमितात् पूर्वं भाष्करस्य यद्रूपं स एव उपद्रवः षष्टं साम तस्य आरण्याः अरण्ये भवः पशवः अन्वायत्ता यतोहि इमे उपद्रवसामभाजिनः तस्मात् उपद्रव्यणं तेषां स्वभावः अतएवैते पुरुषं आखेटकं मनुष्यं दृष्ट्वा कक्षं गहनगह्वरं शुभं पर्वतकन्दरा वा उपद्रवन्ति द्रुत्वा लीयन्ते।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ सप्तमं साम स्पष्टयति—

अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं
तदस्य पितरोऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति ।
निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्न
एवं खल्वमुमादित्यँ सप्तविधँ सामोपास्ते ।।८।।

अथ उपद्रवानन्तरम् अस्तमिते अत्र आदि कर्मणि निष्ठा एवमस्तंगच्छति इति भावः अस्य यत् प्रथमा व्युत्पत्तिः पूर्ववत् प्रथममिति भावः संक्षिप्तमण्डलं स्थाल्याकारं यद् रूपं भगवतो भानोः तदेव निधनं निधीयन्ते समूह्यन्ते किरणा यस्मिन् तन्निधनं तस्य पितरः अर्यमादिपितृदैवतानि अन्वायत्ता समधिश्रिताः तस्माज्जनाः इमान् पितृन् दर्भेषु निदधति स्थापयन्ति तस्मात् एवमादित्यरूपेषु सप्तषु हुंकारप्रस्तावाद्युद्गीथप्रतिहारोपद्रव निधनात्नीति सप्तसामान उपासते उपासीत इति भावः।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये नवमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।९।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। दशमः खण्डः ।।

आदित्यो वै अहोरात्राणां प्रविभागकरणात् कालक्षपणहेतुत्वाच्च समस्तप्राणिभृतां मृत्युरूपः। ब्रह्मणा हि यत्कालपरिमाणायुर्निश्चीयते स कालस्तु दिनरात्रिविभागद्वारेणादित्ये नैव क्षप्यते अत एव श्रीभारते वनपर्वणि यक्षप्रश्नमुत्तरयता श्रीधर्मसुनुना युधिष्ठिरेण कटाहरूपकच्छलेन भूतप्रलयप्रस्तावे मोहकटाहाङ्कित्वेन पावकरूपोऽसावादित्यः प्रावर्णि दिवारात्रौ चेन्धनं तत्र मासाश्चदर्व्यः यासां परिघट्टनेन कुशलपाचकः कृतान्तः सततं भूतानि पचति सूर्याग्निसहायः तथा च श्लोकः—

अस्मिन्महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।
मासश्चदर्वीपरिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता ।।

(भट्टाभारत वनपर्व यक्षयुधिष्ठिरे संवाद-१)

तमेव जगन्मृत्युमादित्यं कथमतीयात् सार्थकः इति कृत्वा खण्डोऽयं प्रस्तूयते—

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधँ सामोपासीत हिङ्कार ।
इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथानन्तरं मृत्युरूपमादित्यमतिवर्तितुम् अतिमृत्युम् मृत्युमतीतम् अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया इति वार्तिकेन तत्पुरुषसमासः जगज्जायमानो न कोऽपि जन्तुर्मृत्युमत्येति ऋते सीतापतेः परमात्मनः श्रीरामात्। ननु श्रीरामस्यातिमृत्युत्वे किम्मानमिति चेत् **'नावज्ञेयश्च भूतानां न च कालवशानुगः'** (वा. रा. २-१-२९) इति प्राचेतस् वचनप्रमाणमेव गृह्यताम् स एव सूर्यस्यापि सूर्यश्चन्द्रमसोऽपि चन्द्रमाः **'सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यः'**। (वा. रा. २-४४-१५) इति ऋषिवचनात् सूर्यान्तर्कान्तिकोपासनाद् भगवतो रामस्य श्रुतौ अथ इति आनन्तर्यवाची खलु शब्दो निश्चयार्थः- आत्मना परमात्मना श्रीरामेण, जीविते परमात्मनीति कोषात्, सम्मितं तुल्यं सप्तविधं हिंकारप्रस्तावाद्युद्गीथप्रत्यहारोपद्रवनिधननामकम् साम उपसीत श्रीरामधारणयैव विज्ञाय भजेत उपासीत इति विधिलिङ्प्रयोगात् विधेयवचनम् मृत्युः खलु द्व्यक्षरः यथा च तन्त्रेऽपि द्वेऽक्षरे च भवेन्मृत्यु त्र्यक्षरे मृतमश्नुते तस्मात् द्व्यक्षरमतिशयितुं त्र्यक्षरमीश्वरमुपासीत इति श्रुत्यर्थः। रामशब्देऽपि रेफमकारौ तु व्यञ्जनौ किन्तु रकारोत्तरर्ती दीर्घाकारतु स्वरः तस्मात् त्र्यक्षरो राम उपासनीय इति श्रुतेर्दम्। प्रस्तुतस्योपपत्यमाह— हिङ्कारः प्रस्ताव इति सामद्वयं त्र्यक्षरं अत ईश्वरेण त्र्यक्षरं समं तस्मात् उभयत्र साम्यम्।

अथ आदिप्रतिहारयोः प्रत्येकं त्र्यक्षरयोः प्राहोपपत्तिम्।

आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम् ।।२।।

आदीति द्व्यक्षरं वर्णद्वयं प्रतिहार इति चतुरक्षरं चतुर्वर्णात्मकम् एवं द्वयोः सङ्कलनेन षट्संख्यावर्णानां ततः तस्मात् चतुरक्षरात् प्रतिहारशब्दात् एकमक्षरम् आदीति शब्दे सम्मेल्य द्वावपि त्र्यक्षरौ एवमुभाभ्यां त्र्यक्षरमीश्वरोपासनीयः इत्यत् आह तत्समम् ताभ्यां सामाभ्यां सदृशम्।

अथोद्गीथोपद्रवयोः उपपत्तिमाहोपासनायाः—

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम् ।।३।।

एवमुद्गीथ इति त्रिर्वणात्मकः शब्दः उपद्रव इति चतुर्वर्णः त्रिभिश्चतुर्णां संकलने वर्णानां सप्तसंख्या तथा चात्र षष्णां समं विभागद्वयं विधाय वर्णमेकमतिरिच्य प्रत्येकं त्र्यक्षरं तदेव परमेश्वरबुद्ध्योपासनीयमिति हार्दम् अत आह मूले अतिशिष्यते उभयोः वर्णानां संख्या सप्त उपासनीययोः द्वयोः प्रत्येकमपेक्षितं त्रयक्षरम् अतएकमसरमतिशिष्टं यस्याग्रिम उपयोगो निरूपयिष्यत इति भावः।

अथान्तिमं निरूपयति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति तानि ।
ह वा एतानि द्वाविँ्शतिरक्षराणि ।।४।।

निधनमिति सप्तमं साम त्र्यक्षरं तत्समं तेन त्र्यक्षरेण ईश्वरेण समं तुल्यं एवमेतानि हिंकारप्रस्तावादिप्रतिहारोद्गीथोपद्रवनिधनानि सप्तसामानि द्वाविंशतिः अक्षराणि तथा च हिंकारस्य त्र्यक्षरं प्रस्तावस्य त्र्यक्षरं आदेर्द्व्यक्षरं प्रतिहारस्य चतुरक्षरं उद्गीथस्य त्र्यक्षरं उपद्रवस्य चतुरक्षरं निधनस्य त्र्यक्षरमिति सप्तानां वर्णसंख्या द्वाविंशतिरिति भावः। अत्र सप्तधा विभक्तेषु तेषु प्रतिविभागं त्र्यक्षरं अविशिष्टस्यैकाक्षरस्य परिणाम उच्यते तदेवाखण्डं ज्ञानगिरा गवामगोचरं सीतेश्वरं परमेश्वरं मन्यामहे।

अथैकविंशति वर्णात्मकसामोपास्तिफलमाह—

एकविंशत्यादित्यमाप्नोत्येकविँ्शो वा इतोऽसावादित्यो ।
द्वाविँ्शेन परमादित्याजयति तन्नाकं तद्विशोकम् ।।५।।

एकविंशत्या वर्णानामिति शेषः एवं सप्तसाम्नां परिगणितवर्णानाम् एकविंशत्या अत्र करणे तृतीया एकविंशतिसंख्यारूपसाधनेनेति भावः आदित्यं संसारो हि मृत्युः अत एव गीतायां **'मृत्युसंसारवर्त्मनि' 'मृत्युसंसारसागरात्'** (९।३) (१२-७) श्रीमानसकारोऽपि मृत्युरूपं संसारं सूर्यपर्यायेण पतङ्गेनोपमिमीते **'ते संसारपतङ्गघोर-किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः'** (मानस ७ अन्तिम)।

एवं भूत आदित्योऽपि एकविंशति वर्णसमानधर्मा तथा च द्वादशमासाः षड्ऋतवः पूर्वाह्णमध्यान्यापराह्णनामधेयाः त्रयोवस्थाभेदाः एतादृशं सूर्यमाप्नोति। यतो हि इतः अस्माँल्लोकात्परः एकविंशः एकविंशतिसंख्यापूरणः आदित्यः द्वाविंशेन वरणेन साधकतमेन आदित्यादिपरं तन्मण्डलस्थं नाकं कं सुखं तस्य अभावा अकं दुःखं तन्नास्ति यस्मिन् तन्नाकं 'नभ्राण्ण' इति सूत्रेण नञ् समासेऽपि नाकारलोपाभावः। एवं सर्वदासुखाभावमिति भावः अथवा नाकः सुखत्वावच्छिन्नाभावनान् साकेतलोकः सोऽस्ति समधिष्ठेयत्वेन अस्य इति नाकः श्रीरामः साकेतलोकाधीशः अत्र अर्श आदित्वादच् प्रत्ययः तं नाकं साकेताधिपतिं विशोकं विगतशोकं तदीयेष्टयोगासम्भवात् यद्वा विनाशितः प्रणतशोकः येन स विशोकः तं परमात्मानं रघुवरमाप्नोति।

फलश्रुतिं वर्णयति—

आप्नोति हादित्यस्य जयं
परो हास्यादित्यजयाज्जयो भवति य ।
एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु-
सप्तविधँ्सामोपास्ते सामोपास्ते ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ह निश्चयेन यः एवं विद्वान् यथोक्तं पूर्वं जानन् अतिमृत्युभावनया सप्तविधसामोपास्ते सः आदित्यस्य जयं सूर्यमण्डलस्य भेदरूपं विजयं आप्नोति आदित्यस्य जयात् तदपेक्षयापि परः परमेश्वरः जयः विजयरूपः उत्कृष्टः भवति सामोपास्ते इति द्विरुक्तिस्त्वादरार्था निश्चयार्था च।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये दशमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।१०।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। एकादशः खण्डः ।।

अथ गायत्रसामोपासनं प्रस्तौति। गायन्तं त्रायते इति गायत्री तस्याः इदं इति गायत्रं सम्बन्धे षष्ठी अनुयोगि अलम्।

मनो हिंकारो वाक् प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं
प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ।।१।।

गायत्र्यां हि मनोवाक्चक्षुश्श्रोत्रप्राणानां पञ्चानामुपभोगो भवति तेषु पञ्चानां हिंकारादीनां गुणसाम्यात् प्रतीकत्वमारोप्यते मनः प्राथम्यात् हिंकारः अनेनैव हि चिन्तनं गायत्री दैवतस्य भावप्रस्तुतिकरणात् वागेव प्रस्तावः गायत्रीदैवतस्य सवितुः चक्षुः स्थितत्वात् तदेवोद्गीथं श्रेष्ठत्वादङ्गानाम् अत्र चक्षुः पदं मानसे चक्षुष् समभिप्रेतं तेनैव सीतापतिसाक्षात्कारसम्भवात् यथोक्तं भगवता,

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।

(गीता ११।८)

श्रोत्रं शब्दानां प्रतिहरणात् प्रतिहारः प्राणः समेषां तत्र निधीयमानत्वात् तत्र निधनम् इदं प्राणेषु प्रोतं सन्निहितं फलश्रुतिमाह—

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं
वेद प्राणी भवति सर्वमायुरेति।
ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति
महान् कीर्त्या महामनाः स्यात्तद्व्रतम्।।२।।

यः कश्चन पूर्वोक्तरूपेण जानन् वेदगायत्रं सामोपास्ते वेदनमिहोपासनं तादृक् प्रसङ्गानुरोधात् पूर्वापरग्रन्थानुरोधाच्च प्राणी प्रशस्तप्राणवान् प्रजया सन्तत्या पशुभिः गवादिभिः उपलक्षितः तथाभूतहेतुभिर्वा महान् भवति महीयमानस्तिष्ठति कीर्त्या

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यशसा महान् भवति सर्वम् आयुः शतवर्षात्मकं **जीवेम शरदः शतम्** इति श्रुतेः एति प्राप्नोति ज्योक् अनाविलं जीवनं जीवति।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये एकादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।११।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। द्वादशः खण्डः ।।

अथ रथन्तरसामोपासनं प्रस्तौति। रथन्तरनाम सुगमतया जीवानां भवसागरतारणात्मकं श्रौतं सविशेषं विधानं, रथेन भगवच्चरणकमलजलरथेन भगवच्चरणो हि जलरथः यथोक्तं श्रीविनये श्रीमद् हुलसीहर्षवर्धनेन **'भवसिन्धु दुरस्तरजलरथं'** (विनय पत्रिका १३६) तेन रथेन तरन्ति भवसागरं येन साम्ना तद्रथन्तरसाम।

अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते
स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति ।
स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनँ
सँ शाम्यति तन्निधनमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतम् ।।१।।

याज्ञिकः यत् अभिमन्थति अरणिघर्षणमाध्यमेन स एव हिंकारः प्राथम्यात् धूमो जायते स एव प्रस्तावः प्रस्तवनात् पावकस्य अनन्तरं ज्वलति दीप्यते स एव उद्गीथः श्रेष्ठत्वात् तत्रैवाहुतिसमर्पणयोग्यत्वात् अनन्तरं यदङ्गाराः जायन्ते इन्धनभस्मशब्देषु स एव प्रतिहारः प्रतिहरणात् अनन्तरं यद् उपशाम्यति निर्वाणोन्मुखो भवति तत् निधनं सामान्यं यच्च पूर्णतया शाम्यति तद्विशिष्टं निधनं स्फुल्लिङ्गानां रोचिषां च तत्रैव निधीयमानत्वात्। इदं रथन्तरसाम कथ्यते।

फलश्रुतिं व्रतं चाह—

स य एवमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतं वेद
ब्रह्मवर्चयन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्यग्जीवति
महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या
न प्रत्यङ्ङग्निमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ।।२।।

वेद उपास्ते ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मणः ब्राह्मणस्य वर्चः तेजः इति ब्रह्मवर्चसं ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः इति सूत्रेण समासान्तोच् प्रत्ययः तद् ब्रह्मवर्चसं प्रशस्त-तपःश्रुतयोनिसम्पन्नब्राह्मणतेजः अतिशयेनास्ति यस्मिन् स ब्रह्मवर्चसी इन् प्रत्ययः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्नादः दिव्यान्नभोक्ता शेषं पूर्ववत् अग्नेः प्रत्यङ् पावकसमक्षं न आचामेत् नैव मुखं हस्तचरणान् वा प्रक्षालेत् न निष्ठीवेत् न थूत्कुर्यात् तद्व्रत्।

एष रथन्तरसामोपासनानियमः।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये द्वादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।१२।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। त्रयोदशखण्डः ।।

इदानीं वामदेव्यसामोपसना वर्ण्यते।

अस्य साम्नः वामदेव ऋषिः अत इदं वामदेव्यम्।

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः
स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं
सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं
पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ।।१।।

उपमन्त्रयते पाणिगृहीतभार्यां धर्मतो विजिहीर्षुः स्वसमीपमाह्वयति इङ्गितादिचेष्टाभिः। स एव प्राथम्यात् हिङ्कारः, ज्ञपयते तामनुकूलयति स एव प्रस्तावः सङ्कल्पप्रस्तुतिकरणात् स्त्रिया स्वजायया सह शेते एकपर्यङ्के श्वपिति स एव उद्गीथः शास्त्राविरुद्धत्वेन श्रैष्ठ्यात् पृथक् शय्यायाः नारीदण्डरूपेण शास्त्रे सङ्कीर्तनात् **'स्त्रीणां दण्डे पृथक् शैय्या'** इति स्मृतेः। प्रति स्त्रीं शेते विहर्तुं भार्याम् अभिमुखीभूय शेते इति प्रतिहारः, कालं गच्छति व्यवाय क्रियया विश्रान्तिमेति इदमुपासनं मिथुने दम्पत्यो प्रोतम्। यद्यपि सामान्यतः कार्यमिदं वासनात्मकं परिकल्पयन्ते परन्तु श्रुतिविहितधर्मानुसारेण क्रियमाणं भगवदुपासनेति ज्ञेयम्—

फलश्रुतिं च तत्फलमाह—

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुनं प्रोतं
वेदमिथुनां भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते ।
सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया
पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम् ।।२।।

पाणिगृहीतां स्वतल्पगतां काञ्चनकुरूपामपि न त्यजेत् पाणिगृहीतभार्यात्यागे महताप्रत्यवायस्य श्रुत्यैव सङ्गीर्तत्वात्। इदमेव व्रतम्।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये त्रयोदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।१३।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ चतुर्दशः खण्डः ।।

अथ बृहत् सामोपासनं प्रस्तौति तदाधार आदित्यः न दीयते केनापि, नैव खण्डयते इति अदितिः तैलधारावदविच्छिन्नप्रवाहा भगवदीया परमप्रेमैकरूपा भगवन्नामरूप- लीलाधाम-रसास्वादनापरपर्यायानिरपाया भगवदाशक्तिरूपाभक्तिः तस्याः भक्तेरदितेः अयं आदित्यः भगवद् भजनानन्दरूपः परमेश्वरानुग्रहस्वरूपो वा तस्मिन् आदित्ये सूर्ये इदं बृहत्साम संन्निहितं तच्च भगवत् विभूतिः यथोक्तं गीतासु **बृहत्साम तथासाम्नां**, (गीता १०-३५) तदेवास्मिच्छकले यथावस्थमादित्यस्य संकीर्त्यते उद्यन्नित्यादिना—

उद्यन्हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः ।
प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ।।१।।

उद्यन् उदीयमानः सूर्यः हिंकारः उदितः उद्गतः सन् प्रस्तावकिरणानां प्रस्तुतीकरणात् मध्यंदिनम् अवस्थात्वेना स्त्यस्य इति मध्यन्दिनः मध्याह्नकालिकसूर्यः उद्गीथः उत्कृष्टतयागीयमानत्वात् अत एव श्रीराम जन्मनि मध्याह्नकालः तन्महोत्सवे च एकमासं मध्यन्दिनसूर्यो व्यराजत जगौ च मानसकारः—

मासदिवसकर दिव सभा मरम न जानै कोय ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होय ।।

(मा. बा. १९५)

एवमपराह्णः अपराह्णकालिकः सूर्यः प्रतिहारः अस्तोन्मुखत्वेन विकीर्णकिरणानां प्रतिहरणात् यत् तस्य अस्तं स्तिमितमण्डलरूपं तन्निधनं तस्मिन् किरणानां निधीयमानत्वात् एतद् बृहत्साम आदित्ये सूर्ये प्रोतं व्याप्तम्।

फलश्रुतिमाह—

स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं
वेद तेजस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ।
ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति
महान्कीर्त्या तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

वेद उपास्ते तेजस्वी प्रसस्ततेजोमयः ज्योग्जीवति उज्ज्वलं जीवनं वर्तयति तपन्तमादित्यम् उद्यन्तं भास्करं न निन्दते न गर्हेत तद्व्रतं अयमेव बृहत् सामोपासकानां नियमः।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये चतुर्दशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ पञ्चदशः खण्डः ।।

अथ वैरूपसामोपासनं प्रस्तूयते तर्हि किं नाम वैरूपं यस्मिन् विविधानिरूपाणि भवन्ति पर्जन्ये हि अनेकानि रूपाणि विलोक्यन्ते तेष्वपि भगवद्बुद्ध्यैव सामदृष्ट्या सामोपासीत एतदर्थमयमारम्भः विविधानि रूपाणि यस्मिन् तद् विरूपं विरूपमेव वैरूपं प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण्प्रत्ययः।

अभ्राणि संप्लवन्ते स हिंकारो
मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति उद्गीथो
विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार
उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम्।।१।।

अभ्राणि अपः जलानि बिभ्रतीति अभ्राणि नीरदाः सम्प्लवन्ते मरुता नभो मार्गेण वर्षणाभिमुखीक्रियन्ते स एव हिंकारः प्राथम्यात् मेघः मेहति धाराबद्धतया जलंमुञ्चति इति मेघः वर्षणशीलघनः जायते उत्पद्यते स एव प्रस्तावः वारिप्रस्तुतीकरणधर्मत्वात् वर्षति कूटते इति उद्गीथः कृषकैः मयूरैः सारंगैश्च उत्पुलकेन गीयमानत्वात् यद्विद्योतते चमत्करोति स्तनयति गर्जति स एव प्रतिहारः पयसां प्रतिहरणात् यद्उद्गृह्णाति वर्षणं विरमयति तदेव निधनं जलानां निधनभूतत्वात् एतत् पर्जन्ये वर्षणशीले मेघे।

फलश्रुतिमाह—

स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद
विरूपाँश्च सुरूपाँश्च पशूनवरुन्धे सर्वमायुरेति
ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति
महान्कीर्त्या वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

विरूपान् अनेकरूपान् सरूपान् समानाकारान् पशून् गवाश्वादीन् अवरुन्धे पशुशाले बध्नाति वर्षन्तं कटन्तं पर्जन्यं वारिदं न निन्देत नापवदेत तद्व्रतं एष एव वैरूपसामोपासकानां नियमः।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये पंचदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ षोडशः खण्डः ।।

अथ वैराजसामोपासनं प्रारभ्यते विविधतया राजते इति विराट् तस्य विराजः इदं इति वैराजं पंचैवर्तूनाश्रित्य भगवतो विराजःसृष्टिश्चलति प्रकृतिः विराड्रूपा विशिष्टा विविधा च विराजते—

वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः ।
शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ।।१।।

तत्र वसन्तःहिंकारः तस्मिन्नेव नवसंवत्सरस्य नवीनकिसलयानां प्रकृतौ च नवलसौन्दर्यसमारम्भात् ग्रीष्मः प्रस्तावः तत्र फलशस्य विपाकप्रस्तुतीकरणात् वर्षा उद्गीथः उत्पुलकैः प्राणिभिः गीयमानत्वात् उद्गृणाच्च वारां शरत्प्रतिहारः चण्डकरकिरणैः पयसां प्रतिहरणात् हेमन्तः निधनं तस्मिन्च्छैत्याधिक्येन सर्वेऽपि जीवाः निज निजनिलयेषु निधीयन्ते एतत् पञ्चषु ऋतुषु प्रोतम् समाहितं शिशिरस्य हेमन्त एवान्तर्भावात् पृथङ्नोक्तिः।

फलश्रुतिमाह—

स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद
विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन ।
सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया
पशुभिर्भवति महान्कीर्त्यर्तून्न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

विराजति विशिष्टः सन् शोभते ऋतून् वसन्तादीन् प्रतिकूलानपि न निन्देत तद्व्रतम् नियमः।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये षोडश खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ सप्तदशः खण्डः ।।

अथ शक्वरीसामोपासना प्रस्तूयते यया सामोपासनया प्राप्तुं शक्यन्ते पृथिवी अन्तरिक्षं द्योरिति त्रयो लोका उपासकेन सैव शक्वरी सामोपासना शक्यते प्राप्तुं यया सा शक्वरी इति व्युत्पतेः सामर्थ्यार्थक शक्लृ धातोः क्वरच् प्रत्ययः ईश्वरादिवत्—

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः ।
प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोता ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राथम्यात् पृथिवी भूर्लोकः हिंकारः प्रस्तुतिकरणात् परलोकाय जीवानाम् अन्तरिक्षं भुवर्लोकः प्रस्तावः अत्रैवान्तरिक्षे स्वर्गमहर्जनस्तपसां समावेशः द्यौः दीव्यतीति द्यौः साकेतलोकः उद्गीथः उत्कृष्टैरपि परमहंसविमलात्मभिः सनकादिमहात्मभिः गीयमानत्वात् दिशः पूर्वादयः प्रतिहारः आभिरेव निजनिजकर्मानुगाःप्राणिनः अधोअधोलोकानि अध्यधिलोकांश्च प्रतिह्रियन्ते समुद्रः सामान्यजीवानां कृते क्षारसागरः वैष्णवानां कृते क्षीरसागरः सामीप्यमुक्तिमिच्छताम् अनन्यगतिकानां श्रीरामोपसकानां कृते स्वयमेव श्रीनारायणाभिन्नः श्रीराम एव **'समुद्र इव गाम्भीर्थे'** वाल्मीकि १-१-१७ 'सर्वदाभिगतःसद्भिः' वाल्मीकि १-१-१६।

जो आनन्द सिन्धु सुख रासी ।
सीकर ते त्रोलोक सुपासी ।।

(मानस १-१-९७-५)

इत्यादि वचनात् स एव आनन्दसुधासागरः निधनं तत्र समेषाम् जीवानाम् प्रलयकाले सन्निहत्वात्— (**यत्प्रयन्तित्यभिसम्विसन्ति** इति श्रुतेः)

लोकेषु भूर्भुवःस्वराख्येषु प्रोताः व्याप्ताः जीवो हि यथाक्रमम् श्रौतस्मार्तकर्माणि यथावर्णाश्रममर्यादं विगलितविषादं कुर्वाणः मातृसेवया पृथवी पितृसेवया दिवं गुरु सेवया वैकुण्ठं क्रमशो लभत इति शक्वरीत्वम् तथा चाह मनुः मातृ शुश्रूषया पृथिवीं पितृ शुश्रूषया दिवम् गुरुसेवया तु वैकुण्ठं प्रेत्य मर्त्यो महीयते।

फलश्रुतिमाह—

स य एवमेताः शक्वर्यो लोकेषु
प्रोता वेद लोकी भवति सर्वमा-
युरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभि-
र्भवति महान्कीर्त्या लोकान्न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

लोकी भवति लब्धप्रशस्तलोको भवति इमे प्राशस्ते विधानात् लोकान् स्वर्गादीन् नास्ति बुद्ध्या न निन्दते तद्व्रतम् स एव शक्वरी सामोपासनया नियमः।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये सप्तदशोऽध्यायः सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ अष्टादशः खण्डः ।।

अथ रेवतीसामोपासनं वर्ण्यते रेवते प्लुतो गच्छति इति रेवती रेवृ धातोः प्लुत-गत्यर्थात् कर्तरि तिच् प्रत्ययः रेवती नाम पशुसंगति या प्लवमाना गच्छति तत्रापि सामधारणया करणीयमुपासनम् उपास्यत्वात् पशुनाम् न तेषु निष्कारणं दण्डंधारयेदिति शिक्षयन्ती श्रुति प्राह—

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः ।
प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ।।१।।

शब्दधर्मतया प्लुतिबहुलतया प्राथम्येन अजा वर्करी हिंकारः अवयः मेषा अञ्जसा विपुलसंततिप्रस्तुतिकरणात् प्रस्तावः गावः धेनवः सुरनरमुनिभिः सर्वोत्कृष्टेन परमात्मनाऽपि गीयमानत्वात् स्वयमपि हुंकारमाध्यमेन प्रणवस्य उच्चैः गातृत्वात् उद्गिरणाच्च पीयूषपयसाम् पूजनतश्च समस्तपुण्यानां श्रेष्ठत्वात् आपरमेश्वर-पामरवन्द्यमानत्वात् उद्गीथः वस्तूनाम् प्रतिहरणात् अश्वाः हयाः प्रतिहारः तेषां पुरुष एव योगात् स एव निधनं अथवा अजाविगवाश्वानां मानसप्रवृत्तीनां पुरुष एव दर्शनात् तत्र निधनत्वम् पशुषु पशुप्रवृत्तिषु जीवेषु तथा च स्पृश्यन्ते बध्यन्ते त्रयाणां गुणानां बन्धनैः एते पशवः जीवो हि सत्वगुणो ज्ञानसुखसंगेन रजोगुणः कर्मसंगेन तमोगुणी प्रमादालस्यनिद्राइति त्रिगुणप्रसूतैः षड्भिः गुणैर्बध्यते तथा चाह भगवान्–तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् सुखसंगेन वध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ। रजोरागात्मकंविद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् तन्निबधनाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् तमस्त्वज्ञानजमविद्धि मोहिनं सर्वदेहिनाम् प्रमादालस्य निद्राभिः तन्निबधनाति पाण्डव गीता १४-६-७-८।

फलश्रुतिमाह—

स य एवमेता रेवत्यः पशुषु
प्रोता वेद पशुमान् भवति सर्वमायुरेति ।
ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति
महान्कीर्त्या पशून्न निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

पशुमान् प्रशस्तपशुयुक्तः परमार्थतस्तु पश्यति परमात्मानं यः स पशुः उणादित्वात् दृश् धातोरूश प्रत्यये शित्वात् पाघ्राध्मा इत्यादि ना पश्यादेशे पृषोदरादित्वात् यकारलोपे पशुरिति निष्पद्यते **'अबध्नन् पुरुषं पशुं'** शुक्ल यजु. ३१-१५ इति श्रुतेः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राशत्यश्चात्र समत्वेन सर्वत्र परमात्मदृष्टिः वाक्यार्थस्तु पशुमान् भवति परमात्मदर्शनक्षमात्माभवति पशून् घृणा दृष्ट्या न निन्देत तदेव रेवती सामोपासनाव्रतम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये अष्टादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। एकोनविंशः खण्डः ।।

इदानीं यज्ञायज्ञीयसामीपासना वर्ण्यते— इज्यते इति यज्ञः 'यजयाचरुचयत रक्षप्रक्षोनङ' इति सूत्रेण कर्मणि नङ्प्रत्ययः एवं सर्वैरपीज्यमानत्वात् भगवान्परमेश्वर एव यज्ञः यज्ञोवै विष्णुयज्ञेन यज्ञमयजन्ति इत्यादि श्रुतिवचनप्रामाण्यात्। अयज्ञः जीवः यज्ञश्च अयज्ञश्च इति यज्ञायज्ञौ ब्रह्मजीवौ तयोः यज्ञायज्ञयोः ब्रह्मजीवयोः इदम् इति यज्ञायज्ञीयं वा नामधेयेषु वृद्धसंज्ञा वक्तव्या इत्यनेन परमेश्वरजीवनाम् ध्येयतया यज्ञायज्ञसमस्तशब्दस्य वृद्धसंज्ञकतया वृद्धाच्छः इत्यनेन छ प्रत्येय ईयादेशे यज्ञायज्ञीयं नाम शारीरम् उपासनम् अस्मिन्नेव शरीरे यौगपद्येन यज्ञायज्ञौ ब्रह्मजीवौ **'तिष्ठतः ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके'** कठ. १-३-१, 'द्वासुपर्णासयुजासखाय मुण्डक ३-१-१ इत्यादि श्रुतेः **'देही नित्यमवध्योयं सर्वदेहेषु भारत'** गीता २-३०।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति इत्यादि स्मृतेश्च तदुपासन एव शरीरेषु घृणां निराचिकीर्षु वर्णयति—

लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावो मासमुद्गीथोऽस्थि ।
प्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ।।१।।

लोम रोमावलि हिंकारः प्राथम्यात् त्वक्चर्मप्रस्तावः स्तूयमानत्वात् तस्मिन्नेव सौन्दर्यदृष्टेः परिकल्पनात् चर्मणि अयं सुन्दरः इयम् सुन्दरी इदं सुन्दरमिति सर्वानुभवसिद्धत्वात् उत्कृत्ये चर्मणि सर्वे समाना एव मांसं श्रेष्ठत्वात् उद्गीथः अस्थि प्रतिहरणात् बलस्य प्रतिहारः मज्जा पूर्वधातूनां निधीयमानत्वात् निधनम्।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स य एवमेतद्यज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गी भवति
नाङ्गेन विहूर्च्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति ।
महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या संवत्सरं
मज्ज्ञो नाश्नीयातद्व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अंगी भवति निर्दुष्टावयववान् भवति अंगेन करादिना न विहूर्छति न कुटिलो भवति संवत्सरमेकवर्षं यावत् मज्ज्ञ विज्ञाय मज्जाम् नाश्नीयात् न भुञ्जीत तदेव यज्ञायज्ञीयसामोपासना व्रतम्॥श्रीः॥

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये एकोनविंशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ विंशः खण्डः ।।

साम्प्रतं राजनसामोपासनं प्रस्तूयते राजन्ते देवाः येन तद्राजनं राजृदीप्तौ इत्यस्माद्धातोः, करणाधिकरणयोश्च इत्यनेन करणे ल्युट् राजृ हि दीप्त्यर्थः दीप्तिश्च जयोतिष्मत्स्वायत्ता ज्योतींषि च अग्न्यादित्यनक्षत्रचन्द्रमोमयानि वायुश्च पावकसखित्वेन मन्त्रेऽस्मिन् संनिवेशितः अग्निदीपने वायोः सहायकत्वात्—

अग्निर्हिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो ।
नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम्।।१।।

अग्निः अंजति गच्छति सर्वत्र तथाभूतः अज्यते आज्येनाभिषिच्यते यस्तथाभूतः अच्यते पूज्यते सुरासुरैपि यस्तथाविधः देवानां पुरोहितत्वात् ऋक्त्विक्त्वात् होतृत्वात् च अत एव प्रथमा श्रुतिः **'अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्त्विजं होतारं रत्नधातवं'** (ऋग्वेद-१-१-१) अग्रे नीयते श्रेष्ठत्वात् सोप्यग्निः स एव हिंकारः प्राथमिकत्वात् वायुः वाति सूचयति सुरभिमसुरभिञ्च यः स वायुः वाति सर्वत्र गच्छति यस्तथाभूतः वापयति अग्निं समिद्धं गमयति इति वायुः स एव प्रस्तावप्रकर्षेण स्तूयमात्वात् नमस्ते वायो **'त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि'** (तै. उ. शि. अ. अ. १) गन्धस्य च प्रस्तुतीकरणादपि प्रस्तावः आदित्यस्य च ज्योतिषां पतित्वात् उद्गीथता सिद्धा न क्षरन्ति न क्षीयन्ते वा नक्षत्राणि प्रतिहारः प्रतिहरणात् ज्योतिषां चन्द्रमाः चन्दयति जीवानाह्लादयति यस्तथाभूतः स एव निधनं सुधा रश्मयः ज्योतींषि च तत्रैव निधीयते इदं राजनं साम देवतासु दीप्तिमत्सु सुरेषु प्रोतम् समानधर्मत्वात्।

फलश्रुतिमाह—

स य एवमेतद्राजनं देवता सु प्रोतं वेदैता-
सामेव देवताना ँ सलोकता ँ सार्ष्टिता ँ सायुज्यं गच्छति ।
सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया
पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतम्।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवतासु द्योतनप्रधानविबुधेषु वेदैता ज्ञाता अत्र क्तिन्प्रत्ययान्तत्वात् कृतिप्राप्तायाः अपि षष्ठ्याः न लोकाव्ययनिष्ठा खलर्थतृनाम् इति निषेधात् सामिति द्वितीयान्तं सलोकतां समानलोकत्वं सलोकताशब्दः सामीप्यस्योपलक्षणं सार्ष्ट्यं सरूपता गच्छति प्राप्नोति ब्राह्मणान् तपः श्रुतयोनि संपन्नत्वे सति विहितवैदिककर्मानुष्ठानान् द्विजान् न निन्देत न गर्हेत। ननु तर्हि कथं रावणादेर्निन्दा तस्यापि ब्राह्मणकुलप्रसूततत्वस्य रामायणादौ ज्ञापितत्वात् इति चेन्न दत्तोत्तरत्वेऽपि सुस्पष्ट्यते ब्राह्मणत्वे हि तपः श्रुत-योनयः कारणं तपः श्रुतयोनि सम्पन्नो हि ब्रह्मवेदानधीते इति ब्राह्माणः वेदानधीयमानोऽपि पूर्वोक्तगुणवर्जितत्वे ब्राह्मो न तु ब्राह्मणः ब्राह्मोऽजातौ ब्रह्मजात्यतिरिक्तस्य वेदध्येतृत्वेऽपि ब्राह्मसंज्ञा यथाकश्चन क्षत्रियो वेदानधीते चेत् ब्राह्मणो युधिष्ठिरः यदि चेत् ब्राह्मणकुल प्रसूतोऽपि वेदविरुद्धाचरणस्तदाऽसौ ब्रह्मराक्षसः सैव दशा रावणादीनामिमे पुलस्त्यकुलप्रसूता अपि वेदविरुद्धाचरणतया ब्रह्मराक्षसाः यथोक्तं प्राचेतसेन—

षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् ।
शुश्राव ब्रह्मघोषांश्च विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ।।

(वा. सु.)

यो वै ब्राह्मणो भवन्नपि पञ्चमकारसेवी वृषलीगामी स नैव पूर्णतया ब्राह्मणः किं बहुना त्रिदिवससंध्याविहीनः शूद्रवदेव सर्वस्माद्द्विजकर्मणो बहिष्कार्यः तथाप्राह मनुः—

नानुतिष्ठति यः पूर्वां नानुतिष्ठति यः परां ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ।।

(मनुस्मृति)

गुणत्रयसमायुक्तान् सदाचाररतान् बुधान् ।
ब्राह्मणान् भगवद्भक्तान् न निन्देदिति तद्व्रतम् ।।

(वैष्णव शिक्षा. १.२५)

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये विंशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ एकविंशः खण्डः ।।

अथ सर्वविषयकसामोपासनामाह,

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः
प्रस्तावोऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो ।
नक्षत्राणि वयाँ्सि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः
पितरस्तन्निधनमेतत् साम सर्वस्मिन् प्रोतम् ।।१।।

अस्मिन् साम्ने त्रयी विद्या तिसृणां ऋग्यजुःसामख्यानां विद्यानां समाहारः त्रिविद्या एव त्रयीविद्यां प्रसऽदित्वात् स्वार्थेण्प्रत्ययः अत्राणन्तत्वेऽपि अजातिगणपठितत्वान्ननीप् स एव हिंकारः इमे भूर्भुवः स्वराख्याः त्रयः लोकाः प्रस्तावः एभिरेव जीवः परलोकाय प्रस्तूयते अग्निः वायुः आदित्यः सूर्यः इमे त्रयोऽपि श्रेष्ठत्वेनोद्गीथ एवमेव नक्षत्राणि वयांसि पक्षिणः प्रसिद्धहरणात् प्रतिहा संज्ञा एवमेव मणीनां निधीयमानत्वात् सर्पाः गानविद्याया आधारतया गन्धर्वाचित्रसेनादयः पितरः पिण्डक्रियाया निलयभूतत्वात् अर्यमादयः तन्निधनं तस्य साम्नः निधनं सर्वलोकेषु चतुर्दशसु भुवनेषु। यत्तु सर्पादीनां धकारसामान्यान्निधनत्वम् इति कैश्चिदुक्तं तत् प्रहेलिका प्रलपितमिव। सर्पशब्दे धकराभावात् तत्पर्यायवाचि विषधरफणधरादिधकारघटितशब्दघटकधकारस्य निधनघटकधकारसाम्येन साम्यं बलादालपति तन्न युक्तियुक्तं, पर्यायवाचिशब्देषु गौरवलाघवचर्या नाद्रियते शास्त्रकारैः इति पर्यायवाचिनां प्रामाण्योपेक्षणात्। किञ्च सर्पेषु कथश्चित् प्रहेलिकापद्धत्या तत्पर्यायवाचिघटितसाम्यधिया निधनत्वं कथञ्चित् संगमयन्तु परन्तु पितर इत्यत्र तु नहि कोऽपि तत् पर्यायवाचिधकारघटितः तस्मात् सर्पादीनामिति प्राचीनोक्तशब्दोऽपि खपुष्पमिवार्थहीनः।

अथ त्रिभिर्मन्त्रैः सर्वविषयकसामोपासनायाः फलानि निर्दिशति—

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वँ् ह भवति ।।२।।

यः सर्वविषयकसामोपासकः एतत् पूर्वोक्तं साम सर्वस्मिन् सकलजगति प्रोतं वेद उपासस्ते सः सर्वं भवति सः साधक सर्वं जगत् प्राप्तो भवति। अत्र प्राप्त इति शब्दोऽध्याहार्यः यत्तु सर्वमित्यस्य सर्वेश्वरः भवति इति प्राहुः तच्छ्रुतिविरुद्धं समधिकप्रलपितं नहि उपासक उपास्यो भवति कथञ्चित् ब्रह्मसार्ष्टर्यमेति यथा अत्रैव विंशे खण्डे **'देवतनाँ् सलोकताँ् सार्ष्टिताँ् सायुज्यं गच्छति'** अत्र दर्शितासु चतुर्षु मुक्तिषु सामीप्यसालोक्यसायुज्यसार्ष्टिष्वपि नहि कुत्रचित् ब्रह्मीभावविधानम्। **जीवोऽपि नित्यः ब्रह्मापि नित्यं नित्यो नित्यानाम्** (कठ. १।३।१२) नहि नित्यः स्वसत्तां परिहर्तुं शक्नोति द्वावपि नित्यौ अविनाश्यसताकौ सत्ताविनाशमन्तरेण क्षुल्लको जीवः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथं सर्वेश्वरो भविष्यति सरूपताप्राप्तौ नास्माकं विप्रतिपत्तिः परन्तु सरूपतानाम नाभिन्नता समानरूपतः सरूपता। समानता च भेदघटिता नाभेदसहिष्णुः तद्गतभूयो धर्मत्वे सति तदवच्छिन्नभेदवतिः समानता।

पुनः पूर्वकथितविषयवस्तु प्रशंसति,

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि ।
तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ।।३।।

तत् तस्मादेव एषः श्लोकः अयं मन्त्रः वर्तते यत् यानि पुरा कथितानि त्रयो वेदाः त्रयो लोकाः अग्निवायुदिवाकराः तारकाविहगाश्च सर्पगन्धर्वपैतृकाः एभ्यः परम न किञ्चिद्वै प्रशस्यतरमीर्यते सर्वेषामत्र संकलनात् उपासीत हि पंच वै।

भूयः फलश्रुतिंप्रशंसति—

यस्तद्वेद स वेद सर्व ँ् सर्वा दिशो बलिमस्मै ।
हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतं तद्व्रतम् ।।४।।

एवं रूपेण तत् साम वेद सः सर्वं वेद चराचरं जानाति। सर्वादिशः प्राच्यादि दिग्देवताः अस्मै सर्वज्ञाय बलिं भोग्यवस्तुजातं हरन्ति प्रापयन्ति सर्वं सर्वस्मै सर्वस्वरूपाय भगवते तदर्थभूतोऽहमस्मि इति इत्थं धारयन् उपासीत् निखिलजगन्नाथं रघुनाथं सेवेत तद्व्रतम्। सर्वविषयकसामोपासनाया इति शेषः।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये एकविंशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।२१।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। द्वाविंशः खण्डः ।।

एकविंशातिखण्डं यावत् तत्सामोपासनं सविस्तरंवर्णितम् अथम् तस्य विविधफलकस्य नैकदैवतस्य साम्नः पारम्परामुच्चारणस्य शिक्षयितुं सकलोऽयमारभ्यते। स्वरतो वर्णतश्च दुष्टः शब्दः नैव श्रेयसे प्रभवति वज्रीभूय हिनस्ति यजमानं तथोक्तम्—

मन्त्रो दुष्टः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग् वज्रं यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात् ।।

प्रतिस्वरस्य तत् तत् देवता ह्यधिष्ठात्र्यः तासां तत् तदुच्चारणमनाश्रित्यैव सामोच्चारणपरम्परा कस्याः देवतायाः कीदृगुच्चारणम् इदं सर्वं स्पष्टयितुमाह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विनर्दिसाम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदुः श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौचं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत्।।१।।

यजमानेनैवं वक्तव्यं यत् अहं साम्नः सामवेदस्तवनस्य समुच्चारणे विनर्दि विशिष्टं नर्दयितुं तच्छीलं सुस्पष्टध्वन्यक्षरं स्वरस्वरूपं वृणे परमेश्वरं याचे अथवा वृणे इत्यस्य वृणीतेत्यर्थः व्यत्ययेन तस्य स्थाने इट् उद्गाता साम्नः विशेषनर्दनशीलस्वर-स्वरूपं वृणीत परमेश्वरं याचेत विधिलिङ्लकारप्रत्ययात् विधिरत्र स चात्यन्ता-प्राप्तिमूलकः। कीदृशाः स्वरा किं किं दैवतका इत्यत आह अग्नेः अग्नि दैवतकमग्नि उच्चारणस्वरस्वरूपं वा पशव्यं पशुभ्यो हितम् उकारान्तत्वात् यत् प्रत्ययः अग्नेः स्वरः अनिरुक्तः न निःशेषेण वक्तुं शक्य इति भावः प्रजापतेः कश्यपस्य स्वरः निरुक्तः निःशेषेण वक्तुमर्हः सोमस्य चन्द्रस्वरस्वरूपं श्लक्ष्णं कोमलविस्पष्टाक्षरं वायूच्चारण-परम्पराकं स्वरस्वरूपं तु श्लक्ष्णं सुस्पष्टाक्षरं कर्णसुखमिति भावः। इन्द्रस्य देवराजस्य बलवत् प्रशस्तबलयुक्तं वृहस्पतेः देवगुरोराङ्गिरसस्य क्रौञ्चं क्रौञ्चपक्षि स्वरसदृशं स्वस्वरूपं वरुणस्य जलाधिनाथस्य अपध्वान्तं स्खलिताक्षरं स्फटितदुन्दुभिः स्वरसदृशं एवं तान् अग्निप्रजापतिसोमेन्द्रबृहस्पतिस्वरान् सेवेत लब्धुंवृणीत परन्तु वरुणस्य अपध्वान्तत्वात् वर्जयेत् परिहरेत तदुच्चारणे पुण्यजनकता हानिसंभवात्।

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत्स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः।स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मन आगायानीत्येतानि मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत।।२।।

स्तवनकाले उद्गाता किं कुर्यात् इति निर्दिशति श्रुतिः देवेभ्यः सुरेभ्यः अथवा दैवीं सम्पदमुपासीनेभ्यः सात्विकेभ्यः प्राणिभ्यः अमृतं सुधामथवामृतं मरणं तदभावोऽमृतं अथवा अमृतं भगवद्भक्तिं यद्वा अं परब्रह्म वासुदेवसंज्ञं ऋतं सत्यात्मकमागायानि आदरेण गायन् उत्पादयानि अत्रेच्छार्थे लोट् इति इत्थं धारयन् आगयेत पितृभ्यः अर्यमादिनिजपूर्वपुरुषपर्यन्तेभ्यः स्वधां तत्तुष्टिहेतुभूतकव्यं मनुष्येभ्यः मनुपारम्परी मनुसरद्भ्यः आशां मनोभिलषितपदार्थान् अथवा अशमेवाशा तां आशाम्। जीवनोपभोगसामग्री यद्वा आशां मङ्लमयीं दिशामथवा आशां भगवद्दर्शनमनोरथरूपां पशुभ्य चतुष्पदेभ्यः तृणोदकं तदभक्ष्यम् उपलक्षणतया अन्येभ्योऽपि पक्षिपतंगकीटसरीसृपप्रभृतिप्राणिभ्यः तत्तज्जीवनोपयोगिसामग्रीम् आगायानि सामोद्गीथानि समादरेण गायन् प्रस्तुतीकरवाणि इति प्रकारेणानेन ध्यायन् चिन्तयन् सामानिस्तुवीत स्तोत्रविषयीकुर्वीत।

इदानीं स्वरादिवर्णानां दैवात्ममाह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मानः सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं । यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रँ् शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रतिवक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ।।३।।

सर्वे स्वरा अकारादयः इन्द्रस्य देवपतेः आत्मानः स्वरूपाः शरीराणि वा एवम् ऊष्माणः शल् प्रत्याहारीयाः प्रजापतेः कश्यपस्य आत्मानः स्वरूपभूताः स्पर्शा कादयोमाऽवसानाः मृत्योः निरितेः आत्मानः स्वरूपाः यदि कोऽपि स्वरेषु स्वरोच्चारणविषये तं सामगायकमुपालभेत् आक्षिपत् तदा उद्गाता इत्थं ब्रूयात् यत् इन्द्रमेव स्वरात्मानं शरणं प्रपन्नः शरणागतः अभूवमासम् स एव त्वां प्रति वक्ष्यति प्रत्युत्वरयिष्यति इति शब्दः वाक्यानुवादरूपः।

परिशेषमाह—

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिँ् शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रतिपेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनस्पर्शेषूपालभेत मृत्युँ् शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रतिधक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात्।।४।।

अथ एनमुष्मषु उष्मविषयकोच्चारणे प्रजापतिं कश्यपं स्पर्शेषु वर्णपंचकोच्चारणे प्रतिधक्ष्यति निरपराधं यद्युपालभसे तदा मृत्युः त्वां भस्मासात् करिष्यतीति भावः।

स्वरोच्चारणे चिन्तनीयानिनि र्दिशति—

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्याः इन्द्रे बलं ददानीति सर्वे उष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृताः । वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिहराणीति ।।५।।

सर्वे स्वराः अकाराद्याः घोषवन्तः घोषः परश्रवणगोचरता नैव वैयाकरणसम्मताः प्रशस्तझंकारयुक्ता इत्यर्थः बलं प्राणनं तदवन्तः नैव शिथिलस्वासाः। इन्द्रे दवपतौ बलं आददानि निजबलं समर्पयाणि इति संकल्पयता वक्तव्या ऊष्माणः यकारादिहकार-पर्यन्ताः अग्रस्ताः नैव जिह्वया रुद्धाः इति भावः अनिरस्ताः नैव केनाप्यक्षरेणाभिभूताविरुताः विस्पष्टं रुतमुच्चारणध्वनिः येषां तथाभूताः आत्मानं स्वमेव प्रजापतेः कश्यपस्य स्वस्वत्वनिवर्तनाभावादत्र षष्ठी ददानि अर्पयाणि स्पर्शाकादयः लेशेन लेशः सम्बन्धे गन्धे च लेशेन वर्णान्तरसम्बन्धेन अनभिनिहिता असम्बद्धाः वक्तव्या आत्मानं स्वं मृत्योः परिहराणि मृत्योस्त्रायै इति चिन्तयन् सामस्वरोच्चारणं विदधीत इति हार्दम्।

इति छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये द्वाविंशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ त्रयोविंशः खण्डः ।।

अथ प्रथमाध्यायमारभ्य द्वितीयाध्यायस्य यावद्द्वाविंशखण्डं तत्तत् सामवायवेषु प्रतीकबुद्ध्या प्रणवोपासना निरूपिता। तत्रेयं विचिकित्सासम्भवा यत् किं सामावयवेष्वेव पारतन्त्रेण प्रणवोपासनं फलावहम् उतवा स्वातन्त्रेण फलं दातुं क्षमं किम्वैलक्षण्यमुभयोरिति चेत् ब्रूमहे। यदि सामावयवेषु प्रतीकतया प्रणवो विनियुज्येत तर्हि पतन्त्र्यस्ततया नैव तस्मिन्परमेश्वरता यदि च स्वातन्त्रेण तस्य परिकल्पना तदा किं रूपमुपासनमेतस्य इत्यत आह—

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसँ्स्थोऽमृतत्वमेति।।१।।

प्रणवोपासनायाः सार्वभौमतां वदन्ती श्रुतिः त्रीन् धर्मस्कन्धान् वर्णयति धर्मस्य वेदप्रणहितकर्मजनितापूर्वविशेषस्य त्रयः स्कन्धाः प्रविभागाः शाखाः। प्रथमं निरूपयति यज्ञः पञ्चविधः ब्रह्मयज्ञान्तः अथवा द्रव्यतपोयोगस्वाध्यायज्ञानाख्यः पञ्चविधः। अध्ययनं आर्षवाङ्मयाभ्यासः दानं निष्कामभावनया सततं दीनेभ्यः यथाशक्ति स्वातिसर्जनं इति एव प्रथमस्कन्धः प्रारम्भिकीशाखा प्रारम्भिकत्वं चास्य बुद्धिविशुद्धरूपं एभिरेव बुद्धौ शुद्धायाम् प्राणी द्वितीयतृतीयाभ्याम् क्रमशः साधनासोपानं निस्तीर्य परमात्मभावाय प्रभवति तपः श्रीगीतोक्तं शरीरवाङ्मयमानसभेदम् सात्विकं कृच्छ्रसाध्यम् अयमेव द्वितीयधर्मस्कन्धः अनेन कनक इव तप्ते मनसि मरकतमणेरिव परमात्मनःस्फूर्तिः तपसा किल्विषं हन्ति इति निगमात्।

आचार्यकुलवासी आचार्यस्य कुले आश्रमे वस्तुतं-तच्छीलः ब्रह्मचारी वसुमैथुनवर्जितः ऊर्ध्वरेता धर्मस्य तृतीयस्कन्धः अनेन नाचिरात् ब्रह्मलब्धुं शक्यते कीदृशाचार्यः सः इत्यत आह यः खलु आचार्यकुले गुरुकुले देहं शरीरमत्यन्तं प्रकाममअवसादयन् सकलभोगवर्जिततया ग्लपयन् तत्रैव तिष्ठति प्रतीक्षमाणो ब्रह्मज्ञानभगवतस्वरूपसाक्षात्कारो हनुमानिव। एते सर्वे धर्मस्य प्रथमद्वितीयतृतीय-स्कन्धानुवर्तिनः यज्ञाध्ययनदानशीलतापसब्रह्मचारिणः पुण्यलोका पुण्यश्लोक-शिखामणयः अथवा पुण्यः पुण्यप्रापकः लोकः समालोकनं दर्शनमेषां तथाविद्या अथवा पुण्यानां लोकः समूहः एषु ते पुण्यलोकाः भवन्ति किन्तु ब्रह्मसंस्थः ब्रह्मणि श्रीरामख्ये परब्रह्मणि "**इति रामपदेनासौ परब्रह्मभिधीयते**" पूर्व रामतापनीयोपनिषद् इति श्रुतेः सन्तिष्ठते शरणागतीभूत्वा तिष्ठति यः सः ब्रह्मसंस्थः अमृत्वं मरणाभावं ब्रह्मसुखं वा श्रीवत्सलाञ्छनादि विहाय ब्रह्मगुणान् वा एति सामीप्यसालोक्यसार्ष्ट्य-सारूप्यादीनि गच्छति आशयो यं यत् सर्वेऽपि धर्मस्कन्धत्रितयपरायणापुण्यलोकाः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भवन्ति परन्तु ब्रह्मसंस्थः भवन्नपि ब्रह्मसंस्थो अमृतत्वं यातीति विशेषः ब्रह्मसंस्था धर्मस्कन्धत्रितयवर्तिसमानाः यदुक्तं त्रयो धर्मस्कन्धाः गृहस्थवानप्रस्थब्रह्मचारिषु तात्पर्यग्राहकाः ब्रह्मसंस्थपदं तु आश्रमतृतय विलक्षणपरिव्राजितात्पर्यमर्पयतीति तत्सर्वथा निजकल्पितसम्प्रदायपोषणैकलक्ष्यपक्षपातसन्निपातवशम्वदमलीमसमान-समलजनितकल्पाजल्पनविलसितमेव। वस्तुतस्त्वत्र मन्त्रे आश्रमधर्मनिरूपणं न विवक्षितम्। अन्यथा प्राथम्यानुरोधेन ब्रह्मचार्यधर्ममेव प्रथममवक्ष्यत् यश्चात्र तृतीयधर्मस्कन्धरूपेणो स्तः यद्याश्रमधर्मस्यादि तर्हि कथं— तावत् चतुर्थः त्यक्तः स्यात् यदि चतुर्थाश्रमिष्वेव कस्यचिद् राजाज्ञा ब्रह्मसंस्थः सर्वथा सुरक्षितः स्यात् तर्हि प्रथमाश्रमे हनुमदादौ द्वितीयाश्रमे श्रीदशरथजनकदौ तृतीयाश्रमसेविने श्रीवसिष्ठ-स्वायम्भुवमनुप्रभृति परमभागवतनिचये ब्रह्मसंस्थाप्रतिपादकानि श्रौतस्मार्त-पौराणिकवचांसि विच्छिन्नप्रामाण्यमूलानि कलितवैतथ्यशूलानि सतां प्रतिकूलान्येव वर्तेरन् तस्मात् ˙यः कोऽपि ब्रह्मचारीगृहस्थो वानप्रस्थो विरक्तः संयासी वा भगवत्पदवद्मपरागरसपान पेशलपरमभागवतशिखामणिः अमृतत्वं भगवदीयं सुखमेति श्रुतेरिदं हार्दम्।।श्रीः।।

यदुक्तं परिव्राडेव निरस्तमिथ्यात्वप्रतीतिर्भवति तदपि न जगन्निमथ्यात्वं हि ज्ञानेनावगम्यते ज्ञानं न केवले परिव्राजि इदं तुभगवत्कृपासाध्यम् बाल्यकालेव ध्रुवप्रह्लादनारदादौ ज्ञानसद्भावश्रवणात् ज्ञानं हि भक्तिलब्धं **'यस्य देवेभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ तस्यैते कथिताह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनाः'** श्वे. उ. ६-२५ इति श्रुतेः **'भक्त्यामामभिजानाति'** गी. १८.५५ इति स्मृतेः आबालं हरिभक्तिः इति लोकवादाच्च न केवलं परिव्राजिभक्ति सा तु सर्वसामान्या बाल इव जरठसमवेता तत्रापि नारी हृदयेषु विशेषता नारीहृदयत्वञ्च त्रिलिङ्गसाधारणं तस्मात् शक्तिज्ञानमध्ये जननीजनकभावसम्बन्धिनिश्चयात् यत्र यत्र भक्ति तत्र तत्र ज्ञानमिति राधान्तः। सकललक्षणसम्पन्नमातृसद्भावे पितरि चोपस्थिते शास्वतपौरुषे सुतजन्मप्रतिबन्धकम् किमपि कारणं पश्यामः तस्मात् शक्तिसद्भावे ज्ञानसद्भावस्य निश्चप्रचत्वात् भक्तेष्वपि सहजसुलभज्ञानं मह्यमना सकलकर्मबीजा विनाशः शोच्यएव। ब्रह्मणि ब्रह्मपदाभिधेये योगिध्येये सकलसाधकविज्ञेये श्री सीतारामे, संस्था शरणागतिरूपं सम्यक्स्थानं यस्य स ब्रह्मसंस्थः, यस्यानन्यचेतसः परमात्मन्येव प्रपन्ने षड्विधा तथाभूत इति भावः। अथवा ब्रह्मणीत्यत्र **'निमित्तात् कर्मयोगे'** इत्यनेन चर्मणिद्वीपिनमितिवत् निमित्तार्थे सप्तमी इत्थं ब्रह्मणि ब्रह्मनिमित्तं श्रीसीतारामचरण-कमलामलपरागमकरन्दपानाय सन्तिष्ठन्ति निखिलप्रपञ्चं दूरोज्झितं विधाय शारङ्गा इव स्वातिघनं परमेश्वरकृपाकादम्बिनीं प्रतीक्षमाणास्तिष्ठन्तीति ये तेषामेव वर्गः समुज्झित चतुर्वर्गः ब्रह्मसंस्थः, स एव अमृतत्वम् अमृतरूपस्य परमात्मनो गुणविशेषं सौशील्यादिकम् एति यत्किञ्चिदंशतया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गच्छति प्राप्नोतीति श्रुतिसकलपदार्थः। यदुक्तं परिव्राज एव ब्रह्मसंस्थत्वं तत्तु सम्प्रदायपक्षपातग्रस्ततया श्रुत्यर्तमिहत्यमविगणस्य जल्पितम्। परिव्राडेव निवृत्तनिःशेषकर्मा नैवैषा राजाज्ञा, कतमोऽपि चतुर्ष्वाश्रमेषु भगवति कर्माणि समर्प्य कर्मबन्धनमुक्तो भवति। बाल्य एव ध्रुवादौ, यौवन एव गणिकादौ तृतीये च ययात्यादौ चतुर्थे चाजामिलादौ पारिव्राज्याभावेऽपि महापुरुषपदपद्मपरागनिषेवया भवबन्धनमुक्तेः पुराणेषु बहुशः समाम्नातत्वात्। एवमेव ब्रह्मचर्ये हनुमदादौ गार्हस्थ्ये दशरथकौसल्यादौ वैखानसे सुतीक्ष्णादौ चापि ब्रह्मसंस्थत्वस्य तत्र तत्र श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु दृष्टत्वात्।

यदुक्तं परिव्राड्व्यतिरिक्तः कश्चिन्नोपमर्दितभेदप्रत्ययतया न ब्रह्मसंस्थः तदप्यलीकम् भेदप्रत्ययः परिव्राजैवोपमृद्यते नैवेतादृक् कश्चित् पारम्परीविशेषः भगवत् कृपानुभावो बालकोऽपि निरस्तभेदप्रत्ययो भवितुं शक्नोति। तद् यथा—

प्रहलादः,

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया ।

कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ।। (भागवत ७।४।३७)

किञ्च निरस्तभेदप्रत्यय एव मुच्यत इत्यपि वक्तुं न शक्यते, **भक्त्या विमुच्येन्नरः** (भागवत १२।१३।१८) इति स्मृतेः। ननु **ज्ञानादेव हि कैवल्यम् ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः** इत्यादि श्रुतीनां प्रामाण्यविरोधानुरोधेन स्वतः प्रमाणत्वाच्छ्रुति वचनस्य स्मृतेर्बलवत्तरत्वाभिसन्देहे भक्त्या विमुच्येन्नरः इति स्मार्तवचनं ज्ञानहेतुकमुक्तिप्रतिपादकश्रौतवचनपूगेन बाध्येत? इति चेन्न, उत्सर्गापवादयोः समानदेश एव प्रवृत्तिनियमेन विषयभेदादिह तद्बाधकानवकाशात्। अथ कस्तावत् विषयभेद इहत्येव श्रौतस्मार्तवचनयोरितिचेच्छृणु, **ज्ञानादेव हि कैवल्यं ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः** इत्यादि श्रुतिर्हि मुक्तिप्रतिपादनविषया **भक्त्याविमुच्येन्नरः** इति स्मार्तवचनं च विमुक्तिविषयकं तर्हि कोऽत्र भेदो मुक्तिविमुक्त्योः? हन्त! एतावदपि न जानासि, विशिष्टामुक्तिः विमुक्तिः सा चात्यन्तिकीमुक्तिर्द्विधा क्रमिकमुक्तिसद्योमुक्तिश्चः, क्रमिकमुक्तिर्हि ज्ञानेन, तथा च **आत्मा वा अरे दृष्टव्यः** इत्यादि श्रुत्यनुशासनेन पूर्वं पश्वादिशरीराणि समतिक्रम्य प्राप्य च मानवशरीराणि तत्रापि च क्रमशः शूद्रवैश्यक्षत्रियशरीराण्यतिक्रम्य पुनरेत्यब्राह्मणदेहं तत्रापि शास्त्रनिर्दिष्टे वसुवर्षात्मके वयस्येव विहितोपनयन संस्कारः, व्रात्यादिदोषवर्जितः सावित्रंव्रतमास्थितः क्रमेणनैष्ठिकब्रह्मचर्यं बिभ्रत् सद्गुरोः सकाशात् प्राप्तब्रह्मोपदेशः सकलाविद्याप्रपञ्चं निरस्य ऐक्यप्रत्ययवान् मुच्यते एषैव क्रमिकमुक्तिः। सद्यो मुक्तिस्तु निरपेक्षसकलसाधना भगवत्कृपैकधना। असंस्कृतानामपि गजेन्द्राजामिलप्रभृतीनां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्प्राप्तिश्रवणात्। ज्ञानं च क्रमेण पञ्चकोषान् जरयति, भक्तिस्तु सद्य एवेति विशेषः। तथोक्तं श्रीकपिलेन श्रीभागवते—

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ।। (भागवत ३।२५।३३)

यदप्युक्तं परिव्राजो व्यतिरिक्तो भग्नभेदप्रत्ययोऽपि न कर्मभ्यो निवर्तते, इत्यपि नोचितं, तथात्वे ऐक्यप्रतिपादकश्रुतीनामेव त्वन्मतेऽपि प्रामाण्यानुपपत्तेः। महावाक्योपदेश-जनिताभेदमत्युपमर्दितभेदप्रतीतिर्हि मोक्षदायिनीति तव मतम्। मोक्षश्च कर्मबन्धनविलापनपुरःसरमैक्यभावनमिति त्वदीयो राद्धान्तः। भेदबुद्ध्यभाव एव कर्मबन्धनोपरमो वह्निसद्भावे दाहकत्वमिव। हन्त! तदेवापलप्यले? को नाम सुधीरग्नीन्धनसंयोगे दाहनक्रियां निरोद्धुमलं व्यतिरिच्य तावकीं कुमनीषाम्। मम मते तु भदेबुद्ध्यभावो नैव कर्मोपरमे हेतुः, प्रत्युत निजवर्णाश्रममर्यादानुकूलशास्त्रीयकर्मानुष्ठान-जनितापूर्वमेव कर्मबन्धनोपमर्दने कारणम्। यथोक्तं गोस्वामिचरणैः—

प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीती ।
निज निज धरम निरत श्रुति नीती ।।
एहि कर फल पुनि विषय विरागा ।
तब ममधरम उपज अनुरागा ।। (मानस ३।१६।७)

यदप्युच्यते निवृत्तकर्मा परिव्राडेव ब्रह्मसंस्थः तदप्यसङ्गतम्। यस्मिन् कस्मिन्नप्याश्रमे यत्र क्वापि वावरणे यत्र क्वचिदपि शरीरे साधकः ब्रह्मसंस्थो भवितुं शक्नोति, अन्यथा तत्तत्पौराणिक परमभागवताख्यानानां प्रामाण्यं नोपपद्येत। तस्मात् ब्रह्मसंस्थम् इत्येतत् सर्वसामान्यम्। अत्रैवोपनिषदि तत्तत् गृहस्था राजानः ताँस्तान् परिव्राट्च्छिखामणीनपि ब्रह्मसमुपदिदिशुरिति तत्र तत्र प्रसङ्गेषु द्रष्टव्यम्।

मन्त्रार्थस्तु एतादृक्-यज्ञः स्वाध्यायः दानम् इति धर्मस्य प्रथमस्कन्धः, इयं धर्मस्य प्राथमिकी शाखा। अनन्तरं तपः इष्टप्राप्तये क्लेशसहनं द्वितीयः। अथ नैष्ठिकब्रह्मचर्यविधिना यः आत्मानम् आचार्यकुले ग्लपयन् जीवनपर्यन्तं यो वसुमैथुनवर्जितः ब्रह्मचारी स तृतीयः। अत्रेदमवगन्तव्यं यत् आश्रमयुजां गृहस्थानां पूर्वं यज्ञाध्ययनदानैः मलावरण विक्षेपनिरसनं द्वितीयकक्षायां तपः, किन्तु ये जीवनपर्यन्तं परमात्मप्राप्तये नैष्ठिकब्रह्मचर्यविधिना यतन्ते पूर्वोक्तविलक्षणोऽयं तृतीयधर्मस्कन्धः। एवं प्रवृत्तिलक्षणधर्मस्य द्वौ, निवृत्तिधर्मलक्षणस्य एकः, इमे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वेऽपि पुण्यलोकं गच्छन्ति परन्तु च्यवन्ति पुण्यस्य क्षयशीलत्वात्। येषु कतमोऽपि धर्मस्कन्धवान् ब्रह्मचारी गृहस्थो वानप्रस्थश्चतुर्थोवा यदि ब्रह्मसंस्थः भगवति समर्पितस्वचतुष्टयः तदा अमृतत्वं परमात्मपदपङ्कजं प्राप्नोति। यदप्युक्तं तपोशब्दः नैव सन्यासिषु युज्यते तपसो कर्माङ्गत्वेन ततस्तेषां निवृत्तेर्विज्ञानात् तदपि नोचितम् श्रुतौ तपः शब्दस्य ज्ञानपरकतया कीर्तित्वात्। तथा च **यस्य ज्ञानमयं तपः** (मुण्डक १।१।९) तप आलोचने इत्यस्मान्निष्पन्नस्तपः शब्दः आलोचनपरोऽपि। यदि कोऽपि सन्यासी तपोव्यतिरिक्तस्तर्हि ब्रह्मचिन्तनबहिर्भूतत्वात् अलं तस्य सन्यासेन। यदपि ब्रह्मसंस्थशब्दः रूढतया प्रत्यपादि तदप्यनभिज्ञत्वं शब्दशास्त्रस्य, ब्रह्मणि संतिष्ठते इति ब्रह्मसंस्थः, इति व्युत्पत्तेः सर्वाश्रमिणाञ्च ब्रह्मसंस्थत्वे श्रुतावेव प्रामाण्यप्राचुर्यात्। वस्तुतस्तु सेवकसेव्यभावसम्बन्धेन परमेश्वरं श्रीसीताराममुपासीनः सुदृढीकृतदास्यभावो ब्रह्मसंस्थः इति विरम्यते।।श्रीः।।

अथ केन माध्यमेन साधको ब्रह्मणि संतिष्ठेत भजनस्य मुख्यसाधनभगवन्नाम सत्स्वप्यनेकेषु नामसु प्रणवस्य प्रामुख्यम् अतस्तदुत्पत्तिवर्णनमुपक्रमते—

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ।।२।।

प्रजापतिः प्रजानां रक्षकः पिता कश्यपः लोकान् परमात्मनिर्मितानि चतुर्धशभुवनानि अभ्यतपत् समाधिना समालोचयत् अध्यायेदिति भावः। एवम् अभितप्तेभ्यः कश्यपध्यानविषयीभूतेभ्यः तेभ्यः लोकेभ्यः सकाशाद् त्रयीं विद्यामृग्यजुःसामनाम्नीम् अभ्यतपत् आलोचितवान्। पुनः तस्य अभितप्तायाः ध्यातायाः त्रयीतः भूः भुवः स्वः एतानि अक्षराणि व्याहृतिरूपाणि अभ्यतपत् ध्यानेनाधिगतवान्। सारांशोऽयं यल्लोकेषु त्रयीविद्या निगूढा तत् सारभूता तस्यां च भूर्भवः स्वः इति तिस्रो व्याहृतयो निहिताः एवं तेभ्यस्तां तस्या इमाश्च ध्यानेनैवाधिगतवान् कश्यपः इति श्रौतो भावः। अत्र प्रास्रवत् इत्यस्य प्रादुर्भूता प्रास्रवन्ति इत्यस्य प्रादुर्भूतानीति शब्दार्थोऽवगन्त्यः।।श्रीः।।

अथोङ्कारोत्पत्तिमाह—

तान्यश्यतपत्तेभ्योऽभिताप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् संतृण्णोङ्कार एवेदꣳसर्वमोङ्कार एवेदꣳसर्वम् ।।३।।

तानि भूर्भुवः स्वः इति अक्षराणि अभ्यतपत् परमेणसमाधिना ध्यातवान्। तेभ्यः अभितप्तेभ्यः आलोचितेभ्यः व्याहृतिभूतेभ्यः ओङ्कारः ॐ इति प्रणवः प्रास्रवत्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साक्षात् कृतो भवत्। अनेन ॐकारेण सर्वं वाङ्मयं कथं व्यवस्थापितमिति वक्तुमुपमामाह— यथा शङ्कुना पर्णनसेन तद् व्यवस्थापकबन्धनतन्तुनेति भावः, सर्वाणि पर्णानि छदानि संतृणानि व्यवस्थापितानि तथैव इयं सर्वा वाक् ओङ्कारेण संतृण्णा व्याप्य संबद्धा, इदं सर्वं वाङ्मयम् ओङ्कार एव ओङ्काराधिकरणकमेव। ओङ्कार एव इत्यत्र ओङ्कारे एव इति पदच्छेदः आदरार्थाद्विरुक्तः।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये त्रयोविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ चतुर्विंशखण्डः ।।

एवं प्रणवस्य सामोपासनायाः प्रामुख्येनोपास्यत्वं परमेश्वर प्रतीकतां व्यवस्थाप्य प्रसङ्गतः सामसवनानि निरूपयति खण्डेऽस्मिन्।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातःसवन ँ रुद्राणां। माध्यान्दिन ँ सवनमादित्यानां च विश्वेषां च देवानां तृतीयसवनम्।।१।।

ब्रह्म परमात्मानं वदन्ति निजमनोमन्दिरे स्थिरयन्ति तच्छीलाः इति ब्रह्मवादिनः। वसूनां द्रोणादीनां प्रातःसवनं रुद्राणां शंकरादीनां माध्यन्दिनं मध्याह्निकम्, आदित्यानां द्वादशानां विवस्वदादीनां विश्वेदेवानां च तृतीयं सायंकालिकम्। एवं त्रीण्यपि सवनानि यथाक्रमं देवविभागत्रयाधिष्ठितानि।।श्रीः।।

सवनज्ञानमाहात्म्यमाह—

क्व तर्हि यजमानस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात्कथं कुर्यादथ विद्वान्कुर्यात् ।।२।।

एवं यदि त्रिषु सवनेषु वस्वादयः समधिश्रिताः तर्हि यजमानस्य यज्ञकर्तुः क्व लोकः कुत्रस्थानं प्रातःसवनं कुर्वन् वसुलोकं गच्छति, मध्याह्ने सिन्वन् रुद्रलोकं याति सायं सिन्वन् आदित्यान् विश्वेदेवांश्च प्राप्नोति। किन्तु एतज्ज्ञानस्य आवश्यकता स यः साधकः तं न विद्यात् स कथं कुर्यात् सवनं, यः विद्यात् जानाति स एव कुर्यात्। अत्र लङर्थे लिङ् सवनं ज्ञात्वैव कर्तव्यम् इत्युपदेशः।।श्रीः।।

अथ वसुदैवथसामगानं निर्दिशति—

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन । गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य स वासवꣳसामाभिगायति ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरा पूर्वं प्रातः अनुवाकस्य अनुच्चारणीयमन्त्रस्य जपयोग्यस्य प्रथममितिभावः उपकरणं प्रारंभः, तस्मात् पुरा प्रातरनुवाकस्य प्रारम्भात्पूर्वमिति भावः। गार्हपत्यस्य अग्नेः जघनेन पृष्ठतः आसीनः उदङ्मुखः उत्तराभिमुखः स वासवं वसुर्देवताभ्य इति वासवं **सास्यदेवता** इत्यनेन अण् प्रत्ययः। तेन सहितं सवासवं साम अभिगायति अभीष्टगानं करोति।।श्रीः।।

सामर्मंत्रमाह—

लोकद्वारमवापा ३ र्ण ३ ३ पश्येम त्वा वयंःरा ३ ३ ३ ३ ३ हु ३ म आ ३ ३ ज्या ३ यो ३ आ ३ २ १ १ १ इति।।४।।

हे अग्ने! त्वं लोकस्य भूर्लोकस्य द्वारं पन्थानम् अपावृणु अपावर्तय तेन वयं साधकाः राज्याय दीप्तये त्वा भवन्तं पश्येम। अथवा हे अग्ने! सवेषाम् अग्रे नीयमानराघवलोकस्य साकेतलोकस्य द्वारं पन्थानमपावृणु, अथवा द्वारं पिधानभूतं कपाटं मायानामकम् अपावृणु अपसारय येन राज्याय श्रीरामराज्याय स्वाराज्याय तव चरणकमलसामीप्यरूपाय परमपदाय त्वा भवन्तं साकेताधिपतिं सीताभिरामं श्रीरामं पश्येम नयनपथं नयेम।।श्रीः।।

अथ हवनप्रकारमाह—

अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे । यजमानाय विन्दैष वे यजमानस्य लोक एतास्मि ।।५।।

अथ अनन्तरं सामगानं विधाय जुहोति हवनं कुर्यात्। जुहोतीति व्यत्ययेन जुह्वीत इत्यर्थे लट्। नमस्कार प्रकारमाह-अग्नये पावकाय तुभ्यं नमः नमस्करोमि नमोऽस्तु वा, अग्नेर्विशेषणद्वयं पृथिवीं क्षियति रक्षति इति पृथिवीक्षितः तस्मै पृथिवीक्षिते, लोकं क्षियति रक्षति इति लोकक्षितः तस्मै लोकक्षिते तादृशाय तुभ्यं नमः। मे यह्यं मजमानाय भवन्तमर्चयते लोकं दिव्यं साकेतलोकं विदं देहि। धातूनामनेकार्थत्वात् लाभार्थकस्यापि विद्लेर्दानार्थः। एष यजमानोऽहं तादृशे लोके एतास्मि गन्तास्मि।।श्रीः।।

इदानीं पूज्यपूजकयोः प्रतिक्रियां दर्शयति—

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहिपरिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठतितस्मै। वसवः प्रातः सवन ः संप्रयच्छत्ति ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र अस्मिमल्लोके अहं यजमानः आयुषः आयुष्यस्य परस्तात् पश्चात् शरीरत्यगानन्तरमिति भावः। स्वाहा स्वस्य आसमन्तात् हानं त्यागः इति स्वाहा भगवते सर्वसमर्पणमिति भावः करिष्यामि इति शेषः। परिघं भजनप्रत्यवायम् अर्गलाम् अपजहि विनाशय इति इत्थम् उक्त्वा कथयित्वा तस्मै उत्तिष्ठति, पूजार्थमुत्थानं करोति, वसवः द्रोणादयः तस्मै प्रातःसवनं तत्फलं संप्रयच्छन्ति समर्पयन्ति।।श्रीः।।

अथ रुद्रसामगानं वर्णयति—

पुरा माध्यन्दिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाग्नी-
ध्रीयस्योदङ्भुख उपविश्य स रौद्रꣳसामाभिगायति।।७।।

दिनस्य मध्यं मध्यन्दिनं मध्यन्दिने भवं माध्यन्दिनं तस्य माध्यन्दिनस्य मध्याह्न संभवस्य सवनस्य उपाकरणात् प्रारंभात् पुरा आग्नीध्रीयस्य दक्षिणाग्नेः जघने पृष्ठेन उदङमुखः उत्तराभिमुखः उपविश्य सरुद्रं रुद्रदैवत सहितं साम अभिगायति गानविषयं करोति।।श्रीः।।

प्रार्थनाप्रकारमाह—

लो ३ क द्वारमपावा ३ र्णू ३ ३ पश्येम त्वा वयं वैरा ३ ३ ३ ३ ३
हु ३ म आ ३ ३ ज्या ३ यो ३ आ ३ २ १ १ १ इति।।८।।

हे वायो! लोकद्वारम् अन्तरिक्षलोकस्य द्वारम् अपावृणु, येन त्वां राज्याय पश्येम विलोकयेम। मन्त्रेऽस्मिन् वायुरूपेण भगवतः वर्णनं **त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि** (तै.उ. शिक्षावल्ली)।।श्रीः।।

अथ वायुरूपस्य भगवतो हवनविधानं प्राह—

अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते लोकं मे।
यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि।।९।।

अथ साम्ना प्रार्थनानन्तरम् अग्निं जुहोति, प्रार्थना प्रकारमाह—अन्तरिक्षक्षिते नभोलोकपालकाय लोकक्षिते लोकरक्षकाय ते तुभ्यं वायवे पवनदेवाय नमः प्रह्वीभावः मम इति शेषः। हे वायो! मे मह्यम् यजानाय लोकं विद प्रापय। अहं यजमानस्य लोके एतास्मि यातास्मि।।श्रीः।।

देवताफलदानप्रकामाह—

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिधमित्युक्त्वोत्तिष्ठति।
तस्मैरुद्रा माध्यान्दिनꣳ सवनꣳ सम्प्रयच्छन्ति।।१०।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हवानन्तरं यजमानः किं करोति? इति विशिष्टि, अत्र अस्मिन्देवाराधने जीवनपर्यन्तम् अग्निहोत्रं विधाय आयुषः परस्तात् जीवनादनन्तरं वायवे वाक्यद्वयं निवेदयति। स्वाहा इति प्रथमं वाक्यम् अर्थात् हे वायो! यावज्जीवनं त्वं मया अनेकशः समिधाविधानेन यवतिलधान्यर्पिर्भि हुतः स्वाहाकारैः, अद्यत निजदेहं विसृजन् चत्वार्यपि स्वानि त्वयि समादरेण आजह्वाणो समाजुहोमि। किन्तु त्वमपि ममकृते किमपि प्रत्युपकुरु। उपकाराकारमाह-परिधं भजनप्रत्यवायभूतां मोहमायाम् अर्गलाम्अपजहि अपकृष्टतया छिन्धि इति इदं वाक्यद्वयम् उक्त्वा कथयित्वा तस्मै वायुमनुकूलयितुं प्रसादयितुं वा उत्तिष्ठति आदरेण समुत्थितो भवति। रुद्रा उत्तिष्ठते तस्मै माध्यमन्दिनं मध्याह्नकालिकं सवनं संप्रयच्छति ददति।।श्रीः।।

भूयस्तार्तीयकसवनसामगानमाह—

पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघनेनाहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यꣳस वैश्वदेव सामाभिगायति ।।११।।

आदित्यैः सहवर्तमानं सादित्यं, रुद्रैः सह भूतं सरुद्रं विश्वेदेवैः सहितं सविश्वेदेवं शेषं पूर्ववत्।

अथ मन्त्रद्वयेन प्रार्थनाप्रकारं होमप्रकारं च निर्दिशति—

लो ३ कद्वारमपावा ३ र्णू ३ ३ पश्यम त्वा वयꣳस्वारा ३ ३ ३ ३ ३ हु ३ म् आ ३ ३ ज्या ३ यो ३ आ ३ २ १ १ १ इति।।१२।।

हे आदित्य! लोकस्य दिवलोकस्यद्वारं मायाच्छन्नं मार्गम् अपावृणु, मायाजवनिकाम् अपसार्य समुद्घाटय वयं साधकाः हुम भजनरवं कुर्वन्तः हुंकाराख्यं त्वां पश्येम। कथं स्वाराज्याय तव परम पदलाभाय।।श्रीः।।

अथवैश्वदेव प्रार्थनाप्रकारमाह—

आदियमथ वैश्वदेवं लो ३ कद्वारमपावा ३ र्णू ३ ३ पश्येम त्वा वयꣳसाम्रा ३ ३ ३ ३ ३ हु ३ म् आ ३ ३ यो ३ आ ३ २ १ १ १ इति।।१३।।

आदित्यमिति पूर्वान्वयि अथ अनन्तरं वैश्वदेवं विश्वेदेवा देवता अस्य इति वैश्वदेवं प्रार्थनं वर्ण्यते। हे विश्वेदेवाः। लोकस्य स्वर्ग लोकस्य द्वारम् अपावृणु व्यत्ययेन अपावृणुत अपसारयत इति बहुववचनस्पार्थे अपावृणु इति प्रयोगः। एवमेव वः इत्यस्य अर्थे त्वा इति एकवचनं प्रयुक्तं शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हवन प्रकारमाह—

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो ।
दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत ।।१४।।

अथ आदित्यान्विश्वेदेवाँश्च समुद्दिश्य जुहोति अग्नावाहुतिं प्रक्षिपति-आदित्येभ्यः विश्वे-देवेभ्यश्च दिविक्षिद्भ्य स्वर्गरक्षकेभ्यः नमः, मे यजमानाय लोकं दिवं विन्दत विन्दयत।।श्रीः।।

प्रार्थनाप्रकारमाह—

एष वै यजमानस्य लोक एतस्म्यत्र यजमानः परस्मा दायुषः स्वाहापहत परिधमित्युक्त्वोत्तिष्ठति।।१५।।

अपहत विनाशयत शेषं सरलम्।।श्रीः।।

देवतायाः फलदानप्रकारं फलश्रुत्याकारं च निरुपयति—

तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीयसवन ँसम्प्रयच्छन्त्येष ।
वै यज्ञस्य मात्रां वेद य ह एवं वेद य एवं वेद ।।१६।।

एवं प्रार्थयमानाय तस्मै आदित्याः विश्वेदेवाश्च तृतीयसवनं फलं संप्रयच्छन्ति संप्रददति। यः एवम् उक्तरीत्या सवनत्रितयं सदैवतं वेद जानाति सः यज्ञस्य मात्रां रहस्यं वेद द्विरुक्तिरादरार्था अध्यायसमारप्त्यर्था च इति।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये चतुर्विंश खण्डः द्वितीयायश्चसंम्पूर्णः।

इति श्रीचित्रकूटनिवासि सर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरुश्रीरामानन्दचार्य श्रीरामभद्राचार्यमहाराजकृतौ छान्दोग्योपनिषदि द्वितीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्यंसंपूर्णम्।

श्रीराघवः शन्तनोतु।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ श्रीराघवोविजयतेतराम् ॥

॥ श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ॥

तृतीयोध्यायः

प्रथमखण्डः

वन्देवन्दारुवृन्दानां मन्दार चरणाम्बुजम् ।
नीलपीतं महोब्रह्म सीतारामाभिधं नतः ।।

सम्बन्धभाष्यं श्रीः-द्वितीयाध्याये तत्तत्प्रतीकच्छलेन सविस्तरं सामोपासनं तत्वतस्तु प्रणवमेव सर्वोपास्यत्वेन विनिश्चित्य यज्ञाङ्गभूतसाम्नां सरहस्यमुच्चारणविधिः यज्ञीयसाम्नां गानं तद्दैवतोत्थानम् इति सर्वं सविस्तरं प्रतिपादितम्। अनुपदमेव द्वितीयाध्याये चरममन्त्रे य एवं वेद स यज्ञमात्रां वेद इति श्रुतिः कण्ठरवेण यज्ञस्वरूपनिर्धारणं गेयत्वेन प्रत्यजानात्। अस्य यज्ञस्य प्रत्यक्षगोचरतया कर्माङ्गभूतः प्रमुखसाक्षी भगवान्सूर्यः अस्मिन्नस्तमिते नाहुतयो दीयन्ते नवा कानिचित् यज्ञकर्माणि अनुष्ठीयन्ते, तस्मात् यज्ञमात्राज्ञानात् प्राक् आदित्यज्ञानमपेक्षते। अतस्तत् विबोधयिषुः श्रुतिः **असौवा आदित्य** इति सूर्यमहिमानं वर्णयितुमुपक्रमते। हेत्वन्तरञ्च समस्तश्रुतिसारस्य सकलजगदाधारस्य श्री कौसल्याकुमारस्य जन्मापि सूर्यवंशे सकलभुवश्रेयसे तस्मात् सूर्यमंडलसंस्थस्य श्रीरामस्य महिमानुवर्णनात्पूर्वं सूर्यमहिमवर्णनमनुप्राप्तं तदर्थमयमारंभ असाविति।

ॐ असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौ रेव ।
तिरश्चीनव ॐ शोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः।।१।।

ॐ इति परमात्मनो नाम अध्यात्मविद्याविशेषमधुविद्याप्रकरणमङ्गलार्थं प्रयुक्तम्। मधुरूपकविद्यया सूर्यं वर्णयन्ती श्रुतिरूपक्रमते, वा निश्चयेन असौ प्रत्यक्षं दृश्यमानः आदित्यः अदितिनन्दनसूर्यः, अथवा दितिः खण्डः स नास्ति यस्यां सा अदितिः, अखण्डा विराट्पुरुषदृष्टिः तस्यां भवः आदित्यः। सूर्यो हि विराट्चक्षुषः प्रादुर्बभूव **चक्षोः सूर्यो अजायत** इति श्रुतेः। स एव विराट्पुरुषचक्षुर्जन्मा वैराजः सूर्यः देवमधुः देवानां द्योतनप्रधानानां सुराणां मधु इव मोदनावहः। माद्यन्ति प्रहृष्टा भवन्ति येन तन्मधुः, हर्षार्थकमदिधातोः औणादिक उण् प्रत्यये दकारस्य च धकारे मध्विति निष्पाद्यते। तस्य दैवीसम्पदमुपासीनानां परमरसभूतस्य मधुन आदित्यस्य द्यौः स्वर्गलोक एव तिरश्चीनवंशः तिरश्चीनो वक्रः वंशः वेणुदण्डः कीचको वा यस्मिन्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मधुलम्बते। अन्तरिक्षम् आकाशमेव अपूपः वंशमाश्रित्य समवलम्बमानम् अपूपभक्षाकारं मधुच्छत्राकं क्षौद्रं यन्मक्षिका निर्मायन्ते भाषायां मधुछत्ता इति व्यवह्रियते। एवं तस्मिन् वर्तमाने मधुनीव अन्तरिक्षेऽवलम्बमाने सूर्ये ये मरीचयः किरणाः त एव पुत्राः त इव हितैषिणः लघुमाक्षिकाः।।श्रीः।। अथ रूपकपरिशिष्टमाह, मधुनिर्माणे कान्यन्यानि समुपकरणानि तान्यपि रूपकविधानेन दर्श्यन्ते—

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्योमधुनाड्यः । ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः ।।२।।

एतमृग्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत।।३।।

अर्थोऽयं मन्त्रद्वयान्वयी। तस्य सूर्यस्य ये प्राञ्चः पूर्वदिग्वर्तिनः पूजनीयाः रश्मयः किरणाः ता एवं मधुभूतस्यास्य प्राच्यः मधुनाड्यः पूर्वस्थाः मधुनालिकाः। ऋचः कर्मफलप्रतिपादिकाः ऋग्वेद श्रुतयः मधुकृत मधुकुर्वन्ति इति मधुकृतः मक्षिकास्थानाः एवम् ऋग्वेद एव पुष्पं यथा पुष्पेभ्यः रसं गृहीत्वा मधुनिर्मीयते तथैव ऋग्वेदात् सूर्यतत्वरूपरसं ग्रहीत्वा ऋचः कर्मफलदातृत्वेन मधुरूपं तमादित्यं मधुकरा इव प्रस्तुवन्त्यनुष्ठातुः पुरः। एवम् अमृताः अमृतमिवान्दवहाः फलक्रिया एव आपः मधुद्रवभूताः ताःऋचः कर्मप्रयुक्ताः ऋग्वेदम् अभ्यतपन् फलदानाय विवशमकुर्वन्। तदा तस्य अभितप्तस्य फलदानाय ध्यायमानस्य ऋग्वेदस्य सकाशादेव यशः, कीर्ति तेजः, शरीरकान्तिः इन्द्रियम्, चक्षुरादिषु भगवद्भजनप्रत्यवायनिरसनसामर्थ्यं वीर्यं षड्विकारजयसामर्थ्यं रसः, निरतिशयभजनानन्दरूपः अजायत वैदिकानुष्ठानादेव निरपद्रवभगवद्भजनरसो निष्पद्यते इति हार्दम्।।श्रीः।।

अथ रसपरिणामं व्याचष्टे—

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा ।
एतद्यदेतदादित्यस्य रोहित ꣳ रूपम् ।।४।।

तदेव वैदिकं रसरूप वस्तु व्यक्षरत् ऋग्वेदात् फलं सत् विशेषेणक्षरितं श्रुतं तत् अभितः लोकपरलोकमाध्यमेन सूर्यमेव आदित्यम् अश्रयत् आधारमकरोत्। यदेतत् फलरूपं वेदनिस्न्दभूतं तदेव सूर्यस्य रोहितम् अरुणं रूपम् यत् प्रातः सायं च स्पष्टं विलोक्यते।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये प्रथमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।
श्रीराघवः शन्तनोतु

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ द्वितीयखण्डः ।।

अस्मिन् आदित्यदक्षिणकिरणरूपकवर्णनेन सूर्यस्य शुक्लरूपं वर्ण्यते।

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्यो ।
यजूꣳष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ।।१।।

सूर्यस्य दक्षिणा एव किरणाः दक्षिणमधुनाड्यः यजूंषि यजुर्वेदमन्त्राः अमृताः सोमरसभूताः दक्षिण हि किरणाः यजुर्वेदमया इत्यर्थः।।श्रीः।।

तानि वा 'एतानि यजूष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य
यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ।।२।।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयन्तद्वा
एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लꣳरूपम् ।।३।।

उभयान्वयमिदम्, यजुर्वेदादेव यशस्तेजइन्द्रियसामर्थ्यात्मकं क्षरितं सूर्योऽङ्यकरोत् दक्षिणतस्तदेवास्य शुक्लं रूपं दृश्यमानमास्त इत्याशयः।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये द्वितीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।२।।

।। अथ तृतीय खण्डः ।।

अथ तृतीये खण्डे सूर्यस्य कृष्णरूपं निरूपयति—

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्चो मधुनाड्यः ।
सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ।।१।।

तानि वा एतानि सामान्येतꣳ सामवेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य ।
यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत ।।२।।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्ताद्वा ।
एतद्यदेवदादित्यस्य कृष्णꣳरूपम् ।।३।।

सूर्यस्य रश्मयः प्रत्यक् मधुनाड्यस्तु पश्चिमाः। सामानि भ्रमरा पुष्पं सामवेदस्तथैव हि।

तस्य तप्तस्य यशइन्द्रियतेजोवीर्यरसं रविः। जगृहे कृष्णरूपं तत् खण्डार्थोऽयं समासतः।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये तृतीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ चतुर्थखण्डः ।।

अस्मिन् खण्डे सूर्यस्य परकृष्णरूपं निरूपयति—

अथ योऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ।।१।।

ते वा एतेऽर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतप । स्तस्याभितापतस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यरसोऽजायत ।।२।।

तद्व्यक्षस्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्ण ँ रूपम् ।।३।।

उदीच्यो मधुनाड्यश्च उदीच्यो रविरश्मयः ।
अथर्वशीर्षो भ्रमरा सुमनांसि तथैव हि ।।
तस्य तप्तस्य यश आदि रसं तज्जगृह रविः ।
परः कृष्णं हि तद् रूपं शकलोऽर्थोऽयमीरितः ।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये चतुर्थ खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।। अथ पञ्चम खण्डः ।।

पञ्चमखण्डे सूर्योस्योर्ध्वकिरणेषु मधुदृष्टिं निरूपयति—

अथ येऽस्योर्ध्वारश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या । एवादेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः ।।१।।

ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपंःस्तस्याभितप्तस्य । यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यंःरसोऽजायत ।।२।।

तद्व्यक्षस्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा । एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ।।३।।

ते वा एते रसानांःरसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि । वा एतान्यमृतानामृतानि वेदाह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुह्या आदेशा श्रुतिनिहिता: साधकवेद्यतया गोपनीया: औपनिषदा: ब्रह्मोपासनानिर्देशा एव गुह्या आदेशा:। इदमेव गीतायाम् **राजविद्या राजगुह्यम्** (गीता ९/२) इति व्याजहार भगवान् वासुदेव:। इमे एव भ्रमररूपा:। कस्माद् रसं गृह्णन्ति? इत्य आह, ब्रह्मैव पुष्पमिति ब्रह्म प्रणव: **ओमित्येकांक्षरं ब्रह्म** (कठ उप. १/२/१६) इति श्रुते:। तदेव पुष्पम् ओंकारादेव पुष्परूपाद् औपनिषदा आदेशा ब्रह्मानन्दरूपं रसं गृह्णन्ति। तस्यैवाभितस्य यश आदि रसो जायते तदेव विक्षरितं सूर्य: समश्रयत तदेव सूर्यस्य मध्ये क्षोभमाणं श्रीसीतारामात्मकं चञ्चलन्मह: पश्यन्ति साधका:। अमृता: साकेतलोकदायिन्य: आप: इमे एव वेदरसानां रसा: सारभूता: भजनानन्दसिद्धान्ता:, इमानि एव अमृतानां क्षोभनानामपि फलानाम् अमृतानि फलानि शोभनतमानि, भक्तिर्हि समस्तसाधनानां फलभूता तथैवाह भगवान्नारद:, **फलरूपत्वात्** (नारद भ. सूत्र २/३) मानसकारोऽपि कथयति—

संजम नियम फूल फल ज्ञाना ।
हरिपद इति रस बेद बखाना ।।

(मानस (१।३७।१४)

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये पञ्चमेखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यमं सम्पूर्णम्।।५।।

।। अथ षष्ठखण्ड: ।।

प्रथमामृतोपभोगमहिमानं वर्णयति—

तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा ।
अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ।।१।।

तत् यत्प्रथम् अमृतम् ऋग्वेदत: समुपलब्धं प्रभातकालिकं सूर्यस्य रोहितं रूपं तदेव वसव: द्रोणादय: अग्निना मुखेन माध्यमेन सवनविधिना उपजीवन्ति उपभुञ्जते। किमश्नन्? इति शङ्कां निराचष्टे न वै इति देवा: अश्नन्ति नैव पिबन्त्यपि नहि ते अशनपिपासारहिता एतद् दृष्टैव चक्षुषा उपभुज्य तृप्यन्ति तृप्ता भवन्ति।।श्री:।।

परिणाममाह—

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ते वसव एतद् सूर्यस्य शुक्लं रूपम् अभिसंविशन्ति प्रविशन्ति, एतस्मादेव सूर्यस्य शुक्लरूपात् उद्यन्ति उपरि गच्छन्ति हविषां जिघृक्षव:।।श्री:।।

रूपदर्शनफलमाह—

स य एतदेवममृतं वेद वशूनामेवैको भूत्वाग्निनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ।।३।।

य: एवंवेद जानाति स: वसूनाम् एक: प्रधान: भूत्वा अग्निा अग्निमाध्यमेन एतदमृतं दृष्ट्वा तृप्यति देवसमानगुणत्वात् एतदेवरूपं प्रविशति, एतस्मादेव उदेति सूर्यमण्डलभेदसामर्थ्यों भवतीति भाव:।।श्री:।।

अग्रे फलमाह—

स यावदादित्य: पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमता ।
वसूनामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ।।४।।

स: एतदमृतरहस्यवेत्ता देवसमानगुणक: यावद् सूर्य: तावदेव तेन सह उदेता बालखिल्या इव सूर्येण सह उद्गन्ता पश्चाद् अस्तमेता वसूनां द्रोणादीनामाधिपत्यं साम्राज्यं स्वराज्यं परमं पदं च पर्येता परितो अत्र उदेता इत्यादिषु चतुर्षु अपि तृन् प्रत्ययान्तया नलोक इत्यादिना षष्ठीनिषेध:।।श्री:।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये षष्ठेखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।। अथ सप्तमखण्ड: ।।

एवं रुद्राणां जीवनाश्रयभूतं द्वितीयामृतोपासनं खण्डेऽस्मिन् प्रस्तौति। अथेत्यादिना—

अथ यद् द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन ।
न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति ।।१।।

अथ एतदनन्तरं यत् पूर्वोक्तं द्वितीयमणृतं मधुरूपं सूर्ये वर्तमानं माध्यन्दिन स्थं तत् रुद्रा: शङ्करप्रमुखा: उपजीवन्ति आश्रित्य प्राणन्ति। किं कृत्वा, तत् अश्नन्तो पिबन्तो वा? यदि उभयं कुर्वन्तस्तर्हि तदस्थमानं पीयमानं वा कथं न क्षीयते?

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निश्चयेन न अश्नन्ति न भुञ्जते, न पिबन्ति न वा द्रवतया पानविषयं कुर्वन्ति। कथमुपजीवन्ति तर्हि? तद् दृष्ट्वा चाक्षुषविषयं कृत्वा तृप्यन्ति तृप्तिं लभन्ते।।श्रीः।।

अग्र आह—

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ।।२।।

ते रुद्राः एतद् एव रूपं माध्यन्दिनम् अभिसंविशन्ति प्रविष्टा भवन्ति। यत्तु उदासीना भवन्तीति व्याख्यायते तत्तु शब्दशास्त्रमनालोच्यैव। एतस्मादेवरूपाद् एतद् सकाशादेव उद्यन्ति उदयं प्राप्नुवन्ति।।श्रीः।।

रूपज्ञानफलमाह—

स य एतदेवममृतं वेद
रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं
दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव
रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ।।३।।

एतद् रूपज्ञाता रुद्रसमानधर्मा भवतीति मन्त्रतात्पर्यम्। यः एतद्रूपं वेद सोऽपि रुद्रा इव इन्द्रमुखेन इन्द्रप्राधान्येन एतद्रूपमभिसंविशति प्रविशति, एतस्मादेव उदेति अभ्युदयं गच्छति। इत्यनेन ज्ञाने समानधर्मता वर्णिता न त्वेकरूपता।।श्रीः।।

अपरमपि फलमाह—

स यावदादित्यः पुरसतादुदेता
पश्चादस्तमेता द्विस्तावद् दक्षिणत
उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव
तावदाधिपत्य ँ स्वाराज्यं पर्येता ।।४।।

सः आदित्यः यावत्कालपर्यन्तं पुरस्तात् पूर्वदिशि उदेता उद्गच्छति, पश्चात् पश्चात् पश्चिमतश्च अस्तमेता अस्तं गच्छति, तावत् परिमाणकात् कालात् द्विः द्विगुणित कालपर्यन्तं दक्षिणतः उदेता दक्षिणदिग्विभागमाश्रित्य उद्गच्छति, उत्तरतश्च उदीच्यामेता अस्तं गच्छति। रुद्राणां मध्ये एकोभूत्वा प्रधानो भूत्वा स्वाराज्यं रुद्रानुशासनातिगामित्वं पर्येता परितः प्राप्नोति तूनन्तं सर्वम्।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये सप्तमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथाष्टमखण्डः ।।

अथादित्योपजीव्यं तृतीयममृतोपासनं वर्णयति—

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा । अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ।।१।।

अथ द्वितीयामृतोपासनानन्तरं तृतीयामृतोपासम् प्रस्तूयते। यत्तृतीयम् अपराह्णे सूर्यमण्डलस्थं तदेव आदित्यः विवस्वदादयः। शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ।।२।।

ते आदित्याः एतदेव अपराह्णकालिकम्।।श्रीः।। एतद्रूपविज्ञानफलमाह—

स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ।।३।।

वरुणेन मुखेन मुखशब्दप्रधानवाची वरुणेन प्रधानीभूतेन द्वादशादित्येषु दशमेन सहेति तात्पर्यम्।।श्रीः।।

शेषं फलमाह—

स यावदादित्या दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेताद्विस्तावत् पश्चादुदेता । पुरस्तादस्तमेतादित्यानामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ।।४।।

एतदक्षरार्थः सरलः, भावार्थस्तु–आदित्यो यावदुकालं दक्षिणस्यामुदीयमानः पश्चिमायामस्तमेति ततो द्विगुणितकालपर्यन्तमयं पश्चिमायामुदीयमान उत्तरस्यामस्तमेति आदित्यानामपि स्वामित्वं स्वाराज्यं चाधिगच्छति।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये अष्टमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। अथ नवमखण्डः ।।

अथ नवमखण्डे मरुद्गणोपजीव्यस्य चतुर्थामृतस्योपासनं वर्णयति,

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ।।१।।

अथ तृतीयामृतोपासनानन्तरम्, मरुतः ऊनपंचाशत् संख्याकाः दितिगर्भजाः पवनाधिष्ठातृदेवाः सोमेन चन्द्रेण मुखेन माध्यमेन।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ।।२।।

ते मरुतः एतदेव अपराह्णोत्तरकालिकं रूपं सवितुरिति शेषः।।श्रीः।।

फलमाह मन्त्रद्वयेन—

स य एतदेवममृतं वेद
मरूतामेवैको भूत्वा सोमेनैव
मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स
एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ।।३।।

स यावदादित्यः पश्चादुदेता
पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता
दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव
तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्य पर्येता ।।४।।

अक्षरार्थस्तु पूर्ववत्, भावार्थोऽयं यदेतद्रूपं विज्ञाय साधको मरुत्समधर्मा भवति यावत्कालम् आदित्यः पश्चिम उदीय पूर्वेऽस्तमेति ततो द्विगुणितकालमाश्रित्य साधकोऽयम् उत्तरत उदीय दक्षिणस्तोऽस्तमेति।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये नवमेखण्डे श्रीराघवकृपाभिष्यं सम्पूर्णम्।।

।। अथ दशमखण्डः ।।

इदानीं साध्योपजीव्यपञ्चमामृतोपासनं वर्णयति—

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या
उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै
देवा अश्नन्ति न पिबन्त्ये
तदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ।।१।।

अथ चतुर्थामृतोपासनानन्तरं पञ्चमं प्रस्तूयते-इत्यथपदार्थः। ब्रह्मणा मुखेन हिरण्यगर्भेण माध्यमेन इत्थं मधुविद्याप्रकरणे सूर्यस्य पञ्चसु प्रातःकालिक मध्याह्नकालिका-पराह्णकालिकापराह्णोत्तरकालिकास्तगमनकालिकेषु अरुणशुक्लकृष्णकृष्णतरपरःकृष्णेषु रूपेषु पञ्चामृतानां वर्णनम्, तत्र प्रथमममृतं वसवः अग्निमाध्यमेन समुपजीवन्ति। द्वितीयं रुद्रा इन्द्रमाध्यमेन तृतीयमादित्याः वरुणमाध्यमेन, चतुर्थं मरुतः सोममाध्यमेन,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चमं साध्याः ब्रह्ममाध्यमेन यथाक्रमम् अमृतमुपजीवन्ति। अत्र पञ्चस्वपि खण्डेषु न वै देवा अशनन्ति न वा पिबन्ति तद् दृष्ट्वा तृप्यन्ति इति पञ्चकृत्वः श्रुत्यैव समभ्यस्तम्। इत्यनेन देवानां क्षुत्पिपासे निरस्ते। कथमथ तर्हि कर्मकाण्डिनः देवपूजने नैवेद्यं पानीयमिति उपकल्पयन्ति? तदुच्यते, तत्रैव दत्तोत्तरोऽयं प्रश्नः। तददृष्ट्वा तृप्यन्ति ययास्मदादयः प्रत्येकपदर्थं तत्तद्ग्राहकशक्तिमदिन्द्रियेण समास्वादयन्ति न तथा देवाः। नैवेद्यं ते चक्षुषैव गृह्णान्ति परन्तु देवाधिदेवः भगवान् भक्तभावनामनुगृह्णानो रामकृष्णादिमानवाकारो भक्तदत्तनैवेद्यम् अश्नाति जलं च पिबति। यथोक्तं गीतायाम्।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

(गीता ९।२६)

ननु विरुद्धेयं गीतोक्तिः श्रुतितः **न वै देवा अश्नन्ति** इत्यादितः? इति चेन्न, तत्र प्रकरणे पञ्चानामेव वसुरुद्रादिदित्यमरुत्साध्याना चर्चा श्रवणात् परमात्मनश्च तेभ्यो बहिर्भूतत्वात् **सर्वाध्यक्ष** इत्यादिश्रुतेः। तत्र परतन्त्राणां चर्चा श्रवणेन अत्र भगवति तन्नियमाप्रसक्तेः। ते हि पावकेन्द्रवरुणसोमब्रह्मादयो दत्तानि माश्नन्तु मा पिबन्तु वा परन्तु मम भगवाँस्तु भक्तदत्तं पत्रपुष्फफलं जलं भुङ्क्त एवेति ब्रूमः। न च निर्मूलेयं पत्रं पुष्पम् इत्यादि स्मृतिरिति वाच्यम्? **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिताः** (तैत्तरीय ब्रह्मा. १) इति श्रुतौ। तन्मूलप्रामाण्यप्रधर्शनेनोक्तभ्रमनिराकरण मितिदिक्।।श्रीः।।

तेसाध्याः एतदेव सूर्यास्तमनकालिकमेव फलमाह मन्त्रद्वयेन—

य एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति।।२।।

स य एतदेवममृतं वेद
साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव
मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स
एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति।।३।।

ब्रह्मणामुखेन हिरण्यगर्भेण माध्यमेन शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

परिशेषमाह—

स यावदादित्य उत्तरत् उदेता दक्षिणतोस्तमेताद्धिस्तावदूर्ध्व उदेतार्वाङ्स्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्य ँ स्वाराज्यं पर्येता।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदित्यः सूर्यः सः श्रुतिप्रसिद्धः यावत्काल परिणामम् उत्तरतः उदीच्याः दक्षिणतः दक्षिणस्याम् अत्रसर्वत्र सार्वविभक्तिकस्तसिः। ततो द्विः द्विगुणीकृत्यकालम् ऊर्ध्वम् उपरि उदेता अर्वाङ् नीचैः पातालादौ अस्तमेता अस्तङ्गमनशीलो भवति उदेता अस्तमेता पर्येता इति प्रयुक्तेषु त्रिषुताच्छील्ये तृनन्तता। यद्यपि सूर्यः सर्वेषामपिपूर्वतः समुदेति पश्चिमतश्चास्तमेति वस्तुतः तथापि दक्षिणादि दिक्तस्तु सूर्यो निरन्तरं चलति तस्योदयास्तमयत्वंतु प्राणिनां चक्षुर्ग्रहणाग्रहण विपरिणमनरूपमितिगेयम्।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये दशमःखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।

।। अथैकादशः खण्डः ।।

एवं यावत् पुण्यसाधकोऽयं यथाक्रमं वसुरुद्रादित्यं मरूत् साध्य श्रेणीमभिक्रमाणः सूर्यसमानधर्मा पुरस्तात् पश्यति दक्षिणतः उत्तरतः ऊर्ध्वं चोद्गच्छति विपर्यये चास्तमेति परन्तु **कर्मचितोहि लोकः क्षीयते** इति श्रुतेः। क्षयिष्णुतया पुण्यचितलोकानां क्षयवत्सु शुभाशुभेषु, सूर्यः क्वचिदपि नैवोदयास्तमयौ कुरुते तेन समानधर्मतया साधकोऽपि तथैव तिष्ठति अत आह—

अत तव ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेततैकल
एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः ।।१।।

अथ प्राणिनामुपरिनिजकृपारश्मिभिर्दिव्यमनुग्रहं विधाय अयं सूर्यः ततः तस्मात् वसुरुद्रादित्यमरुत्साध्येभ्यः मध्वमृतवितरणादनन्तरम् ऊर्ध्व सर्वेभ्यः ऊपरि उदेत्य उदितो भूत्वा भगवान् भास्करः, वस्तुतः भूयः नैवोदेति नैवोद्गच्छति, उदयो हि तदनुग्रहः अनुग्राह्याश्च प्राणिनः तत्सत्ता च भोगधीना। तेषु निमित्तभूतेषु क्षीणेषुं नैमित्तिकस्यापि प्राणिजातस्या सद्भावे तदानर्थक्यात्। एवं यद्युदयो नहि तर्ह्यस्तमनस्य का चर्चा? उदितो ह्यस्तो भवति यर्हि नोदितेति तर्हि नास्तमेति। एवमुदयास्तमेव वर्णितः सन् किं करोत्यादित्य इत्यपेक्षमाणं प्रत्याह— अयं न उदेता नोद्गमनशीलः नास्तमेता अनस्तमयशीलः सन् मध्ये अपरिच्छिन्ने परमे व्योमनि परमात्मनि निजस्वरूपे ब्रह्मचिन्तने ताटस्थभावे वा स्थाता तिष्ठति तच्छीलः, ताच्छील्यतृनन्तत्वं हि तत्स्वभाव व्यक्तीकरणार्थम्।।श्रीः।।

एतद् प्रतिपादनार्थं ततः तस्मादेव हेतोः एषः अयं श्लोकः तद्गुणगणस्तवनरूपो मन्त्रः। मन्त्राकारमाह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन ।
देवास्तेनाहꣳ सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति।।२।।

कश्चन समधिकृतब्रह्मसाक्षात्कारः देवानां समक्षं सत्येन प्रतिजानानः प्राह— हे देवाः, द्योतनशीलाः! भगवत्स्तवनशीलाः वा भगवद्भजनसुधया मोदमाना वा भगवद्भक्तिरोचिषा कान्तिमन्तो वा देवाः प्रतियन्तु। प्रतीतेः किं प्रमाणमित्यत आह— अहं कृतपरमेश्वरसाक्षात्कारः तेन तच्छब्दवाच्येन सत्येन सत्स्वरूपेण त्रिकालावाध्य-परमार्थरूपेण वा परमेश्वरेण शपित्वा ब्रवीमि। अथवा सतां हितेन सत्येन शपित्वा ब्रवीमि। यद्यहम सत्यं ब्रूयां तर्हि ब्रह्मणा तेन परमेश्वरेण सह मा विरोधिषि मा आविराधिषि अविरुद्धो न भवेयम्। अर्थात् विरुद्धो भूत्वा तत्कृपापात्रतां न ब्रजेयम्। अतोऽहं सत्यं कथयामि विश्वस्यतां भूतार्थवादाकारमाह, तत्र परेश्वरे परमेश्वरलोके साकेते वा अयं सूर्यः कदाचन कस्मिंश्चिदपि काले न निम्लोचं नास्तमगच्छत कदाचन च नोदियाय नोदितो बभूव। तात्पर्यमेतद् यत्, तत्र चेत् वैराजः सूर्योऽभविष्यत् तदायमुदयास्तमयतामगमिष्यत्। तत्र तु परमप्रकाशरूपो भगवत्तेजोराशिरेव लोकोत्तर-सूर्यधर्मतां भजमानो भजनरसिककोककोकनदनिकुरम्बकाणि समुद्भासयति। यथोक्तं कठोपनिषदि, **न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्। नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः** (कठ. १-३-१३) गीतायामपि प्राह भगवान्—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।

(गीता १५-६)

एवं सततमखण्डज्योतिषि तस्मिन् विशुद्धबोधघने परमव्योमभूते श्रीसीतारामनिकेते साकेते किमनेन वैराजसूर्योदयास्तभावेन।।श्रीः।।

एवमेकादशखण्डेषु सूर्यायत्तमधुविद्यां निरूप्य तदुपदेशपात्रतां निरूपयति, तदेवार्थं द्रढयति—

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा ।
हैवास्मै भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ।।३।।

यः, कश्चन मधुविद्यासम्प्रदायतः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण एतम् एकादशखण्डैर्निरूपितां ब्रह्मोपनिषदं, ब्रह्मप्रापिका उपनिषद् ब्रह्मोपनिषद् तां, ब्रह्मोपनिषदं वेद जानाति समुपास्ते च ह वा निश्चयवाचकौ निपातौ सुनिश्चितमेतदिति भावः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्मै भगवत्सन्निकृष्टाय साधकाय तादर्थेऽत्र चतुर्थी। सूर्यः न वा उदेति न वा निम्लोचति अर्थात् तत्कृतेऽपि निरस्तोदयास्तमयभावः। कोटिसूर्यसम प्रभो भगवान् श्रीसीताराम एव सततं प्रकाशते।।श्रीः।।

इदानीं मधुविधासम्प्रदायपरम्परामाह—

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यसतद्धैतदुद्दालकायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ।।४।।

ब्रह्मा तत् मधुविद्यारहस्यं परमेश्वरात् प्राप्य प्रजापतये निजपौत्राय कश्यपाय उवाच। प्रजापत्तिः कश्यपः मनवे निजपौत्राय वैवस्वताय स च मनुः प्रजाभ्यः इति परम्पराक्रमः तासु अरुणः पिता निज पुत्राय उद्दालकाय उवाच।।श्रीः।।

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता
ब्रह्म प्रब्रूयात् प्रणाय्याय वान्तेवासिने ।।५।।

वाव इति निश्चार्थो निपातः। तत् वैदिक वाङ्मयव्याप्तं प्रसिद्धमिदम् अनुपदमेव प्रोक्तम्। भगवद् विरुद्ध कामस्य दं खण्डकं ब्रह्म मधुविद्यानिरूपकं वेदराशिं पिता ज्येष्ठाय पुत्राय प्रथमसूनवे प्रब्रूयात् प्रकृष्टतया, समुपदिशेत् गृही सन्। विरक्तश्चेत् प्रणम्याय निजचरितप्रणताय अन्तेवासिने सेवारताय शिष्याय प्रब्रूयात् इति योज्यम्।।श्रीः।।

इतरस्या उपदेशो निषिध्यते—

नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दधादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति ।।६।।

गृहस्थः ज्येष्ठपुत्रात् अन्यस्मै, विरक्तः प्रणतशिष्यात् अन्यस्मै कस्मैचन इमां मधुविद्यां न दधात्। कदाचित् धनलोभसमापतेत्, तत्प्रतिषेधमाह-ज्येष्ठ पुत्रशिष्यव्यतिरिक्तः कोऽपि मधुविद्याजिघृक्षुः अस्मै मधुविद्यारस्यज्ञाय यद्यपि अद्भिः परिगृहीतां जलोपलक्षित- समुद्रमेखलां धनस्य पूर्णाम् धनधाम्यसम्पन्नाम् इमां पृथ्वीम् अपि दधात्, समुद्रमेखलायाः पृथिव्या अपि लोभेन प्रलोभितो भूत्वा न दद्यादिति हार्दम्। हेतुमाह, यतो हि ततः समुद्रमेखला पृथिवीतोऽपि एतदेवमधुविद्यारहस्यमेव भूयः अधिकगुणवत्तरम् आदरार्था द्विरुक्तिः।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये एकादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ द्वादशखण्डः

अथ निरतिशयफला ब्रह्मविद्या प्रकारान्तरैरपि प्रतिपादनीयेति गायत्रीदृष्ट्या सा निरूप्यते।

छन्दसांप्रथमत्वाच्च सोमाहरणतस्तथा।
इतराक्षरेषु व्याप्तत्वात् गानात् त्राणात् च देहिनः।।
जननीत्वाच्चमंत्राणां द्विजानां पूज्यभाक्तया।
द्वारत्वात् ब्रह्मविद्यायाः विभूतित्वाद्गदाभृतः।।
अन्वितत्वाच्च वेदेषु पुण्यातिशयकारणात्।
तन्मयत्वात् भगवतो निरूप्या प्रथमं हि सा।।

गायत्री वा इदꣳ सर्वंभूतं यदिदं किं च वाग्वै।
गायत्री वाग्वा इदꣳ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ।।१।।

वै इदम् इति पदच्छेदः। यलोपस्वरसन्धिः, वै निश्चयेन इदं दृश्यमानं यत्किंचित् चराचरं भूतं सत्तामयं प्रपञ्चजातं तत् सर्वं गायत्री गायत्र्याः संभूतं **सुपां सुलुक्** इत्यनेन ङसेः पूर्वसवर्णदीर्घः। समस्तं जगदिदं ब्रह्मभूतायाः गायत्र्याः संभूतमितितात्पर्यम्। ननु गायत्र्याः ब्रह्मभूतत्वे किं प्रमाणम्? इत्युच्यते **गायत्री छन्दसामहं** (गीता. १७-३५)

कथमिदं गायत्रीमयमिति शंकां समादधाना श्रुतिः प्राह-वाक् गायत्री तस्या वाग्रूपत्वात् अथवा वागिति लुप्तपञ्चमीकं पदं, यतोहि चराचरमिदं वाचोविकारभूतमेव यथोक्तं हरिणा बाक्यपदीये—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरं।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

(वाक्य ब्र. काण्ड-१)

वा एवं वाङ्मयत्वात् तस्याः जगतश्च वाक्प्रसूतत्वात् तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्व नियमः इति सिद्धान्तानुरोधेन गायत्र्यभिन्नवागभिन्नजगतो गायत्र्यभिन्नत्वं सुसिद्धम्। अत आह— वाग्वा इदं सर्वं वाचः वै इदं सर्वं भूतम् इति पदार्थः व्युत्पत्तिमाह— गायति च त्रायते च, परमात्मानं गायति स्तौति तं गायन्तं जीवं त्रायते रक्षति भवभीतेः। अत्र चकारद्वयप्रयोगात् व्युत्पत्तियुगलमपरमपि ध्वन्यते। तथा च गायन्तं त्रायते इति गायत्री गीयते इति गायः गायः परमात्मा स त्रायते यया स्मर्यमाणो जीवान् सा गायत्री।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ गायत्रीपृथिव्योरभेदमाह—

या वै सा गायत्रीयं वावा सा येयं पृथिव्यस्याःहीदः। सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते ।।२।।

वै निश्चयेन सा ब्रह्मविद्यया अभिन्ना या पूर्वोक्ता वाव निश्चयतः सा इयं गायत्री शब्दरूपा या इयं शब्दात्मिका सैव पृथिवी, अस्यां पृथिव्याम् इदं सर्वं दृश्यमानं प्राणिजातं प्रतिष्ठितम्। यथा वाङ्मयत्वात् पृथिव्याः वाण्याः संबन्धः तथैव गायत्र्या अपि प्रत्येक- व्यवहारः घटपटात्मकः शब्दानुगमनिरपेक्षो न भवति। यथोक्तं भर्तृहरिणा—

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धभिवज्ञानं सर्वं शब्देनभासते।।

(वाक्यपदी १-९६)

वस्तुतस्तु पृथिव्यामपि वाचि इव गानत्राणसंबन्धानुरोधेन गायत्र्यास्तन्मयत्वेऽभ्युपगतेऽपि वैयाकरणरीत्या जगत्याः वाङ्मयत्वेन तदभिन्नगायत्र्या अपि जगन्मयत्वं सुवचमेव।।श्रीः।।

पृथिवीशरीरयोरभेदमाह—

या वै सा पृथिवीयं वाव सा यदिमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ।।३।।

वै निश्चययेन या पूर्वोक्ता सा गायत्र्यभिन्ना इयं पृथिवी एषैव पुरुषे, अत्रौपश्लेषिकी सप्तमी पुरुषे शरीरमित्यस्य पुरि शयनशीलपुरुषसंज्ञकजीवात्मानमुपश्लिष्टमित्यर्थः। तस्मिन्नेव शरीरे हि इमे प्राणाः प्रतिष्ठिताः व्यवस्थयाविराजिताः अतो नातिशीयन्ते नातिक्रामन्ति इति भावः। निष्कृष्टन्तु गायत्र्यभिन्ना वाक् वागभिन्ना पृथिवी पृथिव्यभिन्नं पुरुषशरीरं तदभिन्नाश्च प्राणाः इत्यभेददर्शनेन संबन्धनिबन्धनेन गायत्र्यैव ब्रह्मोपासितव्यम्।।श्रीः।।

शरीरहृदययोरभेदमाह—

यद्वै तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ।।४।।

निश्चयेन पुरुषे यत् शरीरम् इदमेव इदमभिन्नं पुरुषस्य अन्तःवर्तमानं हृदयम् अन्तः करणं हृदयाकाशो वा अस्मिन्नेव प्राणाः प्रतिष्ठिताः नातिक्रामन्ति।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तदभेदमाह—

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम् ।।५।।

सा एषा ब्रह्मरूपिणी गायत्री चतुष्पदा चत्वारि वाक्पृथिवीशरीरहृदयाख्यानि यस्याः सा चतुश्चरणात्मिका, वा अथवा चतुर्व्यूहं ब्रह्म चतुष्पादविभूतिमयं वा ब्रह्म पद्यते गच्छति या सा चतुष्पदा एव षड्विधा वाक्भूतपृथिवीशरीरहृदयप्राणरूपा तदेव ऋचा ऋक्विशेषेण मन्त्रेण अभ्यनूक्तम् अभीष्टमनुत्तमुक्तम्।।श्रीः।।

ऋचमनुवदति—

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाश्चँ पुरुषः ।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ।।६।।

अस्य परमव्यापिनः परमेश्वरस्य ब्रह्मणः महिमा ऐश्वर्यं तावान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीय-चतुष्पादप्रमाणकः, च किन्तु नासौ पुरुषः, कस्तर्हि? अत आह तत इत्यादिना—पुरुषः परिपूर्णतमः सर्वभावेन अपूर्यत इति पूरुषः कर्मणि **औणादिक उषस्प्रत्ययः।** पूर्णकामः परमात्मनः ततः तेभ्यः चतुर्भ्योऽपि पादेभ्यः ज्यायान् प्रशस्यः अस्य परमात्मनः पादः पाददेव अत्र **सुपांसुलुक्** इत्यनेनैवङसिविभक्तौ स्वादेशे रुत्वे विसर्गे पादः। तस्यैकांशत एव सर्वभूतानि सर्वाणिभूतानि इति भावः। सर्वाणि इति स्थिते **'सुपांसुलुक्'** इत्यनेनैव जस् विभक्तेः पूर्वसवर्णदीर्घः सर्वा। अस्य त्रिपात् अंशत्रयममृतं मृतधर्म प्राप्तिवहिर्भूतं, दिवि साकेतलोके विराजति इति भावः। एवं प्राणाभिन्नहृदयं हृदयाभिन्नपुरुषशरीरं तदभिन्नापृथ्वी तदभिन्नावाक् तदभिन्नभूतं तदभिन्नागायत्रीति निश्चित्याभेदमेतम्। गायत्रीदृष्ट्यैव ब्रह्मोपासनीयमिति प्रकरणार्थः।।श्रीः।।

अथ तस्यैव त्रिपादविभूतिब्रह्मणः शुद्धब्रह्मणः तस्य च बाह्याकाशेन तस्य चान्तराकाशेन तस्य च हृदयाकाशेन सहाभेदं दर्शयति मन्त्रत्रितयेन।

यद्वै तद्ब्रह्मेतीदं बाव तद्योऽयं बहिर्धा
पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः।।७।।
अयं स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो
यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः।।८।।
अयं स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेतत्पूर्णामप्रवर्ति
पूर्णामप्रवर्तिनी श्रियं लभते य एवं वेद।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्त्रत्रयमेकार्थम् अभिप्रायोऽयं यत्त् दिवि वर्तमानं त्रिपादविभूतिमद्ब्रह्म इदं शुद्धं तद् ब्रह्म अंशांशिनोरभेदात्। अयं परमेश्वरः आकाशः 'आकाशस्तल्लिङ्गात्।। (१-१-२३ ब्र.सू.) पुरुषात् बहिर्देशे यः आकाशः रिक्तस्थानविशेषः सोऽपि ब्रह्मरूपएव यः बाह्याकाशो ब्रह्मरूपः स एव पुरुषस्य अन्तराकाशः शरीरेऽवकाशरूपः, यः शरीरावकाशरूपोऽन्तराकाशः सोऽपि ब्रह्मभूत एव, यश्च अन्तराकाशः स एव तदभिन्न एव हृदयाकाशः अयमेव पूर्णब्रह्मान्तरङ्गत्वात् पूर्णम्, अप्रवर्ति शरण्यम् शरणागतान् न प्रवर्तयति तच्छीलं। यः एवं वेद स अप्रवर्तिनीं भक्तपुनरावर्तभंगकारिणीं श्रियं शोभां लभते प्राप्नोति।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये द्वादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

अथ त्रयोदशखण्डः

पूर्वस्मिन् खण्डे गायत्रीद्वारकं ब्रह्मोपासनं प्रतिपादितं तदब्रह्म हृदयसिंहासनमधितिष्ठतिमहाराज इव यथा महाराजदर्शनाय प्रतिहाराणाम् आनुकूल्यम् नहि दौवारिकान् विरुध्य तैर्वा प्रतिषिध्यमानः कोऽपि राजानं द्रष्टुं क्षमः। तथैवात्रापि हृदयं सर्वतः पञ्चचक्षुःश्रोत्रवाङ्मनोहृदयरूपाणि तत्र प्राणव्यानअपानसमानोदानाः पञ्चवायवः समधिश्रिताः, यथाक्रममादित्ययमोऽग्निचन्द्रपर्जन्यचैत्याः देवाः समधितिष्ठन्ति। इम एव हृदयरूपपिण्डस्वर्गलोकमंगलमयमंदिराधिष्ठितपरमात्ममहाराजप्रतिहारा उपासिताः परमेश्वरविभूतित्वेन तत्प्राप्तिसहायकाः नोपासिताश्चेत् व्यवधायकाः। नहि भक्तविरोधे भगवत्परितोष इति परमात्माङ्गत्वेन पञ्चसुषिहृदयस्थब्रह्मोपासनं निर्देष्टुं तस्येत्यादिना मन्त्राष्टकेन खण्डोऽयमारभ्यते—

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य
पञ्चदेवसुषयः स योऽस्य प्राङ्सुषिः ।
स प्राणस्तच्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽन्नाद्य-
मित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद।।१।।

तस्य पूर्वं प्रतिपादितस्य गायत्र्यासमुपासनीयस्य ब्रह्मणः एतस्य अत्यन्त संनिधीयमानस्य अनन्तरं तदङ्गोपासनं वर्ण्यते। हृदयस्य परमेश्वरमंदिररूपस्य द्वारपाला

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इव पञ्चदेवसुषयः पञ्चसंख्याकाः चक्षुःश्रोत्रमनोवाक्हृदयरूपाः देवैः अधिष्ठिताः सुषयः रन्ध्रविशेषाः **सुषिः छिद्रं च रन्ध्रं च** इति वैष्णवकोषः। अस्य हृदयस्य यः प्राङ्सुषिः पूर्वाभिमुखं छिद्रं सः प्राणः तच्छिद्रसंसारी मुखनासिकाभ्यां निर्गमनशीलोवायुविशेषः। प्राक् अनिति निःश्वशिति इति प्राणः। तच्छिद्रं चक्षूरूपं भौतिकं स एव आदित्यः सूर्यः इदम् आधिदैविकं रूपं तत् एतत् शरीरस्थं तेजः। अन्नाद्यम् अन्नादि पाचकं शरीरधारकं च। यः एवं वेद प्राक्द्वारपालभूतं चक्षुर्गतप्राणमयमादित्यं तेजोरूपं भगवत् प्राप्तिसहायतयैतद्विभूतितयासमुपास्ते **ज्योतिषांरविरंशुमान्** (गीता १०-२२) इतिस्मृतेः। उपासीत भजते स एव तेजस्वी भजन् तेजःसमन्वितः, अन्वादः अन्नभोक्ता भवतीति गौणे फले मुख्यं तु परमेश्वरप्राप्तिरेव अतोऽस्मत्पूज्यचरणतुलसीदासमहाराजः सूर्यं समुपास्य श्रीरामभक्तिमेंव याचते—

दीनदयाल दिवाकर देवा ।
कर मुनिमनुजसुरासुर सेवा ।।

हिमतमकारि केहरिकर माली ।
दहनदोष दुःखदुरितरूजाली ।।

कोककोकनद लोक प्रकाशी ।
तेज प्रतापरूपरस रासी ।।

सारथि पंगु दिव्यरथगामी ।
बिधिसंकर हरिमूरतिस्वामी ।।

वेद पुरान प्रगट जस जागे ।
तुलसी रामभक्ति वरमांगे ।।श्री ।।

(विनयपत्रिका-२)

अथ दक्षिणसुषिसमुपासनं निर्दिशति अथेत्यादिना—

अथ योस्य दक्षिणः
सुषिः स व्यानस्तच्छोत्रꣳ स
चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत्
श्रीमान्यशस्वी भवति य एवं वेद ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ पूर्वशुष्युपासनानन्तरमस्य परमात्मनः धामभूतस्य हृदयस्य यः दक्षिणः सुषिः दक्षिणदिक् विभागे छिद्रं सः व्ययानः तत्र स्थितः व्यानवायुः विशेषणः। अनिति कर्मभ्यो जीवान्प्रेरयति तथाभूतः, तत् श्रोत्रं श्रवणनामकं रन्ध्रं स चन्द्रमा तदभिन्नतया चन्द्रमोऽधिष्ठिता तत्र श्री भगवद्भक्तिरूपा य सः भागवतेषु कीर्तिः। यः इत्थं धारयन्नुपास्ते स श्रीमान् प्रशस्तश्रीसंपन्नः यशस्वी कीर्तिमांश्च भवति। चन्द्रमसो भगवद्दासभूतत्वात् तदुपासने सति भगवत्प्रीतिजननेन साधकाय भगवत्प्राप्तिसौकर्यमिति भावः। यथोक्तं श्रीमानसे हनुमता—

कह हनुमतं सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रियदास।
प्रभुमूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ।।श्रीः।।

(मा. ६.१२ क)

अथ पश्चिमसुष्युपासनं वर्णयति—

अत योऽस्य प्रत्यङ् सुषिः
सोऽपानः सा वाक्सोऽग्नि- ।
स्तदेतद्ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपासीत
ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति य एवं वेद ।।३।।

अथ अस्य भगवल्लोकद्वारभूतस्य हृदयस्य यः प्रत्यङ् सुषिः पश्चिमरन्ध्रविशेषः स अपानः तत्र अपानवायुः संचरति, अपकृष्य अन्नादीन् अनिति इत्यपानः। सा वाक् तच्छिद्रपरिणमनभूतावाणी सः अग्निः हुतशनः आध्यात्मिकरूपमेतस्य। तत् ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मणः वर्चः ब्रह्मवर्चसं **ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः** इत्यनेनाऽच्प्रत्ययः। ब्राह्मणतेज इति भावः। अत्तुं योग्यम् आद्यमन्नमेवाद्यम् अन्नाद्यं भक्षणर्हमन्नम् इति धारणामिमां मत्वा उपासीत भजेत। यः एवं वेद यथोक्तमुपासते सः ब्रह्मवर्चसी अतिसयेन ब्रह्मवर्चोयुक्तः अन्नाद्यः श्रेष्ठान्नयुक्तो भवति, अग्नेरेव द्वयोः निदानभूतत्वात्।।श्रीः।।

अथोत्तरसुष्युपासनं वर्णयति—

अथ योऽस्योदङ् सुषिः
स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तत-
देतत्कीर्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत्
कीर्तिमान्व्युष्टिमान् भवति य एवं वेद ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्य भगवत्पर्वमस्य हृदयस्य यः उदङ्सुषिः उत्तरछिद्रं स समानः तत्राधिष्ठितः समान्वायुः समं यथास्यात्तथा विषमभोजनं समीकृत्य अनिति जीवतीति समानः, तन्मनः तत् परिणामभूतं स्वान्तमाधिभौतिकं रूपं, स पर्जन्यः स एवाधिदैविको वर्षामेघः अत्र कीर्तिः व्युष्टिः कान्तिः विशिष्टा कान्तिः तथा च वशकान्तौ इत्यस्मात् वशनम् उष्टिः इति विग्रहे भावे क्तिन् प्रत्यये सम्प्रसारणे पूर्वरूपे एत्वे ष्टुत्वे उष्टिः कान्तिः विशेषा उष्टिः व्युष्टिः, य एवं वेद उपास्ते स प्रशस्तकीर्तिः नित्यकान्तिसम्पन्नो भवति इति मन्त्रर्थः।।श्रीः।।

अथोर्ध्वसुष्युपासनं प्राह—

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः
सु उदानः स वायुः स ।
आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपा-
सीतौजस्वी महस्वान्भवति य एवं वेद ।।५।।

अस्य भगवदालयस्य हृदयस्य यः ऊर्ध्वसुषिः उपरितनोरन्ध्रभागः स उदानः तदभिन्न उदानवायुः, ऊर्ध्वम् अनतीत्युदानः स एव आकाशः तदभिन्नोवायुः। यद्यपि अन्यत्र तच्छोत्रं तच्चक्षुः सा वाक् तन्मनः इति चतुर्ष्वपि स्थानेषु पूर्वं सुष्याकाराः निर्दिष्टाः पश्चात् यथाक्रमम् आदित्यचन्द्राग्निपर्जन्याः देवाः निर्दिष्टाः अत्र पाठव्यतिक्रमः पूर्वं देवनिर्देशः पश्चात् रन्ध्रस्थानं तथापि शब्दक्रमात् अर्थक्रमोबलीयान् इति निमेयेन पूर्वशरणिमनुसरतैव मया व्याख्यातम्। नहि स्थानमतिरिच्यदेवास्तिष्ठन्ति अत्राकाशपदं हृदयकुहरपरम् एवम् ओजः शारीरिकं बलं महः आध्यात्मिकशक्तिः द्वयोरपि प्रापकं मत्वा उपासीत्, एवमुपासीनः ओजोमहोयुक्तोभवतीति शब्दार्थः। इत्थं नेत्रश्रवणवाङ्मनोहृदयकुहरेषु प्राणव्यानापानसमानोदानसंयुक्तेषु सूर्यचन्द्राग्निपर्जन्यवायुसमधिष्ठितेषु यथोक्तमाध्यात्मिक-शक्तीः संकलयन् प्रसाध्य पञ्चापिदेवान् भगवति पञ्चविभूतिमये निरतिशयभजनरसमनुभवन् भवभयमतितितीर्षति जीवः।

ना प्रसाद्यसुरानेतान् हरेर्मायामहानदीम् ।
अतितर्त्तुं कदापीष्टे विना नौकामिवापगाम् ।।

यतोक्तं श्रीमानसे—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रियद्वारझरोखे नाना। जहँतहँ सुर वैठेकरिथाना।।
आवतदेखहिं विषयबयारी। ते हठि देहि कपाट उघारी।।श्रीः।।

(मा.. ७-११८-११-१२)

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्चब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुलेवीरो जयते प्रतिपद्यते, स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्चब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद।।६।।

एते इमे ते श्रुतिप्रसिद्धाः पञ्चदेवपुरुषाः देवस्य परमात्मनः अनुचराः पुरुषाः देवपुरुषाः सूर्यचन्द्रपावकपर्जन्यवायवः भगवतः परिकराः तथाहि सूर्यः प्रकाशस्य, चन्द्रमा ओषधिपोषणस्य, अग्निर्दहनकर्मणः पर्जन्यो वर्षायाः। वायुश्च संजीवनस्य इमे भगवद्विभूतयोऽपि यथा सूर्यः **'ज्योतिषां रविरंशुमान्'** (गता. १०-२०) चन्द्रं **नक्षत्रोणमहं शशी** (गी. १०-२३) अग्निः **वसूनां पावकश्चास्मि** (गी. १०-२३) मनः **इन्द्रियाणां मनश्चास्मि** (गी. १०-३२१) वायु पवनः पवतामस्मि (गी. १०-३१) स्वर्गस्य लोकस्य साकेतस्य लोकस्य स्वः स्वर्गादिदेवलोकेषु गायते इति स्वर्गः, तस्य स्वर्गस्य साकेतस्य भगवल्लोको हि स्व र्गीयैरपि देवैर्गीयते। द्वारं पान्तीति द्वारपाः जयविजयाविव प्रतिहाराः एवम् एतान् आदित्यादीन् स्वर्गलोकस्य द्वारपालकत्वेन य उपास्ते तस्य कुले वीरः जायते षड़विकारजेता संभवति, स्वर्गं लोकं च प्रतिपद्यते। अमीषामप्यनुग्रहेण निरस्तभजनप्रत्यवायो भगवल्लोकमाप्नोतीति श्रौताशयः।।श्रीः।।

हार्दब्रह्मव्यापकब्रह्मणोः पिण्डब्रह्माण्डगतब्राह्मणोर्वा व्याकरोत्येकताम्—

अथ यदतः परो दिवो
ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु
सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं
वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिः ।।७।।

अथ पञ्चाद्वारपालदेवपुरुषोपासनानन्तरं सकलकारणभूतसर्वाराध्यसर्वाध्यक्षसर्वेश्वर-श्रीसीताराममयब्रह्मोपास्यत्वेन विविच्यते। अतः अस्याः दिवः द्योतनशीलायाः अपराजितायाः साकेतपुर्याः परः उत्कृष्टः परीभूतस्तत्स्वामी साकेताधिपतिः श्रीसीताभिरामो रामः स एव इदम् अकारो वासुदेव। तस्य अपत्यं पुमान् इः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भत्वेनाकारलोपेऽपि प्रत्यये ह्युभयार्थता ।
वर्ण्यते शब्दरसिकैर्वैयाकरणसम्मता ।।

इति वैष्णवस्मृतिः। तम् इं कामं द्यति खण्डयति इतीदं संसारवासनाखण्डनशीलं, ज्योतिः भाः विश्वतः पृष्ठेषु विश्वेषामुपरि तत्स्थानां प्राणिनां सूचनार्थमाह-सर्वतः पृष्ठेषु सर्वतः सर्वेषाम् ,अत्र तसिः षष्ठ्यर्थेः। सकलाजीवानामपि पृष्ठेषु ब्रह्मदीनामपि महत्तमानामप्युपरितनभागेष्वित्यर्थः। यत्तु विश्वतः पृष्ठेषु इत्यस्य सर्वतः पृष्ठेषु इत्यनुवादः इति प्राहुः प्राञ्चस्तन्मतिदौर्बल्यजनितसमाधानाभावप्रसूतधारणया। वस्तुतस्तु भगवल्लोकः विश्वेषां लोकानामुपरि एतद् सूचनाय विश्वतःपृष्ठेषु चतुर्दशभुवनातीतोऽयमित्यर्थः। किमिमं ध्रुवादयो महत्तमास्स्प्रष्टुं शक्ताः इति निषिद्ध्यन्ती प्राह— सर्वत्तः पृष्ठेषु सर्वेषां ध्रुवादीनामप्युपरितनभागेषु, उत्तमेषु उच्छ्रितं तमं उत्खातं वा तमविद्यातत्कारिरूपं ध्वान्तं यैस्ते उत्तमाः तेषु उत्तमेषु निरस्तान्धकारेषु। तथोक्ततं श्रीभागवत्ते प्रथमे **धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकम्** (भागवत १/१/१)।

किम् एतेभ्यः केचनापरेप्युत्तमाः? इति शङ्कां परिहरति, अनुत्तमेषु न सन्त्यन्ये ब्रह्मलोकदयः उत्तमाः येभ्यस्ते अनुत्तमाः तेषु अनुत्तमेषु लोकेषु आदरार्थे बहुवचनं, श्री साकतेलोके यद् ज्योतिः दीप्यते तदेव साधकस्य अस्मिन् हृदयरूपेऽपि अन्तःपुरुषे अन्तः स्थितः पुरुषः यस्मिन् तदन्तः पुरुषः तस्मिन् हृदये ज्योतिर्दीप्यते हृदयस्य साकेतस्थज्योतिषोर्मध्ये न किञ्चिदन्तरमिति श्रुतिविवक्षितम्।।श्रीः।।

अथ एतस्मिन् ज्योतिषि दर्शनश्रवणे सापेक्षं प्रत्यक्ष्यं प्रमाणमाह—

तस्यैषा दृष्टिर्यत्रैतदस्मिञ्छरीरे सः स्पर्शेनोष्णिमानं
विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णावपिगृह्यनिनदमिव ।
नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद्दृष्टं च श्रुतं
चेत्युपासीत् चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद च एवं वेद ।।८।।

तस्य हृदयस्थस्य ज्योतिषः एषा दृष्टिः इदं दर्शनं इदं ज्ञानं वा प्रमाणं यद् अस्मिन् शरीरे संस्पर्शेण उष्णिमानम् उष्णतां विजानाति, कस्य चित् शरीरस्पर्शेनैव तस्य उष्णतया अयं जीवतीति तर्कयति, शीतलतया च मृतज्ञ इत्यवधारयति। उष्णता च ज्योतिः परिणामः येन जीवसत्तानिश्चीयते। एषा दृष्टिः एवमेव एषा श्रुतिः। श्रवणप्रमाणमाह यत् कोऽपि कर्णौ पिधाय अंगुल्याततद्द्वारं रुद्ध्वा नदथुः वृषभस्वर इव किमपि निनदं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्दं शृणोति, ज्वलतः दन्दह्यमानस्य तृणादिकं दहतः अग्नेः धम् धम् इव किमपि उपशृणोति, य एवं वेद सः चक्षुष्यः भगवद्दर्शनसामर्थ्ययुक्तनेत्रः श्रुतः भगवत्कथा-श्रवणपाटवसम्पन्नः भवति।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये त्रयोदशखण्डे श्री राघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

अथ चतुर्दशःखण्डः

चतुर्वक्त्रसुताराध्यं चतुर्वर्गफलप्रदम्।
चतुश्शत्रुविनाशाय चतुर्थं ब्रह्म भावये।।१।।

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्त्रिभिः।
चतुर्भिर्भावितो रामश्चतुर्यो मे हरिर्गतिः।।२।।

चतुर्दशसमारण्य शरण्यः सीतयाव्रत-।
श्चातुर्दशवधाभ्यासी चतुरश्चतुरो द्यतु।।३।।

चतुर्दशेऽस्मिन् शकले चतुर्थं ब्रह्मनिष्कलम्।
चातुरी त्वरया रीत्या चतुर्भिर्मन्त्रकैर्नुतम्।।४।।

भक्त्याचार्यस्तु शाण्डिल्यः, शाण्डिल्यं स्थाण्डिलेशयम्।
सर्वभावनयोपास्यं ब्रह्मरामाभिधं जगौ।।५।।

तत्र हि प्रथमे मन्त्रे सर्वव्यापकतां विभोः।
प्रतिपाद्य यथाशास्त्रं तदुपास्तिर्विधीयते।।६।।

त्रिभिर्मन्त्रैः पुनस्तस्य ताटस्थ्येन स्वरूपतः।
लक्षणेनाथ संल्लक्ष्य ब्रह्मोपास्यत्वमीरितम्।।७।।

परमार्थस्तु न ज्ञानं श्रेयसां भक्तिरित्यतः।
ज्ञानानन्तरमप्यस्मात् श्रुतिर्गायत्युपासनाम्।।८।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपासना तु भेदे स्यात् नैवाभेदे कथंचन।
तद्विधित्वादिहानेन ध्वस्तमद्वैतमञ्जसा ।।९।।

अद्वैतवाददुर्मर्षकालकूटार्दनं बुधैः।
श्रीराघवकृपाभाष्यपीयूषं पीयतामिह ।।१०।।

नैवद्वेषो विरोधो मे नैव पूर्वाग्रहो मम।
श्रुत्यक्षरविचारोऽत्र विवेकेन विविच्यते ।।११।।

सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत
अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिंल्लोके ।
पुरुषो भवति तथेतः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिल्लोके
पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्यः भवति स क्रतुं कुर्वीत ।।१।।

इदम् सर्वम् ब्रह्म खलु तज्जलानि इति शान्तः उपासीत एषः मन्त्रपूर्वार्धान्वयः। इदं प्रत्यक्षीभूतम् चराचरं जगत् ब्रह्म ब्रह्मात्मकम्, अथवा इदम् एः कामस्य खण्डकं ब्रह्म सर्वसर्वेश्वरं श्रीरामाभिधं परतत्वं सकलब्राह्मणशीलं ब्रह्म सर्वं सर्वत्र। ननु सर्वमित्यस्य सर्वत्रेति कथमर्थः? अत्र सुस्पष्टं ब्रह्मसमानाधिकरणारूपसर्वमिति प्रथमाविभक्तिश्रवणात्। तस्याश्च क्वाप्यधिकरणवाचकत्वाश्रवणादिति चेत् सत्यं सर्वमिति सप्तम्यन्तमेव कथमिति चेत् सर्वेषु इति सप्तमीबहुवचनान्तस्य छान्दसं रूपमेतत् सुपः **सुपां सुलुक्** पा. अ. ३-३ इत्यनेन स्वादेशे तस्य 'अतोऽम्' इत्यमि पूर्वरूपे सर्वमिति। न च 'अतोऽम्' इत्यस्य प्रथमाद्वितीयायामेव प्रवृत्तेस्त्वत् साधितं रूपं सप्तम्यन्ते नोपपद्यत इति वाच्यम्? 'स्वमोर्नपुंसकात्' इत्यस्मात् अम् विधायके स्वमोरनुवृत्तो शास्त्रसम्मतायां सत्यामपि तत्र प्रथमा द्वितीययोरेव प्रवृतौ मानाभावात्। सोश्च ततोऽपीतरविभक्तिषु दर्शनादेशतया त्वच्छङ्कानिर्मूला। एवं **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** इति श्रुतिशकलस्य सर्वेषु प्राणिषु विषयतया उपश्लिष्टतया च विराजमानम् इदं श्रुतिप्रसिद्धं ब्रह्म खलु, निश्चयेन विभाति इति फलितार्थः। प्रमाणं चास्मिन् व्याख्याने भगवद्वाक्यमेव—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

(गीता ५-१८)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ननु परतः प्रामाण्यसूचकस्मार्तवाक्यं दुर्बलं श्रुत्यपेक्षया? सत्यं श्रुत्यन्तराण्यपि प्रमाणानि तद्यथा एष सर्वेषु **भूतेषु गूढोऽत्मा न प्रकाशते दृश्यते त्वग्र्यया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः** (कठ, १-३-१२) तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पि (श्वेता. ६-१९) **सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा** (श्वेत. ६-१२) इत्यादीनि। तथा प्राह मानसकारोऽपि

ज्ञान मान जहँ एकउ नाही।
दीख ब्रह्म समान सब माही।।

(मानस ३/१५/७)

तत्सर्वत्रवर्तमानं सर्वात्मकं वा ब्रह्म कथमुपासनीयमिति जिज्ञासायामाह— तदित्यादि शान्तः, शान्तभजनप्रत्यवायरूपबहिरङ्गवृत्तिसमुदायः नित्यशान्तियुक्तो वा, कथमुपासीत? ज्ञात्वा, किं प्रकरकं तज्ज्ञानम्? इति स्पष्टयति—तज्ज्लानि तच्छब्देन पूर्वं चर्चितः सर्वम् इति शब्दः परामृश्यते तस्मात् ब्रह्मणः सकाशादजायत इति तज्जं तस्मिन् ब्रह्ममण्येव महाप्रलये लीयते श्लिष्यते इति तल्लं तेन ब्रह्मणा करणीभूतेन पात्यमानं सत् अनिति जीवति इति तदन् तथा च तज्जं च तल्लं च तदनंचेति तज्जलान् त्रयाणां समाहारे एकवद्भावे बाहुलकात् तच्छब्दद्वयलोपे तज्जलानि सर्वमिदं जगत्। अत एव ब्रह्मात्मकं, यतोहि तस्मात् जायते तस्मिंल्लीयते तेनानति च एवं जगत्प्रतिजन्मस्थितिभंगहेतुतया ब्रह्मणस्तदात्मकता सुवचैव **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।** (तै.उ.ब्र.ब. १) इति श्रुतेः। एवं सर्वमिदं ब्रह्महेतुतयैव जन्मस्थितिसंहरणवत्तया ब्रह्मबुद्ध्यैवसमुपास्यमिति श्रुतेर्हार्दम्। इति शब्दोत्र समवधारणपरः, एवं रूपेण समवधार्येतिभावः। उपासीत उपासनाविषयं विदधीत सेवकसेव्यभावसंबन्धेन चराचरमपि ब्रह्मबुध्यैव भजेत इत्याशयः। सर्वमिदं ब्रह्मात्मकतया ज्ञात्वा ततो भगवन्तं भजनविषयं कुर्यात्। इत्यनेन ज्ञानस्य चरमलक्ष्यतापरास्ता। वस्तुतस्तु भगवद्भजनानन्द एव। जीवस्य चरमतलक्ष्यमिति राद्धान्तः।

उपासनं भेदबुद्धिसापेक्ष्यं तच्च शरीरनिर्भरं शरीरं च संकल्पजन्यं पूर्वजन्मसंकल्पभवा हि भावः शरीरग्रहणे हेतुः तस्मात् सत्संकल्पप्रभवशरीरं नभगवद् भजनोपयोगि तस्मात् सत्संकल्पकरणाय विधिमुखेन श्रुतिर्निर्दिशति, अथेत्यादिना-खलुशब्दोऽत्रवक्तव्ये निःसंदेहसूचकः पुरुषः पुरुषार्थपथपान्थः जीवः क्रतुमयः संकल्परूपः अस्मिँल्लोके पुरुषः जीवः यथाक्रतुः यादृक्संकल्पवान् भवति यथासंकल्पेन कलेवरं जहाति इति भावः। इतः प्रारब्धक्षये अस्माँल्लोकात् तथा क्रतुः तादृक्संकल्पानुरूपशरीरवान्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरीरवान् भवति सत्संकल्पकारी हि: गृहीतसच्छरीरः सत्सङ्गगङ्गातरङ्गनिरस्त भगवद्भजनप्रत्यवायपादपः प्रभुपदपल्लवं प्रपद्यते। असत्संकल्पः सूकरकूकरादि-योनिषु चिरं भ्राम्यन् भीषणभवदवाग्निना दन्दह्यते। अतः स साधकः क्रतुं कुर्वीत् भगवद्भजनानुरूपसंकल्पं विदधीत इतिविधिः। अयमेवार्थो भगवता श्रीगीताषूप बृंहितः—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।
यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।श्रीः।।

(गीता. ८।५।६)

भूयः परमेश्वरस्वरूपं यत्किंचित्तया विवृणोति—

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः
सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा
सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः
सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ।।२।।

अथ यः निखिलचराचरव्यपकः सः सर्वविश्रुतपौरुषः, किं रूप इति द्वादशविशेषणैः स्वरूपं लक्षयति— सः परमेश्वरः मनोमयः, ननु विरुद्ध एष निर्देशः काठके अयमेव परमात्मा मनोरहित इति पठितः। तथा च अप्राणोह्यमनाशुभ्रः (कठ. १-३-१) अप्राणः अमनाः कथं मनोमयः प्राणशरीरो भवेत्? इतिचेन्न तस्य सकलासंभवमयत्वात् तथा चाह श्रुतिः **अपाणिपादोजवनोगृहीतां** (श्वे.उ. ५.१९) भगवतश्च एककालावच्छेदेन एकाधिकरणनिष्ठसकलविरुद्धधर्माश्रयतावच्छेदकता स्वीकारात्। अथवा अप्राणः अमना इत्यत्र प्रयुक्तो नञ् समाससूचकाकारो न निषेधपरः, प्रत्युत अनुपमाव्यक्तार्थवाची। एवम् अनुपमाः अव्यक्ताः वा प्राणाः यस्य सोऽप्राणः एवमेव अनुपमम् अव्यक्तं वा मनो यस्य सोऽमनाः भगवतोमनसः वैलक्षण्यं मानसकारोऽपि आह—

कुलिसहु चाहिकठोर अति कोमलकुसुमहि चाहि।
चित्तखगेस रामकर समुझि परइ कहु काहि।।

(मा.उ. १९ ख)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनया व्युत्पत्या विरोधपरिहार:। अथवा मनोमय: इत्यत्र मयट् प्रत्यय:, स्वरूपार्थे पुल्लिंगता च विशेष्यानुरोधिनी, एवं मन एव मनोमय: मनोऽपि भगवद्विभूतित्वात् तत्स्वरूपमेव तद्यथा—इन्द्रियाणां मनश्चास्मि (गीता. १०-२१) एवं भगवतो मनोरूपत्वे तन्मनोऽभाववत्वे च न विरोध:। अथवा अपूपमय इत्यादिवत् **तत् प्रकृतिवचनेमपट्** इत्यनेन सप्तम्यर्थे मयट्। तथाहि मनांसि तच्चरणकमलसमुपासकानां कोटिकोटि मनोभ्रमरा: सन्ति यस्मिन् प्राचुर्येण इतिमनोमय:, भगवत: स्वनिरूपितमनोभाव-सूचनाय अमना: इति। परन्तु तत्र शत् शत् भागवत परमहंस मनोभृंगसद्भावसूचनाय मनोमय इति। तथोक्तं केनचिद्भक्तेन—

रत्नाकरस्तवगृहं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ।
आभीरवामनयनाहृतमानसाय
दत्तं मनो यदुपते कृपया गृहाण ।।

अथवा भक्तभावनापरिपालनाय निरस्तनिखिलदूषणं भूषणभूषणं निरतिशय-सकलकल्याणगुणगणनिलयं सगुणसाकारं वपुर्दधानो भगवान् निजलीलोपकरणार्थं नूतनं मनोऽपि विदधाति।

तद्यथा रिरंशुर्गोपीभि: प्रभु: नूतनं मनोरचयति— अत: प्राह भागवते वीक्ष्यरन्तुं मनश्चक्रेयोगमायामुपासित: ।

(भागवत १०-२९-१)

अमना अपि भगवान् शरदोत्फुल्लमल्लिका: स्वस्मै सर्वस्वं समर्पयन्ती श्री व्रजाङ्गना: विलोक्य ताभि: सह रन्तुं मन: चक्रे रचयामासे। कथं रचितवान्? इत्यत आह— योगमायामुपाश्रित:। यतोहि स परमात्मा अघटितघटनापटीयसीयोगमायाम् उपाश्रित: तया सह समन्वयेन लब्धरचनासामर्थ्यो निजरमणानुकूलं मनो व्यधात्। चक्रे इति आत्मनेपद प्रयोगस्य तात्पर्यमेवैतत् ञकारानुवन्धकोहि डुकृञ्धातु: निर्माणानुकूलव्यापारार्थोऽपि, कुम्भकारो घटं करोतिवत्। अथवा गत्यर्था ज्ञानार्था इति नियमात् मनसा निजसंकल्पेन मयति चराचरं जानाति इति मनोमय:। भगवान् हि स्वसंकल्पेन चराचरं जानाति **'सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यज्ञानमयं तपः'** इति श्रुते:। **'उत्पत्तिं च विनाशञ्च भूतानामगतिं गतिं वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवान् इति'**। इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्मृते:। अथवा मनसा निजसंकल्पबलेनैव छन्दोमयेन गरुडेन मर्याति गच्छतीति मनोमयः भगवान हि भक्तेन स्मृतमात्रः समातुरः तत्र गच्छति। यथोक्तं श्री भागवते गजेन्द्र- मोक्ष प्रकरणे—

तं तद्‌वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सहसंस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्
चक्रायुधोऽभ्यगमदासु यतो गजेन्द्रः ।।

(भगवत ८-३-३१)

अथवा मनसा निर्मलशान्तेन स्वान्तेन मीयते दृश्यते अवगम्यते इति मनोमयः 'मनसैवानु द्रष्टव्यम्' इति श्रुते:।

निर्मल मन जन सो मंहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

मानस ५-४४-५

इति मानसात्। प्राणशरीरः प्राणः सकलप्राणिनामुपजीव्यः शरीरः श्रीविग्रहः यस्य स प्राणशरीरः **स उ प्राणस्यप्राणः** केन उपनिषद १-२। अथवा प्राणः विशुद्धचेतनघनशरीरं यस्य तथाभूतः जीवात्मा **'यस्मात्मा शरीरम्'** इति शतपथब्राह्मणात्। **जगत्सर्वं शरीरं ते** इति श्रीमद्रामायणे ब्रह्मसम्बन्धः साधित। चिदचिती प्रत्यगात्मप्रकृती, शरीरे विशेषणे च भगवतः ताभ्यां चिदचिद्भ्यां विशिष्टमद्वैतं विशिष्टाद्वैतमित्येव नो राद्धान्तः। अथवा प्राणः ओंकारः वाचकतया शरीरः अक्षराकारः यस्य स प्राणशरीरः 'प्राणस्तु प्रणवे प्राणेइति कोशात्। प्रणवो हि प्राणः सोऽपि भगवद्विग्रहश्रीरामश्रुतौ तस्मादेव चतुर्ण्णां भ्रातृणां श्रीरामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नानां सम्भवनिदर्शनात्। **अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः। उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसः स्मृतः। प्राज्ञात्मकस्तु भरतो** मकाराक्षरसम्भवः अर्धमात्रास्थितोरामः सच्चिदानन्दविग्रहः। भारूपः भा ज्ञानं तदेवरूपं यस्य स भारूपः विशुद्धज्ञानघन इति भावः। अथवा भाति परमेश्वरप्रेम-रविरश्मिरोचिषा कौमुदीव भक्तहृदयगगने या सा भा भगवद्भक्तिः तया भया भक्तिरूपया रूप्यते बोध्यते यः सः भारूपः। भक्त्या हि भगवान् सामग्र्येण ज्ञातुं शक्यते। **भक्त्या त्वनन्यया शक्य** अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन वेष्टुं च परंतप।। गी. ११-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५४ **भक्त्यामामभिजानाति यावान्यश्चाश्मि तत्वतः** गी. १८-५५ इति स्मृति प्रामाण्ययुगलनिदर्शनात्। सत्यसंकल्पः लीलाचिकीर्षाव्यापारः यस्य स सत्यसंकल्पः, अथवा सद्भ्यो महात्मभ्यो हितः कल्याणकारीसंकल्पः लीलाकरणनिश्चयो यस्य स सत्यसंकल्पः। आकाशात्मा नीलो गम्भीरो निर्लेपः व्यापकः करुणाकादम्विनीमण्डितः दीनानुग्रहनभस्वता समुपेतः आत्मा स्वरूपं यस्य स आकाशात्मा। यथा आकाशे समवकाशदातृत्वं तथैव अनन्तकोटिब्रह्माण्डनिलयभूतं भगवतः श्रीरामस्य प्रत्येकं रोम। यथा आकाशे उषायां सायं च भास्करकिरणाः पीताः तथैव भगवति विराजमानं कट्यवच्छेदेन बालदिवाकरसौदामिनीद्युतिविनिन्दकं पीताम्बरम्। यथाकाशे नक्षत्रापि तथैव भगवत्याभूषणानि, यथा नभसि चन्द्रमाः तर्थवात्र कोहि कोटि शरच्छशांक विनिन्दकं भगवदाननम्। एवमेव बहवः पक्षाः ऊह्याः। सर्वकर्मा— सर्वाणि श्रुति विहितानि नित्यनैमित्तिकप्रायश्चितोपासनानि कर्माणि यस्मै यदर्थं निर्दिष्टानि स सर्वकर्मा। सर्वकामः-सर्वे कामाः मनोरथाः यस्य यस्मै वा स सर्वकामः, अथवा सर्वैरपि सुरासुरैरपि काम्यते दर्शनेच्छाविषयः क्रियते स सर्वकामः, भगवान् हि चराचर दिदृच्छाश्रयः। किं बहुना अचेतना अपिं सरोवरसरितः भगवन्तं परिचित्य मार्गं ददति। दण्डकविपिन-विहारिणः श्रीहरेः चण्डातपस्य घर्मवारणाय मेघोऽपि स्ववपुश्छत्रेन छायां करोति रघुपतेः। यथा—

सर सरिता बन अवघट घाटा।
पति पहिचानदेहि बर बादा।।
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया।
करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया।।

मानस ३।४-५

सर्वगन्धः— गन्धशब्दोऽत्र सुगन्धवाची, सर्वे गन्धाः सुगन्धाः उपभोग्यतया सन्ति यस्य य सर्वगन्धः, अथवा सर्वेषाम् उपासकानां पूजनार्थं प्रयुक्तः गन्धः यस्मै स सर्वगन्धः, अथवा गन्धो **रसे च सम्बन्धं इति कोशात्**। गन्धशब्दः सम्बन्धवाची, एवं सर्वैः चराचर—प्राणिभिः सहः गन्धः सम्बन्धः। यथोक्तं कैकेयीं प्रति भरतेन—

अस को जीव जन्तु जग माही।
जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाही।।

मानस २-१६३-६

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वरसः— सर्वे रसाः स्वादाः यस्मै यस्मिन् वा सन्धाः सर्वरसः, वस्तु-तस्तु सर्वे गन्धाः यस्मात् स सर्व गन्धः सर्वेरसाः यस्मात् स सर्वरसः रसोऽहमप्सु थोन्तेय गीता ७-८ पुण्यो गन्धः पृथिव्याञ्च। इत्यादि स्मृतेः। एवं नवविशेषणविशिष्टो भगवान् सर्वं चराचर- मेतज्जगत् अभ्यात्तः अभिमुखी कृत्य तस्मिन् व्याप्तः उच्यते इति। अवाकं न विद्यामानं पूर्णतया प्रतिपादनार्हम् वाकं जीववाङ्मयं यस्मिन् स अवाकः। अनादरः नपरितोषकः आदरः यस्य सोऽनादरः भगवान् विशुद्ध प्रेम्णा परितुष्यति नैव प्रेमरहितेन आदरोपचारणेन। विदुरग्रहे भगवतः कदलीफलशाकस्वीकार एव एतच्छ्रुति सिद्धान्त-प्रयोगः। अथवा दरः भयं ईषद् दरः आदरः न विद्यते महाकालादपि आदरः ईषन्मात्रं भयं यस्मिन् सोऽनादरः **अभयं निर्जरं ब्रह्म** इति श्रुतेः। अत एव साक्षाद् ब्रह्ममयोहरिः श्री रामः सकलभीषणमपि विभीषणमभयेन योजयन् प्राह सागरोत्तरतटे—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।

(वा.रा. ६-१८-३३)

एवं अनादरः निर्भयः इति वयं, यत्तु अनादरः संभ्रम रहितः तत्तु चिन्त्यम्, संभ्रमार्थस्यादरशब्दस्य कुत्रापि कोषेष्वदृष्टत्वात्।।श्रीः।। अथ परमात्मनोऽणुत्वं ज्यायश्त्वं विरुद्धधर्मद्वयाधिकरणत्वं निदर्शयति शाण्डिल्यः—

एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा
सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतम्डुलाद्वैष
म आत्मान्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरि-
क्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः ।।३।।

मे मम शाण्डिल्यस्य ब्रह्मसाक्षात्कर्तुर्हृदये हृद्देशे अन्तः विराजमानः एषः मयाकृत-साक्षात्कारः आत्मापरमात्मा, ब्रीहेः धान्यात्, यवात्, सर्षपात्, श्यामाकात् पृथुकात्, श्यामकतण्डुलात्, पृथुक् तण्डुलादपि अणीयान् सूक्ष्मतरः, अत्र पञ्चधाप्रयुक्तो वा शब्दः अप्यर्थः, स चाधिक्ये। एवमेव मम हृदयान्तर्वर्तमानः एषः आत्मा सर्वव्याप्तिमान् पृथिव्याः भूमेः ज्यायान् श्रेष्ठतरः, अन्तरिक्षात् भुवर्लोकात्, दिवः स्वर्गलोकात् एभ्यः भूर्भवःस्वराख्येभ्यः लोकेभ्यो ज्यायान् प्रशस्यतरः। एवं भक्तानां कृते **अणोरणीयान्** ज्ञानिनाम च कृते **महतोमहीयान्** इति विवेकः। एवमेव श्रुत्यन्तरम् **अणोरणीयान् महतोमहीयान्** कठ.उ. १-२-२०।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनः सगुणब्रह्मोपासनामेव संस्तौति—

सर्वकर्मा सर्वकामा सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमदिमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्मान्तर्हदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मि यस्य स्यादद्धा न विचिकित्सास्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः।।४।।

सर्वकर्मा सकलकर्माश्रयः सर्वकामत्वसर्वगन्धत्वसर्वरसत्वादियुक्तः सर्वव्यापकः वागगोचरो निर्भयो मे हृदयान्तरवर्तमानः एषः आत्मा अन्तर्यामी परमात्मा एतद् ब्रह्म इदमेव श्रुति प्रतिपादितं परतत्वम्। इतः संसारात् प्रेत्य शरीरविसर्जनेन सह गत्वा तं तमेव परमात्मानं संभवितास्मि प्राप्तास्मि, यस्य साधकस्य अद्धा आश्चर्येऽस्मिन् न विचिकित्सा स्यात् तस्यापि सन्देहरहितस्य एवमस्ति इत्थं ब्रह्मानुभवो भवति। इति अनेन प्रकारेण शाण्डिल्यः भक्तिशास्त्राचार्यः आह विज्ञापयत् द्विरुक्तिः आदरार्थः।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये चतुर्दशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

अथ पंचदशखण्डः

इत्थं चतुर्दशे खण्डे सर्वकाम इत्यादिभिः भगवति सकलकल्याणगुणगणनिलयत्वं तस्य सर्वात्मकतया जगज्जन्मस्थितिभंगकारणतया चोपास्यत्त्वं शाण्डिल्यमुखेन विधित्वेन निर्दिष्टं कारयित्वा पुनस्तस्यैव विराट्तयोपासनां निरूपयति। एतज्ज्ञानेन यथास्य कुले जायमानो वीरपुत्रो दीर्घायुष्ट्वाय कल्पयति। विराड्ब्रह्मणः समुपासनं हि लोकद्वयसमृद्धिं साधयति। भगवदुपासनेन लब्ध्या सा नक्षयं गम्यते अत आह वैराजं स्वरूपम्—

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलंꣳस एष कोशो वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिदꣳश्रितम् ।।१।।

अयं सर्वकामः सर्वकर्मा सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वरूपः सगुणसाकारः स्निग्धाकारः कौशल्याकुमारः ब्रह्माभिधेयो रामः वामनोऽपि विराट् तथोक्तं काठके **मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते** (कठः १-३-५) सः कीदृशः? इत्यत आह, कोषाकारः सकलभुवनानां निखिलकल्याणगुणगणानाञ्च भाण्डागाररूपत्वात् कोषोपमेयता समुचितैव, अतस्तद्रूपकविधया विशिनष्टि। अन्तरिक्षोदरः अन्तर्भूतानि रिक्षाणि नक्षत्राणि यस्मिन् तत् अन्तरिक्षम्। रिकारे रेफश्रवणात् 'रोरि' इत्यनेन अन्तर्घटकरेफ लोपः व्यत्ययात् ढ्रलोपकार्याभावः। तत् अन्तरिक्षं नभः उदरं मध्यरन्ध्रं यस्य स अन्तरिक्षोदरः नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्। इति श्रुत्यन्तरात्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमेव आकाशमध्यो भगवान् विराट् भूमिबुघ्नः भूमिः पृथ्वी बुघ्नः मूलं चरणरूपं यस्य स भूमिबुघ्नः **बुघ्नोमूलं पदं चादिः** इति श्रीवैष्णवकोषात्। **पद्भ्यां भूमिः** इति मन्त्रार्णवाः। एवं नभो मध्यो भूमिपादः प्रभुः कोशः कारः सन् विराडाकारोऽपि नाशमेति नवेति संशयं छिन्दन्ती श्रुतिप्राह— सामान्याः खल्वाकारवन्तो नश्यन्ति किन्तु नायं तथा अत आह— न जीर्यति, न जीर्णो भवति नैव वयोहान्या युज्यते। स तु सदैव स्निग्धसरोजसम्मितसान्द्रपयोदसौभगनिखिलसौन्दर्य सारसर्वस्वसुन्दरश्यामलशरीर-भग्नकोटिकोटिकन्दर्पदर्पः तथा चाह ब्रह्मापि **नित्यं किशोर वयसम्** (बृहद् ब्रह्मसंहिता) न जीर्यति नैव नष्टो भवति। तथोक्तं श्रीगीतासु अजोऽपि सन्नव्ययात्मा (गीता ४-६) यस्य कोशाकारस्य विराजो भगवतः दिशः पूर्वादयः स्रक्तयः कोणानि कोशपक्षे विराट्पक्षे तु पार्श्वस्थानानि श्रोत्रादिरन्ध्राणि वा दिशः श्रोत्रात् इति मन्त्रात् **स्रक्ति स्त्रीकोणरन्ध्रयोः** इति वैष्णवकोषात्। एवमस्य उत्तरं बिलं ब्रह्मरन्ध्रं शीर्षभागः द्यौः स्वर्गलोकः **शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत** इति श्रुतेः।

पद पाताल सीस अज धामा।
अखिल लोक अंग विश्रामा।।

(मानस २।१५।१)

एवं भूतः सकलविश्वमयः सः श्रुतिप्रसिद्ध एषः अयं भक्तिसम्बलितदिव्यदृष्टिगोचरः कोषः सौन्दर्यैश्वर्यमाधुर्यलावण्यकारुण्यतारुण्यसौशील्यसौलभ्यसौजन्यदयादाक्षिण्य प्रणतपालकत्वभक्तवात्सल्याद्यपरिमितकल्याणगुणगणभाण्डागाररूपः भगवान् कीदृशः? इत्यत आह— वसुधानः, वसूनि सकलधनानि धीयन्ते सन्निधीयन्ते यस्मिन् इति वसुधानः अत्र **करणाधिकरणयोश्च** इत्यनेन अधिकरणे ल्युट्। धीयते अस्मिन्निति धानः पुनश्च सम्बन्धविवक्षायां वसूनां धानः वसुधानः इति षष्ठी समासः अयं प्राचीनानुसारी पन्था। नव्यास्तु— वसु निजपदपद्मप्रणतजनप्रेमभेक्तिधनं दधाति परमाश्रयतया बिभर्ति अकारणकरुणतया च पुष्णाति इति वसुधानः। अत्र बाहुलकात् कर्त्तरि ल्युट्। पुनश्च वसु-शब्दश्च शेषषष्ठीसमासः, अथवा वसुधां पृथिवीं आनयति जीवयति भूभारावतरणेन स वसुधानः, यद्वा वसुधां बलेराछिद्य इन्द्राय आनयति अर्पयति इति वसुधानः, अथवा वसुधां पृथिवीं हिरण्याक्षेण पातालं नीताम् आनयति उद्धरति निजदन्तकोट्या वाराहरूपो भगवान् स वसुधानः, अथवा वसुधायाः भूमेः सुता इति वसुधासुता तामपि धनुर्भङ्गेन मिथिलापुरात् रावणवधेन लंकापुरात् आनयति स वसुधानः। एवमेव वसुधासुताम्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आनयति जीवयति निजनामघटकवर्णप्रहरीद्वयेन यः स वसुधानः, उभयत्र सुता शब्दस्य लुप्तत्वेऽपि पूर्वपदस्य लुप्यमानार्थाभिधायित्वादर्थसंगतिः। वसुधासुता हि रामनाम्नैव अशोकवाटिकायाममनायि। तथोक्तं श्रीहनुमता मानसे—

नाम पाहरु दिवसनिशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित, प्रान जाहि केहिबाट।।

(मानस ५.३०)

तस्मिन् विराजि इदं विश्वं प्रत्यक्षं जगत् विश्वं सम्पूर्णं श्रितम्, आधारीकृत्य स्थितम्।।श्रीः।।

भगवतः स्रुक्तिरूपाणां दिशां विभागं दर्शयति—

तस्य प्राची दिगजुहूर्नाम सहमाना दक्षिणा
राज्ञीनाम प्रतीची सुभूता नामोदीची तासां वायुर्वत्सः
स य एतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद न पुत्ररोदꣳ रोदिति
सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदꣳ रुदम् ।। २।।

तस्य भगवतः स्रुक्तिभूता प्राचीदिक् पूर्वादिशा जुहूः हूयते आहूयते ब्रह्म यामभिमुखीकृत्य सा जुहूः, जुह्वति अग्निहोत्रं यदभिमुखं वा यासा जुहूः अत्राधिकरणे उण्प्रत्ययः, श्लुभावः। तदनुगुणकार्यं च पूर्वदिश्येव ब्रह्मणः समाह्वान् जायते। अतएव वेदव्यासो देवकीं तुलसीदासश्च कौशल्यां प्राचीदिशैवोपमिमीते तद्यथा—

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।
आविशसीत् यथाप्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः।।

(भा. १०.३.९)

मानसेच—

बंदउ कौशल्या दिसि प्राची।
कीरति जासु सकल जगमाची।।
प्रगटेउ जहँ रघुपतिससि चारु।
विस्वसुखद खलकमलतुषारु।।

(मा. १।१६।४।५)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दक्षिणा अवाची सहमाना सहन्ते चण्डातपं ग्रीष्मे मध्येह्नि सूर्यस्य यस्यां सा यथार्थनामा। प्रतीची पश्चिमादिक् राज्ञी वरुणस्य राज्ञः तत्रपत्नीवोपचारात् तथाभूता, अथवा राजते सायन्तनसूर्यारुणिम्ना, अथवा रज्यते नक्षत्रज्योतिषा राजते च सायन्तने स्वामभिमुखीकृत्यसन्ध्यामुखद्विजैः, उदीची उत्तरादिक् तद् विभूतिमयी, अथवा सुः परब्रह्माभिधानः श्रीरामः भूतः पुत्ररूपेणाविर्भूतः दशरथगृहेयस्यां सा सुभूत। यथोक्तं मानसे—

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि।
उत्तरदिसि बह सरयूपावनि।।

(मा.उ. ३.४.५)

आसां दिशां जुहुः सहमानाराज्ञीसुभूतानाम्नीनां वायुः समीरणो वत्सः शिशुरिव यथा शिशुरङ्के खेलति मातुः तथैव वायुर्वाति दिशि दिशि। यथा वत्सः मातृस्तन्यं धयति तथैवायं दिगमृतं पिबति। एवं यः दिशां वत्सरूपं वेद जानाति सः पुत्ररोदं पुत्रविषयकक्रन्दनं न रोदिति नैव विलपति, तस्यसमक्षं पुत्रो न म्रियते। स्वानुभवमाह सोऽहम् एतं वायुं दिशां वत्सरूपं वेद जानामि अत एव पुत्ररोदं मा रुदम्, न पुत्र विषये रोदनं कृतवान् जीवित्पुत्रोऽभवमिति भावः।।श्रीः।।

अथ पञ्चभिर्मन्त्रैः प्राणादिप्रपत्तिप्रकारमाह—

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनामुनामुना प्राणं प्रपद्येऽमुनामुनामुना भूः प्रपद्येऽमुनामुनामुना भुवः प्रपद्येऽमुनामुनामुना स्वः प्रपद्येऽमुनामुनामुना।।३।।

अरिष्टं सकलमंगलमयं कोशं करुणाकोशपरमात्मानम् अमुना पुत्रेण हेतुना प्रपद्ये, त्रिरुक्तिः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिस्थहेतुकप्रपत्तिद्योतिका एवं प्राणं भूः भुवः स्वः इति चत्वारि भगवतो नामरूपलीलाधामप्रतीकानि तिसृषु अवस्थाषु पुत्रजीवातवे प्रपद्ये।।श्रीः।।

अथ न चतुर्भिर्मन्त्रैः चतुर्णां प्रपत्तिकर्मणां स्वयमेव श्रुतिर्व्याख्यानं करोति—

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदꣳ।
सर्वं भूतं यदिदं किञ्च तमेव तत्प्रापत्सि।।४।।

प्राणप्रपत्तिमुत्पादयति, 'सः प्रपत्ताहं प्राणं प्रपद्ये 'इति पूर्वमन्त्रे यत् अवोचम् अकथयं तस्यायं हेतुः यत्किंच भूतं सत्तामात्रम् इदं सर्वं प्राणएव प्राणपरिणामः तत्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मात् कारणात् तं प्राणमेव प्रापत्सि शरणमगमं प्राण एवभगवन्नामप्रतीकं प्राणरक्षकत्वात्।।श्रीः।।

अथभूः प्रपत्तिं सोपपत्तिमाह—

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं ।
प्रपद्येऽन्तरिक्षं प्रपद्येदिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ।।५।।

अथ यत् भूः प्रपद्ये इति अवोचं तत्र भूपदेन पृथिवीमुपलक्षणतया अन्तरिक्षं दिवं एवं लोकतत्रयं भगवद्रूपं प्रपद्ये इति अवोचम् इत्युपादिशम्। अथ भुवः प्रपत्तिं साधयति—

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं प्रपद्ये।
वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम्।।६।।

अथ भुवः अन्तरिक्षं प्रपद्ये इति यदहमवोचं तदुपलक्षणतया अग्निं वायुम् आदित्यम् इति, त्रीनपि भगवद्विभूतिरूपान् लीलोपकरणविशेषान् प्रपद्ये प्रपन्नो भवामि। इति एतदभिप्रायेण अवोचं प्रपत्तिं प्रत्यशृण्ववम्।।श्रीः।।

अथ स्वः प्रपत्तिं सोपपत्तिं निरूपयति—

अथ यदवोचँस्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये ।
सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम् ।।७।।

अथ यत् स्वः प्रपद्ये इति तृतीये मन्त्रे अवोचम् अकथयं तत् उपलक्षणतया ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदं प्रपद्ये भगवद्धाम् रूपं प्रपत्तिविषयीकरोमि इति अनेनाभिप्रायेण तत् अवोचम् अकथयम्। द्विरुक्तिः समाप्तिसूचिका।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये पञ्चदशेखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सपूंर्णं।।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

अथ षोडशः खण्डः

इदानीं निजदीर्घायुष्याय आत्मानमेव यज्ञप्रतीकत्वेन समुपासितुं श्रुतिर्निर्दिशति। दीर्घायुष्ट्वं हि नैरुद्ध सहितं भगवत्भजनाय परमेश्वरकैंकर्याय च सदुपयोगं भजते। जीवो हि परमात्मदासः स च सरोगोऽल्पायुः सन् न पूर्णतया भगवत्कैङ्कर्यकरणे घटते। तस्मात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महीदासानुभववर्णनेन श्रुतिः सुस्पष्टं षोडशाधिकशतवर्षजीवनाय जपादिप्रक्रियामुपदिशति। अत्रायुषो विभागास्त्रयः, प्रथमश्चतुर्विंशतिवर्षात्मकः स च प्रातःकालिकगायत्र्यसवनसमः। यतो हि गायत्रीछन्दसि चतुर्विंशतिरक्षराणि वयसः प्रथमभागत्वात् प्रातःकालिक सवनतुल्यता। इदं हि वसुदेवताकम्। मध्यावस्थाचतुश्चत्वारिंशद्वर्षात्मिका, सा च मध्यत्वात् माध्यन्दिनसवनतुल्या अत्र संख्यापि त्रिष्टुभा तुल्या त्रिष्टुप्छन्दसि चतुश्चत्वारिंशदक्षराणि अत्र रुद्रादेवता। एवं तृतीयो विभागः अष्टचत्वारिंशत् वर्षात्मिकः चरमत्वात् तृतीयसवनसमत्वं जगतीछन्दसः अष्टचत्वारिंशदक्षराणाम् एतद्वर्षसंख्यया सादृश्यम् अत्रादित्या देवता। एवं यथाक्रमं वसुरुद्रादित्यानां समाराधनेन तेषां कृपया लब्धनैरुज्यसहितशताधिकषोडशवर्षायुः भगवन्तं सुखेनसमाराधितुं पारयतीति खण्डार्थः। अक्षरार्थस्तु संक्षेपतोऽनुपदं व्याख्यायते।

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विँ॒शतिवर्षाणि
तत्प्रातःसवनं चतुर्विँ॒शत्यक्षरा गायत्री गायत्रं
प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा
वाव वसवं एते हीदँ॒ सर्वं वासयन्ति ।।१।।

पुरुषः, परमार्थसाधनरूपपुरुषार्थसम्बन्धः पुरि शरीरे निश्चयेन शयनशीलः, वाव निश्चयार्थो निपातः, यज्ञः यजनशीलः इज्यमानश्च यजते इज्यते इति यज्ञः। इत्थं व्युत्पत्तिद्वयदर्शनात् तस्य यज्ञरूपस्य पुरुषस्यं प्रत्यगात्मनः जीवनस्य प्रारम्भिकाणि चतुर्विंशति वर्षाणि तानि एव प्रातःसवनं गायत्रं सा च चतुर्विंशत्यक्षरा चतुर्विंशतिः अक्षराणि यस्याम् इति बहुब्रीहिः। अत्र वसवः प्राणाः प्राणाधिष्ठितृदेवताः वसन्त्यस्मिन्शरीरे वासयन्ति च इदम् इति व्युत्पत्तिद्वयात्।।श्रीः।।

अथ प्रार्थनाप्रकारमाह—

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा
वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिन सवन
मनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो
विलोप्सीयेत्युद्धव तत एत्यगदो ह भवति ।।२।।

तम् आत्मानं यज्ञं यजन्तम् एतस्मिन् प्रातः सवनरूपे प्रथमे वयसि चेत् यदि किञ्चित् मृत्यरूपं व्याधिरूपं वा उपतपेत् रोगग्रस्तं कुर्यात् तदा स ब्रूयात् यष्टा मन्त्रमिमं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जपेत्— हे प्राणा:! वसव: प्राणदेवता: मे मम यष्टु: इदं प्रात:सवनं प्रथमवयोरूपं माध्यान्दिनम् अनु अत्र तृतीयार्थे इत्यनेन द्वितीया। मध्यवयोरूपेण सवनेनेत्यर्थ:। संतनुत संयोजयत। अहं यज्ञ: यज्ञकारी जीवात्मा प्राणानां वसूनां प्राणाधिष्ठातृदेवतानां युष्माकं मध्ये मा विलोप्सीय न नष्टो भवेयम्। अथवा अत्रभावलक्षणषष्ठी। युष्माकं रक्षकत्वे सति न विलुप्तो भवेयम् इत्युक्त्वैव मन्त्रं जप्त्वा तत: एत्य तस्माद्रोगान् मुक्त्वोभूत्वा अगदो भवति मुक्तो भवति।।श्री:।।

अथ मध्यमवय: मध्यसवनेन सह संमितयति—

अथ यानि चतुश्चत्वरि ँ शद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिन ँ
सवनं चतुश्चत्वारि ँ शदक्षरा जिष्टुप्त्रैष्टुभं
माध्यनन्दिन ँ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ता:
प्राणा वाव रुद्रा एते हीद ँ सव ँ रोदयन्ति ।।३।।

यानि चतुर्विंशतेरनन्तरभाविनि माध्यन्दिनं मध्येदिने संपादनीयं त्रैष्टुभं त्रिष्टुप्संबन्धि अन्वायत्ता: अनुगता:, एते रुद्रा: रोदयन्ति रुदन्ति च ये ते रुद्रा: इति व्युत्पत्ते: तेषां निसर्गसिद्धक्रूरस्वभावात्।।श्री:।।

अथ रुद्रप्रार्थनाप्रकारमाह—

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा
रुद्रा इदं मे माध्यन्दिन ँ सवनं तृतीयसवन-
मनुसंतनुतेति माहं प्राणानां रुद्राणां मध्ये
यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव एत्यगदो ह भवति ।।४।।

ब्रूयात् रुद्रान् प्रार्थयेत् तृतीयं सवनमनु तृतीयेन सवनेन सह ह एव निश्चयेन तत: तस्मात् परितापकात् उत एत्य उपरिगत्वा उद्धव इत्यस्य उत्ह एव इति विग्रह:।।श्री:।।

अथ तृतीयं व्याचष्टे—

अथ यान्यष्टाचत्वारि ँ शद्वर्षाणि
तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारि ँ शदक्षरा जगती
जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ता:
प्राणा वावादित्या एतेहीद ँ सर्वमाददते ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यानि अष्टषष्टिवर्षादनन्तरभावीनि अष्टाचत्वारिंशत् अक्षराणि यस्यां तथा भूता जगत्या इदं जागतम् इदं दृश्यमानम् आदित्याः विवश्वदादयः आददते गृह्णन्ति।।श्रीः।।

अथादित्यप्रार्थनाप्रकारमाह—

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्
प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनु-
संतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो
विलोप्सीयेत्युद्धैत तत एत्यगदो हैव भवथि ।।६।।

स ब्रूयात् यज्ञकर्त्ता आदित्यान्प्रार्थयेत् आयुरनु आयुषा सह मा विलोप्सीय न लुप्तो भवेयं लुप्सधातुश्छान्दसः आत्मनेपदी लोपार्थः एतत् प्रयोगः, गदो रोगः न विद्यते यस्मिन् सोऽगदः।।श्रीः।।

अथ प्रकरणमुपसंहरति—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति स ह षोडशं वर्षशातमजीवत्प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ।।७।।

ह निश्चयार्थः स्म प्रसिद्ध्यर्थः एतत् इदं रहस्यं तद्विद्वान् सिद्धान्तज्ञाता ऐतरेयः इं जगतकामकेलिं तरति स्वपुत्रमपि तारयति या सा इतरा कापि ऋिषिपत्नी, इतरायाः अपत्यं पुमान् ऐतरेयः महिदासः महीसुतायाः सीतायाः दासः इति महिदासः उत्तरपदलोपो बाहुलकादीकारह्रस्वश्च। कथनप्रकारमाह— किं याम् उपतपसि कथं मां क्लेशयति, अनेन त्वत्कृतत्रितापेन नाहं प्रेष्यामि नाहं मरिष्यामि, इति इत्थं निषेध्य षोडशं षोडस सन्ति यस्मिन् तथा भूतं षोडशाधिकमिति भावः वर्षशतं शताब्दं जीवति सुखं प्राणिति।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये षोडशेखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।

अथ सप्तदशखण्डः

भूयस्तमेव पुरुषयज्ञं पारिशेष्यतः रूपकविधिना निरूपयति—

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षाः ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न खलु दीक्षामन्तरा यज्ञः प्रभवति स्थातुम् अतस्तत् दीक्षां रूपयति—पुरुषमनोवृत्तित्रयेण यज्ञे दीक्षा खलु क्षुत्पिपासा क्रीडाभावसमन्विता भवति, यज्ञेदीक्षितः क्षुत्पिपासे सहते भोगेषु न रिरंसते, तथैवात्र सामान्येन दीक्षागुणधरयावत्तया मानसवृत्तित्रितयमेव पुंसो दीक्षात्वेन व्यपिदिशति, शैत्यादि सह पुरुषरूपयज्ञः यत् क्रियाविशेषणमेतत् वृत्तित्रयं विशिनष्टि अशिशिषति अशितुमिच्छति बुभुक्षत इति भावः। यच्च पिपासति जलं पातुमिच्छति यच्च न रमते ताटस्थ्येन न क्रीडति तदेव क्षुत्तृट्क्रीडाभ्यो विरतिरेवास्य दीक्षा।।श्रीः।।

यज्ञेषु उपषदनियमो भवति येषु ईषत् पयांसि स्वल्पान्यशनानि च दीयन्ते याजकाय तत् सामान्यात् पुरुषाशनपानरमणानि औपसदैः संदृश्यन्ते यदिति—

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति ।।२।।

यदिति पूर्ववत् क्रियाविशेषणं धात्वर्थत्रयं प्रकरोति—सः पुरुषः यदश्नाति भुङ्क्ते, यत पिबति पानं कुरुते, यद्रमते उपलब्धैरिष्टवस्तुभिः क्रीडति, तत् उपसदैः पयोव्रतलब्धनियमसुखावहभोजनपानैः एति सादृश्यं गच्छति इति भावः। यथोपसदेषु यज्ञव्रतकर्षितो ह्यल्पमपि समभ्यवहारं लब्ध्वा प्रसीदति तथैवात्र क्रियात्रये द्वयोरित्थं साम्यम्।।श्रीः।।

भूयः क्रियात्रयं स्तुतशस्त्रैःरूपयति स्तुतशस्त्राणि यज्ञे मखविश्रामप्रसन्नता व्यंजकानि वैदिकानि स्तोत्राणि—

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति ।।३।।

एवं यद्धसति हासं करोति, यद् जक्षति दानंकरोति यन्मैथुनमाचरति पाणिगृहीत्याभार्यया सवर्णया धर्मेण द्वन्द्वभावेन युज्यते तदेव ह्यस्य स्तुतशस्त्रैः प्रसन्नतासूचकवैदिकस्तोत्रैः एति सादृश्यं गच्छति। आशुक्रिया स्तुतशस्त्रजन्यप्रसन्नता साम्यात्।।श्रीः।।

अथदक्षिणां रूपयति—

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा ।
सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ।।४।।

दक्षिणासु पुण्यजनकतावच्छेदकता तत्साम्यं च पुरुषनिष्ठेषु तपोदानार्जवहिंसासत्यवचनेषु तथा हि तपः गीतोक्तं सात्विकं तपस्त्रयं कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतम् इष्टदिदृक्षाजनितविरहतापो वा, दानं निस्वार्थमतिसर्जनं, यथावर्णं यथाश्रमम्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्जवं सारल्यम् इन्द्रियवृत्तिकौटिल्याभावो वा, अहिंसा श्रुतिविहितत्वे सति परपीडनप्रतियोगिकाभावः **'मा हिंस्या सर्वाभूतानि'** इति श्रुतेः सत्यवचनं भूतार्थवाद एवं पुण्योत्पादनतुल्यतया दक्षिणासाम्यम्।।श्रीः।।

एवं यज्ञसवनं यज्ञावभृथमपि पुरुषजन्ममरणाभ्यां तुलयति—

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति
पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवावभृथः।।५।।

तस्मात् अतएव शोष्यति सूतवती भविष्यति अशोष्ट इयं बालकं जनित्तवती इति सवनसमान एव व्यवहारो भवति। पुनः उत्पादनं जन्ममरणम् अयम् अवभृथः यज्ञान्ताभिषेकः अवभृथेन यथा यज्ञसमाप्तिः तथैवमरणेनापि प्राक्तनजन्मकार्यकालसमाप्तिः ।।श्रीः।।

यज्ञदर्शनाचार्यपरम्परामाह—

तद्धैतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय
देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव
सोऽन्तवेलायामेतत्रयं प्रतिपद्ये ताक्षितमस्यच्युतमसि
प्राणसꣳ शितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः।।६।।

ह निश्चयेन तत् एतत् प्रसिद्धं त्रयं यज्ञे विद्या गृस्यसूचकं घोरः घोरनामा घोरतपस्वान् उग्रस्वभावाच्च मध्ये तस्य घोरनाम। आङ्गिरसः अङ्गिरोगोत्रः, अङ्गिरसः गोत्रापत्यं पुमान् आङ्गिरसः देवकी पुत्राय कृष्णाय यद्यपि मत्तः पूर्वभाष्यकृतः सर्वेऽपि अस्य वाक्यखण्डस्य सामान्यजिज्ञासुपरकतया व्याचक्षते। किन्त्वहम् इदं मन्त्रखण्डं वसुदेवनन्दनं परब्रह्मपरमात्मकृष्णपरकमेव मन्ये तथैव च व्याचक्षे। ननु निरतिशय-ज्ञानसम्पन्नस्य सदैकरसस्य भगवतोज्ञानानुपत्तिरिति चेत्, सत्यम्। लोकलीलायां गृहीतमानवतनुः परमात्मनः सम्पूर्णमर्यादितमानवचरित्राणां सर्वथैवोपपत्तेः। तथोक्तं भागवते—

नृणां निःश्रेयसार्थय मानुषीं तनुमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडाः या श्रुत्वा तन्मयो भवेत्।।

(भागवत १०।३३।३७)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत एव भगवतः कृष्णस्य विद्यध्ययनशत्रुदलनपार्थसाहाय्यकूटनीति-व्यापारदारक्रियासन्तानोत्पत्त्यादिकं सर्वं संगच्छते। तस्मात् सर्वज्ञोऽपि गुरुकुलमर्यादां मिमण्डयिषुः यज्ञविद्याम् आङ्गिरसादधिगच्छतीति सूपपन्नम्। एवं ·देवकीपुत्राय कंसपितृव्यपुत्रीदेवकीसुताय कृष्णाय वासुदेवाय उक्त्वा निवेद्य उवाच। किमुवाच? इत्यत आह— भो कृष्ण! अन्तकाले निजलीलासंवरणसमये एतत्त्रयं वक्ष्यमाणं मन्त्रत्रितयं प्रतिपद्यत अत्र 'व्यत्ययेन प्रथमपुरुषः। प्रतिपद्येथा कुत? इत्यत आह, स त्वम् अन्तवेलायाम् अन्तः सलिलान्तः सागरः तस्य वेलातटम् इति अन्तवेला तस्याम् अन्तवेलायां समुद्रतटे प्रभासक्षेत्र इति भावः। एतत्त्रयं प्रतिपद्यथाः। त्रिकालावाधितज्ञानमपि श्रेष्ठचरितप्रामाण्यदर्शनाय श्रुतिरुपदिशति। ननु श्रुतेरपौरुषेयत्वे कृष्णस्य च द्वापरीयत्वे नैतत् संगच्छेतेति चेन्न, त्रिकालदर्शित्वादृषीणां तत्र घटनासु कालपरिच्छेदत्वावच्छिन्न-प्रतियोगिकाभाव एव अत एव श्रुतौ समग्ररामचरितस्य समग्रकृष्णचरितस्य प्रत्येक कथायाः सुस्पष्टं मन्त्रेषूपलभ्यत इति स्वतन्त्रप्रबन्धे निरूयिष्यामः। किं प्रतिपद्ये? इति चेदाह, लोकलीलामिमां संवृण्वानो लोकाभिरामतनुं सोपसमुपसंहरन् इत्थं संभावयेथाः, यत् अक्षितमसि न क्षितं नाशः यस्य तत् अक्षितम् असि व्यत्त्ययेन मध्यमपुरुषः। वस्तुतस्तूत्तमपुरुषार्थः कर्ता प्रतिपद्यमानस्तूत्तमपुरुषत्वात्। एवम् अक्षितमसीत्यस्य अक्षीणं यदुवंश्याणां युध्येऽपि प्राह्वियमाणमपि न कैश्चित्च्छेत्तुं शक्यम्। अतः कश्चिदपि प्रहर्तारं प्रति निर्वैरबुद्ध्या अक्षितमसीति भावना। द्वितीयम् अच्युतमसि गृहस्थाश्रमे अष्टोत्ततरषोडशसहस्रवल्लभासु विपुलसंत्ततिपरम्पराम् उत्पाद्यापि आत्मनो रेतश्च्युतिं मा विभावयेथाः अतः अच्युतमसि। अखण्ड-ब्रह्मचर्यं ब्रह्मतत्वमस्मीति भावः। प्राणसंशितमसि, '**प्राणस्तुप्रणवे प्राणे** इति कोषात्। प्राणे सूक्ष्मतमे परब्रह्मतत्वे संस्थितं स्थितिमते नास्ति मे विशालसाम्राज्यद्वारावती कनकभवन पुत्रकलत्रादिषुरर्वहनिन्धः। एतच्छ्रुत्वा स कृष्णः इतरवधातः अपिपासः बभूव अतृष्णः? समभवत्। तयैव विदित विवित्सितत्वात् गोलोके भगवतो देवक्यादीनां च तल्लीलानां नित्यसत्वात् नैतत् विद्योपदेशस्य कदाप्यर्वाचीनत्वमवधेयं तदेतद् यज्ञविद्याफलप्रतिपादिके ऋचौ मन्त्रौ भवतः विद्येते।।श्रीः।।

मन्त्रद्वयमाह, तत्र च सूर्यज्योतिनिरूपणम्,—

आदित्प्रत्नस्य रेतसः। उद्वयं
तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तर॑ᳲस्वः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म
ज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति ।।७।।

पूर्वमन्त्रे व्याख्यातं तदेतद् ऋचौ भवतः किन्त्वत्र मूले प्रथमा यो ऋचः तृतीयांशो दृश्यते तत्र अंसद्वयं नोपलभ्यते लिपिप्रमादात् वा संक्षेपी करणात्, वा जानकीजानिर्जानातु। परन्तु वयं वेदादुधृतामिमां सम्पूर्णां समुपस्थाप्य व्यांचक्ष्महे। आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्। परो यदीध्यते दिवि इति प्रथमाऋक् एतदन्वितार्थः। प्रत्नस्य चतुर्मुखादपि प्राचीनस्य रेतसः जगत्कारणस्य प्राणिनां बीजभूतस्य् भगवतः **'बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।** (गीता ७।१०) इति गीतोक्तेः। तादृशं तस्य सम्बन्धिज्योतिः परमं प्रकाशम् ईदृशं वासरं दिनम् इव यत् दिवेव देदीप्यमानम् अन्धकाराभावात्। अथरा वासं प्रणतेभ्यः परमात्मनि निवासं राति तदातीति वासरं सर्वभूतनिवासप्रदं यच्च परः व्यत्तयात् पुस्त्वं ब्रह्मादितोऽपि परिभूतमिति भावः। **'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम् नेमा विद्युतो भान्ति कुतो यमग्निः इति श्रुतेः** (कठ. १-३-१३) यत् दिवि परमप्रकाशमाने साकेतलोकेऽपि इध्यते देदीप्यमानमास्ते। तज्ज्योतिः एतद्यज्ञरहस्यविदः पश्यन्ति एषः प्रथमर्चार्थः। अथ द्वितीयायाः आ शब्दस्य च आदरार्थः, तकारः इच्छब्दस्य प्रसन्नार्थकनिपातौ। वयं यज्ञरहस्यविदः तमसः अन्धकारादपि परि परस्ताद्वर्तमानम् उत्तरम् उत्कृष्टम् आदित्यमण्डले वर्तमानम् एवंभूतः ज्योतिः पश्यन्तः साक्षात् कुर्वाणाः अथ च तदेव सूर्यमण्डलस्य ज्योतिर्भूतसीताराममयं ब्रह्म स्वः अत्रापि व्यत्ययेन पुल्लिंगता। वस्तुतस्तु ज्योतिर्विशेषणत्तया तृतीयत्वमेव, स्वम् आत्मीयम् अन्तर्यामिणम् उत्तमं क्षराक्षराभ्यामुत्कृष्टम् उद्गतं तमं येन वा तदुत्तमं क्षराक्षरपरमात्मश्रेष्ठं ज्योतिः पश्यन्तः आ उद्गम आदरेण भगवत् सामीप्यं प्राप्तवन्तः ज्योतिरुत्तममिति द्विरुक्तिस्तु आदरार्था। शकलसमाप्तिसूचिका च।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये सप्तदशेखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

अथाष्टादशखण्डः

इदानीं यज्ञपुरुषहृदयाकाशवर्तिनः सगुणसाकारस्य सकलनिष्कल्याणगुणगणागारस्य कौसल्याकुमारस्य ब्रह्मणः शुभनिवासस्थलभूतेहृदयाकाशे मनस्त्वाकाशत्वो-भयधर्णाविच्छिन्नत्वात् प्रत्येकमवच्छेदकदृष्ट्या ब्रह्मोपासनां निरूपयति। सा च द्वेधा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आध्यात्मिकी । आधिदैविकी चसू तत्र मनोमयी आध्यात्मिकी आत्मपदार्थशरीरसुक्ष्मान्तः करणमनःसम्बन्धत्वात् आकाशमयी चाधिदैविकी तत्रस्थदेवताविषयत्वात्,

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो-
ब्रह्मेत्युभयमादिष्ट भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ।।१।।

मनः मनुते अवबुध्यते सर्वं व्यवहारं परब्रह्म वा समनुभूयते येन तन्मनः स्वान्तम्। ब्रह्म परब्रह्मविभूतिः इति अवधारणास्वरूपनिर्देशः उपासीत् भगवत् विभूतितया मनो भजेत इति भावः। नैवेदं विगर्हेत तत्र ब्रह्मभावव्यतिरेकेणानिष्टफलकत्वम् इति, इत्थम् अध्यात्मम् अव्ययीभावेनाव्ययोऽयम्, आत्मनीत्यध्यात्मम् आत्मविषयकमुपासनमित्यर्थः। अथ आकाशः ब्रह्म तद्वत सौक्ष्म्यव्यापकत्वसर्वापरिच्छिन्नत्वनीलत्वादिसाम्यात् उपासीत इति अनुषज्जते इत्यधिदैवतं दैवविषयकमुपासनम्। एवम् अध्यात्ममधिदैवतम् इति उभयम् उपासनद्वयं मनःआकाशदृष्ट्या आदिष्टम् उपदिष्टं श्रुत्या इति शेषम्।।श्रीः।।

अथ मनो दृष्टावाकाशदृष्टौ च ब्रह्मणश्चतुष्पादोपचारं प्रपञ्चयति। मन्त्रत्रितयेन,—

तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्म। वाक्पादः प्राणः पादश्चक्षुः
पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्मम्। अथाधिदैवतमग्निः
पादो वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पाद
इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च ।।२।।

तत् एतत् मनोमयं ब्रह्म उपासनीयं परमेश्वरतत्वं चतुष्पाद यथा विशुद्धं श्रीसाकतेनिलयं ब्रह्म पादचतुष्टयसम्पन्नं भवति, तथैव प्रतीकभूतं मनोमयमाकाशमयं च ब्रह्मेति भावः । वाक् पादः मनो ब्रह्मणो विचारव्यक्तीकरणात् प्राणः घ्राणः प्रकर्षेण अनिति सितीति व्यत्पत्तेः । गन्धमाध्यमत्वात् चक्षुः पादः रूप साक्षात्कारकरणत्वात् श्रोत्रं पादः शब्दग्राहकत्वात् । अथ अधिदैवतं वर्णयति, आकाशरूपब्रह्मणोऽपि अग्निवाय्वादित्यदिशः पशूदरलग्नपादा इव आकाशसम्बन्धत्वात् पादः इति उभयं मनो नभो रूपं ब्रह्म चतुष्पादद: वदिति आदिष्टं भवति श्रुत्या निर्दिष्टं विद्यते सार्वकालिकतया तस्या अपौरुषेयत्वात्।।श्रीः।।

भूयस्तमेवार्थं प्रपञ्चयति— **वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः ।**
सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च ।
भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ अध्यात्मब्रह्मणः मनसः अधिदैवतब्रह्मणाकाशेन सम्बन्धनिबन्धनामेकतां दर्शयति- मनोब्रह्मणः चतुर्थः वागभिधानः पादः आकशपादेनाग्निना करणीभूतेन पादेन भाति प्रकाशते। तपति तापं गच्छति। अतएव वाग्दैवतमग्निरुच्यते य एवं वेद सोऽपि भासा तपसा यशसा तेजसा च सम्पृच्यते इति फलम्।।श्रीः।।

एवं मन्त्रत्रयेण मनो ब्रह्मणः पादत्रयस्य आकाशब्रह्मणः पादत्रयेण प्रकाशकत्वं तापकत्वं च तद्वेत्तुः तत्समानफलकत्वं निर्दिश्यते त्रिभिः—

प्राणाः एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः
स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च ।
भाति च तपति च कीर्त्या
यशसा ब्रह्मवर्चसेन च एवं वेद ।।४।।

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चातुर्थः पादः
स आदित्येन ज्योतिषा भाति च ।
तपति च। भाति च तपति च कीर्त्या
यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ।।५।।

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः
स दिग्भिर्ज्योतिषा भाति च तपति च ।
भात्ति च तपत्ति च कीर्त्या यशसा
ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद य एवं वेद ।।६।।

प्राणश्च वायुना चक्षुरादित्येन श्रुतिर्दिशाज्योतिषा भात्ति तपति तज्ज्ञातुश्च तथा फलं दिरुक्तिरादरार्थाः।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्यायेऽष्टादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

अथैकोनविंशः खण्डः

इदानीं प्रत्यक्षब्रह्मणः भगवत आदित्यस्य आदित्यमण्डलस्थस्य वा सीतारामयब्रह्मणो वा समुपासनं विधित्वेनोपदिशति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत् तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्तत सत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम् ।।१।।

आदित्यः, ब्रह्म आदित्यः सूर्यः तन्मण्डलस्थ श्रीसीतारामब्रह्मधामभूत्वा-दाधाराधययोरेकरूपत्वेनादित्येऽपि ब्रह्मव्युपदेशः इति इत्थम् आदेशः श्रुतेर्निर्देशः। आदेश इति पदेन श्रुतिरादित्ये कदापि ब्रह्मव्यतिरिक्तभावं निराकरोति, तस्य आदित्यस्य उपव्याख्यानम् अन्तरंगरहस्यव्याख्या क्रियते इति शेषः। इदं नामरूपात्मकं जगत् अग्रे सृष्टेः प्रारम्भे असत् अस्तित्वहीनमेव अव्यापितनामरूपम् आसीत् अभूत् इदं प्राचीनानुरोधेन। मम तु सत्ता एव सत् भावे क्विप् एवम् अव्यक्तं निवासाभावात् अस्फुटं सत् स्थिरता यस्य तत् असत्, अथवा अकारः वासुदेवो भगवान् रामः तस्मिन् ए अस्तीति असत् **'यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति'** (तैत्तिरैय २-१) इति श्रुतेः। इदं जीवजातम् आसीत् एव केवलं भगवतिस्थितं नत्वन्यत्रेति अन्याधिकरणतां व्यवच्छिनत्ति असदित्यनेन जीवस्य सत्तानिराकरणं कोऽपि न शङ्केत अतस्तत्सत्ता प्रतिपादयितुमाह अव्यक्तसत्वेति सत्यपि भगवदधीनसत्वे तत् जीवरूपं वस्तु सत् आसीत् अखण्डसत्ताकमासीत् इत्यनेन जीवसत्कार्यवादः सूचितः। अथवा अकारोवासुदेवाख्यं ब्रह्म तम् अं सीदति गच्छतीत्यसत् **'तत् प्रयन्ति'** इति श्रुतेः। जीवः खलु प्रलयकाले परमात्मानमेव गच्छति सामस्त्येन दासभूतो नित्यजीवस्तु परिकर्तुं गच्छति भगवन्तम् इदं जीवजातम् असत् एवं भगवच्चरणकमलानुगमेवेति तात्पर्यम् आसीत् अभवत्। इत्थं तत् सत् भगवदनुगं जीवतत्वं सत् नित्यसत्ताकं **'सदेवसोम्य इदमग्र आसीत्'** इति श्रुतेः। ननु **'असदेवेदमग्र आसीत्'** इति श्रुतिखण्डेन विविध-व्युत्पत्तिवैचित्र्या जीवस्य नित्यसत्तावत्वं भगवन्निष्ठसत्ताकत्वं परमेश्वरानुगत्वञ्च सूचितं तर्हि किमर्थं पुनः तत् सदित्याद्यारंभः? इति चेत् असदित्यस्य सद्भावाभावमूलक-व्युत्पत्तिर्माभूत् जीवस्य च नित्यसत्ता सिद्धा यथा स्यात् अथवा तदिति पृथक्पदं जीवपरामर्शकं सदिति लुप्तपंचमीकं परमात्मवाचकम् इत्थं तत् जीवतत्वं सतः परमात्मनः सकाशात् आसीत् सृष्टिकाले समभूत् **'अव्यक्तात् व्यक्तयः सर्वा प्रभवन्त्यहरागमे'** (गीता ८/१७) इति स्मृतेः। इत्थं ब्रह्मशक्तिसमन्वितं तत् जीवतत्वं समभवत् जगतीतले प्रादुर्भूत्। परमात्मसाहित्येन तस्य सम्यक् भवनं तत् आण्डम् अण्डस्येदम् अण्डमेव वा निरवर्तयत् ब्रह्माण्डमुत्पादयामास। परमात्मा तत् संवत्सरस्य मात्रां परमात्मा वर्षणरिमाणम् असयत् गणकार्याणाम् अनियतत्वात् असेत इत्यस्य स्थाने असयति इति शप् विशिष्टप्रयोगः सुप्तमिति भावः। पश्चात् तन्निरभिद्यत्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खगानाम् अण्डमिव निर्भिन्नं ते निर्भिन्ने अण्डकपाले कपालाकृती अण्डखण्डौ राजतं पार्थिवत्वात् सुवर्णं स्वरमयत्वात् तेजोविशेषेण अभवताम् अजायेताम्।।श्रीः।।

भूयस्तेन सृष्टिं प्रपञ्चयति—

तद्यद्रजतꣳ सेयं पृथिवी यत्सुवर्णꣳ
सा द्यौर्यज्जरायु ते पर्वता
यदुल्बꣳ स मेघो नीहारो या धमनयस्ता
नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳ स समुद्रः ।।२।।

यद्रजतं रजतमिव पूर्वभागः सैव पृथिवी भूमिः अभवत्, यत् सुवर्णं स्वर्णमिव तेजोमयमुत्तरार्धं सा द्यौः स्वर्गम् अत्र पृथिवी अधोलोकानां द्यौरुर्ध्वलोकानां चोपलक्षणं, यज्जरायुः स्थूलगर्भावरणं त एव पर्वताः यच्च उल्वं सूक्ष्मगर्भावरणं तदेव समेघः घनसहितः नीहारो तुहिनं द्रवत्वात् आवरकत्वाच्च, यः धमनयः शिराः ता एव नद्यः वास्तेयम् उदकं वस्तिभवं जलं तदेव समुद्रः एवं विराट् पुरुषाण्डपरिणामभूतं जगत्।

भूयस्तस्मादादित्यजन्म वर्णयति—

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं
घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त सर्वाणि च भूतानि
सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा
उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः ।।३।।

अथ यत्तत् अण्डं अजायत् असौ आदित्यः अत एवेमं खगं मार्तण्डं च व्याचक्षते। तं जायमानम् उलूलवः उरवः उरवः उरुरवः आधिक्यविवक्षायां द्वित्वं पुनर्लत्वं लकारस्य इति उलूलवः, अधिकाधिका इति भावः। घोषाः शब्दाः सर्वाणि भूतानि प्राणिनः सर्वे कामाः काम्यपदार्थाः उदतिष्ठन्त अत एव अधुनापि सूर्यस्य उदयं प्रति प्रत्यायनम् अस्तं गमनं प्रतिशब्दाः प्राणिनः कामाश्च उत्तिष्ठन्ति।।श्रीः।।

फलश्रुत्या प्रकरणमुपसंहरति—

स य एतमेवं विद्वानादित्यं
ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो
घोषा आ च गच्छेयुरुप
च निम्रेडेरन् निम्रेडेरन् ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं विद्वान् जानन् यः अभ्यारसः अभ्यासशीलः एतम् आदित्यं सूर्यं ब्रह्म ब्रह्म बुद्ध्या उपास्ते परमेश्वररूपेण चिन्तयति। ह निश्चयेन एनं साधवः श्रेष्ठाः शब्दाः कामाश्च आगच्छेयुः समागच्छेयुः प्राप्नुयुः मृडेरन् सुखेयुः सुखयेयुः द्विरुक्तिरादरार्था अध्यायसमाप्तिसूचिका च।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि तृतीयाध्याये सर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यकृतौ श्रीराघवकृपाभाष्ये तृतीयः अध्यायः सम्पूर्णः।।

।।श्री राघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।।श्रीराघवो विजयते।।

।।श्रीरामानन्दा चार्याय नमः।।

चतुर्थोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

तूर्ये तूर्यतुरङ्गतूर्णहृदयैरापूर्यमाणं पदे,
देवैर्दीव्यदमन्दभावपटलैर्लालाल्यमानं मुहुः ।
मुह्यन्मुग्धमनुष्यमानसमधुव्रातानि राजद्रसै-
श्चारित्रैर्मृडयन्तमीड्यमृगयुं रामं तुरीयं श्रये ।।

अथतृतीयाध्याये प्रतीकतया वर्णिते वायुप्राणोपासने पुनर्ब्रह्मतया वर्णयितुं साम्प्रतमध्यायस्तूर्यः प्रारभ्यते।

उपासनया खलु वासनानस्यतीति तस्यां विनष्टायां निरुपाधिः प्रीतिः पारमेश्वरी पल्लविता भवतीति कृत्वा विभूतिविभूतिमतोरभेदधिया जानश्रुतेराख्यानच्छलेन वायु-प्राणोपासनवर्णनपुरःसरं संवर्गविद्या विविच्यते, आख्यायिका सुखावबोधविद्यामहत्वातिशय-सूचिका।

तत्र प्रथमः मन्त्रः—

ॐ जानश्रुतिर्ह प्रौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस। स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति ।।१।।

ॐ इति निखिलमंगलमयं परमेश्वरनामस्मरणं, श्रुतं जनः यस्य स जनश्रुतः आहिताग्न्यादित्वात् पूर्वनिपातेनः जनश्रुतः विख्यातजन्मा तस्य जनश्रुतस्य गोत्रापत्यं पुमान् जानश्रुतिः तस्य जानश्रुतेः पौत्रायणः पुत्रस्य पौत्रः ह निश्चयेन श्रद्धादेयः श्रद्धया देयं यस्य स श्रद्धादेयः आस्तिकबुद्धिदानार्हः बहुदातुं शीलः यस्य स बहुदायी, एवं बहु अन्नं पक्तुं शीलं यस्य स बहुपाकी अत्र ताच्छील्ये णिनिः आस अभूत्। सर्वतः सर्वाभ्योदिग्भ्यः आगत्य अत्स्यन्ति इति इत्थं विचार्य सर्वतः आवसथान् निवासभूमिः मापयामास निर्मापितवान्। **आवसथं गृहं सद्म मन्दिरं भवनं** तथा इति वैष्णवकोशे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथम् आवस्थान् निर्मापितवान्? इत्यत आह मे अत्स्यन्ति यतोहि येषु आवसथेषु निवसन्तो जनाः मे मत्सम्बन्धिभोजनमेव अत्स्यन्ति भोक्ष्यन्ते आवसथमन्तरेण अन्यात्रापि ते भुञ्जीरन्। ह इति प्रसिद्ध्यर्थम्।।श्रीः।।

घटनाक्रमं विस्तारयति—

अथ ह हँ्सा निशायामतिपेतुस्तद्धैवँ् हँ्सो
ह समभ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष
जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं
तन्माप्रसाङ्क्षीस्त त्वा मा प्रधाक्षीरिति ।।२।।

अथ कस्मिंश्चिद्दिने ह इति प्रसिद्धिद्योतकोनिपातः, निशायां रात्रौ राज्ञि शयनमुपगते साँ् हंसा इति भावः। अनुस्वारस्य उच्चारणं वेद परम्परायां हंसरूपधारणो महर्षयः अतिपेतुः आपतितवन्तः। रात्रौ पक्षिणो नोड्डीयन्ते, किन्तु राग्यो हितचिकीर्षयाः इमे महर्षयः अस्वाभाविकतया हंसायमाना आगता इति अतिपेतुरिति क्रियाघटकोपसर्गस्य तात्पर्यम्। तदन्तरं हंसः अपरमरालः हंसम् अतिपतन्तम् एवम् अनेन रूपेण अभ्युवाद राजानं श्रावयन् अभ्यवदत होऽपि इति सम्बोधन परं निपातद्वयं, भल्लाक्ष भल्लवत् तीक्ष्णे ब्रह्मदर्शनसमर्थे यस्य स भल्लाक्षः तत्सम्बुद्धौ हे भल्लाक्ष! मनसः ऐकाग्रयार्थं द्विर्वचनं, पौत्रायणस्य जानुश्रुतेः पूर्वोक्तस्य विख्यात यशसः दिवा द्योतनलोकेन ब्रह्मधाम्ना समं सदृशं यथा द्विलोकः प्रकाशमान उपरि राजते, तथैव राज्ञोऽपि ब्रह्मज्ञान ज्योतिरिति भावः। आततं व्याप्तं तत् पतनकाले माप्रसाक्षीः निरादरबुद्ध्या माप्रश्नं कुरु, तथा कृते सति त्वां दग्धन् करिष्यति। अतः यथा त्वां माधाक्षीः अत्र व्यत्ययेन मध्यम-पुरुषः, एवं माधाक्षीरित्यस्य मा भस्म करोति इति भावः।।श्रीः।।

प्रति प्रश्नं निरूपयति।

तमु ह परः प्रत्युवाच कम्बर एनमेतत्सन्तँ्सयुग्वानमिव।
रैक्वमात्थेति यो नु कथँ्सयुग्वा रैक्व इति ।।३।।

निषेधवचनं श्रुत्वा परः श्रेष्ठः अग्रगामी तं निषिद्धं कुर्वाणं हंसं प्रत्युवाच, प्रतिपप्रच्छ। अरे! उपेक्षार्थोऽयं निपातः कं किं गुणकं सन्तं वर्तमानमेनं राजानं विद्याभिमानरतमपि वराकं स युग्वानं युग्वा शकटीतया सह वर्तमानं सशकटिकं रैक्वम् एतदभिमानं ब्रह्मविद् वरिष्ठम् इव यथा आत्थ कथयसि। आशयोऽयं यत् शकटयुक्तो रैक्वः महान् ब्रह्मवेत्ता तस्य ज्योतिषो भेतव्यम् अयं राजा तु विद्यादानाभिमानमत्ततया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाल्पमपि ज्ञानं कलयति। एतद् वाक्यं श्रुत्वा पूर्वः प्रत्याह यो नो यः रैक्वः भवतः प्रशस्तः स कथं किं प्रकारकः, सयुग्वा युग्वना सहितोऽपि स्थूल वस्तु विभ्रत् कथं सूक्ष्मं ज्ञानं कलयतीति साश्चर्यप्रश्नः।।श्रीः।। अथ पर आह—

यथा कृतायो विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनँ् सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ।।४।।

इदानीं रैक्वस्य माहात्म्यं वर्णयति—

यथा येन प्रकारेण कृतायः कृतस्य कृतयुगस्य प्रथमस्य सत्ययुगस्य इति भावः। अयः द्यूतपाशः स एव विजितः द्यूतक्रीडायां प्रतिपक्षिणः जितः तं कृतायं विजितायम् आधरेयाः त्रेताद्वापरकलियुगद्यूतपाशाः संयन्ति। एवं प्रजाः यत् साधु कुर्वन्ति श्रेष्ठ-कर्माचरन्ति तत् सर्वं रैक्वमेव समेति आविर्भवति तत् यः प्रजावर्गः वेद स रैक्वः सर्वं वेद स एव ब्रह्मविद् वरिष्ठः ज्योतिष्मान् नावज्ञातुं मया उक्त प्रतिषिद्धः इति अयंभावः द्यूतक्रीडायां प्रतियुगक्रमानुरोधेन चत्वारः भवन्ति पाशाः तत्र सत्ययुगस्य प्रथमः कृतायनामा चतुरङ्कः तत्र धर्मस्य चतुष्पादयुक्तत्वात्। एवं द्वितीयः पाशः त्रयङ्कः त्रेताया नामा तत्र धर्मस्य त्रिचरणत्वात्। एवं तृतीयः द्वापरायनामा द्वयङ्कः, तत्र धर्मस्य द्विचरणत्वात्। चतुर्थः कलियुगाय नामा एकाङ्कः तत्र धर्मस्य एकचरणत्वात् प्रथमे चतुरङ्के विजिते त्रयः विजिता भवन्ति तत्रैव तेषां समाहारात्। एवं प्रजानां साधुकर्मणां तत्रैव रैक्वे समाहारः, इत्येव रैक्वं माहात्म्यम्। अत्र कृताय विजिताय शब्दयोः द्वितीयायाःछान्दसो लुक् एवमेव यस्तद्वेद इत्यत्रापि जातिविवक्षायाम् एकवचनं, छान्दसां वा अधरेषु चतुरङ्कात् कृतायतः न्यूनेषु भवाः इति आधरेयाः।।श्रीः।।

राज्ञः प्रतिक्रियां सूचयति—

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव रैक्वमात्थेति यो कथँ् सयुग्वा रैक्व इति।।५।।

एवं हंसयोःविवदमानयोः संवादं पौत्रायणः जानश्रुतिः राजा तत् रैक्वप्रशंसावचनम्, उ सतर्कः ह निश्चयेन उपशुश्राव समीपतः आकर्णयामास। रैक्वं जिज्ञासामाना रात्रौ निद्रां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न लब्धवान् प्रभाते वन्दिभिर्गीतिविरुद्धैः प्रबुध्यमानः क्षत्तारं राजसूचनाप्रसारकं सेवकम् उवाच अरे इति उपेक्षा वचनो निपातः, अङ्गं माम् राजानां सयुग्वानं रैक्वम् इव यथा अंगप्रिय आत्थ प्रशंससि, अहं तद्‌योग्योनास्मि एतद्वाक्यं श्रुत्वा क्षत्राजिज्ञासाञ्चक्रे, यः रैक्वः भवतः प्रशस्तः स सयुग्वा कथं कीदृग् प्रभावः।।श्रीः।।

जानश्रुतिः हंसवाक्यमनुवदति—

यथा कृतायविजितायाधरेयाः
संयन्त्येवमेन᳐ँ सर्वं तदभिसमेति
यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद
यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ।।६।।

चतुरङ्गी यथापाशे इतरेऽतन्तर भवन्ति हि एवं प्रजा कृतं साधु रैक्वे सम्प्रलीयते व्याख्या सुगमा। एतावत् गुणगणसम्पन्नं रैक्वमहं दिदृक्षुरिति राज्ञो हार्दम्।।श्रीः।।

क्षत्तुप्रयासं निरूपयति—

स ह क्षत्तान्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय त᳐ँ ।
होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमार्च्छेति ।।७।।

अनन्तरं सः क्षत्ता राजसूचानाधिकारी रैक्वम् अन्वेष्य मृगयित्वा नोपलभमानो निराशः प्रत्ययययाय परावर्वृते, उवाच च एवं यत् अहं नाविदम् न ज्ञातवान्। तदा राज्ञा कथितं यत्र ब्राह्मणस्य विप्रकुलोत्पन्नस्य ब्रह्मज्ञानिनः रैक्वस्य अन्वेषणः परिमार्गणं सम्भवं तत्र पृच्छ गच्छ इति शब्दोऽयं कथनप्रकारवाची।।श्रीः।।

रैक्वान्वेषणं वर्णयति—

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कर्षमाणमुपोपविवेश
तष᳐ँ हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा
रैक्व इत्यह᳐ँ राह्य३ इति ह प्रतियज्ञे
स ह क्षत्ताविदमिति प्रत्येयाय।।८।।

इत्थं राज्ञः निर्दिष्टं स ब्राह्मणान्वेषणगत्वा शकटस्य युगस्य अधस्तात् नीचैः पामानं खर्जूम् शरीरप्रारब्धभवाम् कषमाणं कण्डूयमाणं उपोपविवेश समीपमुपविष्टः। तमुवाच

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगव: हे भगवन् त्वमेव रैक्व: एतन्नामसाधक: असि रैक्व: प्राह अरे अहम् अस्मि इति प्रतिजज्ञे प्रतिज्ञां कृतवान् स: क्षत्ता प्रत्येयाय प्रत्याजगाम।।श्री:।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये प्रथमे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।
।। श्रीराघव: शन्तनोतु ।।

द्वितीय: खण्ड:

क्षत्तरिदत्तसमाचारे विज्ञाते रैक्वे तस्मात् ब्रह्मविद्यां जिघ्रिक्षु:, **'गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा, अथवा विद्यया विद्या चतुर्थीन्नैव कारणम्'** इति वचनात् ऋषि-सुश्रूषणे राज्यकार्यव्यस्ततया जानश्रुतिरसमर्थ:। मध्यममेव माध्यममंगीकृत्य पुष्कलेनधनेन रैक्वं तोषयितु कामो ब्रह्मविद्या जिघृक्षन् समुपससाद। तदेवाह तदित्यादिना—

तदु ह जानश्रुति: पौत्रायण: षट्शतानि गवां ।
निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तँ् हाभ्युवाद ।।१।।

तत् क्षत्तु: सूचनानन्तरं पौत्रायण: पौत्रपौत्र: जानश्रुति राजा 'उ' तर्कयित्वा 'ह' दृढ़तरं विनिश्चित्य ऋषेरर्थार्थित्वं गार्हस्थ्यञ्च विज्ञाय गवां धेनूनाम् षट्शतानि अश्वतरीभि: चतसृभि: युक्तं रथम् इति अश्वतरीरथं, 'निष्कम्' सुन्दरं स्वर्णसूत्रपिनद्धं तत्तन्मणिमाणिक्यमौक्तिकमयं हारम् तत्सर्वं धनम् आदाय रैक्वं प्रतिचक्रमे विद्यार्थिरूपेण समुपाषदत्। ह निश्चयेन रैक्वम् अभ्युवाद विज्ञापयामास।।श्री:।।

वाक्यमनुवदति—

रैक्वेमानि षट्शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथो नु म ।
एतां भगवो देवताँ् शाधि यां देवतामुपास्स इति ।।२।।

हे रैक्व! महर्षे इमानि मया समानीतानि भवत्पुरोवर्तमानानि गवां षट्शतानि षट्शतसंख्याका: धेनव:, ननु रैक्व शब्द: सम्बोधनान्त:, सम्बोधने प्रथमालुकिति सति 'दूराद्धूते च' इति पाणिनीय सूत्रेण वाक्यास्य इह प्लुत उदात्ते, 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' इत्यनेन प्रकृति भावे रैक्वेमान् इति कथम्, छान्दसत्वादिति चेत् अगतिकगतिरेषा, सत्यं जानश्रुते: रैक्वं निकटतयोपसन्नतया दूराद्धूतत्वाभावात् तत्र पूर्वोदितसूत्रप्रवृत्यभावेन नैष दोष:। अयम् एष: निष्क: रत्नहार: अयं च अश्वतरीरथ:। हयतरीभिरुह्यमान् स्यन्दन: इदं सर्वं गृहाण कृपया यां देवताम् उपास्ये हे भगव: हे भगवन्! तां देवतां मे जानश्रुतये पौत्रायणाय जिज्ञासवे मह्यम् साधि उपदिश। भवत् सेवां कर्त्तुमक्षमोऽहं शास्त्रोक्तेन मध्यमेनैव भवन्तमनकूलयितुं यते इति जानश्रुतेर्हार्दम्।।श्री:।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषेः प्रतिक्रियां स्फुटयति—

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारे त्वा शूद्र तवैव
सह गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः
पौत्रायणः सहस्त्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं
दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे ।।३।।

परः ब्रह्मविद्या परायणरैक्वः उ वितर्क्य, ह विपुलधनस्वीकरणस्य निश्चयं कृत्वा तं जानश्रुतिं उवाच— प्रत्ययाख्यानमुद्रया प्रतिसिद्धवान् नन्वसंगतमेतत्। निष्क्रियस्य ब्राह्मणस्य यदृक्षालाभसंतुष्टस्य महदनुचितं जानश्रुति दीयमानधनप्रत्याख्यानम्। नाऽयं दोषः जानश्रुतिः नैव दक्षिणादाता दक्षिणायां यादृक्षको नियमः एष तु विद्या प्राप्ति माध्यमः धनपुष्कलत्वञ्च विद्यादातृपरिस्थित्यावश्यकताधीनं तस्मात् सुसंगतमेतत्। अह अरे इति तिरष्कारसूचकौ निपातौ, अरे शूद्र! हारेत्वा हारयुक्ता ह्यतरी शकटिः, गोभिः षट्शत धेनुभिः सह तवैवास्तु तव पार्श्वे तिष्ठतु, नैव त्वादृशस्य राज्ञोऽनुरूपं धनमिदम्। अथ कथं क्षत्रियं वंशयाय जानश्रुतये रैक्वेण शूद्र इति शब्दसम्बोधनं कृतम्। क्षूद्रं शब्दोऽत्र गौणवृत्तिः ब्राह्मणः क्षत्रियश्च आचार्यान् शुश्रूषेते अयं क्षत्रियाचारहीनतया द्विजसेवा बहिर्मुखः शूद्रः। अथवा महतीं विद्याम् अल्पीयसा धनेन जिघृक्षते इति तदवमूलनं कुर्वन् अविवेकतया शूद्रः। अथवा। पूर्वेद्युः रात्रौ हंसेन गीयमानां रैक्वकीर्तितोमहीयषीं श्रुत्वा रैक्वेर्ष्याजनितशोकेन त्वं द्रुतचित्तोभवः अतस्त्वं शूद्रः। शुचा द्रवतीति शूद्रः इति व्युत्पत्तेः शूद्र इति सम्बोधनं ऋषेस्त्रिकालज्ञत्वसूचनाय इति समञ्जसं सर्वमिति इत्थमृषेः प्रत्याख्यानं श्रुत्वा पूर्वस्मादपि भूयोधनं दीत्सन् गवां सहस्त्रं दशशतम् निष्कः अश्वतरीरथः दुहितरं निजां विवाहार्हां रूपवतीं कन्याम्। कन्यायाश्च सन्ततिदातृत्वेन श्रेष्ठरत्नतया परिगणतत्वात् 'स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि' इति नीतेः तत् एतत् विपुलं धनम् आदाय प्रतिचक्रमे रैक्वमुपससाद।।श्रीः।।

जानश्रुतिवाक्यमनुवदति—

तँ हाभ्युवाद रैक्वेदँ सहस्त्रं गवामयं निष्कोयमश्वतरीरथ इयं।
जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति ।।४।।

ततो भूयो धनं संकीर्तयति, रैक्व इदं गवां सहस्त्रम् अयं हारः अयम् अश्वतरीरथः इयं च रूढयौवना मम दुहिता तव जाया तद् गृहलक्ष्मीत्वेन परिकल्पिता राजकन्या यस्मिन् ग्रामे त्वम् अनु अनुकूलतया आस्से जलस्थलनीरवपर्यावरणप्रकृति शान्तिः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यादि महर्षिनिवासार्ह सकलसामग्रीसमवधानेन सानन्दं तिष्ठसि अयं ग्रामः रैक्वपर्ण इति। त्वन्नामतः ख्यातिं गमिष्यन् इत्येतत् सर्वं धनं मया समानीतं स्वीकृत्य निजोपास्य देवतां शाधि इति उभयत्र 'प्रार्थनायां लोट्' नत्वाज्ञायायाम्।।श्रीः।।

अनेन धनेन सामान्यतः संतोषं प्रकट्यन्नाहनिरादरशब्दावल्या—

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाजहारेमाः
शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति
ते हैते रैक्वपर्णानाम महावृषेषु
यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच।।५।।

ऋषिः प्राह! ह निश्चयेन तस्याः कन्यायाः मुखं वदनम् उपोद्गृह्णन् उपकृतः उत्कृष्टतया स्वीकुर्वन् अथवा तस्याः राजकन्यायाः स्वीकारमेव मुखं विद्याप्राप्तिद्वारम् उपोद्गृह्णन् स्वीकुर्वन् रैक्वः जानश्रुतिः उवाच उदतीतरत् शूद्रः धनमाध्यमतो विद्याकाङ्क्षिन् इमाः अश्वथरीरथयुक्तकन्यासमन्वितदशशतधेनूः। अथवा आदरार्थे इदं पदार्थमूलकन्यायां बहुवचनम् आजहार आहर देहि इति भावः। लकारवृत्तेन 'लोडर्थेलिट्' पुरुषव्यत्ययोऽपि आजहार इत्यस्य आहर इत्यर्थः, शूद्र चिन्ताद्रवीभूतचित्त, अनेन कन्यामुखेनैव श्रद्धावपुषा विद्यां आलापयिष्यथा वक्तुं प्रेरयिष्यसि, किमेतेन धनेन, इति कथयित्वा सर्वं स्वीचक्रे। यो ग्रामोदत्तः तस्य नाम कथयति यत्र येषु आदरणीयेषु सह ऋषिः उवास स्म निवासं चकार तेषां रैक्वपर्णा इति नाम अतः रैक्वपर्णाः रैक्वेण विकीर्णाः इति नाम अतः रैक्वपर्णाः रैक्वेण विकीर्णा वृक्षपर्णाः येषु तथाभूताः, अथवा रैक्वस्य पर्णकुटी येषु ते रैक्वपर्णाः तत्र विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदलोपः इति नियमात् कुटीशब्दलोपेन रैक्वपर्णा इति। अथ तस्मै जानश्रुतये सः रैक्वः निजोपास्यदेवताम् उवाच उपदिदेश।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थेऽध्याये द्वितीये खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

तृतीयः खण्डः

अथ जानश्रुतये रैक्वः संवर्गविद्यामाह संवृञ्जते सर्वे आग्नेयाः यस्मिन् स संवर्गः वायुः प्रत्यक्षं ब्रह्म यथोक्तं तैतिरीयशान्तिपाठे '**त्वमेव ब्रह्मासि**' मन्ये रैक्वः वायुस्वरूपतया सकलगुणसम्वर्गभूतं वायुपुत्रं हनुमन्तमुपास्ते।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वायुर्वाव संवर्गो यदा व
अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा
सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा
चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ।।१।।

वाव इति निश्चयनिपातौ, वायुः निश्चयेन संवर्गः अत्र सर्वे संवृञ्जते तदेव स्पष्टयति। यदा अग्निः उद्वायति निर्वाणमेति तदा वायु एव अप्येति गच्छति, एवं सूर्यः यदास्तमेति अस्तमितो भवथि तदा वायुं गच्छति एवं चन्द्रमा अपि अस्तंगतो वायौलीयते अग्निवायुचन्द्रमसां तेजसत्वात् तेजसश्च वायुप्रसवत्वात् तस्य लयो न्याय्यः।।श्रीः।।

अधिदैवतं वर्णयति—

यदाप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति ।
वायुर्ह्येवैतान् सर्वान्संवृङ्क्तं इत्यधिदैवतम् ।।२।।

यदा यस्मिन्काले आपः जलानि उच्छुष्यन्ति शुष्काः भवन्ति तदा वायुमेव अपियन्ति निलीना भवन्ति वारः उद्वायमाणाः वायुं गच्छन्ति। अथ अनन्तरम् एष वायुः एतान् वायुरुपभूतान् संवृङ्क्ते धारयति इदमर्वाचीनविज्ञानं समर्थयति। आक्सीजन-हाईड्रोजन्नामक वारूपाभ्यां जलमुत्पद्यते। पुनः शुष्कं तत्र याति।।श्रीः।।

अथाध्यात्मं निरूपयति—

अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः
स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति
प्राणं चक्षुः प्राणँ्श्रोत्रं प्राणं मनः
प्राणो ह्येवैतान् सर्वान्संवृङ्क्ते इति ।।३।।

अथ अनन्तरम् अध्यात्मम् आत्मनि स्थितं संवर्गं व्याचक्षे। वाव निश्चयेन प्राणः संवर्गः स च—

यदा स्वपिति तदा तं प्राणं वाक् अपि अप्येति गच्छति। एवं चक्षुनेत्रश्रोत्रमनांसि तत्रैव विलीयन्ते प्राणश्च एतान् सर्वान् संवृङ्क्ते संचित्य धारयति इत्येव तस्य संवर्गम्।।श्रीः।।

उपसंहरन्नाह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ।।४।।

वा निश्चयेन तौ पूर्वोक्तौ एतौ दृश्यमानो वायुप्राणौ संवर्गौ देवेषु दैवीसंपद-मुपगतेषु वायुः संवर्गः प्राणेषु प्राणापानव्यानोदानसमानेषु प्राणः मुखनासिकानिर्गमन-शीलौ मुख्यः संवर्गः।।श्रीः।।

संवर्गस्तुतये अन्यामाख्यायिकामवतारयति—

अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं ।
परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ।।५।।

संवर्गस्य महत्वम्—

अथ अनन्तरं कापेयं कपिगोत्रोत्पन्नं शौनकं एतन्नामकं गृहस्थं काक्षिसेनिं कक्षिसेनस्य अपत्यं पुमांसम् अविप्रतारिणं न विप्रतारयति इति अविप्रतारी एतन्नामकः ब्राह्मणः यः कमपि न वञ्चयति एतादृक् तम् उभावपि एकस्मिन्काले एकस्मिन्स्थाने परिविष्यमाणौ भोजनार्थं परिवेषणविषयीकृतौ यदा शौनकः अविप्रतारी च भोजनायामन्त्रितौ तयोः समक्षं परिवेषितश्च भोजनं तदा इति भावः। कश्चिन् ब्रह्मचारी आगत्य तौ विभिक्षे भिक्षाविषयौ कृतवान् परिवेष्यमाणौ विभिक्षे इत्यत्र 'अकथितञ्च' इत्यनेन द्वितीया। 'दुहयाचपचदण्डरुधिप्रक्षचीब्रुशासजिमथ्मुषां कर्मयुत्स्यादकथितं तथास्यान्नीह्रि कृष्वहां इति कारिकायां पठितानां दुहादीनां द्वादशानां निप्रभृतीनां चतुर्णां मध्ये भिक्षधातोः परिगणनाभावात्। कथमत्र द्वितीया? इति चेच्छृणु संज्ञायाः अर्थनिबन्धनत्वात् कारिकापरिगणितयाच्त्यार्थकस्यापि भिक्षेस्तथात्वेनादोषात्। यथोक्तं तत्रैव (अर्थनिबन्ध नेयं संज्ञा) बलिं भिक्षते वसुधाम् अनन्तरम् उभयोः का प्रतिक्रिया? इत्यत् आह ह निश्चयेन उ वितर्क्य उभावपि शौनकाविप्रतारिणौ तस्मै ब्रह्मचारिणे न ददतुः भिक्षामिति शेषः तेन वाच्यमानावपि भिक्षां नार्पितवन्तौ तस्मै उ इति पदच्छेदः आयादेशे यकारलोपे तस्मात उ इति सिद्धम्।।श्रीः।।

गृहस्थयोरुपेक्षां दृष्ट्वा ब्रह्मचारी तौ परिप्रश्नयाम्बभूव—

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः
कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं
कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन्बहुधा
वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा एतन्न दत्तमिति ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ह निश्चयेन सः भिक्षुब्रह्मचारी द्वावपि उवाच पप्रच्छ, हे कापेय कपिगोत्रोत्पन्नशौनक हे अभिप्रतारिन्काक्षिसेने! कः एकः देवः अद्वितीयः प्रकाशवान् यः चतुरः संख्याकान् महात्मनः महानुभावान् जगार अग्रसत् अग्न्यादीनि वायौ चक्षुरादीन् प्राण इति भावः। इमौ द्वावेन संवर्गौ अधिदैवतो वायुः अध्यात्मः प्राणः, भवन्ति भूतानि यस्मिन् तद्भुवनं तस्य भुवनस्य निखिललोकस्य गोपा गोपायति इति गोपा रक्षक इति भावः, तं भुवने लोके बहुधा अनेकप्रकारेण अध्यात्मादिरूपेण वसन्तं निवसन्तं मर्त्याः मरणशीलाः न अभिपश्यन्ति न जानन्ति न वा साक्षात्कुर्वन्ति। यस्मै इदमन्नं यदर्थं सम्पूर्णमदनीयमिति भावः तस्मै न दत्तं नार्पितं भिक्षितं तात्पर्यमेतत् यश्चराचरग्रसनशीलः रक्षकः घटघटनिवासी तस्मै भगवते वायुरूपाय प्राणरूपाय युवाभ्याम् अन्नं न दत्तम्।।श्रीः।।

ब्रह्मचारिणः प्रश्नमाकर्ण्य शौनकः कथं प्रतिचकारेति वर्णयति—

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां जनिता प्रजानाँ् हिरण्यदँ्ष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुराद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै यं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति।।७।।

तद्वचनं श्रुत्वा कापेयः शौनकः प्रतिमन्वानः ब्रह्मचारिप्रश्नं समीक्ष्य प्रत्येयाय परिविष्टभोजनं त्यक्त्वा ब्रह्मचारिणं प्रति प्रश्नमुत्तरयितुं जगाम ब्रह्मचारिन् उत्तरं चतुर्णां महात्मनां भक्षणकर्त्ता भुवनरक्षकः स एव आत्मा सर्वव्यापकः, अग्न्यादीनां देवानां चक्षुरादीनां प्रजानां जनिता जन्मदाता हिरण्यदंष्ट्रः हिरण्यवत् प्रकाशमानाः दंष्ट्राः यस्य तथाभूतः बभसः पुनः पुनः अतिशयेन भक्षयति इति बभसः अत्र अच्प्रत्यये यङ् लुङन्तात् अभ्यासलोपे संयोगादिसलारलोपे बभसः, सकललोकान् भक्षयति। अतो ब्रह्मसूत्रे 'अत्ताचराचर ग्रहणात्' (ब्र.सू. १.२.७) अनसूरिः सूरिर्विद्वान् सूरिर्मनीषी विद्वान् इति वैष्णवकोशात्। न सूरिः असूरिः न असूरिः अनसूरिः अवैदुष्याभाववान्। ननु सूरिरित्यनुक्त्वा तमेवार्थं प्रतिपादयितुं कथं नञ्द्वयघटितद्रविणप्राणायामविधिराश्रितः नञ्द्वयं प्रतियोगिनं दृढयति अतस्तत्रसूरौ दृढत्वप्रतिपादनायैतत् अस्य महान्तं महनीयं महिमानं महत्वमाहुः वदन्ति। यद्वा महान्तमघरितघटना पटीयसीं भगवन्मायाम् अस्य परमेश्वरस्य महिमानं विभूतिम् आहुः माहन्तं वा जीवात्मानम् अस्य अकारो वासुदेवः तस्य वासुदेवस्य महिमानं विभूतिमाहुः अतो विभूतियोगवर्णने भगवताप्रथमत आत्मैव विभूतिवर्णयत **'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः'** (गीता. १०-२०) अन्यैः जनैः अनद्यमानः अनश्मानः अन्नम् अन्नभिन्नमपि अत्ति खादति **यस्य ब्रह्म च क्षत्रञ्च उभे भवत ओदन मृत्युर्यस्योपषेचनं क इत्थावेद यत्र सः'** (कठ. उ. १.२.२५)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतादृशं ब्रह्म किन्तु हे ब्रह्मचारिन्। वयं कापेयाः इदं न उपास्य हे एतस्मात् जीवात्मनोऽपि परतरं सीतावरं धनुर्धरं रामं उपास्महे इति तात्पर्यम्। इत्थं प्रश्नं समाधाय भृत्यमादिष्टमाह अस्मै ब्रह्मचारिणे भिक्षां दत्त भिक्षां प्रयच्छत इतिशब्दः आदेशानुवादसूचकः।।श्रीः।।

अथ भिक्षादानप्रकारं फलश्रुतिं चाह—

तस्मा उह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश
सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दशकृतँ्
सैषा विराडन्नादी तयेदँ् सर्व दृष्टँ् सर्वमस्येदं
दृष्टं भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद ।।८।।

उ ह निश्चयेन तस्मै ब्रह्मचारिणे ते परिकराः ददुः भिक्षां दत्तवन्तः, अधिदैवताः पञ्च आध्यात्मिकाः च पञ्च उभये मिलित्वा दशसंख्याकाः सन्तः एभिरेव दशदिक्षु अन्न कृतम् एवं विराट् दशान्नमयः विराडन्नमितिश्रुतेः। यः एवं वेद जानाति सः अन्नादः भवति य एवं वेद इति आदरार्थं द्विर्वचनं ग्रन्थसमाप्तिसूचकञ्च।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थोध्याये तृतीये खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।
।। श्रीराघवः शन्तनोतू ।।

चतुर्थः खण्डः

स जयति षोडशकलको जानक्यानन्दवर्द्धनो रामः ।
श्रुतयोऽपि यस्य च चरितं गायन्त्यो न ययुः पारम् ।।१।।

तूर्यमारभ्य शकलं यावन्नवममद्भुतम् ।
मन्त्रैः षोडश वै कलाश्चतुष्पादैर्निरूपिता ।।२।।

षोडशैव कलाः पुंसः सामान्यं श्रुतिभिः श्रुताः ।
विशिष्टास्तु कलास्तस्य अनन्ता जानकीपतेः ।।३।।

प्रतिपादं चतस्रो हि वर्णिताः ब्रह्मवादिभिः ।
वृषाग्निहंसमौद्गैश्च सत्यकामाय धीमते ।।४।।

प्रकाशवांश्च प्रथमोऽनन्तवांश्च तथापरः ।
विद्युत्वान् आयतनवान् पादाश्चत्वार एव हि ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशाज्जानकीजानेरन्वर्थस्तु प्रकाशवान् ।
प्राच्यवाची प्रतीची च उदीचीति चतुष्कलाः ।।६।।

अनन्तमहिमाविष्टोऽनन्तवान् वै द्वितीयकः ।
पृथव्यन्तरिक्षो द्यौः सिन्धुश्चतस्रस्तत्र वै कलाः ।।७।।

विद्युत्तेजोमयत्वाच्च विद्युत्वान् वै तृतीयकः ।
कलास्तत्र चतस्रो वै अग्निसूर्येन्दुः विद्युतः ।।८।।

आयतनवान् चतुर्थो ब्रह्मपादः प्रकीर्तितः ।
चक्षुः श्रोत्रं मनः प्राणश्चतस्रस्तत्र वै कलाः ।।९।।

चत्वार्यायतनान्येव कलात्वेन प्रचक्षते ।
आयतनं तवान्वर्थो ब्रह्मपादश्चतुर्थकः ।।१०।।

वृषाग्निहंसमद्गुभ्यः श्रुत्वाप्याचार्यवक्त्रतः ।
शुश्राव सत्यकामोऽपि जाबालो नौन्यहानये ।।११।।

एवं ब्रह्म चतुष्पादं कलाद्व्यष्टसमन्वितम् ।
वर्णयितुं श्रुतिः प्राह छान्दोग्ये पञ्चखण्डकम् ।।१२।।

अथ प्रकृतं व्याख्यायते—

विषयं स्पष्टयितुम् आख्यायिकाम् अवतारयति—

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रोन्वहमस्मीति ।।१।।

ह शब्दः आख्यायिकायाः ऐतिह्य प्रसिद्धिद्योतकः। घटनेयमिति इतिहास-प्रसिद्धेति भावः। अजेन भगवता प्रसूताबाला 'अजबाला' सैव जबाला 'जकार' पूर्वाकारस्य लोपः वगाहादिवत्, भागुर्मतेऽपि अकारपकारलोपविकल्पः। यथोक्तं वैयाकरणसिद्धान्त कौमुद्याम् अव्ययप्रकरणे—'वष्टिभागुरिरल्लोप' 'प' कारस्य विकल्पनम् आपं चैव हलन्तानां, तथा वाचा निशा दिशा। अतएव "विभाषासुरासेनाशालानिशायानां" इति पाणिनी प्रयुक्तः निशाशब्दो मानम्। तेन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य' इति कालिदास प्रयोगोऽपि संगच्छते, अन्यथा अवगाह्य इति ब्रूयात्। तस्याः जबालाया अपत्यं पुमान् जाबालः 'तस्यापत्तम्' इति अण्। ननु 'स्त्रीभ्यो ढक्' इति सूत्रेण ढक् ए आदेशे कौन्तेयादिवत् जाबालेय इति कथं नहि? इति चेत् शृणु जाबालायाः स्वपुत्रं प्रति संकटकालेऽपि सत्यवादिताया अग्रे श्रुत्यैव वक्ष्यमाणत्वात् तस्याः सामान्यस्त्रिभ्यो वैलक्षण्यसूचनाय सामान्य स्त्रीषु प्रयुतस्य 'ढक्' विधायक इति शास्त्रस्य विशिष्ट- प्रसरासम्भवात्। स्त्रियो हि प्रायः अनृतं वदन्ति। यथोक्तं मानसे—

नारि स्वभाव सत्य कबि कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।

साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक अशौच अदाया।।

(मानस ६।१६।२,३)

परन्तु इयं जबाला विसंकटे संकटेऽपि पुत्रपृष्टा निजसेवाव्यस्तमेव गोत्राज्ञानकारणं स्वीचकार। एवं भूतो जाबालः जबालां मातरं निजजननी आमन्त्रयाञ्चक्रे स्वाभिप्रायं निवेदितवान्। भवति मातृप्रभृतिमान्या स्त्रीणां सम्बोधनमेतत् केचन "भा दीप्तौ" इत्यस्मात् 'भातिर्डवतुः' इति सूत्रेण भत्वादिलोपं विधाय साधयन्ति, हे दीप्तिमतीति भावः। अहं ब्रह्मचर्यं ब्रह्मणे चर्या ब्रह्मचर्यं भगवत्प्राप्तिसाधनभूतवसुद्वन्द्वधर्म-व्यवायपरिहारस्वरूपं भगवत् साधनं विवत्स्यामि विदेशं गत्वा प्रवत्स्यामि। किन्तु अहं जाबालः किं गोत्रः किमभिधानगोत्रः अहं जाबालः अस्मि इति माम् निर्दिश। न खलु अज्ञातवगोत्रवटुः आचार्यमुपनयीत इति। प्रश्नाकारोऽयम्।।श्रीः।।

एवं पृष्टा सती ऋजुबुद्धिः जबालापुत्रप्रश्नमुत्तरयति--

सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ।।२।।

सा सत्यकाममाता ह निश्चित्य एनं पुत्रम् उवाच अवदत्। तात! तनोति विस्तारयति वात्सल्य भावलतां यः सतातः तत् संबुद्धौ हे तात हे मद् वत्सलरसालंबन पुत्र! अहं त्वन् माता एतत् इदं न वेद न जानामि यद् गोत्रः यदभिधानं गोत्रं यस्य स यद् गोत्रः इति समासाकारः। तव गोत्रस्य यन् नाम तद् अहं न जानामि इत्याशयः। तर्हि मम पितरं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथं न पृष्टवती? इति जिज्ञासमानं पुत्रं प्रति शंकानिराचिकीर्षुः हेतुमाह-यतोहि अहं यदा तव पितृगेहमागता तदा बहुचरन्ती बहुसेवमाना क्षणमपि समयं न प्राप्तवती। पितृ विश्रामकाले कथं न पृष्टवती? इति गीप्समानं प्रति प्रश्नाभावकारणमाह-परिचारिणी अतिथीनाम् इति शेषः। परिचरति तच्छीला इति परिचारिणी स्वभावतोऽहं समागतानां अतिथीनामतिथिदेवो भव इति धर्मबुद्ध्यापरिचरणं कुर्वेस्म तेषां पाद्यार्घभोजनादि व्यस्तक्षणतया मया निमिषमात्रमपि नावसरो लब्धः। पश्चात् कथं न पृष्टम्? इति शङ्कां निराकरोति, यौवने एवं व्यस्ते यौवने तारुण्यभावे सन्तानैकलक्ष्ये त्वाम् एकमात्रं पुत्रम् अलभे प्राप्तवती। अनन्तरं ते पितामृतः, ननु श्रुतौ सत्यकामपितुर्मरणेऽनुक्तेऽपि तल्लापनं किमाधारमिति जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे इति प्रथममन्त्रशकलमेव प्रमाणम्। यदि सत्यकाम पिता अजीविष्य तर्हि स निजगोत्रं कथं मातरमेवापृच्छत् इति मातुरुत्तरेऽपि जबाला तु नामाहमस्मि त्वं सत्यकामो नामासि इति मातृपुत्रमातृचर्चापि तत्र पितुरुपशमं ध्वनयति। सा उपरतपतिका अहं जबाला त्वं सत्यकामः यद्गोत्रः असि भवसि इति इदं न वेद। तर्हि अहं कथमाचार्यमुत्तरयेयम्? इत जिज्ञासमानं पुत्रं शिक्षयति अज्ञातपतिगोत्राऽपि निजं त्वदीयञ्च नाम जानामि अहं तव माता जबाला नाम एतदाख्यया प्रसिद्धा अस्मि त्वं च सत्यकामः सत्यं सद्धितैषिणं सद्भ्यो हितं सत्यामिति व्युत्पत्तेः। एवं सज्जनमनोभृङ्गसरोरुहश्रीचरणं मैथिली हृदयाभरणं समरुणमसरणशरणं परब्रह्मश्रीरामं कामयते नयनपथपान्थं चिकीर्षति इत्यन्वर्थः। सत्यकामः त्वम् असि इति आचार्यं प्रति मम परिस्थितिवर्णनपूर्वकं सुस्पष्टं सत्यं ब्रुवीथाः, अत्र ब्रुवीथा इति विधिलिङ् प्रयोगात् यथोक्तानुवादमेव दृढयति। तवोपनयनं भवतु वा न भवतु वा परं त्वया कदाप्यसत्यं न वक्तव्यमिति दृढ़ीयान् मातुर्निर्देशः।।श्रीः।।

घटनामवतारयति—

स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं ।
भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ।।३।।

इत्थं मातुरादेशमाकर्ण्य ह निश्चयेन सः सत्यकामः हारिद्रुमतं हरितः द्रुमाः वृक्षाः सन्त्यस्य इति हरिद्रुमतः मतुबर्थे छान्दसस्तस्प्रत्ययः। तपसः प्रभावेण यस्माश्रमे नैव कोऽपि वृक्षः शुष्कः सर्वेहरिताः द्रुमाः तथाभूतस्य हरिद्रुमतस्य पुत्रः हारिद्रुमतः, अथवा मतुप्यपिसाधीयान्। हरिद्रुमवतः पुत्रः हारिद्रुमतः वकारलोपो व्यत्ययात् हारिद्रुमतं गौतमं गौतमगोत्रमुपेत्य समित्पाणिरुपगम्य 'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं' (मुण्डक १.२.११) इति श्रुतेः। आह—न्यवेदयत् भगवति हारिद्रुमते अत्र गुरौ वसीत्यवत् सामीप्यसप्तमी,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हारिद्रुमतसमीप इति भावः। ब्रह्मचर्यं क्रियाविशेषणमेतत् वत्स्यामि ब्रह्मचर्यपूर्वक-निवासं करिष्यामि भगवन्तं तत्र भवन्तमाचार्यम् उपेयां समुपगतोऽस्मि।।श्रीः।।

अथ आत्मानं उपनिनायिषन्तं पञ्च वर्षं सन्तं सत्यकामं हारिद्रुमतोऽपृच्छत्।

तँ् होवाच किं गोत्रो नु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरँ् सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहँ् सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ।।४।।

तम् आत्मानमुपनाययितुमिच्छन्तं ह निश्चयेन उवाच ब्राह्मणः पृष्टवान्। सौम्य सोमरसार्ह किं गोत्रः किं गोत्रं यस्य तथाभूतः कस्मिन् गोत्रे जातोऽसि? सत्यकामोऽब्रवीत् यद्गोत्रोऽस्मि तन्न वेद अजानन् गोत्रं कथं पितरौ नापृच्छः? इति जिज्ञासामने सोऽब्रवीत् अहं मातरम् अपृच्छम् अग्रिमो मन्त्रसकलः जबालावाक्यानुवादः सोऽहं अज्ञातगोत्रः जाबालः जबालापुत्रः भो इति सम्बोधनम्।।श्रीः।।

अनन्तरं किमभूदित्याह—

तँ् होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधँ् सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तेयेति स ह वर्षगणं प्रोवास, ता यदा सहस्रँ् संपेदुः ।।५।।

सत्यकामस्य सत्यवादितां दृष्ट्वा प्रसीदन् तम् आचार्यः उवाच प्रत्युत्तरयामास। एतत् इत्थं छलशून्यं स्पष्टवाक्यं अब्राह्मणः ब्राह्मणेतरः न विवक्तुमर्हति न वक्तुं शक्नोति, अतस्त्वां निःसंदिग्धं ब्राह्मणं मत्वा उपनेष्ये सोपवीतं करिष्ये। यतोहि कठिनबेलायामपि सत्यात् न अगाः भूतार्थवादात् न व्यचलः। सोम्य समिधमाहर उपवीतार्थमिति शेषः। अनन्तरं तं सत्यकामम् उपनीय व्रतबन्धयुक्तं कृत्वा अबलानां दुर्बलानां कृशानां क्षीणानां चतुःशता चत्वारिंशतानि संख्यात्वेन सन्ति यासु ताः चतुःशताः गाः धेनुः उपानीय उवाच— सोम्य इमाः समनुव्रज अनुगच्छ, इति स आचार्यनिर्देशं पालितवान्। भूयः प्राह ताः धेनुः सत्यकामेन सः अभिप्रस्थापयन् वनान्तरं गमयन् उवाच वत्स असहस्रेण सहस्रंसंख्यां विना ना वर्तयेत् वनान्तरादत्रेति शेषः। स वर्षगणं बहुवर्षानि यावत् उवास

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्षगणमित्यत्र अत्यन्तसंयोगे द्वितीया इत्थं सत्यकामे पालयति सन्तान समृद्धिपरम्परया यदा सहस्त्र संपेदुः सहस्त्रसंख्या संपन्ना जाताः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये चतुर्थखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।
।। श्रीराघवः शंतनोतु ।।

पञ्चमः खण्डः

अथ पञ्चमे खण्डे सत्यकामाय ऋषभः ब्रह्मणः प्रथमं पादमुपदिशति, मन्ये वर्षपूगं सत्यकामस्य गोसेवया संतुष्टो भगवान् धर्म एव ऋषभवेषः ब्रह्मोपदिशति वृषो हि भगवान् धर्मः इति सूक्तात्।

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्त्रँ स्मः प्रापय न आचार्यकुलम् ।।१।।

अथ गवां सहस्त्रसंख्या संपन्नतानन्तरम् एनं निजसेवापरं सत्यकामम् ऋषभः महावृषः शण्डः साक्षाद्धर्मः अभ्युवाद अभ्येत्यवदत्। सत्यकाम नामग्राहमभिमुखीकरोति भगव हे भगवन् इति सत्यकामोऽपि प्रतिशुश्राव प्रत्यजानात्। सोम्य वयं सहस्त्रं सहस्त्रसंख्यां प्राप्ता नः अस्मान् गाः आचार्यकुलं हारिद्रुमताश्रमं नय गमय।।श्रीः।।

अथ द्वितीये धर्मर्षभः तं ब्रह्मोपदेष्टुं सावधानं करोति—

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वैसोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ।।२।।

ऋषभः प्रसीदन् प्राह सत्यकाम गुरुशुश्रूषणपरेण त्वया सम्यगहं संतोषितः गुरुशुश्रूषणतः स्वयमेव विद्या आगच्छति। तथोक्तं मनुना—यथा खनन् खनित्रेण नरोवार्यधिगच्छतिं, एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूसुरधिगच्छति। 'गुरुशुश्रूषयाविद्या' इत्यपि अतः ते तुभ्यं ब्रह्मणः एकं पादं ब्रवाणि उपदिशानि प्रश्नार्थे लोट्। इति पृष्टः सत्यकामोंऽवदत् भगवान् षडैश्वर्यसंपन्नः पशुशरीरोऽपि मनुष्यवाचाऽवदन् महाप्रभावशालीतिभावः। मह्यं ब्रवीतु वदतु तस्मै सत्यकामाय स उवाच उपदिदेश साम्य प्रतिपादं ब्रह्मणः चतस्त्रस्चतस्त्रः कलाः भवन्ति। तत्र ब्रह्मणः प्रथमः पादः प्रकाशवान्नाम प्रकाशः अस्ति अस्मिन् इति प्रकाशावान् अत्र परमेश्वरस्य प्रकाशः अस्मिन् प्रकाशवत् चतस्त्रः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कलाः प्राचीदिक्कला पूर्वादिशापि कला परमेश्वरस्य प्रतीची दिक्कला पश्चिमदिशापि ईश्वरस्य कला दक्षिणदिक् दक्षिणदिशाऽपि कला भगवतः उदीचीदिक्कला उत्तरदिशाऽपि परमात्मनः कला एवं चतुष्फलचतस्त्रः कलाः यस्मिन् तथा भूतः प्रकाशवान्नाम।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवास्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ।।३।।

एवं यथोक्तरीत्या यः कश्चन एनं कलाचतुष्टयरूपदिक्चतुष्ट्याकारं ब्रह्मणः पादं प्रकाशवानिति प्रकाशवानित्याकारकबुद्ध्या उपास्ते परमात्मपादत्वेन भजते सोऽपि लोके प्रकाशवान् भवति प्रकाशवतः ज्योतिष्मतः महदादीन् लोकान् जयति। द्विरुक्तिरादरार्था-सकलसमाप्तिसूचनार्था च।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये पंचमे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

षष्ठः खण्डः

अथ ब्रह्मणो द्वितीयपादोपदेशमुपक्रामति—

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार। ता यत्राभि सायं बभूवस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ।।१।।

ते सत्यकामाय पादं द्वितीयं वक्ति, अत्र वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट् न चिराद् वक्ष्यतीति भावः। इति मौनीभूते ऋषभे सः सत्यकामः श्वोभूते अन्येद्युः गाः आचार्यकुलाय उपस्थाञ्चकार। बभूव ताः यत्र स्थाने अभिसायं बभूवुः सायंकालाभिमुत्राजाता तत्रैव उपरोध्य साद्वलेषु रोधयित्वा अग्निं प्रज्वलिनं विधाय समिधमाधाय अग्नेः पश्चात् पृष्ठभागे प्राङ्मुखः उपविवेश अग्न्युपदेशं प्रतीक्षमाणो उपविष्टः।।श्रीः।।

अथा अग्निप्राकट्यं वर्णयति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ।।२।।

अभ्युवाद अभिमुखो भूत्वा वदति स्म शेषं स्पष्टम्।।श्री।।

द्वितीयपादोपदेशप्रतिज्ञां करोति—

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगव निति तस्मै होवाच पृथिवी कलान्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ।।३।।

अग्निराह हे सोम्य! ते तुभ्यं ब्रह्मणः द्वितायं पादं ब्रवाणी शेषं पूर्ववत्। अस्मिन् अनन्तवति पूर्ववत्। पृथ्वी अन्तरिक्षं द्यौः स्वर्गलोकाः समुद्रः सागर इति चतस्रः कलाः चतस्रृणां कलानां नास्ति अन्तः इत्यनन्तवान्।।श्रीः।।

फलश्रुति निरूपयाति—

स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्वा नस्मिल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जँ्य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ।।४।।

उपास्यगुणा उपासकं गच्छन्तीति एवं विद्वान् जानन् यः उपास्ते भजते शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये षष्टेखण्डे श्रीराघवकृपा भाष्ये सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

सप्तमः खण्डः

अथ ब्रह्मणः तृतीयपादोपक्रमः—

हँ्सस्ते पादं वक्तेति सः श्वोभूते सा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमादाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ।।१।।

हंसः सूर्यः मरालवेषः ते तुभ्यं तृतीयपादं वक्ति। शेषं पूर्ववत्।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हंसागमनं सूचयति—

तँ् हस उप निपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति ।
भगव इति ह प्रतिशुश्राव ।।२।।

तं सत्यकामम् उपनिपत्य हंसः हंसवेशः सूर्यः सत्यकाम इति अभ्युवाद। शेषं सुगमम्।।श्रीः।।

अथ तृतीयपादोपदेशः प्रारभ्यते—

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कलां सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ।।३।।

ब्रह्मणस्तृतीयो यः पादः ज्योतिष्मान् अत्र अग्निसूर्यचन्द्रविद्युतः कलाः ज्योतीरूपाः अतः ज्योतिष्मान् पादः "तसौ मत्वर्थे" पा.अ. १-१-१९ इति भसञ्ज्ञेन पदत्ववाधात् रुत्वाभावे इदूदुपधात् षत्वम्।।श्रीः।।

फलश्रुतिं निरूपयति—

स च एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिँल्लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते।।४।।

एवं ज्योतिष्मान् इति ज्ञात्वा अग्निचन्द्र-सूर्य-विद्युतकलात्मकं तृतीयं पादमुपासीनो ज्योतिष्मान् भूत्वा ज्योतिष्मतो लोकाञ्जयति इति मन्त्रार्थः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थोऽध्याये सप्तमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।
।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

अष्टमः खण्डः

अथ चतुर्थपादोपदेशोपक्रमः—

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभिसायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हंसोऽपि तृतीयपादमुपदिश्य ते मद्गुजलचरपक्षी चतुर्थपामुपदेशयतीति खं गतः। पूर्ववत् सायमग्निमुपसमाधाय सत्यकामेन मद्गुः प्रतिशतः मन्ये मद्गु विवेशो वरुणः जलदैवतत्वात्।।श्रीः।।

अथ मद्गुरागत्य चतुर्थपादोपदेशार्थं तमुद्बोधयति—

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति ।
भगव इति तं प्रतिशुश्राव ।।२।।

उपनिपत्य समीपं गत्वा।।श्रीः।।

अथ चतुर्थपादं ब्रूते—

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलाः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम् ।।३।।

चतुर्थोऽयम् पादः आयतनम् आयतनंन्नाम निवासस्थानम् एवम् अस्मिन् आयतनवति प्राण-चक्षु-श्रोत्रमनसां कलानाम् आयतनभूतत्वात्।।श्रीः।।

फलश्रुतिं निरूपयाति—

स य एतमेवं विद्वँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्त आयतनवानस्मिंल्लोके भवत्यातनवतो ह लोकञ्जयति य एतेवं विद्वाश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवा नित्युपास्ते।।४।।

एवम् आयतनवान् इति दृष्ट्या चतुष्कलं पादमुपासीनो आयतनवान् भूत्वा आयतनवतो लोकाञ्जयति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये अष्टमे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।
।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

नवमः खण्डः

अथ असकृदुपदिष्टोऽपि गुरुमुखमन्तरेण विद्यायां नैव पूर्णतां भजते इति शिक्षयितुं नवमं शकलमारभ्यते स एवं ब्रह्मवित्सन्—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप हाचार्यकुलं तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति । भगव इति ह प्रतिशुश्राव ।।१।।

एवम् ऋषभाग्निहंसमद्गुभिः समुपदिष्टः ब्रह्मवेत्ता सन् तृतीयदिवसे गवां सहस्रेण सह आचार्यकुलं प्राप तं हारिद्रुमतः सत्यकाम इत्यभ्युवाद सोऽपि भगवन् इति प्रतिजज्ञे।।श्रीः।।

आचार्यः शिष्यविद्यापूरणार्थं तदुपदेष्टारमपृच्छत्—

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वानुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाँस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् ।।२।।

आचार्यः प्राह सोम्य ब्रह्मविद् ब्रह्मवेत्ति ब्रह्मविन्दति वा इति ब्रह्मविद् स इव भासि प्रतीयसे दीप्से वा त्वां कः अनुशशास उपदिदेश सत्यकामोऽब्रवीत् मनुष्येभ्यः अन्ये पशवः पक्षिणः देवाश्च ऋषभाग्निहंसमद्गवः। तु किन्तु मे मह्यं भगवान् तत्र भवान् एव कामं यथेच्छं ब्रूयात् निगदेत्।।श्रीः।।

गुरोः सम्मानार्थी आचार्यदेवसत्यकामः भूयश्च तमनुरुन्धे—

श्रुतँ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यः आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापतीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किञ्चन वीयायेति वीयायेति ।।३।।

स्वकमेव निश्चयं द्रढयति हि यतोहि भगवद्दृशेभ्यः भवादृशेभ्यः आचार्येभ्यः मे एवं श्रुतमावर्णितं यत् आचार्यात् निजगुरोरेव विदिता ज्ञाता आचार्यात् इत्यत्र 'आख्यातोपयोगे इति प्राणिनिसूत्रेण पञ्चमी। साधिष्ठं शोभनत्वं प्रापति प्राप्नोति 'गणकार्यमनित्यम्' इत्यनुशासनेन सौवादिकेऽपि भौवादिकार्यम्। इति निवेदितः सन् तस्मै सत्यकामाय आचार्यः तामेव ब्रह्मपादचतुष्टयविद्यासमुपदिदेश। यत्र किञ्चन् अपि न वीयाय न विगतं बभूव इत्यनेन गरुदेवेभ्योऽपि गुरुतत्वं गरीयस्त्वेन प्रतिपादितम् द्विरुक्तिः आदरार्थः प्रकरणसमाप्तिसूचिका च।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये नवमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दशमः खण्डः

अथ निरतिशयगुणगणनिलयस्य परिकलितप्रणयस्य परमानन्दमूर्त्तये भगवतः परब्रह्मणोविभूम्नः कृत्स्नश आनन्दमयत्वात् पौनःपुण्येनाभ्यासार्थं मन्त्राणामालस्या-भावात् भगवतोऽसकृतस्मरणार्थं प्रकारान्तरेण ब्रह्मव्याचिख्यासया शकलमिदं प्रारभ्यते। आख्यायिका तु प्रतिपाद्यविषयतात्पर्यावबोधार्था—

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास तस्य ह द्वादशवर्षाण्यग्नीन्परिचचार स ह स्मान्यान्तेवासिनः समावर्तयँ्स्तँ् ह स्मैव न समावर्तयति ।।१।।

ह वै इति निपातद्वयम् घटनाया एतस्या ऐतिहासिकत्वसूचनाय, इतिहासप्रसिद्धेयं घटनेति भावः। का सा इत्यत आह— कामलायनः कं संसारसुखममपि निजब्रह्मविचारेण अमलयति यः स कमलः, कमल घटकारस्य ककारघटकारस्य च मध्ये स्कन्धादित्वात् पररूपम्। तथाभूतः कमलनामा कश्चित् ऋषिः तस्य गोत्रापत्यं पुमान् तस्यापत्यं पुमान् वा कामलायनः इत्यनेन ब्रह्मजज्ञोर्वंशपरिचयः। न खलु प्रशस्त मातृपित्राचार्यविहीनो ब्रह्मविद्यामधिगन्तुमर्हः। सर्वतोभावेन पतितस्य तु पतितपावनपार्वतीपतिपतिपाथोजचरण एव शरणमितिराद्धान्तः। विद्या ह वै ब्राह्मण माजगाम इति श्रुतेः। 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' इति स्मृतेश्च। किन्नामासौ इत्यत आह उपकोसलः— कोसलान् उपगतः इत्युपकोसलः मन्ये कोसलदेशे तस्य प्रादुर्भूतत्वात् तज्जनक उपकोसल इति नाम व्यधत्त। अथवा कोसलेषूपलब्धः इति उपकोसलः, अथवा उपकंठः कोसलः यस्य स उपकोसलः उपकृता कोसला वा येन मुनि दुश्चरतपश्चरणद्वारा स उपकोसलः। एवं गुणगणविशिष्ट उपकोसलो नाम कमलमहर्षिपुत्रः सदाचरपरायणो ब्राह्मणकुमारः जाबाले सत्यकामे अनुपदमेव पञ्चसु खण्डेषु व्याख्यातमहिम्नि सत्यकाम नामनि आचार्ये, अत्रत्या सप्तमी तु सामीप्ये सत्यकामचरणकमलसन्निधाविति भावः। ब्रह्मचर्यं ब्रह्मचर्यपूर्वकम्, उवाच निवासञ्चकार, ह निश्चयेन, 'सः' तस्य सत्यकामस्य द्वादशवर्षाणि यावत् अग्नीन् परिचचार, गार्हपत्यम् आहवनीयमन्वाहार्यपजनम् इमान् त्रीणि अग्नीन् परितः सिषेवे। किन्तु सः सत्यकामः अन्यान् उपकोसलतः इतरान् अन्तेवासिनः वटून् समावर्तयन् समावर्तनसंस्कारेण योजयन् विद्यासमाप्तौ समावर्तनपूर्वकं गृहान्प्रस्थापयन् अपि तम् उपकोसलं न समावर्तयति स्म 'ह' एव इति प्रसिद्धार्थम्।।श्रीः।।

अग्रे किमभूत इत्यतत् आह—

तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन्परिचचारीन्मा त्वाग्नयः परिप्रवोचन्प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै हाप्रोच्यैव प्रवासाञ्चक्रे ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं द्वादशवर्षाणि परिचरतोऽग्निरपि यदोपकोसलस्य सत्यकामो समावर्तनं न चकार तदा जाया, जायते पतिरेव पुत्ररूपेण यस्यां तथाभूता तस्य पुत्रवती वल्लभा पत्नी करुणापरवशा वटौ तमुवाच—सत्यकामं न्यवेदयत्, अयम् एषः ब्रह्मचारी तप्तः उग्रं तपश्चचार तप आलोचने इत्यस्मात् कर्मणिभूतेक्तः ब्रह्मविचारार्थं मया समालोचितः। अथवा असकृत् परिचरणेन त्रयाणाम् अपि पावकानां स्फुलिंगमालया तप्ताङ्गः अथ च कुशलं यथा शास्त्रं कौशलेन अग्नीन् परिचचार असेवत् इति निश्चये एतावत्यपि भवानस्मै ब्रह्मविद्यां नोपदिशाति अस्याम् उपेक्षायां अग्नयस्त्वां निन्देयुः।

अतः यथा गार्हपत्यादयोग्न्यः त्वां भवन्तं मा प्रवोचन् मा परिवदन्तु। ततो भवान् अस्मै ब्रह्मविद्या ब्रवीतु। यतोहि ज्ञानं सम्प्रात्य संसारे यः परेभ्यो न यच्छति ज्ञानरूपी हरिस्तस्मै प्रसन्न इव नेक्षते। इति अस्मै ब्रह्मचारिणे ब्रूहि किमपि ब्रह्मरहस्यं वर्णय। इति प्रेरितोऽपि अप्रोच्य अनिगद्यैव सत्यकामः प्रवासांचक्रे प्रावसत।।श्रीः।।

अथाग्निप्रशंसा वर्णयति—

स ह व्याधिनानशितुं दध्रे तमाचार्यजायोवाच ब्रह्मचारिन्नशान किं नु नश्नासीति स होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ।।३।।

एवं भग्नोद्दिश्य उपकोसलः व्याधिना मनस्तापेन अनशितुम् अनशनन् कर्त्तुं दध्रे निश्चितं कृतवान्। तमश्नन्तमाचार्यस्य सत्यकामस्य जाया आचार्यजाया तद्गुरुपत्नी उवाच भो ब्रह्मचारिन्! अशान् भोजनं गृहण किं नु कस्माद्धेतोः नाश्नासि न भुङ्क्षे सोऽवदत् अस्मिन् पुरुषे शरीधारिणे जीवे नानात्ययाः नानापरिणामवन्तः बहवा कामा इच्छाः कामानाम् आनन्तेन संजन्त व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि प्रतिस्पर्धितया पूर्णोऽस्मि अतः न अशिष्याभि न भोजनं करिष्यामि इति इत्थम् उदतीतरत् गुरुपत्नीम्।।श्रीः।।

अथाग्नीनां प्राकट्यपूर्वकम् उपदेशं वर्णयति अथ हाग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति ।।४।।

अथ आसन्नमरणमुपकोसलं वीक्ष्य अग्नयः त्रयोऽपि समुदिरे प्रकटय्य निगदितवन्तः। तप्तो ब्रह्मचारी तपस्यया अस्मज्ज्वालया च नः अस्मान्त्रीनपि कुशलं विधिकौशलपूर्वकं पर्यचारीत् असेविष्ट। हन्त विस्मयाश्चर्यवाचकोऽयम् अव्ययः। अस्मै ब्रह्मचारिणे प्रब्रवाम प्राकर्षेण ब्रह्मतत्व निगदेम इति निश्चित्य त्रयोऽपि एकैकशः प्राणः ब्रह्म कं ब्रह्म, खं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्म इति प्रकारत्रयेण त्रिभिर्विभूतिभिर्वा ब्रह्म ऊचुः। प्राण इत्येनन सत्, कम् इत्यनेन चित्, खम् इत्यनेन आनन्दम् इति सच्चिदानन्द ब्रह्म स्मारयामासुः।।श्रीः।।

उपकोसल-जिज्ञासां प्रस्तौति प्राणो ब्रह्मेति गार्हपत्ये उक्तवती प्राणानां प्रसिद्धत्वात् अवजगामुपकोसलः कं ब्रह्मेति दक्षिणाग्नौ कथिते, खं ब्रह्मेति तृतीये समुपदिष्टवती सहसा जिज्ञासा जाताकिमेतत् कं खमिति अतः जिज्ञासते—

स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ।।५।।

अग्नीन् उपकोशलोऽपृच्छत् भगवन्तः प्रसिद्धपदार्थत्वात् प्राणं विजानामि तस्मिन् ब्रह्मभावानां चिकर्षामि। तु किन्तु कं, खं च न विजानामि। ननु यथा लोके प्रसिद्धार्थतया प्राणं ब्रह्मत्वेन जानासि तथैव क शब्दः लोके सुखवाची, खं शब्दश्चाकाशवाची इमौ कथन्न जानासि? इत्यान्तरं प्रच्छत्सु पावकेषु तत्समाहितिः। कं लौकिकं सुखं तद्ब्रह्म भवितुं शक्नोति नहि, खं आकाशं तस्मिन्न चेतने कथं चिद्घन ब्रह्मणो भावना अतः अग्नयः ऊचुः उत्तरयामासुः। वत्स—क ख योर्मध्ये न किञ्चित् विभेदः वाव निश्चयेन यत् कं तदेव खमर्थात् यद्ब्रह्मसुखस्वरूपं तदेवाकाशवन्नीलं गंभीरं समनन्तावकाशञ्च। ननु अन्यतरेणैव लाभः स्यात् अलं द्वाभ्याम् इति चेन्न। लौकिकसुखनिराशार्थं खमित्याकाशता, लौकिकाकाशत्वनिराशनार्थम्, कमिति लोकोत्तरसुखता सामानाधिकरण्यञ्च सुखस्वरूपत्वबोधानाय मानसेऽपि—

सुख स्वरूप रघुवंशमनि मंगलमोदनिधान।

(मानस २।२००)

मम तु कं सर्वेषां श्रुतीनां शिरोभूतं ब्रह्म। यथोक्तं श्रीमानसे—

जहँ रह श्रीनिवास श्रुतिमाथा।

(मानस १।१२७।३)

खमाकाशं शिरोभूतमपि आकाशवत् सर्वव्याप्तम्, अथवा कं जलरूपं, खं जलाधाराकाशरूपं, कं निर्गुणं ब्रह्म कीयते श्रुतिभिरनिर्वचनीयतया गीयते। खं—खनति भक्तानां संकटतरुमूलं राक्षसानां गर्वतरुमूलं यत्तत् खं सगुणं ब्रह्म श्रीरामाभिधम् एवं तस्मै प्राणं ब्रह्म सुखस्वरूप सर्वत्रव्यापितया आकाशं च ब्रह्म इत्यूचुः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थेऽध्याये दशमे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकादशः खण्डः

भूयोऽपि गार्हपत्यः अन्वाहार्य्यपचनः (दक्षिणाग्निः) आहवनीयश्चेति त्रयोऽप्यग्न्यः सम्भूय तमुपदेष्टुमारेभिरे—

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति ।
य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ।।१।।

पूर्वस्मिन् खण्डे उपकोसलं प्राणो ब्रह्म इति गार्हपत्यः, कं ब्रह्म इति अन्वाहारपचनः, खं ब्रह्म इति च आहवनीयः इत्थं यथाक्रमम् अग्नित्रयम् त्रेधा ब्रह्मोपदिदेश। उपदेष्टुः स्वरूपजिज्ञासायां पुनरिमे यथाक्रमम् त्रिभिः कण्डैः स्वं स्वं स्वरूपमुपदिशन्ति। तत्रैकादशे प्रथमं गार्हपत्योपदेशोपक्रमः अथ इत्यादिना। अथ शब्दोऽयम् आनन्तर्यवाची प्रस्तावदवाची च। अध्यात्मविद्योपदेशाव्यवहितोत्तरकालमेव। आत्मविद्योपदेशः प्रस्तूयते इत्यथ पदार्थः। ह निश्चयेन, एनम् उपकोसलं, गार्हपत्यः— ग्रहपतिनानीतोऽग्निः गृहपतिसेवितो वा, गृहपतिसम्बन्धिभूतो वा। अनुशशास ननु शासधातोः स्वयमेवानुशासनमर्थः तर्हि किमनेनानूपसर्गेण इति चेन्नैष दोषः। शासधातु-वाच्यमनुशासनरूपमर्थं विसर्ग एव द्योतयति, प्रहाराद्यर्थक 'हृ' धातोः प्राद्युपसर्गवत्, यद्वा शास धातोरनुशासनमर्थः अनूपसर्गस्य चानुकूल्यम् एवमनुशशासेत्यास्य गार्हपत्याभिन्नैककर्तृकपरोक्षत्वावच्छिन्नभूतकलावच्छिन्नोपकोसलकर्मकतदानुकूल्य-प्रकारकेच्छाविशिष्टशास्त्रोपदेशानुकूलव्यापारः पदार्थः। किमनुशासनमित्यत आह पृथिवी, अग्निः, अन्नम् आदित्यश्च इत्येव मे चत्वारि स्वरूपाणि। अत्र पृथिव्या अन्नेन सम्बन्धः अग्नेश्चादित्येन द्वन्द्वघटितस्यैव पूर्वोच्चरितत्वेऽपि अर्थानुरोधिनीयं व्यवस्था, एवम्, आदित्ये सूर्यनारायणे यः पुरुषः दृश्यते मानवाकारतया विलोक्यते सः अहं गार्हपत्याग्निः दृढयितुं परिवर्त्य प्राह— स एव आदित्यमण्डलगतपुरुष एव इत्येव गार्हपत्योपदेशप्रकारः आशयोऽयं यत् पृथिवी, अग्निः अन्नं, सूर्यः इमे मम चत्वारो देहाः, आत्मा तु सूर्यमण्डलगतपुरुष एव।।श्रीः।।

फलश्रुतिं निर्दिशति—

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकीभवति
सर्वमायुरेति जयोग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं
भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिंश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ।।२।।

एवं पूर्वोक्तरूपेण विद्वान् जानन् एतं पृथिव्यादिरूपचतुष्टयसम्पन्नम् एतं गार्हपत्याग्निं यः कश्चनापि उपास्ते उपासनविषयं करोति। पापानां विकर्मविपाकानां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृत्यां कृत्यारूपिणीं कृतिम् अपहते हिनस्ति आत्मनेपदत्वात् अपि तस्तकारस्य नित्वात् "सार्वधातुकमपित्" इति पाणिनीयानुरोधेन अनुनासिकलोपः सर्वमायुः शतवर्षात्मकम् एति कर्म कुर्वन् जीवनपथ्यायां गच्छति। ज्योक् उज्ज्वलार्थोऽयं क्रियाविशेषणरूपोऽव्ययः ज्योग्जीवति समुज्ज्वलं जीवनं वर्तयतीति भावः। अस्य अवरपुरुषाः भावि संततयः न क्षीयन्ते नैव नष्टा भवन्ति। वयं त्रयोऽग्नयः अस्मिंल्लोके मर्त्यलोके जीवनकाले अमुष्मिन् परलोके च उपभुञ्जामः पालयामः 'भुजोऽनवने' इति पाणिनीयानुशासनेन अवन-भिन्नस्यैव आत्मनेपदविधानात् य एवमिति दुरुक्तिस्तु आदरार्था।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये एकादशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

द्वादशः खण्डः

इदानीं दक्षिणाग्नेरुपदेशं प्रस्तौति—

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति। य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति।।१।।

अथ गार्हपत्योपदेशानन्तरं ह निश्चयेन उपकोसलं समनुग्रहीतुं निश्चित्य एनं जिज्ञासुं कमलपुत्रमन्वाहार्यपचनः दक्षिणाग्निः सशरीरः अनुशशास अनुशिष्टवान्। अनुशासनप्रकारमाह, आपः जलं, दिशः पूर्वादयः, नक्षत्राणि उडुगमाः चन्द्रमाः पार्वण, शशी, इमानि चत्वारि मे रूपाणि त्वं कः? इत्यत आह, एषः सर्वसाधारणगोचरः चन्द्रमसि इन्दुबिम्बमध्ये यः कश्चन् कदापि विलोकनार्ह दृश्यते चाक्षुस् साक्षात्कारविषयः क्रियते। दृशेर्ज्ञानार्थकत्वे अनुभूयते सः अहं दक्षिणाग्निरश्मि तमेव सिद्धान्तं दृढयति स एवास्मि एवकारः इतरयोगं व्यवच्छिनत्ति इति उपदेशप्रकारसूचकोऽयम्।।श्रीः।।

फलश्रुतिं निर्दिशति—

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकीभवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ।।२।।

एतत् ज्ञात्वा उपासीनः पालितो दक्षिणाग्निना आयुषा धनसम्पत्या जीवत्येष श्रुतेर्मतः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थेऽध्याये द्वादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रयोदशः खण्डः

अथाहवनीयविद्योपदेशं वर्णयति—

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास
प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति ।
एष विद्युति पुरुषो दृश्यते
सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ।।१।।

अथ तूष्णींभूते दक्षिणाग्नौ आहवनीयः तृतीयोऽग्निः अनुशशास, यत् प्राणः आकाशः नभो मण्डलं द्यौः स्वर्गलोकः, विद्युत् चपला इमे चत्वारो मे देहाः। विद्युति चपलायां य एषः पुरुषः दृश्यते अनुभूयते सः तादृशः अहम् अस्मि आहवनीयो भवामि स एवास्मि नान्यदतो व्यतिरिक्त इति भावः।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकीभवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ।।२।।

लोकीभवति विद्युल्लोकं याति शेषं सुगमम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये त्रयोदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

चतुर्दशः खण्डः

उपदेशोपसंहाराय गुरुगौरवाय च खण्डोऽयं प्रारभ्यते सर्वज्ञाः सन्तोऽप्यग्नयः आचार्यमहत्वं वर्णयितुं अग्निविद्यात्मविद्ययोः गतिं नावगमयन्ति अत आहुः ते इत्यादि—

ते होचुरुपकोसलैषा सोम्य
तेऽस्मद्विद्यात्मविद्या चाचार्यस्तु
ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याचार्य-
स्तमाचार्योऽभ्युवादोपकोसल ३ इति।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवम् उपदेशं दत्त्वा ते गार्हपत्यान्वाहारपचनाहवनीयाः प्रोचुः निजगदुः— उपकोसल एषा तुभ्यम् अस्मद्विद्या अग्निविद्या आत्मविद्या ब्रह्मविद्या च निगदितेऽस्माभिः। हे सोम्य! सोमोत्पादनसमर्थ तव आचार्यः गतिम् उभयोर्विद्ययोर्लक्ष्यं वक्ति वर्तमानसामीप्ये लट् विधानात् शीघ्रं वदिष्यतीत्यर्थः। तावत् अस्य आचार्यः विदेशतः आजगाम तम् अभ्युवाद आजुहाव उपकोसलसम्बोधने वाक्य टेः प्लुत उदात्तः।।श्रीः।।

अथाचार्योपकोसलसम्वादं समुपस्थापयति—

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति को नु त्वानुशशासेति को नु मानुशिष्याद्भो इतीहापेव निह्नुत इमे नूनमीदृशा अन्यदृशा इतीहाग्नीनभ्यूदे किं नु सोम्य किल तेऽवोचन्निति ।।२।।

आचार्याह्वानानन्तरं भगव इति सम्मानवाक्येन प्रतिशुश्राव आत्मानं निवेदयाञ्चक्रे। आचार्यः सविस्मयं पप्रच्छ सोम्य! ते उपकोसलस्य मुखं ब्रह्मविद इव ब्रह्मवेत्तुरिव भाति परं प्रसन्नं दीप्यते। मयि प्रवसति त्वाम् उपकोसलं कः अनुशशास कोपादिदेश। आचार्य-प्रश्नं श्रुत्वा प्रेमसंरम्भविह्वलः ईषत् गोपनीयम् इव प्राह— भवति प्रवसति मां कः अनुशिष्यात् उपदिशेत् इह अस्मिन् बुधशून्ये गुरुपत्नीमात्रद्वितीये। अपि एव शब्दौ अत्यन्तगोपनपरौ इति निह्नुते गोपायति परम् आचार्यो जानन् न संतुष्यति तदा कथयति इमे ईदृशाः एतत् प्रकाराः तेजसा भवत्सदृशाः अन्यथादृशा वा वा शब्दः समुच्चयार्थः न तु विकल्पार्थः अन्यादृशाश्च इत्यर्थः। अभिप्रायोऽयं भवत्सादृश्येऽपि दैवतत्वात् ते अन्यदृशाः भवतो विलक्षणाः इति भावः। अथ स्पष्टयति तर्हि इमे अग्नयः आचार्यः प्राह ते किम् अवोचन् किमुपादिशन् इति।।श्रीः।।

अथोपकोसलः विद्याद्वयं तदुपदेशं प्राह अनन्तरम् आचार्यः ततो विलक्षणं ब्रह्म प्रावोचत्—

इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान्वाव किल सोम्य तेऽवोचन्नहं तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच ।।३।।

आचार्ये पृच्छति उपकोसलः इदम् अग्न्यात्मविद्याद्वयम् उपादिशन् इति प्रतिजज्ञे सत्यापयामास। आचार्यः प्राह सोम्य! ते लोकान् प्रावोचन् अर्थात् तैस्ते विद्ये उपदिष्टे याभ्यां त्वया ब्रह्मलोकान्ताः क्षणभङ्गुराः लोकाः तेषां क्षणभङ्गुरञ्च सुखं समधिगन्तु शक्यते न तु सकललोकविलक्षणं श्रीकौशल्यानन्दवर्दनपदपाथोजपरागमकरन्दपानरूपम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतस्मात् विलक्षणम् अहं ते वक्ष्यामि। कीदृशं तत्? अत आह बन्धनानां दुःखामयमूलकत्वात् यथा पुष्करपलाशे कमलपत्रे विराजमाना अपि आपः जलानि न श्लिष्यन्ते न सम्बन्ध्यन्ते एवम् अनेन प्रकारेण एवं विदि ब्रह्मवेत्तरि पापं विकर्मपरिणामः कर्म सत्कर्मफलञ्च श्लिष्यन्ते न सम्बद्ध्यन्ते, ज्ञाने हि कर्मफलानि विलीयन्ते। यथोक्तं गीतायाम्—

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।

(गीता ४।३३)

इति उपकोसलः प्राह ब्रवीतु भगवान् इत्थं प्रार्थ्यमाने आचार्यः तस्मै उवाच अवदत्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये चतुर्दशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

पंचदशः खण्डः

अथ साम्प्रतमुपकोसलं सत्यकामः प्राह ब्रह्मरहस्यं, नन्विदमनुपपन्नं ब्रह्मणः सर्वेषां याथातथ्येन बुद्ध्यारूढत्वाभावात् 'यस्यामतं तस्य मतं' (केन. १.२.५) 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' (कठ. १.२.२३) 'कस्तं मदामदं देवं मदन्योज्ञातुमर्हति' (कठ. १.२.२०) 'न च तस्यास्ति वेत्ता' (श्वेताश्वता उ. ५.२०) इत्यादिश्रुत्यन्तरेभ्यः 'स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम' (गीता १०.१५) इत्यदिस्मृतेश्च नैष दोषः ब्रह्मणो वृत्यारूढत्वस्य एकदेशीयैः सिद्धान्तितत्वात्। सत्यकामश्च स्वयं भगवद्रूपत्वाच्च, 'सत्यकामः सत्यसंकल्पः' इत्यादिश्रुतेः 'गुरुः साक्षाद् परब्रह्म' इति गुरुगीतोक्तेश्च। सत्यकामे ब्रह्मत्वव्यपदेशे तस्मिन्नल्पज्ञत्वरूपशंकापंकप्रच्छालनात्—

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति । तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चत्नि वर्त्मनी एव गच्छति।।१।।

अथ ब्रह्ममत्वत्तो न दविष्ठं कुत्र स इत्यत आह— एषः अयमित्याङ्गुल्यानिर्देशः कुत्रैतन्निवासः? अत आह यः सगुणसाकारः अक्षिणि प्रतिप्राणिनेत्रमधितिष्ठत् दृश्यते योगिभिः साक्षात् क्रियते। यथोक्तं श्रीभागवते—'ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो' (भागवत १२.१३.१) मानसे च जटायुषोक्तं— पश्यन्ति यं योगी जतन करि करत मन गो बस सदा (मानस ३.३२.४) पुरुषः पुः शरीरे उ निश्चयेन शेते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तटस्थतया तिष्ठति तथाभूतः एष आत्मा एषः अतिसंन्निकृष्टः आत्मा परमात्मा आसमन्तात् आदरेण वा आहूतो वा सततम् अतति इत्यात्मा, प्रेमवसंवदत्वात्। यत्तु केचन आत्मपदेन जीवात्मानं व्याचक्षते तदनर्गलम् अत्रत्य प्रसंगविरोधात्। नहि खलु जीवात्मा अक्षि दृश्यते तस्य स्वयमेवावयवित्वात् दृश्यते इति क्रियापदेनापि दृश्यदृष्टोर्भेदस्य सुस्पष्टं सिद्धत्वात् कर्मकत्रोश्च एकस्मिन् पिण्डे सर्वथैव व्यपदेशासंभवात्, यथा रामो दृश्यते केन इति जिज्ञासायां सीतया इत्थं लोकेऽपि दृश्यदृष्टिभेदस्य दुर्निवारत्वात् तस्मन्मदुक्तः पन्थः ज्यायान्। एवम् आदत्ते भक्तानां भावान् यः स आत्मा, आप्नोति व्याप्नोति चराचरं यः स आत्मा, निरस्तसकलपंचक्लेशपरिणामो नर्मदगुणग्रामोसीताभिरामो श्रीरामः, तथा च आप्नोति सर्वांल्लोकान् यः आहूतोऽतिसर्वदा, आदत्ते भक्तभावान्यः स आत्मा परमेश्वरः इति वैष्णवस्मृतेः इति इत्थं ह निश्चयेन उवाच अवदत् सत्यकाम उपकोसल इति भावः। पुनर्विशिनष्टि जीवात्मत्ववारणाय विशेषणं हि विद्यामानं सदितरव्यावर्तकम् एतद् क्लीबेऽपि ब्रह्मकथ्यते ब्रह्मपदेन वेदप्रकृति ब्रह्म ब्राह्मणानामर्थबोधसंभवे तद्वारणाय विशेषणम् एतद् अमृतं मृतामरणधर्माणोमनुपयाः। तद्भिन्नम् अथवा मरणमेव मृतं भावे क्त प्रत्ययविधानात् न भवति मृतं ज्ञायमानेऽस्मिन् तदमृतं "तमेव विदित्वामृत्युमेति" (शुक्लयजुर्वेद ३१.१८) इति मन्त्रवर्णात्। अभयं भयवर्जितं स्वत एव निरस्तसकलकुहकत्वात् अत एव विभीषणाय प्रतिजानीते दातुमभयं यथा 'सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति चयाचते, अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम (बा.रा.यु. १८.३३) एतदेव ब्रह्म बृह्मत्वलक्षणं यच्च भागवत्पादाः ब्रह्मणो निर्धर्मत्वं सिद्धान्तयामासुः तत्तु बौद्धसंस्कृतिसंवित् कारणत्वात् ब्रह्मत्वस्यापि धर्मत्वेन सार्वजनीनत्वात् कस्यापि पदार्थस्य धर्मत्वशून्यतायाः त्रिकालमपि लपितुमशक्यत्वात् कथं ज्ञायताम्? इत्यत आह— उपमाविधेया यथा उदकं सर्पिषं निक्षिप्यते परन्तु मथ्यमानं ततः पृथगेव तिष्ठति यथा च नेत्रे किमपि सिच्यते तत् परितो गच्छति नैतत् स्पृष्टुं प्रभवति। तथैव सर्वाणि प्रपञ्चानि समीपं गच्छन्त्यपि नैतद् विकर्तुं पारयन्ति इति भावः। एवं सिञ्चति निक्षिपति वर्त्मनि मार्ग एव गच्छति नैव तत् प्राप्नोति इति भावः।।श्रीः।।

भूयस्तन्महिमानं वर्णयति—

एत॒ँ संयद्वाम इत्याचक्षत एत ँ हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति। सर्वाण्येनं वामान्यभि संयन्ति य एवं वेद।।२।।

एतम् इममेव परमेश्वरं संयत्वामः संयत्ति संयक् गच्छन्ति वामानि सकलानि सौन्दर्ययुक्तानि वस्तूनि यं तथाभूतः सकलसौन्दर्यगुमगणनिलयः इति अनेन रूपेण आचक्षते वर्णयन्ति विद्वांसः। तदेव स्पष्टयति— हि यतो हेतोः सर्वाणि वामानि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनोहराणि सौभाग्यानि अभिसंयन्ति अभिगच्छन्ति वामत्वसंपादनायेति भावः। भगवतोऽन्यत्र कुत्रापि वामत्वानुपपत्तेः, एनं यः कश्चन वेद सोऽपि कीदृक् भवति? इत्यत आह एनं सर्वाणि वामानि अभिगच्छन्ति। यथोक्तं मानसे—

राम सरिस बर दुलहिन सीता ।
समधी दशरथ जनक पुनीता ।।
सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे ।
अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे ।।श्रीः।।

(मा.वा. ३.५.२.३)

भूयस्तमेव फलश्रावणेन शरणागतं कर्त्तुं जीवं प्रेरयति श्रुतिः—

एष एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि।
नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ।।३।।

निश्चयेन एषः अयमेव अतिसिकुसुमसुकुमारः कौशल्याकुमारः एव नान्यः कश्चन एतद् व्यतिरिक्तः वामनिः सकलसौंदर्यभाजनम् अति सरलतया श्रुतिः स्वयमेव स्पष्टयत्यर्थं हि यतोहि एषः परमात्मा वामनिः वामानि नयति सर्वाणि सुभगानि स्वमेव प्रापयति यः एवं वेद जानाति सोऽपि सर्वाणि वामानि नयति प्राप्नोति कर्मकर्तृप्रयोगोऽयं स्वयमपि सौन्दर्याणि नीयमानो भवति।।श्रीः।।

भूयः भगवतोऽपरनाम्नो व्याख्यां करोति—

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु ।
भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ।।४।।

निश्चयेन एषः निखिलसौन्दर्यसागरः भामनिः दीप्तिमान् कथमित्यत् आह— एषहि निरस्तसमस्तदूषणो भूषितभूषणो जितखरदूषणो दिनकरकुलभूषणो रामः सर्वेषु लोकेषु आब्रह्मभुवनेषु नरकेषु स्वर्गेषु च भाति अप्रतिहताखण्डज्योतिष्तया दीप्यते एवं दीप्यमानं परात्मानं वेद जानाति सोऽपि भाति शोभते भामित निरिति भाति इति भामनिः इति विग्रहे भा धातोः औणादिके मनिचिप्रत्यये साधुः।।श्रीः।।

भूयः ब्रह्मसाक्षित्वे सत्कर्ममहिमानं वर्णयति सत्कर्मकृतेषु निर्मलमनस्तया परमार्थवर्त्मनि प्रगतिर्जायते अतआह—

अथ यदु चौवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च नार्चिषमेवाभिसंवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान्मासेभ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यामाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ।।५।।

अथ वामनीत्वेन भामतीत्वेन च ब्रह्मोपासना यदि शरीरं त्यजन्ति तदा उ तान्प्रतितत्कौटुम्बिकाः किमपि तर्कयित्वा एभिरस्माकं कृते किं धनमर्जितम् अतो न वयं किमपि साम्परायिकमेषाम् चरिष्याम इत्याकारकम्।

यदि चैव कदाचिन्नास्तिकबुद्ध्या समुपेताः अस्मिन् शरीरपाते शव्यं शवोनाम प्राणवियुक्तशरीरं तस्मै शवाय हितं शव्यं प्रेत सद्गत्युपयोगीत्यर्थं, कुर्वन्ति लोकलज्जावशंवदाः पुत्रपौत्राः अन्त्येष्टिसंस्कारं समाचरन्ति। यदि चैव भौतिकवादचाकिचिक्यविलुप्तवैदिककर्मश्रद्धाः न कुर्वन्ति शव्यं तथाऽपि ब्रह्मज्ञानां सद्गतौ कोऽपि प्रत्यवायो न जायते। ब्रह्मवेत्तारस्तु स्वयमेव भगवद्भजनजाह्नवीजलनिरस्तसकल परमेश्वरप्रेमप्रतिबन्धकप्रत्यवायपङ्काः शशाङ्क इव निष्कलङ्का। यथोक्तं भागर्वते—

देवर्षिभूताप्तनृणामृषीणां न किङ्करो नायमृणि राजन्
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्।

इत्यनेन वेदविहितसाम्परायिकसंस्कारस्य निन्दा न विधीयते।

प्रत्युतस्तूयते ब्रह्मज्ञानी (नहि निन्दा निद्यं निन्दितुं प्रभवति किं तर्हि विधेयं स्तोतुम् इति न्यायात्) कुत्र गच्छन्ति ब्रह्मविदः अर्चिसम् अग्निज्वालां पश्चात् अर्चिसः अग्नीज्वालामतीत्य अहः दिनाभिमानिदैवतम् अह्नःदिनाभिमानि दैवतात् आपूर्यमाणपक्षं चन्द्रकलाभिः आपूर्यमाणं पूर्णं क्रियमाणं पक्षं शुक्लपक्षं तदभिमानि देवतामिति भावः। आपूर्यमाण पक्षात् अत्र ल्यवलोपे पञ्चमी आपूर्यमाणपक्षं अतिक्रम्येति भावः।

यान् षण्मासान् अत्र (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे) इति सूत्रेण द्वितीया। एवम् आमाघात् यवदाषाढमिति भावः उदङ्ङेति सूर्यः उत्तरां दिशं गच्छति मकरमारभ्यः मिथुनं यावद् तान् उत्तरायणमासान् तेभ्यः मासेभ्यः संवत्सरं वर्षं, संवत्सरात् वर्षमतीत्य आदित्यं सूर्यमादित्याद् सूर्यात् पृथक्भूता चन्द्रमसं शशिनं, चन्द्रमसः तस्माद् विधोः विभक्ताः विद्युतं चपलां तदभिमानिनीं देवतामिति भावः। अभिसंयन्ति अभिगच्छन्ति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निर्जैरेव निष्कामकर्मजनितादृष्टविशेषैरित्यर्थः। तत्पुरुषः तस्माद् ब्रह्मलोकादागतः पुरुषः तस्य ब्रह्मणः परिकरविशेषोदूतः पुरुषः। स किं प्रकारकः? इत्यत आह अमानवमनोरयं मानवः तद् भिन्नोऽमानवः मनु सृष्टिविलक्षणो भगवद् पार्षदविशेषो हनुमदादिरिति भावः। स विमानान्यधिरोप्य एनान् ब्रह्मवेतॄन् ब्रह्मसीताभिरामं श्रीरामं परेश्वरं गमयति प्रापयति। यत्तु गन्तव्यगन्तृगमयितृभेदाभावं सिषाधयिष्यन्ति तदनर्गलमेव। एषैः देवपथः देवानां द्योतनशीलानाम् पथा मार्ग देवपथ अयमेव ब्रह्मपथ ब्रह्मप्रापक पन्था। ब्रह्म पथ शाकपार्थिवादित्वात् मध्यमपद लोपः। एतेन ब्रह्मपथेन हनुमदादिमानवेतरश्रीवैष्णवः पार्षदैः सहयोगिर्भिर्नीयमाना प्रतिपद्यमाना श्रीरामं शरणं ब्रजन्तः इमं दृश्यमानां मानवं मनुनिर्मितं, यद्वा मानं मानोपलक्षितंविकारान् वयति इति मानवः, तां मानवम् आवर्तम् आवर्तो जलभ्रमणविशेषः यस्मिन् पतितो नीचैर्मज्यते एव आवर्तयति पुनः पुनरघो गमयतीत्यावर्तः घोरः संसारजननमरणचक्ररूपः नावर्तन्ते नैव परमात्मपार्श्वत समागच्छन्ति नावर्तन्ते द्विरुक्तिरेषा ऐकान्तिकात्यन्तिकसंसारचक्रो निरासससूचिका।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाऽध्याये पञ्चदशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

षोडशः खण्डः

यज्ञो दानं तपः कर्म पावनानि मनीषिणाम्। इति

(गीता १८ अ. ५)

इति गीतोक्त्या मनीषपावनत्वहेतुभूतस्य यज्ञस्य उपासत्वेन वर्णनमाह। न खल्वपूतमनीषे मनुष्ये ब्रह्मष्फुरणं सम्भवं अतो ब्रह्मसाक्षात्कारसहकारित्वेन यज्ञोपासनामाह—

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत
एष ह यन्निदꣳ सर्वं पुनाति यदेष
यन्निदꣳ सर्वं पुनाति तस्मादेष एव
यज्ञस्तस्य मनश्च वाक्च वर्तनी ।।१।।

एषः अयं समधिकसन्निकृष्टः (त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्माऽसि) तै.उ. शिक्षाध्याय १ इति श्रुतेः। वायोः प्रत्यक्षब्रह्मतया निरतिशयसान्निकृष्टता एतच्छब्दाभिलप्या ह वै इति निपात-युगलं, सार्वजनत्वेन सूचकम्। वायोर्यज्ञत्वेन सार्वजनीनता यज्ञः मखः इज्यते पूज्यते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिमलेन सङ्गम्यते सर्वेभ्यो प्राणान्ददाति यस्तथाभूतः, यद्वा यज्ञस्य विष्णोः रूपतया प्रत्यक्षब्रह्मतया च वायोः परस्पदरं समानधर्मत्वमनयोः 'यज्ञो वै विष्णुः इति श्रुतेः। उपपत्तिमाह— यः अयं वायुः पवते पवित्री करोति तथैव यज्ञोऽपि एवमेव महाविष्णु श्रीरामोऽपि पतितपावनतयैव प्रसिद्धः एषः वायुः एति गच्छति इति यन्, इण् धातो शतृ प्रत्येय अनुबन्धलोपे नुमि "इणो यण्" इत्येनेन यणि यण गच्छन् इदं सर्वं दृश्यमानं जगत् पुनाति पावयति। तथैव यज्ञभूतः परमात्मा अपि भक्तैः स्मर्यमाणो यन् दण्डकादिकं गच्छन् जगदखिलं पवित्रयतीत्यर्थः। हेतुमाह यज्ञत्वे यत् यतोहि एषः वायुः यन् सर्वमिदं पुनाति अत एव अयं यज्ञः तत्तुल्यकार्यत्वात् तस्य यज्ञस्य मनो स्वान्तं वाक् वाणी च वर्तनी वर्तते गच्छति यया तादृशि पद्धतिरिति भावः।।श्रीः।।

अथ यज्ञे ब्रह्मणो मौनभङ्गेऽपरिहार्यसङ्कटमाह मन्त्रद्वयमेकान्वयि—

तयोरन्यतरां मनसा सꣳस्करोति ब्रह्मा वाचा होताध्वर्युरुद्गातान्यतरꣳ स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति ।।२।।

अन्यतरामेव वर्तनीꣳ सꣳस्करोति हीयतेऽन्यतरा स यथैकपाद् व्रजन रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञꣳ रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति स दृष्ट्वा पापीयान् भवति ।।३।।

तयोः वाङ्मनोवर्तिन्योर्मध्ये अन्यतरां मनोवर्तिनीं ब्रह्मा यज्ञकारकः मनसा विवेकेन संस्करोति शोधयति अन्यतरां वाक्रूपां वर्तिनीं होता अध्वर्युः उद्गाता वाचा वाग्वैभवेन संस्कुर्वन्ति ब्रह्मा अपि कदा वाक् वर्तिनीमेव संस्करोति? तां परिस्थितिमाह यस्मिन् प्रातरनुवाके शस्त्रारण्ये उपाकृते प्रारब्धे सति ब्रह्मा परिधानीयायाः ऋच पुरा पूर्वं ब्रह्मा व्यववदति मौनं त्यजति तदान्यतरा मनोवर्तिनी हीयते नश्यते। तेन किमित्यत आह स यज्ञोऽपि यथा एकपाद पुरुषः व्रजन् एकेन चरणेन नरो गच्छन् रिष्यति नश्यति एवम् एकेन चक्रेण वर्तमानो रथः यथा रिष्यति तथैव मनोमात्रवर्तनीको यज्ञोऽवगन्तव्य तं यज्ञं यष्यन्तं विनश्यन्तम् अनुलक्ष्य अत्र "अनुर्लक्षेण" इत्यनेन द्वितीया। यजमानः रिष्यति नष्टो जायते।।श्रीः।।

अत मौनमाचरतो ब्रह्मणो यज्ञस्य समुत्कर्षमाह मन्त्रयुग्मेन—

अथ चक्राभ्यां यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा। व्यववदत्युभे एव वर्तनी सꣳस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स यथोभयापद्व्रजन्रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान् भवति ।।५।।

अथ एतद्विपरितं यत्र प्रातरनुवाके प्रारब्धे परिधानीय ऋक्तः पूर्वं ब्रह्मा नो व्यववदति न मौनं त्यजति, तदा सः उभे मनो वाग्वर्तिन्यो संस्करोति अन्यतरमनोवर्तिनी न हीयते न नष्टा भवति। उदाहरणद्वयमाह यथा उभयपादयुगलचरणः व्रजन् न पतति एवम् उभाभ्यां द्वाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः स्यन्दनेव स यज्ञः प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठितो भवति। तं यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं प्रतिष्ठां गच्छन्तम् अनुलक्ष्यैवयजमानःप्रतितिष्ठति प्रतिष्ठितो भवति। इष्ट्वा सविधियज्ञं कृत्वा श्रेयान् भवति औपनिषद् श्रेयो भजते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाऽध्याये षोडशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

सप्तदशः खण्डः

इदानीं ब्रह्म मौनप्रायश्चित्त निमित्तं व्याहृतिहोममनुशास्ति

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाꣳ रसान् प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः ।।१।।

प्रजापतिः प्रजानां निखिलप्राणभृतां पतिः स्वामी ब्रह्मा परमात्मा वा। तथा च स्मर्यते भागवते (प्रजापतिर्लोकपतिर्धरापतिः) भा.व. २.४.१६ लोकान् निजनिर्मितान् पृथिवीम् अन्तरिक्षं दिवम् इति त्रिभुवनम् अभ्यतपत् 'तप आलोचने' आलोचनं ध्यानम् अभ्यध्यायेत् इत्यर्थः। तेषां तप्यमानानां ध्यानविषयक्रियमाणानां लोकानां रसान् सारान् रसस्वादसारानन्देषु जले तथा, गुणे काव्यरसे चापि तथा काष्ठौषधीषु च) इति वैष्णवकोषात्। प्रावृहत् उदाहवत् निरगमयदिति भावः।।श्रीः।।

भूयो वेदोत्पत्तिं वर्णयति—

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानाꣳ रसान्प्रावृहदग्नेर्ऋचोवायोर्यजूꣳषि सामान्यादित्यात् ।।२।।

एवं पृथिव्याः अग्निम् अन्तरिक्षात् वायुं दिवः सूर्यम् इति त्रयाणां लोकानां यथाक्रमं सारभूताम् एकैकां देवतां निगमय्य, सः प्रजापतिः भूयः तिस्रः अग्निवाय्वादित्यसामाख्याः देवताः दैवसम्पन्मयीः शक्तीः अभ्यतपत् पौनःपुन्येनालोचितवान्। तासां तिसृणां देवतानाम् अभितप्यमानानां आलोच्यमानानां प्रसान् सारभूतान् त्रीन् विशेषान्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रावृहत्। काँस्तान्? अग्नेः अग्निदेवतातः ऋचः ऋक् प्रायवेदं वायुदैवतात् यजूँषि यजुः प्रायवेदमादित्यात् सूर्यदेवतातः सामानि सामवेदं निःसारितवान्।।श्रीः।।

अथ त्रयीविद्योत्पत्तिमाह—

स एतां त्रयी विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान्प्रा-वृहद्भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः।।३।।

अथ अग्निवाय्वादित्येभ्यस्त्रयीं विद्यामुत्पाद्य तां पुनः अभ्यतपत ध्यानविषया-मकुरुत। तस्याः ध्यायमानायाः यथाक्रमं ऋचः ऋग्वेदात् सारभूतां भूरिति व्याहृर्तिं यजुर्भ्यः यजुर्वेदात् भुव इति व्याहृर्तिं सामभ्यः स्वरिति व्याहृर्तिं निर्गमयत् अत्र संग्रहः "प्रजापतिस्त्रिलोक्या वै ध्यात्वा रसमुदाहरत्"। भुव अग्निं च खाद्वायुं सहस्राशुं तथा दिवः। पुनस्तत् साररूपेण अग्नेः ऋग्वेदः उद्धृतः 'वायोश्चैव यजुर्वेदं सामवेदमथार्कतः'। व्याहृतीस्ताभ्यो भुर्भूवः स्वरुदाहरत्। ऋग्वेदाद्भूः यजुर्वेदात् भुवः स्वः सामवेदतः।।श्रीः।।

अथ ऋग्वेदन्यूनता प्रायश्चित्तमाह—

तद्यद्यृक्तो रिष्येद्भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेनर्चां वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टꣳसंदधाति।।४।।

यदि चेत् यत् किमपि विधानं ऋक्तः ऋक्वेदात् हेतुभूतात् ऋष्येत् न्यूनता भवेत् तदा भूः स्वाहा इति प्रथमव्याहृत्या गार्हपत्ये जुहुयात् प्रायश्चित्तहोमं कुर्यात्। उपपत्तिमाह यतो हि यज्ञस्य ऋचां च वृष्टं छिन्नं न्यूनमिति भावः ऋचां रसेन भूरूपेण ऋचामेव वीर्येण पराक्रमरूपेण भूरिति व्याहृतिविशेषेण संदधाति योजयति।।श्रीः।।

अथ यजुः प्रायश्चित्तमाह—

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टꣳसंदधाति।।५।।

अथ अनन्तरं यदि यजुष्टः यजुर्वेदात् हेतोः रिष्येत् न्यूनं भवतु, तदा भुवः स्वाहा इति एवं चतुराक्षरं पठित्वा दक्षिणाग्नौ अन्वाहार्य पचने जुहुयात्। यतोहि तद्रसेन सारभूतेन यजुषां वीर्येण शक्तिरूपेण यजुषां यजुर्मन्त्राणां यज्ञस्य क्रतोः वृष्टं वृश्चुच्छेदने इत्यनेन भूते क्त प्रत्यये 'गृहज्या' इत्यनेन संप्रसारणे 'व्रश्चभ्रश्च' इत्यनेन सत्वेष्टुत्वे वृष्टं छिन्नमिति भावः। संदधाति द्विधाभूतमेकीकरोति। किम्? अत आह— तत् भुवः स्वाहा इति मन्त्रेणाहुतिकर्म।।श्रीः।।

अथ साम प्रायश्चित्तमाह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्ना यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति।।६।।

अथ यदि सामतः सामवेदात् तत् न्यूनतां गच्छेत् तदा स्वः स्वाहा इत्यक्षरं पठित्वा सामसंभूतव्याहृत्या आहवनीये तृतीये जुह्यात्। तद्धवनकर्म साम्नां रसेन सारेण साम्नां वीर्येण आहुतिसमुद्भूता दृष्टिजनितेन बलेन साम्नां सामसंबन्धियज्ञस्य यज्ञसम्बन्धिभूतं वृष्टं छिन्नं संदधाति संघातयति।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मणो बोधमहिमानं वर्णयति द्वाभ्यां मन्त्राभ्याभ्म्।

तद्यथा लवणेन सुवर्णꣳ संदध्यात्सुवर्णेन रजतꣳ रजतेन ।
त्रपु त्रपुमा सीसꣳ सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा ।।७।।
एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्याविद्याया वीर्येण यज्ञस्य।
विरिष्टꣳ संदधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवं विद्ब्रह्मा भवति।।८।।

यथा क्षारेण कनकं तेन चान्द्री ततो ह्ययो ।
लोहं च तेन वै काष्ठं चर्मणा संदधाति वै ।।
एवं यत्रास्ति ब्रह्मज्ञो सोऽपि लोकसुरश्रुतिः ।
यज्ञानां क्षतिमेवाशु संदधाति स्वकर्मणा ।।

इति मन्त्रद्वयंसारांशः।।श्रीः।।

अथ द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां भूयो ब्रह्मऋत्विग्ज्ञानप्रशस्तिमाह—

एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदꣳ ह वा एषा ब्रह्माणमनु गाथा यतो यत आवर्तते तत्तद्गच्छति।।९।।

ह वा इति निपातद्वयं सुनिश्चयसूचकं निश्चप्रचममेवेदं यत् यत्र यज्ञे एवं विद् एवं प्रायश्चितं व्याहृतिहवनविज्ञः ब्रह्मा एतन्नामको भवतिऋत्विक् एष यज्ञः उदक्प्रवणः उदकं जलं प्रवाति निम्नं गच्छति अस्मिन् तथाभूतो जलनिम्नकः उत्तरपथासूचकः, एवं विदं ब्रह्माणम् उद्दिश्य एषा गाथा स्तुतिगीतिः भवति यतो यतः यस्माद् यस्माद् वेदात् हेतुभूतात् आवर्तते न्यूनता भवत्यावृत्तिविषय़ा ततस्ततः तत्तद् व्याहृत्यैव जुह्वत् गच्छति प्रायश्चित्तपारमिति भावः।।श्रीः।।

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरुनश्वाभिरक्षत्येवं विद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानꣳ सर्वाश्चार्त्विजोऽभिरक्षति तस्मादेवं विदमेवं ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम् ।।१०।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं मानवः मनौ जातः मनुसंस्कृतिपरिपालकः, अथवा मनुः मन्त्रः तेन संस्कृतः मानवः मनवे मन्त्राय हितो वा मानवः, एक एव ब्रह्मा ऋत्विक् भवति। यत्तुमौनाचरणात् मननात् ज्ञानवत्वात् ब्रह्मा मानवः इति कैश्चिद्व्याख्यानतं तद् व्याकरणशून्यभाषितत्वात् उपेक्ष्यम्। यथा अश्वा बडवा अश्वानामपेक्षया तत्र वात्सल्याधिक्यात् कुरून् कुर्वन्ति युद्धमिति कुरवः भयः तान् कुरून् अभिरक्षति शत्रु शस्त्रतस्त्रायते एवमेव एतद्रहस्य-ज्ञाता ब्रह्मा यज्ञं यजमानं सर्वानृत्विजः रक्षति। अतः एवं विदं ब्रह्माणं कुर्वीत यज्ञे ब्रह्मत्वेन नियुञ्जीत अनेवं विदं एतद्रहस्यानभिज्ञं न नियुञ्जीत द्विरुक्ति दृढतरनिषेधाध्याय-समाप्तिसूचिका।।श्रीः।।

इति श्रीचित्रकूटस्थसर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वरश्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य-श्रीरामभद्राचार्यमहाराजकृतौ श्रीराघवकृपाभाष्ये छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थाध्याये ऋत्विग्विवरणे चतुर्थाध्यायः सम्पूर्णः।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीराघवो विजयते तराम ।।
।। श्री रामान्दाचार्याय नमः ।।

पंचमोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

पंचेषुर्निजपंचमञ्चविजहौ यं पंचवक्त्रार्चितम् ।
पश्यन्पञ्चमसिद्धगीतचरितं पञ्चार्दनं पंचमम् ।।

पंचम्येकनिषेवणीयमनिशं पञ्चम्युपालब्धिकम् ।
तं काष्ठेभमुखेभगण्डहतिकृत् पंचाननं विद्महे ।।

पंचमीश कृताऽशेषसेषताकमशेषपम् ।
पंचपंचकृतं पंचपंचमं पञ्चमं श्रये ।।

चतुर्थे तत्तत्प्रतीकैः निरस्तसकलदोषस्य निखिलकल्याणगुणगणकोशस्य कोशलेन्द्रैकनाम्नः श्रीसीतापते सगुणब्रह्मणः विविधोपासना; समुपबृंहिताः। तत्रैव संवर्गविद्याप्रकरणे प्राणोपासनमपि निरूपितम्। साम्प्रतं तस्यैव प्राणस्य श्रेष्ठत्व-ज्येष्ठत्व-वसिष्ठत्व-प्रतिष्ठात्व-सम्पत्वायतनत्वनिबन्धनिरूपणं विधाय संसारनिरासारताम् ऊर्ध्वरितसां ब्रह्मचारिणां दक्षिणोत्तरवर्त्मवर्तिनीं गतिं तृतीयाञ्च दुर्गतिं भगवत्पादपद्मविमुखानामनीश्वराणां न स्वराणां केवलं कर्मबन्धननिगडितानां प्रपञ्चयितुं पञ्चम् आरभ्यते पञ्चमपुरुषार्थवर्णनैकलक्षः तत्र प्रथमं द्वाभ्यां शकलाभ्यां समाख्यायिकायुगलवर्णनच्छलेन प्राणस्यैव सर्वोत्कृष्टत्वं प्रतिपाद्यते। ननु सर्वथैवानुचितमेतत् ब्रह्म विद्याप्रकरणे किमनेन प्राणसर्वोत्कृष्टत्व वर्णनेनेति चेन्न तच्छद्मना निरस्तसकल प्रपञ्चस्य ब्रह्मण एव प्रतिपादनफलकत्वेनादोषात्। ऊर्जिततत्वप्रतिपादनं हि ब्रह्मत्वाभिला-पकमिति स्मृतेः। यथोक्तं श्रीगीतासु—

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवनोंम् ।।

गीता १०.४.९

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ममेत्यात्र भेदषष्ठी एवम् अभेदत्वरूपप्रकारतावच्छिन्ना भेदसंसर्गावच्छिन्ना भेदसंसर्गेण मद्विशिष्टतेजोभिन्ना स संभवमिति पदार्थपरिष्क्रिया। तस्मात् सर्वमविरुद्धमेवेति विरम्यते ।

यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च।
ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ।।१।।

पूर्वं ज्येष्ठत्वश्रेष्ठत्वविज्ञानफलश्रवणेन रोचयित्वा तत्तद्विवित्सन् प्राणस्यैव तत्वमुपपादयति । ह वा निश्चयेन कृपाचतुष्टयविशुद्धशान्तस्वान्तः गुरुदैवतो यः कश्चनापि ज्येष्ठं वयोऽधिकं श्रेष्ठं गुणाधिकं वेद जानन्नुपास्ते । सः लोके ज्येष्ठः वयोऽतिशयः श्रेष्ठः गुणातिशयश्च भवति । अतः तादृक्गुणेन बुभूषिता ज्येष्ठे श्रेष्ठे वेद्ये इति फलितम् । कौ तावित्यत आह प्राणः ज्येष्ठः वागादिभ्यो वयोऽधिकः गर्भधारणे वागादिभ्यः प्रागेव तस्योपलब्ध्यनुभवात् श्रेष्ठः गुणाधिकः तेनैवेतरेषां संचालकत्वसिद्धेः।।श्रीः।।

अथ प्राणस्य साक्षाद्वसिष्ठत्वप्रतिपादनाय पूर्वं पारम्परिकवसिष्ठतां प्रतिपादयति—

यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ।
ह स्वानां भवति वाग्वाव वसिष्ठः।।२।।

वै निश्चयेन यः कश्चनापि वसिष्ठम् अतिशयेन वसते आच्छादयति इति वसिष्ठः अतिशायन् इष्ठन् तम् अतिशयेन छादनशीलम् । यद्वा अतिशयेन वस्वस्त्यस्यिन् यः स वसुमान् अतिशयेन वसुमान इति वसिष्ठः, तं यः वेद ज्ञानाभिन्नोपासनेन योजयति सस्वानां निजज्ञातीनां स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् इति पाणिनीयसूत्रेण ज्ञाति धनार्थभिन्नाभिधेयक-स्वशब्दस्य सर्वनाम संज्ञा, विधायकतया तन्मूलक सुडागमाभावः। बोधितसर्वनाम-संज्ञाव्यतिरेकस्य स्वानामिति प्रयोगस्य यथोक्तार्थध्वनितत्वोपपत्तेः, न च पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा इति सुडविकल्पतः सर्वनामसंज्ञात्यतिरेकविनिगमना भावे न तादृगर्थो-पपत्तिरिति वाच्यम्। पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा इति सूत्रस्य ङसिङ्योरेव विकल्पविधान-विषयत्वेन त्वदुक्तपक्षानुपपत्तेः। एवं स्वानां निजज्ञातीनां मध्ये वसिष्ठो भवति आच्छादकतमो वसुमत्तमश्च भवतीति फलितं, वा निश्चयेन वाग् वाणी वसिष्ठः अतिशयेन वसुमान्।।श्रीः।।

अथ प्रतिष्ठां व्याचण्टे—

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिंश्च
लोकेऽमुष्मिंश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यः प्रतिष्ठां वेद तत्परिभाषां ज्ञात्वा समुपास्ते सः प्रतितिष्ठति लभते, चक्षुः चष्टेः विलोकयति येन तच्चक्षुः करणे उणप्रत्ययः। तदेव प्रतिष्ठा तेनैव निखिलानां रूपाणां साक्षात्कारकरणात्। अतएव तच्चक्षुः प्रतिष्ठात्वेन ज्ञात्वा अमुष्मिंल्लोके स्वर्गे अस्मिंल्लोके भूतले च प्रतिष्ठितो भवतीति फलितम्।।श्रीः।।

अथ संपदं व्याचष्टे—

यो ह वै संपदं वेद सꣳ हास्मै कामाः।
पद्यन्ते दैवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव संपत् ।।४।।

वै निश्चयेन यः कोऽपि संपदं वेद तत्वेनोपास्ते अस्मै संपद्वेत्रे अस्मै इत्यत्र तादर्थ्ये चतुर्थी, एतदर्थमितिभावः। दैवाः देवोचिताः मानुषाः मनुष्यसमुचिताश्च कामाः मनोभिलषितपदार्थाः संपद्यन्ते सम्पन्नाः भवन्ति प्राप्तय इति शेषः। श्रोत्रमेव संपत् संपद्यन्ते श्रवणगोचराः भवन्ति शब्दाः यत् सा संपत् इति व्युत्पत्तेः।।श्रीः।।

अथायतनं व्याचष्टे—

यो ह वा आयतनं वेदायतनꣳ ह।
स्वानां भवति मनो ह वा आयतनम् ।।५।।

यः ह वा निश्चितधिया आयतनम् आयतन्ते आश्रयन्ति यत्तदायतनम्। आयत्तते आश्रियते जनैः यत्तदायतनं वा आपूर्वकस्य प्रयासार्थकयति धातोः आङो बालत् आश्रयार्थकता अनेकार्था हि धातवः इत्यनुशासनात्। आङुपसृष्ट "यतेः यजयाचयति रुचि विक्षप्रक्षरक्षोनङ्" इत्येनन नङ् प्रत्ययः। लोकाश्रयत्वात् क्लीबत्वम् आयतनं गृहं सद्म धाम मंदिरवेश्म च, भवनं सदनं वासो निवासश्च निकेतनम् इति वैष्णवकोशात्। एवम् आयतनज्ञः स्वानाम् आत्मीयानाम् आयतनम् आश्रयो भवति। तर्हि किं नाम आयतनं यज्ज्ञातुं प्रयत्येत इत्यत आह वा निश्चयेन मन आयतनं समस्तानां सुःखदुःखादीनां मनस्यैव कृतिनिवासत्वात् न्यायनये मनः सुखाद्युपलब्धिकारणं बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषधर्माधर्म-प्रयत्नसंस्कारणामात्मनिष्ठत्वम्। औपनिषदनयेतु सुखदुःखादयोमनोधर्माः आत्मा तु विकारेभ्य एतेभ्यो स्पृष्टः इति विवेकः।।श्रीः।।

अथ प्राणश्रेयस्तुनिर्धारणाय आख्यायिकामवतारयति—

अथ ह प्राणा अहꣳ श्रेयसि व्यूदिरेऽहꣳ श्रेयानस्म्यहꣳ श्रेयानस्मीति ।।६।।

एवं प्राणवाक् चक्षुः श्रोत्रमनसां यथाक्रमं निर्विवादतया ज्येष्ठत्ववसिष्ठत्व प्रतिष्ठात्व संपत्वायतनत्वानि निर्धारितानि। किन्तु श्रेष्ठत्वविषये पञ्चानां विवादः। यद्यपि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुख्यवृत्या प्राणशब्दभाक् मुखनासिकानिर्गमनप्रवेषनव्यापारो वाय्याकारश्चेतन एव तथापि गौडवृत्या वाक्चक्षुः श्रोत्रमनष्वपि प्राणशब्दः व्यवहार; इति धेयं एवं प्राणाः प्राणवाक्चक्षुःश्रोत्रमनोरूपाः शरीरचालनसूत्रधाराः अहं श्रेयानस्मिन् तदहं श्रेयः तस्मिन् अहं श्रेयसि अहम् एतस्मान् श्रेयानस्मि। एवं रूपे विषये, यत्तु अहं श्रेयसि इति सप्तम्यन्तं निरीक्ष्य तस्मान्यपदार्थत्वमूलं विशेषणत्वं विभाव्य तद्विशेषतया प्रयोजनमित्याक्षिपन्ति, भगवत्पादातदनुचितम्। अहं श्रेयसीत्यत्र सप्तमी, सा च वैषयिकी एवं स्वत एव विभक्तिबलेन विषयविशेष्ये सिद्धेः सति तदरिक्तबलेनः विशेष्याक्षेपस्य सर्वथैवाशास्त्रीयत्वात् विषयं विशिनष्टि, अहं श्रेयान् पूर्वस्मात् अहं श्रेयान् प्रशस्ततरः इत्याकारकं विवादं प्रस्तुवन्तः व्यूदिरे विवादं चक्रिरे।।श्रीः।।

नन्वसंगतं जडीभूतानां प्राणवाक्चक्षुश्श्रोत्रमनसां कृते यथाक्रमं श्रेष्ठज्येष्ठ-प्रतीष्ठासम्पद् आयतनादि नामानि तत्तन्नामतया तेषां परिज्ञानं तत्तद्विधेयाज्ञानेन तेषां तत्तद्फलाभिधानप्रपञ्चश्च व्यर्थ एवेति चेन्मैवम्, औपनिषदानामस्माकं मते पूर्वोक्तानां प्राणादीनां न जडत्वं तत्तद्देवताधिष्ठिततया तत्तच्चेतनानुरोधेन चेतनत्वं दैवत्वं च। एवं प्राणे परात्मा 'स उ प्राणस्य प्राणः' (केन.उ. १-१-२) इति श्रुतेः। स एव सर्वतो ज्येष्ठश्रेष्ठश्च तज्ज्ञानस्य ज्येष्ठत्वश्रेष्ठत्वरूपे फले तथा वाचमधुतिष्ठत्यग्नि स एव वसुमत्तमः वसितमश्च 'होतारं रत्नधातवम्' इति सर्वप्रथम ऋचि प्रतिपादितत्वात्। तस्मात् स एव वसिष्ठः, तज्ज्ञस्य वसिष्ठताफलं तदनुरूप इत्थं चक्षुरधितिष्ठति सविता स एव सर्वेषां प्रतिष्ठा सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुश्च इति श्रुतेः। तस्मात् तज्ज्ञः प्रतितिष्ठति, तथा श्रोत्रदैवतं दृग् सैव सम्पत् तज् ज्ञातरि निखिलकामसम्पत्तिरुचितैव दिशां मातृत्वेन वात्सल्यावच्छिन्नचेतनतया तत्रवदान्यता सुसंघटा। एवं मनसो दैवतं चन्द्रः सुधा मयूखत्वात् जीवनपोषकत्वाच्च प्राणिनां स एव सर्वायतनं, तज्ज्ञस्य स्वायतनताफलम्। किन्त्वमूषां देवतानां वाक्चक्षुत्रमनोधिष्ठानानाम् एकैकफलदानसामर्थ्यं, प्राणरूपस्य परमात्मनस्तु सर्वफलदानसामर्थ्यम्। अतएव श्रीभागवतस्य द्वितीयस्कन्धे तृतीयाध्याये तत्तत् फलार्थं तत्तत् दैवतोपासनं समुदिश्य प्रकरणमुपसंहरतां भगवताशुकाचार्येण परात्मन्येव सर्वफलदानसामर्थ्यं विनिश्चिन्वता विधेयतया भक्त्येकप्रवणचेतसा भगवद्भजनमेव समुपदिष्टं तथा हि, **'अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।** (भागवत २-३-१०) तस्मात् प्राणभूतस्य परमात्मनः श्रेष्ठस्य वाच्यम् । ज्ञाते हि श्रेष्ठत्वे साधकस्य तत्तद्देवोपासनतो निवृत्तिपूर्विका समनन्यनिष्ठा सीतापतौ परमात्मन्येव कामतो भजनप्रवृत्तिरिति समवतारयति कारुणिकशिरोमणिर्माताश्रुतिराख्ययिकामिमाम्। यत्तु शंकराचार्याः आख्यायिकासु

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काल्पनिकत्वमारोपयन्ति तत्तु सर्वथा प्रच्छन्नबौद्धविजल्पिततया नास्तिकभाषणमिवोपेक्ष्यम्। श्रुतीनां ह्यपौरुषेयत्वात् तासां निरस्तभ्रमप्रमादलिप्साकर्णापाटवादि पुंदोषसमस्तशङ्कापङ्ककलङ्कावकाशतया भगवन्निश्वासभूतानां भगवन्मयत्वं त्रिकालज्ञत्वं च निर्बाधं न खलु तद्व्यलीकं वदिष्यन्ति। भूतार्थवादिना हि माता श्रुतिः तस्मात् प्रत्यक्षरं प्रमाणं श्रुतीनां स्वत एवेति निश्चिनुते रामभद्राचार्यः। तत्र नैकमक्षरमप्यप्रमाणम्। आख्यायिकारस्वरूपमाह—

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को
नः श्रेष्ठः इति तान्होवाच यस्मिन्
व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव
दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ।।७।।

ते प्राणाः अहं श्रेयान् अहं श्रेयान् इति परस्परविवदमाना अपि कञ्चिन्निर्णयमलभमानाः प्रजापतिं प्रजानां पतिः प्रजापतिः तं प्रजापतिं हिरण्यगर्भं नेत्याः पितरं सकलप्राणिनां पितरं परमेश्वरं श्रीरामनामकं साकेतपतिं, यत्तु प्रजापतिः हिरण्यगर्भः इति प्राञ्चो व्याचक्षते। तत्तु वेदोपबृंह्मणपरायणपुराणसिद्धान्तानामनालोचितत्वादेव ब्राह्मणस्वयं प्राणवत्वात्। तस्य तेषां पितृत्वानुपपत्तेश्च। तथा च श्रीभागवते, सृष्टिवर्णनप्रारम्भे मैत्रेय आह विदुरम्—

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ।।
कालवृत्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ।
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ।।

(भागवत ३-५-२५, २६)

तस्मान्मदुक्तः पन्थाः ज्यायान्। न खलु पुराणेतिहासमनालोच्य श्रुतिर्व्याख्यातुं शक्या यथोक्तं भारते 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपवृंहयेत् बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मय्यसौ प्रहरिष्यति सत्य गत्वा ऊचुः निर्णयार्थं निवेदयाञ्चक्रुः। भगवन् हे षडैश्वर्यसम्पन्न! साकेताधिपते! न अस्माकं मध्ये कः श्रेष्ठः? कतमोगुणाधिक इति प्रश्नाकारः। सः भगवान् तान् पञ्चविवदमानान् उवाच प्रत्युत्तरयामास। यस्मिन् उत्क्रान्ते शरीरं त्यक्तवती शरीरमिदं पापिष्ठतरमतिशयेन पापवत्तरं पापवत्तरता च श्रौतस्मार्तकर्माकरणजनितप्रत्यवायमूलिका दृश्यते, दृष्टिगोचरं स्यात्, स एव वः युष्माक मध्ये श्रेष्ठः प्रशस्ततरः, अहं न कमपि श्रेष्ठतरं कथयिष्यामि, नोचेत् यूयं मम तस्मिन् पक्षपातं गणयिष्यध्वे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यूयमेव निष्क्रम्य-निष्क्रम्य महाक्षणानुसारेण कतमस्यचिच्छ्रेष्ठत्वमनुभविष्यथेति भगवतोऽभिप्राय: इति इत्युक्त्वा भगवान् विवदमानान् देवान् प्रेषयामास।।श्री:।।

अथाष्टमत: सकलसमाप्तिं यावत् पञ्चानामपि परीक्षाप्रकारपूर्वकं श्रेष्ठत्वावकलनमाह—

सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ।।८।।

अथ भगवता श्रेष्ठत्वपरीक्षाप्रकारनिर्धारणानन्तरं वाक् तदधिष्ठिताग्निदेवतेतिभाव:। उच्चक्राम विराट्शरीरं त्यक्त्वा निर्जगाम। कियत् कालं दूरमासीत्? इत्याह, संवत्सरम् अत्र कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इति सूत्रेण कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया। एक वर्षं यावदिति भाव:। प्रोष्य प्रवासं कृत्वा भगवदात्मक आकाशे स्थित्वेति भाव:। पर्यत्य, पुनरागत्य वैराजं देहम् उवाच, तांश्चतुर: प्राणचक्षु:श्रोत्रमनोनामकान् उवाच पप्रच्छ धातूनामनेकार्थत्वात् ब्रुवोऽपि गीप्सार्थकत्वं प्रश्नाकारं सूचयति। महते वाग्दैवतं विना यूयं जीवितम् विराट्शरीरं धारयितुं कथमशक्त कथं समर्था अभवत्? त उत्तरं ददु:, यथा कला: कलन्ति अव्यक्तं रावं कुर्वन्ति इति कला: मूका: अवदन्त: वाणीव्यवहारं न कुर्वन्तोऽपि प्राणेन प्राणन्त: श्वसन्त:, चक्षुषा नेत्रेण पश्यन्त: रूपं विलोकयन्त:, श्रोत्रेण कर्णेन शृण्वन्त: शब्दं साक्षात् कुर्वन्त: मनसा ध्यायन्त: सङ्कल्पयन्त: तथैव तदभावेऽपि सर्वे व्यवहारा: यथावज्जाता: केवलं वाणी व्यवहारो व्यतिक्रान्त: एतेनेदमायातं, यत् त्वयि उत्क्रान्तायां वाणीव्यवहारं विना शरीरं पापिष्ठमासीत् किन्तु पापिष्ठतरं नहि, वाणीं विनापि तदतिरिक्तव्यवहाराणां पूर्ववत् सम्पन्नत्वात्। एतत् श्रुत्वा सा आत्मन: श्रेष्ठत्वाभिमानं त्यक्त्वा प्रविवेश विराट्शरीरं प्रविष्टवती बभूव।।श्री:।।

अथ चक्षुष: श्रेष्ठत्वाभिमाननिराकरणमाह—

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथान्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ।।९।।

चक्षु: चक्षुरभिमानदैवतम् उच्चकाम विराट्शरीरं तत्त्याज अशक्तमितिशेष:। अन्धा: दृष्टिहीना: अपश्यन्त: चक्षुर्व्यापारं न कुर्वाणा: प्रविवेश त्यक्ताभिमानं विराट्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरीरं प्राविशत् सारांशस्यायं नेत्रमन्तरेणापि जीवनं सर्वव्यापारसाधारणं तिष्ठत्येव अतः शरीरं पापिष्ठं न तु पापिष्ठतरं तस्मान्नास्य श्रेष्ठता।।श्रीः।।

अथ श्रोत्रपराजयप्रकारं वर्णयति—

श्रोत्रꣳहोच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ।।१०।।

एवं श्रोत्रं श्रेत्रदैवतमपि शरीरादुत्क्रम्य संवत्सरं यावत् प्रवासं कृत्वा पुनरागत्य प्राणादीन् निजाभावजन्य तन्निष्ठप्रतिक्रिया पप्रच्छ ते न्यवेदयन् यथावधिराः श्रवणशक्ति-मन्तरेणापि प्राणवाक्चक्षुर्मनो व्यापारान् कुर्वन्तोऽपि जीवन्ति तथा वयमपि इत्यनेन श्रोत्रदैवतमपि गलिताभिमानं श्रेष्ठं मन्यमनोमदं त्यक्त्वा तत्र प्रविष्टम्।।श्रीः।।

अथ मनोऽभिमाननिरसनमाह—

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकर्तेतला मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ।।११।।

मनः मनोऽभिमानिदैवतं चन्द्रमयमुत्क्रम्य संवत्सरं यावत् प्रवासं विधाय पुनः परावर्त्य निजव्यतिरेकपरिस्थितिं जिज्ञासाञ्चक्रे। प्राणादयः प्राहुः यथा बालाः बालशब्दोऽत्र विक्षिप्तमनस्कपरः न तु शिशुपरः शिशूनामपि समनस्कत्वात्।

बालाःविक्षिप्तमनसः बालामूढास्तथार्भकाः। इति वैष्णवकोशात्। तथाहि यथा मनसोव्यतिरेकेऽपि मत्ताः प्राणवाक् चक्षुःश्रोत्राणां व्यवहारांश्चरन्तः प्रकामं जीवन्ति, तथैव त्वदभावे बाला इव वयम् अजीवाम इति मनोऽपि त्यक्त श्रेष्ठत्वाभिमति तदेव शरीरं प्रविवेश। एवं वाक्चक्षुः श्रोत्रमनःसु यथाक्रमं निजाभावेऽपि शरीरपापिष्ठतरत्वमननु-भवत्सु सत्सु प्राणश्रेष्ठता प्रतिपादनाय श्रुतिरग्रे प्रावोचत्।।श्रीः।।

अथ प्राणोत्क्रमणचिकीर्षादशामाह—

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथासुहयः षड्वीशशङ्कून्संखिदेदेवमितरान्प्राणान्समखिदत्तꣳ हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति ।।१२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ अनन्तरं ह निश्चयेन सः प्राणः तद्दैवतमन्तर्यामी भगवान् उच्चिक्रमिषन् उत्क्रान्तमिच्छन् आसीत्। अनन्तरं किमभूदित्यत आह यथा सुहयः शोभनो हयः सुहयः वेगशालिवाजी तोत्राभिहतः निजबलेन यथा पड्वीश शंकून्पड्वेशं पदबन्धनं तस्य शंकवः षड्वीशशंकवः तान् संखिदेत लडर्थे लोट्, संखिदतीत्यर्थः। एवम् अयम् इतरान् प्राणान् गौडवृत्या प्राणव्यवहारभाजः समखिदत उत्खातवान्। अनन्तरं चत्वारः समेत्य तं प्रोचुः भगवन् एधि त्वं नः श्रेष्ठः वयं त्वां श्रेष्ठं मन्यामहे या उत्क्रमी मा उत्क्रमणं कार्षीः।।श्रीः।।

अथ द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां प्राणाय स्वस्व योग्यताभिमानसमर्पणमाह—

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठासीति ।।१३।।

अथ हैनं श्रोत्रमुवाच यदहꣳ संपदस्मि त्वं तत्संपदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति ।।१४।।

वाचश्चापि वसिष्ठत्वं प्रतिष्ठाचक्षुषस्तथा ।
श्रोत्रस्यापि च संपत्वं मनसश्चायतन्यता ।।

सर्वं प्राणे समर्प्यैते बभूवुस्तस्य किंकराः ।
तस्मात् प्राणस्य मुख्यत्वं निर्विवादं श्रुतिःश्रुतम् ।।श्रीः।।

प्राणश्रेष्ठत्वप्रतिपादनाय भूयः श्रुतिराचष्टे—

न वै वाचो न चक्षूꣳषि न श्रोत्राणि न मनाꣳसीत्याचक्षते प्राणा । इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवन्ति ।।१५।।

वै निश्चयेन वाचः वागधिष्ठांतृदैवतानि चक्षूंषि नैव नेत्रदैवतं, न श्रोत्राणि नैव तद्दैवतानि, न मनांसि चञ्चलत्वेऽपि तदभिज्ञाज्ञापितानि प्राण इत्याचक्षते। किमाचक्षते? इत्यत आह प्राण इत्येन तस्मात् इमान् सर्वान् प्राणो बिभर्त्ति।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये प्रथमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीयः खण्डः

अथ पूर्वस्मिन् खण्डे प्राणस्य श्रेष्ठता प्रतिपादिता इदानीं तदन्न उवास आदि-निर्देशाय खण्डः प्रारभ्यते।

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किञ्चिदिदमा श्वभ्य आ शकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किञ्चनानन्नं भवतीति ।।१।।

सः सर्वश्रेष्ठप्राणः ह निश्चयेन उवाच वाक् आदीन् पृष्टवान्, मे अष्माकं मध्ये श्रेष्ठस्य मम किम् किन्नामकं वस्तुविशेषम् अन्नं भविष्यति अदनीयं सम्पत्स्यते। अहं किमदिष्यामि इत्यर्थ इति शब्दः प्रश्नाकारनिर्धारकः। एवं पृष्टा वागादयः ह निश्चयेन ऊचुः निर्दिदिशुः। कस्तेषां निर्देशः? इत्यताह— आश्वभ्य सुनः कुक्कुरान् अभिव्याप्य आ शकुनिभ्यः शकुनीन् पक्षिणो मर्यादीकृत्य अत्रोभयत्र "आङ् मर्यादावचने" इत्यनेन कर्म प्रवचनीयता "पञ्चम्यपाङ् परिभिः" इत्यनेन पञ्चमी। अत्र स्वपदं स्थलचरबोधकं शकुनि-पदञ्च नभश्चरसूचकम्। आश्वभ्य आशकुनिभ्य इति पदद्वयस्य अयमभिप्रायः यत् समस्ताः स्थलचराः नभश्चराश्च प्राणिनः भोजनं तव। यत्तु सुनां शकुनीनाञ्च भोजनं यत् तदेव ते इति कैश्चित् व्याख्यातं तदसंगतम्। प्राणिनां भोजनस्य प्राणभोजनत्वे मानाभावात्। वयं तु (अत एव प्राणाः) ब्रू.सू. १-१-२३ इति ब्रह्मसूत्रनिर्देशात्। (अत्ताच्चराचरग्रहणात्) ब्र.सू. १-२-७ इति सूत्रान्तरलिङ्गात् (यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवतः ओदनः मृत्युर्यस्योपसेचनम् कइत्था वेद यत्र सः) कठो. उ-१-२-२५ इति श्रुतेः परमात्मभूतस्य प्राणस्य जगदेव चराचरं भोजनमध्यवस्यामः। अत एव (जा के डर अतिकाल डराहिं जो सुर असुर चराचर खाई) मानस ५-२२-९ इति श्रीमानसं सङ्गच्छते। अत्र स्व शकुनिपदे बद्धमुक्तप्राणिपरेब्रह्माणमारभ्य स्वपर्यन्ताः बद्धा जीवाः सनकादिमारभ्य शकुनिपर्यन्ताः मुक्ताः विधिनिषेधातीताः सर्वेऽपि अदनीया प्राणस्य भगवत इति यत्किञ्चिदिदं चराचरं तत् एतत् प्रत्यक्षपरोक्षात्मकं जीवजातं भोग्यम्। परमात्मनः एतस्य अनस्य अनितीति अनः तस्य प्राणस्य अन्नं भोग्यम्। वा शब्दोऽवधारणपरः को नामान? इति जिज्ञासायामाह— वै निश्चयेन एतस्य प्रष्टुरेव प्रत्यक्षम् एतद्गुणकर्मानुसारम् अनः इत्यक्षरद्वयं नाम वागादिभ्यः प्रकृष्टतरत्वात् प्रोपसर्गसंयोजनेन प्रकृष्टो न प्राणः इति व्युत्पत्तेः। प्राण इति व्यवह्रियते, यथा भगवतो दाशरथे सीतापतेः मुख्यं नाम राम इत्यक्षरद्वयं पश्चात् भवद्रमयितृत्वात् रामभद्र इति आह्लादकत्वात् चन्द्रमस इव रामचन्द्र इति ख्यातिमगमत्। अतः आमनन्ति प्राचीनाः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।

(रामरक्षास्तोत्र १२)

वस्तुतस्तु भगवतो मुख्य नाम राम एव (तमात् ज्येष्ठं रामं महात्मानं)

(वा.रा.बा.का. १८-२०)

रामेति द्व्यक्षरं नाम मानभङ्ग पिनाकिनः।
राम मात्र लघु नाम हमारा।
परशु सहित बड़नाम तोहारा।।

(मानस १-२२२-६)

इत्यादीनि वाल्मीकिनागेशः तुलसीदासवचनानि सङ्गच्छन्ते। तथैवात्रापि अन् इति मुख्यन्नाम श्रेष्ठत्वात् सर्वेषाम् प्रोपसर्गसंयुक्तः प्राणः इति व्यवहृतः। एवं विदि अनेन रूपेण ज्ञातवति जने अत्र विषयसप्तमी न किञ्चित् अनन्नं सर्वमदनीयं भवति, अन्न-शब्दोऽत्र भोग्यपरं भोग्यत्वन्नाम मनोऽभिलषितपराप्यत्वम्।

स अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता। (तै. २०)

इति श्रुतेः (नानावाप्तमवाप्तव्यं) गीता ३-३३ इति स्मृतेः। सम्पूर्णचराचरं भगवतैव भोग्यम् इति विरम्यते।।श्रीः।।

अथो वाचो जिज्ञासते—

स हो वाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधति लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति।।२।।

सः मुख्यप्राणः उवाच— मे वासा परिधानीयं वस्त्रं किं भविष्यति? इति पृष्टास्ताः निर्दिशन् आपः जलानि ते आच्छादनं, तस्मात् कारणात् एतद् भोजनम् अशिष्यन्तः भुञ्जानाः "अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्" इति नियमात् परस्मैपदे शतृ प्रत्ययः, अशिष्यन्त असाना इति भावः। वैदिका ब्राह्मणाः भोजनस्य पुरस्तात् "अमृतपिधानमसि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वाहा'' इति मन्त्रं जपन्तः अद्भिः जलैः परिदधति परिधापयन्ति, परिदधति इति घटक धा धातुरन्तरभावितण्यर्थः। उपरिष्टात् भोजनसमाप्तेदनन्तरमपि "अमृतस्तरणमसि" इति मन्त्रेण अद्भिः परिदधति आशयोऽयं यत् अपः प्राणस्य वस्त्रं विदित्वैव भोजनात् पूर्वं पश्चात् च आचमनक्रियया जलेन प्राणाय भगवते परिधानं समर्पयन्ति। एवं कुर्वन् प्राणाय वैदिकमन्त्रेण जलपरिधानसमर्पणपुण्यमहिम्नवासःलम्भुको वस्त्रं लब्धमानः भवति अनग्नः सदैवाच्छादनयुक्तो भवति।

साम्प्रतं प्राणदर्शनं स्तौति—

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये
वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच यद्यप्येत-
तच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जाये-
रन्नेवास्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।।३।।

तदैतत् प्राणदर्शनं व्याघ्रपदपुत्राय वैयाघ्रपद्याय गोश्रुतये गो श्रुतीनाम्ने जाबालः सत्यकामः उक्त्वा महत्वमुवाचयदि एतद् शुष्काय स्थाणवे पत्रविहीनाय डित्थाय अपि कोऽपि ब्रूयात् तर्हि तस्मिन् स्थाणो एतत् पुण्येन शाखाः जायेरन् उत्पद्येरन् पलाशानि पत्राणि प्ररोहेयुः उत्पन्नानि भवेयुः, चेतनसमक्षकथने का कथा।।श्रीः।।

एवं प्राणदर्शनं निरूप्य अधुना तत्सिद्धिप्रतिपादकं मन्थकर्म निरूपयति—

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां
दीक्षित्वा पौर्णमास्यां रात्रौ सर्वौषधस्य
मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय
स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ।।४।।

अथ चेत् अथ शब्दोऽयमधिकारपरः, यदि कश्चनापि साधकः महत् भावबोधकत्वात् एष शब्दः महत्वपरः, जिगमिषेत् गन्तुमिच्छेत्। अहं तु महच्छब्दस्य परमात्मेत्यर्थं व्याचक्षे। तथा च मम भावं हन्ति इति महत् अनुनासिकत्वान्नलोपे तुकि सिद्धोऽयं शब्दः। ननु परमेश्वरविशेषणे द्वितीयान्ते महच्छब्दस्याकारे महान्तमितिस्यात्? इति चेन्न ब्रह्मविशेषणतया तत्र क्लीबत्वोपपत्तेः। एवं भूतं परमात्मानं यदि लब्धुमिच्छेत् तर्हि अमावस्यायां कुहूनिशायां दीक्षितो भूत्वा आचार्यात् दीक्षां गृहीत्वा पञ्चदशदिनानि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मचर्यादिव्रतं धारयन् पौर्णमास्यां रात्रौ राकायां दधिमधुनोः दधिमधुसम्बन्धिसर्वौषधस्य मन्थं सकलौषधस्य मथ्यमानं सारमल्पमल्पं सर्वाभ्य ओषधिभ्यो गृहीत्वा श्रेष्ठाय स्वाहा इति मन्त्रेण उपमथ्य आज्यस्य घृतस्य संपातम् ईषद्द्रावमवनयेत्।।श्रीः।।

अधुना वसिष्ठादीनां हवनक्रममाह—

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपात मवनयेत्संपदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेदायतनाम स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वामन्थे संपातमवनयेत् ।।५।।

वसिष्ठाय स्वाहा प्रतिष्ठायै स्वाहा संपदे स्वाहा आयतनाय स्वाहा इति मन्त्रान् जपित्वा अग्नौ घृतस्य द्रावं निक्षिपेत् इतिमन्त्रसारः।।श्रीः।।

हवनविध्युपसंहारं दर्शयति—

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदँ् स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यँ् श्रैष्ठ्यँ् राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदँ् सर्वमसानीति ।।६।।

उपसंहारे मन्त्रप्रकारमाह— अथ अनन्तरं हवनं समाप्य अग्नेः प्रतित्य समीपं गत्वा अञ्जलौ मन्थं मथितद्रवम् आदाय वक्ष्यमाणं मन्त्रं जपति। मन्त्राकारमाह— अमोनामासीत्यारभ्य असानि इत्यन्तम् अस्यार्थः हे प्राण! त्वम् अमः नाम असि अमा सर्वेषां साहित्यम् अस्त्यस्मिन् इति अमः सकलसाहित्यवान् नाम असि एतदभिधानेन प्रसिद्धोऽसि। यतो हि इदं सर्वं चराचरं ते तव अमा सह वर्तमानमास्ते ननु 'सहयुक्ते अप्रधाने' इति सूत्रेण सहार्थकस्य अमाशब्दस्य योगे त्वच्छब्दे कथं न तृतीया? इति चेत् शृणु साकं समं सार्थमिति सकारघटितानामेव शब्दानां सहार्थत्वेन भाष्यादौ प्रसिद्धत्वात्। अथवा अमाशब्दयोगे तृतीयायामपि 'बहुलं छन्दसि' इत्यनेन षष्ठ्यादेशेन दोषपरिहारात्। यतो हि सः प्राणः। ननु असंगतमेतत् पूर्वम् असिपदस्य समभिहारेण युष्मच्छब्दस्य वाच्यतां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गतः प्राणशब्दः अधुना तच्छब्दवाच्यतया कथं व्याख्यायते? इति चेत् मैवं वाक्यभेदेन व्याख्याने दोषपरिहारः। अथवा पुरुषव्यत्यो बोधव्यः अतः तच्छब्दो युष्मदर्थः स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठः राजा दीप्तिमान् अधिपतिः ईश्वरः सः प्राणो भगवान् मा मां ज्यैष्ठ्यं ज्येष्ठ्यभावं श्रैष्ठ्यं श्रेष्ठतां गमयतु आधिपत्यं साम्राज्यं प्रापयतु यथा अहमिदं सर्वं सकलम् असानि भुञ्जीय।।श्रीः।।

अथाचमनप्रकारमाह—

अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति
तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति वयं देवस्य
भोजनमित्याचामति श्रेष्ठँ सर्वधातममित्याचामति
तुरं भगस्य धीमहीति सर्वं पिबति।

निर्णिज्य कसं चमसं वा पश्चादग्नेः
संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले
वा वाचं यमोऽप्रसाहः सायदि स्त्रियं
पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात्।।७।।

अथ हवनसमाप्त्यनन्तरं पच्छः पादक्रमेण पादशब्दस्य पद्दन्नोमास इति सूत्रेण पदादेशे क्रमार्थे शश् प्रत्यये पच्छः पादौ प्रक्षाल्य इति भावः। अथवा ऋचः एकैकपादक्रमेण तस्याः एकैकपादं पठित्वा एकैकमाचमनं कुर्वीत इति तात्पर्यं कासारिक् के ते पादाः इत्यत एकैकपादं विभज्य प्राह— तत्र प्रथमं तत् सवितुर्वृणीमहि इतिमन्त्रं जपित्वा आचामति आचमनं कुर्यात्। द्वितीयवारं वयं देवस्य भोजनम् इति मन्त्रजपं कुर्वन् आचामति। पुनस्तृतीयं श्रेष्ठँ सर्वधातमम् इति तृतीयपादं ऋचो जपन् आचामति। एवम् आचामनत्रयं विधाय तुरं भगस्य धीमहि इति ऋचश्चतुर्थं पादं पठन् सर्वम् अविशिष्टं मन्थरसं पिबति पानविषयं करोति इत्थं समग्रेयम् ऋक् चतुष्पदी— तत् सवितुर्वृणीमहि वयं देवस्य भोजनं श्रेष्ठँ सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि इति अस्याः शब्दार्थ एषः। वयं साधकाः सवितुः सूर्यस्य तत् देवस्य दीप्यमानस्य तत् भोजनं भक्ष्यं भोग्यजातं वृणीमहि स्वीकुर्याम् तथा च भगस्य षडैश्वर्यसंपन्नस्य भगवतः ननु भगशब्दः ऐश्वर्यवाची कथं तेन भगवदर्थप्रतीतिः इति चेन्मैवम् भगानि ऐश्वर्यधर्मयशः श्रीज्ञानवैराग्यानि नित्यं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्त्यस्मिन्निति भगः भगवान् मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः आकृतिगणत्वेनार्ष आदित्यं तस्य भगवतः भगस्य तुरं त्वरणशीलं पदाम्बुजं धीमहि। पूर्वे तु त्वरं भगनामकदैवतस्य वेगमिति व्याचक्षुः तत् साधारणम् एवमेव श्रेष्ठं सर्ववरिष्ठं सर्वधातवं सकलधातारं निजजन- संकटाटवीविध्वंससमीहात्वरितगतिं सकलप्राणभूतं परमात्मकमलचरणं धीमहि चिन्तयेमहि इति ऋचोऽर्थः। इत्थं चरणौ निर्णिज्य कांसं चमसं वा पात्रविशेषं प्रक्षाल्य चर्मणि मृग- चर्मणि स्थण्डिले भूमौ वा संविशेत् शयीत यदि स्वप्ने यदि स्त्रियं काञ्चिदयोषितं पश्यति तथा कर्मसिद्धिं विद्यात् जानीयात्।

तमेव भावं निदर्शयति—

तदेष श्लोको यदा कर्मसु
काम्येषु स्त्रियꣳ स्वप्नेषु पश्यति समृद्धिं
तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्न
निदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ।।८।।

तस्य भावस्य निबन्धनार्थम् एषः श्लोकः मन्त्रः भवति। यदा काम्येषु कामप्राप्तिसाधनेषु कर्मषु कोऽपि स्वप्नेषु स्त्रियं पश्यति सपुत्रां सौभाग्यवतीं तदा तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने कर्मसमृद्धिं जानीयात् विद्यात् स्त्री भक्तिः सा च सौभाग्यवती भगवता पुत्रवती च ज्ञान- वैराग्याभ्याम्।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये द्वितीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

तृतीयः खण्डः

अथ खण्डैरष्टभिः पञ्चप्रश्नावतारणया संसारसारतासंसारगतिवर्णनच्छलेन विरक्तिप्रतिपादनं प्रारभ्यते तत्र विषयदुरूहतां सरलयितुं श्वेतकेतोराख्यायिकाऽपि प्रस्तूयते—

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय तꣳह प्रवाहणो । जैबलिरुवाच कुमारानु त्वाशिषत्पितेत्यनु हि भगव ।।१।।

ह शब्दः इतिहासप्रसिद्धसूचकः, आख्यानमिदं सर्वविदितमिति भावः। अरुणस्य गोत्रापत्यम् इति आरुणिः आरुणेरपत्यम् आरुणेयः अरुपौत्रः अरुणगोत्रीयपुत्रो वा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्वेतकेतुः एतन्नामको ब्रह्मचारी निजपित्रा आरुणिना कृतसमावर्तनसंस्कारः पञ्चालानां पाञ्चालजनपदानां समितिं राजसभाम् इयाय जगाम। प्रवाहणः एतन्नामा राजा जैबलिः जुबलपुत्रः तम् आगतं ब्रह्मचारिणम् उवाच— त्वाम् अन्वशिषत् अनुशिष्टवान् सत्यकेतुरवदत् भगव भगवन् अनु अनुशिष्टोऽस्मि इति एष उत्तराकारः।

अथ द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां पञ्चप्रश्नान् अवतारयति—

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः
प्रयन्तीति? न भगव इति वेत्थ
यथा पुनरावर्तन्त ३
वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य
च व्यावर्तना इति ३ न भगव इति ।।२।।

वेत्थ यथासौ लोको न
संपूर्यत इति न भगव इति
वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो
भवन्तीति नैव भगव इति ।।३।।

प्रवाहणः पप्रच्छ— कुमार यदि त्वं पित्रा समनुशिष्टः तर्हि मे पञ्चप्रश्नान् उत्तरय प्रश्नाकारं साक्षेपमाह— कुमार किमिदं त्वं वेत्थ जानासि यत् येन प्रकारेण प्रजाः प्राणिनः इतः अस्माँल्लोकात् अधिप्रयन्ति उपरियान्ति। कुमारः प्राह— भगव भगवान्! न नाहं जानामि इति इत्थं निवेदितः भूयः पप्रच्छ इदं जानासि यथा येन कर्ममा जीवाः पुनरावर्तन्ते स्वर्गादागत्य पुनर्जन्म गृह्णन्ति? श्वेतकेतुः प्राह— भगवन् न अहं न जानामि। प्रवाहणः देवयानस्य देवान् यान्ति येन स देवयानः पितृन् यान्ति येन स पितृयानः कर्णे ल्युट् तस्य देवयानस्य पितृयानस्य च पथोः मार्गयोः या व्यावर्तना इतरस्मात् इतरस्य वैलक्षण्यं तां वेत्थ? कुमारः प्राह— न भगव भगवन्! अहं न जानामि। भूयः साक्षेपं पप्रच्छ जैबलिः— कुमार! इदं वेत्थ यत् यथा असौ लोकः न संपूर्यते न पूर्णतां गच्छति। स श्वेतकेतुः प्राह न भागवः न भगवन्। इदमपि न जानामि। पुनः प्राह जैबलिः— कुमार इदमपि वेत्थ जानासि यथा पञ्चम्याम् आहुतौ अग्नौ दत्तायाम् आपः एव पुरुषवचसः पुरुष एव वचः यासु ताः पुरुषवचसः भवन्ति। पञ्चानां प्रश्नानां संग्रहश्लोकाः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इमं लोकं परित्यज्य यथैवोर्ध्वं प्रजा समाः।
प्रयन्ति तत् प्रजानीशे नेति प्राह कुमारकः।।

स्वर्गं गत्वापि वै जीवाः यथास्मिन् भवसागरे।
पुनरावर्तिनो भान्ति नाहं वेदेति सोऽब्रवीत्।।

देवयानः पितृयानः पन्थानौ योहि शाश्वतौ।
तयोर्विशेषं किं वेत्थ नैव विप्रो ह्यवोचत।।

यथाऽसौ मर्त्यलोको हि कदाचिन्नैव पूर्यते।
तं हेतुं वेत्थ भगवन् नेति वाचं जगाद सः।।

आपः पुरुषवचसः पञ्चम्यामाहुतौ यथा।
भवन्ति वेत्थ तत् नैव श्वेतकेतुरभाषत।।

अथ साक्षेपमाह जैबालिः—

अथानु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात्कथँ् सोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति स हायस्तः पितुरर्धमेयाय तँ् होवाचाननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनु त्वाशिषमिति।।४।।

अथ शब्दः आश्चर्यपरः अहमनुशिष्टः पित्रा दत्तानुशासनः इति किमवोचथाः कथमवोचथाः किमर्थम् उक्तवानसि यद्येषां प्रश्नानां मध्ये नैकोऽप्युत्तरितः यः इमानि प्रश्नतत्वानि प्रजानाम् उपरिगमनं देवयानपितृयानयोर्वैलक्षण्यं जीवपुनरावृत्तिहेतुं लोकसंपूर्णता प्रतिबन्धककारणं पञ्चम्यां आहुतौ अपां पुरुषसंज्ञात्वपद्धतिम् इति पञ्च जिज्ञासितानि न विद्यात् सः कथं विदुषां मध्ये अनुशिष्टोऽस्मि इत्यात्मानुशासनं ब्रवीत वक्तुं साहसं कुर्वीत। स हायस्त इति इत्थं राज्ञा आक्षिप्तः आयस्तः अवमानितः सन् श्वेतकेतुः पितुः निजजनकस्यारुणेः अर्धं निवासस्थानं एयाय आ इयाय इति पदच्छेदः मर्यादायाम् आङ्शब्दः। ननु यदि चेत् मर्यादायाम् आङ्शब्दः तर्हि ङित्वात् कथं स्वरसन्धिः यतोहि निपातएकाजनाङिति पाणिनिसूत्रेण अङितावेव प्रगृह्यसंज्ञा विधानात्? इति चेन्मैवम् एतेन मम पक्ष एव पुष्टः अङितौस्वरसन्धिनिषेधः ङितौ तु स्वरसन्धिरेव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मर्यादायां ङितस्य शास्त्रसिद्धत्वात्। तथाहि भाष्यवार्तिकं (ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधावपि एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित्) एवम् एयाय आदरेण जगाम अपृच्छत् च भगवन् माम् अननुशिष्य न अनुशिष्टं विधाय, त्वाम् अन्वशिषम् अनुशिष्टवानस्मि इति कथम् अब्रवीत्।

अनुशासनबीजमाह—

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां
नैकञ्चनाशकं विवक्तुमिति स होवाच
यथा मा त्वं तदैतानवदो यथाहमेषां नैकञ्चनवेद
यद्यहमिमानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ।।५।।

श्वेतकेतुः सग्लानिः प्राह— राजन्यबन्धुः दुष्टो राजा मा मां श्वेतकेतुं प्रति पञ्च पञ्च संख्याकान् प्रश्नान् अप्राक्षीत् तेषां प्रश्नानां मध्ये अहम् एकमपि विवक्तुं विविच्य वक्तुं नाशकं न शक्त आसं, पिता प्रत्युत्तरति स्म यत्— श्वेतकेतो यान् प्रश्नान् त्वम् अवदः तेषाम् एकमपि अहं न वेद। यदि अहमवेदिषम् ज्ञातवानभविष्यं तर्हि ते प्रियपुत्राय कथं नावक्ष्यं नाकथयिष्यम्।

अथ गौतमजैबलिसंवादपूर्वभूमिकां निरूपयति—

स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय
तस्मै ह प्राप्तायार्हाञ्चकार स ह प्रातः
सभाग उदेयाय तँ् होवाच
मानुषस्य भगवन्गौतम वित्तस्य वरं
वृणीथा इति स होवाच तवैव
राजन्मानुषं वित्तंय यामेव
कुमारस्यान्ते वाचमभाषकास्तामेव
मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव ।।६।।

अथ गौतमः गौतमगोत्र आरुणिः पुत्रेण सह पञ्चप्रश्नान् जिज्ञासमानः राज्ञः प्रवाहणस्य अर्धं भवनमेयाय सादरं जगाम। अतिथिरूपेण प्राप्ताय तस्मै अत्र उपपदस्थानिनिचतुर्थी तमनुकूलयितुमिति भावः अर्हाञ्चकारः पूजां विदधौ। श्वोभूते प्रातः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभागः सभां गच्छति इति सभागः, भागः भजनं पूजा तेन सह वर्तमानः सभागः पूजनीय इति भावः समानाभा सभा राजसमानशोभा तां गच्छति इति सभागः, राजोचितालंकारमंडित इति भावः, भाग्यमेव भागः तेन सः वर्तमानः सभागः पञ्च विद्या ग्रहणयोगात् सौभाग्यवान् उदेयाय उद्गतः। राजा तं छन्दयामास यद्गौतममानुषस्य मनुष्योचितस्य वित्तस्य धनस्यास्पदं वरं वृणीः याचस्व। स कथयामास यद्राजन्! इदं मानुषं वित्तं तवैव पार्श्वे तिष्ठतु त्वं कुमारस्य समक्षं यां वाचम् अभाषथाः तामेव मे वद एतच्छ्रुत्वा राजा कृच्छ्रीबभूव। असामञ्जस्यचिन्तया जन्मना गुरवे ब्राह्मणाय कथं विद्यामहमुपदिशेयमिति संकटापन्नोऽभवत्।

अथ उपदेशप्राक्परिस्थितिं सूचयति—

तँ ह चिरं वसेत्याज्ञापयाञ्चकार तँ होवाच
यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक् त्वत्तः
पुरा विद्या ब्राह्मणान्गच्छति तस्मादु सर्वेषु-
लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ।।७।।

अथ ब्राह्मणो न रिक्तहस्तः प्रेषणीयः इति कृत्वा चिरं वस अत्र नगरे चिरं निवासं कुरु इत्याज्ञापयाञ्चकार आदिष्टवान्, पश्चात् विद्यायाः आचार्यपरंपरां निर्देशात् हे गौतम! यथा त्वं माम् अवदः पञ्चप्रश्नान् समाधातुं न्यवेदयः तथा इमां विद्यां त्वत्तः पूर्वं न केऽपि कथयं, यतोहि यत् पूर्वम् इयं विद्या न कश्चित् ब्राह्मणं गच्छति अगच्छत्, स्मशब्दस्यात्र लोपो बोध्यः। तस्मात् अद्यावधि एतदविद्यायां क्षत्रस्यैव द्वितीयवर्णस्यैव प्रशासनम् अनुशासनमासीत् इति कथमित्वा तस्मै आरुणये उवाच अवदत्।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये तृतीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

चतुर्थः खण्डः

अथ प्रवाहणः श्वेतकेतवे दातुमुपदेशमुपक्रमते—

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो ।
धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदानीम् अग्निरूपकेण सूर्यरश्मिचन्द्रतारकादीनां वर्णनं प्रारभ्यते। हे गौतम! असौ पुरो दृश्यममानोऽयं लोकः अग्निः अग्निरूपः तस्य लोकरूपाग्नेः आदित्यः सूर्यः समित् यथा समिधा अग्निः समिध्यते तथैव लोकोऽयम् आदित्येन। रश्मयः धूमवत् उभयोरपि ऊर्ध्वगमनरूपमानगुणकत्वम्। अहः दिनमेव अर्चिः लोकाग्नेर्ज्वाला। चन्द्रमाः एव अंगारस्तस्य लोकपावकस्य, उभयोरपि समानतया ज्योतिष्मत्वात् नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गा तदवन्नक्षत्राणामपि चमत्कृतमहस्त्वात्।

एवम् आदित्यरश्मिदिवसचन्द्रनक्षत्रतुल्यसमिद्रश्मिधूमार्चिरङ्गारविस्फुलिङ्गमयलोकाग्नौ किं क्रियत इत्यत आह—

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति ।
तस्या आहुतेः सोमो राजा संभवति ।। २।।

एतस्मिन् एवं रूपकविशिष्टे तस्मिन् पूर्वोक्ते लोकाकारे अग्नौ, सूर्यसमित्समिद्धे सूर्यरश्मिधूमकेतो, अहरर्चिषि, चन्द्राङ्गारके नक्षत्रविस्फुलिङ्गे देवाः दैवीसंपदमुपासीनाः श्रद्धाम् आस्तिकबुद्धिं जुह्वति तस्याः निक्षिप्त्याः श्रद्धाः आहुतेः सकाशात् राजा राजनशीलो दीप्तिमान् सोमः अभीष्टफलदः रश्मयश्चन्द्रमा संभवति। पूर्वं यत्पृष्टं यत्पञ्चम्यामाहुतौ कथमापः पुरुषसंज्ञां लभन्ते तमेव प्रश्नं समादधते तदुपक्रमे खण्डेऽस्मिन् प्रथमाहुतेर्वर्णनमकारि।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये चतुर्थखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अथ पंचमःखण्डः

अथ द्वितीयाहुतिं वर्णयितुमुपक्रमते—

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं
धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ।। १।।

पर्जन्यः वर्षाकालिकमेघः, स एवाग्निरूपः, तस्य वायुरेव समित् तेनैव पर्जन्यस्य समिध्यमानत्वात्, अभ्रम् अपां भरणं जलधारणकालिकमेघः, धूमः उद्भूतत्वरूप-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समानत्वात् अर्चेरिव प्रकाशकत्वात्, एवमङ्गारवत् अग्निकणवितरकत्वात् अशनिः वज्रपातः एव अंगारः, ह्रादनयः मेघगर्जितान्येब विस्फुलिङ्गाः अग्निलवविशेषाः।

एतादृगग्नौ द्वितीयाहुतिप्रकारमाह—

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमँ राजानं
जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षँ संभवति ।। २।।

एवं रूपकमये तस्मिन् पर्जन्याग्नौ देवाः सोमं राजानं दीप्तिमन्तं रसरूपं चन्द्रं जुह्वति, अर्थात् प्रथमाहुत्यदृष्टरूपं रसमेव विग्रहिणम् आहुतिरूपेण निक्षिपन्ति, तस्याः द्वितीयस्याः सकाशात् वर्षं वृष्टिः संभवति। इति द्वितीयाहुतिप्रकारः।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये पंचमखण्डेश्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अथ षष्ठःखण्डः

अथ तृतीयाहुतिं व्याख्याति—

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः
संवत्सर एव समिदाकाशो
धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा
अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ।। १।।

हे गौतम! आरुणे! पृथ्वी एव अग्निः, यत्र संवत्सरः समित् समिधेवाग्नेः पृथिव्या अपि संवत्सरेण समिध्यमानत्वात्। आकाश एव धूमः तद्वन्नीलत्वात् उपरितनत्वाच्च, रात्रिः अर्चिः ज्वाला भयावहत्वात्, दिशः अङ्गारः शान्तिमयप्रकाशत्वात्, अवान्तरदिशः विदिशः विस्फुलिङ्गाः। तस्मिन्नग्नौ देवाः किं कुर्वन्ति? इत्यत आह—

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति ।
तस्या आहुतेरन्नँ संभवति ।। २।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतस्मिन् पृथव्याग्नौ देवाः वर्षं वृष्टिमेव जुह्वति, तस्याः आहुतेः सकाशात् अन्नम् अदनीयं वस्तु भवति।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये षष्ठखण्डेश्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अथ सप्तमःखण्डः

अथ चतुर्थाहुतिं व्याचष्टे—

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो
धूमो जिह्वार्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ।।१।।

हे गौतम! अयं पुरुषः एव अग्निः, तस्य वाक् समित्, तथा अग्निरेव समिध्यमानत्वात् प्राण एव धूमः कृष्णवर्त्मत्वात्, जिह्वा एव अर्चिः तद्वदरूणत्वात्, श्रोत्रमेव अङ्गारः तद्वत् शब्दवितरकत्वात्।

अथ एतदग्निं किं कुर्वन्ति इत्यत आह—

तस्मिन्नेतस्मिन्नौ देवा अन्नं जुह्वति
तस्या आहुतेरेतः संभवति ।।२।।

एवं गुणगणविशिष्टे वाक्समित्प्राणधूमजिह्वाचिष्चक्षुरङ्गारश्रोत्रविस्फुलिङ्गमण्डिते पुरुषाग्नौ देवाः अन्नम् अदनीयं जुह्वति आहुतित्वेन निक्षिपति, तस्याः चतुर्थ्याः अन्नाहुतेः सकाशात् रेतः शुक्रं संभवति। इति चतुर्थ्याहुतेः प्रकारः।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये सप्तमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अथ अष्टमःखण्डः

अथ पञ्चमाहुतिं वर्णयति—

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ
एव समिद्यदुपमन्त्रयते सधूमो

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ।।१।।

योषा संगमेच्छुःनारी एव अग्निः, तस्य उपस्थं पुरुषमेद्रं तेन समिध्यमानत्वात्। उपामन्त्रयते संगन्तुं संकतेयते इत्येव धूमः योनिः जननद्वारं अर्चिः ज्वाला तत्रैवरेतसः समाहितत्वात्, यदन्तःकरोति रेतो निवेशयति त एव अङ्गाराः तत्स्पर्शजनितानन्दाः विस्फुलिङ्गाः।

अथाहुतिमाह—

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवारेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति ।।२।।

तस्मिन् पूर्वोक्तगुणविशिष्टे, एतस्मिन् योषाग्नौ, देवाः रेतः जुह्वति शुक्रमाहुतित्वेन निक्षिपति, तस्मात् गर्भः संभवति। एवं लोकाग्नौ हूयमाना श्रद्धा सोमत्वेन परिणमति सोमो द्वितीयस्यां हूयमानः वर्षत्वेन परिणमति पुनः वर्षा हूयमाना अन्नत्वेन, अन्नं हूयमानं रेतस्त्वेन, रेतो हूयमानं गर्भत्वेन। चतुर्थखण्डे लोकाग्नौ हूयमाना याहुतिः श्रद्धात्वेन निगदिता सैव श्रद्धा आपः, सैव सोमः, वर्षा अन्नं रेतः गर्भ इति पञ्चम्यां आहुतौ पुरुषसंज्ञां लभते।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये अष्टमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अथ नवमः खण्डः

अथ प्रश्नमुपसंहरन्नाह—

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तःशयित्वा यावद्वाथ जायते।।१।।

एवं पञ्चम्यामाहुतौ गर्भाधानरूपायामापः चतुर्थे खण्डे श्रद्धात्वेन संकेतिताः पुरुषवचसः भवन्ति। ननु देवाः श्रद्धां जुह्वति इत्येव कथमुक्तं, प्रश्नः अपाङ् कृते कथं पुरुषसंज्ञा इति आम्रान् पृष्टः कोविदारान् आचष्टे इतिवद् भवदुत्तरम्? इति चेन्न, लोक-रूपाग्नौ मानवः आस्तिकबुद्ध्या पितृभ्यः जलमयीं श्रद्धां समर्पयति, सैव सोमात्मा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्षात्मा रेत आत्मा अन्नात्मा गर्भात्मा सती पुरुषसंज्ञां लभते, यदि श्रद्धा न हूयते चेत् नैव पुरुषार्थयुक्तो गर्भो भवति इति तात्पर्यम्। एवं स गर्भः उल्वावृतः उल्वो जरायुः तेनावृतः दशमासाम् नवमासान् वा दशमासनवमाससंकीर्तनेन दसमासं पुत्रीरूपः नवमासं नररूपः यद्वा ततोऽप्यधिके क्लीब तां गतः जायते। गर्भपातपरिस्थितिको वा वचनमिदं त्रिलिङ्गसाधारणम्।

अथ जीवस्य पश्चाद्भाविनीं दशां निरूपयति—

स जातो यावदायुषं जीवति
तं प्रेतं दिष्टमितोग्नय
एव हरन्ति यत् एवेतो
यतः संभूतो भवति ।। २।।

एवं स्वकर्मवशाज्जातः आयुः यावत् कर्मणा प्राप्तं दीर्घायुः अल्पायुः क्षणायुः वा जीवति। तं प्रेतमग्नयः दिष्टं स्वकर्मपरिपाकं प्रापयन्ति, इतः संसारात् कुत्र हरन्ति यस्मात् मार्गादयमागतः। एवम्

पुनः श्रद्धां पुनः सोमं पुनवर्षमथान्नकम् ।
पुना रेत इति प्राहुः संसारेऽस्मिन् गतागतम् ।।

आवागमनमित्येव घटीयन्त्रवदीरितम् ।
जीवस्य विमुखस्याहो जानकीजीवनाङ्घ्रितः ।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये नवमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अथ दशमःखण्डः

अथ शेषप्रश्नानां दशमे खण्डे दशभिर्मन्त्रैः समाधानमुपक्रम्यते तद्वाभ्यां मन्त्राभ्यां देवयानम्—

तद्य इत्थं विदुः। ये चेमेऽरण्ये
श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभि-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमा-
पूर्यमाणपक्षाद्यान्षड्डुदङ्ङेति मासाँ्स्तान् ।।१।।

मासेभ्यः संवत्सरँ्
संवत्सरादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो
विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म
गमयत्येष देवयानः पन्था इति ।।२।।

पञ्चम्यामाहुतौ इति प्रश्नस्य शकलषटकेन समाधनं कृत्वा, प्रजाः कथमितः प्रयन्तीति नवमखण्डस्य चरमेण समाहिर्तिं विधाय, पुनर्दशमे देवपितृयानयोर्व्यावर्तनां तत्प्रसंगेन पुनरावर्तगतिं लोकस्य च संपूर्तिराहित्यमिति प्रश्नत्रयं समाधत्ते। पूर्वं देवयानं व्याचष्टे— देवान्यान्ति येन स देवयानः तं पुरुषः प्रेत्य कथं याति? इत्यपेक्षायामाह— तत् एवं पञ्चाहुतिक्रमम् अविच्छिन्नसंसारपरंपरां संसारासारतां पौनःपुन्येन जननमरण-तरलतरंगतरंगायितष ड्डूर्मिष ड्विकारमकरभीषणसमगाधदुर्जयवासनाकीलालदुर्गममनोरथ-भीमावर्तशताकुलकोटिकोटिमनोरथमीनसंकुलपरमपारसंसारसागरं ये विदुः तत्वेन जानन्ति, ते तत उपरज्यमाना, अरण्ये कृतारण्यशरण्याः श्रद्धाम् आस्तिकबुद्धिं, तपः, ब्रह्म ब्रह्मज्ञानं वा उपासते सेवन्ते। ते अर्चिषं ज्वालाम् अभिसंभवन्ति प्रकाशाभिमुखाःभूत्वा अहः दिनाभिमानि दैवतं, तस्मात् अह्नादिनेन आपूर्यमाणं पक्षं शुक्लपक्षाभिमानिदैवतं तस्मात् यानि षड् मासान्सविता उदङेति उत्तरं याति तान् उत्तरायणान् माघतः आषाढं यावत् मासेभ्यः उत्तरायणेभ्यः संवत्सरं वर्षं, ततः ऊर्ध्वम् आदित्यं सूर्यं ततोप्यूर्ध्वं चन्द्रमसं ततोऽप्यूर्ध्वं विद्युतं परमप्रकाशरूपं सत्यलोकं तत्र सत्यलोके कश्चन अमानवः मानवविलक्षणपुरुषः साकेतलोके हनुमान् एनान्जीवान्ब्रह्म गमयति साकेतपतिं पतित-पावनं श्रीरामम् एष प्रापयति एष देवयानः।।।श्रीः।।

इदमेव गीतायां भगवान् प्राह—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।

(८।२४)

अथ पितृयाणं द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां वर्णयति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते
दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिँ्
रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड् दक्षिणैति
मासाँ्स्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ।।३।।

अथ एतद्विपरीतं ये ग्रामे रामं त्यक्त्वा ग्राम्यभोगनिरता इष्टापूर्ते वैदिककर्मानुष्ठानं पूर्तं वापीकूपतडागादिनिर्माणं, दत्तं बहिर्वेदिदानं दरिद्रादिभोजनमुपासते धृतैकलक्ष्याः भजन्ते नैवारण्ये तपःश्रद्धे, ते मरणकाले धूमं ततः रात्रिं ततः अपरपक्षं कृष्णपक्षमिति-भावः, ततः यान्षड्माषान् सूर्यः दक्षिणदिशम् एति तान् षड्माषान् आश्रावणात् यावत्पौषं ततः सम्वत्सरं तदमिमानिदैवतं प्राप्नुवन्ति।।श्रीः।।

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकशाच्चन्द्रमसमेष
सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ।।४।।

एवं षण्मासेभ्यः पितृलोकं ततः आकाशं सावकाशं ततः चन्द्रमसं प्राप्नुवन्ति ततोऽग्रे न गच्छन्ति। एष सोमो राजा तदेव देवानामन्नं भवति अदनीयमं तदेव देवाः भक्षयन्ति। चन्द्रभूतोऽयं देवैर्भक्ष्यते इत्येव पुनरावर्तनम्।।श्रीः।।

अथ पुनरावर्तनक्रमं निदर्शयति—

तस्मिन्यावत्संपातुमुषित्वाथैतमेवाध्वानं
पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं
वायुर्भूत्वा धूमो भवति
धूमो भूत्वाभ्रं भवति ।।५।।

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा
प्रवर्षति तत इह व्रीहियवा
ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति
जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं
यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः
सिञ्चति तद्भूय एवं भवति ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं देवयानपितृयानगतिमुक्त्वा पुनरावर्तनक्रमं कथयति। तस्मिन् चन्द्रमसि अथवा चन्द्रलोके यावत्संपातं यावत्पुण्यक्षयमुशित्वा निवासं कृत्वा। आशयोऽयम् यत् स्वर्गलोके देवाः तं चन्द्रमेव तान् भोजयन्ति एवं भोज्यमानेषु तेषु पुण्यक्षये जाते पुनस्ते आवर्तन्ते। यथोक्तं गीतासु—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ।।

(गीता २-२१)

ततः एतमध्वानं मार्गं निवर्तन्ते। कः सोऽध्वा इत्यत आह-ततः एतमाकाशम् आकाशाद् वायुर्भवति ततः धूमो, ततोऽभ्रं, ततः मेघः, ततो वर्षति जलमयस्ततो व्रीहियवा ओषधयः वनस्पतयास्तिलमाषाः जायन्ते। ततः दुर्निष्प्रतरं संसारसागरं प्राप्य एतमन्नमत्ति तन्मयं यद् रेतः सिञ्चति स्त्रियाम् आदधाति तच्छरीरमेव जायते। लोकाभिरामःश्रीरामभजनमन्तरेण अहरहः संसरन् नैव शरच्छशाङ्कसुन्दरमनल्पसौन्दर्य-संयुतं कुटिलालकं श्रीसीतापतिवदनं निरीक्षितुं सौभाग्यभाग् भवति।

एवं षड्भिर्मन्त्रैरत्र देवयानपितृयानवैलक्ष्यण्यं पुनरावर्तना चोक्ता। इमे श्रीगीतासु अष्टमाध्ययाये श्रीकृष्णेनोक्तम्—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षष्ठमासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ।।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्यया वर्तते पुनः ।।

(गीता अ. २४,२५,२५)

ननु निष्कामकर्मयोगिनः देवयानमार्ग उक्तः, कर्मयोगिनश्च पितृयाणमार्ग उक्तः, किन्तु द्वाभ्यां विधुरस्य केवलं कर्माणि कुर्वतः बोधविक्लवस्य का गतिः? इत्यत आह द्वाभ्यां मन्त्राभ्याम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ।।७।।

तत इह संसारे ये रमणीयचरणाः रमणीयं शास्त्रीयं चरणम् आचरणम् कर्म येषां तथाभूताः, ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यसम्बन्धिनीं रमणीयां निजोद्धारक्षमां योनिम् आपद्यन्ते, ये कपूयं निन्दितं चरणं कर्म येषां तथाभूतास्ते कपूयां निन्दितां योनिं श्वशूकरचाण्डाल-सम्बन्धिनीं योनिम् आपद्यन्ते, अभ्यासं शीघ्रम्। यद्यपि इदं क्रियाविशेषणं तत्वेन द्वितीयैकवचनं क्लीबत्वञ्च तथाऽपि व्यत्ययात् पुल्लिङ्गत्वं प्रथमैकविभक्तिश्च बोद्धत्या।।श्रीः।।

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यस कृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयँ स्थानं तेनासौ लोको न सम्पूर्यते तस्माज्जुगुप्से तदेष श्लोकः ।।८।।

अथ एतद्विपरितं ये एतयोः देवयानपितृयाणयोः कतरेण केनाऽपि मार्गेण ये न गच्छान्ति, ते न वा क्षुद्राणि कीटपतङ्गादीनि न वा असकृतदावर्तीनि अपुनरागमनशीलानि भूतानि प्राणिनः भवन्ति। ते तु जायस्व जन्म गृहाण म्रियस्व उपरम इति ईश्वरेच्छया निर्देश्यमानाः जायन्ते म्रियन्ते म्रियन्ते जायन्ते, एवमेव ते निशारणयन्त्रे वृषभ इव संसरन्ति। इदमेव तृतीयस्थानम् अत एव असौ परलोकः न सम्पूर्यते नैव पूर्णतां गच्छति, तस्माज्जुगुप्सेत तास्मात् निरासारसंसारतः विरज्जेत इति श्रुतेरादेशः, तत् प्रतिपादकोऽयम् श्लोकः।।श्रीः।।

अथ द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां पञ्चाग्निविद्यां स्तौति—

स्तेनो हिरण्यस्य सुरा पिबँ श्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरँ स्तैरिति ।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद
न सह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते
शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति
य एवं वेद य एवं वेद ।।१०।।

हिरण्यस्य सुवर्णस्य स्तेनः चोरः सुरां पिबन् मद्यपानं कुर्वन् गुरोस्तल्पम् आवसन् गुरुपत्निगामी, ब्रह्महा ब्राह्मणवधकर्ता इमे चत्वारः पतन्ति, पञ्चमः तैः सहाचरन् व्यवहारं कुर्वन् पञ्चमः पतितः, किन्तु य एतान् पञ्चाग्नीन् वेद सः एभिः सहाचरन्नपि पाप्मना न लिप्यते नैव पापीयान् भवति, सः शुद्धो भवति, पूतः पवित्रः पुण्य लोकः पुण्यपुञ्ज-युक्तो भवति दिरुक्तिरादरार्था प्रकरणसमाप्तिसूचिका च।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये दशणखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

एकादशःखण्डः

अथैकादशखण्डमारभ्यसमाप्तिपर्यन्तो ग्रन्थः वैश्वानरविद्याव्याख्यापरः तत्र यथा-क्रमं पञ्चानां गृहमेधिनामश्वपतिना सह सम्वादवर्णनपराख्यायनं प्रतिपित्सित सुखावबोधार्थम्—

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः
पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः
शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते
हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः
समेत्य मीमासाञ्चक्रुः को
न आत्मा किं ब्रह्मेति ।।१।।

उपमन्योः व्याख्यातचरस्य गुरावनन्यनिष्ठस्य पुत्रः औपमन्वयः, प्राचीनशालः प्राचीना सुदृढा पुरा निर्मिता शाला भवनं यस्य तथाविधः अन्वर्थनामा, एवं पुलुषस्य पुत्रः पौलुषिः, सत्ययज्ञः सत्यं परमात्मानम् एव यजते अनन्यभावेन हृदये समर्चयति तथाभूतः। एवं भल्लवस्य पुत्रः भाल्ववि तस्यापि पुत्रः भाल्लवेयः इन्द्रद्युम्ननामा ऋषिः, शर्कराक्षी ऋषिपत्नी तस्याः अपत्यं पुमान् शार्कराक्ष्यः अथवा अरण्ये तपश्चरणात् सततं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धूलिधूसरितत्वात् यस्य नेत्रे शर्कराभिर्बालुकाकणिकाभिर्मलीमसे सः शर्कराक्ष्यो ऋषिस्तस्य शर्कराक्ष्यस्य अपत्यं पुमान् शार्कराक्ष्यः जनः एतन्नामा, एवम् अश्वतरः एव अश्वः तद्वद् व्यवहार एव वाहनं यस्य सोऽश्वतरांश्वः अश्वतराश्वस्य अपत्यं पुमानं आश्वतंराश्विर्बुडिलः। अत्र प्रत्येकमहर्षेर्नाम्ना सह तद्वंशाख्यानेन तेषां कुलीनता सूचिता नाकुलीनो हि ब्रह्म मीमांसितुं प्रभवति (विद्याहवै ब्राह्मणमाजगाम) इति श्रुतेः। एवं प्राचीनशालसत्ययज्ञेन्द्रद्युम्नजनबुडिलाः पञ्चापि ब्रह्मणाः किं प्रकारका इत्यत् आह-विशेषणद्वयं महाशाला महत्यः अग्निहोत्रपञ्चयज्ञबलिवैश्वदेवप्रभृतिवैदिकब्राह्मणोचित-सत्कर्म पूजिताः विशालायतनाश्च शालाः भवनानि येषां तथाभूताः, न केवलं भौतिकघनवन्त इमे, किं तर्हि महाश्रोत्रियाः श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते इति पाणिनीयसूत्रेण छन्दः शब्दस्य श्रीत्रियशब्दनिपातने महान्तश्च ते श्रोत्रियाः इति महाश्रोत्रियाः, महत्वञ्च वेदपारगत्वेऽपि ब्रह्मविवित्सा इत्यने तपःश्रुतजातिभिर्ब्राह्मणत्वमेषां तथा हि—

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्काराद्द्विज उच्यते ।
वेदपाठी भवेतविप्रः श्रोत्रियो वेदपारगः ।।

इति याज्ञवल्क्य वचनात्। एते एकदा समेत्य मीमांसाञ्चकुः विचारं कृतवन्तः। कः आत्मा किं नाम ब्रह्म? आत्मशब्दो जीवात्मवाच्यपि तत्रातिव्याप्तिवारणाय ब्रह्म इति प्रकृत्यादाववतिव्याप्तिवारणाय आत्मेतिं। यद्यपि मीमांसते इति आत्मनेपदीयधातोरपि जगद्धितार्थं परस्मैपदप्रयोगः। अत्रेदमवधेयम्-ब्रह्म विचारः खलु पूतात्मनः संस्पृशति येषां प्रशस्तमातृपितृमत्ता परमपावनकुलाचारः सर्वतोभावेन ब्राह्मणत्वं धर्मतो भोगसेवनं त एव ब्रह्म विचारयितुं समीयन्ते, अन्यथा विलसितविविधविकारे घोरदुःखाकारे समत्रव्याप्तमहान्धकारे निस्सारे संसारे यस्मिन् सागर इव नागराः भग्नप्लवाः सतत-मीप्सितकामलवाः परिपात्यन्ते। धर्मपूर्वके हि भोगसेवने जानकीजीवने संजायते काचित् दर्शनोत्कण्ठा यथोक्तं मानसे—

प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीति । निज निज कर्म निरत श्रुति नीति ।।
एहि कर फल पुनि विषय विरागा । तब मम धरम उपज अनुरागा ।।

(मानस ३.१६.६.७)

तस्मादयं प्रथमो मन्त्रः ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता प्रदर्शनार्थम्। अत्र नः कः आत्मा किं ब्रह्मेति लिङ्गद्वयनिर्देशः जीवब्रह्मणोर्भिदां प्रदर्शयतुम् आत्मशब्दोऽत्र जीवात्मवाची।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मशब्दश्च परमात्मबोधकः। नः अस्माकं पञ्चप्राणदशेन्द्रियचतुरन्तःकरण-पञ्चतन्मात्र-पञ्चमहाभूतमध्ये को नाम आत्मपदार्थ इति जिज्ञासा बीजम्। किं गुणकं ब्रह्मेति प्रश्नः। ननु सर्वथै वासमीचीनोऽयं प्रश्नाकारः, ब्रह्मणस्तु प्रसिद्ध त्वात्। सत्यं प्रश्नाकारस्य नैतत्तात्पर्यम्। ब्रह्मणो निर्गुणत्वे सगुणत्वे च विप्रतिपत्तौ। किं तर्हि ब्रह्म निर्गुणं सगुणं वा? उभयमिति ब्रूमः अथैकस्मिन् धर्मिणि कथं विरुद्धधर्मद्वयं संघटते समञ्जसत्वात्। अतो भागवते वृत्रासुरः परेश्वरम् समञ्जसं प्राह—

समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे।

(भागवत ६-११-२५)

सामञ्जस्यम् कथम्? शृणु निर्गुणत्वं नाम निर्लीनगुणकत्वं, कथं समास इति चेत् प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपश्च इति वार्तिकमेव तद् एवम् सगुणत्वं नाम प्रकटितमाहात्म्यगुणैःसहभूतत्वं, न खलु गुणाः परमात्मानं जहति न वा हातुं प्रभवन्ति गुणगुणिनोश्च समवायत्वप्रसिद्धेम् **न च उत्पन्नं सद् द्रव्यम् क्षणं निर्गुणं निष्क्रियञ्च तिष्ठति** इति नियमात् द्रव्यनिर्गुणत्वसिद्धौ द्रव्यभूतपरमात्मन्यपि गुणरहतित्वापत्तिरिति-वाच्यम्। उत्पन्नद्रव्य एव त्वदुक्तन्यायप्रवृत्तेः परमामनश्च नित्यत्वे न्यायाप्रसरेणादोषात् इति विरम्यते।

एवं निर्णयमलभमानास्ते किं चक्रुः? इत्यत आह—

ते ह संपादयाञ्चक्रुरुद्दालको
वै भगवन्तोऽयमारूणिः संप्रतीममात्मानं
वैश्वानरमध्येति तँ् हन्ताभ्यागच्छा
मेति तँ् हाभ्याजग्मुः ।।२।।

यत् भगवन्तः हे महानुभावाः! वयं यं सद्गुरुम् अन्वीक्षामः अस्मान् समिलितः अरुणपुत्रः उद्दालक इमम् आत्मानम् वैश्वानरं, विश्वेनराः यस्मिन् सः विश्वानरः विश्वानर एव वैश्वानरः। **नरे च संज्ञाययाम्** इति सूत्रेण विश्वघटकस्य अकारस्य दीर्घः, स्वार्थेऽण् प्रत्ययः तादृशम् आत्मभूतं वैश्वानरमेव सम्प्रति स अध्येति स्मरति इङ् अध्ययने इत्यस्य छान्दसोऽयं परस्मैपदप्रयोगः हन्तः सहर्षं तमेव अभिगच्छामः इति इत्थं विचार्य तमेवाभ्याजग्मुः आगताः।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथाग्रिमं वृत्तं सूचयति—

स ह संपादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्ति
मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो
न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये
हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ।।३।।

तान् समागतान् वीक्ष्य ह निश्चयेन सः सम्पादयाञ्चकार विचारयामास। संपादि क्रिया अत्र विचारणपरा। इमे प्रक्ष्यन्ति वैश्वानर विषये, अहम् इदं सर्वं न प्रतिपत्स्ये इति हेतोः आत्मने सर्वेषाम् प्रश्नानां प्रतिपादनाभावं कलयन् अहं स्वतोऽन्यं कमपि विशिष्टं सद्गुरुम् अनुशासानि वदितुम् इमान् प्रेरयामि।।श्रीः।।

एवं विचार्य सः कैकेयदेशमहाराजम् अश्वपतिं स्मारयामास।

तान्होवाचाश्वपतिर्वै भगोवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं
वैश्वानरमध्येति तँ हन्ताभ्यागच्छामेति तँ हाभ्याजग्मुः ।।४।।

सः आरुणिः तान् उवाच यत् साम्प्रतं कैकेयदेशराजा अश्वपतिः वैश्वानरम् आत्मानम् अध्येति तमेव वयम् अभिगच्छामः भवद्भिः सहाहमपि तमेवाभिगच्छानीति तात्पर्यम्, इति ते सर्वे तत्र जग्मुः।।श्रीः।।

अथ राज्ञः स्वागतं वर्णयति—

तभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि
कारयाञ्चकार स ह प्रातः संजिहान
उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो
न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न
स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो
वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा
ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद् भघवद्भ्यो
दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं तेभ्यः प्राप्तेभ्यः षड्भ्योऽपि प्राचीनशालसत्ययज्ञेन्द्रद्युम्नजनवुडिलोद्दालकेभ्यः पृथक् पृथक् अर्हाणि पूजनानि कारयाञ्चकार। प्रातः सभां गच्छन् सञ्जिहानः तेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा विसर्जयितुमियेश यदा ते न जग्रहुः तदा राजा जनपदस्य शुद्धतां प्रावोचत्। हे भगवन्तः। मम जनपदे कोऽपि स्तेनः परधनापहर्ता, कदर्यः निन्दतिकार्यकर्ता, कृतघ्नो वा न हि मे जनपदे मद्यपः सुरापायः, अनाहिताग्निः न आहितः अग्निः येन तथाभूतः अनग्निहोत्री, न मम जनपदे स्वैरी पदस्त्रीगामिन् तर्हि कुतः स्वैरिणी कथं परपतिगामिनी स्वैरिणी। अतः मम शुद्धं धनं परन्तु यदि भगवन्तोऽधिकम् वाञ्छन्ति तर्हि न चिराद् यक्ष्यमाणः यज्ञं करिष्यमाणः यावद्धनं यत् परिमाणकं द्रव्यं प्रत्येकम् ऋत्विजे याज्ञिकाय दास्यामि तावद् भगवद्भ्यो, तद् वसन्तु निवासं कुर्वन्तु इति निवेदयाञ्चकार।।श्रीः।।

मुनीनां प्रार्थनामह

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तँ हैव।
वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरँ संप्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति ।।६।।

येन अर्थेन प्रयोजनेन पुरुषः चरेत् गच्छेत् तमेवार्थं वद, अर्थात् यत् प्रयोजनेन पुरुषः कुत्रचित् गच्छति तमेव वद इति प्राञ्चः। वस्तुस्तु नेदं व्याख्यानं समीचीनम्। अस्मिन् व्याख्याने वाक्यभेदः निराकाङ्क्षिताया अभावः निरर्थकं लकारव्यत्यय कल्पना। न्यायतस्तु मुनीनामयमभिप्रायः यत् येन अर्थेन ब्रह्मविज्ञानघनेन पुरुषः पुरुषार्थवादिमानवः चरेत् परमात्मानम् अनुचरेत् तत्पदपद्मं गच्छेद्वा तमेव अर्थं वद। साम्प्रतं वैश्वानरमात्मानमध्येषि स्मरसि तमेव ब्रूहि किमनेन क्षणभङ्गुरधनेन।।श्रीः।।

अथ तेषाम् उपसत्तिं वर्णयति—

तान्होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः
पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान्हानुपनीयैवैतदुवाच ।।७।।

राजा तेषाम् अभ्यर्थनां स्वीकृत्य प्राह— अहं प्रातः वः प्रतिवक्तास्मि युष्मान् उपदेष्टास्मि प्रातःकाले षडपि मुनयः कुलजात्यभिमानं गृहस्थ अपि विद्याप्राप्तये समिद्भारहस्ता विद्यार्थिरूपेण प्रतिचक्रमिरे उपगताः। अश्वपतिः तान् अनुपनीय क्षत्रियत्वेनाधिकाराभावात् उपनीतोपनयनानुपपत्तेश्च एतदुवाच, आत्मवैश्वानर-रहस्यमुपदिदेश।।श्रीः।।

इति छान्दोग्यपनिषदि पञ्चमाध्याये एकादश खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ द्वादशः खण्डः

अथौपमन्यवाश्वपतिसंवादमवतारयति—

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति
दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष
वै सुतेजा आत्मा वैश्वानारो यं त्वमात्मानमुपासस्से
तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ।।१।।

राजा पप्रच्छ हे औपमन्यव! उपमन्युपुत्रप्राचीनशाल त्वं कं वैश्वानरम् आत्मबुद्ध्यां उपास्से भजसे। स उत्तरयामास—राजन्! दिवम् एव द्युलोकमेव। राजा प्राह—स सुतेजा नाम वैश्वानरः शोभनं तेजः यस्मिन् तथाभूतः। अतएव तव कुलं प्रसूत- सुसंतानसमृद्धं अतएव तव कुलं प्रसुतं श्रेष्ठसंततियुक्तं दृश्यते विलोक्यते। प्रसुतं प्रकृष्टसंततिः, आसुतं मर्यादित वंशपरंपरा दृश्यते।

फलश्रुतिमाह—

अतस्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं
पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं
कुले य एतमेवात्मानं वैश्वानरमुपास्ते
मूर्धा त्वेष आत्मन इति
होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां
नागमिष्य इति ।।२।।

अतएव त्वम् अन्नम् अदनीयम् अत्सि अश्नासि, प्रियं पश्यसि प्रियदर्शनं करोसि यः एवं वैश्वारनरम् आत्मानमुपास्ते, सः अदनीयम् अत्तित प्रियं परमात्मानं पश्यति एषः आत्मा मूर्धा वैश्वानरस्य शिरोभागः, यदि त्वम् अत्र नागमिष्यः न आगतोऽभविष्यो मां प्रति तदातेमूर्धाप्यपतिष्यत मूर्धा निपतितोऽभविष्यत् एतज्ज्ञानेन त्वया मूर्धरक्षण कृतमितिभावः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषधि पञ्चमाध्याये द्वादशखण्डे श्रीराघवकृपाभ्ष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रयोदशः खण्डः

राजा सत्यज्ञं प्रति प्राह—

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ।।१।।

प्रवृत्तोश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वेतदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नागमिष्य इति ।।२।।

राजा प्राचीनयोग्यं पुलषपुत्रं सत्ययज्ञं पप्रच्छ, यत् त्वं कम् आत्मानम् उपास्ये। स उवाच, आदित्यम् आदित्य एव विश्वरूपो वैश्वानरः तस्य सर्वरूपत्वात् अत एव तव कुले विश्वरूपं अनेकरूपं दृश्यते। अपरञ्च अश्वतरीभ्यां युक्तो रथः अश्वतरीरथः दासिभिः सहितो निष्कः हारः इति दासीनिष्कः ब्रह्मणोवर्चः ब्रह्मवर्चसम् एषः विश्वरूपः आत्मनः परमात्मनः चक्षुः नेत्रम् अन्धः दृष्टिरहितः शेषं सुगमम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये त्रयोदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

चतुर्दशः खण्डः

अथाश्वपति इन्द्रद्युम्नसंवादमवतारयति तृतीयवैश्वानरोपदेशच्छलेन—

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्मात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ राजा इन्द्रद्युम्नं पप्रच्छ, य त्वं कं भजसे? सोऽब्रवीत् वायुम्। राजा प्राह अयं वायुः पृथग्वर्त्मानां वैश्वानरः आत्मा एतस्य वर्त्मानि मार्गाः पृथक्पृथक्सन्ति। अत एव त्वां पृथक्बलयः अनेकराजोपहाराः पृथग्रथश्रेणयः अनेकेषां रथानां समूहाः अनुयन्ति अनुगच्छन्ति।

फलश्रुतिशेषमाह—

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियं
भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं
वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति
होवाच प्राणस्त उदक्रमिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ।।।२।।

एषः वायुरूपो पृथग्वर्त्मा आत्मनः परमात्मनः प्राणः उत्क्रमिष्यत् उत्क्रान्तोऽभविष्यत् पूर्ववदन्यत्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये चतुर्दशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

पंचदशः खण्डः

अथाश्वपतिजनसंवादमवतारयति—

अथवोवाच जनँ्शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स
इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैष
वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं
त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ।।१।।

राजा शर्कराक्ष्यपुत्रं जनमपृच्छत्, तदुपासनाविषये। तेनोक्तं— यदहमाकाशमेव आत्मबुद्ध्या उपासे स आह, यद्वयमपि बहुलो नाम वैश्वानर आत्मा यं त्वमात्मानं मत्वा उपास्से। अत एव प्रजया संततिपरंपरया पशुभिः बहुलः अधिकसंपन्नः।

परिशेषमाह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्यशीर्यद्यन्मां नागमिष्य इति ।।२।।

अयम् आकाशरूपः बहुलनामा वैश्वानरः आत्मनः परमात्मनः संदेहः मध्यभागः तव संदेहः मध्यभागोविशीर्णं भविष्यत् शेषं समानम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये पंचदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

षोडशः खण्डः

अथाश्वपति बुडिलसंवादमवतारयति—

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वँ रयिमान्पुष्टिमानसि ।।१।।

पुनः राजा बुडिलम् अपृच्छत्। सोऽब्रवीत्— यदहम् अप एव उपासे राज वदति यत् अयं रयिः एतज्ज्ञाता रयिमान् पुष्टिमान्।

परिशेषमाह—

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते बस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच बस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति ।।२।।

एषः अब्रूयो रयिर्नामा वैश्वानरः आत्मनः वस्तिः मेहग्रन्थिस्थानं यदित्वमत्र नागमिष्यः तदा ते वस्तिः व्यभेत्स्यत् भिन्नाभविष्यत्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये षोडशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तदशः खण्डः

अथाश्वपत्युद्दालकसंवादम् अवतारयति—

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेष भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च ।। १ ।।

अश्वपतिना पृष्ट उद्दालकः आत्मत्वेन पृथिवीमुपास्यमाह, स कथयति, यद् अयं प्रतिष्ठानाम वैश्वानरः एतं भजन्नेव त्वं प्रतिष्ठितोऽसि।

परिशेषमाह—

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मां नागमिष्य इति ।। २ ।।

आत्मनः परमात्मनः पृथिवीरूपः प्रतिष्ठानामा वैश्वानरः आत्मनः परमात्मनः पादौ एतज्ज्ञानार्थं यदि त्वं नागतोऽभविष्यः पादौ ते व्यम्लास्येतां म्लानावभविष्यताम्। ।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये सप्तदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

अष्टादशः खण्डः

अथाश्वपतिः वैश्वानरं सामग्र्येणोपदिशति—

तान्होवाचैते वैखलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाँसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ।। १ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ राजा सर्वान्प्राह— एते यूयं प्राचीनशालादयः षट् इममात्मानं पृथक्सन्तमिव मन्यमानाः अन्नमत्थ इदं नोचितं यस्तु इमं प्रादेशमात्रं प्रादेशाः दिवादित्यवाय्याकाश-जलपृथ्वीनामानः तदाकाराः सुतेजा च विश्वरूपः पृथग्वर्त्मा बहुलःरयिः प्रतिष्ठा इत्येतानि समभिधानानि विदधतः मूर्धा चक्षुः प्राणः संदेहः वस्तिः पादौ इत्येतानि अंगानि तैरेवमियते इति प्रादेशमात्रः तं प्रादेशमात्रमथवा प्रादेशः द्युलोकमारभ्य पृथिवीपर्यन्तः प्रमाणो यस्य तथाभूतम् अभिविमानम् अभितो ज्ञानवैराग्यनेत्राभ्यां विमीयते विज्ञायते इति अभिविमानः तं सामग्रेणोपासते आत्मानं सेवकं मत्वा परमात्मानं चराचरेष्वेषु पश्यन्भजते स सर्वेषु भूतेषु उपश्लिष्टतया समुपस्थितः अन्नम् अत्ति ब्रह्मसुखमनुभवति।

तस्य ह वा एतस्यात्मानो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ।। २ ।।

ह वा इति निश्चयार्थौ निपातौ तस्य आत्मत्वेन समाराध्यस्य वैश्वानरस्य स्वतेजा एव मूर्धा, द्युलोकात्मकः चक्षुः नेत्रं विश्वरूपं सूर्यात्मा पृथग्वर्त्मा प्राणः वायुरूपः बहुलः संदेहः आकाशाख्यो रयिः बस्ती अब्रूपः पृथिवी एव प्रतिष्ठापादः उर एव वेदिः लोमानि रोमाणि एव बर्हिः कुशाः हृदयं मनः गार्हपत्यमन्वाहार्यपचनः चेतः आहवनीयम् आस्यं मुखम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पंचमाध्याये अष्टादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

एकोनविंशः खण्डः

अथ भोजने निष्पादयितुम् अग्निहोत्रत्वं पञ्चप्राणानां पञ्चाहुतिविधितया प्रतिपत्तये तत्फलश्रुतिश्रावणाय शकलषट्कम् उपक्रमते।

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयँ स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ।। १ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तद् तस्माद् हेतोः यद् भक्तं सिद्धम् अथवा भक्तिः परमेश्वरचरणाविन्दप्रेमप्रवणता अस्त्यस्मिन् तद्भक्तं, ननु प्रेम्णश्चेतनावन्निष्ठत्वात् भोजने कथमस्याधेयतेति चेत्? शृणु निर्मातृनिष्ठभगवत् प्रेम्णः प्रवणतायाः तत्रापि समारोपात्। भोजननिर्माणकाले यन्निर्मातृविशेषो भगवन्नामरूपधाम्नां समास्वादं कुर्वाणो भगवत् प्रतीये पचति तदा तद्भक्तिपरमाणवो भजोनेऽपि समागच्छन्ति। अतो भक्तं भगवद्भक्तिपूर्वकनिर्मितं प्रथमम् आगच्छति भोजनाय स्थाल्यामुपस्थाप्यते तद् होमीयं होमाय आध्यात्मिकाहुतये हितम् इति होमीयं तत्र सःभोक्ता याम् आहुतिम् जुहुयात् पूर्वोक्तवैश्वानरं सकलहृदये वर्तमानं परमात्मानं प्रीणयितुम् आहुतिबुद्ध्या यं प्रथमं ग्रासं मुखे मेलयेत् तत्र प्राणाय स्वाहा अनेन मन्त्रेण जुहुयात् आहुतिं प्रमाणं ग्रासं मुखे मेलयेत् एतेन कर्मणा प्राणः प्राणभूतपरमात्मा तृप्यति तृप्तिं लभते।

ननु तत्तृप्तौ को लाभ इत्यत् आह—

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किंच द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।। २।।

एवम् अत्र पञ्चधा सति सप्तमी। प्राणे तृप्यति तृप्तिं गच्छति सति। चक्षुः नेत्रं तृप्यति, चक्षुषि तृप्यति तृप्ते भवति आदित्यः चक्षुर्देवता तृप्यति तस्मिन् तृप्ते द्यौः आदित्याधारभूतो लोकः परमप्रकाशमानः साकेत इति भावः। तस्यां तृप्यन्त्यां तृप्तिं गच्छन्त्यां यत्किञ्चिद् रूपं यत् द्यौरादित्यसाकेतसूर्यौ अधितिष्ठतः आधारी कृत्य प्रकाशेते। यत्किञ्चिदधितिष्ठतः इत्यत्र (अधिशीङ् स्थासाम् कर्म) इत्यनेन आधारकर्म संज्ञायां द्वितीया। तृप्यति तद् ब्रह्मभूतं श्रीरामाख्यं वस्तु तृप्यति प्रीण्यते तस्य परमात्मनः तृप्तिम् अनु तृप्तेरनन्तरं भोक्ता प्रजया भगवद्भक्तनिर्देशकृदास्तिकसन्तत्या अन्नाद्येन भक्षणयोग्यभोजनेन। अन्नमेव आद्यमिति अन्नाद्यं तेन भगवद् प्रीतिजनकरसवदशनेन इति भावः। तेजसा शारीरिकबलेन ब्रह्मवर्चसेन ब्रह्मणः वर्चः इति ब्रह्मवर्चसं ब्रह्म हस्तिभ्यां वर्चसः। इति सूत्रेण अच् प्रत्ययः। ब्राह्मणसम्बन्धेन परमात्मानुग्रहलब्धतेजसा तृप्यति परितोषं व्रजति। इति शब्दः खण्डसमाप्तिसूचकः।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये एकोनविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विंशोः खण्डः

अथ द्वितीयाहुतिं वर्णयति—

अथ यां द्वितीयां जुहुयाद् व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ।। १ ।।

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रस्मास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यान्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किञ्च दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यात तस्यानुतृप्ति तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।। २ ।।

व्यानाय स्वाहा इति मन्त्रं जपन् आहुति बुद्ध्यात् द्वितीयं ग्रासं मुखे मेलयेत् एवं व्यानस्तृप्यति तदनु श्रोत्रं श्रवणेन्द्रियं तदनु चन्द्रमाः श्रोत्ररूपस्य आकाशस्य अलङ्करणभूतत्वात्। तदनु दिशः चन्द्रमासः दिक्त्वात्। तदनु दिक् चन्द्राधिष्ठान् परमात्मा श्रीरामः।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये विंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।श्रीः।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

एकविंशः खण्डः

अथ तृतीयम् आहुतिं निरूपयति—

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ।। १ ।।

अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यात्किं च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।। २ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीयामपानाय स्वाहा इति मन्त्रं जपन् आहुतिभूतां ग्रासक्रियां निर्वर्तयेत्। एवम् अपानः तद्दैवतं तृप्यति तमनु वाक् वाणी तामनु अग्निः वाक् दैवतं तमनु पृथिवी आधारशक्ति अग्निरधिष्ठानत्वात्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये एकविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

द्वाविंशः खण्डः

अथ चतुर्थीम् आहुतिमाह—

अथ यां चतुर्थीं जहुयात्तां ।
जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति । ।१।।

समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि
तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति
विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किञ्च
विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति
तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया
पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।।२।।

अथ चतुर्थं ग्रासं समानाय स्वाहा इति मन्त्रं जप्त्वा आहुतिबुद्ध्या मुखे मेलयेत्। अनेन समानस्तृप्यति तमनु मनः तदनु पर्जन्यः वर्षणदैवतं तमनु विद्युत्। तामनु तपोऽधिष्ठानं परमात्मा तमनु भोक्तेति तृप्तिक्रमः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये द्वाविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

त्रयोविंशः खण्डः

अथ पञ्चमीम् आहुतिं वर्णयति—

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां स्वाहेत्युदानस्तुप्यति ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचि
तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ
तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किं च
वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठततस्तत्तृप्यति
तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया
पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।। २।।

पञ्चमीम् आहुतिम् उदानाय स्वाहा इति मन्त्रेण जप्यमानेन ग्रासरूपां जुहुयात् क्रिययानया उदानस्तृप्यति तमनु त्वक् त्वगेन्द्रियं तामनु वायुः त्वग् दैवतं तमनु आकाशः वारवाधारः। तमनु द्वयोरधिष्ठाता परमात्मा। तस्मिन् तृप्ते तृप्यति भोक्ता आदेशकारः सन्ततिभिः भगवदीयाभिर्भगवद्भक्तिवर्धकभोजनेन भगवद् भजनोपयोगिना शारीरेण तेजसा ब्राह्मणोचितेन भगवद् दत्तेन च मानसेन वर्चसा तृप्यति। एवं भोजनकाले प्रत्यहं भोजनात्पूर्वं हृदिस्थं वैश्वानररूपं भगवन्तं तोषयितु कामः पञ्चग्रासान् आहुतिप्रमाणान् यथाक्रमं प्राणाय स्वाहा,, व्यानाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा इति मन्त्रैः हवनबुद्ध्या पश्चाद्यथारुचि भोजनं कुर्यात्। अत एव स्मरति भगवान् गीतासु।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।।

गीता १५-१४

प्राणापानशब्दः व्यानसमानोदानानामप्युपलक्षणः अन्नम् अदनीयमशनम् चतुर्विधं भक्षभोज्यलेह्यचोष्यरूपम्। इदमेवमाह मानसे गोस्वामी तुलसीदासः **पञ्च कवलि करि जेवन लागे, गारि गन सुनि अति अनुरागे।** (मानस १-३२-१।)

देवादित्येन्दुदिग्वाणी ज्वलनाम्भोदशम्पिका ।
वाताम्बरनियन्ता यस्तं रामं ब्रह्म संश्रये ।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये त्रयोविंशेखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्विंशः खण्डः

अथ विदुषां हवनस्वरूपं निरूपयति—

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति।
यथाङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक्तत्स्यात् ।।१।।

सः एतत् पञ्च कवलप्रकारम् अविद्वान् न जानन् अग्निहोत्रं जुहुयात् मनः कल्पितं किमपि वाक्यं कथयित्वा भोजनं कुर्यात् सदा तस्य भोजनं तादृशमेव निष्फलं भवति यथा कोऽपि अङ्गारं निर्धूममग्निम् अपोह्य दूरीकृत्य भस्मनि हवनं करोति।

अथ विदुषां हवनस्वरूपं वर्णयति—

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य।
सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति ।।२।।

अथ यदि विद्वान् एतद् रहस्यं जानन् मन्त्रपञ्चकजपपुरस्सरम् आहुतिं कुर्यात् तदा तस्य हुतं हवनकर्म सर्वेषु भूतेषु प्राणिषु सर्वेषु लोकेषु साकेतपर्यन्तेषु सर्वेषु आत्मसु जीवात्मसु। अत्र बहूक्तिनिर्देशः जीवात्मनाम् अनेकत्वं प्रमाणयति।

अथ विदुषोऽग्निहोत्रफलं वर्णयति—

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतवँ् हास्य सर्वे पाप्मानः।
प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ।।३।।

यः एतद् विद्वान् विदन् अग्निहोत्रमेतद्रूपं जुहोति पञ्चकवलं कृत्वा भोजनं करोति तस्य पाप्मानः अघानि तथैव प्रदूयन्ते नष्टा भवन्ति यथा ईशिका तूलं शरनामकतृण-राशिभिर्युक्तं कार्पाशं अग्नौ प्रदूयन्ते भस्मसाद् भवन्ति।

भूयः विद्वासं प्रशंसति—

तस्मादु हैवं विद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनि।
हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतँ् स्यादिति तदेष श्लोकः ।।४।।

तस्मात् अत एव एवं विद् एतद् रहस्यज्ञाता यदि चाण्डालाय यदि उच्छिष्टं प्रयच्छेत् तदात्। अत्र अपि शब्दः चतुर्थेनान्वेति। उच्छिष्टचाण्डालशब्दौ देय-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दायकेत्युभयत्र पवित्रापवित्रत्वभावसूचकौ। तत् सर्वम् आत्मनि वैश्वानरे भगवति हुतं प्रीणन् साधनं स्यात्। उच्छिष्टं हुतमेव चाण्डालस्य आत्मभूतवैश्वानर इव होतृकृते पुण्य-जनकतावच्छेदको घटते इति भावः।

अस्मिन् विषये एषः श्लोकः भवति। पद्यात्मकः मन्त्रः पद्यते।

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासतेँ ।
एव सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ।।५।।

यथा इह अस्मिन् लोके क्षुधिताः बुभुक्षापीडिताः बालाः बालकाः शिशवः मातरं निजजननीं पर्युपासते इति क्षुत्क्षान्तये प्रार्थयमाना भजन्ते। एवं सर्वाणि भूतानि जीवजातानि अग्निहोत्रं वैश्वानराग्नौ हूयन्ते पञ्चाहुतयः अनेन इत्यग्निहोत्रस्तं भोजनकाले पञ्चकवलकर्तारम् उपासते निजत्राणाय भजन्ते द्विरुक्तिरादरार्थाध्यायसमाप्तिसूचकार्थाः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमाध्याये चतुर्विंशखण्डः
इति श्रीचित्रकूटवास्तव्य सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वरश्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यकृतौ श्रीराघवकृपाभाष्ये छान्दोग्योपनिषदि विवरणे पञ्चमाध्यायः सम्पूर्णम्।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥श्रीराघवो विजयते॥

॥श्रीरामानन्दाचार्याय नमः॥

षष्ठोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

एकमेवाद्वितीयं सद् ब्रह्म यं श्रुतयो जगुः
नीलोत्पलदलश्यामं रामं षष्ठे तमीड्महे।

अथ समस्तश्रुतीनां परमं तात्पर्यं, निरस्त समस्तहेयगुणं विशुद्धबोधविग्रहं भूमिजापरिग्रहं सकलकल्याणगुणसङ्ग्रहं सर्वसर्वेश्वरं परमात्मानं श्रीरामं ब्रह्म निरूपयितुं षष्ठोऽध्यायः उपाक्रम्यते। तत्र आरुणेय श्वेतकेतु तज्जनकारुणि सम्वादव्याजेन समवतार्यते चैषाख्यायिका—

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तछ्ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम् । न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति॥१॥

ह शब्दः आख्यायिकाया ऐतिएकत्वसूचकः, आरुणेयः अरुणस्य गोत्रापत्यं पुमान् आरुणिः तस्य आरुणेः गोत्रापत्यं पुमान् आरुणेयः, अरुणनामा ब्रह्मऋषिपौत्र इति भावः। श्वेतकेतु श्वेतः ब्रह्मविद्याया धवली करिष्यमाणः केतु ध्वयो यस्य सः श्वेतकेतु अन्वर्थनामा आस पूर्वकाले बभूव। "बहुलं छन्दसी" इत्यनेन "अस्तेर्भूः" इति सूत्रस्याप्रवृत्तेः आसेति अस् धातुरेव लिडन्त प्रयोगः। तादृशं श्वेतकेतुनामकं पुत्रम् अतिक्रममाणमवधिं व्रतवन्ध्यसंस्कारस्य तं वेदाध्ययिनं न चिकीर्षन्तं व्यतीतद्वादशवर्ष-वयसं पिता तज्जनक आरुणिरुवाच, श्वेतकेतो एतन्नाम्ना पुत्रमभिमुखीकरोति। वस ब्रह्मचर्यं शास्त्राध्ययनाय कश्चिदाचार्यं वृत्वा तच्चरणारविन्दसमीपे ब्रह्मचर्यव्रतं वसुमैथुनत्याग पूर्वकं गुरुकुल एव निवस, आदेशहेतुमाह सोम्य हे सोमरसपानार्ह पुत्र! कोऽपि अस्मत् कुलीनः अस्मद् वंश प्रसूतः अनूच्य वेदान् अनधित्य अकण्ठस्थि कृतवेद ब्रह्मबन्धुः ब्रह्माणो बन्धवो यस्य व्यपदे स्याह सः ब्रह्मबन्धु अन्यान् ब्राह्मणान् बन्धून्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्वान स्वयं ब्राह्मणसंस्कारहीनः ब्रह्मबन्धुः स इव न भवति न कोऽपि वेदाध्ययन-वर्जितः सन् ब्राह्मणाधमो जायते। स्वाध्याय एव ब्राह्मणानां तपः तद् विहीनो ब्रह्मबन्धुरेव।

"**ब्रह्मबन्धुर्द्विजाधमः**" इतिकोशात् यथोक्तं मानसे—

सोचिय विप्र जो वेद विहीना ।
तजि निज धर्म विषय लयलीना ।।

मानस २-१७३-३

इति एष आदेशप्रकारः।।श्रीः।।

अथ श्वेतकेतोरुत्तरकालिकदशामाह—

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंश्शतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय। तच्छ्ह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं मंहामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः।।२।।

एवं शास्त्राध्ययनसमर्थोऽपि ब्रह्मविद्या दौर्लभ्यद्योतनाय द्वादशवर्षं स्वयमनुपनीयैव पुत्रेणैव वृतं कञ्चिदाचार्यं प्रति प्रेषयामास ननु कथमिदं ज्ञातं यत् द्वादशवर्षः श्वेतकेतुः प्रेषित इति? अनुपदमेव चतुर्विंशति ः्वर्षः इति श्रुत्येव वक्ष्यमाणत्वात् न च द्वादशवर्षस्य विप्रस्योपनयने '**व्रात्यत्वापत्तिरितिवाच्यम्**' "**अष्टवर्षं ब्राह्मणोमुपनयित**" इति श्रुतेः तत्र षोडशवर्षं यावत् उपनयनावधिनिर्धारणेनादोषात् षोडशवर्षानन्तर एव अनुपनीत ब्राह्मणव्रात्यत्वनिर्देशात्। यथोक्तं मनुना **आषोडषाधि विप्रस्य सावित्री नाति वर्तते।**

इति सः श्वेतकेतु पितुनिर्देशं पालयन् तत्र समग्रं वेदराशिं गुरोरेवाधिजग्रे, ततो द्वादशे वर्षे पूर्णे सति वयसा चतुर्विंशतिवर्षः रूढयौवनः सर्वान् वेदान् अधीत्य एकैकं वेदं त्रिभिस्त्रिभिवर्षैः शब्दतः अर्थतश्चाधिगम्य तान् पुनराचार्यसमक्षम् अनूच्य आनुपूर्व्या प्रकृतिविकृतिस्वरवर्णानुकूल्येन परीक्षायां विस्पष्टमुक्त्वा तस्माद् लब्धप्रमाणः एवं गुरुकुलमुपेत्य ततः शिक्षितो भूत्वा समावर्तनविधया गृहं प्रति निवृत्तः। कथम् आगच्छत्? इत्यत् आह महामनाःमहत् पूजनीयं मनः यस्य सः महामनाः मनसि विद्याभिमानयुक्तत्वात् इतरापेक्षया निज मन एव महन् मन्वानः अनूचानमाने आनुपूर्व्या आनुकूल्येन च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विकृति स्वरवर्णानां परिभाषणविधानेन अनुवक्ति समस्तश्रुतिजातं यः सः अनूचानः, अनूचानम् आत्मानं मन्यते इत्यनूचानमानी, आत्मानमानुपूर्व्यानुकूल्याभ्यां वेदानां वक्तारं मन्यमानः, अथ एव तेन गर्वेण एयाय आ इषत् इयाय इति एयाय, अभिमानयुक्तत्वात्। न तु पूर्ण पितुः समीपमगच्छत् इत्येव 'आङस्तात्पर्यम्' ननु कथमीषदर्थ एवाङ्निर्धारितस्त्वया? इति चेत् सन्धिकार्यं निरीक्ष्यैव, अथ कथं सन्धिकार्येण ईषदर्थोवधारितः इति चेच्छृणुः "ङित्स्वेवाऽङः" सन्धिकार्यमिति पाणिनीरनुशास्ति। तथा च सूत्रं "निपात एकाजनाङ्" ङित्वं च चतुर्ष्वर्थेषु ईषदर्थे क्रियायाः योगे मर्यादायाम् अभिविद्यावपि वाक्ये स्मरणे च अङित् तत्र नैव सन्धिकार्यम्। तथा च भाष्यश्लोकः—

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधावपि
एतमातं ङितं विद्यात् वाक्यस्मरणयोरङित्।

इति नन्वेतेषु चतुर्ष्वपि ङित्वज्ञाप्य वाच्येष्वः ईषदर्थ एव कथं निश्चितो भवता अनूचानमानीत्वस्तब्धत्वेति तन्मनः प्रतिक्रिया द्वयेन एवम् एयाय ईषदर्थसंपन्नः पितुःसमीपमगच्छत्। एवं समधीत वेदमपि विद्याभिमानगर्वितं पंडितं मन्यमानमनसं तं श्वेतकेतुं निरभिमानं चिकीर्षन् तं ब्रह्मविद्ययापि पावयिषन् उवाच अवदत् यत् श्वेतकेतो त्वं यस्मात् कारणात् अनूचानमानी आत्मानं सामग्र्येण वेदवक्तारं मन्यमानः, अतएव स्तब्धः विद्याभिमानेन गर्वितः असि किं तम् आदेशं ब्रह्मनिर्देशं आदरात् दिश्यते उपदिश्यते देशिकैः सत्पात्रेभ्यः यः स आदेशः,अथवा आ ईषदेव दृश्यते अनिर्वचनीयतया न तु सामग्र्येण वर्ण्यते अनिर्वचनीयं नाम निःशेषेण वक्तुमनर्हत्वे सति यत्किंचित् वक्तुमर्हम् इत्यसकृदवोचाम श्रुतिरपि नेतिनेतिइति निगदन्ती ब्रह्मनिःशेषेण न वक्तुं प्रभवति। अथवा आ आकाशः सर्वेषां हृदाकाशः एवदेशः निवासदेशः यस्य स आदेशः भगवान्

"अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः"

इति श्रुतेः (कठ० १.२.१३)

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" (गी० १८.६१)

इति स्मृतेश्च। अथवा आदरात्दिशति अतिसृजति भक्तेभ्यः सकलाभीप्सितान् यः स आदेशः भगवान् श्रीरामः स हि समादरेण भक्तेभ्यः सकलानभीप्सितान् अतिसृजति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथोक्तं श्रीविभीषणशरणागतिप्रसंगे श्रीमानसे पंचमे—

जो संपति सिव रावनहिं दीन्ह दिये दसमाथ।
सोइ संपदा बिभीषणहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।

अथवा आदाय समन्तात् अत्ति (मा० ५.४९ख) खादति इत्यादः, सकलकलाकलापकलनः कालः तस्यापि आदस्य कालस्यापि ईशः इत्यादेशः। तथा च पठन्ति काठकाः—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपशेचनं क इत्था वेद यत्र सः।।

(कठ० १.२.२५)

मानसकारोऽप्यामनति—

जाके डर अतिकाल डेराई।
जो सुर असुर चराचर खाई।।

(मा० ५.२२.९)

तात राम नहिं नरभूपाला।
भुवनेश्वर कालहुँ कर काला।।

(मानस ५.३८.१)

भृकुटिभंग जो कालहिं खाई।
ताहि कि सोहइ ऐसि लराई।।

(मानस ६.६७.२)

एवं विधम् आदेशं सकलहृदयाकाशदेशं कालाधीशं साकेतपतिं श्रीरामं ब्रह्म अप्राक्षः छान्दसोऽयमाकारः, मन्मते तु अप्राक्षीः इत्येव पाठः ।।श्रीः।।

अथ तमादेशं पुत्रगीप्साविवर्धयीषया विशिनष्टि

येनाश्रुत ँ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति।
कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

येन आचार्यचरणेभ्य: सविधिविज्ञाय प्रतीतिप्रीतिपूर्वकपरानुरक्तिरूपभक्तिप्रवणचेतसि संनिधीयमाने नानुगृह्णता भगवता हेतुभूतेन समुपजृंभितभक्तरितम्भरेण विश्वम्भरेण रघुवरेण अश्रुतं न कदापि श्रवणपथं नीतम् अपि समस्त श्रुतिजातं श्रुतं भवति। स्वयमेव श्रवणपथमागच्छति। निजं कृतार्थीचिकीर्षमाणम् अमतं यत् कर्हिचिदपि नैव ध्यातं तन्मतं भवति स्वयमेव ध्यानविषयी भवति। अविज्ञातं यन्न कदापि ज्ञानविषयतामागतं तदविज्ञातं विशेषेण ज्ञायमानं भवति, श्रुतमतयोर्निदिध्यासितस्यापि अन्तर्भाव:। एवं येन निर्भरभक्ति भागीरथीवारिधारया विमलिते मानसमन्दिरे परमाराध्यतया भगवद्भक्तेन समनुक्षणं प्रेमप्रवणानन्यचेतसा क्रियमाणभव्यभावना समर्चनेन येन श्रवणमनननिदिध्यासन-विज्ञानमन्तरेणापि निखिलं वस्तु सकल विलक्षणमविनस्वरं सर्ववेदान्तप्रतिपाद्यं ब्रह्म श्रुतं मतं निदिध्यासितं विज्ञातं च भवति। तमादेशं भक्तवाञ्छाकल्पतरुं कृपालु चूडामणिं प्रणतपालकं लोलालकं कौसल्याबालकं ब्रह्म निजगुरून् कदाचित् समगीप्स: न वेति यदि अगीप्सीष्य:। तर्हि न स्तब्धोऽभविष्य:, यतस्तब्ध: अतो न गीब्प्सितवानसि। न खलु ब्रह्मणि विज्ञाते कोऽपि स्तम्भते, एवं पित्रानिर्भर्त्सित: संचूर्णीकृतवेदाध्ययन-संजाताखर्वगर्व: खर्बोऽर्भक: कीदृगादेश: स इति पृच्छति।

हे भगव: हे पूज्यचरण! स आदेश: ब्रह्मरूप: कथं भवति कीदृगस्ति इति शब्दोगीप्साप्रकरसूचक:।।श्री:।।

अथादेशं त्रिभिर्मंत्रैर्विवृणोति—

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातःस्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।।४।।

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातःस्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम्।।५।।

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातःस्याद्वाचारम्भणं विकारो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नामधेयं कृष्णाय समित्येव सत्यमेवꣳसोम्य स आदेशो भवतीति।।६।।

इदानीम् आदेशस्य त्रैकालिकसत्यतां त्रिभिर्मन्त्रैः दृढीकरोति, आदेशशब्दवाच्यः परमात्मा त्रिकालं सत्यः अत्रेदमवगन्तव्यं यत् श्रुतिसंमतोऽयमविकृतपरिणामवादः। जगत्परमात्मनः परिणामः किन्तु विकारो नहि सर्वथैव तस्मिन् विकाराभावात्।

यथा दीपकाद्दीपः प्रभवति किन्तु प्रभावको न विक्रियते, यथा वृक्षात्फलं प्रभवति किन्तु न विकारमापद्यते वृक्षः।

यथा च चिन्तामणेः समीप्सिता निर्गच्छन्ति तथैव कोटि कोटि ब्रह्मांडानि भगवतः प्रभवन्ति। किन्तु भगवान् निर्विकार एव ननु ब्रह्मणो निर्विकारत्वे कथं परिणामवादः? चित्, अचिच्चेति ब्रह्मणो द्वे विशेषणे, विशेषणविशेष्यमध्यवर्ती शरीरशरीरिभाव सम्बन्धः। एवं चिज्जीवः, अचिज्जगत् तद् विशिष्टं ब्रह्म, तस्मिन्नेव प्रकृतिनामके अचिति विशेषणे विकारः। ननु चिदंशे विशेषणे, न वा विशेष्ये ब्रह्मणि इत्येव विशिष्टाद्वैतवादः। अत एव "परिणामात्" ब्र० सू० १-४-२७ इति बादरायणवचनं संगच्छते। इयमेव सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा। यत्वेकत्ववादिनः जगतो विवर्तवादमाडम्बरयन्ति, तत्तु सर्वथैवाशास्त्रीयम्। तेषामेव लक्षणानुसारेण—

सतत्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदाहृतः।
अतत्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः।।

ते खलु रज्जुसर्पोदाहरणं उपस्थापयन्ति तत्र ते प्रष्टव्याः "सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत" (छान्दोग्य० ३.१४.१) इति श्रुत्या जगन्मयत्वं ब्रह्मणः प्रतिपादितम्। तर्हि ब्रह्मव्यतिरिक्तं यदि किमप्यवशिष्यते नहि ब्रह्मैव परमार्थतस्तत्वं तदा कुतमागतमतत्वं यद्यतत्वं नास्ति तर्ह्यतत्वतोऽन्यथाप्रथाकुतः मह्मन्यथाप्रथा नास्ति तर्हि कुतोयं विवर्तवादगर्तावर्तः। यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च इति श्रुतिस्तु केवल ब्रह्मणः अभिन्ननिमित्तोपादानकारणत्वप्रतिपादनपरा। न तु तया कश्चनवादः प्रतिपाद्यते जगत् विषयकः। अहो रवोपधत्वमेषां ये सामान्यामुपमामपि न विवेक्तुं प्रभवन्ति, न खलु चन्द्रैव मुखमिति वाक्येन मुखे सामग्र्येण चन्द्रत्वं समुपस्थाप्यते। प्रत्युत आंशिकतया तद्गताह्लादकत्वमेव तत्र समारोप्यते। तस्मात् न वा जगद्ब्रह्मणो विवर्तो प्रत्युत्परिणामः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स चाविकृतत्वविशिष्ट इति तथ्यं स्पष्टयितुं त्रिर्विकारो निषिध्यते इति विरमामि लोकाभिरामे श्रीरामे। अथ तर्हि—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

वाक्यपदीयब्रह्मकाण्ड १—

एवं श्रीलक्ष्मीरमणं नौमि गौरीरमणरूपिणम्।
स्फोटरूपं जगत्सर्वं यत यतद्विवर्तते।।

वैयाकरणभूषणसारमङ्गलाचरण १

इत्यादौ विवर्तते इति पदप्रयोग: किमभिप्रायक:? इति चेत् नैष: प्रयोग आर्ष: प्राचीनोवा भगवत्पादशङ्कराचार्यपदानुयायिनां पूर्वाग्रहग्रहीतभाव एष:। अथवा विशेषेण वर्तते विवर्तते इति योगव्याख्या करणीया। एवं विवर्तवादो न श्रौत:, कस्तर्हि परिणामवाद:, स चाचिज् विशेषण एव, विशिष्टे ब्रह्मणि समुपचर्यते। "दण्डे नष्टे दण्डी नष्ट" इतिवत् भगवानेव चराचररूपेण परिणमति, एष परिणामवाद: जीवभोग्याचित् पदार्थविषयक, न तु जीव: स तु भगवत्कलारूप: दासभूतो भगवत्पुत्र एव एष: नित्यो भगवानिव नित्यो नित्यानाम् चेतस् चेतनानाम् इति श्रुते:।

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः"

गीता १५-७

इति स्मृतेश्च। नन्वखण्डस्य परमात्मन: अंशत्वकल्पने सखण्डतापत्तिरिति चेन्न दीपात् प्रवर्तित दीपवत्, अंशत्वकल्पनेऽपि तदखण्डत्वेनाक्षति। यतु अंशशब्द: अंशसदृशे लाक्षणिक इति केचन आहु: तन्न सनातनपदो पादानेन भगवत इव तस्य नित्यत्वस्वीकारात्। अत्र अंशत्व अंशित्वव्यवहार: अणुत्व व्यापकत्व अभिप्रायक:। एवं परमात्मा व्यापको भवन् चेतन जीवात्मा च अणु: संश्चेतन: तस्य जीवस्य भोग्य पदार्थ सर्व अभिकृतस्य भगवत परिणाम एव। अत एव श्रीभागवते—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च।
ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरित्समुद्राश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्चभूतं प्रणमेदनन्यः।।

भा० पू० ११-२-४१

इति नारदीय वचनं सङ्गच्छते। इममेव परिणामवादं विस्पष्टयितुं यथाक्रमं मृत्पिण्ड-लोहमणिनखनिकृन्तनदृष्टान्तान्याह।हे सोम्य श्वेतकेतो! यथा येन प्रकारेण एकेन मृत्पिण्डेन लोष्ठेन तत्परिणामभूतं सर्वं मृण्मयं मृद् विकारः अत्र विकारार्थे मयट्। सर्वं विज्ञातं स्यात् अत्र लोऽर्थे लिङ् ज्ञानविषयीभूतं भवतीति भावः। विकारः वाचारम्भणं वागालम्भनं, वाचः आरम्भणं वाचारम्भणम्। ननु कथमत्र न कुत्वं "अयस्मयादीनि छन्दसि" इत्यनेन अयष्मयादित्वेन तन्निषेधात्। अथ कथं न जस्त्वम् "उभय संज्ञानीति वक्तव्यम्" इति वार्तिके प्रयुक्त भत्वेन पदत्वबाधात्। नामधेयमत्र "नामरूपभागेभ्यो ध्येयः" इति वार्तिकेन स्वार्थे ध्येय प्रत्ययः, एवं विकारः वाचारम्भणं नामैव इति भावः। अथवा भागुरिमतेन हलन्तानामाप्त्वे वाचायाम् आरम्भणं वाचारम्भणं विकारस्तु केवलं वाचमालम्भयन् नाममात्र किं सत्यं मृत्तिका इत्येव मृण्मयघटादिकारणभूता मृत्तिका प्रशस्तामृत "प्रशस्तायां त्यकन्" इति वार्तिकेन त्यकन् प्रत्ययः। यथा घटादिकं नाममात्रं मृद्विकारः सत्यं मृदेव तथैव परमात्मैव तन्मय जगति नाममात्रो विकारः सत्यं तु परमात्म एव कारणकार्य एवाभिन्नत्वात्। इत्यनेन विवर्तवादं निरस्य विकारवादं चानिराकृत्य परिणामवादं व्यवस्थापयांबभूव। श्रुतिः इममेव सिद्धान्तद्रढयितुम् अपरदृष्टान्तमाह हे सोम्य! लोहं धातवः तेषां मणिलोहमणिकनकं तेन लोहमणिना विज्ञातेन हेतुभूतेन सर्वं लोहमयं सुवर्णरचितं विज्ञातुं भवति। इदं कटकम् इदम् कुण्डलम् इति विकारः वाचारम्भणं वाग्व्यवहाररूपं नामध्येयं होमं सुवर्णमित्येव सत्यम्। अथ तृतीयं दृष्टान्तं यथा एकेन नखनिकृन्तनेन नखच्छेदनयन्त्रेण सर्वं कार्ष्णायसं लोहनिर्मितपात्रादिकं विज्ञातुं स्यात्। इदं परशु इदं कुठारम् इत्यादिविकारस्तु वाक्विलासभूतं नाममात्रं, वस्तुतः कृष्णायसं लोहमित्येव सत्यम्। एवम् आदेशः भवति तेन परमात्म विज्ञातेन परिणामिता तत्कार्यभूतं नखनिकृन्तनेति दृष्टान्त त्रपं त्रिलोकाधिष्ठात् परमात्म सूचकं मृण्मयम् इति मर्त्यसम्बन्धिपदार्थलोहं देवयोनिः कृष्णायसं इति तिर्यक्योनिसंकेतकम्। एवं सर्वकारणभूतपरमात्मनि कृतया भक्त्या जीवश्चराचरमनायासेन जानाति इति हार्दं श्रौतम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः।

गीता १८-५५

इति गीता वचनं सङ्गच्छते ।।श्रीः।।

एवंभूतमादेशमाकर्ण्य वर्धमानजिज्ञासा श्वेतकेतुः स्वगुरोःपितरं ब्रह्मवित्तरं मन्यमान तमेव समुपसन्नप्रश्नमादेशमुपक्रमते।

न वै नूनं भगवन्तस्त
एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन्

कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवाꣳस्त्वेव मे

तद्ब्रवीत्विति तथा सोम्येति होवाच।।७।।

श्वेतकेतुः सरलतया साश्चर्यं कथयति। भगवन्! नूनम् एव ते भगवन्तः पूज्यचरणाः गुरवः एतद् आदेशरहस्यं न अवेदिषु न ज्ञातवन्तः कथं इत्यद् आह "हेतुहेतुमद्भावे क्रियातिपत्तिमूलक लृङ्लकारप्रयोगाभ्यां यदि ते अवेदिष्यन् ज्ञातवन्तोऽभविष्यन् तर्हि मे मह्यं कथं न अवक्ष्यन् न अवदिष्यन् यतो नावोचन् अतो न विदन्ति। ते तु शब्द एवार्थ भगवान् भवान् एव पूज्य पितृचरणः मेतमादेशं ब्रवीतु व्याख्यातु। इति श्वेतकेतु सरलतया पारितोषितस्वान्तः आरुणिः तथा तथास्तु इति आदेशमुपदेष्टुं उवाच प्रतिशुश्राव ।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपानिषदि षष्ठाध्याये प्रथमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

द्वितीयः खण्डः

अथ पूर्वस्मिन् खण्डे त्रिभिर्मन्त्रैश्त्रिभिश्च दृष्टान्तयुग्मैर्यत्सत्यं प्रतिपादितं मृत्तिकेत्येव सत्यं, लोहमित्येवसत्यं, कृष्णायसमित्येव सत्यमिति। तत्र किं नाम सत्यम्? इति जिज्ञासायामुच्यते सदेव सत्यं स्वार्थे यत्प्रत्ययः भत्वात् पदत्वमूलकजस्त्वाभावः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथवा स ते जीवाय हितं सत्यम् एवं सत्यघटकं वस्तुसत् किं सार्वकालिकमुताहोसाम्प्रतिकमित्यत आह सदित्यादि—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्
तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं
तस्मादसतः सज्जायत।।१।।

हे सोम्य! अग्रे संसारसृष्टे प्राक् इदं सत् एव आसीत् इदं नाम रूपात्मकं जगत् कारणरूपं सत् अणु जीवात्मसंज्ञमासीत् अत्र सच्छब्दे तन्त्रः, तन्त्रत्वं नाम सकृदुच्चरितत्वे सति बह्वर्थबोधजनकतावच्छेदकत्वम्। प्रथमश्च सप्तम्यन्तः द्वितीयश्च प्रथमान्तरूपोऽर्थः। अथवा विशेषणीभूते नेदमा प्रथमान्तः सच्छब्द आक्षिप्यते, एवं श्रुत्युपात्तसच्छब्दः लुप्तसप्तमीकः, इत्थं सृष्टेः अग्रेः इदं नामरूपात्मकं सदेव सन्मात्रम् एकीभूतं सति परमात्मनि स्थितमासीत्। किमनेकं भवत् सदासीत् उताहो एकम्? इत्यत आह एकमेवाद्वितीयम् एकं सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं एव एवकारो अन्ययोगं व्यवच्छिनत्ति। किम् एतस्य पुत्रस्यापि उपमा नेत्याह? अद्वितीयं नास्ति द्वितीयः समानसत्ताकः अपरः यस्य सोऽद्वितीयस्तम्, अथवा यस्मिन् परमात्मनि सत्तिष्ठति स एक एव सतोऽप्यन्यः एवं सज्जीवः असत्मााया प्रकृतिः ताभ्यां परः परमात्मा अतएव श्रुतिः "अनादिमत्परं ब्रह्म न सतन्नासदुच्यते" (श्वेताश्वतर उ० ५.१३) अतएव स्मृतिरपि "त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्" (गीता० ११.३७) तत्पदेन सदसतीपरामृश्येते ताभ्यां परिभूतं ब्रह्म इत्यवधेयम्। एवं सृष्टेः अग्रे इदं सत् एव आसीत् प्रलयेऽपि नैतद्विनाशोना भूदिति तात्पर्यं इदं प्राचीनानुरोधेन, वस्तुतस्तु सृष्टेः अग्रे इदं चिदचिदभ्यां विशिष्टं, यद् वा चिदचिदात्मकं सत् अव्याकृतनामरूपतया सत् परमात्मात्मकमासीत् अत्र शरीरशरीरिभावतया एकवचनम्। एवकारः असद् व्यावृत्यर्थः, सृष्टेः प्राक् इदं जगत् व्याकृत नामरूपानर्हतया परमात्मनिलीनं सद्रात्मकमासीत्। तच्च परमात्मतत्त्वं एकं एव नानेकम्। अद्वितीयं तत् समानधर्मान्यवर्जितं, इत्यनेन विशिष्टाद्वैतवादः सूत्रितः। नन्वासीदिति भूतकालावच्छिन्नेदमभिन्नकर्तृक-सत्तानुकूलव्यापारवाच्यक्रियोपादनेनैव समीप्सितार्थसिद्धौ किमर्थं सदुपादानमिति चेत् सत्तायाः द्विरुपादानेन जीवस्य नित्यसत्तासूचिता। एवं प्रलयेऽपि जीवस्य न नाश इति फलितम्। अतएव "सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यपन्ति च" इतिभगवद्वाक्यं संगच्छते। एवं प्रलयेऽपि (गीता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१४.२) इदं जीवजातं सूक्ष्मीभूतपरमात्मनि स्थितमासीत्। नान्यः कोऽपि परमात्मनि इदमेवैकमद्वितीयम्, अकारः वासुदेवः एव द्वितीयः सहायकः यस्य तथाभूतं तत् एवं नित्यसत्ताकं वासुदेवाश्रितमेव। तत् हि निश्चयेन एके अद्वैतवादिनः वैनासिकाः एके अस्मद्भिन्नाः आहु यत् अग्रे इदं नामरूपात्मकं जगत् असत् एव आसीत् अर्थात् सर्वाभावरूपमभवत्। यद्यपि श्रुतिः भूतार्थवादिनी असत्पक्षं कथमुपस्थापयति? इति चेन्न परपक्षमनुवदति न तु सिद्धान्तयति सिद्धान्ते तु सदेवासीदित्येव सिद्धान्तः। श्रुतेः प्रत्यक्षरं प्रमाणत्वात् कथमिदमपसिद्धान्तमिति चेत् सत्यम् अकारः वासुदेवः तत् सीदति इति असत् अकारं वासुदेवं सीदति प्राप्य निषीदति। इति अकारेण वासुदेवेन साद्यते समाप्यते कल्पितसंबन्धः यस्य तत् असत्, एवम् असतः परमात्मनः सकाशात् सर्वाभावरूपाद्वा, सत् जीवात्मकं जायत अजायत। कीदृशम्? तत् एकमेवाद्वितीयम् अत्रैकपदेन वैनासिकैः जैनैः सः अद्वैतवादिनोऽपि तेषां नये सृष्टेः पूर्वमिदं जगत् असत् अस्तित्वशून्यमासीत्, एवमसतः अतत्त्वभूतात् सत् सत्तामात्रं जायते। ।।श्रीः।।

इमं पक्षं खण्डयति—

कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳस्यादिति
होवाच कथमसतः सज्जायेतेति।
सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।।२।।

हे सोम्य! यदुक्तं तस्मात् असतः सज्जायत एवम् अनेन प्रकारेण कुतः स्यात् कथं संभवेत् यदि कारणे कार्यं तिष्ठति तदैवाविर्भवति, नहि बालुकाभ्यो जायमानं कोऽपि शृणोतीक्षुरसं, न वा पाटलपुष्पेभ्यः पङ्कजपरागाः प्रादुर्भवन्ति। यत् असतः सर्वाभावरूपात् सज्जायेत सत् एवपरमात्मनः सज्जीवः जायते इति जीवपरमात्मनोभिदासिद्धैव। सोम्य! अग्रे सत् आसीत् किं तत् एकमेवाद्वितीयं स्वजातीयविजातीय स्वगतभेदशून्यत्वे सति सकलोपमावर्जितम् इत्यनेन सत्कार्यवादः अविकृतपरिणामवादश्चापि सूचितः। विवर्तवादे न किमपिप्रमाणमुपलभामहे, "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादिशास्त्रवचनानुरोधेन सर्वेषामपि मन्त्राणां परिणामवादविषयत्वात् इत्यनेन विवर्तवादाडम्बरमहाप्रासादोभूमिसात्कृतः। ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ सृष्टि प्रक्रियां वर्णयति।

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यायो जायन्ते।।३।।

तत् सत् परमात्मभूतं वस्तु ऐक्षत अपश्यत् अव्याहितेन ज्ञानेन पूर्वकल्पसर्गं समन्वभवत् इति भाव:। "सूर्याचन्द्रम सौधाता यथापूर्वमकल्पयत्" इति श्रुते:। अथ सर्गं निरीक्ष्य समकल्पयत् सङ्कल्पाकारमाह साम्प्रतमामेकं तस्मात् प्रत्येक जीवस्य तद् तद् भोग्यपदार्थानां च साक्षात् चिकिर्षया प्रतिशरीरमात्मनं परिकल्प्य बहुस्यां बहु भवेयम्। किं तद् बहुत्वम् आरोपितम् उताहो पारमार्थिकं नारोपितमित्याह प्रजायेय प्रकर्षेण जन्मगृह्णियाम् प्राकर्षं च जीवानां शुभाशुभानां साक्षाद् दिदृक्षया प्रतिशरीरं प्रत्येक जीवात्मना सह कर्मबन्धननिरूपेक्षत्वे सति जीवविकारनिर्लेपत्वे सति च स्वकमन्तर्यामिरूपं विधाय प्रतिहृदयदेशं मन्दिरिकृत्य साक्षीभूय निजस्यावतरणं प्रजायेय इति कथनेन जीवानां प्रतिशरीरं प्रतिभोग्यपदार्थं च भगवतोऽन्तर्याम्यवतार:। सूच्यते। अथ जन्मने निजं शरीरं असृजत् निजं जीवस्य च द्वयो: कथं? इति चेत् भगवतो वैलक्षण्यमेतत् यत् भगवदीयं शरीरं सदपि जीवा: स्वकमेव मन्यमाना: तत्र ममत्वं कुर्वते। वस्तुतस्तु निजमन्दिररूपेण भगवता पदार्थानां रचनां व्यधायि निजावच्छेदकरूपेण वा तत्तत् पदार्थावच्छिन्नं एवं "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशद्" इति श्रुत्यन्तरात्। असृजत् पूर्वमित्यत् आह तत्तेज: असृजत् पुनस्तेजोवच्छिन्नं चैतन्यं सत् पूर्ववद् आत्मनो बहु चिकीर्षया प्राकर्षेण जिजनिषया तद् अप: असृजत् जलानि व्यरीरचत् तदेव निदर्शयति, तस्मात् जलानां तेजस्सम्भवात् एव पुरुष: प्राणी यत्र क्वापि यस्मिन् कस्मिन्नपि स्थाने काले वा सोचति सोकजवारि विमुञ्चति नेत्राभ्यां स्वेदते च प्रस्वेदविन्दून् बिभर्ति तत्र अप: जलानि यज्जायन्ते नेत्रयो: देहे च दृश्यन्ते तत्तेजस: एव जेजसस्सकासादेव अधि अधिकृत्य जायन्ते।। श्री:।।

सत् सदेव चेतयते चकास्ति च इदमेवान्तर्यामिप्रकरणे वृहदारण्यके श्रुतिराह। एवं अवच्छिन्नं चैतन्यं सत् किमसृजत् इत्यत् आह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ता आप ऐक्षन्तः बह्व्यःस्याम
प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त।
तस्माद्यत्र क्वच वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं
भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते।।४।।

एवमेव ता आपः अधिष्ठानाभिप्रायेण बहुवचनम्। सदाधिष्ठिताः ऐक्षन्त पूर्वसर्गज्ञानपूर्वकं सङ्कल्पमकुर्वते इति भावः। किम्? अत आह बह्व्यः बहु शरीरावच्छिन्ना स्याम भवेम प्रजायेमहि प्रतिशरीरमात्मनः एकैकम् रूपं परिकल्पयेमहि इत्थं सञ्चिन्त्य अन्नमसृजन्त अदनीयं पदार्थं तदाधारशक्तिं पृथिवीं च व्यरीरचन्। तदेव निदर्शयति यतो हि जलादन्नं तस्माद् यत्र कुत्राऽपि वर्षति तद्वर्षणादेव भूयिष्ठमन्नं जायते अधिकमन्नमुत्पद्यते, अत एव अद्भ्यः जलेभ्य एव अन्नाद्यं भोग्यपदार्थः जायते प्रादुर्भवति। वस्तुतस्तु अबवच्छिन्नचैतन्यं सत्तत्वमेव अन्नाद्यमरचयत् इति हार्दम्, इत्थं त्रिः इक्षण क्रियाप्रयोगात् शाङ्ख्य स्वीकृतायाः प्रधाननाम्नः प्रकृते जगत् कारणत्वं श्रुतिरेव निराचकार। न खलु जडभूतायां प्रकृतौ ईक्षणं सङ्गच्छते। ननु तैत्तरीये "तस्माद् वा एतस्माद्वा आत्मन् आकाशः सम्भूत आकाशाद् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी" इत्यादि श्रुतौ तेजसः प्राक् आकशवायवोः सर्गः प्रादर्शि। अत्र प्रथमं तेजस्सर्जनमुक्त्वा वदतो व्याघातं विधाय कथं विरूद्धम् उच्यते नैतद्दूषणं यतो हि नैवात्र सृष्टिक्रमो विवक्षितः अथवा तेजशब्दः आकाशवायूपलक्षणं यद्वा तेजः असृजत् इत्यत्र सृजधातु गुणाधानं रूपः तथा च पूर्वं शब्दगुणकमाकाशं रचयित्वा तद् गुणं च वायोः निवेश्य तं विरच्य आकाशवायुगुणो शब्दस्पर्शो तेजसि निधाय रूपं गुणाधिकं तद् विधत्ते इति भावः यद्वा अत्र त्रिवृत्करणसिद्धान्त एव निरूप्यते पञ्चीकरणसिद्धान्तमूलं तु मृग्यम्। ।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये द्वितीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

"श्री राघवःशन्तनोतु"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीयः खण्डः

अथ नभोवायूपलक्षकाणां सत्सृष्टानां तेजोऽवन्नानां सर्गवर्णनानन्तरं पारिशेष्येण पश्चाद् भावि सृष्टिक्रमं निरूपयति।

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि
भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति।।१।।

तेषाम् एभिसृष्टानाम् एषां पूर्वदृश्यमानानां भूनानां त्रीणि एव नैव चत्वारि न वा पञ्च किं तर्हि? त्रीत्वसंख्या बोध्यानि बीजानि कारणानि भवन्ति कानि तानि? इत्यद् आह अण्डाज्जायन्ते इति अण्डजाः त एव प्रयोजने भूता यस्य तदाण्डजं यत्तु अण्डमेव प्रयोजनं कथं न उक्तमं? इति पूर्वपक्षं समुत्थाप्य निरर्थकमुत्तरजालं प्रस्तुतं तदनर्गलं ग्रन्थविस्तारचिकीर्षया बिडम्बितम्। यत्तु अण्डजमेव अण्डजमिति स्वार्थप्रत्ययान्तं साधितं तदपि शाब्दिकसिद्धान्तानाभिज्ञतयावान्तमं। जीवजं जीवा जरायवः तेभ्यः जातं जीवजम् उद्‌भिद्या जातमिति उद्भिज्यंः तम् उद्भद्भ्यः जातं वा अत्र स्वेदजानामप्यन्तरभावःइमानि त्रीण्येव बीजानि भवन्ति ।।श्रीः।।

अथ जगतोनामरूपाणां व्याकरणमाह।

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन
जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति।।२।।

सा इयं सन्नाम्नि परमात्मसंज्ञा देवता स्त्रिलीङ्गनिर्देशस्तु भगवतोवात्सल्योत्कर्षोचित-मातृत्वप्रदर्शनाय मातर एव हि वात्सल्यं समधिम्। विजृम्भते ऐक्षत दृष्ट्वा व्यचारयत् हन्त इत्याश्चर्ये प्रसन्नतायां च अहमेव तिस्र देवता तेजोजलान्नरूपाः अहं तिस्र देवता इत्यस्य मदभिन्न सदभिधानचैतन्यावच्छिन्ना इति भावः। अथ अहम् इमाः तिस्र देवताः तेजोजलपृथ्वीनाम्नी कर्मभूताः द्वितीयान्तव्यपदेश्याः अनेन मया सह नित्यं वर्तमानेन मम नित्येन सख्या जीवेन प्राणधारणसमर्थेन आत्मना अणुना चैतन्येन अत्र "वृद्धो यूना तत्त्वक्षणश्चेदेव विशेषः" पाणिनी अष्टाध्यायी ९-२-६६ इति सूत्र इव सह शब्दप्रयोगमन्तरेणाऽपि साहर्थकद्योतिका तृतीया। जीवेन आत्मना इति व्यस्त समानाधिकरण-पदद्वयप्रयोगस्तु स्पष्टप्रतिपत्तये जीवात्मना इह समासे तु सन्देहः स्यात्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवस्य आत्मा जीवात्मा जीवधारको वा आत्मा जीवात्मा जीवाय वा आत्मा जीवात्मा इत्यादेः जीवेनात्मनः कथने तु जीवसंज्ञेन आत्मना इति फलितार्थः। अत्र अहमिति पदोपादानात् सति परमात्मन्येव प्रवेशक्रियाकर्तृत्वं प्रवेशानुकूलव्यापाराश्रयत्वं वा सहार्थकद्योतकस्तु अप्रधान एव "सह युक्तेऽप्रधाने" इति पाणिनी निर्देशात्। एवम् अहम् परमात्मभूतासदाख्यादेवता अनेन निजसुहृदा जीवात्मना सह इमाः तेजप्रभृतिः तिस्र देवता त्रिसंख्याका दैवीशक्तीः अनुप्रविश्य आशामानुकूल्यरक्षणपूर्वकं प्रविष्टा भूत्वा जगतो नामरूपाणि रामदासादि नामानि मानवादिरूपाणि व्याकरवाणि विस्पष्टं प्रस्तवानि इति अनेन व्याख्यानेन प्रच्छन्न बौद्धकल्पितः जीवप्रतिबिम्बवादः पावकेन तूलमिव भस्मसात्कृतः। न खलु परमात्मा कदाप्येकाकी रमते सः एकाकी नारमत" इति श्रुतेः। अत एव विनयपत्रिकायाम् गोस्वामी तुलसीदासाजगौ

तैं निज कर्म जाल जहां घेरो श्रीहरिसङ्ग तज्यो तहि तेरो।

विनय पत्रिका १३६ ।।श्रीः।।

अथ कथं व्याकरवाणि इत्यत् आह—

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति
सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता
अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य
नामरूपे व्याकरोत्।।३।।

तासां तेजो जलान्नवरूणाम् अन्यतमाम् एकैकां त्रिवृतं प्रत्येकस्यार्धांशेन इतरयोश्च चतुर्थेन चतुथेनांशेन युक्तां कृत्वा सृष्टिरचयेयम्।

नैकेनतेजसा न केवलाभिरद्भिः न केवलेनान्नेन तदुपलाक्षितपार्थिवांशेन वा स्त्रष्टुं शक्यते। सृष्टिः इति इत्थं विभाव्य ताः एकैकां विवृतं विधाय जगते नामरूपे व्याकरोत् समुद्भावयत्। कथं व्याकरोत्? इत्यत आह संकल्पोत्थं सा श्रुति चर्चिता इयं त्रिकाल सत्या सती देवता तिस्रः निजांशभूताः देवताः अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य अन्तर्यामिरूपा इमे नामरूपे व्याकरोत् अत्रेदमवगन्तव्यं यत् "तत्तेजोऽसृजत् तदपोऽसृजत् ता आपोन्नमसृजन्त" इति श्रुतिनिर्देशात् तेजोजलान्नानां तु सर्जनमवगम्यते किन्तु नैतस्य जीवस्यात्मनः कुत्रापि एतत् सर्जनस्य श्रुतिनिर्दिष्टाभावात्। ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ त्रिवृतं प्रपञ्चयति—

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नुखलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति।।४।।

अथ सैव विलक्षणसृष्टिनिर्माणनिपुणा परमात्मभूता देवता तासां पूर्वोक्तानां तेजः प्रवृत्तीनां देवतानां मध्ये एकैकां एकामेकां त्रिवृतं तत्त्वत्रयोपेतां अकरोत्। हे सोम्य! यथा इमाः तिस्र देवता एकैका त्रिवृत त्रीणि वृणुते इति त्रिवृत् भवति तत् तत्प्रकारं मे मम सकाशात् विजानीहि विशेषेण जानी हि।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये तृतीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यम् सम्पूर्णम्।

''श्री राघवःशन्तनोतु''

चतुर्थः खण्डः

एवं उदाहरणद्वारेण जगतीनामरूपयोरमिथ्यात्वं साधयति।

यदग्ने रोहितः रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्।।१।।

यथा अग्निः त्रीणि रूपाणि तानिमिलित्वा अग्निरिति कथ्यते पृथकत्वे सति तेजोजलान्नानामेव रूपाणि एतस्य रोहितं रूपं तत्तेजसः यत्शुक्लं श्वेतवर्णं तत् अपां यत् कृष्णं श्यामं वर्णं तत् अन्नस्य, एवं त्रयाणां अंशभूतेषु सत्सु त्रिषु रूपेषु अग्नौ किमवशिष्टम्? अत आह अग्नित्वमेव तत्वमेव आपागात् अपगतम् एवम् अग्निः इति विकारस्तु वाचारम्भणं नामधेयं वाक् विषयमात्रं नामः अग्नेः त्रीणि रूपाणि लोहितशुक्लकृष्णानि तेजोजलान्नानामेव इति एव एतावदेव सत्यम्। एवं सति परमात्मनि ज्ञाते तत्कार्यं जातं जगत् स्वयमेव विज्ञातं स्यात्।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूयः त्रिभिर्मन्त्रैरनयादित्या आदित्यचन्द्रविद्युत्सु त्रयाणां रूपाणां तेजोजलान्नानां सम्बन्धिनां निश्चायनं कृत्वा आदित्यचन्द्रविद्युन्नामान्यसत्यत्वेन प्रमाणयति।

यदादित्यस्य रोहितछ्ररूपं तेजसस्तद्रूपं
यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं
तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणं
विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्।।२।।

यच्चन्द्रमसो रोहितछ्ररूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं
तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं
वाचारम्भणं विकारो नामधेयं
त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्।।३।।

यद् विद्युतो रोहितः रूपं तेजसस्तद्रूपं
यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो
विद्युत्वं वाचारम्भणं विकारो
नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्।।४।।

आदित्यात् सूर्यात् आदित्यत्वं सूर्यगुणः अपागात् निर्गतः अर्थात् त्रयाणां व्यतिरेकेण सूर्यस्य चन्द्रस्य विद्युतो वा न किमपि पृथगस्तित्वम्। आदित्यः चन्द्रः विद्युत् इति विकारस्तु वाचारम्भणं वाक्विषयं नामधेयं वस्तुतः तेजो जलान्नानि व्यतिरिच्य न किमपि सत्यतया समवशिष्यते इति भावः। तथा च "आदित्यचन्दविद्युत्सु तेजोरूपं हि रोहितम्। शुक्लं रूपमपामाहु कृष्णमन्नस्य वै तनुः ।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वांःस आहुः
पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य
कश्चनाश्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यतीति
ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतत् तत् इदं श्रुतिप्रसिद्धं त्रिवृद्रहस्यं

ह निश्चयेन स्म पूर्वमेव विद्वांसः ज्ञातवन्तः पूर्वे अस्मत् पूर्ववर्तिनः महाश्रोत्रिया "श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते" इति सूत्रेण छन्दोऽधीते इत्यस्य श्रोतृ श्रोत्रिय इति निपातनम् "श्रोत्रियो वेदपारगः" इति स्मृतिः "श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं" मु॰ उ॰ १-२-११ इति च श्रुत्यन्तरम्। महान्तश्च ते श्रोत्रियाश्च इति महाश्रोत्रियाः महत्यशालां येषां पञ्चयज्ञ वलिवैश्वदेवैः पूजनीयगृहाः गृहमेधिन आहुः यत् नः अस्मत् सम्बन्धि किमपि नः अस्माकं कुलेषु वाक्किमपि अश्रुतं श्रुतव्यतिरिक्तं अमतं मनन विषयीकृतातिरिक्तम् अविज्ञातं विज्ञानविषये बहिर्भूतं इति कश्चन अस्मत् कुटुम्बस्य कोऽपि कमपि नोदाहरिष्यति नोदाहरणरूपेण प्रस्तोष्यति। यतो हि एभ्यः त्रिवृत्कृतेभ्यः तेजोजलान्नेभ्यः ते सर्वं विदाञ्चक्रुः ज्ञातवन्तः। अर्थात् सत्यत्वेन सति विज्ञाते तत् परिणाभिभूततेजोऽवन्नानि तत्परिणामभूतसकलं प्रपञ्चजातानि च स्वयमेव विज्ञातानि भवन्ति। इदमेव सत परमात्मनः ज्ञानं ज्ञानम् तत्परिणामप्रपंचज्ञानं च विज्ञानम्। इदमेव हृदि निधाय भगवान् गीतायां द्विः सस्मार—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्षाम्यशेषत गीता ७-२

"ज्ञानं विज्ञान सहितं" गीता २-१ ।।श्रीः।।

ते किं विदाञ्चक्रुः इति प्रपञ्चायति—

यदु रोहितभिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति
तद्विदाञ्चक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपां
रूपमिति तद्विदक्रुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य
रूपमिति तद् विदांचक्रुः।।६।।

एवम् अग्नयादित्यचन्द्रविद्युतष्विवसर्वत्र त्रिवृद्रहस्यज्ञाः अस्मत् पूर्वपुरुषाः यदपि रोहितं रक्तमिवासीत्। तत्तेजसः तेजसम्बन्धिरूपं नैवान्यदीयं यदपि शुक्लमिव ददृशुः तत् अपां जलसम्बन्धिरूपं, यदपि कृष्णकालो वर्णरूपं तदन्नस्यैव न त्वन्यदीयम् इत्येव विदाञ्चक्रुः एभ्योतिरिक्तामन्यां सत्तां नाङ्गिचक्क्रुरिति तात्पर्यम्। यथा किमपि रोहितं वस्तुदृष्टम् तदा अर्धं तेजो मयं चतुर्थांशं चतुर्थांशं जलमयमन्नमयं च तेजः प्राचुर्येण तयोस्तिरोहितत्वात् रोहितत्वस्य उत्कटत्वम् एवमन्यत्राप्युह्यम्।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विज्ञातमपि संहरति—

यद्विज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानाꣳसमास इति तद्विदाञ्चक्रुर्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति।।७।।

एवमेव त्रयाणां रूपनिर्धारणेन यदपि नामरूपा सत्यत्वेन विज्ञातमेव अभूत्। तत् एतासां देवतानां तेजोजलान्नरूपाणां समासः त्रिवृत्करणं इति ते विदाञ्चक्रुः हे सोम्य! श्वेतकेतो इमाः तिस्रदेवता तेजः आपः अन्नम् इति पुरुषं प्राप्य जीवसखं परमात्मानामुपेत्य तल्लब्धचेतनाः यथा एकैका एकैक सह त्रिवृत्त्रिवृज्जायते तद् रहस्यं मे मम सन्निधौ विजानीहि विशेषेण जानीहि इति इत्थमुपदेष्टुं प्रतिजानीत आरुणिः ।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषादे षष्ठाध्याये चतुर्थखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

''श्री राघवः शन्तनोतु''

पञ्चमः खण्डः

अथानुनादीनां त्रिवृत्करणं परिणामं प्रपञ्चयति—

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माꣳसं योऽणिष्ठस्तन्मनः।।१।।

एवम् अशितं भुक्तमन्नं त्रेधा विधीयते ''संख्यायाविधार्थेधा'' इति सूत्रेण त्रिशब्दात् विद्यार्थे धा प्रत्ययः। तस्य यः स्थविष्ठ धातु अतिशयेन स्थूलोऽशः तदेव पुरीषं मलमेहनरूपेण परिणभ्यते। इह मध्यम अंश स एव रस रक्तरूपः सन् मांसं भवति, यश्च अणिष्ठः अतिशयेनाणुः स एव मननावच्छिन्न चैतन्यमयं मनः भवति। इत्यनेन श्रुत्यंशेन मनसः सादित्वं सूचयता तस्य परैस्विकृतनित्यत्वं निराकरोति अतएव श्रीभागवते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः। भागवत १०-२२-१ इति भगवान् वादरायणिरवादीत् ।।श्रीः।।

अथापां विकारं वर्णयति—

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः
स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो
मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः।।२।।

एवमेव पीताः आपः जलानि त्रेधा विधीयन्ते, तासाम् अतिशयेन स्थूलः मूत्रं मध्यम् लोहितं रुधिरम्, अणिष्ठः अतिशयेनाणुः अपाम् अंश प्राणः प्राणविग्रहः सन् परिणमति।।श्रीः।।

अथ तेजः परिणामं वर्णयति—

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो
धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जायोऽणिष्ठः
सा वाक्।।३।।

एवं घृततैलादिरूपेण अशितं भुक्तं तेजः त्रेधा विधीयते तस्य स्थूलतमो भागः अस्थि मध्यमः मज्जा अणुतमश्च वाक्रूपेण परिणमति सारांशश्चायम्—

तेजोऽवन्नास्थविष्ठानि मलमूत्रास्थिसंज्ञया।
मांशलोहितः मज्जाश्च मध्यमानि भवन्त्युत।।

अणिष्ठानि च वै तेषां मनः प्राण गिरस्मृता।
परिणाम यथा शास्त्रं त्रिवृत्करणभोगतः।।

अणिष्ठ परिणामानि भूयो निर्दिशति—

अन्नमयः हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी
वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति
तथा सोम्येति होवाच।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"विकारार्थे च मयटि", षष्ठलन्तात् अपां मय इति स्यात् अत्र बाहुलकात् अपामित्यस्य आपो इत्यादेशः एवं प्राणः जलस्याणुत्वम् परिणामः तेजोमयि तेजस एव इति तेजोमयि तेजः परिणामभूता वा वाणी। अथ श्वेतकेतुः भूय जिज्ञासते भगवान् पूजनीयचरणः मां पुनः विज्ञापयतु एतद्रहस्यं संशतुः तथा इति कथयित्वा पुनरुपदेष्टुं आरुणिः उवाच प्रतिजग्यौ।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये पञ्चमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

"श्री राघवः शन्तनोतु"

षष्ठः खण्डः

अथ अन्नजलतेजसाम् अणिष्ठांशाः कथं मनः प्राणः वाक्संज्ञा लभन्ते इति दधिसर्पिदृष्टान्तेन श्वेतकेतुं आरुणिर्बोधयति।

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा
स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति।।१।।

हे सोम्य! दध्नः मथ्यमानस्य मन्थदण्डेन विलोड्यमानस्य अणिमा अतिशयेन अणुरंशः यः ऊर्ध्वः ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वे वा अत्र ऊर्ध्वमित्यव्ययस्य ऊर्ध्व इति सप्तम्यन्तस्य वा अमः "ङि विभक्तेश्च सोपाम् स्वलुप" इत्यनेन स्वादेशे पुल्लिङ्गविपर्ययेण सोरुत्वे विसर्गे ऊर्ध्वः उपरिष्टात् इत्यर्थः। यत् समुदीषति समुद्गच्छति समुदेति इति प्रयोक्तव्ये अशुकागमः इट् च छान्दसौ तदेव सर्पिः भवति नवनीतं सत् सर्पिष्ट्वेन परिणमति।।श्रीः।।

एवमेवान्नाब् तेजसाम् अणिमांशाः यथा क्रमं मनः प्राण वाक्परिणामं गच्छन्ति। इति त्रिभिर्मन्त्रैदार्ष्टान्तयति।

एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा
स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति।।२।।

अपां सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः
समुदीषति स प्राणो भवति।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेजसः सोम्याश्यमानस्य योऽणिमा
स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति।।४।।

एवमेव अनेनैव प्रकारेण अस्य मनस्य भूज्यमानस्य अन्नस्य अणिमासूक्ष्मांश अन्नं भवति। एवमेव पीयमानानां पानविषयीक्रियमाणानाम् अपां जलानां अणिमा प्राणरूपेण परिणमति। एवमेव तेजसः अश्य मानस्य सूक्ष्मांशः वाक्रूपेण परिणतो भवति, अत्र सर्वत्र परिणाम एव उदाहृतः स च विकारः विशेषणे न तु विवर्तवादः।।श्रीः।।

अथ प्रकरणमुपसंहरति—

अन्नꣳमयहि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति
भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।५।।

एवमेव दध्नि सर्पिरेव मनः अन्ने अन्नं सति प्राणोऽप्सु आपः सति वाक् तेजसि तेजश्च सति इति दार्ष्टान्तिकनिदर्शनेन सत्कार्यवादः साधितः। सत् देवता कथम् अवक्रीयमाणा सति तत् तत् परिणामं लभत इति सिद्धान्तमनवगच्छन् भूय एवेत्यादि पृच्छति पिता च तथेत्यादि प्रतिजानीते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये षष्ठखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

''श्री राघवः शन्तनोतु''

सप्तमः खण्डः

अथ षोडशकलामयं पुरुषमुपदिशति—

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः
काममपः पिबापोपयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यत
इति।।१।।

हे सोम्य! पुरुषः षोडशकलः तत्र प्राणः जलमयः एतदहं कथं जानीयाम्? इति जिज्ञासमानम् आह इमानि पञ्चदश पञ्चदशसंख्याकानि आहानि दिनानि यावत् मा आशीः मा अश्नीयाः कामं यथेच्छं अपः जलानि पिव एवम् अपः पिवतः जलान्याचामतः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तव प्राणो न व्यच्छेत्स्यत् न विच्छिन्नो भविष्यति यतो हि आपोमयः जलमयः प्राणः॥श्रीः॥

अथ श्वेतकेतो दशामाह—

स ह पञ्चदशाहानि नाशाथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सोम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति॥२॥

अनन्तरं सः पञ्चदशाहानि यथोक्तदिनानि न आशनभोजनं कृतवान्, अथ षोडशे दिने एवं निज पितरम् उपससाद गतः अपृच्छत् भगवन् किं ब्रवीमि तेनोक्तम् ऋचः यजूंषि सामानि ब्रूहि स उक्तवान् किं ब्रवीमि मां न प्रतिभान्ति मम स्मृतिं कथं नायान्ति इति॥श्रीः॥

अथ पितुरुपदेशमाह—

तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि नबहु दहेदेवꣳसोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टा स्यात्तयैतर्हि वेदान्नानुभवत्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति॥३॥

तं पिताः उवाच यथा महतः महीयशः अभ्याहितस्य इन्धनप्रज्वलितस्य खद्योतमात्रः खद्योतः प्रमाणं यस्य अत्र "प्रमाणं द्वयसज् दध्नज् मात्र चः" इत्यनेन मात्रच् प्रत्ययः। स एक अङ्गारः स्फुलिङ्ग ततोऽपि अधिकतरः सन् न दहति तथैव एका अतिशिष्टा कला पञ्चदशक्षीणाः अतः वेदान् न अनुभवसे असान भोजनं कुरु अनेन विज्ञापयिष्यसि इति॥श्रीः॥

अनन्तरं किमभूत् इत्याह—

स हाशाथ हैनमुपससाद तꣳह यत्किं च पप्रच्छ सर्वꣳह प्रतिपेदे॥४॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनन्तरं सः आश भोजनं कृतवान् पुनरागतः तं यत्किञ्चिद् पप्रच्छ पिता तत्सर्वं प्रतिपेदे उत्तरं दत्तवान्।।श्रीः।।

अथ पिता दृष्टान्तेन उपदेशमुपसंहरति—

तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्राज्वलयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत्।।५।।

एवꣳ सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत्सान्नेनोप-समाहिता प्राज्वाली तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳहि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति।।६।।

तं पिता उवाच हे सोम्य! यथा महतः अग्नेः समिन्धस्य परिशिष्टम् एकमङ्गारं तृणैः अलातैः समुपनिधाय आवृत्य प्रज्वालयेत् तदा सः पूर्वासु पक्षपादपि बहु दहेत् दग्धुं प्रभवति तथैव एकावशिष्टा तौ कला भोजनमंयेन तृणेनोपचिता अतस्त्वं सर्वान् वेदान् अनुभवसि तस्मात् अन्नमयं मनः, आपोमयः प्राणः तेजोमयी वाक् इति पित्रोक्तं सिद्धान्तं स विजज्ञौ विशेषं ज्ञातवान् द्विरुक्तिरादरार्थाः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये सप्तमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

श्रीराघवः शन्तनोतु

अष्टमः खण्डः

अथ सुषुप्तिकाले जीवः किं दशाको भवति इति स्वपुत्रायोपदिदिक्षुः पुनरुपक्रमते।

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम स-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनः स्वपितीत्याचक्षते स्वः ह्यपीतो भवति।।१।।

ह निश्चयेन आरुणिः अरुणस्य गोत्रापत्यं पुमान् आरुणिः अरुण पुत्रः उद्दालकः एतन्नाम्ना प्रसिद्धः श्वेतकेतुं श्वेतः ब्रह्मज्ञानेन धवलीकृतः ऊर्ध्वगामीमनोरूपोध्वजो यस्य तथाभूतः तं पुत्रं नरकात् त्रातुं क्षमं सुतम् उवाच सोम्य हे सोमार्ह वस्तुतस्तु सोमशब्दस्य द्वावर्थौ प्रसिद्धौ, एकः यज्ञे सोमलतारूपः, अपरः अपरश्चन्द्ररूपः पूर्वार्थस्तु मया बहुषु व्याख्यातः साम्प्रतमपरमर्थं व्याचक्ष्ये। चन्द्रपक्षे सोमशब्दं व्युत्पादयन्ति प्राञ्चः उमया सह वर्तमानः सोमः शिवः सोमोऽस्ति मण्डकतया आधारो यस्य सः सोमः, वयं तु सूयते सुधां यः सः सोमः स तु रामचन्द्ररेव। अतः एव—

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमोभूत्वा रसात्मकः।

(गीता १५-१३)

तं श्रीरामरूपं सोममर्हति इति सोम्यः, अथवा रामनामैव सोमः यथा स्मृतं मानसे श्रीमद्गोस्वामीतुलसीदासचरणैः—

राका रजनि भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन विमल बसहु भगत उर व्योम।।

(मानस ३-४२क)

अथवा "सोमो राजा अष्माकं ब्राह्मणानां" इति श्रुत्यन्तरात् "सोमो राजा विद्वान्". इति श्रुतेश्च। सोमेन चन्द्रेण रामचन्द्रेण अनुगृहितः कृपापात्री कृतः इति सोम्यः तत्सम्बुद्धौ हे सोम्य भो भगवत् कृपाभाजन! साम्प्रतं स्वप्नान्तं स्वप्नस्य शयनस्य सुषुप्तेः अन्तं सिद्धान्तं मे मम सकाशात् विजानीहि समवगच्छ यत्तु प्राञ्चः अन्तशब्दं मध्यपरतयाव्याचक्षते, एवं स्वप्नः अन्ते मध्य यस्य तथाभूतं तदनुचितं स्वप्नशब्दः सुषुप्तेः प्रागवस्थाबोधकोऽपि सुषुप्तिबोधकः अतःएव स्वप्नमेव स्वप्नः "स्वपोनङ्" इत्यनेन भावे नङ् प्रत्ययः। तस्मात् "शीङ् स्वप्ने" इति सङ्गच्छते पाणिनीयधातुपाठः। ननु कीदृशः सः षष्ठ्यन्तपदार्थः? इत्यत् आह यत्र यस्मिन् स्वप्ने सुषुप्तिकाले एतत् पुरुषः एतस्य परमात्मनः पुत्रीभूतपुरुषः एतत् पुरुषः परमात्मपुत्रत्वविवक्षयैव एषः पुरुषः इति नोक्त्वा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समास आश्रितः इत्यनेनापि स्वरूपतो जीवब्रह्म ऐक्यवादः परास्तः स्वपिति शयनं करोति तदा सता परमात्मना सह सम्पन्नो भवति सङ्गच्छते एवमर्थं स्पष्टयितुं लोकप्रसिद्धिमाह अतएव एनं स्वपिति इति क्रियया: जना आचक्षते। निद्राति इति न कथयन्ति कथम्? स्वपितिशब्देऽपि इश्वरेच्छा रूप सरस्वती विवक्षितभावबोधनं सामर्थ्यात्। शयनकाले जीवः स्वं निजं आत्मीयं परमात्मानं न्यायदृष्ट्वा द्रव्यत्वेन निज ज्ञातिभूतं भक्तदृष्ट्या स्वं निजं परमधनम् अपीतः निश्चयेन प्राप्त भवति, अतएव स्वपिति इति कथ्यते। हिनिश्चयेन स्वं निजमात्मवत् प्रियं आत्मीयं द्रव्यत्वेन निजज्ञार्ति निजं धनं च परमात्मानम् अपीतः प्राप्त भवति अतः शयनकाले परमानन्दोनुभूयते। किन्तु जीवस्य दौर्भाग्यमेतत् यत्।

सङ्गच्छते तेन यदा तु कामः तदा सः जागर्ति गृहीत बोधः।
यदा तु रामेण सः सङ्गतोऽस्ति तदा स्वपीत्येष विडम्बनैषा।।श्रीः।।

अथ मनो गतिमाह—

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धनꣳ हि सोम्य मन इति।।२।।

शकुनिदृष्टान्ते मनसः प्राणाधारतां निरूपयति। यथा येन प्रकारेण सूत्रेण प्रबद्धः शकुनिः पक्षी दिशं दिशं पतित्वा गत्वा कुत्रापि आयतनमाधारं अलब्ध्वा अप्राप्य बन्धनं पिञ्जरात्मकम् उपश्रयते, तथैव मनः दिशं दिशं दिशोपलक्षितं संसारं पतित्वा पतङ्ग इव निपत्य भुक्त्वा च प्राणबन्धनम् उपश्रयते प्राणोः बन्धनं यस्य तथाभूतं मनः भवति।।श्रीः।।

अथ क्षुत्पिपासादि दृष्टान्तेन संसाराङ्कुरस्य समूलतां वर्णयति—

अशनापिपासे मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाप एव तदशितं नयन्ते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति।।३।।

अशनमशपचादित्वाद् अच् प्रत्ययः अशं अशितं पुरुषेण भुक्तं पदार्थं नयन्ति पाकं प्रापयन्ति इति अशनाया आपः अशनाया सन्ति यस्यां साशनाया बुभुक्षा, पातुमिच्छा पिपासा ते मम सकाशात् विजानीहि। उपपत्तिमाह यथालोके गवां नेतारं गोनायम्, अश्वानां नायकमश्वनायं, पुरुषान् नयन्तं पुरुषनाय इति कथयन्ति तथैव पुरुषः यत् अशशिषति भोक्तुमिहते तदापः नयन्ति अतः इमापि अशनाय इति कथ्यन्ते। तत् एव अपां सकाशात् एतत् शुङ्गं देहरूपम् अङ्कुरं उत्पतितं भवति इदं मूलं नास्ति।।श्रीः।।

एवं शुङ्गोत्पत्तिं निरूप्य क्रमेण सन्मूलतां साधयति—

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापोमूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः।।४।।

सोम्य! तस्य शुङ्गस्य अन्नात् अन्यत्र क्व मूलं स्यात् एवम् अन्नेन मूलेन अपः जलानि अन्विच्छ मार्गय एवं अद्भिः शुङ्गेन अङ्कुरेण तद् हेतोभूतं तेजः तेजसा तन्मूलं सत् अन्विच्छ नाजीहि, इमाः प्रजाः सन्मूलाः सत् मूलं यासां ता सदायतनाः सदाधाराः सत्प्रतिष्ठाः सदेव प्रतिष्ठा यासां ताः एवं सतो जाताः सताधारिताः सति विलीनाश्च।।श्रीः।।

अथ पिपासां निरूपयति—

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ यत् पुरुषः पिपासति तत्पीतं जलं तेजः नयति परिणामयति, अतः गोनायादिवत्। तेजः उदन्यः कथ्यते उदकं नयति इत्युदन्यः एवं तेजसा शुङ्गमुत्पतितमिदं अमूलं कथं भविष्यति।।श्रीः।।

अथ क्रमेण सद्देवताया जगत् कारणत्वमाह—

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः तेजो मूलमन्विच्छ सोम्य शुङ्गेन तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्।।६।।

हे सोम्य! अद्भिरुत्पादितेन शुङ्गेन तेजः मूलमन्विच्छ तेन सत् अनेनैव सद्देवता मूलेन जगतः समूलता सायतनता सत्प्रतिष्ठा च अथ पुरुषं प्राप्य देवता त्रयस्य त्रिवृत्वं पुरस्तात् उक्तम् अनुपदमेव कथितम्। एवं संसारयात्रां निर्वर्त्य प्रयतः प्रकर्षेण गच्छतः प्रयति इति प्रयन् तस्य प्रयतः इति विग्रहः पुरुषस्य वाक्मनसि विलीयते, मनः प्राणे, प्राणश्च तेजसि तेजश्च तस्यां सदाख्यायां परदेवतायां सम्पद्यते। ननु "अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि" छा० उ० ६-२-३ इति श्रुत्या जीवात्मना सह सतः शरीरे प्रवेश उक्तः। तर्हि जीवस्य लयः कथं न उक्तः? इति चेत् शृणु सृष्टस्य लयो भवति तेजोजलान्नानि तन्मयाश्च वाक्प्राणमनोविशेषाः तन्मयं च शुङ्गरूपं शरीरम् इदं सृष्टिजातं सकारणं लीयते जीवस्तु नैव परमात्मनः सृष्टिः अतो एतस्य न लयः। अतो जीवात्मना सम्पन्नता नोक्ताः।।श्रीः।।

एवम् जीवस्य परमात्मनश्च नित्यत्वं साहचर्यं च प्रतिपादयति—

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यँ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।७।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं सदाख्यायां परदेवतायां सर्वेषु विलीनेष्वपि सत्सु यः अवशिष्यते स एव एषः श्रुतिप्रसिद्धः अणिमाः परमात्मापेक्षया अतिशयेनाणुः सर्वप्रलयेऽपि यस्य न प्रलयोभूत् स एव जीवात्मा एतस्यैव आत्म्यं आत्मनः इदं भोग्यरूपम् इदं सर्वं प्रपञ्चं तत् सद्रूपदैवतमेव सत्यं, सः आत्मा यः प्रलयेऽपि न नाशमगच्छत्। हे श्वेतकेतो तत्त्वं तदेवात्मतत्वं त्वमसि त्वं देहेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तः विशुद्धचेतनघनः भगवतोदास-भूतः आत्माऽसि। अथवा एषः अणिमा भगवद्दासभूतजीवात्मा इदं सर्वम् एतद् भोग्यं तत् सत्यं सद्रूपं स एव एतस्य जीवात्मोऽपि आत्मा अधिष्ठाता परमात्मा, हे श्वेतकेतो त्वं तदसि तस्य असि तच्छब्दस्य त्वं शब्देन सह पञ्चधा समासयस्ते आत्मा तस्य त्वम् असि तत्पुत्रत्वं भवसि, तेन त्वम् असि, तस्मै त्वम् असि, तस्मात् त्वमसि, तस्मिन् त्वम् असि, एवं जीवात्मा परमात्मा विवरणं श्रुत्वा श्वेतकेतुः सिद्धान्तमनवगच्छन् सङ्कमान आह, एवं विधं परमात्मानं जीवात्मानं च कथमेहं न ज्ञातुं प्रभवामि? इत्यत् आह भगवान् पूज्यचरणः एतद् विषयं भूयः विज्ञापयतु। यत् सुषुप्तो सद्रूपेण परमात्मना सङ्गतोऽपि जीवः कथं न जानातीति आरुणिः तथा इति विज्ञापयतुमुवाच प्रतिशुश्राव।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये अष्टमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

''श्रीराघवः शन्तनोतु''

नवमः खण्डः

ननु सुषुप्तौ यो जीवात्मानं निरन्तरं मिलति यश्च परमानन्दरूपः तं जीवात्मानो कथन्न जानन्ति कथं वा निजागमनावधिभूतत्वेन परमात्मानं नावगच्छन्ति इति जिज्ञासां श्वेतकेतोः मधुमक्षिका दृष्टान्तेन शमयितुमुपक्रमते यथेत्यादि—

यथा सोम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाꣳ रसान्समवहारमेकताꣳ रसं गमयन्ति।।१।।

हे सोम्य! यथा येन प्रकारेण मधुकृतः मधुकुर्वन्तीति मधुकृतः मधुमक्षिकाः मधुमाध्वीं निस्तिष्ठन्ति उत्पादयन्ति धातूनामनेकार्थत्वात् निपूर्वकस्थाधातोरपि जन्मानुकूल-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यापारानुकूलव्यापारोऽर्थः। कथं मधुनिष्पादयन्ति? इत्यत आह ते च नानात्ययानां नाना अनेकः अत्ययः स्वभावः येषां ते नानात्यया: तेषां नानात्ययानां अनेकगतीनां नैकप्रकारफलकानां वृक्षाणां तरुणां फल्गुमहतां रसान् सारान् समवहारं णमुलन्तमेतत्। न च कथन्न द्वित्वमिति वाच्यम्? "छन्दसि बहुलम्" इत्यनेन तन्निषेधत्। तथा च समवहारमित्यस्य समवहृत्य समवहृत्य वृक्षाणां सारभूतभागं पीत्वापीत्वेति भावः। एकतां पुनर्वान्तिविषयं कृत्वा एकभावं तत्तद्वृक्षरसवैलक्षण्यद्योतकस्वादप्रध्वंसाभावं तद्रूपं रसं मधुरसं गमयन्ति रसरूपतां नयन्ति।।श्रीः।।

दृष्टान्तं निगमयति—

ते यथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति संपद्य न विदुः सति सम्पद्यामह इति।।२।।

हे सोम्य! अनेकवृक्षेभ्यः समानीताः मधुत्वमापादिताः ते रसाः यथा तत्र मधुकृतसंन्निधाने मधुकृत्मुखतो वान्तिधिकरणे अहममुष्य अस्य वृक्षस्य रसः आम्रस्य वा पनसस्य वा मिरिचस्य वा द्राक्षायावा वृक्षस्य रसोऽस्मि इति विवेकम् एकीभावेसति पृथक्करणज्ञानं न लभन्ते न प्राप्नुवन्ति। तथैवेमाः दृश्यमानाः प्रजाः जीवभूताः प्रकृतयः सति परमात्मनि संपद्यप्रलीय वयमनेकप्रकृतयः बद्धमुक्तनित्यस्वरूपाः विभिन्नस्वभावाः प्रजाः परमात्मनि संपद्यामहे इति न विदन्ति।।श्रीः।।

अविवेकपरिणाममाह—

त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति।।३।।

यतो हि ते सति संपद्यमानमात्मानं न विवेक्तुं प्रभवन्ति, न वा आधाराधेययोः वैलक्षण्यविवेकमवकलयन्ति। अतएव इह लोके व्याघ्रः विघाताय आजिघ्रति इति व्याघ्रः ईषत् सिंहान्नूनो हिंस्रवः जन्तुः सिंहः मृगेन्द्रः केशरी वृकः सृकालतो ज्यायान्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्फारितमुखोगवादिवतसघाती पशुः वराहः वन्यसूकरः कीटः क्रमिः पतङ्गः पक्षी दीपमित्रो वा पतनशीलकीटाणुः मसकः मत्सरः यः कर्णसमीपेगु ञ्जित्वा पृष्ठमांसं खादति। दंशः यो वर्षाकाले यो गोमयादि वृतस्थाने पशून् दशति, रक्तभोजी कीटः एवं यद्‌यद् प्रकारवाची द्विरुक्तो यच्छब्दः निकृष्टयोनिबहुत्वसूचकः उपदर्शितानामष्टानां वर्गतोऽपि तत्सजातीयाः यावन्तोऽपि पापिष्ठ योनिविशेषाः भवन्ति संभवन्ति ब्रह्मसृष्टौ तत् तद्योनिसमुत्पन्नाः आ आभीक्ष्ण्येन भवन्ति। अत्रेदं विवेक्तव्यं यत् प्रजाशब्दः संतति प्रकृतिपरः "प्रजासंततिप्रकृत्योः" इति कोषात्। जीवमात्रं भगवतः संतति न खलु पिता पुत्रयोः स्वरूपत एकत्वं साधयितुं शक्यते। तथैव जीवब्रह्मणोरैक्यं दुर्वारमेव (सति संपद्य सति संपद्यामहे) छा॰ ३.६.९.२ इति द्विःश्रुतिः संपत्तिक्रियां प्रति सदाधारतां प्रजाधेयतां च वर्णयति। नहि खलु जीवब्रह्मणोरैक्ये द्वैतपर्यवसायी आधाराधेयभावो घटयितुं शक्यते। दृष्टान्तोऽपि गमयत्येतमेवार्थं मधुकृतः अनेकतोवृक्षेभ्यः रसानाहृत्य एकतां नयन्ति तथैव परमात्मा अनेकत्र स्वकर्मवशात् विकीर्णान् जीवान् रसोपमानान् तत्तच्छारीरवृक्षेभ्यः यमरूपदशनैः समुपसंहृत्य कालरूपे निजमुखे गृहीत्वा प्रलयकाले एकतां निजोदरनिवासहेतोः रसं सत्तामात्रसंज्ञां नयति। वस्तुतस्तु सर्वे जीवा अनेक एव, किन्तु यथा रसानां परस्परवैलक्षण्यज्ञानाभावः एवमेव जीवा अपि एकीभूता नात्मवैलक्षण्यं विवेक्तुमर्हन्ति। अतएव व्याघ्रादि पापिष्ठयोनिषु जायन्ते श्रुतिः सुस्पष्टं निरूपयति यत् पृथक्सत्तायाः ज्ञानाभाव एव जीवानां निकृष्टयोनिजनननियामकः इति स्पष्टम् अद्वैतवादावलम्बिनामधोगतिनियामकम्। यदि ते निजागमनावधिं व्याज्ञास्यन्त तदानाजनिष्यन्त निकृष्टयोनिषु नन्वसंगतमेतत् एकीभावज्ञानपरिणामतः व्याघ्रादियोनिरुक्ताजीवस्य किन्तु गीतासु पृथक्त्वाभिन्नज्ञानं कथं राजसमुक्तं यथा—

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथक्विधान्—

वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।। (गी.अ. १८।२१)

एवमुभयतः पाशारज्जुरिति चेन्न तव परमात्मनः सह जीवेन संबन्धतः पृथक्त्वनिराशेनादोषात्। अतएव

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव (गी.७.७)

इति सूत्रमणिदृष्टान्तेन भगवतैव भेदमूलकाधाराधेयभावः प्रतिपादितः। न खल्वेकस्मिन्नेव धर्मिणि प्रतियोग्यनुयोगिद्वित्वनिष्ठसूत्रमणित्वप्रकाराधाराधेयभावः संगन्तुं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्यते। आशयोऽयं यत् अनेकेभ्यः स्थानेभ्य आगताः प्रजाः रसा इव भग्नचेतनाकाः, अतएव निरस्तसेव्यसेवकभावमूलकभजनसंस्काराः सूदूरत एवानास्वादित-रघुपतिपदपद्मपरागरागरसाः आत्मसंभाविताः स्तब्धाः भगवद्विमुखमलीमसमानसाः व्याघ्राद्यासुरीं योनिं लभन्ते इति भावः। तथोक्तं गीतासु—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।।

एकीभावे हि विज्ञाते (गीता १६,१८,१९,२०)

भक्तिः स्वादो विहन्यते। तामन्तरेण कच्छिद्यात् दुर्घर्षं भवबन्धनम्।।

इत्यनेन प्रच्छन्नबौद्धकल्पिताद्वैतवादमेघाडम्बरं प्रभञ्जनेनेव निकृत्य निरस्तम्।।श्रीः।।

दृष्टान्तमुपसंहरति—

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ सआत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।४।।

एवं यः एतावामणीयान् अणिमा यं सर्वे ज्ञातुं न प्रभवन्ति, स एषः आत्मा परमात्मा एतस्यैव इदं सर्वम् आत्म्यं आत्मीयं तदेव सत्यं सत् सदेव सत्यं, हे श्वेतकेतो! त्वमपि तस्य असि तच्छब्दः लुप्तषष्ठीकः। ननु कथन्न प्रथमान्तः?तस्मिन् पक्षे स्वीकृते सत्यनावश्यककल्पनात्रयविडम्बना, यतोहि तच्छब्दः परोक्षत्वावच्छिन्नचैतन्यपरः। त्वं शब्दश्च प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नप्रत्यगभिन्नचैतन्यपरः। न खलु परोक्षत्वप्रत्यक्षत्वयोः विरुद्धकालावच्छिन्नयोः द्यावापृथिव्ययोरिव संभवत्येकत्वं, अतएव पदयोः सामानाधिकरण्यं लक्षलक्षणभावः विशेषणविशेष्यभावश्चेति नभःपुष्पायमानं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाधानत्रयं प्रजल्पितं तत् सर्वमनर्गलम्। यदुक्तं पदयोः सामानाधिकरण्यं तदसंगतं, सामानाधिकरण्यं नामसमानविभक्तिकत्वं तन्नात्र तच्छब्दस्य लुप्तषष्ठन्त्यत्वात्। न वा समानलिङ्गत्वं समानविभक्तिकत्वे हि तच्छब्दस्य विधेयत्वेन आयुष्मान् भव इत्यादिवत्। त्वं तदसीति स्यात् न वा लक्ष्यलक्षणभावः कथयितुं शक्यः। अनुपपन्ने हि तात्पर्ये तस्य प्रसक्तिः अद्वैतमेव तात्पर्यं श्रुतीनाम् इति नैव सर्वसम्मतसिद्धान्तः। नहि कतिपयेषु चिदुलूकेषु दिने रात्रिघोषणायां कोऽपि सुधी रात्रिव्यवहाराय कल्पते तस्मात् तात्पर्यानुपपत्यभावात् नैव लक्षणालौकिकवाक्येषु हि तात्पर्यानुपपत्तिः, श्रुतिर्भभगवतो निःश्वासभूता। नहि त्वं भगवान् यः श्रुतीनां तात्पर्यं निर्धारयितुं प्रभवेत्। वैयाकरणानां नयेतु लक्षणा स्वीकृतैव नहि श्रुतिर्हि वेदः वेदो हि व्याकरणमुखः नहि मुखमन्तरेण चरणादिकं वक्तुं प्रभवति, तस्माच्छ्रुति व्याख्याने वयं वैयाकरणाः अस्मदीयोराद्धान्तश्चेति प्रमाणम्। नेदं साहित्यं यत्र लक्षणाप्रमाणं भवतु, यदुक्तं विशेषणविशेष्यभावश्चेति तदपि प्रमत्तप्रलपितमेव।

विशेषणविशेष्ये समानालिङ्गे एव भवताम् इति नैव राजाज्ञा, न वा शास्त्रीयनिर्देशः षष्ठ्यन्तमपि विशेषणं भवति तृतीयापि किं बहुना व्यधिकरणं विशेषणं बहुशो दृष्टमिह भूतले घटो नास्ति इत्यत्र सप्तम्यन्तस्यापि विशेषणत्वेन स्वीकृतत्वात्। ननु सप्तम्यन्तं चेद् विशेषणम्? तर्हि सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ विशेषणत्वेन सप्तम्यन्तस्यापि क्राडीकृतत्वात् सत्यपि विशेषणपदे किमभिप्रायकं सप्तमीपदम् इति चेत् सप्तमीपदं व्यर्थीभूय व्यधिकरणबहुव्रीहि ज्ञापयति, तेन कण्ठे काल इत्यादि सिध्यति, तस्मात् तच्छब्दस्य बुद्धिस्थत्वपरामर्शकत्वे सति अणुभूतजीवात्मार्थः।

एवं हे श्वेतकेतो! त्वं तत् सर्वव्यापी आत्मा असि अथवा तत् सत्यमित्यत्र तन्निर्दिष्ट सतः मित्रं पुत्रोआसीत् पुत्रोवाऽसि। ननु सुप्तोत्थितः सन् जनः पूर्वसंस्कारं न विस्मरति प्रत्युत प्रबोधसमकालमेव तस्य सर्वे पूर्वसंस्काराः प्रतिबुद्ध्यन्ते, कथं वयं नावगच्छामः परमात्मानमिति बीजमलभमानो जिज्ञासते भगवान् पूजनीयतातपादः इमं सिद्धान्तं मां भूयएव एवकारोप्यर्थः पुनरपि विज्ञापयतु। प्रार्थनायां लोट् कृपया उपदिशतु इति प्रार्थये आनन्दमयत्वात् परमात्मनः तदभ्यासे नानुभवन्नालस्यं निष्प्रमादमारुणिरुवाच तथा एवमस्तु।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये नवमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।

''श्रीराघवः शन्तनोतु''

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दशमः खण्डः

अथ दशमे खण्डे नदीसमुद्रदृष्टान्तेन सिद्धान्तं निरूपयति मन्त्रद्वयेन—

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीति।।१।।

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगच्छामह आगम्य न विदुः सत आगच्छाम इति त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति।।२।।

हे सोम्य! यथा पुरस्तात् अग्रतः स्यन्दमानाः प्राच्यः पुरो वाहिन्यः गंगादयः पश्चात् स्यन्दमानाः प्रतीच्यः पश्चिमवाहिन्यः सिन्ध्वाद्याः समुद्रात् निर्गत्य मेघमाध्यमेन तद्वृष्टजलेन लब्धाकाराः पुनः धारासारशतसहस्रैः समुद्रमेव सागरमेव अपियन्ति संगच्छन्ते, तासां तदितिरिक्तनिवासाभावात्। तथैव खलु निश्चयेन ताः इयमहं इति निजं नाम रूपं च न विदन्ति निजं नामरूपञ्च विनाशयन्ति इति नोक्तम्। किं तर्हि? जानन्ति नहि तस्मिन्नगाधे महासागरे फल्गुनदीनां कुत्र सन्निधानं, तर्हि किं भवति? समुद्रः भवति प्राधान्येन समुद्रः प्रत्यक्षतो दृश्यते, पुनः समुद्रात् नद्यः पूर्यन्ते पुनश्च तस्मिन् विलीयन्ते, यथा च समुद्रो नदीसत्तां नैव भक्तुं पारयति तथैव परमेश्वरोऽपि जीवसत्तां न तिरोधापयितुं प्रभवति। समुद्रोपजीव्या हि नदी तथैव भगवदुपजीव्यो हि जीवः समुद्र इव आगाधो भगवान्। यथोक्तं वाल्मीकिना—

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः। (वा.रा. बाल १.१६)

तत्र प्रतिरोमकोटिकोटिब्रह्माण्डानि को जानीयात्, को जीवः किं देशीयः किन्नामा, एवमेव सोम्य प्रजाः इमाः बद्धाः सतः परमात्मनः आगम्य संसारमासाद्य सांसारिकप्रपञ्चविस्मृतनिजस्वरूपाः न विदन्ति, यत् सतआगच्छामः इमं संसारं परमात्मनः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सकाशादागच्छामः, पश्चात् तत्रैव गमिष्यामः इति न जानन्ति। अतएव व्याघ्रादि दंशपर्यन्ताः योनिः आसुरीः प्राप्नुवन्ति। अनेनैव दृष्टान्तेन विशिष्टाद्वैतवादः समर्थितः, यथा समुद्रं गच्छन्त्यो नद्यः तिरोहित नामरूपा भवन्ति, तथैव परमात्मानं प्रप्य जीवाः तिरोहितनामरूपत्वात् परमात्मविशिष्टाः। यथा सतीषु शताधिकासु नदीषु समुद्र इत्येव कथ्यते, तथैव सत्स्वपि जीवसंकुलेषु परमात्मैव कथ्यते। अत एव अस्यैवाध्यायस्य द्वितीयखंण्डे "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" इति श्रुतिः संगच्छते। अनया रीत्या तच्छब्दः तदात्मकाभिप्रायः तत्त्वमसि तदात्मा त्वमसि, तच्छरीरं त्वमसि वा, इति तात्पर्यकम्।।श्रीः।।

दृष्टान्तं निगमयति—

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।३।।

एवं गुणगणः यः अणिमा समुद्रवदगाधस्य स एव आत्मा सर्वव्यापकः, इदं सर्वं संसारजातं एतदात्म्यं एतत् स्वरूपं "आत्मा शरीरे जीवे च" इति कोषात्। आत्माशरीरमात्मैव आत्म्यम् एतस्य आत्म्यम् एतदात्म्यं तदेव विशिष्टं अद्वैतं सत्यं परमार्थः। हे श्वेतकेतो! त्वं तस्य नियम्यः असि, ननु एतावत् सन्निकृष्टं परमात्मानं जीवाः कथं न जानन्ति? अतः जिज्ञासते भूयः विज्ञापयतु आरुणिश्च तथा एवमेव करिष्यामि इति प्रतिजानीते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्यायेदशमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।
।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

एकादशः खण्डः

अथ परमात्मसत्वे जीवसत्ता जीवसत्वे च जगत्सत्तेति वृक्षदृष्टान्तमाह। दृष्टान्तोऽयम् मन्त्रद्वयान्वयी

"अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्य यदेकाᳬ शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहान्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति।।५।।

हे सोम्य! निजसमक्षं वर्तमानमिमं वृक्षं पश्यसि, अस्य महतः विशालस्य वृक्षस्य मूले यदि कोऽपि कुठारेण हन्यात् तदा सः जीवन् जीवनं धारयन् स्रवेत् रसः श्रावं कुर्यात्। यदि कोऽपि मध्ये अभ्याहन्यात् तस्मिन् कालेऽपि सः तथैव हरितः पल्लवः च्यवेत् रसम्, एवमेव अग्रे कोऽपि हन्यात् तदपि स्रवेदेव किन्तु जीवति एवमेव पेपीयमानः पादाभ्यां पिबन् जलं तिष्ठति। कथं जीवेन आत्मनानुप्रभूतः जीवेन सह परमात्मनः अनुप्राणितः। परन्तु यदा जीवः एकं शाखां जहाति तदा सा शुष्यति। एवं द्वितीयां तृतीयां यां यां त्यजति जीवः सा शुष्यति एवमेव यदि सर्वावच्छेदेन जहाति तदा सर्वः शुष्यति।।श्रीः।।

दृष्टान्तं निगमयति—

एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदᳬ सर्वं तत्सत्यᳬ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।३।।

हे सोम्य! यथा जीवात्मनि सति यत्किञ्चिदवच्छेदेन छिन्नोऽपि वृक्षस्तिष्ठति, किन्तु जीवे जहति न तिष्ठति क्षणमपि। तथैवेदं शरीरमपि जीवे निर्गच्छति म्रियते जीवे तिष्ठति तिष्ठति, य एवं गुणगणः एषु अणिमा अति सूक्ष्मः स एव आत्मा सर्वव्यापी परमात्मा, त्वमपि तस्यासि। इति समुपदिष्टोऽपि भूयः कथयति नाहं अवगच्छामि यत् सूक्ष्मात् स्थूलं कथं जायते तं बोधयितुं भूयः प्रतिजानिते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये एकादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वादशः खण्डः

अथ न्यग्रोधफलदृष्टान्तेन सूक्ष्मात् स्थूलोत्पत्तिं निदर्शयति।

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्द्धीति भिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्द्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति न किञ्चन भगव इति।।१।।

हे सोम! अतः तौ पुरतः वर्तमानात् अस्मात् वटवृक्षात् इदं न्यग्रोधफलं न्यग्रोधस्य वटस्य फलं आहर आनय, त्यादिष्टः आहृत्य न्यवेदयत् भगव इदमाहृतम् आनीतं पुनरादिशत् पिता इदं भिन्धी स्फोटय, तथा कृत्वा न्यवेदयत् भिन्नं स्फोटितं तदापृच्छत् अत्र किं पृच्छसि उदतीतरत् अत्र आण्व्य धानात् लग्भ्यः कणिका पश्यामि विजानामि। पुनरुक्तवान् इमाम् एकैकां भिन्द्धी, भित्वा कथितवान् भिन्ना पुनरपृच्छत् अत्र भिन्नाया अणुधानायां किम् पश्यसि न किमपि दार्ष्टान्तमाह।।श्रीः।।

तꣳ होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयस एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्न्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धत्स्व सोम्येति।।२।।

अथ तं श्वेतकेतुं उवाच पिता हे सोम्य! यमेतमणिमानमणुः भूतंन निभालयसे निकटस्थमपि न दृष्ट्या गोचरयसि एतस्य परमात्म सखस्य जीवस्य इव स्थूलरूपः विशेषः तिष्ठति वटवृक्षः सोम्य श्रद्धत्स्व आस्तिकबुद्ध्या विचारय।।श्रीः।।

प्रकरणमुपसंहरति—

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं भूतः अणुरपि महज्जनकः सः आत्मा आप्नोति व्याप्नोति चराचरम्। तथा भूतः इदं सर्वं नामरूपात्मकं जगत् एतदात्म्यं एतस्य स्थूलं रूपमेव। यथोक्तं वाल्मिकीना—

"जगत्सर्वं शरीरं ते" तत्सत्यं तथ्यं तत्त्वमसि तस्यैव सर्वाधारस्य सम्बन्धिभूतस्त्वम्। ननु महतो वृक्षस्य अणुर्धानात उपलभ्यते, किन्तु जगत्युपलब्धे तन्मूलभूतं सत् कथं नोपलभ्यते? इति जिज्ञासा बीजं भगवन् मां भूय विज्ञापयतु इति प्रार्थयमानं सः श्वेतकेतुं तथेति प्रतिज्ञाय लवणदृष्टान्तेनाह।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये द्वादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

त्रयोदशः खण्डः

अथ लवणदृष्टान्तेन जगत्प्रविष्टं सत् निदर्शयति—

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार तद्धहोवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽबाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद।।१।।

सोम्य! यत्त्वमप्राक्षीः जगतो मूलं सत् कथं न दृश्यते? जगति तस्येदं उत्तरं परमात्मा जगत्सृष्ट्वा जगदेव समनुप्रविष्टः "तत्सृष्ट्वा तददेवानुप्राविशत्" इति श्रुतेः। कथमेतत् विजानीयाम? इति लवणदृष्टान्तमाह— यथा लवणे जलं प्रविष्टं तद्रूपतां गतं नेत्राभ्यां न दृश्यते। किं तर्हि? तद्रशनायानुभूयते तथैव परमात्माऽपि लवणमेव जगत्प्रविष्ट रसनं एव भगवन्नामरूपलीलाधामसमास्वादनरसीकः परं प्रेमरूपः परभक्त्या समवगम्यते। तदेव सरलीकृत्य बोधयति, तत् सत् उदके अद्य लवणं निक्षिप्य स्वः प्रातः माम् उपसीदशा तत्त्वबुभूत्सया आगच्छेः। सः तथा चकार लवणं जले निक्षिप्य प्रातः लवणयुक्तजलभाजने न समागतः पिता कथयत् वत्स जले दोषा रात्रीवाचकोऽव्यय शब्दोऽयं रात्रौ उदके यत् लवणं सैन्धवमाद्या निक्षिप्तवानसि तत् आहर आनय, इत्युक्तः जले लवणं क्षारम् अवमृश्य अन्विश्य न विवेद।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दार्ष्टान्तयति—

यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्राश्यैतदथ मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्तते तछ्होकवाचात्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति।।२।।

तमारुणिराह इदम् आदितः आचामः पिब किमस्ति मध्ये अन्ते च किमस्ति सः उक्तवान् लवणम् आरुणिरकथयत! इदं प्राश्य दूरे निक्षिप्य उपसीदथ अत्र आदरार्थे बहुवचनम् उपसीदेति भावः। तत्र लवणं शश्वत् समवर्तते तिष्ठति किन्तु त्वं चक्षुषा न निभालयसं न द्रष्टुं शक्नोषि। तथैव जले लवणमेव वर्तमानं सर्वहृदयान्तर्यामिनं न पश्यति इदं तु रसनास्थानभक्तिगम्यम्।।श्रीः।।

प्रकरणमुपसंहरति—

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।३।।

एवं जले लवणमिव समस्ते जगति तिरोहित ऐश्वर्यं साक्षिरूपेण विद्यमानं सत् एतदेव सत्यं स एव आत्मा सर्वः प्राणिनां जीवनरूपः। श्वेतकेतो तत्त्वमसि तस्य दासः त्वमसि, एवं सः भूयो जिज्ञासांचक्रे लवणमिव प्रच्छन्न महात्म्यतया विद्यमानं तं केनोपायान्तरेण ज्ञातुमहं प्रभवेयम्। इति भूय एव भगवन् मां विज्ञापयतु अतः स्थानान्तरादानितपुरुषदृष्टान्तेनाह यथा कश्चन पुरुषः पिहितनेत्रः निजस्थानात् आनित पुनर्जनैर्निदर्शितवर्त्मा गन्तव्यं लभते तथैवायं मोहनसंसारमानितः आज्ञानान्धिकृतः ज्ञानचक्षुः कारुण्यमूर्तिना आचार्येण सन्दर्शितभक्तिमार्गः सन् निज गन्तव्यं प्राप्नोति, तस्मात् तत् प्राप्तौ सद्गुरुपासत्तिरेवं उपायः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये त्रयोदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्दशः खण्डः

अन्यत्तानितं पुरुषदृष्टान्तं वितृणोति।

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ्वोदङ्वाऽधराङ्वा प्रत्यङ्वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः।।१।।

हे सोम्य! यथा गन्धारेभ्यः गान्धारदेशेभ्यः कमपि पुरुषं कृतापराधं राजभयः देशनिर्वासनरूपः दण्डेन योजयन्तःअभिपिनद्धाक्षं पट्टिकया अभिपिनद्धे पिहिते अक्षिणी नेत्रे यस्य तथाभूतम् अतिजने जनान् अतीतम् अतिजनं तस्मिन् विसृजेत् त्यजति, सः पिहित नेत्रः प्राक् पूर्वमुखः उदङ् उत्तरे अधरङ् दक्षिणे, प्रत्यङ् पश्चिमे प्राध्मायित ध्माशब्दे शङ्ख इव चित्कार पुरःसरं क्रन्दते। अहं पिनद्धाक्षः अत्र विशिष्टः कोऽपि मार्गं निर्दिशतु नेत्रपट्टिकां च निरस्यतु।।श्रीः।।

दृष्टान्तशेषमाह—

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन्पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसम्पद्येतैव-मेवेहाचार्यवान्पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति।।२।।

अनन्तरं कोऽपि कारुणिकः तस्य अभिनहनं नेत्रपट्टिकां प्रमुच्य लब्धनेत्रं निर्दिशति, एतां दिशं गन्धारा एतां दिशं ब्रज अथ ग्रामात् ग्रामं सर्वान् पृच्छन् स्वयमपि पण्डितः निज प्रतिभयादपि मार्गमनुसन्दधान मेधावी जननिर्देशं अविस्मरन् गान्धारं उपसम्पद्यते प्राप्नोति। तथैव इहापि गन्धं सम्बन्धम् आरान्तीति गन्धाराः गन्धारस्थानीयाः साकेतलोकविशेषाः तेभ्य एव प्रमादात् त्यक्तभगवत् भजनम् अत एव मोहबद्धनेत्रं तत्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आनीय जनातीते विसृजन्ति विकाराः। अनन्तरं कोऽपि आचार्यः तं क्रन्दन्तं निरीक्ष्य अज्ञानपट्टिकां विमुच्य भगवद्धाममार्गं निर्दिशति, ग्रामात् ग्रामं भगवदीयधामभूतं तीर्थं गच्छन् पुनः महात्मनः शास्त्राणि च पृच्छन् पण्डित सदसद्विवेककुशलः मेधावी शास्त्रज्ञानसम्पन्नः भगवन्तं प्राप्नोति। आचार्यवान् आचार्यें प्राशस्त्यश्च भगवन्नामस्वरूपभक्ति भागीरथीविगाहन विमलीकृतमानसत्वरूपम्। एतादृिक् पुरुषः साधकः परमात्मानं वेद जानाति, तावदेव तस्य चिरं विलम्बः यावत् सः अहं मोक्ष्ये मुक्तो भवामि बन्धनतः सम्पत्स्ये भगवच्छरणागतिं विधास्ये इति सङ्कल्पो न कुर्यते।।श्रीः।।

प्रकरणमुपसंहरति—

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।३।।

एवं आचार्यकृपां प्राप्य परमेश्वर एव अणिमादिगुणविशिष्टः स आत्मा निखिलजीवनाधारतत्त्वं तस्य सेवकस्त्वं क्रमं जिज्ञासते कथं सत् सम्पद्येय? आरुणिः तथेति प्रतिजानीते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये चतुर्दशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

पंचदशः खण्ड

अथ मुमूर्षुपुरुषदृष्टान्तेन सत् सम्पत्तिक्रमं वर्णयति—

पुरुषꣳ सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति। तस्य यावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे सोम्य! यथा उपतापिनं पुरुषमुपतापः प्राणघातकज्वरः सोऽस्त्यस्येत्युपतापीतं आसन्नमरणं पुरुषं ज्ञातयः कुटुम्बिनः पर्युपासते, पृच्छन्ति मां जानासि मां जानासि, एष प्रश्नाकार अस्मांसु कतममपि परिचिनोसि, एवं तस्य वाक् यावंन् मनसि न लीयते मनः प्राणे न सम्पद्यते प्राणस्तेजसि तेजश्च परदेवतायां सति न सम्पद्यते तावज्जानाति।।श्रीः।।

दृष्टान्तशेषमाह—

अथ यदास्य वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति।।२।।

एवं यदा तस्य मुमूर्षोः वाणि मनसि, मनः प्राणे, प्राणश्च तेजसि, तेजश्च परस्यां देवतायां सम्पद्यते तदा सः किमपि न जानाति। मुमूर्षोरिव मुमूक्षोः अपि दशाः सोऽपि तावत् एव जगत् जानाति यावत्तस्य वाङ्मनसः प्राणः तेजांसि जगत् प्रपञ्चे तिष्ठति। यदि वाक् भगवन्मय, मनसि मनः भगवत् समर्पिते प्राणः भगवच्चरणारविन्दचिन्तन-समिद्धप्रभे तेजसि अत्र तेजश्शब्दश्चेतनरूपः एवं चेतनात्मकं तेजश्च भगवत् ध्यानचिन्तनव्यापारं प्रभुप्रेमाकारं परस्यां देवतायां श्रीसीतारामनाम धेयायांसम्पद्यते, तदा न जानाति किमपि सम्पूर्णं जगत् विस्मरति। यथा चाह भगवाच्छुकाचार्यः श्रीभागवते दशमे—

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः।।

भागवत् १०-३०-४४।।श्रीः।।

प्रकरणमुपसंहरति।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं गुणः यः श्रुतिभिर्गीतं स एष अणिमा अणुः जीवात्मा परमात्मा च जीवात्मपक्षे तदेव अणुरूपस्तं परमात्मपक्षे च तस्य कृपापात्रं त्वं, तर्हि किमन्तरम्? मुमुर्षुर्मुमुक्षोः? इति जिज्ञासते मां भूयः विज्ञापयतु सः तथा इति प्रतिजानीते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठाध्याये पञ्चदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

षोडशः खण्डः

अथ पुरुषपरशुग्रहणदृष्टान्तेन द्वयोरन्तरमाह—

पुरुषꣳसोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्य-पहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुस्तस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते।।१।।

हे सोम्य! यथा कश्चित् हृतधनं भटाः हस्तगृहीतं हस्तयोः गृहीतः हस्तगृहीत तं हस्तगृहीतं गृहीत हस्तमानयन्ति, अयं धनं अपहार्षीत् अचूचुरत्। "अङ्भावरछान्दसः" अयं स्तेयं चौर्यकर्म अकार्षीत्, सः नाहं अचूचुरम्। किं प्रमाणम्? इत्यादिप्रलपति तदा ते राजा व्यवस्थापयति अस्मै अत्र तादर्थ्ये चतुर्थी। एतदर्थम् अथवा उपपद चतुर्थी इमं परीक्षितुं परशुं तपत परष्वधं ऊष्णीं कुरुत तदा सः अनृताभिसन्धः असत्यसन्धानः आत्मानमनृतेन असत्यभाषणेन गोपयित्वा परशुं प्रतिगृह्णाति स्पृशति दह्यते ज्वलति, अनन्तरं हन्यते यदि चौरस्य कर्ता भवति।।श्रीः।।

यदि चौरस्य न कर्ता भवति तस्य प्रतिक्रियामाह—

अथ यदि तस्या कर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिंसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि सः चौरस्य न कर्ता भवति तदा आत्मानं सत्यं कुरुते एवं सत्यमभिसन्धते इति सत्याभिसन्धः सः सत्येन आत्मामानमन्तर्धाय कवचेन इव च्छादयित्वा परशुं प्रति गृह्णाति न दह्यते, न ज्वलति, अतः विमुच्यते मुक्तो भवति। एवमेव कर्तृत्वाभिमान-रहितः सत्यं परमात्मानं चिन्तयन् मुक्तो भवति।।श्रीः।।

अध्यायमुपसंहरति—

स यथा तत्र नादाह्येतैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति।।३।।

सः यथा एन सत्येन न दह्यते तस्यैव आत्मभूतसिदं सर्वं तदेव सत्यं स आत्मा परमेश्वरः तच्चिन्तनेन विद्वान् न पुनरावर्तते। श्वेतकेतो! तत्त्वमसि तस्य परमात्मनः सेवकः सखा दासः पुत्रः कृपापात्रं नियम्यस्त्वं जीवात्मभूत भवसि इति श्रुत्वा श्वेतकेतुः विजज्ञौ परमात्मतत्त्वं विज्ञातवान् द्विरुक्तिरादरार्थाः अध्यायसमाप्तिसूचिका च।

इह नवभिः खण्डैः आरुणिरुद्दालकः जीवात्मपरमात्मनोः शरीरिशरीरभावमेव नवकृत्वः "तत्त्वमसीति" समुपदिदेश। अत्र "विधिकरणसमानाधिकरणे" इति मतद्वयम्। विधिकरणे पञ्चधा समासः, तेन त्वमसि, तस्मै त्वमसि, तस्मात् त्वमसि, तस्य त्वमसि, तस्मिस्त्वमसि इति। सामानाधिकरणे च शरीरिशरीरभावप्रतिपत्तौ तत्त्वमसि तदात्मकस्त्वमसि तच्छरीरं त्वमसि वा।।श्रीः।।

यं षष्ठाब्दमथाब्दसुन्दरतनुं श्रीचक्रवर्तीमुदाः।
राजा पङ्क्तिरथो रथैः परिवृतो दिव्यं महं योजयन्।
सानन्दं व्रतबन्धभव्यविधया यज्ञोपवीतान्यूतम्।
चक्रे तं रघुसिंधु षोडशकलं षष्ठे स्तुवे राघवम्।।

इति श्रीचित्रकूटवास्तव्यसर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वरश्रीमज्जगद्गुरु-श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामभद्राचार्यकृतौछान्दोग्योपनिषदिषष्ठेऽध्याये श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीराघवो विजयतेतराम

श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

सप्तमः अध्यायः

प्रथमः खण्डः

मंगलाचरणम्

सप्तानामपि पूर्वजं गुणनिधिं सप्तभ्य ईष्यं परम्।
यं ज्ञातुं प्रभवन्ति नो नरवरं सप्तापि सामान्यतः।।१।।

तं तामिस्त्रहरं तमालवपुषं ताम्राक्षमात्तेषुधिं।
सीतानेत्रचकोरचारुशशिनं भूमानमीडे हरिम्।।२।।

षष्ठे यं सत् समुच्चार्य सानन्दं श्रुतयो जगुः,
षड्विंशत्या च शकलैः सप्तमेऽपि तमूचिरे।
सामान्येन विशेषस्य ग्रहणं शास्त्रसम्मतम्।
तामेव रीतिमाश्रित्य सप्तमोऽध्याय ईर्यते।।३।।

यथारुह्य क्रमेणासौ सोपानानां परम्पराम्।
ताटागं तोयमाप्नोति स एवात्र क्रमः स्थितः।।४।।

सनत्कुमारदेवर्षिसंवादच्छलतोऽधुना।
ब्रह्मविद्या महत्वं हि प्रतिमन्त्रं महीयते।।५।।

नारदः पूर्णकामोऽपि शास्त्रज्ञोऽपि विवित्सया।
सनत्कुमारं शरणं गत इत्येव गौरवम्।।६।।

नामोपाशनमारभ्य यावदाशा समर्चनम्।
सप्तद्विगुणितैः खण्डैः सोपपत्युपबृंहणैः।।७।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शाखाचन्द्रीयन्यायेन पारम्पर्यप्रयोगतः।
अध्यारोपापवादाभ्यां भूयोभूमानिरूपितः॥८॥

आपञ्चदशमारभ्य यावदन्तं यथाश्रुतम्।
सामान्यप्रतिषेधेन व्याख्यातं हि विवित्सितम्॥९॥

सत्यस्वरूपो भूमा हि सुखात्मामृतविग्रहः।
निश्चयप्रतिपत्युभ्यां श्रुत्या सम्यक् विवेचितः॥१०॥

ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तꣳ होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच॥१॥

ॐ इति मंगलाचरणं ह निश्चयेन अधीहि भगवः इत्याकारकं मन्त्रं पठन्। मन्त्रस्यार्थः भगवन् मा मध्यापय। नारदः नराय हितं नारं ज्ञानं तद्द्यति यश्तथाभूतः, नरे भवं नारं तद् द्यति खण्डयति इति नारदः एतादृक गुणसम्पन्नः प्रशान्तात्मा देवर्षिरपि समस्तशास्त्रपारंगतोऽपि ब्रह्मबोधमन्तरेण संतोषमलभमानः सनत्कुमारमुपससाद। तं शास्त्राध्ययनचिकीर्षया स्वमुपसन्नं देवर्षिं प्राह सनत्कुमारः यदवेत्थ यदपि जानीषे तेन तद्वर्णनपुरःसरं मामुपसीद मम समीपमागच्छ। ततः ऊर्ध्वं ते तुभ्यं वक्ष्यामि इति सनत्कुमारः तद्ज्ञान सीमा चिखण्डयिषया निर्दिशत्।।श्रीः।।

अथ नारदः निजज्ञानं शूच्या श्रावयति—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजन-विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥२॥

हे भगवः! ऋग्वेदमृचां वेदं ऋग्वेदमध्येमि "ईङ्" अध्ययने इत्यधिपूर्वकस्य उत्तमपुरुषैकवचनरूपम्। अध्येमि साधिकारं स्मरामि। यजुर्वेदं यजुषां वेदः यजुर्वेदः तं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्मकाण्डात्मकम्। सामवेदं साम्नां उद्‌गीथ प्रभृतीनां ज्ञेयानां वेदः सामवेदः तं सामवेदं गीतात्मकम्। आथर्वणं युद्धवर्णनमंत्रसंकलनात्मकमथर्वणा प्रोक्तं आथर्वणं वेदं चतुर्थम् एवं इतिहासपुराणं इतिहासो वाल्मीकीयरामायणं, महाभारतं च पुराणानि मत्स्यादिभागवतान्तानि नन्वेषां रचनाकृदनुरोधेन तत्सादित्वं सादित्वं श्रुतिरनादिः तत्कथं द्वयोः सामञ्जस्यमिति चेत् श्रुतावमीशां चर्चयैव तदनादित्वसिद्धेः। न चानादि रचनाकृतामनुपपतिरिति वाच्यं कथावस्तुनामनादित्वेन तन्निबन्धपरदेववाणी छंदसां सादित्वेन च कथानुपूर्वी वैलक्षण्येन द्वयोरपि सामञ्जस्येनादोषात्। इतिहासौ च पुराणानि च तेषां समाहारः इतिहासपुराणं रामायणं महाभारतम्। पञ्चमं वेदवेद्‌म अतएव "इतिहासपुराणं च पञ्चमोवेद उच्यते" इति भारतवचनं संगच्छते। वेदानां वेदं पञ्चानामपि वेदानां वेद-मुखत्वेन प्रतिपादकं व्याकरणम्। अतएव चतुर्दशसूत्री विवर्णप्रसङ्गे प्राह प्राञ्जलिः पतञ्जलिः— सोऽयमक्षरसमाम्नायः ब्रह्मराशिः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत्। अतएव च पाणिनीय शिक्षा वचनं (येनाक्षरसामाम्नायमधिगम्यमहेश्वरात् कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः पा॰ शि॰ १) एवमेवाह (इति माहेश्वराणि सूत्राणि) इत्यस्य व्याख्यां कुर्वन् नागेशोऽपि लघुशब्देन्दुशेखरे (आनुपूर्वीश्रुतिरेषा लघुशब्देन्दुशेखरसंज्ञा प्रकरण)।। पित्र्य ः पित्रिभ्यो हितं पित्र्यं श्राद्धकल्पं, दैवं देवशास्त्रं, शशिं गणितशास्त्रं, देवम् औत्पातिकमित्यपि, निधिं-सामुद्रिक शास्त्रं, वाकोवाक्यं-न्यायशास्त्रं वाकः पूर्वप्रयुक्तं पाण्याः वाक्यं प्रयुक्तमुत्तरम्। वाक् युद्धरूपं। **देवविद्यां** संस्कृतभाषां, **ब्रह्मविद्यां** ब्रह्मणः वेदस्य प्रतिपादनीं शिक्षाकल्पनिरुक्त रूपां। **भूतविद्यां**-भौतिकशास्त्र, **एकायनं**-राजनीतिं। **क्षत्रविद्यां**-क्षत्राणां क्षत्रियाणां विद्यां-धनुर्वेदं। **नक्षत्रविद्यां**-नक्षत्रसम्बन्धिनी विद्यां ज्योतिषशास्त्रं, **सर्पदेवजनविद्यां**-सर्पनिरोधशास्त्रसङ्गीतशास्त्रं हे भगवः! एतत् इदं सर्वम् अध्येमि जानामि।।श्रीः।।

अथ, "**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।**
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः"।।

गीता ४-३४

इतिस्मृतेः। **सद्‌गुरुपसत्ति** निदर्शकविनयाकारमाहः। सोऽहं इत्यादि—

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतः ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तꣳ होवाच यद्वै किञ्चैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत्।।३।।

हे भगवन्! एतां समस्तां विद्यामधित्यापि अहं नारदः मन्त्रवित् मन्त्रं वेत्ति इति मन्त्रवित् केवलं मन्त्रज्ञाता नैव मन्त्रार्थज्ञाता मन्त्रार्थज्ञानमन्तरेण आत्मज्ञानं न सम्भवति। तात्पर्यमेतत् यत् आनुपूर्व्या वेदश्रुतिः प्राप्तवानस्मि। मन्त्रान् विन्दति इति मन्त्रवित् पिञ्जरगत शुक इव मन्त्रमात्रं रटामि न च तदर्थं चिन्तयामि मन्त्रा हि श्रुतयः , मन्त्रार्थो हि परमेश्वरः नात्मवित् आत्मा परमात्मा, आत्मा जीवात्मा, आत्मा च इति आत्मानौ तौ वेत्तीति आत्मवित् न वेत्तीत्यनात्मवित्, आत्म परमात्मस्वरूपं सेवकसेव्यभावात्मकं न जानामि इति तात्पर्यम्। ह निश्चयेन भगवद्दृशेभ्यः भवद्दृशेभ्यो महात्मभ्यः सकाशात् मे मया नारदेन एवम् अनेन कारेण श्रुतं समाकर्णितं यत् तरति शोकमात्मवित् आत्मानौ जीवात्मपरमात्मानौ वेत्ति सेवकसेव्यसम्बन्धमयो जानाति सः परमात्म्येष्टदैवतः शोकं तरति अपारं शोकसागरं निस्तरति लब्धपारं करोति। किन्तु अहं शोचामि अगाधशोकसागरे निमग्नोऽस्मि तत् तस्मात् भगवान् प्रथमः भगवदवतारः यथोक्तं श्रीभागवते—

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम्।।

—भागवत १-३-६

मामेवं शोचन्तं नारदं शोकसागरनिमग्नं शोकस्य सागररूपस्य दुःखस्य पारं तीरौ तारयतु करोतु। इति इत्थं प्रार्थितः सन् सनत्कुमार तमुवाच यत् त्वं यदेतत् अध्यगीष्ठा तत् नाम एव शब्दमात्रं नामशब्दोऽत्र व्याकरणचर्चितघटपटादि डित्थडवित्थादि व्युत्पन्नाव्युत्पन्नप्रातिपदिकरूपशब्दपरः, नैव परमार्थपरः। व्याकरणेऽपि स्फोटय एव गीयत्वेन निर्णीतः नात्र नामशब्दो भगवद् विधान श्रीरामाद्यर्थकः।।श्रीः।।

अथ साधुशब्दरूपः नाम्नः व्यपकत्वं निरूपयति।

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणिश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या नक्षत्रविद्या सर्वदेवजनविद्यया नामैवैतन्नामोपास्स्वेति।।४।।

ऋग्वेदमारभ्य देवजनविद्यापर्यन्तं नामैव शब्दमात्रं वर्तते इतिहासपुराणः अन्यपदार्थतया जहत्क्लीवत्वविशेषणमिदं वेदस्य। एवं इतिहासः पुराणं यस्मिन् सः इतिहासः पुराणः, एकायनम् एकनयनं मार्गः यस्मिन् तथाभूतं, दैवः उत्पातः निधिः सामदृकज्ञानं देवविद्या देवभाषाः, सर्पदेवजनविद्या सर्पः वासुक्यादि तस्य विद्या, देवजनः किन्नरायक्षाश्च एतेषां विद्या सङ्गीतविद्या इदं सर्वं नामैव शब्दमात्रं तयोः नामः ब्रह्मबुद्ध्या उपास्व भजस्व।।श्रीः।।

फलफलश्रुतिमाह—

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।५।।

एवं नाम ब्रह्मः 'शब्दो ब्रह्मैव' इति बुद्ध्यात्। यः शब्दमुपास्ते सः नाम्नः यावत् गतं येषु येषु लोकेषु नाम्नः गतं नाम सम्बन्धिनी गति व्याप्तिर्वा तेषु तेषु लोकेषु तस्य कामचारः स्वेच्छाचारो भवति। यः नाम ब्रह्मेत्युपास्ते एतत् फलश्रवणेनापि न लुब्धो भूत्वा, नारदः पप्रच्छ भगवः हे भगवन्! नाम्नःशब्दात् भूयः अधिकतरमपि अस्ति, सनत्कुमार उवाच अस्त्येव नारद प्राहः तर्हि नैतेन फलश्रवणेन स्वल्पफलकं नामोपाशिष्ये, किं तर्हि? एतस्मात् भूयो फलवति तत्त्वे मे जिज्ञासा तदेव कृपया मां ब्रवीतु।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये प्रथमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीयः खण्डः

अथ वागुपासनं निरूपयति—

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्चꣳ मनुष्याꣳच पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीꣳ ञ्छवापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकं धर्मं चाधर्मं सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्वेति।।१।।

वाव निश्चयेन नाम्नः मन्निर्दिष्टोपास्य नामापेक्षया वाक् वाणी भूयसी अधिकतरा भूयस्त्वे हेतुं प्रपञ्चयति। वाक् ऋग्वेदं वागेव विज्ञापयति ज्ञानविषयतां नयति, एवमेव ऋग्वेदमारभ्य देवजनविद्यापर्यन्तं त्वज्ज्ञातम् आकाशादि पञ्चभूतानि देवमनुष्यतिर्यक्योनिः हृदयज्ञं सुन्दरं 'हृदयज्ञो मनोज्ञश्च सुन्दरः सुभगः रुचिः" इति कोषात् अहृदयज्ञं असुन्दरं, धर्मं वेदविहितकर्मानुष्ठानजनितादृष्टरूपमधर्मं तद्विपरीतं, सत्यं यथार्थभाषणम्, अनृतं व्यलीकं, साधु उचितम् असाधु अनुचितं, इदं सर्वं वागेव विज्ञापयति, यदि वाग् नाभविष्यत् तर्हि किमपि नाव्यज्ञापयिष्यत्। यथोक्तं वाक्यपदीये—

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भाषते।।

(वाक्यपदार्थब्रह्मकाण्ड) तस्मात् वाचमेव ब्रह्मदृष्ट्योपास्व।।श्रीः।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फलश्रुतिं निर्दिशति—

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।२।।

एवं यः वाचं ब्रह्मेति ब्रह्मभावनया उपास्ते स यावद्वाचोगतं वाण्याः गतिं यावत् वाग्गोचराणां लोकानामस्य कामचारो भवति। फलश्रुतितोऽपि न लोभितो नारदः वाचोऽपि भूयस्तत्वं जिज्ञासते, सनत्कुमारः प्राह-अस्ति वाचोऽपि भूयः किमपि नारदः भगवान्तद् ब्रवीतु यतो हि साम्प्रतं नाल्पे मे मनो रमते परम्परया यत्र भूयस्त्वात् व्यस्यति भवान् तदेवोपाषिष्ये इति हार्दं नारदीयम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये द्वितीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

तृतीयः खण्डः

अथ मन उपासनां निरूपयति—

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वे वा कोले द्वौ वाक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्वेति।।१।।

मनो हि वाचो भूयः अधिकतरमुपपत्तिमाह-जीवो यत्किंचिद् मनस्यति तदेव कुरुते यथा शास्त्राणि अधीयीय शास्त्राध्ययनं कुर्यां इति चिन्तयते तदा शास्त्राण्यधीते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्माणि कुर्वीय इति अभिलषति तदा तानि कुरुते। एवम् इच्छीय इति पुत्रपशून् अध्यवस्यति तदा तदर्थें यतते अतः मन आत्मा जीवनं मनो लोकः मनोमयोऽयं संसारः मनसो ध्यानव्यापारत्वात् ध्यानस्य च वासनायतनतया तन्मूलत्वाच्च संसारस्य तस्मान् मन एव ब्रह्मबुद्ध्योपास्व।।श्रीः।।

फलश्रुतिं ततोऽप्यधिकतरस्य नारदजिज्ञासां निरूपयति—

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।।२।।

यो वै मनः ब्रह्मत्वेनोपास्ते तस्य मनसः गतं गतिं यावत् मनोगोचरलोकपर्यन्तं कामचारः कामानां संचरणं भवति। मनोगोचरलोकतोऽपि न लोभमापादितो नारदः ततोऽपि भूयस्तत्वं पप्रच्छ सनत्कुमारोऽपि अस्तीति प्रत्यवोचत् तद्ज्ञातुं ब्रवीतु अतिप्रार्थयते देवर्षिः।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये तृतीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

चतुर्थः खण्डः

अथ संकल्पोपासनां वर्णयति—

संङ्कल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै संङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि।।१।।

सङ्कल्पः मनसः भूयान् अधिकतरः उपपत्तिमाह-यदा संङ्कल्पयते अध्यवसायं करोति तदा मनस्यति ध्यायति तदेव वाचं वाणिम् ईरयति वदति। तां नाम्नि शब्दविषये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निश्चयेन ईरयति प्रयुङ्क्ते नाम्नि शब्द एव मन्त्राः कर्मप्रतिपादकाः एकं क्रियावेशेषणमेतत् एकीभावमापाद्यन्ते।।श्रीः।।

तत् परिशेषमाह—

तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि संङ्कल्पात्मकानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तामा पश्च तेजश्च तेषाꣳसंक्लृप्त्यै वर्षꣳ सङ्कल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नꣳ सङ्कल्पतेऽन्नस्य प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानाꣳ संक्लृप्त्यै मन्त्राः सङ्कल्पन्ते मन्त्राणाꣳ सङ्क्लृप्त्यै कर्माणि संङ्कल्पन्ते कर्मणाꣳसङ्क्लृप्त्यै लोकः संकल्पते लोकस्य सङ्क्लृप्त्यै सर्व ꣳ सङ्कल्पते स एष सङ्कल्पः सङ्कल्पमुपास्स्वेति।।२।।

तानि कर्माणि संङ्कल्पायिकायनानि, सङ्कल्पः एकयनं गतिः येषां तथाभूतानि सङ्कल्पैकगतीनि, सङ्कल्पः आत्मा येषां तानि संकल्पकात्मकानि संङ्कल्पाधाराणीति भावः। प्रत्येकं कर्मणः संङ्कल्प एव आधारो भवति एवं सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि लब्धप्रतिष्ठानि द्यावापृथिवी द्यौः पृथिवी च इति द्यावापृथिव्यौ "सुपां सुलुक्" इत्यनेन पूर्वसवर्णदीर्घे, द्यावा पृथिवी समकल्पेतां सङ्कल्पमकुरुतां एवं वायुः आकाशं समकल्पयतां सङ्कल्पं कृतवती आपः समकल्पयन्तां सङ्कल्पं कुर्वन्ति स्म। तेजोऽपि तथाऽकरोत्, तेषां द्यावा पृथिवी वाय्वाकाशजलतेजसां सङ्क्लृप्ते सङ्कल्पसिद्धये वर्षं समकल्पयत्। तत् सङ्कल्पसिद्ध्यै अन्नं समकल्पयत्, एवमेव अन्नस्य सङ्कल्पसिद्धये प्राणाः संङ्कल्पन्ते सङ्कल्पं कुर्वन्ति। तेषां सिद्धये कर्माणि कर्मणां सिद्ध्यै लोकाः सङ्कल्पन्ते, तेषां सङ्क्लृप्त्यै सर्वः संङ्कल्पते चराचरः सङ्कल्पमयो भवति तस्मात् सङ्कल्पमेव ब्रह्मधियोपास्व।।श्रीः।।

अथ सङ्कल्पोपासनफलमाह—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान् वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानोऽभिसिध्यति। यावत्सङ्कल्पस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः सङ्कल्पाद्भूय इति संकल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।।३।।

एवं यः सङ्कल्पं ब्रह्मधिया उपास्ते सः सङ्क्लृप्तान् सङ्कल्पसिद्धान् ध्रुवान् अन्य लोकापेक्षया शाश्वतान् अव्यधमानान् व्यथारहितान् लोकान् कर्दमादिरिव व्यथाशून्यः ध्रुवः प्रतिष्ठितो भवति। तद्गोचरलोकपर्यन्तं कर्दमादेरिवास्य कामचारो भवति। सङ्कल्पोपासन-फलनिदर्शनप्रसङ्गस्तु श्रीभागवते देवहूतिकर्दमविहारप्रघट्टके द्रष्टव्यः एतत् सङ्कल्पसिद्धलोकसुखेनापि न प्रलोभनमानीतो भगवत्कृपानीतो भक्तिमसृणित हृदयनवनीतो भगवान्नारदः ततोऽपि भूयस्त्वे जिज्ञासाञ्चक्रे सनत्कुमारेण अस्तीत्याश्वासितः ब्रवीतु इति प्रार्थयते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये चतुर्थखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

पञ्चमः खण्डः

अथ चित्तं प्राधान्यं निरूपयति—

चित्तं वाव सङ्कल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चित्तं सङ्कल्पात् सङ्कल्पमुपेक्ष भूयः अधिकतरं भवति, चित्तं नाम चतुर्थमन्तःकरणम्। ननु मनोबुध्यहंकारचित्तमीति चत्वार्यन्तःकरणानि परन्त्वत्र मनसोव्यतिरिक्तः सङ्कल्पः श्रुत्येवोक्तः, तर्हि पञ्चभविष्यन्त्यन्तःकरणानि? नैतद्दूषणम्। सांख्यसिद्धान्तो नान्तरङ्गदर्शनं श्रुतेः अतस्तत्सिद्धान्ते सङ्कल्पात्मकं मनः इति सिद्धान्तितम्, परन्तु वेदान्तं नाम परमान्तरङ्गदर्शनं श्रुतिमूलकम् अतएवेदमौपनिषदं कथ्यते। सांख्ये चित्तस्यापि मनस्यन्तर्भावः न वेदान्ते यतो हि मनसः संङ्कल्पः सङ्कल्पा च चित्तं भूयस्त्वेन प्रतिपादितम्। अतो हेतोश्चित्तं पृथगन्तःकरणं मनसः सङ्कल्पस्य भूयस्त्वे न तस्मिन् तस्यान्तर्भावः सङ्कल्पो नाम बुध्यध्यवसायविशेष इति मे प्रतिभाति। एवं सङ्कल्पापेक्षया चित्तस्य भूयस्त्वं यदा चेतयते सम्यक् चिन्तनं करोति तदनुसङ्कल्पं तदनुमनस्यनं तदनुमन्त्रे कर्मणमेकिभवनं भवतीति श्रुतिहार्दम्।।श्रीः।।

उपपत्तिपारिशेष्यमाह—

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान्भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति।।२।।

तानि सङ्कल्पादीनि चित्तैकायनानि केवलचित्तगतिकानि, चित्तात्मानि चित्तमेव आत्मा उत्पत्तिस्थानं येषां तथाभूतानि चित्त एव प्रतिष्ठितानि। यद्यपि कोऽपि बहुवित् बहु समधिकं वेत्ति यस्तथाभूतोऽपि यदि अचित्तः अस्पष्टगुणचित्तः तदा लोके अयं न किमपि वेद इति व्यवहरन्ति। कथमिति चेदाह, यदि बहुवित् तर्हि कथमचित्तः यतो चित्तस्ततो न विद्वान्, यदि चित्तवान्सन्न विद्वान् तदापि तस्मै तदर्थं सर्वे सुश्रूष्यन्ते सेवन्ते द्वितीयार्थे वा चतुर्थी। अतएव येषां सङ्कल्पादीनां चित्रमेकायनं चित्तमेव आत्मा जीवितं जनानां चित्तं प्रतिष्ठा सर्वेषामधिष्ठानं तस्मात् चित्तमेव ब्रह्मत्वेनोपास्व।।श्रीः।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चित्रोपासनफलश्रुतिं, ततो भूयसि श्रीनारदजिज्ञासितं प्रस्तावयति,

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान् ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिद्धति। यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।३।।

एवं यो ब्रह्मबुद्ध्या चित्तमुपास्ते स चित्तान् चेतनामयान् शेषं समानम्। अथ चित्रलोकतोऽपि विरतिं लभमानो नारदः प्राह, भगवः भगानि सन्त्यस्मिन् इति भगवस् तत् सम्बुद्धौ हे भगवः! हे पूज्यचरण! एवं ध्रुवत्वप्रतिष्ठात्वविशिष्टलोकप्रदातुः चित्रादपि भूयः अधिकतरं किमप्युपास्यमस्ति सनत्कुमारः प्राह अस्ति चित्ताद्भूयः उपास्यं, नारदः प्रार्थयते भगवान् मे कृपया तत् ब्रवीतु समुपदिशतु इति शब्दः निवेदनसूचकः। ननु सर्वं जानन्नपि सनत्कुमारः कथं नारदाय पूर्वमेव न भूमानमुपादिशत् किमर्थमेतावदनुधावनमचकिरत्? इति चेन्मैवम्।दुरूहविषयो हि क्रमशो बोद्ध्यमानो बुद्धिमनुषज्जते। अल्पबलस्य पयः पिबतो बालकस्य मातुः शनैः शनैर्दुग्धदानवत् रुग्णस्य रोगचिकीर्षणा क्रमश ओषधि प्रयोगवच्च।।श्रीः।।

इति छान्दोग्यमुपनिषदि सप्तमाध्याये पञ्चमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

षष्ठः खण्डः

अथ ध्यानं वर्णयति, ध्यानं नाम निजाराध्यपरमेश्वरनामरूपलीलाधाम्नां मनसि पौनःपुन्येन प्रेमप्रवणतया स्मरणम्। तत् प्रपञ्चयति—

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्याना पादांशा इवैव ते भवंन्ति ध्यानमुपास्स्वेति।।१।।

चित्तात् ध्यानं भूयः अस्य संज्ञानफलरूपत्वात् तद्विस्तारमाह। ध्यायतीव पृथिवी इत्यारभ्य ध्यायन्तीव देवमनुष्या इत्यन्तेन पृथिव्यादयो हि भगवद्विभूतयः तेषाम् अचलत्वं स्थिरत्वं प्रतिष्ठा च भगवद्ध्यानबलेनैव अतोऽत्र इव शब्दः एव परकः। यत्तु प्राचीनैः पृथिवी ध्यायतीव ध्यानं कुर्वाणा इव निश्चला दृश्यते इति व्याख्यातं तदसंगतं, न च तत्र जडत्वात् ध्यानं कथमुपपन्नम्? इति वाच्यं वेदे पृथिव्या देवत्वेन स्वीकारात् तत्र विशुद्धचेतनत्वमुपपत्तेः। यथोक्तं मन्त्रवरणे, **ॐ पृथिवी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुणा धृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।।**

न खलु जडत्वे श्रुत्युक्तप्रार्थनादिसंगच्छेत एवं पृथिवी ध्यायत्येव आन्तरिक्षम् आपः जलानि पर्वताः तदभिमानदेवताः देवाः मनुष्याश्च सर्वे दण्डकविपिनविहारिणं मैथिलां मनोहारिणं श्रीमन्दाकिनां पुलिनललितलीलाकारिणं वल्कलवसनधारिणं श्रीचित्रकूटचारिणं श्रीरामाभिधेयं ब्रह्म सर्वे प्रेमप्रवणचेतसा ध्यायन्त्येव अतएव अचलाः। तस्माद् ये मनुष्याणां मध्ये महत्तां प्राप्नुवन्ति महत्वं लभन्ते। ते ध्यानापादांशाः ध्यानस्य आपादः लाभः ध्यानापादः तस्य अंशः येषु ते ध्यानापादांशा, इव इवार्थस्तु यदि कदाचित् ते भगवद्ध्यानस्य सामग्रेणांशं प्राप्नुयुः। तदा तु स्वर्गापवर्गमपि त्रीणि कृत्य गणयेयुः भगवद्ध्यानपराः। यथोक्तं वृत्रासुरेण श्रीभागवते—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जसत्वाविरहय्यकांक्षे।।

(भागवत ६/११/२५)

तथैव श्रीमानसेऽपि भुषुण्डि प्राह श्रीगरुडं प्रति—

सोई सुख लवलेश बारक जिमि सपने लहयो
ते नहि गनहिं खगेस ब्रह्म सुखहिं सज्जन
सुमति। (मानस ७/८८/ख)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ ये अल्पाः "प्रथमचरमतयाल्पार्ध कतिपयनेमाश्च" अष्टाध्यायी १/१/३४।।

इत्यनेन सर्वनामसंज्ञा विकल्पे स्यभावे पूर्वसवर्णादिकार्यम्। क्षुद्राः क्षुद्रत्वं च भगवच्चरणारविन्दनखमणिचन्द्रचन्द्रिकापीयूषपानरूपध्यानपराङ्मुखत्वेन, तथोक्तं मानसे श्रीशिवेन,

सुनहु उमा ते लोग-अभागी। हरि तजि रोइ विषय अनुरागी।।

(मानस ३/३३/४)

ते महत्वं न लभन्ते यतो न ध्यायन्ति परमेश्वरम्। तर्हि कीदृशास्ते? कलहिनः क्रीयमाणकलहाः पिशुनाः परकथनसूचकाः उपवादिनः परापवादिनिरताः भवन्ति, ये च प्रभवः एतद् दोषनिरसनसमर्थः तेऽपि ध्यानापादांशा एव तस्माद् ध्यानमेव ब्रह्मबुद्ध्या उपास्व। यद्यपि ध्यानं उपासंनाप्रकारः ध्येय उपास्यो भवति अतः पूर्वं फलश्रुत्या नारदं ध्यानलब्धलोकेन लोभयति, निर्लोभं च दृष्ट्वा ततो भूयसि जिज्ञासायै प्रवर्तयति।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।।२।।

एवं यः कश्चन ध्यानं भगवद्चरणारविन्दयो पौनःपुन्येन स्मरणाम् उपास्ते स यावद् ध्यानस्य गतिः तत्र तेषु ध्यानगोचरेषु लोकेषु यथाकामचारः कामम् अनतिक्रम्य इति यथा कामं यथाकामं चरतीति यथाकामचारः यथैच्छविहरणलब्धगतिः एतद्फलं श्रुत्वापि नारदस्य मनोलोभं न प्रविवेश, यतो हि स तु स्वयमेव सकललोकेष्वव्याहतगतिः परिभ्रमत्येव। किमतो वैशिष्ट्यमिति ध्यानतो भूयस्ते जिज्ञासांश्चक्रे अस्त्यतो भूयः किमपीति समाश्वासतः सनत्कुमारेण तच्छ्रोतुकामः ब्रवीत्विति प्रार्थयते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये षष्ठे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तमः खण्डः

अथ ध्यानाद् विज्ञानं भूयस्त्वेन व्याख्याति। ननु श्रीगीतासु "ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते" (गीता १२-१२) इत्युक्तम्। अत्र च ध्यानाद्विज्ञानं भूयस्त्वेन प्रतिपाद्यते इति महदसमञ्जसं श्रुतिस्मृत्योः? नैतद्दूषणं विषयभेदात् ज्ञानविज्ञानयोर्हि विषयभेदः अथ किं नाम ज्ञानम्? किं वा विज्ञानमिति चेदत्र प्राञ्चः ज्ञानम् आत्मानात्मविवेकः, विज्ञानं शास्त्रार्थज्ञानं तन्न मे विचारसहम्। शास्त्रज्ञानात् परमात्मज्ञानस्य श्रेयस्त्वं मा विद्वत्पामरप्रसिद्धं, वेरुपसर्गस्य च वैशिष्ट्यमपि सार्वजनीनं तथा हि विशिष्टं विशिष्टाद्वैतसम्मतं ज्ञानं विशिष्टाद्वैतज्ञानम् अतो ज्ञानाद् विज्ञानं श्रेय इति शब्दार्थः तन्मते यदि शास्त्रज्ञानं विज्ञानम् आत्मज्ञानं च ज्ञानं तर्हि किं आत्मज्ञानात् शास्त्रज्ञानं विशिष्टम्? यदि नहि तर्हि "वि" उपसर्गस्य प्रयोजनं तैरेवालप्यतां निष्प्रयोजनं चेत् वि उपसर्गोपादानं तर्हि श्रुतिस्मृतिविरोधः परिह्रियताम्। विषयभेदमन्तरेण ज्ञानविज्ञानयोः श्रुतिस्मृतिविरोधोविधात्रापि परिहर्तुं न शक्यस्तेषां का कथा, तस्मात् ज्ञानं शास्त्रसद्गुरुकृपया संसारनिःसारत्वविवेकः। विज्ञानं हि विशिष्टं ज्ञानं तच्च विस्मृतनिःसारसंसारसम्बन्धत्वे सति परमात्मपरमाराध्यत्वनिश्चयवत्वे सति सेवकसेव्यभावेन परमात्मसम्बन्धद्रढीकरणविवेकः, इदं विज्ञानमेव ध्यानाद्भूयस्त्वेन प्रतिपादयितुमुपक्रमते। विज्ञानमित्यादि—

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीꣳछ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं चरसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाव शब्दौ निश्चयार्थौ विज्ञानं वाव विज्ञानमेव शास्त्रत परमात्मज्ञानं परमात्मना सह आत्मनः सेव्यसेवकभावसम्बन्धदृढीकरणम्। ध्यानात् भूयः श्रेयः कथम्? तेन विज्ञानेनैव ऋग्वेदं विजानाति, पित्र्यं पितृणा इदम् "पितुर्यत्" इत्यनेन यत् प्रत्ययः, पितृं श्राद्धकल्पं देवानां इदं दैवं देवोत्पातज्ञानम्, राशि-गणितं वाको वाक्य-न्यायशास्त्रम्, एकायनं-एकनयनं निश्चयः यस्मिन् तदेकायनं नीतिशास्त्रम्, देवविद्यां-देवानां विद्या देवविद्या निरुक्तं संस्कृत भाषाः वा, ब्रह्मविद्यां ब्रह्मणः वेदस्य प्रतिपादनसमर्थां शिक्षा कल्पनिरुक्तः छन्दो रूपां भूतविद्यां भूतप्रेतनिग्रहक्षमः तन्त्रविद्यां, क्षत्रविद्यां-युद्धकलां, सर्पविद्यां-पिङ्गलसर्पेण भाषितां पिङ्गलाख्याम्, अथवा सर्पविषनिग्रहः क्षमां गारुडिं विद्यां, दिवं स्वर्गं एवमादीनि सर्वाणि भूतानि धर्माधर्मौ साधु असाधु सर्वं विज्ञानेनैव जानाति, अत एव षष्ठोक्तं भगवत् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति। एतादृशं विज्ञानं ब्रह्मधिया समुपास्व॥श्रीः॥

फलश्रुतिमाह—

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकाञ्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥२॥

एवं ब्रह्मबुद्ध्या विज्ञानमुपासिनो विज्ञानवतः परमात्मज्ञानयुक्तान्, ज्ञानवतः जगत् क्षणभङ्गुरत्वज्ञानयुक्तान् अभिसिध्यति। अनेन लोभेनापि प्रलोभ्यमानो न विचलित-मनाः नारदः ततोऽपि भूयसि जिज्ञासाञ्चक्रे सनत्कुमारोऽस्तीति आश्वासयामास, ब्रवीतु इति नारदो प्रार्थयाञ्चक्रे॥श्रीः॥

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये सप्तमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्॥

॥श्रीराघवः शन्तनोतु॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टमः खण्डः

अथ बलं विज्ञानादपि भूयस्त्वेन बलं प्रतिपादयति अत्र बलं परमात्मविज्ञान-लब्धाभयरूपां भगवत्कृपा बलं वा यथोक्तम्—

बलं बलबतां चाहं कामरागविवर्जितम्। गीता ७-११

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते। स यदा वली भवत्यथोत्थाता भवत्त्युतिष्ठन् परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन् द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति। बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति।।१।।

बलं विज्ञानाद् भूयः अधिकतरं शतं विज्ञानवतः एकमेकः बलवान्, आकम्पयते चालयते यदा बली भवति भगवत्कृपाबलो भवति। तदा उत्थाता भवति परमार्थायाग्रेसरो भवति। उतिष्ठन् उपसत्ता भवति, गुरुसन्निधिं गन्तुकामाः भवति, उपसीदन् तत्त्वबोधाय गुरुसमीपे तिष्ठन् श्रोता भवति श्रवणाधिकारं प्राप्नोति, मन्ता भवति मननाधिकारी जायते, अनन्तरं विज्ञाता भवति विज्ञानपात्रतां गच्छति किं बहुना बलेनैव पृथिवी तिष्ठति एवमन्तरिक्षादयः तस्मात् बलमेव ब्रह्मदृष्ट्या उपास्व।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बलोपासनां कुर्वन् बलगोचरलोकेषु कामचारवान् भवति, येषु लोभोऽपि नारदं नालोभयत् तदा नारदः ततो भूयसि जिज्ञांसाञ्चक्रे: सनत्कुमारश्च उपदेष्टुं प्रतिज्ञातवान्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये अष्टमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

नवमः खण्डः

अथान्नं बलतोऽपि भूयस्त्वेन वर्णयति—

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्रीर्नाश्नीयाद्यद्युह जीवेद-थवाद्रष्टाश्रोतामन्ताबोद्धाकर्ताविज्ञाता भवत्यथान्नस्यायै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति।।१।।

अन्नं बलतः श्रेयः, कथम्? यदि कोऽपि दशरात्रीः दशरात्री पर्यन्तं नाश्नीयात् तदा पूर्वं तु जीवनमसम्भवं यदि कथञ्चित् जीवेत् तदा अश्रोता अद्रष्टा एवं सर्वत्र अकाराप्रश्लेष्टव्य, श्रवणमननकर्तृत्वविज्ञातृत्वद्यभाववान् भवति। अन्नस्य आये प्राप्तौ श्रवणादिवान् भवति अतः अन्नं ब्रह्मदृष्ट्या उपास्व।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतोऽभिसिध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद् वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवम् अन्नोपासनं कुर्वन् अन्नं पानवतः लोकान् प्राप्नोति, अन्नगोचरलोकेषु कामानुसारं विहरति अस्माल्लोभादपि विरज्यमानो नारदो जिज्ञासते ततो भूयसि अतः सनत्कुमारः ततोऽपि श्रेयः समुपदिशति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये नवमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

दशमः खण्डः

अथ जलमन्नतो भूयस्त्वेन निर्दिशति—

आपो वावान्नाद्भूयस्यस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद् द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनष्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्ग-पिपीलिकमाप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति।।१।।

आपः जलानि अन्नात् अदनीपात् भूयस्यः श्रेयस्यः यतो हेतुमाह-यदा सुवृष्टिः शोभनवर्षणं न भवति तदा प्राणाः प्रकर्षेण अनन्ति जीवन्ति इति प्राणाः प्राणिनः अथवा प्राणाः सन्ति येषां ते प्राणाः, व्याधीयन्ते व्याधिग्रस्ता भवन्ति। अन्नं कनीयः अल्पतरं भविष्यति, अत्र लडर्थे लृट् भवतीत्यर्थः। यदा सुवृष्टिर्भवति तदा प्राणाः जीवा आनन्दिनः आनन्दशीला भवन्ति, अन्नं च बहु भवति। किं बहुना आप एव मूर्ता प्रजाः पृथिव्यादयः स्वापदानि हिंस्रपशवः कीटाश्च पतङ्गाश्च पिपीलिकाश्च इति कीटपतङ्गपिपीलिकं तदभिव्याप्य वयांसि पक्षिणः एवम् अमूर्ता सूक्ष्मः तस्मात् अप एव ब्रह्मबुद्ध्या उपास्स्व।।श्रीः।।

आपोपासना फलश्रुतिमाह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामाꣳस्तृप्तिमान् भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।।२।।

यः अपः ब्रह्मदृष्ट्या उपास्ते सः सर्वान् कामान् मनोभिलषितान् आप्नोति। एवं अप गोचरलोकेषु तृप्तः सन् विहरति यथेच्छं, यतल्लोभतोऽपि निर्वृण्णो देवर्षिः ततोऽप्यधिकतरे जिज्ञासते स्म, तद् विरतिं विलोक्य सनत्कुमारः जलतोऽप्युत्कृष्ट तत्त्वमस्ति इति निरदिशत् तज्ज्ञानाय नारदः ब्रवीत्विति प्रार्थयाञ्चक्रे।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये दशमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

एकादशः खण्डः

अथ तेजो भूयस्त्वं वर्णयति—

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेज उपास्स्वेति।।१।।

तेजः अद्भ्यः जलेभ्यः भूयः अधिकतरं, तेजः वायुम् आगृह्य निगृह्य आकाशं नभोमंडलम्अभितपति ऊष्णं करोति। अत एव जनाः आहुः निशोचति बहूष्मा भवति,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतः वर्षिष्यति मेघ इति शेषः। तत् तस्मात् पूर्वं तेजः दर्शयित्वा आत्मान अपः सृजते जलं रचयति, एवमूर्ध्वाभिः उपरिगताभिः तिरश्चीनाभिश्च परिवृताः विद्युद्भिः ह्रादाः मेघाश्चरन्ति तेजोमयशंपासंयुतत्वादिति भावः तस्मात् तेज एव ब्रह्मबुद्ध्या उपास्व इति भावः।।श्रीः।।

अथ फलश्रुतिमाह—

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति। यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।२।।

यः तेजसो ब्रह्मभावेनोपासनं कुरुते स भास्वतः प्रकाशमानान् अपहततमस्कान् अपहतं विनाशितं तमः येषां तथाभूतान् लोकान् तेजस्वी सन् गतं प्रशरणं यावत् अस्य यथाकामचारः यथेच्छगमनं भवति सूर्यचन्द्रात्मकं तेजो यावत्भासयते तावदेव अयं गच्छति, तस्मात् बहिर्भूते भगवद्धाम्नि नास्य गतिः, तत्र तेजसः प्रसरणासंभवात्। नं तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमाविद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः (कठ० १.३.१३) इतिश्रुतेः।

न तद्भासयते सूर्योनशशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

(गीता० १५.६)

इति स्मृतेश्च। एवं तेजोमयलोकं प्राप्यापि नाकृष्टो नारदः, जिज्ञासते ततो भूयसि अस्तीति तेजसो भूयः किमपीति सनत्कुमारः प्राह तद्वेत्तुं नारदोऽपि भगवान् ब्रवीतु इति प्रार्थयाञ्चक्रे।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये एकादशखण्डे श्रीराघवकृपाभभाष्यं संपूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वादशः खण्डः

अथाकाशं तेजसो भूयत्वेन प्रतिपादयति—

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशेन रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति।।१।।

आकाशः एव तेजसो भूयान् उत्कृष्टतरः, ननु अन्नतः जलं जलतस्तेजः इत्युत्कृष्टतरत्वक्रमेण तेजसोवायोर्भूयस्त्वं कथन्नोक्तम्? वायुं तेज आगृहणाति "वायुमागृह्य" (छा॰ दो॰ उ॰ ७.११.१ इतिश्रुतेः) तस्मात् तेज उत्पादकं सदपि तन्नियन्तुमशक्यत्वात्। न तस्मात् भूयः, अत आकाशभूयस्त्वं, आधारआधेयाद्भूयान् भवति इत्युपपादयति। उभौ सूर्याचन्द्रमसौ सूर्यश्च चन्द्रमाश्च इति सूर्याचन्द्रमसौ देवताद्वन्द्वे इत्यनेन अनङ्। विद्युत् नक्षत्राणि चपलातारकाः अग्निः इमे सर्वे तेजोमयाः आकाश एव सन्ति एवं तेजोमयीवाक् (छान्दो॰ उ॰ ६.४.३) इतिश्रुतेः। तेजोमयवागीधकरणेन आकाशे नाह्वयति आकारयति, परस्परमाकाशेन शब्दगुणेन कर्णविवरवर्तिना शृणोति तेनैव प्रतिशृणोति तेजोमयशब्दस्याकाशगुणत्वमेव तेजोभूयस्त्वं तस्मिन् प्रमाणयति, एवम् आकाशे रमते क्रीडति आकाशे न रमते आकाश एव न जायते अभिजायते च अंकुरात्मना तस्मादाकाशमेव ब्रह्मबुद्ध्या समुपास्व।।श्रीः।।

अथ फलश्रुतिमाह—

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान्प्रकाशवतोऽसम्बाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमाकाशमुपासीनः आकाशवतः अवकाशयुक्तान् प्रकाशवतः तेजः सहितत्वेन परमप्रकाशमानान् असम्बाधान् जनसम्मर्दवर्जितान् बाधारहितान् वा लोकानभिसिध्यति, तस्य आकाशस्य गतिं यावत् यथेच्छचरणं भवति। अस्मादप्युपरमन् नारदोऽतो भूयसि तत्वे जिज्ञासते स्म, एतेषामपि लोकानां ससीमत्वात्। अथ सनत्कुमारः ततोऽपि भूयसे स्मरतत्वाय संकेतयति तं विज्ञातुञ्चानुरुन्धे देवर्षिः ब्रवीत्विति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये द्वादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

त्रयोदशः खण्डः

अथ स्मरतत्वं निरूपयति— स्मरणं स्मरः पचादित्वात् अच्। उपास्यमानोऽयं जगद्विस्मरणपूर्वकः भगवन्नामरूपलीलाधामस्मृत्याकारः कारामिमां विहिनस्ति—

स्मरो वावाकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्नस्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन् यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन् स्मरेण वैपुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून् स्मरमुपास्स्वेति।।१।।

स्मरः स्मरणम् आकाशाद्भूयः भूयानिति वक्तव्ये भूय इति निर्देशस्तु "व्यत्ययो बहुलम्" इति सूत्रेण क्लीबत्वम्। व्यत्ययात् कथं स्मरः उत्कृष्टतरः इत्युच्यते? कुत्रचित् बहवः जनाः आसीरन् तिष्ठेयुः यदि न स्मरेयुः तर्हि न शृणुयुः नवामन्वीरन् स्मरणमनना भाववन्तो भवेयुरिति भावः तदसत्वे च तदवन्तो भवेयुः स्मरेण स्मरणेनैव पुत्रान्पशून् भगवच्चरित्रादिकं विजानाति अतस्मरमेव ब्रह्मबुद्ध्या उपास्व।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।२।।

एवं स्मरमुपासीनो यावत्स्मरणगोचरं।
यथेच्छचारी स्याल्लोकादतो नैव प्रलोभितः।।
ततो भूयसि जिज्ञासाञ्चक्रे देवर्षिरादरात्।
सनत्कुमारोस्त्याहेति सोऽनुरुन्धे ब्रवीत्विति।। श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये त्रयोदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

चतुर्दशः खण्डः

अथाशां वर्णयति—

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्राꣳश्च पशूꣳश्चेच्छत इमं च लोकममुं येच्छत आशामुपास्स्वेति।।१।।

आशा स्मरादपि भूयसी उत्कृष्टतरा, यतोहि आशया इद्धः आशेद्धः आशया समृद्धमनाः स्मरः स्मरणशीलः मन्त्रानधीते परलोकाशयैव मन्त्रग्रामं पठति, एवं तद्विहितकर्माणि कुरुते आशयैव शुभपरिणामस्य पुत्रान्पशून् लोकं परलोकं येच्छीत अभिलषति। तस्मादाशामेव ब्रह्मबुद्ध्या उपास्व ब्रह्मभावनापन्ना सती एषैवाशा परिकलित श्रीमद्राघवेन्द्र शरन्मृगाङ्कमुखसंदर्शनाभिलाषा भग्नसकलभीषणभवपाशा नाशाय कल्प्स्यते दुरन्तभवबन्धननाशाय।।श्रीः।।

अथ फलश्रुतिमाह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स य आशां ब्रह्मेत्यु पस्त आशयास्य सर्वे कामाः समृद्ध्यन्त्यमोघाः हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।२।।

आशां ब्रह्मेत्युपासीनस्य आशयैव ब्रह्मभूतया सर्वे कामा मनोऽभिलषितपदार्थाः समृद्ध्यन्ति समृद्धाः भवन्ति। अमोघाः आशिषः सफलाः शुभाकांक्षाः एवम् आशागोचरलोकेषु तस्य यथेच्छगमनं, इतोऽपि न लोभवशीभूतो नारदस्ततोऽपि भूयसि जिज्ञासते। भगवः इत्यादिना सनत्सुमारः आशाया अपि समधिकं श्रेष्ठं किमपि अस्ति इति प्राह नारदः भगवान् तदेव ब्रवीतु इति प्रार्थयते स्म।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये चतुर्दशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

पञ्चदशः खण्डः

अथ पञ्चदशप्राणतत्वं निरूपयति—

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वꣳ समर्पितम्। प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति। प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः।।१।।

प्राणः आशाया अप्यपेक्षया प्राणः भूयान् उत्कृष्टतः यथा अराः रथस्य नाभौ समर्पिताः तथैव इदं सर्वं चराचरं प्राणे समर्पितमाश्रितं, प्राणेनैव जीवनभूतेन प्राणः प्राणति इति प्राणः, प्राणवान् याति संसारयात्रां करोति प्राणाः प्राणाय प्राणभृते ददाति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राण एव माता पिता भ्राताष्वसा आचार्यो ब्राह्मण: वात्सल्यपालकत्वरक्षकत्वममत्व-ज्ञानदातृत्वपूज्यत्व विशिष्ट: प्राण एव। प्राणमन्तरेण सकलव्यवहारानुपपत्ते:।।श्री:।।

प्राणत्वमुपपादयति—

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद्भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वास्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति।।२।।

यदि कदाचित् कोऽपि मातृपित्र्यादीन् प्रति भृशं कठोरमाह तदाधिक्कारे पितृहा इत्यादि कथयित्वा तं धिक्कुर्वन्ति। मातरं हन्ति इतिमातृहा प्राणवत्स्वेतेषु कठोरवाक्येऽपि तन्मरण समक्लेशो भवति।।श्री:।।

तद्व्यतिरेकपरिणाममाह—

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहासीति नमातृहासीति न भ्रातृहासीति न स्वसृहासीति नाचार्यहासीति न ब्राह्मणहासीति।।३।।

अथ यदि उत्क्रान्तप्राणा उत्क्रान्त: प्राण: येषां तथाभूतान् प्राणरहितान् यदि शूलेनापि समासं छिन्नं छिन्नं कृत्वा व्यतिषंदहेत् व्यस्तं कृत्वा वा भस्मसात् कुर्यात्, तथापि कोऽपि मातृहा इत्यादि न कथयति तस्मान्मातृपित्रित्यादि निर्देश: प्राणसत्वएव।।श्री:।।

प्रकरणपरिशेषमाह—

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत।।४।।

ह निश्चयेन प्राणः एव एतानि नामादीन्याशापर्यन्तानि भवति, एतान्यभिव्याप्य वर्तते। एतेषां तत्रैव गन्तव्यत्वात् तस्मात् प्राणमयानि एतानि पश्यन् प्राणमेव मुख्यं मन्वानः अतिवादी भवति वादं तत्वबुभुत्साम् अतिक्रामति तच्छीलः यदि कोऽपि एनम् अतिवादीतिक थयति तदायं न अपह्नुवीत न गोपयेत्।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये पञ्चदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

षोडशः खण्डः

एवं वादाति क्रमणकथां श्रुत्वा प्राणमेव परमं तत्वं मन्वानः आत्मानञ्चातिवादिनं विनिश्चित्वानो यदा तत्वबुभुत्सातो विरंस्यन् न कामपि जिज्ञासामाविश्चकार विनिश्चिकाय यत्—

ऋग्वेदादिनामैव नाम ब्रह्मेति विश्रुतं।
नामतोभूयसी वाणी वाचो भूयो मनः श्रुतम्।।
संकल्पो मनसो भूयान् चित्तं भूयस्ततः श्रुतम्।
विज्ञानं च ततो भूयस्तस्माद्ध्यानमुदाहृतम्।
भूयस्तस्माद्बलं भूयः अन्नं भूयः ततः स्मृतम्।
तत आपस्तु भूयस्य ततो भूयस्तु तैजसम्।।
आकाशस्तु ततो भूयः ततो भूयस्मरः स्मृतः।
आशा च भूयसी तस्मात् भूयान्प्राणः ततः श्रुतः।।
प्राण एव परं तत्वं नातोभूयोऽस्ति किञ्चन।
तं जानन्नतिवादी स्यात् जिज्ञासात उपारमत्।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं शिष्यं नारदं सद्ग्राहयितुं षोडशं नामादि प्राणान्ततः सर्वतोऽपि सूक्ष्मतरं सत्यं समुपदिदिक्षुराह—

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

सनत्कुमारः प्राह-वत्स नारद! प्राणोपासनेनैव त्वमात्मानमतिवादिनं मन्यसे जिज्ञासातश्च व्यरंशीः नैतत्पर्याप्तम्। एषः यः पुरुषः अतिवदति स तु सत्येन सदेव सत्यं तेन परमात्मना समनुगृह्णता अतिवदति। तर्हि कथमुक्तं भवतैव यत् **एष एवं पश्यन् मन्वानोऽति वादी भवति** (छान्दोग्य उप० ७/१५/४) इति नाभिप्रायं मदीयं समवगतवान् भवान् सर्वेषां स्थूलानां नामाद्याशान्तानां पदार्थानामपेक्षया प्राणो भूयान्। किन्तु सत्यं ततोऽपि भूयः सर्वतो भूयिष्ठं सत्यम्। ननु पूर्वत्र सनत्कुमारेणैव प्राणतो भूयः सत्यमिति कथं नोक्तम्? अतिवादतो पूर्वेभ्यः चतुर्दशलोकेभ्यः प्रत्येकफलश्रुतिनिदर्शनावसाने नारदं निर्लोभं जिज्ञासमानं च निरीक्ष्य त्वरितमेव ततो भूयांसि तत्वानि प्राह किन्त्वतिवादेन लोभितं प्रशान्तजिज्ञासं प्रति सनत्कुमारः कथं ब्रूयात् **नापृष्ठः कस्यचित् ब्रूयात्** इति स्मृतेः। साम्प्रतं कथं ब्रवीति इति चेत्? अतिवादमेव परं लक्ष्यं मन्यमानस्य सत्यं समयागतस्य नारदस्य अवशिष्टैकमात्रसोपानातिक्रमस्य समधिकहितचिकीर्षया नारदकारुण्यवशंवदो भगवान् सद्गुरुमौलिमणिः सनत्कुमारः सत्यमेव परमं लक्ष्यं निर्दिधारयिषन् सत्येनेति अतिवाद हेतुं परं लक्ष्यमाह। तदा नारदो भग्नलोभसोपानः सत्यं जिज्ञासमान आह, भगवः अहं सत्येनैव अतिवदानि इच्छार्थे लोट्। सत्येन हेतुना अतिवदितुमिच्छामि इत्युक्तः सनत्कुमारः प्राह, तर्हि सत्यं विजिज्ञासितव्यम्, अधुना यावत् असत्यमेव जिज्ञासितवान् असि। तर्हि प्रथममेव नारदं कथं न न्यषेधीत् सनत्कुमारः? असत्यनिदर्शनेन सत्यं दर्शितं भवति शाखादर्शनेन चन्द्रदर्शनमत एव प्राह श्रीहरिः **उपायाशिक्षमाणानां बालानामुपलालनाः। असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।।** (वाक्यपदीय

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाक्यकाण्ड) एवं समुदितजिज्ञासो नारदः प्रार्थयत्-भगवः। सत्यं विजिज्ञासे सत्यविषयिणीं जिज्ञासां करोमि। इति शब्दः जिज्ञासाकारसूचकः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये षोडशे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

सप्तदशः खण्डः

तस्यापि सत्यस्य जिज्ञासाया पूर्वं कानिचित् जिज्ञासितव्यानि सन्ति, यानि द्वाविंशखण्डं यावत् क्रमशो निरूपयिष्यन् तत्रप्रथममाध्यममाह, न प्रथमं सत्यमेव प्रत्युत् तदन्तरङ्गभूतं विज्ञानमुपपत्तिमाह—

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्नसत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

वै निश्चयेन यदा कोऽपि सदेव सत्यं सद्भ्यो हितं वा सत्यं सताम् इदं सम्बन्धिभूतं सेव्यं सत्यं वदति व्याख्याति **वदस्थैर्ये** निजहृदये स्थिरं करोति। तदा विजानन्नेव विज्ञानविषयं कुर्वन्नेव सत्यं वदति, अविजानन् यदि स्वयमेव परमात्मानं निजसेव्यत्वेन नाध्यवस्थिति नाध्यवस्यति तदा ततोऽसत्यभूतान् पावकादीनेव सत्यत्वेन व्याख्याति। यदा विजानाति त्रिवृत् करणमाध्यमेन त्रयाणां रूपाणामेकीभावम् अग्नित्वं व्यस्तेषु तेषु नाग्निन वा परमार्थतस्तानि इति विज्ञानविधिजानन्सत्यं वक्ष्यति। तस्मात् सत्यसहकारी सत्यपूर्वरूपं वा विज्ञानं विजिज्ञासितव्यं स तथैव प्रतिजानीते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये सप्तदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टादशः खण्डः

अथ मतेर्जिज्ञासितत्वं निरूपयति—

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। मतिं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

यदा कोऽपि मनुते मननं करोति तदैव विजानाति विज्ञानवान् भवति, अमत्वा मननमकृत्वा न विजानाति न विज्ञानवान् भवति। अतो निश्चितं मत्वैव विजानाति मननं कृत्वैव विज्ञानवान् भवति। मतिस्त्वेव तु शब्दो हेत्वनुवादकः यतो हि विज्ञानं नामननपूर्वकं तस्माद्तदुपलब्धये मतिः विजिज्ञासितव्या विशेषजिज्ञासाविषयीकरणीया। नारदस्तथैव जिज्ञासां प्रतिजानीते। एवं सत्योपलब्धये विज्ञानं विज्ञानोपलब्धये च मननापरपर्याया मतिः अपेक्ष्यते।।श्रीः।।

इतिच्छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये अष्टादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

एकोनविंशः खण्डः

अथ किं मूलिकामतिरित्याह—

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति। श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

श्रद्धा नाम आस्तिकबुद्धिः यदा श्रद्दधाति लोकपरलोकयोः आस्तिकबुद्धिं करोति तैदव मनुते श्रुतविषयाणां मननं कुरुते, तदैव विजानाति। तदैव सत्यं वदति तदैवातिवादी भवति। अश्रद्दधत् अश्रद्धालुः न मनुते नैव श्रौतार्थमभ्यसति। किं तर्हि? श्रद्दधदेव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुते आस्तिकबुद्धिं कुर्वाण एव श्रुतमभ्यसति, तु अतो हेतोः मननोपलब्धये श्रद्धैव विजिज्ञासितव्या तथेति प्रतिज्ञाय तामेव जिज्ञासते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये एकोनविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

विंशः खण्डः

अथ किं पूर्विका श्रद्धा इत्यत आह निष्ठैव श्रुतिविहितः देवतायां समाराध्यत्व निश्चयोनिष्ठा—

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति
निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति।
निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

निष्ठाया पूर्वभावो हि श्रद्धा प्राप्तावपेक्ष्यते।
अनिस्तिष्ठन् कथं श्रद्धां कुर्यात् तस्माद्धि विद्धि ताम्।।

नारदः तामेव जिज्ञासते। एवं सत्योपलब्धये विज्ञानं, तदुपलब्धये मननं, तदुपलब्धये श्रद्धाः तदुपलब्धये च निष्ठेति क्रमः, निष्ठा नाम परमाराध्यदेवतायां मनसोऽवधान-निश्चयः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये विंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

एकविंशः खण्डः

अथ किं पूर्विका निष्ठा इति वर्णयति—

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति
कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति।
कृतिं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृतिर्नाम भगवन्नामरूपलीलाधामरससमुचितसत्सङ्ग सद्गुरोपसत्तिपूर्वकभागवत-धर्मानुष्ठानम्। यदा करोति तदैव निस्तिष्ठति, ज्ञेयवस्तुनि निश्चयपूर्वकमास्थावान् भवति। तदनुकूलमाचरणमकृत्वा न निस्तिष्ठति, तदभावे श्रद्धारहितः तन्मूलकमननाभावे विज्ञानविहितोः नैव सत्यं प्रतिपत्त्वं प्रभवति। ततो कृतिः विजिज्ञासितव्या, नारदस्तथैव विजिज्ञासां प्रतिशृणोति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये एकविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

द्वाविंशः खण्डः

अथ कृतिः किं मूलिका? इत्यत आह—

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

यदा कोऽपि सुखं लभते तदैव करोति यदि भोजनेन क्षुच्छान्तिरूपं सुखं न लभेत तदा पामरोऽपि भोजनकरणे न प्रवर्तेत। अतः सर्वेऽपि प्राणी परिणामसुखार्थमेव कर्म करोति। एवम् अलब्ध्वा सुखं न कोऽपि कर्म करोति। किं तर्हिः? करणकालेऽपि सुखमनुभवति तत्समकालमेव कर्म करोति। अतः सर्वव्यापारसाधकं सुखमेव विजिज्ञासितव्यम्। एवं नारदः प्राहः भगवन् सुखं विजिज्ञासे इति जिज्ञासाप्रकार-सूचकम्।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये द्वाविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रयोविंशः खण्डः

एवम्—

पूर्वं कृतिस्ततो निष्ठा, ततश्श्रद्धा ततो मतिः।
ततो विज्ञानमित्याहुः ततः सत्यं समश्नुते।।
सुखार्थं वै कृतिर्नूनं, सुखं भूमा इहोच्यते।
सत्यादित्वचोभूमान्तं जिज्ञासाष्टकमीरितम्।।

एवं भूमैव सुखदिमेव जिज्ञासितव्यम्, इदमेव सत्यमे तस्मिन् ज्ञाते कृतिः तदनुनिष्ठाः तदनुश्रद्धाः तदनुमतिः तदनुविज्ञानं तदनुसत्यं सत्ये ज्ञाते न किमपि विजिज्ञासितव्यमवशिष्यते इति हार्दम्। अथ मुख्यं जिज्ञास्यं वृणोति अस्मिन् ज्ञाते सुखं ज्ञातं तदनु कृत्यादयः षट् स्वयमेव ज्ञाताः भविष्यन्ति। अतः तदेव निरूपयति—

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति। भूमानं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

वै निश्चयेन यः भूमा अतिशयेन बहु यस्मिन्नकोऽप्यधिकतरः स एव निरस्त-समस्तदूषणोरणनिहतखरदूषणो लङ्काधिष्ठितविभीषणो मैथिलीहृदयभूषणो रघुवंशभूषणो भगवान् श्रीराम एव परब्रह्म भूमा, स एव सुखं भूम्नि निरवध्येव सुखम्। अल्पे सावधिके जगति सुखं न अस्ति न विद्यते। तस्मात् भूमैव सुखम्। अनुकूलवेद-नीयत्वात्, तु अत एव भूमा एव नान्यः जिज्ञासितव्यः जिज्ञासाविषयः कर्तव्यः। नारदः प्राहः भगवः भूमानम् एव निरतिशयं सुखं विजिज्ञासे विशेषेण ज्ञातुमिच्छामि विज्ञाते हि सत्यमनुभविष्यते तदाहं परमार्थतोऽति वदिष्यामि।।श्रीः।।

इति छन्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये त्रयोविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्विंशः खण्डः

अथ भूम्नः स्वरूपं प्रतिपादयति—

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति सभूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति। स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति।।१।।

यत्र यस्मिन् भूम्नि साक्षात्कृते सति प्रमाता ततः अन्यन्न पश्यति, सर्वत्र भगवन्तमेव पश्यति यथोक्तं मानसे—

सरग नरक अपवर्ग समाना
जहं तहं दीख धरे धनुबाणा

—मानस २-१३१-७

यत्र च नान्यत् शृणोति श्रोता, यत्र च नान्यद्विजानाति तमेव विज्ञानविषयी करोति विज्ञाता, सः एव भूमा। अत्र क्रियापदेन कर्ता आक्षिप्यते। यत्र शब्दश्च सप्तम्यन्तः एवं द्रष्टादृश्यश्रोतृश्रव्यविज्ञातविज्ञेयविभागस्य स्पष्टं सिद्धत्वात् जीवब्रह्मणोर्द्वैतं स्वरूपतः सिद्धम्। अन्यच्छब्दः भूमावधिकव्यावृत्तिप्रतिषेधवाचकः, स एव भूमा यत्र द्रष्टा स एव दृश्यते, श्रोत्रा स एव श्रूयते, विज्ञात्रा स एव विज्ञायते। अथ ततो विलक्षणो यः जीवः तदल्पं तल्लक्षणं करोति। यत्र अन्यज्जानाति, अन्यच्छृणोति, अन्यत्पश्यति तदल्पम् इत्थं ततोऽन्यदर्शन् श्रवणविज्ञानाभावयुक्ते परमात्मनि भूमत्वात् सुखं तद्वज्जीवे अल्पत्वाद् दुःखम् इत्यनेन जीवब्रह्मणोर्भिदा स्पष्टमुक्ता यदुक्तं द्वैते संसारेबन्धनं तत्र, वस्तुतस्तु द्वैते सेवकसेव्यभावेन भवबन्धनभञ्जनमेवं विधः यः भूमा निरतिशयसुखस्वरूपः तदमृतं मृतभिन्नम्। अथ एतद्व्यतिरिक्तं यत् अल्पं तत् मर्त्यं मरणधर्मोपेतं शरीरावच्छेदेन। एवं विज्ञातभूमास्वरूपः। नारद प्राहहे भगवः सः भूमासुखामृतस्वरूपः कस्मिन् प्रतिष्ठितकुत्र लब्धप्रतिष्ठस्तिष्ठति। इति इत्थं पृष्ठः सनत्कुमारः प्राह-स्वे महिम्नि निज महिममयविभूतिषु पृथिव्यादिषु भक्तहृदयेषु साकेतगोलोकवैकुण्ठादिषु। किं पूर्णतया उताहो अंशेन?

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अंशेनेत्याह पूर्णतया नैव अत आह यदि वा पूर्णताभिप्रायेण तु न महिम्नि सर्वाधारत्वात् सः कुत्रापि न प्रतिष्ठितः, इति उत्तरसमाप्तिसूचना।।श्रीः।।

भगवन्महिमानमाह—

गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राणयायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति।।२।।

इह अस्मिन् लोके गोअश्वं गवाम् अश्वानां च समाहारः, हस्तिसहितं हिरण्यं सुवर्णंक्षेत्राणि भूमिपरिसराणि आयतनानि इत्येव महिमा आचक्षते। अहमेव न ब्रवीमि। यतो हि इमानि फल्गूनि भगवच्छरीराणि च अन्यः अन्यस्मिन् प्रतिष्ठितो भवति, गवादयोऽपि भगवद्रूपाणि कुत्र तर्हि? भक्तहृदयेषु भगवान् प्रतिष्ठापूर्वकं तिष्ठति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये चतुर्विंशः खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

पञ्चविंशः खण्डः

अथो भूम्नः सर्वत्र सद्भावप्रतिपादनपुरःसरं देशविशेषप्रतिष्ठां निरष्यति। तर्हि किं स्वेमहिम्नीति श्रुतिवाक्यमप्रमाणमिति चेत्? न स्वे महिम्नीति रामकृष्णादिसगुणरूपाभिप्रायेण न महिम्नीति सर्वव्यापकत्वाभिप्रायेण इत्युभयं समञ्जसम्—

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातोऽहङ्कारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳ सर्वमिति।।१।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सः सर्वत्र अधस्तात् नीचैः उपरिष्टात् उपरि पश्चात् पश्चिमे, पुरस्तात् पूर्वस्मिन् विभागे, दक्षिणतः दक्षिणस्यां दिशि, उत्तरतः उत्तरे वामे इदं सर्वं चराचरं स एव परमात्मा स्वस्वरूपभूतं निर्माय तिष्ठति, अतएव तस्य अहङ्कारादेशः अहमित्यादि।।श्रीः।।

अथ आत्मादेशं तद् ज्ञानफलं तद्विपर्ययं च प्राह—

अथात आत्मादेश एव आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वमिति। स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति। अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति।।२।।

एवमेव आत्मादेशः, आत्मशब्दः परमात्मपरः आप्नोति व्याप्नोति इति व्युत्पत्तेः। अधः ऊर्ध्वं चतसृषु दिक्षु सर्वत्र आत्मैव इदं चराचरम् आत्मैव आत्मनः परमात्मनः परिणामभूतम्। एवम् पश्यन् मन्वानः विजानन् श्रवणमननविज्ञानेन स्वातिरिक्तं सर्वत्र परमात्मभावं विभावयन् आत्मरतिः आत्मनि परमात्मनि रतिः रमणं यस्य तथा भवति, आत्मक्रीडः, आत्मना परमात्मना सह क्रीडति विहरति साकेतलोके यः सः आत्मक्रीडः आत्म इव मिथुनं सहचारी यस्य, अथवा आत्मा परमात्मा पुनश्चात्मा, जीवात्मा तयोः आत्मनोः मिथुनं मङ्गलमयमिलनसुखं यस्मिन् तथाभूतम्। एवम् आत्मानन्दः जीवात्मा परमात्मा संयोगजनितआनन्दः यस्मिन् तथाभूतः, स्वराट् स्वानां वशीकृतानामिन्द्रियाणां राजा, अथवा स्वेन परमात्मना हेतुभूतेन राजते दिव्यतः इति स्वराट्। तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारः ये एतद् अन्यत् विपरीतं जानन्ति ते अन्यराजानः अन्ये कामक्रोधादयः राजानः शासका येषां तथाभूताः, तेषां कुत्रापि कामगमनं न भवति, अत्रैव जायन्ते म्रियन्ते। तेषां लोकापि क्षय्याः पाप्मना कुठारभूतेन क्षेत्तुं शक्या ये लोकाः येषां ते क्षय्यलोकाः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये पञ्चविंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षड्विंशः खण्डः

अथ आत्मज्ञानफलं वर्णयति—

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानात्मतश्चित्तमात्मतः सङ्कल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति।।१।।

एवम् आत्मभूतस्य श्रवणमननविज्ञानवतः आत्मत एव आत्मनः सकाशादेव पूर्वोक्ताः प्राणाशास्मरतेजोजलान्नबलविज्ञानचित्रसङ्कल्पमनोवाङ्नाममन्त्रकर्माणि इदं सर्वम् आत्मनः सकाशादेव सम्पद्यते।।श्रीः।।

फलश्रुतिं वर्णयति—

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताꣳ सर्वꣳह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति। स एकधा त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विꣳशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान्सनत्कुमारस्तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते।।२।।

एवं पश्यतीति पश्यः सर्वमात्मत्वेन पश्यन् विद्वान् मत्युं प्राणवियोगंरोगान् त्रिविधांस्तापान्, दुःखतां प्रतिकूलवेदनीयतां न पश्यति। सर्वं पश्यति सर्वशः, सर्वेभ्यः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वमाप्नोति, स एव एकधा जीवः भगवत्सेवकरूपः, त्रिधा पृथिवी जलतेजोमयः, पञ्चधा पञ्चभूतात्मा सप्तधा सप्तधात्ववच्छिन्नः नवधा भगवत्सेवोपयोगि-नवद्वारशरीरावच्छिन्नः पुनः एकादशः समनस्कदशेन्द्रियः सम्पन्नः भगवद्गुणगणा स्वादोपयोगिशरीरः, चकारेण बुद्ध्यहङ्कारचेतोऽवच्छिन्नः, स्मृतः भगवता निजपरिकरार्थं पौनःपुन्येन स्मृतिपथं नीतः। विंशतिः पञ्चभूतपञ्चप्राण पञ्चतन्मात्रपुरुषार्थचतुष्टये भगवद् भजनेति विंशतिसंख्यासम्पन्नः, शतं दशसहस्रं सहस्र नाडी संयुतः सहस्राणि अनन्तरूपाणि भगवत् सेवापयोगीनि बिभर्ति। भगवत् सेवार्थं शुद्धिक्रममाह-आहारशुद्धौ आहरन्ति मनः इति आहाराः इन्द्रियाणि, यथोक्तं गीतासु—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि

गीता २-६७

तेषामिन्द्रियाणां शुद्धिः भगवत् सेवोपयोगेन, तथा हि— चक्षुषो रूपदर्शनेन श्रोत्रस्य कथाश्रवणेन, नासायाः भगवदर्पितपुष्पपरिमलघ्राणेन, त्वचः भगवत् पदपद्मस्पर्शनेन, रसनायाः भगवन्नैवेद्यभोजनेन, वाचो भगवद् गुणगानेन, हस्तयोः भगवन्निमित्तकर्मानुष्ठानेन, पादयोः भगवद् धामगमनेन, पायूपस्थयोः भगवद्भजनप्रतिबन्धक-मलमूत्रविसर्जनेन, मनसः भगवद् विग्रहध्यानेन, बुद्धेर्भगवद् गुणगणाध्यवसायेन, अहङ्कारस्य भगवत्स्वामित्वाभिमानेन, चेतसो भगवच्चरणारविन्दचिन्तनेन, एवमाहारशुद्धौ आहाराणां चतुर्विधानां भक्ष्यादीनां भगवन्नैवेद्यसमर्पणरूपशुद्धौ शास्त्रविहितभोजनप्रतिक्रिया जनितपुण्येन शुद्धौ सत्त्वरूपभावस्य शुद्धिर्जायते। अथवा सीदति परमात्मना सह तिष्ठति हृदये यः सः सत्त्वः जीवात्मा तस्य शुद्धिः सत्त्वशुद्धौ, ध्रुवास्मृतिः भगवद् भक्तिरूपा भवति अविच्छिन्नभगवच्चरणारविन्दध्यानस्मृतिलम्भे स्मृतेः लम्भः भगवच्चरणारविन्दसन्निधानमिति स्मृतिलम्भः तस्मिन् सति सर्वग्रन्थीनां त्रिगुणात्मिकानां विकारात्मिकानां च प्रमोक्ष्य सार्वकालिको विनाशः, इदं मृदितकषायाय मृदिताः विनाशिताः कषायाः कामक्रोधादयो यस्य सः मृदितकषायः तस्मै नारदाय तमसः अज्ञानस्य पारम् अज्ञानसागरस्य तटं भगवान् षडैश्वर्यसम्पन्नः सनत्कुमारः दर्शयति निदर्शयामास। सः सनत्कुमारः स्कन्दः स्कन्दयति कामक्रोधादीन् नाशयति इति स्कन्दः आचक्षते तं विद्वांसः कथयन्ति द्विरुक्तिरादरार्था अध्यायसमाप्तिसूचिका च।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत्पादपाथोजपरागराग मधुव्रतो नारद आप्तबोधः।।
अज्ञानसिन्धोश्च जगाम पारं सनत्कुमाराय नमोऽस्तु तस्मै।।

इति छान्दोग्योपनिषदि सप्तमाध्याये षड्विंशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

इति श्रीचित्रकूटनिवासिसर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वरश्रीमज्जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यमहाराजप्रणीते श्रीराघवकृपाभाष्येछान्दोग्योपनिषदिसप्तमाध्यायः सम्पूर्णः।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टमोऽध्यायः

।।प्रथमः खण्डः।।

प्रभुरपहतपाप्मा विज्वरो यो विमृत्यु-
र्नृपतिरथविशोको योऽजिघित्सोऽपिपासः।
गुणनिधिरभिरामः सत्यकामः स रामो
जयति जगदधीशः सत्यसङ्कल्प एषः।।

समस्तकल्याणगुणाभिरामः संसारपाथोधिविपद्विरामः।
लोकाभिरामोऽवतु पूर्णकामः सीताभिरामः सगुणः स रामः।।

निर्गुणं सगुणं ब्रह्म यं सदा श्रुतयो जगुः।
तमष्टमेष्टसंयुक्तं मुक्ता नांशरणं श्रये ।।

अथषष्ठसप्तमयोः श्रुतिभिरनेकाभिरुपपत्तिभिः नव कृत्वः श्वेतकेतूपदेशच्छलेन "तत्वमसि श्वेतकेतो" इति नवधा समाम्नातमन्त्रेण **"यो वै भूमा तत्सुखं"** (छ. उ. ७,२३,१) "यो वैभूमातदमृतम" (छा. उ. ७,२४,१) इत्यादि ब्रह्मस्वरूप प्रतिपादनपरैर्नैकश्रुतिसकलैः सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तै.उ. २.४.१) इत्यादिभिश्च श्रुतिभिः यो निरस्तसमस्तहेयगुणप्रत्यनीकत्वेन समनन्तसमस्तप्रणतश्रेयोविधित्सु सौन्दर्यैश्वर्यमाधुर्यशौर्यसौशील्यसारव्यसौलभ्यवात्सल्यपतितपावनत्वदीनबन्धुत्वप्रभृतिलोकोत्तरदिव्यगुणानां नित्याश्रयत्वेन प्रत्यपादि। तमेव भूयोऽष्टमे तमालनीलं हृदयदेशे समाराध्यत्वेन महितप्रतिष्ठं प्रमाणयितुं श्रुतिरारभते प्रपाठकंमष्टमम्। ननु सर्वव्यापकस्य भगवतः आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मापश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति। (छान्दोग्य उपनिषत् ७.२५.२) इत्यादिश्रुतेः। सर्वमयस्य हृदयैकदेशपरिकल्पनायां श्रुतेरप्रामाण्यपूर्वकव्यापकत्व व्या घातापत्तिरिति चेन्न **"अणोरणीयान् महतोमहीयान् आत्मास्य जन्तुर्निहितोगुहायां तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान् महिमानमात्मनः"** (कठ १.२.२०) इत्यादिश्रुतेः। सकलविरुद्धधर्माश्रयत्वेन भगवत्येककालावच्छेदेन व्यापकत्वव्याव्यत्वेतिपरस्परविरुद्ध-धर्मद्वयवत्वनिधानत्वेनादोषात्। अत एव पठन्ति यत्सर्वतः पाणिपादंअशब्दमस्पर्श मरूपमव्ययं तदपि निजैश्वर्येण पुरुषाकृतिमणीयसीं विधाय जनानां हृदये तिष्ठति—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संन्निविष्टः"

(कठ-१.३.१३)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतएव श्रीभागवतेऽपि गर्भस्थपरीक्षिद्रक्षाप्रसंगे भगवान् बादरायणोऽपि संस्मरति—

अंङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनं।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम्।।

(भागवत १.१२.८)

श्रुतिप्रमाणितयोरपि ब्रह्मणोनिर्गुणसगुणरूपयोः सगुणस्यैवान्यतरस्य रूपस्य निर्गुणाज्ज्यायस्त्वं भूयः प्रतिपादितं श्रुतिभिः। अत एव पूर्वमणोरणीयान् अणोः जीवादपि अणीयान् अणुतरः सगुणः जीवस्य हृद्देशनिवासार्हः, स एव निर्गुणः सन् महतः महत्तत्वादपि महद्भूताद्वा ब्रह्मणः महतोविष्णोर्वा महीयान् महत्तरः इति श्रुतिः। गरीयस्त्वेन निर्गुणब्रह्मापेक्षया प्राथम्येन सगुणब्रह्मस्मृतिपथमनयत्। यत्तु प्रजजल्पुःप्रच्छन्नबौद्धाः- यद्यपि सत्सम्य-क्प्रत्ययैकविषयं निर्गुणं चात्मतत्वं तथापि मन्दबुद्धीनां गुणवत्वस्येष्टत्वात्सत्यकामादिगुणवत्वं च वक्तव्यम्- (छा.उ. अष्टम अध्याय खण्ड-१-शाङ्करभाष्य अवतरणिका) तत्तु दुराग्रहग्रहग्रस्तविक्षिप्तमस्तिष्कत्रिदोषजनितल्पितमिव नादरास्पदं हास्यास्पदञ्च सत्सम्यक् प्रत्ययैकविषयमिति अनावश्यकं वमता आत्मन्येव महात्मबुद्धिः समारोपि।

वस्तुतस्तु नेति नेतीति वादिनीनां श्रुतीनामप्यनिर्वचनीयतया यद्दुरवगमं तस्मिन् एकतरभावारोपणं प्रकामं दुःसाहसं "निर्गुणं गुणभोक्तृ च" (श्वे. ४.१४ गीता-१३.१४) इति श्रुतिस्मृतिभ्यां समानाकारेणैव वाक्येन निर्गुणस्यापि भगवतो गुणवत्ता सुस्पष्टं प्रतिपादिता।

पूर्वं विचार्यतेऽयं पक्षः, यत् किं नाम निर्गुणं सगुणञ्च निरूपसर्गस्य निर्गमनरूपेऽर्थे स्वीकृते निर्गताः गुणाः यस्मात् तन्निर्गुणं व्युत्पत्तावस्यां भगवति पूर्वगुणाश्रयत्वं सिद्धमेव विद्यमानस्यैव निर्गमनं भवति न ह्यविद्यमानस्यखपुष्पादेर्निर्गमनं साधयितुं शक्यं विधात्रापि, भगवति विद्यमानानां गुणानां निर्गमनं त एव चिकीर्षेयुः, ये भवादृशाः परमेश्वरं मन्यमानमनसो भवेयुः न वयं तादृशाः यदि चेत् निष्क्रान्तागुणायस्मात् तन्निर्गुणामिति त्युत्पत्तिश्चिकीर्षिता तथापि दोषस्तदवस्थ एव एकमेव वस्तु मस्तिष्कं नाम तदेव मुण्डं कथय कपालं वा समानमेवोऽभयं निर्गमननिष्क्रमणं, यदि चेत् कथञ्चित् साधुत्वविक्षयागमनक्रमणरूपार्थम् अविवक्षित्व सिसाधयिषसि तत्राऽपि गुणानां निष्क्रमणप्रयोजनं वाच्यम्। त्वन्मते ब्रह्मातिरिक्तसत्तायाः स्वीकाराभावे ब्रह्मातिरिक्तवस्तुव्यतिरिक्तेन ब्रह्मणोनिष्क्रम्य निर्गम्य वा कुत्र गमिष्यन्ति ते गुणाः तस्मात् अवध्यवधिमतोः साहचर्यानियमात् त्वन्मते च द्वित्वं कल्पयितुमशक्यत्वात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चम्यर्थलापनं मसकस्य सुमेरूश्रृङ्गधारणमिव सर्वथैव दुष्करं कार्यम्। अपरश्च चेतनश्चेतनाद्गच्छति पूर्वमिदं निर्धारणीयं त्वया यद्गुणाश्चेतना:जडा: वा यदि जडा: तर्हि निर्गन्तुं न शक्या:, नहि कुड्यं भूतलाद् गच्छति न वा वृक्षमलवालं जिहासति, यदि चेतनास्तर्हि समागतस्त्वत् प्राणघातको द्वैतवाद:, यस्मात् सिंहाद्गौरिव बिभेसि तस्मात् निजाधिष्ठितशाखाच्छेदमिव निजसिद्धान्तमेव कथं जिघांससि?

अथ चेत् गुणान्निष्क्रान्त: निर्गुण: इति व्युत्पत्तिं कृत्वा परमात्मन्येव निर्गमनादिकं साध्येत, तदप्यनुचितं, शब्दमर्यादाघातश्च शब्द प्रमाणका: वयं न त्वं द्वितीयया सह क्रान्ताद्यर्थे अत्यादय: समस्यन्ते, न तु निरादय: उपसर्गपाठे निर:पश्चात् अति: पठित: तथाहि निर अष्टम: अति: षोडश: इति द्विगुणितव्यवधानंअतिरादिरेषां ते अत्यादय:, अतिमारभ्य तत: पश्चात् पठिता: न चोपसर्गगणपाठ: अस्मदादिकृते इति वाच्यं "प्रादय:" इतिसूत्रे पाणिनिनैव उपसर्गपाठकरणस्य संकेतितत्वात्। यदि चेत् निरुपसर्ग: अत्यर्थक: इति चेत् तदपि न अतेर्निरियोग्यताविरहात् नहि वह्निना सिञ्चति इतिवाक्येन कोऽपि मन्दधीरपि वह्नौ शेकयोग्यतामध्यवस्यति का कथा त्वादृशस्य सर्वज्ञमानिमुकुटमणे:। अथ चेत् निरादय: क्रान्त्याद्यर्थे पंचम्या इति वार्तिकबलेन "कुगतिप्रादय:" इतिसूत्रेण समास:। एवं निष्कौषाम्बि: इति वत्, गुणेभ्यो निष्क्रान्तं निर्गुणामिति विगृह्येत तथापि दोषस्तदवस्थ एव स्वावधिकान्यनिष्ठप्रतियोग्यभावात्, सर्वदैव सर्वदेशवृत्तित्वाच्च त्वदीयं ब्रह्म कं हास्यति कं प्रति वा गमिष्यति इति चेत् साधुत्व प्रक्रियार्थमिदम्। न विवक्षितो निरर्थस्तदा तु पूर्ववदेवापत्ति: अवध्यवधिमत् वैलक्षण्यासंभवरूपानहि एक एव चैत्र: स्वस्मात् स्वं गच्छेत् अवध्यवधिमतो पार्थक्यस्य शास्त्रतो लोकानुभवतश्च सिद्धत्वात् न हि कोऽपि प्रयत्नशतैरपि निजद्रुतचण्डवेगभग्नभूरिभीषणश्रृङ्गमालं भागीरथीप्रवाहं प्रतीपयेत् तस्मात् भवत्स्वीकृतं भगवन् निर्गुणत्वं विडम्बनामात्रम्। एवं केन प्रकारेण त्वया निर्गुणशब्द: व्युत्पादयितुं शक्यते। ब्राह्मणो निर्धर्मत्वं, गुणरहितत्वं च शून्यवादिनां त्वया गृहीतम्। अथ श्रुतिभि: प्रतिपादितं निर्गुणकिमिति चेत्? "शृणु-निरुपमा: गुणा: यस्य तन्निर्गुणं" तथा च निगुणत्वनाम तुल्यधर्मावच्छिन्नानवच्छिन्नगुणप्रतियोगिक-नित्याधारवत्वम्। ननु यदि भगवतो नोपमा निरुपमाश्च भगवदीया गुणा: तर्हि 'समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव' इत्याद्यार्ष वाक्यानि व्याकुप्येरन्? इति चेन्न हीनोपमा एवैता:। अवाङ्मनसगोचरस्य परमेश्वरस्य कथंचित् साधारणोजनस्तत्वं बुध्येत इति कृत्वा बुबोधयिषया शाखाचन्द्रन्यायेन प्रादेशमात्रनिदर्शनमेतत्। अथवा इवार्थस्समुद्रादौ न तु भगवति, एवम् उपमानं कौसल्यानन्दवर्धन: उपमेया समुद्रादय: तद्यथा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सच सर्वगुणोपेता कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथ्वी समः।।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।

—वा.रा.बा.का. १ (१७,१८,१९)

इति प्रघट्टके कथ्यमानम् उपमाष्टकम् उपमानेषु न्यूनतां द्योतयति, अथवा राममेव उपमानं मत्वा उपमेयैरुपमानोत्कर्षवर्धनं। तथाहि स कौसल्यानन्दवर्धनः इव गांभीर्ये समुद्रः, सोमवत् प्रियं दर्शनं यस्य तथाभूतः। अत्रापि अभेदो वत्यर्थः अर्थात् सोमाभिन्नं प्रियं दर्शनं दधानो भगवान्। यद्वा सोमः चन्द्रः अस्त्यस्य आभूषणरूपः सः सोमवान् भगवान् शंकरः सोमवते भगवते शंकराय प्रियं दर्शनं यस्य सः सोमवत् प्रियदर्शनः। यथोक्तं मानसकृद्भिः—

जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भे आइ।
जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नहि अघाई।।

(मानस २।२१०)

श्रीगीतरामायणेऽपि—श्रीगोस्वामितुलसीदासचरणाः आमतन्ति अहल्योद्धारप्रसंगे—

निगम अगम मूरति महेश-मति जुवति वराइ बरी।
सो मूरति भइ जान नयन पथ, इक टक ते न टरी।।

(गीतावली रामायण बा. ५७)

एवमेव धैर्येण, धैर्यरूपगुणेन स इव हिमवान् हिमाचलः, भगवत् सदृश इति भावः। विष्णुना सदृशो वीर्ये, वीर्ये पराक्रमे, विष्णुना असदृशः न समः प्रत्युत् तेन विष्णुरेव समः। उपमेयापेक्षयोपमानस्योत्कृष्टतरत्वात्। एवं क्रोधे क्रोधविषये कालाग्निरेव सदृशो येन स कालाग्नि सदृशः। क्रोधे- कालाग्निरेव कथंचित् एतद् सादृश्यं गन्तुं शक्नोति। एवमेव क्षमया अत्र विषयार्थेतृतीया। केन नियमेनेतिचेत् "प्रकृत्यादिभ्यउपसंख्यानम्" तथाहि क्षमया, क्षमाविषये पृथ्वीसमः पृथिवीसमासदृशा येन। अर्थात् क्षमायामेतस्य पृथ्वीव्यामेव सादृश्यं नैवान्यउपमेयः। धनदेन समस्त्यागे धनदेन इत्यत्र न तृतीया यत्तु त्यागे दाने धनदेन समः कुबेरेण सदृशः इति प्राचीनैर्व्याख्यातं तदसंगतं, कुबेरदानस्य कुत्राप्यप्रसिद्धे। अत एव रघुकाव्ये आक्रमणविधया कुबेराद्धनं समचीकमद्रधुः 'निष्क्रष्टुमर्थं चकमे कुबेरात्' (रघुवंशमहाकाव्य-५।२५) नहि दानशीलः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धनाध्यक्षो भवति लोके, आयमाध्यमेन धनसंचयनियुक्तःसन् कथं व्ययं कुर्यात्, आयप्राणं हि धनं, व्ययसारो हि दानी, तस्मात् धनदेन इति तृतीया असंगता। वस्तुतस्तु धनदस्य कुबेरस्य इनः स्वामी इति धनदेनः शंकरः स एव समः येन अर्थात् त्यागे श्रीरामेण कथंचित् धनदस्य स्वामी शंकर एव सादृश्यं घटयितुं शक्नोति नान्यः। तथोक्तं विभीषणशरणागतिप्रसंगे श्रीमानसे श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासयैः—

जो सम्पति शिव रावनहिं दीन्ह दिये दश माथ।
सोई सम्पदा विभीषणहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।

(मानस ५।४९।ख)

एवमेव सत्ये सैव अपरः द्वितीयः कः? इति चेत् धर्म एव। एवं सर्वाः उपमाः परमात्मानमनिर्वचयीयतयैव बोधयन्ति। अनिर्वचनीयत्वं च यत् किंचित् वक्तुमर्हत्वेसति निःशेषेण वक्तुमनर्हत्वम् इत्यसकृदवोचाम इति समञ्जसम्। तस्मात् "न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः (श्वेताश्वतर ३।९)" इति श्रुतिरपि मानम्। यद्वा निरस्ताः दूरीकृताः गुणाः भक्ताननुकूलाः क्रौर्यादयो येन तन्निर्गुणम्। भगवान् तानेव गुणानालम्बते यैर्भक्तानां सुखावहता। अथवा निरुपद्रवाः गुणाः यस्य तन्निर्गुणं, भगवदीय गुणेषु न कोऽप्युपद्रवः अत एव परमहंसपरिव्राजकाचार्यानप्याकर्षन्ति।

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः।
अध्यगान् महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः।।

(भाग. १।७।११)

महदाख्यानमित्यत्र महतां महापुरुषाणां भगवत् कृपाभाजनीभवताम् आख्यानानि यस्मिन् तत् इति समासः करणीयः। एवमेव जयदेवोऽप्याह 'प्रसन्नराघवे'—

'कवीनां को दोषः स च गुण गणानामवगुणः।।

अथवा निःशेषाः गुणाः यस्मिन् तन्निर्गुणं, समस्ताः गुणाः भगवन्तमेव समाश्रयन्ते "निर्गुणं मां गुणाः सर्वे भजन्ते निरपेक्षकम्" (भागवत ९।४/६७)। निःशेषत्वं च प्रकटितसमग्रमहिमत्वेन अन्यत्र गुणाः सामग्र्येण न तिष्ठन्ति, भगवन्तं विना, क्षोदिष्ठानां जीवानां सामग्र्येण तेषां धारणे सामर्थ्याभावात्। अथवा निःसामान्याः निरस्तसाधारण्याः गुणाः यस्मिन् तन्निर्गुणं भगवतो लोकोत्तरगुणगणनिधानत्वात्, साधारणसौन्दर्यमिव किं भगवतोऽपि? यद्दृष्ट्वा स्वयमेव विसिस्मिये। तथोक्तं श्रीउद्धवेन भागवते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परंपदं भूषणभूषणाङ्गम्।।

(भागवत ३।२।१२)

यथोक्तं मानसेऽपि श्रीभुशुण्डिना—

रूप राशि नृप अजिरबिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी।।

(मानस ७।७७।८)

अथवा निरस्ता अन्तः सीमा विनाशो वा यैस्ते निरन्ताः, निरन्ताः गुणाः यस्य तन्निर्गुणम्। भगवतः गुणानामन्तो नास्ति "विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममेरजꣳसि" ऋग्वेद विष्णु सूक्ते

श्रीमानसेऽपि,

"राम अनन्त अनन्त गुणानि जनम करम अनन्त नामानि"

मानस ७-५२-३

अथवा निरन्तराः भगवता सह व्यवधानशून्यतया संयुक्ताः निरन्तराः निरस्तभेदाः गुणाः यस्मिन् तन्निर्गुणं, गुणाः क्षणमपि भगवन्तं न जहति तदतिरिक्तं तेषामधिष्ठा नाभावात्। एवं भगवतः गुणोऽपि प्रत्येकं भगवद्रूप एव गुणगुणिनोश्च समवायः सर्वतन्त्रसिद्धः, वात्सल्यादयः भगवन्तं न जिहासन्ति भगवानपि तान् न जिहासति। अथवा निरतिशयाः गुणाः यस्य तन्निर्गुणम्, अथवा निश्चिताः प्रणतोद्धारकृतनिश्चयाः गुणाः यस्य तन्निर्गुणं भगवतः गुणैरेव पतितपावनत्वादिभिः भक्तानां उद्धारः क्रियते। अथवा निःश्रेयस्कराः गुणाः यस्मिन् यस्य वा तन्निर्गुणं भगवद्गुणगणैरेव श्रेयो विधीयते श्रेयोऽर्थिनाम्। अथवा निर्लीनाः गुणाः यस्मिन् तन्निर्गुणं सर्वे गुणाः सौन्दर्यादयः भगवत्यवनिर्लीयन्ते। अथवा निष्क्रान्ताः निर्गता वा भक्तकल्याणार्थं गुणाः यस्मात् तन्निर्गुणं भक्तं भगवद्गुणाः यत्किञ्चित्तया समागत्य सनाथयन्ति एवं भूतं निर्गुणं ब्रह्म न तु गुणैर्विहीनं "निर्गुणं गुण भोक्तृ च" इत्यत्र निस्तिरोहिता भगवतो गुणाः अत एव निर्गुणत्वमाहु। एवं गुणानामदर्शनेन गुणवर्जितमित्याचक्षते। वस्तुतस्तु निर्गुणः सगुणयोर्मध्ये न कश्चन भेदः स च भाति यथा परिस्थिति गुणानां तिरोधानसमवधानवैलक्षण्येन न हि एकस्मिन्काल एव भगवदनन्तगुणानां प्राकट्येन जीवकल्याणं भवति। न वा शक्यास्ति प्रकटयितुं भगवत इव तेषामप्यनन्तत्वात्। यथा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिथिलामण्डपे सौन्दर्यं प्राकट्यं रसावहम्। एवं रुद्रत्वप्राकट्यं क्लेशवहं युद्धकाले त्वेतद् विपरीतम् अतः यो गुणस्तिरोहितस्तं प्रति निर्गुणत्वं भगवतः, यश्च प्रकटितमाहात्म्यश्च समुपस्थापितः तं प्रति सगुणत्वं एवमुभयं समञ्जसम् तस्मान्निर्गुणं सगुणाज्यायः इति कथनमनुचितम्। वस्तुतस्तु एकमेव ब्रह्म रूपद्वयावच्छिन्नं, अतः आह गोस्वामी तुलसीदासः—

अगुण हि सगुण हि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुण अरूप अलख अज जोई। भक्त प्रेम वश सगुण सो होई।।
जो गुणरहित सगुण सो कैसे। जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।।

(मानस १-११६-१-२-३)

वस्तुतस्तु निर्गुणात् सगुण ज्यायः भक्तकल्याणकरत्वात् सुलभत्वात् शुभगत्वाच्च इत्येव निश्चितम्। श्रीगीतासु भगवताः द्वादशाध्यायस्य प्रारम्भे तथाहि अर्जुनेन विश्वरूपदर्शनानन्तरम् अव्यक्तसगुणपासकयार्मध्ये कतरः श्रेयान्?

एवं सतत युक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।

तदा भगवता निर्गुणोपासकापेक्षया। सगुणोपासकस्यैव उत्कृष्टा प्रतिपादिता। मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ता तमा मताः।। गीता १२-२

एवमेव भगवता निर्गुणोपासने क्लेशोऽपि प्रादर्शि दुर्लभत्वं च प्रतिपादितम् देहवताम्।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।। गीता १२-५

किं बहुना विदेहोऽपि योगिराज जनकः समाकृष्टो बभूव सगुणसाकारकौसल्याकुमार-श्रीराम दर्शनेन। यथोक्तं मानसे स्वयं जनकराजेनैव—

"इन्हहि विलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा।।" मानस १-२१६-५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत्तु विजल्पितमात्मतत्वं निर्गुणमेव गुणास्तुमायिकाह तन्महदनुचितं नहि मिथ्या भूतमाया परमप्रकाशरूपं ब्रह्म सवलयितुं शक्नोति। अतो भगवत आयुधभूषणवसनानीव तल्लोकोत्तरगुणा अपि दिव्याश्चिन्मया नित्याश्च। एवं भजनीय तत्त्वं सगुण ब्रह्मैव वस्तुतो गुणानन्तरेण परमात्मनोऽपि न तादृशि शोभा या भक्त नयन लोभिनी। अतः मानसकारः श्रीराघवेन्द्रवचनछलेन चतुर्थे सोपाने सुस्पष्टमाह—

फूले कमल सोह सर कैसा।
निर्गुण ब्रह्म सगुण भा जैसा।। मानस ४-१६-२

यथा सारसं कमलं निर्मलेन परिमलेन निरस्त सकलमलेन भ्रमरमावर्जयति स्वाभिमुखं तथैव भगवतो गुणोऽपि कमलमिव निज प्रभावेण भ्रमरमेव त्यक्त गृहां परिभ्रमन्तं सन्तं झटित्यावर्जयति तटागाभिमुखं एवमर्थं समर्थयति रावणवधमहाकाव्ये भट्टी—

न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजम्, न पङ्कजं तद्ययदलीनषट्पदम्।
न षट् पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलम्, न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः।।

यदुप्युक्तं "तथापि मन्दबुद्धीनां गुणवत्त्वस्येष्टत्त्वात्सत्यकामादिगुणवत्त्वं च वक्तव्यम्" इति तदप्यसङ्गतम्। नहि मन्दधीयस्तोषयितु श्रुतीरलीकं वदिष्यति अनेन तस्यामप्रामाण्यापत्तेः भगवतः सगुणत्वप्रतिपादनाय सहस्रशः श्रुतयः बद्धपरिकराः तर्जयन्ति प्रक्षन्नशून्यवादिनः अनुपमेव अपहतपाप्मादयः अष्टौ गुणाः उच्यन्ते। किमिमेवऽलिकाः किं काऽपि माता विषाय स्पृह्यन्तं बालं तं तोषयितुकामा अनिष्टं कालकूटं पायिष्यति, गुणवत्त्वं यदनिष्टं अभविष्यात् तदा भूतार्थवादिनी श्रुतिः तान् नावक्ष्यत्। यदुक्तं मन्दधीनां गुणवत्वस्येष्टत्वात् तत्तु महदनर्थावहम्। भगवतो गुणवत्त्वं तु सकलपरमहंस परिव्राजकपरमाचार्यवीतरागयोगीन्द्रवर्यश्रीमच्छुकाचार्यपादानामपि इष्टम्। तद्यथा—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतो गुणोहरि।। भागवत् १-७-१०

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्।। भागवत २-१-९

हन्त शुकाचार्यसदृशाः परमहंसपरिव्राजकमुकुटमणयः भवत्गुरूणामपि पूज्यचरणाः श्रीराघवमाधवरूपसगुणब्रह्मगुणगणपीयूषपानलम्पटधियोमन्दीधयः त्वमेव महात्मशिरोमणिः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुद्धिवाचस्पतिः नहि ते दोषः। अहः कलिकालस्य महिमा एवं गुणवत्वं शास्त्रसिद्धं सगुणं ब्रह्मैव भजनीयं तथा चाह अत्रत्यैव करुणहृदया माताश्रुतिः। पश्यनिर्मत्सरस्त्वां

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसंम्भवामीत्यभि-सम्भवामीति।। (छान्दोग्य उपनिषद् ८.१३.१)

अस्यान्वयः अहं श्यामात् शबलं प्रपद्ये शबलात् श्यामं प्रपद्ये अश्वः रोमाणि इव पापं विधूय राहो मुखात् प्रमुच्य चन्द्र इव अकृतं शरीरं धूत्वा कृतात्मा ब्रह्मलोकं अभिसंभवामि अभिसंभवामि इति।

एतस्य शब्दार्थः—अहं साधकः श्यामात् नीलजलधरश्यामं सीताभिरामं श्यामवर्णाविच्छिन्नं श्रीरामं प्रसाद्य शबलं जगदवच्छिन्नं त्वदुक्तं निर्गुणं ब्रह्मशबलत्वं च तव दुःखबोधत्वेन स्वाश्रयोपकाराक्षमत्वेन पुनर्शबलात् शबलं निर्गुणं ब्रह्मविहाय श्यामं मोक्षेच्छामपि त्यक्त्वा श्यामं निकामश्यामसुन्दरं समरसमितदसकंधरं नव जलधरबन्धुरं धनुर्धरं श्रीरामं प्रपद्ये शरणं ब्रजामि। यत्तुशमशब्दस्य त्वया हार्दमिति व्याख्यायते, तत्तु तावकीनं हठप्रलपितं नहि कोऽपि मन्दधीः सागरशब्दस्य कमलरूपार्थं मन्येत। विना त्वां पंडितमानिनं, एवं श्यामाङ्ग श्रीरामं प्रपन्नः अश्वैव रोमाणि पापं विधूय राहोः मुखात् चन्द्र इव विवेकतो भग्नसिरसः संसारात् प्रमुच्य मुक्तो भूत्वा कृतात्मा कृतकृत्यः शरीरं पाञ्चभौतिकं धूत्वा समाप्य ब्रह्मलोकं साकेतं अभिसंभवामि संपद्ये। अनेन त्वदुक्त निर्गुणवादमहाटवी दवाग्निनेव विभूतिभूषणभूमिसात् कृता।

अथ प्रकृतमनुसरामः—

हरिः ॐ अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे
दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्न-
न्तराकाशस्तास्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं
तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ।।१।।

हरिः नीलपीतश्रीसीतारामो शरीराभावच्छिन्नसगुणब्रह्मरूपः सीताभिराम श्रीरामः, ॐ भक्तरक्षणसमर्थः निर्गुण ब्रह्म वा, इति द्वयोः ब्रह्मणो स्मरणं कृत्वा हृदयोपासना वर्णनं प्रारभ्यते। इयमेव दहर विद्यापि कथ्यते, अथ सप्तमाध्याये निष्कर्षरूपेण प्रतिपादितस्य भूम्नः कुत्रोपासना क्रियताम्? इति जिज्ञासापामाहः स्वयं कारुणिक श्रुतिः प्रच्छन्नस्य पत्युस्थानं हितचिकीर्षया पुत्रेभ्यो मातेव अस्मिन् एतस्मिन् शास्त्र सद्गुरु कृपापूते ब्रह्मपुरे ब्रह्मनिवासाय समुचितपुरे नवद्वारात्मके शरीरे पूरोपमे आत्ममाहाराजा शासिते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत् योगप्रसिद्धं इदं एतत् अतिसन्निकृष्टं दहरं स्वल्पाकारं पुण्डरीकं तन्मयशक्यतावच्छेदका रूपः, पुण्डरीकमयं कमलनिर्मितं इति भावः। वेश्म गृहं परमात्ममन्दिरं तस्मिन् यः आकाशः अन्तरा कमलगृहमध्ये विराजमानः आकाश इव श्यामः **''आकाश शरीरं ब्रह्म''** तैत्तरीय उ.२.५।

तदन्तः तस्य कमलगृहस्य मध्ये अन्वेष्टव्यं क्लीवत्वं छान्दसाल्लिङ्गव्यत्ययात्। अन्वेष्ठव्य इति भावः। नान्यत्र गन्तव्यं एकाग्रमनसा हृदयकमले भगवान् अन्वेष्टव्यः, आकाश श्याम तदेव विजिज्ञासितव्यं इति स एवं विषयजिज्ञासा करणीया इति ।।श्रीः।।

अथ गुरुशिष्यप्रश्नपरम्परया विषयं सरलं करोति—

तं चेद्ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं
पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः
किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं तद्वाव
विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात्।।२।।

एवं हृदये पुण्डरीकगत परमात्मानं जीवात्मा कथं पश्येत् इति के शिष्याः ब्रूयुः पृच्छेयुः यदस्मिन्ब्रह्मपुरे शरीरे अल्पतरं पुण्डरीकं तत्राप्यल्पतरः आकाशः तस्याऽपि अन्तः किं वर्तते? यत् अन्वेष्टव्यं यस्यान्वेषणम् कार्यम्?।।श्रीः।।

अथ तदन्तः किं विद्यते? इत्यत आह—

यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे
अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च
वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति
यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ।।३।।

अयं आकाशः यावान् यत्प्रमाणकः तथैव हृदयाकाशेऽपि अस्मिन्नेव द्यावापृथिवी स्वर्गलोको मर्त्यलोकः अग्निः वायुः सूर्यः चन्द्रमा नक्षत्राणि ग्रहाः इह लोके यत् अस्ति विद्यते, यः नास्ति परोक्षं वर्तते तत्सर्वं अस्मिन् समाहितं इति तात्पर्यम्।।श्रीः।।

भूयः प्रश्नपरिशेषमाह—.

तं चेद्ब्रूयुरस्मिंश्चेदिदं ब्रह्मपुरे
सर्वंसमाहितंसर्वाणि च भूतानि सर्वे च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कामा यदैतज्जरा वाप्नोति प्रध्वꣳसते
वा किं ततोऽतिशिष्यत इति।।४।।

तं शिष्याच्चेद् पृच्छेयुः यद् अस्मिन्ब्रह्मपुरे आकाशसहितानि सर्वाणि भूतानि सर्वे कामाः इदं सम्पूर्णं प्रपञ्च समाहितम्। तर्हि यदा इदं शरीरं जरा आप्नोति वृद्धावस्था भवति एवं प्रध्वंसते नष्टं जायते तर्हि किं अतिशिष्यते किं अवशिष्टं भवति।।श्रीः।।

अथ शिष्यस्य प्रश्नोत्तरं ददाति—

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्मापहत पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति।।५।।

सः ब्रूयात् इत्थमुत्तरयेत् यत् अस्य शरीरस्य जरया इदं न जीर्यते आकाशनामकं ब्रह्म अस्य वधेन शरीरस्य नाशेनापि इदं लौकिकशरीरपरिच्छेदशून्यतया न हन्यते न हिंस्यते, एतत् सत्यं परमार्थतः ब्रह्मपुरं ब्रह्ममन्दिररूपां अर्थात् स्वयमेव मन्दिरं स्वयमेव देवता, एषः आत्मा परमात्मा अपहत पात्मा अपहतानि पाप्मानि प्रणतानां पातकनि येन तथा भूतः विजरः जरारहितः पापक्षये तदभावात्, विमृत्युः मृत्युरहितः विजरः निजचरणविमुखानां जरा यस्मात् सः विजरः, विमृत्युः विमुखानां विद्विषां च मृत्युरूप, विशोकः विगतशोकः विद्विड् शोकश्च, अविजिधत्सः न विशेषम् अत्तुं इच्छति अथवा अविजिधित्सः नैव विमुखैर्दत्तं अत्तुमिच्छति, अपिपासः प्रीतिरहित दत्तं जलं न पातुमिच्छति, अथवा स्वयमेव क्षुप्तिपासेच्छारहितः। भक्तदत्तं अश्नाति पिवति च अत एव

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(गीता ९-२६)

इति भगवत् वचनं सङ्गच्छते।

सत्यकामः सत्याः अमोघाः कामाः इच्छाः यस्य सः सत्यकामः अथवा सद्भ्यो हितं सत्यं तदेव कामयते। सत्य सङ्कल्पः सत्यः अवितथसङ्कल्पः अद्ध्यवशायः यस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं यथा प्रजा: राजा अनुशास्ति तथैव सर्वा: प्रजा: सर्वकामा: इमं अन्वाविशन्ति प्रविशन्ति।

यथानुशासनम् अनुशासनमनतिक्रम्य यं यं अन्तं प्रान्तं जनपदं वा कामयन्ते तद् तद् व्रजन्ति तमेवमात्मानं आश्रित्य उपजीवन्ति तिष्ठन्ति।।श्री:।।

परिशेषगतिमाह—

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहात्मानमननुविद्य व्रजन्त्येताꣳश्च सत्यान्कामाꣳस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवत्यथ य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येताꣳश्च सत्यान् कामाꣳस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।।६।।

तत् तस्मात् यथा इह अस्मिन् लोके कर्मचित: कर्मभि: समर्जित: लोक: अदृष्ट-परिणाम: क्षीयते नश्यति तथैव अमुत्र स्वर्गलोके पुण्येन जित: पुष्पजित: पुण्य प्राप्त: लोक: स्वर्गाख्य क्षीयते भोगावशानो भवति। अत: ये आत्मानं परमात्मानं अननुविद्य अज्ञात्वा एतानि सत्यान् कामान् व्रजन्ति तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो न भवति। ये च इममात्मानं अनुविद्य विदित्वा लब्ध्वा वा व्रजन्ति तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति स्वेच्छाचरणं जायते।।श्री:।।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये प्रथमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

द्वितीयः खण्डः

अथ दहराख्यहृदयकमलब्रह्मोपासना फलमाह—

स यदि पितृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते।।१।।

स: दहर ब्रह्मोपासक: यदि पितृलोककाम: पितृलोकं कामयते इति पितृलोककाम तथा भूतो भवति, तर्हि अस्य सङ्कल्पेनैव पितर: अर्यमादय: समुपतिष्ठन्ति, तं सेवमानास्तत्तनयन्ति स: पितृलोकेन सम्पन्न: भवति पश्चाद् ब्रह्मैव प्राप्नोति।।श्री:।।

अथापर फलमाह:—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ यदि मातृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन सम्पन्नो महीयते।।२।।

मातृलोककामं गौर्यादयो लोकमातरः नयन्ति तं मातृलोकेन सम्पन्नः स महीयते ब्रह्मोपासनमहिमानं अनुभवति।।श्रीः।।

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन सम्पन्नो महीयते।।३।।

अथ यदि स्वसृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन सम्पन्नो महीयते।।४।।

ब्रह्मज्ञस्य जगतीतले कुटुम्बेष्वासक्तस्य परलोके तत्तत् सुखं दातुं तद्रूपा देवताः समुपतिष्ठन्ति, यथा भ्रातृलोककामस्य भ्रातृरूपाः देवताः, स्वसृलोककामस्य स्वसृभूताः देवताः समुपतिष्ठन्ति।।श्रीः।।

अथ यदि सखिलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य सखायः समुपतिष्ठन्ति तेन सखिलोके सम्पन्नो महीयते।।५।।

अथ यदि गन्धमाल्यलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य गन्धमाल्ये समुत्तिष्ठस्तेन गन्धमाल्यलोकेन सम्पन्नो महीयते।।६।।

एवमेव एतस्य सखिलोककामस्य मित्रलोकं जिगमिषतः सङ्कल्पबलेनैव देवाः सखायः भूत्वा समुपतिष्ठन्ति। एवं गन्धमाल्यमिच्छतः एतत् सङ्कल्पेन निर्मिते गन्धमाल्ये समुपस्थिते भवतः।।श्रीः।।

अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन सम्पन्नो महीयते।।७।।

अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन सम्पन्नो महीयते।।८।।

एवमेव अन्नं भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य भेदाच्चतुर्विधं पानं पेयपदार्थाः सोमरसादि पीयूषान्तः तत्सम्बन्धिं लोककामयतः एते स्वयमुपतिष्ठतः।

एवमेव गीतवाद्य सम्बन्धि गन्धर्वलोकं कामयत सङ्कल्प निर्मिते गीत वादित्रे समुपतिष्ठतः समुपस्थिते भवतः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन सम्पन्नो महीयते।।९।।

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन सम्पन्नो महीयते।।१०।।

एवमेव स्त्रीलोककामस्य सङ्कल्पनिर्मिताः स्त्रियं सेवां विदधति एवमेव यं यं अन्तं लोकं कामयते यं यं च कामं सर्वेऽपि एतस्य सङ्कल्पेनोपस्थितो भवति। तेन सम्पन्नो महिमानं अनु भवति। अथ किमनेन तत्तल्लोकनिर्देशपरफलप्रतिपादकप्रकरणेन यथा एतत् फलप्रलोभितः सामान्यजीवोऽपि दहर ब्रह्मोपास्तां पश्चात् वासनाशेष फलं भुक्त्वा परब्रह्मैव प्राप्नोतु—

यथा माता कट्वौषधं न पिबेत बालाय मोदकं दत्वा तल्लोभतः प्रवर्तयति तत्पाने मोदकदानलोभस्तु ओषधिपाने बालकप्रवृत्तये मुख्यं फलं रोगनाशः, तथैव इहापि मातृलोकमारभ्य स्त्रीलोकपर्यन्तदानं तु ब्रह्मोपासना प्रवृत्तये मुख्यं फलं ब्रह्मप्राप्तिरेव, प्रौढानां कृते इमे लोका न लोभविषयीकरणीयाः येषु लोभे परमात्मप्राप्तिर्विलम्बिता भवति इति वैराग्यार्थमपि।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये द्वितीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

तृतीयः खण्डः

अथ तृतीयखण्डे अनृतपिहितसत्योपासनं वर्णयति ननु ज्योतिस्वरूपस्य सत्यस्य किमर्थममृतपिधानमिति चेदुच्यते आलङ्कारिकं कथनमेतत् तात्पर्यं त्वन्यदेव किं तत्? समाकर्ण्य श्रुतिमिदं चिकथयिषति यत् प्रत्यक्षतः यथा दुग्धं केनचिद्पिधानेन पिहितं भवति तथैव सत्यस्य परमात्मनः स्वरूपमपि असत्येन नाशवता संसारेण नाशवत् कामनासमूहेन च पिहितं, अत इदं निराकृत्य कामांस्त्यक्त्वैव जीवोरामं ब्रह्मलभते इति हार्दम्—

त इमे सत्यकामा अनृतापिधानास्तेषाꣳसत्यानाꣳसतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ते इमे पूर्वोक्ताः सत्याः कामाः सत्संबन्धिनः कामाः किं भूताः? अत आह अनृतापिधाना अनृतं असत्यं पिधानं आवरणं येषां तथाभूताः एवमेव तेषां सत्यानां कामानां यत् अमृतं अपिधानं तेनैव हेतुना सतां मध्ये यः इतः प्रैति ब्रह्मलोकं प्रति प्रतिष्ठते स प्रथमं तं परमात्मानं दर्शनाय न लभते। असत्य व्यवहितत्वात् तस्मादिदं दूरीकरणीयं "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं तत्वम् पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये" (ईश. १५) इति श्रुतेः।।श्रीः।।

दृष्टान्तं निगमयति—

अथ ये चास्येह जीवा ये च ते प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानास्तद्यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि सञ्चरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः।।२।।

अथ अनन्तरं अस्य ब्रह्मज्ञसंबन्धिनः जीवन्ति प्राणान्धारयन्ति इति जीवाः च प्रेताः प्रकर्षेणेताः यान् इच्छन् दिदृक्षमाणोऽपि इह न लभते तानपि दहरे विन्दति। तत्र असत्याः कथं लभ्यन्ते? अतो दृष्टन्तयति-यथा अक्षेत्रज्ञाः न क्षेत्रं जानन्ति तथाभूताः हिरण्यनिधिं न लब्ध्वा उपरि उपरि तस्योपरिष्टादेव भ्रमन्ति किन्तु विन्देयुः नहि एवमेव इमाः प्रजाः तत्रापि अनृतेषु बन्धुबान्धवेषु रममाणाः अहरहः प्रतिदिनं सुषुप्तौ गच्छन्त्योऽपि अनृतेन प्रत्यूढाः क्षणभंगुरजगत्संबन्धिशक्ताः ब्रह्मलोकं न लभन्ते। तस्मात् परिहृत्य जगतसंबन्धिनोऽसत्यान् शाश्वतं संबन्धिनं श्रीरामं ब्रह्म वृणीतेति हार्दम् ।।श्रीः।।

फलश्रुतिमाह—

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्त ँ हृद्यमिति तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति।।३।।

स आत्मादूरे नास्ति प्रत्युत हृदि एव, तस्यैव हृदः आत्मसत्वात् हृद्यं हृदयसंबन्धि हृद्यं सुन्दरं वा निरुक्तं अर्थानुकूलविग्रहः, अयं आत्मा हृदये तस्मात् हृदि अयं इति समुदायो यस्मिन् तद्हृदयं, एवं वित् परमात्मानं हृदयनिवासिनं जानन् साधकः अहरहः प्रतिदिनं स्वर्गं गच्छति द्वित्वस्य तात्पर्यम् यस्मिन्नपि कस्मिन् समये।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ ब्रह्मज्ञगतिं निरूपयति—

अथ य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति।।४।।

अथ अनन्तरं यः पूर्वोक्तसाधकः परमात्मानं हृदिस्थं जानाति सः सम्प्रसादः, सम्यक्प्रसीदति इति सम्प्रसादः इति प्राञ्च वस्तुतस्तु हृदिस्थस्यैव परमात्मनः सम्यक्प्रसादः परमानुग्रहः यस्मिन् स सम्प्रसादः, "मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्। (गीता. १८,५७) इति स्मृतेः। अस्मात्शरीरात् समुत्थाय शरीरभावं तन्निमित्तसम्बन्धिनश्च विस्मृत्य इति भावः। स्वेन रूपेण सेवकसेव्यभाव संबन्धनिबन्धनेन भगवतो नित्यपरिकरात्मना परंज्योतिः साकेताधिपतिं परमात्मानं उपसंपद्य सामीप्यमुक्तिविधया समधिगम्य ईशः आत्मा निरस्तदेहेन्द्रियमनोबुद्धिभावः भगवत् कैंकर्यपरायणः आत्मैव अणिमा विशुद्धजीवात्मा संपद्यते। इति ह निश्चयेन श्रुतिः उवाच। प्राप्यं किम्? इत्यत आह एतत् अमृतं अमृतवन्मधुरं अभयं, अथवा जीवात्मनो विशेषणमिदं मृतभिन्नं भयशून्यञ्च स्वभावं प्रतिपद्यते। किं नाम उपास्यस्य? इत्यत आह तस्य ब्रह्मणः सत्यं नाम उपासनार्हम्।।श्रीः।।

अथ सत्यनामनिरुक्तमाह, सत् इयं इति शब्दद्वयेन इकारं तिरोधाप्य सत्यमिति निष्पद्यते सद्देवतास्त्रीलिङ्गावच्छिन्ना तदर्थं इयमिति तदनुकूलविशेषणं त्रिभिरक्षरै किं किं लभ्यते? इत्यत आह—

तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यत्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोभे यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति।।५।।

तानि सत्यं शब्दे त्रीण्यक्षराणि तद्दर्शयति सत् इयम् तत्र, यत्, सत्, तत् अमृतं मरणाभावं यच्छति ददातीत्यमृतं यं अमृतमृतञ्च उभयं ददाति एवं विद् अहरहः स्वर्गं गच्छति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये तृतीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्थः खण्डः

अथ सेतुरूपं परमात्मानं विवेचयति। सेतुर्हि अतिक्रमणनिरोधाय सरित्सागरपाराय जलमज्जनतोनिवारणाय च प्रभवति भगवान् तस्य नाम रूपं चरित्रं इमे सर्वे सेतवः। अथोक्तं श्रीमानसे—

नाथ नाम तव सेतु नर चढि भवसागर तरहिं।।

अतिनागर भवसागरसेतुः त्रातु सदा दिनकरकुलकेतुः।।

करत चरित नर अनुहरत संसृति सागरसेतु।।

स्वयमेव श्रुतिं पालयतिश्रुतिसेतुपालक राम तुम जगदीश माया जानकी।

(मानस-६.सो.२.) (मा. ३,११,१४) (मा. २, ८७) (मा. २,१२६।)

अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसम्भेदाय नैतꣳ सेतुमहोरात्रे तरतो न जरान मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतꣳ सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः।।१।।

साम्प्रतं ब्रह्मब्रह्मलोकयोरैक्यं निरूपयन्ती श्रुतिः प्राह—अथ उपासनायाः अन्योऽपि क्रमः, यः आत्मा हृदयपुण्डरीक उपास्यते स एषः लोकानां जनानां असंभेदाय परस्परकलहभेदवारणाय विधृतिः विशेषेण धरतीति विधृतिः विशिष्टाधृतिर्धारणक्रिया वा यस्य तथाभूतः, एवं अगाधभवसागरसंतरणाय अयमेव भक्तानां कृते सेतुः पुलं अनुल्लंघनीयत्वात् इमं अहोरात्रे न तरतः नातिक्रामतः, एवमेव जरावृद्धावस्थामृत्युः मरणं शोकः इष्ट वियोगजनितदुःखं सुकृतं पुण्यं दुष्कृतं पापं इमे सर्वेऽपि इमं न तरन्ति। सर्वे पाप्मानः पातकविशेषाः अतः निर्वन्तन्ते अक्लेशयित्वैवास्मान् निवृत्ताः भवन्ति सिनोति तटद्वयं बध्नाति इति सेतुः। एषः अपहतपाप्मा निरस्तपातकः एष एव ब्रह्मलोकः साकेताख्यः।।श्रीः।।

सेतुतरणफलमाह—

तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वाऽन्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतꣳसेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः।।२।।

तस्मात् अपहतपाप्मत्वात् एतं सेतुं तीर्त्वा उल्लंघ्य विशुद्धभक्त्या वशीकृत्य अन्धः नष्टविवेकदृष्टिरपि अनन्धो भवति सूरदासादिवत्। यथोक्तं सूरसागरे—

चरणकमल बंदौ हरिराइ

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अँधे को सब कुछ दरसाइ।
बहिरो सुनै मूक पुनि बालै रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय बारबार बंदौ तेहि पाइ।

(सूरसागर १.१)

विद्धः पूर्वं शरतक्षतेऽपि अविद्धो भवति—

ब्रह्मप्राप्यं यथा श्रीभीष्मः—

इदमाश्चर्यमासीच्च मध्ये तेषां महात्मनाम्।
सहितैर्ऋषिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिः प्रभो।।
यद्यन्मुञ्चति गात्रं हि स शान्तनुसुतस्तदा।
तत्तद् विशल्यं भवति योगयुक्तस्य तस्य वै।।

(म.भा. अ.प. १६८-३-४)

एवं नक्तं अहरेव निष्पद्यते अन्धकारोऽपि प्रकाशतां गच्छति इति भावः। यतो हि एष ब्रह्मलोकः सकृत् सदैव विभातः प्रकाशमयः ब्रह्मलोकः, अथवा असकृद्विभातः निरन्तरं प्रकाशमानः।।श्रीः।।

परिशेषमाह—

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष-ब्रह्मलोकस्तेषाꣳसर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।।३।।

तत् तस्मात् ये ब्रह्मचर्येण इन्द्रियनिग्रहपूर्वकधातुनिरोधेन ब्रह्मलोकं अनुविन्दन्ति प्राप्नुवन्ति, तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति यथेच्छचारो भवति।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये चतुर्थखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चमः खण्डः

अथ यज्ञे ब्रह्मचर्यभावनां निरूपयति—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्टात्मानमनुविन्दते।।१।।

अथ यदि यज्ञः इति जनाः आचक्षते कथयन्ति तद् ब्रह्मचर्यमैव यतो हि यज्ञशब्दस्य विपर्ययेण यो ज्ञाता एवं अनेन ज्ञात्वा परमात्मानं विन्दते एवं यत् इष्टं तदपि ब्रह्मचर्यम्। यतो हि ब्रह्मचर्येणैव आत्मानं इष्ट्वा पूजयित्वा अनुविन्दते प्राप्नोति।।श्रीः।।

अथ सत्रायण मौनयोरपि ब्रह्मचर्यत्वमाह:—

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मानमनुविद्य मनुते।।२।।

एवं सत्त्रायणं ब्रह्मचर्यं उपपत्तिमाह सत्त्रायणशब्दस्य व्युत्पत्तिश्चेत्थम् त्राणं त्रा सतस्त्रा इति सत्त्रा तं अयति प्राप्नोति येन तत् सत्त्रायणम्, एवमेव ब्रह्मचर्येण सत् वस्तुना आत्मानः विकारेभ्यः स्त्राणं प्राप्नोति, एवं मौनमपि ब्रह्मचर्यं यतो हि मनुते इति मुनि तस्य भावः मौनं मननकर्म ब्रह्मचर्येण ब्रह्मं ज्ञात्वा मनुते तत्समानत्त्वात् तदपि ब्रह्मचर्यम् ।।श्रीः।।

अथ अपरामपि ब्रह्मचर्यभावना निदर्शयति—

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वै ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं मदीयꣳसरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्वब्रह्मणः प्रभुविमितꣳहिरण्मयम्।।३।।

अथ यत् अनाशकायनं इति जना आचक्षते तद् ब्रह्मचर्यं एव कथम्? तदुच्यते यत् अनाशकायनं न भवति नाशो यस्य सः अनाशकः नाशरहितः आत्मा, तं अयति येन तद् अनाशकायनम् ब्रह्मचर्यणैव अविनाशिनमात्मानं विन्दति। एवं अरः ण्यः इमौ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वौ समुद्रौ यस्मिन् तद् अरण्यं ब्रह्मलोकः तं अरण्यं अयति येन तत् अरण्यायनं, यतो हि इतः मर्त्यलोकात् तृतीयस्यां मर्त्यलोकमारभ्य तृत्त्वसंख्या बोद्धयायां अरः ण्यः इति द्वौ महारणौ सागरौ अयिरमदीयम् अन्नमयं पानमयं च। सरोवरं अश्वत्थः पिप्पलीवृक्षः, सोमसवनः अमृतस्रावी, एवं देवानां अपराजिता पुः तथा प्रभुविमितं प्रभुणा निर्मितं हिरण्मयं कनकमयं मण्डपम्।।श्रीः।।

फलश्रुतिशेषमाह—

तद्य एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।।४।।

ये ब्रह्मचर्येण वसुमिथुनधर्मत्यागेन अरौ ण्यं इति महासागरौ विन्दति सः ब्रह्मलोके साकेते तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारः इच्छाचारो जायते।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये तृतीयखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

षष्ठः खण्डः

अथ नाडीमाध्यमेन ब्रह्मोपासनं निरूपयति।

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः।।१।।

अथ हृदयस्य नाड्यः अनिम्नः सूक्ष्मस्य पिङ्गलत्वप्रभृतिवर्णविशिष्टस्य सन्ति स एष आदित्यः पिङ्गलत्वादिवर्णविशिष्टोऽस्ति।।श्रीः।।

दृष्टान्तेन सिद्धान्तं स्पष्टयति—

तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं चामुं चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीसु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः।।२।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा एकः महापथः महंश्चासौ पन्थाश्च इति महापथ इमं अमुं च मार्गं आततः सम्बध्य व्याप्तः, तथैव आदित्यश्च रश्मयः इमं लोकं अमुं परलोकं च व्याप्य आतताः ताः अमुष्मात् आदित्यात् प्रतायन्ते विस्तृताः भवन्ति, पुनर्नाडीषु सृताः, एवं ताभ्यः प्रतापमानः अस्मिन् आदित्ये सृप्ताः गताः एवं नाडीद्वारेणैव जीवं सूर्यरश्मयः आदित्यमभिनयन्ति अज्ञानिनां परावर्तनं ज्ञानिनां चापुनरावृत्तिरिति विवेकः।।श्रीः।।

अथ ज्ञानिनो गतीमाहः—

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तदा सम्पन्नो भवति।।३।।

यत्र एतत् येषु जीवः सुषुप्तः भगवत् स्नेहसमाधिसुखे निद्रितः समस्तः पूर्णतां गतः सम्प्रसन्नः निर्विकारसुखे निद्रितः समस्तः पूर्णतां गतः सम्प्रसन्नः निर्विकार तदा आसु नाडीषु पिङ्गलादिषु सृप्तः भवति प्राप्यते, तेजसा सम्पन्नो भवति योज्यते एनं कश्चन कोऽपि पाप्मा। ब्रह्मलोकप्रतिबन्धकः न स्पृशति न परामृशति।।श्रीः।।

अथ मरणदशां वर्णयति—

अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि माँ जानासि मामिति स यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तो भवति तावज्जानाति।।४।।

यदा अबलिमानं नास्ति बलं यस्मिन् सोऽबलः अबलस्य भाव अबलिमा, तं अबलिमानं बलाभावप्रयोज्य मरणसामीप्यं नीतः प्राप्तः तदा ये अभितः आसीना पुत्रादयः ते पृच्छन्ति मां जानासि शरीरं यावत् न उत्क्रान्तः तावज्जानाति परिचिनोति।।श्रीः।।

आनन्तरीक दशां वर्णयति—

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्व-माक्रमते स ओमिति वा होद्वामीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम्।।५।।

अथ यत्र यदा एतच्छरीरात् उत्क्रामति गच्छति तदा एतैः रश्मिभिः किरणैः सौरैः ऊर्ध्वं आक्रम्यते, स ओम् इति उच्चैः मीयते शब्दं करोति। अनन्तरं यावत्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रमाणं कालं वा मनः क्षिप्येत् वेगेन गच्छेत् तदेव वेगेन आदित्यं सूर्यं गच्छति, इदमेव लोकद्वारं लोकयोः इह लोक परलोकयोः द्वारं विदषाम् ब्रह्मज्ञानां प्रपदनं प्रपद्यन्ते ब्रह्मलोकं येन तत् प्रपदनं ब्रह्मलोक प्रापकम्, अविदुषाम् अज्ञानिनाम् निरोधः निरुध्यन्ते येन तथाभूतः।।श्रीः।।

अथ प्रकरणमुपसंहरति—

तदेष श्लोकः। शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति।।६।।

व्याख्यात चरापि श्रुतिरयं पुनर्व्याख्यायते हृदयस्य शतं चैका एकोत्तरशतसंख्याः नाड्यो भवन्ति, तासां मध्ये एका सुषुम्ना मूर्धानम् अभिनिःसृता मस्तकद्वारमभिव्याप्य निर्गता तया ऊर्ध्वं आयन् ब्रह्मरन्ध्रेण गच्छन् अमृतत्त्वं अमृतभावं भगवतोनित्यकिङ्कर-स्वरूपं एति प्राप्नोति। अन्याः इतो व्यतिरिक्ता नाड्यः विश्वं उत्क्रमणे सर्वत्र योनिषु गमने निमित्ती भवन्ति। द्विरुक्तिः प्रकरणसमाप्तिसूचिका।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये षष्ठे खण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

सप्तमः खण्डः

अथेतः यावत् द्वादश खण्डं षड्भिशकलैः षडैश्वर्यसम्पन्नस्य आत्माभिधेयस्य परमात्मनो भगवतः समनुसन्धानं स्पष्टयितुं विरोचनेन्द्रप्रजापतिसंवादयुक्ता आख्यायिकात्मिका मनोहरतमा परिचर्चा प्रारभ्यते। देवराज इन्द्रः दैत्यराजश्च विरोचनः

द्वावपि विख्यातबलवीर्यवैभवौ त्रीणि कृतपराभवो समुल्लीलङ्घिसितभवौ प्रजापति सम्भवौ आत्मतत्त्वं समनुसन्धातुं प्रजापतिमुपाषेदतु तत्र च प्रकरणचतुष्टयकलेवराः आत्ममीमांसा।

प्रजापतिवचनमवतारयति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको-ऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽवेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीहि ह प्रजापतिरुवाच।।१।।

एवं अपहतवाप्मत्वादि व्याख्यात चर गुणाष्टक संयुक्तः यः आत्मा स एव हृदयकमले अन्वेष्टव्यः परिमार्गितव्यः, विजिज्ञासितव्यः अन्वेषणेऽनुपलब्धो महापुरुषानुपसद्य विशेषेण जिज्ञासनीयः, चः आत्मानं अनुविद्य अनुकूल्येन लब्ध्वा वस्तुतस्तु अनुविद्य इत्यस्य समुपाश्रितङ् कृत्वा इत्यर्थः। विजानाति विज्ञानविषयी करोति।

भक्त्या मामभिजानाति (गी. १८-५५ इति स्मृतेः।)

इति प्रजापतिः उवाच प्रजापतिर्नाम कस्यपः न तु ब्रह्म।।श्रीः।।

अथ इन्द्रविरोचनोपसत्तिमवतारयति—

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामानितीन्द्रो हैव देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासं विदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः।।२।।

तत् प्रजापत्युक्तात्मलक्षणं जज्ञकामप्राप्तीं च देवासुराः देवैःसहिता असुरा अनुबुबुधिरे कथंचित् ज्ञातवन्तः। नन्वत्र कथं नैकवद् भावः क्लीवत्वं च? तथा हि सूत्रं येषां च विरोधः शाश्वतिकः समुचितम् पृष्टम्। अत्र आत्मलक्षणश्रवणेन सञ्जात पुण्य-पुञ्जतः उभयेषां विस्मृतसात्विकविरोधत्वात् तन्मूलकक्लीवत्वैकभावाप्रसक्ते दोषपरिहारः। ते ऊचुः मन्त्रयाञ्चक्रुः हन्त आश्चर्ये विस्मये च यमनुविद्य आराध्यत्वेन ज्ञात्वा सर्वान् लोकान् कामांश्च आप्नोति तमात्मानं अपहत पाप्मत्वादि वसुलक्षणं लक्षितमन्विच्छामः मृगयामः। इत्थम् विचार्य समस्तदेवानां प्रतिनिधि इन्द्रः, असुराणां राजा विरोचनो द्वावपि स्व स्ववर्गकल्याणाय ज्ञातुं निश्चिक्कितु। देवानां मध्ये इन्द्रः प्रवव्राज जगाम, असुराणां मध्ये विरोचनः द्वावपि असंविदानौ ब्रह्मतत्वं न जानन्तौ समित्पाणी विद्यार्थिवेषौ प्रजापतिसकाशं कश्यपसविधे आजग्मतुः।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ तयोः उपसत्तिप्रकारमाहः—

तौ ह द्वात्रिꣳ शतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तौ होचतुर्य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्तमिति।।३।।

तौ द्वात्रिंशत् वर्षाणि ब्रह्मचर्यम् उषतु ब्रह्मचर्यव्रतनियमेन अवसतां अथ प्रजापतिः तयोरागमनकारणमपृच्छत् किमिच्छान्तावित्यादि, तदा तावुचतुः प्रजापतिवाक्यमनुवदन्तौ यः आत्मा भवदुक्तः तमिच्छन्तौ आवां ब्रह्मचर्यं अवास्तां व्यत्ययात् प्रथम पुरुष द्विवचनम्।।श्रीः।।

अथ शिष्ययोग्यतानुसारं परम्परया वर्णयत्यात्मतत्त्वं—

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते यश्चायमादर्शे कतम एष इत्येष उ एवैषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत इति होवाच।।४।।

कश्यपः तावुवाच, यः एषः अतिसन्निकृष्टपुरुषः अक्ष्णि नेत्रे दृश्यते योगिभिः एष आत्मा परमात्मा इदमेव अमृतं मरणवर्जितम्, अभयम् भयशून्यं, ब्रह्म अतिशयेन वृहत् एतच्छ्रुत्वा तौ निजपक्षं प्रदर्शयन्तौ प्राहतुः, भगवः भवतु नाम अक्ष्णि दृष्टपुरुषः किन्तु यः अप्सु जलेषु परिव्यायते प्रतिविम्ब्यते आदर्शे च कतमः आत्मा प्रजापतिरवदत् एष एव अक्ष्णि दृश्यमानः सर्वेषु अन्तेषु चराचरेषु परिख्यायते अत्र आत्म प्रतीतिर्वस्तुतो नात्मा नायमात्मा, छायामात्र सः किन्तु अस्मिन्नेवात्मबुद्धिं कुर्वन्तौ समतुष्यतां इन्द्रविरोचनौ।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये सप्तमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अष्टमः खण्डः

एवं पूर्वपक्षं न कुर्वन्तौ असद् ग्राहिणौ शिष्यौ प्राहः प्रजापतिः।

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेऽवेक्षाञ्चक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्चथ इति तौ होचतुः सर्वमेवेदमां वां भगव आत्मानं पश्याव आलोमभ्य आनखेभ्यः प्रतिरूपमिति।।१।।

उदकस्य शरावे पात्रे आत्मानं वीक्ष्य यदि आत्मनः विषये न विजानीथ तन्मां पृच्छथ, ते तथा चक्राते पुनः पृष्टौ उक्तवन्तौ यत् नखतः शिरः पर्यन्तं लोमादिमन्तं आत्मानं प्रतिरूपम् पश्यावः।।श्रीः।।

प्रजापतिरभिप्रायः यत् उदकशरावे आत्मन च्छायां दृष्ट्वा ततः उरी करिष्यत् आत्मबुद्धिं यतो हि छाया पुरुषो नापहत पाप्मत्वादि लक्षणविशिष्टः अतः साध्वलङ्कारकरणाय आदिष्टौ अनेनास्य परिवर्तनेन कदाचित् एतस्मात् अपरिवर्तनीयं विलक्षणो विज्ञास्यते इति—.

तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोशरावेऽवेक्षाञ्चत्क्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति।।२।।

प्रजापतिना आदिष्टौ सुवसनौ शोभनवस्त्रधारिणौ साध्वलङ्कृतौ शोभनालङ्कारौ परिष्कृतौ स्मश्रुनखलोमादिकौ उदशरावे विक्ष्येथां पश्यतम् तथा कृतवन्तौ किं पश्यथः? इति प्रजापतिरपृच्छत्।।श्रीः।।

अथ तयोरुत्तरमाह—

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तावुक्तवन्तौ यथा आवां अलङ्कारवसनपरिष्कारयुक्तौ तथेमावपि, प्रजापतिरुवाच एष आत्मा अमृतत्त्वादियुक्तः किं प्रजापतिरसत्यमवोचत्? न हि दृष्टान्तं यथा एकेव पुरुषः अनलङ्कृतः अन्यादृक् अलङ्कृतश्च अपर इव दृश्यते, तथैव जीवात्मापि शरीरवसनगुणभूषणसंस्कारपरिष्करणवैलक्षण्येन बाल इवाजरठ इति विभिन्नाकारो दृश्यते, किन्तु तौ देहमेव मन्वानावात्मानौ शान्तहृदयौ गतौ।

"नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्" इति नियमात् जानन्नप्यसद् ग्राहिणौ प्रजापतिरपृष्टो नावोचत्।।श्रीः।।

अथ प्रजापतेर्देवानां विरोचनस्य च विपरीतज्ञानमाह—

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचानुपलभ्यात्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति।।४।।

अथ दूरं गच्छन्तौ तौ अन्वीक्ष्य खिन्नमनाः प्रजापतिरुवाच यत् इन्द्र विरोचनौ अपहतपाप्मादि लक्षणां आत्मतत्त्वं अनुपलभ्य अननुविद्य असाक्षात् कृत्य प्रतीतज्ञानौ व्रजेतां, यतरे अहोवत देवाः असुरा वा एतदुपनिषद् एषैव उपनिषद् आत्मज्ञप्तृ एषाम् तथाभूताः पराभविष्यन्ति तथापि श्रुतवन्तौ विरोचनस्तु इमामेव विपरीतबोधां उपनिषदं तामेव समचिख्यपत्। यत् इह आत्मेव महय्य शरीरमेव पूज्यं आत्मैव परिचर्य सेवनीयः इमं पूजयन् परिचरन् सेवमानः इमं अमुं च लोकं प्राप्नोति।।श्रीः।।

असद् ज्ञान परिणाममाहः—

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो वतेत्यसुराणा ँ ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालङ्कारेणेति सँ स्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते।।५।।

तस्मात् विपरीतज्ञानादेव अद्यापि साम्प्रतमपि इह लोके अददानं दानं न कुर्वन्तं अश्रद्धधानं श्रद्धाहीनं भवन्तं अयजमानं यज्ञं न कुर्वन्तं, आसुरः असुसु प्राणेषु तदवति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देहे च रमन्ते इति असुराः तेषु भव आसुर इति आहु असुराणामेव इयमुपनिषत् प्रेतस्य इदं शरीरमेव भोजनेन वसनेन अलङ्कारैश्च संस्कुर्वन्ति मण्डशन्ति। अत एव शवं मण्डयन्तः परलोकं जेष्यन्ते इति ते समध्यवष्यन्ति।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये अष्टमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

नवमः खण्डः

अथ इन्द्रस्य ब्रह्मविचारणामाह—

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलङ्कृते साध्वलङ्कृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति।।१।।

अथ इन्द्रः सात्त्विकविचारतया चिन्तयन्नात्मानं एतद्भयं भीतिं ददर्श, यत् यथा बिम्बे अलङ्कृते प्रतिबिम्बोऽलङ्कृतः सुवसने सुवसनः एवमेव अन्धे अन्धः स्रामे नासिकादि स्रामिणि श्रामः परिवृक्णे हस्तादौ छिन्ने छिन्नः एवं शरीरे नष्टे नष्टोऽपि भविष्यति विनश्यतीत्यस्य विनंक्षति इत्यर्थः निकटनाशसम्भावनया वर्तमानसामीप्ये लट्।।श्रीः।।

अथेन्द्रस्य पुनरुपसत्यमाह—

नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति स समित्पाणिः पुनरेयाय त ँ्ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः सार्धं विरोचनेन किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलङ्कृते साध्वलङ्कृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृतः एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति।।२।।

अत्राहं भोग्यं फलं न पश्यामि, अतः भूयः परावृत्य समित्पाणिः येयाय उपसन्नः प्रजापतिम् तमागमनकारणं पृष्ठः सन् पूर्ववदुवाच यथेत्यादि।।श्रीः।।

अथ प्रजापतिरुवाच—

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच।।३।।

हे मघवन्! एषः पक्षः एवमेव छायापुरुषो देहो वानात्मा द्वात्रिंशत् वर्षं ब्रह्मचर्यं वस अनुत्तिष्ठ तदनु तं व्याख्यास्यामि, तथैव कृतवतेन्द्रे द्वात्रिंशत् वर्षानन्तरं तस्मै प्रजापतिरुवाच इति सारांशः।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिदि अष्टमाध्याये नवमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

दशमः खण्डः

अथेन्द्रं प्रति स्वप्नपुरुषमुपदिशति—

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज सहाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श तद्यद्यꣳशरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति।।१।।

यः एषः स्वप्ने महीयमानश्चरति जाग्रतप्रपञ्चैरकृष्यमानतैव महीयमानता एष एव अभयत्वादि विशिष्ट आत्मा इति शान्तहृदयजिज्ञासः प्रगतः, किन्तु देवानप्राप्यैव मध्ये मार्गं भयं ददर्श भयाकारमाह यद्यपि स्वाप्नपुरुषः जाग्रतप्रपञ्चैर्न दुष्यते तथैव अस्मिन्नन्धेतस्य नान्धत्वं अस्मिन् स्रामत्वादुक्ते तस्मिन् न तथात्वं एतद्दोषेण न दुष्यति तस्मात् उदकशरावपुरुषतः किमप्यस्मिन्नधिकतरम्।।श्रीः।।

तथापि किमनुपपन्नमित्यत आह—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न वधेनास्य हन्यते न स्त्राम्येण स्त्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामिति।।२।।

अस्य शरीरस्य वधेन हिंसनेन अयं न हन्यते अस्य स्त्राम्येण स्त्रावेण न स्त्रामः जाग्रदवस्थामतीतत्वात्, परन्तु स्वप्नपुरुषमपि धनन्तीव हिंसन्तीव विच्छादयन्तीव अतेव अप्रियवेत्ता इव प्रियाः प्रियं जानन्यथा रोदितीव रोदनं कुर्वाण इव च भवति। अतो नात्र भोग्यं पश्यामि, यतो हि अपहतपाप्मत्वाविलक्षणं नात्र घटते।।श्रीः।।

अथेन्द्रस्यपुनरुपसत्यमाह—

स समित्पाणिः पुनरेयाय त ँ्ह प्रजापति उवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्त्राममस्त्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति।।३।।

एवं समृद्ध जिज्ञासः समित्पाणिः भूयः प्रजापतिमुपसन्नः कथं पुनरागमः इति हेतुं पृष्टः यथापूर्वमन्ववदत्।।श्रीः।।

अनुवादशेषं प्रजापत्युपदेशञ्चाह—

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्त्राम्येण स्त्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिँ्शतं वर्षाणीति स हाऽपराणि द्वात्रिँ्शतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच।।४।।

नावधेनेत्यारभ्य नात्रभोगं पश्यामि एतदन्तोऽनुवादशेषः व्याख्यात चरः, एतच्छ्रुत्वा प्रजापतिराह मघवन्! एवमेव एषः बद्धः दुःखादिकं आरोपयति पुनः द्वात्रिंशत् वर्षं ब्रह्मचर्यं वश तथा कृतवतीन्द्रे प्रजापतिरुवाच।।श्रीः।।

इति छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये दशमखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकादशः खण्डः

अथ सुषुप्तिपुरुषमुपदिशति—

तद्यत्रैतत् सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाह खल्वयमेवꣳ सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ।।१।।

यत्र एतत् सुषुप्तः निद्रितः सन् आत्मानं न विजानाति, एष आत्मा इति प्रजानन् इन्द्रः मध्ये भयं ददर्श यत् अयमपि पूर्व आत्मानं न विजानाति अतः विनाशं उपैति, अतो विमृत्युत्वलक्षणविरहात् नायं यथार्थ आत्मा।

अतः पुनरुपसीदति—

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राब्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच नाहं खल्वयं भगव एवꣳ सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवा-पीतो भवति नाहमत्रभोग्यं पश्यामीति ।।२।।

पुनरुपसन्नः समित्पाणिः किमिच्छन्पुनरागम इति प्रजापतिना पृष्टः पूर्ववदन्ववदत्।।श्रीः।।

अथ इन्द्रस्य भूयो ब्रह्मचर्यवासं प्रजापत्युपदेशं च वर्णयति—

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसाऽपराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतꣳ सम्पेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतꣳ ह वै वर्षाणि मघवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ।।३।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे मघवन्! एवमेव एष पक्षः अस्मात् अन्यत्र न किमपि अधुना तव प्रतिबन्धकोऽपि अल्पीयान् अतः पञ्च वर्षाणि ब्रह्मचर्येण वस एवं एकाधिकशतं वर्षाणि इन्द्रोब्रह्मचर्यमुवास प्रजापतौ इत्याहुः तदवसाने तस्मै इन्द्राय प्रजापतिः प्राह।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये एकादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम्।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

द्वादशः खण्डः

अथ आत्मनः पारमार्थ्यं वर्णयति—

मघवन्मर्त्यं वा इदꣳशरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै स शरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ।।१।।

मघवन् हे इन्द्र! इदं शरीरं वाव निश्चयेन मर्त्यं मरणधर्मावच्छिन्नं मृत्युना यमेन आत्तं गृहीतं अशरीरस्य देहरहितस्य अमृतस्य मरणधर्मवर्जितस्य आत्मनः जीवात्मनः अधिष्ठानं सशरीरः शरीरमुक्तः प्रियाप्रियाभ्यां आत्तः गृहीतः शरीरावच्छिन्नमेव प्रियाप्रिययो गृह्णीतः सशरीरस्य सतः देहभावापन्नस्य प्रियाप्रिययोः तन्मूलकशुभाशुभयोः अपहतिः विनाशो। न अशरीरं अननुभूतशरीरधर्मं प्रियाप्रिये अनुकूलप्रतिकूले न स्पृशतः न शबलयतः।

अशरीराणां दृष्टान्तमाह—

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत् स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा शरीररहितानि वायुघनविद्युतगर्जितानि आकाशात् समुत्थाय स्वेन रूपेण परं ज्योति:अभिनिष्पद्यन्ते प्राप्नुवन्ति।।श्रीः।।

दृष्टान्तमुपसंहरति—

एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जक्षन्क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳ स्मरन्निदꣳशरीरꣳ स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ।।३।।

एवमेव एष जीवात्मा भगवत् कृपाप्रसादः अस्मात् शरीरात् उत्थाय भजनबलेन विस्मरणेनोत्थितो भूत्वा परं ज्योतिः श्रीरामाख्यं ब्रह्म उपसंपद्य समीपतः प्राप्य स्वेन रूपेण नित्यदासात्मना निष्पद्यते, जगत्सम्बन्धविस्मरणेन निष्पन्नो भवति। पश्चात् यच्छत् ददत् स्त्रीभि:यानैः क्रीडन्नपि इदं शरीरं उपजनं जन्मनिमित्तं न स्मरति केवलमात्मानं दासमनुभवति। यथोक्तं सुतीक्ष्णेन श्रीमानसे—

अस अभिमान जाइजनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।श्रीः।।

(मा. ३।११।२१।)

एवं शब्दादीनुपदर्शयति आत्मसङ्कल्पसिद्धान्—

अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ यो वे देदमभिव्याहराणीति स आत्माभिव्याहाराय वागथ यो वेदेदꣳ शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ।।४।।

अथ अनन्तरं महाकाशमनु विषण्णं समुपलक्षितं स चाक्षुषः पुरुषः तस्य दर्शनाय चक्षुः यदेव जिघ्रीत् तदघ्राणां यदा व्याहराणि इतीच्छति तदा व्याहाराय भाषणाय वाक्, यदा शृण्वति इति श्रोतुमिच्छति तदेव श्रोत्रं भवति।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथः मनसः सङ्कल्पमाह—

अथयो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ।।५।।

एवं शब्दस्पर्शवचनादीनां ज्ञानमुक्त्वा मन आह पूर्वत्र अथ अनन्तरं यः आत्मा मन्वानि इति वेद स एवात्मा मनः अस्य चक्षुः नेत्रं अनेन सर्वान् कामान् पश्यति।।श्रीः।।

प्रकरणं समाप्तं करोति—

य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मत्तेषां सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ।।६।।

ब्रह्मलोके ये देवाः ते एतं आत्मानं उपास्ते सेवन्ते, एवं तेषां सर्वे कामाः आत्ताः अनेन एवं यः आत्मानं अनुविद्य उपास्य विजानाति स सर्वान् कामान् विजानाति इति प्रजापतिः इन्द्राय उवाच। अत्रेदमवधेयं यदिन्द्रः प्रजापतिसकाशात् चतुरात्मतत्वमधिजज्ञे, तत्र त्रिः भयं ददर्श, शरीरावच्छिन्नत्वात् अन्तिमेऽभयम्। वस्तुतस्तु प्रजापतिर्वारत्रयं यथाक्रमं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्येन अवस्थात्रयेण समवच्छिन्नं आत्मानं निर्दिदेश। अन्तिमे अवस्थात्रयातीतं निरस्त पाञ्चभौतिकशारीरसम्बन्धं स्वीकृतभगवन्नित्यकैङ्कर्यानुबन्धं विगलितविश्वविषादं सम्प्रसादं नित्यमात्मानं समुपदिश्य पुरन्दरमभयं चकार प्रजापतिः इत्येव विशिष्टाद्वैतवादराद्धान्तः श्रुतिसम्मतः। यत्तु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिसमवच्छिन्नो जीवात्मा, तूर्यस्तु परमात्मैव, न सावस्था जीवात्मनः तदनर्गलं, अत्रत्य श्रुतिविरोधात्। तथा च श्रुतिः 'एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' छा. ८.१२.३, अत्र विभावयत्तु सुधियः, सम्प्रसादः कर्ता स एव आत्मा, परंज्योतिः कर्म स एव परमात्मा तं परम ज्योतिस्वरूपं परमात्मानमुपसंपद्यमानोऽपि न स्वं रूपं जहाति। अत आह— **'अस्मात् शरीरात् समुत्थाय'** शरीरं तत्संबन्धिनश्च व्यक्त्वा परं ज्योतिः परमात्मानं उपसंपद्य सामीप्यमुक्तिविधया प्राप्य पुनश्च तस्य परमात्मनो भगवतो रामचन्द्रस्य समनुमत्य स्वेन रूपेण वास्तवेन नित्य भगवत् कैङ्कर्योपयोगिना चतुर्भुजेण रूपेण करणीभूतेन अभिनिष्पद्यते अभीष्टतया योज्यते।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदमेवाह भगवान् बादरायणः ब्रह्मसूत्रे, यथा— **'भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च'** ब्र.सू. ४.४.२१, तात्पर्यमेतत् यत् परं ज्योतिरूपसंद्यापि स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यमानो जीवात्मा यं न परमात्मा भवति, न वा परमात्मा समानो भवति। **'स उत्तमः पुरुषः'** इत्यस्य तात्पर्यं यत् भोगेषु उत्तमपुरुषेण सह तस्य समानता, अन्यथा स्वेन रूपेण इति नोक्तं स्यात्। अत एव भगवान् व्यासः कथयति—**'जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च'** ब्र.सू. ४-४-१७ तस्मात् जटायुः भौतिकं गृध्रशरीरं त्यक्त्वा स्वेन चतुर्भुजरूपेणाभिनिष्पद्यमानो न जहौ जीवात्मभावम्। अत आह मानसकारः —

गीध देह तजी धरी हरिरूपा।
भूषन बहु पट पीत अनूपा।।
श्याम गांत विशाल भुज चारी।
अस्तुति करत नयन भरि वारी।।

मानस ३-३२-१,२

इत्येव श्रौतारोद्धान्तः।।श्रीः।।

इति चछान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये द्वादशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

त्रयोदशखण्डः

मन्त्राम्नायमाह—

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व
इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव
राहोर्मुखात्प्रमुच्यधूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा
ब्रह्मलोकमभिसम्भवामीत्यभिसम्भवामीति ।।१।।

मन्त्रोऽयं अष्टमाध्यायभूमिकायामेव सगुणनिरूपणप्रसंगे व्याख्यातः।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये त्रयोदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्दशः खण्डः

अथ आत्मानुभवमभिव्यनक्ति—

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म तदमृतꣳ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोऽहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्वेतमदत्कमदत्कꣳश्वेतं लिन्दुमाभिगां लिन्दुमभिगाम् ।।१।।

नामरूपयोः व्याकृतयोः निर्वहिता निर्वहणकर्त्ताता ते नामरूपे यदन्तरा यस्य ध्ये स आत्मा तदेवामृतं ब्रह्म प्रजापतेः सभागृहं प्रविश्य अहं आत्मा अहमेव ब्राह्मणक्षत्रिय-वैश्यानां यशः सम्प्रपद्ये यत् अददकं दन्तहीनं श्वेतं लिन्दु स्त्रीचिह्नं तन्नाभ्यगाम् न प्राप्नुयाम्।।श्रीः।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये चतुर्दशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

पञ्चदशः खण्डः

अथफलश्रुतिमाह—

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यताविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदधात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिꣳसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ।।१।।

तद्ब्रह्मोपदेशं ब्रह्माप्रजापतये 'कश्यपः मनवे वैवश्वताय, वैवश्वतः प्रजाभ्यः' एवं परम्पराप्राप्तं आचार्यकुलात् अधीत्य समावर्तनविधया कुटुम्बेषु अनासक्तः पवित्रे देशे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वाध्यायं अधीयानः निजशाखा वेदं पठन् सर्वान् धार्मिकान् विदधत् यावदायुः तीर्थेभ्यः यज्ञेभ्यः अन्यत्र हिंसां न कुर्वन् ब्रह्मलोकं सम्प्रपद्यते न च पुनरावर्तते पुनरागमनं न करोति।।श्री।।

नीलतामरसश्यमरामो राजीवलोचनः। विशिष्टाद्वैतमव्यग्रं राघवः शन्तनोतु नः।
छान्दोग्योऽपनिषद्ग्रन्थे विशिष्टाद्वैतलक्षणं श्रीराघवकृपाभाष्यं रामभद्रोऽभ्यभाषत।।

इति च्छान्दोग्योपनिषदि अष्टमाध्याये पञ्चदशखण्डे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।।
।। श्रीराघवः शनेतनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीमद्राघवो विजयते तराम् ।।

।। श्री रामानन्दाचार्यायनमः ।।

बृहदारण्यकोपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

मंगलाचरणम्

श्रीशश्शर्वाद्यधीशश्चरणसरसिजप्रीतितुष्यत्दिगीशो
लोकाधीशस्त्र्यधीशस्त्रिदशकुलवधूगीतगाथाकवीशः ।
देवाधीशो नदीशो गुणमणिमहितो मोदमानावनीशो
भूयाद्भव्याय भूमा मम दुरितहरो राघवो जानकीशः ।।१।।

श्रीःशोभाशीलराशिः शरदमलस्शशिस्मेरमञ्ज्वाननाभाः ।
भालेभाले दधाना समरुणतिलकं चारुसिन्दूरचर्चाम् ।।
आचार्या पालितार्या निजतनुसुषमाव्रीडितानङ्गभार्या ।
सा सीता शास्त्रगीता जनयतु जननी जानकी मय्यरागम् ।।२।।

ताम्रास्यस्तिग्मतेजास्तिमिरहरमदध्वंसनो नाकपास्त्र- ।
प्रोद्यद् वीर्याम्बुराशेर्घटजननहनुः सत्सरोजैकभानुः ।।
श्रीसीतारामपादाम्बुजयुगलमिलन्मानशालिमनोज्ञो ।
देयाच्छ्रीरामभक्तिं हतकलिकलुषां मर्कटाखण्डलो मे ।।३।।

वेदान् साङ्गाश्च सर्वान् सकलऋषिगणान् मातृरूपाः श्रुतीस्ताः ।
वाल्मीकिं व्यासदेवं शुकमथ हुलसीनन्दनं सद्गुरुं स्वम् ।।
रामानन्दं तथाद्यं गुरुमथ जगतां वैष्णवान् रामभद्रा- ।
चार्यो बुद्ध्या विशुद्धं प्रणमति बृहदारण्यकं व्याचिकीर्षुः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशिष्टाद्वैतविज्ञेयं सगुणं निर्गुणं विभुम् ।
साकारञ्च निराकारं राघवं तं शिशुं श्रये ।।
श्रीराघवकृपाभाष्यं वृहदारण्यके धिया ।
भाषते प्रीतये रामभद्राचार्यः खरद्विषः ।।

सम्बन्धभाष्यम्

श्रीसीतापति:सततसदाचरणसत्कर्मसत्सम्प्रदायसदवतारसद्रूपः नामरूपलीलाधामसततचिन्तनसन्मङ्गलपुण्यश्रवणकीर्तनसञ्जातपुण्यपूगसद्विभूतिसंल्लालितसंरक्षितशाश्वतसकलश्रुतितति:पतितपावनत्वाद्यसंख्यपदपाथोजप्रणतविनतपरमभागवतव्रातत्राणविचक्षणकल्याणगुणगणसंल्लालितललितनलिनचरणः सततमशरणशरणः परमकरुणः सकलभुवनपरितापहरणः जगदलङ्करणः परिपूर्णतममनोरमनृपबालकावतरणः श्रीसाकेताधीशः कोसलाधीशः श्रीजानकीवललभो वेदान्तवेद्यो ब्रह्माभिधेयः श्रीरामः स्वनिश्वासभूताः परमपूता अपौरूषेयाः श्रुतीः सर्गात्प्राग्ब्रह्माणं निजांशभूतं निजभक्तिवर्माणं निरवद्यकर्माणं निजेनैवांशेन जगत्पालनकरिष्णुना प्रभविष्णुना विष्णुना मन्त्रब्राह्मणविभागरूपाः सानुरागं साङ्गोपाङ्गं समध्यापयामास । **यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै**, श्वेत० उ० ६-१८ । इतिश्रुतेः । स च भगवान् विधाता चतुर्मुखो भगवन्मुखतो लब्धसमस्तवैदिकवाङ्मयसञ्जातसुखः सुखयितुमशेषप्राणिभृतः क्रतुसन्तत्या शाश्वत्या विदिधारयिषुश्च धरां वर्णाश्रममूलकेन वैदिकधर्मेण श्रुतिविहितपञ्चयज्ञबलिवैश्वदेवप्रभृतिनिजकर्मधर्मवर्मतपःश्रुतियोनियोग्यतासम्पन्नमैथिलीपतिपदपद्मप्रपन्नब्राह्मणप्रवर्तकेन सनातनेन वैदिकधर्मेण तत्प्रतिपादकतया तमेव मन्त्रब्राह्मणात्मकं वेदराशिं समशिक्षयत् मरीचिप्रभृतीन् मानसपुत्रान् महर्षिवर्यान् महामहिम्नः । पुमासमल्पमेघसमैषमः कराले कलिकाले सामग्र्येण ग्राहयितुमशक्यत्वात् तमेव वेदतरुं नैकशाखासु व्यभजत् भगवान् व्यासवर्यः पाराशर्यः । यथोक्तं पतञ्जलिना—

सहस्रवत्मा सामवेदः, एकशतमध्वर्युशाखाः, पञ्चदशशाखा ऋग्वेदस्य, एकविंशतिरार्थवणः ।

एवं पूर्वं चतुर्षु तदन्वनेकशाखारूपेषु विभक्तस्याविभक्तय वेदस्य यजुर्वेदनामभागस्य काण्वशाखायाः वाजसनेयब्राह्मणात्मकोऽयं बृहदारण्यकोपनिषन्नामा बृहत्कलेवरो ग्रन्थवरो वरेण्यतया शब्दतश्चार्थतश्च सर्वाप्युपनिषदः समतिशेते ।

षष्ठध्यायीयमुपनिषद् ब्रह्मपरमात्मानं श्रीरामं विशिष्टाद्वैततयैव समभिदधाति । यदत्र यथावसरं सप्रमाणं निदर्शयिष्यते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋष्यते इत्यर्णं शरणम्—

अरणं शरणं वासो निवासः सद्म मन्दिरम् ।
निकेतमालयो धाम भवनं वेश्म च गृहम् ।।

इति कोषात् ।

अरणे, त्यक्तगृहाणामपि निःस्पृहाणां भगवदात्मनां विमलात्मनां महात्मनां शरणे साधु यत्तदरण्यं वनम्, तस्मिन्नुपदिष्टमारण्यकम्, बृहच्च तदारण्यकञ्चेति बृहदारण्यकम् । उप निषीदति उपश्लिष्य पतिं परमात्मानं निश्चयेन तिष्ठति परमान्तरङ्गप्रियतमेव या सा उपनिषद्, साक्षाद्भगवत्तत्त्वप्रतिपादनपरा भूतार्थवादिनी परमेश्वरपरमान्तरङ्गा सततसन्निहिताध्यात्मज्ञानवैराग्यभावितभगवद्भक्तिगङ्गा भग्नदुःखसङ्गा सततसलग्नसत्सङ्गा विहितभूरिभवभयभङ्गा भगवती श्रुतिततिः उपनिषादयति परमेश्वरं मनोमन्दिरे प्रतिष्ठापयति या सोपनिषत् । उपनिषीदन्ति हीनतया निकृताः विशीर्यन्ते भगवद्भक्तिप्रतिबन्धकप्रबलप्रत्यवायनिकायाः यया सोपनिषद्, उपनिषाद्यन्ते अवसाद्यन्ते मननमात्रेण मनोविकाराः यया सोपनिषद् । ब्रह्मविद्यारहस्यरसमयी श्रुत्यवलिः बृहदारण्यकमेवोपनिषदिति बृहदारण्यकोपनिषद् ।

अस्याः श्रीसीतारामकृपाप्रसादसमवगतयथार्थसिद्धान्तबोधं समुपनिविष्टपदच्छेदान्वयसमासविग्रहपदार्थबोधं दुरवबोधमपि सुबोधं सुधियां तदनुरुपोदाहरणव्युत्पत्यूपपत्तिशब्दार्थसंस्करणं श्रीराघवकृपाभाष्यं नाम विवरणं नातिविस्तारसंक्षेपं विदूरीकृतनिखिलभगवद्भजनविक्षेपं निचितनिखिलरघुपतिपदपद्मनिक्षेपं सावधानं सादरमातनोमि । तत्र प्रथमं शान्तिपाठः । ओमिति सगुणनिर्गुणात्मकस्य साकारस्य निराकृतेः भगवतः परब्रह्मश्रीरामस्य ऊनविंशतिधात्वर्थवाच्यभक्तोपयोगिदिव्यगुणगणस्मरणोद्दीपकं नाम वैदिकं विस्तरेण ईशोपनिषदि व्याख्यातम्–

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

ॐ शान्ति ! ॐ शान्ति !! ॐ शान्ति !!!

अदः पूर्णं इदम् पूर्णम्, पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते, पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णम् एव अवशिष्यते । सगुणनिर्गुणपक्षव्याख्यानं तु ईशावस्योपनिषदि कृतं तत् संक्षेपेणाभ्यस्य पुनरपरदृशा व्याख्यायते । तथा चाभ्यासः–अदः निर्लीनगुणकतया, अवाङ्मनसगोचरत्वेन विप्रकृष्टं निर्गुणं ब्रह्म, पूर्णं सकलाभाववर्जितम्, इदं भक्तप्रेमवशंवदतया निजजननयनपथपान्थं निरस्तमायं सततसन्निहितकल्याणगुणगणनिकायं सगुणं ब्रह्म अतिसन्निकृष्टं पूर्णं पूर्णकामं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत् समग्रैश्वर्यसम्पन्नम् अमुष्मात् पूर्णात् निर्गुणब्रह्मणा अपेक्षया पूर्णं सगुणं ब्रह्म, उत् उत्कर्षेण समधिकतरम् अच्यते पूज्यते प्रणतदुरितविनाशक्षमत्वेन करुणासागरत्वेन च महीयते, तदपेक्षया समधिकतरम् । पूर्णस्य तस्य सगुणब्रह्मणः सम्बन्धिभूतं पूर्णं कृपाप्रसादमादाय जीवजातमपि पूर्णं पूर्णमनोरथकमेव नाल्पकायमवशिष्यते, प्रलयेऽपि महाकालतोऽपि विनाशासम्भवात् । अवशिष्यते अवशिष्टमेव समक्षतः भगवत् कैङ्कर्योचितशरीरं तिष्ठति इति हार्दम् ।

अथापरं व्याख्यानम्— भगवतो हि परिस्थितिद्वयं विभावयन्ति भक्ताः, प्रथमा अवतारिरुपा द्वितीया चावताररुपा, समानत्वेऽपि द्वयोः परिस्थित्योः माधुर्यविशेषतारतम्येन किमपि वैलक्षण्यं लक्षयन्ति लक्षणविदः। प्रथमायां परिस्थितौ सूर्यचन्द्रनक्षत्रविद्युदाग्नीनामपि प्रकाशके **न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकम् नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयम् अग्नि** (क० उ० १-३-११)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।

(गीता १५-६ इति स्मृतेः)

स्वत एव प्रकाशमाने विशोके श्रीसाकेतलोके श्रीसीतासमनुलालितचरणारविन्दयुगलः भरतादिभिः सततमनुवीक्षितमुखकमलः हनुमत्सुग्रीवविभीषणजाम्बवत्प्रभृतिपरमपावननित्य परिकरपरिचर्यमाणमनोजमोहनमधुरमानवाकृतिः सकृतसंस्मरणमात्रेणैव सकलकलिकलुष-कल्मषकलङ्कपङ्कनितान्तनिराकृतिर्नराकृतिः सीतासमालङ्कृतवामभागो निजभक्त-रञ्जनशीलनिष्कारण करुणानुरागो गोपतिरिव गमस्तिभिर्भासमानः स्वतेजसा तूर्णधनुर्वाणादि-वीरवेशेपलक्षितः विशदविरुदवर्णनविदग्धवेदवन्दिवर्यवीक्षितः सिद्धचारणगन्धर्वयक्षसुर-नरकिन्नरयोगीन्द्रमुनीन्द्रपरमहंसपरिव्राजकाचार्यमाहात्मविमलात्मनारदादिसनकादिसमीक्षितः नित्यकिशोरवयसा निरस्तदूषणो वृन्दारकवृन्दभूषणो भूषणभूषणः कनकसिंहासनमध्यवर्ती निजभक्तभावानुवर्ती मैथिलीमुखचन्द्रचकोरचारुचक्षुः प्रवर्ती सकलसुभगचक्रवर्ती समधिश्रितवीरासनो व्रीडितपाकशासनः सकलकल्याणगुणगणनिलयो ब्रह्माविष्णु-रूद्रादिनियन्ता सर्वावतारी श्रीसाकेतविहारी हरिः षडैश्वर्यसम्पन्नो भगवान् परब्रह्मपरमेश्वरः सीतावरः सर्वेश्वरः विचकास्ति ।

द्वितीयायाञ्च परिस्थितौ वैदिकधर्मसंस्थापनाय भूरिभूभारजिहीर्षया ललित-लीलाचिकीर्षया समुद्दिधीर्षया च खगमृगव्याधजडयवनविटपमर्कटभल्लूककौणप-सदृशकोटिकोटिपतितपुङ्गवगोब्राह्मणहितकामो निखिलभुवनविश्रामो लोकलोचनाभिरामो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामो भगवान् निजाह्लादिनीशक्त्या भग्नविभक्त्या भक्त्या सीतया सह समवतरति भारतभुवि, अयमेव अवतारः । अवतारावतारिणोरयमेव भेदो यद्येकः साकेते तदपरः कोसलराजनिकेते । ननु किं मानमत्रावतारे ? इति चेत् —

चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ ।
रघोःकुलेऽखिलं राति राजते यो महीं स्थित !

(रा० कु० उ० २)

इति श्रुतिरेव प्रमाणम् । **स उ श्रेयान् भवति जायमानः** इति ऋक्श्रुतिरपि । एवं अदः साकेतविहारि रूपं ब्रह्म ऐश्वर्यातिशयेन विप्रकृष्टं पूर्णं परिपूर्णतमम् । तथैव इदम् अतिसन्निकृष्टं माधुर्यविशेषविश्रम्भं सत्यसङ्कल्पारम्भं निरस्तसीताविप्रलम्भं सगुणसाकारम् अतिसिकुसुमसुकुमारं कोसलसुताकुमाराख्यं ब्रह्म इदं नयनगोचरत्वादतिसन्निकृष्टम् । इम् कामं द्यति इति इदं पूर्णम् परिपूर्णतमम् । द्वयोर्मध्ये कतरत् सेव्यमित्यताह-पूर्णात् साकेतविहारिणः परब्रह्मणः पूर्णं कोसलाधीशपुत्राख्यम् इदं गृहीतावतारं ब्रह्म उदच्यते समधिकतरं पूज्यते । ननु द्वयोरैश्वर्ये किं तारतम्यमित्यत् आह – पूर्णस्य साकेतविहारिणोऽवतारिणः परब्रह्मणः पूर्णस्य पूर्णं परिपूर्णतमं षडैश्वर्यसमूहम् आसाद्य प्राप्य इदं सगुणं ब्रह्म पूर्णं पूरितभक्तमनोरथं परिपूर्णतममेव अवशिष्यते । भक्तान् शिष्यते प्रलयेऽपि न नश्यति इति भावः । ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! त्रिरूक्तिः त्रिविधतापसमाप्तये ।

ननु भगवदवतारे किमपि मन्त्रवर्णमपि मानम् ? इति चेच्छृणु–यजुः श्रुतिरेव । तथा हि –

ॐ प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽन्तरजायमानोबहुधाव्विजायते
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिहतस्थुर्भुवनानिविश्वा ।

(शु० प० ३१-)

अस्यार्थः–प्रजापतिः प्रजानां प्राणिनां पतिः रक्षकः परमात्मा अजायमानः प्राकृतिशिशुरिव योनिद्वारेण नजन्मगृहणन् गर्भे अन्तः श्रीरामश्यामरूपेण कौसल्यादेवक्योः अन्तर्जठरे चरति अर्भकीभूय विचरति । अजायमानः कर्मविपाकवशादप्रादुर्भवन्नपि बहुधा विजायते कौसल्यादेः प्रार्थनया श्रीरामादिरूपेण विजायते विशिष्टगुणगणसम्पन्नं यथा स्यात्तथा जायते, जन्मगृहणाति । तस्य परमात्मनः योनिं जन्मरहस्यं धीराः वाल्मीकिवशिष्ठादयः परिपश्यन्ति परिस्कृतज्ञानचक्षुषा विलोकयन्ति । तस्मिन् परमात्मनि विश्वा विश्वशब्दाज्जसि **सुपां सुलुक्** पा० अ० ३-१-३९ इत्यनेन पूर्वसवर्णदीर्घः । विश्वानीति भावः । विश्वा भुवनानि भूरादीनि चतुर्दशभुवनानि । तथोक्तं मानसे—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिखरावा मातहिं निज अद्‌भुत रूप अखण्ड ।
रोम रोम प्रतिलागे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड ।।

(मा० १-२०१)

मातरं दर्शयामास ह्यखण्डं रूपमद्भुतम् ।
यत् प्रतिरोम राजन्ते ब्रह्माण्डकोटिकोटयः ।।

समस्तानि वा ब्रह्माण्डानि, ह निश्चयेन तस्युः ! परोक्षेलिट् । कदा प्रभृति ब्रह्माण्डानि तस्मिन् भगवति स्थितानीति वयमपि न विद्म इति सर्वज्ञश्रुतयः स्वज्ञानासामर्थ्यद्योतनाय परोक्षेलिट्‌लकारप्रयोगेण समसूसुचन् ।

एवम् स्मृतावपि—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा, भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।।

(गीता ४-६)

एवम् श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहाससिद्धं गृहीतावतारं सगुणं ब्रह्म, पूर्णस्य अवतारिणः साकेतविहारिणः पूर्णमैश्वर्यमादाय अवतारावतारिणोर्भेदं निरस्यत् एकमात्रं रामाभिधानं ब्रह्म पूर्णं सकलकलासम्पूर्णम् अवशिष्यते अवयवयुक्तं शिष्यते, वर्जितदेहपातं विराजते । यथोक्तं वाल्मीकिना—

नावज्ञेयश्च भूतानां न च कालवशानुगः ।

(वा० रा० २-१-३७)

न च सावयवमनित्यं कार्यत्वाद् घटवद्, इत्यनुमानात् सावयवे भगवत्यनित्यत्त्वापत्तिः ? नायं दोषः ईश्वरादन्यत्र अस्यानुमानस्य प्रसरात् । प्रमाणं चात्र **आकाश शरीरं ब्रह्म** (तै० त० उ० १-५) **सर्वतः पाणि पादं तत्** (श्वे० उ० ४-१४)

इत्यादिश्रुतिसमूह एव, भगवच्छरीरप्रतिपादकः । न खल्वावाङ्मनसगोचरे परमेश्वरे अनुमानप्रसक्तिः । तन्मूलकप्रत्यक्षस्यैव तत्र प्रसक्तिसम्भवात् । न खलु श्रुतिविहितार्थेषु तर्कः प्रसरति । यथा—वमनमभक्ष्यं वान्तित्वात् इत्यनुमानम् **मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः** इति श्रुत्या प्रमाणितविशुद्धौ मधुनि अभक्ष्यत्वसाधकमनुमानं न प्रसरेत् । एतस्येव भगवतः स्मरणमूलकोऽयं शान्तिपाठः ।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

।। प्रथमो ब्राह्मणम् ।।

अथ कर्मकाण्डनिबन्धम् अश्वमेधीयाश्वस्तुतिपरकप्रकरणं प्रारभ्यते । ननु ब्रह्मविद्या-प्रधानायामस्यामुपनिषदि किमर्थमेतत् कर्मकाण्डप्रघट्टकम् ? सत्यं पृष्टं पुनरिदं विचारणीयं यत् किं कर्मकाण्डं ब्रह्मज्ञानविरोधि ? चेत् तथा तर्हि नानेन वेदेषु भवितव्यम्, यदि चेत् न विरोधि तर्हि ज्ञानेन सह कर्मणां कथं समुच्चयः । न हि अन्धकारेण सह प्रकाशस्य साहचर्यं परस्परविरोधित्वात् ? इति चेन्न, वेदेषूपासनाज्ञानकाण्डमन्त्रापेक्षया कर्मकाण्डमन्त्राणां भूयिष्ठत्वात्, वेदविहितत्वाच्च नानुपादेयतैषां ब्रह्मविद्याप्रकरणे । तथा चश्रुतिः **तमेतं ब्राह्मणा व्रतेन तपसानाशकेन विविदिषन्ति वेदानुवचनेन** इति । अत्र तपसा कर्माङ्गभूतेन व्रतेन वेदानुवचनेन ज्ञानसाधेन अनाशकेन उपासनाङ्गभूतेन ब्राह्मणाः अष्मदादयः वेदमधीयानाः जानन्तश्च वेदार्थम्, तपःश्रुतियोनिसमपन्नाः, विविदिष्यन्ति ज्ञातुमिच्छन्ति । तात्पर्यमेतत्-यदुपासने ज्ञाने इव कर्मापि भगवद् विविदिषायां हेतुः । न खल्वकृतश्रुतिविहितकर्मा क्षणमपि परमात्मज्ञानविषयिणीमिच्छामावहति । वस्तुतस्तु कर्मणा भजनप्रतिबन्धकमनोमलानि निरस्य नारदसूत्रोक्तप्रेम-प्रणतैकलक्षणपरमभक्त्या विक्षेपं भगवत्पादपद्मयोर्निक्षिप्य, एवं सेव्यसेवकभाव-सम्बन्धसारज्ञानेन भग्नभगवदनैश्वर्यज्ञानः निरावरणः सन् परमात्मानं जानाति । तस्मात् कर्मकाण्डमावश्यकमिति विरम्यते ।

ॐ उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः । सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः संवत्सर आत्माश्वस्य मेध्यस्य । द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथिवी पाजस्यं दिशः पार्श्वे अवान्तरदिशः पर्शव ऋतवोऽङ्गानि मासाश्चार्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीनि नभो मांसानि । उवध्यं सिकताः सिन्धवो गुदा यकृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतयश्च लोमान्युद्यन्पूर्वार्धो निम्लोचञ्जघनार्धो यद्विजृम्भते तद्विद्योतते यद्विधूनुते तत्स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वाक् ।।१।।

अथ अश्वमेधीयः अश्वः प्रजापतिः, तस्याङ्गेषु उषा आरभ्य वाक् पर्ययानां दिव्यानां वस्तुनामवधारणा । ॐ इति मन्त्रप्रारम्भमङ्गलाचरणम् । मेध्यस्य मेधार्हस्य पवित्रस्य अश्वस्य अश्वमेधीयहयस्य उषा ब्रह्ममूहुर्तं ब्राह्ममुहूर्तं, सूर्योदयात् प्राक्कालः शिरः मस्तकं पावनत्वान् मुख्यत्वाच्च, वा इति निश्चयार्थो निपातः । सूर्यः उषःषश्चाद् भावित्वात् अस्याश्वस्य चक्षुः सर्वेषां चक्षुरग्रवर्तित्वात् तैजसत्वात् **तच्चक्षुर्देवहितमिति**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रुत्यन्तरात् । चक्षुषोर्दैवतत्वाच्च सूर्यस्य चक्षुष्ट्वं सङ्गतमेव। वातः वायुः प्राणः अस्याश्वस्य नासिकानिर्गमनप्रवेशनो वायुस्तन्मयत्वात् । वैश्वानरशब्दः अग्निविशेषणं, स च इतराग्निव्यावर्तनः वैश्वानररूपः अग्निः सर्वप्राणिदेहस्थितः प्राणापान-संयुतश्चतुर्विधान्नपाचकः व्यात्तं विस्तृतं मुखम् । ननु श्रुतौव्यात्तमिति शब्दोपादानेन मुखमिति कथं गृहीतम् ? **मुखादग्निरजायत** इति श्रुत्यन्तरात् । अग्निर्मुखोपमानत्वा वधारणात्, न हि विशेषणं विशेष्यनिरपेक्षं भवतीति व्यात्तपदस्यानुपपन्नत्वात्, तेन स्वविशेष्यभूतमुखशब्दस्याक्षेपौचित्यात् । अथवा व्याप्तं मुखमग्निः इत्येव पाठः श्रुतेर्वास्तविकः, लेखकप्रमादात् साम्प्रतिकपुस्तकेषु नोपलभ्यते । एतस्य मेध्यस्य अश्वस्य संवत्सरः द्वादशमासात्मकः आत्मा शरीरम् । अहङ्कारः अन्तःकरणं वा, एवमेव द्यौः द्योतनात्मकस्वर्गलोकः पृष्टं परोक्षत्वात्, अपवर्गशीलश्च भगवद् भजनरसिकैः पतनशीलतया भोगबहुलतया च दूरेणैव समुपेक्षितत्वात् तदिव वाहकत्वाच्च पृष्टमिव अश्वमेधकारिणां समग्रसुकृतिनाम् । अन्तरिक्षम् अस्य हयस्य उदरं जठरम्, तदिव सर्वज्योतिषां धारकत्वात् सावकाशत्वाच्च तत्समम् । पृथिवी भूमिः पाजस्यं पादस्यमितिवक्तव्ये **व्यत्त्ययोबहुलम्** इत्यनेन हलो दकारस्य जकारत्वेन व्यत्ययात् पाजस्यं लोके तु पादस्यम् । पादस्यं नाम चरणनिक्षेपस्थानं खुरलग्रलोहखण्डम्, **पादस्यम् वाजिनः प्रोक्तं खुरलग्नमयो बुधैः** इत्युक्तेः पार्श्वे पार्श्वभागे दिशः पूर्वादयः अवान्तरदिशः आग्नेयादि कोणचतुष्टयं, पर्शवः पार्श्वस्थीनि, ऋतवः हेमन्तशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरदः, अङ्गानि अवयवाः, मासाः चैत्रादयः, अर्धमासाः शुक्लकृष्णविभागेन प्रतिमासं द्वेधा विभक्ताः पञ्चदशदिनात्मकाः चतुर्विंशतिप्रतिसंवत्सरम् अधिकमासयोगे च षड्विंशतिः । उभयेऽपि पर्वाणि अश्वस्य शरीरसन्धयः । अहोरात्राणि दिवसनिशाः प्रतिष्ठा, अश्वस्य चरणं प्रतितिष्ठति येन सा प्रतिष्ठा, **प्रतिष्ठाचरणः पदं** इति कोशाच्च । नक्षत्राणि उडुगणाः अस्थीनि तद्वत् शौक्ल्यात् । नभो मेदाः मांसानि आमिषाणि आर्द्रत्वात् साम्यम् **श्रावणे गगने मेदे नभः स्यात् च नपुसकम्** इति कोषात् । सिकताः बालुकाः ऊवध्यम् उदरस्थितम् अर्धपक्वम् अशनम् **उवध्यमामभोजने** इति कोषात् । सुन्धन्ति पुनन्ति जना याभिः ताः सिन्धवः नद्यः । सुन्धि धातोः उकार-इकारे विपर्ययेण उणादित्वात् उणि प्रत्यये प्रथमाबहुवचने रुपम् सिन्धवः । स्पन्दन्ते वा सिन्धवः इति व्युत्पत्तौ स्यन्द्धातोः उणि पृषोदरादित्वात् द कारस्य धकारे यकास्य इकारे च विपर्ययङ्गते यथाश्रुतरूपम् । गुदाः पायवः मलविसर्जनात् शोधने प्रस्रवणाच्च स्पन्दने उभयत्र साधारण्यम् । एवमेव क्लोमानः हृद्गतमांसखण्डम् इति प्राञ्चः । वयं तु—**स्तने स्यात् क्लोमशब्दस्तु बहुत्वेऽनन्तकः पुमान्** इति कोषात् यकृत्, क्लोमानः स्तनभागः पर्वताः लघवो यकृद्रूपाः विशालाश्च क्लोमरूपाः इति चकारसमुचितोऽर्थः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमेव ओषधयः अल्पाकाराः तरवः तृणवीरुधादयः ओषधयः ह्रस्वरोमाणि । वनस्पतयः विशालवृक्षाः फलवन्तः दीर्घरोमाणि । उद्यन् उदयमृगच्छन् सूर्यः पूर्वार्धः अश्वकायस्य पूर्वार्धभागः शिरआरभ्यहृदयपर्यन्तः । निम्लोचन् अस्तंगच्छन् सूर्यः तदुपलक्षित-दिवसः जघनार्धः अपरकायः शरीरस्याधोभागः इति भावः उदरमारभ्यचरणपर्यन्तः । एवं यद्विजृम्भते विजृम्भणं जाम्बं तद् विद्योतते विद्योतनं चपलाचमत्कृतिसाम्यात् । विजृम्भणे मुखव्यादाने चपला इव शिताः दन्ताश्चमत्कुर्वन्ति । एवं विधूनुते अश्वस्य पुच्छादि स्पन्दनं तत्स्तनयति तदेव मेघगर्जनम् । मेहति, मेहनं मलमूत्रविसर्गः तदेव वर्षति । अत्र त्रिषु विजृम्भते विधूनुते मेहति इत्येतेषु तदुपमेयेषु विद्योतते स्तनयति वर्षति इत्येषु त्रिषु च आख्यातार्थो न विवक्षितः । तिङ् प्रयोगस्तु साधुत्वमात्रप्रयोजनः स्वार्थिकप्रत्यये इव भावनार्थो वा । वाक् शब्द एव वाग्देवता वा वाक् अशवस्याश्वमेधीयस्य वागिन्द्रियम् हेषणं रवो वा । इवकारो वार्थो वागिन्द्रियहेषविकल्पसूचको वा ।

मम मते तु यथा हयमेधीयेऽश्वे प्रजापतिदेवता भावना तथैव तस्य तत्तदङ्गेषु तत्तद्देवभावनया व्याख्येयोऽयं मन्त्रः; तत्तद्देवाधिकरणतया वा अश्वाङ्गानि समवधार्य सर्वत्र प्रथमा सप्तम्यर्थतया निरूप्या । तथा हि अश्वस्य शिरसि चक्षुषि सूर्यः, प्राणे वातः, मुखे वैश्वानरोऽग्निः, आत्मनि संवत्सरः, पृष्ठे द्यौः, उदरे अन्तरिक्षं, पाजस्ये पृथिवी, पार्श्वयोः दिशः, पर्शुष्ववान्तरदिशः; अङ्गेषु ऋतवः, पर्वसु मासाश्चार्धमासाश्च, प्रतिष्ठायामहोरात्राणि, अस्थीषु नक्षत्राणि, मांसेषु नभः, सिकतासूवध्यं, गुदेषु सिन्धवः, यकृति क्लोमसु च पर्वताः, लोमसु ओषधयश्च वनस्पतयश्च, पूर्वार्धे उद्यन् जघनार्धे निम्लोचन् सूर्यः, वाचि वाक्, विजृम्भणे विद्योतनं, विधूनने स्तनितम्, मेहने च वर्षणम्, इति सर्वत्र सप्तम्या विपरिणमय्य व्याख्येयम् ।

अथाश्वमेधीयमश्वं स्तौति–

अहर्वा अश्वं पुरस्तान्महिमान्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चान्महिमान्वजायत तस्यापारे समुद्रे योनिदेतो वा अश्वं महिमानावभितः सम्बभूवतुः । हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानर्वासुरानश्वो मनुष्यान् समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः ।।२।।

अथाश्वं प्रजापतित्वेन स्तुवन्ती श्रुतिः प्राह—यथा कस्यचिन् महाराजस्य पार्श्वतः पृष्ठतश्च सैनिकास्तं परिवार्य गच्छन्ति तथैव इममश्वमश्वमेधमखोपकरणम् अनुलक्ष्य, अहः दिनाभिमानिदैवतमेव महिमा विभूतिर्भूत्वा अजायत प्रादुरभवत् । तस्य अश्वस्य पूर्वे समुद्रे योनिः प्राप्तिस्थानम् । केचन पूर्वे समुद्रे इति सप्तम्यन्तं प्रथमार्थतया व्याचक्षते तत्रार्थमसिकम् । अधिकरणव्याख्यानेऽप्यदोषात् । एनमश्वमनुलक्ष्य पश्चात् पृष्ठतः रात्रिः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निशाभिमानिदेवता अजायत, रात्रिर्विभूतिभूय पृष्ठतोऽनुगन्तुं सञ्जातेति भावः। अत्रोभयत्र अनुर्लक्षणे इति कर्मप्रवचनीयत्वाद् द्वितीया। तस्य अपरे समुद्रे पश्चिमे महासागरे योनिः प्राप्तिः पूर्वसमुद्रादारभ्य पश्चिमसमुद्रं यावत् तस्य गतिरिति भावः। एवमेव एतौ अहोऽभिमानिदैवतरात्र्यभिमानिदैवतविशेषौ महिमा विभूतिः सन्तौ अश्वमश्वमेधीयहयम् अभितः सम्बभूवतुः सञ्जज्ञाते। एवमश्वमभितः **अभितः परितः समयानिकषाहा-प्रतियोगेऽपि** इति वार्तिकेन अभितः शब्दयोगे अश्वमिति द्वितीया। अयम् अश्वः दिवसरात्रिरूपमहिमभ्यां पुरतः पृष्ठतश्चानुगम्यमानः किमकरोत् ? इत्यत् आहः—

देवान् सुरान् इन्द्रादीन् अश्वमेघकृतः अयमश्वः हयो भूत्वा हिनोति द्रुतम् प्रेषयति इति हयः द्रुतप्रेषणशीलो भूत्वा् अवहत् अधारयत्, अनयत्। अथवा दैवीसम्पदा अश्वमेघम् यजमानान् अयं यज्ञाश्वः हयो भूत्वा विशिष्टगतिमान् सन् विलम्बं विना स्वर्गमवहत्। गन्धर्वान्, वाजी वाजो वेगः सोऽस्त्यस्मिन्निति वाजी, वेगवान् भूत्वा पूर्वतः किञ्चिद्विलम्ब्य स्वर्गमनयत्। तादृक् राजस् प्रकृतींश्चैवमसुरान् दैत्यान् सुरव्यतिदिक्तान् आसुरीप्रकृतिमुपासिनः अर्वा ऋयते गच्छति शनैः शनै तथा भूत्वा असुर याजकान् गन्धर्वतोऽपि दीर्घकालेन गच्छन् स्वर्गमनयत्। एवं मनुष्यान् संसारसम्पन्मदीया अहं करोमि वा इति मन्वानान् अश्वोभूत्वा अश्वयति इति अश्वः, श्वथयुक्तः सन् अवहत्। अथवा आश्नाति लवणशिला लोढि इति अश्वः अर्थात् मनुष्यबुद्ध्या कुर्वतोऽश्वमेधं तान् स्वर्गं नयन् निजगतिरोधेन मध्ये विरम्य भोगाननुभूय समनुभाष्य च दीर्घेण कालेन स्वर्गं नयति। तस्मात् देवो भूत्वैव अश्वमेघं यजेत इति श्रुतनिर्देशः। **देवो भूत्वा देवं यजेत्** इति श्रुतेः। अवहत् इति लडर्थे लङ्लकारः। वस्तुतस्तु मन्त्रोऽयम् श्रीरामाऽश्वमेधमहाश्ववर्णनपरः तमेवाभितः श्रीरामप्रेषिताश्वम् अहोरात्रिर्देवते महिमानावन्वजायतां पूर्वसमुद्रमारभ्य यावदपरसमुद्रं वसुमत्यां श्रीराघवस्यैव शासनात् द्वयोर्समुद्रयोर्मध्ये निष्कण्टकतया न केनाप्यवरूद्धः पूर्वसमद्रात् गच्छन् अभ्याहतगतिः पश्चिमे समुद्रे लभ्यते ततश्च पूर्वे, इति कोटिशो गतागतं व्यधत विधत्ते च, श्री राघवेन्द्रस्य कोटिकोट्यश्वमेधकरणस्मृतेः। **अश्वमेघशतैरिष्ट्वा तथाबहुसुवर्णकैः**

(वा० रा० १-१-५४)

कोटिन्ह वाजिमेध प्रभुकीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कँह दीन्हे॥

(मा० ७-२४-१)

एतद्रूपान्तरम्—

चकार प्रभु रामो हि वाजिमेधांश्च कोटिशः।
अनेकानि च दानानि द्विजेभ्यो दत्तवानसौ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इति मानसवचनाच्च। एवं सः देवगन्धर्वासुरमनुष्यान् इन्द्रादितुम्बुरुप्रभृतिविभीषणादि-सुमन्त्रादीन् हयवाज्यर्वाश्वरूपः अवहत् श्रीरामचरणसन्निधिं निनाय, इति भगवदीयप्रतिभाप्रसूतार्थः। तस्य समुद्रः सागरः बन्धुः बन्धनस्थानं भूमौ न बद्धुंशक्यः समुद्र एव स्थागितगमनत्वात् बद्धयत इव। तस्य समुद्र एव योनिः प्राप्तिस्थानं तत्रैव विश्रान्तत्वात्। भूमौ न केनापि ग्रहीतुं शक्यः अथवा समुद्रः परमात्मा श्रीरामः, समुद्र इव गाम्भीर्ये (वा० रा० १-१-१७) **सरसामस्मिसागर** (गीता १०-२४) इत्यादिस्थलेषु स्मरणात्। स एव बन्धुः स्वामी स एव योनिः जन्मदाता प्राप्तिस्थानं च। कुत्राप्यविरमन् सोऽश्वः। प्रतियात्रं सह विजयश्रिया श्रीराममेवाभ्युपैति श्रीरामं पुनश्चान्यस्यै यात्रायै उच्चलति इति भावः। श्रीः॥

इति बृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमाध्याये प्रथमाश्वमेधब्राह्मणे श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम्।
॥ श्री राघवः शन्तनोतु ॥

॥ द्वितीयब्राह्मणम ॥

अथाश्वमेधीयस्य अश्वस्योत्पत्तिं निरूपयति। अश्वयतीति अश्वः एतच्छरीरे कथमुच्छूनता कथञ्चैतस्मिन् प्रविवेश प्रजापतिः, इति सर्वं द्वितीये ब्राह्मणे निरूपयिष्यमाणं वर्तते। ब्रह्मवेदमधीते तद्वेद इति ब्राह्मणः, वेदाध्ययनशीलः तज्ज्ञानविशिष्टः सोऽस्त्यस्मिन् प्रतिपादकतया इति ब्राह्मणः—

नैवेहकिञ्चनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत्। अशनाययाशनाया हि मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वी स्यामिति। सोऽर्यन्न-चरत्तस्यार्चत आपोऽजायन्तार्चते वै मे कमभूदिति तदेवार्कस्यार्कत्वं कं ह वा अस्मै भवति य एवमेतदर्कस्यार्कत्वं वेद ॥१॥

कारणकार्ययोः सत्तां प्रतिपादयन्ती प्राह–इह अस्यां सृष्टौ अग्रे संसारसर्जनात् पूर्वं किञ्चित् जडचेतनात्मकं नैव आसीत् दृश्यमानत्वेन नैवास्ति स्म। ननु कथमिदं विरूद्धमुच्यते, आसीत् इत्यस्य दृश्यमानत्वेन आसीत् इति कथं व्याख्यायते, नैवासीत् इत्यस्य नैवाभूत् इत्येव वाच्यम् आसीत्? इति चेन्न अनुपदमेव मृत्युनैवेदमावृतमासीत् इति वक्ष्यमाणश्रुत्यंशार्थपर्यालोचनानुरोधात् तदेव व्याख्यानमुचितम्। कथमन्यथा पूर्वत्र अग्रे किञ्चिन नैवासीत् इति कथयन्ती श्रुतिः सर्वावच्छेदेन भूयो परत्र इदं मृत्युना आवृतमिति कथयित्वा तस्यैव जगतः सावरणसत्तां निरूपयत्। नहि एकस्मिन् घटे एककालावच्छेदेनान्तरेणान्योन्याभावभावाभावत्रितये साधयितुं शक्येते, यतो हि असतो भावस्य सतश्चाभावस्य त्रिकालमपि स्थापयितुमसम्भवः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।

(गीता २-१६)

तस्मादिदं जडचेतनात्मकं सृष्टेःप्राक् तस्मिन् परमात्मन्येव आसीत् **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासश्व तदेव ब्रह्म** (तै० उ० २-१-१) इति श्रुतेः । वस्तुतस्तु सहस्रयुगपर्यन्तस्थायि-ब्रह्मदिवसमभिव्याप्य सर्गः, तदनु तत् परिमाणयुगावलम्बिनीं ब्रह्मरात्रिमभिव्याप्य प्रलयः । दिवसे परमात्मनः सकासात् भूतानि जायन्ते, रात्र्यागमे च तत्रैव लीयन्ते । यावत् रात्रिं सहस्रयुगपर्यन्तां भगवत्येव विश्रम्य पुनर्दिवसोन्मुखे जायन्ते, पुनश्च निशागमे लीयन्ते, इति कर्मतन्त्राणां बद्धजीवानां गतागतम् । **गतागतं कामकामा लभन्ते** गीता-२१ इति स्मृतेः । इदं सर्वं भगवतैव श्रीगीताया अष्टमाध्यामे प्रपञ्चितं श्लोकत्रयेण तथाहि—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्र विदो जनाः ।
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्याहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थः प्रभवत्यहरागमे ।।

(गीता ८/१-१८-१९)

नहि खलु मृदः प्रागभावे घटः उत्पादयितुं शक्यः, नवा सुवर्णस्यासत्वे कुण्डलादिकं निर्मातुं शक्यं, नवा बीज निरपेक्षं वृक्षादिकं तिष्ठति इत्यनेन शून्यवादः परास्तः । दृश्यमानत्वेन नासीत् तर्हि कीदृगासीत् ? इत्यत् आह-इदं कार्यजातं, मृत्युना मेयन्ते प्राणैर्वियुज्यन्ते येन स मृत्युः तेन कालरूपेण भगवता स्वप्राणिभ्यो वियोज्य निजयोगमायांचलेन आरात्र्यवशानं समावृतम् । अतः तेन समावृतत्वाद् इदं दृश्यामानं नासीत् परमात्मावरणपिहितं सदासीत् मृदि छन्नं रत्नमिव । अत्र तृतीयान्तेन उत्पत्तेः प्राग् कारणसत्ता आवरकरूपिणी प्रथमाविभक्तान्तनिष्ठान्तेन आवरणाश्रयसत्ता कार्यरूपिणीति ब्रह्मजीवद्वयी ध्वंसनिरपेक्षसत्ता नित्या प्रत्यपादि । नीडादिव विहङ्गा जीवा उद्भवन्ति दिवसे रात्रौ नीड इव वयांसि विलीयन्ते । इत्यनेन कार्यकारणभावयोः प्राक्सृष्टेर्सत्ता सोपपत्तिकं प्रतिपादिता । मृत्युना कालात्मना भगवता इदं सर्वं प्रलयकाले आवृतमासीत् । भगवान् हि कालात्मा, स च प्रलयकाले जीवान् संहृत्य यावत् प्रलयकालं समावृत्य सुखं विश्राम्यति । यथोक्तं भागवते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता (भा० १०-२५-१) **कालः कलयतामहम्** (गीता १०-३०)

इति तत्र तत्र भगवतैवोक्तत्त्वात् । कथं मृत्युत्वं भगवति ? इत्यत आह— अशनायया क्षुधया, हि यतो हि भगवतः अशनाया अशितुमिच्छैव मृत्युः तदवच्छिन्नो भगवानपि मृत्युरूपः—

मृत्युः सर्वहरश्चाहम् तथोक्तं मानसे (१०-३४ इति स्मृतेः ।)

कालरुपमय तिन्हकँह भ्राता । शुभ अरु अशुभ सकल फलदाता ।।

(मानस ७-४०-५)

एतद्रूपान्तरम्—

तेषामहं कालरूपः पीडकानां सहोदरः ।
शुभानामशुभानांच फलानां हि प्रदानकृत् ।।

अतएव अहं आत्मन्वी आत्मवान् स्याम्, अत्र आत्मशब्दः मनोपरकः शरीरार्थश्च मनोमूलकत्वात्तच्छरीरस्य इति हेतोः; आत्मा मनः शरीरं वा अस्त्यस्मिन् इति आत्मन्वी मनस्वी शरीरवांश्च स्याम् भवेयम्, इति इच्छन् तत् अन्तःकरणावच्छिन्नं शरीराधारि मनः चंद्रदैवतकं संकल्पव्यापारावच्छिन्नहृदवृत्तिविशेषम् अकुरुत अकृत । अत एव **वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे** (भा० १०-२९-१) इति श्रीशुकवचनमपि सङ्गच्छते । अथ कृतमनाः सँल्लब्धशरीरः पश्चात् किमकुरुत ? इत्यत् आह—

सः शरीरी मनस्वी अर्चन् जीवात्मानं निजस्वरूपं वा सगुणं पूजयन् भक्तोत्कृष्टतया बहुमन्यमानः अचरत् शुभाचरणं कृतवान्, एवं अर्चतः अत्र षष्ठी चानादरे इत्यनेन अनादरार्थे षष्ठी । अर्चन्तं पूजयन्तं तं समादृत्य आपः कारुण्यावच्छिन्नाः शीतलजलविशेषाः अजायन्त आकाशावाय्वग्न्यनन्तरम् अजायन्त समजनिषत । अर्चते स्वं पूजयते मे मह्यं प्रजापतये कं सुखम् जलं चाभूत् । इति एतस्य अर्कत्वम्, अर्चते कम् यस्मिन् सोऽर्कः, तदेव पूजनकाले करूपजलजायमानत्वमेव तस्य अर्कस्य अर्कत्वम् । एवम् अनेनप्रकारेण यः कश्चन अर्कस्य प्रजापतेः अर्कत्वं वेद जानाति तस्मै तदर्थं ह निश्चयेन कं सुखम् भवति ॥ श्रीः ॥

अथ अद्भ्यः पृथिव्युत्पत्तिं वर्णयति—

आपो वा अर्कस्तद्यदपा ँ शर आसीत्तत्समहन्यत । सा पृथिव्यभवत्तस्यामश्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य तेजोरसो निरवर्ततग्निः ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आप: जलानि एव अर्क: प्रजापति: जलावच्छिन्नदेवता, अपां जलानां यत् शर: सारभूतं तत्त्वम् **शरस्तडागे तत्त्वेच** । यत्तु केचन रस एव शर इति वर्णव्यत्त्ययमिच्छन्ति तदनुचितम्, यदिति नपुंसकलिङ्गप्रयोगत: तत्समानाधिकरणे शर: इति विसर्गघटक-प्रयोगात् शरशब्दस्य असन्तत्व प्रतीते: । तदेव अपां तत्त्वं रसात्मकम् समहन्यत परमात्मेच्छया संहतिमनयत् । सा संहति: पृथिवी गन्धगुणा मेदिनी समभवत् । एवं तस्यां पृथिव्यां रचितायां प्रजापति: कृतभूरिपरिश्रमो लोक इव अश्राम्यत् श्रान्तिमन्वभवत् । एवं तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य कृततपस: तेज: रस: सारभूतं सत् अग्नि: निरवर्तत अग्न्याकार: निवर्तत निरगच्छत् परिणतोऽभूद्वा ।।श्री:।।

अथ विराडवयवे प्राच्यादि दिशो दर्शयति—

स त्रेधात्मानं व्यकुरुतादित्यं तृतीयं वायुं तृतीयं स एष प्राणस्त्रेधा विहित: । तस्य प्रची दिक्शिरोऽसो चासौ चेर्मौ । अथास्य प्रातीची दिक्पुच्छमसौ चासौ च सक्थ्यौ । दक्षिणा चोदीची च पार्श्वे द्यौ: पृष्ठमन्तरिक्षमुदरमियमुर: । स एषोऽप्सु प्रतिष्ठितो यत्र क्व चैति तदेव प्रतितिष्ठत्येवं विद्वान् ।।३।।

स: अग्निरूप: प्रजापति: आत्मानं निजशरीरं त्रेधा त्रिविधं व्यकुरुत विभक्तवान् अग्निवाय्वपेक्षया आदित्यं सूर्यं, तृतीयं त्रिसंख्यापूरकं अग्न्यादित्यापेक्षया वायुं तृतीयं स्वमपि द्वयोरपेक्षया तृतीयम् । एवमेष: त्रेधा विहित: अग्निवाय्वादित्याकारेण विहित: कृतविभाग: प्राण: प्राणभूत: प्रकर्षेणाननशील: किमकरोत् ? इत्यत् आह–तस्य विराड्रूपस्य प्राचीदिक् पूर्वदिशा शिर: मस्तकं प्रधानत्वात् । असौ अपसव्ये वर्तमाना आग्नेयी सव्ये च वर्तमाना ऐशानी ईर्मौ भुजौ **ईर्मौ वाहु: प्रतिष्टम्भ: दो: पाणिर्भुज:** इति कोषात् । एवं दक्षिणोदीची दक्षिणोत्तरदिशे पार्श्वे पार्ष्ण्यू, असौ च असौ च वायव्यनैरृत्यदिशे सक्थ्यौ संक्थिनी, प्रतीचीदिक् पुच्छं पृष्टभाग:, अन्तरिक्षं नभ: उदरं जठरम्, द्यौ: पृष्ठम् इयम् पृथिवी उर: हृदयस्थानं, स एष: अग्निरूप: प्रजापति: अप्सु जले घृतजगद्गर्भ: प्रतिष्ठित:, एवं विदान् जानो यत्र क्वापि एति गच्छति तत्र प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठां लभते ।।श्री:।।

अथ वागुत्पत्तिं वर्णयति—

सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनँ समभवदशनाया मृत्युस्तद्यद्रेत आसीत्स संवत्सरोऽभवत् । न ह पुरा तत: संवत्सर आस तमेतावन्तं कालमबिभ: । यावान्संवत्सरस्तमेतावत: कालस्य परस्तादसृजत । तं जातमभिव्याददात्स भाणकरोत्सैव वागभवत् ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सः अशनाया मृत्युः जिघत्सावच्छिन्नमृत्युरुपः परमात्मा मे मम द्वितीयः आत्मा अपरं शरीरं स्यात् भवतु, इति अकामयत् ऐषीत् । अनन्तरं मनसा निर्मितेन स्वान्तेन वाचं वाणीं मिथुनं कृत्वा तया संवभूव । तत्र यद्रेतः शुक्रमिवासीत् तदेव संवत्सरः संवत्सरचैतन्यावच्छिन्नदेवः अभवत् अजायत । यतोहिततः पुरा तस्मात् जन्मनः पूर्वं संवत्सरः न आस न बभूव । तं संवत्समेतावत्कालपर्यनतमविभः गर्भे अधारयत् । एतावतः कालस्य परस्तात् एतत् समयानन्तरं यावान्यत्प्रमाण आसीत् संवत्सरः तं असृजत् ससर्ज, तं जातं संवत्सरमत्तुमभिव्याददात् मुखं प्रसारितवान् । स भाण् इत्याकारकं शब्दमकरोत्, ततएव वागभवत् । ननु किमिदं भगवतश्चेष्टितं सामान्योऽपि जन्तुः स्वसंततिं न जिघित्सति सर्पादि ज्ञानविक्लवान् मूढयोनीन् विहाय, परमात्मा तु सर्वज्ञः स कथमद्यात्स्वसुतं महदसमञ्जसमेतत् ? इति चेन्न वाचमुत्पादयितुमेव परमेश्वरस्य व्यापार एषः यद्यत्तुं मुखं न व्यादास्यत् तदा संवत्सरो शब्दं नाकरिष्यत्, ततश्च वाङ्नाभविष्यत् इतिमदीयं हार्दं शेषं भगवान् जानातु ।।श्रीः।।

अथ संवत्सरात् ऋगाद्युत्पत्तिं परमात्मनोऽदितित्वं च वर्णयति—

स ऐक्षत यदिवा इममभिमँ्स्ये कनीयोऽन्नं करिष्य इति स तया वाचा तेनात्मनेदँ् सर्वमसृजत यदिदं किञ्चर्चो यजूँषि सामानिछन्दाँ्सि यज्ञान्प्रजाः पशून् । स यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्व वा अत्तीति तददितेरदितित्वम् । सर्वस्यैतस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतददितेरदितित्वं वेद ।।५।।

स परमात्मा ऐक्षत व्यलोकयत्, यदि इमं संवत्सरम् अभिमंसे हनिष्ये धातूनामनेकार्थत्वात् अभिपूर्वक मनुधातोः हिंसार्थः । तदा अन्नं कनीयः अल्पं करिष्ये अत एव तमहत्वा तेन वाचा मिथुनीभूय सर्वमसृजत्, अनन्तरम् ऋग्यजुःसामानि छन्दः, यज्ञान् पशून् सर्वाः प्रजाः सर्वं कालात्मना असृजत् सृष्ट्वा सर्वं अत्तुमधृयत, अतएव **चराचरस्यात्ता** । तस्मात् एषः अदितिः अत्ति इति अदितिः एवं विद्वान् सर्वं भुङ्क्ते इति मन्त्रसारांशः । अत्राशयोऽवगन्तव्यः-अत्तुमध्रियत् इति प्रघट्टकेन श्रुतिः परमात्मनि सर्वभोक्तृत्वं साधयति, कालरूपेण परमात्मा चराचरमत्ति नकालं तस्मिन् हिंसिते अदनीयोपपत्यसंभवात् । कालो हि सर्वभूतानामायुः कालयति आयुषः संवत्सरायतत्वात् इति श्रुतिकृपया हार्दं प्रतिभाति मे । यथोक्तं श्रीमानसे—

अग जग जीव नाग नर देवा । नाथ सकल जग काल कलेवा ।।

अंडकटाह अमित लय कारी । काल सदादुरति क्रम भारी ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपान्तरम्—

नाथ नागाः नराः देवाः जीवाः सर्वे चराचराः ।
प्रातराशा हि कालस्य सलोका जगति स्थिताः ।।

अण्डरूपकटाहानाममितो लयकारकः ।
सदाकालकरालोऽयं विशालो दुरतिक्रमः ।।श्रीः।।

(मा० ७,९४,७,८)

अथाश्वोत्पत्तिं वर्णयितुमुपक्रमते—

सोऽकामयत् भूयसा यज्ञेन भूयो यजेयेति । सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य यशोवीर्यमुदक्रामत । प्राणा वै यशो वीर्यं तत्प्राणेषूत्क्रान्तेषु शरीरँश्वयितुमध्रियत तस्य शरीर एव मन आसीत् ।।६।।

एवं कृतसर्गः प्रजापतिः भूयसा श्रेष्ठेन यज्ञेन यष्टुं अकामयत् ऐच्छत् । कामाकारमाह– भूयसा यज्ञेन यजेय यजनं कुर्वीय । अनन्तरं स अश्राम्यत् स श्रममन्वभवत्, तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य तपस्यां कुर्वाणस्य प्राण रुपं यशो वीर्यम् उदक्रामत् निस्क्रान्तम् अश्वं रचयितुं लीलेयम् । अथ तेषु यशोवीर्यरूपेषु प्राणेषूत्क्रान्तेषु निष्प्राणं प्रजापतिशरीरम् अश्वयत् श्वथमगमत् । एवं श्वयितुं ध्रियमाणे शरीरे मन आसीत्, मनसः सद्भावेन प्राकृतजनस्येव तस्य मरणं न शङ्क्यम् । शरीरमश्वीकर्तुं प्राणनिर्गमनं लीलाशरीरे तस्य मन आसीत् । इत्यत्र मनः शब्दः सकलेन्द्रियोपलक्षणः मनःषष्ठेषु इन्द्रियेषु हि निर्गतेषु मरणं, प्रकृते तथात्वाभावात् न तादृशी शङ्का ।।श्रीः।।

अथाश्वमेधीयाश्वजन्म वर्णयति—

सोऽकामयत मेध्यं म इदँ स्यादात्मन्व्यनेन स्यामिति । ततोऽश्वः समभवद्यदश्वत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वम् । एष ह वा अश्वमेघं वेद य एनमेव वेद । तमनवरुध्यैवामन्यत् । तँ संवत्सरस्य परस्यादात्मन आलभत । पशून्देवताभ्यः प्रत्यौहत् । तसमात् सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभन्ते, एष ह वा अश्वमेधो य एष तपति तस्य संवत्सर आत्मापमग्निरर्कस्तस्येमे लोका आत्मानस्तावेतावर्काश्वमेधौ । सो पुनरेकैव देवता भवति मृत्युरेवाप पुनर्मृत्युं जयति नैनं मृत्युराप्नोति मृत्युरस्यात्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति ।।७।।

स अकामयत् यत् इदं निष्प्राणं मे शरीरं मेध्यं पवित्रं स्यात् अतः प्राणान् प्रावेशयत् शरीरमश्वत् अतः सोऽश्वभूत् इदमेव अश्वमेधत्वम् । अत एव आत्मन्वीति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सङ्कल्पाकारः यः एनं अनेन प्रकारेण जानाति स एव अश्वमेधं वेद । अश्वे प्रजापतिधारणं कुर्वन् तम् अश्वम् अनवरुध्य अवध्यैव निरवरोधममन्यत मुमुचे । अथ संवत्सरादनन्तरमालभत् आलम्भनविषयीचकार । अन्यान् पशून् अन्यदेवताभ्यः प्रत्यौहत् आनयत् । अत एव सर्वदेवत्यं सर्वदेवमयं प्रोक्षितं जलाभिषिक्तं प्राजापत्यं प्रजापतिरूपमालभन्ते शस्त्रयुक्तं कुर्वन्ति । यः तपति सूर्यरूपः एष एव अश्वमेधः संवत्सरः आत्मा शरीरम् अग्निरेव अर्क इमौ द्वौ तस्य आत्मानौ तस्य इमे सर्वे लोकाः भूरादयः । एवं त्रेधा विभक्तोऽपि परमार्थतः स एकैव देवता मृत्युरूपा अत एनं मृत्युर्नाप्नोति न व्याप्य हिनस्ति । एषां मृत्युरेव एका देवता यतो हि स एव आत्मा ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमाध्याये द्वितीयब्राह्मणे श्रीराघवकृपाभाष्यम् समपूर्णमृ ।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीयब्राह्मणम् ।।

अथोद्गीथब्राह्मणः प्रारभ्यते पूर्वयोर्ब्राह्मणयोर्वर्णितस्याश्वमेधयज्ञस्य कर्मकाण्डपरतया कर्मकाण्डप्रधानमेव पूर्वब्राह्मणद्वयवर्णनं मे प्रतिभाति । प्रसंगतः याः ज्ञानप्रतिपादिकाः श्रुतियोऽपि कतिचित् समुज्जृम्भन्ते तत्र । तद्यथा—**नैवेह किञ्चनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत्** । (बृ० १. ब्रा० र. १) अतएव साम्प्रतं द्वयोः विशदवर्णनार्थं तृतीयब्राह्मणप्रारम्भः । अग्न्यादिदेवतानां स्वस्वरूपेण समुपस्थितिः चरममन्त्रे **तमसोमा ज्योतिर्गमय**–(बृ० उ० १-३-२०) इत्यादि मन्त्रेण स्वस्वरूपावाप्तये प्रार्थनामूलकोपासना इनिद्रयाधिष्ठातृदैवतानां प्रामुख्येन प्राणस्य जगदात्मतया समुपासनम्, एवं ज्ञानकर्मावलम्बिनो विविधविषयाः विश्लेषणविषयी करिष्यन्ते । यत्तु केचन ज्ञानेन सह कर्म न समुच्चिचीषन्ति तदनुचितम् उभयोरपि वेदमूलकत्वात् परमेश्वरप्राप्तये च समानतयैव मार्गत्वेन निर्दिष्टत्वात् । विहितकर्मणां ज्ञानप्राप्तावपि विहितकर्मणां त्यागानौचित्यस्य श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहास-महात्मभिस्तत्रतत्र विगर्हिततया निर्दिष्टत्वात् । **कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे** (ईशा० उ० र.) एतत्तात्पर्यं च इह संसारे कर्माणि कुर्वन् एव फलनिरपेक्षतया फलानि वा परमात्मनि समर्पयन् कर्तव्यबुद्ध्या कर्माणि विदधन् ।

ननु कुर्वन्नित्यस्य फलनिरपेक्षतया वर्तमानकालावच्छिन्नकर्मकरणाश्रयरूपर्थः कथमवगम्यते ? श्रूयताम् कुर्वन् इति शतुर्निर्देशात् । अथ किमायातं शतृनिर्देशेन ?

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इति चेत् शतुर्हि परस्मैपदमूलकत्वात् क्रिञः स्वरितेतत्वात् स्वरितेतश्च कर्तृगामिक्रियाफलकत्व एवात्मनेपदविधानस्यैव पाणिनिसमनुशिष्टत्वात् । तथा च सूत्रम् **स्वरितञितः कर्त्रभिप्रायेक्रियाफले** (१/३/७२) स्वरितेतः ञितश्च धातोः आत्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले इति हि तत्र वृत्तिः । अतः कुर्वन् इत्यस्य परमात्मार्थं समारभ्यमाणकर्मकर्मकफलानुकूलव्यापाराश्रय इति शाब्दबोधः । एवकारस्य अन्ययोगव्यवच्छेदकरत्वेन व्यवच्छेद्यत्वेन च विकर्मणां चाकर्मणां कर्मकर्मकव्यापारभिन्न-व्यापाराश्रयत्वस्य वा कर्मानुकूलव्यापाराश्रयकर्तृकसाम्भावनिकजीवनेच्छानुकूल-व्यापारप्रतियोगिंकभेदत्वावच्छिन्ननिष्ठव्यापारस्य वा विवक्षणीयत्वात् । न हि खलु कर्मव्यतिरेकेण जीवनेच्छानिषेधपात्रभूतस्य मृतत्वेन वर्तमानता समध्यवसीयते, कर्मकरण-व्यतिरेकेण इतरमार्गसंभावनायाश्च इतः अन्यथा न अस्ति इति वदन्त्या श्रुत्यैव निषिद्धत्वात् । कर्मकर्तरि च भोगाभावस्य श्रुत्यैव तन्मूलकपापलेपनिराशत्वाच्च, कर्म न ज्ञानसमुचितमिति कथनं हास्यास्पदम् । एवं परमात्मप्राप्तौ उभावपि परमेश्वरप्राप्तिसोपानभूतौ न खलु सोपानयोर्द्वयोः समुच्चयनिराशो लपितुं शक्यः । श्रुतिः स्पष्टं निर्दिशति जीवितुमिच्छेत् चेत् कर्तृत्वभिमानभाववर्जितकर्ता संभवन्, एवं स्मृतावपि । तथाहि **सक्ताः कर्मण्यविद्वासो यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्याद्विद्वांस्तथाशक्तश्चिकीर्षुर्लोक संग्रहम्** ।। (गी० ३/२५) **योगः कर्मसुकौशलम्** (गी० २/५०) **कुरु कर्मैव तस्मात् त्वम्** (गी० ४/१५)

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ।।

(गी० १८-६)

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः

(गी० १८,११)

इत्यादिस्थलेषु भगवतैव कर्मावश्कत्वप्रतिपादनात् । ननु–

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते

(गी० ४/३३)

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ।

(गी० ४/३७)

एवमादि भगवदुक्तवचनैः कर्मणामभाव उक्तः ? सत्यमतः कर्मणां प्रध्वंसाभाव उक्तः । न तु प्रागभावः । सोऽपि दण्डाभावेदण्डिः नास्तीतिवत् । ज्ञानाग्नौ दग्दफलकत्वेन विशेषणप्रयुक्ताभाव उक्तः, वस्तुतस्तु ज्ञानोदये सति कर्माणि शुभाशुभफलरज्वा कृतिनं न बध्नीरन् । भगवता तु ज्ञानाभिन्ना कर्माभिन्ना च निष्ठैव द्विविधा प्रोक्ता । यद्वा तृतीया

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नैवाभेदार्थिका, किं तर्हि ? स्व प्रकृतिनिष्ठसाधकतमत्त्वसूचिका। एवम् उभयोरपि निष्ठयोर्निष्ठात्वेनैकत्वम् तथोक्तम्–

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।

(गीता ३-३)

किं बहुना ज्ञानिनामिव कर्मिणामपि समानत्वेनैव भगवतैव सिद्धिप्राप्तेर्घोषितत्त्वात्। नैव भेद उभयोः—

यत्सांख्यै प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सः पश्यति ।।

(गीता ५-५)

ज्ञानस्य निष्कामकर्मणश्चापि सदृशतया परमात्मप्राप्तिसांधनत्वे समुच्चयभावं कथमनुचितम्। समुच्चयाभावो हि परस्परविरुद्धपरिणामयोर्वस्तुनोः, नहि घटेन पटस्य समुच्चयः विरुद्धपरिणामत्वात्। परन्तु घटशरावयोः समुच्चयस्त्वस्त्येव द्वयोरपि समानतया जलधारणक्रियायामुपयुज्यमानत्वात्। एवमत्रापि समानतया कर्मज्ञानयोः परमात्मप्राप्तौ समुपयुज्यमानतायां सत्यां समुच्चयाभावलपनमुभयोः प्रमत्तप्रलपितमिवोपेक्ष्यम्। वेदविरूद्धकर्मणां शारीराणां वा श्रुतिनोदनाविषयबर्हिर्भूतानां शास्त्रीयं कर्मत्वमिव नहि तेषां ज्ञानेन सह समुच्चयस्य चर्चैव न प्रसङ्गसहा। नहि त्रिविक्रमपदपद्मपरागमकरन्दमन्दाकिन्या त्रिविक्रममुखनिष्ठ्यूतसरिता सह समुच्चयः, नवा शशशृङ्गस्य गोःश्रङ्गेण सह समुच्चयः। परन्तु युगलगण्डसमुद्भवयोः श्रङ्गयोः समुच्चयस्त्वस्त्येव। परमात्मप्राप्तौ हि त्रीणि प्रतिबन्धकानि मलविक्षेपावरणानि । त्रयाणां हि श्रुतिविहितपरमात्मप्राप्तिप्रतिबन्धकविनाशकोपकरणानां कर्मोपासनाज्ञानानां निगमे च काण्डत्वेन समाम्नातानां परस्परं समुच्चयः परस्पराश्रयता च। तथा ह्यावरणनाशो ज्ञानकर्तृकः ज्ञानं च विक्षेप नाशमूलकम्, विक्षेपनाशश्चोपासनाकर्तृकम् उपासना च मलनाशप्रभवा, मलनाशश्च श्रौतकर्मकर्तृकः, श्रुतौ वेदनोपासनयोः पर्यायत्वेन वर्णितत्त्वात्, कर्मानन्तर्भावित्वेन च तस्याःसमुपस्थितेः तयोः समुच्चयः सुलभ एव। श्रुतिविहितः कर्मानुष्ठानपुण्यप्रभवैव परमात्मविविदिषा तस्या एव च ज्ञानजननीत्वात् ज्ञानस्य कर्मणा सह समुच्चयः। कृतेषु श्रुतिविहितकर्मसु तत्फलरूपं श्वत एव विषयेभ्यः परवैराग्यम्। तदनु भगवद्धर्मानुरागः इति भक्त्यापि सह कर्मसमुच्चयः । तथा चाह श्रीमानसे श्रीलक्ष्मणकुमारं प्रति भगवान् श्रीमद्राघवः श्रीरामभद्रः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भगति के साधन कहहुँ बखानी। सुगम पन्थ मोहि पावहि प्रानी।।
प्रथमहि विप्र चरन अतिप्रीति। निज निज कर्म निरत श्रुतिनीति।।
एहिकर फल पुनि विषय विरागा। पुनि मम धरम उपज अनुरागा।।

एतद्रूपान्तरम्—

साधनानि च मद्भक्तेः कथयामि सविस्तरम्।
सुगमेन पथानेन प्राणिनः प्राप्नुवन्ति माम्।।
प्रथमा हि विप्रपादेषु प्रीतिश्चातिशया स्मृता।
अथ स्वकर्मनैरित्यं श्रुतिनीत्या सह स्मृतम्।।
एतत् फलं पुनः पञ्चविषयेभ्यो विरागता।
अनन्तरञ्च मद्धर्मेऽनुराग उपजायते।।

न खल्वननुष्ठितश्रौतकर्मा विषयेभ्यो विरज्यते, नखल्वविरक्तो विषयेभ्यः परमात्मन्यनुरज्यते। ननु कर्मणां ज्ञानेन सह समुच्चये साधिते— **प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा** (मु० उ० १-२-७) **कर्मचितो हि लोको क्षीयते नास्त्यकृतः कृतेन** इत्यादि कर्मनिन्दापरकश्रुतिवचनानि **श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज् ज्ञानयज्ञः परन्तप** (गी० ४-३) इत्यादि स्मार्तवचनानि व्याकुप्येरन्? इति चेन्न **न हि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रभवति प्रत्युद्विधेयं स्तोतुम्** इति नियमात्। कर्मनिन्दापरकश्रौतस्मार्तवचनानां भगवत्प्रीतिप्रतिबन्धककर्मफलासक्तिवैराग्यबोधकत्वेनादोषात्। यथादृष्टस्वीकारे तु वेदोदितकर्मभ्यो विरतो वेदाज्ञासमुल्लङ्घनरूपनास्तिकत्वापत्तेः। अत एव–**नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते** (गीता–१८-७) **नियतं कुरु कर्मत्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः** (गीता ३-५) **सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्** (गीता १८-४८) एवमादीनि भगवद्वचांसि सङ्गच्छन्ते। तस्मात् समानलक्षतया वर्णितयोः कर्मज्ञानयोर्ब्राह्मणयोः पूर्वयोरनन्तरं तृतीयस्मिन् भूयस्तावेव मार्गौ देवासुरस्पर्धाख्यायिकामाध्यमेन विशदयति द्वया इत्यादिना—

द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च। ततः कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त ते ह देवा ऊचुर्हन्तासुरान्यज्ञ उद्गीथेनात्ययामेति।।१।।

श्रुतिः विषयस्य सुखप्रतिपत्तये समतीतकालिकीमाख्यायिकां प्रस्तौति। ह जगत्प्रसिद्धमेतत् देवाः इन्द्रादयः अभयादिगुणाः दैवीं सम्पदमापन्नाः च तथा असुराः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुखं रान्ति इति सुराः तद्भिन्नाः जनेभ्यो दुःखदायिनः आसुरीं सम्पदमालम्भमानाः दम्भादिदुर्गुणाः विरोचनादयः। सौ ब्रह्मणि शोभनतया रमन्ते इति सुराः, भगवदुपाश्रयाः असुसु प्राणेसु तदोपलक्षित शरीरेषु च रमन्ते इति असुरा, प्राणोपलक्षितं देहमेव आत्मबुद्ध्या सेवमानाः देहात्मवादिनः स्वशरीरपोषकाः विरोचनादयः, इन्द्रविरोचनाख्यायिकायां विरोचनस्य तथैवानुभूतेः। **आत्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति।** (छा० उ० ८/८/४) अथवा असून् परेषां प्राणान् रान्ति आददते इत्यसुराः **रा दानादानयोः**। इमे द्वयाःद्वौ अवयवो येषां ते द्वयाः, उभयेऽपि प्राजापत्या प्रजापतेरनन्तरापत्यानि पुमाँसः प्राजापत्याः कस्यपस्यैव सन्ततयः। उभयेऽपि समानबलवीर्याः! उताहो न्यूनाधिकाः? इत्यत् आह–ततः अत्र आद्यादितवात् त्रार्थे तसिः। तेषु देवेषु असुरेषु च मध्ये देवाः सत्वगुणबहुलस्वभावाः विशेषेण वैदिकधर्मानुगामिनः कानीयसाः कनीयाँस एव कानीयसा अल्पतराः, असुराः ज्यायसाः उभयत्र स्वार्थेऽण् प्रत्ययः। एवम् कनीयस्त्वज्यायस्त्वमूलकपरस्परव्यधिकरणधर्मकविचारव्यवहाराचारतया एषु लोकेषु देवाः देवलोकेषु, असुराश्चाधोलोकेषु उभयेऽपि अस्पर्धन्त अन्योन्यानभिभवितुं समीहाञ्चक्रुः। कथं वयं स्वशत्रुमभिभवेम? इति। तत्र देवा उचुः यत्–हन्त! अहो एतानसुरान् यज्ञे क्रतौ उद्गीथेन उद्गीथगानेन अत्ययाम, गत्यर्थाय् धातुरतिपूर्वः अतिगच्छाम अतिक्रामयाम इति भावः। देवाः खलु स्पर्धालवः। यथोक्तं मानसे—

ऊँच निवास नीचि करतूती। देख न सकहिं पराय विभूती।।

(मा० २/१२/६)

एतद्रूपान्तरम्—

उच्चो निवासो देवानां निकृष्टा च कृतिः खलु।
न द्रष्टुं शक्नुवन्त्येते विभूतीः परवेश्मगाः।।

प्राञ्चस्तु—देवासुराणां वृत्तिपरतया व्याख्याञ्चक्रु, शास्त्रजनित- बुद्ध्यवच्छिन्नवृत्तयो देवाः, कर्मसु स्वाभाविकवृत्तयोऽसुराः तन्न। इतिहासपुराणानि हि वेदार्थोपबृंहणानि, ग्रन्थे नवीनता प्रतिपत्तये पुराणाविरूद्धव्याख्यानां धर्मविरुद्धम्। यथोक्तं महाभारते—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामेषो प्रहरेदिति।।

(म० भा० आ० प०)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मात् पुराणोक्तमेव साधु ।।श्रीः।।

अथ वाचः उद्गीथगानं तदनु तस्याः पापविद्धत्वं वर्णयति । यद्यपि वाग् न देवता तदवच्छिन्नोऽग्निरेव देवः किन्तु स वागावरणेन तिरोहितमाहात्म्यः स्वावरणनिराशेऽशक्तः । अतः परमात्मना निजलीलयैव दैवीसंपदमुपासिनेष्वपि स्पर्धाभावः समजनि । एवं यथाक्रमं तत्तद्देवावच्छिन्नवाक्चक्षुश्श्रोत्रघ्राणमनोभिः उद्गीथमगायन्त । एवं देवावरणतया वाक्चक्षुश्श्रोत्रघ्राणमनःसु स्वार्थमुद्गीथं गीतवस्तु, क्षीणसत्वतया पाप्मना विद्धेष्वसुरेषु पाप्मना नापविद्धे च प्राणे, तमेव मुख्यत्वेन भजमानाः तत्कृपयैव निरस्तवागाद्यावरणाः निरावरणाः परमात्मपदशरणाः भूय एव विस्मृतचरमग्नि-वायुसूर्यदिक्चन्द्रमनःस्वरूपं समध्यगमन्, इदमेव प्रपञ्चयति—

ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो वागुदगायत् । यो वाचि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत् कल्याणं वदति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुप्य पाप्मनाविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं वदति स एव स पाप्मा ।।२।।

ह इति निश्चित्य, वाचं वागिन्द्रियावच्छिन्नदेवताम्, उच्चुः प्रार्थयाञ्चक्रिरे यत्त्वं भवती, वाग्देवी, नः अस्मभ्यं देवार्थमितिभावः, उद्गाय उद्गीथगानं कुरु इति, इति शब्दः प्रार्थनाकारसूचकः । तथा एवमस्तु इति इत्थं, प्रतिज्ञाय तेभ्यः देवेभ्यः वाक् उद्गायत् उद्गीथगानमकरोत् । गाने किं वैलक्षण्यं वाचः ? इत्यत आह–यो भोज इत्यादिवाचि वाण्यां भोगः भोगात्मकं फलं प्रोयोरुपम्, तद् देवेभ्यः आगायत् । अत्र दातुमित्यद् ध्याहृत्य तद्योगे तेभ्य इति सम्प्रदाने चतुर्थी । ऊद्गीथगानजनितं वाचि प्रतिष्ठितं भाविफलं तद् देवेभ्यः दातुं आगायत्, यत् कल्याणं तद् आत्मने आत्मानं सम्प्रदानीकृत्य यत् कल्याणं वदति तत् स्वस्यै अगायत् । अभिप्रायोऽयं–यत् प्रतिशुभम्, कर्मणः द्वेधा शुभं फलम् भवति, भोगात्मकम्, भगवत्पदपद्मसंयोगात्मकं च, भोगात्मकं फलं प्रेयोरूपं स्थूलं, भगवच्चरणसयोगात्मकं फलम् श्रेयः सूक्ष्मं, प्रेयोरूपं फलम् अर्थधर्मकामाकारं त्रिवर्गम् अपवर्गं च श्रेय इति मन्यन्ते केचन । वयं तु अपवर्गं धर्मार्थकाममोक्षात्मकं पुरूषार्थचतुष्टयमेव प्रेयोरूपम् भक्तिमेव श्रेयोरूपमिति सशास्त्रीयप्रमाणं सोपपत्तिकमुद्घोषयामः । **सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽपिगरीयसी** (ना० भू० सू० २-१) **फलरूपत्वात्** (वा० भ० सू० २-२) एतद् विवरणं मन्निर्मिते श्रीनारदभक्तिसूत्रेषु श्रीराघवकृपाभाष्ये द्रष्टव्यम् । **भक्तेर्मोक्षतः श्रेयस्त्वम्** प्रणिगदति भगवान् कपिलः श्री भागवते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जनयत्याशु वै कोशं निगीर्णमनलो यथा ।।

(भा० पु० ३-२५-३३)

तथैवोक्तं श्रीमधुसूदन सरस्वती स्वामिपादैः भगवद्भक्तिरसायने मङ्गलाचरणे–

नवरसरुचिरं वा केवलं वा पुमर्थं
परममिह मुकुन्दे भक्ति योगं वदन्ति ।
निरुपमसुखसम्विद्रूपमस्पृष्टदुःखं
तमहमखिलतुष्ट्यै शास्त्रदृष्ट्या व्यनज्मि ।।

(भ० भ० रसायन १-१)

अत एव प्राहुः अस्मत्पूज्यचरणाः श्रीगोस्वामितुलसीदासमहाराजाः श्रीमानसे भरतव्याजेन—

अरथ न धरम न काम रूचि, गति न चहहुं निरबान ।
जनम जनम रति रामपद यह वरदान न आन ।।

(मा० २/२०/४)

रूपान्तरम्—

नार्थो धर्मो न कामो मे न मोक्षो रोचते क्वचित् ।
भवे भवे राम पदे रतिर्नान्य वृणे वरम् ।।

ननु शुभफलस्य श्रेयःप्रेयोरूपयोः किं मानमिति चेच्छुतिरेवेति ब्रूमहे, तथा च श्रुतिः—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।।

(क० उ० १-२-२)

एवं स्वार्थकुशला वाक् प्रेयोरूपं भोगं देवेभ्यः सङ्कल्य अगायत्–यत् कल्याणं वदति तच्छ्रेयः स्वस्यै उद्गीथस्य सूक्ष्मं शुभफलं स्वार्थं वृत्तवतीति भावः । एवं वाग्रूपमुद्गातारं ते असुराः स्वार्थपरापणं देवप्रेयःसमीप्सया गायन्तं विदुः विदाञ्चक्रुः यत्–ते देवाः अनेन वाग्रूपेण उद्गात्रा गीयमानेनोद्गीथेन न असुरान् अत्येषयन्ति अतिगमिष्यन्ति, अतस्तं वाक्रूपमुद्गातारं स्वार्थसाधकतया निर्बलं पाप्मना उद्गीथसाफल्य-प्रत्यवायरूपेण पातकेन अविध्यन् सङ्गताः समताडयन् । स एव असुरप्रेषितः यः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्यवायरूपः सः पाप्मा पापः । तेन वाचि किमायातम् ? अत आह—इत पूर्वं वाक् शुभं वदतिस्म एतदनन्तरमेव प्रतिरूपम् अशास्त्रीयं भगवद्गुणानुवादातिरिक्तं वदति स एव असुर प्रेषितः पापः ।।श्रीः।।

एवं पापविद्धा उद्गीथगानेनासमुत्पादितदेवहितक्षमपुण्यविशेषा यदा वाग् बभूव तदा देवाः कं प्रार्थयन्त इत्यग्रिममन्त्रेण निरूपयति—

अथ ह प्राणमूचुस्त्वं न उद्गायेति । तथेति तेभ्यः प्राण उदगायद्यः प्राणे भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं जिघ्रति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाविध्यन्स । यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं जिघ्रति स एव स पाप्मा ।।३।।

अनन्तरं प्राणः घ्राणः नासेन्द्रियावच्छिन्नदेवतेति भावः, देवैः प्रार्थितः सन् उद्गीथमगायत्, सोऽपि वागिव भोगं देवेभ्यः, यत् कल्याणं परमेश्वरपदपद्मसमर्पित-श्रीतुलसीकुसुममालासमुद्भूतपरिमलं नितान्तनिर्मलं निरस्तमनोमलं जिघ्रति तत् आत्मने, तमपि पूर्ववदसुराः पाप्मना विद्ध्यावितथप्रयत्नं कृतवन्तः । अधुना यो भगवद् विरुद्धसुरभिं जिघ्रति स एव सः पाप्मा आसुर इति सारांशः ।।श्रीः।।

अथ चक्षुरुद्गीथं वर्णयति—

अथ ह चक्षुरूचुस्त्वं न उद्गायेति । तथेति तेभ्यश्चक्षुरूदगायद्यश्चक्षुषि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं पश्यति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं पश्यति स एव स पाप्मा ।।४।।

चक्षुः चक्षुरभिमानावच्छिन्नदैवतं, कल्याणं पश्यति भगवदीयानां भगवतश्च विशुद्धबोधविग्रहं श्रीविग्रहं इदमेव चक्षुषश्चक्षुष्ट्वं । यथोक्तं श्रीभागवते श्री व्रजाङ्गनाभिः—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ।।

(भा० १०-२१-७)

व्रजेशसुतयो राधाकृष्णयोः न तु कृष्णबलयोः, तथा व्याख्याने गोपीनां सूर्पणखाया इव व्यमिचारापत्तिःस्यात् । समासश्चात्र-व्रजेशस्य वृषभानोः सुता पुत्री व्रजेशसुता वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा, व्रजेशस्य श्रीनन्दस्य सुतः पुत्रः व्रजेशसुतः श्री कृष्णः, व्रजेशसुता च व्रजेशसुतश्च इति व्रजेशसुतौ **पुमान् स्त्रिया** (पा० अ० १-२-६७)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यनेनैकशेषः। तयोः व्रजेशसुतयोः अनुरक्तेषु, कटाक्षमोक्षं यस्य अनुरक्तानां कटाक्षमोक्षं वा यस्मिन्, अनुरक्तः कटाक्षः यस्मै सोऽनुरक्तकटाक्षः अनुरक्तकटाक्षः मोक्षोऽपि येन तदनुरक्तकटाक्षमोक्षम्, एतादृक् वक्त्रं यैः निपीतं पीतरूपरसम् तेषामेवाक्ष्णां सार्थिका अक्षिमत्ता, शेषं पूर्ववत्। तेन पाप्मना चक्षुः प्रतिरूपं भागवत्स्वरूपव्यतिरिक्तं जगत् पश्यति ।।श्रीः।।

अथ श्रोत्रोद्गीथं वर्णयति—

अथ ह श्रोत्रमूचुस्त्वं न उद्गायेति । तथेति तेभ्यः श्रोत्रमुदगायद्यः श्रोत्रे भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं शृणोति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं शृणोति स एव स पाप्मा ।।५।।

श्रोत्रं श्रोत्राभिमानिनी देवता, कल्याणं शृणोति कल्याणश्रवणं भगवत्कथा-सुधासमाकर्णनं वैदिकवाङ्मयश्रवणनञ्च, अप्रतिरूपं भगवद्विरूद्धचर्चा श्रवणम् ।।श्रीः।।

अथ मन उद्गीथगानं वर्णयति—

अथ ह मन ऊचुस्त्वं न उद्गायेति । तथेति तेभ्यो मन उद्गायद्यो मनसि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं संकल्पयति तदात्मने । ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं संकल्पयति स एव स पाप्मैवमु खल्वेता देवताः पाप्मभिरूपासृजन्नेवमेनाः पाप्मना विध्यन् ।।६।।

मनसः कल्याणं सङ्कल्पः परमेश्वरचिन्तनं, आयुः देवताः असुराः पाप्मभिः उपासृजन् समयोजयन्। अत एव ते देवाः कार्यसाधने न समर्थाः बभूवुरिति-भावः ।।श्रीः।।

अथ प्राणोद्गीथगानं वर्णयति—

अथ हेममासन्यं प्राणमूचुस्त्वं न उद्गायेति । तथेति तेभ्य एष प्राण उदगायत्ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाविव्यत्सन् । स यथाश्मानमृत्वा लोष्ठो विध्वंसेतैवं हैव विध्वंसमाना विष्वञ्चो विनेशुस्ततो देवा अभवन्परासुराः । भवत्यात्मना परास्य द्विषन्भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ।।७।।

अथ एवं वाग्घ्राणचक्षुश्श्रोत्रमनोऽवच्छिन्नाः देवताः उद्गीथगाने भग्नसफलताकाः विभाव्य, देवाः इमं मुख्यम् आसन्यं आस्ये भवं आसन्यं आस्यशब्दस्य आसन्न

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदेश: हि निश्चयेन ऊचु: निवेदयाञ्चक्रुः, यत् त्वं न: अस्मत् कृते उद्गाय उद्गीथगानं कुरु, स: तथा इति स्वीकृत्य पूर्णकामतया किमप्यनपेक्ष्येण समग्रेण फलेन सह तेभ्य: देवेभ्य: सङ्कल्प्य अगायत् । पूर्ववत् तदुदगातृकर्मणा स्वप्रराभवं विभावयन्त: असुरा: अभिद्रुत्य त्वरेण समभिगम्य अव्यत्सन् पाप्मना ताडयामासु:, किन्तु यथा अश्मानं पाषाणम् ऋत्वा प्राप्य लोष्ठ: मृत्पिण्डखण्ड: विध्वंसते विनष्टो भवति, एवं प्राणमासाद्य विध्वंसमाना: निजपारप्मनैव निश्यन्त: विष्वंञ्च: विष्वक् सर्वत्र अञ्चन्ति गच्छन्ति ये तथाभूता:, परित: पलायमाना: विनेशु: विनष्टा: बभूवु: अदर्शनं जग्मुर्विशेषेण इति भाव: । यतोहि पूर्णकामतया प्राणेन स्वस्मै किमपि नेप्सता समुद्गीतमुद्गीथं, तत्पुण्येन च जिघांसुरासुर:पापस्तानेव जघान, तत: अनन्तरं देवा: अभवन् ज्यायांस: असुराश्च परा अभवन् पराबभूवु: । य: एवं वेद अस्य भ्रातृव्यश्चेत् भ्रातृव्यो विमातुरात्मज: सोऽपि यदि द्विषन् द्वेषं करोति तदा पराभवति । अत्र **व्यवहिताश्च** इत्यनेन व्यवहितस्यापि परशब्दस्य अभवन् भवति इत्यादावन्वय: । एवं जानन् द्वेषं कुर्वन् भ्रातृव्योऽपि तस्मात् पराभवति, द्विषन्निति विशेषणेन अवगम्यत इत्थं यदि चेत् भ्रातृव्योऽस्य द्वेष्टि तदा स तस्मात् पराभूतो भवति, यदा भरत इव स्निह्यति श्रीरामं तदातु ततोऽप्युत्कृष्टतरो भवति यथा—

नियुज्यमानोराज्याय नैच्छद्राज्यं महाबल: ।
स जगाम बनं वीरो रामपादप्रसादक: ।।

गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्य पराक्रमम् ।
अयाचत् भ्रातरं राममार्यभाव पुरष्कृत: ।।

(बा० रा० १-१-३४,३५)

एवं जानन् अस्य द्विषन् द्वेषं कुर्वन् आत्मन: निजपापेनैव भ्रातृव्य: विमातृतनयोऽपि पराभवति ।।श्री:।।

अथाङ्गिरसो नामोपपत्तिमाह—

ते होचुः क्वनु सोऽभूद्यो न इत्थमसक्तेत्ययमास्येऽन्तरिति सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः ।।८।।

ते देवा: ह निश्चयेन ऊचु: अन्विच्छन्तुमिमामाशाञ्चक्रिरे । अन्वेषणा प्रकारमाह— यो असक्ते असमर्थेऽपि देहे एति स: कुत्र उपलभ्य: ? अयम् आस्ये मुखे तदुपलक्षित हृदये । य: आस्ये अन्तरित: तिरोहित: स एव अङ्गानां रस: अतो आङ्गिरस:, अङ्गे निवासो यस्य स: अङ्गी स चासौ रस इति आङ्गिरस: ।।श्री:।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मृत्योरतीतत्वमाह प्राणस्य—

सा वा एषा देवता दूर्नाम दूरं ह्यस्या मृत्युर्दूरं ह वा अस्मान्मृत्युर्भवति य एवं वेद ।।९।।

वा प्रसिद्धो सा एषा पूर्वप्रसिद्धा प्राणाख्या दवेता दूर्नाम, यतो हि मृत्युः मरणम् अस्याः प्राणदेवतायाः दूरम् दविष्ठमेवं यः वेद जानाति स एव अस्मान्मृत्योः मरणधर्मतः दूरं दूरतरं विमुच्यते ।।श्रीः।।

अथ देवतानां पापनाशमाहः—

सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्य यत्रासां दिशामन्तस्तद्गमयाञ्चकार तदासां पाप्मनो विन्यदधात्तस्मान्न जनमियान्नान्तमियान्नेत्पाप्मानं मृत्युमन्ववायानीति ।।१०।।

सा एषा अस्पृष्टासुरपाप्मा पराभूतासुरा देवता प्राणनाम्नी एतासां देवतानां वाग्घ्राणचक्षुःश्रोत्रमनोऽमिमानात्तच्छन्नानाग्निवायुसूर्यदिक्चन्द्रमात्राभिमानवतीनां मृत्युं स्वस्वरूपविस्मारकं पाप्मानं पातकम् अपहत्य आसां दिशां यदन्तम् एतद् अभिमानकल्पितदिक्परिसरपारं गमयाञ्चकार निनाय आत्यन्तिकतया नासितवतीति भावः । तत्र आसां पाप्मनः जन्ममरणहेतोर्विन्यदधात् अन्तं नीतवती, अतो हेतोः मृत्युरूपं पाप्मानम् अन्ववयानि, अनु अव अयानि इति पदच्छेदः । अनुः आनुकूल्यार्थ अवोऽवमानसूचकः तच्चावमानमनुगन्तृनिष्ठमेवमनुकूलतया, अवमानितः तं गच्छानीति मन्यमानो देवतासमूहः जनिं जन्म न अयात् नालभत् ।

अत एव जनिम् अन्तं च न इयात् न गच्छेत् अर्थात् अन्त्यं क्षणभङ्गुरपदार्थं जनं जननमरणस्वभावसंसारिणमपि न व्रजेत् । अन्यथा मृत्युपापसम्पर्कों दुर्वारः ।

अन्त्यं त्यक्त्वा बुधोऽनन्तं जनं त्यक्त्वा जनार्दनम् ।
यायादिति श्रुतेर्शिक्षा पाप्मामृत्युरतोऽन्यथा ।।श्रीः।।

अग्नि वागादीनामतिमृत्युतां वर्णयति—

सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमहपहत्याथैना मृत्युमत्यवहत् ।।११।।

एषा सा अपहतपाप्मा समतिक्रान्तमृत्युः प्राणनाम्नी परमात्मसंज्ञादेवता **स उ प्राणस्य प्राणः** (के० उ० १-३) इति श्रुतेः । एतासाम् उद्गीथगाने समधिकमसफलानां वाक्देवतानां वाक्प्रभृतीनां मृत्युं पाप्मानं स्वस्वरूपावाप्तिप्रतिबन्धकपरमात्म-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रुतिवियोजकमद्यम् अपहत्य विनाश्य, एताः पञ्चापि वागादिदेवताः अति मरणमतीत्य परमात्मानमवहत् स्वांशिनमदर्शयदिति भावः। ननु मृत्युमति इति श्रुतिसकलेन परमात्मेत्यर्थः कथमवगतः ? इति चेच्छृणु अवहदिति प्रापणार्थक वह् घातोः मुख्यकर्म जिज्ञासायां मृत्योःपारे केनाचिद् भवितव्यमेव स च परमात्मैव नान्यः। यथोक्तं मन्त्रार्णवे—

तमेव विदित्वा अति मृत्युमेति (शु० य. ३१/१/१८)

अतिमृत्युमित्यत्र अतिक्रान्तः मृत्युम् अतिमृत्युः तमतिमृत्युमिति, **अत्यादयः क्रान्त्याद्यर्थे द्वितीययोः** इति समासः। एवम् अतीतमृत्युपरमात्मैव तमवहत् सेवकसेव्यभावसम्बन्धबोधद्वारेण भगवत्सामीप्यं प्राप्य अग्न्यादिरूपेणोपस्थापितवती इतिभावः ॥श्रीः॥

अथ पञ्चमत्रान्वयी वाक्यार्थः—

स वै वाचमेव प्रथमामत्यवहत्सा यदा मृत्युमत्यमुच्यत सोऽग्निरभवत्सोऽयमग्निः परेण मृत्युमतिक्रान्तो दीप्यते ॥१२॥

अथ प्राणमत्यवहत्स यदा मृत्युमत्यमुच्यत स वायुरभवत्सोऽयं वायुः परेण मृत्युमतिक्रान्तः पवते ॥१३॥

अथ चक्षुरत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत्सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिक्रान्तस्तपति ॥१४॥

अथ श्रोत्रमत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत ता दिशोऽभवंस्ता इमा दिशः परेण मृत्युमतिक्रान्ताः ॥१५॥

अथ मनोऽत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स चन्द्रमा अभवत्सोऽसौ चन्द्रः परेण मृतयुमतिक्रान्तो भात्येवं ह वा एनमेषा देवता मृत्युमतिवहति य एवं वेद ॥१६॥

अथ प्राणदेवता प्रथमं वाचम्, पारेमृत्युमनयत् सा अग्निरभवत्। अत एव मृत्योः परेण परस्तात् दीप्यतेऽग्निः प्रकाशते भगवद्भाषैव।

अनन्तरं प्राणः घ्राणसंज्ञकं प्राणं मृत्योरमुमुचत् स यदा मृत्युममुच्यत घ्राणत्वं जहौ अनन्तरं मृत्युमतिक्रान्तः अतीतः पवते पुनाति।

अथ चक्षुः मृत्योः पारंगतम् आदित्यः सूर्यः भूत्वा मृत्युमतीतः परमात्मनस्तेजसा तपति। एवमेव श्रोत्रं मृत्युमतीत्य दिशः अभवन् शेषं पूर्ववत्। एवं मनोऽपि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मृत्युमतिक्रान्तं चन्द्रो भूत्वा मृत्योः पारं भाति भगवदीय विभया । वस्तुतस्तु भगवदीयातिरिक्तसम्बन्ध कल्पनमेव मृत्युरिति मे प्रतिभाति । तथा हि अग्नेरग्नित्वम्, वायोर्वायुत्वम्, आदित्यस्यादित्यत्वम्, दिशां दिक्त्वम्, चन्द्रस्य चन्द्रत्वं पञ्चानामपि देवतानामिमे पञ्चापि धर्माः भगवदीयाः, भगवदीयनिष्ठाः वा भगवद्विभूतिनिष्ठत्वात् । तस्मादेतत् दवच्छिन्ना इमे अग्न्यादयः मृत्युमत्यक्रामन् । वाक्त्वादयो धर्माः मृत्युधर्मिणो जन्तोर्धर्माः तदवच्छिन्नत्वाद् वागादयो मृत्युना गृहीताः । प्राणेन हि पूर्वोक्तानां पञ्चानामपि पाप्माऽपहतोऽतएव स आत्मा अपहतपाप्मत्वरूपगुणकत्वाद् । एवं ज्ञात्वा यः प्राणानुपास्ते एनमपि सा देवता मृत्युमतिवहति मृत्योः पारं गमयतीति भावः ।।श्रीः।।

अथ प्राणस्य अन्नाद्यगानं वर्णयति—

अथात्मनेऽन्नाद्यमागायद्यद्धि किञ्चान्नमद्यतेऽनेनैव तदद्यत इह प्रतितिष्ठति ।।१७।।

अथ आत्मने जीवाय परमात्मनिवेदनाय वा उद्गीथेन अन्नाद्यमागायत् । उद्गीथं नाम सामवेदस्य भक्तिवर्णनस्तोत्रविशेषः, उद्गात्रा सत्यसङ्कल्पेन यत् सङ्कल्प्योद्गीतं तदेव पूरयति । एवं यत् किमपि अद्यते खाद्यते तत् अनेनैव एवं जानन् यः उपास्ते स प्रतितिष्ठति ।।श्रीः।।

अथ देवानां प्राणे प्रवेशनं वर्णयति—

ते देवा अब्रुवन्नेतावद्वा इदँ्सर्वं यदन्नं तदात्मन आगासीरनु नोऽस्मिन्नन्न आभजस्वेति ते वै माभिसंविशतेति तथेति त ँ्समन्तं परिण्यविशन्त । तस्माद्यदनेनान्नमत्ति ते नैतास्तृप्यन्त्येव ँ्ह वा एन ँ्स्वा अभिसंविशन्ति भर्ता स्वाना ँ्श्रेष्ठः पुर एता भवत्यन्नादोऽधिपतिर्य एवं वेद य उ हैवंविद ँ्स्वेषु प्रति प्रतिबुभूर्षति न हैवालं भार्येभ्यो भवत्यथ य एवैतमनु भवति यो वैतमनु भार्यान्बुभूर्षति स हैवालं भार्यैभ्यो भवति ।।१८।।

ते देवाः अग्न्यादयः प्राणम् अब्रुवन् व्यजिज्ञपन् यत् त्वम् आत्मनः कृते यद् अन्नं भोग्यपदार्थम् आगासीः अगायः एतावदेव एतद् प्रमाणमेव इदं सर्वं वर्तते अस्माकं कृते किमपि नास्ति । अतः नः अस्मानपि अस्मिन् अन्ने आभजस्व आभाजयस्व भागिनः कुरु । यत्तु छान्दसोऽयं णिच् नार्थोऽनेन तत्र, आपूर्वक भज् धातोः विभागार्थ द्योतनसामर्थ्याश्रुतेः आभाजयस्व वयम् आभजाम त्वं प्रेरय इति आभाजयस्व । अथ प्राणःप्राह—ते भवन्तः मा माम् प्राणं अभिसंविशत सर्वतः प्रविशत् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतच्छ्रुत्वा तथा तथास्तु इत्थं प्रतिज्ञाय ते समन्तं सम्यग्भोक्तारं प्राणं परिण्यविशन्त परितः प्रविष्टाः ।

अतएव अनेन पुरुषेण यदद्यते यच्चापि भुज्यते तेन भोजनेन एता अग्न्यादयो देवताः तृप्यन्ति तृप्ताः भवन्ति । कथमित्यत आह—यतो हि स्वाः आत्मीयाः भूत्वा एवं प्राणेव ताः अभिसंविशन्ति परितः प्रविशन्ति । एवं यः एवं वेद सः स्वानां निजज्ञातीनां सर्वेंपां अग्रगन्ता भवति । ननु स्वानामित्यनुपपन्नं तस्य सर्वनामत्वात् आमि सुडापत्तेरितिचेन्न **स्वमज्ञातिधनारव्यायाम्** (पाणि० अ० १/१/३५) इतिसूत्रेण ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य सर्वनामसंज्ञाविधानानुशासनात् । प्रकृते जात्यर्थतया स्वशब्दस्य विवक्षणेनादोषात्। एवं विदमेवं ज्ञातारं जनं यः प्रतिबुभूर्षति प्रतिकूलं भर्त्तुमिच्छति सः भार्येभ्यः भरणार्हेभ्यः अलं न भवति पर्याप्तो न जायते । अलं भार्येभ्यः इत्यत्र **नमःस्वस्तिस्वाहा स्वधाअलंवषट्योगाच्च** (पा०अ० २/३/१६) इत्यनेन चतुर्थी । यः एनमनुभवति अनुकूलं वर्तते सः भार्यान् भरणीयान् बुभूर्षति भार्येभ्यः भरणयोगेभ्यः अलं भवति पर्याप्तः भवति ।।श्रीः।।

अथ प्राणस्याङ्गिरसत्वं साधयति—

सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गाना ँ् हि रसः प्राणो वा अङ्गानां रसः प्राणो हि वा अङ्गाना ँ् रसस्तस्माद्यस्मात्कस्माच्चाङ्गात्प्राण उत्क्रामति तदेव तच्छुयत्येष हि वा अङ्गाना ँ् रसः ।।१९।।

एष प्राणः अयास्यः आस्य भिन्नः अयनशीलश्च आङ्गिरसः, यतोहि प्राणः अङ्गानामवयवानां रसः सारः । उपपत्तिमाह—यस्मात् कस्मात् अपि यतः कुतश्चित् करात् चरणात् अन्यस्मादवयवाद् वा प्राणः उत्क्रामति उज्झित्वा गच्छति तदेवाङ्गं शुष्यति प्राणरूपरसहीनत्वात् अतः प्रत्यक्षतः प्रमाणितं तद्रसत्वम् ।।श्रीः।।

अथ नन्वाङ्गिरसत्वं बृहस्पतेः शास्त्रे प्रसिद्धमङ्गिरसः पुत्रत्वात् तदभेदं प्रतिपादयति प्राणस्य—

एष एव उ बृहस्पतिर्वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः ।।२०।।

एषः प्राण एव, उ निश्चयेन बृहस्पतिः । निरुक्तं संगममति—बृहत्याः वाण्याः पतिः बृहस्पतिः, बृहतीशब्दस्य बृहादेशः वागेव बृहती सर्वेषामर्थबोधनात् तस्याः पतिः अतो बृहस्पतित्वेनाऽपि प्राण एवाङ्गिरसः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः ।।२१।।

एष प्राण एव वाचः पतित्वेन ब्रह्मणस्पतिः, वागेव ब्रह्म तस्याः पतित्वेन तथात्वम् ।।श्रीः।।

सामत्वेन प्राणं स्तौति—

एष उ एव साम वाग्वै सामैष सा चामश्चेति तत्साम्नः सामत्वम् । यद्वेव । समः प्लुषिणा समो मशकेन समो समो नागेन सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः समोऽनेन सर्वेण तस्माद्वेव सामाश्नुते साम्नः सायुज्य ँ सलोकतां य एवमेतत्साम वेद ।।२२।।

अयं प्राण एव साम, कथं ? स्त्रीलिङ्गत्वात् वाक् सा प्राणः व्यापकत्वात् द्वयोः समाहारे साम । इतरथापि साम्यमाह—समा एव सामः प्राणः सर्वैः समः, प्लुषिः पिपीलिका तया, मसकैः नागैः सकलजन्तूनां शरीरानुसारमेव तत्र विराजमानत्वात् ।।श्रीः।।

प्रकारन्तरेण स्तौति—

एष उ वा उद्गीथः प्राणो वा उत्प्राणेन हीद ँ सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच्च गीथा चेति स उद्गीथः ।।२३।।

एषः प्राण एव उद्गीथः, उद्गीथशब्दे द्वै खण्डौ उत् गीथ इति, सर्वे प्राणैः उत्तम्भन्ते अतः प्राणः उत् गीयमातत्वात् वागेव गीथः अतः द्वयोरुद्गीथत्वम् । वाचोऽतिरिक्तं प्रणास्तित्वम् नास्तीति ।।श्रीः।।

प्रस्तूयते आख्यायिका—

तद्धापि ब्रह्मदत्तश्चैकितानेयो राजानं भक्षयन्नुवाचायं त्यस्य राजा मूर्धानं विपातयताद्यदितोऽयास्य आङ्गिरसोऽन्येनोदगायदिति वाचा च ह्येव स प्राणेन य चोदगा दिति ।।२४।।

तदेव चेकितानस्य अपत्यं चैकितानिः, तस्यापत्यं चैकितानेयः चेकितानपुत्रः ब्रह्मदत्तः, राजनं सोमरसं भक्षयन् पानेन भुञ्जानः आह—शपथेन यदि आङ्गिरसः प्राणः वाचा सह न उद्गायत् अन्येन उद्गायत् तदा अस्य ब्रह्मदत्तस्य मूर्धानं शिरः राजा सोम एव विपातयतात् निपातयतु, इति शपथेन उद्गानकर्तृनिश्चयः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ स्वरनिष्पत्तिं वर्णयति—

तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद भवति हास्य स्वं तस्य वै स्वर एव स्वं तस्मादार्त्विज्यं करिष्यन्वाचिस्वरमिच्छेत तया वाचा स्वरसम्पन्नयार्त्विज्यं कुर्यात्तस्माद्यज्ञे स्वरवन्तं दिदृक्षन्त एव । अथो यस्य स्वं भवति भवति हास्यं स्वं य एवमेतत्साम्नः स्वं वेद ।।२५।।

एतस्य साम्नः स्वं धनं प्राणरूपं यः वेद उपास्ते अस्य स्वं भवति । स्वर एव स्वं धनमत एव आर्त्विज्यम् ऋत्विजः कर्म आर्त्विज्यं, स्वरसम्पन्न एव करिष्यन् विधास्यन् तस्मात् यज्ञेषु स्वरवन्तं सस्वरपाठवन्तं दिदृक्षन्ते द्रष्टुमिच्छन्ति नहि स्वरविहीनं, शेषं सरलम् ।।श्रीः।।

अथ साम्नः सुवर्णं स्तौति । मन्त्रेषु स्वरवर्णयोर्माहात्म्यं स्वराः ह्रस्वदीर्घप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरितप्रचयानुचयाः वर्णाः अकारादयः —

तस्य हैतस्य साम्नो यः सुवर्णं वेद भवति हास्य सुवर्णं तस्य वै स्वर एव सुवर्णं भवति हास्य सुवर्णं य एवमेतत्साम्नः सुवर्णं वेद ।।२६।।

सुवर्णं सुष्ठुवर्णोच्चारणं यः वेद, स सुवर्णः लोकेऽपि सुस्पष्टवर्णोच्चारणक्षमो भवति ।।श्रीः।।

अथ प्रतिष्ठां निरूपयति—

तस्य हैतस्य साम्नो यः प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठति तस्य वै वागेव प्रतिष्ठा वाचि हि खल्वेष एतत्प्राणः प्रतिष्ठितो गीयतेऽन्न इत्यु हैक आहुः ।।२७।।

अस्य साम्नः प्रतिष्ठां यः वेद जानाति वाग्रूपां सः प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठां लभते । तस्य साम्नः प्राणस्य वागेव प्रतिष्ठा आस्पदं, प्राणः वाचि प्रतिष्ठितः आश्रितः, एके अन्ये आहुः अन्ये अदनीय एव प्राणः ।।श्रीः।।

अथ पवमानाभ्यारोहे जपं विधित्वेन प्रस्तौति—

अथातः पवनमानमेवाभ्यारोहः । स वै खलु प्रस्तोता सामप्रस्तौति स यत्र प्रस्तुयात्तदेतानि जपेत् । असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमयेति । स यदाहासतो मासद्गमयेति मृत्युर्वा असत्सदमृतं मृत्योर्मामृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाह । तमसो मा ज्योतिर्गमयेति मृत्युर्वै

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमो ज्योतिरमृतं मृत्योर्मामृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाह । मृत्योर्मामृतं गमयेति नात्र तिरोहितमिवास्ति । अथ यानीतराणि स्तोत्राणि तेष्वात्मनेऽन्नाद्यमागायेत्तस्मादु तेषु वरं वृणीत यं कामं कामयेत त ँ् स एष एवंविदुद्गातात्मने वा यजमानाय वा यं कामं कामयते तमागायति तद्धैतल्लोकजिदेव न हैवालोक्यताया आशास्ति य एवमेतत्साम वेद ।। २८।।

अथ अनन्तरं साममहत्त्ववर्णनानन्तरं पवमानानां द्वादशमन्त्राणां अभ्यारोहः अभ्यासः । तत्र प्रस्तोता प्रस्तावं कुर्वन् त्रीणि जपेत्—असतो मा सद्गमय असतः सद्भिन्नात् संसारतः मा मां सद्गमय सद्भूतं परमात्मानं प्रापय, तमसो मा ज्योतिर्गमय तमः मोहात्मकं जगत् तस्मात् ज्योतिः परमप्रकाशरूपं परमात्मानं मा मां प्रापय, मृत्योः असत्वेन तमस्त्वेन च संकीर्तितात्, मा माम् अमृतम् अमृततत्वं परमात्मानं प्रापय । इतराणि अन्नाद्याय आगायत् यजमानः वरं वृणीत, अस्मात् सर्वं लभते व्रियमाणम् । एवं यः इत्थं जानाति स लोकजित् लोकं जयतीति लोकजित् लोकविजेता अलोक्यतायाः कृते अयं न भवति, भगवतः सालोक्यतां प्राप्नोति इति भावः ।।श्रीः।।

इति बृहदरण्यकोपनिषदि प्रथमाध्याये तृतीय उद्गीथब्राह्मणे श्रीराघवकृपाभाष्यं संपूर्णम् ।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। चतुर्थब्राह्मणम् ।।

ब्राह्मणानां प्रभुं ब्रह्म ब्राह्मणानामुपासकम् ।
चतुर्थे ब्राह्मणेऽध्येमि रामं ब्राह्मणवत्सलं ।

इतः पूर्वमपूर्वतया कर्मकाण्डाङ्गभूतत्वेन हयमश्वमेधीयं तदङ्गे तत् तत् सुरभावनया सविस्तरं वर्णयित्वा द्वाभ्यां ब्राह्मणाभ्यां, तृतीये पुनः समुचितयोर्ज्ञानकर्मणोः ससमारोहं प्रतिपादनं विधाय, अन्ते त्रिभिर्मन्त्रैः असद्रूपात्तमोरुपाच्च मृत्योः सद्रूपं ज्योतिरूपञ्च अमृतं समधिजिगमिषोः जपविधानम् । अथ किन्नाम तदमृतं यन्मृत्योर्व्यावर्त्यात्मानं जिगमयिषति साधकं, को नामेनं तदमृतं गमयितुं क्षम इति सर्वां जिज्ञासां समुपशमयितुं ब्रह्मोपदेशसुधया चतुर्थोऽयं ब्राह्मणः प्रारभ्यते सप्तदश मन्त्रात्मकः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत्सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहंनामाभवत्तस्मादप्येतर्ह्यामन्त्रितोऽहमयमित्येवाग्र उक्त्वाथान्यन्नाम प्रब्रूते यदस्य भवति स यत्पूर्वोऽस्मात्सर्वस्मात्सर्वान्पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुष ओषति ह वै स तं योऽस्मात्पूर्वोबुभूषति य एवं वेद ॥१॥

सृष्टि प्रक्रियां वर्णयति, यत् अग्रे सृष्टेः पूर्वमथवा अग्रे सर्गादौ परमात्मनःपुरस्ताद् वा आत्मा एव अव्याकृतनामरूपतया केवल आत्मा जीवात्मा अस्थूलोऽनणुः आसीत्। अथवा इदमिति लीनशरीरगणकजगत्परामर्षकं तस्मात् आत्मा एव इदमासीत्। अत्रोभयत्र समानविभक्तिधर्मावच्छिन्नत्वरूपप्रथमात्वनिर्देशात् समानाधिकरणयोर्नामार्थयोरभेदान्वयः सिद्धधान्तानुरोधेन। नीलो घटः इत्यत्र नीलाभिन्नो घट इतिवत् अभेदत्वावच्छिन्नाभेदसंसर्गद्वारेण नीलत्वावच्छिन्ननीलविशिष्टघटत्वाविच्छिन्नघट इवात्रापि आत्मत्वावच्छिन्नात्माभिन्नेदंत्त्वावच्छिन्नेदमित्याकारकः । अभेदसंसर्गेण वा आत्मविशिष्टेदमित्याकारकः शाब्दबोधः। प्रलयकाले स्वकीयानि नामरूपाणि दूरतो विहाय नद्यः समुद्रमिव जीवाः परमात्मानं प्रयन्ति, पुनश्च प्रलयावसाने मेघसहायं जलमिव जायन्ते नदीभूय लभन्ते च तत्तन्नदीसंज्ञाम्, तथोक्तं मुण्डकश्रुतौ—**यथानद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।**

(मुण्डक-उ० ३/२/८) अथवा सृष्टेः पूर्वमिदमेतज्जीवजातमात्मैव आत्मनि एव अव्याकृतनामरूपतया निर्लीनमासीत्। ननु आत्मेत्यत्र प्रथमा स च समानाधिकरणतया विभक्तिनिर्देशः, कर्त्र्यभिन्नः कथं सप्तम्यन्तार्थं बोधयिष्यतीतिचेन्न, **सुपांसुलक्** इत्यनेन ङे स्वादेशे सु लोपे नकारलोपे दीर्घे आत्मा इतिसिद्धम् । एवमिदं जीवजातं समव्यक्तनामरूपमात्मनि सर्वव्यापके परमात्मनि सर्गादग्रे आसीत् स्वसत्तापूर्वकं समुपातिष्ठत्। आसीदिति क्रियापदमस्धातुप्रकृतिकमसिश्च भुवि (अस भुवि) इति पाणिनीयधातु पाठात् , सा च त्रिकालावाध्यत्वेन वर्तमानता। तथा हि आत्माधिकरणिका इदं शब्दवाच्यजीवाधारकसत्ता इति फलितार्थः। **तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविषत्** (एत० उ० २/१) **संविशन्ति** (तै० उ० २/२) इत्यादिश्रुतेः । ननु जीवब्रह्मणो तदेकत्वबोधकश्रुतीनां व्याकोपः ? इति चेन्सम्बन्धननिबन्धनैकत्वव्याख्यानेन तत् समाधानात्। तथाहि **नेहनानास्ति किञ्चन, आत्मैवेदमग्रआसीत् एकैवाभूदविजानतः वाचारम्भणं विकारोनामधेयम् मृत्यिकेत्येवसत्यम्** इत्यादि श्रुतयः परमात्मनि कल्पित संसारसम्बन्धमेव निरस्यन्ति। **नेहनानास्ति किञ्चन** इति श्रुतौ अनेके स्वरत्वनिषेधः, एकत्वमित्यत्र सम्बन्धतः **एकमेवाद्वितीयम्** इत्यत्र भगवतः सादृश्याभावसूचना सर्वं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सद्वितीयं स्व प्रतियोगिकसादृश्यवत् । एकं ब्रह्मैव निरुपमं न तस्य प्रतिमास्ति न तत्समोऽस्त्यभ्यधिकश्च दृश्यते इत्यादिश्रुतिवचनेभ्यः न त्वत्समोस्त्यधिकस्कुतोऽन्यः इत्यादिस्मृतेः । यथाश्रीमानसे—

जेहिसमान अतिसय नहिं कोई । ताकर सील कस न अस होई ।।

रूपान्तरम्—

नास्य सदृशः कोऽपिं नैतस्माच्चातिरिच्यते ।
तस्य चैतादृशं शीलं कथं न स्यात् परात्मनः ।।

निरुपम न उपमा आन राम समान रामनिगम कहै ।

रूपान्तरम्—

रामो निरूपमो ब्रह्म तस्य नास्त्यूपमा विभोः ।
रामेणतु समो रामः संशन्ति निगमा इति ।।

इत्यादि मानसवचनाच्च परमात्मप्रतियोगिकसादृश्याभाव एव निश्चितः । एवं प्रलयकाले संपूर्णजीवजातं परमात्मन्येव लब्धावासमितिफलितम् । अथवा इदमग्रे जीवजातमात्मैव आसीत्, सृष्टेः पूर्वं तत्तत् कर्मणामलब्धफलपरिपाकतया तज्जनितशरीरवियोगात् आत्मा शरीरव्यतिरिक्तएव आसीत् । यतो हि अग्रे तत्तच्छरीराणामभावात् । अथवा अग्रे परमात्मानि, अङ्ग राति स्वशरीरं भक्तायार्पयति यः सोऽग्रः, तस्मिन् परमात्मनि इदं जीवजातम् आत्मैव बुद्धीन्द्रियशरीरवर्जितं क्षेत्रविकार-शून्यं भगवद्दासस्वभावम् आत्मत्त्वमेवासीत् । शरीरे प्राप्ते किमाकारोऽभवत् ? इत्यत् आहः—पुरुषविधः पुरुषः पुंस्त्वावच्छिन्नशरीरविशेषः, पुरुष शब्दस्य निरुक्तमनुपदमेव श्रुत्यैव करिष्यते । पुरः त्रीण्यपि शरीराणि सिनोति बध्नाति उ निश्चयेन इति पुरुषः, अथवा पुरयति पिपर्ति वा भक्तानां मनोरथं यः सः पुरः परमात्मा, तमेव उ निश्चयेन सिनोति प्रणयरसनया बध्नाति यः सः पुरुषः, स एव विधा प्रकारः स्वभावः भगवद्दास्य रूपः यस्य सः पुरुषविधः ।

अहं दासः हरिः स्वामी स्वभावं च सदा स्मर

इति हारीतवचनात् । जीवः खलु भगवतः सेवकः परमात्माभिन्नसत्ताकः इत्येव तस्य विद्या, अथवा पुरुषः पुरुषार्थप्राप्तिक्षमः सैव विद्या यस्य सः पुरुषविधः । अथवा पुरुषः परमात्मा **अङ्गुष्ठ मात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति** (क०उ० २/१/१२) इति श्रुतेः । तत्प्राप्तिरेव विधा स्वभावः यस्य स पुरुषविधः अथवा पुरुषेण परमात्मना विधीयते निजाधिकारे नियुज्यते इति पुरुषविधः प्रजापतिः ब्रह्मा । स किमकरोत् ? इत्यत् आह—सः पुरुषः अनुवीक्ष्य चतुर्णां दिशां वीक्षणं चक्रे । यथा श्री भागवते—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः, प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।
तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता, स्व भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ।।

तस्यां स चाम्भोरूहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ।
परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ।।

(भागवत् ३/८/१५/१६)

एवं विवृत्तनेत्रः परितो वीक्ष्य तदा तस्मिन् काले आत्मनः स्वस्मात् अन्यत् अतिरिक्तं किमपि वस्तुजातं न पश्यत् न दृष्टवान् । सः अग्रे अहमस्मि इति अग्रे व्याहरत् परमात्मन अग्रे अब्रवीत् , ततः तस्मादेव कालात् अहंनामा, अहोति सर्वं व्याप्नोति इति अहम् , अहङ्कारस्य सर्वजगद्व्यापकत्वाद अहमेव नाम परमात्मदत्ता संज्ञा यस्य स अहंनामा यदा परमात्मनोऽग्रे जगदनवलोक्य सोऽहमस्मि, स भवतो लब्धजन्मपुरुषविधः अहमस्मि मदन्यन्नास्ति किमपि, तदा परमेश्वर एव त्वम् अहम् इति सार्धद्वयाक्षरनामवानसि इति स्वयमेव नामकरणं चकार । ततः तस्मात् परमात्मनः सकाशादेव अहंनामा अहं संज्ञः अभवत् । अत्र पुरुषविध इत्यनेन रूपम् , अहंनामा इत्यनेन नाम, इदमुपाधिद्वयं जातम् , इतः पूर्वं नामरूपोपाधरहितम् आत्मसत्तामात्रं भगवदाधारमासीत् । यथोक्तं भागवते—

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ।।

(भागवत १०/१४/११)

वितास्तिर्द्वादशाङ्गुलः **अर्धहस्तो वितस्ति स्यात् द्वादशाङ्गुल एवहि** तत्रा मप्रत्यक्षानुभवार्हः । तस्मात् प्रजापतेरहंनाम्नः एतर्हि अस्मिन्कालेऽपि आमन्त्रितः जनैराकारितः अयम् एषः श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धः अहमस्मि इति इत्थम् ब्रूते, तदनु नाम जिज्ञासवे स्वकीयं नाम कथयति, यस्य जनस्य यन्नाम भवति पितृदत्तं मातृदत्तं वा तदेव । यतोहि एतस्मात् पूर्वस्मात् जन्मान्तरीयात् प्रजापतेरपि पाप्मनः ओषति पूर्वमेव भष्मसात्करोति, एतस्मादपि पूर्वं यः औषत् पापान् एवम् यः प्रजापतिं भवितुमिच्छति स एव प्रजापतिर्भवति ।।श्रीः।।

अथैकनानात्वं पश्यन् ईशदत्तः सत् त्रासाकारमाह—

सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति स हायमीक्षां चक्रे यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति तत एवास्य भयं वीयाय कस्माद्ध्यभेष्यद् द्वितीयाद्वै भयं भवति ।।२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सः प्रजापतिः हिरण्यगर्भो ब्रह्मा अबिभेत् भयभीतोऽभूत्। कथम् ? असहायत्त्वत् तस्माद् तस्माद्धेतोः अद्यापि प्रजापतिरचितप्राणिः एकाकी एकलः बिभेति **एकादाकिनीचा सहाय** (पा०अं० ५/३/५२) । इत्यनेन असहायार्थे आकिनी प्रत्ययः । इत्यनेन आद्यशङ्करव्याख्यानं निरस्तं । यदि प्रजापतिः परमात्मैव तर्हि कथमविभेत् ? भयस्य हि जीवधर्मत्वात् परमात्मनश्चाभयत्त्वात् **अभयं निर्जरं ब्रह्म** इति श्रुतेः । यदि चेत् अविद्ययारोपितं तत् तदपि न परमप्रकाशरूपे भगवति अविद्यायाः सर्वथैवानुपपत्तेः । यत्तूक्तं **तस्य प्रजापतेर्यद्भयं तत्केवलाविद्यानिमित्तमेव** तदनर्गलम् । **तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् तस्य भासा सर्वमिदं विभाति** (क०उ० २/२/१५) इत्यादि श्रुतेः ।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः । (गीता १५/६) इत्यादि स्मृतेश्च । समालोचनेन **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** इत्यादि श्रुतिभिश्च प्रतिपादिताखण्डज्ञानवति भगवति कथमियमविद्या । अहो कियानयमद्वैतवादवर्शनदुराग्रहावग्रहः यत्र सूरयो मुह्यन्ति यत्र त्रिसर्गोऽमृषा येन च धाम्ना समस्तकुहकानि निरस्तानि, तस्मिन् कोऽयमविद्याप्रसङ्गः । यथोक्तं श्रीभागवते प्रथमे प्रथमश्लोकेन—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वविज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्महृदा य आदि कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजो वारि मृदां यथा विनिमयो यत्रत्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ।।

तथैवोक्तं मानसे भगवता गोस्वामी तुलसी दासेन ।

निज भ्रम नहि समुझहिं अज्ञानी ।
प्रभु पर मोह धरहिं जड पानी ।।
यथा गगन धन पटल निहारी ।
झांप्यो भानु कहहिं कुविचारी ।।
चितव विलोचन अङ्गलि लाए ।
प्रगट जुगल शशि तिनके भाए ।।
उमा राम विषयिक अस मोहा ।
नभ तम भूरि धूम जिमि सोहा ।।

एतद्रूपान्तरम्—

मूढा नैवावगच्छन्ति ज्ञानहीना निजं भ्रमम् ।
प्रभावारोपयन्त्येव मोहं प्राणभृतो जडाः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा नभस्तले वीक्ष्य मेघमालां विजृम्भिताम् ।
भानुश्छन्न इति प्राहः कुविचारपरायणाः ।।
पिधायाञ्जलिना नेत्रे पश्यन्तो मूढचेतसः ।
एकं चन्द्रमसं द्वेधा मन्यन्ते भ्रमकरणात् ।
उमे श्रीरामविषयस्तथा मोहो ह्यमूलकः ।
यथा धूलिकणाद् धूमो नभः स्पृष्टुं न वै क्षमा ।।

(मानस १/११७/२/३/४)

न खलु—परमात्मा असहायः स चैकः नैवैकाकी, जीवस्तु एकाकी विस्मृतभगवद् कैङ्कर्यस्वभावात् प्रपत्यभावाच्च भयं जगाम । प्रपन्नो हि न बिभेति । सः प्रजापतिः अयम् एषः ईक्षाञ्चक्रे ईक्षणं कृतवान् । किम् इत्यद् आह-यत् मत् प्रजापतेः अन्यत् किमपि नास्ति, अतोऽहं निष्प्रतिद्वन्दः नान्यस्य शरीरिणोऽधुना यावत् मदतिरिक्तस्य समुत्पत्तिः भगवद्दास्यस्वभावनात्मतत्त्वसामान्यं मम सर्वत्र विचकास्ति । तर्हि कस्मात् कुतो हेतोर्बिभेमि भयं करोमि, को नाम भय हेतुः । कं ब्रह्म खं ब्रह्म इति श्रुति-प्रतिपादितात् कस्माद् ब्रह्मणो बिभेमि सर्वथैवानुचितमेतत् । अज्ञानाज्ञानपरिस्थितिः जीवस्य, नतु परमात्मनः, यस्माद् भयं बिभेति स कथं बिभेतु । नित्येक्षणशीलस्य परमात्मनः ईक्षणावरोधो न विचारसहः । जीवस्य धर्मः न तु परमेश्वरस्य भयं, विनाशशङ्कया भवति अविनाशिनो विनाशशङ्कानोपपत्तेर्न तत्र भयोत्पत्तिः । ननु जीवत्वेऽपि प्रजापतिर्नहि तत्र भयोपपत्तिस्तस्यापि विना प्रागभावतत्वश्रवणात् ? इति चेत् नैवम् स्वरूपेणाविनाशित्वेऽपि देहावच्छेदेन दण्डिनो यान्ति इतिवत्, दण्डरहिते व्यवहारस्य विशेषणप्रयोगाभावदृष्ट्या विनाशस्य वक्तुं शक्यत्वात् । अणीयस्त्वाच्च तस्य नितरामबोधविक्लवत्वात् । विरोचनस्येव प्रसभमज्ञानवशेन देहमेव स्वात्मानं मन्यमानस्य देहात्मबुद्धेर्भयं सूपपन्नमेव, विकारो हि भयम् , क्षेत्र विकारेषु तस्यापि पञ्चविंशतिसंख्या-पूरणत्वेन गणितत्वात् भगवता, तथा हि—

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकंच पञ्चचेन्द्रियगोचरा ।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना घृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।।

(गीता—१३/५/६)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहि निर्विकारे भगवति विकारभूतस्य भयस्यासुरभावस्य सुरेश्वरे कोसलेश्वरे श्रीरामे ब्रह्मणि सम्भावनालेशोऽपि । **भीरपि यद् विभेति** (भागवत् १/८/३१) इति स्मृतेः जीवत्त्वं स्वीकारे तु सर्वं सङ्गतम् । जीवो हि क्षेत्रज्ञः तस्य क्षेत्रे ममत्वं तस्मात् स्वरूपतो निर्विकारोऽपि **यवघुणन्यायेन** क्षेत्रविकारसम्बन्धतो विकारी संसारीभयाक्रान्तोऽपीति सूपपन्नः शास्त्रार्थः । अथ कथम् भयं व्यपगच्छेदिति तमेव भक्तभयहारिणं हरिं प्रपद्यते इति इति शब्देन सूच्यते । मदन्यत् किमपि नास्ति यद् भगवता त्रातव्यं स्यात्, तस्मात् तं शरणं प्रपद्ये, भीतो हि शरणं प्रद्यते । यथा गजेन्द्रः—

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया-
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ।।

(भागवत—८/२/३३)

अथ किमियमशास्त्रीयावधारणा । औपनिषदवाङ्मये भगवच्छरणागतेः कुत्राप्यनुलब्धेरिति ? मैवं वादीः, श्वेताश्वतरे सुस्पष्टमेव कण्ठरवेण श्रुत्यैव शरणागतेः संकीर्तितत्वात् । यथा **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तँ ह वेदमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये** (श्वे० उ० ६/१८) न चायं मन्त्रो जीवात्मपर इति वाच्यम् ? आत्मबुद्धिप्रकाशम् इत्यस्य देवमिति शब्दविशेषणत्वेन श्रुत्वोक्तशङ्कायाः दूरापास्तत्त्वात् । न चात्मशब्दस्याहंकारार्थत्वेन देवमिति जीवात्मपरमर्थमभिधत्ते इति वाच्यम्, पूर्वत्र पदयोर्ब्रह्मविधातृत्ववेदप्रेषकत्वेति धर्मद्वयस्य जीवात्मनि सङ्घटनानुपपत्तेः, **न हि भिक्षुको भिक्षुकान्तरं याचते** इत्याकारकन्यायस्य प्रसरेण जीवात्मनश्च क्षोदिष्ठत्वेन तत्र विधातृविधातृत्वस्य च सर्वथैवायोगात् । आत्मनोऽहङ्कारार्थत्वेऽपि तमोबहुलत्वेन तस्मिन् प्रकाशस्याप्रासङ्गिकत्वात् । बुद्धेः पूर्व प्रयोगाच्चात्मशब्दस्य तत्राभ्यर्हितत्त्वद्योतनात् । अहङ्कारे च तद्धर्मानवच्छेदकत्वात् **बुद्धे रात्मा महान् परः** (क०उ० १/३/१०) इति श्रुतेः । आत्मनो बुद्धेरभ्यर्हितत्त्वे सिद्धे तत्पूर्वप्रयोगसूपपन्न एव, एवं **तदेतत्पदनीयमस्य सर्वस्य** (वृ०उ० १/४/७) इति श्रुतावपि । पदनीयं पत्तव्यं । सर्वस्य अस्य प्राणिमात्रस्य शरण्यत्वेन श्रयणीयमिति भावः । **बुद्धौ शरणमन्विच्छ** (गीता २/४) **निवासः शरणं सुहृत्** (गीता ८/१८) **तमेव शरणं गच्छ** (गीता १८/६२) **मामेकं शरणं व्रज** (गीता १८/६६) इत्यादयः स्मृतिवादा अपि भगवच्छरणागतिम् समुपपादयन्ते । किं बहुना ज्ञानवतोऽपि भगवत्प्रपत्तेरेव भगवता चरमलक्ष्यत्वेनैव निर्धारितत्वाच्छरणागतौ नावैदिकत्वं शङ्कनीयम् । एवं श्रुतिस्मृति-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्राधिकवचनबलेन विभाव्यम्। शरणागतिमेव परमलक्ष्यं। अथ ज्ञानवतः शरणागतिश्चरमलक्ष्यत्वेनोक्ता किं प्रमाणबलेन भवति ? इति चेच्छृणु—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मः सुदुर्लभः ।।

(गीता ७/१९)

भगवद्विमुखकुमतिदुर्बोधतया दुरूहतयातिसामान्यधियाम्, अन्वयोऽप्येतदीयः सावधानं प्रदर्शमानो विभाव्यताम् विद्यारसिकैः व्याकरणप्रक्रियाचुञ्चुभिश्च। अथान्वयः सर्वं वासुदेवः, इति सः सुदुर्लभो महात्मा ज्ञानवान् बहूनां जन्मनाम् अन्ते मां प्रपद्यते। आशयोऽयम् यत् सर्वं वासुदेवः चराचरं भगवद्रूपम् इति एवं सर्वत्र ब्रह्मदर्शनः सुदुर्लभः पुण्यपुञ्जैकलभ्यः महात्मा पूजनीयमना ज्ञानवान्, निश्चितविज्ञानो बहूनां जन्मनां भवानामन्ते मां प्रपद्यते शरण्यत्वेन स्वीकरोति। न च पूर्वार्ध एकवाक्ये उत्तरार्धश्चापर- वाक्ये अन्वयेन दोषाभावः ? इति चेत् **न सम्भवत्येक वाक्यत्वे वाक्यभेदो न युज्यते** इति वाक्यभेदानौचित्यात्। कृतेऽपि वाक्यभेदे ज्ञानप्रवृत्तेर्दुर्निवारत्वात्। तदर्थं शास्त्रविरुद्धकल्पनाया एवायोगात्। अत एव भगवन्तं शरण्यत्वेन स्वीकुर्वन् भयं समपनयति प्रजापतिः, यतो हि प्रपन्नायैव दीनेभ्योऽभयं दीयते कृपालुना भगवता परमात्मना। यथोक्तं वाल्मीकीये—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।

(वा०रा० १/६/१९/३३)

कस्मात् परमात्मतयैव। ननु क शब्दस्य परमात्मैव कथमर्थोऽस्तीति चेत् **कस्मै देवाय हविषाविधेम** इतिमन्त्रवर्णएव। कं ब्रह्म इत्यपि। ननु ब्रह्मवाचककशब्दस्य नैव सर्वनामसंज्ञा तदभावे कथं स्मात् आदेशः ? इति चेत् **बहुलं छन्दसि** (पा०अ० २/४/३९) इत्यनेन सर्वनामसंज्ञाव्यतिरेकेऽपि स्मादादेशो पत्तेः। इति इत्थं भगवन्तं शरणं प्रपन्नः, ततः परमात्मनः कृपया एव अस्य प्रजापतेः भयं भीतिः आत्मविनाशमूलिका वीयाय विशेषेणगता निर्भयोऽभूत् प्रजापतिः। हि यतो हि कस्मात् अत्र हेतौ पञ्चमी। के हेतुना अभेष्यत् भयस्य न कोऽपि हेतुरिति भावः। भयहेत्वभावे बीजाभावेऽङ्कुर इव न भयं, कथं वै निश्चयेन **द्वितीयाद् भयं भवति**, आत्मनोव्यतिरिक्तात् भयं जायते नात्र तदात्मव्यतिरिक्तःकोऽपि। ननु भवतां मते अस्ति तु परमात्मा द्वितीयः ? नैष द्वितीयः कस्तर्हि ? अद्वितीयः, तर्हि आगतो मेऽद्वैतवादः नायमागन्तुं प्रभवति द्वितीयशब्दस्य स्वसत्ताप्रतिकूलसत्ताकत्वे व्याख्यानात्। अत एव **एकमेवाद्वितीयम्** (छा उ० ६/२/१)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यस्य अद्वितीयं, निरूपमम् आत्मीयमिति तस्मात् परमात्मा न द्वितीयः । अतस्तत् सत्त्वात् द्वितीयताया अभावाच्च न भयमिति भावः । अतएव मदन्य इत्यस्यापि आत्मजातिव्यतिरिक्तनिषेधः । एवमदन्यदित्यस्य अस्मद्पदाभिधेय-प्रत्यगात्मजात्यवच्छिन्नं नास्ति इति भावः तस्मात् द्वितीयं नाम स्वसत्ताप्रतिकूलसत्ताकं तच्चात्र नास्ति । ननु परमात्मा नित्यज्ञानवान् जीवश्च परिच्छिन्नज्ञानयुक्तः अतस्तस्मात् कथन्नप्रतिकूलो परिच्छिन्न आत्मा ? इतिचेच्छृणु यथा संकलितासीमजलरा-शिर्वारान्निधिर्न प्रतिकूलो निम्नागां स्वल्पपयसां, तथैवाखण्डज्ञानराशिरपि परमात्मा न प्रतिकूलः स्वल्पज्ञानवतोऽपि जीवस्य । ननु जीवेऽणुत्वं किं प्रमाणकं सिषाधयिषति भावान् **एषोऽणुरात्मा चेतसावेदितव्यः** (मु०उ० २/१/९) यद्वा द्वितीयशब्दः आत्मीयभेदवच्छिन्नवाची द्वितीयः आत्मीयभिन्नः परमात्मा तु न द्वितीयः किंतर्ह्यात्मीय एव । अत एव श्रीभगवते प्रह्लादः स्वतः परमात्मानं द्वितीयं न जानन् तस्मान्न बिभेति । तस्मिन् भगवदात्मीयत्निश्चयदृढत्वात्। यदपि नित्यसहचर्यापि श्रीर्बिभेति तत्र भगवदात्मीयत्वनिश्चयदृढत्वाभावात् । तथोक्तम् —

साक्षाच्छ्रीः पोषितादेवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ।
अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता ।।

(भा०पु० ७/९/२)

परन्तु प्रह्लादो न बिभेति तत्र द्वितीयपरमात्मनः स्वात्मीयत्व बोधनिश्चयात्, तस्मात् ब्रह्मणा प्रेषितः प्रह्लादो निर्भयो जगाम माधवं नारसिंहवपुर्दधानं, तथोक्तम् —

प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मावस्थितमन्तिके ।
तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ।।

तथेति शनकै राजन् महाभागवतोऽर्भकः ।
उपेत्य भुविकायेन ननाम विधृताञ्जलिः ।।

(भा० ७/९/३/४)

तस्मात् प्रजापतिरपि निजरक्षकत्वेन परमात्मानमध्यवस्यन् निर्भयोऽभत् ।।श्रीः।।

अथ प्रजापतेः सृष्टिप्रक्रियामवतारयति—

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् । स हैतावा नास यथास्त्रीपुमाँ सौ सम्परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्य-स्तस्मादयमाकाशः स्त्रियापूर्यत एव ताँ समभवत्ततो मनुष्या अजायन्त ।। ३ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं स प्रजापतिः विगतभयोऽपि एकाकी असहायः न रेमे न चिक्रीड विहारं न चकार इति भावः। सकलप्राणिमयस्य प्रजायतेरनुपपन्ने विहारैकत्वे तत्प्रभाप्रतिबिम्बितत्वात्, प्राणिष्वपि तादृक्स्वभावो निरूप्यते श्रुत्या तस्मात् ब्रह्मणारमणाभावात् एकाकिने प्राण्यपि एकाकी एकलो न रमते न क्रीडति। एवं जगत्स्रष्टुर्जगतो निजतुल्यस्वभावत्वात् परमात्मा क्रीडार्थमेव द्वितीयं तुल्यम् ऐच्छत ज्ञानचक्षुषा समैक्षत। ननु को मिलेत्तस्य द्वितीयः सर्वत्रैव तेनैव पूर्यमाणत्वात् जगतः, इति हेतोः स्वकीयशरीरमेव निजशक्तिबलेन एतत्प्रमाणकः कल्पितयुगलरूपः समभवत्। ननु कल्पनायां मिथ्यात्वम्। अत्र संभावना या न मिथ्या। भावनाप्रकारमाह—यथा स्त्रीपुमांसौ नारीनरौ सम्परिष्वक्तौ समालिङ्गितौ अन्तरं ब्रह्मैव आत्मानं स्वं द्वेधा द्विप्रकारेण पातयामास प्रकटयामास। तात्पर्यमेतत् यत् ब्रह्मा सर्वजीवमयः सव जीवात्मानं द्वेधा द्वाभ्यां लिङ्गाभ्यां विषमाभ्यां प्रकारावच्छिन्नतया दृश्यमानं प्रकटयाम्बभूव। ततः तस्मादेव प्रकटीकरणात् पतिः भर्ता मनुरूपः पत्नी शतरूपाख्या अभवताम् अजायेताम्। यत्तु भगवत्पादैः प्रजापतिरेवमनुः इत्यभ्यधायि तत्तु पुराणानभिज्ञत्वादेव पुराणेषु मनुशतरूपयोः ब्रह्मण एव समाविर्भावज्ञापनोपलब्धेः। तथा च भागवते—

कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते।
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत॥
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट्।
स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः॥

(भा० ३/१२/५२/५३)

तथोक्तं मानसेऽपि—

स्वायम्भुव मनु अरु सतरूपा। जिन्हते भए नरसृष्टि अनूपा॥

(मा० १/१४२/१)

रूपान्तरम्—

स्वायम्भुवो मनुर्जातः शतरूपा च नार्यभूत्।
याभ्यां मिथुनतो जज्ञे नरः सृष्टिरनुत्तमा॥

तस्मात् अत एव इदम् आकाशमर्धवृगलमिव दलीभूतमर्धफलमिव, स्वः आकाशमित्येव याज्ञवल्क्यः। यज्ञवल्क्यस्य गोत्रापत्यं याज्ञवल्क्यः, अथवा यज्ञे वल्को वल्कलो यस्य स यज्ञवल्क्यः तत्र भवः याज्ञवल्क्यः, अथवा यज्ञस्य वल्के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जातः याज्ञवल्क्यः इत्थमाह अतएवआकाशम् आकाशवदरिक्तं पुरुषवस्तु स्त्रियापूर्यते, एवं तां सतरूपां स मनुः समभवत् समगच्छत्; ततः मनुष्याः ताभ्यां मनुशतरूपाभ्यां मानवः समजायत जन्मगृहीतवा न् । यथोक्तं भागवते—

तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ।

(भा० ३/१३/५४ ।।श्रीः।।)

अथ मिथुनसृष्टिं प्रपञ्चयति । प्रजापतिरेव आत्मनो रूपद्वयं विधाय तत्रैव जन्यजनकभावं कल्पयित्वा सृष्टिं समचीचलत् । ततः पश्चात् शरीरावच्छेदेन इयं जननी, आयं जनकः, अयं भ्राता, इयं स्वषा, अयं पुत्रः, इयं पुत्री, एष पतिरेषा, पत्नीति व्यवहारः परम्परया प्रावर्तताभ्युपगमवादाकारः । परमार्थतस्तु एक एव आत्मा छरीरभेदेन स्त्रीपुंक्लीबव्यवहारभाक् स च यावच्छरीरधर्मः परिपालनीय इति व्यवस्था । यद्यपि मनुशतरूपयोर्मध्ये आत्मावच्छेदेन नहि कोऽपि भेदः परन्तु शरीरावच्छेदेन तु भिदास्त्येव । परन्तु भगवल्लीलावशंवदचेतस्तया शतरूपया निरूपितमर्धजरतीयन्यायेन किमभिप्रायमेतत् ? इति चेत् समवधत्स्व, शतरूपा खलु वृतस्यार्धमंशं स्वाभिगमनमूलकं पारमार्थिकं स्वसंभवरूपं व्यावहारिकञ्च विमृष्टवती मनुमेव प्रजापतित्वेन निश्चित्य, तत्र पितृत्वं सम्भाव्य स्वाभिगमे शंकमाना तिरोधातुं निश्चिकाय । ननु परिकलितविवेकपुञ्जायां तस्यां कथमेतावद्विवेकः ? इति चेत् सृष्टिविस्तारसमीहया कृतमिदं परमकुतुकनिपुण-परमेश्वरलीलाविलासकौतुकमेवेति गृहाण । शतरूपा शतानं रूपाणां निर्माणव्यस्तचित्ततया बहुशाखा अनन्ता बुद्धिरेवाव्यवसयिनी, मनुश्च एकव्यवसायात्मकबुद्ध्यवच्छिन्न-चैतन्यराशिरणुर्जीवात्मेति शास्त्रनिर्णयः । अतस्तदभिगमने पापंशङ्कमानाः तां तां जातिमुत्पादपितुं तत्तद्रूपधरां भार्यां तत्तद्रूपधरः समभिगच्छति, मिथुनधर्मेण च तत्तज्जात्यवच्छिन्नप्रजां तत्तज्जातिरूपमत्याः शतरूपायाः सकाशात् याः निखिलानि जातिबीजरूपाणि सत्वानि संजनयतीति निर्दूषणोऽयं शस्त्रार्थः ।

सो हेयमीक्षाञ्चक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा सम्भवति हन्त तिरोऽसानीति सा गौरभवदृषभ इतरस्ता ँ समेवाभवत्ततो गायोऽजायन्त वडवेतराभवदश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्त ँ समेवाभव त्तत एकशफमजायताजेतराभवद्बस्त इतरोऽविरितरा मेष इतरस्ता ँ समेवाभवत्ततोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किञ्च मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत् ।।४।।

सा शतरूपा, उ वितर्कयन्ती, इयमेषा गृहीतनारीभावा हि निश्चयेन ईक्षाञ्चक्रे व्यलूलुकत् । हन्त विस्मयोऽयं यदयम् आत्मानः स्वस्मादेव ब्रह्मरूपात् मां जनयित्वा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समुत्पाद्य पुनर्ब्रह्मरूपं विस्मृत्य भूयो मयि पत्नीभावमाश्रित्य कथं सम्भवति कथं समागमविषयां कुरुते, अधर्मोऽयं तस्मात्तिरोसानि तिरोभवानि इति इत्थं विचार्य सा गौरभवत्, मनुरपि गोभूतः सम्भूय गावमुत्पादयामास, एवं तत्तच्छरीरधरायां तत्तच्छरीरावच्छिन्नः अजायाम् अजीभूय अजं, मेषीभूयमेषं अश्वायाश्वमेवं मिथुनधर्मेणैव सम्पूर्णचराचर मजीजनत् । इतिमन्त्रसारः ।।श्रीः।।

अथ सृष्टिफलमाह—

सोऽवेदहं वाव सृष्टिरस्म्यहँ्हीदँ् सर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्याँ् हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ।।५।।

सः मनुः, अवेद ज्ञातवान् यत् अहमेव सृष्टिः, असृज्यत इति सृष्टिः सर्जनाश्रया अथवा सृजति सर्वं या सा सृष्टिः इति कर्त्रर्थे बहुलं छन्दसीइत्यनेन क्तिन् । ननु कथं स्त्रीलिङ्गव्यपदेशः ? इति चेज्जीवभूतायाः प्रकृतेर्बीजभूतत्वनिर्देशाय यथोक्तं गीतासु—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।

(गीता ७/५)

एवं यः वेद जानाति सः प्रजापतिः भगवल्लीलया सृष्टिकर्तृत्वाभिमानमेव संजयति इत्थं जानन् प्रजापतेः सृष्टौ स्रष्टा भवति ।।श्रीः।।

एवं एतस्य प्रजापतेः एतस्यां जगद्रूपायां सृष्ट्यां रचनायां प्रजापत्यभिन्नत्वेन विभावयन्नात्मानं प्रजापतिरिव स्रष्टा भवति । यद्यपि मुख्यस्रदृत्वम् परमात्मनि **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते** इत्यादि श्रुतेः । एवं गुणगणविशिष्टः मद्वशीभूतः प्रजापतिः स्वसमानां सृष्टिमेवास्राक्षीत् उताहो काञ्चित् विलक्षणामपि ? इत्यत् आह—

अथेत्यभ्यमन्थत्स मुखाच्च योनेर्हस्ताभ्यां चाग्निमसृजत तष्मादेतदुभयमलोमकमन्तरो लोमका हि योनिरन्तहतः । तद्यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येकैकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ ह्येव सर्वे देवाः । अथ यत्किञ्चेदमार्द्रं तद्रेतसोऽसृजत तदु सोम एतावद्वा इदँ् सर्वमन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नमाग्निरन्नादः सैषा ब्रह्मणोऽति सृष्टिः । यच्छ्रेयसो देवानसृजयताय यन्मर्त्यः सन्नमृतानसृजत तस्मादतिसृष्टिरतिसृष्ट्याँ् हाष्यैतस्यां भवति य एवं वेद ।।६।।

एवं तत्तद्रूपधरायां शतरूपायां स्वांशभूतायां स्त्रियां स्वांशेन मनुना मिथुनधर्मेण तत्तज्जातीः समुत्पाद्य सम्प्रति सनातनधर्मस्य स्तम्भभूतान् चतुरोऽपि वर्णान् कथं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यरीरचदित्याह—अन्वयोऽप्येतदीयः, इति इत्थं रचितमिथुनधर्मसृष्टिः सः ब्रह्मयोनिभूतात् मुखात्, हस्ताभ्याम् उपलक्षणतया ऊरूभ्यां, पादाभ्याञ्च अभ्यमन्थत् अभिमन्थनमकरोत्। अलोमत्वेन, सादृश्यं, अनन्तरं मुखादेव अग्निं ब्राह्मणं च व्यरचयत्। हस्ताभ्याम् इन्द्रं तद्दैवतं, क्षत्रि ञ्च। ऊरूभ्यां वसुदैवतं वैश्यम्, पद्भ्यां सोमदैवतं शूद्रञ्च रचयामास। ननु श्रुतावस्यामग्निमात्रस्य रचनासंकेतनात् कथमन्येषां परिकल्पनेति चेत् श्रुतिस्मृतिवचनान्येव प्रमाणानि। तथा हि–**मुखादग्निरजायत** (शु०प०वे० ३१/११) **ब्रह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः उरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यां ँ शूद्रो** अत्र मुखमित्यत्र ङसेः स्वादेशे सोरम् पूर्वसर्वर्णदीर्घः। ऊरू इत्यत्र ङसेरपि पूर्वसवर्णदीर्घः। सुपां सुलुक् पूर्वावर्णाच्छेयाडाड्याजालः। (पा० अ० ७/१/३९)। अमुं यज, अग्निं यज अमुमिन्द्रं यज, इति ब्राह्मणाय अग्निं, क्षत्रियाय इन्द्रम् एकैकं देवं यष्टुं, यदाहुः तदनुचितम्। एतस्य ब्रह्मण एव इयं विसृष्टिः विसर्गः वैषिष्ट्यं च मैथुननिरपेक्षप्रजननसामर्थ्यरूपम्। उ निश्चेन एषः प्रजापतिरेव सर्वे देवाः सकल देवांशिभूता, एवं यत्किञ्च इदं दृश्यमानम् आर्द्रं द्रवशीलम् असृजत् तद्रेतसः शुक्रात् तदेव सोमसंज्ञम् एवं सोमाग्निभ्याम् अन्नान्नादाभ्यां भक्ष्यभक्षकाभ्यां पूरितमेत्। यतो हि मर्त्यधर्मापि अमर्त्यान् असृजत् तस्मादियम् अतिसृष्टिः अतिशया सृष्टिः। एवं विभावयन् साधारणस्यापि ब्रह्मणो निजातिशायिरचनासामर्थ्यं भगवत्कृपाप्रसादरूपम्। सोऽप्यतिसृष्ट्यां प्रजापतिरिव परमेश्वरकृपाभाग् भवतीति मन्त्रासारः। नन्विदं विरूद्धं गीतातः, अत्र ब्रह्मणो मुखतः अग्निर्ज्येष्ठस्य ब्राह्मणस्य समुद्भवनिदर्शनम्? तत्र—

चातुर्वण्यं मया सृष्टम् (गीता ४/१३) इति वर्णचतुष्टयस्य भगवदुद्भवस्मरणम्? मैवं अत्र विरड् रूपस्य ब्रह्मणः तदुद्भावने मुखाद् मन्थनरूपा बाह्यक्रिया। मया सृष्टमित्यत्र प्रजननसामर्थ्यरूपा काचिदान्तरक्रियेति गृहाण। एवं **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्** (गीता ४/१३) इत्यत्र भगवता प्रयुक्तस्तृतीयैकवचनान्तोऽस्मच्छब्दः परिपूर्णमपरात्परनिस्तसकलदोषनिखिलसद्गुणकोषपरमात्मवाचकः। तथैव **अग्निमसृजत** (वृ०उ० १/४/५) इत्यत्र सृजेः कर्तृत्वेनाध्याहृततच्छब्दाभिधेयः प्रजापतिः विराट्परकः। तथा परब्रह्म विरजो जनयितृजन्यभावनया सम्बन्धत ऐक्यावधारणात् ब्रह्मभिन्नतया विरजस्तदुत्पादितचातुर्वर्ण्यजनकत्वे मयेति व्यवहारो न विरुद्धः। यद्वा चातुर्वर्ण्यजनकत्वे मयेति व्यवहारो न विरुद्धः। यद्वा चातुर्वर्ण्यजनने अभिन्ननिमित्तोपादानकारणं भगवान् सहकारिकारणं ब्रह्म इति न विरोधः, नैयायिकदृष्ट्या घटं प्रति दण्डादेरिव निमित्तकारणत्वं भगवति कपालद्वयसंयोगादेरिव असमवायिकारणत्वं प्रजापतावेत्यवगच्छ ॥श्रीः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं परमात्मानमेव सृष्टेरभिन्नोपादानकारणतया निरूप्य मन्त्रेऽग्रिमे तच्छ्रयणीयतां श्रुतिरपूर्वतया कोटि कोटि जन्मान्तरीयकुत्सितसंसारमलीमसमानसानां समनादिकालीन-कुवासनासर्पिणीसंदष्टभगवद्भजनोपयोगिधिषणानां नितान्तमनर्गलाभेदवादप्रेत-समभिभूतविवेकानां प्रच्छननबौद्धजल्पितकोटिकोटिकुतर्ककल्पनाजल्पवान्तिदुर्गन्धदूषित-भगवदीयभद्रभावतद्रागानां सततमनियन्त्रितदुराग्रहग्रहिलप्रजल्पकप्रोद्गीर्णश्रुतिसिद्धान्त-विरूद्धचर्चाश्रवणसंजातकोटिकोटिकल्पपर्यन्तरौरवनरकप्रदप्रबलपातकसंमुष्टसत्संगमहामणीनां कपोलकल्पितकल्पनाकुटिलकरवालीविलूनपरमेश्वरभक्तिप्ररोहसमधिकाशान्तदुर्दान्तसंपर्क-भार्ष्ट्रसंभर्जितपरमात्मभजनबीजानां सामान्यजनानां कृते ससमारोहं विधेयतया विदधाति। शरणागतौ हि शरण्यस्य माहात्म्यज्ञानं पूर्वमावश्यकं, **विज्ञायप्रज्ञां कुर्वीत** इत्यादिश्रुतेः। एवं श्रुतिसहस्रतो निर्धूतमहामानसमलेन लब्धसद्गुरुकृपाबलेन समर्जितसत्संगकृपासंबलेन निराकृतभगवद्भक्तिप्रतिबंधकप्रबलप्रत्यूहसमूहबाधकेन सत्साधकेन सर्वशरण्यत्वेन विज्ञाय निश्चिते परिचिते च परमात्मनि षड्विधायाः शरणागतेः स्वत एव संभावना जागर्ति। अतस्तदुपबृंहणार्थं परमकरुणामयी माता श्रुतिः समुपदिशति मादृक्षान् निजस्वान्तसंलालित-श्रीसीतापतिपतितपावनपदपद्मनखचन्द्रज्योत्स्नादिदृक्षान् करालकलिकालकष्टकरवाल-व्रणितविवेकग्रीवान् जीवान्—

तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नारूपाभ्यामेव व्याक्रियतासौनामायमिदꣳ रूप इति तदिदमप्येतर्हि नामरूपाभ्यामे व्याक्रियतेऽसौनामायमिदꣳ रूप इति। स एष इह प्रविष्टः। आनखाग्रेयो यथा क्षुरः क्षुर धानेऽवहितः स्याश्विम्भरो वा विश्वम्भरकुला ये तं न पश्यन्ति। अकृत्स्नो हि स प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति। वदन्वाक्पश्यꣳश्चक्षुः शृण्वञ्श्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्यस्यैतानि कर्मनामान्येव। स योऽत एकैकमुपास्ते न स वेदाकृत्स्नो ह्येषोऽत एकैकेन भवत्यात्मेत्येवोपासीतात्र ह्येते सर्व एकं भवन्ति। तदेतत्पदनीयमस्य सर्वस्य यदयमात्मानेन ह्येतत् सर्वं वेद। यथा ह वै पदेनानुविन्देदेवं कीर्तिꣳ श्लोकं विन्दते य एवं वेद॥७॥

परमात्मैव जीवमात्रस्य शरणं, किन्तु प्रबलाविद्यावशात् तमजानन् खरसूकरकूकर इव विषयलम्पटो भ्राम्यन् भ्राम्यति दिशि दिशि। अतः श्रुतिराह यत् तावको न नवीनो परिचयः परमात्मना, परं मायया वञ्चितधियस्ते विस्मृतं परमशाश्वतं, नित्यं निरातङ्क-नित्यसुखावहं सकलकल्मषभयापहं चिरन्तनं सनातनं शरणमतोऽज्ञातज्ञापकतया विधिरेषोऽपूर्वः। ह निश्चयेन इदं, प्रलयस्य पश्चात् प्राक् सृष्टेः प्रलीनगुणकर्मपरिणामभूतकाल-कल्यर्वतकलेवरतया इदं साम्प्रतं प्रत्यक्षतया दृश्यमानं तत् पूर्वकल्पे सशरीरकं परं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसिद्धं जडचेतनात्मकं जीवजातम् । तर्हि तस्मिन् परमात्मनि अव्याकृतं भग्ननाम-रूपकं भगवदीयदासमात्रनामकमेव नान्यत् किंचित् आसीत् । तस्मिन् परमात्मनि मातुरङ्के पुत्र इव परिश्रान्तेन्द्रियः समुज्झितसकलकार्यकलापो विगतसन्तापः शयान एवावर्तत, अर्थात् प्रलयेऽपि जीवसत्ता न विनष्टेति श्रुतेर्हार्दम् । अव्याकरणप्रकारमाह– अयं असौ नामा रामदासादिनामकः इदं रूपकः गौरादिवर्णावच्छिन्नमानवाद्यवयवविशिष्ट इति, अव्याकृतं परमात्मना निजचरणकमलतो न पृथक्कृतम् । श्रुतिरप्याह नदीसमुद्रदृष्टान्तेन यथा स्यन्दमानाः सरितः समुद्रसंगमात् प्राक् गंगादिनामवत्यः शुक्लादिरूपवत्यः परं सागरेण संगच्छमानाः, तत्रैव नामरूपे त्यक्त्वा कोटिकोटिनिजधाराप्रवाहन् विश्रमय्य विश्रान्तगतिका भवन्ति, तथैव जीवः सामग्र्येण प्रलये विसर्जितनामरूपो भगवत्येव प्रलीयते । पुनः सृष्टिकाले भगवत इव प्रबोधितः पूर्वाभुक्तकर्मविपाकजनित-भोगवासनास्मरणः विहितभगवतसानिध्यविस्मरणः अयम् असौ नामा यज्ञदत्तादिः इदं रूपः नामरूपाभ्यां निजकर्मविपाकलब्धाभ्यां जीवजातमेतलब्धदेवमानवदानवादियोनिकं परमात्मनैव व्याक्रियते । अयं पुरूषः, इयं स्त्री, इदं फलमित्यादि भिदा विभज्यते इदमेव तदिदमित्यादिमन्त्रसकलेन निर्दिश्यते । पुरूषार्थव्याकरणादिसामर्थ्यशून्यत्वं द्योतयितुं तत् इदमिति नपुंसकलिङ्गव्यवहारः । नामरूपाभ्यां परमात्मनैव व्याक्रियते पृथक् क्रियते । अत्र नामरूपाभ्यामिति **इत्थं भूतलक्षणे** (२.३.२१) इति पाणिनीय-सूत्रेण जटाभिस्तापसः इतिवत् तृतीया । व्याक्रियते इत्यत्र तर्हीति तच्छब्दवाच्यपरमात्मना इति कर्तृपदमध्याहृत्य कर्मवाच्यप्रयोगः । यत्तु कर्मकर्तृप्रयोगः इत्याहुः प्राञ्चः तदसंगतं, नपुसकलिङ्गव्यपदेश्ये जीवजाते नामरूपव्याकरणसामर्थ्याभावात् । एवं व्याकृतनामरूपे जीवजगति किमभूत् ? इत्यत आह—स एष इत्यादि आनखाग्रेभ्यः नखानामग्राणि नखाग्राणि तानि अभिव्याप्य मर्यादीकृत्य वा इति आनखाग्रेभ्यः नखाग्राणि मर्यादीकृत्य संपूर्णे शरीरे जीवस्य सः श्रुतिप्रसिद्धः । एषः श्रुतेः प्रत्यक्षभूतः तत्पतित्वेन संभावितः परमात्मा इह अस्मिन् पुरोदृश्यमाने तत्तच्छरीरावच्छिन्ने जीवे स्वाधिकरणतया प्रविष्टः इति श्रुतेः सरलार्थः । ननु प्रपूर्वकस्य विश्धातोः सकर्मकतया उत्तरदेशसंयोग-रूपफलकत्वेन गेहं प्रविशति इतिवत् इह इत्यत्र कथं न द्वितीया ? इति चेत् सत्यमत्र आधाराधेयभावस्य स्पष्टप्रतिपत्तये आधाररूपाधिकरणविवक्षा, गेहं प्रविशतीत्यादौ गमनक्रियाप्राधान्येन तिरोहिताधारत्वम्, अत्र तु जगदाधारस्यापि भगवतो जीवेन सह नित्यसख्यनिर्वहणधिया व्यापकत्वादैश्वर्यत्यागपुरःसरं क्षोदिष्ठस्यापि क्षणभंगुरस्य शरीरस्य आधारत्वेन स्वीकारः । अहो भगवतः संबन्धनिर्वहणप्रक्रिया इति शरण्यशीलगुणवर्णनाय द्वितीयामनादृत्य इहेत्यत्र विवक्षायामधिकरणस्य श्रुति भगवत्याः हार्दं प्रतिभाति । आनखाग्रेभ्यः इत्यत्र **आङ् मर्यादावचने** (१-४-८९) पाणिनीयसूत्रेण द्वितीया । स

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इह प्रविष्ट इत्यनेन प्रपित्सुप्रपत्तव्ययोर्दविष्ठत्वं निराकृत्य नेदिष्ठत्वं प्रत्यपादि । अथ सृष्टावेश्वरप्रवेशे किमपि प्रमाणान्तरं न वा ? अस्तीति ब्रूमः, **तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्** (तै० उ० २-१-६) इति श्रुतिरेव । अस्याअर्थः तत् प्रलीनगुणकर्मविपाकशरीरं प्रसुप्तशक्तिकं जीवजातं सृष्ट्वा सर्गप्रारंभे नामरूपाभ्यां संयोज्य तज्जीवजातमेव उपभोगक्षमं विधातुं नित्यमैत्रीं च निर्वोढुमनु आनुकूल्येन प्रविशत्, तमवाधमानो तस्मिन्विशे । अथ जीवशरीरे ईश्वरप्रवेशः सावयवतया निरवयवतया वा ? सावयवतयेति समुद्घोषयामः । ईश्वरस्य निरवयवत्वे कुत्रापि मानाभावात् । तदवयवित्वप्रतिपादकशताधिकश्रुतिव्याकोपाच्च । ननु भगवतः सावयवत्वे तत्र जननमरणादि षडूर्मिकाद्यान्तरविकारशरीरानित्यवादि दूषणानि दुर्वाराणीति चेत्, नैव नैव सावयवत्वेऽपि पूर्वोक्तदूषणानां भगवति प्रसराभाव एव तदीश्वरतया । यथोक्तं श्री भागवते—

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ।।

(भागवत—१-११-३८)

तात्पर्यमेतत् यत्—षोडशसहस्रपत्नीवल्लभोऽपि भगवान् श्रीकृष्णः तासां काममोहकोद्दामहावकटाक्षहाससुरतशौण्डचेष्टाभिः संयोज्यमानोऽपि नाभवत् तद्वसंवदः । इति न चित्रम् ईशस्य इदमेवेश्वरत्वं, यत् प्रकृतौ शरीरे जीवशरीरे च स्थितोऽपि तद्गुणैः सदाशरीरस्थैरपि तथैव न प्रभाव्यते, यथा तच्छरणमुपेता वैष्णवमतिः । न च यद्यदत् सावयवं, तत्तदनित्यं कार्यत्वात् घटादिवत् इत्याद्यानुमानबलेन परमेश्वरेऽनित्यता साधयितुं शक्येति वाच्यम्, **आकाशशरीरं ब्रह्म नित्योनित्यानां** इत्यादि श्रुतिप्रामाण्यबलेन बलीयस्त्वादनुमानाच्छाब्दस्य परमेश्वरे पूर्वोक्तानुमानप्रसरासंभवात् । शंखमध्वादौ श्रुतिविहित-शुद्धताविषये वान्तित्वादिहेतुकाशुचित्वसाध्यकाद्यनुमानवत् । एवमेकस्मिन्नेवशरीरे जीवात्मना सह परमात्मनोऽपि सद्भावस्य **समानं वृक्षं परिषस्वजाते** इत्यादि श्रुतिभिः सावयवत्वेनैव कण्ठरवेणोक्तत्वात् । तन्निरवयवता प्रतिपादनदुराग्रहस्तु श्रुतेः सुस्पष्टमवमानना **सर्वतः पाणिपादं तत्, रूपं रूपं प्रतिरूपोबभूव, प्रजापतिश्चरति गर्भे, सहस्त्रशीर्षापुरूषः** इत्यादि सहस्त्राधिकमन्त्रब्राह्मणात्मकवेदभगवद्वचनबलेन स्पष्टं भगवतः जीवशरीरे सावयवप्रवेशः निष्प्रत्यूहं सिद्धान्तित एव । दिव्यो मूर्तः **अरूपमस्पर्शमगन्धमव्ययम्** इत्यादिवचनानि तु भगवतः प्राकृतशरीरत्वमेव निराकुर्वन्ति । दिव्यशरीरतां तुं श्रुतयः समर्चन्त्येव । यत्तु मायावादिभिर्भगवत ऐन्द्रजालिकस्येव मायामया एव देहा इति भणितं, तत् सन्निपातजल्पितमेवोपेक्ष्यम् । **अजायमानो बहुधाभिजायते** इत्यादि श्रुतीनां प्रबलविरोधात् । न खलु निरवयवस्य परिष्वङ्गजननगर्भचरणादीनि संभाव्यन्ते, येषां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिषष्वजाते बहुधाभिजायते चरतिगर्भे इत्यादि श्रुतिसकलैः कण्ठरवतः प्रतिपादनम्। न च सावयवप्रवेशे एकस्मिन्नेव शरीरे जीवसंकीर्णतानुभूतिशंकेति वाच्यम् ? अनुप्राविशत् इति जीवानुकूल्यवाचकानुपसर्गश्रवणात् आनुकूल्येन प्राविशत् अनुप्राविशत् इत्यर्थः। जीवशरीरं प्रविशन्नपि भगवान् जीवस्यानुकूल्यमपि रक्षति । शरीरपरिणामानुसारि रूपधारणक्षमत्वात्। महत्तमे हस्त्यादौ तद्हृदयकोषानुसारं महत्तमरूपं बिभ्रत्, पिपीलिकादेः क्षुद्रतमे हृदयकोशे क्षोदिष्ठं रूपमादधानो विराजत इति हार्दमनूपसर्गस्य। ननु व्यापकः सन् कथमव्यापको भवतीति चेन्न, तस्योभयत्र सामर्थ्याक्षतेः अणोरणीयान् महतो महीयान् इत्यादि श्रवणाच्च। अथ सर्वेषां हृदयं प्रविष्टः सन् कथं न प्रत्यक्षं दृश्यते ? इति जिज्ञासायामाहसूक्ष्मत्वात् जीवानामज्ञाननाशितनेत्रत्वाच्च, तत्प्रतिपादयितुं दृष्टान्तद्वयं दृष्टान्तयति। यथा यथेत्यादि क्षुरधाने क्षुरिकाकोषे नापितादेः क्षुरो यथाश्मश्रुनिकृन्तनं नावलोकयते, यथा वा विश्वम्भरः विश्वं विभर्ति तथाभूतः विश्वम्भरकुलाये विश्वम्भर स्य अग्नेः कुलाये नीडे अवहितः न विलोक्यते तथैव ब्रह्मादेः पिपीलिकादेश्च हृदयकोशे क्षुरधानकाष्ठरूपे क्षुराग्न्यादिरिव योगमायासमावृतत्वात् न दृष्टिगोचरो भवति। अत आह तथैव तं न पश्यन्ति भगवद्विमुखाः अतः श्रयणीयः। यथोक्तं श्री गीतासु—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृत्तः ।
मूढोऽयं नाभि जानाति लोको मामजमव्यव्यम् ।।

(गीता ७-२५)

नन्वत्र श्रुतौ एकस्यैव ब्रह्मणः पिधानवर्णनाय किमभिप्रायकमुदाहरणद्वयं यथा क्षुर इत्यादि—उच्यते । हृदयकोशो द्वेधा भवति बुभुक्षुविषयः मुमुक्षुविषयश्च, बुभुक्षुहृदयकोशेषु विराजमानब्रह्म समावृणोति। कठिनतमकपटपटेन महामोहवत्यविद्या। तेषामेव हृदयं श्रुत्या विश्वम्भरकुलायेनोपमितम्। द्वितीयश्चोपमानं मुमुक्षुहृदयकोषविषयकं, तत्र क्षुरधानमिव विद्यया कृतं साधारणमावरणं यन्मुमुक्षुणा भगवच्छरणैषुणा प्रयासमन्तरेण शीघ्रमुदघाटयितुं शक्यम्। अतः सुगमनिराकरणतया पूवमविद्याकृतावरणोदाहरणम्। यथा क्षुर इत्यादि, क्षुरं केशवपनाय नापितेन गृहीतं किमपि लघुलौहशस्त्रं तद् ब्राह्मणः उपमानं, नापितस्तत् कस्मिश्चिद् पटस्यौतके निक्षिप्य समावृत्य गच्छति खरधारमपि तत्क्षुरमावरणं छेत्तुं न प्रभावति। किन्तु तन्नापितः निस्प्रयासं निर्गमयति स्मश्रुवपनाय, तथैव मुमुक्षुहृदयकोशे विराजमानो भगवान् समावृतो योगमायाञ्चलेन साधकस्य साधनाप्रयासमपेक्षते । स साधकश्मश्रुवर्धन इव श्रीराममन्त्रराजजपादिसाधनप्रयासेन निराकृत्याविद्यावरणं क्षुरेणैव ब्रह्मणा सक्रियेण केशरूपस्वकीयभगवद्भजनसाधना-प्रत्यवायसमूहान् समूलं समुच्छिनत्तीति हार्दम्। अत आह, यथेत्यादि। क्षुरः धीयते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निक्षिप्यते यस्मिन् तत् क्षुरधानं धारणार्थक डुधाञ् धातोः **करणाधिकरणायोश्च** पा० (अ० ३-३-११७) इति सूत्रेण अधिकरणे ल्युट् प्रत्यये अनुबन्धकार्ये अनादेशे क्षुरधानं तस्मिन् क्षुरधाने, अवहितः निक्षिप्तः यथा क्षुरः स्यात् न सर्वेषां दृष्टिगोचरः तथैव भगवानपि। किन्तु नापितस्तं क्षुरं निर्गमयति तथैव साधकोऽपि निराकृताविद्यावरणः पश्यति परमेश्वरपादपल्लवम्।

द्वितीयमुदाहरणं विषयासक्तहृदयस्थपरमेश्वरविषयम्। यथा विश्वम्भरः अग्निः परमात्मा च। अग्नौ गौणं विश्वम्भरत्वम्, परमात्मनि मुख्यम्। विश्वम्भरस्य कुलाये नीडे अवहितः तिरोहितदाहकत्वशक्तिःसन्निक्षिप्तः। स च मथ्यमानः सन् प्रकटीभवति। एवमेव विषयिणां हृदयेषु तिष्ठन्नपि परमात्मा तिरोहितपतितपावनत्वादिमाहात्म्यो मथ्यमानः पावक इव ज्ञानभक्त्यरणिभ्यां प्रकटो भूत्वा झटिति दहति प्रणतदुरितदारूणदारुवनम्। आवरणद्वितयेऽपि श्रीगोस्वामिपादाः ऊचुः——

तेहि कर भेद सुनहु तुम सोउ। विद्या अपर अविव कूपा।।
एक रचई जग गुन वस जाके। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताकै।।
(मा० ३-१५-४,५,६)

एतद्रूपान्तरम्—

माय याः किल तस्यास्त्वं द्वौ भेदौ शृणु लक्ष्मण।
एका विद्या द्वितीया च अविद्या अपरा स्मृता।।

अविद्या नितरां दुष्टा दुःखरूपा भयावहा।
यस्या वशंवदाः जीवाः भवकूपे निपातिताः।।

एका सृजति संसारं सा विद्या त्रिगुणाश्रया।
प्रभुणा प्रेर्यमाणा हि न हि तस्याः निजं बलम्।।

एवं सप्तम सोपानेऽपि भुषुण्डिः प्राहः गरुडम्—

हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित तेहि व्यापक विद्या।।
ताते नास न होई दासकर। भेद भगति बाढहि विहङ्गवर।।
(मानस ७-७८-२-३,)

एतद्रूपत्तरम—

न वा हरेः सेवकमम्बरोक व्याप्नोत्यविद्या धृतघोरपाशा।
सम्प्रेरिता श्रीरघुनन्दनेन व्याप्नोति विद्या तमथाल्पकष्टा।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मान्न नाशो भवतीह कुत्रचित् श्रीरामदास स्य च वैष्णवस्य ।
तस्मिन् सदा व्योमचराधिनायक सा भेदभक्तिः भगवत्यथैधते ।।

एवं भगवत्या श्रुत्या मुमुक्षुविषयिहृदयानुसारम् अन्तर्यामिणः परमेश्वरस्यापि निवासोपमाद्वयी निरूपिता ।।श्रीः।।

स खलु परमात्मा सर्वेषां हृदयस्थः कथमुपास्यः यत्किञ्चिद्वैशिष्ट्योपलक्षितः उताहो सर्वात्मा शरण्यत्वेन वरणीयः ? इत्यपेक्षमाणं प्रत्याह अकृत्स्न इत्यादि ।

एकैकया क्रियया समुपलक्षितस्य परमेश्वरस्य समुपासने न सम्पूर्णता, हि यतो हि सः यत्किञ्चित्क्रियोपलक्षितः, अकृत्स्नः न सम्पूर्णक्रियाविशेषावच्छिन्नत्वात् तदेव विवृणोति । प्राणान् इत्यादिभिः यद्यपि जीवात्मना सह तच्छरीरे तदानुकूल्येन निवसन्नर्न्तर्यामिरूपः परमात्मा जीवात्मनः प्राणवाक्चक्षुश्श्रोत्रमनःप्रभृतीनि बाह्यान्तः करणानि निजचेतनाशक्त्या समवच्छिनत्ति, संजीवयति च । यथोक्तं श्री भागवते ध्रुवेण—

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां ।
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।।
अन्यांश्चहस्तचरणश्रवणत्वगादीन् ।
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ।।

(भा० पु० ४-९-६)

तथापि तत्तदिन्द्रियावच्छेदेन तत् परिच्छेदसम्भावनया सर्वात्मनैव स उपास्य इति हार्दम् । इदमेव स्पष्टयति–प्राणन् निःश्वसन् स प्राणनामा भवति । वदन् वाक् क्रियां स्वीकृर्वन् वाक् वागिन्द्रियावच्छिन्नो भवति । पश्यन् रूपं साक्षात्कुर्वन् चक्षुः, शृणवन् शब्दान्, श्रोत्रं कर्णेन्द्रियमिति व्यवह्रियते । मन्वानः सङ्कल्पयन् मनः ।

एवं प्राणवाक्चक्षुश्रोत्रमनसां न स्वातन्त्र्येण काचित् सत्ता, परमेश्वरचेतनयैव तेषां प्राणत्ववाक्त्वचक्षुष्ट्वश्रोत्रत्वमनस्त्वविशेषाः सक्रियाः । एतानि तानि अस्य परमेश्वरस्य जीवात्मनः सखस्य कर्मनामनि, कर्मानुरुपनामानि कर्मनामानि शाकपार्थिवादित्वात् मध्यमपदलोपिसमासः । अर्थात् परमात्मैव जीवात्मकरणैः तत्तत् क्रियया तत्तद् विषयान् स्वीकुर्वन् तत्तदिन्द्रियनामभाग् भवति ।

तथा हि जीवात्मनः शरीरे सख्युर्गृह इव सखा न स्वोपकरणान्युपयुङ्क्ते । जीव-घ्राणेनैव प्राणति, जीवजिह्वयैव वदति, जीवचक्षुषैव चष्टे, जीवश्रोत्रेणैव शृणोति,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवमनसैव मनुते। अथवा प्राणवाक्चक्षुश्श्रोत्रमनःसु निजचेतनां संयोज्य निजं सखायं जीवात्मानं प्राणाद्यवच्छिननं विधाय गोस्वामिनं कृत्वा गवातीतोऽपि गोपालो गोरूपस्तिष्ठति सेवक इव, अतः इमानि प्राणवाक्चक्षुश्श्रोत्रमनांसि परमात्मनः परिच्छेदद्योतकनि कर्मनामानि, तैर्नोपास्यो भगवान् व्याप्यत्वात्। प्रपित्सुभिः शरणागतौ नामरूपलीलाधाम्नां चिन्तनमावश्यकम्। प्रपद्यमानसे कृते तत्र नाम मुख्यं, तच्च मुख्यं गौणमिति द्विधा, मुख्यं परमात्मनः सामग्यप्रतिपादकम् रामः कृष्णः नारायणः विष्णुः ब्रह्म परमात्मा भगवान् परमेश्वर इत्यादि। अवतारकाले च नामकरणसंस्कारे वशिष्ठ गर्गादिभिर्व्याहृतम् रामः कृष्ण इत्यादि।

गौणश्चापि द्विधा, गुणमाहात्म्यसूचकं गौणं, तच्च प्रथमं गुणकृतं पतितपावनः भक्तवत्सल इत्यादि। कर्मकृतं द्वितीयं रावणारिः कंससूदन इत्यादि एषु मुख्यनाम्नैव श्रयणीयो भगवान् इति श्रौताभिप्रायः।

अतः कर्मनाम्ना उपासनं निराकरोति, स इत्यादिना—यः सः शरणम् गच्छन् कश्चन साधकः एकैकम् एकैकेन्द्रियकर्मावच्छिन्नं प्राणादिष्वेकैकभावनया उपासते न स वेद, स न सामग्र्येणोपास्ते वेदनोपासनयोरत्र समानार्थकता। न च ज्ञानार्थकविदेः उपासनार्थकेन उपस्तिना सह कथं सामान्यमिति वाच्यम्? धातूनामनेकार्थत्वात्। हि यतो हि एषः परमात्मा एकैकेन प्राणादिकर्मणा अकृत्स्नः असम्पूर्णः तस्मात् कृत्स्नतायै कात्स्न्र्येन समुपासनीयो भगवान् प्रपद्यमानेन। अत आह–आत्मा सर्वव्यापकः आप्नोति-चराचरं व्याप्नोति इति आत्मा इति व्युत्पत्तेः। अत्र आत्मा इत्यनेन भगवतो व्यापकत्व-निर्देशः। अर्थात् तेनैव नाम्ना परमेश्वरमुपासीत, येन भगवतः षडैश्वर्यसम्पन्नता सर्वव्यापकता पतितपावनत्वभक्तवत्सलत्वकृपालुत्वकरूणालयत्वादयः समनुभूयेरन् निरस्तनिखिल-दुरितदूषणाः श्रीवैष्णवाः भावभूषणाः निरवधिककल्याणगुणगणाः। उपपत्तिमाह—आत्मा सर्वव्यापको भगवान् इत्येव भावनया उपासीत उपासनाँ कुर्वीत, उपासीत इति सर्वभावनोपासनाविधौ विधिलिङ्। यतो हि अत्रैव व्यापके एते सर्वे समाहृत्य एकं परमात्मतत्वं भवन्ति। अथ सर्वभावेनोपासनायां श्री भगवनपि श्रीगीतासु पार्थमसकृन् निर्दिशति।

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद् भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५-१९)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत॥

(गीता १८-६२)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्री भागवतेऽपि श्रीराघवमन्दिरमानसमङ्गलमूर्तिः श्रीमन्मारूतिरपि गन्धर्वान् प्रति गायति—

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोशलान्दिवम् ।।

(भा० पु० ५-१९)

श्रीमानसेऽपि मुशुण्डिनं प्रति श्रीरामः—

पुरुष नपुंसक नारिवा जीवं चराचर कोई ।
सर्वभाव भज कपटतजि मोहि परमप्रिय सोई ।।

(मा० ७/८७)

रूपान्तरम्—

पुमानुतोहो नितरां नपुंसको नारी जनो वाप्यथवा चराचराः ।
यः कोऽपि मां ध्यायति सर्वभावतः स निश्चलो मे परमप्रियो मतः ।।

चाणक्यनीतावपि—

पृष्ठेन सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम् ।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया ।।

अथ तर्हि केन नाम्ना भगवतसर्वभावसूचकेन भगवानुपास्यः । इति चेत् राम–नाम्नेति ब्रूमः—

रामेति द्व्यक्षरं नाम चापभङ्गपिनाकिनः ।
गर्वभङ्गो भार्गवस्य प्राणभङ्गस्तु बालिनः ।।

नन्विदं नितरामनुपपन्नम् औपनिषद व्याख्यानेषु कुतो राम नाम चर्चा ? इति चेन्मेवं वादीः अत्र व्यासवचनेनैवोत्तरयामः ।

न संहिता सा नहि यत्र रामो नासौ हि वेदो नहि यत्र रामः ।
न सोऽस्ति मन्त्रो नहि यत्र रामो न तत् पुराणं नहि यत्र रामः ।।

अथ तर्हि वेदेषु कुतोरामनाम्नश्चर्चा ? इति चेत् ऋग्वेद एव दर्शयामः ।

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुषद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात् ।।

(ऋग्वेद मं० १० सं० ३ मंत्र ३)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्यार्थो रामपरकः—भवद्रमयति भद्रः इति यास्कः । एवं भद्रो रामभद्रः भद्रया कल्याणरूपया सीतया सचमानः, सीतायाः कलयाणरूपत्वं स्वयंमहर्षिणा वाल्मीकिना श्रीचित्रकूटकुलपतिमुखेन प्रतिपादितम्—

कुतः कल्याण सत्त्वायाः कल्याणाभिरतेः सदा ।
चलनं तात वैदेह्यास्तपस्विषु विशेषतः ।।

(वा० रा० २-११६-९)

सचमानः संगच्छमानः, पितुरादेशात्, अ अरण्यम् आ आरात् अयोध्यातः सुदूरं दण्डकारण्यम् अगात् । पश्चात् त्रयोदशवर्षवनवासानन्तरम् जारः परदारलम्पटो रावणः स्वसारं भगिनीमिव अभ्येति अपहृत्य लङ्कां नयति स्म । अनन्तरं सुप्रकेतैः शोभनानि प्रकेतानि येषां तैः वानरैः अथवा शोभनानि प्रकेत नि अग्रभागाः येषां तथा भूताः श्रीरामशराः तैः, द्युभिः द्योतन्ते इति द्यवः तैः द्योतनशीलैः वाणैः वितिष्ठन् रावणं हन्तुं लङ्काम् आक्रम्य तिष्ठन् आसीद्रामः । हते रावणे द्युभिः दीप्तिमद्भिः सुप्रकेतैः शोभनस्फुलिङ्गैः युक्तः अग्निः उषद्भिः चमत्कुर्वद्भिः वर्णैः नीलपीतशुक्लादिवर्णोपलक्षितभूषणैरूपेतां सीतां गृहीत्वा अग्निः आज्यै रज्यमानो रूपवान् पावकः राममभि अस्थात् न्यासरूपां सीतां समर्पयितुमुपस्थितोऽभवत् । एवमौपनिषदमपि प्रमाणपुञ्जं प्राचुर्येण जागर्ति उपनिषत्सु । श्रीरामतत्वप्रतिपादिकाः सन्ति बह्वयः श्रीरामतापनीयोपनिवत् श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषत् श्रीरामरहस्योपनिषत् श्रीरामोपनिषत् श्रीसीतोपनिषदादयः । ननु भोः आसु काचिदपि न श्रुतिपथं नीतास्माकं नैव श्रीमदाद्यशंकराचार्यवर्यैव्याख्याता ? इति चेत् तेन किम् अष्टोत्तरशतसंख्यासु प्रायशः उपनिषत्सु दशैव व्याख्यातास्तैः । तर्हि किं तैरव्यारव्यातासूपनिषत्वं नास्ति । तैरपि स्वेन न व्याख्यातानां कौशीतिकीजाबालानृसिंहतापनीयोपनिषत्प्रभृतीनां वह्वीनामप्युपनिषदां निजसिंद्धान्तसमर्थनाय समुपन्यस्योदाहरणानि भूयांसि तासामुपनिषत्वं कंठरवेण मनसा च समङ्गीकृतमेव । तस्मात् भगवत्पादैरव्याख्यातानामुपनिषदां नास्ति प्रामाणिकत्वमिति कथमपि कथयितुं नशक्यते । वस्तुतस्तु ते विभ्यतिस्म वैष्णवोपनिषद्व्याख्यानात् कदाचित् तत्र रिङ्गत्तुङ्गतरङ्गविहितभवभयभङ्गभगवद्भक्तिगंगायां तेषामद्वैतवादप्रासादोऽपि वारिसात् न स्यात् । तिष्ठतु तावत्, सर्वभावेन आत्मत्वेन भगवदुपासनं निर्दिश्य साम्प्रतं विधित्वेन शरणागतिमेव प्रत्ययेनानीय प्रतिपादयति तदित्यादि मन्त्रशकलेन—तत् तस्माद्धेतोः एतत् इदमस्माभिः श्रुतिभिः प्रत्यक्षीक्रियमाणं भक्त्या परमसुलभं समस्तकल्याणगुणगणैकनिलयं सकलसुरेन्द्रमुनीन्द्रयोगीन्द्रपरमहंस-परिव्राजकाचार्य परिचर्यमाणचारुपदपद्मं श्रीरामाख्यं ब्रह्म अस्य पुरोदृश्यमानस्य सर्वस्य जगतः कर्तृभूतस्य पदनीयं प्रपत्तव्यम् । यत्तु कैश्चित् अस्य सर्वस्य इत्यत्रं निर्धारणेषष्ठी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उक्ता तत्पूर्णमशास्त्रीयं प्रमत्तप्रलपितम् पूर्वं त्विदं विचारणीयं यत् केषां निर्धारणमत्र **यतश्च निर्धारणम्** (इति पा० अ० २-३-४१) पाणिनीयसूत्रस्य व्याख्यानावसरे भगवान् महाभाष्यकारः पतञ्तजलिः निर्धार्यमाणानां काञ्चिद् व्यवस्थां व्यवातिष्ठपत् । तत्र जातिगुणक्रियासंज्ञाभिर्यत्रनिर्धारणम् तेषु निर्धार्यमाणेषु बहुषु षष्ठी सप्तम्यौ यथा— बालकानां बालकेषु बा मैत्रः प्रतिभावत्तमः । अत्र बालकत्वजातेर्निधारणम् । किन्तु प्रकृते परमात्मनः का जातिः ? जातिर्नाम सामान्यं तच्च नित्यत्वेसत्येकत्वेसत्यनेकसमवेतत्वं, यथा ब्राह्मणत्वं तत् नित्यमनेकसमवेतञ्च । यदि ईश्वरः एकस्तर्हि तद् धर्मस्यानेकसमवेतता कथम् ? **एकोदेवः सर्वभूतेषुगूढः एकमेवाद्वितीयम्** इत्यादि सहस्त्राधिकश्रुतयः परमात्मनि एकत्वमेव साधयन्ति । भवतामेकत्वं तु एतावद्विशालं यत्र अनेकेषां नित्यानां जीवानामनेकतापि क्रोडीचिकीर्षिता । वयं तु परमेश्वरस्यैकत्वं जीवानामनेकत्वञ्च निःशङ्कं निःसंदेहं मन्महे । एवं भवतां मते ब्रह्मणो निर्धर्मतया अस्माकमपि मते विवच्छेदक जात्यादिवर्जिततया उभयेषाञ्च मते अस्माकं युष्माकमपि परमेश्वरस्यैकत्वे राद्धान्तिते कथं तत्र निर्धारणम् ? बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणम् भवति, यदि युष्माकं मते ह्यातिरिक्ता काचित्सत्तैव नहि सर्वत्राद्वैतं तर्हि बहुत्वंसमागतं कुतः, अहोपराकाष्ठा बालिशतायाः यस्यां शाखायां तिष्ठसि सैव स्वेन कुठारेण छिद्यते । यतो निर्धारणं भवति तत्र षष्ठी बहुवचनमायातीति सार्वजनीनव्याकरणसिद्धान्तः । इह तु अस्य सर्वस्येति स्पष्टं षण्ठ्येकवचनमहो दुराग्रहविक्षिप्ततायाः दुष्परिणामः यदस्य येषामिति एकवचनबहुवचनयोरपि अन्तरं न प्रतिभाति, भवतु, वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः । वस्तुतस्तु अत्र "पदगत्याम्" इति पाणिनीयधातुपाठानुसारं गत्यर्थकपदधातुः तस्मात् **अर्हे कृत्यतृतत्श्च** (पा० अ० २-३-१६९) इति पाणिनीयसूत्रेण शरण्यस्य शरणागतरक्षारूपार्हत्वप्रतिपादनाय, पद्यते इति पदनीयम् इति कर्मवाच्यलिङ्लकारप्रथमपुरूषैकवचनार्थे **तत्यतव्यानीयर** इति सूत्रेण अनीयरप्रत्ययः । एवं कर्तुरनुक्तत्वात् कर्मणि प्रत्ययेनानीयरा **कर्तृकरणयोस्तृतीया** इति सूत्रेण तृतीया प्राप्ता कर्तरि, तां प्रवाध्य कृत्यानां कर्तरि वा इति पाणिनीयसूत्रेण अस्य सर्वस्य इति कर्त्रर्थे षष्ठी । एवमनेन सर्वेण चराचरेण ब्रह्मादिपिपीलिकापर्यन्तेन श्रेयस्कामेन जीवजगता जगन्नियामको जगन्निवासो जगनमङ्गलनामधेयो जगन्मोहनो जगन्नाथो रघुनाथो ब्रह्म, तदेव अनेन सर्वेण पदनीयम् **आनुकूल्यस्य सङ्कल्पं गोप्तृत्व वरणं तथा । कार्पण्यं आत्मनिक्षेपं षड्विधां शरणागतिं**, विधाय हृदि महाविश्वासं विधाय सत्यसन्धस्य भगवतः कारुण्यसौलभ्याद्यपरिमितदिव्यकल्याणगुणगणाननुसन्धाय पदनीयं पद्भ्यां गन्तव्यमिव शरणयत्वेन श्रयणीयमिति हार्दम् । यतो हि भगवानेव सर्वलोकशरण्यः । यथोक्तं विभीषणेन वाल्मीकीयरामायणे—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निवेदयत मां क्षिप्तं राघवायमहात्मने सर्वलोकशरण्याय बिभीषणमुपस्थितम् ।।
(वा० रा० ६,१७,१७)

एवं शरणागतरक्षणयोग्यता भगवति, अस्य सर्वस्य इत्युक्त्या सर्वेषामपि प्राणभृतां शरण्यत्वेन भगवन्तमेव निश्चिकाय श्रुतिः । पदनीयत्वे हेतुमाह—यत् यतोहि अयं जीवमात्रस्य प्रपत्तिविषयः परमात्मा जीवानामभयदाता **अभयं निर्जरं ब्रह्म** इत्यादिश्रुतेः । आत्मा आप्नोति सर्वं व्याप्नोति तथाभूतः सर्वव्यापी, अतति सततं गच्छति सकृदपि स्मर्यमाणमन्दाकिनीजनकपदपल्लभग्नभक्तविपल्लवः संसारघोरसागरप्लवः करूणार्णवः श्रीराघवः भक्तानां कल्याणं करोति इत्यात्मा, अतः कल्याणकामेन प्रपत्तिविषयः करणीयः । आदत्ते भक्तदत्तपत्रपुण्यफलजलानि यः स आत्मा । यथोक्तं श्री गीतासु—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।
(गी० ९-२६)

अत्र मे संग्रहश्लोकः—

पत्रं श्री विदुरोऽददाद्भगवते पुष्पं गजेन्द्रो ददौ ।
प्रेम्णादाच्छबरी फलं खरभिदे श्रीरन्तिदेवो जलम् ।।
पत्रं पुष्पमथो फलं किल जलं प्रीत्या किराताः वने ।
श्रीरामाय समर्प्य भक्तिसहिता भूम्नोऽभवन् भूरिदाः ।।

अथ परमात्मनि शरण्यत्वेन स्वीकृते अन्येषां देवानामुपासनं करणीयं न वा ? इत्यपेक्षायामाह–अनेनेत्यादिना अनेन शरण्यत्वेन स्वीकृतेनात्मना, यद्वा अनेन प्रपत्तिरूपेण भगवदुपासनेन हि एतत् तदतिरिक्तं सर्वं जीवजगत् वेद उपास्ते तरुमूलनिषेचनेन शाखा इव भगवदुपासनेन सर्वेषामुपासनं स्वयमेवाध्यवसीयते । सिद्धान्तं स्पष्टयितुमुदाहरणमाह यथा पदेनेत्यादि—यथा भ्रष्टानां गवां तासां पदेन खुरचिह्नेन ताः अनुविन्देत, अत्र शक्यार्थे लिङ् लब्धुं क्षमत इति भावः तथैव पदेन शरणागतिरुपेण मार्गेण संसारचक्रपरिभ्रमणपरिश्रमतो नितरां विस्मृतपदपाथोजं गामिव भक्तवत्सलमनुविन्देत आनुकूल्येन लब्धुं समर्थो भवति । यद्वा पदं व्यवसितं तेन शरणागतिव्यवसितेन जीवः परमात्मानं प्रापनोति अथवा पदं लक्ष्मलक्षणं तेन शरणागतिलक्षणेन पदेन तदुपलक्षितेन वेदनेन तं प्राप्नोति । एवं ज्ञानकाण्डीयश्रुतावपि भगवत्प्रपत्तव्यता प्रतिपादनात् कर्मोपासनाज्ञानानामपि वेदस्य त्रयाणां काण्डानां लक्ष्यभूता भगवच्छरणागतिरेव सा च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सेवकसेव्यभावमूलिका स च द्वैतमूलः तच्च जीवात्मपरमात्मभेदमूलकमिति धूलिसाद्भूतोऽयमद्वैतवादप्रासादः । एक एव कथं प्रपत्तृप्रपत्तव्यरूपतामाटीकते कथं, वा **यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** इत्यादि श्रुतिशिखामणिभिः संसाधितसत्यानन्ताखण्डज्ञानधनस्य सर्वज्ञस्य सर्वसर्वेश्वरस्य अनन्तादित्यतेजसः पार्श्वे प्रसरेदविद्यातमः । कथं वा तस्यनित्यस्मृतिस्वस्वरूपविस्मृतिमन्तरेण तदेतत्पदनीयमस्य सर्वस्य इति श्रुतिरुपदेशः संघटेत । अहो उपदेशोगुरूणां सर्वज्ञशिखामणेः जगद्गुरोः परमेश्वरस्य तत्पत्नीभिः श्रुतिभिः दत्तोपदेशः मर्यादावहः किम् ? इति भगवत्पादाः एव विभावयन्तु तदनुयायिनो वा । कान्तासम्मितोपदेशः पत्न्या दीयत एव ? इति चेत् नैवं, स उपदेशः काव्ये, नैवोपनिषदः काव्यम्, उपनिषदस्तु वेदान्तः स च वेदस्यान्तिमोभागः सिद्धान्तरुपः । अतो वेदस्य अन्तः सिद्धान्तः यस्मिन् तद् वेदान्तं, यद्वा अति बन्धने इत्यस्माद् सनुमोच् प्रत्ययः । वेदमन्तति तात्पर्यप्रतिपादनेन निबध्नाति तथाभूतं वेदान्तदर्शनम् इति व्याचक्ष्महे वयं व्याकरण चुञ्चवः । वेदो हि प्रभुसम्मितोपदेशकृत्श्रुतिर्हि भगवतः पत्नी । न खलु परमप्रभोः प्रभुः प्रबुभूषति पत्नी । कान्तासम्मितोपदेशः पथोभ्रष्टाय पत्ये पत्न्या दीयते न खलु सत्पथादीनां प्रवर्तकः परमात्मा पथोभ्रष्टो यस्मै पत्नी प्रपत्तिमुपदिशेत् । **कान्तासमिमतोपदेशः** मन्दबुद्धीनां राजवंश्यादीनां घटते । न खलु भगवान् मन्दबुद्धिः । कान्तासम्मितोपदेशः काव्यं तच्च पौरूषेयं किन्त्वपौरूषेयोऽयं वेदस्य उपनिषदो भागः । यथोक्तं मम्मटेन काव्यप्रकाशे—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्ता सम्मिततयोपदेश युजे ।।

(का० प्र० १-२)

न खलु भगवत्पत्नी प्रगल्भा भगवन्तमुपदेष्टुं प्रभवेत् । श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये सीता विनीता स्वयं प्राह—स्मारये न तु शिक्षये । किञ्च भगवानेकः तत्कृते सर्वस्य इति प्रयोगो न संगच्छते । तस्मात् त्यक्त्वा दुरवग्रहं दुराग्रहं सर्वशरण्यं श्रीराममेव शरणं व्रजन्तु परिव्राजकाः । तत्फलमाह—एवं श्रुत्युक्तप्रकारेण शरणागतो भूत्वा यः कश्चन सेवकसेव्यभावेन सर्वभावतो भजते भगवन्तं वेद समुपास्ते सः कीर्तिः विभीषणादिव यशः श्लोकं भगवद्भजनोपयोगिसद्गुणसंघातं विन्दते लभते ।

धूलिधूसरसर्वाङ्गः केलिबाणधनुर्धरः ।
लोलकान्तालको बालो राघवः शरणं मम ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ पूर्वमन्त्रे शरण्यत्वेन श्रेयस्त्वेन च आत्मापरपर्यायं परमात्मानं निरूप्य साम्प्रतं प्रेयस्त्वेनापि तमेव निरूपयति । जीवात्मा हि परमात्मनः प्रथमा विभूतिः **अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः** (गी० १०-२) इति भगवदुक्तेः । सच जीवात्मा सर्वापेक्षया समधिकंप्रियः तदपेक्षया परमात्मनि निरतिशयप्रियता तस्मात् प्रेयस्कामेनापि परमात्मैव श्रयणीयः । श्रेयः प्रेयसोरत्रैव समुपलब्धेः इममेव सिद्धान्तं पल्लवयति प्रस्तुतमन्त्रेण—

तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा । स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैच स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत । स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति ।।८।।

तत् श्रुतिप्रसिद्धमेतत् इदं परमात्मतत्वमात्मतत्वादपि प्रियतरमिदमेव विवृणोति– पुत्रात्प्रेयः, पुत्रोहि प्रीतिभाजनं तदपेक्षया प्रियमात्मतत्वं तसमाद्पि प्रियतरं वित्तात् रत्नादेः कलत्रादपि स्त्रियोऽपि रत्नत्वेन व्यवहारात् तस्माद्पि प्रियमात्मतत्वं तस्मात् प्रेयः, एवम् अन्यस्मात् सर्वस्मादपि प्रीतिभाजनात् संसारात् अन्तरं निकटमात्मतत्वं ततोऽपि निकटतरत्वात् । एवं यः आत्मनः परमात्मनः प्रियं ब्रुवाणः वदन् ईश्वरः भगवत्प्रीतिभाजनं शपति तव प्रियं रोत्स्यति प्राणहीनं भविष्यति तथा तथैव भवति भगवता भक्तवचनं रक्ष्यते । प्रह्लादगिरं सत्यां कर्तुं स्तम्भादपि प्रादुर्बभूव भगवान् नृसिंहः इति श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु प्रसिद्धम् । यथोक्तं श्री भागवते—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ।।

(भा० ७-८१७)

एवं यः उपास्ते तस्य प्रियं प्रमायुकं मरणशीलं न भवति । भगवदुपासकस्य प्रह्लादकस्य कुलमवध्यं भगवता प्रीतिपरमेश्वरेणैव स्वयं वरोदत्त इति पुराणेतिहासेषु प्रसिद्धम् ।। श्रीः ।।

अथ ब्रह्मजिज्ञासाप्रकरणे ब्रह्मणि समेषां समाहारः तर्हि ब्रह्म किमजानात् इति ब्राह्मणाः स्वाचार्यें पप्रच्छुः—

तदाहुर्यद् ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यन्ते ।
किमु तद् ब्रह्मावेद्यस्मात्तत्सर्वमभवदिति ।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ जननमरणचक्रे परिकलितषड्वर्गनक्रे घोरे संसारसागरे निमज्जन्तो मुमुक्षवो ब्राह्मणाः समित्पाणयः तत् तस्मादेव ब्रह्मतत्त्वजिज्ञासवः आहुः स्वाचार्यं पप्रच्छुः। प्रश्नाकारमाह—मनुष्याः मननशीलाः मनवाः लब्धब्रह्मज्ञानाधिकाराः मन्यन्ते समवधारयन्ति निश्चिन्वन्तीति भावः। ब्रह्मविद्यया अतिशयेन ब्रह्मति इति ब्रह्म। बृंहयति सम्पूर्णान् भक्तान् यत् तत् ब्रह्म। तद् विद्यते ज्ञायते यया सा ब्रह्मविद्या, तया ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यामः इति कल्पयन्ति भविष्यत्कालिकसत्रनिर्देशात् भविष्यन्तः समग्रतां लप्स्यमानाः भविष्यामः इति मन्यन्ते, तर्हि किं इतः पूर्वं श्रुत्यनुसारम् **सर्वं खल्विदं ब्रह्म सर्वं समापनोऽसि ततोऽसि सर्वः** इति श्रुतिस्मृतीभ्याम् एवं सर्वभावसम्पन्नं ब्रह्म किमवेत्, किमज्ञाषीत् किमुपासत वा येन ज्ञानेनोपासनेन वा वा सर्वमभवत्। ज्ञानमुपासनं वा स्वस्मादन्यस्य, निजात् वयसो वा क्रियते, ब्रह्मणः किमन्यत् किं वारीयः **त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्** इति स्मृतेः इति प्रश्नबीजम् ॥श्रीः॥ अथोत्तरमाह आचार्य—

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेत्। अहं ब्रह्मास्मीति। तस्मात्तत्सर्वमभवत्तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभव ँ् सूर्यश्चेति। तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं ँ् सर्वं भवति। तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशते। आत्मा ह्येषा ँ् स भवति। अथ यो ऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवँ् स देवानाम्। यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पुरूषो देवान्भुनक्त्येकस्मिन्नेव पशावादीयमानेऽप्रियं भवति किमु बहुषु तस्मादेषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः ॥१०॥

वा निश्चयेन अग्रे सृष्टेः पूर्वमिदं श्रुत्या वर्ण्यमानं साधकानामतिसन्निकृष्टं ब्रह्म परमात्मैव प्रलीनसकलजीवजातं निजोदरे **यत्प्रयत्यभिसंविशन्ति** इति श्रुतेः, असीत् प्रधानसत्तया वर्तत। ततः परमात्मा आत्मानं निजं भक्तानां कृते सतत मननशीलं अवेत् अजानात्। किमितः पूर्वमात्मत्वेन तस्य ज्ञानं नासीत् ? ओमिति ब्रूमः। पूर्वं तत् निजभक्तब्रह्मरूपं गुणं विस्मृतवदिव पश्चात् भक्तैः स्मारितं निजोदरस्थैः अजानात्। वेदनाकारमाह—अहं ब्रह्मास्मि अहं प्रलीनजीवसत्ताकं परमात्मतत्त्वं ब्रह्म निजप्रपन्नजीववर्धनक्षमम् अतो इमान् बृंहयेयम्। तस्मात् एतज्ज्ञानादेव सर्वं सर्वान्सृष्ट्वाताननुप्रविश्य सर्वान्तर्यामितया सर्वमभवत्। देवानां मध्ये यः यः अहं ब्रह्मास्मि अहं जीवभूतः भगवदंशः ब्रह्मास्मि ब्रह्मणे परमात्मने अस्मि। अत्र तादर्थे चतुर्थी **सुपां सुलुक्** इत्यनेन सोर्लुक् दीर्घश्चः न खलु जीवः ब्रह्मो भवति **सोऽश्नुतेसर्वान् कामान्**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सद्ब्रह्मणा विपश्चिता (तै० उ० १-१) इति श्रुतेः । सः ब्रह्मणा विपश्चिता इत्यत्र जीवस्य ब्रह्मणा सह नित्यसद्भाव उक्तः । तस्मात् अहं ब्रह्मणे अस्मि अहं ब्रह्मणा अस्मि अहं ब्रह्मणः सकाशादस्मि अहं ब्रह्मणोऽस्मि अहं ब्रह्मण्यस्मि इति पञ्चधा विग्रहः करणीयः । टा, ङे ङसि, ङस् ङि, विभक्तीनां **सुपां सुलुक्** इत्यनेनैव पूर्वोक्तप्रकारेण लुक् । एवं ब्रह्मणा सह आत्मनः सेवकसेव्यसम्बन्धं विभावयन् तदभवत् तस्य अभवत् इति भावः, षष्ठ्याःलुक् पूर्वोक्तरीत्या, तथैव ऋषीणामहं ब्रह्मास्मीति वाक्येन पञ्चविभक्तिविपरिणामेन यथारूचि पञ्चसु कतममप्येकं भावं विभाव्य तदीयोऽभवत् । ऋषीणां नारदिदिसनकादिः मनुष्याणां ध्रुवादिः भरतादिः गोपिकादिः श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यः तुलसीदासादयश्च । एवमेतद् ब्रह्म आराध्यत्वेन ऋषिर्वामदेवः सर्वात्मभावनया प्राह प्रतिपेदे निश्चिकाय । अहं ब्रह्मणो दासभूतः मनुरभवम् अहमेव सूर्योऽभवम्, एतर्हि अस्मिन्समयेऽपि अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मदासोऽस्मि य एवं वेद जानाति सः सर्वं भवति सम्पूर्णतामेति ।

अत्रेदमवधेयम्—अहं ब्रह्मास्मीत्यत्र ब्रह्मशब्दो नैव प्रथमैकवचनान्तः । कथं ज्ञातमिति चेच्छृणु–अत्रैव मन्त्रे ऋषिवामदेववचनात् । स आत्मनो मनुतां सूर्यतां च प्रतिपादयति, अहं मनुरभवम् अहं सूर्यश्च इत्यादि । यदि जीवः ब्रह्म भवितुं शक्नुयाद् तदा ऋषिवामदेवः कथं न ब्रह्म भवेत् स आत्मनः ब्रह्मभावं कथं न प्रतिपादयेत्, यतो नाभूत् ब्रह्म ततो नावदत् । तद् भावं तस्माद् देवा अपि विभूत्या ऐश्वर्येण न ईशते न नियच्छन्ति वैष्णवानां खलु सर्वतः स्वातन्त्र्यात् । सः एष येषां जनानां देवानां आत्मा प्रियः व्यापको वा भवति । एतद् विपरीतः अन्यदेवतोपासकः अहं भगवदीय-व्यतिरिक्तोऽस्मीति भावना न सम्यक् जानाति, स तु पशुरिव देवानां बलिबाहकः, यथा बहवः पशवः मनुष्यान् पालयन्ति तथैव ते देवान् भुञ्जन्ति । भगवदीयत्वे देवाः खिन्नाः भूत्वा तेषूपद्रवमुत्पादयन्ति । तथाहि यः असौ अयम् देवत्वविशिष्टः अन्यः विभूत्यपरिच्छेदेन परमात्मा व्यतिरिक्तः अहम् अन्यः सम्बन्धावच्छेदेन परमात्मतः-अन्यः इति धारणया परमात्मतोऽन्यामिन्द्रत्वाद्यवच्छिन्नां देवतामुपास्ते सः पशुः ।

पश्यति ब्रह्मातिरिक्तभावनाया सर्वं यस्तथाभूतः । पाश्यते बध्यते ज्ञानसुखकर्मसङ्गनिद्रालस्यप्रमादाख्यैस्त्रैगुण्यैः षड्भिर्बन्धनैः यस्तथाभूतः । पशुत्वं नाम धर्महीनत्वम् आहरनिद्राभयमैथुनेषु सामान्यत्वेऽपि पशुमनुष्यौ धर्म एव विशिनष्टि । तत्र पशुधर्महीनः मनुष्यो धर्मवेत्ता । धर्मस्त्रिधा प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणः प्रपत्तिलक्षणश्च । प्रपत्तिलक्षणस्तावत्—सकामो नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनादिश्रुत्युक्ति-कर्मानुष्ठानजनितापूर्वविशेषः । निवृत्तिलक्षणश्च—स एव सह मुमुक्षया निष्काम इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राञ्चः । नव्यास्तु धर्मो द्विधा–सामान्यो विशेषश्च, सामान्यः खलु प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणो मोक्षपर्यन्तो द्विधा । विशेषश्च ततो व्यतिरिक्तो भगवत्प्रपत्तिरूपो भागवत धर्मः । ननु भागवतधर्मे लोकातिशायिनि किं मानमिति चेत् श्रुतिस्मृतिवचनान्येव । श्रुति वचनं यथा **मुमुक्षेवै शरणमहं प्रपद्ये** (श्वे० उ० ६-१८) **तदेतत् पदनीयमस्य सर्वस्य** (बृ० उ० १-४-७) । स्मृतेर्यथा **सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेकंशरणं व्रज** (गीता १८-६६) । अत्र सर्वधर्माः सर्वे: च ते लोकधर्माः तेषां सामान्यतया परित्यागः मामेकं शरणं व्रजेति, व्रज धातोः स्वीकारार्थो विशेषतया भगवच्छरणागतिरूपः धर्म स्वीकारे विधिः । ननु विधित्वं कथमागतमितिचेत् "व्रज" इति **विधि निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट संप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** (पा० अ० ३-३-१६१) इति सूत्रस्य परिशेषभूत**लोट् च** (पा० अ० ३-३-१६२) इत्यनेन विधावेव लोट्लकारस्य विधानात् । अप्राप्तप्राप्तिज्ञापकवचनतया विधिरेषोऽपूर्वः । ननु धर्मत्यागे अधार्मिकत्वापत्तिः प्रत्यवायश्च ? इत्यत् आह—**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामिमाशुचः** (गीता १६-६६) । सामान्यधर्मस्य हि विशेषधर्मेण बाधे पूर्णतः शास्त्रीयनियमापालनात् पापानि पीडयिष्यन्त्येव । न हि इति चेत् अज्ञानतया पीडयिष्यन्ति तदा तटस्थोऽपि धर्मसंस्थापनाय गृहीतावतारोऽहं मध्यस्थो भूत्वा तेभ्यः मोक्षायिष्यामि चिन्तां मा कुरु, विशेषधर्मपरिपालनात् त्वं नाधार्मिको भविष्यसि इति भगवदीयो आशयः । पाद्मेऽपि गोकर्णः धुन्धुकारिकुकृत्यतो जातनिर्वेदं वनं परिव्रजन्तं पितरमात्मदेवंलोकधर्मत्यागपुरःसरं भागवत धर्म एव प्रवर्तयति । यथा—

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरूषाञ्जहि कामतृष्णाम् ।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा ।
विष्णोःकथारसमहो नितरां पिव त्वम्।।

(प० पु० उ० ४-८०)

अत्र प्रथम चरणे लोकधर्मत्यागं भगवद्धर्मस्वीकारञ्च विधित्वेन प्रतिपाद्य शेषेषु त्रिषु द्वयोर्विवरणमुक्तम् । एवं जीवस्य भगवद्भजनपूर्वकपरमेश्वरप्रपत्तिरेव मुख्यो धर्मः इत्थम् प्रपत्तिलक्षणोऽयं धर्मः विशेष इति जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यचरणपङ्कज-मधुव्रतस्य मे मतम् । तमनन्यभावनया भक्तिधर्ममुज्झित्वा विविधदेवोपासनाव्यस्तः पशुरेवेति श्रौतो राद्धान्तः । सः देवानां पशुः परतन्त्रः धर्महीनस्स्वार्थसाधकः तेभ्यो देवाः हस्तिभ्य इव भारं वाहयन्तो गृह्णन्ति भूयो ददति श्वभ्यः इवाल्पम् । यथोक्तं विनयपत्रिकायां श्रीगोस्वामिपादैः—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वारथके साथी मेरे हाथी स्वान लेवादेई ।
काहू के न पीर रघुवीर दीन जनकी ।।

(वि० प० ७५)

एतद्रुपान्तरम्—

स्वार्थस्य मित्राणि च मामकानि आदानकाले मयि हस्तिभावम् ।
दाने तु मां कुक्कुरएव मत्वा तुदन्त्यहो कोऽपि न दीनपक्षः ।।

तदेव विवृणोति यथेत्यादिना—ह वै इति निश्चयार्थौ निपातौ, यथा येन प्रकारेण बहवः पशवः हस्तिगवाश्वमहिषीवृषभकुक्कुरादयः निजनिजयोग्यतानुसारं मनुष्यं भुञ्ज्युः अपालयन्, अत्र **व्यत्ययो बहुलम्** (पा० अ० ३-१-८५) इत्यनेन लडर्थेलङ् अडभावः झेरुसादेशश्च पालयन्तीत्यर्थः । एवम् एकैकः वैष्णवधर्मवर्जितः पुरूषः हस्त्यश्वादिरिव देवान् भुनक्ति, तत्तत्कामप्रेर्यमाणः धूपदीपादिबलिभिः पालयति । अत एव देवाः इमान् भगवद्भजने न नियोजयन्ति । उपपत्तिमाह—एकस्मिन् पशौ हस्त्यादौ आदीयमाने आह्रियमाणे मनुष्यस्य अप्रियं भवति, बहुषु आह्रियमाणेषु किम् । तातपर्यं यत् कस्यचिद् गृहस्थस्य कस्यांश्चित् सेवायां भग्नायां स कियत् खिद्यते, यदि कदाचित् तस्य तत्तत्कार्यनियुक्ताः बहवोऽपि पशवः अन्यत्र गच्छेयुः तदा तस्य मनसि कियती वेदना स्यात् स्वार्थैकचक्षुष्ट्वात् । तस्मात् कारणात् यदि मनुष्या एतत् ब्रह्म आत्मीयत्वेन स्वाराध्यत्वेन च विद्युः अवगच्छेयुः तदा एषां देवानां न प्रियं, एभ्यो न रोचते इमे विभावयन्ति यत् यदि सर्वे मनुष्याः भगवदीयाः भविष्यन्ति अन्यदीयाः पशव इव तदा कोऽस्माकं बलिमाहरिष्यति, यतो हि वैष्णवाः न खलु केषांचिदपि सुराणां किङ्करा ऋणिनो वा । यथोक्तं भागवते निमिं प्रति नवयोगेश्वरसम्वादप्रकरणे योगेश्वरेण भगवता करभाजनेन—

देवर्षि भूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ।।

(भा० पु० ११-५-४१)

अत एव देवाः अन्यत्र गच्छतः स्वपशून् असहमानो मनुष्य इव, अहं ब्रह्मास्मि इति महावाक्यानुसारमहं ब्रह्मणे अस्मि इति ब्रह्मार्थभावनया शान्तवात्सल्यदास्य-सख्यमधुरभावेषु एकतमेन केनचित् भगवन्तं भजतो जनान् निरोद्धुं कोटिशः प्रयत्नान् उपद्रवरूपान् आचरन्ति । यथोक्तं श्रीमानसे सप्तमे सोपाने—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रिय सुरन न ज्ञान सोहाई, विषय भोगपर प्रीति सदाई ।

(मा० ७-११८-१५)

एतद्रूपान्तरम—

ऐन्द्रियेभ्यो हि देवेभ्यो न ज्ञानं रोचते हरेः ।
तेषां विषयभोगेषु प्रीतिरेव निरन्तरम् ।।

अत एव स्वस्वसेवकांस्ते न निवारयन्त्युन्मार्गगामिनोऽपि । यथा प्रह्लादं तुदन्तुं हिरण्यकशिपुं न न्यषेधत् विधाता । निजभक्तमपि कदाचित् शिवोऽपि श्री रामं द्विषन्तं श्रीसीताहरणप्रवृत्तं स्वसेवकमपि दशशीर्षं न निवारयामास । इमामेवावधारणामौपनिषदीं कयाचिदपूर्वया काव्यचातुर्या तुरीयचरणारविन्दमकरन्दरसास्वादनसमातुरस्तुलसीदास-महाराजः प्राह श्री विनयपत्रिकायाम् । तत्सम्पूर्णमपि पद्यप्रसूनं सरूपान्तरमनुपदमेव निदर्शयामि सुधियां सतां श्रीवैष्णवानामनधीतब्रजभाषाणाञ्च सुस्पष्टप्रतिपत्तये—

हरि तजि और भजिए काहि ?
नाहिन कोउ राम सो ममता प्रनत पर जाहि ।।

कनक कसिपु विरंचिको जन करम, मन अरू बात ।
सुतहिं दुखवत बिधि न वरज्यो काल के घर जात ।।

संभु सेवक जान जग, बहु बार दिए दस सीस ।
करत राम-विरोध सो सपनेहुँ न हटक्यो ईस ।।

और देवनकी कहा कहौं स्वारथहिं के मीत ।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत ।।

को न सेवत देत संपति ? लोक हू यह रीति ।
दास तुलसी दीन पर एक राम ही की प्रीति ।।

(विनयपत्रिका २१६)

एतद्रूपान्तरम्—

यथासंभवं सामग्र्येण निजरचितेषु श्लोकेषु निदर्शयितुं पद्यस्य रूपान्तरश्लोकाः—

भजे कमन्यं हरिमन्तरेण कृपालुचित्तं करूणासमुद्रम् ।
न कोऽपि रामेण समस्त्रिलोक्यां यस्यास्ति नित्यं प्रणते ममत्वम् ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भक्तो हिरण्यकशिपुः किलपद्मयोने
वाचा तथैव मनसा खलु कर्मणा च ।
प्रह्लादमात्मजमहो नितरां तुदन्तं
यान्तं कृतान्तसदनं न विधिर्न्यषेधीत् ।।

जगद्विजानाति जनं त्रिशूलिनो
पौलस्त्यजं पङ्क्तिशिरांसि योऽसकृत् ।
समर्पयामास भवाय सोऽपि ना
स्वप्ने न्यषेधीदपि रामवैरतः ।।

का कथेतरदेवानां स्वार्थसख्यमुपेयुषाम् ।
क्वापि कोऽपि न पान्तिस्म सभीतं शरणं गतम् ।।

कः सेवकाय न ददाति धनं निजाय
लोके प्रसिद्धिमगमत् किल रीतिरेषा ।
दीने परन्तु वितनोति हि राम एकः
प्रीतिं परां तुलसिदास इति ब्रवीति ।।

अहं ब्रह्मास्मि वाक्यस्य आस्वयं ब्रह्मणेऽस्म्यतः
ब्रह्मदासो भजेद् भूत्वा विपरीतः पशुस्मृतः ।।
इत्थं स्वाचार्यपादानां पादपद्मप्रसादतः ।
रामभक्तार्था सिद्धान्ते व्याख्यातेयं श्रुतिर्मया ।।श्रीः।।

अथ ब्राह्मणक्षत्रियसम्बन्धं परस्पराश्रयं निर्वक्ति ब्रह्मेत्यादिना—

ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेव ँ सन्नव्यभवत् । तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रोः वरूणः सोमो रूद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति । तस्मात्क्षत्रात्परं नास्ति तस्माद् ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूये क्षत्र एव तद्यशो दधाति सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म । तस्माद्यद्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्तत उपनिश्रयति स्वां योनिं य उ एन ँ हिनस्ति स्वा ँ स योनिमृच्छति स पापीयान्भवति यथा श्रेया ँ स ँ हिँ सित्वा ।।११।।

अग्रे भगवतो नारायणस्य नाभिकमले भगवदिच्छयैव समुत्पादितं ब्रह्म चतुर्मुखाख्यं सृष्टिरचनाशक्त्यावच्छिन्नमेकमसहायं प्रथमं वा सृष्टावासीत् । ननु भगवन्नाभिकमलोत्पन्नो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विधाता पुरूषः तत् कृते ब्रह्म इति नपुंसकलिङ्गनिर्देशोऽनुचितः ? इति चेन्न, तस्य सृष्टिरचनासामर्थ्यरूपपौरूषाभावद्योतनायैव ब्रह्म इति क्लीबत्वनिर्देशः । तपसा पूर्वं नारायणनाभिकमलजातोऽपि क्लीबः प्रजाजननाक्षम आसीदिति भावः । इदमेव स्पष्टयति एकमसहायं सृष्टिरचनापाटवप्रतियोगिकाभाववत् सत् सत्तामात्रेणैव वर्तमानं न व्यभवत् सृष्टिरचनै न क्षमोबभूव । वि पूर्वस्य भू धातोः सामर्थ्यार्थकत्वात् व्यभवदित्यस्य ब्रह्माभिन्नैकर्तृकभूतकालावच्छिन्नसामर्थ्यानुकूलव्यापार इति शाब्दबोधः । अनन्तरं तद् ब्रह्म भगवच्छक्त्युपबृंहितं क्षत्रं क्षतात् कष्टात् त्रायते इति क्षत्रम् । क्षत्रिय जात्यभिमानावच्छिन्न-चैतन्यविशिष्टं श्रेयः प्रशस्यत्तरं रूपमवयवसंस्थानमत्यसृजत् व्यरचयत् । देवत्रा देवेषु एतानि यानि यावन्ति क्षत्रियावयवावच्छिन्नानि, इन्द्रः सुराणामधिपः वरूणो जलचराणां स्वामी, सोमः ब्राह्मणानां राजा चन्द्रमा, रुद्रः सर्पादीनामधीश्वरः पर्जन्यश्चपलापतिः, यमः पितृणामीश्वरः मृत्युरोगाणामधिशासी, ईशानः पशूनां नियन्ता, इमानि सर्वाणि शासकस्वभावानि एतत् परिणमनभूतानि । तस्मात् शासकस्वभावान् क्षत्रात् राजन्यात् परम् उत्कृष्टरक्षकं किमपि नास्ति । **शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते** इति नीतिवचनानुरोधात्, कुशलशासके जाग्रति राष्ट्रे च रक्षमाणे तेन ब्राह्मणो निश्चिंतं ब्रह्मशास्त्राणि च सेवते । यथोक्तं रघुकाव्ये कौत्सेन—

सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन् नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेर्लोकस्य कल्पेत कथं तमिस्रा ।

(रघुवंशमहाकाव्यम्-५-१३)

वार्तं कुशलं, क्षत्रस्य परत्वं समर्थयति—तस्माद्धेतोः राजसूये एतन्नामके यज्ञे महोच्चसिंहासने राजपदे अभिषिच्य अधस्तान् नीचैरुपविश्य क्षत्रियमुपास्ते वर्णाभिमानं त्यक्त्वा राष्ट्ररक्षायै नियुयुक्षुस्तस्मै सगौरवमधिकारं ददाति । एवं ब्रह्मतेजोमयं यशः क्षत्र एव राजन्ये ददाति दशरथादौ वशिष्ठादिर्यथा । सा एषा ब्रह्मजातिरेव क्षत्रस्य द्वितीयवर्णस्य योनिः प्रजननहेतुः । यद्यपि राष्ट्ररक्षार्थं ब्राह्मणेन नियुज्यमानो राजा परमतां गच्छति राजसूये सर्वतः पूज्यो भवति । तथापि राजसूयस्यान्ते ब्रह्मैव उपनिश्रयति ब्राह्मणमेव समाश्रयते सुयोनित्वात् लब्धाधिकारोऽपि श्रीरामादिवत् ब्रह्मण्यदेवः । एवं लब्धाधिकारो यो राजा एनं ब्राह्मणं हिनस्ति इन्द्र इव विश्वरूपं, सहस्रार्जनपुत्रा इव जमदग्निं, स स्वां योनिं निजमातरमेव ऋच्छति मातरमेव निहन्ति इति भावः । स्वस्माच्छ्रेयांसं राजाधिकारमदेन ब्राह्मणं हिंसित्वा निहत्य पापीयान् ब्रह्महत्यादि पातकवान् भवति । विश्वरूपवृत्रासुरहनने इन्द्रस्य ब्रह्महत्याद्वयी श्रीभागवतादौ प्रसिद्धैव ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ तार्तीयकवर्णोत्पत्तिमाह—

स नैव व्यभवत्स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसनो रूद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति ।।१२।।

एवं स ब्रह्मा यदा धनोत्पादने न व्यभवत् नाक्षमत् तदा विशं तदधिकारिणमसृजत् । देवजातानि गणशः गणं गणं वसवः रूद्राः आदितिनन्दनाः द्वादशविश्वेदेवाः त्रयोदशमरूतः सप्तसप्त आख्यायन्ते संकीत्यन्ते तानि देवेषु वैश्यधर्माणीति भावः धनदातृत्वात् ।।श्रीः।।

अथ शूद्रोत्पत्तिमाह—

स नैव व्यभवत्स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषेय ँ हीद ँ सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च ।।१३।।

शुचा द्राति आत्मानं निहन्ति इति शूद्रः, अथवा शुचा उ निश्चयेन द्रवति धैर्यं त्यजति इति शूद्रः । प्रायेण भगवद् भजनविहीनः यः कश्चनापि शूद्रत्वं गच्छति ब्राह्मणोऽपि आत्रिदिवसेभ्यस्त्यक्तसन्ध्यः शूद्र इव द्विजकर्मणो बहिष्क्रियते भगवद्भजनशीलः चतुर्थवर्णोऽपि द्विज इव पूज्यतां गच्छति । तथोक्तं श्री भागवते—

विप्राद् द्विषड् गुणयुतादरविन्दनाभ
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचने हितार्थ
प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः ।।

(भा० पु० ७-९-१०)

अत एव वेदेषु शूद्रो नानादरभाजनम् । यत्तु कुत्रापि निरादरवचनानि तानि शूद्राचरणपरकानि न तु चतुर्थवर्णविषयाणि, अत एव छान्दोग्ये क्षत्रियकुलोद्भवं राजानमपि शूद्र इति कथयित्वा तिरष्करोति तुरीयवर्णस्थशकटवाहकोऽपि । अत एव महाभारते शूद्रोऽपि विदुरः पूज्यते । यत्तु शूद्राणां कर्णयोः वेदमन्त्रध्वनि पतेत् चेत् तयोः शीशकेन पिधानं करणीयमिति अतिरञ्जनैषा, अन्यथा तिर्यग्योनिगतस्यापि जटायुषो द्विजतिरिव कथमन्त्येष्टिः क्रियेत वेदवेदाङ्गतत्वज्ञेन भगवता श्रीरामेण । तथाहि श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे—

यत्तत्प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः ।
ततस्वर्गगमनं क्षिप्रं तस्य रामो जजाय ह ।।

(वा० रा० ३-६८-३४)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं पर्यालोचनेन स्पष्टमिदं राद्धान्तितं भवति—यत्र शूद्रनिन्दावर्णनपरा प्रत्युत् शूद्राचरणगपरा । तत्र वैदिकीमपि चोत्पत्तिं निदर्शयामः चातुर्वर्ण्यमीमांसायां वैदिकोऽयं मन्त्रवर्णः **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ऊरुतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो ऽ अजायत ।।** (शु० य० ३१/११)

अत्र **पद्भ्यां शूद्र अजायत इत्युक्तौ** चतुर्थवर्णनिरादरवादो नाशङ्कनीयः । पदे एव शिरः पातयित्वा प्रणामक्रियते, पदे एव पूज्यते श्रेष्ठानाम्, पदत्राणमेव पादुकारूपं पीठे व्यवस्थाप्यते गुरुणामाचार्याणाञ्च न तु शिरस्त्राणं करत्राणम् । चरणोदकमेवगृह्यते गुरूणां ब्राह्मणानां च न तु मुखोदकं कराद्युदकं वा । आदरार्थं पूज्यपादपूज्यचरण इत्येव कथ्यते । न तु मुखचरणादि । योषितोऽपि चरणस्पर्शे आशिषः समर्पयन्ति सम्मानिताः सत्यः मुखादिस्पर्शेतु समनुभूयाऽवमाननां पदत्राणादिभिः ताडयन्ति । इत्थं महिमामयचरणाज्जायमानः कथं निरादरभाक्, तत्राऽपि भगवतश्चरणं तस्माज्जायमाना मन्दाकिनी गङ्गा निरवधिपवित्रतामयी ततो जायमानः शूद्रः कथमपवित्रः इति विचारयन्तु सुधियः । वस्तुतः वर्णानां व्यवस्था निर्दोषा तन्निष्ठा महानुभावा अपि पवित्रा एव, यदि चतुर्थो वर्णोऽपवित्रो भविष्यत्, तर्हिकथं चातुर्वर्ण्यमर्यादामण्डनो मर्यादा पुरूषोत्तमो श्रीरामः निषादमश्लेषत् ? यथोक्तं मानसे—

कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू । भेटेउ राम भद्र भरिवाहू ।।

(मानस २-१९७-७)

एतद्रूपान्तरम्—

कथयन्ति ह्ययं प्राप्तो लाभं वै जीवनस्य च ।
रामभद्र इमं द्वोर्भ्यां सप्रेम परिसस्वजे ।।

एवमस्पृश्यतावादोऽपि शूद्राचरणपर एव । किं बहुना ब्राह्मणस्यापि गृहिणी दिनत्रयमार्तवे स्पर्शानर्हा भवति । एवं देवेषु शूद्रः पूषा पोषणात् , इयं मही अपि पूषा इदं सर्वं सैव पुष्यतीति ।।श्रीः।।

अथ धर्मस्वरूपं निर्वक्ति—

स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्मं तदेतत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान्बलीयाँ समाशँ सते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तँ सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति ।।१४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमपि असमर्थः सन् धर्मनामकं श्रेयोरूपमत्यसृजत् । धर्मो नाम तत्तद्वर्णमर्यादा-नियन्त्रणशक्तिविशेषः । अत एव अबलीयान् बलीयांशं धर्मेण बलवत्तरमासंशते प्रशंसति, यथा राज्ञः धर्मः तथैव । सः धर्मः कः ? सत्यमेव, सत्यधर्मयोर्नास्त्यन्तरम् । सद्भ्योहितं सत्यं सत्यभाषण एव धर्मः धर्म एव सत्यम् अत एव सत्यवादिनं धार्मिकं सत्यवादिनमिति कथयन्ति उभयमपि एकैकस्मिन् समाश्रितम् ।।श्रीः।।

इदानीं आत्मोपासनस्य आवश्यकतां वर्णयति आत्मात्र परमात्मार्थपरः, परमात्मना चातुर्वर्ण्यं सृष्टं विराट् रूपतो ब्रह्मणस्तु मुखबाहूरूपद्भ्यो ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः जाताः । अतः स्वस्ववर्णाश्रमनिरतः निजनिजवर्णानुसारं श्रुतिविहितकर्मकुसुमैः परमात्मानं समर्यन् उपासीत् । यथोक्तं श्रीगीतासु —

यतः प्रवृत्तिर्भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।

(गी० १८-४६)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानी येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवाः ।।

(गी० १८-४६)

तदेतद् ब्रह्म क्षत्रं विट्शूद्रस्तदग्निनैव देवेषु ब्रह्माभवद् ब्राह्मणो मनुष्येषु क्षत्रियेण क्षत्रियो वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रस्तस्मादग्नावेव देवेषु लोकमिच्छन्ते ब्राह्मणे मनुष्येष्वेताभ्याँ । हि रूपाभ्यां ब्रह्माभवत् ।

अथ यो हवा अस्माल्लोकात्स्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाननुक्तोऽन्यद्वा कर्माकृतं यदिह वा अप्यनेवं-विन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्धास्यान्ततः क्षीयत एवात्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयते । अस्माद्ध्येवात्मनो यद्यत्कामयते तत्रत्सृजते ।।१५।।

तदेतत् श्रुतिप्रसिद्धं ब्रह्म, तदेव ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्ररूपेण परिणतम् । अत्र सर्वत्र आत्मतत्त्वं त्वेकमेव, देवेषु तदेव ब्रह्म ब्रह्मा चतुर्मुखो विधाता अभवत् । पुनः ब्राह्मस्याग्रजो अग्निः ब्रह्मणैव ब्राह्मणः, क्षत्रिषेण इन्द्रादिना दत्तचेतनः क्षत्रियः, वैश्येन वस्वादिपञ्चदेवगणेन समुपबृंहितः वैश्यः, शूद्रेण पूष्णालब्धसामर्थ्यः शूद्रः एवं अग्निना रचितत्वात् देवेषु अग्नौ एव लोकमिच्छन्ते । मनुष्याः ब्राह्मणे द्वाभ्यामेव रूपाभ्यां अग्निब्राह्मणाभ्यां व्याप्तमेतत् । अतः अस्मात् लोकात् अत्रल्यब्लोपे पञ्चमी । इमं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्मभूमिरूपं मानवशरीरं प्राप्यापि स्वमात्मीयमात्मधनरूपं लोकं परमप्रकाशरूपं साकेतलोकं तन्निवासं श्रीराममदृष्ट्वैव असाक्षात्कृत्यैव सः एनम् अविदित्वा अनुपास्यैव भुनक्ति मोघारम्भं महितदम्भं जराजीर्णकलेवरं भुनक्ति । तद् दुष्परिणाममाह—अनुक्तः नानुकूल्यतया उक्तः वेदः स्वरविहीनतया पठितः, यथा वा अकृतं कर्म उभावपि निष्फलम् तथैव आत्मोपासनाबहिर्मुखस्य, अनेवंविदः अस्य महत्पुण्यं कृतं कर्म क्षीयते । अतः लोक्यते इति लोकः तादृशं प्रत्यक्षदर्शनमात्मानं परमात्मानं श्रीराममेव उपासीत् । यः आत्मानमुपास्ते भजते भगवन्तमनन्यभावनया अस्य कर्म न क्षीयते, आत्मनः परमात्मनः सकाशाद् यद्यत्कामयते इच्छति तत्तत्परमात्मा सृजते सृष्ट्वा तस्मै समर्पयति ।।श्रीः।।

अथ यथापशुरिति अब्रह्मविदः पशोरिव पारतन्त्रमुक्तम् । तर्हि कैः कैः कर्मभिः केषां केषां प्राणिनां लोकः भोगसाधनं भवति भगवद्विमुखः—

अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोऽथ यदनुब्रूते तेन ऋषीणामथ यत्पितृभ्यो निपृणाति यत्प्रजामिच्छते तेन पितृणामथ यन्मनुष्यान्वासयते यदेभ्योऽशनं ददाति तेन मनुष्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पशूनां यदस्य गृहेषु श्वापदा वया ँ स्या पिपीलिकाभ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोको यथा ह वै स्वाय लोकायारिष्टिमिच्छेदेव ँ हैवं विदे सर्वाणि भूतान्यरिष्टिमिच्छन्ति तद्वा एतद्विदितं मीमा ँ सितम् ।।१६।।

लोकः उपभोगसाधनं त्यजते ददाति, अनुभूते स्वाध्यायमधीते वा, शयते निवासं ददाति, विन्दति प्रायति, स्वापदाः कुक्कुरादयः, वयांसि पक्षिणः । असौ गृही होमदाराभ्यां देवानां, स्वाध्यायेन ऋषीणाम्, तर्पणात् पितृणां, निवासभोजनाभ्यां मनुष्याणां, तृणोदकेन पशुभ्यां उपजीवनेन स्वापदपिपीलिकावयसां लोकः एवं ते तैलस्यारिष्टिमिच्छन्ति । अतः येषामरिष्टकामनया अयं गृही गृहान्ननिर्विद्यते शततजननमरण-रूपसंसारसागरे निमज्योन्मज्य परिवर्तपरः सीदति । तस्माद् भगवदीयो भूत्वा सर्वेषां धर्मान् त्यक्त्वा सर्वाधारं शिरिषकुसुमसुकुमारं करूणाकूपारं दशरथकुमारं संसारसारं समाराध्य तरति मोहमहोदधिम् । इत्येव मीमांसितं विचारितम् श्रुतिभिः ।।श्रीः।।

अथ पुत्रवित्तलोकैषणाः प्रवृत्तिबीजभूताः पाङ्क्तकर्माणि च वर्णयित्वा तेभ्यो निर्वेदमुपदिशति । पाङ्क्तं नाम पञ्च पञ्चानां समूहः । सर्वं पाङ्क्तं पञ्चभूतानि, पञ्च तन्मात्राः, पञ्च प्राणाः पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्दियाणि पञ्च पर्वा अविधा पञ्चैव तृषा, पञ्च यज्ञाः, इत्यादि । इदमेव प्रपञ्चपति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मेस्यादथ कर्म कुर्वीयेत्येतावान्वै कामो नेच्छ ँ् श्चनातो भूयो विन्देत्तक्षमादप्येततर्ह्येकाकी कामयते जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथवित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेति स यावदप्येतेषामेकैकं न प्राप्नोत्यकृत्स्न एव तावन्मन्यते तस्यो कृत्स्नता मन एवास्यात्मा वागजाया प्राणः प्रजा चक्षुर्मानुषं वित्तं चक्षुषा हि तद्विन्दते श्रोत्रं दैव ँ् श्रोत्रेण हि तच्छृणोत्यातमैवास्य कर्मात्मना हि कर्म करोति स एष पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्तः पशुः पाङ्क्तः पुरूषः पाङ्क्तमिद ँ् सर्व यदिदं किञ्च तदिद ँ् सर्वमाप्नोति एवं वेद ।।१७।।

सृष्टेः अग्रे इदम् आत्मैव जीवात्मैव आसीत्, एकाकी सन् सः ईश्वरलीलया एषणात्रयवशे जातः। तिस्रः एषणाः भविन्त पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा च। अतः सोऽकामयत् ऐक्षत् मे मम जाया पत्नी स्यात् यस्यामहम् पुत्ररूपं प्रजायेय इत्यनेन पुत्रैषणा। वित्तं मे इति वित्तैषणा, कर्म कुर्वीय इति लोकैषणाः एतावानेव एषणा-त्रयरूपो जीवात्मा कामः, इत्थं साम्प्रतमपि जीवः कामयति। कामानामनन्तत्वात् यावदेकैकं न प्राप्नोति तावत् अकृत्स्न इव अपूर्णमनोरथश्चेखिद्यते। तस्मात् इदं लौकिकं कामजातं त्यक्त्वा श्रीरामं ब्रह्म समाश्रयेत्। तस्य सकलकामपूरकत्वात् पूर्णकामत्वाच्च। यथोक्तं भागवते श्रीसूतेन—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरूषं परम् ।।

(भ० पु० २-३-१०)

यथाध्यात्मिकरीत्या पूर्णतायै प्रयतनीयम्। वाग्वाणी एव जाया, मनः मनस्तस्याः पतिः ताम्यां वाङ्मनसाम्यां सञ्जन्यमानप्राण एव प्रजा इति पुत्रैषणा, पूर्तिः वित्तं द्विधा मानुषं दैवं च, चक्षुः मानुषं वित्तं तेन सम्पूर्णं दृश्यजातं लभ्यते। श्रोत्रं देववित्तं दिव्यं विज्ञानं शृणोति। आत्मा शरीरमेव कर्म तेनैव लोकैषणापूर्तिः। अत्र संग्रह श्लोकः—

प्राणात् प्रजातः पूर्णा स्यात् मनोवाचा सुतैषणा ।
चक्षुः श्रोत्रेण वित्तस्य लोकस्य च शरीरतः ।।

एवं वाक्प्राणचक्षुश्श्रोत्रत्वचः पाङ्क्ताः एवमेव यज्ञादयः सर्वे पाङ्क्ताः। य एतद् वेद सोऽपि समस्त प्राङ्क्तवान् भवति।

पाङ्क्तान् ज्ञात्वा लसत्पाङ्क्तो विरज्य पाङ्क्तयूथतः ।
पाङ्क्तः पङ्क्तिरथस्यैव ज्येष्ठं पुत्रं हरिं श्रयेत् ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमाध्याये भाष्ये पङ्क्तिप्रक्रियावर्णनपरं चतुर्थब्राह्मणं सम्पूर्णः ।।श्रीः।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। पञ्चमब्राह्मणम् ।।

सुग्रीवपञ्चमं सीतापञ्चमं पञ्चमं श्रितम् ।
पञ्चमं श्रितरामं तं नत्वा व्याख्यामि पञ्चमम् ।।

अथ पूर्वोक्तस्य परमात्मनः सृष्टिप्रपञ्चं सप्तान्नतया वर्णयन्ती श्रुतिः ततो वैराग्यमुपपिपादयिषुः पञ्चमप्राप्तये पञ्चमं ब्राह्मणं प्रारभ्यते । ब्रह्म वेद तदधीते तज्जातौ जातः इति ब्राह्मणः । अत्र **तदधीते तद्वेद** पा० अ० ४/२/५९ इत्यनेन ब्रह्मवेदमधीते, ब्रह्म परमात्मानं वेद जानाति, तज्जात्युत्पन्नो ब्राह्मणः इति व्युत्पत्तौ ब्रह्मन् शब्दात् द्वितीयान्तात् अण् प्रत्यये भत्वाट्टिलोपे प्राप्ते **ब्राह्मोऽजातौ** (पा० अ० ६-४-१७१) इत्यत्र अजातौ इति पर्युदासात् तज्जातिभिन्नार्थ एव टिलोपे समनुशिष्टे भगवता पणिनिना प्रकृते इति टिलोपाभावात् आदिवृद्धौ णत्वे ब्राह्मणः । ब्राह्मणत्वञ्च ब्रह्मवेतृ-ब्रह्माध्येतृजात्युत्पन्नत्वे सति ब्रह्मवेतृत्व ब्रह्माध्येतृत्व सम्पन्नत्वं, तद् ब्राह्मणभाषितत्वात् मन्त्रग्रामोऽपि ब्राह्मणः । अथ प्रजापतिना परमेश्वरेण निजपारमार्थिकपुत्रस्य जीवस्य उपभोगार्थं सप्त अन्नानि विरचितानि **अद्** धातुरदादौ प्रथमो भक्षणार्थः **अद् भक्षणे** इति पाणिनीयधातुपाठात् । तत्र अद्यन्ते इति अन्नानिः आद्यन्त वा यानि तानि अन्नानि इतिं विग्रहे भूतकाले क्त प्रत्यये दकारस्य नकारे विभक्तिकार्ये अन्नशब्दस्य निष्पत्तिः । अर्थात् पञ्चभिरपि ज्ञानेन्द्रियसंज्ञकैश्चक्षुश्श्रोत्रघ्राणरसनात्वग्भिर्यत् किमपि जीवात्मना शब्दस्पर्शरूपरसगन्धत्वावच्छिन्नम् उपभुज्यते तदन्नं भवति । अदनं भोगः तदाश्रयो विषयो वा अन्नम् । पिता पुत्रस्योपभोगसाधनम् उपभोगसामग्रीश्च रचयित्वा सङ्कल्प्य वा समानयतीति लोकप्रसिद्धं, विमूढाः पक्षिणोऽपि शावकार्थं तद्भोग्यपदार्थानानयन्ति किमुत कारुणिकशिखामणेः समस्तकल्याणगुणगणकल्लोलिनीवल्लभस्य श्रीसीतावल्लभस्य परमेश्वरस्य विषये । भगवता सृष्टेः प्रारम्भे सुप्तोत्थितानां जीवानां तत्तत्कर्मानुसारं पञ्चकृतभूतैः पाञ्चभौतिकं शरीरमुपभोसाधनं पुनः उपभोगविषयीभूतानि सप्तान्नानि रचितानि । तानि चेत्थं प्रथमं साधारणं भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यनामकं चतुर्विधं तत्सर्वं भक्ष्यम्, पुनः हुतं द्वितीयं, प्रहुतं तृतीयं, वाक् चतुर्थं, प्राणपञ्चमं, मनः षष्ठं पयः सप्तममुपलक्ष्यणतया तद्विकाराः दधिनवनीतधृतादयः सप्तमम् इति सप्तान्नानि । यथा प्रातः काले सुप्तोथितान् जिघत्सावतो निजपुत्रान् लालयति माता तेभ्यो भोजनं ददाति, परस्परकलहवारणार्थं विभजति च, तथैव भगवानपि मातेव साधारणमन्नं सर्वेभ्यः व्यभजत् । विशिष्टं षड्विधं तत्र सर्वोपाधिशून्याय जीवात्मने वाक्प्राणमनांसि उपभोगसाधनानि प्रायच्छत् । देवेभ्यः हुतं प्रहुतमिति द्वयं प्रायच्छत्, पशुभ्यः पयः इति विभागक्रमः । स एवात्र आब्राह्मणसमाप्तिं वर्णयति । तत्र सूत्रभूतप्रथमोमन्त्रः शेषास्तद्व्याख्यानभूताः इत्यवतरणिका ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ प्रकृतमनुसरामः —

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाजनयत्पिता । एकमस्य साधारणं द्वे देवानभाजयत् । त्रीण्यात्मनेऽकुरुत पशुभ्य एकं प्रायच्छत् । तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च प्राणिति यच्च न । कस्मात्तानि न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदा । यो वैतामक्षितिं वेद सोऽन्नमत्ति प्रतीकेन । स देवानपि गच्छति स ऊर्जमुपजीवतीति श्लोकाः ।।१।।

अथ गायत्रीछन्दोविधया चतुर्भिः श्लोकैः प्रस्ताव्यं प्रस्तौति—पिता परमेश्वरः **शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः** इति **श्रुते पिताहमस्मि जगतो** (गीता ९-१७) **पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य** (गीता ११-४३) इत्यादि स्मृतेः पातृत्वात् पिता परमेश्वरः परब्रह्म श्रीरामः मेधया विशुद्धबुद्ध्या तपसा दिव्येन ज्ञानेन, यत्तु मेधया तपसा इत्यस्य ज्ञानेन कर्मणा इति व्याचक्षिरे तदसंगतं तपःशब्दस्य कुत्रापि शास्त्रे कर्मार्थत्वानुपलब्धेः । **तप आलोचने** इति धातुः, आलोचनं हि ज्ञानरूपं न तु कर्ममयम्, तस्माद् पूर्वं मेधाशक्त्या प्राक्कल्पे कृतानि जीवशुभाशुभकर्माणि परिगणय्य ततस्तपसा तत् फलभूतानि सप्तधा भोग्यानि वस्तूनि समालोच्य अजनयत् । इदमेव समर्थयति **यथा पूर्वमकल्पयत्** इतिमन्त्रवर्णैरपि । यद्वा भगवतस्तिस्रःशक्तयः संवित् संधानि आह्लादिनी चेति आह्लादिनी तु भगवदभिन्ना, संवित् शक्तिर्मेधा संधानि तपोरूपा, ताभ्याम् । यद्वा महः जीवः तम् एधयतीति मेधा योगमाया कृपाशक्तिः तपः लीलाशक्तिश्चेति, यद्वा मेधा माया अव्यक्तनाम्नी तपः कालरूपा ताभ्याम् । ननु भगवति निर्धर्मके एतावच्छक्तिकल्पनं श्रुतिविरूद्धम् इति चेन्न—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया: च ।

(श्वेताश्वरतर ६/८)

इति भगवच्छक्ति वैपुल्यवर्णनमेव प्रमाणम् । श्रूयते इति श्रुतिः । श्रुतिनिगादितप्रश्रवण निर्देशेन कल्पनाशङ्कापङ्कोऽपि प्रक्षालितः । अत्रेदमवधेयम्–जीवो भोक्ता तद्भोग्यं जगत् भोगश्च संसारचक्रभ्रमणम् परमात्मा भोक्तृभोगभोग्यत्रयातीतः, अतः पिता । ननु तदभोक्तृत्वे किम् मानम् **तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति** इति मुण्डकश्रुतिरेव । एवं पिता परमपिता परमेश्वरः मेधया पूर्वोक्तया बुद्ध्या कृपाशक्त्या संविच्छक्त्या वा तपसा पर्यालोचनेन ज्ञानेन **यस्य ज्ञानमयं तपः** इति श्रुतेः लीलाशक्त्या योगमायया यत् यदिति लुप्तद्वितीयाबहुवचनान्तयच्छब्दः यानीत्यर्थकः । यानि प्रसिद्धानि भुक्तपूर्वाणि जीवैः सप्तसंख्यकानि अन्नानि सामान्य-विशेषाणि यवादीनि हुतादीनि च अजनयत् प्रादुर्भावयत् । तेषु एकम् एकशब्दोऽत्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथमार्थः प्रथमम् अन्नं पञ्चविषयात्मकम् अस्य सकल शरीरावच्छिन्नस्य जीवत्वजातिविशिष्टस्य सर्वस्य प्राणिमात्रस्य सामान्यम्। अस्य साधारणमित्यत्र **शेषे षष्ठी,** शेषश्च सम्बन्धः प्रातिपदिकार्थकारकादिव्यतिरिक्तः स च भोक्तृभोग्यभावरूपः। एवमस्येति जात्याख्यायां बहुवचनम्। अथ द्वे हुतप्रहुतनामके देवान् दैवीसंपदमालम्ब्यमानाम् अवयवादिगुणविशिष्टान् अभाजयत्, सोऽचीकरत्। तथा हि देवाः द्वे अभजयन् पिता प्रैरयत् इति पिता द्वे देवान् अभाजयत्। अत्र परमपिता परमात्मा प्रयोजकः देवाः प्रयोज्याः हुतप्रहुते च प्रयोजने इति विवेकः। अथ देवानित्यत्र कर्मत्वं कथमिति चेत् **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** (पा० अ० १-४-५२) इति सूत्रेण। नन्वत्र पञ्च लक्षणेषु धातुषु भजिः कतमः ? इति चेत् प्रत्यवसानार्थः, किं भोः प्रत्यवसानं भोजनं तच्च भुजेरर्थः ? इति चेन् मैवं, भजनमपि भोजनम्। कथमिति चेत्, **भजनं रसनम्** इति गोपालतापनीयश्रुतेः एवं भजनं सेवनापरपर्यायं रसनम् तदेव प्रत्यवसानं तदर्थो भजिः तदण्यन्त कर्तत्वं देवेषु तेषा ण्यन्ते कर्मत्वमिति विविक्तव्यम्। आत्मने शरीरानवच्छिन्नाय निजसूनवे नित्यपरिकराय जीवात्मने, अत्र **तादर्थ्ये चतुर्थी** जीवात्मनो भोगप्रयोजनसिद्धये त्रीणिवाक् प्राणमनांसि अकुरुत व्यरीरचत्। यत्तु आत्मने इत्यस्य निजाय स्वार्थायेति व्याचक्रुः प्राञ्चः तन्न समीचीनं, **अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति** (मु० उ० ३-१-१) इति श्रुतेः परमात्मनः भोक्तृत्वप्रतियोगिका–भावत्वात्। आत्मने इत्यत्र तादर्थ्यस्यैव नितरामभावात्। कथमसत्यां बुभुक्षायां त्रीणि भोग्यान्यात्मने करिष्यति। ननु यदि परमात्मा अनश्नन्निति श्रुत्यनुरोधेन न भोक्ता, तर्हि कथम् श्री गीतासु **अश्नामि प्रयतात्मनः** इति भगवतैवोक्तम् ? इति चेत् सत्यं तत्रत्यं भावमवगन्तुं प्रयतस्व, अनश्नन् इत्यस्य जागतिकविषयपदार्थविषयक-परमात्मभोक्तृत्वनिषेधे तात्पर्यम्। अश्नामि इत्यत्र भक्तदत्तपदार्थानाम् भोक्तृत्वस्वीकारो हार्दम्। किं तर्हि पुष्पफलजलानि नैव जागतिकानि ? न हि तावत्, यदि भगवदीयभक्ता एव जगदतीताः संसारप्रपंचरहितत्वात् तर्हि तदुपहृतपत्रपुष्पफलजलेषु कथंकारं जागतिकत्वम्। यत्र यत्र स्वत्वं तत्र तत्र तत्त्वं यत्र स्वत्वं नास्ति तत्र तत्त्वं नास्तीति सिद्धान्तानुसारम् **यो मे भक्त्या प्रयच्छति** इति वाक्यखण्डेन स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकभगवन्निष्ठ–स्वत्वोपपादनरूपभगवदुद्देश्यत्वलक्षणसम्प्रदानमाहात्म्येन निरस्तजागतिकलेशत्वात् पत्रपुष्पफलजलानां स्वीकारे भगवतः अनश्नन्निति श्रुतिविरोधस्य शङ्कागन्धोऽपि नात्रावशिष्यते। तथाहि श्लोकः—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९-२६)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ नित्यपरिकरस्य निरस्तसकलबुभुक्षाकस्य जीवस्य भोगैः किं प्रयोजनमिति चेन्न, जागतिकपदार्थविषयकबुभुक्षाभाववत्वेऽपि तत्र भगवदीयरसबुभुक्षायाःनित्य सद्भाववत्वात् तदर्थं तदुपकरणैः तस्य नितरां प्रयोजनस्य सत्वात्। तथा हि तदर्थमात्मने जीवात्मने जीवात्मानं सुखयितु मिति क्रियार्थोपि चतुर्थी त्रीणी वागादीनि अकुरूत, येनासौ वाचा संसारे तिष्ठन्नपि भगवद्गुणान् भीषणां गायं गायं पायं पायञ्च भगवच्चरितामृतं नानुविन्देत् भववेदनाम्। यथा श्रीभागवते—

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ।
कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनाम् ।।

(भा० १०-११-५८)

एवं प्राणरूपेण प्राणेन भगवच्चरणसरसिजगतां तुलसीं तदुरसि लम्बमानवनमाला-परिमलञ्च घ्रायं ध्रायं सौगन्ध्यामृतं पीत्वा धन्यतां ब्रजेत्। यथा श्री भागवते सनकादयः—

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द–
किंजल्कमिश्रतुलसीमरकन्दवायुः ।
अन्तर्गतः स्वाविवरेण चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ।।

(भा० पू० ३-१५-४३)

एवमेव मनसा सङ्कल्पयन् परमात्मविषयकमधुरमनोरथान् मधुरिपुमुखमृगाङ्कमाधुरी परमानन्दसुधासागरे निमग्नो भवेत्। यथा श्रीभागवते अक्रूरः—

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं
त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं
द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ।।

(भा० पु० १०-३८-१४)

नन्वत्र यदि जीवात्मार्थमेव त्रीणि रचितानि भगवता तर्हि अकुरुत इति आत्मनेपद-प्रयोगः किमभिप्रायकः कृञो हि ञित्वात् तत्र कर्तृगामिक्रियाफलकत्वे आत्मनेपदं तथा हि सूत्रं **स्वरित ञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** (पा० अ० १/२/७७) इति सूत्रं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकृते कृञः क्रियाफलकत्वाभावे कथमात्मनेपदम् ? इति चेत् वाढं पृष्टम्, अत्र हि क्रियाफलम् रचनासुखम् तच्च यद्यपि जीवात्मनि तथाऽपि तस्मिन् परमप्रेम कुर्वति भगवति तत्सुखसुखित्वात् तत्रापि क्रियाफलत्वेनात्मनेपदम् । यथोक्तं श्रीमानसे—

सुखमानत सेवक सेवकाई, सेवक बैर बैर अधिकाई ।।

(मा० २-११९-२)

एतद्रूपान्तम्—

सेवकस्य च सेवायां मन्यते हि सुखं प्रभुः ।
सेवकस्य च वैरे हि वैरं समधिकं गतः ।।

अनन्तरम् एकं दुग्धरूपमन्नं रसात्मकं पशुभ्यः, पशुशब्दोऽत्र विशेषभोगासक्त-बद्धजीवपरः तेभ्यः बुभुक्षुभ्यः कर्मणि गदितेभ्यः पशुभ्यः प्रायच्छत् । तस्मिन् रसे पयसि यत् प्राणिति चेतनं प्राणवत् जड़चेतनं जगत् प्रतिष्ठितं वर्तमानम् । अथ प्रश्नः—यदि सप्तान्नानि साधारणहुतप्रहुतवाक्प्राणमयमनःपयांसि सर्वदा निरन्तरमद्यमानानि जीवेन भुज्यमानानि सन्ति तर्हि कस्माद्धेतोः न क्षीयन्ते । भोगरूपकारणसमवधानेऽपि नाशरूपकार्याभावश्चित्रम्, अग्निसद्भावेऽपि दाहकत्वानुपलब्धेः । उत्तरमुत्तरत्रफलमाह—यः कश्चन् तां भुज्यमानानामपि अक्षितिं क्षिति क्षीणता तदभावं वेद सः प्रतीकेन मुखेन अग्निरूपेण ब्राह्मणरूपेण वा स्वाननेन वा अन्नं भोग्यम् अत्ति आस्वादयति । परमात्मकृपया भोगान् भुञ्जानोऽपि स्वयं न भुज्यते इति तात्पर्यम् । सः देवान् अत्र **आदरार्थे बहुवचनम्** देवदेवं साकेतविहारिणं श्रीरामं ब्रह्म गच्छति । स ऊर्जं ऊर्जस्वलं भगवतो नामामृतं रूपामृतं चरित्रामृतं सौन्दर्यामृतम् उपजीवति उपभुङ्क्ते भगवत्समीपंगतः आस्वादयति इति श्लोकाः, इमे सन्ति चत्वारो भगवद्गुणगणसङ्घातवर्णनपराः गायत्रीछन्दसाबद्धाः वैदिकश्लोकविशेषाः ।।श्रीः।।

अथ द्वितीयस्मिन्मन्त्रे सूत्रभूतस्य प्रथममन्त्रस्य व्याख्यां करोति श्रुतिः यत्सप्तेत्यादिना—

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाजनयत्पितेति मेधया हि तपसाजनयत्पिता । एकमस्य साधारणमितीदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यते । स य एतदुपास्ते न स पाप्मनो व्यावर्तते मिश्रँ ह्येतत् ! द्वे देवानभाजयदिति हुतं च प्रहुतं च तस्माद्देवेभ्यो जुह्वति च प्र च जुह्वत्यथो आहुर्दर्शपूर्णमासाविति । तस्मान्नेष्टियाजुकः स्यात् । पशुभ्य एकं प्रायच्छदिति तत्पयः । पयो ह्येवाग्रे मनुष्याश्च पशवश्चोपजीवन्ति तस्मात्कुमारं जातं घृतं वैवाग्रे प्रतिलेहयन्ति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्तनं वानुधापयन्त्यथ वत्सं जातमाहु रतृणाद इति । तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च प्राणिति यच्च नेति पयसि हीदँ्सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च प्राणिति यच्च न। तद्यदिदमाहुः सवत्सरं पयसा जुह्वदप पुनर्मृत्युं जयतीति न तथा विद्याद्यदहरेव जुहोति तदहः पुनर्मृत्युमपजयत्येवं विद्वान्सर्वँ्हि देवेभ्योऽनाद्यं प्रयच्छति । कस्मात्तानि न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदेति पुरूषो वा अक्षितिः स हीदमन्नं पुनः पुनर्जनयते । यो वैताममक्षितिं वेदेति पुरुषो वा अक्षितिः स हीदमन्नं धिया धिया जनयते कर्मभिर्यद्धैतन्न कुर्यात्क्षीयेत् ह सोऽन्नमत्ति प्रतीकेनेति मुखं प्रतीकं मुखेनेत्येतत् । स देवानपि गच्छति स ऊर्जमुपजीवतीति प्रशँ्सा ।।२।।

यदित्याद्यनुवादरूपं पितेत्यन्तं, प्रजापतिना योगमायया कालशक्त्या च यानि सप्तान्नानि साधारणादीनि सृष्टानि तेषु यत्प्रथमं साधारणाख्यं तत्समस्तजीवजातस्य, व्युत्पत्तिमाह, अद्यते इति अन्नं बाहुलकात् अभूतकाले कर्तरि निष्ठा । यः कोऽपि इमं साधारणमन्नं ब्रह्मबुद्ध्या उपास्ते सः पाप्मनः कर्मजनितपातकात् न व्यावर्तते न हि निवृत्तो भवति । व्यावर्तते इति कर्मकतृप्रयोगः । हेतुमाह, यतोहि साधारणमन्नं मिश्रं शुभाशुभाभ्यां संयुक्तवात् । उपासितव्यं तु शुद्धसच्चिदानन्दमयश्रीरामाख्यं ब्रह्म यथोक्तं मानसे—

शुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकूल केतु ।
करत चरित नर अनुहरत संस्सृति सागरसेतु ।।

(मा० २-८७)

एतद्रूपान्तरम्—

विशुद्धसच्चिदानंदकंदो भानुकुलस्य च ।
केतुर्भवाब्धिसेतुं च चरितं मानवं श्रितः ।

अथ देवेभ्यः हुतं प्रहुतमिति विभज्य दत्तवान् हुतं नाम हवनम् अग्निहोत्रं प्रहुतं नाम बलिवैश्वदेवादि । अत एव जनाः द्वाभ्यां देवाँस्तर्पयन्ति । केचिद् दर्शपौर्णमासौ अमावश्याराकयोः क्रियमाणौ नैमित्तिककर्मविशेषौ श्रौतौ हुतप्रहुतशब्दार्थावाहुः, केचिदित्युक्त्वा श्रुतिस्तन्मते दर्शयत्यरूचिम् । अतः इष्टियजनशीलो न स्यात् । पशुभ्यः यत् एकमन्नं प्रादात् तद्विवृणोति, तत् किं पय इति । उपपत्तिमाह—मनुष्याः पशवश्च अग्रे जन्मनःपश्चात् पयः पीत्वैव उपजीवन्ति उपकृताः जीवनं धारयन्ति । अतः कुमारं पञ्चाब्दपर्यन्तं शिशुं घृतं प्रतिलेहयन्ति वर्धयितुं स्तनं धापयन्ति पाययन्ति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवयितुं, पशुयोनावपि जातमात्रवत्सः पय एव पिबति न तृणमत्ति । अतः अतृणमादं अतृणादं न तृणमत्ति तथाभूतम् पयः शब्दोऽत्र रसवाची तच्च त्रिलोक्यां व्याप्तम् । अतो मन्त्रवर्णे पृथिव्याम्, ओषधीषु, द्युलोके अन्तरिक्षे सर्वत्र पयः पयोनिधिविहारिणः मातुरिव सकलजीववत्सल्य श्रीहरेः वात्सल्यद्रवपयसा समाप्यायित् तथा च मन्त्रार्णवः—

ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षं पयोधाः पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।

तस्मिन्नित्यस्य भावार्थः—यत् प्राणवत् यच्चाप्राणी सर्वं पयसि परमेश्वरस्य वात्सल्यरसे प्रतिष्ठितम् । पयः प्रशंसामाह पूर्वपक्षं खण्डयित्वा—यत् कथयन्ति संवत्सरपर्यन्तं पयसा दुग्धेन जुह्वत् होमं कुर्वन् मृत्युं जयति, इति न अनेन पयोमाहात्म्य-न्यूनता, वस्तुतः पयसा भगवदीयरसेन यस्मिन्नहनि जुहोति तद्दिनमेव मृत्युं विजित्य मुक्तो भवति, देवेभ्योऽपि अन्नादः भोगाय वस्तुदानशीलो भवति ।

कस्मादिति प्रश्नबीजमवतारयति–सर्वदा भुज्यमानानि अन्नानि कुतो हेतोर्न नश्यन्ति ? पुरूषः परमात्मा जीवानां पिता, अक्षितिः क्षितिर्विनाशस्तदभाववान् । अतः भुज्यमानमिदमन्नं जीवजीविकार्थं पुनः पुनः जनयति प्रादुर्भावयति अतो न क्षीयन्ते । एवं यो वेद इत्यंशस्य अनुवादः–जीवानां कर्माणि अविनाशीनि अतः पुरूषः भगवान् धिया धिया जीवानां प्रारब्धध्यानेन तदनुकूलफलरचनाध्यानेन च अन्नं जनयते कर्मभिः । यदि परमात्मा एतत्न कुर्यात् तदान्नं तु क्षीयेत भुज्यमानमनुत्पादितं नश्येदेव । तस्मात् अवाप्तसमस्तकामः पूर्णकामः परमात्मापि निःस्वार्थः पुत्रवत्सलः पितेव जीवानां भोगयवस्तूनि जनयत्येव, इदमेव तस्य कर्म । अयमेव सिद्धान्तः श्रीगीतायास्तार्तीयके त्रिभिःश्लोकैः प्रतिपादितः पार्थं प्रति भगवता पार्थसूत्रेन देवकीसुतेन तथाहि—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मषु ।।

यदि ह्ययं न वर्तेयं जातुकर्मण्यतद्रत ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्याम कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ।।

(गी० ३-२२,२३,२४)

एवं जानन् प्रतीकेन मुखेन अन्नमत्ति । ननु का वापूर्वता विद्वानविद्वान् सर्वोऽपि मुखेनैव अन्नमत्ति तस्मिन्नेव अन्नादनसामर्थ्यात् ? इति चेन्न उक्तपूर्वमेतद् यदन्नं भोग्यपर्यायं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न खलु सर्वे भोग्या: विषया: मुखेनेवाद्यन्ते, अदनं नाम न केवलं मुखविदारणदन्तचालनजिह्वरसनव्यापाररूपं तत्खलु पञ्चज्ञानेन्द्रियव्यापारभूतम्। यथा शब्दस्पर्शरुपरसगन्धा: स्वादविषयतया अदनीया: अन्नाभिधेया: ते खलु पृथक् पृथक् तत्तदिन्द्रियै: श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनानासाभिरास्वाद्यन्ते, तस्मान्मुखशब्दस्य वदनव्यतिरिक्तोऽर्थ: श्रुतेरत्राभिप्रेत: स च परमात्मरूप:, तस्मात् प्रतीक: समेषां प्रतिनिधि: मुखमिव मुख्य: तेन मुखेन परमात्मना सह अन्नं भोग्यं वस्तु अत्ति। भोगं भुञ्जानेऽपि परमात्मानं न विस्मरति इति हार्दम्। नन्वस्मिन्व्याख्याने किं निगमकम्? इति चेत् **सोश्नुतेसर्वान्कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता** (तै० ब्र० १)। एवं स देवानित्यादि प्रशंसा पुरूषज्ञानप्रवर्तनार्था ।।श्री:।।

अथ प्रथमसूत्रस्य परिशेषं यद्द्वितीयमन्त्रे व्याख्यानवतोऽशिष्टं तृतीये व्याख्याति—

त्रीण्यात्मनेऽकुरुतेति मनो वाचं प्राणं तान्यात्मनेऽकुरुतान्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमितिमनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रृणोति। काम: संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धाधृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरिप्येतत्सर्वं मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्ठो मनसा विजानाति य: कश्च शब्दो वागेव सा। एषा ह्यन्तमायत्तैषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदान: समानोऽत इत्येतत्सर्वं प्राण एवैतन्मयो वा अयमात्मा वाङ्मयो मनोमय: प्राणमय: ।।३।।

आत्मने जीवात्मार्थं त्रीणि वाक्प्राणमनांसि अकुरुत। उपपत्तिमाह किमप्यपश्यन्कोऽपि पृष्ट: कथयति—अहमन्यत्रमना अन्यत्र मन: यस्य तथाभूत: अभवमतो दृष्टिमानपि नापश्यं, श्रुतिमानपि न अश्रौषमदर्शमश्रौषमिति सामान्यभूताद्यतनविवक्षायां लुङ् लकार:। न खलु मनसा विना कोऽपि कमपि विषयं सेवितुं प्रभवति। कामादय: मनसो विकारा: यत्तु स्त्रीव्यतिकरेच्छा इति प्राहुर्भगवत्पादा: तथा हि तत्रत्यं भाष्यं-(काम: स्त्रीव्यतिकराभिलाषादि:। (बृ० उ० १-५-३ शांभा०) तन्न, पुरूषार्थपरिगणितत्वात् कामस्य भगवद्बिभूतिरूपत्वाच्च **धर्माविरूद्धभूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ** (गी० ७-११) कामप्रकृतिभूतका मधातो: कान्ति पर्यायेच्छासामान्यार्थकत्वाच्च केवलं स्त्रीसंगमाभिलाष: काम: इति सर्वथानुचितव्याख्यानम्। स्त्रीव्यतिकरेच्छा प्राणिन: सहजवृत्ति: तिर्यक् योनिगतेषु अपि जागर्ति, तर्ह्यपूर्वताभावे सा कथं पुरूषार्थरूपा, कामादनन्तरो मोक्षो गणित: इति योषिद्व्यतिकररुपकाम: यो मोक्षत:पूर्वभाविपुरुषार्ध:, तर्हि स्वभावत: सततं कामिनी: सेवमानानां कोटिकोटिविटानां कथं न मोक्ष:। वाराङ्गना: कथं विगर्हिता:, कथं वा तत्त्यागस्य श्रुतौ स्मृतौ च विधानं, कथं वा भवन्मते मोक्षप्रापणसोपानभूतं स्त्रीव्यतिकराभिलाषरूपं कामं तृतीयनेत्रेण ददाह भगवान् कामारि:। कथं वा तदुद्भववेगं सोढुं निर्दिष्टवान् शरीरमोक्षणात् प्राक् भगवान् योगेश्वर: कृष्ण: ? तथाहि—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ।।

(गी० ५.२३)

तस्मात् हर्यादिरिव कामशब्दोऽप्यनेकार्थः धर्माविरुद्धसात्विकेच्छा कामः । स एव पुरूषार्थः । संसारेच्छासामान्यं कामः साधारणधर्मो मानसः । परस्त्रीसंगमेच्छा कामो विकारः । एष सर्वथा त्याज्यः, एवं नैष मनोधर्मः विकार एषः, यथा शरीरे आगन्तुकः कैंसरादिः दुर्निवार्यो मृत्युपर्यन्तस्थायी रोगः कुपथ्यसेवनप्रभवः, तथैवैषः शतशतकामिनीतल्लम्पटसंगमसंभवो नरकभवो मनोभवः परनारिसंगमाभिलाषरूपो हृदयमहीनिखन्यमानकोटिकोटिपापयूपो दापितदुष्पूरघोरभवकूपो दुरोदरो दूरतः परिहर्तव्यो बुधैः । संकल्पः काम्यवस्तुप्राप्त्यध्यवसायप्रयासः विचिकित्सादयः सुगमाः । तस्मात् पृष्ठतः परोक्षतः उपस्पृष्टः मनसैव जानाति । एवं मनः अन्तःकरणं, शब्दमात्रं वागुच्यमानत्वात् हि निश्चयेन एषा इयं वाणी अन्तम् अन्तति पदार्थं बध्नाति इति अन्तः अभिधेयः तमाश्रित्य आयत्ता । नखल्वर्थं विना कापि वाक् प्रवर्तते तस्मादर्थाधीना सा । एवमेव पञ्चप्राणक्रियाविशिष्टः आत्मा प्राणमयः तस्मात् पूर्वोक्तत्रयीमयोऽयम् ।

अथ आत्मने रचितानां त्रयाणां भोग्यानां त्रिलोकदृष्ट्या व्याख्यानम्—

त्रयो लोका एत एव वागेवायं लोको मनोऽन्तरिक्षलोकः प्राणोऽसौलोकः ।।४।।

वाङ्मर्त्यलोकोऽन्तरिक्षं मनः प्राणस्तु द्यौस्मृता ।
स्थौल्य सौक्ष्म्य महत्वादिधर्मात् श्रौतोऽर्थ ईदृशः ।।श्रीः।।

अथ वेददेवादिगार्हस्थ्यपरतया त्रिभिर्व्याख्यानम्—

त्रयो वेदा एत एव वागेवर्ग्वेदो मनो यजुर्वेदः प्राणः सामवेदः ।।५।।
देवाः पितरो मनुष्या एत एव वागेव देवा मनः पितरः प्राणो मनुष्याः ।।६।।
पिता माता प्रजैत एव मन एव पिता वाङ्माता प्राणः प्रजा ।।७।।

तन्मयत्वात् वागेवद ऋग्वेदः, मन एव यजुर्वेदः, संकल्पप्रधानयज्ञवर्णनात् मनसोऽपि संकल्पधर्मत्वात् उभयोः साधारण्यं, प्राणस्य श्रेष्ठत्वात् मुख्यत्वात् च साम्नां द्वयोस्तुल्यता । दिविधातोः श्रुत्यर्थकत्वेन वाचश्च तदुपयोगित्वात् उभयोः सामान्यं, यद्वा संस्कृतमेव मुख्यावाक् सा च दैवी तस्माद् देवत्वं तत्र, मनसि पितृत्वं सूक्ष्मत्वात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वासनाधारत्वसामान्यात्, प्राण एव मनुष्यः तन्निःश्वासभूतत्वात् । पितृतेजो मातागर्भे दधाति तथैव मनोभावं प्राणरूपं वाक् प्रकटयति तस्मान्मनसि पितृत्वं वाचि मातृत्वं प्राणे च प्रजात्वम् ।।श्रीः।।

अथ विज्ञानदृष्ट्यापि त्रेधा व्याख्यानं त्रयाणां, तत्र वाक् विज्ञानम्, श्रणवात् इमां सर्वे जानन्ति अनया च सर्वं ज्ञायते अतो विज्ञातरूपेण अवतीयमात्मानं, मनः सूक्ष्मं भवति, तस्मादिदं विजिज्ञास्यतत्वं विशेषेणज्ञातुमिच्छति विजिज्ञास्यते विजिज्ञासितुं योग्यं विजिज्ञास्यम्, एतन्मनसि को भावः इति सर्वे विजिज्ञासन्ते तस्मात् विजिज्ञास्यतत्वं विज्ञानेच्छाश्रययोग्यं सत् अवति जीवात्मानम् । प्राणः अविज्ञातः न कोऽपि एनं विजानाति परमात्मरूपत्वात् तस्मात् अविज्ञातरूपेण जीवात्मनो भोग्यतामर्हति एतद्व्याख्यानस्यैव सूत्ररूपा मन्त्रत्रयी—

विज्ञातं विजिज्ञास्यमविज्ञातमेत एव यत्किंच विज्ञातं वाचस्तद्रूपं वाग्घि विज्ञाता वागेनं तद्भूत्वावति ।।८।।

यत्किंचविजिज्ञास्यं मनसस्तद्रूपं मनो हि विजिज्ञास्यं मन एनं तद्भूत्वावति ।।९।।

यत्किञ्चा विज्ञातं प्राणस्य तद्रूपं प्राणो ह्यविज्ञातः प्राण एनं तद्भूत्वावति ।।१०।।

वाग् विज्ञातं मनःसूक्ष्मं विजिज्ञास्यं स्वरूपतः ।
प्राणो विज्ञातुरूपोऽसौ इतिमन्त्रत्रयाशयः ।।श्रीः।।

पुनः विभिन्नदृष्ट्या वागादयो व्याख्यायन्ते—

तस्यै वाचः पृथिवी शरीरं ज्योतीरूपमयमग्निस्तद्यावत्येव वाक्तावती पृथिवी तावानयमग्निः ।।११।।

तस्य इति व्यत्यात् षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । वाचः पृथिवीशरीरं चेष्टाश्रयत्वात्, ज्योतिः प्रकाश एव अग्निविशेषः अनयोः संस्थानं तस्मात् वाह्यतः पृथिवी परिमाणवती आन्तरतः अग्निमात्रा प्रकाशवती ।।श्रीः।।

अथमनसोऽध्यात्मरूपं वर्णयति—

अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरं ज्योतीरूपमसावादित्यस्तद्यावदेव मनस्तावती द्यौस्तावानसावादित्यस्तौ मिथुनँ समैतां ततः प्राणोऽजायत स इन्द्रः स एषो सपत्नो द्वितीयो वै सपत्नो नास्य सपत्नो भवति य एवं वेद ।।१२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ एतस्य मनसः द्यौः शरीरं सूक्ष्मत्वात् तत्संकल्पस्य आस्वर्ग्यम् आसीमतत्वात्। असौ आदित्यः सूर्याभिन्नं ज्योतिः एवं द्युलोकाभिमानिदेवता। दित्याभ्यां मिथुनीभूय संगताभ्यां प्राणः संजातः, स एव इन्द्रः स एव अद्वितीयः अनुपमः, तस्मात् असपत्नः निष्प्रतिद्वन्द्वः द्वितीयः स्वसमानधर्मा सपत्नः शत्रुर्भवति। यः इमं भगवद् विभूतित्वेन निरुपमधिया समुपास्ते सोऽप्यनुपमः सन् निष्प्रतिद्वन्द्वो भवति ।।श्रीः।।

अथ प्राणस्याध्यात्ममाह—

अथैतस्य प्राणस्यापः शरीरं ज्योतीरूपमसौ चन्द्रस्तद्यावानेव प्राणस्तावत्य आपस्तावानसौ चन्द्रस्त एते सर्व एव समाः सर्वेऽनन्ताः स यो हैतानन्तवत उपास्तेऽन्तवन्त ँ स लोकं जयत्यथ यो हैताननन्तानुपास्तेऽनन्त ँ स लोकं जयति ।।१३।।

एवं प्राणस्य आपः जलमेव चेष्टाश्रयः शरीरं, चन्द्र ज्योतिःरूपं शीतलत्वात्। उपसंहरति—इमे वाङ्मनःप्राणाः अनन्ताः अनन्तानामुपासकोऽपि अन्तवन्तं विनाशिनं लोकं जयति अनन्तञ्च लभते ।।श्रीः।।

इदानीं संवत्सरतया आत्मनो व्याख्यानम्—

स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलास्तस्य रात्रय एव पञ्चदशकलाः, ध्रुवैवास्य षोडशीकल स रात्रिभिरेव च पूर्यतेऽपक्षीयते सोऽमावाश्य ँ रात्रिमेतया षोडस्या कलया सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविश्य ततः प्रातर्जायते तस्मादेता ँ रात्रिं प्राणभृतः प्राणं न विच्छिन्द्यादपि कृकलासस्यैतस्या एव देवताया अपचित्यै ।।१४।।

एषः प्रजापतिः परमात्मा कालरूपः संवत्सरात्मकः, संवत्सरो द्वादशमासः कालविशेषः चैत्रादिफाल्गुनपर्यन्तः, अस्य षोडशकलाः शरीरावयवाः तत्र पञ्चदशरात्रयः दिवसैः समेताः पञ्चदशकलाः षोडशी ध्रुवा नित्या कला। आभिः रात्रिभिः क्षीणतां गच्छन् अमावश्यायां ध्रुवामुपास्ते प्राणशक्तिं, पुनः प्रथमया कलया शुक्लपक्षं प्रविष्टः तस्मात् कुहूनिशि कृकलाशस्यापि देवतायाः अपचित्यै पूजायै न हिंसां कुर्यात्। भावार्थस्तु–सर्वत्र परमात्मभावनैवकरणीया ततो कदापि भगवद् विस्मरणं न भविष्यति। तथैवामनन्ति पौराणिकाः—

यत्रैव यत्रैव मनोमदीयं तत्रैव तत्रैव तव स्वरूपम्।
यत्रैव यत्रैव शिरो मदीयं तत्रैव तत्रैव तव प्रणामाः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ आत्मनि संवत्सरभावनां प्रस्तौति—

यो वै स संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलोऽयमेव स योऽयमेवंवित्पुरूषस्तस्य वित्तमेव पञ्चदशकला आत्मैवास्य षोडशीकला स वित्तेनेवा च पूर्यतेऽप च क्षीयते तदेतन्नभ्यं यदयमात्मा प्रधिर्वित्तं तस्माद्यद्यपि सर्वज्यानिं जीयत आत्मना चेज्जीवति प्रधिनागादित येवाहुः ।।१५।।

पूर्वं वर्णितः संवत्सररूपः प्रजापतिः सूक्ष्मतया अयमात्मैव । तत्र वित्तं धनमेव पञ्चदशकलाः दशेन्द्रियैः पञ्चप्राणैश्च समर्जनीयत्वात्, आत्मा शरीरं षोडशीकला । मम विचारेण पञ्चतन्मात्राः पञ्चमहाभूतानि पञ्चप्राणाश्च पञ्चदशवित्तानि, तैरेव पूर्यते अपक्षीयते च, यदा सर्वज्यानिः सर्वेषां धनानां जानिः हानिः, किन्तु शरीरं स्वस्थं तदापि जीवतीति व्यवहारो भवति तस्मादत्रापि पिण्डे भगवद्भावनाकरणीयेति हार्दम् ।।श्रीः।।

मानवस्य द्वेधा बन्धनं अविद्यया विद्यया च । अत्र प्रकारणे भगवद्भक्तिशून्यं कर्मैवाऽविद्या तत्तद्देवोपासनं विद्या ततोऽपि व्यतिरिक्ता सेव्यसेवकभावज्ञानपुरःसरमनन्यविषया परमेश्वरोपासना ब्रह्मविद्या । तस्मात् द्वाभ्यां कर्मोपासनाभ्यां भगवत्प्राप्त्यसाधकाभ्यां विरज्येत् मुमुक्षुः भगवच्छरणमुपेयिवान्, इति मन्त्रेण तन्निवारणं प्रस्तौति—

अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोको देवलोको वै लोकाना ँ श्रेष्ठस्तस्माद् विद्यां प्रश ँ सन्ति ।।१६।।

अथ अनन्तरं वै निश्चयेन त्रयो लोकाः, तत्र मनुष्यः पितृदेवलोकेषु पुत्रेण करणीभूतेन नरकात्त्राणसमर्थेन मनुष्यलोको जय्यो भवति । **क्षय्य जय्यौ शक्यार्थे** इत्यनेन यत् प्रत्ययान्तो जय्यशब्दो निपात्यते । एवं कर्मणा श्रुतिविहितेन नित्यादिना पितृलोकः जेतुं शक्यः । विद्यया देवोपासनरूपया देवलोकः । लोकानां श्रेष्ठत्वात् देवलोकस्य अन्यापेक्षया विद्यां प्रशंसन्ति । अत एव **अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते** । (ई० उ०-११) इतिश्रुतिः ।।श्रीः।।

पुत्रेण मनुष्यलोको जय्यः इत्यस्यैव व्याख्यानमग्रिमे मन्त्रे—

अथातः सम्प्रतिर्यदा प्रैष्यन्मन्यतेऽयं पुत्रमाह त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक इति स पुत्रः प्रत्याहाहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं लोक इति यद्वै किञ्चानूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्मेत्येकता । ये वै के च यज्ञास्तेषा ँ सर्वेषां यज्ञ इत्येकता । ये वै

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के च लोकास्तेषा ँ सर्वेषां लोक इत्येकतैतावद्वा इद ँ सर्वमेतन्मा सर्व ँ सन्नयमितोऽभुनजदिति तसमात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुस्तस्मादेन- मनुशासति स यदैवंविदस्माल्लोकात्प्रैत्यथैभिरेव प्राणैः सह पुत्रमाविशति । स यद्यनेन किञ्चिदक्ष्णयाऽकृतं भवति तस्मादेन ँ सर्वस्मात्पुत्रो मुञ्चति तस्मात्पुत्रो नाम स पुत्रेणैवास्मिँल्लोके प्रतितिष्ठत्यथैनमेते दैवाः प्राणा अमृता आविशन्ति ।।१७।।

अथ अधिकारार्थशब्दः अतः अनन्तरं सम्प्रत्तिः सम्यक् प्रदीयते पित्रा पुत्राय निजमुत्तरदायित्वं यया सा सम्प्रत्तिः । प्रयिष्यन् प्रपूर्वकस्य **इण्धातोः** शरीरत्यागोऽर्थः तस्यैव लृटि शत्रन्तोऽयं प्रयोगः । प्रयिष्यन् शरीरं त्यजन् परलोकं गमिष्यन् पितापुत्रमाह– त्वं ब्रह्म, त्वं यज्ञः, त्वं लोकः । ब्रह्मशब्दः वेदार्थः एवमुपलक्षणतया अनुक्तस्वाध्यायाकृतयज्ञानर्जितलोकानामेवसंग्रहः । पुत्रोऽपि अहमित्यादि मन्त्रखण्डेन आत्मनि ब्रह्मयज्ञलोकभावनां करोति, पूरयति च पितुः शेषकार्याणि तस्मादितो गच्छन् पिता देवैः अमृतेन संयोज्यते, पुत्रश्च पितरं पुतः नरकात् त्रायते, कार्याणां पूर्णाद् वा त्रायते इति मन्त्रस्य भावार्थः । संकेतस्तु न खलु पुत्रवान् स्वेन कर्मणा परलोकं गन्तुं प्रभवति, यतो हि मन्त्रानुसारं शरीरं त्यक्त्वापि पुनरेव मनः प्राणादिभिः परम्परया विषयान्भुंक्ते, अपूर्णस्य तस्य कार्यपूरणेन पुत्रस्त्रायते । तस्मात् प्राकृतपुत्रादिमोहं विहाय कौसल्यापुत्र एव परब्रह्मणि श्रीरामे समनुरज्येत् । तथा च चित्तं समुपदिशन्ति अस्माकमभियुक्ताः—

रे चित्त चिन्तय चिरं चरणौ मुरारेः ।
पारं गमिष्यसि यतो भवसागरस्य ।।
पुत्राः कलत्रमितरे नहि ते सहायाः ।
सर्वं विलोकय सखे मृगतृष्णिकाभम् ।।श्रीः।।

भूयः सम्प्रत्तिमन्माहात्म्यमुपवर्णयति—-

पृथिव्यै चैनमग्नेश्च दैवी वागाविशति सा वै दैवी वाग्यया यद्यदेव वदति तत्तद्भवति ।।१८।।

एनं कृतसम्प्रत्तिकं पृथिव्यै, अत्रापि व्यत्ययोबहुलमित्यनेन ङसेर्व्यत्यात्ङेविभक्तिः । पृथिवीसकाशात् पृथिव्याः अग्नेश्च एनं दैवी देवकृपामयी वाग् वाणी आविशति आविष्टा भवति । का सा ? इत्यत आह–सैव दैवी भूतार्थपरिणामा यया युक्तः यद्यद् वदति तत्तत् सत्यं यथार्थं भवति कृतपुण्यपुञ्जजत्वात् ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ पितुस्त्राणकर्त्तुः सम्प्रत्तिमतो मनोमाहात्म्यं वर्णयति—

दिवश्चैनमादित्याच्च दैवं मन आविशति तद्वै दैवं मनो येनानन्द्येव भवत्यथो न शोचति ।।१९।।

मनसो दिवशरीरत्वात् आदित्यरूपत्वाच्च ताभ्यामेनं सत्यसङ्कल्पं मनः आविशति, येन निरस्तसकलसङ्कल्पतया चिन्तितनिर्विकल्पब्रह्मतया च अयमानन्दी भवति, आनन्दवान् भवति ततो न शोचति नैव शोकं करोति ।।श्रीः।।

अथ सम्प्रत्यमतः प्राणमाहात्म्यं वर्णयति—

अद्भ्यश्चैनं चन्द्रमसश्चदैवः प्राण आविशति स वे देवः प्राणो यः सञ्चरँ्श्चासञ्चरँ्श्च न व्यथतेऽथो न रिष्यति । स एवं वित्सर्वेषां भूतानामात्मा भवति । यथैषा देवतैवँ् स यथैतां देवताँ् सर्वाणि भूतान्यवन्त्येवँ् हैवं विदँ् सर्वाणि भूतान्यवन्ति । यदु किञ्चेमाः प्रजाः शोचन्त्यमैवासां तद्भवति पुण्यमेवामुं गच्छति न ह वै देवान्पापं गच्छति ।।२०।।

एनं सम्प्रत्यमन्तम् अद्भ्यः जलात् चन्द्रमसः दैवः देवसम्बन्धिप्राणः आविशति, स च सञ्चरन् भ्रमन् अभ्रमंश्च न व्यथते नैव क्लेश्यते न हृष्यति न वा नश्यति । एवंवित् ज्ञाता सर्वेषां भूतानामात्मा आत्मवत् प्रियो भवति । यथा इयं हिरण्यगर्भाख्य-देवता तथैव अयमपि देवता भवति । इमामपि सर्वाणि भूतानि बलिभिः अबन्ति स्तुवन्ति गच्छन्ति च । यदि अन्याःप्रजाः किमपि शोचन्ति तर्हि आसां सहैव सः शोको भवति, नेमं स्पृशति अमुं सम्प्रत्तारं पुण्यमेव गच्छति न तु पापं, यतो हि देवोऽभूदेषः, देवान् पापं न गच्छति दिव्यमाहात्म्यमत्वात् ।।श्रीः।।

अथाध्यात्मप्राणव्रतमीमासां प्रदर्शयन्नाह—

अथातो व्रतमीमाँ्सा प्रजापतिर्ह कर्माणि ससृजे तानि सृष्टान्यन्योऽन्येनास्पर्धन्त वदिष्याम्येवाहमिति वाग्दध्रे द्रक्ष्याम्यहमिति चक्षुः श्रोष्याम्यहमिति श्रोत्रमेवमन्यानि कर्माणि यथाकर्म तानि मृत्युः श्रमो भूत्वोपयेमे तान्याप्नोत्तान्याप्त्वा मृत्युरवारून्ध तस्माच्छ्रामत्येव वाकछ्राम्यति चक्षुः श्रामयति श्रोत्रमथेममेव नाप्नोद्योऽयं मध्यमः प्रासास्तानि ज्ञातु दध्रिरे । अयं वै नः श्रेष्ठो यः सञ्चरँ्श्चासञ्चरँ्श्च न व्यथतेऽथो न रिष्यति हन्तास्यैव सर्वे रूपमसामेति त एतस्यैव सर्वे रूपमभवँ्स्तस्मादेत एतेनाख्यायन्ते प्राणा इति तेन ह वाव ततकुलमाचक्षते यस्मिन्कुले भवति य एवं वेद य उ हैवंविदा स्पर्धन्तेऽनुशुष्यत्यनुशुष्य हैवान्ततो म्रियत इत्यध्यात्मम् ।।२१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ वाङ्मन:प्राणनां व्रतस्य उपासनापद्धतिविशेषस्य मीमांसाविचार: क्रियते । प्रजापति: भगवान् विधातृरूपावच्छिन्न: वागादीनां कर्माणि ससृजे । सृष्टेर्भगवतो लीलत्वात् तत्रैव सृष्टिफलत्वात् अत्रात्मनेपदम् । तानि अन्योन्यानि स्पर्धन्ते स्म तत्तदभिमानि-देवा: स्पर्धां कृतवन्त इति भाव: । वाक् तदभिमानिदेवता दध्रे व्रतं धारितवती अहं वदिष्यामि । अहं द्रक्ष्यामि इति चक्षु: दध्रे, श्रोष्यामि इति श्रोत्रमेवम् अन्येन्द्रियाभिमानि-दैवतान्ययि स्वस्वकर्मकर्तुं निश्चिक्यु: । अथ मृत्यु: मरणावच्छिन्नकाल: श्रमो भूत्वा तान्यवारुन्धत् । ततस्तानि श्रान्तानि, किन्तु नाश्रमयत् प्राण:, अतस्तानि तं श्रेष्ठं मत्वा तद्रूपाणि तन्नाम्नैव व्यवह्रियन्ते शेषं सुगमम् ।।श्री:।।

अथाधिदैवदर्शनम्—

अथाधिदैवतं ज्वलिष्याम्येवाह मित्यग्निर्दध्रे तप्स्याम्यहमित्यादित्यो भाष्यामयहमिति चन्द्रमा एवमन्या देवता यथा दैवत ँ् स यथैणां प्राणाषां मध्यम: प्राण एवमेतासां देवतानां वायुर्म्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायु: सैषानस्तमिता देवता यद्वायु: ।।२।।

अग्निना ज्वलननिश्चय:, सूर्येण तपननिश्चय:, चन्द्रमसा भानिश्चय: कृत:, किन्तु तेऽस्तं गच्छन्ति, परन्तु ये़षां मध्यमो वायु: नास्तं याति प्राण इव इति भावार्थ: । ज्वलिष्यामि प्रज्वलितो भविष्यामि, भाष्यामि प्रकाशिष्ये, यथा दैवतं दैवतमनतिक्रम्य म्लोचन्ति अस्तं गच्छन्ति, वायो: प्रत्यक्षब्रह्मत्वात् तस्य म्लोचनं न सम्भवम् **त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि** इति श्रुते: ।।श्री:।।

अथ प्राणस्तुतिश्लोकं प्रस्तौति–

अथैष श्लोको भवति यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति प्राणाद्वा एष उदेति प्राणेऽस्तमेति तं देवाश्चक्रिरे धर्म ँ् स एवाद्य स उ श्व इति यद्वा एतेऽमूर्ह्यध्रियन्त तदेवाप्यद्य कुर्वन्ति । तस्मादेकमेव व्रतं चरेतप्राण्याच्चैवापान्याच्च नेन्मा पाप्मा मृत्युराप्नुवदिति यद्यु चरेत्समापिपयिषेत्तेनो एतस्यै देवताय सायुज्य ँ् सलोकतां जयति ।।२३।।

यस्मात् सूर्य उदेति यत्र चास्तं गच्छति प्राणादेव उदेति प्राणेऽस्तं याति । देवा: अग्न्यादय: तमेव धर्मव्रतं चक्रिरे अद्यापि स्व: आगामिदिनेऽपि अनुवर्तन्ते अनुवर्त्स्यन्ते । **वर्तमानसामीप्येलट्** । अत: एकमेव प्राणस्य व्रतमाचरेत् धारयेत् । एवं प्राणापानक्रियां कुर्यात् तदेवयोगशास्त्रे कुण्डलिनीजागरणप्रकार: कथ्यते । मे पापं मृत्यु: मा अप्नुवद् इति समापिपयिषेत् समाप्तिमपि इच्छेत् । तेन व्रतेन अस्यै देवतायै इमां देवतामनुकूलयितुमथवा षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । सायुज्यं साष्ट्यं सलोकतां च जयति अधिगच्छति ।।श्री:।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमाध्याये राघवकृपाभाष्ये पञ्चमब्राह्मणम् सम्पूर्णम् ।

।। श्री राघव: शन्तनोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। षष्ठब्राह्मणम् ।।

षष्ठदैवतसमानवक्त्रकं षष्ठसूनुशतकोटिसुन्दरम् ।
षष्ठवर्षधृतयज्ञसूत्रकं षष्ठ एव समुपैमि राघवम् ।।

अथ पूर्वोक्तव्याकृताव्याकृतविद्याप्रपञ्चमुपसंहरति नामरूपात्म षष्ठे त्रिभिर्मन्त्रैः—

त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म तेषां नाम्नां वागित्येत देषामुक्थमतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति । एतदेषा ँ् सामेतद्धि सर्वैर्नामभिः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्ति ।।१।।

पूर्वं वाचं ब्रह्मत्वेन व्यवस्थापयति । इदं नाम रूपं कर्म इति त्र्यवयवसमुदायः तेषां नाम्नां वाक् उक्थम्, उत्तिष्ठति यस्मात्तथाभूतम् । यतो हि वाचि एव सर्वाणि नामानि उत्तिष्ठन्ति । येषां नाम्नां तत्साम समत्वादेभिः येषां नाम्नां वागेव ब्रह्मः यतो हि वागेव इमानि नामानि बिभर्ति धारयति । बिभर्तीति ब्रह्म इति श्रुत्यैव ब्रह्मशब्दस्य व्युत्पादितात्वात् ।।श्रीः।।

अथ रूपसामान्यतया चक्षुः वर्णयति—

अथ रूपाणां चक्षुरित्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि रूपाण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषा ँ् सामैतद्धि सर्वैरूपैः सममेतदेषां ब्रह्मेतद्धि सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति ।।२।।

अथ रूपाणां मध्ये चक्षुरेव उक्थः, अस्मादेव रूपाणि उत्तिष्ठन्ति । शेषं पूर्ववत् ।।श्रीः।।

अथ कर्मसामान्येन आत्मानि सर्वेषामन्तर्भावं दर्शयति—

अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषा ँ् सामैतद्धि सर्वैः कर्मभिः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति तदेतत्त्रय ँ् सदेकयमात्मात्मो एकः सन्नेतृत्रयं तदेतदमृत ँ् सत्येनच्छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः ।।३।।

एवमेव सर्वेषां कर्मणामा आत्मा उक्थम् उत्थानस्थानम् । एवं त्रयं नामरूप कर्मणां समुदायः एकमात्मैव भवति, आत्मा एको भवन् त्रयं नामरूपकर्मात्मकं भवति । तदेव अमृतं सत् तेन नामरूपकर्मणाछन्नं नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणः छन्न आच्छादितः ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये षष्ठब्राह्मणम् ।

।। इति प्रथमाध्यायः सम्पूर्णः ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

।। प्रथमब्राह्मणम् ।।

नीलेन्दीवरवर्चसं सुमनसां मान्यं महीजाजुषं ।
मुष्णन्तं स्मितचन्द्रकान्तिकलया चेतांसि रक्षोद्विषम् ।।
सीतानेत्रचकोरचारुशशिनं कन्दर्पशोभामुषं ।
वन्दे ब्रह्म गुणाकरं रघुपतिं रामं तमालत्विषम् ।।

अथ आत्मा आत्मैव्येत्येवोपासीत, अयमात्मा ब्रह्म, आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः सोऽन्वेष्टव्यः इत्यादि श्रुतिभिवर्णितस्य ब्रह्मरूपस्यात्मन उपासनमुक्तम् । तत्र द्विधा ब्रह्मप्रतीतिः—जगदवच्छिन्नतया निरवच्छिन्नतया च । उपास्यते शुद्धं ब्रह्म हंसो यथा नीरमिश्रितं क्षीरं न पिबति तथैव तस्माद् अनुविद्धं जगत् निराकृत्य जगन्नाथोपासनं कार्यमिति श्रुतेर्हार्दम् । ननु यदि जगन्निराकरणमावश्यकम् अत एव अध्यारोपापवादन्यायसमवधाने रज्जौ सर्पभ्रम इव भ्रमात्मकं जगत् कल्पयामासुरद्वैतवादेन, तर्हि **तज्जलानीति शान्त उपासीत सर्वं खल्विदं ब्रह्म** इत्यादि श्रुत्यारम्भो मोघः ? इति चेत् न, ब्रह्म दर्शनार्था एताः सर्वत्र ब्रह्मदर्शनं कार्यं, किन्तु उपासनायामवच्छेदकानि व्यवच्छेद्यानि इति गृहाण । यथा कस्मिंश्चित् पात्रे निहितं दुग्धं पीयते किन्तु पात्रं परिहृत्य । तर्हि किमर्थं ब्रह्मदर्शनप्रतिपादनमिति चेत् स्मरणार्थमिति ब्रूमः । स्मरणं च किं प्रयोजकम् ? चेतश्शुद्धये सा च ब्रह्मोपासने नितरां उपयोगिनीति मन्मनीषितम् । शास्त्रे समदर्शनं विहितं किन्तु न समवर्तनम् । तस्मात् ब्रह्मोपासनायामविद्याशः परिहार्यः । येषां मते जीवजगन्मिथ्या तेऽध्यारोपापवादन्यायं शरणं यान्तु । अस्माकं तु श्रीरामाख्यं ब्रह्म अखण्डज्ञानस्वरूपं कोटिकोटिसूर्यविशिष्टाद्वैतं तत्र भ्रमतामसप्रसर एव नास्ति । यथोक्तं श्रीमानसे

राम सच्चिदानन्द दिनेसा नहि । तहँ मोह निसा लवलेसा ।।
सहज प्रकासरूप भगवाना नहि । तहँ पुनिविज्ञान विहाना ।।

(मानस ११६-५,६)

रूपान्तरम्—

श्रीरामः सच्चिदानन्दः दिनेशो ज्योतिरुत्तमम् ।
तत्र मोहनिशायाश्च लवलेशो न विद्यते ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशः सहजस्तस्य रूपं भगवतस्स्मृतम् ।
पुनस्तत्र न विज्ञानप्रभातमुपचर्यते ।।

रज्जुसर्पन्यायोऽपि नैव तादृशोऽत्र, रज्जौ सर्पभ्रमस्य चैतावदेव तात्पर्यम् यत् उभावपि अन्यत्रान्यत्र प्रसिद्धौ । अप्रसिद्धे प्रसिद्धस्य भ्रमो न भवति, यथा पुष्पवाटिकायां पुष्पं आकाशमवकाशे प्रसिद्धम्, परन्तु आकाशपुष्पस्य आकाशनिष्ठाधिकरणता न प्रसिद्धा । एवमेव सर्पो बिले रज्जुश्च गृहे प्रसिद्धौ किन्तु रज्जौ सर्पो न प्रसिद्धः । तथैव ब्रह्म परमे व्योम्नि संसारो जीवे, किन्तु ब्रह्मणि संसारो न प्रसिद्धः, तमेव भ्रमं निरष्यन्ति श्रुतयः । वस्तुतस्तु स्वरूपतो न जीवब्रह्मणोरभेदः सम्बन्धतस्त्वभेदं वयमपि स्वीकुर्मः । तस्माद् ब्रह्मणि समारोपितां विद्यां निरस्तुं त्रयोदशमन्त्राणां प्रपञ्चः—

अत्र गार्ग्याजातशत्र्वाख्यायिका सुगमतया विषये प्रतिपत्त्यर्था—ॐ ॥

दृप्तबालाकिर्हानूचानो गार्ग्य आस स होवाचाजातशत्रुं काश्यं ब्रह्मते ब्रवाणीति सहोवाचा जातशत्रुः सहस्रमेतस्यां वाचि दद्मो जनको जनक इति वै जना धावन्तीति ।।१।।

अत्र प्रथमे मन्त्रे गार्ग्ये विशेषणद्वयेन ब्रह्मविद्विरूद्धस्वभावं वर्णयति, ह इतिहासप्रसिद्धमेतत् कस्मिंश्चित् समये गार्ग्यः गर्गगोत्रः गार्ग्यनाम्नैव प्रसिद्धः । दृप्तबालाकिः बलाका नाम गार्ग्यस्य माता, तस्या बलाकायाः अपत्यं पुमान् बालाकिः अत्र सौमित्रिरिव बाह्वादिगणपाठात् बलाकाशब्दस्य **बाह्वादिभ्यश्च** (पा० अ० ४/१/९६) इत्यनेन ईञ् प्रत्यये बालाकिः । दृप्तश्चासौ बालाकिरिति दृप्तबालाकिः, दृप्तः अभिमानयुक्तः स एव बलकासुतः । नन्वत्र कथं समासः **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** (पा० अ० २/१/५७) उभयोरपि दृप्तबालाकिशब्दयोः गार्ग्यशब्दस्य विशेषणत्वात् ? उच्यते आकृतिगणत्वेन मयूरव्यंशकत्वात् समासः । यद् वा सौमित्रिरिव मुख्यत्वेन बालाकिशब्दे विशेष्यता दृप्तशब्दे च विशेषणतेति पूर्वेणैव समासः । अनूचानः विषयमनूद्य वक्तीति अनूचानः अनुकूलं वा वक्तीति अनूचानः अनुपूर्वं वा वक्ति इत्यनूचानः गार्ग्यः आस बभूव । यद्यपि **अस्तेर्भूः** (पा० अ० ३/४/५२) इत्यनेन आर्धधातुकविषयतायां भू आदेशे बभूवेति लौकिको प्रयोगः, तथापि **व्यत्ययो बहुलम्** (पा० अ० ३/१/८५) इत्यनेन आदेशव्यत्ययात् आसेति बभूवेत्यर्थः । अत्र दृप्तः अनूचानः विशेषणद्वयमपि ब्रह्मज्ञानविरूद्धं ज्ञानमभिमानं न सहते ।

तस्माद् गीतासु ज्ञानलक्षणपङ्क्त्याम् अमानित्वमिति सर्वप्राथम्यमुदाहृतम् । किञ्चिज्ज्ञो हि दृप्तो भवति सर्वज्ञस्तु भग्नदर्पः । दर्पो हि विकारः ज्ञानेन तस्य नाशात् । अनूचानः यो जानाति स न वक्ति, यो वक्ति स न जानाति, ब्रह्म विषय इयमेवावधारणा यथोक्तं केनश्रुतौ—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ।।

(के० उ० २-३)

अत एव प्राह नीतिशतके भर्तृहरिः—

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समवभवम् ।
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।।

यदा किञ्चित् किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं ।
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।।

इयमेव परिस्थितिरत्र गार्ग्यस्य सः काशिराजमजातशत्रुं गत्वा ह निश्चयेन उवाच । किमुवाच ? हे काशिपाते ! ते तुभ्यं ब्रह्म ब्रवाणि, अत्र प्रार्थने लोट् । प्रार्थनं नाम प्रवर्तनम्, अजातशत्रुः अन्वर्थनामा न खलु ब्रह्मज्ञस्य शत्रवो जायन्ते सर्वत्र ब्रह्मदृष्टित्वात् । यथोक्तं श्रीमानसे—

उमा जे राम चरण रत विगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध ।।

(मानस ७-११२)

रूपान्तरम्—

उमे च ये रामपदप्रसक्ताः त्यक्त्वास्मरं रोषमदौ महान्तः ।
पश्यन्ति ते राममयं हि विश्वं कथं विरुन्ध्येयुरिमे हि केन ।।

ब्रह्मन् ब्रह्मज्ञानदानामन्त्रणे तुभ्यं गोसहस्रं दद्मः । कथम् ? अत आह जनकः वेदान्तवक्ता जनकः वेदान्तश्रोता इति जना धावन्ति । भवाँस्तु जनकमिव मां संभावितवान् एतावद् पावनं ब्रह्मशब्दमुच्चार्य परमेश्वरं स्मारितवान् मया अतः सहस्रं गवां दीयते ।।श्रीः।।

अथ गार्ग्यः स्वचिकीर्षितमाह—

स हो वाच गार्ग्यो च एवासावादित्ये पुरूष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजेति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजा भवति ।।२।।

ह निश्यनेन, सः गार्ग्यः काशिराजमजातशत्रुमुवाच व्यजिज्ञपत् तत्कथनमाह– असौ प्रत्यक्षं दृश्यमानः आदित्ये सूर्याधिकरणकः यः पुरुषः अध्यात्मे चक्षुरभिमानिदैवतं एतमेव इममेवाहं ब्रह्म इत्युपासे, ब्रह्म इति भावयन् जानामि भजे च । त्वमपि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूर्यमण्डलस्थं पुरूषं चक्षुर्वर्तिनं देवं च ब्रह्मबुद्ध्या भजस्व । इति श्रुत्वा अजातशत्रुः तमुवाचगार्ग्यमेतस्मिन् आदित्यपुरुषब्रह्मणि मा मा संवदिष्ठाः मामेति शब्दद्वयेन अंगुलया निवारयति । अस्मिन्विषये त्वं मा संवदिष्ठाः संवादं मा कृथाः अहमेतं जानामि, एषः सर्वभूतानामतिष्ठाः अतिक्रम्य तिष्ठति इत्यतिष्ठाः समस्त-प्राणिनामतिशयितः । एवं सर्वेषां मूर्धा शिरोरूपः राजादित्यराजमानः इति विशेषणत्रयविशिष्टमेतमाहमुपासे । फलमाह—एवं विशेषणकं यः उपास्ते सोऽपि स इव सर्वेषामतिष्ठाः अतिक्रान्तो मूर्धा शिर इव सम्मान्यः राजा प्रकाशमयो भवति। तस्माद् इतो विशिष्टं किमपि ब्रह्म वर्णय ।।श्रीः।।

उत्कृष्टं जिज्ञासमानेनाजातशत्रुणा प्रत्याख्यातः चन्द्राधिकरणकपुरूषं ब्रह्मत्वेनोपासितुं निर्दिशति—

स होवाच गार्ग्यो य एवासौ चन्द्रे पुरूष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा बृहन्पाण्डरवासाः सोमो राजेति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्तेऽहरहर्ह सुतः प्रसुतो भवति नास्यान्नं क्षीयते ।।३।।

चन्द्रे तदवच्छिन्ने मनसि च बृहन् अतिशयेन वर्धनशीलः पाण्डरं श्वेतं वासः वस्त्रं यस्यतथाभूतः पाण्डरवासाः सोमः, सूयते सोमलतां सुधां च यस्तथाभूतः राजनाद्राजा एतद् विशेषणचतुष्टयसम्पनं त्वदुपदेशात् पूर्वत एव चन्द्राधिकरणक-पुरूषमुपासे। सुतः सूयमानत्वात् प्रसुतः प्रकृष्टौषधिजननाश्रयः तस्मात् परिहृत्य चन्द्रमण्डलावच्छिन्नं किमपि निरतिशयं ब्रूहि ।।श्रीः।।

एवं चन्द्रगतपुरूषविषयके द्वितीये ब्रह्मोपासने ज्ञातपूर्वतया प्रत्याख्याते ततोऽपूर्व-जिज्ञासायां गार्ग्यस्तृतीयं वैद्युतब्रह्मोपासनं निर्दिशति—

स होवाच गार्ग्यो य एवासौ विद्युति पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठास्तेजस्वीति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते तेजस्वी ह भवति तेजस्विनी हास्य प्रजा भवति ।।४।।

विद्युति चपलायां तदुपलक्षिततैजसपदार्थे, एवं वैद्युतब्रह्मोपासने निर्दिश्यमाने मामैतस्मिन्निति काश्यः प्रत्याचष्टे । तेजस्वी अतिशयतेजोमयः शेषं सुगमम् ।।श्रीः।।

एवं तृतीयेऽपि वैद्युद्ब्रह्मोपासने प्रत्याख्याते ततोऽप्युत्कृष्टमाह स इत्यादिना—

स होवाच गार्ग्यो य एवायमाकाशे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठाः पूर्णमप्रवर्तीति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया पशुभिर्नास्यास्माल्लोकात्प्रजोद्वर्तते ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आकाशे नभसि श्रोत्रदेशे च वर्तमानम् एतं पुरूषाकारमुपास्व। पूर्णनन्यूनातिरिक्तम् अप्रवर्ती न प्रवर्तते तच्छीलः। पूर्यते प्रजया परिपूर्णो भवति। असमाल्लोकात्। श्रीः

एवमाकाशस्थपुरूषब्रह्मणि प्रत्याख्यात उपास्यत्वेन ततो विशिष्टजिज्ञासायां गार्ग्य आह–

स हो वाच गार्ग्यो य एवायं वायौ पुरूष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेतमुपास · इति स य एवमेवमुपास्ते जिष्णुर्हा पराजिष्णुर्भव–त्यन्यतस्त्यजायी ।।६।।

वायुस्थब्रह्मोपासनायां निर्दिष्टायामजातशत्रुः प्रत्याचष्ट इन्द्रः ऐश्वर्यवान् वैकुण्ठः सकलकुण्ठारहितः, अपराजिता अजेया सेना इति विशेषणचतुष्टयसंपन्नमेतं ब्रह्मबुद्ध्या पूर्वतः उपासे। जिष्णुः जयनशीलः पराजिष्णुः आन्तरविकारेषु पराजयशीलः ।।श्रीः।।

एवं वायूपासनायां प्रतयाख्यातायां ब्रह्मधिया ततो विशिष्टं ब्रह्मत्वेनोपास्यमाह—

स होवाच गार्ग्यो य एवायमग्नौ पुरूष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा विषासहिरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते विषासहिर्ह भवति विषासहिर्हास्य प्रजा भवति ।।७।।

गार्ग्येण अग्निष्ठे पुरूषे ब्रह्मत्वेनोपास्ये निर्दिष्टे, मामेत्यादि प्रत्याचष्टाजातशत्रुः। विशेषेण सहते हूयमानानि हवींषि यः स विषासहिः। एवमेतमुपासीनः स इव भवति ।।श्रीः।।

अथ षष्ठेऽपि ब्रह्मोपासनप्रत्याख्याने सप्तमं जलसस्थपुरूषं ब्रह्मत्वेनोपास्यमाह—

स हो वाच गागर्यो य एवायमप्सु पुरूष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स हो वाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठाः प्रतिरूप इति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते प्रतिरूप ँ हैवैनमुपगच्छति नाप्रतिरूपमथो प्रतिरूपोऽस्माज्जायते ।।८।

प्रतिरूपः अनुकूलः तन्नामावच्छिन्नं जलस्थपुरूषं ब्रह्म भावनयोपासे ।।श्रीः।।

एवं सप्तमे पक्षेऽपि खण्डिते अष्टमादर्शस्थपुरूषब्रह्मोपासनमाह—

सहोवाच गार्ग्यो य एवायमादर्शे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स हो वाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा रोचिष्णुरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते रोचिष्णुर्ह भवति रोचिष्णुर्हास्य प्रजा भवत्यथो यैः संनिगच्छति सर्वा ँ स्तानतिरोचते ।।९।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदर्शो दर्पणम्, आसमन्तात् दृश्यते दर्शकस्य आकारः यस्मिन् स आदर्शः। रोचिष्णुः प्रकाशमानः, संनिगच्छति संव्यवहरति सर्वाननतिरोचते सर्वातिशयप्रकाशयुक्तो भवति ॥श्रीः॥

एवमादर्शस्थ पुरूषे ब्रह्मभावेन समुपासनीयतया प्रतिख्याते प्राणरथं पुरूषं ब्रह्मत्वेन समर्चितुं निर्दिशति—

सहोवाच गार्ग्यो य एवायं यन्तं पश्चाच्छब्दोऽनूदेत्येतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा असुरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते सर्वँ हैवास्मिंल्लोक आयुरेति नैनं पुराकालात्प्राणो जहाति ॥१०॥

गार्ग्यः उवाच-यन्तं गच्छन्तमनुलक्ष्य पश्चात् पृष्टतः यः शब्द उदेति भवति एतमेव प्राणरूपं ब्रह्म इति विभाव्य अहमुपासे। मामेति प्रतयाख्यायाजातशत्रुः प्राह—

एतमहमसुरश्नुते, सर्वं व्याप्नोतीत्यसुरूपेणोपासे सर्वमायुर्यावच्छतवर्षाणि कालात्पुरा पूर्वमकारणमृत्युना प्राणमिमं न जहाति न त्यजति ॥श्रीः॥

एवं प्राणोपासनेऽपि ब्रह्मत्वेन निराकृते दिशि तदवच्छिन्नश्रोत्रदेशे वर्तमानं पुरूषं ब्रह्मेति उपासितुं निर्दिशति—

सहोवाच गार्ग्यो य एवायं दिक्षु पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते द्वितीयवान् ह भवति नास्माद्गणश्छिद्यते ॥११॥

द्वितीयः अवयवद्वयपूरणः अनपगः नापगच्छति तथा भूतः। यत्तु अश्विनौ दिग्देवते प्राहुः प्राञ्चः तदपौराणिकमश्विनोः घ्राणस्थत्वात् ॥श्रीः॥

एवं दशमेऽपि ब्रह्मोपासनकल्पे छायामयपुरूषे ब्रह्मोपासनं निर्दिशति—

सहोवाच गार्ग्यो य एवायं छायामयः पुरूष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते सर्वँ हैवास्मिंल्लोक आयुरेति नैनं पुरा कालान्मृत्यु-रागच्छति ॥१२॥

छाया प्राणिप्रतिबिम्बः **छायासूर्यप्रियाकानितः प्रतिबिम्ब मनातपः** इत्यमरः। छायैव छायामयः मृत्युः प्राणहरः ॥श्रीः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमेकादशे पक्षेऽपि उपासितपूर्वत्वेन साधिते गार्ग्येण देहस्थपुरूषरूपाधियज्ञब्रह्म निर्दिश्यते—

सहोवाच गार्ग्यो य एवायमात्मनि पुरूष एतमेवाहं ब्रह्मोपास स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवदिष्ठा। आत्मन्वीति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्त आत्मन्वी ह भवत्यात्मन्विनी हास्य प्रजा भवति स ह तूष्णीमास गार्ग्यः ।।१३।।

अथ गार्ग्योऽजातशत्रुमुवाच आत्मनि शरीरे **आत्माशरीरे जीवे** च इति कोषात्। एवं देहेस्थिताधियज्ञरूपं पुरूषमहं ब्रह्मेति जान् उपासे। अजातशत्रुः प्रत्याख्यत् यदहमतः पूर्वमपि आत्मन्वी आत्मवान् इति विशेषणपूर्वकमुपासे तस्मान्मा संवादं कृथाः। एवं बुद्ध्या एतं य उपास्ते स आत्मन्वी प्रशस्तशरीरवान् भवति, प्रजा संततिरपि तस्य आत्मन्विनी स्वस्थशरीरवती जायते तस्माद् गार्ग्य सूर्यचन्द्रविद्युदाकाश-वाय्वग्निजलादर्शप्राणदिक्छायाशरीरस्थ पुरूषेषु द्वादशत्सु भवन्निर्दिष्टा ब्रह्मत्वेनोपासना मया चरितचरी। एतदवच्छिन्नं घटाकाशमिव अविद्योपहितं ब्रह्म इतोऽपि विलक्षणम-विद्यानुपहितं किमपि विशुद्धसमुपास्यत्वेन निर्दिश। अथ सकलेषु पक्षेषु प्रतयाख्यातेषु गार्ग्यो भग्नब्रह्मतत्वज्ञानाभिमानः तूष्णीमास मौनमाललम्बे इतो विलक्षणस्य विषयेऽकिंचिद्ज्ञत्वात् ।।श्रीः।।

अनन्तरं तूष्णीं तिष्ठति सति गार्ग्ये काशिराजः प्रतिक्रियां करोति अथ गार्ग्यस्तमुपर्सर्तुमिच्छति—

सहोवाचाजातशत्रुरेतावन्नु इ इत्येतावद्धीति नैतावता विदितं भवतीति स होवाच गार्ग्य उप त्वा यानीति ।।१४।।

मौनं गार्ग्यं भग्नदर्पं सः अजातशत्रुः उवाच पप्रच्छ नु इति प्रश्नार्थो निपातः, यद्वा एवार्थः तव पार्श्वे एतावद् एतत्परिमाणकमेव ब्रह्मपरिच्छिन्नम् उताहो इतो विलक्षणमपि ? गार्ग्यः प्रत्युवाच-एतावता द्वादशविकल्पात्मकमेव। अजातशत्रुरपृच्छत् एतावता द्वादशविकल्पपरिच्छिन्नमात्रेण न ब्रह्मविदितं भवति। यतो हि परिच्छिन्नोपासनात् त्वं मोघमेव आत्मानं ब्रह्मज्ञमभिमन्यसे स्म। अनन्तरं सः गार्ग्य आह—इतो विलक्षणं ज्ञातुं त्वा अजातशत्रुराजानम् उपयानि उपसन्नो भवानि अत्र प्रार्थिने लोट् ।।श्रीः।।

एवं प्रार्थ्यमानं प्रति अजातशत्रोः प्रतिक्रियां श्रावयति—

सहोवाचाजातशत्रु प्रतिलोमं चैतयद्ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाद्ब्रह्म मे वक्ष्यतीतिव्येवत्वा ज्ञापयिष्यामीति तं पाणावादायोत्तस्यौ तौ ह

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरूष ँ्सुप्तमाजग्मतुस्तमेतैर्नामभिरामन्त्रयांचक्रे बृहन्पाण्डरवासः सोम राजन्निति सनोत्तस्थौतं पाणिना पेषं बोधयांचकार सहोततस्थौ ।।१५।।

अजातशत्रुः गार्ग्यमुवाच—एतत् प्रतिलोमं प्रतिकूलं शास्त्रविपरीतं भविष्यति, यत् क्षत्रियम् आचार्यत्वेनाधिकृतं ब्राह्मणः, मे ब्रह्म वक्ष्यति, उपदेक्ष्यति इति उपेयात् उपसन्नो भवेत्। व्येव वि एव शब्दौ तथाप्यर्थौ अनुपसन्नमपि त्वां ब्रह्म ज्ञापयिष्यामि उपदेक्ष्यामि। अतः निवारिताचार्यभावः समिदर्पणभिक्षाहरणप्रणामादिकं, पाणौ हस्ते आदाय उत्तस्थौ, तौ सुप्तं पुरूषं जीवात्माख्यं भगवत्प्रेम समाधिसुखे शयानमाजग्मतुः। पूर्वोक्तनामार्थतो विलक्षणतां द्योतयितुं चन्द्रमसः पूर्वोक्तैश्चतुर्भिर्नामभिः अजातशत्रुराशाञ्चक्रे। हे बृहन्! हे पाण्डरवास! हे सोम! हे राजन्! जागतः आवामागतौ इति परन्तु एतन्नाम विलक्षणतया पुरूषो यदा नोदतीतरत् तदा तं पाणिना हस्तेन मर्दयित्वा बोधयाञ्चकार प्रोबोधितवान्। स पुरूषः उत्तस्थौ निद्रां त्यक्तवा उत्थितः एतेन इदमायाति यत् आत्मतत्वं सर्वतो विलक्षणम् अत एव नामभिर्बोध्यमानमपि नाबोध्यत तस्मात् भग्नसकलावरणम् परममङ्गलाचरणमशरणशरणकमलकोमलचरणं श्रीरामेव ब्रह्मोपासीत ।।श्रीः।।

पुनः अजातशत्रुः सुषुप्तिविषये विज्ञानमयस्य स्थितिं ब्रह्मज्ञानं द्रढयितुं गार्ग्यं पप्रच्छ—

सहोवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरूषःक्वैष तदाभूत्कुत एतदागादिति तदु ह न मेने गार्ग्यः ।।१६।।

अजातशत्रुरपृच्छत् गार्ग्यम्—बालाके! य एषः विज्ञानमयपुरूषः सुप्तस्त्वया दृष्टः सः कुत्र अभूत्, अर्थात् किमासीत् तस्य निवासस्थलम्। कुत आगात् कस्मात् स्थानात् आगच्छत्। अर्थात् सकलोपाधिविनिमुक्तवाद् भगवदीयपूज्यत्वाच्च एतस्य सर्वस्य निवासः। अयं न कुतश्चिदागच्छति, नवा कुत्रचित् गच्छति, **एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा** (क० उ० १-१-३-१२) इति काठके।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतो श्रुतिमंल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।

(गीता १३-१४)

इति स्मृतेः श्वेताश्वोतरश्रुतेश्च, किन्तु इदं गार्ग्यो न मेने नावबुद्धवान् ।।श्रीः।।

अथ निरुत्तरं गार्ग्यं प्रति विज्ञानात्मनः शयनस्थानं स्वपितीत्यस्य निर्वचनं च प्रतिपादयति—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहोवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते तानि यदा गृहणात्यथ हैतत्पुरूषः स्वपिति नाम तद्गृहीत एव प्राणो भवति गृहीता वाग्गृहीतं चक्षुर्गृहीतँ श्रोत्रं गृहीतं मनः ।।१७।।

अजा शत्रुः गार्ग्यमुपदिशति—अयं विज्ञानमयः पुरूषः यत्र शेते तं देशं शृणु येषां वागादीनां विज्ञानेन अयं विज्ञानवान् । एवम् एषः विज्ञानमादाय यो हृदयान्तर्देशे अवकाशरूपः आकाशः तस्मिञ्छेते येषां प्राणानां ग्रहणेन स्वपिति इति कथ्यते शयनकाले श्वासबाहुल्यात् । एवं चक्षुश्श्रोत्रमन आदि इन्द्रियाणि गृहीत्वा स्वशक्त्या तान् अभिव्याप्य चक्षुःश्रोत्रमन आदि संज्ञां लभते । जीवात्मनि गते तासां स्वस्वविषयसेवन- सामर्थ्याभावः प्रत्यक्षसिद्ध एव शरीरान्ते । यथा चाह ध्रुवः श्रीभागवते—

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरूषाय तुभ्यम् ।।

(भा० पु० ४-७-६) ।।श्रीः।।

अथ स्वप्नवृत्तिस्वरूपं निर्वक्ति—

स यत्रैतत्स्वप्नया चरति ते हास्य लोकास्तदुतेव महाराजो भवत्युतेव महाब्राह्मण उतेवोच्चावचं निगच्छति स यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा स्वे जनपदे यथाकामं परिवर्तेतैवमेवैष एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्वेशरीरे यथाकामं परिवर्तते ।।१८।।

अयं विज्ञानात्मा, स्वप्नया स्वप्नवृत्या, यत्रापि चरति तत्र ते लोकाः लोक्यन्ते भुज्यन्ते इति लोकाः कर्मफलपरिणामभूताः शुभाशुभा आविर्भवन्ति । अत एव कदाचित् शुभकर्मपरिणामतः शुभदर्शनानि अनुभूयन्ते, स्वप्ने रोदनादिकं जनानां प्रत्यक्षतो दृष्टम् । उत इव इति पदच्छेदः, स्वप्नस्य मृषात्वात् इवेति प्रयोगः । तत्रापि अयं महाराजेव प्राणादिभिस्सार्धं भवति । ब्राह्मण इव महाब्राह्मण इव सेव्यते । व्यवहारे यद्यपि महाब्राह्मणशब्दः निन्दापरको भवति, किन्तु श्रुत्या नसोऽर्थो विवक्षितः । यद्वा शुभकर्मभोगे महाराज इव, अशुभकर्मफलभोगे महाब्राह्मण इव, यथा महाब्राह्मणः अशुभदानं गृह्णाति तथायमपि, एवमुच्चावचं शुभाशुभस्वप्नं निगच्छति प्राप्नोति । स्पष्टयति यथेत्यादि—यथा महाराजः जनपदान् गृहीत्वा स्वे जनपदे नगरे तिष्ठति तथैवायं प्राणादिभिः सह शरीरे यथेच्छं सञ्चरते ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुषुप्तेः शरीरं निर्वक्ति—

अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्यश्चन वेद हिता नामनाड्यो द्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महाब्राह्मणो वाऽतिघ्नीमानन्दस्य गत्वा शयीतैवमेवैष एतच्छेते ।।१९।।

स्वप्नानन्तरं यदा जीवात्मा सुषुप्तः प्रगाढनिद्रः भवति, कस्यचनापि सम्बन्धे न वेद न जानाति, तदा हिता नाम्नीभिः द्वासप्ततिः सहस्रसंख्याभिर्नाडीभिः पुरीततिं नाडीं बुद्धिश्च सम्मिल्य कुमारमहाराजमहाब्राह्मणधर्मा, अतिघ्नीमतिशयेन हन्ति दुःखं या सा अतिघ्नी ताम् आनन्दस्य अवस्थां लब्ध्वा सुखं शयितो भवति ।।श्रीः।।

नन्वान्मनः जगत् कथमुत्पद्यते ? इति दृष्टान्तद्वयेन स्पष्टयति—

स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेःक्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येव-मेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वैसत्यं तेषामेष सत्यम् ।।२०।।

यथा ऊर्णनाभिः लूता, निजनिर्मिततन्तुना विच्चरेत् तथैव परमेश्वरः निजनिर्मित-तन्तुरूपशरीरेण विच्चरेत् । अन्तर्यामिरूपेण प्रतिशरीरं तिष्ठति इति प्रथममुदाहरणं परमेश्वरपरकम् । द्वितीयमुदाहरणं जीवात्मपरकं यथा अग्नेः सकाशात् लघवः विष्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति क्षुद्राः तथैवेमे जीवात्मानः अणुत्वधर्माणः व्युच्चरन्ति । तत्र सर्वे लोकाः सर्वे देवाः ब्रह्मादयः सर्वाणि भूतानि चराचराणि व्युच्चरन्ति प्रादुर्भवन्ति । तस्य परमात्मनः एषा उपनिषत् भगवत्प्रतिपादिका । सत्यस्य सत्यं, प्राणाः सत्यं, तेषामपि सत्यं परमात्मा **स उ प्राणस्य प्राणाः** (के० उ० १-२) इति श्रुतेः । तस्यापि सत्यं परमात्मा स च सर्वेषां सत्यनां सत्यम् । यथोक्तं श्रीभागवते दशमे देवकृतश्रीकृष्णगर्भस्तुतौ—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यं भृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ।।

(भा० पु० प० २-२६)

इति बृहदारण्यकोपनिषदि द्वितरीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये अजातशत्रुब्राह्मणं प्रथमं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ द्वितीयब्राह्मणम् ।।

अथ सोपकरणकं मध्यमप्राणं शिशुसंज्ञकं वर्णयति ।

यो ह वै शिशु॑ँ साधान॑ँ सप्रत्याधान॑ँ सस्थूण॑ँ सदामं वेद सप्त ह द्विषतो भ्रातृव्यानवरुणद्धि । अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणस्तस्येदमेवा धानमिदं प्रत्याधानं प्राणः सथूणान्नं दाम ।।१।।

यः आधानप्रत्याधानस्थूणादामभिः सहितं मध्यमं प्राणं शिशुं वेद सः द्वेषं कुर्वतः भ्रातृव्यरूपान् सप्तमनोबुद्धिसहितान् प्रतिरुणद्धि, हिनस्ति । तथा हि आधीयते जीवात्मा यस्मिन् तत् आधानं तेन सह वर्तमानं साधानं सशरीरमित्यर्थः । प्रतिपत्या आधीयन्ते विचाराः यस्मिन् तत्प्रत्याधानं शिरः, तेन सहभूतं स्थूणः अवष्टम्भः बन्धनस्थानं तेन सहितं सस्थूणं, दाम अन्नं प्राणानां धारकत्वेन बन्धनभूतत्वात्, तेन सहितम्, विदन् सर्वान् प्रत्यवायान् हन्ति ॥ श्रीः ॥

अथ तस्य नेत्रयोः सप्त अक्षितीः रेखाः व्याकरोति—

तमेताः सप्ताक्षितय उपतिष्ठन्ते तद्या इमा अक्षन्लोहिन्यो राजयस्ताभिरेन॑ँ रूद्रोऽन्वायत्तोऽथ या अक्षन्नापस्ताभिः पर्जन्यो या कनीनका तयादित्यो यत्कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्लं तेनेन्द्रोऽधरयैनं वर्तन्या पृथिव्यमन्वायत्ता द्यौरुत्तरयानास्यान्नं क्षीयते य एवं वेद ।।२।।

एताः सप्त अक्षितयः तत्तद्देवमाध्यमेन उपतिष्ठन्ते स्तुवन्ति । तथा अक्षिणि याः लोहितराजयः रक्तरेखा ताभिःरूद्रः, नीललोहितत्वात् । या आपः अश्रुबिन्दवः ताभिः पर्जन्यः मेघ उपतिष्ठते अम्बुमयत्वात् । कनीनिकया दर्शनशक्त्या सूर्यः । कृष्णया अग्निः कृष्णवर्त्मत्वात् । शुक्लया रेखया इन्द्रः । अधरवर्तन्या पक्ष्मनामिकया पृथिवी सेवते । उत्तरया द्यौः द्युलोकः । एवं जानानस्य अन्नं क्षीणं न भवति ।।श्रीः।।

अथ श्रोत्रादिप्राणैः सह शिरसि चमसस्य यज्ञपात्रस्य भावनं प्रस्तौति—

तदेष श्लोको भवति । अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम् । तस्या सत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति । अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न इतीदं तच्छिर एष ह्यर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपमिति प्राणा वै यशो विश्वरूपं प्राणानेतदाह तस्या सप्त ऋषयः सप्त तीर प्राणा वा ऋषयः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति वागष्टमी ब्रह्मणा संवित्ते ।।३।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत् एषः श्लोकः मन्त्रः भवति । चमसस्य अर्वाग्नीचैः बिलं छिद्रम् ऊर्ध्वं बुध्नः उत्थितभागः वर्तुलाकारः, तस्मिन् विश्वरूपं यशोरूपं रसः निहितं भवति । एवं सप्ततीरे सप्तऋषयः ब्रह्मण ईश्वरस्य संविदानात् ज्ञानं कुर्वती अष्ठमी वाक् तदभिमानिनी देवता, उपरितनभागस्य व्याख्यानभूतोऽयमुत्तरार्धः ।।श्रीः।।

अथ उत्तमाङ्गस्य श्रोत्रादिसप्तच्छिद्रेषु सप्तर्षीणां भावनां करोति—

इमावेव गोतमभरद्वाजावयमेव गोतमोऽयं भरद्वाज इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरिमावेव वसिष्ठकश्यपावयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद ।।४।।

एवं गोतमो दक्षिणकर्णे भरद्वाजो विश्वामित्रो दक्षिणनेत्रे, जमदग्निवामनेत्रे, वसिष्ठो दक्षिणनासापुटे कश्यपो वामनासापुटे वाण्यामत्रिः अत्तीति अत्रिः वागिन्द्रियेण रसना–नामकेन अन्नमत्ति अतः रसनायां वागिन्द्रियसंयुक्तानामत्रिभावना करणीया एवं विदन् सर्वेषामन्नानां वेत्ता भवति ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये द्वितीयब्राह्मणं समपूर्णम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीयब्राह्मणम् ।।

अथ मङ्गलाचरणम्

मन्दाकिनीवारिविधूतपादं
कृतप्रसादं विगलद्विषादम् ।
क्षणप्रभाचन्द्रघनावदातं
रामं तृतीयं कलये तृतीये ।।

अथ सत्यस्यसत्यमिति प्राणानामुपनिषदः सत्यस्य सत्यमित्युक्ताः, इदमेव विस्पष्टयितुं तृतीयब्राह्मणप्रारम्भः ।

तत्र प्रथमं ब्रह्मणो रूपद्वयं व्याचष्टे । ब्रह्म हि द्वेधा एकम्अवतारिरूपं साकेते, अपरमवताररूपं श्रीमदवधनिकेते । यद्वा एकं सर्वेषां कारणं, नेति नेति व्याख्यानविषयं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संसारातीतम् । अपरं प्रतिजीवहृदयकोशं विराजमानं काठगतपावकमिव कार्यरूपम् । उभयमपि सूक्ष्यमस्थूलचिदचिद्भ्यां विशिष्टम् । तदेव विशिष्टयोः कारणकार्यब्रह्मणोरद्वैतमिति विशिष्टाद्वैतम् । तद् वदति शास्त्रतः स्थिरीकरोतीति विशिष्टाद्वैतवादः । एष एव श्रीवैष्णवानां नः सिद्धान्तः । यथा एक एवाग्निर्द्विधा भवति तथैव भगवानपि द्विधा भाति संसारयुक्तः संसारातीतश्च । यथा काष्ठगतस्याग्नेर्नापक्षीयतेऽग्नित्वं, तथैव प्रतिजीवहृदयकोशं विराजमानस्यापि भगवतः स्वरूपसत्ता नापक्षीयते । यथोक्तं गोस्वामिपादैः—

एक दासगत देखिय एकू । पावक जिमि जुगब्रह्म विवेकू ।

(मा० १-१३-४)

एतद्रूपान्तरम्—

एको दासगतो भाति साक्षादेकश्च दृश्यते ।
यथाग्निस्तद्वदेवोह्ये स्वरूपे द्वे तु ब्रह्मणः ।।

इदमेव कारणब्रह्म कार्यब्रह्मनाम्ना व्याख्यायते । ब्रह्मणः स्वरूपद्वयम् यत्तु सगुणं संसारगतं ब्रह्म मलिनमिति व्याचक्षते मायाविनो मायावादिनः तदशास्त्रीयम् **न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः** (क० उ० २-२-११) इति श्रुतेः । ननु ब्रह्मणो द्वैरूप्ये किं विनिगमकमिति चेत् प्रत्यक्षं वेदानुवचनञ्च, तत्र प्रत्यक्षंऋषीणां श्रीवैष्णवभक्तानां श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यतुलसीदासप्रभृतीनां वेदानुवचनञ्चास्मादृशां श्रीराघवेन्द्रभृत्यभृत्यतां समीप्सताम् । शाब्दं यथा **तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च** इत्यादि श्रुतेः । **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशोऽर्जुन तिष्ठति** इत्यादि स्मृतेश्च । इदं सर्वं मनसि कृत्य तृतीयं ब्राह्मणं प्रारभ्यते —

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च ।।१।।

वाव इति निपातद्वयम् द्वयोरपि ब्रह्मरूपयोर्निश्चयार्थम् । रूप्यते बोध्यते गृह्यते वा ब्रह्म याभ्यां ते रूपे । रूपद्वयीमाह–मूर्तञ्चामूर्तमेव च, मूर्त सगुणं साकारं पृथिवीजलतेजोऽवच्छिन्नं तत्र दिव्या पृथिवी, दिव्यं जलं, दिव्यं तेजश्च । अत एव दिव्यपृथिवीत्वगुणगणविशिष्टा पृथिवीसुता भगवती सीता तत्, कं कन्दर्पकोटि–कमनीयाकिशोरमूर्तिकं भगवतः श्रीरामस्य मूर्तं रूपमविच्छिन्नं मुहूर्तं सततमुपास्ते । यत्तु मूर्तमिति मूर्छितावयवमिति व्याचष्टे गोविन्दपादविधेयः तन्न, तथा व्याख्याने नास्कित्वापत्तेः । वस्तुतस्तु येषां नेत्रं कोटिकोटिजन्मान्तरकुवासनाधूलिधूम्रं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कामिनीकटाक्षकठिनकरालकार्मुकासननाराचनिखातनिलूनभगवद्दर्शनसामर्थ्यं तत् कथं कोटिकोटिकन्दर्पकमनीयसीताभिरामरमणीयलावण्यलक्ष्मीललितनवनलिन-चरणमैथिलीहृदयाभरणसकल लोकैकशरणपरमकरूणसमरुणतरुण जगदलङ्कारसहकार कामारिहृदयानन्दाकारमूर्तिमत्सौन्दर्यसारघोर संसारभारापहार विडम्बितकोटिकोटिमार शिरीषकुसुमसुकुमार परमकृपाकूपारघोरसंसारसागरप्लवपदपल्लवस्य कलिमल-कदनशोभासदनवनजवदनदशनदीधितिनिन्दितकोटिकोटिशरदमलमृगाङ्कज्योत्स्ना निकुरम्बसमवलम्बमान कारूणीकल्लोलिनीकदम्बसदवलम्ब विलम्बितविडम्बितवाल-दिवाकरस्य भवभयतरुणतमीहरहरहृदयवापिविहारपरिकर निकरनिवीतपीत-वासस्समुच्छवलित कनककपिशच्छविकपिशोत्सङ्गकृतोपवर्हणनिखिलभुवनरचनाचातुरी-समातुरीकृतद्रुहिविमाननपरायणसकल सुषमासमर्हण चरणसरसिज विनत प्रणतसततशतशतप्रततविततदुरितनिचयनिवर्हण गुणगणबहुलतरणिवंश-गौरवविख्यातवैभवनरपतिनन्दनपङ्क्तिस्यन्दनगृहमेधिनीसमेधितवात्सल्यसुधाधाराधरीकृत श्रीनिकेतसाकेतास्वादचारूचुम्बनचुम्बितश्रीमदाननारविन्दस्य वृन्दारकवृन्दवधूवरूथ यूथिका यूथनिगुम्फितमलिनीकृतमनोमालिन्य सौमनस्यसमन्वितसौमनसमालाललित श्रीविग्रहविशुद्धबोधविग्रहस्य कृतपौलस्त्यकुलापसददुरासददशवदनसभासद निकरसकलसद्गुणश्रुतिविहित सद्धर्मसंग्रह सकल लोकमलापह सुविमलकीर्तिकौमुदीप्रमोदितकोटिकोटिकिङ्कर कपि कोलकिरातकैवर्तकौणपकैरव-समुच्छ्रितकृतान्तभीषण शौर्यधैर्यचणसकलविलक्षणक्षणदाचरक्षपणक्षणरणविचक्षणस्य सततसुजनरक्षणदक्षदक्षकरमण्डनकोदण्डरवनिरस्तसकलमायाप्रपञ्चविफलीकृत-पञ्चवाणप्रपञ्चगजासुरगजपञ्चाननपञ्चाननप्रभृतिलेखाधीशदिगीशसङ्गीत भावपरीत-परमप्रबलपराक्रम मैथिलीमनोरमपुराणपुषोत्तमसकललोकपालभूपालसतत– भग्नभक्तभवभय प्रशान्तोपशमकठिनक्लममहामोहभ्रमविभ्रमपरिश्रम निरस्तमायाकूटचित्रकूट-विहरणविचक्षणगोतमगृहिणीगृहीत पापशिलाविनाशनचुञ्चु पतितपावन-पविलक्षणमैथिलीपरमपूतनयनपङ्केरूह पक्ष्मपरिशीलितविपक्षपक्षपात कोमलकमल-चरणसमुच्छलित प्रेमपराग परागानुरागरञ्जितभरत लक्ष्मणरिपुसूदनसपत्नसैन्यसूदन-मुखकमलकलितदध्योदनहनूमत्प्रेमवापी मरालकृपालुचूडामणिभक्तवत्सलसमवाप्त समस्तकामसकललोकलोचनाभिरामनिखिलभुवनाभिरामश्रीरामस्य भग्नभवकूपं फुल्लेन्दीवरश्यामसुमनोऽभिरामरूपं द्रष्टुं पारयिष्यति ।

वस्तुतस्तु मूर्तं समुच्छ्रितावयवं मूर्छितखलकुलावयवं च । **मूर्छामोह समुच्छ्राययोः** इति धातुपाठे पाणिनीयानुशासनात् । अमूर्तम् अव्यक्तमूर्तिकं रावणादीनामिव । साम्प्रतमपि मोघमौपनिषदं मन्यमानानां हृदयकलितभगवत्वाभिमानानां श्रुति-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिद्धान्तसादिनाम् । मर्त्यं मर्त्यावतारं, तथा हि म्रियन्ते इति मृताः मनुष्याः, तेषां शिक्षणमेव मुख्यं प्रयोजनं यस्य तन्मर्त्यम् । तथा हि श्रीभागवते—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षो बधायैव न केवलं विभो ।
कुतोऽन्यथास्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ।।

(भा० पु० ५-११-५)

यत्तु मर्त्यं मरणधर्मि इति प्राह जगद्गुरुमन्यमानः शङ्कराचार्यः तत्तु पूर्णमनर्गतम् भगवद्भक्तिविमुखप्रलपितम् ।संसारगतोऽपि भगवान् न लोकदुःखेन युज्यते । सर्वलोकसाक्षिसूर्यो यथा चाक्षुषैर्दोषैर्न लिप्यते तथैव संसारं गतोऽपि परमात्मा प्राकृत इव जननमरणादि दुःखैर्नानुविद्धो भवति । तथा काठकाः पेठुः **सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः** ।(क० उ० २-२-११) इति श्रुतेः । अमृतं मरणधर्मरहितं मृताः मनुष्यास्तद्विलक्षणम् **त्रिपादस्यामृतन्दिवी** (शु० य० वे० ३१-३) । चकारः समुच्चयार्थः, पूर्वत्रैवकारस्तु तृतीयत्वयोगव्यवच्छेदार्थः । स्थितं भक्तहृदये तत्प्रणयरसनया निबद्धपदपद्मं निवृत्तगतिकम्, यत्तु स्थितमित्यस्य मलिनसत्ववत्वाद् ब्रह्म बद्धम्, इति कश्चित् कालकूटं ववाम तदप्यनर्गलम् अनुपदमेव दत्तोत्तरपदत्वात् । यच्च एति भक्तानां सम्मुखं गच्छति, इति यत् सत्रन्तरूपं, सत् अस्तीति सत् तदेव पापिनां कृते त्यत् परोक्षम्, अथवा अस्माकं वैष्णवानां कृते सत् प्रत्यक्षदर्शनक्षमं मायावादिनां परोक्षब्रह्मणां कृते त्यत् ।

अत्र सगुणनिर्गुणयोर्ब्रह्मणोः यथाक्रमं प्रत्येकं चत्वारि चत्वारि विशेषणानि । सगुणं मूर्तं मर्त्यं स्थितं यत् सत् त्यत् अत्र मूर्तं विशेष्यं शेषाणि विशेषणानि । एवमेव अमूर्तं निर्गुणं ब्रह्म, तस्यैव अमृतं स्थितं यत् त्यत् इमानि विशेषणानि । मूर्तशब्दस्य व्याख्यानं कृतपूर्वं तत्र समग्रसगुणत्वप्रतिपादकशब्दो व्याख्यातः । ननु सगुणं साकारं निगुर्णं निराकारमिति पक्षे एकत्रब्रह्मणो रूपाभावापत्तिरिति चेन्न, निर्गुणशब्दात् सर्वदा सकंलकल्याणगुणगणैः सह वर्तमानत्वं नित्यसम्बन्धेन सकलश्रेयोगुणाकरत्वं वा निर्गुणत्वं निर्लीनगुणत्वे सति निरुपमगुणत्वे सति निरतिशयगुणत्वे सति निःशेषगुणाश्रयत्वं, तस्मादमूर्तशब्देन ब्रह्मणो निराकारतेति न भ्रमितव्यं-**रूपंरूपं प्रतिरूपं बहिश्च, सर्वतः पाणिपादं तत्** युवा सुवासाः परिवीत आगाः एवमादीनां श्रुतिशतानां प्रामाण्यात्, **अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्** (गीता० ९-११) ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्य मे पार्थ रूपाणि–(गी० ११.८) **त्वत्तः कमल पत्राक्ष** –(गीता-११,२) इत्यादिस्मृतीनामनुरोधाच्च। न च मूर्तत्वस्वीकारे ब्रह्मणि पृथ्वीजलतेजोवच्छिन्नत्वापत्तिरिति वाच्यं, तेषां दिव्यत्वस्योपपादितचरत्वात्। तथा हि–अयोध्यायां मूर्तं मूर्छिन्ति रावणादयो येन तादृशं श्रीरामाख्यं ब्रह्म अमूर्तं साकेते अनूपमूर्तिकम्। यद्वा अकारो वासुदेवः मूर्च्छति यस्य सकाशात् यस्माद् वा, भगवतः सौन्दर्येण हि विष्णुरपि मूर्छितो भवति। ननु भोःकिमन्तरं विष्णुरामयोः, यदिचेद् राम एव विष्णुः। तर्हि स्वयमेव स्वं दृष्ट्वा कथं मुह्येत् ? यदि चेद् विष्ण्वतारः सः तर्हयवतारिणोऽवरत्वात्तस्य मोहकत्वानुपपत्तिः। सत्यं सावधानं श्रणु-अवतार्यपेक्षया अवतारे समधिकसौन्दर्यम्। किं मानमिति चेत् **स उ श्रेयान् भवति जायायमानः** इति श्रुतिरेव गृह्यताम्। अतएव प्राहूरसिकाः, तद्यथा–श्रीआनन्दवृन्दावनचम्प्वाम्—

रत्नस्थले जानुचरः कुमारः संक्रान्तमात्मीयमुखारविन्दम्।
आदातुकामस्तदलाभखेदान् निरीक्ष्य धात्रीवदनं रूरोद॥

एवमेव–

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परंपदं भूषणभूषणाङ्गम्॥

(भा० ३-२-१२)

भूषणभूषणाङ्ग इत्यत्र भूषणानां भूषणानि अङ्गानि यस्य तत् इति समासः। अतएव श्रीमानसेऽपि–

रूपरासिनृप अजिर विहारी नाचहिं निज प्रतिबिम्बनिहारी।

(मा० ७-७-८/८)

रूपान्तरम्—

रूपराशिर्नृपालस्य विहरन्नजिरे प्रभुः।
निजस्य प्रतिबिम्बानि नृत्यति स्म निहारयन्॥

इदमभ्युपगमवादेन व्याख्यातं तुष्यद्दुर्जनन्यायानुरोधेन। वस्तुतस्तु श्रीरामो विष्णोरपि विष्णुः महाविष्णुः। नन्वत्र व्याख्याने किंमानमिति चेत्—

चिन्मयेस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।

इतिरामतापनीयश्रुतिरेव। अथ—

तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो विभुः॥

(बा० रा० १११,१२)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महर्षिणा बाल्मीकिना शंखचक्रगदाधरः श्रीवत्सवक्षा इत्युभाभ्यां विशेषणाभ्यां श्रीरामे विष्णुत्वमेव प्रत्यपादि न महाविष्णुत्वं, यतो हि विष्णुरेव शंखचक्रगदाधरः एतल्लक्षणत्वेन तस्यैव प्रसिद्धेः, इति चेन्मैवमत्र शंखचक्रगदाः सन्त्यस्य आयुधानि इति शंखचक्रगदः अर्श आदित्वात् अच् प्रत्ययः, शंखचक्रगदावानितिभावः। शंखचक्रगद एव अः इति शंखचक्रगदाः तमेव धरति प्रतिरोमाणि यः स शंखचक्रगदाधरः। अथवा शंखचक्रगदाभिः उपलक्षितः अः विष्णुः इति, शंख चक्र गदा अ धर इति पदच्छेदत्रयम्। एवमेव श्रीः सीता, सा वसति यस्मिन् तत् श्रीवत्सं श्रीवत्सं वक्षः यस्य सः श्रीवत्स वक्षाः। नन्वत्र व्याख्याने किं मानं, नित्यश्रीः इति अग्रिमविशेषणमेव। चपलस्वभावात् विष्णोः लक्ष्म्याः नित्यत्वानापत्तेः, अर्थात् नारायणं त्यक्त्वा लक्ष्मीः कदाचित् याति, किन्तु न सीता रामं विहाय। अतः प्राह मानसे सुमन्त्रं प्रति भगवती मैथिली—

प्रभा जाई कहँ भानु बिहाई, कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई।

(मा० २.९७.६)

रूपान्तरम्—

कुत्र यातु प्रभा सौरी विहाय दिवसेश्वरम्।
कुत्र यायात् कृपासिन्धो त्यक्त्वा चन्द्रञ्च चन्द्रिका॥

तस्मात् नित्यश्रीरित्यस्य नित्याश्रीर्यस्य सः नित्यश्री इति व्याख्यानम्। ननु—

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शत्स्वस्ति तेऽस्तु परंतप॥

(वा० रा० १-७६-१७)

इति परशुरामोक्तौ श्रीरामस्य कृते मधुहन्तारमिति विशेषणप्रयोगात् प्राचेतसेन तत्र विष्णुत्वमेव साधितम्। मधुनामकदानवं विष्णुरेव हतवान् इति पुराणप्रसिद्धेः। एवमेव—

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥

(वा० रा० २-१-७)

इत्यत्राऽपि जज्ञे विष्णुः सनातनः इत्युक्त्याऽपि रामस्य विष्णुत्वमेव प्रतिपादितम्। तस्माद्भवतां विवरणं वेदसम्मितश्रीमद्रामायणवचनव्याकोपावहमिति चेन्मैवम्— मधुहन्तारमित्यत्र पदद्वयं मधुहमित्येकं तारं द्वितीयं, हमितिमकारस्य **मोऽनुस्वारः**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यनुस्वारे **वा पदान्तस्य** इत्यनेन परसवर्णे मकारपरीभूततकारसावर्णेन नकारः। एवं मधौ चैत्रमासे **मधुश्चैत्रे वसंते च मद्येपुष्परसेतथा** इति कोषात्। तस्मिन् मधौ चैत्रे जिहीते गच्छति पुत्रीभूय श्री अयोध्यायामिति मधुहः तं मधुहम्, तारयति संसारसागरात् भक्तान् यः स तारः तं तारम्। अत एव राममन्त्रं रामनाम च तारकमितिसमामनन्ति श्रुतयः।

तारकं ब्रह्म व्याचष्टे इति श्रुतेः।

तथा हि मधुहन्तारमित्यत्र नैव मधुहन्तृशब्दात् ऋदन्तलक्षणगुणतृजन्तलक्षणदीर्घ-बलेन द्वितीयैकवचनान्तता। एवमेव जज्ञे विष्णुः सनातनः इत्यत्र विष्णुशब्दस्य सनातनविशेषणेनैव महाविष्णुत्वं, सनातनो विष्णुः श्रीरामरूपेण जज्ञे न तु कल्पमात्र-पर्यवसायी तत्र सनातनत्वाभावात्, यद्वा जज्ञे विष्णुरित्यत्र जज्ञेऽविष्णुः इति पदच्छेदः अविष्णुः विष्णुभिन्नः विष्णुसदृशः सादृश्यं श्रीवत्सलाञ्छनत्वादिना भिन्नत्वं गुणानवच्छेदेन। यद्वा अकारं वासुदेवमपि वेष्टयति विवेष्टि इति अविष्णुः एवं सर्वमनवद्यम्। प्रकृते अः विष्णुः अपि मूर्छयति यस्मात् सः अमूर्तः श्रीरामः तं तथोक्तं श्रीमानसे—

हरि हितसहित राम जब जोहे। रमासमेत रमापति मोहे।।

(मा० ३१६.३)

एतद्रूपान्तरम्—

यदा व्यलोकयद्रामं हितेन सहितो हरिः।
तदा रमासमेतोऽसौ मोहं यातो रमापतिः।।

एवं मरणमेव मर्त्यं मृङ्धातोः औणादिकेतच् प्रत्यये भावे गुणे मर्त्यमिति सिध्यति, तं भक्तस्य मरणं यापयति दूरीकरोति इति मर्त्यं मर्त्याकारम्। तदयोध्यायां मानवचेष्टामनुकुर्वदमर्त्यममृतं मानवाकारमपि मानवचेष्टातोऽभिन्नं स्थितम् अयोध्यायाः राजसिंहासने विराजमानं, यत् स्मर्यमाणपदाम्बुजं सत्, एति साकेतलोकादपि धावति तथाभूतं यत्, इण् धातोः शतरि अनुबन्धलोपे इणोयण् इत्यनेन यण् प्रत्यये यदिति सिध्यति। सत् अस्ति सर्वदैवविराजते श्रीमदयोध्यायां श्रीचित्रकूटाद्रौ च तदेव सत्। यथोक्तं गोस्वामिपादेन श्रीदोहावल्याम्—

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सियलखनसमेत।
रामनाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत।। (दोहा० २)

रूपान्तरम्—

दिनेषु सर्वेषु च चित्रकूटे ससीतया सानुजरामचन्द्रः।
वसन्ददातीप्सितमर्थ्यमानः रामेतिजप्त्रे तुलसी ब्रवीति।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्यत् साकेतलोके विराजमानं भगवद्विमुखानां परोक्षभूतम् । एवम्—

चतुर्णां च चतुर्णां च प्रकाराश्च प्रकारतः ।
सगुणं निगुणं चेति ब्रह्माहं व्याकरोम्मुदे ।।

अथ मूर्तामूर्तविभागपूर्वकं मूर्तस्य रसं वर्णयति—

तदेतन्मूर्तं तदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्चैतन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतत्सत्तस्यैतस्य मूर्तस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य सत एष रसो य एष तपति सतो ह्येष रसः ।।२।।

यद् वायोः अन्तरिक्षाच्च अन्यं विलक्षणं पृथिवीजलतेजोमयं रुपरसस्पर्शार्हं तदेव मूर्तं, तदेव पार्थिवगुणतया मर्त्यं, जलगुणतया स्थितम्, आधारापेक्षित्वात् तदेव सत् अस्तित्ववत् तैजसस्त्वात् । एवं गुणत्रयविशिष्टस्य यः रसः साररूपः तेजोमयाकारः स एव आदित्ये सूर्ये उपलक्षणतया चन्द्रमस्यग्नौ च तपति । आध्यात्मिकपक्षे चक्षुषि वाचि मनासि च विजृम्भते । एषः सतः परमार्थतया तेजोरूपस्यैव परमात्मनः सारः यथोक्तं श्रीवाल्मीकीये—

तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा ।
ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ।।

(वा० रा० २-१६-११)

अथामूर्तस्य निर्गुणस्य परमात्मनः सारं वर्णयति—

अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतमेतद्यदेतत्त्य त्तस्यैतस्यामूर्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्त्यस्य ह्येष रस इत्यधिदैवतम् ।।३।।

अथ वायुः अन्तरिक्षञ्च रूपरसतेजोरहिते तन्मयत्वात् समानाधिकरणे प्रथमा, इदमेव अमृतमतिमानुषं, यत् एति इति यत् वायोरिव सर्वलोकगम् एवम् धर्मचतुष्टयसम्पन्नस्य अस्य रस एव सारः संजीवनशक्तिरूपः समस्ते मण्डले ब्राह्मण्डे व्याप्तः, अत एव रामनामनिर्वचनप्रसङ्गे श्री गोस्वामितुलसीदासैरूक्तम्—

जो आनन्दसिन्धु सुख रासी । सीकर ते त्रैलोक सुपासी ।
सोसुखधाम राम असनामा । अखिललोक दायक विश्रामा ।।

(मानस १-१९७=५-६)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतद्रूपान्तरम्—

आनन्दसिन्धुश्च सुखस्य राशिः यस्सीकरान् मोदयते त्रिलोकीम् ।
तस्याभिधानं सुखधाम रामः विश्राम दाता भुवनस्य यो वै ।।

अथाध्यात्मदृशा मूर्तामूर्तविभागं वर्णयति—

अथाध्यात्ममिदमेव मूर्तं यदन्यत्प्राणाच्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतसत्तस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य सत एष रसो यच्चक्षुः सतो ह्येष रसः ।।४।।

अथ एतदन्तरमध्यात्ममात्मनि विषये व्याख्यायते—इदं प्रत्यक्षवर्तमानं यच्च प्राणात् शरीरवायोः, यश्च हृदयात्मनि आकाशः अवकाशत्वात्, तस्माद्विलक्षणं पृथिवीजलतेजोमयं भूतत्रयात्मकम् इदमेव पूर्वोक्तविशेषणसम्पन्नम् एतस्य मूर्तस्य आकारवतः मर्त्यस्य प्राणिचेष्टस्य स्थितस्य अस्तित्वयुक्तस्य चक्षुरेव रसः सारभूतः तेजोरूपत्वात् ।

अथ सविषेषकमाध्यात्मममूर्तं व्यावृणोति—

अथामूर्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेतत्त्य त्तस्यैतस्यामूर्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरूषस्त्यस्य ह्येषः रसः ।।५।।

अथाध्यात्मं व्याख्यायतेऽमूर्तम्— अमूर्ते वाय्वाकाशे तथैव तन्मयत्वात् प्राणः वाय्वीयः हृदयान्तर्गतआकाशः इमे द्वे अमूर्ते । अवतारि सन् परमात्माऽपि वायोरिव सूक्ष्मः आकाश इव निर्लेपः यथोक्तं श्रीगीतासु—

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।।

(गीता–१३-३२)

एवम् व्यक्तमूर्तिकस्य, मर्त्यचेष्टाभिन्नस्य, गमनशीलस्य, सामान्यतः परोक्षस्य सारभूतो रसः प्राणिनो दक्षिणेऽक्षिण वर्तमानः पुरूषः उभयमयत्वात् ।।

एवं दक्षिणेऽक्षिण वर्तमानस्य पुरूषस्य स्वरूपं निर्वक्ति—

तस्य हैतस्य पुरूषस्य रूपं यथा माहारजनं वासो यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्रगोपो यथाऽग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद्विद्युत्त ँ सकृद्विद्युत्तेव ह वा अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदाथात आदेशो नेति नेति न ह्येतस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्त्यथ नामधेय ँ सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ।।६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हं निश्चयेन, तस्य पूर्वं वर्णितस्य एतस्य दक्षिणऽक्षिण वर्तमानस्य रूपं वर्णयति। जीवाः खलु त्रिगुणावच्छिन्नाः त्रेधा षोढा च भवन्ति, प्रधानसत्वाः प्रकटसत्वाः अभिभूतसत्वाः, उद्भूतरजसः अनुद्भूतरजसः उत्कटतमसः अणुत्कटतमसश्च। एवमेवात्र ब्राह्मणोऽपि षोढा रूपविभागः– भास्वरशुक्लमभास्वरशुक्लम् भास्वरपीतमभास्वरपीतम् भास्वररक्तमभस्वररक्तम् रूपविभाजनमस्य हि षोढा एषाम् षण्णां, यथाक्रममुपमानान्यूह्यानि तथाहि– महारजनं हरिद्रः तेन रक्तम् माहारजनं, शौक्ते उदाहरण– द्वयम् प्रकटितसत्वहृदये परमात्मनः पुण्डरीकमिव भास्वरकमलं यथा भास्वरशुक्लावच्छिन्नरूपं भवति। सत्वबहुलत्वेऽपि अविद्यया ईषदभिभूते आविकम् अवेः मेषस्य इदं और्णमिव अभास्वरं भवति, रक्तमपि द्वेधा येषां हृदयं रजःप्रधानत्वेऽपि सत्वेन किञ्चिदभिभूतरजस्कम् तत्र इद्रगोपस्य इव अभास्वर रक्तं, यद् हृदयं अभिभूतरजस्कम् न तत्र भास्वररक्तम् अग्नेरर्चिरिव यदन्तःकरणम् अनमिभूत तमस्कम् तत्र परमात्मोरूपम् हरिद्रारञ्जितवस्त्रामिव अभास्वरपीतं, यत् स्वान्तं अभिभूततमस्कम् तत्र विद्युत्तेव व्याप्तं भास्वरपीतमित्थमेव भगवताऽपि युगावतारक्रमे शुक्लं रक्तं पीतमिति त्रेधा रूपमेतस्मात् परं यदतिशी-यामुनजलतमाल केकिकण्ठ नवजलधरेन्दिवरमरकतमणेः सन्निभं स्यामं रूपं भगवतः तद् गुणातीतं, त्रिगुणरहित एव हृदये कथञ्चिद् ध्यातुं शक्यते। अथ प्राह अतः पञ्चभूतपरिध्यवच्छेदान्तरं नेति नेति इति श्रुतेरादेशः न इनत निपाद्वयम्, तदेव विवृणोति— अस्मात् सगुणनिर्गुणस्वरूपात् न किमपि श्रेष्ठमुपास्यं वा नास्ति। नेति नेति इति वीप्सायां द्वित्वम्। यथा काचित् कुलाङ्गना बहुषु पुरुषेषु सत्सु तत्पतिपरिचयजिज्ञासुभिः प्रतिपुरुषं प्रतिपृष्टा नेत्यङ्गुल्या सर्वत्र स्वपत्तित्वंनिरावरोति—चैत्रो न, मैत्रोन, यज्ञदत्तो न, इति सम्पूर्णान्निराकृत्य स्वपतिमुपतिष्ठमाना मौनं कलयति, इयमेपव परिस्थितिः सीमन्तिनीकुलशिरोमणेः श्रुतेः। इन्द्रादारभ्य हिरण्यगर्भर्यन्तं **नेति नेति** इति निषिद्ध्य तुरीयं परमेश्वरं प्राप्य मौनमाकलय्य तत्रैव निखिलतात्पर्यं समर्पयति। एवं सत्यस्य सत्यमिति—तस्य परमात्मनः नामधेयं यत् कृते **नेति नेति** वादिनी श्रुतिः एतस्मात् ब्रह्मणः परं अन्यत् न इत्यवध्यस्यन्ति, तर्हि किं सत्यम्? प्राणः सत्याः तेषामपि सत्यं इदं ब्रह्म मूर्तामूर्तत्वविशिष्टं ब्रह्मैव सत्यम्॥श्रीः॥

इति बृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्याये श्रीरांघवकृपाभाष्ये तृतीयब्राह्मणम् सम्पूणम्।

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ चतुर्थब्राह्मणम् ।।

मङ्गलाचरणम्

रजो मुषाणो विरजो जुषाणो लोलोप्य लोलालिकुलंदधानः ।
रामः शिशुः सर्व विपद्विरामः समे चतुर्थे रचिताच्चतुर्थः ।।

सत्यस्य सत्यमिति प्राणोपनिषदुक्ता, तत्र मूर्तस्य पृथिवीजलतेजोवच्छिन्नस्य अमूर्तस्य वाय्वन्तरिक्षात्मकस्य त्यस्य च रसत्वेन प्राण उक्तः । तस्यापि सत्यत्वेन सङ्कीर्त्यमानस्य **नेति नेतीति** परशतशतश्रुतिततिसङ्गीतमाहात्म्यपरमात्मनो नित्यमुक्तबुद्धस्वभावस्य त्रिकालाव्याहताखण्डनिरतिशयज्ञानप्रभावस्य निरतिशयगुणगणवारान्निधेः सततमतिमानुष जन्मकर्मणो ब्रह्मणः **आत्मेत्योवोपासीत आत्मेवेदमग्र आसीत्** इत्यादिश्रुति-गणसमारम्भानुरोधेन च मैत्रेयीयाज्ञवल्क्य सम्वादमुखेन च सुखेन समवगमयितुं दुर्बोधविक्लवमानसनां दुरवबोधामनिद्यां ब्रह्मविद्यां चतुर्दशमन्त्रात्मकमात्ममीमांसारूपमेतत् ब्राह्मणं प्रारभ्यते । तत्रायं प्रथमो मन्त्रः उपोद्घातरूपः ।

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्त करवाणीति ।।१।।

ह इतिहासप्रसिद्धमेतत् याज्ञवल्क्यनामको मिथिलाधिपतेः योगीराजजनकस्य राजगुरुः याज्ञवल्क्य स्मृतिरचयिता परमविवेकी महर्षिरासीत् । स च मैत्रेयीकात्यायनीनामिकाभ्याम् पत्नीभ्यां सङ्गतः । यथाशास्त्रं भुञ्जानश्च धर्मार्थकामान् तेभ्यो व्यरज्जत । विभाविता च संसारस्यासारता गार्हस्थस्य क्रूरधर्मता भोगेषु लोलुपता च तस्य मैत्रेयी कात्यायनी च ये द्वे जाये, तयोः कात्यायनी कात्यायन गोत्रजा ब्राह्मणसुता गृहासक्ता अर्थैकचक्षुरासीत्, परन्तु मैत्रेयी मित्रायाः मितात् सीमातः सावच्छेदकपदार्थात् त्रायते या तथाभूता । सीमितात् संसारात् त्रात्वा परमात्माभिमुखीं सन्ततिं कर्तुं कृताद्यमा । मित्रा नाम्नी काचिद् ब्राह्मणवधूः ऋषिपत्नी, एतस्या एव पुत्रो भगवान् कौषारविः, श्रीकृष्णद्वैपायनसखः परमभागवतशिखामणिः, येन सह भगवताप्रेरितेनोद्धवेन सम्प्रेरितस्य महात्मनो विदुरस्य स्कन्धद्वयपर्यवसायी विच्छिन्नसकलसंशयविवादविषादः सुखदसंवादः श्रीभागवते प्रसिद्धः । तस्या एव प्रकृतिपवित्राया मित्रायाः पुत्रीयं मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी परमविदुषी याज्ञवल्क्यस्य महर्षेरन्तरङ्गा धर्मपत्नी । चतुर्थाश्रमं प्रविविक्षुर्जातनिर्वेदो भगवान् याज्ञवल्क्य मैत्रेयीति नाम्ना सम्बोधयति मैत्रेयि इति । ननु सम्बोधने **दूराद्धूते च** (पा० अ० ८/२/८४) इति सूत्रेण प्लुते **प्लुतप्रगृह्याअचिनित्यम्** (पा० अ० ६/१/१२५) इत्यनेन प्रकृतिभावे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैत्रेयीति कथं दीर्घः ? इति चेत् समयकृपृष्टं **दूराद्धूते च** इति सूत्रेण सुदूरवर्तिनः सम्बोधने प्रयुक्तवाक्यस्य टेः प्लुतो विधीयते । मैत्रेयी तु मनसा वचसा कर्मणा याज्ञवल्क्यस्य निकटतमा प्रियतमा ततो न दूरवर्तिनी तस्मादुक्तसूत्रप्रवृत्यमावे मैत्रेयीशब्दघटकेकारस्य इति घटकेकारेण दीर्घः सुसङ्गत एव । अथ "आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च, श्रेयष्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः" इति स्वस्यैव स्मृतेः पत्नीनामोच्चारणनिषेधरूपानुशाशनं मैत्रेयि इति सम्बोध्य स्वयमेव कथमतिचक्राम याज्ञवल्क्यः श्रेयष्कामोऽपि ? इति चेदुच्यते नातिचरणमनुशाशनस्य, यतो हि याज्ञवल्क्यस्तुरीयाश्रमं प्रविविक्षुः स्वीचिकीर्षुश्च भिक्षुधर्मम् शितधारेण वैराग्यकुठांरेण संञ्छिन्नसंसारसम्बन्धपादपमूलो विगतशूलः समधिजिगमिषितः भगवतपादमूलोऽनुकूला मिदानीं मनसा विच्छिन्नपत्नीभावनां विभावितब्रह्मज्ञानसम्भावनां मित्रभावेन मेत्रेयि इति सम्बोधयति । मित्रायाः दुहिता सती त्वमपि मम कार्ये परिव्रज्यारूपे मित्रमिव सह योक्ष्यसे इति कृत्वा मेत्रेयीनाम्ना सम्बोधयति । अथवा मातृसम्बन्धसूचकतया मेत्रेयीति गौडं नाम, मुख्यं तस्याः किञ्चिदपरं भवेत् जानक्याः सीता इव कुन्त्याः पृथा इव च । श्रेयष्कामो न गृह्णीयादित्यनुशाशनं तु मुख्ये नाम्नि प्रवर्त्तते न गौडे इति सर्वमनवद्यम् । ह चतुर्थाश्रमस्वीकरणं निश्चित्य याज्ञवल्क्यः मैत्रेयि इति आकारयति । विवक्षितमाह- अरे सम्बोधननिपातोऽयं हे ए इत्यादिवत अथ **एक क्रिया ह्यर्थकरी प्रसिद्धा** इति न्यायेन अरे इत्येव सम्बोधनमभिमतम् याज्ञवल्क्यस्य । एकं तु अरे इति सम्बोधनमापरं भगवतस्मरणसूचकम् । तथा हि अम् वासुदेवम् राति ददाति इत्यरा तत् सम्बुद्धौ हे अरे । अहमेतावत् कालं युवाभ्यां समं निषेव्य गृहस्थाश्रमम् विगतसम्भ्रमः अस्मात् स्थानात् गृहात् युवाभ्यामध्युषितात् वा निश्चयेन उद्‌यास्यन् अस्मि निष्क्रम्य उपरि गमिष्यन् अस्मि । हन्त इति हर्षे आपृच्छे त्वाम्, एवं ते कात्यायिन्या सह यः सपत्नीसम्बन्धः यश्च युवाभ्यां सह मम दाम्पत्यभावः तस्य अन्तं करणाणि । युवयोर्निजार्जितधनं विभज्य इति गन्तुमनुमतिं स्वपतिमापृच्छमानं निरभिमानं स्वपति वीच्य पत्नी प्राह—

साहोवाच मैत्रेयी । यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितँ स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति ।। २ ।।

पत्या दित्स्यमानाल्लौकिकधनान्निर्विद्यमाना जिघृक्षमांणा च ततोऽलौकिकं ज्ञानधनं सा मेत्रेयी उवाच, प्रत्युदति इतरत् भगो हे भगवन् ! नु वितर्के, यत् किञ्चित्वेन परिचीयमाना मे मम कृते सुलभा सर्वा समुद्रमेखला पृथ्वी, वित्तेन पूर्णा, यत् इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चेत् मे मह्यं मत् सम्बधिनी वा स्यात्, किं तेन धनधान्यपूर्णपृथिवी लाभेन, अहं कथममृता स्याम् केन प्रकारेण मरणधर्मराहित्यं समधिगच्छेयम् इति पत्न्या पृष्टः याज्ञवल्कय उवाच—न एतावद् धनेन कोऽपि नामृतो भवति। उपकरणं सौविध्यसाधनं तद्वतां समस्तभोग्यसामग्रीवतां भौतिकवादिनां जीवितं चाकचिक्यमयं, तथा ते तवाऽपि जीवितं जीवनसञ्चालनमिति भावः वित्तेन लौकिकधनेन तु अमृतत्वस्य मरणधर्मभिन्नत्वस्य आशैव नास्ति। अतः केनचित् भूतार्थमुक्तम्—

दुरीश्वरद्वारि बहिर्वितर्दिका
दुराशिकार्ये विहितोऽयमञ्जलिः ।
यदब्जनाभं निरपायमस्ति मे
घनञ्जयस्यन्दनभूषणं धनम् ।।

मैत्रेयी याज्ञवल्केन दित्स्यस्मानं धनं प्रत्याख्याय अमृतत्वप्राप्तिसाधनं पृच्छति सेत्यादिना—

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहीति ।।।३।।

निश्चित्य सा मैत्रेयी पतिं प्रत्युवाच—येन भवंता दित्स्यमानेन धनेन अहं आमृता मरणधर्मवर्जिता न स्यां, तेन क्षणभङ्गुरेण धनेन अहं किं कुर्यां किं विदध्याम् ? हे भगवन् ! मह्यं धनं न देहि, ममेप्सितस्यामृतत्वस्य प्राप्तये यदेव किमपि विलक्षणं साधनं भवान् वेद मे मह्यं श्रद्धालवे पृच्छन्त्यै ब्रूहि समुपदिश ।।श्रीः।।

पत्न्याः ब्रह्मजिज्ञासां निरीक्ष्य परम प्रसन्न हृदयः याज्ञवल्कयः तां सावधानां करोति—

सहोवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे नः सती प्रियं भाषस एह्यास्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ।।४।।

बत प्रसन्नतायाम् अरे ! त्वं पूर्वमपि नः अस्माकं गृहस्थाश्रमे कात्यायिन्यपेक्षया समधिकं प्रिया आसीः। साम्प्रतमपि तुरीयाश्रमं प्रविविक्षवे मित्रीकरिष्यमाणे भिक्षवे प्रियं भाषसे, अत्यन्तमनुरूपं भाषासे, एहि मम समीपमागच्छ, आस्व उपविश, आसने ते तुभ्यं शिष्यायै अमृतत्वप्राप्तिसाधनं व्याख्यास्यामि, किन्तु व्याख्यानं मा विस्मार्षीः व्याचक्षाणस्य अमृतत्वप्राप्तिसाधनं व्याख्यानविषयीकुर्वतो मे याज्ञवल्क्यस्य ब्रह्मोपदेशं निदिध्यासस्व इति इत्थं समाश्वासयति ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ याज्ञवल्क्यः सर्वेषां प्रियत्वमात्मप्रियत्वमूलमिति पतिजायापुत्रवित्तब्रह्मक्षत्रलोकदेवभूतसर्वे तेषां दशानां प्रियत्वं दशमुखनिकन्दने दशरथनन्दने श्रीरामब्रह्मणि पर्यवसतिइमाः दशैव ममताः जीवं बध्नन्त्यः दशमस्यास्य दशरथनन्दनस्य ब्रह्मणः भजने प्रत्यवायं समुत्पादयन्ति । यथोक्तं श्रीविभीषणेन श्रीरघुकुलभूषणं प्रति —

जननी जनक बन्धुसुत दारा । तन धन भवन सुहृद परिवारा ।
सबकै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहिं बाँधि बर छोरी ।।

(मा. ५/४८/४-५)

रूपान्तरम् -

मातापित्रोर्बन्धुसुताङ्गनानां देहस्वगेहात्मसुहृत्स्वकानाम् ।
ममत्वसूत्रोद्धादिव्यरज्वा बधान पादे मम मानसत्वम् ।।

तथाहि प्रकृतम् —

स हो वाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवन्ति । न्न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं भवति । न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रियाः भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद सर्वं विदितम् ।।५।।

याज्ञवल्क्यः प्राहः — अरे मैत्रेयि ! वा निश्चयेन पत्युः भुर्तः कामाय स नः प्रियो भवति एवमेव निजकामाय सः प्रियो न भवति । आत्मनः पत्न्याः हृदये वर्तमानस्य आत्मनः जीवात्मनः कामायैव पतिः प्रियो भवति । आत्मनि गते ए स एव पतिः क्षणमपि प्रियतमया स्थापयितुं न शक्यते गृहे । एवमेव जाया पत्नी, जायायै अत्र षष्ठयर्थे चतुर्थी जाया न प्रिया भवति, आत्मनः कामाय सा प्रिया भवति, अर्थात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जनाः यैः सह प्रेम कुर्वन्ति तैः सह कमपि स्वार्थं साधयति, अत एव पुत्रादिकमित्थमूह्यम्। इत्थम् आत्मनः कामाय परितोषाय सर्वं जडचेतनात्मकं प्रियं भवति, सर्वं खलु आत्मनः कामाय, अर्थात् आत्मनि सति सर्वेषाम् प्रियता आत्ममूला। हे मैत्रेयि। एवं निरतिशयप्रीतिभाजनम् आत्मा स एव आत्मा परमप्रीतिभाजनतया निर्दिष्टः। आत्मा वा अरे दृष्टव्यः, अरे मैत्रेयि ! वै निश्चयेन आत्मा परमात्मा द्रष्टव्यः साक्षात् करणीयः अत्र विध्यर्थे दृशेः कर्मणि तव्यत्, केनाप्युपायेन आत्मा द्रष्टव्यः निजसेव्यत्वेन साक्षात् करणीयः। पूर्वं विधेयं द्रष्टव्यत्वमुक्त्वा पुनस्तद्दर्शनोपायानाह त्रीन्—स आत्मा श्रोतव्यः श्रुति वाक्यैः, **प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, तत्वमसि श्वेतकेतो ! अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलानीति शान्त उपासीत, आत्मेत्येव उपासीत, आत्मैव वा दइमग्र आसीत्** इत्यादि श्रुति वाक्यैः परमात्मजीवात्मनोः सम्बन्धनिबन्धनैक्य-निश्चयपुरःसरं श्रोतव्यः। नन्वात्मतत्वमतिदुरूहत्वात् कथं श्रवणविषयतां गच्छेत् तथा च कठोननिषदि यमः प्राह न चिकेतसम् —

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो य न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।।
(क० उ० १.२.७)

एवं भगवान्छ्रीकृष्णोऽपि श्रीगीताषु गहनविषयतामात्मनः निरूपयति। यथा—

आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेवमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।
(गी० २.२९)

अत आह मन्तव्यः वारं वारं मननविषयः करणीयः, अनन्तरं निदिध्यासितव्यः नितरां ध्यायति निध्यायति निध्यातुमिच्छति इति निदिध्यासति निदिध्यासेत् इति निदिध्यासितव्यः सन्नन्तात् ध्यैधातोः विध्यर्थे कर्मणि तव्यत् प्रत्ययः। एवं श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः निरन्तरध्यानेच्छाविषयः करणीयः, तदनु द्रष्टव्यः श्रवणमनननिदिध्यासनैः आत्मतत्वसाक्षात्कारः करणीय इति श्रौतार्थः। हे मैत्रेयि। आत्मनः दर्शनेन परमात्मसाक्षात्कारेण, श्रवणेन वेदान्तानां सादरमाकर्णनेन, मत्या मननेन विज्ञानेन, वस्तुतः निदिध्यासितव्यः इत्यंत्र सनर्धो न विवक्षितः इतः पूर्वयोः श्रोतव्यमन्तव्य शब्दयोः शुद्धधातुत्वश्रवणत् ध्यान विषमतायामेव करणीयताविधानेनालम्। तल् किमुतेक्षापर्यन्तं परिधाव्य एवात्मनः श्रवणमनननिदिध्यासनैः सर्वतमेतत् विदितम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ ब्रह्मतो व्यतिरिक्तवेदिनः सर्वं जगच्छत्रुवत् व्यवहरतीति निर्दिशति —

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं पराढाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्त्राम्तनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीदँ सर्वं यदयमात्मा ।।६।।

अत्र परादात् इत्यस्य परादद्यात् इतिमूलरूपं पराभवेत् इत्यर्थः । परादुः इत्यस्य परादद्युः परभवेयुरितिभावः । तं ब्रह्म ब्राह्मणः परादात् पराभवेदेव । यः परमात्मनः अन्यत्र अन्यस्मिन्नधिकरणे ब्रह्मवेद, यत्तु गोविन्दपादशिष्यः अन्यत्र इत्यस्य ब्रह्मान्यत्वेन ततः इतरत् इति व्यावचष्टे तत् पूर्णनर्गलं, सप्तम्यास्त्रल् इत्यनेन अधिकरण एव त्रलोविधानात्। एवं यदि कोऽपि ब्रह्मक्षत्रोपलक्षितान् चतुर्वर्णान्, लोकान् देवान् सर्वाणि भूतानि अनात्मधिकरणकानि वेद तमिमानि पराभवन्ति यतो हि सर्वेषामेषाम् अयमात्मैव अधिकरणम् । ननु इमानि इमे इदं सर्वम् इति सर्वत्र प्रथमा सा च आत्मा इति समानाधिकरणविभक्तिः ? इति चेत् तात्स्थ्यात् प्रथमा, यद्वा शरीरशरीरिभावेन सामानधिरणण्यात् प्रथमा मञ्चाः क्रोशन्ति इति वत्, यद्वा अयमात्मा इत्यत्र सप्तम्यर्थे व्यत्ययात् प्रथमा । सर्वाणि परादुरित्यस्यायमायशयः यत् प्राणिनामात्मनोधिकरणकत्व विस्मृतौ भगवत्स्मृतिव्याधातः तस्मिन् सति भगवदीयापत्तिः तथासति समस्तजगतः प्रतिकूलता । यथा जयन्तस्य श्रीरामविमुखस्य तथा च मानसकाराः आमनन्ति—

मातुमृत्युपितुसमनसमाना, सुधा होइ विष सुनु हरिजाना ।
मित्र करइ सतरिपु कैकरनी, ताकहं बिबुधनदी वैतरणी ।।
सब अगता हि अनलहुं ते ताता, जोरघुबीर विमुख सुनु भ्राता ।

(मा० ३.२.६.७.८.)

एतद्रूपान्तरम् —

मृतिर्माता तातो भवति शमनस्तस्य गरलं ।
सुधा स्यात् पक्षीशः स्वजनसुहृदो दुर्हृद इव ।।
तिरस्कुर्वाणा तं विबुधतटिनीवैतरणिका ।
जगद्वह्नि क्लेशो रघुपतिपदम्भोजविमुखे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ शङ्खदन्दुभि वीणानिनाददृष्टान्तेन ब्रह्मणि गृहीते सर्वग्रहणं समुपपादयति —

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ।।७।।

स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ।।८।।

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ।।९।।

ताड्यमानस्य दुन्दुभेः तद्ग्रहणेनैव तदाघातो गृह्यते बाह्याशब्दग्रहणनिरपेक्षः एवं शङ्खवीणयोरपिदृष्टान्ते शंखध्मस्य तद्ध्वानेः शेषं सुगमम् ।।श्रीः।।

अथ आर्द्रेन्धनाग्निवह्निस्फुलिङ्गोदाहरणेन ऋग्वेदादीनामपि परमात्मन एव समुद्भवं निर्णयति —

स यथाऽऽर्द्रैन्धाग्नेरभ्याहि तात्पृथ धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।।१०।।

अरे मैत्रेयि ! यथा आर्द्रेन्धनेन सुंयतादग्नेः धूमाः स्फुलिङ्गाश्चरन्ति । तथैवैतस्य महतः अभूतस्य भूतातीतस्य निःश्वसतिमिव चत्वारोवेदाः, इतिहासपुराणं पंचमो वेदः विद्याः चतुर्दश, उपनिषदः वेदान्तदर्शनं सूत्राणि सांख्यादि पाणिनीयाष्टाध्यायी विश्रामाणि अनुव्याख्यानानि पातन्जलमहाभाष्यादि श्रीराघवकृपाभाष्यपर्यन्तानि । इदं सर्वं वाङ्मयं अस्य महतः भूतातीतस्य प्रभोः श्रीरामस्य निःश्वसितभूतम् । यथोक्तं श्रीमानसे—

जाकी सहज श्वाँस श्रुति चारी, सो हरि ढयह कौतुक भारी ।

(मा. १.२०४.५)

रुपान्तरम् —

चतस्त्रः श्रुतयो यस्य निःश्वासाः सहजाः प्रभोः ।
स एव गुरुगेहेषु पठत्येतद्धिकौतुकम् ।।

भूयः समस्तानामिइन्द्रियविषयशाणां ततदिन्द्रियेषु एकायनत्वं निरूप्य तेषां भगवति समाहारं निर्दिशति—

स या सर्वासामपाँ् समुद्र एकायनमेवँ् सर्वेषाँ् स्पर्शानां त्वगे कायनमेवँ् सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनमेवँ् सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनमेव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ँ सर्वेषां ँ रसानां जिह्वैकायनमेव ँ सर्वेषां ँ रूपाणां चक्षुरेकायनमेव ँ सर्वेषां ँ शब्दाना ँ श्रोत्रमेकायनमेव ँ सर्वेषा ँ संकल्पानां मन एकायनमेव ँ सर्वासां विद्याना ँ हृदयमेकायन्मेव ँ सर्वेषां कर्मणा ँ हस्तावेकायमेव ँ सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमेव ँ सर्वेषां विसर्गाणां पाथुरेकायनमेव ँ सर्वेषामध्वानां पादावेकायनमेव ँ सर्वेषां वेदानां वागेकायतम् ।।११।।

अपां जलानां एकायनम् एकमात्रमाधारः, यथा शब्दस्पर्शरूपरसगन्धादानसम्प्रदान विसर्गानन्दवाचां चक्षुरादीनि एकायनानि सर्वं परमात्मनि एकायनं भवति। प्रकरणमुपसंहरन् जलबुद्बुदोदाहरणेन सर्वेषां जीवजगतां ब्रह्मण एव अभिन्नोपादाननिमित्तकारणतां निर्वक्ति —

स यथा सैध्यवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत न हास्योद्ग्रहणायेव स्याद्यतो यतस्त्वाददीतलवणमेवैवं वा अर इदं महद्भूतमनन्तपारं विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवाऽनुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ।।१२।।

अरे स्यन्दन्त इति सिन्धवः जलानि, तेषां विकारः सैन्धवः, खिलः खण्डः स एव खिल्यः स्वार्थे यत् सैन्धवश्चासौ खिल्य इति सैन्धवखिल्यः, उदके जले, प्रास्तः उदकं जलमेव विलीयते तद्ग्रहणाय किमपि नावशिष्यते। उदाहरणमेतत् जीवात्मनो ब्रह्मणि विलयस्य। अथ लवणजलनिक्षेपोदाहरणं ब्रह्ममयत्वस्य यथा जलेनिक्षिप्तं लवणं यतो यतो गृह्णीयात् सर्वं लवणमेव एवमनन्तं नाशरहितमपारं परिच्छेदरहितं महद्भूतं महतोऽव्याकृतप्रकृतेः योगमायायाः भूतमाधररुपं सीताभिधानं किमपि यस्मिस्तथा भूतं सर्वं विज्ञानधन एव विज्ञानस्य घनः घनीभूतरसविशेषः। अथवा विज्ञानमपि हन्यते यस्मिन् स विज्ञानघनः। कोऽपि निरतिशयरसरूपः रसो वै सः इतिश्रुतेः। स एव परमात्मा अन्तर्यामी एतेभ्यः भूतेभ्यः समुत्थाय तानि अनु अत्र अनुर्लक्षणे इति द्वितीया, तेषु स्वस्मिन् विलीनेषु स्वयमेव परमे व्योमनि साकेतविहारिणि श्रीरामएवांशिनि विनश्यति विलीयते। अरे तस्य प्रेत्यसंज्ञा न भवति, तस्य संसारसत्वे संसाराभावेऽपि च समानरूपेणसत्वात् इति ब्रवीमि सिद्धान्तयामि। न तस्य प्रेत्यसंज्ञास्ति इति वचनेन श्रीरामाख्यस्य ब्रह्मणः स्वर्गारोहणविडम्बनाकल्पनं परास्तम्।

इति इत्थं निश्चित्य याज्ञवल्क्यः उवाच मैत्रेयीं प्रतिसिद्धान्तयांबभूव। यथा सैन्धवखण्डः जले निक्षिप्तः जलमयो भवति यथा च जले निक्षिप्तं लवणं लवणमेव तथैव चिदचिन्मयं जगदिदं परमात्मविलीनं व्यक्तनामरूपकं केवलः विज्ञानघनः परमात्मैव संज्ञायते, परमात्मानं प्रेम्य प्राकर्षेण प्राप्य जीवात्मनः कापि संसारसम्बन्धिनी संज्ञा न भवति स तु भवगत् किंकरमात्रमवशिष्यते।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न प्रेत्यसंज्ञास्ति इतिवाक्यं श्रुत्वा संदिहाना मैत्रेयी पप्रच्छ —

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवनामूमुहन्न प्रेत्यसंज्ञाऽस्तीति स होवा च याज्ञवल्क्यो न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा अरं इदं विज्ञानाय ।।१३।।

सा मैत्रेयी ह इति आश्चर्यार्थो निपातः, न प्रेत्य

संज्ञास्ति, मरणादनन्तरं काऽपि संज्ञा न भवति इति वाक्येन तु भगवान् परमपूज्यप्राणपतिः मा अमूमुहत् मोहितवानस्ति, किं जीवस्य पुनर्जन्म न भवति ? उत्तरयति याज्ञवल्क्यः—अरे मैत्रेयि अहं मोहं न ब्रवीमि त्वं प्रकरणमेव न ज्ञातवती । **न प्रेत्य संज्ञास्ति** एतस्य इदं तात्पर्यं यत् शरीरावच्छिन्नः सन् परमात्मा अन्तर्यामी अधियज्ञः हिरण्यगर्भः सर्वज्ञः इत्यादिं संज्ञां लभते, किन्तु प्रलये शरीरेषु लयं गतेषु अंशिनं प्रेत्य, साकेताधीशं ब्रह्म तस्य कार्यब्रह्मणः अन्तर्याम्यादिसंज्ञा नास्ति । अतः इदं विज्ञानाय अलं पर्याप्तं, सशरीरस्य जीवात्मनः चैत्र मैत्रादि संज्ञा तत्तच्छरीरानुरोधिनी, परमात्मानं प्राप्य निरस्तनामरूपस्य तस्य काऽपि जीवात्मातिरिक्ता संज्ञा न भवति इत्येव हार्दम् । अथवा अत्र **नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाअलं वषड्योगाच्च** इत्येन चतुर्थी ।।श्रीः।।

अथ प्रकरणमुपसंहरति जीवात्मब्रह्मणोःसंबन्धनिबन्धनाया एकतायाः—

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितरं इतरं पश्यति तदितर इतरँ् श्रृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कंजिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कँ् श्रृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत् केन कं मन्वीत तत् केन कं विजानीयाद्येनेदँ् सर्वं विजानाति तं केन विजानीऽयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति ।।१४।।

यत्र यस्मिन् काले द्वैतमिव, मोहवशात् जीवात्मनः परमेश्वरात् पृथक्त्वं स्वतन्त्र सत्ता भाष्यते, तत्र भोक्तृभोग्यभावस्य पार्थक्यं प्रतिभाति, तदा इतरः इतरं जिघ्रति पश्यति श्रुणोति इत्यादि किन्तु यत्र सायुज्यदृष्ट्या सर्वमात्मैव अभूत्, गताःविषयाः गतानीन्द्रियाणि, अविनाशित्वात् अवशिष्टं जीवात्मतत्वं सर्वविषयातीतं बुभुक्षामुमुक्षाभ्यां मुक्तं तत्र केन कं विजिघ्रे विषययीभावस्य समाप्तत्वात् । अरे विज्ञातारं विज्ञातभगवत् स्वरुपं विज्ञातार्थपंचकमहात्म्यञ्च केनोपकरणेन विजानीयात् । ।।श्रीः।।

इति वृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्याये श्रीराघव कृपाभाष्ये चतुर्थं ब्राह्मणं संपूर्णम् ।

।। राघवः शन्तनोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। पंचमब्राह्मणम् ।।

मैथिलीपंचमं पञ्चबाणकोटिसमप्रभम् ।
पञ्चमे ब्राह्मणे नौमि रामं ब्रह्मसपंचमम् ।।

अथ सत्यस्य सत्यमिति या प्रोक्तोपनिषत् तस्या एव विवरणभूतं सकलकार्यकारण-भावजातं मधुत्वेन निरूपितं, तदेव मधुसूदने भगवति समजिहीर्षुः प्रस्तौति मधुविद्याब्राह्मणम्। अत्रमधुशब्दस्य त्रेधा तात्पर्यमवगन्तुं शक्यते मधुसंजीवनं माधुर्यसेवधि द्वितीयं मधुसारः तृतीयं मधु मिश्रितं सूक्ष्मरूपं विभक्तुमशक्यम् —

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो मश्चायमध्यात्मँ्शरीरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेवस योऽममात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ्सर्वम् ।।१।।

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मधु कारणत्वात् सारत्वात् रसत्वात् हर्षावहत्वात्, अस्यै पृथिव्यै अत्र षष्ठयर्थे चतुर्थी, एतस्या सम्पूर्णानि भूतानि मधुकार्यभूतानि मिश्रितरूपाणि। अस्यां यः तेजोमयः अमृतमयः अत्र. स्वरूपे मयट्, यश्च आध्ययात्मिकः शरीरे विराजमानः तेजोरूपः रसरूपश्च अमृतमयः स एव आत्मा स एव अमृतं रसरूपं परमानन्दमयं तदेव ब्रह्म बिभर्तीति ब्रह्म। इदं ज्ञात्वा त्वममृता भविष्यसि इति याज्ञवल्क्यस्य तात्पर्यं मैत्रेयीं प्रति एवमेव चतुर्दश विषयेषु मधु भावना।

भूमिर्मधु हि भूतानां भूतानि च भुवो मधुम् ।
तन्नातेजोऽमृतश्चात्मा शारीरो ब्रह्मचामृतम् ।।श्रीः।।

अथ जले मधुभावनाम् —

इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामपाँ्सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्वप्सु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मँ्रेतसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ्सर्वम् ।।२।।

एवमापः जलानि प्राणिनां मधुः, रेतसः अयम् रैतसः शुक्र सम्बधीति भावः।

जलं मधु हि भूतानां भूतानि पयसो मधु ।
तत्स्थो नरः स एवात्मा अमृतं ब्रह्म वै द्विधा ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथाग्नौ मधुभावनम् —

अयमग्निः सर्वेषां भूतानां मध्वस्याग्नेः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नग्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं वाङ्मयस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ् सर्वम् ।।३।।

अग्नौ पुरुषः वैश्वानरः, शरीरे वाङ्मयः वाचि वर्तमानत्वात् ।

अग्निर्मधुर्हि भूतानां भूतनि तस्य वै मधु ।
तत्स्थो वैश्वानरो देवो वाङ्मयात्मामृतं बृहत् ।।श्रीः।।

अथ वायोः मधुभावनम्—

अयं वायुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्यवायोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन् वायौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं प्राणस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ् सर्वम् ।।४।।

अस्मिन् पुरूषः मरूत् देवतारूपः शरीरे प्राणरूपः ।

वायोर्मधु हि भूतानां भूतानि रच भुवो मधुः ।
तच्छरीरे च पवनः असुरात्माऽमृतं बृहत् ।।श्री।।

अथादित्यस्य मधुभावनाम्—

अयमादित्यः सर्वेषां भूतानां मध्वस्यादित्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरूषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरूषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मदँ् सर्वम् ।।५।।

चक्षुषोऽयं चाक्षुषः, न दियते खण्ड्यते इति अदितिर्ब्रह्म तस्याऽपत्यं पुमान् आदित्यः ।

आदित्यो मधु भूतानां भूतानि तस्य वै मधुः ।
तत्स्थो चाक्षुष एवात्मा अमृतं ब्रह्म सोऽप्यथ ।।

अथ दिक्षु मधुभावनम् —

इमा दिशः सर्वेषां भूतानां मध्वासां दिशाँ् सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमासु दिक्षु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चामध्यात्मँ् श्रोत्रः प्रातिश्रुत्कस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ् सर्वम् ।। ६।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतिश्रुत्यां भवः प्रातिश्रुतिकः श्रोत्रः तदवच्छिन्नदेवता—

दिशो मधु हि भूतानां भूतानि च दिशां मधु ।
तासु कर्णे नरश्चात्मा अमृतं ब्रह्म विश्रुतम् ।।

अथ चद्रे मधुभावनम् —

अयं चन्द्रः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य चन्द्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मि ँ् श्चन्द्रे तेजोमयोऽमृतमयः पुरूषो यश्चायमध्यात्मं मानसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरूषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेद ँ् सर्वम् ।।७।।

मानसः मनोमयः ।

चन्द्रो मधु हि भूतानां भूतानीन्दोरथो मधु ।
तन्नरो तैजसो ह्यात्मा मानसो ब्रह्मचामृतम् ।।

अथ विद्युति मधुभावनम् —

इयं विद्युत्सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै विद्युतः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्यां विद्युति तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं तेजसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽमेव स योऽयमात्मेदममृतामिदं ब्रह्मेद ँ् सर्वम् ।।८।।

तेजसोऽयं तैजसः ।

विद्युन् मधु हि भूतानां भूतानि विद्युतो मधु ।
तस्यां नरः स एवात्मा तैजसो ब्रह्मचामृतम् ।।

अथ मेघगर्जने मधुभावनम् —

अय ँ् स्तनयित्नुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य स्तनयित्नोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्स्तनयित्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्म ँ् शाब्दः सौवरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेद ँ् सर्वम् ।।९।।

स्तनयित्नु मेघगर्जनम् मेघो वा स्तनयित्नुर्बलाहक इत्यमरः । शब्दे भवः शाब्दः स्वरे भवः सौवरः ।

मेघो मधु हि भूतानां भूतानि वार्मुचो मधुः ।
तन्नाशाब्दः स एवात्मा सौवरो ब्रह्मचामृतम् ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथाकाशे मधुभावनम् —

अयमावकाशः सर्वेषां भूतानां मध्वास्याकायशस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नाकाशे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मँ हृद्याकाशस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ सर्वम् ।।१०।।

हृद्याकाशः, आसमन्तात् काशते प्रकाशते इत्याकाशः—

आकाशं मधु भूतानां भूतानि नभसो मधु ।
तन्ना हृदि च सैवात्मा विशुद्धं ब्रह्म चामृतम् ।।

अथ धर्मे मधुभावनम् —

अयं धर्मः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य धर्मस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्धर्मे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं धार्मस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ सर्वम् ।।११।।

धर्मः श्रुतिविहितकर्मानुष्ठानजनितादृष्टविशेषरूपः, परोक्ष प्रायोऽपि श्रुत्या प्रत्यक्षीकृतः तत्स्थो पुरुषः धर्मराजः धार्मः धर्म सम्बन्धी ।

धर्मो मधु हि भूतानां भूतानि तस्य वै मधु ।
तत्स्थो ना यम एवात्मा धार्मो वै ब्रह्म चामृतम् ।।

अथ सत्ये मधुभावनम् —

इदँ सत्यँ सर्वेषां भूतानां मध्वस्य सत्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चाऽयमस्मिन्सत्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मँ सात्यस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयतमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदँ सर्वम् ।।१२।।

सत्यस्यायं सात्यः सत्यनियन्ता देवविशेषः ।

सत्यं मधु हि भूतानां भूतानि तस्य वै मधु ।
तत्स्थो तैजस एवात्मा सात्यो ब्रह्म तथाऽमृतम् ।।

अथ मानुषे मधुभावनम् —

इदं मानुषँ सर्वेषां भूतानां मध्वस्य मानुषस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चाऽयमस्मिन्मानुषे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ।।१३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानुष मधु भूतानां भूतानि तस्य वै मधु ।
तन्ना तैजस एवात्मा मानुषो ब्रह्म चामृतम् ।।

अथात्मनि मधुभावनम् —

अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मध्वस्यात्मनः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नात्मनि तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमात्मा तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेद ँ सर्वम् ।।१४।।

अत्र कार्यकरणसूक्ष्मसंघात एव आत्मा, परमात्मा चैतन्यावच्छिन्नसमष्टि जीवाभिमानिहिरण्यगर्भः ।

आत्मा मधु हि भूतानां भूतानि चात्मनो मधु ।
तन्ना तेजो मयश्चात्मा सैवात्मा ब्रह्म चामृतम् ।।

पृथिव्याद्यात्मपर्यन्त वस्तुषु सप्तसप्तसु ।
मधु विद्या मधोर्भावो विन्यस्तो मधुसूदने ।।

अथात्मनः सर्वाधिपतित्वं सर्वाश्रयत्वं व निरूपयति —

स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूताना ँ राजा तद्यथा रथनाभौ च रथतेमौ चाराः सर्वे समर्पिता एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः एत आत्मानः समर्पिता ।।१५।।

अयं मधुविद्यया व्याख्याता सः आत्मा परमात्मा मधूनि चतुर्दशसु समारोपितानि कार्यकारणानि सूदयति व्योपह्य स्वस्मिन् विलापयति इति मधुमूदनः । तथा भूतोऽयं आत्मा सर्वेषां भूतानां भवन्तीति भूतानि तेषामधिपतिः स्वाामी रञ्जनात् राजा । यथा रथनाभौ धुरि रथनेमौ च रथचक्रे सर्वे अराः लौहा वयवाः समर्पिताः तथैव सर्वे देवा लोकाः प्राणाः एते आत्मानः । इत्यनेन स्पष्टं जीवात्मपरमात्मनोर्भेदः स्वरूपतः प्रतिपादितः समर्पिताः ।

मधुविद्यामाहात्म्यं स्तौति—

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् । तद्वां नरा सनयेद ँ स उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिं । दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्व शीर्ष्णा प्रयदीमुवाचेति ।।१६।।

इदं मया कथ्यमानम्, तत् प्रसिद्धं, मधु मधुविद्यारहस्यम् अथर्वणः पुत्रः आथर्वणः दध्यङ् दधीचिः, अश्विभ्यामविश्नीकुमाराभ्यांमुवाच—तदेतत् पश्यन् ऋषिः अवोचत्,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नरा "सुपां सुलुक्" इत्यनेन आ आदेशः सनये लाभाय सनः लाभः दसे दंसकर्मणि आविष्कृणोमि प्रकटयामि। इदं प्रसिद्धं यदश्विनीकुमारौ, दध्यञ्चमाथर्वणमात्मन उपनयनाय प्रार्थितवन्तौ। तेनोक्तं युवापमुपनयनतो मे इन्द्रः शिरः छेत्स्यति। ताभ्यामुक्तं— यत्त्वच्छिरः निजोपनयनकाले कृत्वान्यत्र रक्षित्रष्यावः। त्वयि चाश्वशिरः प्रत्धिाय श्रोणयाव उपदेशं त्वत्तः, पुनरिन्द्रे छिन्नवति ते शिरस्तत्र धास्यावः इययमेव उग्रता तत्र। यथा स्तन्यतु : मेघस्य वृष्टिम् वर्षणम् न इव। अत एव दधीचिः वां युवाम् अश्वस्य शीर्ष्णः प्रायात् यतवान् ईम् मायारूपमुवा च साम्प्रतं ब्रह्मत्वेनोपदिशामि।

अथ भूयस्तां स्तोति—

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचदाथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्य ँ शिरः प्रत्यैरयतम्। स वां मधु प्रवोचदृतायत्त्वाष्ट्रं यद्दस्त्रावपि कक्ष्यं वामिति ।।१७।।

इदा मित्यादि पूर्ववत् ऋषिरवोचत्—हे अश्विनौ! अश्वस्य इदम् आश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्। आनीतवन्तौ तदा सः ऋताय ऋतं सत्यं, तस्य पालनाय वां युवां त्वाष्ट्रं सूर्यसम्बन्धिमधु प्रावोचत्। यच्चापि कक्ष्यम् तदिव गोप्यम्, यथा कं संसारं क्षिणोति इति कक्ष्यं तदपि संसारनाशकं ब्रह्मतत्त्वमुवाच। इदमेव मैत्रेयि तुभ्यमहमवोचम इति तात्पर्यम्।

किमवोचद् ब्रह्मतत्त्वमित्याह —

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्। पुरश्चक्रे द्विपदः पुरचक्रे चतुष्पदः पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशदिति। स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयो नैनेन किंचनानावृतं नैनेन किंचनासंवृतम् ।।१८।।

दधीचि प्राह—हे अश्विनौ! सः पुरूष पुरुसु शरीरेषु वर्तमानः सन् पुरिशयः शरीरे शयानः, पूर्वं द्विपदः मनुष्यान् पुरश्चक्रे शरीराणि निर्ममे, अनन्तरं चतुष्पदः पुरश्चक्रे, पश्चात् पक्षी भूत्वा जीवः पक्षधरो भूत्वा पुरः शरिराणि आविशत् प्रविष्टः, एनेन एतेन किञ्चिदपि न अनावृतं सर्व मेवावृतम् न किमपि असंवृतं सर्वमपि संवृतम्।

अथ प्रकरणमुपसंहरति

इदं वैतन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचद्रप ँ रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति। अयं वै हरयोऽयं वै दश च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च तदेतद्ब्रह्मा पूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम् ।।१९।।

इदमित्यादिपूर्ववत् तत्परमात्मा अस्य स्वकीयस्य, रूपं प्रचक्षणाय व्याख्यायै, रूपं रूपं प्रति जीवात्मशरीरं प्रति रूपः प्रतिष्ठितरूपवान् बभूव विरेजे इन्द्रः सर्वशक्तिमान् भगवान् मायाभिः, यत्तु शङ्करेण मायाभिरिति अविद्या इति व्याख्यानं वान्त तदनर्गलम्। मायाभिरिति बहुवचनं तच्च आदरार्थे आदरश्च भगवत्कृपायाः तस्मान् मायाभिः परमादरणीयया भगवत्कृपया पुरूरूपः अनन्तरूपवान् ईयते भक्तैः शरण्यत्वेन प्रपद्यते। एवमेव अस्य दशशताधिकं हरयः अश्वा इन्द्रियाणि युक्ता अयमेव परमात्मनः अपूर्वं पूर्वरहितम् अनपरम् अपररहितम् अनन्तरम् अन्तरहितम् अपारं सर्वानभूः सर्वस्य अनुभाविता ब्रह्म । इदमेव सर्वं वेदान्तानामनुशासनम् ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये पञ्चमं मधुब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।।राघवः शन्तनोतु मे ।।

।। षष्ठब्राह्मणः ।।

।। अथ वंशपरम्परावर्णनम् ।।

अथ वँ् शः । पौतिक्ष्यो गौ पवनाद्गौपवनः पौति-गाळठयात्पौतिभाष्यो गौपवनाद्गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कौशिकाच्च गौतमाच्च गौतमः ।।१।।

अग्निवेश्यादाग्निवेश्यः शाण्डिल्याच्चानभिक्लाताच्चानभिम्लात आनभिम्लातादानभिम्लात आनभिम्लातादानभिम्लातो गौतमाद्गौतमः सैतवप्राचीनयोग्याभ्या ँ् सैतवप्राचीनयोग्यौ पाराशर्यात्पराशर्यो भारद्वाजो भारद्वाजाच्च गौतमाच्च गौतमो भारद्वाजाद्भारद्वाजः पराशर्यात्पराशर्यो बैजवापानाद्बैजवापायनः कौयिकायनेः कौशिकायनिः ।।२।।

घृतकौशिकाद्घृतकौशिकः पाराशर्यायणात्पराशर्यायणः पराशर्यात्पराशर्यो जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चासुरायण स्त्रौवणे-स्त्रैवणिरौपजन्धनेरौ पजन्ध निरासुरेण सुरिर्भारद्वाज्भारद्वाज

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्रेयादात्रेयो माण्टेर्माण्टिर्गौतमाद्गौतमो गौतमाद्गौतमो वात्स्याद्वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात्काप्यात्कैशोर्यः काप्यः कुमारहारितात्कुमारहारितो गालवाद्गालवो विदर्भीकौण्डिन्याद्विदर्भीकौण्डिनयो वत्सनपातो ब्राभ्रवाद्वत्सनपाद्बाभ्रवः पथः सौभरात्पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूतेस्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात्त्वाष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्याम । अथ प्रथमान्ता; शिष्याः पञ्चभ्यन्ता आचार्याः श्विनो दधीच आथर्वणाद्दध्यङ्ङाथपर्वणोऽथर्वणो दैवादथर्वादैवरे मृत्योः प्राध्वँ सनान्तमृत्युः प्राध्वँ सनः प्रध्वँ सनात्प्रध्वँ सन एकर्षेरेकर्षिर्विप्रचित्तेर्विप्रत्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारू सनातनात्सनातनः सनगात्सनगः परमोष्ठिनः परमेष्ठी ब्राह्मणो ब्रह्म स्वयम्भु ब्रह्मणे नमः ।।३।।

अत्र प्रथमान्ताः शिष्याः पञ्चम्यन्ता आचार्याः ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयाध्याये षष्ठब्राह्मणम् ।

।। राघवः शन्तनोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। तृतीयाध्यायम् ।।

।। प्रथमब्राह्मणः ।।

मंगलाचरणम्

शम्पाकल्पलतात्त्विडर्चिविलसन्मध्यौप्रमालङ्कृत-
श्यामश्वेतसरोरूहच्छावितनू नूत्वं वयो विभ्रतौ ।
प्रोज्झत्सङ्गनिषङ्गकार्मुकशरान् धीरौ दधानावहं
वन्दे राघवलक्ष्मणौ वनमितौ सीतातृतीयौ मुहुः ।।

अथ पुनर्ब्रह्मणः स्पष्टप्रतिपत्तये तदुपायभूततया वैदिकसिद्धान्तानां समीचीन-व्याख्याप्रस्तावाय मोक्षस्य च विवरणाय ग्रहातिग्रहादिवर्णनद्वारेण संसारनिःसारतां निष्पादयितुं याज्ञवल्क्यीयं काण्डं प्रारम्भ्यते । तत्र नवभिर्ब्राह्मणैरुपेतस्तृतीयोऽयमध्यायः । प्रथमं मिथिलाधिराजस्य यज्ञे ब्रह्मवित्सत्तमतया महर्षेर्याज्ञवल्क्यस्य प्रस्तावः ततग्रे च जनकराजर्षेः होतुः अस्वलस्य प्रश्नाः —

ॐ ।। जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेतेजे तत्र ह कुरुपाञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेषां ब्राह्मणानामनूचानतम इति स ह गवा ँ् सहस्रमकरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः शृङ्गयोराबद्धा बभूवुः ।।१।।

इति ह इतिहास प्रसिद्धं यत् - वशिष्ठशापेन भग्नदेहतया निमिर्विदेहः यद्वा ब्रह्मज्ञानाग्निदग्धदेहमिथ्यासम्बन्धतया सततब्रह्मचिन्तनेन वा विस्मृतदेहदेहिभावसम्बन्धतया वा विदेहः, तस्य वंशे भवः वैदेहः स च जनकः, पितेव प्रजापालकः जनैः कीयमानत्वाद्वा जनकः, जनेभ्यः कं ब्रह्मसुखं यस्मात् तथाभूतो जनकः, बह्वी दक्षिणा यस्य स बहुदक्षिणः तेन बहुदक्षिणेन अश्वमेधेन राजसूयेन वा ईजे इष्टवान् बभूव । तत्र कुरुपाञ्चालानां वास्तव्याः ब्राह्मणाः ब्रह्माधीयानाः ब्रह्मवेतृत्त्वविशिष्टाः जन्मना कर्मणा च विप्रत्वसम्पन्नाश्च अभिसमेताः बभूवुः । आगता आसन् मिथिलानगरे इति शेषः । एवं यज्ञजिघृक्षितभागान् ब्राह्मणान् वीक्ष्यह तस्य वैदेहस्य वैदेहिपितुः महाराजजनकस्य हृदि विजिज्ञासा वविशेषा जिज्ञासा ज्ञातुमिच्छा बभूव, यद्वा विष्णुविषयिणी जिज्ञासा विजिज्ञासा । ननु औपनिषद् व्याख्यानक्रमे कुत आपतितोऽयं तावको विष्णुः ?

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इतिचेदल्पज्ञोऽसि **तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीवि चक्षुराततम्** इति औपनिषदभागेऽपि विष्णुसूक्तस्यापि सङ्कीर्तनश्रवणात्, मन्त्रभागेतु विष्णुसूक्तस्य बहुशः कीर्तनात् **विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचत् प्रतद्विष्णोस्तौतिवीर्याय इदं विष्णुर्विचक्रमे** इत्यादि मन्त्रेषु बहुषश्चर्चितत्वात्। ननु कर्मकाण्डीयमन्त्राणां ज्ञानकाण्डे न विनिगमः ? इति चेत् एषः विभागस्तु युष्माभिः कृतः, परमार्थतस्तु सर्वोऽपि वेदराशिरेक एव, परम्परया साक्षाच्च भगवन्तमेव परब्रह्म महातात्पर्यतया समध्यवस्यति। न च ज्ञानकाण्डे साक्षाद्ब्रह्म मीमांसायां जागरूकायां परम्परया तत्प्रतिपादनस्य दौर्बल्यमिति वाच्यम् वाच्यापेक्षया व्यङ्ग्यस्य समधिकमहत्ववत्वेन तस्य दौर्बल्याभावोपपत्तेः, पत्न्यास्तु साक्षात्कथनापेक्षया परम्परया वर्णने समधिकमाधुर्यनिष्पत्तेश्च, अत एव भगवत्या सीतया ग्रामवधूभिः पृष्टया खञ्जजनमञ्जुवक्रलोचनसङ्केतेन निजपतिं परिचाययामासे। यथोक्तं श्रीमानसे —

बहुरि बदन विधु आंचल ढाकी। पिय तनु चितइ भौंह करि वांकी।
खञ्जनमञ्जु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि।।
(मा० २/११७!६-७)

रूपान्तरम् —

भूयः समावृत्यपटाञ्चलेन मुखोडुपं वीक्ष्य वपुश्च पत्युः।
वक्रत्विषा खञ्जनलोचनेन सङ्केतयामास पतिं च सीता।।

एवं परम्परया कुलवती काचिन्नवोढा लज्जांवती सङ्केतयति। ननु "त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" इत्यत्र निस्त्रैगुण्यविषये कर्मकाण्डीय श्रुतीनाम् अप्रसर उक्तः ? इति चेन्न, तत्र "वेदवादरता" इत्युक्त्वात् तानेव विशिनष्टि। वेदवादाः त्रैगुण्यविषयाःवेदाः समासश्चात्र त्रैगुण्यः विषयः येषां ते त्रैगुण्य विषयाः अवेदाः वेद भिन्नाः वेदवादाः—यद्वा त्रैणुण्यं विशृण्वन्ति इति त्रैगुण्यविषयाः त्रैगुण्यविषय एव अवेदा इति त्रैगुण्यविषयावेदाः इति सर्वं समञ्जसम्। एवं विजिज्ञासायां जायमानायां जनको व्यचीचरत्, स्वित् एषां ब्रह्मणानां मध्ये कः अनूचानतमः अनुकूलं श्रुतिस्मृत्यनुरूपं वक्ता इत्यनूचानः अतिशयेन अनूचानः इति अनूचानतमः इति इत्थम् जिज्ञाससमानः। यासां शृङ्गयोः दशदश पादाः लग्नाः बभूवुः। यं प्रशसेयं ब्रह्मविद्यायाः।अथ याज्ञवल्क्यः आत्मनोब्रह्मज्ञत्वं प्रमाणयति —

तान्होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति। ते ह ब्राह्मणा न दधृषुरथ ह याज्ञवल्क्यः स्वमेवं ब्रह्मचारिणमुवाचैताः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोम्योदज सामश्रवा ३ इति ता होदाचकार तेह ब्राह्मणाश्चुक्रुधुः कथं नो ब्रह्मिष्ठो ब्रुवीतेत्यथ ह जनकस्य वैदेहस्य होताऽश्वलो बभूव स हैनं पप्रच्छ त्वं नु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोऽसी ३ इति स होवाच नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा एव वय ँ् स्म इति त ँ् ह तत एव प्रष्टुं दध्रे होताऽश्वलः ।।२।।

तानुपेतान् ब्राह्मणान्वीक्ष्य मिथिलाधिराजो जनकः प्राह — भो ब्राह्मणाः । भगवन्तः षैडश्वर्यसम्पन्नाः भवन्तः तपसा, भवत्सु यः अधिकं ब्रह्मवित् सः मयादीयमानाः सहस्र संख्याकाः गाः उदयत्तां गृह्णातु । एवमुक्तवति जनके ते ब्राह्मणाः न द धृषुः धृषिरत्र साहसार्थः, गाः आदातुं न साहसं चक्रुरितिभावः । अथ याज्ञवल्क्यः सामश्रवा नामकं ब्रह्मचारिणमात्मीयमुवाच समादिदेश–सोम्य सामश्रवाः एताः सहस्रसंख्याकाः गाः उदज अस्मद्गोशालां नय एवमादिष्टः गोशालां निन्ये । ब्राह्मणाः चुक्रुधुः कुपिता बभूवुः नः अस्माकं मध्ये त्वमेव कथं ब्रस्मिष्ठः ब्रह्मवित्तमः? अथ जनकस्य होता आश्वलः बभूव आसीत् । सः याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ त्वं ब्रहमिष्ठः तथापि अस्माकं मध्ये ? याज्ञवल्क्यः प्रत्युत्तरयामास वयं गोकामाः ब्रहमिष्ठाय नमस्कुर्मः । इत्यनेन सिद्धान्तितमेतत् यत् ब्रह्मिष्ठः आत्मनं ख्यापयति नाहि ।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ।।

(केन ३.२.३)

एवं श्रुत्वाश्वलः जनकस्य होता प्रष्टुं दध्रे साहसं कृतवान् ।

अथ याज्ञवल्क्यमाश्वलः पृच्छति —

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिद ँ् सर्वं मृत्युनाऽऽप्त ँ् सर्वं मृत्युनाभिपन्नं केन यजमानो मृत्योराप्तिमतिमुच्यत इति होत्रर्त्विजाग्निना वाचावाग्वै यज्ञस्य होता वद्येयं वाक्सोऽयमग्निः स होता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ।।३।।

स आश्वलः उवाच पप्रच्छ, याज्ञवल्क्येति संबोधनमभिमुखीकरणाय, त्वं ब्रह्मिष्ठोऽसि तस्मान्मृत्योरमृतस्य चान्तरं वेत्सि, अतः पृच्छामि यत् इदं सर्वं जडचेतनात्मकं जगत् मृत्युना कालात्मना अभिपन्नं तर्हि केन उपायेन समनुष्ठीयमानेन यजमानः मुच्येत अतिमुच्येत च अतः मुक्तेरतिमुक्तेश्च अन्तरं कथय । याज्ञवल्क्योवाच-होताचासौ ऋत्विजाग्निः इति होत्रर्त्विजाग्निः, तेन वागेव होता, अनेनैव आत्मनि भावाः हूयन्ते । स एव मुक्तिः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सैवातिमुक्तिश्च वाणी एव । वेदादिस्वाध्यायद्वारा मृत्युमुखात् जीवं मोचयति । इयमेव च रामनामजपादिद्वारा अतिशयेन मोचयति मुक्तिः सामान्या अतिमुक्तिः अतिशयता मुक्तिः सा चात्यान्तिकी । वागेव मुक्तिरित्यत्र करणे क्तिन् एवमतिमुक्तिः रित्यत्रापि । एवं वाग् यज्ञाङ्गीभूय भगवन्निमित्तव्याहरणासमाश्रितपरमेश्वरगुणगानैकशरणा जीवं मृत्योर्मुञ्चतीति श्रौतं हार्दम् । यथोक्तं श्रीगीतासु —

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ।।

पुनरहोरात्राभ्यां मुक्तिमतिमुक्तिश्च व्याचष्टे —

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदि ँ् सर्वमहोरात्राभ्यामाप्त ँ् सर्वमहोरात्राभ्यामभिपन्नं केन यजमानोऽहोरात्रयोराप्तिमतिमुच्यत इत्यध्वर्युणर्त्विजा चक्षुषाऽऽदित्येन चक्षुर्वै यज्ञस्याध्र्वर्युस्तद्यदिदं चक्षु सोऽसावादित्यः सोऽध्वर्युः स मुक्तिः साऽति मुक्तिः ।।४।।

याज्ञवल्क्य ! इदं सर्वं चराचरं मृत्युरूपाभ्ययामहोरात्राभ्यां दिवसनिशाभ्यामितिभावः आप्तं व्याप्तमभिपन्नं ग्रस्तं च, तर्हि केनोपायेन यजमानः आध्यात्मिकं यागं कुर्वाणः तयोः व्याप्तिमतिमुञ्चति । याज्ञवल्क्यः प्राह - चक्षुरूपेणाध्वर्युणा अनेन एको यज्ञो यष्टव्यः, सर्वं रूपं भगवदीयता यदि दृष्टं स्यात् तदा चक्षुरेव प्रतिरुपं भगवद्भावनं मुक्तिर्भवति भगवति जगद्भावनं चातिमुक्तिर्भवति यथोक्तं श्रीगीतासु —

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्ममनि ।
ईक्षतेयोगमुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।

(गी. १३.२९)

अत्र द्वितीयासप्तभ्यन्ततया निर्दिष्टो द्विरात्मशब्दः परात्मशब्दः, एवं चक्षुर्यदि संसाररूपभावनां त्यजति तदा अध्वर्युर्भूत्वा अहोरात्ररूपान्मृत्योर्मुञ्चति यथोक्तं श्रीभागवते —

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ।।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ।।

(भा० १०. २१. ७)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ पक्षद्वयान्मुक्ति प्रकारमाह —

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिद ँ सर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामाप्त ँ सर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामभिपन्नं केन यजमानः पूर्वपक्षापरपक्षयोराप्तिमतिमुच्यत इत्युद्गात्रर्त्विजा वायुना प्राणेन प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता तद्योऽयं प्राणः स वायुः स उद्गाता स मुक्तिः साऽतिमुक्ति ।।५।।

पूर्वपक्षः कृष्णः अपरः शुक्लः, यदि चेत् अस्य आध्यात्मिकयज्ञस्य प्राण एव उद्गाता भवतु, प्रतिश्वासं भगवन्तमेव उद्गायतु तदा उद्गातृरुपः स एव जीवं पक्षद्वयान्मुक्त्वा कालातीतं करोति। यथा व्रजाङ्गनाः प्रतिश्वासं भगवन्तं गायन्त्यः कुर्वाणश्च निजप्राणमुद्गातारम् उभाभ्यां पक्षाभ्यां मुक्ताः एकस्यामेव रात्रयामनन्ताऽनन्तरात्रीणामेकस्मिन्नेव श्रीवृन्दावने पञ्चक्रोशात्मके अनन्तानन्तक्रोशानां समाहारं विधाय रेमिरे रमाललितपदपल्लवेन । नन्वेकस्यां रात्रौ अनन्तरात्रीणां संयोगे किं मानमिति चेत् **भगवनानपितारात्रीः** (भा० १०/२९/१) इत्यत्र बहुवचन मुक्त्ता प्रारंभे विश्रामेचास्याः पञ्चाध्याय्याः **ब्रह्मरात्रउपावृत्ते** (भा० १०/३३/३९) इत्येकवचनप्रयोगात् बहूनामेकस्यां समाहारः सुतरामवगम्यते।

यथा श्रीमानसे —

मासदिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोई ।
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होई ।।

एतद्रूपान्तरम् —

मासात्मकदिनानाञ्च एकमेवाभवद्दिनम् ।
सरथस्थगितः सूर्यः कथङ्कारं निशा भवेत् ।।

अतिमोक्षमुपसंहरति —

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदमन्तरिक्षमनारभ्यणमिव केनाऽऽक्रमेण यजमानः स्वर्गं लोकमाक्रमत इति ब्रह्मणर्त्विजा मनसा चन्द्रेण मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा तद्यदिदं मनः सोऽसौ चन्द्रः स ब्रह्मा स मुक्तिः साऽतिमुक्तिरित्यतिमोक्षा अथ संपदः ।।६।।

अश्वलः पप्रच्छ—याज्ञवल्क्य ! रलयोरभेदात् अनारम्बणम् अनालम्बनमन्तरिक्षमिदम् आलम्बनरहितमिव, इवार्थस्तु भगवदवलम्बनेऽपि तस्यपरोक्षत्वात् निराधारमिव प्रतीयते सहितिक्रमणं विनाकोऽपि स्वर्गं नातिरोढुं पारयति । तर्हि । तत्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केन सोपानेन आक्रमेत् ? याज्ञवल्क्यः प्राह—ब्रह्मणा ऋत्विजा यज्ञे आचार्यानन्तरमेकः ऋत्विग् ब्रह्मा भवति, अस्मिन् यज्ञे आध्यात्मिके मन एव ब्रह्मा, स एव आध्यात्मिकतया चन्द्रः, तेनैव द्रुतगतिना अयं साधकः अंतरिक्षमारूह्य स्वर्गं याति । अयं मनोरुपः ब्रह्मा चन्द्रदैवतः ऋत्विक् अर्थात् यदि मनः विहायजगतीतलसंकल्पं केवलं ब्रह्माभिधेय-श्रीरामनामरुपलीलाधाम्नां चित्तनं करोतु तदा निश्चितमेव विहायसंसारं स्वर्गं साकेतं याति । वेदानुकूलनिर्गुणब्रह्मचिन्तनेन मुक्तिसंज्ञां लभते, श्रीरामब्रह्मचारूचरणाविन्द-नखमणिचन्द्रिका समुच्छलितभक्तिसुधाधारासंधुक्षणा समुच्छ्रितमतिमुक्तिः । यथा च मम—

मनोहि द्विविधं प्रोक्तं कुमनः सुतमनस्तथा ।
कुमनोवासनासंगी सुमनो भक्तिसंयुतम् ।।

तथा च श्रीमानसे —

कठिन कालमलकोस धर्म न ग्यान न जोगतप ।
परिहरि सकतभरोस रामहिं भजाहिं ते चतुर नर ।।

(मा० ३.६.३/६)

रूपान्तरम् —

मलस्यकोशे कठिने हि काले ज्ञानं न धर्मो न जपो न योगः ।
विहाय चाशां जगतो खरारिं भजन्मनुष्यश्चतुरो हि लोके ।।

अथ यज्ञोपयोगिनीनां ऋचां सम्बन्धे प्रश्नः—

याज्ञवल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्यर्ग्भिर्होतास्मिन्यज्ञे करिष्यतीति तिसृभिरिति कतमास्तास्तिस्त्र इति पुरोऽनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृतीया किं ताभिर्जयतीति यत्किंचेदं प्राणभृदिति ।।७।।

जनकस्य होताश्वलः याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ—हे याज्ञवल्क्य ! अयं होता अस्मिन् यज्ञे कितिभिः किं संख्याभिः यज्ञकर्म निर्वर्तयिष्यत्यस्मिन्नश्वमेधयज्ञे । याज्ञवल्क्यः प्रत्युत्तरयामास- तिसृभिः ताः कतमाः सर्वासाम् ऋचामिति शेषः ।याज्ञवल्क्यः प्राह - पुरोनुवाक्या, यज्ञात् पूर्वं पठ्यमाना, याज्या यज्ञसमकालं गदिष्यमाणा मनोज्योतिरित्यादि, शस्या सामस्तास्त्रं तदर्थं या पठ्यते सा, आभिः किं जयति ? सर्वमेव आध्यात्मिके श्रीरामनामजपयज्ञात्प्राक् मनोमन्दिरे भगवदावाहनपूर्विका मानसपूजा पुरोनुवाक्या जपकाले भगवत्स्वरूपध्यानं याज्या जपविश्रामे क्षमाप्रार्थनं शस्या इति वयम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथाहुतिविषये प्रश्नाः —

याज्ञवल्क्येति होवाच्च कत्ययमद्याध्वर्युरस्मिन्यज्ञाआहुतिर्होष्यतीति तिस्र इति कतमास्तास्तिस्र इति या हुता उज्ज्वलन्ति याहुता अति नेदन्ते या हुता अधिशरते किं ताभिर्जयतीति या हुता उज्जवलन्ति देवलोकमेव ताभिर्जयति दीप्यत इति हि देवलोको या हुता अतिनेदन्ते पितृलोकमेव ताभिर्जयत्यतीव हि पितृलोको या हुता अधिशेरते मनुष्यलोकमेव ताभिर्जयत्यध इव हि मनुष्यलोकः ।।८।।

अश्वलः पप्रच्छ—श्रुत्यक्षरार्थस्तु सुगमः भावार्थोऽवधेयः–याज्ञवल्क्यं प्रति अश्वलो जिज्ञास्यते यजमानः कति आहुतीः हृष्यति अत्र वर्तमाने लृङ्व्यत्ययात्, याजमानः किं संख्याः किं प्रकाराश्च आहुतीः जुहोति । उत्तरे याज्ञवल्क्यः—तिस्रः काश्चित् उज्ज्वलन्ति दीप्यन्ते काश्चित् अति नेदन्ते, नेद् धातुः श्रौतः अव्यक्तशब्दार्थः आत्मनेपदीयः घृतादिपातेन बहुशब्दं कुर्वान्ति । काश्चिद् अधिशेरते । याः उज्ज्वलन्ति ताभिर्देवलोकं जयति, याः बहुशब्दं कुर्वन्ति ताभिः पितृलोकं पितृणां कुटुम्बवासनावासितत्वात् शब्दबाहुल्यात्, याः अधः शेरते ताभिः मनुष्यलोकं तस्याधस्तनत्वात् । अध्यात्मे च कर्मणामपि त्रेधा आहुतयो भवन्ति । प्रपत्तिलक्षणकर्मणि यदाहूयन्ते भगवति तदा उज्ज्वलन्ति भगवच्छरणागतनिवेदिताः सर्वसमर्पणरूपाः ताभिर्देवलोकं साकेतं जयति या अतिनेदन्ते निवृत्तिकर्मणां ताभिः पितृलोकं,. याश्च अधिशेरते प्रवृत्तिलक्षणकर्मणां सकामामराधनारूपा ताभिर्मनुस्यलोकमिति वयम् ।

नन्वत्र साधनात्रैविध्ये किं मानम् ? श्रीमदभागवतीयवचनमेव —

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरूषं परम् ।।

(भागवत २/३/१०)

इति विद्वांसो विभावयन्तु ।

अथ आध्यात्मिकयज्ञे देवताविषयकप्रश्नः —

याज्ञवल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्य ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो देवताभिर्गोपायतीत्येक येति कतमा सैकेति मन एवेत्यनन्तं वै मनोऽनन्ता विश्वेदेवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अश्वल: पुनर्याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ - याज्ञवल्क्य ! अयं ब्रह्मा यज्ञस्य उपाचार्य: दक्षिणत: आनुकूल्येन कतिभि: देवताभि: यज्ञं गोपायति रक्षति देवता अन्तरेण रक्षणासम्भवान्मखस्य । याज्ञवल्क्य उवाच - एकया, का नाम सा इति पृष्ट: प्रोवाच आध्यात्मिके यज्ञे बुद्ध्यवच्छिन्न: परमात्मा ब्रह्मा मन एव एका देवता । अभिप्रायोऽयं यदा मनो मनोमोहनस्य भगवतो भक्तिभागीरथीविचिषु समासज्जते तदा निरस्तसकलासुरभावं पूतं पुण्डरीकमिव दक्षिणत: यज्ञरूपं विगतविघ्नविघातं परिवर्जितविषमशरशिली-मुखनिशितनिपातं बुद्ध्यावच्छिन्नेन ब्रह्मणा नियुज्यमानं सत् त्रायते स्ववशंवदम्, इत्यनेन मनसो निन्दावचनानि निरस्तानि । तत् अनन्तरम् अनन्ताश्च विश्वे देवा: सर्वे सुरा: तेषां तत्रैव समाहारात् तेन मनोरूपेण देवेन भगवद्भजनमहिम्ना सर्वदा स्वानुकूलेन सर्वं सर्वरूपं परमात्मानं जयति । मनसैव प्रतिकूलेन परमेश्वरपदपद्मविमुखेन नि:सारसंसारसम्बन्धवासनाजागर: अनुकूलेन तेनैव स्वान्तेन शान्तेन भगवद्भजनदान्तेन संसार स्मृत्युपमर्दपूर्वककमलनयननवनलिनचरणस्मृति: इति मन्मनीषितं श्रुतौ भगवदनुश्रुतौ ।

अथ यज्ञस्तोत्रविषयप्रश्ना: —

यज्ञवल्क्येति होवाच कत्ययमद्योर्दगाताऽस्मिन्यज्ञे स्तोत्रिया: स्तोष्यतीति तिस्त्र इति कतमास्तास्तिस्त्र इति पुरोनुवाक्या च याज्या शस्यैवतृतीया कतमास्ता या अध्यात्ममिति प्राण एव पुरोनुवाक्याऽपानो याज्या व्यान: शस्या किं ताभिर्जयतीति पृथिवीलोकमेव पुरोनुकाक्यया जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्यया द्युलोकँ् शस्यया ततोह होताऽश्वल उपरराम ।।१०।।

अथान्तिमप्रश्नोऽश्वलस्य—याज्ञवल्क्य ! उद्गाता अद्य वर्तमाने दिने अस्मिन् जनकस्याश्वमेधयज्ञे कति संख्याका: स्तोत्रिया: स्तोतुं योग्या ऋच: उद्गातास्तोष्यति । याज्ञवल्क्य प्राह: - तिस्त्र: व्याख्यातपूर्वा: पुरोनुवाक्या याज्या शस्या इति तासामाध्यात्मिकं व्याख्यानम्—प्राण एव पुरोवाक्या तद्भगवन्मयत्वात् पृथिवीं जयति , व्यानं शस्या तेन द्युलोकम् । एवं शरीरे वर्तमानानां यदि भगवद्रूपाधियज्ञनिमित्तत्वं तदा न कर्मबन्ध: । **यज्ञे वै विष्णु:** इति श्रुते: **अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर** (गीता८/२) इति स्मृतेश्च एवं सर्वेषु प्रश्नेषु समाहितेषु याज्ञवल्क्यं ब्रह्मिष्ठं पूजयन् अश्वल: उपरराम तूष्णीं बभूव ।।श्री:।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये प्रथमं ब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।।

।। राघव: शन्तनोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। द्वितीय ब्राह्मणम् ।।

मङ्गलाचरणम्

चलाक्षुरितमेघाभं लतायुततरूपमम् ।
सीताद्वितीयं श्रीरामं द्वितीये ब्रह्म भावये ।।

अथ पूर्वस्मिन् ब्राह्मणे शरीरे यज्ञस्य भावना–तत्रापि वाक्प्राणमनसामुपलक्षणतया सकलेन्द्रियाणां भगवदीयतया स्वर्गाभिधेयसाकेतमयत्वमुक्तम् । द्वितीये जारत्कारव-याज्ञवल्क्यसम्वादमुखेन ग्रहातिग्रहव्याख्याान विषयेण मृत्युरूपग्रहग्रस्तस्य जीवस्य तन्मुक्तये भगवतः प्रपत्तिरेव सङ्कीर्त्यते ।

अथ जारत्कारवः प्रश्नमवतारयति —

अथहैनं जारत्कारव आर्तभागः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच कति ग्रहाः कत्यतिग्रहा इति । अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहा इति ये तेऽष्टौ ग्रहाः अष्टावतिग्रहाः कतमे त इति ।।१।।

जरन्ति कारुणीज्ञानाग्निना भष्मीभवन्ति कर्माणि यस्य तथाभूतो जरत्काः ऋषिविशेषः तस्य गोत्रापत्यं जारत्कारवः । एवम् ऋतं सत्यस्वरूपं श्रीरामं ब्रह्म तं भजते इति ऋतभगः, ऋतभागस्यापत्यमयं पुमान् आर्तभागः, स एव याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ— याज्ञवल्क्य । कति ग्रहा अतिग्रहाश्च भवन्ति ? गृह्णन्ति यान्तं जीवं ये ते ग्रहाः । इन्द्रियाण्यष्टौ अतिशयेन गृह्णन्ति गृहीत्वापि न मुञ्चन्ति इत्यातिग्रहाः दुरासदा इन्द्रियविषयाः । याज्ञवल्क्य आह—उभयेऽप्यष्टौ । अष्टौ के ते ? इति पुनरपि जारत्कारवः पप्रच्छ ।

अथेन्द्रियाणां ग्रहत्वं विषयाणाञ्चातिग्रहत्वं निरूपयति—

प्राणो वै ग्रहः सोऽपानेनातिग्राहेण गृहीतोऽपानेन गन्धाञ्जिघ्रति ।।२।।

प्रकरणत्वात् प्राणः घ्राणः, अपानः गन्धः । अपकृष्टं पार्थिवमानयतीत्यपानः । तेनातिशयेन ग्राहेण गृहीतः गन्धं शोभनमशोभनञ्च जिघ्रति नाशया तमुपमुङ्क्ते ।

अथ वाग्ग्रहत्वं निरूपयति—

वाग्वै ग्रहः सनाम्नाऽतिग्राहेण गृहीतो वाचा हि नामान्यभिवदति ।।३।।

वाक तदवच्छिन्नमिन्द्रियं ग्रहः, नाम शब्दः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ जिह्वाया: गृहत्वं प्रतिपादयति—

जिह्वा वै ग्रहः स रसेनाऽतिग्राहेण गृहीतो जिह्वया हि रसान्विजानाति ।।४।।

रसेन रसना विषयेण विजानाति विविच्य समास्वादयति ।।श्रीः।।

अथ चक्षुषो ग्रहत्वम् निरूपयति

चक्षुर्वै ग्रहः स रूपेणाऽतिग्राहेण गृहीतश्चक्षुषा हि रुपाणि पश्यति ।।५।।

रुपमतिग्राहः अत एवानिच्छतापि चक्षुषा गृह्यत एव पश्यति, रूपभोगं करोति ।

श्रोत्रस्य ग्रहत्वं प्रतिपादयति—

श्रोत्रं वै ग्रहः स शब्देनाऽतिग्राहेण गृहीतः श्रोत्रेण हि शब्दाञ्छृणोति ।।६।।

एवं श्रूयते अनेन इति श्रोत्रं श्रवणेन्द्रियं तदपि शब्देन नभोगुणेन ।।श्रीः।।

अथ मनसो ग्रहत्वं निरुपयति—

मनो वै ग्रहः स कामेनाऽतिग्राहेण गृहीतो मनसा हि कामान्कामयते ।।७।।

कामः अभिलाषः स एव अतिशयितोग्राहः ।।श्रीः।।

हस्तस्य ग्रहत्व वक्ति—

हस्तौ वै ग्रहः स कर्मणाऽतिग्राहेण गृहीतो हस्ताभ्यां हि कर्म करोति ।।८।।

तद्व्यापार एव विवक्षितोऽतिग्राहत्वेन ।।श्रीः।।

त्वचो ग्रहत्वम्

त्वग्वै ग्रहः स स्पर्शेनाऽतिग्राहेण गृहीतस्त्वचा हि स्पर्शान्वेदयत इत्येतेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः ।।९।।

स्पर्शेन तद्विषयेण वेदयते स्वयमनुभवति जीवात्मानं चानुभावयति एवम्—

घ्राणवाग्रसनाचक्षुः श्रोत्रस्वान्तःकरत्वचः ।
विपयैर्गृह्यमाणत्वात् ग्रहा अष्ठावुदीरिताः ।।

गन्धःनामरसोरुपं शब्दः कामः कृतिः स्पृशिः ।
भोगस्त्यक्तुमशक्यत्वादतिग्राहा इमेष्ट वै ।।

अथ मृत्युः सर्वभक्षकः सोऽपि केनाऽपि भक्ष्यते न वा इति पृच्छत्यार्तभागः—

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदँ् सर्वं मृत्योरन्नं का स्वित्सा देवता यस्या मृत्युरक्षमित्यग्निर्वै मृत्युः सोऽपामन्नमप पुनर्मुत्यं जयति ।।१०।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

याज्ञवल्क्य इति सम्बोध्य पृच्छति जारत्कारवः–पूर्वमेवोक्तमिदं यच्चराचरम् तत् सर्वं मृत्योः कालशक्त्यवच्छिन्नस्य भगवतः अन्नम् अद्यते इत्यन्नं भक्ष्यम् । स्वित् प्रश्ने सः का एतस्मादपि बलवत्तरा देवता दिव्यशक्त्यवच्छिन्ना च यस्याः मृत्युः अन्नं भक्ष्यम् । याज्ञवल्क्य प्राह—अग्निः सर्वाभिदेवताभिः अग्रे नीयते तस्मादग्निः, अतः एव वेदे सर्वप्रथमे मन्त्रे एतस्यैव श्रवणम्—

ओम् अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधावतम् ।।

(ऋ०वे० १/१/१)

पुरो धीयमानत्वात् पुरोहितं यज्ञस्य देवं यज्ञसम्बन्धिदैवतम्, ऋत्विजम् ऋतुषु यजते इति तथाभूतम्, स्वयमेव होतारं हविर्गृहीत्वा मुखरूपोऽसौ परमात्मने जुहोति तस्मादस्य होतृत्वम् । रत्नधातवम् रत्नानि दधाति पुष्णाति तथा भूतमाग्निमग्रेनीयमानं भगवन्मुखतया, ईले रडलानामभेदात् ईडे, अग्निर्हि भगवन्मुखं श्रुतिर्हि भगवतः पत्नी, पत्नी हि पत्युर्मुखमेव सर्वप्रथमं पश्यति चुम्बति तस्मात् सर्वप्रथमं तस्य स्तवनमेव श्रुत्या विधीयते तस्मात् परमेश्वरमुखतया मृत्युरपि तेनैव भक्ष्यते । यथा चोक्तं पार्थेन श्रीगीतासु—

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका स्तवापिवक्त्राणि समृद्धवेगाः ।।

(गीता ११/२९)

तस्यापि जलं जलरूपः परमात्मा अन्नं, जायन्ते जीवाः यस्मात् लीयन्ते च यस्मिन् तज्जलम् इति व्युत्पत्तेः **तज्जलानीति शान्त उपासीत** इति श्रुतेश्च ।

अथ ब्रह्मतत्ववेत्ता क्षीणप्रारब्धं पाञ्चभौतिकं देहं ककं पर्यवसाययति इति विवेच्यते—

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियत उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्याहो ३ नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्योऽत्रैव समवनीयन्ते स उच्छ्वयत्याध्मायत्याध्मातो मृतः शेते ।।११।।

याज्ञवल्क्येति सम्बोध्य त आर्तभागः पृच्छति—यत्र यस्मिन् काले अयं पुरुषः म्रियते प्राणैर्वियुज्यते तर्हि तस्मात् प्राणाः क्रामन्ति शरीरान्तरं गच्छन्ति न वा ? नेति नेति कथयित्वा याज्ञवल्क्यः निषेधति, तस्य तत्त्वज्ञस्य प्राणाः उपलक्षणतया सकलेन्द्रियशक्तयः इहैव अस्मिनेव परमात्मनि लीयन्ते, नान्यत्र गच्छन्ति । सः उच्छ्वयति वायुरुपेण प्राणेन शोथं गच्छति, वायुनैवाध्मातः पूर्णः शेते सुखं श्वपिति परमात्मनि । व्यवहारे मृत इति मिथ्या कथ्यते, परमार्थतस्तु भगवद्विस्मरणमेव मरणं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तच्च परमात्मवेत्तरि सम्भवमेव न कथंचित् । न च **शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवासयात्** ।।गीता १५/८।। इति भगवदुक्तसिद्धान्तस्य प्रकृतश्रुत्या विरोध इति वाच्यम्, उभयोरपि भिन्नविषयत्वात्, ब्रह्मतत्त्वज्ञस्य हि क्षीणशरीरारम्भककर्मत्रितये फलतया शरीरान्तरग्रहाणानुपपत्तौ जीवात्मनस्तथात्वासम्भववात् गीतासु च जीवजगत्साधारण्येन जीवात्मनः शरीरोत्क्रमणस्य प्रतिपादितत्वात् उभयऽत्रापि विषय भेदःसुस्पष्ट एव ।

अथ किं जीवम् न त्यजति ? इति प्रतिपादयति—

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियते किमेनं न जहातीति नामेत्यनन्तं वै नामानन्ता विश्वेदेवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ।।१२।।

हे याज्ञवल्क्य ! इति सम्बोध्य जारत्कारवः उवाच पप्रच्छ—यत्र यदा काले पुरुषः म्रियते तदा सर्वेष्वेनं जहत्सु एनं किं न जहाति, न त्यजति ? पूर्वं भवतैवोक्तम् यदयं शेते यथा श्रान्तसुतः पितुरङ्के स्थपिति, तथैवायमपि सततसंसारसागरतरलमायोत्तुङ्ग तरङ्गपरिष्वङ्गसङ्गपरिश्रान्तः शेते, तस्मिन्नपि समये किमप्येनेन सह भवति न वा ? उत्तरयति–नाम जीवसंज्ञा एवं जीवरूपिणं नित्यमात्मानं न जहाति इत्यनेन जीव ब्रह्मणोर्भेदो नित्यता च श्रुत्यैव सुस्पष्टमुक्ता । नन्वस्मिन् व्याख्याने मुण्डकश्रुतेः विरोधः, तत्र हि नदीसमुद्रदृष्टान्तपुरस्सरं त्यक्तनामरूपस्य साधकस्य समुद्र इव सरितांमनामरूपवतीनां विलयसिद्धान्तिततत्वात्, तथा च श्रुतिः—

यथा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरुपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।

(मुण्ड०उ० ३/१/१)

इति चेदुच्यते आपाततोऽविचारितश्रुत्यक्षरत्वात् भवति सन्देहः, तत्र संसारकृत-नामरुपाद्विमुक्तिरुक्ता, आशयोऽयं यत् सागरमभिद्रवन्त्यो नद्यः स्थूलं नामरूपं विहाय मिलन्ति समुद्रं किन्तु मुख्यं रूपं जलमयं जलमिति नाम च न जहति, तथैव तत्वज्ञः मैत्रचैत्रादि नाम मनुष्यादिरूपं च जहाति किन्तु शेते । इत्यनेन जीवात्मा रूपम् न त्यजति इत्युक्तम्, नाम न जहाति इत्यनेन जीवसंज्ञाया अपि नित्यत्वमुक्तम् । उपपत्तिमाह— वै निश्चयेन, नाम भगवद्दास इति, जीव इति च अनन्तं नास्ति अन्तो विनाशो यस्य तथाभूतमत एव जटापुषा जीवसंज्ञा भवगत्कैङ्कर्यरूपमपि द्वयमेतत् न परिहृतम् । तथोक्तं श्रीमानसे—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ।।
श्याम गात विशाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि वारी ।।

(मानस ३/३२/१-२)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतद्रूपान्तरम्—

विहाय वै गृध्रतनुं हरेः सः धृत्वा वपुः पीतपटं सुभूषम् ।
चतुर्भुजः श्यामतनुः सनीर नेत्रःस्तुवन्नास्त इलासुतेशम् ।।

एवम् अनन्ताः सर्वे देवाः भगवतः सर्वे अवतारा इति भावः । तेन अनन्तेन भगवत्सेवकोपयोगिनाम्ना भगवदीयपरिकररूपेण च अनन्तं परमात्मानं जयति वशीकरोति ।

अथ पुरुषगतिं विवृणोति—

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणाश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रं पृथिवी ँ शरीरमात्मौषधीर्लोमानि वनष्पतीन्केशा अप्सु लोहितं च रेतश्च निधीयते क्वायं पुरुषो भवतीत्याहार सोम्य हस्तमार्त भागाऽवामेवैतस्य वेदिष्यावो न नावेतत् सज्जन इति । तौ होत्क्रम्य मन्त्रयांचक्राते तौ ह यदूचतुः कर्म हैव तदूचतुरथ यत्प्रशश ँ सतुः कर्म हैव तत्प्रशश ँ सतुः पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति ततो ह जारत्कारव आर्तभाग उपरराम ।।१३।।

यत्त यस्मिन् काले अस्य मृतस्य उपरतस्य पुरुषस्य वाक् वणी अग्निं तद्दैवतं, प्राणः घ्राणशक्तिः वातं वायुदैवतम्, चक्षुः नेत्रशक्तिः आदित्यं सूर्यं स्वकारणम्, मनः चन्द्रं निजदैवतं श्रोत्रं कर्णशक्तिः, दिशः दिगभिमानी देवता शरीरे पृथिवीम्, आत्मा अहङ्कारः, आकाशं, लोमानि ओषधिः, केशाः वनस्पतीन् वृक्षान् , लोहितं रक्तं, रेतः शुक्रम् , अप्सु निधीयते । अप्सु इति सप्तम्यन्ताऽनुरोधेन अतः पूर्वत्र सर्वत्र सप्तम्यर्थे द्वितीया । तदा अयं पुरुषः क्व कुत्र भवति, एतस्य जीवात्मनः क्व स्थानमिति प्रश्ने याज्ञवल्क्यः प्राहः—हे आर्तभाग, सौम्य ! हस्तमाहर आनय देहि मह्यम्, आवामेव आर्तभागयाज्ञवल्क्यौ एतस्य वेदिष्यावः एकान्ते यास्यावः, एतत् सजने जनसमूहे न, अनन्तरं तौ मन्त्रयाञ्चक्राते, एकान्ते जीवगतिं विमृष्टवन्तौ, तौ निश्चत्य यत् ऊचतुः तत् कर्म एव प्रशशंसतुः, अर्थात् कर्मणः प्रशस्तिं कृतवन्तौ । पुण्येन कर्मणैव भगवद् भजनादिना पुण्यः भवति पुण्यलोकं साकेतं प्राप्य मोदते, पापेन पापकर्मणा पापः भवति पापीयसीं दशा प्राप्नोति । एवं याज्ञवल्क्याल्लब्धसकलप्रश्नोत्तरः जारत्कारव उपरराम, तूष्णीं बभूव ।।श्रीः।।

इति वृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये द्वितीयमार्तभागब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। राघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। तृतीयब्राह्मणम् ।।

अथ परिक्षितविषये प्रश्नाः परिक्षीयन्ते पापानि येन सः परिक्षितोऽश्वमेघः, तस्मिन्भवाः तस्य इमे वा इति पारिक्षिताः ।

अश्वमेधो हि संपूर्णपाक्षयकरः अतएव स्मृतयोप्यामनन्ति—

अश्वमेधसमं पुण्यं नास्ति क्वापि महीतले ।
भ्रूणहत्या समं पापं न किंचिदिहभूतले ।।

ते अश्वमेधयाजिनः परिक्षिताः तेषां शरीरावसाने कुत्राधिष्ठानमिति प्रश्नः—

अथ हैनं भुज्युर्लाह्यायनिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम ते यतञ्चलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्यासीद्दुहिता गन्धर्वगृहीता तम्पृच्छाम कोऽसीति सोऽव्रवीत्सुधन्वाऽऽङ्गिरस इति तं यदा लोकानामन्तानपृच्छामाथैनमब्रूम क्व पारिक्षित अभवन्निति क्व पारिक्षिता अभवम् स त्वा पृच्छामि याज्ञवल्क्य क्व पारिक्षिता अभवन्निति ।।१।।

अथ लह्यस्य पुत्रः लाह्यायनः तस्य गोत्रापत्यं लाह्यायनिः भुज्युः नाम्रा प्रसिद्धः, जनकसभायां समागतेषु ब्राह्मणेणु कश्चन, याज्ञवल्क्येति संबोध्य पप्रच्छ—गन्धर्वतः समवगतप्रश्नोत्तरोऽपि प्रतिवादिनं याज्ञवल्क्यं मूकीचिकीर्षुः समवतारयति घटनामिमाम् कश्मिचित् समये वयं मद्रेषु मद्रशब्दो देशवाची बहुवचनान्तः स्वभावात् तेषु, चरकाः चरन्ति अध्ययनार्थं भिक्षार्थं वा ये ते चरकाः पर्यटका इतिभावः पर्यव्रजाम परिव्रजितवन्तः । ननु परिपूर्वक वज्रधातोः गत्यर्थकतया लाह्यायनिरूपपरिव्रजधातूतात्तकर्तृवृत्तिव्यापार प्रयोज्यफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छानिरूपितोद्देशताकत्वेन ईप्सिततमत्वात् कर्तुरीप्सिततमं कर्म इत्यनेन कर्मत्वात् कथं न द्वितीया ? इति चैन्न विवक्षाधीनानि कारकाणि भवन्ति इति नियमात् अत्र परिव्राजकानामुत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापाराश्रयत्वस्याविवक्षितत्वे तन्निष्ठौपश्लेषिकाधिकरणतायाः विवक्षावश्यकत्वेन तत्र सप्तमी । ते वयं कपिर्नाम ऋषिः तस्य गोत्रापत्यं पुमान् काप्यः तस्य, पतञ्चलनाम्नः कस्यचिद् ब्राह्मणस्य विचरन्तो वयं गृहानैम अगच्छाम । तस्य पतञ्चलस्य एका दुहिता अविवाहिता कन्या अभूत् । सा च गन्धर्वेण गृहीता आविष्टा । तां दृष्टवा वयं परिवार्य तं पृच्छाम् पृष्टवन्तः कः असि इकन्नामासि ? सोऽव्रवीत् गन्धर्व उददीतरत् यत् - अङ्गिरस गोत्रः सुधन्वा नामास्मि । तदा वयं तस्यामाविष्टं गन्धर्वं सत्यापयितुं लोकानामन्तगतिं पृच्छाम । तदैकं गोपनीयं प्रश्नमब्रुवं समुपातिष्ठम्—पारिक्षिताः अश्वमेध परिक्षीणपापविपाकाः क्वाभवन् कुत्रस्थाने प्रतिष्ठिता अभूवन् । हे याज्ञवल्क्य इममेव गन्धर्व प्रति कृतं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्माँल्लब्धोत्तरश्च त्वां प्रतिपृच्छामः-पारिक्षिताः क्व ? यदि त्वं दत्तगन्धर्वसदृशोत्तरो भविष्यसि तदा त्वां ब्रह्मिष्ठं मँन्स्यामहे इति प्रष्टुराशयः ।

ब्रह्मविदवरिष्ठतया समधिगतपरोक्षवादः याज्ञवल्क्यः उवाच - वै निश्चयेन सः कन्यायामाविष्टः गन्धर्वः इत्थमेव युष्मान् उवाच यत् - ते पारिक्षिता अश्वमेघपापक्षयं नयन्तस्तद्दिव्यं लोकनगच्छन् यत्र अश्वमेधयाजिनः वाजिमेधयजनशीलाः गच्छन्ति । तेत्र कुलयान्ति इति पृष्टः खगोलं सविस्तरं वर्णयति—

स होवाचोवाच वै सोऽगच्छन्वै ते तद्यत्राश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति क्वन्वश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति द्वात्रिँ्शतं वै देवरथाह्न्यायान्वयं लोकस्तँ्समन्तं पृथिवी द्विस्तावत्पर्येति ताँ्समन्तं पृथिवी द्विस्तावत्समुद्रः पर्येति तद्यावतीक्षुरस्य धारा यावद्वा मक्षिकायाः पत्रं तावानन्तरेणाकाशस्तानिन्द्रः सुपर्णो भूत्वा वायवे प्रायच्छत्तान्वायुरात्मनि धित्वा तत्रागमयद्यत्राश्वमेधयाजिनोऽभवन्नियेवमिव वै स वायुमेव प्रशशँ्स तस्माद्वायुरेव व्यष्टिर्वायुः समष्टिरप पुनर्मृत्युं जयति य एवं वेद ततो ह भुजयुर्लाह्यायनिरूपरराम ।।२।।

पूर्वार्धस्तु सम्बन्ध एव व्याख्यातः द्वात्रिंशतं द्ववधिकत्रिंशद्योजन परिमाणं देवस्य रथाः आदरार्थे बहुवचनं तान् रथान् , अह्नि दिने, तस्य सदृशोऽयं लोकः पृथिवी, तस्माद्ः द्विगुणिता तस्मात् पृथिवी भागात् समुद्रः द्विः द्विगुमित रूपेण पर्येति, ततः क्षुरस्य धारा इव मक्षिकायाः पत्रं पक्ष इव तावदन्तरेण अवकाशत्वात् य आकाशः तत्र इन्द्रः, सुपर्णो भूत्वा पक्षिरूपः अश्वमेधयाजिनः, वायवे आकाशात् वायवे पवनाय प्रायच्छत् समर्पयति । स वायुः तान् आत्मनि स्वस्वरूपे धृत्वा समधिकसूक्ष्मतया तत्र अगमयत् परमे व्योमन् यत्र अश्वमेधयाजिनः यान्ति । तस्माद् व्यष्टिः समष्टिः च उभयात्मको वायुरेव, अतो वाजिमेधयाजिनः प्रशशंसुः । एवं पारिक्षिताः द्वात्रिंशत्सहस्त्रयोजनं सूर्यरथमतिक्रम्य ततो द्विगुणतां पृथिवीमतिलङ्ध्य, ततोऽपि द्विगुणितं सागरं तीर्त्वा क्षीरसागराख्यं ततः उपरि क्षुरधार इव मक्षिकापक्ष इव यो वै अति सूक्ष्मौ हृदयाकाशमार्गः तस्माद्वायुना नीयमानाः निजस्वरूपे विभ्रताः निहिताः अश्वमेधयाजिसालोक्यं साकेतं प्रतिगम्यन्ते । एवं विद्वान् अपमृत्युं भगवद्विस्मरणपूर्वकमरणं जयति । इत्थं लब्धोत्तरः भुज्यु लाह्यायनिः उपरराम तूष्णीमगात् ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये तृतीयं भुज्युब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। चतुर्थब्राह्मणम् ।

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुस्तनूम् ।
चतुर्थं चतुरात्माऽहं चतुर्थे राघवं श्रये ।।

अथ चतुर्थे याज्ञवलक्योषस्तसंवादः, प्रस्तूयते यस्मिन् सर्वान्तरत्वेन प्रत्यगात्मनो निरूपणम् , साक्षात्सम्बन्धेन च ब्रह्मणोऽपरोक्षानुभूतिविशेष्य साक्षात्प्रतिपादनम् —

अथ हैनमुषस्तश्चाक्रायणः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्मय आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो यः प्राणेन प्राणिति स त आत्मा सर्वान्तरो योऽपानेनापानीति स त आत्मा सर्वान्तरो यो व्यानेन व्यानीति स त आत्मा सर्वान्तरो य उदानेनोदानिति स त आत्मा सर्वान्तर एष त आत्मा सर्वान्तरः ।।१।।

अथोपरते भुज्यौ जनकराजसंसदि वर्तमानः उषस्तो नाम ब्राह्मणः प्राह—उषसं विवेकरूपं प्रातःकालम् यस्तनोति तथाभूतः पप्रच्छ प्रश्नविषयं कृतवान् याज्ञवलक्य इति सम्बोध्य उवाच प्रश्नाक्षराणि प्रतुष्टाव, हे याज्ञवल्क्य ! अद्याहं सर्वान्तरं प्रत्यगानं विजिज्ञासे, इति प्रश्नमवतारपति, यतः साक्षात् निरस्तसकलकुहकं दिग्देशकालाद्यवच्छिन्नम् अपरोक्षात् अपरोक्षम् अक्षिभ्यां परोभूतम् , परोक्ष इति **परोक्षेलिट्** (पा०अ० ३/२/११५) । इत्यनेन परोपपदात् अक्षिशब्दात् अच् प्रत्ययः टिलोपः परो इत्योकारश्च निपात्यते । प्रकृते हि साक्षात् अपरोक्षात् इत्युभयत्र पञ्चम्यन्तमव्ययम् । एवं साक्षादिति पदेन परमात्मनोऽव्यावहितत्वं सर्वकर्तृकत्वं निवारपति, अपरोक्षादित्यनेन दिग्देशकालाद्यवच्छिन्नत्वं निवारयति, इति प्राञ्चः । नव्यास्तु, साक्षादिति सगुणब्रह्मणो विशेषणम् अपरोक्षादिति निर्गुणब्रह्म विशेषणमिति प्राहुः । एवम् अक्षाणि इन्द्रियाणि तैः सह वर्तमान साक्षम् , तस्मात् साक्षात् क्रियाविशेषणमेवतत् । भक्तानां हि समक्षं सगुणब्रह्म हि सकलैरप्राकृतैः इन्द्रियैः तदुपलक्षितैः कोटिकोटिकन्दर्पदर्पदलनशीलै रवयवैः समेतं करुणानिकेतं प्रकटीभवति । एवम् अपरोक्षादिति निर्गुणब्रह्मणः सङ्कीर्तनं तथा हि-निर्लीनगुणकमपि साकेतनिवासि सर्वेषामवतारि नित्यमविकारि श्रीरामभिद्येयं ब्रह्म । अपरोक्षात् भक्तानां न परोक्षं, यद्वा परोक्षकालतः अतीतं रामावतारात् पूर्वमपि श्रीरामत्वेन तत् प्रसिद्धेः । अथवा साक्षादिति पदेन भगवन्मायाकर्तृकं व्यवधानं निवारयति, अपरोक्षात् इति पदेन भक्तनिष्ठं मायाकर्तृकावरणं निराकरोति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं साक्षादिति पदं भगवत्कर्तृके भक्तदर्शने, अपरोक्षादिति पदं च भक्त कर्तृके भगवद्दर्शने योज्यम् । तथा च भगवान् भक्तान् साक्षात् पश्यति, भक्तश्चापि भगवान् परोक्षभिन्नतया प्रत्यक्षतो दृश्यते । ननु साक्षाच्छब्दस्य द्रष्टृविशेषणत्वे किं मानमिति चेत्, साक्षिपदनिष्पत्तौ **साक्षात् द्रष्टरि** (पा०अ० ५/२/९१) इति वदन् पाणिनिरेव । एवं साक्षात् पश्यतीति साक्षी इत्यनेन मायावादिप्रजल्पितः परमात्मनि निरवयवत्ववादोऽपि विषादमासादितः । न खलु निरवयवः साक्षात् द्रष्टुं प्रभवेत् , तथात्वाभावे तस्य साक्षित्वमपि न सिद्ध्येत् , साक्षात् शब्दस्य इन्द्रियै सह वर्तमानत्वरूपार्थस्तु प्रागेव व्याख्यातः, न च दृशेर्ज्ञानार्थत्वे साक्षादित्यस्य च व्यवधानशून्यतार्थत्वे साक्षीति शब्दस्य निर्व्यवधानं सर्वज्ञातृत्वरूपेऽर्थे समङ्गीकृते निरवयवत्वादः पुनरूच्छ्वासित इति वाच्यम्। साक्षादिति शब्दस्य पश्यतीति क्रियापदेन सह समभिहारात् दृशेः दर्शनाभिन्नार्थस्य विधात्राऽपि विधातुमशक्यत्वात् सब्दशक्तावेव तादृगर्थस्यासत्वात्तिलेभ्यस्तैलादिरिव तत्रासत्वे ततस्तदनुपलब्धेः । एवम् द्रष्टृशब्देन च विशेषणत्वेन साक्षात् परस्य समुपस्थितिफलवैयर्थ्याच्च । यद्वा अक्षाः विषयाः तै सह सततस्मृतिविषयीभूतैः सहवर्तमानः साक्षः विषयलम्पटो जीवः, तं साक्षं निजभजननिजपदपद्मप्रपत्तिवहिर्भूतम् अत्ति खादति इति साक्षात्। एवम् अपरोक्षम् अविद्या नपरोक्षार्थरूपवेदधर्मविश्वासकं नास्तिकमपरोक्षमअति इत्यपरोक्षात। अथवा साक्षं कार्यकारणभावतया प्रत्यक्षप्रमाणसाधकैरिन्द्रियैः सह वर्तमानमनुमानं साक्षम् तदत्ति इति साक्षात् , अनुमानप्रमाणागोचरम् । एवं परोक्षं तन्नास्ति यस्मिन् तत् अपरोक्षं, चार्वाकीयं प्रत्यक्षवादम् अत्ति खादति इत्यपरोक्षात्। तादृशं सगुणनिर्गुणं ब्रह्म साक्षात्परोक्षात्व्यवह्रियते । यद्वा साक्षात् शब्दः निर्व्यवधानदर्शनपरः, अपरोक्षात्पदञ्च सार्वकालिकावरणनिराशसम्भावनापरम् । तथा च साक्षात् वेदान्तेन प्रतिपाद्यमानम् , अपरोक्षात् प्रत्यक्षदर्शिनाम् ऋषीणां समूहात् तदपेक्ष्य वर्तमानं यद् ब्रह्म, यश्च आत्मा सर्वव्यापकपरमेश्वरः स एव, यश्च सर्वान्तरः सर्वेषाम् आन्तरं हिन्दूजागरणं तदस्यास्तीति सर्वान्तरः । सर्वेषामअन्तं विनाशं राति इति सर्वान्तरः । अथवा सर्वेषाम् अन्तरः अन्तरङ्ग निकटतमः, तम् आत्मानं परं ब्रह्म मे मह्यं व्याचक्ष्व विवृणु । इति शब्दोऽयं प्रश्नमर्यादासूचकः । इति पृष्टो याज्ञवल्क्यः प्राह—एषः अयमेव मया दृश्यमानः ते सेव्यतया त्वत्सम्बन्धिभूतः सर्वान्तरः आत्मा कतमः स, इति प्रश्ने शाखाचन्द्रन्यायेन श्रोत्राद्यवच्छिन्नव्याजेन निर्व्याजब्रह्मप्रतिपादनम् । अवच्छेदकानां निदर्शनम् । यः प्राणेन प्राणिति इत्यादि यश्चाभोक्ताऽपि, प्राणापानव्यानोदानसमानादिभिः, प्राणादिविषयान् अनुभवति, एष एव त्वत्सम्बन्धितभूत आत्मा सर्वान्तरः सर्वेषां प्रेमभाजनमित्युत्तरम् ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथात्मनोऽनिर्वचनीयतां साधयति—

स होवाचोषतश्चाक्रायणो यथा विब्रूयादसौ गौरसावश्व इत्येवमेवैतद्व्यपदिष्टं भवति यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरः । न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारँ् शृणुया न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः । एव त आत्मा सर्वान्तोरऽतोऽन्यदार्तं ततो होषस्तश्चाक्रायण उपरराम ।।२।।

एवं कथयति सति याज्ञवल्क्ये, चक्रस्य गोत्रापत्यं चाक्रायण उषस्तः पुनर्याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ—यथा कोऽपि असौ गौः, असौ अजः इति सङ्केतग्राहम् विब्रूयात् तथैव एतद् ब्रह्म तटस्थालक्षणतया भवता इदं व्यपदिष्टं भवति सङ्केतेन निर्दिष्यमानं वर्तते, दर्श्यते न हि, तस्मात् यत् एव न किञ्चित् ततोऽन्यत्, यत् साक्षात् सर्वसाक्षी, अपरोक्षात् प्रत्यक्षं दृश्यते भक्त, सः सर्वान्तरात्मरूपेण व्याकर्तव्य इति प्रश्नः । याज्ञवल्क्यः प्राह-एष इत्याद्यतिसन्निकृष्टःत्वत्सम्बन्धिभतोऽयमात्मा कतमः, देहेन्द्रियमनोबुद्धिषु केनचित् स्वरूपेण प्रदर्शय ?

याज्ञवल्क्यः प्राह स्वरूपेण दर्शयितुमशक्यं, कथमिव ? प्राकृतैरिन्द्रियैस्तस्य ग्रहणासम्भवात् । अतः निषेधमुखेन प्राह—त्वं दृष्टेः द्रष्टारं साक्षित्वेन दर्शनेन्द्रियस्यापि दर्शकं न पश्ये न द्रष्टुं शक्नोषि । यद्वा दृष्टेः दोषबहुलेन प्राकृतचक्षुषा न द्रष्टुं शक्नोषि यथोक्तं श्रीगीतासु—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।

(गीता ११/८)

एवमन्यत्रापि षष्ठीतृतीयाभ्यां व्याख्यातव्यं, तथा हि — हे उषस्त ! श्रुतेः श्रोतारं कर्णेन्द्रिय करणश्रवणमसम्भवम् । एवं श्रुतेः श्रुत्या श्रोतारं मुख्यतया श्रवणकर्तारं श्रुत्या प्राकृतेन श्रवणेन न शृणुयाः न श्रोतुं शक्नोषि । एवम् मतेरपि मननकर्तारं अथवा मत्या प्राकृतबुद्ध्या मतेर्मनसा वा न मन्वीथाः नैव मन्तुं शक्नोषि । विज्ञातेः तस्या अपि विज्ञातारं तथा न विजानीयाः न विज्ञातुं क्षमसे, तस्मात् निदर्शयामि तेन दर्शयामि, एष ते सर्वान्तरः आत्मा विशिष्टाद्वैतरूपः सर्वान्तरः, अतः अस्मात् अन्यत् आर्तम् व्याकुलम् , अथवा आर्तम् याचकम् **अर्दि याच्ञायाम्** इत्यस्मात् दकारलोपेन निष्ठान्तरूपमेत्, **शेरद्घनं नार्दति चातकोऽपि** इति रघुकाव्योक्तेश्च परमात्मनोऽन्यत् आर्तं याचकं केवलं भगवानेव दाता । यद्वा ऋतं परमात्मा तस्मिन् भवं आर्तत् । यत्तु

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मायावादिभः एतदेवानार्तम् अविनाशि इतोऽन्यन्मिथ्या इति वान्तं तत् श्रुत्यक्षरविरुद्धम् आर्तशब्दस्य क्वचिदपि तन्त्रे मिथ्यार्थत्वेनाप्रसिद्धेः । एवम्—

दाता सदैको रघुवंशकेतु र्भूतानुकम्पि द्विषतां प्रकम्पी ।
ऋतं परब्रह्म कृपालु रामो नित्यं बृहत्सत्यमतोऽन्यदार्तम् ।

एवं प्राप्तप्रश्नोत्तरः चाक्रायण उषस्त उपरराम तूष्णीं बभूव ।।श्रीः।।

इति बृहदाख्यकोपनिषदि तृतीयध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये चतुर्थब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।
।। इति राघवः शन्तनोतु ।।

।। पञ्चमब्राह्मणम् ।।

मंगलाचरणम्

अथ समाहतचित्तमनोमलाः
गतकला यतयो यमुपासते ।
तमिह मैथिलिकण्ठविभूषणं
रघुवरं कलये किल पञ्चमे ।।

अथ हैनं कौषतकेयः प्रपच्छ याज्ञवल्कयेति होवाच यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो योऽशयनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति । एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतस्तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद्बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याभ मुनिरमौनं च मौनं च निर्विद्याऽथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश एवातोऽन्यदार्तं ततो ह कहोलः कौषीतकेय उपरराम ।।१।।

अथ कहोलः ब्राह्मणः याज्ञवल्क्यं पृच्छति—याज्ञवल्क्य । साक्षात् सर्वसाक्षिकं, ननु ब्रह्मणः साक्षित्वे किं मानम् ? **सर्वलोकस्य साक्षीति श्रुतिः, गतिर्भर्त्ता प्रभु साक्षी** (गीता–८/१८) तमात्मानं मे व्याचक्ष्वेति । उत्तरमाह—अशनाया बुभुक्षा,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पिपासा जलं पातुमिच्छा, इमे द्वे यः अत्येति एवं शोकमोहजरामृत्यूनपि अतीतः, स एव आत्मा । एतमात्मानं निजसेव्यत्वेन सर्वरूपेण विदित्वा पुत्रवित्तलोकेति त्रिप्रकारिकामेषणां विहाय व्युत्थाय परिव्रज्य अथान्तरं भिक्षाचर्यं वैदिक सिद्धान्तानुसारं भिक्षाचरणं कुर्वन् एवं सकलप्रपञ्चमुक्तः ब्राह्मणःपाण्डित्यं निर्विद्य अभिमानतया त्यत्त्वा बाल्येन बालभावेन तिष्ठासेत् । बालवत् सम्मानमानादिवर्जितो भवेत् । पश्चाद्बाल्यमपि निर्विद्य मौनी स्यात् । अथ अमौनं मौनं त्यक्त्वा ब्राह्मणः केन स्यात् ? येन केनाप्याश्रमधर्मसम्बन्धिना स्यात् । एवम् ईदृक् परमात्मा अत अन्यत् सर्वमार्तं विपद्ग्रस्तम् एवम् लब्धोत्तरः कहोलः विरराम तृष्णीमगात् ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकषदि तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये कहोलनाम पञ्चमब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।
।। इति राघवः शन्तनोतु ।।

।। षष्ठब्राह्मणम् ।।

अथ चलाललिताम्बरधारिणं
सुभुजदूषणरावणमारणम् ।
भरतभावनया हृदि भावितं
रघुवरं किल षष्ठ उपैमि तम् ।।

अथहैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदꣳ सर्वमप्स्वोतं च प्रोतं च कस्मिन्नु खल्वाप ओताश्च प्रोताश्चेति वायौ गार्गीति कस्मिन्नु खल्वन्तरिक्षलोका ओताश्च प्रोताश्चेति गन्धर्वलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु गन्धर्वलोका ओताश्च प्रोताश्चेत्यादित्यलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्वादित्यलोका ओताश्च प्रोताश्चेति चन्द्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु चन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति नक्षत्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु नक्षत्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति देवलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु देवलोका ओताश्च प्रोताश्चेतीन्द्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्विन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति प्रजापतिलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु प्रजापतिलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति सहोवाच गार्गिमाऽतिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपप्तदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गिमाऽतिप्राक्षीरिति ततो ह गार्गी वाचक्नव्युपरराम ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाचं खनतीति वाचक्नुः ऋषिः, तस्य गोत्रापत्यं पुत्री वाचक्नवी गार्गी ओतप्रोतत्वविषयं पृच्छति—

जले वातोऽनिलोऽन्तरिक्षे गन्धर्वे च नभस्तसलम् ।
स सूर्ये स विधौ सोऽपि नक्षत्रे सोऽपि दैवते ।।
स वासवे चैव लोके प्राजापत्ये तथैव सः ।
ब्रह्मलोके सोऽपि चेत्थं ओतप्रोतपरम्परा ।।
अतोऽन्यत् प्रष्टुकामा सा मातिप्राक्षी रितिदृतम् ।
याज्ञवल्क्येन सा क्षिप्ता गार्गी वै ब्रह्मवादिनी ।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये गार्गीनाम षष्ठब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। इति राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ सप्तमब्राह्मणम् ।।

नीलनीलाम्बुजश्यामलंकोमलं मैथिलीमण्डनं चैनसां खण्डनम् ।
राममाभामयं ब्रह्म मायाहरं, भूभुजां सत्तमं सप्तमे सम्भजे ।।

इदानीं याज्ञवल्क्यारूणिसंवादव्याजेन सूत्रात्मनः सविस्तरं विवेचनं प्रस्तौति—

अथ हैनमुद्दालक आरूणिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेष्ववसाम पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानास्तस्यासीद्भार्या गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत् कबन्ध आर्थर्वण इति सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिका ँ्श्च वेत्थ नु त्वं काप्य तत्सूत्रं येनायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानिं संदृब्धानि भवन्तीति सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाहं तद् भगवन्वेदेति सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिका ँ्श्च वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्तर्यामिणं इमं च लोकं परं च लोक ँ् सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमयतीति सोऽबवीत् पतञ्चलः काप्यो नाहं तं भगवन् वेदेति सोऽब्रवीत् पतञ्चलं काप्यं यज्ञिका ँ् श्च यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात्तं चान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित् स लोकवित्सदेववित्स वेदवित्स भूतवित्स आत्मवित्स सर्वविदिति तेभ्योऽब्रवीत्तदहं वेद तच्चेत्वं याज्ञवल्क्य सूत्रमविद्वा ँ् स्तं चान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजसे मूर्धाते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विपतिष्यतीति वेद वा अहं गौतम तत्सूत्रं तं चान्तर्यामिणमिति यो वा इदं कश्चित्ब्रूयाद्वेद वेदेति यथा वेत्थ तथा ब्रूहीति ।।१।।

अथ एनं याज्ञवल्क्यमारूणिः अरूणस्यापत्यं पुमान् अरूणपुत्रः उद्दालकः याज्ञवल्कय इति सम्बोध्य पप्रच्छ– मद्रेषु साम्प्रतं (चेन्नइ) मद्रास इति प्रसिद्धेषु यज्ञं यज्ञसम्बन्धिनीं प्रक्रियामधीयानाः समधिगच्छन्तः आवसाम निवासं कृतवन्तः वयम् । तत्र काप्यस्य कपि गोत्रस्य पतञ्चलस्य गृहेषु तिष्ठन्तः, तस्य ब्राह्मणस्य भार्या या गन्धर्वेण गृहीता तां पतञ्चलपत्न्यामाविष्टं यक्षं वयमधीयानाः यज्ञक्रियां–कोऽसि किं जातीयोऽसि ? इत्यपृच्छाम पृष्टवन्त आस्म । अस्मासु पृष्टवत्सु तस्यामाविष्टो गन्धर्व उवाच–अहमथर्वणः अपत्यं पुमानाथर्वणो नामतः कबन्धोऽस्मि । अत्रालङ्कारिकरीतया कश्चनापरोऽप्यर्थोऽवगम्यते । गन्धर्वविशो भार्यायामिति प्रघट्टकेन प्रतीयते यदनुषितगुरुकुलानधीतशास्त्रा, चात एव गृहकर्मण्येव व्यासक्तबुद्धिरासीत् सा, तस्यां गन्धर्व इव ब्रह्मज्ञं मन्यमानस्य कस्यचिदावेशो बभूव । आपाततः समधिगतवेदार्थोऽपिमुमुक्षायामप्रवृत्तत्वाद् ग्राम्यगीतादिषुकृतव्यसनत्वाच्च श्रुत्या तस्मिन् गन्धर्वत्वप्रयोगः कृतः । गन्धर्वस्तावत् भोगबहुलः उपदेययोनिविशेषः । यो विषयसुखलालसापरः तत्तद्देवपरितोषणपरो नृत्यगीतादिभिः, एवमलब्धनिर्वेदो विषयेषु, कर्मकाण्डादिप्रक्रियाभिः सामगानादिभिश्च तोषयति तत्तद्देवान्, अन्ततस्तु कामलिप्सुरनवाप्तपरमात्मपदपद्मपरागानुरागतया समवशिष्टप्राक्तनजन्मकर्मविपाक—कुवासनः शरीरत्यागेऽपि मुक्तं मन्यमानोऽप्यमुक्तः कलत्राद्याशक्ततया बुभुक्षुस्तस्यामेवाविष्टः, अत एवात्मानं कबन्धं मन्यते । कबन्धो नाम शिरोविहीनः शरीरभागः श्रुतिशिरो वेदान्तः तत्प्रतिपाद्यो भगवाँश्च । अतएव समामनन्ति गोस्वामितुलसीदासमहाराजाः—

क्षीरसिन्धु गवने मुनिनाथा । जह रह श्रीनिवास श्रुतिमाथा ।
(मा० १-१२८-४)

रूपान्तरम्—

नारदो मुनिनाथस्तु जगाम क्षीरसागरम् ।
यस्मिन् वसति श्रुतिशिरः श्रीनिवासः सदा हरिः ।।

एवं श्रुतिशिरोभूतं ब्रह्मज्ञानं वर्जितवेदार्थस्तदयुक्तश्च जीवः कबन्ध इव । व्युत्पत्यर्थश्च कं ब्रह्मसुखं वा बध्नाति संसारकर्मभिर्न मुमुक्षुर्भवति यस्तथाभूतः इति श्रुत्यर्थोऽत्र मे प्रतिभाति । पुनः सः कपिगोत्रोत्पन्नं पतञ्चलं याज्ञिकान् यज्ञप्रतिपादककर्मकाण्डमधीयानान् अस्मान् आरूणिरब्रवीतृ समपृच्छत्–हे काप्य ! नु किं तत्सूत्रं ब्राह्मणः धारणाशक्तिविशेषं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेत्थ जानासि, येनायं लोकः दृश्यमानसंसारः परश्च स्वर्गादिः चकारेण तल्लोकवासिनः सर्वाणि भूतानि चराचराणि सन्दृब्धानि निबद्धानि सूत्रे स्रज इव । एवं कृतप्रश्नः पतञ्चलः प्रत्यब्रवीत्–भगवन् पूज्यवर ! अहं तत्सूत्रं न वेद्मि न जानामि कूटधार्मिगृहस्थत्वात् कर्मभिर्बद्धो बन्धननिदानं कथं जानीयाम् । भूयो गन्धर्वः द्वितीयं जिज्ञास्यमपृच्छत्–हे कपिगोत्र पतञ्चल ! त्वं याज्ञिकैः सह किं वेत्थ, किं जानासि तमन्तर्यामिणम् ? अन्तस्थितः यमयती तच्छीलः यः हृदये स्थित्वा समस्त जीवन् नियमयति सोऽन्तर्यामी अत्र अन्तरुपपदात् यम्धातोः **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** इत्यनेन णिनिः आदिवृद्धिः पुनः कर्मणि अट् कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि इत्यनेन णत्वम् अन्तर्यामणम् । यः इमं लोकं परलोकं सर्वाणि भूतानि चराचराणि, अन्तरः सर्वेषां हृदयस्थितः नियमयति तत्तत्कर्मसु नियुङ्क्ते, इति पृष्टः । अस्मासु मौनीभूतेषु याज्ञिकेषु पूर्ववत् पतञ्चलः प्रतिवचनं दत्तवान्–नाहं वेद । अथ गन्धर्वः पतञ्चलमस्मान् याज्ञिकांश्च अब्रवीत्, मुख्यतः अस्मत् कुलपतित्वेन पतञ्चलमेव नामग्राहं सम्बोध्य–हे काप्य ! यः कश्चन ब्रह्मिष्ठः, पूर्वं मया पृष्टं सकलजगत् सन्दृब्धण हेतुं सूत्रं निखिलजगन्नियन्तारं तमन्तर्यामिणं विद्यात् स एव ब्रह्मवित् ब्रह्मज्ञो ब्रह्मलब्धा च स एव लोकदेवभूतदिसर्वात्मनां वित् विन्दको वे त्ताच । सः तेभ्यः पतञ्चलसहितेभ्यः मत्रभुखेम्यो याज्ञिकेभ्यः अब्रवीत्, तस्मादेवाहमपि सूत्रमन्तर्यामिणं च जानामि । हे याज्ञवल्कय ! त्वं चेत् यदि तत्सूत्रं तं च अन्तर्यामिणं अविद्वान् वेत्तीति विद्वान् न वेत्तीति अविद्वान् अजानन्, ब्रह्मगवीः ब्रह्मणाम् ब्राह्मणानां गावः इति ब्रह्मगव्यः **गोरतद्धितलुकि** इत्यनेन समस्तगोशब्दात् टच् प्रत्यये अनुबन्धकार्ये टित्वान्ङीपि ब्रह्मगवी, एतस्यैव शसि ब्रह्मगवीः, उदजसे नयसि चेत्, तर्हि ते मूर्धा शिरः विपतिष्यति विकृतं सत् भूमिसाद् भविष्यति, इत्याक्षेपप्रकारः । याज्ञवल्क्यः प्रत्युत्तरितवान्–हे गौतम ! तद् गोत्रज आरूणे वा, निश्चयेन अहं त्वया गन्धर्वात् ज्ञातं स्त्रीमुखात् तत् सूत्रं तमन्तर्यामिणं च अहं याज्ञवल्क्यः वा निश्चयेन वेद जानामि, तस्माद् गाः नयामि इति विज्ञाप्यमानः याज्ञवल्क्य वाक्ये शंशयानश्च उद्दालकः समाक्षिपत्–यः कश्चिदपि ब्रह्मानभिज्ञः वेद जानमि सूत्रमन्तर्यामिणमिदमित्याकारकं व्यलीकं वचनमपि ब्रूयात् वक्तुं शक्नोति । वचने का दरिद्रता अतः यथा त्वं वेत्थ तथा तेन प्रकारेण सूत्रमन्तर्यामिणं च बूहि व्याख्याहि इति, इति शब्दः आरूणिवाक्यानुवादं सूचयति ॥ श्रीः॥

अथ सूत्रं निरूप्यते—

स होवाच वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना वे गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्चलोक. सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति तस्माद्वै गौतम पुरूषं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रेतमाहुर्व्यस्त्र्ँ सिषतास्याङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण संदृब्धानि भवन्तीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्यान्तर्यामिणं ब्रूहीति ।।२।।

याज्ञवल्क्यः निश्चित्य उवाच–वै शब्दः एवार्थः, हे गौतम् ! वायुरेव तत्सूत्रं भगवदीयजीवसमाहरणरूपशक्तिविशेषावच्छिन्नदेवता येन लोकंपरलोकसहितानि चराचराणि भूतानि सन्दृब्धानि ससन्दर्भं सूत्रितानि भवन्ति । युक्तिमाह—अत एव वायुरूपसूत्राभावे प्रेतं मृतं पुरूषं जना आहुः कथयन्ति, अस्य अङ्गानि व्यस्त्रंसिषत विषकलितानि जातानि । न कोऽपि जीवन्तं कथयति अस्य अङ्गानि विषस्त्रंषितानि तत्र वायुरूपसूत्रस्य सत्वात् तस्मात् गौतम ! सम्पूर्णानि भूतानि सूत्ररूपेण वायुनैव सन्दृब्धानि, तस्माद् वायुनाम्ना व्यह्वियमाणो रूपरहितस्पर्शवत्वाभिन्नशक्त्यावच्छिन्नो भगवानेव सूत्रम् । इत्युत्तरेण सन्तुष्ट उद्दालक एवमेवैतत् इति वाक्येन याज्ञवल्क्योत्तरं समर्थयति, एतत् त्वदुक्तमेव यथा मया गन्धर्वात् ज्ञातं तथैव भवताप्युक्तम् । अथ याज्ञवल्क्य अन्तर्यामिणं ब्रूहि ।।श्रीः।।

साम्प्रतमन्तर्यामी निरूप्यते—

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।३।।

भगवतो हि पञ्चधाविग्रहाः परिकल्पिताः परो, विभवः, व्यूहः, अन्तर्यामी अर्चा इति । तत्र परो नाम समधिश्रितासमोर्ध्वपरमानन्ददिव्यकल्याणगुणगण सरस सरसिज समुच्छलितनिसर्गनिर्मलभक्ति परिमलसमाकृष्टपरमोत्कृष्टभावुकभक्तभ्रमरनिकरारस्यमानः प्रेममकरन्दगोविन्दयक्षकिन्नरसुरनरमुनिहनुमदादिपरिकरपरिचर्यमाणः श्रीमच्चरणारविन्दश्रीसीतासमलङ्कृतवामभागभूरिभाग चमत्कृतचपलाचाकचिक्यचारमीकररोचिष्णु सिंहासने विराजमानः साकेत बिहारी सर्वावतारावतारी भूभारहारी परब्रह्मपरमेश्वरः श्रीरामहरिरेव विभवः, नृसिंहवामनादि भगवदवतारविशेषाः व्यूहः, वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरूद्धाः चित्ताहंकार बुद्धिस्वामिनः अर्चावताराः, साम्प्रतं श्रीवैष्णवाद्यैः पूज्यमानाः शिशुराघवबाल गोपालश्रीरामश्रीकृष्णश्रीमन्नारायणादिप्रतिमाः अन्तर्यामी, समस्तप्राणिनां अन्तःस्थितो नियम सर्वभूतानि समनुपदमेव व्याख्यायमानः अन्तःस्थितो यमयति इति तच्छीलः इति तस्य व्युत्पत्तिः । य परमातमा पृथिव्यां तिष्ठन् अत्र तिलेषु तैलिमितिवत् अभिव्यापकाधारे सप्तमी । पृथिवीमभिव्याप्य तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरः तस्या अति समीपः जडप्रायत्वात् यं निकटस्थमपि पृथिवी न वेद न जानाति यस्य च पृथिवी शरीरं इत्यनेन निरवयवत्ववादो निराकृतः । तथा चिदचितोः परमात्मनः शरीरत्वम्, पृथिव्येव यस्य चेष्टाश्रयः इति भावः यश्च अन्तरः शरीरीव शरीरे पृथिवीं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमयति नियमयति गन्धान्नपृथक्करोति एषः ते तव स्वामिभूतः आत्मा परमात्मैव अन्तर्यामी अमृतः मृतभिन्नः ।।श्रीः।।

अथ जले

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं योऽपोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्यामयमृतः ।।४।।

अप्सु जले, अद्भ्यः जलात् अन्तरः अन्तरङ्गसारः, आपः जलानि यं न विदुः तिरोहितचैतन्यरूपजलत्वावच्छेदात् तदभिमानवत्वाच्च परिच्छिन्नज्ञातृशक्तित्वाच्च स्थानानुकूलं तं पदार्थमेव स्वेच्छया शरीरत्वेन स्वीकरोति । अत आह—यमयतीपैति अन्तरः सन् अपः जलानि यमयति, समुद्रनियन्त्रित्वं अन्तर्यामिणः श्रीरामस्य संघटते ।।श्रीः।।

अथाग्नावन्तर्यामित्वं तिरूपयति—

योऽग्नौ तिष्ठनग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरं योऽग्निमन्तरोयमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।५।।

एवमेव अग्नौ अग्निमभिव्याप्य तिष्ठन् श्रीसीतारूपेण अग्नेरन्तरः तस्मात् विलक्षणः अत एव सीताया अग्निप्रवेशादन्तर्यामित्वं सङ्गच्छते यथोक्तं श्रीमानसे—

सुनहु प्रिया व्रत रूचिर सुशीला । मै कछु करब ललित नर लीला ।।
तुम पावकमह करहु निवासा । जब लगि करहुँ निसाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभुपद धरि हिय अनल समानी ।।

(मा०-३-२४-१,२,३)

रूपान्तरम्—

श‍ृणु प्रिये व्रतरूचिरे सुशीलके करोमि वै ललितमुनष्यचेष्टितम् ।
कुरुष्व भो वसतिमथाग्निमाश्रिता तनोम्यहं दनुजवधञ्च यावता ।।
यदैव रामः सकलं निजेहित निवेदयामास विदेहनन्दिनीम् ।
तदैव सीता प्रभुपादपङ्कज निधाय चित्ते ज्वलनं विवेश सा ।।

अग्नि नियामकत्वं लङ्कादहनप्रसङ्गे हनुमता कृते श्रीसीता प्रार्थने द्रष्टव्यम् यथोक्तं श्रीबाल्मीकीयरामायणे —

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ।।

दह्यमाने च लांगूले चिन्तयामास बानरः ।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मानन मां दहति सर्वतः ।।

सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च ।
पितुश्च मम सख्येन न मो दहति पावकः ।।

(बा. रा. ५/५३/२८,३४,३८)

अथान्तरिक्षेऽन्तर्यामित्वं निरूपयति —

योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्ष दन्तरो यमन्तरिक्षं न वेद यस्यान्तरिक्षँ शरीरं योऽन्तरिक्षमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।६।।

अन्तर्गतानि ऋक्षाणि नक्षत्राणि यस्य तदन्तरिक्षम् , अत्र **व्यत्ययो बहुलम्** इत्यनेन रेफस्य लोपः । एवं यः अन्तरिक्षे तिष्ठन् तस्माद् विलक्षणः तच्छरीरः तदन्तरस्तं मयमपति, स एव तवापि व्यापकीभूतः मरणवर्जितपरमात्मा । अन्तर्यामीत्यर्थः ।।श्रीः।।

अथ वायावन्तर्यामित्वं निरूपयति —

यो वायौ तिष्ठन् वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।७।।

वाति सर्वत्र गच्छति सुरभिमसुरभिञ्च सूचयति यस्तथाभूतः वायुस्तस्मिन् तिष्ठन् ततोऽपि विशेषः, तदीय शरीरावच्छिन्नः तत् समीपगः तं यमयति यस्स एव त्वदात्मभूतोऽन्तर्यामी । इदं तृणावर्तवध प्रसङ्गे भगवति श्रीकृष्णे द्रष्टव्यम् ।।श्रीः।।

अथ दिव्यन्तर्यामित्वं प्रतिपादयति —

यो दिवि तिष्ठन्दिवोऽन्तरो यं द्यौर्न देव यस्य द्यौः शरीरं यो दिवमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।८।।

दीव्यति प्रकाशते या सा द्यौः स्वरादिसत्यपर्यन्तः पञ्चधाविभक्तो देवलोकः तस्यां तिष्ठन् ततोऽपि विशिष्टः तद्वत् सूक्ष्मशरीरः तं समीपस्थः सन्नियमयन् त्वदात्मभूतो भजतेऽन्तर्यामित्वम् । इदं श्रीरामायणे मारीचक्षेपणादौ श्रीभागवते च व्योमासुरादिवधादौ श्रीरामकृष्णयोरन्तर्यामित्वं स्पष्टमेव ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथादित्येऽन्तर्यामित्वं निरूपयति —

य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।९।।

आदित्यः सूर्यः तस्मिन् तिष्ठन् ततों ? पि विलक्षणः **सूर्यस्यापि भवेत् सूर्य** इति स्मृतेः, एवं परिच्छिन्नत्वात् यं सूर्यनारायणोऽपि न वेद सः सूर्यशरीरः सूर्यनियामकः त्वदात्मैव अनर्तामीत्यर्थः ।।श्रीः।। यथोक्तं श्री रामस्तवराजे —

सूर्य मण्डल मध्यस्थं रामं सीता समन्वितम् ।

(रामस्तवराज–५०)

अथ दिक्ष्वन्तर्यामित्वं निरूपयति —

यो दिक्षु तिष्ठन्दिग्भ्योऽन्तरो यं दिशो न विदुर्यस्य दिशः शरीरं यो दिशोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।१०।।

दिक्षु पूर्वादिषु तत्र निर्लेपतया तिष्ठन् ताभ्योऽपि विशिष्टः यं ताः न विद्युर्जडत्वात् स एव दिक्छरीरं दिशां नियन्ता अन्तर्यामी ।।श्रीः।।

यश्चन्द्रतारकादन्तरो यं चन्द्रतारकं न वेद यस्य चन्द्रतारकँ शरीरं यश्चन्द्रतारकमन्तरो यमयत्येष स आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।११।।

चन्द्रस्य तारकाणां च समाहारः इति चन्द्रतारकं नक्षत्रमण्डलं तेजोऽवच्छिन्नत्वेन तदपि यं न वेद शेषं पूर्ववत् ।।श्रीः।।

अथाकाशेऽन्तर्यामित्वं प्रतिपादयति —

य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।१२।।

नन्वन्तरिक्षं तु व्याख्यातं तर्हि भूय आकाश व्याख्याने पुनरूक्ति दोषः कथं न ? इति चेच्छृणं अन्तरिक्षं नभस्तलम् आकाशो हृदयाकाशः इति विषयभेदान्न पुनरूक्तिदोषः, शेषं पूर्ववत् ।।श्रीः।।

अथ तमस्यान्तर्यामित्वं निरूपयति —

यस्तमसि तिष्ठँ स्तमसोऽन्तरो यं तमो न वेद यस्य तमः शरीरं यस्तमोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।१३।।

तमसि अन्धकारे अत्र तमसा योगमायैव विवक्षिता ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ तेजस्यन्तर्यामित्वं निरूपयति —

यस्तेजसि तिष्ठँ स्तेजसोऽन्तरो यं तेजो न वेद यस्य तेजः शरीरं यस्तेजसोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।१४।।

तेजसि महसि तिष्ठन् तदन्तरः, यं तेजोऽपि न जानाति, शेषं पूर्ववत् । अत्र तेज:शब्दो विज्ञानपरः ।।श्रीः।।

अथ भूतेष्वन्तर्यामित्वं निरूपयति —

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यँ सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इत्यधिभूतमथाध्यात्मम् ।।१५।।

स एव भूतेषु भूतानि अभिव्याप्य तिष्ठन् ततो विलक्षणतया **भूतानां भूत सत्तमः** इत्युक्तेः सर्वभूतनियन्ता सोऽन्तर्यामी इत्यधिभूतम् भूतान्यधिकृत्यव्याख्यातम् । अथाध्यात्मं व्याख्यायते ।।

इदानीमात्मानि वर्तमानमन्तर्यामित्वं विभाव्यतेऽष्टाभिर्मन्त्रैः । आत्मनि इदम् अध्यात्मम्, **अव्ययं विभक्ति समीपसमृद्धि वृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्द प्रादुर्भाव पश्चाद्यथानुपूर्व्य यौगपद्य सम्पत्तिसादृश्य साकल्यान्त वचनेषु** इतिसूत्रेण समासः अध्यात्मेद्येश्च इत्यनेन टच् प्रत्ययः नस्तद्धिते इत्यनेन टिलोपः इत्यध्यात्मम् । तस्य व्याख्यानार्थं पम्प्रति प्राणादिष्यन्तर्यामित्वम् एकैकं सविस्तरं श्रुत्या निरूपयते । पूर्वं पृथिवीमारभ्य भूतपर्यन्तं व्याख्यातमधिभूततया इत्यवतरणिका —

यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।१६।।

प्रकर्षेणाणीति प्राणः घ्राणरूपः यस्तत्रतिष्ठन् तस्माद् विलक्षणस्तेनाज्ञातस्तच्छरी-रस्तत्समीपस्तन्नियमयति एषोऽतिसन्निकृष्टस्त्वदभिन्नात्मसम्बन्धतया मरणधर्ममतीतमन्तर्यामी ।

अथवाच्यन्तर्यामित्वं निरूप्यते —

यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽन्तरो यं वाङ् न वेद यस्य वाक्शरीरं यो वाचमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।१७।।

वाचमभिव्याप्त अनतरः वाचिस्थितोऽपि वाग्दोषैरस्पृष्टतया ततोऽन्तरत्वमितिभावः यं वाक्जडत्वान्न वेद शेषं पूर्ववत् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ चक्षुष्यन्तर्यामित्वं निरूप्यते —

यश्चक्षुषि तिष्ठँश्चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुः शरीरं यश्चक्षुरन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।१८।।

चष्टे पश्यति सर्वं येन तच्चक्षुः इन्द्रियाभिमानि, परिच्छिन्नतया यं चक्षुर्न वेद शेषं पूर्ववत् ।।श्रीः।।

अथ श्रौत्रमन्तर्यामित्वं निरूपयति —

यः श्रोत्रे तिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरो यँ श्रोत्रं न वेद यस्य श्रोत्रँ शरीरं यः श्रोत्रमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।१९।।

श्रूयते समाकर्ण्यते येन तच्छ्रोत्रं तत्रापि तिष्ठन् ततो विलक्षणः तत्रत्यदोषैरलिप्यत्वात् श्रोत्रमन्तरो यमयति शब्दतो व्यतिरिक्तग्रहणान्नियमयति । समानमन्यत् ।।श्रीः।।

अथ मानसमन्तर्यामित्वम् —

यो मनसि तष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः शरीरं यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।२०।।

मनसि ततोऽपि सूक्ष्माकारः तदुपश्लिष्य तदभिव्याप्य च, मनः संकल्पावच्छिन्नं सत् यं निरस्तनिखिलावच्देदकं न वेद शेषं समानम् ।।श्रीः।।

अथ त्वाचमन्तर्यामित्वम् —

यस्त्वचि तिष्ठँस्त्वचोऽन्तरो यं त्वङ् न वेद यस्य त्वक्शरीरं यस्त्वचमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यामृतः ।।२१।।

त्वचमभिव्याप्य शेषं सुगमम् ।।श्रीः।।

अथ वैज्ञानमन्तर्यामित्वं —

यो विज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानँ शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।।२२।।

विविच्य जानाति येन तद्विज्ञानं बुद्धिः विपूर्वकात् ज्ञाधातोः **करणाधिकरणयोश्च** इति सूत्रेण करणे ल्युट्, यद्वा विजानाति इति विज्ञानं प्रत्यागात्मा, अत एव शतपथब्राह्मणे य आत्मनि तिष्ठन् इत्यादि सङ्गच्छते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्र तिष्ठन् ततोऽपि विलक्षणः यं विज्ञानं स्वयं न वेद सर्वस्य विज्ञातृत्वात्। स एव विज्ञानशरीरः सन् विज्ञानं यमयति एवं गुणविशिष्टः ते तव शाश्वतसंबन्धी आत्मा अमृतः अन्तर्यामी ।।श्रीः।।

इदानीं रैतमन्तर्यामित्वम् —

यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यँ तो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोतामतो मन्ताविज्ञातो विज्ञाता नन्यतोऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तयर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तं ततो होद्दालक आरूणिरूपरराम ।।२३।।

रेतसि शुक्रे तदभिव्याप्य तिष्ठन् वर्तमानः रैतसः, अन्तः विशिष्टः अधातुत्वात् यं रेतो न वेद विशुद्धविज्ञानमयत्वात् यस्य रेतः शरीरं चेष्टाश्रयः यः अन्तरः रेतः यमयति नियन्त्रयति, एषः त्वदभिन्ना अन्तर्यामी अदृष्टः न दृष्टुं शक्यः, न श्रुतः स्वयमपि श्रोता, अविज्ञातः विज्ञानेन स्वयमपि तज्ज्ञत्वाद् विज्ञाता अमतो मनसा तस्य संकल्पप्रेरकः। एषः पृथिव्यदिभूतान्तानां प्राणदि रेतः पर्यन्तानां च त्रयोविंशतेस्तत्वाना-मतिसंन्निकृष्टः, तद्दोषैरलिप्तः तत्तच्छरीरः, तत्तत् नियन्त्रित्वात् मृतानामेषाममृतः सन् अन्तर्यामी । यद्यपि पृथिव्यादिभूतपर्यन्तानाम् आप्राणरेतसाम् अन्तर्यामित्वं श्रीसीतारामाभिधेयब्रह्मणि यथाश्रुति संगमयितुं शक्यते, इहतु संकेतमात्रं विस्तरभिया, प्रत्यक्षरसंगमनमन्तरयामिप्रकरणस्य नातिरचयिष्यमाणे श्रीरामचरितमानसस्य द्वितीयसोपानस्य श्रीराघवकृपाभाष्ये दर्शयिष्यामः । अतः अस्मात् परमात्मनः अन्यत् भिन्नमार्तं व्याकुलीभूतमनार्तम् आर्तिहरं च केवलं सरयूतीरं बालकैः सह क्रीडत् कौशल्यास्तन्यपानलालसं श्रीराघवख्यं ब्रह्म इति श्रुत्वा अरुणपुत्रः औद्दालकः उपरराम लब्धोत्तरः संतोषमगमत् ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये अन्तर्यामिवर्णनं नाम सप्तमं ब्राह्मणं संपूर्णम् ।

।। श्री राघवः शन्तोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अष्टमब्राह्मणम् ।।

प्रावृण्नम्भोदतडित्प्रभाहरौ भक्तानुकम्पाकुशलौ नराकृती ।
तौ दम्पती ब्रह्ममयौ श्रुतिश्रुतौ सीताखरारी कलये किलाष्टमे ।।

अथ सकलोपाधिविवर्जितं यत् साक्षात्परोक्षाद् ब्रह्म इत्यादि श्रुतिभिर्निरुपाधितया निरूपितम् तद्भूयो व्याख्यातुकामा श्रुतिः गार्गीनामब्राह्मणं प्रारभते -

अत्र गार्गी अतिप्रश्नविषये **मूर्धा ते विपतिष्यति** इति वदता याज्ञवल्क्येन पूर्वं निषिद्धापि साम्प्रतं प्रश्नद्वयं प्रस्तोतुं ब्राह्मणाननुज्ञां याचते—

अथ ह वाचक्नव्युवाच ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि तौ चेन्मे वक्ष्यति न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति पृच्छ गार्गीति ।।११।।

अथ उपरते चारुणौ वाचक्नवी वाचक्नुपुत्री ब्रह्मवादिनी भगवती गार्गी, उवाच विज्ञापयामास—हन्त इति सम्बोधनार्थनिपातः भगवन्तः पूजयनीयाः ब्राह्मणाः अहमिमं याज्ञवल्क्यं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि गीप्सिष्यामि, यदि मे मम द्वौ प्रश्नौ वक्ष्यति सः समाधानमुत्तरयिष्यति । जातु चेत् युष्माकं मध्ये कोऽपि इमं ब्रह्मोद्यं ब्रह्म वदतीति ब्रह्मोद्यस्तं ब्रह्मवादिनं याज्ञवल्क्यं न जेता न कोऽपि जेतुं प्रभविता इति अनेन पणेन सह अनुज्ञां याचे । ब्राह्मणा ऊचुः गार्गि ! पृच्छ प्रश्नौ कुरु ।।श्रीः।।

'अथ गार्गी याज्ञवल्क्यं सावधानं करोति—

सा होवाचाहं वै त्वां याज्ञवल्क्य यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्रं उज्ज्यं धनुरधिज्यं कृत्वा द्वौ बाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपोत्तिष्ठेदेवमेवाहं त्वां द्वाभ्यां प्रश्नभ्यामुपोदस्थां तौ मे ब्रूहीति पृच्छ गार्गीति ।।२।।

सा गार्गी प्रश्नयोः बाणाभ्यां तुलनां कुर्वाणा दुरूत्तरत्वं प्रस्तौति—हे याज्ञवल्क्य ! यथा काश्यः काश्यां जातः कश्चित् वीरः, यथा च वार्थश्चकार, उग्रपुत्रः विदेहराजवंशजः उद्गता ज्या यस्मात् तादृशं न्यस्तप्रत्यञ्चकम्, अधिज्यम् अधिरोपिता ज्या यसिमन् तथाभूतं धनुः कृत्वा सपत्नान् शत्रून् अतिविध्यतस्तच्छीलो बाणः शरस्य फलम् तद्युक्तौ शरौ हस्ते गृहीत्वा उपोत्तिष्ठेत् शत्रोः समक्षं उपस्थितो भवति, तथैवाहमपि त्वा बाणोपमौ द्वौ प्रश्नौ जिह्वाधनुषि वाग्रूपज्यायुक्ते सन्धाय उपोदस्यां सम्मुखं उपस्थिता अस्मि, सावधानं सज्जो भव, तौ प्रश्नौ मे मह्यं मम सम्बन्धिनौ वा ब्रूहि समाधत्स्व । पृच्छ गार्गी इति याज्ञवल्क्यः अनुजानीते । श्रीः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्यपि षष्ठे ब्राह्मणे ओतप्रोतप्रश्नः कृतपूर्वः स एवाष्टमेऽपि करिष्याणो वर्तते, तथाप्युभयोर्भिन्नविषयत्वात् नदोषः—

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा धावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिँ्स्तदोतं च प्रोतं चेति ।।३।।

हे याज्ञवल्क्य ! दिवः यदूर्ध्वं स्वार्गादुपरितनं, यच्च पृथिव्या अवाक्, यच्च द्यावापृथिव्योरत्तरम् यच्च भूतं परोक्षं, भवत् वर्तमानयच्च, भविष्यत् भावि तत् कस्मिन् ओतं प्रोतं किमाधारकमिति भावः, एतस्याधारं जिज्ञासे । श्रीः ।

याज्ञवल्क्य उत्तरयति—

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाशे तदोतं च प्रोतं चेति ।।४।।

दिवो यदूर्ध्वं यदवाक् पृथिव्याः यदन्तरा भाति नभोऽवनी च ।
आकाश एतत् विशदावकाशे ओतं तथा प्रोतमवेहि गार्गि ।।

इति सारार्थः । श्रीः ।।

गार्गी सन्तोषं वर्णयति—

साहोवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य यो म एतं व्यवोचोऽपरस्मै धारयस्वेति पृच्छ गार्गीति ।।५।।

सा प्रसन्नोवाच–हे याज्ञवल्क्य ! ते तुभ्यं नमस्तेऽस्तु यत् मे प्रथमप्रश्नस्य ससम्यक्समाधानं अवोचः । अथ अपरस्मै प्रश्नाय आत्मानं सावधानं धारयस्व । याज्ञवल्क्यः प्रत्याह—गार्गि पृच्छ, समयगवहितोऽस्मि ।।श्रीः।।

सोपक्रमं द्वितीयप्रश्नं करोति—

साहोवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक् पृथव्या यदन्तरा धावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिंस्तदोतं च प्रोतं चेति ।।६।।

उपक्रमे मन्त्रद्वयस्यानुवादः गार्ग्यैव कृत्वा प्रश्नः क्रियते—याज्ञवल्क्य ! यत्त्वया दिवमारभ्य भविष्यदन्तं आकाशओतप्रोतम् इत्युक्तं सः आकाशः कस्मिन् ओतः प्रोतः इति । ।श्रीः।।

सहोवाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवोयदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाश एव तदोतं च प्रोतं चेति कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ।।७।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुवादमात्रमेतत् पूर्वतः सम्बन्धः । अथाक्षरं विशिनष्टि—

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्व-मदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वानाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्क-मश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखम मात्रमनन्तर मबाह्यं न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन ।।८।।

हे गार्गि ! यद् अक्षरम् अश्नुते सर्वं व्याप्नोति न क्षरति वा नक्षीयते वा, अम् ब्रह्मानन्दामृतं क्षरति यस्मात् तथा भूतं वा, यद् ब्राह्मणाः वेदाध्ययनशीला अभिवदन्ति । अतो नोक्तपूर्वं वच्मि कीदृशं तत् ? अत आह—अस्थूलं स्थूलत्वरहितम्, तदभावे अणुः स्यात् अतआह—अनणु अणु भिन्नम् इत्यनेनैव जीवात्मपरमात्मनोर्भेदः स्पष्टं प्रतिपादितः । जीवात्मा अणुः **एष्वणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः** (मु० उ० २-१-७) अयं च परमात्मा च अनणुः अणुभिन्नत्वे सति ह्रश्वं स्यात् ? अत आह अह्रश्वं, तर्हि दीर्घः स्यात् ? तन्निषेधति—अदीर्घं दीर्घत्वरहितम् । एवम् अलोहितं तद्भिन्नं अरक्तमितिभावः, अस्नेहं स्नेह भिन्नं,किम् छायामात्रम् ? अत आह—अच्छायम् नास्ति छाया यस्मिन् एवं तमोवायुरहितम् । तथा हि तमश्च वायुश्च तमोवायू ताभ्याम् रहितम्, अनाकाशम् आकाश-भिन्नम् असङ्गं सङ्गवर्जितम्, अरसम् रसभिन्नम्, अगन्धं गन्धभिन्नम्, अचक्षुष्कम् नास्ति चक्षुर्यस्मिन् तथाभूतम्, एवं श्रोत्रभिन्नं वाङ्मनस्तेजोभ्यो व्यतिरिक्तम्, अप्राणं न सन्ति प्राणा यस्मिन् तथाभूत, मुखभिन्नं मात्राभिन्नम् अन्तरर्बाह्य- धर्मभिन्नं च, तद् किञ्चन न अश्नाति न भुङ्क्ते एवम् कश्चनापि तद् न अश्नाति नाशनविषयी करोति, एवं भोक्तृभोग्यधर्मवर्जितम् । अस्थूलादिप्रकरणे ब्रह्मणि जीवकल्पिताः विशेषाः धर्माः प्रतिषिद्धाः । अर्थात् अस्थूलं केवलं स्थूलमेव न हि, एवम् केवलं अण्वेव नहि दीर्घमपि, सर्वत्र नञ्घटितपदेन अन्यव्यवच्छेदो निराकृतः ब्रह्मणः सर्वमयत्वात्, तत्र सकलविरूद्धधर्माश्रयत्वस्योपपत्तेश्च । श्रीः ।।

अथ अक्षरस्य सर्व शास्त्रित्वं वर्णयति—

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसो विधृतो तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृता तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्पन्दते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशमन्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशँ् सन्ति यजमानं देवा दर्वीं पितरोऽन्वायत्ताः ।।९।।

गार्गि अम्बार्थनद्योर्ह्रश्वः इत्यनेन ह्रश्वः । प्रशासने नियन्त्रणे विधृतौ धारितौ, सूर्यश्च चन्द्रमाश्च इति सूर्याचन्द्रमसौ **देवता द्वन्द्वेच** इत्यनेन आनङादेशः । एवम्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतस्यैव नियन्त्रित्वे सर्वे तिष्ठन्ति मनुष्याः दानं ददति । एवं पितरः दर्वीं सुधापात्रम् अन्वायत्ता आधीनाः ।।श्रीः।।

अथाक्षरस्य ज्ञानाज्ञानपरिणामं निरूपयति—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः ।।१०।।

हे गार्गि । एतद् अक्षरम् सर्वव्यापकं ब्रह्म अविदित्वा सेव्यत्वेन न ज्ञात्वा, बहूनि वर्षसहस्राणियावत् जुहोति, तपति वा स अन्तवत् फलं लभते अन्य देवतोद्देशत्वात् तत्फलानां च सान्तत्वात् । यश्च एतत् अक्षरं अविदित्वा इतः अस्मांल्लोकात् प्रैति गच्छति । स् कृपणः असमर्थो वा । यः एतदक्षरं विदित्वा स एव ब्राह्मणः ब्रह्मणः अयम् ब्राह्मणः भगवदीयो भवति ।।श्रीः।।

उपसंहरन्नाह—

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृश्रुतँ श्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृनान्यदतोऽस्ति द्रष्टृनान्यदतोऽस्ति श्रोतृनान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रे तस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ।।११।।

हे गार्गि ! एतदक्षरम् अदृष्टम् अश्रुतम् अमतम् अविज्ञातं दर्शनश्रवणमननविज्ञान-विषयबहिर्भूतम्, किन्तु द्रष्टृत्वादिधर्मोपेतम् । अर्थात् सर्वं पश्यति सर्वं श्रृणोति, सर्वंमनुते सर्वं विजानाति, एतस्माद् अन्यत् द्रष्ट्रादि न, अस्मिन्नेवाक्षरे आकाशोऽपि ओतप्रोतः ।।श्रीः।।

उत्तरात् सन्तुष्टा गार्गी निर्णयति—

सा होवाच ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव बहु मन्येध्वं यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वे जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति ततो ह वाचक्नव्युपरराम ।।१२।।

हे ब्राह्मणाः ! तदेव बहुमन्यध्वं सौभाग्यं यत् अस्माद् ब्रह्मविद्वरिष्ठात्, नमस्कारेण प्रणिपातेनैव मुच्येध्वं अपमानितः सति युष्मभ्यम् शापमपि दद्यात् । युष्माकं मध्ये कोऽपि इमं ब्रह्मवादिनं न जेता इति निर्णीय ततः वाचक्नवी गार्गी उपरराम ।।श्रीः।।

इति बृहदांरण्यकोपनिषदि तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये गार्गीसन्तोषणनामाष्टमब्राह्मणं समपूर्णम् ।

।। राघवः शन्तनोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। नवमब्राह्मणम् ।।

सजलवारिदभानुसुताद्युतिं दनुजकाननवह्नि धनुर्धरम् ।
अवनिजादयितं रघुनंदनम् अनवमं नवमे समुपास्महे ।।

अथ याज्ञवल्क्यशाकल्यसंवादे देवतासंख्यानिरूपणम्—

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्रच्छ कति देवा याज्ञवल्क्येति स है तयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदेवस्य निविद्युच्यन्ते त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रयस्त्रि ँ शदित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति षडित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रय इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति द्वावित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्यध्यर्ध इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच कतमे ते त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेति ।।१।।

गार्ग्यामुपरतायामनन्तरं शाकलगोत्रः विदग्धःपप्रच्छ कति संख्याकाः देवाः याज्ञवल्क्य ! सः एतयैव संकेतनिर्दिष्ट्या प्रतिपेदे ज्ञातवान् । निविदा उच्यन्ते— वैश्वेषां देवानां भावः वश्वदेवं तस्य निविदः संकेताः पूर्वं व्यासेन पश्चात् समासेन इति प्रश्नोत्तरक्रमः । त्रयः त्रिंशत्त्रयः त्रिसहस्राणि इति व्यासक्रमः, समासे त्रयस्त्रिंशत् षट् त्रयः द्वौ अध्यर्धः सार्धैकः एका इति ।।श्रीः।।

अथैकादशत्रिगुणितानां देवानामवधारणमाह—

स होवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रि ँ शत्त्वेव देवा इति कतमे ते त्रयस्त्रि ँ शदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रि ँ शदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रि ँ साविति ।।२।।

इमे महिमानः विभूतयः, वस्तुतस्तु त्रयस्त्रिंशत् देवाः । के ते ? अष्टौ वसवः **अग्न्यादयः**, एकादशरुद्राः **प्राणादयः** द्वादआदित्याः चैत्रादयः, इन्द्रः प्रजापतिश्च इतित्रयस्त्रिंशत् ।।श्रीः।।

अथ वसून् जिज्ञासते—

कतमे वसव इत्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्व ँ हितमिति तस्माद्वसव इति ।।३।।

वसन्ति सर्वाणि ये ते वसवः अत्र यौगिकं वसुत्वं न तु पौराणिकम् अग्नि पृथिवीवाय्वन्तरिक्षसूर्यद्युलोकचन्द्रनक्षत्रेषु सर्वेषां निवासात् तएव वसवः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ रूद्र जिज्ञासा—

कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदाऽस्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ।।४।।

अत्रा पियौगिकमेवरुद्रत्वं दशैमे प्राणापानव्यानोउदानसमानननागकूर्मकृकलदेवदत्त-धनंजयवैश्वानराः आत्माचैकादशोरुद्रः । नैते देवगणप्रसिद्धाः इत्यत आह–एते यदा शरीरं त्यक्त्वा निःसरन्ति तदा मृतं प्रति सर्वे रुदन्ति रोदनहेतुत्वात् रुद्राः रोदयन्ति इतिरुद्राः इति व्युत्पत्तेः ।।श्रीः।।

अथ द्वादशादित्यव्याख्या—

कतम आदित्या इति द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदँ सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदँ सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ।।५।।

अत्र संवत्सरस्य द्वादशमासेषु आदित्यभावना आददानाः गृह्णन्तः प्राणिनामायुः यन्ति गच्छन्ति तथा भूताः मासेषु तथात्वात् ।।श्रीः।।

इन्द्रप्रजापति व्याख्यानम—

कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतमः स्तनयित्नुरित्यशनिरिति कतमो यज्ञं इति, पशव इति ।।६।।

स्तनयित्नुः मेघः इन्द्रः यज्ञः पशवः पश्वालम्भन प्रधानत्वात् अशनिः सर्वभक्षकः वज्रात्मकम् आयुधं वा ।।श्रीः।।

के षड्देवाः ? अत आह—

कतमे षडित्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्चैते षडेते हीदँ सर्वँ षडिति ।।७।।

दीव्यन्ति इति देवाः संक्षेपे अग्नि पृथिवी वाय्वाकाशसूर्यदिक्षु सर्वेषां समाहाराः ।।श्रीः।।

पुनः संक्षेपः मन्त्रद्वयमेकान्वयि—

कतमे ते त्रयोदेवा इतीम एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति कतमौ तौ द्वौ देवावित्यन्नं चैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्ध इति योऽयं पवत इति ।।८।।

तदाहुर्यदयमेक इवैव पवतेऽथ कथमध्यर्ध इति यदस्मिन्निदँ सर्वमध्याध्नोंत्तेनाध्यर्ध इति कतम एको देव इति प्राण इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ।।९।।

सर्वेषां त्रिषुलोकेषु समाहारात् त्रयोलोकाः देवाः तेषामपि प्राणान्नयोः समाहारात् द्वावेव प्राणान्ननामानौ देवौ, तयोरपि सार्धैके अन्तरभावात् सार्धैक एव देवः । योऽयं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पवते एकः प्राणः अर्धश्च बहिर्वायुः तस्यापि । प्राणे समाहारात् प्राण एवैका देवता । इदमेवस्यष्टयति तदाहु इत्यनेन तदाहुः तस्मादेव कथयन्ति—अयम् एकः अन्यान् पवते पुनाति इव, तस्मादाहुः—अयम् एकः प्राणः यद्यपि श्रुतावपि एतस्य सार्द्धैकता स्पष्टं नोक्ता शांकरभाष्यादावपि एतस्य व्याख्या प्रतिबिम्बोऽपि नास्ति । तथापि मया श्री राघवकृपावलम्बेन समर्जितश्रीवैष्णवाशीर्वादकदम्बेन स्वप्रतिभया व्याख्यायते । अत्र इव शब्देन सार्द्धैकता व्याख्याता, वायोरिह् कार्यद्वयम्, एकं शरीरान्तःसञ्चरणम् अपरं लोकानां पवित्रीकरणम् । प्रणने तु कस्यचिद् हस्तेक्षेपो नास्ति, किन्तु द्वितीयस्यां क्रियायां तु अग्नेरपि हस्तक्षेपः, अत एव एकः पवनः अपरश्च पावकः कथ्यते, इदमेव श्रुतिसंकेतयति पवते इव, इव शब्दोऽत्र अर्द्ध पावनत्वं ध्वनयति, इदं सर्वम् अत्रैव अध्यर्धितम् । अध्यर्ध्नोति, इत्यध्यर्धं तस्यापि प्रणे समाहारात् प्रणैव एका देवता, तदेव त्यत् परोक्षवाचकम् ।।श्रीः।।

अथ प्राण ब्रह्मणः अष्टौ भेदाः निरुप्यन्ते—

पृथिव्येव यस्यायतनमग्निर्लोको मनोज्योतिर्यो यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायण॑ँ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद्वा अहं तं पुरुष॑ँ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवाय॑ँ शरीरः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेत्यमृतमिति होवाच ।।१०।।

तस्य प्राणस्य पृथिवी एव आयतनम् उपभोगसाधनम् । लोक्यते इति लोकः, अग्निः लोकः दर्शन शक्तिः, मनः ज्योतिः सङ्कल्पप्रकाशकशक्तिः, यः वैनिश्चयेन सर्वस्य स्थूल सूक्ष्मसङ्घातस्य आत्मनः आध्यात्मिकशरीरस्य तं पुरूषं परायणं परमाश्रयं विद्यात्, स एव वेदिता विज्ञः स्यात् । अथाक्षिपति शाकल्यः—यं त्वं सर्वस्यात्मनः परायणमात्थ अहं तं पुरुषं वेद, त्वम् तु अविद्वान् आत्मानं पण्डितंमन्यं मन्यसे याज्ञवल्क्य अहं जानामि यः शरीरः स एव एषः प्राणाख्यः सकलपरायणभूतः एतदन्तरं शाकल्यः वद इति प्रष्टुं नोदयति । शाकल्यः प्राह—का देवता ? तं याज्ञवल्क्यः उत्तरितवान्—अमृतं मृतानि शरीणि "अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिणा" अनाशिनोऽप्रमेयस्य तसमाद्युध्यस्व भारत ।। गीता २/१८ इति स्मृते । तद् भिन्नममृतं, यद्वा अम्–ऋतम् इति पदः यम्, अमृतं अम् ऋतम् ।

इत्यमृतम् ऋतं सत्यं प्राणाः सत्याः तस्य सत्यमिति श्रुतेः । अम् महाविष्णुरूपं श्रीरामाख्यं परब्रह्म, व्यूहरूपवासुदेवव्यावृत्यर्थम् ऋतमिति विशेषणम् ।।श्रीः।।

भूयः देवतान्तरं पृच्छति—

काम एव यस्यायतन॑ँ हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायण॑ँ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं पुरूष ँ्सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं काममयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेतिस्त्रिय इति होवाच ।।११।।

आयतनं चेष्टाश्रयः, हृदयं लोकः लोक्यते दृश्यते अनेन इति व्युत्पत्तेः । तस्य काममयस्य पुरुषस्य स्त्री देवता, कामः खलु सामान्येच्छा, यत्तु स्त्रीव्यतिकराभिलाषः कामः इति प्राहुः तथा सति योषित्यव्याप्त्यापत्तिः, तत्रापि कामस्य सत्वात् स्त्री व्यतिकराभिलाषाभावाच्च, तस्मात् इच्छैव कामः । तस्य हृदयं लोकः स्थानम् मनो ज्योतिः तस्य काममयस्य पुरुषस्य स्त्री भगवतो लीलाशक्त्युपबृंहिता इच्छाशक्तिः इयमेव ईश्वरेच्छा कथ्यते नैयायिकैः । नन्वस्मिन् व्याख्याने तार्किकानुगतत्वापत्तिः ? भवतु नाम श्रुतिसिद्धान्तरक्षणमेव महदुत्तरमस्माकम्, न हि सर्वविरोधः, अत एव विरोधपरिहाराध्यायमाह भगवान् वादरायणः । भवन्तोऽपि यदि श्रुत्यर्थं व्याकुपयिष्यन्ति तर्हि अस्मत् प्रतिपक्षता भवद्भिः सहापि तथैव वेदान्तनये सर्वस्य ब्रह्ममयत्वात् न केनचित् विरोधः अनुरोधस्तु श्रुतिसिद्धान्तरक्षणे ।।श्रीः।।

अथ देवतान्तरं पृच्छति—

रूपाण्येव यस्यायतनं चक्षुर्लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायण ँ्स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुष ँ्सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवासावादित्ये पुरुषः ए एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति सत्यमिति होवाच ।।१२।।

रूपाणि यस्यायतनम् चक्षुर्लोकः सः कः सुरः ? "आदित्यस्थः" स किं देवः ? सत्यं तस्य हि दैवतम् ।।श्रीः।।

अथ देवतान्तरं पृच्छति—

आकाश एव यस्यायतन ँ्श्रोत्रं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायण ँ्स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुष ँ्सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवाय ँ्श्रोत्रः प्रतिश्रुत्कः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति दिश इति होवाच ।।१३।।

आकाशायतनो श्रोत्रलोको को नाम वै सुरः ? श्रौत्र तस्य हि को देवः ? दिशस्तदैवतं स्मृतम् ।।श्रीः।।

अथ छायादैवतं पृच्छति—

तम एव यस्यायतन ँ्हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायण ँ्स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुष ँ्सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं छायामयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति मृत्युरिति होवाच ।।१४।।

तमः अन्धकारः, छाया पुरुषः, प्रतिबिम्बं नरः, तस्य मृत्युः काल एव देवता ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपाण्येव यस्यायतनं चक्षुर्लोको मनोजयोतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणँ्स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषँ् सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायमादर्शे पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेत्यसुरिति होवाच ।।१५।।

आदर्शोदर्पणम् आसमन्ताद् दृश्यन्ते रूपाणि यस्मिन् सः आदर्शः इति व्युत्पत्तेः ।।श्रीः।।

आप एव यस्यायतनँ् हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणँ्स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषँ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायमप्सु पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति वरुण इति होवाच ।।१६।।

आपः जलानिः वरुणः जलनिन्तृदेवता अदितेर्नवमपुत्रः ।।श्रीः।।

रेत एव यस्यायतनँ्हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वैतं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणँ् स वै वेदितास्याद्याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषँ् सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ एवायं पुत्रमयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति प्रजापतिरिति होवाच ।।१७।।

रेतः वीर्यम् पुत्र एव पुत्रमयः पुत्रशब्दोऽत्र सन्ततिपरः प्रजापतिः, ब्रह्मा कश्यपो वा ।।श्रीः।।

एवं बहूनां प्रश्नानामुत्तरं प्रस्तुवन् ईशद्रोषाविष्टः याज्ञवल्क्यः प्राह—

शाकल्येति होवाच याज्ञवल्क्यस्त्वाँ् स्विदिमे ब्राह्मणा अङ्गारावक्षयणमक्रता इति ।।१८।।

याज्ञवल्क्यः शाकल्य इति सम्बोध्य उवाच भर्त्सयामास यत्—हे शाकल्य ! स्विद् अहं वितर्कयामि इमे ब्राह्मणाः कुरुपञ्चालाः मम समक्षं अतिवादे नियोज्य अङ्गारावक्षयणं अविक्षीयन्ते निवसन्ति यस्मिन् तत् अवक्षयणं अङ्गाराणाम् अवक्षयणम् इत्यङ्गारावक्षयणम्, अकृताः कृतवन्तः व्यत्ययादेकवचनम् । यथा सन्दंशेन अङ्गारा निस्सार्यन्ते, किन्तु ज्वलति तदेव तथैव अनेकान् प्रश्नान् धृष्टतया कुर्वन् मम क्रोधरूपानङ्गारान् त्वमेव निर्गमयसि तैर्भस्मसात् भविष्यसि ।।श्रीः।।

अथ प्रतिष्ठादेवताभिः सह दिशः पृच्छति—

याज्ञवल्क्येति होवाच शाकल्यो यदिदं कुरुपाञ्चालानां ब्राह्मणानत्यवादिः किं ब्रह्म विद्वानिति दिशो वेद स देवाः सप्रतिष्ठा इति यद्दिशो वेत्थ सदेवाः स प्रतिष्ठाः ।।१९।।

याज्ञवल्क्यं सम्बोध्य शाकल्य प्राह—यत् ब्रह्मज्ञंमन्यस्त्वम् इमान् कुरुपाञ्चालब्राह्मणान् अत्यवादीः वादे पराजितवानसि, वस्तुतः स एव ब्रह्मवित् यो देवताप्रतिष्ठाभिः सह दिशो जानाति । किं त्वं वेत्थ ? स्वीकरोति याज्ञवल्क्यः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथपूर्वदिग्देवताविषयकप्रश्नः—

किं देवतोऽस्यां प्राच्यां दिश्यसीत्यादित्यदेवत इति स आदित्यः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति कस्मिन्नु चक्षुः प्रतिष्ठितमिति रूपेष्विति चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति कस्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदय इति होवाच हृदयेन हि रूपाणि जानाति हृदये ह्येव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्ती त्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ।।२०।।

प्राच्यां दिशि पूर्वस्याम् आदित्यः सूर्यः—

श्लोकः— **आदित्यदेवता पूर्वा चक्षुष्वेष प्रतिष्ठितः ।**
चक्षुरूपे च तद्धृदि ततो रूपनिदर्शनाः ।।श्रीः।।

अथ दक्षिणदिङ्निरूपणम्—

किं देवतोऽस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति यमदेवत इति स यमः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति यज्ञ इति कस्मिन्नु यज्ञः प्रतिष्ठित इति दक्षिणायामिति कस्मिन्नु दक्षिणा प्रतिष्ठितेति श्रद्धायामिति यदा ह्येव श्रद्धत्तेऽथ दक्षिणां ददाति श्रद्धायाँ ह्येव दक्षिणा प्रतिष्ठितेति कस्मिन्नु श्रद्धा प्रतिष्ठितेति हृदय इति होवाच हृदयेन हि श्रद्धां जानाति हृदये ह्येव श्रद्धा प्रतिष्ठिता भवती त्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ।।२१।।

दक्षिणायाः यमो देवः स च यज्ञे प्रतिष्ठितः ।
दक्षिणायां मखः सापि श्रद्धायां सा च हृत्स्थिता ।।श्रीः।।

किं देवतोऽस्यां प्रतीच्यां दिश्यसीति वरुणदेवत इति स वरुणः कस्मिन्प्रतिष्ठित इत्यप्स्विति कस्मिन्न्वापः प्रतिष्ठिता इति रेतसीति कस्मिन्नुरेतः प्रतिष्ठितमिति हृदय इति तस्मादपि प्रतिरूपं जातमाहुर्हृदयादिव सृप्तो हृदयादिव निर्मित इति हृदये ह्येव रेतः प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ।।२२।।

प्रतीच्याः वरुणो देवः जले सोऽपि प्रतिष्ठितः ।
जलं रेतसि तच्चापि हृदयेऽस्ति प्रतिष्ठितम् ।।

प्रतिरुपस्ततो जातः औरसः कथ्यते सुतः ।
उरसा जात इत्युक्तिः उरोरूपेण रेतसा ।।श्रीः।।

किं देवतोऽस्यामुदीच्यां दिश्यसीति देव सोम त इति स सोमः कसिमन्प्रतिष्ठित इति दीक्षायामिति कस्मिन्नुदीक्षा प्रतिष्ठितेति सत्य इति तस्मादपि दीक्षितमाहुः सत्यं वदेति सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठितेति कस्मिन्नु सत्यं प्रतिष्ठितमिति हृदय इति होवाच हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये ह्येवसत्यं प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ।।२३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सोमः चन्द्रमाः, दीक्षा यज्ञानुष्ठाननियमनियोगः सत्यं भूतार्थभावितम् ।

किं देवतोऽस्यां ध्रुवायां दिश्यसीत्यग्निदेवत इति सोऽग्निः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति वाचीति कस्मिन्नुवाक् प्रतिष्ठितेति हृदय इति कस्मिनू हृदयं प्रतिष्ठितमिति ।।२४।।

वसतां सर्वभूतानां सर्वतो मेरूपर्वतम् ।
व्यवधानं विना चोर्ध्वा ध्रुवा सैव दिशा स्मृता ।।

तस्यास्तु देवता वह्निः स वै वाचि प्रतिष्ठितः ।
सा च वाग्घृदये न्यस्ता ततः शाकल्य गीप्सितम् ।।श्रीः।।

अथ हृदयशरीरयोः अन्योन्याश्रयत्वं तत् स्थित्यधीनस्थितिमत्वं साधयति—

अहल्लिकेति होवाच याज्ञवल्क्यो यत्रैतदन्यत्रास्मान्मन्यासै यद्धयेतदन्यत्रास्मास्याच्छ्रूनो वैनदद्युर्वया ँ् सि वैनाद्विमन्थीरन्निति ।।२५।।

याज्ञवल्क्य प्राह—हे अहल्लिक ! इदं शाकल्यस्य नामान्तरम्, यत्र यस्मिन् समये एतद् इदं हृदयमस्मात् एतस्मात् शरीरात् अन्यत्र अन्यस्मिन् स्थाने मन्यासै मन्यसे, मन्यासे इति व्यत्ययात् छान्दसो दीर्घः लट् लकारेऽपि । एत ऐ **इत्यनेन** मन्यसे इति एकारस्य ऐ आदेशः । यदि एतत् शरीरं हृदयात् अन्यत्र स्यात् तदा श्वानः कुक्कुराः एनत् अद्युः खादेयुः, वयांसि पक्षिणः विमथ्नीरन् चञ्चुभिर्विकर्षेयुः विलोडयेयुर्वा ।।श्रीः।।

अथ समानपर्यन्तानां प्रतिष्ठा शाकल्यशिरो निपातश्च—

कस्मिन्नु त्वं चात्मा च प्रतिष्ठितौ स्थ इति प्राण इति कस्मिन्नु प्राणः प्रतिष्ठित इत्यपान इति कस्मिन्न्वपानः प्रतिष्ठित इति व्यान इति कस्मिन्नु व्यानः प्रतिष्ठित इत्युदान इति कस्मिन्नूदानः प्रतिष्ठित इति समान इति स एष नेति नेत्यात्मा गृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो नव्यथते न रिष्यति । एतान्यष्टावायतनान्यष्टौ लोका अष्टौ देवा अष्टौ पुरुषाः स यस्तान् पुरूषान्निरुह्य प्रत्युध्यात्यक्रामत्तं त्वौपनिषदं पुरूषं पृच्छामि । तं चेन्मे न विवक्ष्यसि मूर्धाते विपतिष्यतीति । त ँ् ह न मेने शाकल्यस्तस्य ह मूर्धा विपपातापि हास्य परिमोषिणोऽस्थीन्यप जह्रुरन्यन्मन्यमानाः ।।२६।।

शाकल्यः पृच्छति–त्वं, जीवः आत्मा अन्तर्यामी इति कस्मिन् प्रतिष्ठितौ । याज्ञवल्क्यः प्राह–प्राणे, प्राणः अपाने, स च व्याने, सोऽप्युदाने, स च समाने प्रतिष्ठितः । अयमेव आत्मा यः नेति नेति इति निषेधपरतया व्याख्यायते, अगृह्यः केनापि न गृह्यते, अशीर्यः न शीर्यते शस्त्रादिभिः, असङ्गः न सज्यते अनासक्तस्वरूपः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असितः खड्गतः न व्यथति न व्यथामनुभवति अखण्डत्वात्, न रिष्यति नैव ह्रासं गच्छति, सर्वव्यापकत्वात् । एवम् पूर्वोक्तानि अष्टौ एव आयतनानि निवासस्थानानि देवाः लोकाः पुरुषाश्च । अथ शाकल्य ! त्वया पृष्टानां सर्वेषां प्रश्नानां मया सम्यक् समाधानं कृतम्, अतो मयापि कश्चन प्रश्नः क्रियते—इमामष्टौपुरुषान्निरुह्य नियम्य प्रत्यूह्य च स्वे स्वे स्थाने समायोज्य यः अत्यक्रामत् जीवात्मतोऽपि विलक्षणः साकेताधीशः परब्रह्म परमात्मा, त्वाम् तमेव औपनिषदमुपनिषदा गृह्यमाणम् उपनिषत्सु दृष्टं वा पुरुषं पृच्छामि । यदि मे न वक्ष्यसि तदा ते मूर्धा विपतिष्यति, कबन्धतः पृथग्भूतं शिरः भूमौ विपतिष्यति । तम् औपनिषदं पुरुषं शाकल्य न मेने नावबुद्धवान् बभूव । अनन्तरं तस्य शिरः तत्क्षणं विपपात कबन्धतो विकृत्तं सत् भूमौ पतितं बभूव, अस्थीनि अपि तस्य अन्यत् किमपि धनं मन्यमानः, परिमोषिणः परितःमुष्णन्ति चोरयन्ति धनं एते परिमोषिणः चोराः अपजह्रु एवं ब्रह्मवेत्तारमवमन्यमानस्य शाकल्यस्य अस्थीनामपि विडम्बनैषा ।।श्रीः।।

अथ सर्वान् प्रष्टुमामन्त्रयते याज्ञवल्क्यः—

अथ होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छतु सर्वे वा मा पृच्छत यो वः कामयते तं वः पृच्छामि सर्वान् वा वः पृच्छामीति ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः ।।२७।।

अथ मृते शाकल्ये याज्ञवल्क्य उवाच–भोः पूजनीयाः ब्राह्मणाः ? वः युष्माकं मध्ये यः कामयते सः मां पृच्छतु अथवा सर्वे सम्भूय पृच्छन्त, अहमपि यः कामयते उत्तरंदातुं तं पृच्छामि । अथवा सर्वान् वः पृच्छामि किन्तु तं प्रष्टुं प्रष्टुमामन्त्रयितुं वा केऽपि न दधृषुः धृषिरत्र साह सार्थस्छान्दसो धातुः ।।श्रीः।।

अथ तान् ब्राह्मणान् प्रति एतैः वक्ष्यमाणैः श्लौकैः पप्रच्छ प्रश्नविषयाँश्चकार—

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा ।
तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका बहिः ।।१।।

त्वच एवास्यरुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः ।
तस्मात्तदातृण्णात् प्रैति रसो वृक्षादिवाहतात् ।।२।।

मांसान्यस्य शकराणि किनाटँ स्नाव तत् स्थिरम् ।
अस्थीन्यन्तरतो दारुणि मज्जा मज्जोपमा कृता ।।३।।

यद् वृक्षो वृक्णो रोहति मूलान्नवतरः पुनः ।
मर्त्य स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात् प्ररोहति ।।४।।

रेतस इति मा वोचत् जीवतस्तत् प्रजायते ।
धानारूह इव वै वृक्षोऽञ्जसा प्रेत्य सम्भवः ।।५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत् समूलमावृहेयुर्वृक्षं न पुनराभवेत् ।
मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात् प्ररोहति ।।६।।

पुरुषं वृक्षेण तुलयति अथ सार्धषड्भिः । वृश्चयते इति वृक्षः, एषः पुरुषः प्राणी वनस्पतिः विशालवृक्षो यथा तथैव अमृषा सत्यो भाति, तस्य पुरुषवृक्षस्य लोमरूपाणि पर्णानि । त्वक् चर्मास्य वृक्षस्य बहिरूत्पाटिका बाह्यावृणानि अस्य पुरुषस्य त्वचः चर्मणः सकाशात् रुधिरं रक्तमिव अस्यापि उत्पटः निर्यासः प्रस्यन्दि, तस्मात् तदातृण्णात् तृणु हिंसायाम् तृणहिं सितं तस्माद् आहतात् वृक्षात् रसः इव एतस्माद् पुरुषादपि आतृण्णात् तत् रुधिरं प्रैति गच्छति ।

मांसस्थानीनि अस्य वृक्षस्य शकराणि अन्तर्भागाः किनाटमेव अन्तःकाष्ठं स्नायुः, तत् तन्तवश्च अन्तर्दारुणि एव अस्थि उपमानि मज्जा उभयत्रसमाना ।

यथा वृक्णः छिन्नवृक्षः मूलात् नवतरः नवीनतया प्ररोहति, तथैव मृत्युना वृक्णः छिन्नः पुरुषः कस्माद् मूलात् प्ररोहति, संसार वृक्षस्य मूलं कथयन्तु ब्राह्मणाः ?

यदि कोऽपि कथयेत् रेतस्य मूलात् प्ररोहति तदा मावोचत मा कथयतु, यतो हि रेतस्तु जीवतः सकाशात् प्रजायते अत्र मृतात् जातस्य प्रश्नः, वृक्षस्तु धानारोह इव अञ्जसा सुगमतया सम्भवति ।

यदि केऽपि समूलं वृक्षं आवृहेयुः छिन्द्युस्तदा वृक्षः पुनर्न भवति एवं मर्त्योऽपि मृत्युना वृक्णः कृत्तः जीवजीवनशरीरसम्बन्धसंयोगः कस्मात् मूलात् प्ररोहति प्ररोहं गच्छति ।।श्रीः।।

जात एव न जायते को वेनं जनयेत् पुनः । विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणतिष्ठमानस्य तद्विद इति ।२९।

यदि कोऽपि कथयतु जातः सञ्जायते, इत्यपि न वाच्यं "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः" इति स्मृतत्वात् एनं कः जनयति उत्पादयति ? एवं सर्वेषु मौनं गतेषु श्रुतिः स्वमेव परमकरुणा मातेव प्राह—दातुः अतिस्रष्टुः रातिः रायते इति रातिः तिष्ठमानस्य भगवच्छरणागतौ वर्तमानस्य तद्विदः ब्रह्मज्ञानिनः परायणं परमाश्रयः । इति इत्थम् विजित्य सर्वान् ब्राह्मणान् याज्ञवल्क्यः दशसहस्रसंख्याकाः जनकराजगावः स्वपर्णशालां समनयत् समाप्तेयम् आख्यायिका सम्पूर्णश्चाध्यायः ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि श्रीचित्रकूटस्थ सर्वाम्नाय श्री तुलसी पीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य प्रणीतश्रीराघवकृपाभाष्ये तृतीयोध्यायः सम्पूर्णः ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

।। प्रथमब्राह्मणम् ।।

पयोमुगसितोत्पलच्छविहरं हरेणानिशं
मनोनयननीरजस्नुतहिमाम्बुभिर्भावितम् ।
विदेहतनयापतिं श्रुतिततीनतं ब्रह्म तच्–
चतुर्थमिह चिन्तये मनसि राममात्मास्पदम् ।।

अथ जनकयाज्ञवल्क्यसंवादमिषेण निरवधिक दिव्यकल्याणगुणगणधाम्नो विभून्नः परमव्योम्नि श्रीसाकेते विराजमानस्य परब्रह्मणः श्रीरामस्य तत्तत् परिच्छेदभिन्नतया सकलोपाधिनिर्मुक्ततया च महामहिमान्वाख्यानस्य वक्तव्यतया वेदान्तनये च सकलकार्यकारककारणकलापरहितस्यैव तत्तदुपाधिविमुक्तस्य मूर्तत्वेनामूर्तत्वेन च नयननिलये मनोमन्दिरे च समुपास्यतया राद्धान्तितत्वेन प्रतिपक्षिपक्षाणांश्रुतिविरोधा– नुरोधेनानुपादेयतया स्वतः प्रमाणतया च श्रुतीनाम् तत्र निरस्तसमस्त—भ्रमप्रमादविप्रलिप्साकर्णपाटवादि पुँदोषशङ्कापङ्कलङ्कावकाशतया च तास्वेव श्रद्दधानानां श्रीवैष्णवानां मनोनयनमहोत्सवस्य धृताखण्डज्ञानगौरवस्य भग्नभक्तरौरवस्य भगवतः श्रीराघवस्य विशुद्धब्रह्मवैभवप्रतिपिपादयिषिततया ससमारम्भं चतुर्थोऽयमरभ्यते चाध्यायः ।

तत्र प्रथमं भगवतीमैथिलीपितुः योगिराजस्य सीरध्वजस्य जनकस्य अगिनहोत्रविद्यायां शास्त्रानुकूलप्रश्नोग्त्तरपरितोषितयोगियाज्ञवल्क्यस्य तेनैव महर्षिणा सह ब्रह्मविद्याविषयकविनष्टविविधविवादविगलितविविधसुविषाद—विशदीकृत–विविधविबुधविद्वदाह्लादविशदशुभसम्बादशुभारम्भोपक्रमः ।।

ॐ जनको ह वैदेह आसाञ्चक्रेऽथ ह याज्ञवल्क्य आवव्राज । तँ होवाच याज्ञवल्क्य किमर्थमचारीः पशूनिच्छन्नण्वन्तानिति उभयमेव सम्राडिति होवाच ।।१।।

ॐ इति परमदुरूहब्रह्मविद्याप्रतिपादनसमागन्तुकसकलदुरितनिराकरणचिकीर्षया सगुणनिर्गुणरूपश्रीमदुत्तरकोसलभूपपरब्रह्म स्वरूपभगवतः विश्वविश्वप्रणम्यप्रणवाख्य–नामस्मरणरूपमङ्गलाचरणम् । ह सुविदितमेतत् वैदेहः विगतो देहो यस्य स विदेहो निमिः, तस्य वशिष्ठशापाद् विगतदेहता पुराणादौ प्रसिद्धा । तस्य विदेहस्य निमेः गोत्रापत्यं पुमान् वैदेहः सीरध्वजः परब्रह्मरूपश्रीसीतायाः परमपूज्यपितृचरणः, यद्वा विनष्टं ब्रह्म चिन्तनेन व्यपोहितं वा देहाभिमानं येन सः विदेहः विशोधितश्च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्रविहितसत्कर्मभिः देहो येन स विदेहः, उताहो विदूरितम् देहात्माज्ञानम् येन सः विदेह, अथवा विगलितो देहात्मभावो यस्य सः विदेहः, यद्वा वेदान्तवेद्यस्य परब्रह्मणः वेदनं सेव्यसेवकभावेन उपासनमेव विदा तस्यां ईहा चेष्टा यस्य स विदेहः, अग्रे तन्मुमुक्षाया असकृद् वक्ष्माणत्वात् । विदेह एव वैदेहः स्वार्थेऽण् प्रत्ययः । अमूषां सर्वाषां व्युत्पत्तीनां सोपज्ञे प्रामाणिकोदाहरणं श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतगीतरामायणे श्रीविश्वामित्रवाक्ये द्रष्टव्यं विस्पष्टप्रतिपत्तये तस्य मयेह ससंस्कृतं रूपान्तरं प्रस्तूयते—

सुजन सराहैं जो जनक बात कही है । रामहि सोहानि जानि,
मुनिमन—मानी सुनि नीच महिपावली दहन बिनु दही है ।।१।।

कहैं गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सों
नृपगति अगह, गिरान जाति गही हैं ।
देखे सुने भूपति अनेक झूँठे झूँठे नाम
साँचे तिरहुति नाथ साखी देति मही है ।।२।।

रागऊविराग भोग जोग जोगवतमन
जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है ।
ताते न तरनि ते न सीरे सुधाकरहुँ तें
सहज समाधि निरुपाधि निरबही है ।।३।।

ऐसेउ अगाध बोध रावरे सनेह बस
बिकल बिलोकति दुचितई सही है ।
कामधेनु—कृपा हुलसानी तुलसीस—उर
पन—सिसु हेरि मरजाद बाँधी रही है ।।४।।

(गीतावली रामायण बा० का० ॥८५॥)

एतद् रूपान्तरम् मय निर्मितेषु श्लोकेषु—

तत्साधु साधु सुजनाः प्रशशंसुरीड्यं यद्राजसंसदि वचो जनको जगाद ।
ज्ञात्वा च कौशिकरघूत्तम मोदकृत्तन्नीचा ददाह दहनेन विना नृपालिः ।।
रामं जगाद मुदितः किल गाधि सूनु र्ग्राह्या गिरा दुरवगाह गतिर्न राज्ञः ।
दृष्टाः श्रुताः बहुनृपा विथयाभिधानाः सत्योनृपो हि जनकोऽवनिजाप्रसूति ।।
वैराग्यरागभवभोगसुयोगगोप्ता श्री याज्ञवल्क्यकृपयाऽदृत सिद्धिरेषः ।
तप्तो न वै तरणिना शशिना न शीत—श्चित्ते सदा निवहत् सहजं समाधिम् ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईदृङ्नृपो दुरवगाध विवेक बोध–स्त्वत् स्नेहयन्त्रितमना विकलो विभाति ।
हृष्टा कृपा सुरगवी तुलसीश चित्ते मर्यादया निगडिता पणवत्सदर्शम् ।।

यद्वा विः विभुः तुरीयावस्थायाः स्वामी विष्णुः श्रीरामः, तस्मै सर्वस्वभूतसुतायाः दानमिति विदा, तस्यां विभवे श्रीरामाय दायाम् पुत्रीदानक्रियायाम् ईहा चेष्टा यस्य सः विदेह, विभवे विभून्मे वा श्रीरामाय पुत्रीं दातुं समीहमानस्य योगिराज–जनकस्य मनो व्यापारो द्रष्टव्यः श्री गीतावली रामायणे—

जनक विलोकि बार बार रघुवर को ।
मुनिपद सीस नाय, आयसु असीस पाय
एई बात कहत गवन कियो घरको ।।

नींद न परति राति, प्रेम पन एक भाँति
सोचत सकोचत बिरंचि हरिहरको ।
तुम्हतें सुगम सब देव देखिबे को अब,
जसहंस किए जोगवत जुग पर को ।।

ल्याये संग कौसिक, सुनाए कहि गुनगन
आए देखि दिनकर-कुल-दिन करको ।
तुलसी तेऊ सनेह को सुभाउ बाउ मानो
चलदल को सो पात करै चित चरको ।।

(गीतावलीरामायण बालकाण्ड ।।६७।।)

एतद्रूपान्तरम्—

दर्शं दर्शं किल रघुवरं योगिराजो विदेहो
नामं नामं चरण युगले मस्तकं गाधिसूनोः ।
लब्ध्वानुज्ञामृषिवरमुखादाशिषश्चाप्यमोघा यानं मनसि कलयन् सद्म श्चक्रे भावमेतम् ।

निद्रा रात्रौ न समविषये प्रेम चैव प्रतिज्ञा
शोचन् पाद्मा जनपुरभिदो याचमानोऽर्थसिद्धेः ।
युष्माकं ते सहज सुभगा दर्शनेऽपि प्रतीपाः
सर्वे कामाः मम पणमते ँ हंसपर्णोपमानाः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहानीतं रामं कुशिकतनयः श्रावितगुणं
समायातो दृष्ट्वा दिनकर कुलोद्यद्दिनकरम् ।
तदीयस्नेहोऽसौ तरल इव वातैश्च तुलसी विधत्ते मे चित्तं
चलदलदलं चञ्चलमिव ।।

स एव विदेहो वैदेहः, अथवा वेदस्य विशेषतो वेदान्तभागस्य ज्ञानकाण्डस्य प्रतिपाद्योऽयं वैदः ब्रह्ममयो भगवान् श्रीरामः तस्मिन् वैदे श्रीरामे ब्रह्मणि जिज्ञास्ये ईहा जिज्ञासा रूपा चेष्टा यस्य स वैदेहः । श्रीरामं कोटिकोटिकन्दर्परमणीयं सौमित्रिसेवितम् वीक्ष्य विदेहराजो विस्मृतवेदान्तसिद्धान्तः परमेश्वरपदपद्मप्रेम– सम्प्लावितशान्तस्वान्तः कौशिकं प्रति जिज्ञासते । तद्यथा श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अत्र पञ्चमि श्लौकैः समेषां पाङ्क्तकर्मणां नियन्तारं पञ्चमपरमपुरूषार्थविषयं शतशतपञ्चबाणसुन्दरं प्रपञ्चातीतं प्रभुं श्रीरामं प्रति कियती विद्वन्मनोरमा जिज्ञासा—

इमौ कुमारौ भद्रंते देवतुल्यपराक्रमौ ।
गजतुल्यगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ।।

पद्मपत्र विशालाक्षौ खड्गतूणीधनुर्धरौ ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ।।

यदृच्छयेव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ ।
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ।।

वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने ।
भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ।।

परस्परस्य सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ।
काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ।।

(बा० रा० १-५०,१७-१८-१९-२०-२१)

इत्थमेव पञ्चभिरेव (चौपायीभिः) श्रीरामचरितमानसे जनको जिज्ञासाञ्चक्रे—

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय वेष धरि की सोइ आवा ।।
सहज विराग रूप मन मोरा । चकित होत जिमि चन्द चकोरा ।।
ताते प्रभु पूछऊँ सति भाऊ । कहहु नाथ जनि करउ दुराऊ ।।
इन्हहि विलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा ।।

(मानस १-२१६,१-२-३-४-५)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपान्तरम्—

ब्रूहि कौशिक कस्यस्तो बालकौ दौ च सुन्दरौ ।
तिलकौ ऋषिवंशस्य किं नृपान्वयपालकौ ।।
नेति नेति तु यद् ब्रह्म कथयन् निगमो जगौ ।
किम् तद् वेषद्वयंधृत्वा आगतं वद कौशिक ।।
निसर्गतस्तु वैराग्यरूपं मे मानसं प्रभो ।
स्थगितं चात्र सम्मूढं चकोर इव चन्द्रके ।।
तस्माद् पृच्छामि सद्भावात् रहस्यञ्चात्र कौशिक ।
नाथ ब्रूहि कृपां कृत्वा मैतद् गोपय गोप्यवित् ।।
एतौ पश्यन् महाभागावनुरक्तं मनो मम ।
अभ्यस्तपूर्वं ब्रह्मसुखं समात्याक्षीद्बलादहो ।।

तथाभूतो वैदेहः आसाञ्चक्रे अत्र प्राञ्चः ब्राह्मणानांकृते आसनव्यवस्थाश्चक्रे इति व्याचक्षते किन्त्विदमनुचितं यतो हि व्याकरणतन्त्रे आसनपर्यायरूपेण आसा शब्दस्य प्रयोगो न मिलति । वस्तुतस्तु आसाञ्चक्रे इति न पदद्वयम्, अत्र हि 'आस' उपवेशने इतयस्मात् धातोः परोक्षार्थे लिट्लकारे 'दयायासश्च' इत्यनेन कृञोऽनुप्रयोगे आत्मनेपदे आसाश्चक्रे, ब्रह्मविद्याजिज्ञासुः सन् सद्गुरुं प्रतीक्षमाणो जनकः उपसत्तुं समुपविवेशेति हार्दम् । ह निश्चयेन अथ अनन्तजन्मनां पुण्यपुंजे समवेते सति याज्ञवल्क्यः ब्रह्मविद्वरिष्ठः आवाज आजगाम ।

विदेहः सम्पूज्य तं याज्ञवल्क्यं तदागमनकारणं ज्ञातुकामः पप्रच्छ—याज्ञवल्क्य ! किमर्थमचारीः, अत्र गमनार्थक चरधातोः लुङ्लकरे मध्यमपुरुषैकवचने रूपम् । गमनार्थो हि चरधातुः चरगतिभक्षणयोरित्यनुशासनात् । त्वं किं प्रयोजनकः सन् अत्रागमः प्रायेण राज्ञः पार्श्वे आगमने ब्राह्मणानां प्रयोजनद्वयं भवति बुभुक्षुस्वभावानां सकामानां पशवः मुमुक्षुप्रकृतीनां निष्कामानां ब्रह्मसिद्धान्तजिज्ञासा । मम पार्श्वे रागविरागयोः भोगयोगयोश्चापि प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणयोरपि धर्मयोरेकत्र समुपलब्धेः इदमेव स्पष्टयति । पशूनिच्छन् पशुशब्दोऽत्र भोग्यधनस्योपलक्षणं यद्वा अनित्यानां भोग्यपदार्थानामुपलक्षणं च, अथवा अण्वन्तानि अणुः सूक्ष्मः अन्तः निर्णयः निष्कर्षो वा येषां ते अण्वन्ताः वेदार्थदर्शनप्रकरणविशेषाः तान् अण्वन्तान् । इति शब्दोऽत्र प्रश्नपरिसमाप्तिसूचकः । सः याज्ञवल्क्य उवाच–सम्राट् ! उभयमपि तात्पर्यमेतत्, न खलु ब्राह्मणःकिमपि स्वार्थमिच्छति निष्किञ्चनत्वात् । वसुन्धरायाः सर्वेषां स्वानामुपरि तस्यैवाधिकृतत्वात्,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मात् सम्राट् पशून्नेच्छामि, स्वाश्रमवासिनां भरणपोषणाय अण्वन्तसिद्धान्तान् स्वविदितानपि त्वया सह चर्चा व्याजेन निर्णीय त्वदर्थम् इति याज्ञवल्क्यीयं हार्दम् ।।श्रीः।।

अथ वागवच्छिन्नं ब्रह्मनिरूपयति—

यत्ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे जित्वा शैलिनिर्वाग्वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात्तथा तच्छैलिनिरब्रवीद्वाग्वै ब्रह्मेत्यवदतो हि किँ स्यदित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां नमेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति सवै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य । वागेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रज्ञेत्येनदुपासीत । का प्रज्ञता याज्ञवल्क्य वागेव सम्राडिति होवाच । वाचा वै सम्राट् बन्धुः प्रज्ञायत ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः–

सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टँ हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि वाचैव सम्राट् प्रज्ञायन्ते वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं वाग्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानाप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते । हस्त्यृषभँ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः । स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ।। २ ।।

कश्चिदाचार्यः यत् किमपि अब्रवीत् तद् वयं शृणवाम, अनन्तरं त्वां किमपि उपदिशाम । जनकः प्रोवाच–शलिनस्य पुत्रः शैलिनिः मां वाग् वै ब्रह्म इत्यब्रवीत् । याज्ञवल्क्य समाक्षिपत्–अयमुपदेशस्तु तथैवापूर्णो यथा कश्चित् मातृमान् पितृवान् आचार्यवान् इति ब्रूयात्, तत्र मातरि पितरि आचार्ये च देवताया एकदेशता कदाचित् मृतायां मातरि मृते वा पितरि ऊपरतेचा चार्ये तत्सत्वस्य चाक्षतेः नेदं पूर्णं ब्रह्म । एवमेव कस्यचिद् मूकस्य पार्श्वे वागभावेऽपि तज्जीवनस्य तथैवोपलब्धेः, एवमिदं ब्रह्मणः एकपादेति । पादशब्दोऽत्र अंशवाची अर्थात् वाक्शक्त्यावच्छिन्नं ब्रह्म एकविभूतिविशिष्टशक्त्यवछिन्नं परिछिन्नतयोपास्यं तस्मादिदं न समग्रं समग्रोपासना तु सकलोपाधिविवर्जितस्य सर्वशक्तिमतः परमात्मनः । भवतु, किं शैलिनिस्तुभ्यमायतनादि-कमपि समब्रवीत् ? न मे इति जनकराजः प्रोवाच । याज्ञवल्क्यः अवदत्–वैनिश्चयेन तस्य वागवच्छिन्नब्रह्मणः वागेव आयतनं शरीरम् । ननु वागेव ब्रह्म वागेव शरीरमिति कथम्, एकस्मिन्नेव ब्रह्मणि विरुद्धधर्मद्वया–वच्छेदकता ? इति चेत् उच्यते–वाग् वै ब्रह्म इत्यत्र द्रोणोब्रीहिरितिवत् अवच्छेद्यावच्छेदक –भावेनान्वयः । तथाहि वाग्रूपं यच्छक्त्यात्मकं वस्तु तदवच्छिन्नं ब्रह्म, यद्वा नीलोघटइतिवत् अभेदसंबन्धे वागभिन्नं ब्रह्म एवं अभेद संसर्गावच्छिन्नवाक्त्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितब्रह्मत्वावच्छिन्न-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मनिष्ठविशेष्यताकशाब्दबोधः । प्रकृते अवच्छेदिकायामेव वाचि तदायतनत्वभावनम् । आकाशः प्रतिष्ठा प्रतितिष्ठति यस्यां तथाभूता वाग् आकाश एव प्रतितिष्ठति उच्चरितानुच्चरिता वा, अतएव गौतमः "शब्दगुणकमाकाशमिति व्याजहार" । अध्यात्ममपि श्रोत्रत्वावच्छिन्नाकाश एव तदुपलब्धेः वधिरे तथात्वाभावे तस्याप्यभावदर्शनात् । इयं वाक् प्रज्ञा प्रज्ञायते यया सा प्रज्ञा तदेवोपपादयति,—हे सम्राट् ! वाचैव ऋगादयो चत्वारो वेदाः, पुराणेतिहासं, षड्वेदाङ्गानि, सर्वोपनिषदः, काव्यानि, सूत्राणि, भाष्याणि सर्वाण्येव प्रकर्षेण ज्ञायन्ते एनत् वागवच्छिन्नं मत्वैव परब्रह्मेति भावेनोपासीत । एवमुपासीनं सर्वाणि भूतानि सेवन्ते, देवा अपि अस्मै बलिं हरन्ति क्षरन्ति सर्वान् कामान्, अयं देवो भूत्वा परलोकं भुंक्ते इति सारार्थः ।।श्रीः।।

अथ उदङ्कोक्तां सफलां प्राणोपासनां वर्णयति—

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्म उदङ्कः शौल्बायनः प्राणो वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवानब्रूयात्तथा तच्छौल्बायनोऽब्रवीत्प्राणो वै ब्रह्मेत्यप्राणतो हि कि्ँ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य प्राण एवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रियमित्येनदुपासीत का प्रियता याज्ञवल्क्य प्राण एव सम्राडिति होवाच प्राणस्य वै सम्राट् कामायायाज्यं याजयत्यप्रतिगृह्यस्य प्रतिगृह्णत्यपि तत्र वधाशङ्कं भवति यां दिशमेति प्राणस्यैव सम्राट् कामाय प्राणो वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं प्राणो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभ्ँ स हस्रं ददातीतिहोवाच वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ।। ३ ।।

यः कश्चित् अब्रवीत् आचार्यः तदाकर्णयेम । शल्वस्य पुत्रः शाल्वायनः उदङ्कः **प्राणोवैब्रह्म** इत्यब्रवीत् । इदमप्येकपाद एक विभूतिविशिष्टम् , का विभूतिः ? ब्रह्मणः प्रियमित्येनदुपासीत, प्रियता प्रियत्वं हि ईश्वरस्य आनन्दमात्रा, अतएव तत्कामाय यजन्ति, यां यां दिशं यान्ति तत्र तत्र निजवधं प्रति आशङ्कन्ते, तस्मै सर्वाणि भूतनि कल्याणं क्षरन्ति प्राणोपासकः देवो भूत्वा देवानप्येति देवेषु प्रलीनो भवति, एनं प्राणो न जहाति, किन्तु नेयं समग्रोपासना । इतोऽपि सूक्ष्मतरं किमपि पुनर्जिज्ञासते जनकः- ब्रूहि भगवन्, विद्यामहत्वं सूचयति हस्त्यूषभं गोसहस्रं दास्यामि । हस्तिन इव ऋषभाः जायन्ते यत्र तादृक् । याज्ञवल्क्यः प्रत्याचख्यौ-यावत् शिष्यं न समनुशिष्येत् तावत् शिष्यात् किमपि ना हरेत् इति । मम याज्ञवल्क्यस्य पिता अमन्यत् जानातिस्म

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माञ्चाववोधितवान् । मन धातुरत्र अन्तर्भावितण्यर्थः, तस्मात्वामननुशिष्यः त्वत्तो न किमपि जिहीर्षामीति तात्पर्यम्। यथोक्तं गोस्वामिचरणैः—

हरइ शिष्य धन शोक न हरई । सो गुरु घोर नरक महँ परई ।।

(मा०उ० ५८/७)

रूपान्तरम् —

अहृत्वा शिष्य शोकं यो शिष्यानां हरते धनम् ।
स गुरुर्घोरनरके पतत्येव न संशयः ।।

ननु कथं याज्ञवल्क्यो नानुशास्ति जनकम् ? अत्रोच्यते– जनको हि आचार्यसेवी तस्यपार्श्वे अनेके महाश्चर्याचार्याः आगच्छन्ति, तेभ्यः सः किमपि किमपि विकारहितं वस्तु लभते । आचार्याणां परस्परं विप्रतिपन्नानां सत्वात् बुद्धेरप्यव्यवसायित्वम् अव्यवसायात्मकत्वे च तस्याः समाधौ प्रवेशानवसरात्, तदसत्वे ब्रह्मविद्यायां चानधिकृत्वात् पूर्वं तन्मतनिराशस्यैवावश्यकत्वात् । यथोक्तं श्रीगीतासु—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखाह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।।

(गी० २/४१)

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिःसमाधौ न विधीयते ।।

(गी० २/४४)

एवमेव त्वाक् प्राणाद्युपासनासु विप्रतिपद्यमानायाः जनकराजबुद्धेः विप्रतिपत्तिनिराचिकीर्षया ब्राह्मणेऽस्मिन् षण्णामप्याचार्याणां मतानि निराचिकीर्षुःपूर्वम् तदुपासनानाम् एकांशत्वन्यूनत्वप्रदर्शनेन जनकराजं ताभ्यो विरिरमयिषुः खण्डनमेवावलम्बते। पूर्वं अतत्त्वोपदेशश्च दक्षिणाग्रहणं पापं मन्यमानः प्रत्युपासनावसानं, जनकेन प्रलोभ्यमानोऽपि पितृवचनं स्मरति महतः समादरात् इति एतस्य ब्राह्मणस्य सारः । श्रुतिविप्रतिपन्ना हि बुद्धिः स्थिरा भवति । स्थिरायाञ्च तस्यां हि ब्रह्मविद्यायाः स्थिरत्वौचित्यं, यथोक्तं भगवता श्रीगीतायाः द्वितीये—

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।

(गी० २/५२-५३)

एवं चक्षुरादिष्वप्यूह्यम् ।

अथ चाक्षुषब्रह्मवर्णनं निरूपयति—

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्य ब्रवीन्मे बर्कुर्वार्ष्णश्चक्षुर्वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तद्वार्ष्णोऽब्रवीच्चक्षुर्वै ब्रह्मेत्यपश्यतो हि कि ँ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य चक्षुरेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा सत्यमित्येनतदुपासीत का सत्यता याज्ञवल्क्य चक्षुरेव सम्राडिति होवाच चक्षुषा वै सम्राट् पश्यन्तमाहुरद्राक्षीरिति स आहाद्राक्षमिति तत्सत्यं भवति चक्षुर्वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैतं चक्षुर्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभ ँ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पितामेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ।।४।।

चक्षुः तदवच्छिन्नदेवता, सत्यमेतत् स्वरूपं एतेन दृश्यमानं सत्यत्वेनोपलभ्यते शेषं पूर्ववत् ।।श्रीः।।

अथ श्रोत्रब्रह्मणोपासनां निर्वक्ति—

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणमेत्यब्रवीन्मे गर्दभीविपीतो भारद्वाजः श्रोत्रं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तद्भारद्वाजोऽब्रवीच्छ्रोत्रं वै ब्रह्मेत्यशृण्वतोहि कि ँ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य श्रोत्रमेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठाऽनन्त इत्येनदुपासीत काऽनन्तता याज्ञवल्क्य दिश एव सम्राडिति होवाच तस्माद्वै सम्राडपि यां कां च दिशं गच्छति नैवास्या अन्तं गच्छत्यनान्ता हि दिशो दिशो वै सम्राट् श्रोत्र ँ श्रोत्रं वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैन ँ श्रोत्रं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभ ँ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ।।५।।

गर्दभीविपीतः दर्गभी माया तां विविच्य ततो व्यपैति भगवच्चरणारविन्दशरणं यस्तथाभूतः, अकारस्य छान्दसोलोपः, कर्तरिक्तः । भारद्वाजः भरद्वाजस्य गोत्रापत्यम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रोत्रं तदुपलक्षितदिक्त्वावच्छिन्नं सोपाधिकं ब्रह्म आकाशः हृदयाकाशः, प्रतिष्ठा अनन्ता इमे शब्दाः । यथोक्तं व्याकरणमहाभाष्ये श्री पतञ्जलिना बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्त्रं शब्दपारायणं प्रोवाच नांन्तं जगाम शब्दानां (पा०म०प०अ० १) ।।श्रीः।।

अथ जाबालोक्तमनोब्रह्म सफलं वर्णयति—

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे सत्यकामो जाबालो मनो वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्रूयातथा तज्जाबालोऽब्रवीन्मनो वै ब्रह्मेत्यमनसो हि किँ्स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मे ऽब्रवीदित्येक पाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य मन एवायतनमाकाशः प्रतिष्ठाऽऽनन्द इत्येनदुपासीत का आनन्दता याज्ञवल्क्य मन एव सम्राडिति होवाच मनसा वै सम्राट् स्त्रियमभिहार्यते तस्यां प्रतिरूपः पुत्रो जायते स आनन्दो मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं मनो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभँ् सहस्त्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ।।६।।

जबालायाः अपत्यं पुमान् जाबालः । मनसोऽपि आकाशः प्रतिष्ठा, आनन्दः स्वरूपं, स्त्रियां प्रतिरूपः पुत्रः अभिहार्यते मनः संकल्पेन आनन्दोऽनुभूतये । हरति प्रापयति ददाति आययति इति हृदयं, स्थितिरेतस्य स्वरूपं सर्वाणि भूतानि हृदय एव सूक्ष्मतः प्रविष्टानि प्रतिष्ठितानि ।।श्रीः।।

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे विदग्धः शाकल्यो हृदयं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तच्छाकल्योऽब्रवीद्धृदयं वै ब्रह्मेत्यहृदयस्य हि किँ् स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मे ब्रवीऽदतयेकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य हृदयमेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा स्थितिरित्येनदुपासीत का स्थितता याज्ञवल्क्य हृदयमेव सम्राडिति होवाच हृदयं वै सम्राट् सर्वेषां भूतानामायतनँ् हृदयं वै सम्राट् सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा हृदये ह्येव सम्राट् सर्वाणि भूतानि प्रतिष्ठितानि भवन्ति हृदयं वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनँ् हृदयं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभँ् सहस्त्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ।।७।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्त्रस्तु संबन्धेएव क्रोडीकृतः सारांशस्तु कारिकासु—

जनकं षट् समागत्य षोढावै ब्रह्मभावनाम् ।
वाचि प्राणे दृशि श्रोत्रे मनोहृदययोर्जगुः ।।

जित्वा शैलिनि रित्याह वाग् वै ब्रह्मसमाश्रितः ।
तद्व्याप्यत्वात् सोपधित्वात् याज्ञवल्क्येन खण्डितम् ।।

उदङ्कःप्राण इत्याह प्राणो वै ब्रह्म साल्वजः ।
खंडितं याज्ञवल्क्येन व्याप्योपाधित्वयुक्तितः ।।

वर्कुः चक्षुषि वार्ष्णोऽथ चक्षुर्वै ब्रह्म चोत्तमान् ।
व्याप्योपाधित्वयुक्त्या तत् याज्ञवल्क्यो निराकरोत् ।।

गर्दभीपीतकः कर्णे श्रोत्रं वै ब्रह्म चादरात् ।
उपाधेरेकदेशित्वात् निराचक्रे महर्षिणा ।।

सत्यकामेन चाप्युक्तं मनो वै ब्रह्म इत्यथ ।
आनन्दोपाध्यवच्छेदात् दूरापास्तं महर्षिणा ।।

हृदये ब्रह्म शाकल्यः हृदयं वै ब्रह्म चाब्रवीत् ।
व्याप्यत्वात् स्थित्युपहितं याज्ञवल्क्यस्तदाक्षिपत् ।।

एता षड्भावनाः षट्सु यद्यपि श्रुतितः श्रुताः ।
अपूर्णत्वात् तथाप्येताः सोपाधित्वादपाकृताः ।।

एक भावेन नैवेष्टाः श्रुतीनां ब्रह्म भावना ।
तस्माद् षडपि प्रत्युक्ता सर्वभावसमृद्धये ।।

उपास्यं सर्वभावेन सर्वोपाधिविवर्जितम् ।
पूर्णं सर्वमयं ब्रह्म श्रुतीनां हार्दमित्यदः ।।

एवं संक्षिप्य सारांशः यथा बुद्धिविवेचितः ।
षडाचार्यब्राह्मणस्य प्रीतये श्रीखरद्विषोः ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि चतुर्थाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्येषडाचार्यं नाम प्रथमं ब्राह्मणम् ।

।। राघवः शन्तनोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथद्वितीयब्राह्मणम् ।।

मङ्गलाचरणम्

निसर्गनीलोत्पलदिव्यदेहं रक्षोवधेऽहं गुणशीलगेहं ।
रामं प्रभाव्रीडितकोटिकामं सीताद्वितीयं कलये द्वितीये ।।

उपसन्नमथो गतज्वरं प्रणतं मैत्रसुतापदेः पदं ।
श्रुतिसारविवित्सुरादरात् पितरं भूमिभुवः स्मरामितम् ।।

अथद्वितीये षडाचार्योपदिष्टोपासनास्वेकभावतापरिच्छिन्नतां विभाव्य ताभ्यो विरज्यमानो जनकश्चणकेभ्य इव कनकं जिघृक्षुः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं याज्ञवल्क्यं समुपसर्त्तुं समीहते "तद् विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं" (मुण्डक-१/२/१२) इति श्रुतेः—

ॐ जनको ह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्यानु मा शाधीति स होवाच यथा वै सम्राण्महान्तमध्वानमेष्यन् रथं वा नावं वा समाददीतैवमेवैताभिरुपनिषद्भिः समाहितात्माऽस्येवं वृन्दारक आढ्यः सन्नधीतवेद उक्तोपनिषत्क इतो विमुच्यमानः क्व गमिष्यसीति नाहं तद् भगवन्वेद यत्र गमिष्यामीतयथ वैतेऽहं तद्वक्ष्यामि यत्र गमिष्यसीति ब्रवीतु भगवानिति ।।१।।

अथ विदेहराजो जनकः कूर्चात् कूर्चवत् वर्तुलाकारात् निजासनात् अवासर्पन् उत्थाय निकटं गत्वा तत् पदपाथोरुहयोः प्रणिपतन् उवाच निवेदयामास हे याज्ञवल्क्य ! परमाचार्य ते तुभ्यं नमोऽस्तु, मा मां अनुशाधि अनुपमं मोक्षैकसारं ब्रह्मशाधि समुपदिश । याज्ञवल्क्य उवाच–हे सम्राट् ! यथामहान्तमध्वानं मार्गम् एष्यन् गमिष्यन् स्थले रथं जले नावं समाददीत स्वीकरोति तथैव प्रवृत्तिलक्षणाभिः निवृत्तिलक्षणाभिश्च नवरूपाभिः उपनिषद्भिः समाहितात्मा संयुक्तकार्यकारणः असि, अत एव त्वं वृन्दारकः पूज्य आढ्यः धनवान् ज्ञान सम्मानाभ्यां परिपूर्णः एवम् अधीताः वेदाः येन सोऽधीतवेदः अत एव पूज्यः, उक्ताः उपनिषदः ब्रह्मरहसयश्रुतयः यस्मै येन वा तथाभूतस्त्वं किमिदं विचारयसि । यत् इतः संसारात् विमुच्यमानः मुमुक्षुः क्व गमिष्यसि किं ते गन्तव्यमिति तदन्तरेण गमनमपि हास्यास्पदं निरर्थकञ्च । जनकः प्रोवाच—हे भगवन् ! तत् अहमपि न वेद । याज्ञवल्क्यः प्राह—इदमेवष डाचार्योपदेशव्यतिरिक्तम् अभिनवं ते तुभ्यं वक्ष्यामि प्रकाशयिष्यामि इति ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथदक्षिणनेत्रस्थपुरुषं परिचाययति—

इन्धो ह वै नामैष योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तं वा एतमिन्धँ्सन्तमिन्द्र इतयाचक्षते परोक्षेणैव परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ।।२।।

जनक ! गन्तव्यं निकटमस्तीतिइति माभेतव्यं, यः अयं दक्षिणे अपशव्ये अक्षन् अक्षिणी अत्र "सुपां सुलुक्" इत्यनेन ङिलोपः, उत्तरपदपरत्वात् नकारलोपः निषेधश्च। दक्षिणे नेत्रे योऽयं पुरुषः स इन्धोनाम्ना प्रसिद्धः। इन्धयति दीपयति भक्तहृदय प्रेमाणं यस्तथाभूतः,एवं सन्तं तमिन्धं पुरुषम् इन्द्र इति व्याचक्षते। कथं विपरीतनाम्ना व्याहरन्ति परोक्षेण ? अत आह–देवाः प्रत्यक्षद्विषः प्रत्यक्षं न मन्यन्ते द्विषन्ति, परोक्षप्रियाः परोक्षं प्रियं येषां तथा भूता इव भवन्ति ।।श्रीः।।

एवमेव इन्द्र इति व्याह्रियमाणो कोसलेन्द्रो भगवान् रामः यथा दक्षिणे नेत्रे तथैव तत्पत्नी भवगती सीता पारोक्ष्येण इन्द्रपत्नी विराडन्ननाम्ना परिकीर्तिता तां वर्णयति—

अथैतत् वामेऽक्षणि पुरुषरूपमेषास्य पत्नी विराट् तयोरेष सँ्स्तावो य एषोऽन्तर्हृदय आकाशोऽथैनयोरेतदन्नं य एषोऽन्तर्हृदये लोहित पिण्डोऽथैतयो रेतत्प्रावरण यदेतदन्तर्हृदये जालकमिवाथैनयोरेषा सृतिः संचरणी यैषा हृदयादूर्ध्वा नाड्युच्चरति यथा केशः सहस्रधा भिन्न एवमस्यैता हिता नाम नाड्योऽऽन्तर्हृदये प्रतिष्ठिता भवन्त्येताभिर्वा एतदास्रवदास्रवति तस्मादेष प्रविविक्ताहारतर इवैव भवत्यस्माच्छारीरादातमनः ।।३।।

एवमेव वामेऽक्षणि वामनेत्रे एतस्य पत्नी प्रत्यक्षतः इन्द्राणी परोक्षतश्च सीता सैव विराड्रूपा, तयोः विराडन्नयोः एष संस्तावः अन्तर्हृदयाकाशः तदेव एतयोः इन्द्रेन्द्राणीदम्पत्योः अन्नं भक्षणीयं लोहितं यत् मांसपिण्डं हृदयनामकं तदेव एनयोः दम्पत्योः प्रावरणं प्रावारः अनेनैवावृतौ न दृश्येते। जालकमिव यस्तन्तु समुदायः तदेव एतयोः श्रुतिः मार्गः केशा इव सहस्रधा प्रविभक्ताः ता एव हिताभिधाना नाड्यः एताभिः इदं युगलं स्रवत्यास्रवति च अतएव अयं शारीरात् जीवात्मनः प्रविविक्ताहारतरः अतिशयेन प्रविविक्तः आहारः यस्य स प्रविविक्ताहारः तस्मादपि सूक्ष्मतरतया अयं प्रविविक्ताहारतरः सूक्ष्मतर भोजनसेवी ।।श्रीः।।

अथ प्राणात्मभूतविदुषः सर्वज्ञतां जनकस्याभयप्राप्तिश्चनिरूपयति—

तस्य प्राचीदिक् प्राञ्चः प्राणा दक्षिणा दिग् दक्षिणे प्राणाः प्रतीची दिक् प्रत्यञ्चः प्राणा उदीची दिगुदञ्चः प्राणा ऊर्ध्वा दिगूर्ध्वाः प्राणा अवाची दिगवञ्चः प्राणा ! सर्वादिश५ सव्रे प्राणाः स एष नेति नेतयशएत्मागृह्यो न

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हि गृह्यते ऽशीर्यो न हि शीर्यते ऽसङ्गो नहि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्यभयं वै जनक प्राप्तो ऽसीति होवाचः याज्ञवल्क्यः । स होवाच जनको वैदेहोऽभयं वेदयसे नमस्तेऽस्त्विमे विदेहा अयमहमस्मि ।।४।।

एवं पूर्वादयो दिशः तस्यतत्तन्नामप्राणसंज्ञां भजन्ते सर्वात्मकत्वात् । एष आत्मा ग्रहीतुमशक्यत्वात् अगृह्यः, शरणानर्हत्वात् अशीर्यः, अनासक्तत्वत्वादसङ्गः, अयं ह्रासं न गच्छति अतः अभयं भयवर्जितं परमात्मदासत्वात् हे जनक ! त्वमभयं प्राप्तः इमं सेव्यत्वेनात्मानमनुभव इति याज्ञवल्क्यः उवाच । जनकः प्रत्युवाच त्वा त्वामपि अभयं गच्छतात् परमात्मासेवकत्वेन स्वीकरोतु । हे याज्ञवल्क्य ! ते तुभ्यं नमः, यो नः अभयं वेदयसे ज्ञातयसे एतस्य परमाविनाशि ब्रह्मज्ञानस्य निष्क्रये गवां सहस्रैः किम् , इमे विदेहाः समस्तमिथिलादेशः अयमहं मिथिलाधिपतिरपि अद्यप्रभृति त्वदीय एव इति सर्वतो भावेन याज्ञवल्क्यायात्मानं समर्पयति ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि चतुर्थाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये जनकोपसत्तिर्नाम द्वितीयं ब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। राघवः शन्तनोतु मे ।।

।। तृतीयब्राह्मणम् ।।

अतिशीपुष्पसंकाशं कृपाकल्लोलिनीनिधिम् ।
सौमित्रिसेवितं रामं स्तुये सीतातृतीयकम् ।।

द्वितीये जनकोपसत्तिर्वर्णिता, तस्मा उपसन्नाय सरहस्यमात्मतत्वं वर्णनीयं वर्तते, **खल्वनुपसन्नाय वर्णयेदात्मतत्वम्** इति शिष्टाचारात् । ननु आत्मशब्दोऽत्र किमभिप्रायकः प्रत्यगात्माभिप्रायः उताहो परमात्माभिप्रायः ? उभयार्थ इति ब्रूमः, कथमिति चेत् उच्यते—शाब्दिकनये द्वेधा हि व्याचक्षते आत्मपदार्थः प्रथमं सातत्यगमनार्थक अत् धातोः, द्वितीयं व्यापनार्थात् आप्लृ धातोश्च, उभयत्रापि प्रदोषरादित्वात् साधुत्वमामनन्ति । प्रथमे कल्पे अतति सततं गच्छति जननमरणरूपे संसारप्रपंचे व्यवधानमन्तरेण संसरन् गतागतं विधत्ते । द्वितीयम् आप्नोति सर्वं व्याप्नोतीत्यात्मा एषः पक्षः सर्वेश्वरपरकः । नन्वात्मशब्दस्य विपुलार्थत्वे मानाभावः ? इति चेन्न, परमात्मेति परमशब्दस्य विशेषणतैव सूचयत्यनेकार्थकत्वमात्मनः, सत्यामेकार्थतायां व्याभिचाराभावेन परमशब्दस्य विशेषणतैव नोपपद्येत "सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद् विशेषणमर्थवत्" एवमात्मशब्दस्य जीवात्मपरकत्वव्यावृत्तये परमशब्दस्य विशेषणता सुसंगता । परमश्चासौ आत्मा इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमात्मा, जीवात्मनो हि कोटिकोटिप्राक्तनजन्मक्रूरकर्मजनित कल्मषकषायदूषिततया न पूज्यत्वम् , परमात्मनस्तु सर्वोपाधिविवर्जितविशुद्धबोध विग्रहमयस्वरूपतया पूज्यमानत्वात् "सन् महत् परमोत्तमोत्कृष्टा पूज्यमानैः" इति सूत्रेण समासः **अनादित्वात् निर्गुणत्वा त् परमात्मायमव्ययः** (गीता १३-३१) इति स्मृतेः । एवं विद्यमानो हि परमशब्दः विधेयान्वितः विशेष्यम् पूज्यमानतया संयोज्य ततोऽपूज्यं जीवात्मानं व्यावर्तयति । साम्प्रतं हि आत्मतत्वस्य परमात्मभूतस्य तत्वं निरूपयति —

जनकँ् वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम स मेने न वदिष्य इत्यथ ह यज्जनकश्च वैदेहो याज्ञवल्क्यश्चाग्निहोत्रे समूदाते तस्मै ह याज्ञवल्क्यो वरं ददौ स ह कामप्रश्नमेव वव्रे तँ् हास्मै ददौ तँ् ह सम्राडेव पूर्वं पप्रच्छ ।।१।।

ह निश्चयेन, वैदेहं विदेह एव वैदेहः तं द्वितीयब्राह्मणे जनकोपसत्तिर्वर्णिता नमस्तेऽस्त्विमे विदेह । अयमहमस्मि (वृ०उ० ४.२-४) इत्यादिना । अनन्तरं गतो याज्ञवल्क्यः ततश्च प्राप्ताभये जनके पूर्वापेक्षया समधिकविदेहता आगता । अयमर्थोऽण् प्रत्ययेन स्वार्थिकेन द्योत्यते अतिशयेन विदेहः वैदेहः । यद्वा याज्ञवल्क्यागमनेन दास्यमान ब्रह्मविद्यया राजायमनुकम्पितो भविष्यतीति त्रिकालज्ञा श्रुतिः, जनके महर्षेरहैतुकीमनुकम्पां द्योतयितुं छन्दसि बाहुलकबलेन कन् प्रत्यये विषयेऽप्यनुकम्पितार्थे दर्शयत्यण् प्रत्ययकार्यम् । अनुकमम्पितो विदेह वैदेहः तं निजानुकम्पाभाजनं योगिराजजनकं याज्ञवल्क्यः अनाहूतोऽपि जगाम । स इत्थं मेने विचारितवान् यज्जनकस्य विदेहराजस्य समक्षं न वदिष्ये, यतो हि साम्प्रतमयं ब्रह्मवित् निरस्तसकलसंशयः अतो "गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्न संशयाः" इति नियममनुवर्तयिष्यामि । इति जनकस्य न वदिष्ये, इत्यत्र निरस्तसकलकार्यकारककलापतया कर्मत्वाविलक्षणेन षष्ठी । किन्तु अग्निहोत्रे विदेहराजजनकः, याज्ञवल्क्यश्च अग्निहोत्रे अग्निहोत्र सम्बन्धि कस्याँश्चिच्छास्त्रीय-चर्चायां समूदाते "भासनोपसंभाषा-ज्ञान-यत्न विमत्युपमन्त्रणेषु वदः" (पा० अ० १-३-४७) इत्यनेन ज्ञाने सम्पूर्वकवदधातोरात्मने पदे लिट्लकारे प्रथमपुरुषद्विवचने अभ्यासादि कार्ये समुपसृष्टे दीर्घे समूदाते परस्परं संवादं चक्राते इत्यर्थः । तस्मिन्नग्निहोत्र-संवादे जनकेन संतोषितो याज्ञवल्क्यः जनकराजाय वरं ददौ, स जनकः, कामप्रश्नं कामः मुमुक्षा तथैव प्रकरणात् तद् विषयकः प्रश्नः कामप्रश्नः, यद्वा कामः मनश्छन्दं तमनतिक्रम्य प्रश्न इति कामप्रश्नः, अर्थात् याज्ञवल्क्ये समागते यस्मिन् कस्मिन्नपि काले जनको यथेच्छप्रश्नाय याज्ञवल्क्यदत्तेन वरेण पूर्णमधिकृतोऽस्तीति भावः । वव्रे वृतवान् , याज्ञवल्क्यः तं कामप्रश्नरूपं वरं जनकाय ददौ समनुजज्ञौ तं स्वाधिकारं स्मरन् सम्राड् एव योगिराजजनकः ऋषेरिच्छामन्तरेणापि नोपदेक्ष्यन्तमपि याज्ञवल्क्यम् अतिथिक्रियया सम्पूज्य उपदेशानिच्छाप्रस्तावात् पूर्वमेव पप्रच्छ गीप्साञ्चकार ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ पुरुषव्यवहारे समुपयोक्ष्यमाणानामादित्यादि सम्बन्धिनां पञ्चज्योतिषां विषये प्रश्नः । तत्र प्रथम आदित्यज्योतिर्विषये प्रश्नः —

याज्ञवल्क्य किं ज्योतिरयं पुरुष इति । आदित्यज्योतिः सम्राडिति होवाचादित्येनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्यवेमेवैतद्याज्ञवल्क्य ।।२।।

याज्ञवल्क्य ! इति सम्बोधयति अयं पुरूषः किं ज्योतिः ? किन्नामकं ज्योतिर्यस्य तथा भूतः, एषः स्थूलसूक्ष्मशरीरावयवसंघातावच्छिन्नपुरुषः केन ज्योतिषा युक्तः जगति व्यवहरति, यथा तिमिरमये पथि गच्छन् पथिकः किमपि प्रकाशसाधनमालम्बते, प्रकाशमन्तरेण तमोमयवर्त्मनि तद्गमनासम्भवात्, एवं पुरुषस्य किमवभाषकं, किमिदं ज्योतिः एतस्य कार्यकरणसंघातस्य कोऽप्यवयवविशेषस्तदन्तरवर्ती उताहो तस्माद् व्यतिरिकतम् ? इति जनकजिज्ञासितम् । ब्रह्मविद्वरिष्ठोऽपि विप्रतिपन्नविषये आचार्यप्रमाणमाचक्षते, इति पृष्टः सन् याज्ञवल्क्यः तं सम्राडिति सम्बोधयति । सम्यक् राजते समत्वलक्षणेन ब्रह्मज्ञानेन वा राजते यः सः सम्राड्, इति व्युत्पत्तौ राजृदीप्तौ इति दीप्त्यर्थकराजृधातोः समुपसृष्टात् क्विपि प्रत्यये "व्रश्च भ्रश्च".....इत्यादिना जकारस्य षत्वे जश्त्वे 'मो राजि समः क्वौ (पा०अ० ८/३/२५) इत्यनेन अनुस्वारनिषेधे सम्राड्, त्वमात्मभूतः सन् न कस्यचिदिन्द्रियस्य परतन्त्रः परमात्मपदपद्मदुर्गः तत एव विजितषड्वर्गशत्रुः सम्यग् राजसे । तथापि मां सम्भावयितुं ते प्रश्नः । याज्ञवल्क्य-सदृशस्य ब्रह्मज्ञस्य निरभिमानितैषा शोभत एव । ज्ञानिनो हि निसर्गसिद्धामानित्वादि-सद्गुणसम्पत्तिशालितोपपत्तेः । यथोक्तं नीतौ —

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ।।

श्रीमानसेऽपि श्रीयाज्ञवल्क्यस्य विनयमधुरत्वरूपमहात्मलक्षणं स्पष्टमेव । तद्यथा भरद्वाजेन श्रीरामविषयकप्रश्नान् पृष्टः सन् स्मयमान उवाच याज्ञवल्क्यः —

जाज्ञवलिक बोले मुसुकाई । तुमहि विदित रघुपति प्रभुताई ।।
राम भगत तुम मनक्रम बानी । चतुराई तुम्हारि मैं जानी ।।
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा । कीन्हेहु प्रश्न मनहुँ अति मूढा ।।

(मानस १/४७/२-३-४)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपान्तरम् —

याज्ञवल्क्यो भरद्वाजं स्मयमान उवाच ह ।
प्रभुत्वं श्री रघुपतेर्विदितं ते मुनीश्वर ।।
मनसा कर्मणा वाचा रामभक्तस्त्वमुत्तमः ।
अहं विज्ञातवानद्य चातुरीं ते महामते ।।
श्रोतुमिच्छसि रामस्य गुणान् गूढ़ान् द्विजर्षभः ।
तथाप्यकर्षीः प्रश्नांस्त्वं नितरां बनिशो यथा ।।

हे सम्राड् ! आदित्यज्योतिः तथा हि दानं खण्डनं दितिः "दोऽव" खण्डने इत्यस्माद्धातोः भावे क्तिन् प्रत्ययः । एवं नास्ति दितिः खण्डनं तदात्मकम् अल्पज्ञानाभासं यस्यां सा अदितिः अखण्डज्ञानवृत्तिः, यद्वा न विद्यते दितिः खण्डः यस्मिन् सोऽदितिः **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** इत्यादि लक्षणलक्षितः अखण्डज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेज सम्पन्नः परमेश्वर परमात्मैव **अतिदिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता सपितासपुत्रः विश्वेदेवाऽअतितिः पञ्चजनाऽअदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम्** ।। इति मन्त्रवर्णात् । एवम् अदितेः परब्रह्म परमेश्वरात् नेत्रावच्छदेन जातः आदित्यः दित्यादित्येदित्यपत्युत्तरदाण्यः पा. ४-१-८५ इत्यनेन ण्य प्रत्यये अनुबन्ध कार्ये आदित्यः । "चक्षोः सूर्यो अजायत" इति मन्त्रवर्णात् । अदितिर्वा देवमाता भगवच्चक्षुरवतारभूता, तस्यां जातः आदित्यः स एव ज्योतिर्यस्य तथाभूतः । उपपत्तिमाह—अयं पुरुषः आदित्येन ज्योतिषा अत्राभेदे समानाधिकरण्यं ज्योतिर्विशेषणत्वादादित्यस्य ज्योतिषा इत्यत्र करणे तृतीया । एवम् आदित्यरूपेण ज्योतिषा अवभाष्यमानोऽयं पुरुषः अयम् एषः संसारे आस्ते, तिष्ठति । पल्ययते परितः अयते अत्र परितः रकारस्य लकारे पल्ययते सूर्यरूपज्योतिषा प्रकाश्यमानः अव्याहतगतिः सर्वत्र गच्छति । एवम् कराभ्यां कर्म कुरुते कर्तृत्वाभिमानित्वाद्, कर्म फलस्य तत्रैव सत्वेन "स्वदितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले" पा०अ० आत्मनेपदम् । एवम् कर्मावसानेविपल्येति प्रलयं याति परमात्मनि, इत्युत्तरेण सन्तुष्टः प्रथमं ज्योतिर्विषये सम्मतिम् आह—हे याज्ञवल्क्य ! त्वदुक्तं समाधानम् एतत् एवमेव इदृशमेव अर्थात् स्वव्यतिरिक्तेनैव सूर्यरूपेण ज्योतिषा जीवो जगति व्यवहरति इति ।।श्रीः।।

अथ चन्द्र ज्योतिषि जिज्ञासते—

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य किं ज्योतिरेवायं पुरुष इति चन्द्रमा एवास्य ज्योतिर्भवतीति चन्द्रमसैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म करुते विपल्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ।। ३ ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जनकः पुनः पृच्छति—अथ हे याज्ञवल्क्य ! आदित्ये सूर्ये अस्तं प्रकाशोपसंहारलक्षणम् इते प्राप्ते आध्यात्मिकदृष्टौ चक्षुषि वर्तमाने सूर्ये ज्योतिषि विश्रान्ते चक्षुषि रूपदर्शनाक्षमे अयं पुरुषः किं ज्योतिः किन्नामज्योतिरवछिन्नः ? इति पृष्टः सन् याज्ञवल्क्यः प्राह—अयं चन्द्रमा ज्योतिः मनोमयः । उपपत्तिमाह—चन्द्रेण इव ज्योतिषा मनोमयेन सूर्यज्योतिरभावेऽपि पुरुषोऽयं जगति तिष्ठति गमनादिकर्म कुरुते प्रलीयते च एवमेतद् इति कथयन् स्वीकरोति ।।श्रीः।।

अग्निर्ज्योतिविषये प्रश्नः —

अस्तमित आदित्ये यारुवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते किं ज्योतिरेवायं पुरुष इत्यग्निरेवास्य ज्योतिर्भवतीत्यग्निनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्मकुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ।।४।।

एवं अस्तङ्गते सूर्ये अस्तङ्गते च चन्द्रे उभयोरभावे अयं पुरुषः किं ज्योतिः किन्नाम ज्योतिष्कः ? इति प्रश्ने अस्य पुरुषस्य अग्निः एव ज्योतिः तेनैव ज्योतिषा समवभासमानः सूर्यचन्द्रज्योतिरभावेऽपि कर्म कुर्वन् प्रलीयते, एवमेतद् इत्युक्त्वा जनकः समाधाने सन्तोषमाह ।।श्रीः।।

अथवाग्ज्योतिर्जिज्ञासते—

अस्तमित आदित्ये यारुवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तेऽगौ किं ज्योतिरेवायं पुरुष इति वागेवास्य ज्योतिर्भवतीति वाचैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्मकुरुते विपल्येतीति तस्माद्वै सम्राडपि यत्र स्वः पाणिर्न विनिर्ज्ञायतेऽथ यत्र वागुच्चरत्युपैव तत्र न्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ।।५।।

जनकः पृच्छति—हे याज्ञवल्क्य ! सूर्ये अस्तङ्गते चन्द्रे च निमग्ने, अग्नौ च शान्ते दाहकत्ववर्जिते, अयं पुरुषः किन्नाम ज्योतिष्कः भवति ? उत्तरमाह—त्रयाणाम् सूर्यचन्द्राग्निज्योतिषामभावेऽपि पुरुषो वाग्ज्योतिष्को भवति । तेनैव ज्योतिषा प्रेर्यमाणः कर्म कुर्वाणो लीयते । उपपत्तिमाह—तस्मात् हे सम्राड् ! तस्मादेव हेतोः यत्र यस्मिन् गहने अन्धकारे यत्र स्वः पाणि हस्तोऽपि न विनिर्ज्ञायते न दृश्यते । तथाऽपि यत्र वागुच्चरति उच्चरतीति कर्मकर्तृ प्रयोगः, अत्र हि उच्चार्यमाणयाः वाचः उच्चरणकर्मभूताया अतिशयतां द्योतयितुं वाचः स्वव्यापारस्वातन्त्यात् कर्तुव्यापारस्यचाविक्षणीयत्वेनोपपत्तेः । यथोक्तं दीक्षितेन सिद्धान्त कौमुमद्यां यदाकार्ये सौकर्यं द्योतयितुं कर्तृ व्यापारो नो विवक्षितस्यदा कारकान्तराण्यपि कर्तृ संज्ञां लभन्ते स्वव्यापारे स्वतन्त्रत्वात् । (वै.सि.कौ. क. प्र.) तत्र उपनर्यीति निश्चित्य उपैति । याज्ञवल्क्यः एवमेवैतद् इति स्वसन्तोषमाह ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथात्मज्योतिर्विषये प्रश्नः —

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तेऽग्नौ शान्तायां वाचि किं ज्योतिरेवायं पुरुष इत्यात्मैवास्य ज्योतिर्भवतीत्यात्मनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति ।।६।।

एवं वाचि शान्तायां मौनावस्थायां मूकत्वमागते वा पुरुषे आत्मैव प्रत्यगात्मैव ज्योतिः अनेनैव कर्मकुर्वन् प्रलीयते । एवं क्रमेण सूर्यचन्द्राग्निवाचां ज्योतिषां एकैकशः नाशं प्राप्तानां परमार्थतः आत्माभिन्नपरमात्मैवज्योतिः तस्य नित्यसत्वात् अविनाशित्वात् अनुपहितचैतन्यवत्वात् व्यापकत्वाच्च नैवास्य नाशो न वा ह्रासः । यथोक्तं श्रीभगवता —

न जायते म्रियते वा कदाचि न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

(गीता २-२०)

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।

(क.उ. १-२-१८)

तस्मादात्मनो ज्योतिष्ट्वम् सार्वकालिकं पारमार्थिकं च परमप्रकाशरूपत्वात् ।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

(क.उ.२-२-१५)

यथोक्तं श्रीरामचरितमानसे —

विषय करन सुर जीव समेता । सकल एकते एक सचेता ।।
सबकर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवध पति सोई ।।

(मानस १/११७/५-६)

रूपान्तरम् —

विषयाः करणान्येव देवाः जीवाश्चराचराः ।
एकैकस्मादिमे सर्वे भान्ति सँल्लब्धचेतनाः ।।

सर्वेषामेव भूतानां यः परमः प्रकाशकः ।
रामोऽयोध्यापतिः सोऽसावनादिः परमेश्वरः ।।

इदानीमात्मस्वरूपं विविच्यते । अत्र विप्रति पद्यन्ते दार्शनिकाः देहात्मबुद्धयश्चार्वाकाः । अतश्चार्वाकमतप्रर्वतकस्तथाकथितबृहस्पतिः प्राह—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईश्वरास्तत्र राजानः व्यवायो मोक्ष एव च ।
स्त्रियः स्वरूपाश्चाप्सरसः निद्रैवात्यन्तिको लयः ।।

स्त्रीव्यवायोत्थितानन्दः समाधिः परिकीर्तितः ।
सशैय्या सा भवेत् स्वर्गः नरकं तद्वियोजनम् ।।

न ज्ञानं न पुनर्जन्म नैव कर्म न च श्रुतिः ।
एवमादीनि वाक्यानि प्रलपन्त्यमनीषिणः ।।

तन्मते प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्। वेदास्तु केषाञ्चिद् ब्रह्मणानां रचना, इति समस्तोऽपि जल्पनाप्रपञ्चः इतः प्रागेव त्रिकालज्ञेन भगवता श्रीकृष्णेन आसुरसम्पत्तिनिरूपणे क्रोडीकृतः। तस्माद् भगवदुपेक्षितसिद्धान्तत्वात् निराधारत्वाच्च नैवैतन्मतं विचारकोटावाधेयम्। देहात्मबुद्धिवादस्तु तर्काग्नौ तूलराशिरिव। तथात्वे कस्यचिदेकस्यावयवस्य वैकल्ये आत्मनोऽपि वैकल्यं स्यात् एवं तदनित्यत्वे जीवात्मनोऽप्यनित्यतायां तेषां नाशे तथा चापत्तावात्मनः पुनः कोषे रिक्ते सति तद् रचयितुः कस्यचिद् कल्पनौचित्येन परमेश्वरस्य स्वीकारापत्तौ त्वत् सिद्धान्त एव नाध्यवसीयेत्। एवं देवतिर्यङ्नरादिषु विवेकाविवेकतारतम्ये न देहजनितदोषाणामात्मनि समारोपात् तत्र विज्ञत्वानभिज्ञत्वकामित्व-क्रोधित्वसञ्ज्ञत्वकाणत्वादिदोषभूयस्त्वेन तत्र क्वापि निर्दोषतानापत्तेः। कर्तारमन्तरेण शरीररचनानापत्तौ विप्रतित्तौ च ततिच्छरीरतारतम्यप्रस्तावे पुनः कर्तृकल्पनायां पूर्व उक्तस्यैव दोषस्य वज्रायमाणत्वात्। पत्नीपुत्राद्यात्मवादस्तु तेषामसत्वे शरीरसत्वेनैव कुठारेणौदुम्बरतरूरिवधूलिसात्कृतः। **एवमात्मा हि दारा सर्वेषाम् आत्मा वै जायते पुत्रः** इत्यादि वचनानां सिंहोमाणवक इतिवत् भागलक्षणातो निर्वाहः। एवमेव मनस् आत्मत्वादे उन्मत्तानां मृतत्वापत्तिः, नहि आत्माभावे देहसत्ता। वृक्षादीनामपि मनसोऽसत्वे जीवतत्वानुपलम्भापत्तेः। न च तत्र आत्मैव नास्तीति वाच्यं तस्याभावे तेषां हरितत्वाद्यनुपपत्तेः, आत्मनोऽभावे शवस्य क्षणमपि विकारवर्जितत्वं न दृष्टं किञ्चित्कालानन्तरं तत्र दुर्गन्धाद्यप्युपलभ्यते। नहि आत्मनोऽसद्भावे मृतायां कस्यांञ्चित् योषिति सन्तानोत्पत्तिर्दृष्टा, तथैव अनंगीकारे आत्मसत्तायाः वृक्षेषु फलपुष्पादिदर्शनमप्यनुपपन्नं स्यात्। आत्मसत्तायामेव तेषां शाखाः हरिताः फलपुष्पपल्लववन्तो दृश्यन्ते। नहि कुठारकृत्तस्य वृक्षस्य फलपुष्पपल्लवानि दृश्यन्ते, तस्मात् मनोऽपि नात्मा। अथैन्द्रियात्मवादोऽपि निर्मूल एव। अन्यथा चक्षुराद्यभावे कथं जीवस्य जीवनं स्ताय, मूक बधिरादयो श्रुत्याद्यभावेऽपि जीवन्तो दृष्टाः। आत्मव्यतिरेकेण जीवनासम्भवस्य सर्वेषां निर्विरोधत्वेन स्वीकृतत्वे अनीन्द्रियवतामपि वृक्षाणां जीवनोपलम्भदर्शनात्। तत्र व्यप्तिभंगापत्तेर्दुर्वारत्वात् त्वयापि कोटिकोटिजन्मस्वपि निवारयितुमशक्यत्वात्। वृक्षादीनां जीवनत्वे किं मानमिति चेत्, वृक्षाः प्राणवन्तः हरितशाखाफलपुष्पपल्लवत्वात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यन्नैवं तन्नैवमिति व्यतिरेकगर्भमनुमानमेव प्रमाणम् , छिन्नमूलतरौ पल्लवादीनामनुपलब्धेः, प्रत्यक्षमपि त्वदिष्टप्रमाणम् । अयं बुद्ध्यात्मवादोऽपि न युक्तः, मूर्खादौ तस्या अभावेऽपि जीवनोपलम्भात् जडेषु तदसत्वेऽपि जीवनस्य स्पष्टमुपलब्धेः । अत्र जैनानां नये पुद्गलपदार्थतः सृष्टिः तत्र स्याद्वादस्य विडम्बनया कस्यापि मतस्यानिश्चिततत्वात् सिद्धान्ते निश्चयेन प्राणवत्वात् तैः सह चर्चापि मूर्खताया आमन्त्रणम् । एषां मते गौरपि गर्भिणी वृषभोऽपि गर्भवान्, तेषां सिद्धान्ते कियद् अस्तित्वमिति सुधियो विभावयन्तु । तथागतानां शून्यवादस्यापि इयं दशा तन्मते शून्यात् सर्वं भवति, तर्हि ते आकाशात् आम्रफलं कथं नोत्पादयन्ति ? समस्तचेष्टा शून्ये पुरुषशवे कथं न भाषणादि कथं न चित्रचित्रित नरेण सह न भाषणादि एवं क्षणिकवादोऽपि प्रलाप एव । क्षणे क्षणे अत्मनां विनाशात् पुरानुभूतानां विषयाणां स्मरणानुपत्तेः । न च पूर्वजन्मस्मरणस्य जन्मान्तरेऽपि सत्वान्नदोषः । इति व्व्यम्, तथासतितु समाग्राः पुनर्जन्मवादः तर्हि क्षणे क्षणे पुनर्जन्मापेक्षया यथाकालं मातृजठरे गर्भधारणसिद्धान्त एव वरः, क्षणिकत्ववाद कल्पने अविरतजननमरण-कल्पनायामनवस्थादोषः । विज्ञानवादे तावत् भवतां मते जडत्वं चेतनत्वं चेत् अस्मन्मतं जडत्वं चेत् तत्र विज्ञानानापत्तिः । एवं नास्तिकमतं नभः पुष्पबन्ध्यापुत्रशशशृङ्गादिरिव कपोलकल्पितमात्रम् ।

इदानीमुच्यत आस्तिकमतविषये — आस्तिकेषु सांख्याः शरीरव्यतिरिक्तमात्मानं मन्यन्ते । तेषां मते जीवात्मा ज्ञपदार्थः स च पुष्करपलाशवन्निर्लेपः, विशुद्धचेतनः किन्तु स्वयं सृष्टिरचनायामसमर्थः प्रकृत्या सहयुज्मानः सृष्टिरचनायां निमित्तहेतुत्वमाटीकते । **द्यावाभूमीजनयन्देव एकः** इतिश्रुतेः । **मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयतेसचराचरम्** गी० ९.१० इतिस्मृतेः । सच्चेतनायाः प्रकृतिसंपर्कबाध्यत्वं तत्र चस पंगुरिवसमर्थः भिन्नभिन्नयोनिषु भिन्नभिन्नस्वभावोपलम्भात् जीवात्मनामनेकत्वमेकत्वे सति एकस्मिन् जाते सर्वेषां जीवनम् एकस्मिन् मृते सर्वेषां मरणम् एकस्मिन् विकले सर्वेषां विकलता एकस्मिन् प्रसन्ने सर्वेषां संप्रसादः, किंतु न तथात्र दृश्यते । **अतः प्राहुः पग्वंधवदुभयोरपि संयोगस्तत् कृतः सर्गः** यद्यपि **यः सर्वज्ञः स सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः एषसर्वेश्वरः सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः** इत्यादि श्रुतिभिः आत्मनः सर्वसामर्थ्यसर्वज्ञत्वादि-सद्गुणेषु साधितेषु सत्सु **असंगो नहि सज्यते** इत्यादिश्रुतिभिश्च तस्यासङ्गत्वे चोपपादिते सांख्यस्येमे पक्षाः नैवादरर्तव्याः । श्रुति व्याकोपात् मातृभक्त्या वयं सोढुं शक्नुमो व्याकोपं परमात्मनः पितृस्थानीयस्य न तु मात्रस्थानीयानां श्रुतीनां, जीवात्मबहुत्वे श्रुतयोऽपि सांख्येन सह संम्मताः **नित्योनित्यानां चेतनश्चतेनां एको बहूनां यो विदधाति कामान् रूपं रूपं प्रतिरूपो भूव इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते इत्यादयः** शताधिकाः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नत्वेवाहं जातुनाशं नत्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।

(गी० २.१२)

इति स्मृतेश्च । स्वामभिमतिं तु पश्चान्निदर्शयिषामः । सांख्ये पक्षद्वयं निरीश्वरवादः सेश्वरवादश्चेति पाश्चात्याः, वस्तुतस्तु सेश्वरवाद एव, इदं सांख्यप्वचनभाष्ये श्रीविज्ञानभिक्षुपादैः स्पष्टं प्रतिपादितम् । योगेऽपि चतुर्विंशंतितत्वात्मके ईवरात् पृथग्जीवस्य सत्ता, तस्य च सुखदुःखादि भोक्तृत्वं पंचक्लेशवसंवदत्वं कर्मविपाकैः पापच्यमानत्वात् आशयमलिनत्वाच्च नितरामक्षमत्वम् । एतन्निखिलानर्थनिवर्हणाय ध्यातृध्येयपृथक्त्वा परिकल्पने परमेश्वरे ध्येयत्वं जीवे च ध्यातृत्वं समर्थयति योगः । तत्रहि सूत्रम् **कायक्लेशकर्मविपाकाशमैरपरामृष्टः** पुरुषविशेष ईश्वरः । यद्यपि अनुभवप्रधानत्वात् योगदर्शनं परमात्मनो निकट मन्यन्ते, परन्तु श्रुतिप्रमाणपक्षपातैकचक्षुष्ट्या वेदान्तं परमान्तरङ्गतममिति वयम् । अथ काणादाः सप्तपदार्थज्ञानेनमोक्षमामनन्ति, नैयायिकाश्च प्रमाणादि षोडशपदार्थज्ञानेनैव मोक्षं निश्चिन्वन्ति । तेषां नये धर्मोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिद्वारं **यतो भ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः इति हि** तत्रत्यं सूत्रम् इमेऽपि जीवात्पृथक् परमात्मानं स्वीकुर्वन्ति । अतो नवषुद्रव्येषु आत्मानमष्टमं परिगणयन्तः ज्ञानाधिकारणमात्मा सद्विविधो जीवात्मा परमात्मा चेति तत्रेश्वरः सर्वज्ञो विभुर्नित्यश्च जीवात्मा प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च एवं हि तत्र कारिकावली —

आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाताकरणं हि स कर्तृकम्

(का०प्र० रवा० ४७)

अत्र नैयायिकाः सुखदुःखादि समवायिकरणतावच्छेदकत्वात्मत्वमिति जातित्वमामनन्ति, जातिश्च एका नित्या सती चानेकसमवेता । यद्यपि आत्मनि सुखादि धर्मता वेदान्ते न स्वीक्रियते, स हि अपहतपाप्मा, सत्यकामः, विजरो, विशोको, विमृत्युः, अविजित्सः, अपिपासः इति पूर्ववर्णित अष्टलक्षणलक्षितत्वेन आत्मनि तथात्वानुपपत्तेः । किंतु नैयायिकानां नव्यानां मतमस्माकमपि वैष्णवानामानुकूलं जीवात्मा कर्मपरतन्त्रत्वात् सुखादिसमवायिकारणतावच्छेदको भवतु नाम, अत एव तु स अपहतपाप्मा, पाप्मनि समागते सति तस्यापहननम् आगमनाभावे तस्याप्यपहननस्याप्यसंभवः । एवं विजरः विमृत्युरित्यादि भगवत्कैंकर्यं प्राप्तवतो नित्यमुक्तस्वरूपस्थजीवात्मनो यद्यपि पार्श्वे समागच्छन्ति सुखदुःखादयः, किंतु तानि भगवद्भजने पाप्मरुपतया विहन्यन्ते भगवद्‌महिम्नेति वयम् । अत एव ते प्रमाणत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकताकाभावेन ईश्वरे जातिं न स्वीकुर्वन्ति, यद्यपि नैयायिकनयेऽपि शरीरस्य न चैतन्यमित्यादिना शरीरे, आत्मवादोनिराकृतः । तथहि —

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः ।
तथात्वं चेदिन्द्रियाणामुपघाते कथं स्मृतिः ।।

(का० प्र०४८)

अस्यार्थः पुरैव व्याख्यातः । तथापि नैयायिकानां नये शरीरेषु मृतेषु व्यभिचारः स्यात् आत्मा हि विमृत्युः मृत्युवर्जितः जरारहितश्च एवं शोकरहितः क्षुत्पिपासाभ्यां वर्जितः शरीरे इमे सर्वे दोषाः । तथाहि शीर्यते इतिशरीरम्, आत्मा अशीर्यः, शरीरे बालकौमारतारुण्यजरावस्थाः आत्मात्वेकरसः । इति चेत् विज्ञानमात्मा सुखदुःखादीनां तदाकारत्वात् । विज्ञानं हि द्विधा नीलपीतत्वादि सविशेषपदार्थावलम्बि, इदं पीतमिदं नीलमिदं श्वेतमित्यादि । आलय विज्ञानं तु सकलविशेषणशून्यत्किंचित् वस्तुमात्रावलम्बि अहमस्मि इत्यादि । तथा चाहुः—

तत्स्यादालयविज्ञानं यद्भवेदहमास्पदम् ।
तस्मात्प्रवृत्तिविज्ञानं नीलपीतादिके भवेत् ।।

पूर्वपूर्व संस्काराणामुत्तरोत्तरं स्मरणात् । इति चेन्न, उद्बोधकमन्तरेण प्रसुप्त-संस्काराणां संस्मरणानुपपत्तेः । यथोक्तं कालिदासेन शाकुन्तले—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् ।
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं ।
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ।।

(शा० ५/२४)

एवं हि समवायसंबन्धेन नित्यज्ञानवत्वमित्यामनन्ति । जीवात्मनो भेदपक्षे तु तार्किकान् श्रुतयोऽनुरुन्धन्ति । ज्ञानाधिकरणत्वपक्षे सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादि श्रुतीनां व्याकोपः सोढव्यस्तैरपि । ब्रह्मशब्दस्य हि त्रीणि इमानि विशेषणानि सत्यं, ज्ञानम् अनन्तं समानाधिकरण्यश्चैकविभक्तिन्ष्ठिाया प्रथमान्तानाम्, अमीषां त्रयाणां प्रथमान्तेन ब्रह्म इति विशेष्येण, एवं नामार्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धो न व्युत्पन्नः इति गदाधरभट्टमतानुरोधेन त्रीण्यपि ब्रह्माभिन्नानि । तथाहि नीलोघट इत्यत्र नीलाभिन्नो घट इव सत्याभिन्नं ब्रह्म ज्ञानाभिन्नं ब्रह्म अनन्ताभिन्नं । एवं सत्येन सत् ब्रह्मेति ज्ञानेन चित् अनन्तशब्देन अनन्तत्वादानन्दस्य आनन्दमिति सच्चिदानन्दब्रह्मेति पर्यवसितम् । एवं यद्यात्मा ज्ञानाधिकरणं तदा ज्ञानं ब्रह्मेति प्रथमान्तप्रयोगो नोपपद्येत नहि व्यधिकरणयोर्द्वयोः पदार्थयोः समानविभक्तिकत्वरूपसामानाधिकरण्य, यद्यपि एतस्याः शंकायाः निराचिकीर्षुणा मया ज्ञानमित्यत्र ज्ञानम् अस्ति अस्मिन् नित्यम् इति व्युत्पत्तौ आकृतिगणत्वेन अर्श

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदित्वात् अर्थं इति समाहितम् । एवं समवायसंबन्धेन नित्यज्ञानवत्वम् ईश्वरत्वं ब्रह्मत्वमिति पर्यवसितं, साधुत्वार्थमच् प्रत्ययः वैयधिकरण्यपरिहारार्थं मतुबेर्थमोसे स्वरूपे इतिमदीयं समाधानम् एवं ज्ञानस्वरूपं ज्ञानाधिकरणं च ब्रह्म इति पर्यवसितम् । मीमांसकास्तु धर्मप्रधाननिरूपणतया ईश्वरस्य चर्चामेव प्रायेण न कुर्वन्ति । तथापि तत्तद्देवता प्रधानमन्त्राणां विनियोगेन कल्पयितव्यः स ईश्वरः । एवं पञ्चस्वप्यास्तिकदर्शनेषु भेदवादो जीवात्मपरमात्मनोर्मध्ये वेदान्ते च अभेदप्रतिपादकश्रुतीनामनुरोधेन शंकरमते त्वभेदवादः । षण्णां चास्माकं वैष्णवानां मते च भेदवादः ! श्रुतीनांसंगतमे चाभेदं स्वीकुर्मः सम्बन्धतः न तु स्वरूपतः ।।श्रीः।।

अथ प्रकृतमात्मतत्वं निरुपयितुं श्रुतेरुपक्रमः —

कतम आत्मेति योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योति पुरुषः स समानः सन्नुभौ लोकावनुसञ्चरति ध्यायतीव लेलायतीव स हि स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति मृत्यो रूपाणि ।।७।।

अथ येषु देहेन्द्रियमनोबुद्धिषु कतमः अयमात्मा किं जातीयकः देहो मानसऐन्द्रियः बौद्धो वा ? याज्ञवल्क्य आह–नैतेषु कतमोऽपि, एतद् विषये व्याख्यातचरत्वात् , साम्प्रतं हि प्रादेश्यमात्रं—पत्नीपुत्रदेहादौ नात्मबुद्धिः, तदभावेऽपि जीवितस्य सत्वात्, देहस्यापि विकृतानां केषाञ्चिदवयवाना स्वयं पातदर्शनात् केशनखदन्तादीनां, केशाञ्चिच्च शल्यक्रियाद्वारेण समुच्छेददर्शनात् आत्मन्यपि तथात्वापत्ते । देहस्य प्रतिक्षणं परिवर्तन-शीलत्वदर्शनेन, उपचयापचयधर्मत्वप्रसिद्धेश्च, उपचयार्थकदिह धातोरेव देहशब्द निष्पत्तेश्च, तत्र कौमारयौवनजराणां समारोपापत्तौ भगवद्भजनविरोधः । तथोक्तम्—

देहिनोऽस्मिन् यथा देह कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरः प्राप्तिःस्थीरस्तत्र न मुह्यति ।।

(गीता २/१३)

देहानामन्तवत्वस्य जीवात्मनो नित्यत्वाविनाशित्वाप्रमेयत्वादिधर्माणां श्रवणस्मरणानुरोधेन देहे न तथात्वम् ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः

(क०उ० १/३/१८)

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।

(गीता २/१८)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमात्मत्वे मनसः तस्मिन्नपि सुखदुःखादि धर्माणां समुपलब्धिप्रसंगः मनस इव तत्र चञ्चलत्वापत्तिः, इष्टापत्तेरिति चेन्न, श्रीगीतासु भगवद्वचनविरोधात् तथा हि पार्थं प्रति षष्ठे मनो दुर्निग्रहं चलम् (गीता ६/३५) आत्मानां प्रति द्वितीये अचलोऽयं सनातनः मनसः इन्द्रि त्वेन तद्दर्शनस्य क्वापि श्रुतिस्मृतिषु दृष्टत्वेनानुपलम्भात्। तथात्वे आत्मनोऽपि तथात्वापत्तौ **आत्मा वा अरे द्रष्टव्य** (वृ०उ० ३/५) इत्यादि श्रुतीनाम् **आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं** (गीता २/२९) **यः पश्यति तथात्मानं** (गीता १३/२९) इत्यादि स्मृतीनां च वैयर्थ्यापत्तिः। ननु आत्मनः प्रत्यक्षे किं मानम्? इति चेत् **मनसैवानुद्रष्टव्यम्** इति श्रुतिरेव प्रमाणत्वेन गृह्यताम्। अत एव **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः** इत्यत्र विधेयत्वेन दर्शनं वर्णितम्। ननु **त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च** (पा०अ० ३/२/६०) इति सूत्रे दर्शनभिन्नार्थे अनालोचने कञ् प्रत्यय विधानात् दृश् धातोः दर्शनभिन्नार्थस्यापि पाणिनिनैव प्रदिपादित्वात् तस्य ज्ञानार्थतायाः स्वीकारे **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः** इत्यत्र यत्प्रत्ययाश्रयस्य ज्ञानार्थत्वोपपत्तौ स्मृतिष्वपि तथैवार्थानुसन्धाने आत्मनः प्रत्यक्षस्य निर्मूलत्वमेव इति चेन्न। **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः** इति श्रुतौमन्तव्यः इति ज्ञानार्थकस्य प्रयोगात् द्रष्टव्य इत्यस्य दर्शनार्थकत्वस्यैवौचित्यात् तत् प्रत्यक्षस्य प्रामाणिकत्व सन्देहप्रसारावसरानौचित्यात्? चेत् **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः** इत्यत्र प्रयुक्तस्य तव्यप्रत्ययान्तस्य द्रष्टव्यः इत्यस्य ज्ञातव्यः इत्येवार्थो विवक्षितः स्यात्। तदा तस्यैवार्थस्य प्रतिपादनामय अवबोधनार्थक मन् धातोस्तव्यत् प्रत्ययान्तस्य मन्तव्यः इत्यस्य श्रुत्या कथं पुनरुक्तिः क्रियेत। न हि एकस्यार्थस्य विधित्वेन प्रतिपिपादयिषया द्विर्वचनं क्रियते। अज्ञातज्ञापिका हि श्रुतिः विज्ञातज्ञापकत्वे तस्यामपूर्वतानापत्तौ, द्रष्टव्य इत्यस्य प्रत्यक्षविषयीकरणीय इत्येवार्थः शास्त्रीयः। न च **अभ्यासे** (पा०धा०पा० ९२९) इत्यभ्यासार्थकस्य म्ना धातोरेव मन्तव्य इति प्रयोगे मन्तव्य इत्यस्य अभ्यस्तव्य इत्यर्थे कृते न पौनरूक्त्यापत्तिरिति वाच्यम्। म्ना धातो मन्तव्य इति प्रयोगस्यानिष्पत्तौ तस्य दोषस्य वज्रायमाणत्वाद्। अथ म्ना धातोः तव्यति तत्र र **पाघ्राध्मा** इति सूत्रेण मन आदेशे कृते मन्तव्यः इति प्रयोगः स्यादेव? मैव जल्पीः तस्य सूत्रस्य शिति प्रये एवं विधानात्। तव्यस्य च तथात्वाभाववत्वस्य च शास्त्रतः सिद्धन्तितत्वात्। तथा हि सूत्रम् **पाघ्राध्मा स्थाम्नादाण् दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठ मन यच्छ पश्यर्च्छ धौशीय सीदाः** (पा०अ० ७/३/७८) अत्रत्या वृत्तिः पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञक शकारादौ प्रत्यये परे एवं **ष्ठिवु क्लमु चमां शिति** ५(७/३/७५) इत्यस्माद् शिति इत्यनुवर्तते, न च **बहुलं छन्दसि** इत्यनेन अशित्यपि मनादेश इतिवाच्यम्? तथा स्वच्छन्दा चारित्वे सति शब्दानुशासनभङ्गे शास्त्रीयमर्यादानापत्तेः। **बहुलं छन्दसि** इत्यत्र प्रयुक्तो बहुल शब्दः शिष्टकृतप्रयोगाणामेवानुशास्ता न त्वन्यथाकृतानाम्। अत एव हि बहून् अर्थान् लातीति बहुलम् इति तत्र भाष्यव्युत्पत्तिः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अयं बहून् अथान् लाति न तु बहूननर्थान। वस्तुतस्तु बहूननर्थान् लुनाति छिनत्ति इति बहुलम्। तस्मात् पूर्वाचार्याः आमनन्ति—

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
शिष्टप्रयोगादनुसृत्य लोके चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

न खलु कुत्रापि पादीनां पिवादयः दृश्यन्ते, शित् प्रत्ययान्तभिन्ने, सर्वत्र हि पानं घ्राणं स्थानं दर्शनमित्यादि श्रूयते न तु पिबनम् जिघ्रणं तिष्ठनं पश्यनमित्यादि। किं बहुना मनः शब्दोऽपि अवबोधनार्थकमनुधातोरेव निष्पद्यते, भगवति श्रुतिरेवात्र व्युत्पत्तौ प्रमाणम् द्विरुच्चारयन्ती **यन्मनसा न मनुते, येनाहुर्मनो मतम्**। (के०उ० १/१/५) ननु प्रत्यक्ष हीन्द्रियेण यतो हि प्रतीताः अक्षाः यस्मिन् तत् प्रत्यक्षम् इति निरुक्तौ विषयाणाञ्च इन्द्रियग्राह्यत्वे सिद्धे इन्द्रियविषयेसंयोगजन्यज्ञानस्यैव प्रत्यक्षपदार्थत्वात् मनस इन्द्रियत्वं वाच्यम्, असति तस्मिन् तेन कथम् प्रत्यक्षमात्मनः ? इति चेत् उच्यते **मनसैवानु द्रष्टव्यम्** इति श्रुतिरेव परमं प्रमाणं। तत्र **इन्द्रियाणां मनश्चास्मि** (गीता १०/२२) इति स्मृतेः। यत्तु वेदान्तपरिभाषायां मनसो नेन्द्रियत्वमुक्तम्, तन्न **इन्द्रियाणां मनश्चास्मि** इत्युक्तौ तज्जातीयानामेव निर्धारणस्य समौचित्यात्। न च इन्द्रियाणां मध्ये इन्द्रियभिन्नं मनोऽहमितिवाच्यम्, तथा सति भयङ्कराशास्त्रीयत्वापत्तिः तत्रत्य पौर्वापर्यप्रसंगविरोधश्च, यथा पूर्वम् **आदित्यानामहं विष्णुः** (गीता १०/२९) इत्यत्र ये द्वादशादित्याः विवश्वदादिविष्ण्वन्ताः परिगणिताः तेषामेव मध्ये तज्जातीय द्वादशो विष्णुनामा आदित्योऽहमस्मि, एवमन्यत्रापि, न हि कोऽपि निर्धाणावधिभूतानां मध्ये विजातीयः निर्धार्यते, तथा सति निधारणमेव न स्यात्, निर्धारणं हि जात्या भवति। तथा **वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मिपाण्डवानां धनञ्जयः** (गीता १०/३७)। इत्यत्र किं वासुदेवो वृष्णिजातीय भिन्नः किंवा धनञ्जयोऽपाण्डवः, एवं सर्वत्र विभूतियोगे निधारणावधिभूतनिर्धार्यमाणमध्ये सजातीयता सुनिश्चितैव। तस्मात् मनसः इन्द्रियत्वं निश्चितमेव शास्त्रतः तेनात्मनः प्रत्यक्षे नाशास्त्रीयत्वापत्तिः। न च **इन्द्रियाणि दशैकञ्च** (गीता १३/५) इत्यत्र इन्द्रियतः पृथक् पृथगुपादानान्मनसोनेन्द्रित्वमितिवाच्यम्, ब्राह्मणवशिष्ठन्यायेन तस्य पृथक्त्वेऽपि तज्जातीयत्वमक्षतमेव। न खलु सर्वे ब्राह्मणाः भुज्यन्ताम् वशिष्ठोऽपि भुज्यताम् इत्यत्र ब्राह्मणतः पृथग् वशिष्ठशब्दोपादाने वशिष्ठस्य ब्राह्मणत्वं परिहृतं प्रत्युत् विशेषितमेव, एवमिहापि इन्द्रियाणि दश सामान्यानि चैकं मुख्यं, दशानां मध्ये प्रत्येकं सहभूतत्वयस्यावश्यकत्वात्, यथा न केवलं चक्षुषा कोऽपि रूपं पश्यति, अन्यत्रमना अभूवम् अतो नादर्शमिति श्रुतेः। एवम् मनःसंयुक्तया रसनया रसः समनस्केन, श्रोत्रेण शब्दः समनस्केन, घ्राणेनगन्धः समनस्कया त्वचा स्पर्शः प्रत्यक्षतां नीयते। अस्मिन् वाह्यकरणतान्तःकरणतेत्युभयधर्मत्वम्। ननु यन्मनसा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न मनुते (केन १/१/५) इति श्रुतिवि धात् कथं मनसा आत्मनः प्रत्यक्षम् ? नैषदोषः इदं खलु सकलोपाधिविवर्जितपरव्योमाधिपतिसाकेताधीशसर्वव्यापि श्री सीतारामाभिधेयपरब्रह्मवर्णनपरम् । तथा च तत्र श्रुतिः—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

(के०उ० १/१/५)

तस्मान्मानसे प्रत्यक्षे शास्त्रतः सिद्धे, तथात्वे चात्मनः मनसोऽणुत्वात् तत् प्रत्यक्षासम्भवे नात्मा मनः । एवम् नेन्द्रियाणि तेषा नाशवत्वस्य दर्शनात् । अविनाशित्वाच्चात्मनः नात्मनो वियोगे कोऽपि क्षणं जीवति । चक्षुरादीनां वियोगे तु जीवत्येवेति प्रत्यक्षतः सिद्धम् । नापि बुद्धिः **दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः** इति श्रुतौ । बुद्धेः कृते हेत्वन्त प्रयोगदर्शनात् । अत्र हि कारकद्वयम् आत्माहि दर्शनविषयकर्मदर्शनाश्रयाः सूक्ष्मदर्शिनः कर्तारः दर्शनहेतुश्चबुद्धिः, हेतुकर्मणोर्भेदस्तु आपामराणां सिद्धः । एवं ज्ञानमपिनात्मा तत्र ज्ञानक्रियेच्छया सविषयपदार्था इति ज्ञानमात्मा, तर्हि तस्य विषयो वाच्यः, अथ जगदेव विषय इति चेत्, तत्र सर्वज्ञत्वापतिः, इष्टापत्तेरिति चेत् । तथात्वे बन्धमोक्षव्यवस्था निरर्थिस्यातउपदेशपरंपरा च मोघा । जीवात्मनामल्पज्ञता तु प्रत्यक्षसिद्धा, न हि पशवो वेदं वाचयन्ति सत्यप्यात्मवत्वे, नानधीतवेदः ब्राह्मणोऽपि सस्वरं पठितुमर्हः । यः सर्वज्ञ सर्ववित् इति श्रुतिस्तु ब्रह्मपरा, भेदं च जीवात्मपरमात्मनोरसकृदवोचाम यद्यल्पविषस्तर्हि कृपया उच्यतां तस्य नाम, को विषयो ज्ञानरूपजीवात्मनः निर्विषय इति चेत्, असंभवात्, न हि कोऽप्याकाशात् शब्दमपाक्रष्टुं प्रभवति, तथैव ज्ञानाद् विषयम् । तस्मात् देहेन्द्रियमनोबुद्धिविज्ञानवर्जितः विशुद्धबोधविग्रहः कश्चन पुरुष एवात्मा विनिगमनं चात्र श्रुतिरेव । तथा च काठके पठन्ति—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ।।

(क०उ० १/३/१०)

एवमेतेषु विप्रतिपन्नेषु कतमः आत्मा इति जनकस्य प्रश्नः । अथ याज्ञवल्क्यः ससमारोहमुत्तरयति—यः प्राणेषु अन्तः हृदि ज्योतिः सः अयं विज्ञानमयः पुरुषः इत्यन्वयः । प्राणेषु हृदि इत्युभयत्र औपश्लेषिकी सप्तमी । यः प्राणान् हृदश्च अन्तः अपश्लिष्य तिष्ठति स एव पुरुषः, पिपर्ति सम्पूर्णं करणजातं पूरयंति । एवं पञ्चमहाभूतानि पञ्चविषयान् पञ्चप्राणान् चतुर्दशकरणानि च सदैवतानि पिप्राणः पुरुषाकारः ज्योतिः ज्योतिस्स्वरूपः परमप्रकाशवान् विज्ञानमयः, विज्ञानं प्राचुर्येण यस्मिन् तथाभूतः । अत्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मयट् प्राचुर्यार्थे **तत् प्रकृतिवचने मयट्** इति सूत्रेण विज्ञानस्य प्राचुर्ये सति अन्येषामपि केषांचित् सद्भाव इति चेत् ओम् । अचिन्त्यानेककल्याणगुणगणानां सौन्दर्यैश्वर्यभक्तवात्सल्यकारुण्यतारुण्यसौलभ्यप्रेमृतीनां, यद्वा विज्ञानपदमत्र समस्तभगवदीयगुणानामुपलक्षणं विज्ञायते समस्तभगवन्महिमा येन तद् विज्ञानं परमात्मगुणगणनिकरं तन्मयः । यत्तु ब्रह्मणो निर्धर्मत्वरिरक्षिषया स्वरूपार्थे मयट् इति व्याचक्षते तत्र तैरिदं वक्तव्यम् यद् विज्ञानशब्दस्य नपुंसकत्वे प्रकृत्यर्थप्रत्ययार्थयोरभेदात् विज्ञानमयः इति पुँस्त्वं कथम् । पुनश्च स्वरूपार्थे मयट् विधानाय त्रयाणामपि मुनीनां एकतमस्य कस्यचिदनुशासनेन केनचित् भवितव्यम् , न खल्वनुशिष्टो मयट् भवतुमर्हति । यत्तु चिदेव चिन्मयम् इति व्युत्पाद्य स्वरूपार्थे मयडुक्तं श्री दीक्षितैः सिद्धान्तकौमुद्यां तत्तु एतदीयवासनानुरोधेनैव । यच्च **नित्यं वृद्धिशरादिभ्यः** इत्यत्रानुवृत्तं मयट् शब्दं केचनानुवर्तयितुं कुमनीषितं समीहन्ते तदपि न विनिगमना भावात् । किं बहुना विज्ञानमयः इत्यादि मयडन्तशब्दनानामौपनिषदानां ब्रह्मविषयानां स्वरूपार्थतां प्रसिाधयति स्वयं भगवान् बादरायणः । तथा हि ब्रह्मसूत्रस्य अक्षराणि **आनन्दमयोऽभ्यासात्** (ब्र०सू० १/१/१२) अत्र विकारे मयटः शंकां निरस्यन् स्वयमेवासूत्रयत् । विकारशब्दादिति चेन्न प्राचुर्यात् । एवमुपनिषन्निगूढमर्ममहामहौ निधिपारदृश्वा भगवान् बादरायणो यदि प्राचुर्यं प्राह तर्हि क इमे वराकास्तत्पक्षक्षपणकौणपप्रयासाः । सोऽयं विज्ञानमयः अखण्डबोधसम्पनः । यथोक्तं गोस्वामि तुलसीदासमहाराजैः । **विशुद्धबोधविग्रहं समस्तदूषणापहम्** । (मानस ३/४/५) यथा कस्यच्छिरीरं पार्थिवं सत् पृथिवी प्रचुरं शेषणि चत्वारि गौणानि । एवमिहापि तस्यपुरुषस्य किं कार्यमित्याह—स समानः समः शत्रुमित्रत्वादि द्वन्द्वरहितः उभौ लोकौ शरीरे लोकं पुनः शरीराद्विमुक्तः नित्यभगवत्परिकतामुपेत्य भगवदीयसाकेत लोकं च सञ्चरति । गतागतं कुरुते, स एव स्वप्नः भूत्वा स्वप्नावच्छिन्नो भूत्वा स्वप्नावस्थाम् आपद्यमानोः इति भाव, मृत्योः रूपगाणि मरणधर्मिणः शरीरस्य रूपाणि देवमानवतिर्यक् प्रभृतियोनीमि बालकौमार्ययुवाजरारूपाणि अतिक्रामति क्रमेणानुभवन् गच्छति । यद् वा मन्त्रोऽयं प्रत्यगात्मपरोऽपि, अयं भगवन्नित्यपरिकरो जीवात्मा विज्ञानमयः बुद्धिसम्पन्नः अन्तः प्रकाशः, परमात्मानं ध्यायन् खेलन्निव भगवदाज्ञां पालयन्, उभौ लोकौ इहलोकपरलोकौ संचरति, भगवच्चिन्तनबलेन मृत्योःरूपाणि समतिक्रम्य परमेश्वरमेति एवं विज्ञानप्राचुर्ये तस्मिन् हर्षादयोऽपि न्यूनतयावगन्तव्याः ।।श्रीः।।

अथ पुरुषातिक्रमणं निरूपयति—

स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिसंपद्यमानः पाप्मभिः स सृज्यते स उत्क्रामन् म्रियमाणः पाप्मनो विजहाति ।।८।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं स्वरूपः विज्ञानप्रचुरः ज्योतिराकारः पुरुषः भगवद्विमुखतया पूर्वकृतकर्मानुसारं पितृरेतः प्रविष्टः मातरि गर्भाधानक्रियया जायमानः जन्मगृह्णन् सार्धनवभिर्मासैः मातृगर्भ एव इश्वरेण निर्मितं निजकर्मविपाकरूपं शरीरं अभिसम्पद्यते अभिनवतया प्राप्नोति नूतनवस्त्रमिव । पुनर्मात्रा प्रसूतः पाप्मभिः, अत्र पाप्म शब्दः शुभाशुभकर्मफलरूपः तथाभूतैः भगवद्भजनप्रतिबन्धकरूपैः धनधान्यसुखदुःखप्रतिकूलानुकूलसकलार्थानर्थ-समन्वित। सकलविषवम प्रपञ्चशीलैः "स ँ सृज्यते संश्लिष्टो भवति सूत्रं सृजेव यसोक्तं श्रीमानसे भगवता श्रीरामेण श्री लक्ष्मणं प्रति,

भूमि परत भा डाबर पानी । जिमि जीवहिं माया लपटानी ।।

(मानस ४/१४/६)

रूपान्तरम् —

भूम्यां पतनमात्रेण, मालिन्यमगमज्जलम् ।
जायमानं यथा जीवं माया समसृजदद्रुतम् ।।

एवं कर्मफलानि भुक्त्वा म्रियमाणः पाप्मनः क्रियमाणकर्मफलानि सञ्चितानि च विजहाति त्यजति, "न तु प्रारब्धानि आगामि जन्मनो हि प्रारब्धमयत्वात् ।।श्रीः।।

अथ जीवात्मनः लोकपरलोकसंसरणप्रकारमाह । अत्र परलोकशब्दः सुखभोगात्मकस्वर्गादिपरः जीवस्य हि प्रतिदिनं प्रलयो भवति, स च दैनन्दिनः प्रलयइत्युच्यते जागर्ति तदा प्रातःकाले जायते इवं स्वपिति तदा मृतप्रायो भवति । इदं गौणमरणमपि कथ्यते तदेतर्दित व्याख्यायते—

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानं च सन्ध्यं तृतीय ँ स्वप्नस्थानं तस्मिन्सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च । अथ यथाक्रमोऽयं परलोकस्थाने भवति तमाक्रममाक्रम्योभयान् पाप्मन आनन्दा ँ श्च पश्यति स यत्र प्रस्वपित्यस्य लोकस्य सर्वावतो मात्रामपादाय स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपित्यत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति ।।९।।

एवं दैनन्दिनं प्रलयं प्रतिपद्यमानस्य शरीरावाच्छिन्नस्य एतस्य विज्ञानमयत्वेन प्रसिद्धस्य तस्य पुरुषस्य इदम् अयं लोकः परलोकं स्वर्गं च इमे द्वे स्थाने स्थीयते, ययोस्तथाभूते सति निवृत्यधिकरणे भवतः । तृतीयं स्वाप्नं संन्ध्यं कथयति सन्धिमर्हति जाग्रत्सुषुप्त्योर्योगं तदेव सन्ध्यं तस्मिन् तिष्ठन् जागरं सुषुप्तिं च पश्यति, अत्राजागर एव इह लोकः सुषुप्तिश्च परलोक इति । एवं यथाक्रमं परलोकाभिमुखो भूत्वा सुषुप्तः पाप्मनः अशुभकर्मफलानि अशुभस्वप्नरूपेण शुभकर्मफलानि च शुभस्वप्नरूपेणानुभवति परलोकमाक्रममाणः । ममविचारेण इयं सुषुप्त्यवस्थापि दैनन्दिनपरलोकः, जागृदवस्था

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भूर्लोक:, स्वप्नावस्था च भुवर्लोक इति। इमे सर्वेऽपि दैनन्दिना: नैवात्यन्तिका:। एवं शुभकर्मफलानुसारमानन्दमनुभवति, यदि तेन भगवद्भक्तिशुभाशुभकर्मव्यतिरिक्तमपि किमपि कृतं तदपि स्वप्ने पश्यति। यथा भगवती मीरा स्वानुभूतिं प्राह—

माई म्हाने सपने में वरी गोपाल।
श्यामस्वरूप मनोहर मोहन मेंहदी रची रसाल।
हँसि हँसि मोसंग भाँवर फेरि सिंदुर भरि दै भाल।
मीरा भई सुहागिनी अब तो बर मिल्या नन्दलाल।

रूपान्तरम् —

मातस्ते प्रवदामि रात्रिसमये स्वप्नोऽद्य दृष्टो मया।
यस्मिन् श्यामसरोजदामसुभगो गोपालको मामिलत्॥

आलक्तं रचितञ्च तेन करजे दत्ता मया भ्रामरी।
सिन्दूरं किल मस्तके प्रियवधूर्मीराभवद् बर्हिण:॥

एवं मृत्यो: सर्वानवतीति सर्वावत्, तस्यलोकस्य मात्रामुपादाय अपहृत्य जाग्रत् संस्कारान् व्यपोह्य निर्माय च स्वयमेव निजकर्मविपाकानुरूपाणि समुपभोगसामग्रीविशेषाणि पश्चात् स्वेनरूपेण स्वेनैव ज्योतिषा प्रकाशेन सह स्वयंज्योति: विस्मृतसकल-प्राक्तनक्रियाकलाप: प्रस्वपिति, अतएव तस्य प्रस्वापमाचक्षते ॥श्री:॥

स्वप्ने किमपि न भवति, तत्र पुरुषेण स्वयंसृज्यते इत्यत आह—

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान्रथयोगान्पथ: सृजते न तत्रानन्दा मुद: प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान् मुद: मुद: सृजते न तत्र वेशान्ता: पुष्करिण्य: स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वेशान्तान् पुष्करिणी: स्रवन्ति सृजते स हि कर्ता॥१०॥

तत्र सुषु प्तिकाले रथा: रथोपलक्षितानि वाहनानि रथे युज्यन्ते इतिरथयोगा: अश्वा: तदुपलक्षितानि वाहनोपकरणानि पन्थान: मार्गास्तत्र न भवन्ति, पुरुष: स्वयमेव एतानि रचयति, एवं पूर्वत: अर्तमानान् आनन्दान् आनन्दयुक्तपदार्थान् प्रमुद: प्रसन्नतापरिणामा:, एवं वेश: नेपथ्य एव यासामन्त: तथा भूत: स्रवन्ती: नि:स्यन्दमाना: पुष्करिणी: सृजति रतयति तत्र स्वयमेव स कर्त्ता भवति ॥श्री:॥

अथ पुरुष व्यापारं स्नेहबद्धं करोति—

तदेते श्लोका भवन्ति। स्वप्नेन शरीरमभिप्रहत्याऽसुप्त: सुप्तानभिचाकशीति। शुक्रमादाय पुनरेति स्थानँ हिरण्मय: पुरुष एकँ हस:॥११॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत् तस्मिन् विषये एते श्लोकाः पद्यमयदछन्दोविशेषाः भवन्ति श्रुतीनामपौरुषेयत्वात्, न कैश्चिद्रचिताः प्रत्युत् अनादिकालतः भगवन्नि श्वासभूताः विराजन्ते । एकः हिरण्मयः प्राप्तभगवत्सारूप्यः पीतावासाः अथवा हिरण्यं ज्योतिः भगवद्रूपं तन्मयः तस्यैवाविकृतपरिणामरूपः यद्वा हिरण्यं ज्योतिरेव तन्मयः, पुरुषः पुरः शरीराणि उ निश्चयेन शिनोति बध्यनाति, सवति पालयति, स्यति तनुं करोति तथा भूतः पुरि शरीरे, उ निश्चयेन शीयते कर्मबन्धनेन बध्यते, यस्तथाभूतः, एक हंसः एकः सन् हन्ति गच्छति सुषुप्तिरूपं परलोकं जाग्रतरूपम् इमं लोकं च यस्तथा भूतः, स्वप्नेन निजस्वापेन स्वपोनङ् इति सूत्रेण अत्र भावे नङ् । इदं शरीरमपहत्य निश्चेष्टं विधाय स्वयमसुप्तः ज्योतिस्स्वरूपत्वात् सुप्तान् सर्वानपि स्थूलसूक्ष्मशरीरावयवान् अभिचाकशीति प्रकाशयति निरीक्ष्यते अुभवति च । पुनः शुक्रं दृष्टश्रुतवासनारूपं भावं पूर्वकर्मफलपरपिाकं वा आदाय जाग्रत्स्थानं पुनरेति, आवागमने अस्योपमा हंसस्यहंसो यथा मौक्तिकान् जघत्सुः विह्नित्य कमलवने पुनर्नीडं याति विश्रामाय तथैव जीवात्मापि श्रान्तः स्वपिति पुनर्जागरे भोगवासनया जगर्ति प्रवर्तते ।।श्रीः।।

तामेवोपमां विशिनष्टि—

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा । स ईयतेऽमृतो यत्र कामँ॒ हिरणमयः पुरुष एकहँ॒सः ।।१२।।

अयं पुरुषरूपो हंसः अवरं स्थूलत्वात् निम्नतरं कुलाकुलानि पक्षकुटुम्बानि आययति गमयति विश्रामाय यत्तथाभूतं जाग्रत्शरीररूपं नीडं प्राणेन निजश्वासनिःश्वासेन रक्षन् न विनाशमापादयन् , अत एव अमृतः न प्राणैर्वियुक्तः श्वसन्त विलोक्य सुषुप्तस्यापि जीवनधारणोपलम्भात् बहिः कुलायात् शरीरात् बहिर्देशे अनेकदेशान् प्रदेशाञ्च चरित्वा भ्रमणविषयान्विधाय पुनः ज्योतिर्मयः एक हंसः निरुपममरालः यत्र कामं संसार वासनोपभोगाः सन्ति, तत्र ईयते कर्मभिरेव प्राप्यते ।।श्रीः।।

पुनः स्वप्नव्यापारं वर्णयति—

स्वप्नान्त उच्चावचमीयमानो रूपाणि देव कुरुते बहूनि । उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो जक्षदुतेवापि भयानि पश्यन् ।।१३।।

स्वप्नस्य अन्ते मध्ये उच्चावचं शुभाशुभं कर्मफलैरीयमानः देवः बहूनि कर्मपरिणामतारतम्यानुरूपाणि निर्मिनोति । कदाचित् स्त्रीभिः स्वर्गसुन्दरीभिःमोदमानः कदाचित् कानिचित् विकृतानि दृष्ट्वा यक्षत् हसन् भक्षयन् वा, अत्र **जक्षत्यादयः षट्** इत्यनेन अभ्यस्त संज्ञायां **नाभ्यस्ताच्छतुः** इत्यनेन नुम् निषेधः । भयानि भयकारणान्यपि सिंहव्याघ्रादि पश्यन् भवति ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ स्वप्नावस्थायाः विषये विमतिप्रकारमाह—

आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चनेति । तं नायतं बोधयेदित्याहुः । दुर्भिषज्यँ् हास्मै भवति यमेष न प्रतिपद्यते । अथो खल्वाहु र्जागरितदेश एवास्यैष इति यानि ह्येव जाग्रत् पश्यति तानि सुप्त इत्यत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षाय ब्रूहीति ।।१४।।

आरमति क्रीडति यस्मिन् स आरामः, अस्य जनाः आरामं पश्यन्ति क्रीडास्थलं तं कोऽपि न पश्यति । यत्रायं शेते तत्र आहुः आयतं न चेष्टमानं सुप्तं न बोधयेत् । तत्र इन्द्रिये इमं न प्रतिपद्यते नाडीसंचारतो नवेत्ति तत् तदङ्ग दुर्भिषज्यं दुःखेन चिकित्सनीयं भवति । अत एव केचन अस्य जीवात्मनः जाग्रत देशे स्थूलशरीर एवस्थितिं आहुः तन्नोचितं, स्वप्नेऽप्यं स्वयं ज्योतिः प्रकाशमयो भूत्वा देहलीदीपकन्यायेन उभयमपि जाग्रत्स्थानं सुषुप्स्थानं प्रकाशयति । इत्युक्तवति याज्ञवल्क्ये विदेहराजो जनकः मुमुक्षां प्रकटयन् जिज्ञासते सोऽहं भगवत् इत्यादिना । भगवते पूज्याय अहं गोः सहस्रं ददामि श्रद्धेयं नतु प्रलोभनम् , इतोऽप्यधिकं विमोक्षाय उभाभ्यां लोकपरलोकाभ्यां जाग्रत्सुषुप्तिभ्यां समतिक्रान्ताभ्यां जीवात्मा परिभूतो विमोक्षाय विशेषो मोक्षः, विमोक्षः वैशिष्ट्यञ्च एकान्ततश्चात्यन्तश्च कर्मबन्धनक्षयः । यद्वा विष्णुप्राप्तिरेव मोक्षः तस्मै विमोक्षाय ।

अथ मोक्षस्य किं स्वरूपम् ? मोक्षो नाम सेव्यसेवकभावरूपमिथःसम्बन्धज्ञानपुरः सरं जीवात्मनः ब्रह्मसाक्षात्कारः । ननु मोक्षे द्वित्वाभावे कः कं पश्येत् ? इति चेन्नः स्वरूपतो जीवस्य नास्ति ब्रह्मणासहाभेद इत्यसकृदवोचाम । द्वित्वाभावे द्रष्टृदृश्ययोरेकत्वे कथं भगवत् साक्षात्कारः ? इति चेदुच्यते—यथा सत्यत्वाभावेऽपि निर्धर्मिब्रह्मवादिनां सत्यस्वरूपं ब्रह्म तिष्ठति तथापि तुष्यदुदुर्जनन्ययेन द्वित्वाभावेऽपि ब्रह्मजीवेति व्यक्तिद्वयं तिष्ठत्येव । द्वित्वं हि नित्यं नित्यो नित्यानाम् इति श्रुतेः । तद् विनाशस्य ब्रह्मणापि कर्तुमशक्यत्वात् मन्मते तु सर्वं सुसंगतमेव ।।श्रीः।।

अथ सुषुप्तेर्भोगतो नासज्यते आत्मेति प्रतिपादयति—

स वा एष एतस्मिन्संप्रसादे रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नायैव स यत्तत्र किंचित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ।।१५।।

सः पुरुषः एतस्मिन् संप्रसादे सम्यक् प्रसीदति कृतविश्रामत्वात् श्रमापनोदनसाधनत्वात् सुषुप्तिः संप्रसादः, लोकेऽपि गाढनिद्रायां सुखं सुचिरं शयनं विधाय सम्यक् प्रसीदति । एवं सम्यक् प्रसन्नताधिकरणे सुषुप्तिकाले रत्वा रमणं विधाय पुण्यं पापं च दृष्ट्वा साक्षात्कृत्य, चरत्विा पुनः न्यायं न्यायं प्रतिन्यायं प्रतिशरीरं प्रतियोनि निजकर्मानुसारं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवतिर्यङ्नरादिषुकतममपि आगत्य पुनः स्वप्नाय आद्रवति सुषुप्ति भोगानन्वागतः असम्प्राप्तः, तस्मादयम् असङ्ग कथ्यते अतोऽप्यूर्ध्वं ब्रह्मवरणं येन मम विशेषो मोक्षः स्यादिति ।

अथ जाग्रतो ब्रह्मणः व्यापारमाह—

स वा एष एतस्मिन्स्वप्ने रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव स यत्तत्र किंचित्पश्यत्यनन्वागत स्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ।।१६।।

बुद्धान्ताय जागराय स्वप्न सुखेभ्योऽसङ्गजागराय पुनराद्रवति, इतोऽप्यधिकं जनको जिज्ञासते ।।श्रीः।।

जाग्रद्व्यापारं वर्णयति—

स वा एष एतस्मिन्बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नान्तायैव ।।१७।।

बुद्धस्य जाग्रदवस्थायाः अन्तः मध्यः तस्मिन् , शेषं समानम् ।।श्रीः।।

अथ महामत्स्येन पुरुषसंचालनं दृष्टान्तयति—

तद्यथा महामत्स्य उभेकूलेऽनुसंचरति पूर्वंचापरं चैवमेवायं पुरुष एतावुभावन्तावनुसंचरति स्वप्नातं च बुद्धान्तं च ।।१८।।

महामत्स्यो यथा कूले उभे चरति वेगतः ।
एवं बुद्धश्च स्वप्नश्च पुरुषो विचरत्यसौ ।।श्रीः।।

अथान्येन दृष्टान्तेन आत्मनो विश्रामस्थानं सुषुप्तिं दृष्टान्तयति—

तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्त सँ्हत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो नं कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति ।।१९।।

सुपर्णो गरुडः, अत्रश्येनोपमः बुभुक्षुः, सुपर्णोपमश्च मुमुक्षुः—

श्येनो यथा व्योमगतः सुपर्णोः श्रान्तश्च संहत्य निजौ च पक्षौ ।
नीडं प्रविष्टः पुरुषस्तथैव विष्टः सुषुप्तिं नहि वेद किञ्चत् ।।श्रीः।।

अथ पुरुषस्य कर्मदुर्विपाकं वर्णयति—

ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तावताणिम्ना तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरितस्य लोहितस्य पूर्णा अथ यत्रैनं घ्नन्तीव जिनन्तीव हस्तीव विच्छाययति गर्तमिव पतति यदेव जाग्रद्भयं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्यति तदत्राविद्यया मन्यतेऽथ यत्र देव इव राजेवाहमेवेद ँ् सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः ।।२०।।

अस्य केशाः इव सहस्रधा अनेकधा प्रविभक्ताः ति सूक्ष्माः, हितानाम्न्यो नाडयः तिष्ठन्ति, ताः शुक्लादिरसैः पूर्णाः ताभिराच्छदितोऽयं यत्र कष्टमनुभवति तदेव नरकादिकमस्य, यदा आनन्दोऽनुभूयते स एव परमः लोकः ।।श्री।।

सुषुप्तौ जीवात्मनः आनन्दमयं स्वरूपं वर्णयति—

तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा । अपहतपाप्माऽभय ँ् रूपम् । तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्य किं वेदचननान्तरं तद्वा अस्यैतदाप्तकाममात्मकाममकाम ँ् रूप ँ् शोकान्तरम् ।।२१।।

तदेव एतस्य पुरुषस्य, अतिच्छन्दं छन्दः बन्धनं तत् अतिक्रान्तम् अतिच्छन्दं स्वतन्त्रं **छन्दः पद्ये प्रतीऽबन्धे इति** कोशात् । अपहताःपाप्मानः सुखदुखादयो येन तत् अपहतपाप्म, न भयं यस्मिन्नित्यभयं तच्च तच्च तच्चेति त्रयाणां कर्मधारयः । यथा प्रियया मनोऽनुकूलया भार्यास्त्रिया परिष्वक्तः समालिङ्गितः बाह्यमान्तरं न किंचिद् जानाति तथैव अयं जीवात्मापि प्राज्ञेन प्रकर्षेण आसमन्तात् जानाति इति प्राज्ञः, यद्वा पिपर्त्ति भक्तानां कामं पूरयति यः स प्रः, अह्नोति सर्वं व्याप्नोति इति अः, जानाति निखिलं वस्तुजातं यः सः ज्ञः, प्र एव अः स एव ज्ञः इति प्राज्ञः तेन परिष्वक्तः मित्रेण बाह्यमन्तरं न किंचित् वेद, सुषुप्तिकाले परमात्मनैव परिष्वज्य आनन्दमात्रयैव विदूरित श्रमत्वात् । नन्वसंगतेयमुपमा परमात्मनः भार्योपमेयत्वं कथं घटेत् ? न षदोषः, प्रियाया अपि मित्रस्थानीयत्वात् हितैषित्वात् श्रमापनोदकत्वाच्च । अतएव मानसकारेणापि आनन्दातिशये विस्मरणशाम्येन सैवोपमा प्रस्तुता—

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुननाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोंहि राम ।।

(मा० ७/१३० ख)

रूपान्तरम्—

कामिने च यथा नारी प्रिया द्रव्यञ्च लोभिने ।
तथा निरन्तरं मे स्याः प्रियोराम रघूत्तम ।

एतस्य इदमेव आप्ताः कामाः येन तथा भूतम् । अधिगतसमस्तकामम् अकामं कामनालेशरहितम्, आत्मकामम् आत्मने परमात्मने कामः इच्छा यस्य तथाभूतम्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अशोकान्तरं नास्ति शोकः इष्टजनितवियोगदुःखं अन्तरं छिद्रं दोषो वा यस्मिन् तथा भूतमेतस्यरूपम् ।।श्रीः।।

अस्यामवस्थायां पुरुषः सकलाञ्जाग्रद्धर्मान् अत्येति इदमेव प्रपञ्चयति—

अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाऽभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वा गतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति ।।२२।।

जाग्रत्काले यः पिता स एव अपिता पितृधर्मविहीनः माता अमाता एवं प्राकृतनान् सर्वान्धर्मान् अत्येति सर्वस्य ह्यस्थशोकस्य पारं निस्तीर्णो भवति । श्रमणः ब्रह्मचारी । पुल्कसोऽन्त्यजः ।।श्रीः।।

अथ तत्र द्वितीयाभाव निवारयति—

यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपपिलोपो विद्यतेऽविनाशिस्त्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत् ।।२३।।

यद्वस्तु अयं न पश्यति तत्र दृष्टेरभावोनास्ति कारणं, कथन्नपश्यतीति आह— अविनाशित्वहेतोः तत्तद्दृष्टेः विपरिलोपः विनाशो नहि, यतो हि तत्र तत् विजातीयं किमपि द्वितीयं वस्तु नास्ति अतः पश्यन्दृष्टिव्यापारं कुर्वन्नपि न पश्यति नितान्त-मेकाकित्वात् ।।श्रीः।।

एवमेव शेषाणां सप्तानामग्राहकत्वं निवारयति—

यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन्वै तन्न जिघ्रति न हि घ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यज्जिघ्रेत् ।।२४।।

यद्वै तन्न रसयते रसयन्वै तन्न रसयित् नहि रसति् रसयतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत् ।।२५।।

यद्वै तन्न वदति वदन्वै तन्न न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत् ।।२६।।

यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात् ।।२७।।

यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते नहि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत ।।२८।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति नहि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत् ।। २९ ।।

यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजा नीयात् ।। ३० ।।

घ्राणादीनां क्रियां कुर्वन् न तान् गच्छति गोचरान् ।
तन्नित्यशक्तिमत्वेऽपि द्वितीयप्रतिषेधतः ।।श्रीः।।

पूर्वोक्तमेव प्रपञ्चयति—

यत्र वान्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्ये-दन्योऽन्यज्जिघ्रेदन्योऽन्यद्रसयेदन्यो-द्वदेदन्योऽन्यच्छृणुयादन्योऽन्यन्मन्वीतान्योऽन्यत्स्पृशेदन्योऽन्याद्विजानीयात् ।। ३ २।।

यत्र जीवात्मनो व्यतिरिक्तं स्यात् तदा अन्यसमवेताः चक्षुः घ्राणवाक्-श्रवणमननस्पर्शनविज्ञानादिक्रियाः संपादयेत् । इह तु विषयाश्रयाणामभावात् सलिले जले दृष्टमद्वैतमेकीभावो यस्य तादृशोऽयं, संबन्धतः परमात्मना सह एकीभूतः ।।श्रीः।।

इदमेवाग्रे प्रपञ्चयति—

सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य एषास्य परमागतिरेषास्य परमा सम्पदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ।। ३ २।।

हे सम्राट् ! सलिले जले इव तस्मिन् परमात्मनि सुषुप्त्यिवस्थायामेकः द्रष्टा अचिन्त्यदर्शनमयः, अद्वैतः स्वविजातीयकार्यकारणसंघातवर्जितः परमात्मना सायुज्यमाप्तः एष एव परमात्मा सुषुप्तस्य जीवात्मनः ब्रह्मवर्धनस्थानं लोकः । इत्येव जनकं याज्ञवल्क्यः अनुशा सास समुपदिष्टावान् । पुनर्निर्णयमाह—

एषा इयं परमेश्वरप्राप्तिरेव एतस्य परमागतिः परमगन्तव्यम्, इयमेतस्य परमा संपत्, यत् सुषुप्तौ समागतं परमात्मानमनुभवेत् । परन्तु दौर्भाग्यमप्येतस्य यत् तस्मिन् दृष्टे प्रवाधत इमं प्रगाढनिद्रा, एष एव एतस्य लोकः एषः परमात्मैव एतस्य जीवस्य परमानन्दः, तस्यैव परमानन्दभूतस्य आनन्दस्य मात्रां यत्किंचित् सीकरमेव उपजीवन्ति अन्यानि भूतानि उपयुज्यप्राणन्ति प्राणिनः ।।श्रीः।।

अथ आनन्दंतारतम्यं याज्ञवल्क्यभयश्च दर्शयति—

स यो मनुष्याणाँ राद्धः समृद्धो भवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैर्मानुष्यकैर्भोगैः संपन्नतमः स मनुष्याणां परम आनन्दोऽथ ये शतं मनुष्याणामानन्दाः स

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एकः पितृणां जितलोकानामानन्दोऽथ ये शतं पितृणां जितलोकनामानन्दाः स एको गन्धर्वलोक आनन्दोऽथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स एकः कर्म देवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसंपद्यन्तेऽथ ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतमाजानदेवानामानन्दाः स एकः प्रजापतिलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स एक ब्रह्मलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथैष एव परम आनन्द एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीत्यत्र ह याज्ञवल्क्यो बिभयांचकार मेधावी राजा सर्वेभ्यो माऽन्तेभ्यः उदरौत्सीदिति ।।३३।।

एवं कृतपरमात्मसाक्षात्कार एव मनुष्याणां मध्ये राद्धः संसिद्धः समृद्धः धनवान् भवति । एवं मनुष्यानन्दमारभ्य ब्रह्मलोकपर्यन्तानन्दाः पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् उत्तरोत्तराः शतगुणिताः, ब्रह्मानन्द एव आनन्दानां परिसीमा । अतः एष वै ब्रह्मलोकः इति याज्ञवल्क्यः, आनन्दतारतम्यमुपसहरति । विमोक्षाय ब्रूहीति जिज्ञासमानात् जनकात् विभयाञ्चकार, अयं मेधावीराजा मां तेभ्यः समस्तेभ्यः उत्तरेभ्यः उदरोत्सीत बद्धं कृतवान् ।।श्रीः।।

अथ अकृतभगवद्भजनः पुनर्जागरितो भवति—

स वा एष एतस्मिन्स्वप्नान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यांय प्रतियोन्याद्रवाति बुद्धान्तायैव ।।३४।।

स एष जीवात्मा स्वप्नस्य निद्रायाः अन्ते तत्र पुण्यं पापं अनुभूय भुक्त्वा, बुद्धान्तायैव जागराभिमुखो भवति इदमेव तु तस्य संसरणम् । तद्यथा—

जागर्त्ति भाति परिकर्मकरोति चात्ति ।
तिष्ठत्यथो विवदतेर्जयतेर्धनानि ।।
पत्न्याव्यवायमथपुत्रसुखं जराधिम् ।
यात्यात्मनोऽप्यहह संसरणं दुरन्तम् ।।श्रीः।।

अनो दृष्टान्तेन निगमयति—

तद्यथाऽनः सुसमाहितमुत्सर्जद्यायादेवमेवाय ँ शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ मत्सर्जन्याति यत्रैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवति ।।३५।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा अनः शकटमारूढः सुसमाहितः सकलसामग्रीभाररूपः यात्रां यातरं करोति जीर्णं सत् उत्सर्जजन गच्छति । एवं शकटीभूतमिदं शरीरं भगवद्भजनविमुखेन्द्रियानड्वद्युक्तं जरया भग्नकूबरं त्यक्त्वा उच्छ्वासी भवति ।।श्रीः।।

अथ शरीरत्यागं दृष्टान्तयति—

स यत्रायमणिमानं न्येति जरया वोपतपता वाणिमानं निगच्छति तद्यथाम्रं वौदुम्बरं वा पिप्पलं वा बन्धनात्प्रमुच्यत एवमेवायं पुरुष एभ्योऽङ्गेभ्यः संप्रमुच्य पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति प्राणायैव ।।३६।।

जरायाः तापतः यदायमणिमनं शक्तिक्षीणतामेति नितरां याति, तदा आम्रम् औदुम्बरं पिप्पलमिव पक्वफलं बन्धनात् प्रमुच्य जीर्णशरीरं त्यक्त्वा गच्छति । अनन्तरं पुनर्जन्मगृहीतुं प्राणायैव द्रवति धावति ।।श्रीः।।

अथदेहान्तरग्रहणं प्रकरोति—

तद्यथा राजानमायान्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽन्नैः पानैरावसथैः प्रतिल्पन्तेऽयमायात्वयमागच्छतीत्येवँ्हैवं विदँ्सर्वाणि भूतानि प्रतिकल्पन्त इदं ब्रह्मायातीदमागच्छतीति ।।३७।।

यथा आयान्तं राजानं प्रति ग्रामनिवासिनः सूताः सारथिनः अन्ये च परिजनाः अन्नैः पानैः आवसथैः विश्रामस्थलैः प्रत्युद्गच्छन्ति अभिनन्दयन्त्द्रि एवं ब्रह्मसम्बद्धम् आयान्तं जीवात्मानं सर्वाणि भूतानि इन्द्रयरूपैरश्वैः मनःप्रग्रहेण बुद्धिसारथिना शरीररूपेण रथेन अन्याभिश्च सामग्रीभिः समुपयन्ति ।।श्रीः।।

प्राणानां देहान्तरप्रकारमाह—

तद्यथा राजानं प्रयियासन्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽभिसमायन्त्येवमेव— ममात्मानमन्तकाले सर्वे प्राणा अभिसमायन्ति यत्रैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवति ।।३८।।

यथा राजानं भूपतिं, प्रकर्षेण यातुमिच्छति इति प्रयियासति प्रयियासतीति प्रयियासन् तं प्रयियासन्तं प्रस्थानं चिकीर्षन्तम् एवं प्रतिसूताः ग्रामिण्यः समायन्ति ग्राममुख्याः, एवं जीवात्मानं शरीरानिर्गच्छन्तं सर्वे प्राणादयः तमनुगच्छन्ति ।।श्रीः।।

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदिराघवकृपाभाष्ये चतुर्थाध्याये आत्मस्वरूपवर्णनमं नाम तृतीयं ब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। राघवः शन्तनोतु मे ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। चतुर्थब्राह्मणम् ।।

मङ्गलाचरणम्

अमूमुचद्योदशवक्त्रमृत्योर्विभीषणं भक्त विभूषणञ्च ।
तं भ्रू विजृम्भोच्छवसिताम्बुराशि सीतापतिं राममुपैमि तुर्ये ।।

अथ संसारसागरमहोर्मिमालापरीवर्तपरिश्रमजिहासितजीर्णपाञ्चभौतिककलेवरस्य प्रकृत्या विनश्वरस्यापि शरीरावच्छेदेन प्रतिक्षणं क्षयिष्णुतया नश्वरस्य देहान्तरग्रहणसमातुरस्य भयातुरस्य जीवात्मनो मरणगतिं निर्वर्णयति । निर्वेदार्थं जननमरणचक्रभीतो हि प्रपित्सुः स्यात् पतितपावनपरमेश्वरपादारविन्दमकरन्दम् । तदनु विशुद्धजीवात्मनः स्वरूपं, तत् साक्षात्कारप्रकारश्च सविस्तरं निरूपयितव्य इति समग्रवेदान्तसाररूपः बृहदारण्यकोपनिषदान्तर्गतचतुर्थाध्यायमध्यवर्तिचतुर्थब्राह्मणं प्रारभ्यते । तत्र पारिशेष्यात् प्रथमं तृतीयब्राह्मणपरिशेषमाह —

स यत्रायमात्माऽबल्यं न्येत्य संमोहमिव न्येत्यथैनमेते प्राणा अभिसमायन्ति स एतास्तेजोमात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्ववक्रामति स यत्रैष चाक्षुषः पुरुषः पराङ्पर्यावर्ततेऽथारूपज्ञो भवति ।।१।।

स यदा यस्मिन् काले जीवात्मा अबल्यं नास्तिबलं यस्मिन् सोऽबलः अबलस्य भावः आबल्यं निर्बलतां न्येति नितरां गच्छति । तदा सर्वे प्राणाः एनम् अभिमुखी भवन्ति, अयं च तेषां तेजोमात्राः गृहीत्वा हृदये एव अन्वाक्राम्यति सकलव्यापार-वर्जितस्तिष्ठति, तदा चाक्षुषेण पुरुषेण सह रूपज्ञः रूपज्ञानविहीनो भवति ।।श्रीः।।

अथैकीभवनप्रकारमाह—

एकी भवति न पश्यतीत्याहुरेकी भवति न जिघ्रतीत्याहुरेकी भवति न रसयत इत्याहुरेकी भवति न वदतीत्याहुरेकी भवति न शृणोतीत्याहुरेकी भवति न मनुत इत्याहुरेकी भवति न स्पृशतीत्याहुरेकी भवति न विजानीत्याहुस्तस्य हैतस्य हृतयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यस्तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामत ँ सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति स विज्ञानो भवति सविज्ञानमेवान्ववक्रामति । तं विद्याकर्मणो समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च ।।२।।

न एकः अनेकः अनेकः एकः भवति इत्येकीभवति । यदा चक्षुरादिक्रियाभिर्विवर्जितो भवति, वस्तुतः अनेक एवायं इति श्रौतोऽभिप्रायः । तस्य जीवात्मनः शरीरस्य

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हृदयस्य अग्रभागः प्रद्योतते प्रकाशमानो भवति । तेनैव प्रद्योतितेन सह देहस्य कस्माच्चिदङ्गान् निष्क्रामति नेत्राद् वा शिरसो वा, अनन्तरं प्राणाः तमनुगच्छन्ति अयं विज्ञानमयो भवति, पश्चात् पूर्वप्रज्ञा अविद्या च तमनुक्रमेते। भगवद्भक्तस्य भक्तिभ्राष्ट्रभर्जितभववासनाबीजतया नैव पूर्वसंस्काराः बाधन्ते । एकीभवनमेवात्र विशिष्टाद्वैतवादप्रकारः । शरीरा नवच्छिन्नः स्वरूपतोऽपि परमात्मनो विशेषणं भूत्वा सम्बन्धननिबन्धनमे क्यं लभते ।।श्रीः।।

अथ योकदृष्टान्तमाह, यथा तृणजले युका जलचारी तृणच्छन्नः कीटविशेषः एकं तृणम् अधिसृत्य द्वितीयमाक्रम्य आत्मानं शरीरमुपसंहरति —

यद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसꣳहरत्येवमेवायमात्मेदꣳ शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसꣳहरति ।।३।।

तथैव प्राक्तनं शरीरमधिष्ठाय समाक्रममाणो नवीनं जीवात्मदेहान्तरमुपैति ।।श्रीः।।

अथ स्वर्णकारदृष्टान्तेन आत्मनो नवीनशरीरनिर्माणं दृष्टान्तयति —

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरꣳ रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदꣳ शरीरंनिहत्याऽविद्यां गमयित्वाऽन्यन्नवतरं कल्याणतरꣳ रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वाऽन्येषां वा भूतानाम् ।।४।।

तन्नवीनशरीरनिर्माणे को हेतुरित्यत् आह– यथा येन प्रकारेण पेशस्कारी पेशः सुवर्णं तत् करोति तच्छीलः सुवर्णकारः, पेशसः मात्रां सुवर्णस्य अंशम् अपादाय गृहीत्वा ततोऽपि नवतरं नवीनं कल्याणतमं कटककुण्डलादिकं तनोति । एवमेव परमात्मा जीवात्मनः प्राक्तनाविद्यामात्रां कर्मफलानि चापादाय ततोऽपि नवतरं नूतनतरं देवसम्बन्धिनं पितृभ्यो हितं मानुषम् इत्यादि जीवकर्मफलानुकूल शरीराणि निर्मिमीते । यत्वद्वैतवादिनः जीवात्मनः एव शरीरनिर्माणं स्वीकुर्वन्ति तदनुचितम् । शरीरनिर्माणे तस्य सामर्थ्याभावात् । **द्यावाभूमी जनयन् देव एकः** इत्यादि श्रुतिविरोधाच्च ।।श्रीः।।

अथात्मनः कर्मफलवशगत्वं निरूपयति —

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदंमयोऽदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन। अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते ।।५।।

एवं लब्धशरीरः स आत्मा विज्ञानमयः, विज्ञानं बुद्धिः एवं तत्तत्कर्मविपाकेन विज्ञानाद्यन्तः करणपञ्चप्राणचक्षुरादिप्राचुर्यं प्राप्य कर्माणि अनुसरति। तथोक्तं साधुकारी साधुर्भवति श्रेष्ठकर्मानुसारं पापकारी पापचरणशीलः अग्रे जन्मनि पापी भवति। एवं कर्मभिः सम्बध्यमानः संसरति संसारे ।।श्रीः।।

अथ सकामनिष्कामकर्मविभागेन बन्धमोक्षगतिं विवृणोति —

तदेष श्लोको भवति। तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य। प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचेहकरोत्ययम्। तस्माल्लोकात्पुनरैत्स्मैलोकाय कर्मण इति नु कामयमानोऽथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ।।६।।

तत् तस्मात् जीवात्मनः कर्ममीमांसायामेषः श्लोकः पद्यमयः भवति, अनादिकालतो वर्तते परमेश्वरस्य श्वासभूत इति भावः। अस्य लिङ्गं लीनमर्थं गमयति तथाभूतम् अस्य जीवात्मनः, मनः यत्र यस्मिन् सक्तं एष जीवात्मा कर्मणा सह तदेव एति प्राप्नोति। तस्य कर्मणः अन्तं परिपाकं प्राप्य अयम् यत्किञ्चित् करोति शुभाशुभमाचरति। तस्मात् लोकात् परलोकात् कर्मणा हेतुभूतेन अस्मै लोकाय मर्त्यलोकाय पुनः भूय एति आगच्छति। इदं सकामानां वर्णनं किन्तु यः अकाममयः अकामयमानः कामना विवर्जितः समस्ताः कामाः येनाप्ताः यश्चात्मने कामयते आत्मानं वा यश्च अकामः लौकिककामनाशून्यः तस्य प्राणाः न उत्क्रामन्ति न शरीरान्तरं गच्छन्ति। स च ब्रह्मणे एव इति ब्रह्मैव अत्र "सुपांसुलुक" इत्यनेन विभक्ति लोपः वृद्धिः। यद्वा ब्रह्मणः एव सन् ब्रह्मणि अप्येति। अत्रापि सप्तम्या लुक् साधनिका पूर्वदृशा ।। श्रीः।

अथ ब्रह्मज्ञस्यानुत्क्रमणं प्रतिपादयति —

तदेष श्लोको भवति। यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति ।। तद्यथाऽहिनिर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीतैवमेवेदँ शरीरँ शेतेऽथायमशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव सोऽहं भगवते सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः ।।७।।

यदा यस्मिन् काले अस्य मुमुक्षोः, हृदि मनसि, स्थिताः सर्वे कामाः स्त्री-कलत्रधनादिविषयाः प्रमुच्यन्ते त्यक्ताः भवन्ति, अथ अनन्तरमेव, मर्त्यः मरणधर्माय

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवः अमृतः मरणरहितः भवति । अत्रैव भगवतो नित्यपरिकरो भूत्वा ब्रह्म समश्नेतु, प्राप्य तत् आश्वादयति इति, यथा ब्रजाङ्गना, अत्र दृष्टान्तमाहः तद्यथा निर्ल्वयनी निर्गता ल्वयनीः उपरितना त्वक् यस्य कञ्चुकीरहितः सर्पः तस्य वा त्वक् निर्ल्वयनी स वाल्मीके मृता प्रत्यस्ता विपर्यस्ता शयिता एवं शरीरं शेते अथ च उत्थाय अशरीरः शरीररहितः अमृतः मरणवर्जितः अप्राणः प्राणरहितः ब्रह्म सामान्यं गतः तेजोमात्रं पर्यवशिष्यते । अथ जनक आह भगवते गोसहस्रं ददामि अतः ऊर्ध्व मुउपरि विमोक्षाय ब्रूहि उपदिश ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मविदां लोकं वर्णयति —

तदेते श्लोका भवन्ति अणुः पन्था विततः पुराणो माँ स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव । तेनधीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः ।।८।।

तस्मिन् विषये इमे श्लोकाः छन्दोमयाः मन्त्राः सन्ति । ब्रह्मविदनुभूतिं प्रकाशयति– एषः पुराणः पुरातनः पुरापि नवो वा, अणुः सूक्ष्मतरः पन्था मार्गः विततः विस्तृतः । स च कुत्र वर्तते ? अतः करुणावती श्रुतिः आह– स च पन्था मां श्रुतिं ब्रह्मविदं वा स्पृष्टः परिष्वक्तः अत एव इममहमेव जानामि यतो हि मयैव अनुवित्तः आनुकूल्येन प्राप्तः, तेनैव धीराः तेन मार्गेण विमुक्ताः कर्मबन्धनेभ्यः सर्वथैव मुक्ताः ब्रह्मविदः ब्रह्मज्ञाः अस्मात् शरीरादूर्ध्वं स्वर्गंलोकमपियन्ति गच्छन्ति ।। कुत्र ? इत्यत आह स्वर्गं, नन्वासङ्गतमेतत् 'न स पुनरावर्तते इत्यादि श्रुतिषु । **यत्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धम परमं मम** (गीता १५/६) इत्यादि स्मृतिषु च **इतो गत्वा ब्रह्मविदः पुनरावृत्तेरनूतत्वात् स्वर्गिणां च पुण्योचितो हि लोको क्षीयते इत्यायादिषु श्रुतिषु आब्रह्मभुवनाल्लोकान् पुनरावर्तिनोऽर्जुन** (गीता ८/९) इत्यादि स्मृतिषु च पतनस्यैव विधानात् ब्रह्मविदामावागमनशीले तस्मिंल्लोके गमनं पुनरावर्तनपरमिति चेन्नेदंदूषणम् प्रतिलक्ष्यं लक्षणं भिद्यते इति नियमात् । अत्रत्य प्रकरणानुरोधाच्च स्वर्गशब्दोऽत्र परमव्योमरूप साकेतस्यैवार्थग्राहकः । तथा च कोशे स्वः स्वर्ग इत्यनयोरपि देवलोकार्थकत्वप्रसिद्धेः । **''स्वरव्ययं स्वर्गनाकौ''** इत्यमरकोषानुरोधाच्च, प्रकृतेऽपि स्वर शब्दः देवलोकवाची अव्ययः, तस्मात् उपपदात् गै धातोः बाहुलकेन क प्रत्यये स्वः देवलोके गीयते सङ्कीर्त्यते ब्रह्मादि देवलोकवासिभिः यः सः स्वर्गः साकेतलोकः, तं नित्यभगवत्कैङ्कर्यभावं प्राप्य भगवत्सेवोपयोगिरूपालङ्कारवस्त्र–स्वभावद्युपेताः अपि निश्चयेन यन्ति गच्छन्ति ।।श्रीः।।

अथ मोक्षमार्गविषये विप्रतिपत्तीराह —

तस्मिञ्छुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलँ हरितं लोहितं च । एष पन्था ब्रह्मणा ब्रह्मवित् पुण्यकृत्तैजसश्च हानुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च ।।९।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्मिन् ब्रह्मलोके केचन सत्वावच्छिन्ना: शुक्लं वर्णं रजोगुणस्वभावा: पीतं, तमोगुणिनस्तु नीलं वर्णमाहु: । वस्तुतस्तु निर्गुणत्वात् नैते त्रयो वर्णा:, क्रमश: चन्द्र, सूर्यपावकेषु त्रयाणामुपलम्भात् तत्र चामीषाम् अवभासकत्वासम्भवात् तथाहि काठके पठन्ति **न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम् । नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि:** (क०उ०१/३/१४) अतस्तान्निराकृत्य आह एष इत्यादि, वस्तुत: एष: तैजस: तेजोमय: ब्रह्मणा परमात्मना श्रीरामाख्येन अनुवित्त: भक्तानामानुकूल्येन प्राप्त: अथवा ब्रह्मणा वेदेन अनुवित्त: अनुशिष्य विचारित:, तेनैव पुण्यकृत् पुण्यं भगवन्नामजपादिकं, तथाचोक्तं श्रीगोस्वामितुलसीदासेन विनयपत्रिकायां —

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वंकृतं कर्मजालमयेन श्रीरामा नामामृतं पानकृत मनिषमनवद्यमवलोक्य कालम् ।(विनय० प० ४६) । पद्यमेतत् श्रीतुलसीदास– महाराजै: संस्कृत एव निबद्धमतो रूपान्तरं नापेक्षते तादृशपुण्यकर्म करोति इति पुण्यकृत् ब्रह्मवित्, एति गच्छति ।।श्री:।।

अथ विद्याविद्ययोरुपासकानां गतिं निरूपयति—

अन्धंतम: प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया ँ् रता: ।।१०।।

ये अविद्यां सकामोपासनामुपासते तेन अन्धं तम: गाढमन्धाकारं प्रविशन्ति, किन्तु ततोऽपि भूय: अधिकतरमन्धं तम: एव ते प्रविशन्ति ये विद्यायां त्रयीविहित तत्तद् गुणविशिष्टदेवोपासनायां रता: ।।श्री:।।

अथ भगवद्विमुख गतिं निरूपयति —

अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृता: ।
ता ँ् स्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वा ँ् सोऽबुधो जना: ।।११।।

ते अनन्दा न नन्दयन्ति तथा भूता:, नितरांदु:खवन्त: अन्धेन तमसा कोटिकोटिसूर्यैरपि नाशयितुशक्येन गाढेनान्धकारेण आवृता: तान् लोकान् रौरवादीन् पुराणेषु नरकनाम्ना प्रसिद्धान् ते गच्छन्ति । ये अविद्वांस: ये न जानन्ति ब्रह्म, ये जना अबुध: नावुध्यन्ते निजस्वरूपं भगवत् कैङ्कर्यभावं ये ते अबुध: । अत्र क्लीबन्ताद् हलन्त प्रथमाबहुवचनान्तरूपम् ।।श्री:।।

एतद्विपरीतम् आत्मज्ञस्य निश्चिन्त स्वभावमाह —

आत्मनं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुष: ।
किमिच्छकस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ।।१२।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूरुषः **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** इति दीर्घः, परमेश्वरभजनरसेन पूर्णकामः अयं श्रीरामदासरूपः आत्मा देहेन्द्रियमनोबुद्धिरतिक्रान्तः विशुद्धविज्ञानमयो ज्योतिस्वरूपः आत्मा भगवत् कैङ्कर्याय तच्चरणारविन्दयोः तदाज्ञया अन्यत्र च सेवां विधातुं सततगमनशीलः हनूमानिव । ननु आत्मनो भगवद्दासत्वे किं मानम् ? इति चेत् **ब्रह्मदासा ब्रह्मदासा ब्रह्मदासा हि कितवः** इति श्रतिरेव । एवं **दासभूतास्त वै सर्वेह्यात्मानः परमात्मनः । अहं दासो हरिः स्वामी स्वभावं च सदास्मर** इति हारीतस्मृतिरपि । एवमयं नित्यभगवतकिङ्करः अहमस्मि इत्येंव रूपेण चेत् यदि विजानीयात् तदा कस्य कामाय कस्याभिलाषाय, अथवा कं सुखं तस्याभिलाषाय अथवा कं सुखं सेति खण्डयति इति कस्य, ब्रह्मसुखखण्डकः, कश्यश्चासौ कामश्चेति कस्यकामः तस्मै, समवाप्तसमस्तकामत्वात् किमर्थमेतादृशसकलानर्थमूलभीषणशूलरूप–निन्दिताभिलाषाय अभिलषन् किं वस्तु वा अभिलषन्, किं निन्दितं शरीरमनुलक्ष्य संज्वरेत् संजूर्ति युक्तो भवेत् । तापमनुगच्छेत् वा, न तावत् स तु भगवच्चरणारविन्दशरणमासाद्य वीतसमस्तशङ्कापङ्ककलङ्कः शशाङ्क इव शशिभूषण–भालमाभूषयति । यद्वा किमिच्छतीति किमिच्छकः तस्य किमिच्छकस्य, अथवा इच्छतीति इच्छकः तस्य इच्छकस्य अभिलाषयुक्तस्य कामाय किं शरीरं संज्वरेत् न कथंचित् ।।श्रीः।।

आत्मनो महिमानं वर्णयति —

यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मास्मिन् संदेह्यो गहनेऽ प्रविष्टः । स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः स उ लोक एव ।।१३।।

अस्मिन् प्रत्यक्षं दृश्यमाने सन्देह्यो सन्देहमये, अथवा सम्यग्देहमर्हति तथा भूतः, तस्मिन् उपचयात्मके जननमरणादिभीषणजत्तुमये संसारकान्तारे गहने प्रगाढ–तिमिरमये अप्रविष्टः असंसृष्टः यस्य आत्मा । प्रतिबुद्धः आचार्यैर्जागरितः सन् परमेश्वरभजनाय स जागरः समुद्यतः, स एव यस्य अनुवित्तः अत्र कर्तरि षष्ठी । येन कर्त्रा लब्धः अथवा वित्तं धनमनुकूलम् अनुपमं वा वित्तम्, अनन्तम् अद्भुतम् अखण्डम् अविनाशि वा वित्तमनुवित्तमत्र **व्यव्ययो बहुलम्** इत्यनेन पुंल्लिङ्गव्यत्ययः । अस्मिन् पक्षे यस्येति सम्बन्धे षष्ठी । येन वित्तम्स रक्षितमति भावः । तस्यैव परमलोभपरमप्रेम्णोरास्पदत्वात् स एव विश्वकृत् ब्रह्मेव वन्दनीयो भवति । विश्वकृत् ब्रह्म यथोक्तं श्री भागवते —

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषाः गतिः ।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्यपथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ।।

(भा० पु० २-६३३)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स एव लोकस्य कर्ता निजलोकस्य निर्माता भवति कर्तृत्वं चात्र समर्जनरूपं तस्यैव ब्रह्मविदः उ निश्चयेन सलोकः साकेतो भवति ।।श्रीः।।

श्रुति जीवेन सहात्मनमपि समवेततया सम्बोध्य प्राहः —

इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदिर्महती विनष्टिः । ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ।।१४।।

वयं जीवाः इहैव अस्मिन्नेव शरीरे पाञ्चभौतिके अस्मिन्नेव वा संसारे सन्तः मृत्योः पूर्वं ब्रह्म विद्म तदा महान् लाभः, इह संसारे सन्तः चेदिमं स्वस्य परमाराध्यत्वेन अवेदीः अत्र उत्तम पुरुषबहुवचनार्थे व्यत्ययान्मध्यमपुरुषैकवचनम । नावेदिस्म इति भावः, तदा महती विनष्टि अपूरणीया क्षतिः एतद् ये विदुः जानन्ति निजसेव्यत्वेन ते अमृता भवन्ति जननमरणरूपसंसारधर्मवर्जिताः नित्यं भगवत् परिकरभावं प्राप्नुवन्ति । यं प्रशंसति आलवन्दारवर्यो यामुनाचार्य स्वयमेव —

धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं
परम पुरुष योऽहं योगिवैराग्रगण्यैः ।
विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यामत्यन्त दूरं
तव परिकरभावं कामये कामवृत्तः ।।

(आलवन्दार स्तोत्र– ५०)

अथ एतद्विपरीताः इतरे अनात्मज्ञाः भगवद्विमुखाः दुःखमेव दुःखरूपसंसार–मेव अपियन्ति निश्चयेन प्राप्नुवन्ति ।।श्रीः।।

अथ आत्मदर्शिनः सकल जुगुप्साराहित्यं वर्णयति —

यदैतमनुपश्यत्यात्मानं देवमञ्जसा ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।।१५।।

यदि मुमुक्षु साधकः अञ्जसा ऋजुना भक्तिमार्गेण भूतभव्यस्य अतीतानागतस्य यद्वा भूतभव्यस्य भूतेभ्यः प्रेतपिशाचेभ्यो भव्यः भूतभव्यः, अथवा भूतेभ्यः सकलप्राणभृभ्यो भव्यः स्मर्तृभ्यः इति भूतभव्यः शिवः । यथा च प्राह शिवमहिम्नस्तोत्रे पुष्पदन्ताचार्यः —

स्मशानेष्वाक्रीड स्मरहरपिशाचा सहचरा –
निश्चताभस्मालेपो स्त्रगपि नृगरोहिपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि ।।

(शिवमहिम्न २५)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्यैव भूतभव्यस्य स्मर्तृभ्यो भव्यरूपस्य ईशानस्यापि शिवस्य ईशानं नियामकम् आत्मानं सर्वव्यापकं देवं परमात्मानं श्रीरामाभिधेयं ब्रह्म अनुपश्यति अनुकूलमनुक्षणम् अनुकणं च पश्यति, ततो तस्मादेव हेतोः न विजुगुप्सते नैवनिन्दितं कर्म कुरूते ।।श्रीः।।

अथायुर्नाम्ना ब्रह्मणो निरूपणम—

यस्मादर्वाक्संवत्सरोऽहोभिः परिवर्तते ।
तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ।।१६।।

यस्मात् अर्वाक् नीचैरेवा अहोभिः पञ्च षष्ठ्यधिकत्रिशतसंख्याकैः संवत्सरः परिवर्तते, तदेव ज्योतिषां सूर्यादिप्रकाशानामपि ज्योतिः परमपरायणभूतं प्रकाशं ब्रह्मभिधेयं श्रीरामं, देवः आयुः निहत्य रावणादीन् आयुर्दातृत्वेन देवानां आयुर्बुद्ध्या उपासते भजन्ते ।।श्रीः।।

विदुषो ब्रह्मणा सहाभेदं प्रतिपादयति —

यस्मिन्पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान्ब्रह्मामृतोऽमृतम् ।।१७।।

यस्मिन् पञ्चपञ्च जनाः पञ्चैव महाभूतानि पृथिव्यादीनि, पञ्चैव प्राणाः पञ्चैव तन्मात्राः, पञ्चैव ज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्चैव कर्मेन्द्रियाणि च इमे सर्वे, आकाशः आकाशरूपो अव्याकृतरूपो जीवात्मा इमे सर्वे, प्रतिष्ठिता तमेव आत्मानं परमात्मानं मन्ये अवधारयामि इति विद्वान् जानन् महापुरुषः अमृतः भवति जननमरणरूपसंसारतो दूरं भवति ।।श्रीः।।

भूयोऽपि तमेवार्थं विशिनष्टि —

प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः। ते विचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यम् ।।१८।।

ये प्राणस्यापि प्राणं परायणं, चक्षुषः नेत्रस्यापि चक्षुः द्रष्टारं, श्रोत्रस्यापि श्रोत्रं नियामकं, मनसोऽपि मनः मन्तारं, सकलकारणानां करणत्वेन विदुः ज्ञातवन्त, त एव अग्र्यं सर्वश्रेष्ठं पुराणं पुरापि नवं पुराणि शरीराणि वा आनयति जीवयति तत्पुराणं ब्रह्म श्रीरामं निचिक्युः अन्विष्टवन्त निश्चितवन्तो वा ।

अथ ये अनेकानि दैवतानि ब्रह्मबुद्ध्या पश्यन्ति तेषां दुर्गतिं वर्णयति, यत्त्वत्र शङ्कराचार्यः अद्वैतं सिसाधयिषयति तत्तु तदीयः प्रमादएव श्रुत्यात्र ब्रह्मपरकनानात्व दर्शनात् । तथाहि —

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनसैवानु द्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।१९।।

एतद् ब्रह्म मनसा भगवद्भक्तिभागीरथीविधूतसकलकल्मषेण विशुद्धेन चेतसा मानसेन चक्षुषा अनुद्रष्टव्यमनुक्षणं साक्षात्कर्तव्यम् । इह तस्मादतिरिक्तं किञ्चन नाना न यद्वा इह तत् नाना तदन्तरेण किञ्चिदपि नहि, यथोक्तं श्रीमानसे– **स्वरग नरक अपवर्ग समाना जहँ । तहँ दीख धरे धनु बाणा ।।**

(मानस २-१२९-७)

रूपान्तरम् —

स्वर्गे नर्केऽपवर्गे च सामान्येन व्यवस्थितः ।
यत्र तत्रैव दृश्येत धनुर्बाण धरो हरिः ।।

यः इह संसारे नाना इव पश्यति, ब्रह्म व्यतिरिक्तान् विविधान् भावान् विभावयति, अथवा यः नाना अनेकानपि जीवान्, इव ब्रह्मसमानान् पश्यति सः मृत्योः मृत्युं जननमरणशीलं संसारमाप्नोति, इत्यनेन अद्वैतवादः निरस्तः ।।श्रीः।।

अथ इदं ब्रह्म कथं दृश्येत ? इति विधिसमाना आह श्रुतिः —

एकयैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमयं ध्रुवम् ।
विरजः पर आकाशदज आत्मा महान्ध्रुवः ।।२०।।

इदमप्रमेयं श्रुत्यतिरिक्तप्रमाणागोचरमेतद् ब्रह्म एकधा **संख्यायाविधार्थे धा'' इत्यनेन धा प्रत्ययः** । अर्थात् एकेनैव प्रकारेण **अहं दासो हरिः स्वामी** इत्याकारकेण सेव्यसेवकभावेन अनुद्रष्टव्यम् अनुक्षणं साक्षात्करणीयम् । तस्य स्वरूपमाह– स च नेत्रविषयीभविषयन् परमात्मा, विरजः रजो गुणात् परीभूतः अथवा विशिष्टं श्रीमदयोध्यायाः रजः यस्मिन् स विरजः, परः त्रिगुणातीतः, आकाशः सर्वं भूतानामवकाशः आकाश इव नीलवर्णः यत्र ज्योतिर्मण्डलमिव भूषणानि विराजन्ते, एवमाकाशादपि सूक्ष्ममहाभूतात् परः अजः अजन्मा सर्वव्यापकः महान् ध्रुवः निश्चलः परं ब्रह्म परमात्मा विराजते ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मनिष्ठां दृढयति —

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनꣳ हितत् ।।२१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धीरो ब्राह्मणः, तं परमात्मानमेव निजनाथरूपेणविज्ञाय तत्रैव प्रज्ञां कुर्वीत भगवदीयशास्त्रबहिर्भूतान् बहून शब्दान् वात्स्यायनशास्त्रदीन् न अनुध्यायेत्, हि यतो हि तद् वाचः विग्लापनं, वाण्याः ग्लानिप्रापकम् ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मज्ञान विवित्सन्ती श्रुतिः तदङ्गत्वेन परिन्व्राजमपि वर्णयति : —

स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽनतर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्यधिपतिः सान साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयानेष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुविधरण एषां लोकानामसंभेदाय र्निमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽ नाशकेनैतमेव विदित्वा मुनिर्भवति ।

एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति । एतद्ध स्म वैतत्पूर्वे विद्वा ँ स प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणेमे ह्येते एषणे एव भवतः । स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्येतमु है वैते न तरत इत्यतः पापमकरवमित्यतः कल्याणमकरवमि त्युभे उ है वै ष एते तरति नैनं कृताकृते तपतः ।।२२।।

एवं महत्वादिगुणविशिष्टः यः प्राणेषु हृदयावर्त्या काशे च शेते स एव सर्वस्य लोकस्य वशी नियन्ता शासकः, सः साधुना कर्मणा न अधिको भवति, न वा असाधुना कर्मणा कनीयान् भवति । तं शुभाशुभकर्माणि न लिम्पन्तीति भावः । **नमां कर्माणि लिम्पन्ति** इति स्मृतेः । एष एव परमात्मा सर्वेश्वरः सर्वेषाम् ईश्वराणामीश्वरः अयं सर्वेषामधिपतिः भूतानां पालः, असम्भेदाय सम्भेद्रोऽपि नाशः तदभावाय, लोकानां विधारणः धारणकर्ता सेतुः । एवं गुणविशिष्टमिमं ज्ञातुं मिकर्थमिच्छा नोज्जगर्ति ? अत आह– तमेतं परमात्मानं ब्राह्मणा वेदानुवचनेन वेदानाम् अनुवचनं स्वाध्यायः तेन करणीभूतेन यज्ञेन मखानुष्ठानेन तपसा इष्ट प्राप्तये चान्द्रायणादिना, यद्वा गीतोक्तेन त्रिविध तपसा अनासकं विषयाणामनशनं तेन ब्राह्मणा विवि दिषन्ति । एवं वेदानुवचनं यज्ञो दानं तपः अनासकमिमानि साधनानि ब्रह्मविविदिशायां हेतुभूतानि, एभिरनुष्ठीयमानैः पावनेषु मनःसुब्रह्मविविदिष जागर्ति । अतः प्राह भगवान् गीतायाम् —

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।१८-५

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं जाग्रतायां विविदिषायां तं परमात्मानमेतमतिसन्निहितं विदित्वा निजनाथत्वेन ज्ञात्वा मुनिर्भवति मौनमालम्ब्ते । प्रकर्षेण व्रजन्ति तच्छीला: इति परिव्राजिन: एतमेव लोकम् इच्छा विषयं कुर्वन्त: भगवत: प्राप्तये सर्वं त्यजन्ति पुत्रपौत्रादिकम् । अस्मै एव पूर्वे विद्वांस: प्रजां न कामयन्ते स्रम ऊर्ध्वरेतस्कत्वात् सनकादय: वैराग्यमूलमाह– किं प्रजया पुत्रादिभि: करिष्याम: साधयिष्याम: एषां सम्बन्धीतया अयमात्मा लोकश्च नाध्यवसीयते अतएव एषणात्रयात् उत्थाय उपरत: भवन्ति । लोकैषणा द्वयोरेषणयो: मध्यवर्तित्वात् द्वयोरेव अन्तर्भूता एवं पुत्रैषणां वित्तैषणां लौकेषणां च परित्यज्य विरज्यन्त इति हार्दम् । त्यक्त सर्वपरिग्रहासन्त: भिक्षाचर्यं भिक्षुवृत्तिं चरन्ति आश्रयन्ते । यद्यपि आद्यशंकराचार्य: अत्र भिक्षाचरणे वैराग्यमेव मूलमाह, परन्तु भगवाञ्छुकाचार्य: एतस्य वैराग्यस्य भगवत्कथामेव मूलामाह । तथा हि भ्रमरगीते—

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्
सकृदशनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टा: ।
सपदि ग्रहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव: इव विहंङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ।

(भागवत १०-४७-४०)

एते किमर्थं सर्वं त्यजन्तीत्याह– व्याख्यातोऽयमंश: । एवं शुभाशुभे एनं न तरत: अथ च कृताकृते कर्तव्याकर्त्तव्ये एनं न तपत: न क्लिष्यत: ।।श्री:।।

भूयो ब्रह्ममहिमानं वर्णयति—

तदेतदृचाभ्युक्तम् । एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान् ।। तस्यैव स्यात्पदवित्तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेनेति । तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षु: समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवामात्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवत्येष ब्रह्मलोक: सम्राडेनं प्रापितोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्य: सोऽहं भगवते विदेहान् ददामि मां चापि सह दास्यायेति ।।२३।।

तदेव एतत् सिद्धान्तरूपं प्रस्तूयमानया ऋचा उक्तम् । एष: अयमेव ब्राह्मणस्य नित्य: सार्वकालिक: महिमा यत् कर्मणा शुभेन न वर्धते, अशुभेन वा कनीयान्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लघीयान् न भवति। एतत्पदं विदित्वा तस्य एव तदीय एव स्यात् पापकेन अघवता कर्मणापि न लिप्यते न संसृज्यते इति शब्दो वाक्यपरिसमाप्तौ। अतएव भिक्षाया: अन्त: नियमपरिसमाप्ति: तस्मिन् शान्त: शमोपेत: दान्त: इन्द्रियदमनशील: उपरतिमान् विषयेभ्य:, तितिक्षु: मात्रास्पर्शानां सहनशील: **ताँस्तितिक्षस्व भारत** (गीता २-१४) समाहित: इन्द्रियाणां समाधानवान्, आत्मनि परमात्मने, सर्वं सर्वत्र कथमिति चेत् **सुपां सुलुक्** इत्यनेन 'ङि' विभक्ते: 'सु' आदेशे अमी सर्वं त्यक्त्वा ब्रह्मभूतं भवति। हे सम्राट्! एवं विधं सकलानर्थरहितं ब्रह्मलोकं मया प्रापितोऽसि। जनक: पुन र्जिज्ञासते सोऽहं भगवते इत्यादिना। हे प्रभो, अद्याहं भगवते समग्रान् विदेहान् ददामि मां चापि दास्यामि एभि: सह ।।श्री:।।

एवं फलश्रुतिमाह—

स वा एष महानज आत्माऽन्नादो वसुदानो विन्दते वसु य एवं वेद ।।२४।।

अयमात्मैव सकलचराचर भक्षणशील: एवं य: जानाति स वै वसुदान: भवति ।।श्री:।।

भूयोऽपि फलश्रुति माह—

स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभय हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद ।।२५।।

अयमात्मा अजर: जरारहित:, अमर: मरणवर्जित:, अभय: भयरहित:, य एनं ब्रह्म अभयं य एवं पूर्वोक्तं इदं ब्रह्मप्रतिपादनं वेद सोऽपि अभयं ब्रह्मप्राप्य अभयो भवति।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

इति भगवदुक्ते: ।।श्री:।। वाल्मिकी रामायण (६-१८-३४) ।।

इति श्री बृहदारण्यकोपनिषदि चतुर्थाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये आत्मस्वरूपनिर्धारणनाम चतुर्थब्राह्मणम्।

।। श्रीराघव: शन्तनोतु ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। पञ्चमब्राह्मणम् ।।

मङ्गलाचरणम्

कलिन्दजानीरसमानसौभगं महीसुतामण्डितमञ्जुविग्रहम् ।
मनोजमोहास्पदसुस्मिताधरं रघूत्तमं ब्रह्म गृणामि पञ्चमे ।।

मन्त्राणामालस्याभावात् अभ्यासाय च पौनः पुन्येन आत्मत्वस्य अमृतरूपस्य परमात्मसाक्षात्कृतेस्तदुपयोगिनांच श्रवणमनननिदिध्यासनानां वर्णितचरोऽपि किञ्चिदानुपूर्वि वैलक्षण्येन पुनर्याज्ञवल्क्यमैत्रेयीसंवादः प्रारभ्यते—

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवहुर्मैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्री प्रज्ञैव तर्हि कात्यायन्यथ ह याज्ञवल्क्योऽन्यद्वृत्तमुपादकरिष्यन् ।।१।।

याज्ञवल्क्यस्य मैत्रेयी कात्यायनी इति द्वे भार्ये बभूवतुः पाणिगृहीत्या वोऽभवतां तत्र मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी ब्रह्म वेद तत् वदति तच्छीला कात्यायनी च स्त्रीप्रज्ञा गृहासक्ता आसीत् । अन्य वृतिं तुरीयाश्रमम् ।।श्रीः।।

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रव्रजिष्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति ।।२।।

हन्त इति हर्षे । प्रव्रजिष्यन् संन्यासं ग्रहिष्यन्, अस्मात् स्थानात् एतस्मात् गृहात्, अरे इति सम्बोधनम् ।।श्रीः।।

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वापृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्स्यां न्वहं तेनामृताऽऽहो३ नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैवै ते जीवितँ स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति ।।३।।

मह्यं मैत्रेय्यै अमृता मरणधर्मरहिता—

समंद्रमेखलां पृथ्वीं लब्ध्वापि स्यां न चामृता ।
आशाऽत्र नैव कार्येति याज्ञवल्क्यो न्यवारयत् ।।श्रीः।।

अमृतत्वं पृच्छति मैत्रेयी—

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किमनेन नाथ वित्तेन कुर्यां स्यां येन नामृता ।
यद्वेद ब्रूहि भगवन् भवेयं येन चामृता ।।श्रीः।।

याज्ञवल्क्यः समाधत्ते—

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया वै खलु नो भवती सती प्रियमवृधद्धन्त तर्हि भवत्येतद्वयाख्यास्यामि ते व्याचक्षणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ।।५।।

अवृधद् अवर्द्धयत्, व्याचक्षाणस्य व्याख्यान विषयं कुर्वतः ।।श्रीः।।

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति । न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति । न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वेदानां कामाय वेदाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदँ्सर्वं विदितम् ।।६।।

दृष्टेः साक्षात् कृते, श्रुते श्रुतिस्मृतिवाक्यैः श्रवणविषयतां नीते, मते अवबुद्धे विज्ञाते विज्ञानविषयीकृते ।।श्रीः।।

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्र तं परादाद्योऽन्यात्रात्मनः क्षेत्रं वेदा लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमे वेदा इमानि भूतानीदँ् सर्वं यदयमात्मा ।।७।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्यत्र अन्यस्मिन् स्थाने, ब्रह्मत्वादयो धर्मा आत्मा च हृदयरूपसमानाधिकरण इति भावः ।।श्रीः।।

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ।।८।।

स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ।।९।।

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय वीणायैतु ग्रहणेन तु वीणा वादस्य वा शब्दो गृहीतः ।।१०।।

इमानि दृष्टान्तानि व्याख्यातानि, दुन्दुभिरूपः बुभुक्षुरात्मा, शङ्खोपमानो मुमुक्षुः मुक्तात्मा च वीणया तुलितः ।।श्रीः।।

भूयस्त्रीणि दृष्टान्तानि—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीस्टँ् हुतमाशिनं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।।११।।

स यथा सर्वासामपाँ् समुद्र एकायनमेवँ् सर्वेषाँ् स्पर्शानां त्वगेकायनमेवैँ् सर्वैषां गन्धानां नासिके एकायनमेवँ् सर्वेषाँ् रसानां जिह्वैकायनमेवँ् सर्वेषाँ् रूपाणां च चक्षुरेकायनमेवँ् सर्वेषाँ् शब्दानाँ् श्रोत्रमेकायनमेवँ् सर्वेषाँ् संकल्पानां मन एकायनमेवँ् सर्वासां विद्यानाँ् हृदयमेकायनमेवँ् सर्वेषां कर्मणाँ् हस्तावेकायनमेवँ् सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमेवँ् सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनमेवँ् सर्वेषामध्वनां पादावेकायनमेवँ् सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ।।१२।।

स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरेऽयमात्मा–ऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ।।१३।।

व्याख्या—आर्द्रेन्धनं हरितकाष्ठं तेन अभ्याहितस्य दहनाय संयोजितस्य, अपां जलानां प्रेत्य गत्वा न तस्य संज्ञास्ते लौकिक नाम्नः परिलीनत्वात् । अत्र त्रिभिर्दृष्टान्तैः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जन्मस्थितिलयाः परमात्ममूलाः निर्दिष्टाः जीवस्य यथा हरितकाष्ठैः संयुक्तादग्नेः धूमाः पृथग्भवन्ति । तथैव योगमाया समन्विता परमात्मनः तन्निःश्वासभूत-वेदसहितानि सर्वभूतानि । यथा जलं जलनिधिना पाल्यते तथेश्वरेण भूतानि । यथा सैन्धवशिलाखण्डः जलेनिक्षिप्तः न कामपि संज्ञां व्यवस्थापयितुं प्रभवति तथैव दृष्टे परमात्मनि ।।श्रीः।।

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवान्मोहान्तमापीपिपन्न वा हमिमं विजानामीति स होवाच न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा ।।१४।।

मोहं सन्देहं माम् आपीपिपन् प्रापितवान् आप्तृधातोः ण्यन्त लुङ् लकारे प्रथमपुरुषैक वचने आपीपिपत् । याज्ञवल्क्यः प्रोवाच-अरे मैत्रेयि अहं मोहं न ब्रवीमि समुद्रं प्राप्य यथा सैन्धवशिलायाः यथा नामरूपे न तथैव परमात्मानमेत्य जीवात्मा लौकिकनामरूपाभ्यां विमुक्तः भगवदीयनामरूपाभ्यामेव युज्यते ।।श्रीः।।

प्रकरणस्योपसंहारः—

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरँ रसयते तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरँ शृणोति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरँ स्पृशति तदितर इतरं विजानाति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कँ रसयत्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कँ शृणुयात्तत्केन कं मन्वीत तत्केन कँ स्पृशेत्तत्केन कं विजानीयाद्येनेदँ सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्स एष नेति नेत्यात्मा ऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यते ऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजानीयादित्युक्तानुशासनासि मैत्रेय्येतावदरे खल्वमृतत्वमिति होक्त्वा याज्ञवल्क्यो विजहार ।।१५।।

द्वैतमिव सम्बन्धतया भेदः विज्ञातारं चराचरज्ञं परमात्मानं केन तद्व्यतिरिक्तेन विजानीयात् इत्थम् उक्तानुशासना असि, उक्तमुपदिष्टम् अनुशासनम् अमृतत्वप्रवचनं यस्यै तथा भूता इत्थमुक्त्वा समग्रं धनं कात्यायन्यै दत्वा मैत्रेय्यै ब्रह्मविद्यां समुपदिश्य तां तत्रैव कुटी रेत्यक्त्वा याज्ञवल्क्यः परिव्राजको भूत्वा विजहार स्वच्छन्दो ब्रह्मणा सह चिक्रीड ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि चतुर्थाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये याज्ञवल्क्यमैत्रेयीसंवादनाम ।

।। पञ्चम ब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। षष्ठ ब्राह्मणम् ।।

हे राम रामाप्रिय रावणारे हे मैथिलीनेत्रचकोरचन्द्र ।
संसार कान्तार विनष्ट शान्तिं पशुं सुरज्वा विनियक्ष षष्ठम् ।

अथ याज्ञवल्कीयवंशपरंपरा वर्णयति—

अथ व ँ् शः पौतिमास्यात्पौतिमाष्यो गोपवनाद् गौपवनः पौतिमाष्यात्पौतिमाष्यो गौपवनाद्गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कौशिकाच्च कौतमाच्च गौतमः ।।१।।

आग्निवेश्यादाग्निवेश्यो गार्ग्याद्गार्ग्यो गार्ग्याद्गार्ग्यो गौतमाद् गौतमः सैतवात्सैतवः पाराशर्यायणात्पाराशर्यायणो गार्ग्यायणाद् गार्ग्यायण उद्दालकायनादुद्दालकायनो जाबालायनाज्जाबालायनो माध्यन्दिनायनान्माध्यन्दिनायनः सौकरायणात्सौकरायणः काषायणात्काषायणः सायकायनात्सायकायनः कौशिकायनेः कौशिकायनि ँ् ।।२।।

घृतकौशिकाद्घृतकौशिक पाराशर्यायणात्पाराशर्यायणः पाराशर्यात्पाराशर्यो जातूकर्ण्याज्जातू कर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चासुरायणस्त्रैवणे-स्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिर्भारद्वाजाद्भारद्वाज आत्रेयादात्रेयो माण्टेर्माण्टिर्गौतमाद्गौतमो गौतमाद्गौतमो वात्स्याद्वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात्काप्यात्कैशोर्यः काप्यः कुमारहारितात्कुकुमारहारितो गालवाद्गालवो विदर्भीकौण्डिन्याद्विदर्भीकौण्डिन्यो वत्सनपादो वाभ्रपाद्वत्सनपाद्वाभ्रवः पथः सौभरात्पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूतेस्त्वत्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात्त्वाष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वास्ट्रोऽश्विभ्यासश्विनौ दधीच वर्णाछि ध्यङ्गाथर्वणो दैवादथर्वदैवो मृत्योः प्राध्वं ँ् सनान्मृत्युः प्राध्व ँ् सनः प्रध्व ँ् सनात्प्रध्व ँ् सन एकर्षेरेकर्षिर्विप्रचित्तेर्विप्रचित्तिर्व्यष्टेर्वृष्टिः सनारोः सनारूः सनातनात्सनातनः सनगात्सनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंभु ब्रह्मणे नमः ।।३।।

पौतिमास्य समारम्भं घृकौशिकमध्यमम् ।
परमेष्ठिब्रह्मपर्यन्तं स्तौति वंशं द्विजन्मनाम् ।।श्रीः।।

इति श्रीचित्रकूटस्थ सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वरश्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य प्रणीते बृहदारण्यकोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्ये चतर्थोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। पञ्चमः अध्यायः ।।

।। प्रथमब्राह्मणम् ।।

सदा परिव्राजक योग्विृन्दै–र्तोष्टूयमानाङ्घ्रिसरोजयुग्मम् ।
सीतासहायं विगतान्तरायं तद् ब्रह्मपूर्णं स्मर पञ्चमं भोः ।।

अध्यायद्वितयेन यन् निरुपाधिकं ब्रह्म निखिलजीवनिकायसेव्यं नेति नेति विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीतं आत्मावा अरे द्रष्टव्यः इत्यादिभिर्विशिष्टैर्वचनैर्व्याख्यातं तदेव पुनरभ्यासाय संसारगतंविभिन्नजागतिकपदार्थदृष्ट्या व्याख्यातुं खिलभागस्य पञ्चम–षष्ठाभिधेयस्य अध्यायद्वितयस्य प्रारम्भः ।

तत्र प्रथमं ब्राह्मणम्—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते । ॐ खं ब्रह्म खं पुराणं वायुरं खमिति ह स्माह कौरव्यायणीपुत्रो वेदोऽयं ब्रह्मणा विदुर्वेदेनेन यद्वेदितव्यम् ।।१।।

ॐ इति भगवन्नामस्मरणम्, अदः परोक्षं सर्वकारणं ब्रह्म पूर्णम् । इदं प्रत्यक्षाभूतं सगुणं ब्रह्मपूर्णम् । अमुष्मात् निर्गुणात् पूर्णात् ब्रह्मणः इदं पूर्णम् उदच्यते उत्कृष्टतया पूज्यते, यत्तु उदच्यते इत्यस्य उद्गच्छति इति व्याचक्षते मायावदमदिरामदान्धास्तन्नितरामसङ्गतम् । उत्पूर्वको लुप्तनकारकोऽञ्चधातुः कर्मवाच्ये प्रयुक्तः एक यः कस्तत्रैवोपपत्तेः । उदुपसृष्टत्वात् उदच्यते इत्यस्य पूज्यते इत्येवार्थः शास्त्रीयः, न हि केनापि दृश्यते इत्यस्य विलोकयतीत्यर्थः कर्तुं शक्यते, विस्तरस्तु उपनिषद प्रारम्भे व्याख्यातः, तस्य पूर्णस्य पूर्णं कृपाप्रसादमादाय इदं जीवात्मातत्वमपि पूर्णं पूर्णकाममवशिष्यते नकेनापि नाशयितुं शक्यमिति भाव । अत आहुः **आशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो नहि सज्यतेऽसितो न व्यथते नरिष्यति** । (व०उ० ४/५/१५)

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः ।।

(गीता २/२४)

इति बृहदारण्यकोपनिषदि पञ्चमाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये पूर्णब्रह्मनाम प्रथमं ब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। द्वितीयब्राह्मणम् ।।

अथ दमदानदयानां वर्णनाय आख्यायिका प्रारभ्यते त्रयाणामपि ब्रह्मोपासने समुपयोगात् ।

त्रयाः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुरा उषित्वा ब्रह्मचर्यं देवा ऊण्चुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द इति व्यज्ञाशिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ।।१।।

प्राजाप त्याः प्रजापतेर्ब्रह्मणोऽपत्यानि त्रयाः । त्रयोः अवयवा येषां ते त्रयाः देवाः मनुष्याः असुराः सत्वरजस्तमो बहुलाः पितरि प्रजापतौ ब्रह्मणि जनकेः अत्र सामीप्ये सप्तमी उपश्लेषस्य सामीप्यार्थकत्वात् ब्रह्मचर्यम् एतन्नियमम् ऊषु वसन्ति स्म । उषित्वा नियमं समाप्य उपदेष्टुं विज्ञातः तेभ्यः देवेभ्यः द इति एकाक्षरमुवाच व्यज्ञाशिष्ट विज्ञातवन्तो यूयम् इति पृष्टा देवाः प्रोचुः व्यज्ञासिष्म विदितवन्तो वयम् । किमिति द इत्यनेन दाम्यत इति प्राह भवान् अस्मान् भोगबहुलेभ्योऽस्मभ्यम् इन्द्रियाणां दमः महानुपदेशः ब्रह्मणापि व्यज्ञाशिष्ट विदितवन्तोऽभूत इति सन्तोषः प्रकाशितः ।।श्रीः।।

अथ मनुष्यज्ञानं प्राहः—

अथ हैनं मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैत देवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दत्तेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ।।२।।

तैः प्रार्थितः द इत्युवाच तेऽपि पूर्ववत् दध्वम् इत्यर्थं ज्ञात्वा व्यज्ञासिष्म इति पितरं प्राहुः दध्वमिति त्वमात्थ दानेनैवास्माकं कल्याणम् आमिति सन्तुष्टो ब्रह्मा ।।श्रीः।।

अथासुर ज्ञानं वर्णयति—

अथ हैनमसुरा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दयध्वमिति न आ़त्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्तनयित्नुर्द द द इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तदेतत्त्रय ँ शिक्षेद्दमं दानं दयामिति ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असुषु रमन्ते इत्यसुराः तैः प्रार्थितः एकाक्षरं द इत्युवाच तेऽपि पितरं प्राहुः द इत्यक्षरेण भवान् दयध्वमित्याह वयं क्रूरस्वभावाः तस्माद् भूतेषु दयां करवामहै ओमिति सन्तोषं प्रकटयत् ब्रह्मा । इदमेव दैवी वाक् मेघगर्जनेन द द द इत्यनु वदति देवाः दाम्यत मनुष्यादध्वम् असुराः दयध्वमिति दमं दानं दयां च त्रिगुणावच्छिन्नः अनुशिक्षेत एभिस्त्रिभिः सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति विशेषणत्रयावच्छिन्नं ब्रह्माधिगन्तुं प्रभवेत् इति शास्त्रार्थः ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपषिद्भाष्ये पञ्चमाध्यायेश्रीराघवकृपाभाष्ये द्वितीयं प्राजापत्यं ब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। तृतीयब्राह्मणम् ।।

अथ हृदय ब्रह्मोपास्तिं निरूपयति—

एष प्रजापतिर्यद्धृदयमेतद् ब्रह्मैतत्सर्वं तदेतत्त्र्यक्षर ँ हृदयमिति हृ इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददत्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद ।।१।।

एषः प्रजापतिः परमात्मैव हृदयं प्रत्यक्षरं ब्रह्म वर्णयति । हृ-द-य इति त्रीण्यक्षराणि तत्र त्रीण्यपि ब्रह्मनामानि व्युत्पत्या ब्रह्मार्थत्वं दर्शयति । हरन्ति गमयन्ति सम्पूर्णानि पदार्थान् भूतानि यस्मै इति हृ ददति बलिं जीवाः यस्मै तद्दम् । एति स्वर्गं येन तत् यं हृ एव दम् एव यम् इति हृदयमिदं तु प्रादेशमात्रमन्यापि व्युत्पत्तिः । एवं भूता कर्तुं शक्यते यथा हरति भक्तानां कष्टं यत् तत् हृ, ददाति भक्तेभ्यः सम्पूर्णानि कामानि यत्तत् दं, यापयतिं स्वभक्तान् रावणादीनपि स्वेन समरनिहतान् यत् तत् यं, एवं वेद स स्वर्गं याति ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्येपञ्चमाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये हृदयब्राह्मणं नाम तृतीय ब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। चतुर्थब्राह्मणम् ।।

अथ सत्यब्रह्मोपासनां वर्णयति—

तद्वै तदेतदेव तदास सत्यमेव स यो हैतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति जयतीमाँल्लोकान् जित इन्न्वसावसद्य एवमेतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति सत्यꣳ ह्येव ब्रह्म ।।१।।

तदेतत् हृदयमेव आस किं रूपम् अतआह—सत्यं, सद्भ्योहितं सत्यं सत् एव सत्यं प्रथमजं परमेश्वरस्य प्रथमावताररूपं यक्षमिज्यते पूज्यते सद्भिः संगम्यते असुरनाशार्थं च उपामन्त्र्यते इति यक्षम् एवं यः देवसः इमाल्लोकाञ्जयति भूरादीन् ब्रह्म पर्यन्तान् एवम् असौ शत्रुः जितस्तेन मानसः कामादिः असच्च यतो हि सत्यमेव प्रथमावतारं यत्तु सच्च त्यच्च इति व्याचक्षते तद्मायावाददुर्वासनामलीमसमानसतया व्याकरणानभिज्ञत्वाच्च स्वकल्पितमतस्थापनसन्निपातवसंवदत्वाच्च ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि पंचमाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणं संम्पूर्णम् ।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। पंचमब्राह्मणम् ।।

भूयस्तदेव विशिनष्टि—

आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापतिर्देवाꣳस्तेदेवाः सत्यमेवोपासते तदेतत्र्यक्षरꣳ सत्यमिति स इत्येकमक्षरं तीत्येकमक्षरं यमित्येकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतोऽनृतं तदेतदनृतमुभयतः सत्येन परिगृहीतꣳ सत्यभूयमेव भवति नैवं विद्वाꣳसमनृतꣳ हिनस्ति ।।१।।

आपः जलाभिमानिदेवता आसुः बभूवुः ब्रह्मद्रवपरिणामभूता इति भावः, ताः प्रथमं सत्यं रचितवत्यः सत्यमित्यत्र वर्णत्रयं स त् य सकारो यकारश्च सत्यवाचकौ तकारश्च अनृतवाचकः द्वाभ्यां परिभूत बलत्वात् तत् सत्यबहुलं, यः एवं वेद सः सत्यमेव सत्यभूयं सत्यत्वं प्राप्तो भवति येनं अन्तम् असत्यं न हिनस्ति न नाशयति ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथान्योन्यत्र प्रतिष्ठितं सत्यरूपं ब्रह्म आदित्यमण्डलस्थचाक्षुषपुरुषतया प्रतिपादयति—

तद्यत्तत्सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन्प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन् स यदोत्क्रमिष्यन्भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति ।।२।।

इदं सत्यस्वरूपं ब्रह्म द्वेधाविभक्तमेकम् आदित्यमण्डलपुरुषरूपमपरं दक्षिणाक्षिपुरुषाकारम् उभावपि परस्परस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिः सूर्यमण्डलस्थः दक्षिणनेत्रे अयञ्च प्राणैस्तत्रं एवं विद्वांस परलोकं गच्छन्तं सूर्यरश्मयः न प्रत्यवायरूपाः भवन्ति ।।श्रीः।।

पुरुषावयवं विशिनष्टि—

य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकँ शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहरिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ।।३।।

सूर्यमण्डलस्थपुरुषस्य भूरिति एकाक्षराव्याहृतिः, शिरः भुवः इति व्याहृतेः उभे अक्षरे द्वौ बाहू, स्वः इति द्वे अक्षरे द्वे प्रतिष्ठे द्वौ चरणौ, अहः इति तस्य उपनिषत् रहस्यमन्त्रव्युत्पत्तिं संकेतयति य इत्यादिना—एवं विदुषः पाप्मानं हन्ति एष संकेतः व्युत्पत्तिश्च अम् अघं हन्ति इति अहः ।।श्रीः।।

अथ चाक्षुष पुरुषस्यावयवान् विशिनष्टि—

योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकँ शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ।।४।।

दक्षिणाक्षपुरुषस्य भूःशिरः भुवः बाहू, स्वः चरणौ अहमिति उपनिषद् अत्र व्युत्पत्तिद्वयम् अघं हन्ति इति अहम् अघं जहाति त्यजति वा ।।श्रीः।।

इति बृहदारण्यकोपनिषदि पंचमाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्ये सत्यब्रह्मसंस्थानं नाम पंचमं ब्राह्मणं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। षष्ठब्राह्मणम् ।।

मानसपुरुषोपासनां निरूपयति—

मनोमयोऽयं पुरुषो भाः सत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा व्रीहिर्वा यवो वा स एष सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किं च ।।१।।

अयं पुरुषः मनोमयः मनःप्रचुरचैतन्यः भाः प्रकाशरूपः सत्यः व्रीहि यव इव स्थितः हृदयन्तः अयमेव सर्वस्य वशी नियन्ता ईशानः शासकः यत्किंच स्थावर जंगमम् इदं सर्वं प्रशास्ति अधिकरोति । अनेनैव ब्रह्मणश्चिदचिद् विशिष्टत्वं सूचितम् ।।श्रीः।।

।। इति षष्ठ ब्राह्मणः ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। सप्तमब्राह्मणम् ।।

अथ विद्युद् ब्रह्मभजनीयत्वेन वर्णयति—

विद्युद्ब्रह्मेत्याहुर्विदानाद्विद्युद्विद्यत्येनं पाप्मनो य एवं वेद विद्युद्ब्रह्मेति विद्युदेव ब्रह्म ।।१।।

विद्युद् ब्रह्मरूपं तदनुरुपां व्यत्पत्तिं प्रदर्शयति विदानिति विशेषेण द्यति खण्डयति पापानियासा विद्युत ।।श्रीः।।

।। इति सप्तम ब्राह्मणः ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अष्टमब्राह्मणम् ।।

वाचं धेनुमिव वर्णयति कोशेऽपि गौरितिवाक् पर्यायः—

वाचं धेनुमुपासीत तस्याश्चत्वारः स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारस्तस्यै द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च हन्तकारं च मनुष्याः स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र रूपकं गोरिव वाचः पार्श्वेऽपि स्वाहावषट्हन्तस्वधा इति चत्वार स्तनाः दुग्धमिव फलं प्रयच्छन्ति। तत्र देवेभ्यः स्वाहावषट् रूपौ, पितृभ्यः स्वधारूपः कव्यं, मनुष्याय हन्त इति उत्साहरूपः कर्मफलम् अन्येषा कृते वामनिष्फला इति भावः ।।श्रीः।।

।। इति अष्टमब्राह्मणम् ।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। नवम ब्राह्मणम् ।।

वैश्वानरं निर्वक्ति—

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदोत्क्रमिष्यन्भवति नैनं घोषँ शृणोति ।।१।।

विश्वेषां नराणाम् अयं सम्बन्धिभूतः इति वैश्वानरः नरे च संज्ञायामिति दीर्घः। सैषिकश्चाण् प्रत्ययः। यथोक्तं श्रीगीतासु—

अहं वैश्वानरः भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणाःपानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधं ।।श्रीः।।

(गीता १५/१४)

।। इति नवमब्राह्मणम् ।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। दशमब्राह्मणम् ।।

अन्योपासनाभ्यः प्राप्तां गतिं निरूपयति—

यदा वै पुरुषोऽस्माल्लोकात् प्रैति स वायुमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा रथचक्रस्य खं तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स आदित्यमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा लम्बरस्य खं तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स चन्द्रमसमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा दुन्दुभेः खं तेन स ऊर्ध्व आक्रमते स लोकमागच्छत्यशोकमहिमं तस्मिन्वसति शाश्वतीः समाः ।।१।।

एतत् लोकं त्यक्त्वा वायुः विजिहीते गमयति, शेषं सरलं, एवं वायुसूर्य चन्द्रमसां साहा य्येन क्षयिष्णुलोकं प्राप्य पुनरावर्तत इति भावः ।।श्रीः।।

।। इति दशमब्राह्मणम् ।।
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। एकादशब्राह्मणम् ।।

व्याधौ श्मशाने च तपोदृष्टिं कुर्वन् तद् दुःखेन न खिद्येत इत्याह—

एतद्वै परमं तपो यद्व्याहितस्तप्यते परमँ हैव लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै परमं तपो यं प्रेतमरण्यँ हरन्ति परमँ हैव लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै परमं तपो यं प्रेतमग्नावभ्यादधति परमँ हैवं लोकं जयति य एवं वेद ।।१।।

व्याधितः क्लेशनं यद्धि तत् तस्य परमंत पः ।
श्मशाने पावकाधानं ततोऽप्यतितरां तपः ।।

एवं विद्वान् महाभागो जरामरणतापतः ।
न बिभेति विचारेण श्रुतिवाक्यमनुस्मरन् ।।श्रीः।।

।। इत्येकादशब्राह्मण् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। द्वादशब्राह्मणम् ।।

अथ प्रकरणात् अन्नप्राणयोर्ब्रह्मदृष्टिमाह—

अन्नं ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा पूयति वा अन्नमृते प्राणात्प्राणो ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा शुष्यति वै प्राण ऋतेऽन्नादेते ह त्वेव देवते एकधाभूयं भूत्वा परमतां गच्छतस्तद्ध स्माह प्रातृदः पितरं किँ स्विदेवैवं विदुषे साधु कुर्यां किमेवास्मा असाधु कुर्यामिति स ह स्माह पाणिना मा प्रातृद कस्त्वेनयोरेकधाभूयं भूत्वा परमतां गच्छतीति तस्मा उ हैतदुवाच वीत्यन्नं वै व्यन्ने हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि रमिति प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रमन्ते सर्वाणि ह वा अस्मिन्भूतानि विशन्ति सर्वाणि भूतानि रमन्ते य एवं वेद ।।१।।

केचन अन्नं ब्रह्म आहुः तत् न, प्राणं विना तत् पूयति दुर्गन्धियुक्तं भवति, प्राणोऽपि अन्नमन्तरेण शुष्यति अतः प्रातृदः स्वपितरम् ऋषिं निर्णयाय पृच्छति सनिषिध्यति यतः एकैकं न ब्रह्म निषेध मुखेन व्याचष्टे विरम शान्तो भव इति निषेधः । व्याख्यानं तु वि इति अन्नम् अत्र सर्वाणि भूतानि विष्टानिरम इति प्राणः अत्र सर्वाणि भूतानि रमन्ते ।।श्रीः।।

।। इति द्वादशब्राह्मण् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। त्रयोदशब्राह्मणम् ।।

प्राणेष्वूक्थदृष्टिं व्याहरति—

उक्थं प्राणो वा उक्थं प्राणो हीदँ सर्वमुत्थापयत्युद्धास्मादुक्थ-विद्वीरस्तिष्ठत्युक्थस्य सायुज्यँ सलोकतां जयति य एवं वेद ।।१।।

उक्थं स्तोत्रविशेषः लोकानामुत्थापनात् प्राणोऽपि साधर्म्यम् उत्थापयति इत्युक्थमुत्तिष्ठंति अस्मात् इत्युक्थम् ।।श्रीः।।

यजुः प्राणो वै यजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यन्ते युज्यन्ते हास्मै सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्याय यजुषः सायुज्यँ सलोकतां जयति य एवं वेद ।।२।।

युज्यन्ते सर्वाणि भूतानि अनेन संबध्यन्ते युज्यन्ते च उपयोगीनि भवन्ति चराचराणि यस्मै इति विग्रहाभ्यां यजुः साधारण्यं प्राणेन ।।श्रीः।।

साम प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यञ्चि सम्यञ्चि हास्मै सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्याय कल्पन्ते साम्नः सायुज्यँ सलोकतां जयति य एवं वेद ।।३।।

समत्वात् सम्यगञ्चनाच्च प्राणसामान्यम् ।।श्रीः।।

प्राणेक्षत्रदृष्टिं निरूपयति—

क्षत्रं प्राणो वै क्षत्रं हि त्रायते हैनं प्राणः क्षणितोः प्र क्षत्तमत्रमाप्नोति क्षत्रस्य सायुज्यँ सलोकतां जयति य एवं वेद ।।४।।

प्राणः क्षत्रं स्वयं क्षतात् प्राणभृतं त्रायते प्राणं चापि प्राणभृतः क्षणितः शस्त्रेण वृणितोऽपि त्रायते त्रातुं यतते इत्युभयसामान्यम् ।।श्रीः।।

।। इति त्रयोदशब्राह्मणम् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। चतुर्दशब्राह्मणम् ।।

अथ गायत्र्युपासनां निरूपयति—

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरँ ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ।।१।।

गायत्र्याः मूलतश्चतुर्विंशतिरक्षराणि, पूर्वं प्रणवसहिताः त्रिव्याहृतयः पश्चात् चतुर्थो पादः स न सर्वसामान्यः अत्रपादत्रये क्रमेण प्रतिपादम् अष्टावक्षराणि भवन्ति प्रथमपादे तत, सवितु र्वरेण्यम् एवं भूमिः अन्तरिक्ष, दियौ द्यौ इत्यष्टौक्षराणि एवं प्रथमपादे त्रिलोकीमुपासीत ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋचो यजूँषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरँ ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ।।२।।

गायत्र्याः द्वितीयं पदं भर्गो, दे, व, स्य, धी, म, हि, एवम्, ऋ, चः, य, जू, षि, सा, मा, नि, इत्यष्टाक्षराणि एवं द्वितीययपदे तृतीमुपासीनः त्रिवर्गं जयति ।।श्रीः।।

पुनस्तृतीयपादे—

प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरँ ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्सय यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददृश इव ह्येष परोरजा इति सर्वमु ह्येवैष रज उपर्युपरि तपत्येवँ हैव श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ।।३।।

गायत्र्यास्तृतीये पदे धि, यो, यो, नः, प्र, चो, द, या, त, तच्च प्रा, ण, अ, पा, न, वि, आ, न इत्यष्टाक्षरम् एवं तृतीयेपादे प्राणत्रयमुपीसत स यावत् प्राणं जयति एतस्याः तुरीयं पदं यन्निवृत्तिमार्गिणः पठन्त्यस्मदादयः परोरजा दर्शतं पदं दृश्यते इति दर्शतं तादृशं पदं यत्परोरजाः रजसः परिभूतं यशसाश्रिया प्रकाशते राजते इति रजाः इति हि तत्र त्युत्पत्तिः । एवं परः सन् रजाः दर्शतं यत् पुरा ऋषिभिर्ददृशे दर्शतु इति दृशधातोः भूतकाले क्तः अकारः गुंणश्च छान्दसौ ।।श्रीः।।

अथगायत्री प्रतिष्ठां वर्णयति—

सैषा गायत्र्येतस्मिँस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद्वै तत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै सत्यं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति तस्मा एवं श्रद्दध्याम तद्वै तत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणो प्रतिष्ठित तस्मादाहुर्ब ँसत्यादोगीय इत्येवम्वैषा गायत्र्ध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गयाँस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणाँस्तत्रे तद्यद्गया ँस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम स यामेवामूँ सावित्रीमन्वाहै षैव सा स यस्मा अन्वाह तस्यप्रणाँस्त्रायते ।।४।।

एषा गायत्री तुरीये पदे प्रतिष्ठिता तत् ब्रह्मसस्ये सत्यं चक्षुषि तस्यैव सतयापनत्वात् तद्बले बलं च प्राणे एवं गीयन्ते स्तूयन्ते सर्वैरिन्द्रियैः इति गयाः प्राणाः प्राणस्तुतेः । प्रश्नोपनिषदि अत्रैव चोपलभ्ये ताँस्तत्रे रक्षितवती इति गायत्री, गयास्तत्र इति गयत्रा एव गायत्री इति हि तत्रवैयाकरणसम्मतव्युत्पत्तिः सवितास्य देवता तस्मादियं सावित्री सास्यदेवता इत्यनेन अण् ङीप्च यदि कस्मैचित् वटुकाय अष्टवर्षाय ब्राह्मण बालकाय यदि कोऽपि गायत्रीमाह उपदिशति तर्हि तस्य प्राणान्त्रायते ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ताँ हैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुर्वागनुष्टुबेतद्वाचमनुब्रूम इति न तथा कुर्याद्गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयाद्यदि ह वा अप्येवंविद्बह्विव प्रतिगृह्णाति न हैव तद्गायत्र्या एकंचन पदं प्रति ।।५।।

केचन इमामनुष्टुब्दृष्ट्या आहुः वाग् वै अनुष्टुप् यद्यपि अत्र गायत्री छन्दः तत्रानुष्टुभः प्रसर एव नहि परन्त्वत्र अनुष्टुपरूप वाग् दृष्टिं निवारयति । अर्थात् इमां सामान्यवाचः अतिरिक्तत्वेन अलौकिकी मत्वा उपासीतं ततः बहु प्रतिगृह्णन्नपि गायत्र्याएकपदमपि क्षिणोति पापं तत् ।।श्रीः।।

स य इमाँ स्त्रींल्लोकान्पूर्णान्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयादथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत्प्रतिगृहणीयात्सोऽस्या एतद्द्वितीयं पदमाप्नुयादथ यावदिदं प्राणि यस्तावत्प्रतिगृहणीयात्सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाप्नुयादथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैवकेन चनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृहणीयात् ।।६।।

लीयते प्रथमेपादे त्रिलोक्यास्तु प्रतिग्रहः ।
त्रैविद्यायाः द्वितीयेतु प्राणानाञ्चतृतीयते ।
चतुर्थं यत् परीभूतं राजतेसर्वतोऽधिकं ।
तावत् प्रतिग्रहं कर्त्तुं केन शक्यं नरेण वै ।।श्रीः।।

तस्या उपस्थानं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे । नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति यं द्विष्यादसावस्मैकामो मा समृद्धीति वा न हैवास्मै स कामः समृद्ध्यते यस्मा एवमुपतिष्ठतेऽहमदः प्रापमिति वा ।।७।।

तस्या उपस्थानं वर्णयति इयं गायत्रीछन्दसोविमलर्षीकः परमात्मदैवतो मन्त्रः हे गायत्रिमातः । त्वं एकपदी त्रिलोकरूपा द्विपदी त्रयी उक्ता त्रिपदी प्राणमयी चतुष्पदी परोरजः इत्यंशयुक्ता, वस्तुतस्तुत्वम् अपद् असि नास्तिपादः यस्यास्ततथाभूता अखण्डस्फोटरूपा न प्राप्यसे अतस्ते तुरीयाय परोरजसे दर्शताय पदाय नमः । असौ अदः तत्पदं मा प्रापत न प्राप्तवान् अहम्, अथवा असौ शत्रुः अदः एतच्छरणं गतं मां मा प्रापत न स्प्रष्टुं प्रभवेत् इति अस्य उपस्थानस्य आभिचारिकोऽपि प्रयोगः संकेत्यते । इयं वै इत्यादिना यं शत्रुं द्विष्यात् द्वेषं कुर्यात् असौ मासमृद्धीत इति कामः, उपतिष्ठेत अस्म तदा स न समृध्यते अहमेतत् प्राप्नुयाम इति कामयमानः उपतिष्ठेत तदा प्राप्नोत्येव । नन्वत्र अध्यात्मविद्यायां के शत्रवः यान् प्रत्युपस्थानं विधीयते ? इति चेत् लोकतोऽपि भूयांसः कामादयोदुर्जयाः तान् प्रति असौ कामः कोधोवा मासमृद्धीत इति संकल्प्य उपतिष्ठेत चेत् नैव स समृध्यते इति श्रुतिवाक्ये विश्वासः करणीयः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ गायत्र्याः मुखविधाने अर्थवादाः—

एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच यन्नु हो तद्गायत्रीविदब्रूथा अथ कथँ हस्तीभूतो वहसीति मुखँ ह्यस्याः सम्राण्न विदांचकारेति होवाच तस्या अग्निरेव मुखं यदि ह वा अपि वह्विवाग्नावभ्यादधति सर्वमेव तत्संदहत्येवँ हैवैवंविद्यपि वह्विव पापं कुरुते सर्वमेव तत्संप्साय शुद्धः पूतोऽजरोऽमृतः संभवति ।।८।।

विदेहराजो जनकः अश्वतराश्वस्य अपत्यं पुमांसम् आश्वतराश्विं वुडिलं हस्तिशरीर-प्राप्तं पप्रच्छ कथं गायत्रीविद्भूत्वा हस्तिशरीरं प्राप्य भारं वहसि, स आह राजन् अहं मुखं गायत्र्या न जानामि अतोहस्त्यभवं, जनकः प्राह गायत्र्या अग्निरेव मुखम् अग्नेरेन्धनानामिव अस्याः सकलप्रतिग्रह पाप्मनां दाहकत्वसामर्थ्यवत्वात् ।।श्रीः।।

।। इति चतुर्दशब्राह्मणम् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। पञ्चदशब्राह्मणम् ।।

अथ पञ्चदशेब्राह्मणे प्रवृत्तिमार्गिणां सूर्यवायुपावकप्रार्थनं विदधत्ते—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं । तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये । पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि । योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि । वायुरनिलममृतमथेदं भष्मान्तँ शरीरम् ॐ क्रतो स्मर कृतँ स्मर क्रतो स्मर कृतँ स्मर । अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।१।।

इमे मन्त्राः ईशावास्योपनिषदि पञ्चदशात् अष्टादशं यावत् उपवर्णिताः, त एवात्र ब्राह्मणे गृहीताः बृहदारण्यकोपनिषदिः ते तत्रसविस्तर व्याख्यातचराः तत्रैव द्रष्टव्याः ।।श्रीः।।

इति चित्रकूटस्थ सर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरुरामानन्दाचार्या स्वामि रामभद्राचार्य प्रणीतं बृहदारण्यकोपनिषदि पञ्चमाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। अथ षष्ठाध्यायः ।

।। प्रथमब्राह्मणम् ।।

मंगलाचरणम्

नानाकर्मविपाकदावदहने दन्दह्यमानं द्रुतं ।
ताम्यन्तं तरुणतृत्रषा विकलितं प्रस्विन्नशुष्यन्मुखम् ।।
अन्विच्छन्तमथो त्वदीयकरुणाकादम्बिनीजीवनं ।
हे हे राघव पाहि पाहि विदृशं षष्ठ्येमां पापिनम् ।।

अथ असारसंसारतो वैराग्यसमुत्पादनाय संसारसंसरणं षष्ठे सविस्तरं निरूपणीयं, पञ्चमे ब्राह्मणेऽन्तिमे मरणकालस्थितिर्निरूपिता तदन्तरं ध्रुवजनितवात् सकामकर्माणि विवेच्यानीति संबन्धः —

ॐ ।। यो वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवत्यपि च यैषां बुभूषति य एवं वेद ।।१।।

प्राणाः ज्येष्ठाश्च श्रेष्ठाश्च प्राथम्यात् सद्गुणैरपि एवं विद्वान् कुले स्वस्मिन् ज्येष्ठः श्रेष्ठो भवेदिह ।।श्रीः।।

यो ह वै वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां भवति वाग्वै वसिष्ठा वसिष्ठः स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ।।२।।

वासयति सर्वान् अर्थान् क्रोडीकरोति इति वसा अतिसयेन वसा इति वसिष्ठा वाण्यां संपूर्णानाम् अर्थानामन्तरभूतत्वात् ।।श्रीः।।

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे चक्षुर्वै प्रतिष्ठा चक्षुषा हि समे च दुर्गे च प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे च य एवं वेद ।।३।।

प्रतितिष्ठति सम्मानं लभते यया सा प्रतिष्ठा चक्षुर्हि साक्षात्हेतुतया सत्यप्रतिष्ठा ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यो ह वै संपदं वेद सँ हास्मै पद्यते यं कामं कामयते श्रोत्रं वै संपच्छ्रोत्रे हीमे सर्वे वेदा अभिसंपन्नाः सँ हास्मै पद्यते यं कामं कामयते य एवं वेद ।।४।।

श्रोत्रं हि शब्दसाक्षात्कारे हेतुः वेदाश्च शब्दमयाः ते श्रोत्रद्वारेणैव शब्दरूपतया संपद्यन्ते अतः श्रोत्रं संपत् ।।श्रीः।।

यो ह वा आयतनं वेदायतनँ स्वानां भवत्यायतनं जनानां मनो वा आयतनमायतनँ स्वानां भवत्यायतनं जनानां य एवं वेद ।।५।।

आयतनं नाम निवासः मनसि संस्काराणां निवासात् तथात्वम् ।।श्रीः।।

यो ह वै प्रजापतिं वेद प्रजायते ह प्रजया पशुभी रेतो वै प्रजातिः प्रजायते ह प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ।।६।।

रेतसः प्रजननहेतुत्वात्प्रजापतिसामान्यं सर्वेषु अंगेषु तद्देवताधारणया रतिसमुपासनाविधानेन एषु देव बुद्धिं सूचयन्ति एषाम् अशास्त्रीयप्रयोगं वारयति इति मे मनीषितम् ।।श्रीः।।

ते हेमे प्राणा अहँ श्रेयसे विवदमाना ब्रह्म जग्मुस्तद्धोचु को नो वसिष्ठ इति तद्धोवाच यस्मिन्व उत्क्रान्त इदँ शरीरं पापीयो मन्यते स वो वसिष्ठ इति ।।७।।

अहं श्रेयः तस्मै विवदमानाः सर्वे प्राणपदार्थाः सर्वे चक्षुरादयः प्रजापतिं जग्मुः गतवन्तः प्रजापतिः उवाच वः युष्माकं मध्ये यस्मिन् उत्क्रामति गच्छति शरीरं पापीयः अशुभं प्रतीयते स एव वसिष्ठः ।।श्रीः।।

वाग्घोच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा कला अवदन्तो वाचा प्राणान्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाँ सो मनसा प्रजायमाना रेत सैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह वाक् ।।८।।

अकलाः मूकाः वाचमृते सर्वेषां जीवनोपपत्तेः ।।श्रीः।।

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथाऽन्धा अपश्यन्तश्चक्षुषा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाँ सो मनसा प्रजायमान रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह चक्षुः ।।९।।

दृष्टिमृतेऽपि जीवनोपलब्धेः ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रोत्रँ होच्चक्रामतत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथाबधिरा अश्रृणवन्तः श्रोत्रेण प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा विद्वाँसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ।।१०।।

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा मुग्धा अविद्वाँसो मनसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेशह मनः ।।११।।

रेतो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा क्लीबा अप्रजायमाना रेतसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तचक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाँसो मनसैवम जीविष्मेति प्रविवेश ह रेतः ।।१२।।

एवं श्रोत्ररेतसोरप्यभावे जीवनस्य उपपत्तौ नेमे वसिष्ठाः ।।श्रीः।।

अथ ह प्राण उत्क्रमिष्यन्यथा महासुहयः सैन्धवः पड्वीशशङ्कून्संवृहेदेवँ है वेमान्प्राणान्संववर्ह ते होचुर्मा भगव उत्क्रमीर्न वै शक्ष्यामस्त्वदृते जीवितुमिति तस्यो मे बलिं कुरुतेति तथेति ।।१३।।

उत्क्रमिष्यन् गमिष्यन् संववर्ह उत्पाटयामास महासुहयः महावेगशाली घोटकः । प्राणं विना जीवनस्य दुर्धरत्वात् ज्येष्ठता श्रेष्ठता वसिष्ठता प्रतिष्ठा सम्पत् समपदायतनत्वं सर्वं प्राण एव ।।श्रीः।।

सा ह वागुवाच यद्वा अहं वसिष्ठाऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीति यद्वा अहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठोऽसीति चक्षुर्यद्वा अहँ संपदस्मि त्वं तत्संपदसीति श्रोत्रं यद्वा अहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति मनोयद्वा अहं प्रजातिरस्मि त्वं तत्प्रजातिरसीति रेतस्तस्यो मे किमन्नं किं वास इति यदिदं किंचाश्वभ्य आकृमिभ्य आकीटपतङ्गेभ्यस्तत्तेऽन्नमापो वास इति न हवा अस्यानन्नं जग्धं भवति नानन्नं परिगृहीतं य एवमेतदनस्यान्नं वेद तद्विद्वाँसः श्रोत्रिया अशिष्यन्त आचामन्त्यशित्वा चामन्त्येतमेव तदनमनग्नं कुर्वन्तो मन्यन्ते ।।१४।।

सुगमम् ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमब्राह्मणम् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। द्वितीयब्राह्मणम् ।।

अथ श्वेतकेतु प्रवाहण संवादं प्रारभते—

श्वेतकेतुर्हवा आरुणेयः पञ्चालानां परिषदमाजगाम स आजगाम जैवलिं प्रवाहणं परिचारयमाणं तमुदीक्ष्याभ्युवाद कुमारा ३ इति स भो ३ इति प्रतिशुश्रावानुशिष्टोऽन्वसि पित्रेत्योमिति होवाच ।।१।।

कुमार अनुशिष्टः पित्राः अनुशिक्षितः ॐ इति स्वीकरोति श्वेति केतुः ।।श्रीः।।

अथ पञ्चप्रश्नान् समुत्थापयति—

वेत्थ यथेमाः प्रजाः प्रयत्यो विप्रतिपद्यन्ता ३ इति नेति होवाच वेत्थो यथेमं लोकं पुनरापद्यन्ता ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो यथा सौलोकं बहुत्रिः पुनः पुनः प्रयद्‌भिर्न संपूर्णतया ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो यतिथ्यामाहुत्या ँ हुतायामाप पुरुषवाचोः भूत्वा समुत्थाय वदन्ती३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो देवयानस्य वा पथः प्रतिपदं पितृयाणस्य वा यत्कृत्वा देवयानं वा पन्थानं प्रतिपद्यन्ते पितृयाणं वापि हि न ऋषेर्वचः श्रुतम् । द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् । ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं चेति नाहमत एकंचन वेदेति होवाच ।।२।।

प्रजानां गमनं तत्र प्रत्यागमनमेव च ।
अपूर्तिं तस्य लोकस्य पूर्यमाणस्य चान्वहं ।।

आहुतौ कतमायाञ्च आपोवाचोभवन्त्युत ।
याने च पितृदेवानां किं वेत्थद्विजसत्तम ।।

एषु नैकमहं वेद पञ्चप्रश्नेषु भूपते ।
इति तूष्णीं ययौ तातं श्वेतकेतुर्विलज्जितः ।।श्रीः।।

अथैनं वसत्योपमन्त्रयांचक्रेऽनादृत्य वसतिं कुमारः प्रदुद्राव स आजगाम पितरं त ँ होवाचेति वाव किल नो भवान्पुरानुशिष्टानवोच इति कथ ँ सुमेध इति पञ्च मा प्रश्नान् राजन्यबन्धुरप्राक्षीत्ततो नैकंचन वेदेति कतमे त इतीम इति ह प्रतीकान्युदाजहार ।।३।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथवसतये निवासाय आमन्त्रयाञ्चक्रे कुमारो न स्वीचकार राजन्यबन्धुः इति क्रोधपूर्णशब्दः न तु पारमार्थिकः प्रतीकान् नाममात्राणि ।।श्रीः।।

स होवाच तथा नस्त्वं तात जानीथा यथा यदहं किं च वेद सर्वमहं तत्तुभ्यमवोचं प्रेहि तु तत्र प्रतीत्य ब्रह्मचर्यंवत्स्याव इति भवानेव गच्छत्विति स आजगाम गौतमो यत्र प्रवाहणस्य जैबलेरास तस्मा आसनमाहृत्योदकमाहारयांचकाराथ हास्मा अर्घ्यं चकार त ँ होवाच वरं भगवते गौतमाय दद्म इति ।।४।।

पिता आश्वासयत् नः अस्मान् प्रैहि गच्छ या सह ब्रह्मचर्यं वत्स्यावह आराम विद्याशिक्षणार्थं शेषं सरलं ।।श्रीः।।

स होवाच प्रतिज्ञातो म एष वरो यां तु कुमारस्यान्ते वाचम भाष्यस्तां मे ब्रूहीति ।।५।।

कुमारस्यान्ते समीपे यां वाचमभाषयाः तां पञ्चप्रश्नोत्तररूपां मे मह्यं ब्रूहि ।।श्रीः।।

स होवाच दैवेषु वै गौतम तद्वरेषु मानुषाणां ब्रूहीति ।।६।।

दैवेषु देवसंबन्धिषु मानुषाणां गवाश्वादीनां मध्ये किमपि ब्रूहि ।।श्रीः।।

स होवाच विज्ञायते हास्ति हिरण्यस्यापात्तं गोअश्वानां दासीनां प्रवाराणां परिधानस्य मा नो भवान्बहोरनन्तस्यापर्यन्तस्याभ्यवदान्योभूदिति सवै गौतम तीर्थेनेच्छासा इत्युपेम्यहं भवन्तमिति वाचा ह स्मैव पूर्व उपयन्ति स होपायनकीर्त्योवास ।।७।।

अवदान्यः अदाता अन्यवरैःकिम् अहं भवन्तं तीर्थं मत्वा विद्यां गृह्णीयाम् इति वाङ्मात्रेण शिष्यतां स्वीचकार विद्यां जिघ्रक्षुर्ब्राह्मणः न खलु क्षत्रियं सेवते इति परम्परा ।।श्रीः।।

स होवाच तथा नस्त्वं गौतम माऽपराधास्तव च पितामहा यथेयं विद्येतः पूर्वं न कस्मि ँश्चन ब्राह्मण उवास तां त्वहं तुभ्यं वक्ष्यामि को हि त्वैवं ब्रुवन्तमर्हति प्रत्याख्यातुमिति ।।८।।

स क्षमापयति मापराधाः मामपराधभाजनं मा मंस्थाः इतः पूर्वम् इयं विद्या न ब्राह्मणं गता किन्तु तुभ्यं यच्छामि ।।श्रीः।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असौ वै लोकोऽग्निर्गौतम तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिर्दिशोऽङ्गाबरा अवान्तर दिशो विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुत्यै सोमो राजा संभवति ।।९।।

अग्निरे बअयं लोकः तेषु देवाः श्रद्धां आस्तिक बुद्धि जुह्वति ।।श्रीः।।

पर्जन्यो वाग्निर्गौतम तस्य संवत्सर एव समिदभ्राणि धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमँ राजानं जुह्वाति तस्या आहुत्यै वृष्टिः संभवति ।।१०।।

एवं द्वितीयाहुतिः पर्जन्ये यत्तु सोम एव हूयते ।।श्रीः।।

अयं वै लोकाऽग्निर्गौतम तस्य पृथिव्येव समिदग्निर्धूमो रात्रिरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वृष्टिं जुह्वाति तस्या आहुत्या अन्नँ संभवति ।।११।।

तृतीयाहुतौ पृथिवीलोकाग्नौ वृष्टिर्भूयते ।।श्रीः।।

पुरुषोवाऽग्निर्गौतम तस्य व्यात्तमेव समित्प्राणो धूमो वागार्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुत्यै रेतः संभवति ।।१२।।

चतुर्थे पुरुषाग्नौ अन्नं हूयते ।।श्रीः।।

योषा वा अग्निर्गौतम तस्या उपस्थ एव समिल्लोमानि धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषः संभवति स जीवति यावज्जीवत्यथ यदा म्रियते ।।१३।।

श्रद्धासोमस्तथावृष्टिः अन्नं रेत पंचमं ।

हूयमानं जलं चैभिः पुं वाचं जनयत्वित ।।श्रीः।।

अथैनमग्नये हरन्ति तस्याग्निरेवाग्निर्भवति समित्समिद्धूमो धूमोऽर्चिरर्चिरङ्गारा अङ्गारा विष्फुलिङ्गा विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः पुरुषं जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषो भाष्वरवर्णः संभवति ।।१४।।

अथान्तेऽष्टौ अग्नौ हूयमानः पुरुषः वास्तवीमाहुतिं प्रतिपद्याते ।।श्रीः।।

ते य एवमेवतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धँ सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्य-माणपक्षाद्यान्षण्मासानुदङादित्य एति मासेभ्यो देवलोकं

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं तान्वैद्युतान्पुरुषो मानस एतत्य ब्रह्मलोकान् गमयति ते तेषु ब्रह्मलोकेषु वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ।।१५।।

अरण्ये वने ये श्रद्धामास्तिकबुद्धिमुपासते त एव अर्चिषः शुक्लपक्षं तस्माद्वायुं वायोरादित्यं तस्माद् वैद्युतं पुरुषं ततश्च मानसः भगवदीयपरिकरः ब्रह्मलोकं नयति तेषां पुनरावृत्तिर्न भवति ।।श्रीः।।

अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकाञ्जयन्ति ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रि ँ्रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपक्षीयमाणपक्षाद्यान्षण्मासान्दक्षिणादित्य एति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकाच्चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति ताँ्स्तत्र देवा यथा सोम ँ्राजानमाप्यायस्वापक्षीयस्वेत्येवमेनाँ्स्तत्र भक्ष्यन्ति तेषां यदा तत्पर्य वैत्यथेममेवाकाश मभिनिष्पद्यन्त आकाशाद्वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेः पृथिवीं ते पृथिवीं प्राप्यान्नं भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते लोकान्प्रतयत्थायिनस्त एवमेवानुपरिवर्तन्तेऽथ य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दशूकम् ।।१६।।

एवं सकामाः यज्ञादिना लोकान्जित्वा धूमाद्रात्रि ततः कृष्णपक्षं ततः षड्मासान् ततश्चन्द्रमा ततः देवैर्भुज्यमानाः आकाशं पुनर्वायु वृष्टिं पुरुषं पुनर्योषां प्रपद्य जायन्ते य इदं श्रीगीतासु अष्टमे त्रयोविंशमारभ्य अष्टमपरिसमाप्तिं यावत् निपुणं निरूपिता भगवता तद्यथा ।

।। इति द्वितीयब्राह्मणम् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। तृतीयब्राह्मणम् ।।

अथ हवनविधानं निरूपयति, इदं कर्मकाण्डीयत्वात् स्वष्टत्वाच्च न व्याख्यायते ।

स यः कामयेत महत् प्राप्नुयाभित्युदगवन आपूर्य माणपक्षस्य पुण्याहे द्वादशाहमुपसद्व्रती भूत्वौदुम्बरे कँ्से चमसे वा सर्वौषधं फलानीति सम्भृत्य परिसमुह्य परिलिप्याग्निमुपसामाधय परिस्तीर्यावृताज्यँ्सँ्स्कृत्य पुँ्सा नक्षत्रेण मन्थँ्सन्नीय जुहोति । यावन्तो देवास्त्वयि जातवेदस्तिर्यञ्चो घ्नन्ति पुरुषस्य कामान् । तेभ्यो भागधेयं जुहोमि ते मातृप्ताः सर्वैः कामैस्तर्पयन्तु स्वाहा । या तिरश्ची निपद्यतेऽहं विधरिणी इति तां त्वा धृतस्य धारया यजे सँ्राधनीमहँ्स्वाहा ।।१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज्येष्ठाय स्वाहा श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँ् स्रवमवनयति प्राणाय स्वाहा वसिष्ठायै स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँ् स्रवमवनयति चक्षुषे स्वाहा सम्पदे स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँ् स्रवमवनयति श्रोत्राय स्वाहायतनाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँ् स्रवमवनयति मनसे स्वाहा प्रजात्यै स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँ् स्रवमवनयति रेतसे स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मन्थे सँ् स्रवमवनयति ।।२।।

आग्नेय स्वाहेव्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ स्रवमवनयति सोमाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति भू स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति भुवः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति स्वः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति ब्राह्मणे स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति क्षत्राय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति भूताय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति भविष्यते स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति विश्वाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति सर्वाय स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् स्रवमवनयति प्रजापतये स्वाहेत्यग्नौ हुत्वा मंथे सँ् सवमवनयति ।।३।।

अथैनमभिमृशति भ्रमदसि ज्वलदसि पूर्णमसि प्रस्तब्धमस्येकसभमसि हिङ्कृतमसि हिङ्क्रियमाणमस्युद्गीयमस्युद्गीयमानमसि श्रवावितमसि प्रत्याश्रावितमस्याद्रे संदीप्तमसि विभूरसि प्रभूरस्यन्नमसि ज्योतिरसि निधनमसि संवर्गोऽसीति ।।४।।

अथैनमुद्यच्छत्यामँ् स्यामँ् हि ते महि स हि राजेशानोऽधिपतिः समाँ् राजेशानोऽधिपतिं करोत्विति ।।५।।

अथैनमाचामति तत्सवितुर्वरेण्यम् । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । भूः स्वाहा । भर्गो देवस्य धीमहि । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत पार्थिवँ् रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता । भुवः स्वाहा । धियो यो नः प्रचोदयात् । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ् अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः । स्वः स्वाहेति । सर्वां च सावित्रीमन्वाह सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेदँ् सर्वं भूयासं भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्यन्तत आचम्य पाणी प्रक्षाल्य जघनेनाग्निं प्राक्शिराः संविशति प्रातरादित्यमुपतिष्ठते दिशामेक पुण्डरीकमस्यहं मनुष्याणामेकपुण्डरीकं भूयासमिति यथेतमेत्य जघनेनाग्निमासीनो वँ्शं जयतिं ।।६।।

तँ् हैतमुद्दालक आरुणिर्वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एनँ् शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।।७।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतमु हैव वाजसनेयो याज्ञवल्क्यो मधुकाय पैङ्ग्यायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एनँ् शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेञ्शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।।८।।

एतमु हैव मधुकः पैङ्ग्यश्चूलाय भागावित्तेयऽन्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एनँ् शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।।९।।

एतमु हैव चूलो भागवित्तिर्जान्कय आयस्थूगायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एनँ् शुष्के स्थागौ निषिञ्चेज्जायेरञ्शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।।१०।।

एतमु हैव जानकिरायस्थूणः सत्यकामाय जाबालायान्तेवासिन उक्त्वोवाचापि य एनँ् शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जायेरञ्शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।।११।।

एतमु हैव सत्यकामो जाबालोऽन्तेवासिभ्य उक्त्वोवाचपि स एनँ् शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेज्जामेरञ्शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति तमेतं नापुत्राय वानन्तेवासिने वा ब्रूयात् ।।१२।।

चतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बरः स्रुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्म औदुम्बर्या उपमन्थन्यौ दश ग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति व्रीहियवास्तिलमाषा अणुप्रियङ्गवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खल्कुलाश्च तान् पिष्टान् दधनि मधुनि घृत उपसिञ्चत्याज्यस्य जुहोति ।।१३।।

एवमस्मिन् ब्राह्मणे समस्ता अपि मन्त्राः कर्मकाण्डपराः । तत्तत् प्रशंसाविशेषणानि भगवद्विभूतितयैवोह्यानि । एतेषां वेदभाष्यावसरे व्याख्या करिष्यते ।।श्रीः।।

।। इति तृतीयब्राह्मणम् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। चतुर्थब्रह्मणम् ।।

एषां वै भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोऽपामोषधय ओषधीनां पुष्पाणि पुष्पाणां फलानि फलानां पुरुषः पुरुषस्य रेतः ।।१।।

स ह प्रजापतिरीक्षांचक्रे हन्तास्मै प्रतिष्ठां कल्पयानीति स स्त्रियँ् ससृजे ताँ् सृष्टान उपास्त तस्मात् स्त्रियमध उपासीत स एतं प्राञ्चं ग्रावाणमात्मन एव समुदपारयत्तेनैनामभ्यसृजत ।।२।।

तस्या वेदिरूपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्माधिषवणे समिद्धो मध्यतस्तौ मुष्कौ स यावान् ह वै वाजपेयेन यजमानस्य लोको भवति तावानस्य लोको

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भवति य एवं विद्वानधोपहासं चरत्यासा ँ स्त्रीणा ँ सुकृतं वृङ्क्ते थ य इदमविद्वानधोपहासं चरत्यास्य स्त्रियः सुकृतं वृञ्जते ।।३।।

एतद्ध स्म वै तद् विद्वानुद्दालक आरूणिराहैतद्ध स्म वै तद्विद्वान्नको मौद्गल्य आहैतद्ध स्म वै तद्विद्वान कुमारहारित आह बहवो मर्या ब्राह्मणयना निरिन्द्रिया विसुकृतोऽस्माललोकात् प्रयनित य इदमविद्वा ँ सोऽधोपहासं चरन्तीति बहु वा इद ँ सुप्तस्य वा जाग्रो वा रेतः स्कन्दति ।।४।।

तदभिमृशेदनु वा मन्त्रयेत यन्मेऽद्य रेतः पृथिवीमास्तान्त्सीद यदोषदीरप्यसरद् यदपः । इदमहं तद्रेत आदहे पुनर्मामै त्विन्द्रियं पुनस्तेजः पुनर्भगः । पुनरिग्नधिष्ण्या यथास्थानं कल्पन्तामित्यनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामदायन्तरेण स्तनौ वा मिभृज्यात ।।५।।

अथ यद्युदक आत्मानं पश्येत्तभिमन्त्रयेत मयि तेज इन्द्रियं यशो द्रविणँ, सुकृतमिति भीर्ह वा एष स्त्रिणां यन्मलोद्वासास्तस्मान्मलोद्वाससं यस्विनीमभिक्रम्योपमन्त्रयेत ।।६।।

सा चेदस्मै न दद्यात काममेनामवक्रीणीयात सा चेदस्मै नैव दद्यात काममेनां यष्टया वा पणिना वोपहत्यातिक्रा मेदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति ।।७।।

सा चेदस्मै यद्वादिन्द्रियेण ते यशसा यश आदधामीति यशश्विनामेव भवतः ।।८।।

स यामिच्छयेत् कामयेत मेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखपू संधायोपस्थमस्या अभिमृश्य जपेदङ्गादङ्गात संभवसि दधिजायसे । स त्वमङ्गकषायोऽषि दिग्धविद्धामिव मदयेमामम् मयीति ।।९।।

अथ यामिच्छेन गर्भं दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुख ँ संधायाभ्रिप्राण्यापान्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदद इत्यरेता एव भवति ।।१०।।

अथ यामिच्छेद दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखँ संधायावान्याभ्रिप्राण्यादिन्द्रियेण ते रेतसा रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति ।।११।।

अथ यस्य जरायै जारः स्यत्तं चेद् द्विष्यादाम पात्रेऽग्निमुपसमाधाय प्रतिलोम शरबर्हिस्तीर्त्वा तस्मिन्नेताः शरभृष्टीः प्रतिलोमा सर्पिषाक्ता जुडुयान्मम समिद्धेऽहौषीः प्राणापानो त आददेऽसाविति मम सामिद्धेऽहोषीः पुत्रपशु ँ स्त आददेऽसाविति मम समिद्धेऽहौषी रिष्टासुकृते त आददेऽसाविति मम

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समिद्धेऽहौषीराशापराकाशौ त आददेऽसाविति स वा एष निरिन्द्रियो विसुकृतोऽस्माल्लोकात् प्रैति यमेवंविद ब्राह्मणः शपति तस्मदेवंविच्छ्रोत्रियस्य दारेण नोपहासमिच्छे दुत ह्येवंवित परो भवति ।।१२।।

अथ यस्य जायामार्तवं विन्देत् त्र्यहं क ँ्से न पिबेदहतवासा नैनां वृशालो न वृषल्युप हन्यात त्रिरात्रान्त अप्लुत्य व्रीहिनवघातयेत् ।।१३।।

स य इच्छेत पुत्रो मे शुक्लो वेदमनुव्रवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्रीयातामिश्वरौ जनयितवै ।।१४।।

अथ य इच्छेत पुत्रो मे कपिलः पिङ्गलो जायेत द्वो वेदानुब्रवीत सर्वमायुरियादिति दध्योदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नी यातामीश्वरौ जनयितव ।।१५।।

अथ य इच्छेत पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत त्रीन वेदाननुब्रवीत सव्रमायुरियादित्यु दौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरो जनयितवै ।।१६।।

अथ य इच्छेद दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीशरौ जनयितवै ।।१७।।

अथ य इच्छेत पुत्रो मे पंडिप्तो बीगीतः समितिंगमः शुश्रुषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति माँ सौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्रीयातामीश्वरौ जनमितवा औक्षेण वार्षभेण वा ।।१८।।

अथाभिप्रातरेव स्थालीपाकामृतांजयं चेष्टित्वा स्थालीपाकस्योपधातं जुहोत्यग्नये स्वाहानुमतये स्वाहा देवाय सवित्रे सत्यप्रासवाय स्वाहेति हुत्वो दधृत्यप्राश्नाति प्राश्येतरस्याः प्रयच्छति प्राक्षाल्य प्राणीउदपात्रं पूरयित्वा तेनैनां त्रिरभ्युक्षत्युत्तिष्ठातोविश्वासोन्यामिच्छ प्रपूर्त्यां सं जायं पत्यासहेति ।।१९।।

अथैनामभिपद्यतेऽमोऽहममिम सा त्व ँ्सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेहि स ँ्रभावहै सह रेतो दधावहै पु ँ्से पुत्राय वित्तय इति ।।२०।।

अथास्या ऊरू विहापयति विजिहीथां द्यावापृथिवी इति तस्यामर्थं तिष्ठाय मुखेन मुख ँ्सन्धाय त्रिरेनामनुलोमामनुमर्ष्टि विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पि ँ्शतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते । गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां। पुष्करस्त्रजौ ।।२१।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिरण्मयी अरणी याभ्यां निर्मन्थतामश्विनौ तं ते गर्भं हवामहे दशमें मासि सूतये । यथाग्निगर्भा पृथिवी यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणौ । वायुदशां तथा गर्भं एवं गर्भ दधामि तेऽसाविति ।।२२।।

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति । यथा वायुः पुष्करिणीँ समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु सहावैतु जरायुणा । इन्द्रस्यायं व्रजः कृतः सार्गलः सपरिश्रयः । तमिन्द्र निर्जहि गर्भेण सावराँ सहेति ।।२३।।

जातेऽग्निमुपसमाधायाङ्क आधाय कँ से पृषदाजयँ सनीय पृषदाजयस्योपघातं जुहोत्यस्मिन् सहस्रं पुष्यासमेधमानः रचे गृहे । अस्योपसन्धा माच्छेत्सीत् प्रजया पशुभिश्च स्वाहा । मयि प्राणाँ स्त्वयि मनसा जुहोमि स्वाहा । यत् कर्मणा त्यरीरिचं यद् वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद् विद्वान् त्विष्टँ सुहुतं करोतु स्वाहा ।।२४।।

अथास्य दक्षिणं कर्णमभिनिधाय वाग् वागिति त्रिरथ दधि मधु धृतँ संनीयानन्तर्हितेन जातरूपेण प्राशयति । भूस्ते दधामि भुवस्ते दधामि स्वस्ते दधामि भूर्भुवः स्वः स्र्वं त्वयि दधामिति ।।२५।।

अथास्य नाम करोति वेदोऽसति तदस्य तद गुह्यमेव नाम भवति ।।२६।।

अथैनं मात्रे प्रदाय स्तनं प्रयच्छति यस्ते स्तनः शशयो यो मयोमूर्यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे करोति ।।२७।।

अथ जनायित्वा पुत्रं पिता स्तन्यपानविधौ बालस्य मातरमामन्त्र्यतेऽनेनमन्त्रेण—

अथास्य मातरमभिमन्त्रयते । इलासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनत् । सा त्वं वीरवती भव यास्मान् वीरवतोऽकरदिति । तं वा एतमाहुरति पिता बताभूरतिपितामहो बताभूः परमां बत काष्ठां प्रापच्छ्रिया यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवंविदो ब्राह्मणस्य पुत्रा जायत इति ।।२८।।

हे मैत्रावरुणि ! मित्रावरुणयोः कृपातः प्राप्ता त्वम् इलासि, स्तुतियोग्या पृथिव्यसि । हे वीरे ! पुरुषार्थवती वीरवती वीरपुत्रमाता भव । यतो हि त्वं वीरं पुरुषार्थिनं पुत्रमजीजनत् । अत्र व्यत्ययात् मध्यमपुरुषेप्रथमपुरुषः । अनेन पुत्रेणास्मान् पितृनपि त्वं वीरवतः वीरपुत्रजनकान् अकरत् कृतवती अभूः । एवं कुर्वाणः बालकस्य पिता अतिपिता अतिशयितः पिता येन सोऽतिपिता पितामहः आयुषा श्रिया ब्रह्मवर्चसेन जुष्टो यशस्वी भगवद् भक्तश्च स्यात् । इति संक्षेपः ।।

।। इति चतुर्थ ब्राह्मणम् ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। पञ्चमब्राह्मणम् ।।

अथ वँ्शः । पौतिमाषी पुत्रः कात्यायनीपुत्रात् कात्यायनीपुत्रो गौतमीपुत्राद् गौतमीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद् भारद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रत् औपस्वस्तीपुत्रादौपाराशरीपुत्रपस्वस्तीपुत्रः. पाराशरीपुत्रात् पाराशरीपुत्रः कात्यायनीपुत्रात् कात्यायनीपुत्रः कौशिकीपुत्रात् कौशिकीपुत्रः ड्डलम्बीपुत्राच्च बैयाग्रपदीपुत्राच्च वैयाग्रयदीपुत्रः काण्वीपुत्राच्च काणीपुत्राच्च काणीपुत्रः ।।१।।

आत्रेयीपुत्रादात्रेयीपुत्रो गौतमीपुत्राद् गौतमीपुत्रो भारद्वाजीपुत्राद् भारद्वाजीपुत्रः पाराशरीपुत्रात् पाराशरीपुत्रे वात्सीपुत्राद्वात्सीपुत्रः पाराशरीपुत्रात् पाराशरीपुत्रो वार्कारुणीपुत्राद् वार्कारुणीपुत्र आर्तभागीपुत्रादार्त भागीपुत्रः शौङ्गीपुत्राच्छौङ्गीपुत्रः सांस्कृतीपुत्रात् सांस्कृतीपुत्र आलम्बायनीपुत्रादालम्बायनी पुत्र आलम्बीपुत्रादालम्बीपुत्रो जायन्तीपुत्राज्जयन्तीपुत्रो माण्डूकायनीपुत्रान्माण्डू–कायनीपुत्रो माण्डूकीपुत्रान्माण्डूकीपुत्रः शाण्डिलीपुत्राच्छाण्डलीपुत्रो राथीतरीपुत्राद् राथीतरीपुत्रो भालुकीपुत्राद् भालुकी पुत्रः क्रौञ्चिकीपुत्राभ्यां क्रौञ्चिकीपुत्रौ वैदभृतीपुत्राद् वैदभृतीपुत्रः कार्शकेयीपुत्रात् कार्शकेयीपुत्रः प्राचीनोपयोगीपुत्रात् प्राचीनोपयोगीपुत्रः साञ्जीवीपुत्रात् साञ्जीवीपुत्रः प्राश्नीपुत्रादासुरिवासिनः प्राश्नीपुत्र आसुरायणादासुरायण आसुरेरासुरिः ।।२।।

याज्ञवल्क्याद् याज्ञवल्क्य उद्दालकादुद्दालकोऽरुणरुण उपवेशेरूपवेशिः कुश्रेः कुश्रिर्वाजश्रवसो वाजश्रवा जिह्वावतो बाध्योगाज्जिह्वावान् बाध्योगोऽसिताद् वार्षगणादसितो वार्षगणो हरितात् कश्यपाद्धरितः कश्यपः शिल्पात् कश्यपाच्छिल्पः कश्यपः कश्यपान्नैध्रुवेः कश्यपो नैध्रुविर्वाचो वागम्भिण्या अम्भिण्यादित्यादादित्यानीमानि शुक्लानि यजूँ्षि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते ।।३।।

समानमा साञ्जीवीपुत्रात् साञ्जीवीपुत्रो माण्डूकायनेर्माण्डूकायनिर्माण्ड–व्यान्माण्द्रव्यः कौत्सात् कौत्सो माहित्थर्माहित्थिर्वामकक्षायणाद् वामकक्षायणः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यो वात्स्याद् वात्स्यः कुश्रेः कुश्रिर्यज्ञवचसो राजस्तम्बायनाद् यज्ञवचा राजस्तम्बायनन्तुरात् कावषेयात् तुरः कावषेयः प्रजापतेः प्रजापतिर्ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयम्भु ब्रह्मणे नमः ।।४।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवम्—

वंशश्च पौतिमासाद्यं ब्रह्मान्तं यदुदाहृतम् ।
ऋषीणां ब्रह्मकल्पानां वन्दे तान् ब्रह्मवादिनाः ।।

बृहदारण्यकनाम्नीमुपनिषदं दिव्यसिद्धान्ताम् ।
वेदान्तकामधेनुं श्रुतिचयनिकरां च षड्भिरध्यायैः ।।

श्रीराघवकृपाभाष्यभूषणेन विभूष्यताम् ।
सीताच्छायानिभां देवीं श्रीरामाय निवेदये ।।

सीतारामकृपावलम्बनबलः श्रीवैष्णवानामहमाचार्यः
श्रुतिपण्डितप्रतिभया शास्त्रोल्लसद्युक्तिभिः ।।
सिद्धान्तामृशालि राघवकृपाभाष्यं ह्यभाषे मुदे ।
श्रीरामस्य च रामभद्रलसिताचार्यो बुधप्रीतये ।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं श्रीराघवकृपाफलम् ।
श्रीराघवमुदे भूयात् श्रीराघवकृपाकृतम् ।।

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त मण्डितं तुष्टपण्डितम् ।
बृहदारण्यके भाष्यं पीयन्तां विवुधाः सुखम् ।।श्रीः।।

इति श्रीचित्रकूट सर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु—

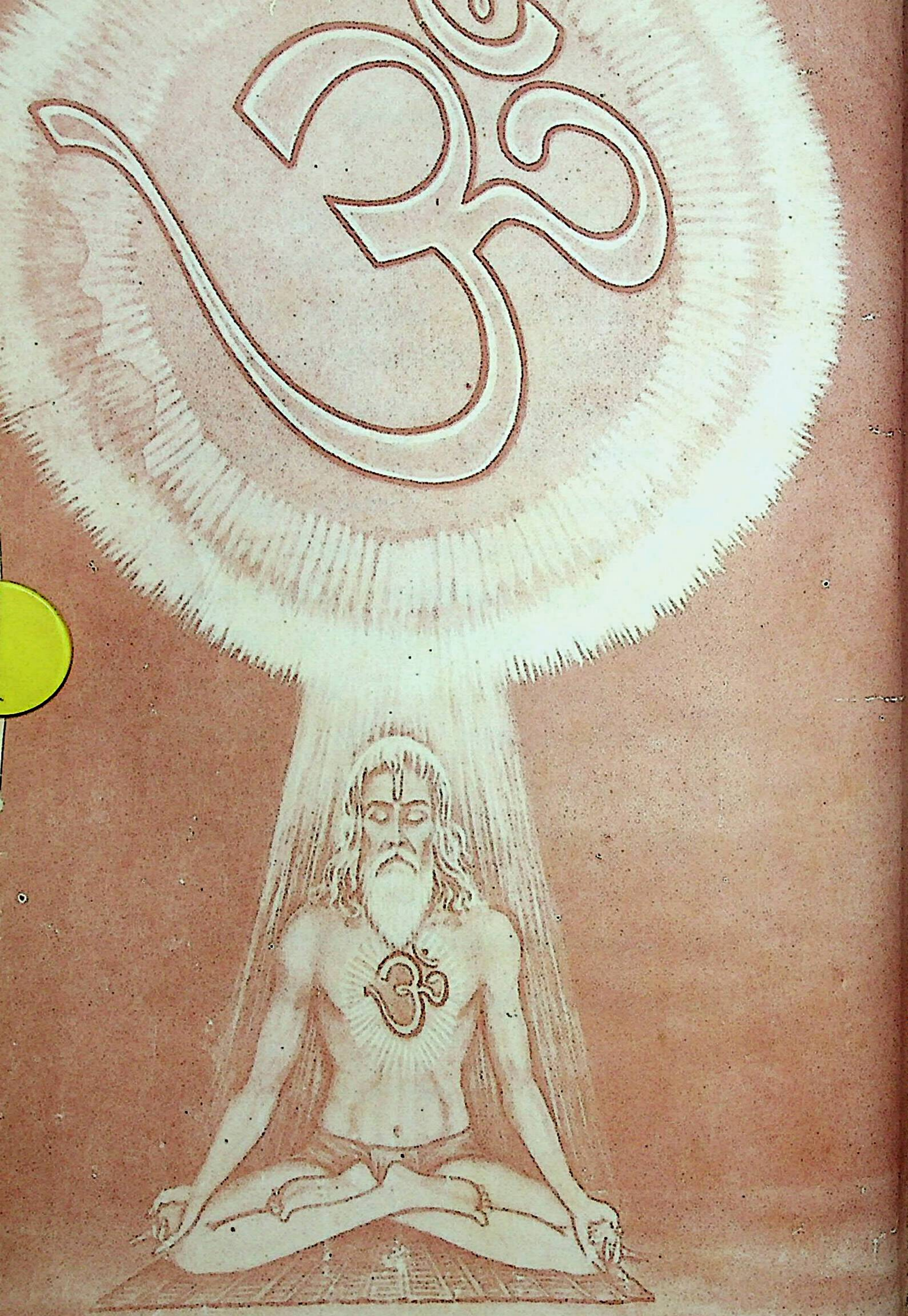
रामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं बृहदारण्यकोपनिषदि षष्ठाध्याये श्री राघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।। समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।।

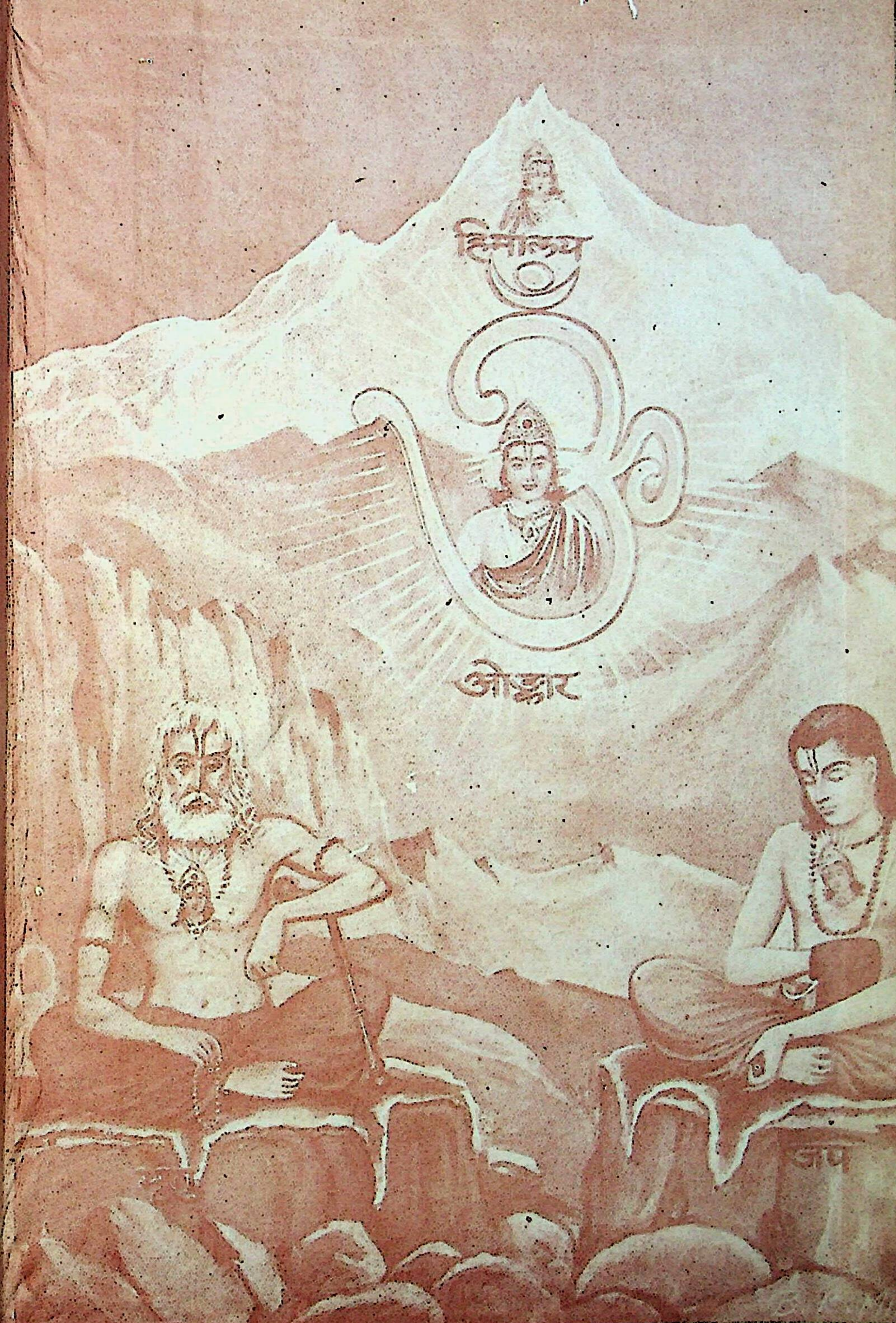
।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha



CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

।। श्रीः ।।

ध्रुवमिदं, विश्वस्य विश्वेऽपि विचरकाश्चामनन्ति यज्जीवेनात्यन्तिकं सुखं नोपलब्धुं शक्यते केवलैः सांसारिकैर्भोगैः। तत्कृते तु तैः जगन्नियन्तुः परमात्मनः शरणमेवाङ्गीकरणीयम्। अनादिकालादेव सर्गेऽस्मिन् ब्रह्मजिज्ञासासमाधानपराः विचाराः प्रचलन्ति। विषयेऽस्मिन् सर्वे दार्शनिकाः सहमता यद्वेदस्य गूढरहस्यात्मकस्य परब्रह्मणः प्रतिपादनं सम्भवम्।

परब्रह्मणो निश्वासभूता अनन्तज्ञानराशिस्वरूपाः वेदाः ज्ञानकर्मोपासनाख्येषु त्रिषु काण्डेषु विस्कृताः सन्ति। एषां ज्ञानकाण्डाख्य उपनिषद्भागा वेदान्तापरनामधेया ब्रह्मविद्या वैशद्येन विर्वोचता व्याख्याता चास्ति। आसामुपनिषदां [illegible]ज्ञानेनैव ब्रह्मज्ञानं तेन च भवदुःखनिवृत्तिरित्युपनिषदां सर्वातिशायिमहत्वं राद्धान्तयन्ति मनीषिणः। आसु प्रश्नोत्तरात्मकातिरमणीयसुमम्यसरलशैल्या जीवात्मपरमात्मनोर्जगतश्च विस्तृतं व्याख्यानं कृतमस्ति। अनेकैर्महर्षिभिरनेकैः प्रकारैरुद्भावितानां ब्रह्मविषयकप्रश्नानां समाधानानि ब्रह्मवेतृणां याज्ञवल्क्यादिमहर्षीणां मुखेभ्य उपस्थापयन्त्युपनिषदः। भगवता वेदव्यासेन ब्रह्मसूत्रेषु भगवता श्रीकृष्णेन च श्रीगीतायामासामेव सारतत्वं प्रतिपादितम्।

भारतीयदर्शनानामाधारभूता इमे त्रयो ग्रन्थाः विभिन्नसम्प्रदायप्रवर्तकैराचरयैर्व्यख्याताः। एष्वद्वैतवादिन आद्यशङ्कराचार्याः प्रमुखा, अन्ये च द्वैतशुद्धाद्वैतद्वैताद्वैतशिवाद्वैतदिवादिनो विद्वांसः स्वस्वमतानुसारमुपनिषदः व्याख्यापयांबभूवुः।

अथ साम्प्रतिकभारतीयदार्शनिकमूर्धन्यैर्वेदवेदाङ्गपारङ्गतैर्धर्मध्वजधारिधौरेयैः श्रीरामानन्दाचार्यैः श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यमहाराजैर्विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमनुसृत्य कृतामिदमुपनिषदां **''श्रीराघवकृपाभाष्यम्''** सर्वत्रैवाभिनवविचारैर्व्युत्पत्तिभिश्चालङ्कृतं विभाति। भाष्येऽस्मिन्नाचार्यचरणैः शब्दव्युत्पत्तिचातुरीचमत्कारेण सर्वोपनिषदां प्रतिपाद्यः भगवान् श्रीराम एवेति सिद्धान्तितम्। मध्ये मध्ये गोस्वामिश्रीतुलसीदासग्रन्थेभ्यः ससंस्कृतरूपान्तरमुदाहृता अंशविशेषासुवर्णे सुरभिमातन्वन्ति। श्रीराघवपदपद्ममधुकराः भक्ता अत्रामन्दानन्दमाप्नुयुरिति भगवन्तं श्रीराघवं निवेदयति।

डॉ. शिवरामशर्मा
वाराणसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection: Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha